07 9441

Stock Verification-2[illegible]

Stock Verification-2[illegible]

[illegible]

[illegible]

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

079447

079447

फ़रवरी १९५६

मूल्य आठ आना

कलात्मक बुनाई के प्रतीक
प्रभावशाली वस्त्र ....

फ़ैशन के अनुरूप, हस्त-करघा निर्मित वस्त्रों द्वारा अपना वस्त्र-भण्डार सामयिक बनाए रखिए।

राष्ट्रीय पोशाक बनवानी हो अथवा स्थानीय, विशेष अवसरों पर अथवा साधारण प्रयोग के लिए—सुखदायक सूती, मुलायम और हल्के रेशमी तथा कड़ाके की ठण्ड से बचाने योग्य मोटे ऊनी—विविध प्रकार के हस्त-करघा निर्मित कपड़े प्राप्य हैं। श्री-सम्पन्नों के लिए, समारोह के अवसरों पर पहिनने योग्य, मश्रु, हिमरू, किनखाब तथा ब्रॉकेड भी मिलते हैं।

भारत के करघा-बुनकरों की परंपरागत निपुणता तथा कला-कौशल के प्रतीक

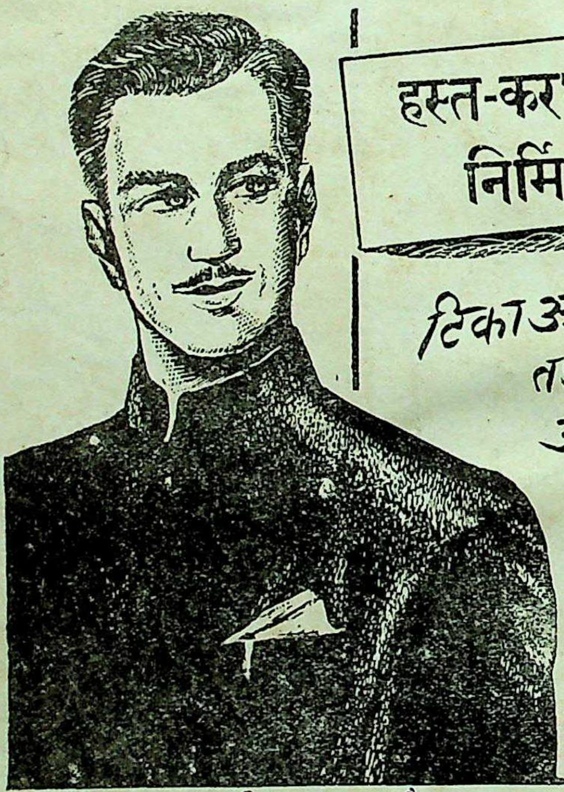

हस्त-करघा
निर्मित वस्त्र

टिकाऊ
तथा
उत्कृष्ट

आल इण्डिया हैण्डलूम बोर्ड

९८ मौब्रेज रोड,
मद्रास-१८

शाहीबाग़ हाऊस,
विटेट रोड, बैलार्ड एस्टेट, बम्बई

७/१९२ स्वरूपनगर,
कानपुर

DASS/122

सर्वोत्तम भारतीय चीनी-मिट्टी के
बर्तनों से
अपनी मेज की खूबसूरती
बढ़ाइए

प्रस्तुतकारक—
बंगाल पॉटरीज़ लिमिटेड
४५, टैंगरा रोड, कलकत्ता-१५

सोल सेलिंग एजेंट्स :—
एलाइड डिस्ट्रीब्यूटर्स एण्ड कंपनी
हेड आफिस :- ३३, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

BP 551.

विक्रेता
शाखा का पता

एलाइड डिस्ट्रीब्यूटरज़ एण्ड कम्पनी
१३-१४ अजमेरी गेट एक्सटेंशन,
नई दिल्ली

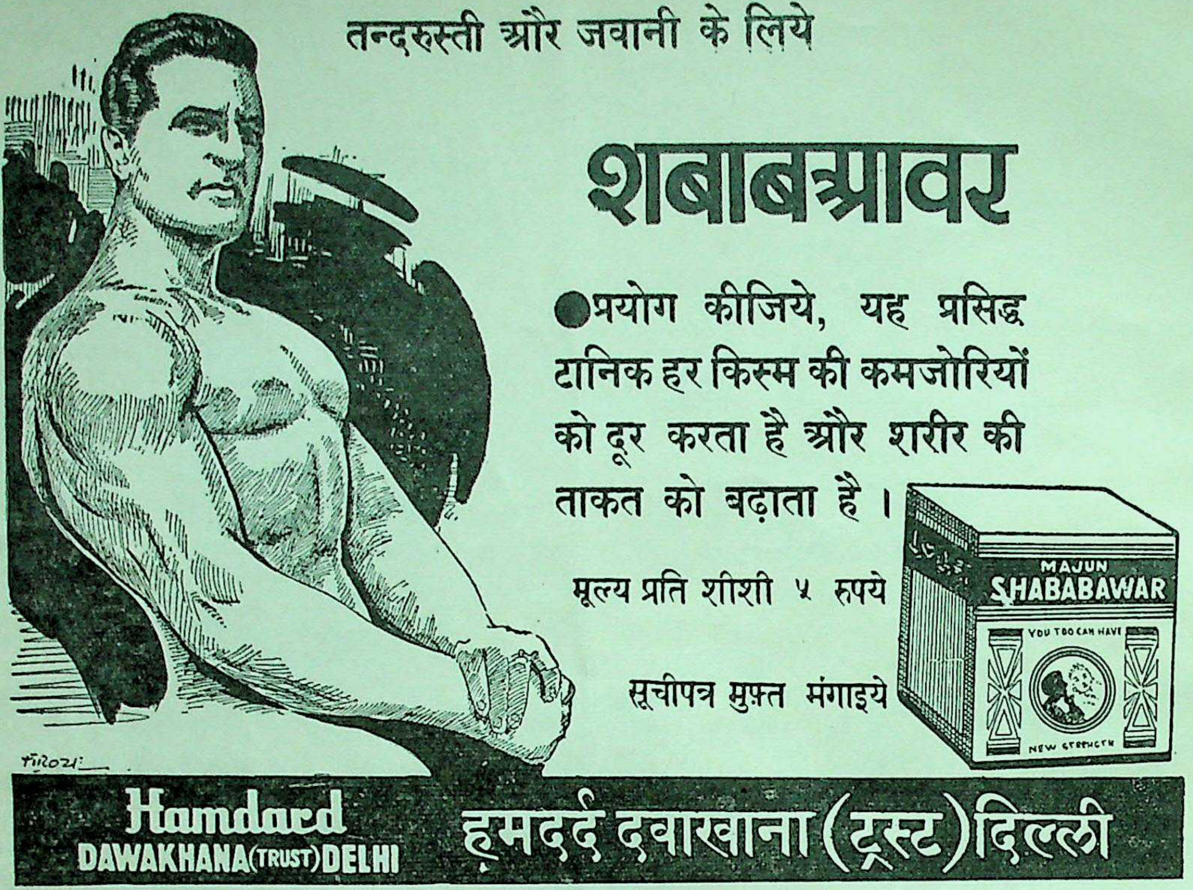

तन्दरुस्ती और जवानी के लिये

शबाबआवर

● प्रयोग कीजिये, यह प्रसिद्ध टानिक हर किस्म की कमजोरियों को दूर करता है और शरीर की ताकत को बढ़ाता है।

मूल्य प्रति शीशी ५ रुपये

सूचीपत्र मुफ़्त मंगाइये

Hamdard DAWAKHANA(TRUST)DELHI हमदर्द दवाखाना (ट्रस्ट) दिल्ली

प्रसारिका

अमेरिका में हर दूसरे आदमी के पास रेडियो होता है। यूरोप में हर छठे व्यक्ति के पास रेडियो है, जब कि एशिया में हर पच्चीसवाँ व्यक्ति ही रेडियो रखता है। परन्तु भारत में हर दो ऐसे व्यक्तियों पर जिनके पास रेडियो है, नौ सौ अट्ठानवे ऐसे हैं, जिनके पास रेडियो नहीं है। अगर आपके पास रेडियो नहीं है और जब तक आप इस कमी को दूर नहीं कर सकते, रेडियो से हिन्दी में प्रसारित होने वाली स्थायी महत्त्व की चीज़ें आप 'प्रसारिका' से प्राप्त कीजिए।

'प्रसारिका' साहित्य, कला, इतिहास, यात्रा, दर्शन, धर्म, विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषयों पर देश भर के प्रख्यात व्यक्तियों के चुने हुए भाषणों का संग्रह है। उच्च कोटि की बौद्धिक सामग्री के अलावा इस संग्रह में कहानी, कविता, नाटक, हास्य-रस के लेख आदि भी होते हैं। ऐसी उत्कृष्ट सामग्री सभी को सुलभ करने के लिए इस सचित्र लगभग सौ पृष्ठ की पत्रिका का मूल्य केवल आठ आने रखा गया है।

नोट—प्रसारिका के पहले दो अंक 'रेडियो संग्रह' के नाम से प्रकाशित हुए हैं।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न
ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली—८

दि
पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड
(स्थापित १८९५)
प्रधान कार्यालय : दिल्ली

हर प्रकार के
बैंकिंग और एक्सचेंज
कारोबार की सुविधाएँ प्रस्तुत करता है।

डिपाज़िट्स ...... ८६ करोड़ रुपये से अधिक
लेनदारी ...... १०४ करोड़ रुपये से अधिक

(३० जून, १९५५ के अनुसार)

शान्तिप्रसाद जैन
चेयरमैन

बी० एन० पुरी
जनरल मैनेजर

३२० शाखाओं द्वारा देश की सेवा कर रहा है

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
शशधर सिन्हा, डाइरेक्टर
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मन्त्री)

●

सहायक सम्पादक—जगदीश गोयल

वर्ष ११ अंक १० पूर्णांक १४०

फ़रवरी १९५६

हे ज्योतिर्मय	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' …	५
विलियम बटलर ईट्स के प्रति (कविता)	'बच्चन' …	६
स्वतन्त्रता के बाद भारतीय अर्थ-व्यवस्था : एक विहंगावलोकन	वी० के० आर० वी० राव …	७
रीता (मराठी कविता)	मनोहर भ० देशपांडे …	१२
जावा के साहित्य-संस्कृति पर भारतीय प्रभाव	सूर्यनारायण व्यास …	१३
कुम्भनदास (ऐतिहासिक एकांकी)	सेठ गोविन्ददास …	१६
कुकनूस (पंजाबी कविता)	अमृता प्रीतम …	१९
तीन गोलियाँ (बंगला कविता)	प्रेमेन्द्र मित्र …	१९
पैंतीस वर्ष बाद	भदन्त आनन्द कौसल्यायन …	२०
काव्य और संगीत	देवीशंकर अवस्थी …	२३
चम्पा के फूल (कन्नड़ कहानी)	एन० व्यासराय बल्लाल …	२५
कुछ शब्दों की कहानी	भोलानाथ तिवारी …	३१
ताजमहल (तेलुगु कविता)	जि० जाषुवा …	३३
गढ़वाली लोकगीत : एक परिचय	गोविन्द चातक …	३४
बात का धनी (हिन्दी कहानी)	चन्द्रकिरण सौनरिक्सा …	४२
डाकनी संभा (कविता)	नरेश मेहता …	४७
तुम और मैं (कविता)	रामानन्द 'दोषी' …	४७
स्वतन्त्रता के बाद प्रकाशित मलयालम पुस्तकें	रवि वर्मा …	४८
वियना	रामकुमार …	४९
स्वातन्त्र्योत्तर तमिल-साहित्य के ग्रन्थ	र० शौरिराजन …	५४
मनीआर्डर (मलयालम कहानी)	एम० गोविन्दन् …	५६
चट्टान (मराठी कविता)	मंगेश पाडगांवकर …	६०
मुहम्मद इक़बाल (उर्दू साहित्य)	रामधारीसिंह 'दिनकर' …	६१
मधुमक्खी पालन	सावित्री निगम …	६६
पुस्तक समालोचना	मन्मथनाथ गुप्त … चन्द्रगुप्त विद्यालंकार … प्रयागनारायण त्रिपाठी …	६९
सम्पादकीय	… …	७१
आवरण चित्र : 'तीन बालाएँ'		
इस मास का फोटो : 'घर की ओर'	…	४

इस अंक के लेखकों के पते :

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', ५ विंडसर प्लेस, न० दि०
'बच्चन', ओ०एस०डी०, विदेश मंत्रालय, न० दि०
वी० के० आर० वी० राव, डायरेक्टर, दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकानामिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
म० भ० देशपांडे, 'युगवाणी' कार्यालय, नागपुर
सूर्यनारायण व्यास, भारती भवन, उज्जैन
सेठ गोविन्ददास, ३, कैनिंग लेन, नई दिल्ली
अमृता प्रीतम, ८।२०, वैस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
प्रेमेन्द्र मित्र, ५७, हरीश चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-२६
आनन्द कौसल्यायन, धर्मोदय विहार, कालिम्पोंग
दे० शं० अवस्थी, डी० ए० वी० कालेज, कानपुर
एन० व्यासराय बल्लाल, पो०बा०नं० १५५, बम्बई-१
भोलानाथ तिवारी, हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद
जि० जाषुवा, ब्राडी पेट, गुंटूर
गोविन्द चातक, ५ पटेल रोड, देहरादून
चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, ३७ नांगल रोड, देहरादून
नरेश मेहता, ३३, कैनिंग लेन, नई दिल्ली
रामानन्द 'दोषी', हिन्दुस्तान, नई दिल्ली
रवि वर्मा, १३८ शेनोय नगर, मद्रास-३०
रामकुमार, १४ ए।२०, डब्लू० ई० ए०, नई दिल्ली
र० शौरिराजन, हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास-१७
एम० गोविन्दन्, ७१-बी, हैरिस रोड, मद्रास-२
मं० पाडगांवकर, 'साधना', आर्थर रोड, बम्बई-११
'दिनकर', ५२, साउथ ऐवेन्यू, नई दिल्ली
सावित्री निगम, २०, नार्थ ऐवेन्यू, नई दिल्ली

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
मन्त्री, सम्पादक मण्डल
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

●

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—आठ आने, दस सेंट या नौ पेंस

घर की ओर : के० एन० रुस्तम जी [तीसरी दिल्ली अन्तर्राष्ट्रीय फ़ोटो प्रदशनी के सौजन

वर्ष ११ फ़रवरी १९५६ अंक १०

हे ज्योतिर्मय :—

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

अपनी दीप्ति-किरण से कर दो जगमग इस धरणी का आङ्गन,
हे ज्योतिर्मय, निज द्युति-स्मिति से कर दो सस्मित जन-गण-आनन।

यह वसुधा, यह धीर धरित्री, यह वराह-उद्धृता, नग-धृता,—
अचला, विश्वंभरा, रसा यह, यह अर्णव-वसनोर्मि-आवृता,—
सुमन-पर्ण-तृण-राजि-संयुता, रत्न-मंडिता, यत्न-संस्कृता,—
आज ध्वंस-उन्मुखी बन रही मानव की लिप्सा के कारण;
हे ज्योतिर्मय, तव द्युति-कर से हो जन-मन-घन ध्वान्त निवारण,

निज विनाश रत, उद्धत, मतिहत, योगभ्रष्ट यह वामन मानव,—
अहंकार-मज्जित, निर्लज्जित, बना रहा है, निज को दानव;
अहंकार-कर्दम-निमग्न, यह नग्न बन रहा है अति दानव
उन्नत बुद्धि, अधोनत निष्ठा, तब, इसका हो क्यों न पराभव ?
तुम मंगलमय इस जगती पर करो अवतरित नन्दन कानन;
हे ज्योतिर्मय निज आभा से चमका दो धरणी का आङ्गन।

भरत-भूमि तो सदा रही है प्यारी क्रीड़ा स्थली तुम्हारी;
सदा भेजते रहे यहाँ तुम अपने तेज-अंश-अवतारी;
बर दो : इस स्वाधीन देश के हम आबाल वृद्ध नर-नारी,—
तव विश्वंभर रूप निहारें, करें नित्य उसका आराधन;
हे ज्योतिर्मय, विश्व-नाश का तिमिर हरो, चमके वसुधाङ्गन।

●

विलियम बट्लर ईट्स के प्रति

'बच्चन'

मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ।

याद करूँगा सब से पहले
मैं तो यह वरदान तुम्हारा—
तुमने 'गीतांजलि' के भावों
को अंग्रेज़ी में अवतारा ।
चतुर कीमियागर, चाँदी की
प्रतिमा जो गुरुदेव-रची थी,
उसको लेकर तुमने उस पर फेर दिया सोने का पानी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥
कंठ तुम्हारा फूटा था जब
गिरा हो रही थी जर्जर-स्वर,
कला कला के हेतु हुई थी
जन-मन संघर्षों से बचकर,
भूषा-वेश विचित्र किए कवि
अपनी छाया पिछुआते थे,
अपने मूक देश को मुखरित करने की तुमने, पर, ठानी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥
आज़ादी के जद्दोजहद में
जूझ रहे थे जब दीवाने,
लगे हुए थे तुम लिखने में
नाटक, गल्प, निबन्ध, तराने,
गाने जिनके शब्द-शब्द से
रूह बोलती थी आयर की,
आयर का इतिहास, पुरा विश्वास-कल्पना-कर्म कहानी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥
स्वप्न-ढकी दुनिया से लेकर
नंगी दुनिया की सच्चाई
तक जो भी तुमने अपनाई
निर्भय, निर्लज्जा अपनाई;
और सुनाए मीठे-कड़ुए
अनुभव सब जीती भाषा में;
जिनको जग, जीवन, युग से डर मरी हुई है उनकी वाणी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥
वाणी अन्त नहीं अपने में,
हे कवि कर्मठ, उसके द्वारा
तुमने आयर के यौवन का
एक नया ही पक्ष उभारा,
जो कि सृष्टि की सुन्दरता पर
तितली-सा फिर-फिर मँडलाए,
किन्तु सत्य पर बाज़-गाज की भाँति गिरे बे आनाकानी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥
कवि का पन्थ अनन्त सर्प-सा
जो मुख में हैं पूँछ दबाए,
और मनीषी तीर सरीखी
सीधी अपनी लीक बनाए,
उनकी दृष्टि-दिशा में कितना
अन्तर है, पर तुमने चाहा,
जो दोनों को साथ समोए, बनना सिद्ध-सधा वह प्राणी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥
काव्य सिन्धु में उतर तुम्हारे
मैंने तह को खूब थहाया,
मोती जो दो-चार निकाले,
यह माँझी का फ़र्ज़ बजाया,
इनको जग परखे, मेरा तो
सुख सबसे बढ़कर था, उसकी
चिर-चंचल, वर्तुल लहरों से क्रीड़ा की, विलसा, मनमानी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥
मुझे शुरू से ही लगता था
आकर्षक व्यक्तित्व तुम्हारा,
अलग सबों से प्रकट प्रवाही
थी तुमने अपनी ध्वनि-धारा,
मैं, गाऊँ तो मेरा कंठ-
स्वर न दबे औरों के स्वर से,
जीऊँ तो मेरे जीवन की औरों से हो अलग रवानी ।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी ॥

●

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय अर्थ-व्यवस्था : एक विहंगावलोकन

वी० के० आर० वी० राव

अगस्त १९४७ में भारत को जब स्वतन्त्रता मिली तो वह कोई एकान्त अमिश्र वरदान न था——क्योंकि उसके बाद ही देश का विभाजन हुआ और विभाजन एक ऐसी घटना थी जिसके न केवल राजनीतिक वरन् आर्थिक परिणाम भी हुए। नई सरकार को युद्ध-कालीन अर्थ-व्यवस्था के दुष्परिणाम और तज्जन्य मुद्रा-स्फीति की सम्भावना दाय के रूप में मिले। इस प्रकार, विभाजन के फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत में चावल, गेहूँ, कपास और पटसन के घरेलू उत्पादन में कमी हो गई और तदनुसार विदेशी मुद्रा-प्राप्ति के साधनों पर दबाव तो बढ़ा ही, साथ ही कपास और पटसन जैसे महत्त्वपूर्ण कच्चे माल के प्रकृत सम्भरण में भी कठिनाई पैदा हो गई—विशेषतः पटसन के। विभाजन के पश्चात् पाकिस्तान से असंख्य शरणार्थियों का आगमन भी हुआ और सरकार को लाखों-करोड़ों लोगों को सहायता देने और उनके पुनर्वास की विकट समस्या का भी सामना करना पड़ा। इसके साथ ही युद्धकालीन अर्थ-व्यवस्था के—जिसमें पूँजी-निवेश मुद्रा-स्फीति के द्वारा किया गया था—दुष्परिणामों और उत्पादन-क्षमता में कोई विशेष वृद्धि न होने के कारण देश को बढ़ते हुए भावों, अनिवार्य पण्यों की कमी, अपर्याप्त और अक्षम परिवहन-व्यवस्था, अत्यन्त हीन और अनुपयोगी औद्योगिक उपकरण और आयात की भारी माँग का सामना करना पड़ा। उसी समय जनता का आर्थिक उन्नयन की माँग का स्वर भी बहुत प्रखर हो उठा—इससे सरकार पर दबाव और भी बढ़ गया। सच तो यह है कि स्वतन्त्र भारत की नई सरकार ने अगम-अपार आर्थिक कठिनाइयों के बीच जीवन की राह पर क़दम उठाया था और जो आस्थावान् थे उनके अतिरिक्त किसी को भी यह स्पष्ट न था और न यह निश्चय था कि परिणाम क्या होगा!

परन्तु, यह आर्थिक लड़ाई लड़ने में कुछ बातें देश के पक्ष में भी थीं। राजनीतिक नेतृत्व लोकप्रिय व्यक्तियों के सुदृढ़ हाथों में था और देश की बागडोर ऐसे प्रधान मन्त्री के हाथ में थी जिसे लोक का सहज और हार्दिक समर्थन प्राप्त था——अन्य राजनीतिक लोकतन्त्रों के इतिहास में, शान्तिकाल में, इतना व्यापक समर्थन शायद ही किसी नेता को मिला हो। अंग्रेज़ों से जो प्रशासन-व्यवस्था विरासत में मिली वह अभंग, निष्ठावान् और सक्षम थी, उसके अनेक सदस्यों में अपनी नई दायित्वपूर्ण स्थितियों का मुक़ाबला करने के लिए उत्साह और अर्थवत्ता की एक नई भावना जाग उठी थी। यद्यपि युद्ध और विभाजन ने अर्थ-व्यवस्था को झकझोर डाला था परन्तु उसकी नींव सुदृढ़ थी——व्यापार, परिवहन, खनिज-पदार्थ, अधिकोषण (बैंकिंग) और उद्योग का पर्याप्त विकास हो चुका था। विकास की सम्भावनाओं को मूर्तिमन्त करने के लिए एक सार्थक और प्राणवान् स्पर्श भर की ज़रूरत थी। देश में एक जागरूक व्यापारी-समुदाय था और विश्वविद्यालय की शिक्षा का ऐसा स्तर था जो निरपेक्षतः एक अधिक विशाल व्यावसायिक और बौद्धिक वर्ग पैदा कर रहा था। और इन सबसे अधिक, महात्मा गान्धी के विपुल किन्तु निर्भार दाय से देश परिव्याप्त हो गया था—उसने देश को अपनी राह में आनेवाली कठिनाइयों को पराभूत करने का विश्वास दिया।

स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद देश को कई बड़ी-बड़ी आर्थिक समस्याओं की ओर ध्यान देना पड़ा——खाद्य, कच्चे माल, परिवहन, औद्योगिक उद्वेग और शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्याएँ ऐसी ही थीं। राजनीतिक स्थिरता प्राप्त करने, देशी रियासतों को भारत-संघ में मिलाने, संविधान का मसौदा तैयार करने की समस्याएँ भी अगर अधिक नहीं तो उतनी महत्त्वपूर्ण तो थीं ही। सरकार ने बड़े उत्साह से इन समस्याओं का सामना किया। सरदार वल्लभभाई पटेल के कुशल और तेजस्वी नेतृत्व के कारण छह सौ से अधिक देशी रियासतें भारत-संघ में मिल गईं——कुछ को तो तत्कालीन प्रान्तों (अब राज्यों) में विलय कर दिया गया और कुछ को 'ख' और 'ग' भाग के राज्यों के रूप में संघ में पृथक् अस्तित्व मिल गया। प्रशासनिक और सैनिक नौकरियों में जो लोग थे उन्हें काम करते रहने दिया गया, उन्हें अवसर दिए गए और सच तो यह है कि उन्हें अधिक दायित्व की जगहें दी गईं ताकि सरकार की समूची व्यवस्था कहीं अकस्मात् अस्तव्यस्त न हो जाए। पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने महात्मा गान्धी की परम्पराओं की क्रियान्विति का काम सँभाला—देश में विभिन्न सम्प्रदायों में मेल-जोल बढ़ा और विदेश में राष्ट्र की प्रतिष्ठा बढ़ी : इसका श्रेय उनके नेतृत्व और दूरदर्शिता को ही है। बड़ी लम्बी बहस के बाद देश के लिए संविधान अंगीकार किया गया——उसमें आर्थिक और राजनीतिक लोकतन्त्र की व्यवस्था है तथा नए भारतीय समाज के लिए लोकहित-कारी राज्य का आदर्श सम्मुख रखा गया है।

इस प्रकार पहले तीन वर्षों में सरकार को आर्थिक के बजाय राजनीतिक समस्याओं पर ही अधिक ध्यान देना पड़ा परन्तु आर्थिक पक्ष की उपेक्षा नहीं की गई : की भी नहीं जा सकती थी। खाद्य-समस्या की ओर तुरन्त ध्यान दिया गया। इस मत को मानते हुए कि अपचय और कृत्रिम अभाव की ज़िम्मेदारी कुछ हद तक खाद्यान्नों के अंकुश और राशन पर है तथा जनता को अंकुशों से मुक्ति पाने की सुव्यक्त इच्छा के अनुकूल चलते हुए भारत सरकार ने १९४८ के आरम्भ में ही खाद्यान्न पर से अधिकांश अंकुश हटा लिए। इसके तात्कालिक परिणाम बहुत ही भीषण हुए, देश भर में अनाज के भाव बहुत तेज़ी से बढ़े परन्तु मण्डी में आने वाली घरेलू पैदावार में वैसी वृद्धि नहीं

हुई। ऐसी अवस्था में सरकार ने बड़े साहस और बुद्धिमत्ता से काम लिया : उसने अपने पहले फ़ैसले के आठ महीने के भीतर ही उसे पलट कर खाद्यान्नों पर फिर से अंकुश लगा दिए। सरकार ने अब यह तो अच्छी तरह समझ लिया था कि खाद्यान्न-अंकुश अपने आप में तो वांछनीय नहीं : वे राष्ट्र के प्रशासनिक और नैतिक साधनों पर भीषण दबाव डालते हैं (जो लोग किसी न किसी रूप में राशन की परिधि में आते थे उनकी संख्या इंग्लैण्ड की समूची आबादी से कई गुनी थी और सो भी इस देश में जहाँ साक्षरता इतनी कम थी और जहाँ अनेक भाषा-भाषी लोग बसते हैं), लेकिन जब तक सम्भरण की स्थिति सुधर कर लोगों में विश्वास न जाग उठता—क्योंकि वही अपचय और अभाव की मनोभावना पर रोक लगा सकता था—तब तक कोई और रास्ता भी तो न था! सम्भरण की स्थिति सुधरने में ये तीन बातें निहित थीं : (१) अन्य देशों से तुरन्त ही चीज़ें मिल सकतीं और मुनासिब भाव में मिल सकतीं, (२) सरकार के हाथ में काफ़ी ज़ख़ीरा होता ताकि देश के किसी भी भाग में प्राकृतिक या कृत्रिम कैसे भी कारणों से अगर कमी पड़ जाती तो उसे तुरन्त दूर किया जा सकता और (३) घरेलू उत्पादन में पर्याप्त और महत्त्वपूर्ण वृद्धि होती जिससे न केवल देहातों की माँग पूरी की जा सकती वरन् शहरी मण्डियों के लिए भी अधिकाधिक चीज़ें उपलब्ध होतीं। इस बीच, अधिक मात्रा में आयात करना था, वितरण को नियन्त्रित करना था और देश में अनाज के अनुत्पादक उपभोक्ताओं में विश्वास की मनोवृत्ति पैदा करनी थी और इसके साथ ही युद्ध-काल में और शुरू के युद्धोत्तर वर्षों में अंग्रेज़ों के अधीन जितना कुछ किया गया था, घरेलू-उत्पादन बढ़ाने के प्रयत्नों को उससे कहीं अधिक गति देना भी आवश्यक था। भारत-सरकार इस स्थिति से जूझने लगी : फलतः पहले कुछ वर्षों में उसने अपनी समूची शक्ति इस बात पर केन्द्रित कर दी कि आयात की मात्रा बढ़े और साथ ही देश से अनाज के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने का अनुरोध किया। यह इस तथ्य से प्रकट है कि स्वतन्त्रता से पहले के पाँच वर्षों (१९४३-४७) में कुल ६२ लाख टन अनाज का आयात हुआ था जब कि स्वतन्त्रता के बाद के पाँच वर्षों (१९४८-१९५२) में इससे लगभग तिगुना--एक करोड़ ७२ लाख टन—अनाज बाहर से मँगाया गया। इसके साथ ही, १९४३ से १९४७ तक के पाँच वर्षों में "अधिक अनाज उगाओ" आन्दोलन पर कुल बीस करोड़ रुपया ख़र्च हुआ था जबकि १९४८ से १९५१ तक के चार वर्षों में यह ख़र्च बढ़ कर ४७ करोड़ हो गया। प्रकृति ने भी देश का साथ दिया जिसके फलस्वरूप १९५२ से देश में अनाज की पैदावार हर वर्ष पिछले वर्ष से काफ़ी अधिक होने लगी। तब सरकार के लिए अंकुश हटाने की नीति फिर से अपनाना सम्भव हो सका—यह नीति धीरे-धीरे करके लागू की गई। १९५२ से अंकुश हटाना शुरू किया गया और १९५४ तक खाद्यान्न पर से अंकुश पूरी तरह हटाए जा चुके थे। स्वतन्त्रता के प्रभात में जो खाद्य-समस्या एक विभीषिका के रूप में हमारे सामने आई थी उसे अब हम पूर्णतः अपने वश में कर चुके हैं : देश की एक अत्यन्त गम्भीर आर्थिक समस्या सरकार ने सफलतापूर्वक हल कर दी है।

जिस समय स्वतन्त्रता का उदय हुआ, कच्चे माल की समस्या भी एक बड़ी गहन और महत्त्वपूर्ण समस्या थी। विभाजन हुआ तब देश को अपने पटसन-उद्योग के लिए जिस कच्चे माल की ज़रूरत थी उसमें से अधिकांश पाकिस्तान के हिस्से में जा चुका था—सूती कपड़ा उद्योग के लिए लम्बे रेशे की कपास की आवश्यकता थी : उसका भी काफ़ी भाग पाकिस्तान में चला जा चुका था। अतः कपास और पटसन की घरेलू पैदावार बढ़ाने के लिए अथक प्रयत्न किया गया और इसमें काफ़ी सफलता मिली। स्वतन्त्रता के पाँच वर्षों में कपास और पटसन की खेती का क्षेत्र क्रमशः (१९४७ के) १ करोड़ १७ लाख और साढ़े छः लाख एकड़ से बढ़ कर (१९५१ में) क्रमशः १ करोड़ ४५ लाख और साढ़े उन्नीस लाख एकड़ हो गया : कपास और पटसन का उत्पादन (चार-चार सौ पौण्ड की गाँठों के हिसाब से) क्रमशः १९४७ की २२ लाख और १७ लाख गाँठों से बढ़ कर १९५१ में क्रमशः २९ और ४७ लाख गाँठ हो गया। तब से, कच्चे माल के क्षेत्र में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई और देश का उद्योग एवं व्यापार अपने प्रकृत मार्ग पर बढ़ता रहा है।

एक और गहन समस्या थी परिवहन की। लड़ाई ख़त्म हुई तो बहुत से इंजन और डिब्बे या तो बिल्कुल बेकार हो चुके थे या तुरन्त मरम्मत चाहते थे—और इस प्रकार जो कमी हुई उससे परिवहन-सुविधाओं की उपलब्धि में बड़ा विघ्न पड़ा। नई सरकार ने एक बड़ी संख्या में इंजन और डिब्बों के आयात के तात्कालिक कार्य की ओर अपनी शक्तियों को केन्द्रित कर दिया—इस काम में उसे अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के ऋण से सहायता मिली। सरकार ने अपने यहाँ सवारी और माल-डिब्बों का निर्माण बढ़ाने के लिए भी अथक प्रयत्न किए। १९५१ तक समस्या हल तो नहीं हुई थी परन्तु फिर भी काफ़ी हद तक प्रकृत अवस्था लाने के लिए बहुत-कुछ किया जा चुका था और परिवहन की ओर से सरकार को अब उतनी चिन्ता न रह गई थी। हाल की समस्या को तो इस प्रकार सुलझाने का प्रयत्न हो ही रहा था : दूसरी ओर परिवहन की समस्या को स्थायी रूप से सुलझाने के लिए देश को उचित अवधि के भीतर सवारी तथा माल-डिब्बों और इंजनों के क्षेत्र में स्वावलम्बी बनाने के लिए भी उपाय किए जा रहे थे।

स्वतन्त्रता के उदय के समय सरकार को परेशान करने वाली एक और समस्या थी औद्योगिक और श्रमिक-अशान्ति की समस्या। लड़ाई के दिनों में भाव ख़ूब चढ़ गए थे और इसके साथ ही रहन-सहन का ख़र्चा भी, पर सरकारी या ग़ैर-सरकारी क्षेत्र में कहीं भी कर्मचारियों के वेतनों और पगारों में वैसी वृद्धि न हुई थी। सरकार ने इस स्थिति के उपचार के लिए तुरन्त क़दम उठाए। निम्न आर्य-वर्ग के सरकारी नौकरों के वेतन और मँहगाई भत्ते बढ़ा दिए गए, पगार और मँहगाई भत्ता बढ़ाने के दावों का अधिनिर्णय औद्योगिक न्यायाधिकरणों द्वारा किए जाने के विशेष विधान के फलस्वरूप औद्योगिक मज़दूरों की आय में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। इस प्रकार उद्योग में फ़ैक्ट्री-कर्मचारियों की औसत सालाना आय, जो १९४७ में ७३७ रुपए थी, १९४८ में बढ़ कर ८९० और १९४९ में ९८६ हो गई। इसके साथ ही १९४८ में सरकार,

मज़दूरों और मालिकों के प्रतिनिधियों के एक त्रिदलीय सम्मेलन में एक औद्योगिक सन्धि हो गई जिसके फलस्वरूप औद्योगिक झगड़े काफ़ी कम हो गए और इस प्रकार औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिए रास्ता साफ़ हो गया। १९४७ में औद्योगिक झगड़ों के कारण १ करोड़ २७ लाख पुरुष-दिन नष्ट हुए थे, १९४८ में यह संख्या घट कर ७८ लाख और १९४९ में ६६ लाख रह गई। इस बीच सरकार ने औद्योगिक आवा-सन, कर्मचारी स्वास्थ्य-बीमा, कोयला-खान-निर्वाह-निधि और बोनस योजनाएँ तथा श्रमिक-कल्याण के और उपाय लागू करके इस बात का सबूत दिया कि औद्योगिक श्रमिकों की उसे कितनी चिन्ता है। इस तरह, इस ओर सरकार के सामने जो समस्या स्वतन्त्रता मिलने के समय आई थी, उसे भी उसने सफलतापूर्वक हल कर लिया।

जिस दिन भारत-सरकार का अलग अस्तित्त्व हुआ, उसी दिन से शरणार्थी-समस्या के रूप में जो समस्या उसके सामने आई वह सचमुच बहुत बड़ी और दुस्तर थी। जब १९५१ की जन-गणना हुई तो पता चला कि ७३ लाख बेघर लोग पाकिस्तान से भारत आ चुके हैं जिनमें कम-से-कम ४५ लाख १९४७ में आए और दस लाख से अधिक १९४८ में। शरणार्थियों की समस्या न केवल एक विराट् आर्थिक समस्या थी वरन् उसमें एक विस्फोटक राजनीतिक स्थिति के सभी लक्षण विद्यमान थे। इस समस्या से सुलटने के लिए सरकार ने सहायता और पुनर्वास का एक विशेष मन्त्रालय खोला। पाकिस्तान चले जाने वाले मुसलमान कुछ जुती-जुताई भूमि छोड़ गए थे जिस पर पाकिस्तान के देहातों से भारत आने वाले शरणार्थियों को बसाया जा सकता था परन्तु लगभग ५४ प्रतिशत शरणार्थी शहरों से आए थे और परावासियों द्वारा छोड़ी हुई निष्क्रान्त जन-सम्पत्ति उनके लिए बहुत ही अपर्याप्त थी। उनके रहने के लिए मकानों का, काम के लिए दुकानों का और औद्योगिक एवं वाणिज्यिक पुनर्वास के लिए पूँजी का विशेष प्रबन्ध सरकार को करना था। इस प्रकार १९५४-५५ तक ख़त्म होने वाले सात सालों में सरकार ने या तो स्वयं या ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर शहरी क्षेत्रों में ५ लाख से अधिक नए रिहायशी एकांश और तीन लाख चालीस हज़ार नई दुकानें तैयार करा ली थीं। रोज़गार दिलाने के दफ़्तरों की मार्फ़त २ लाख २३ हज़ार लोगों को नया काम दिलाया गया, १ लाख लोगों को प्राविधिक शिक्षण दिया गया ताकि वे प्रतिफलात्मक कार्य के योग्य हो सकें। शहरी क्षेत्रों में आर्थिक पुनर्वास के लिए ३६ करोड़ ९० लाख रुपये के कर्ज़े भी शरणार्थियों को बाँटे गए। इस अवधि में भारत-सरकार ने शरणार्थी-समस्या पर २ अरब २३ करोड़ ७० लाख रुपया ख़र्च किया है। इस प्रकार अप्रैल, १९५५ तक सरकार शरणार्थी-समस्या को निबेरने में सफलता पा चुकी थी। जो पहलू बच रहे थे—विशेष रूप से रोज़गार और आय के—वे कम-उन्नयन की सामान्य समस्या के ही अंग थे और समूचे देश पर—शरणार्थी और अशरणार्थी सब पर—उनका एक-सा प्रभाव था। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि १९४८ में ही यह बात साफ़ हो चुकी थी कि शरणार्थियों की सहायता और पुनर्वास के लिए सरकार एक सक्रिय एवं व्यापक कार्यक्रम बना चुकी है और यह कार्यक्रम जैसे-जैसे अधिकाधिक साकार रूप पाता गया, उसकी जैसे-जैसे क्रियान्विति होती गई वैसे-वैसे शरणार्थी समस्या में जो राजनीतिक विस्फोट की सम्भावनाएँ निहित थीं, उनका शमन होता गया। मूर्तिमन्त रूप में, १९५२ के आम चुनाव में शरणार्थी-क्षेत्रों में सम्प्रदायवादी विरोधी तत्त्वों के घोर पराभव और सत्तारूढ़ पार्टी की विजय में सरकार की यह सफलता परिलक्षित होती है।

इस प्रकार पण्डित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में स्वतन्त्र भारत की पहली सरकार ने स्वतन्त्रता के आरम्भिक वर्षों की अपनी विविध राजनीतिक समस्याओं को तो काफ़ी सफलता से हल किया ही, आर्थिक समस्याओं को सुलझाने की शुरूआत भी उसने कर दी। २६ जनवरी, १९५० को भारत एक गणराज्य घोषित कर दिया गया—भारतीय जनता द्वारा स्वेच्छा से अंगीकृत संविधान के साथ उसने अपना नया जीवन शुरू कर दिया। अब वह समय आ गया था कि राष्ट्रीय प्रयत्न देश की व्यापक आर्थिक समस्या पर केन्द्रित कर दिये जायें—यह समस्या कुछ हद तक तो युद्ध और विभाजन के कारण ध्वस्त अर्थ-व्यवस्था को फिर से स्थिरता देने की समस्या थी, कुछ अंशों में यह द्रुत आर्थिक विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ पैदा करने की समस्या थी और अंशतः तत्कालीन आर्थिक क्रिया-कलाप को अधिक वेगवान् बनाने और उसके स्वरूप को निदिष्ट करने की समस्या थी। इस सबके लिए आयोजना की आवश्यकता थी। फलतः वित्त-मंत्री के १९५० के बजट-भाषण में सरकार ने आयोजना-कमीशन की स्थापना की घोषणा की। भारत का प्रथम आयोजना-कमीशन एक अप्रैल, १९५० को अस्तित्व में आया और उसके सर्वप्रथम अध्यक्ष हुए स्वयं प्रधान मंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू। इसके पश्चात् देश का आर्थिक इतिहास आर्थिक विकास के आयोजित कार्यक्रमों के निर्धारण और क्रियान्वय से सम्बद्ध है।

भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना का मसौदा जुलाई, १९५० में प्रकाशित किया गया। प्रथम योजना के अधीन सरकारी-खण्ड में एक अप्रैल, १९५१ से आरम्भ होने वाले पाँच वर्षों में २,०६९ करोड़ रुपया ख़र्च किया जाना था (बाद में बेरोज़गारी कम करने की विशेष योजनाओं के लिए उसमें डेढ़ अरब रुपये की वृद्धि की गई थी)। यह रक़म विकास की विभिन्न मदों में इस प्रकार वितरित की गई :—

कृषि और सामुदायिक विकास—	३६१ करोड़
सिंचाई—	१६८ करोड़
बहुधन्धी सिंचाई और बिजली-योजनाएँ—	२६६ करोड़
विद्युत्-शक्ति—	१२७ करोड़
परिवहन और संचार—	४९७ करोड़
उद्योग—	१७३ करोड़
समाज-सेवाएँ—	३४० करोड़
पुनर्वास—	८५ करोड़
विविध—	५२ करोड़

अनुमान था कि इस अवधि में ग़ैर-सरकारी खण्ड में कृषि, उद्योग, व्यापार, आवासन आदि पर १८ अरब रुपया ख़र्च किया

जायेगा। आयोजना-निर्माताओं का अनुमान था कि आयोजित सरकारी ख़र्च और प्रत्याशित ग़ैर-सरकारी ख़र्च के फलस्वरूप पाँच वर्ष में राष्ट्रीय आय १९५०-५१ के आनुमानिक स्तर से लगभग १०-१२ प्रतिशत बढ़ जायेगी और उसके साथ ही राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में बचत की दर १९५०-५१ के अनुमानित ५ प्रतिशत से बढ़ कर १९५५-५६ में ६$\frac{3}{4}$ प्रतिशत हो जायेगी।

सरकारी क्षेत्र में जितने ख़र्च का अनुमान था उसके लिए पूँजी जुटाने के हेतु अतिरिक्त कर लगाने, अतिरिक्त ऋण लेने, थोड़ी-थोड़ी बचत से पूँजी इकट्ठी करने, विदेशी ऋण और अनुदान और विदेशी मुद्रा-शेष का उपयोग करने का विचार किया गया। इसके बाद बाक़ी रह जाने वाली राशि घाटे के अर्थ-प्रबन्ध से पूरी करनी थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के लिए तैयार किये गए साधनों का बजट इस प्रकार था :—

१. चालू राजस्व से सरकारी बचत	५६८ करोड़
२. रेलों से सरकारी बचत	१७० करोड़
३. ऋण द्वारा ग़ैर-सरकारी बचत	११५ करोड़
४. थोड़ी-थोड़ी बचत और दूसरे अनिहित कर्ज़ों से ग़ैर-सरकारी बचत	२७० करोड़
५. निक्षेप-निधियों और दूसरे विविध सूत्रों से ग़ैर-सरकारी बचत	१३५ करोड़
६. विदेशी ऋण और अनुदान	१५६ करोड़
७. अनिर्णीत	६५५ करोड़
कुल	२०६९ करोड़

विचार यह था कि अनिर्णीत शेष का जितना भाग हो सके और कर लगाकर तथा विदेशी ऋण और अनुदान से पूरा किया जाए—शेष रक़म को घाटा मान लिया जाए। बाद में अनिर्णीत शेष में १५० करोड़ की रक़म और बढ़ा दी गई। यह राशि रोज़गार बढ़ाने का विशिष्ट लक्ष्य रखकर बनाई गई विकास-योजनाओं पर ख़र्च की जानी थी—विशेषतः शिक्षित मध्य-वर्ग में रोज़गार बढ़ाने की योजनाओं पर। बजट-अधिशेष से प्रत्याशित प्राप्तियों में कुछ कमी हुई है परन्तु ऋण और थोड़ी-थोड़ी बचत के बारे में जनता की प्रतिक्रिया बहुत सन्तोषजनक रही है। इस प्रकार, वास्तविक आदान के आधार पर देखें तो योजना की अवधि में केन्द्र और राज्यों की कुल प्राप्तियाँ मिलाकर १८० करोड़ हो जायेंगी जबकि शुरू में सिर्फ़ ११५ करोड़ का अनुमान लगाया गया था। थोड़ी-थोड़ी बचत के आन्दोलन के प्रति भी जनता की प्रतिक्रिया सन्तोषजनक रही है। योजना की अवधि में इस सूत्र से कुल मिलाकर २३५ करोड़ रुपया जमा हो जाने की आशा है। विदेशी ऋणों और अनुदानों से भी अधिक प्राप्तियाँ हुई हैं—१९५१-५४ तक २ अरब ३४ करोड़ २० लाख रुपया आया जिसमें से १ अरब ३१ करोड़ ९० लाख इसी दौरान में काम में ले लिया गया। इस राशि में, ऋण कुल मिलाकर १ अरब १७ करोड़ ५० लाख रुपये के थे। ९० करोड़ ५० लाख रुपये अमेरिकी गेंहू-ऋण के रूप में मिले और २७ करोड़ १० लाख का ऋण अन्तर्राष्ट्रीय बैंक द्वारा दिया गया। अनुदान कुल मिलाकर १ अरब १६ करोड़ ७० लाख रुपये के थे—इसमें ८१ करोड़ ६० लाख अमेरिकी सरकार से और ३२ करोड़ ४० लाख कोलम्बो-योजना से उपलब्ध हुए थे। इसके अतिरिक्त, योजना के दौर में ब्रिटेन-सरकार ने भारत के पौण्ड पावने में से २ अरब ९० करोड़ रुपये के बराबर पौण्ड-शेष दिया। १९५५-५६ में विदेशी ऋण और अनुदान के रूप में जो रक़में मिलीं वे इन आँकड़ों में शामिल नहीं। बजट और रेल-अधिशेष से प्रत्याशित प्राप्तियों में कमी होने के अतिरिक्त साधनों की दृष्टि से देखें तो वित्तीय स्थिति असन्तोषजनक नहीं रही। साथ ही, घाटे के अर्थ-प्रबन्धन के ख़तरे कुछ हद तक आयोजित व्यय में कमी हो जाने से दूर हो गए हैं—विशेषतः यह व्यय शुरू के वर्षों में कम रहा : इसका मुख्य कारण यह था कि सरकारी व्यय में प्रस्तावित वृद्धियों को दक्षता से सँभालने के लिए प्रशासन-व्यवस्था को सतर्क करने में समय की आवश्यकता थी परन्तु फल यह हुआ कि भावों में कोई तेज़ी नहीं आई—इसके विपरीत बाक़ी दुनिया की तरह कोरियाई युद्ध के समय अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर भारत में भाव गिरने लगे और पिछले तीन वर्षों में भावों का रुख़ नीचे की ओर ही रहा है। अतः पंचवर्षीय योजना-काल में न तो मुद्रा-स्फीति रही है, न उसकी प्रवृत्ति।

अब देश प्रथम योजना के अन्तिम वर्ष से गुज़र रहा है। उपलब्ध तथ्यों से स्पष्ट है कि योजना में निहित प्रेरक-हेतुओं की अर्थ-व्यवस्था पर अनुकूल प्रतिक्रिया हुई है और स्थूलतः योजना के उद्देश्य सिद्ध हो चुके हैं। कपड़े और अनाज का उत्पादन लक्ष्य से आगे बढ़ गया, कपास, सिमेण्ट, अमोनियम सल्फ़ेट, इंजन और तटीय पोत-व्यवस्था में बराबर अनुसूची के अनुसार प्रगति होती रही है। परन्तु कुछ क्षेत्रों में विशेषतः मूल मशीनों की तैयारी और समाज-सेवाओं की व्यवस्था में योजना के पहले तीन वर्षों में प्रगति अनुसूची से पिछड़ गई। योजना से पहले के वर्ष के मुक़ाबले १९५४ के पूर्वार्द्ध तक कृषि-उत्पादन में कुल मिला कर १८ प्रतिशत और औद्योगिक उत्पादन में ३३ प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी थी।

उत्पादन की इस वृद्धि के फलस्वरूप योजना-काल के तीसरे वर्ष के अन्त तक राष्ट्रीय आय में १२·५ प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी थी। १९५४-५५ में भी उत्पादन बढ़ा ही है—विशेषतः औद्योगिक और सरकारी क्षेत्रों में जबकि खेती की पैदावार में कोई कमी नहीं हुई। चालू साल में भी मानसून की प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद उत्पादन का यही रुख़ है। अतः यह निश्चित-सा ही है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त तक राष्ट्रीय आय में उससे कहीं अधिक वृद्धि हो चुकेगी जितनी असल में सोची गई थी—हो सकता है पूरे पाँच वर्ष में वह १५ प्रतिशत बढ़ जाये।

पिछले पाँच वर्षों में भावों का जो स्तर रहा है उसमें भी अर्थ-व्यवस्था की दृढ़ता परिलक्षित होती है। योजना से पहले के वर्ष यानी १९५०-५१ में थोक भावों का सूच्यंक ४०९·७ था (आधार माना है अगस्त १९३९—१००) १९५१-५२ में कोरियाई युद्ध और तज्जनित अपचय के फलस्वरूप जो तेजी छाई मुख्यतः उसी के कारण सूच्यंक

बढ़ कर ४३४·६ हो गया। अगले वर्ष वह एकदम घट कर ३८०·६ हो गया और १९५४-५५ में सार्वजनिक व्यय के बहुत बढ़ जाने पर भी वह ३७७·४ ही रहा।

योजना पर अमल होने के फलस्वरूप देश के अदायगी-शेष पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। १९५१ में तो जितनी रक़म हमें मिली उससे ३१ करोड़ ३० लाख रुपये अधिक देने पड़े परन्तु १९५२ में यह स्थिति बदल गई। उस वर्ष हमें जितनी रक़म देनी पड़ी, उससे १ करोड़ ७० लाख अधिक प्राप्त हुई, १९५३ में ५९ करोड़ २० लाख और १९५४ के पूर्वार्द्ध में १० करोड़ ६० लाख। इस प्रकार देश की आर्थिक स्थिति काफ़ी सुधर गई। विदेशों पर हम अपनी ज़रूरतों के लिए कम निर्भर रहने लगे और आयात से निर्यात का मूल्य धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

अर्थ-व्यवस्था की सुदृढ़ता को प्रतिबिम्बित करने वाला सबसे अधिक द्रष्टव्य परिवर्तन तो सामुदायिक विकास की योजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों के कारण गाँवों में हुआ है। इनके मूल में ग्राम-विकास की समूची समस्या को हल करने के लिए एक समेकित प्रयास करने का विचार था जिसमें न केवल विशुद्धतः आर्थिक कार्यवाहियों का समावेश हो जाए जैसे कृषि, सिंचाई, संचार, पूरक रोज़गार आदि वरन् ग्रामीण जीवन के अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू—शिक्षा, स्वास्थ्य, आवासन, प्रशिक्षण और समाज-कल्याण आदि भी उसकी परिधि में आ जाएँ। पूरे देश में प्रायोजना के क्षेत्र चुन लिए गए हैं—इनमें सौ-सौ गाँवों के खण्ड शामिल हैं और विकास-खण्ड पाँच-पाँच गाँवों के वर्गों में बँटे हुए हैं जिनका कार्यभार गाँव के स्तर पर कार्य करने वालों को सौंप दिया गया है। विभिन्न प्रायोजनाओं की क्रियान्विति में—जिनका लक्ष्य गाँव का सर्वतोमुखी : आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक : विकास करना है, एक अनिवार्य लक्ष्य यह रखा गया है कि उनमें स्वयं गाँव वालों का भी योग रहे। नक़द या श्रम के रूप में स्वैच्छिक योगदान के पैमाने निर्धारित कर दिए गए हैं—सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधीन विकास-योजनाएँ शुरू करने के लिए यह आवश्यक शर्त मानी जाएगी। इसके अतिरिक्त, देहातों में सरगर्मी से काम करने के लिए एक राष्ट्रीय विस्तार संस्था की स्थापना भी की गई है। यह संस्था हर किसान से सम्पर्क करने का प्रयत्न करेगी और समूचे देहाती जीवन के समन्वित विकास में सहायता देगी: लगभग एक लाख बीस हज़ार गाँवों को अर्थात् ग्रामीण आबादी के लगभग एक चौथाई भाग को इस संस्था के कार्य की परिधि में लाकर प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्राम-विकास-कार्य का श्रीगणेश कर दिया गया है। सामुदायिक योजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के कार्यक्रम को आशातीत सफलता मिली है : गाँवों में एक नया जीवन और स्फूर्ति जाग रही है जिसका देश के आर्थिक विकास की गति पर निश्चय ही महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। १९५३-५४ के अन्त तक सामुदायिक योजना खण्डों और राष्ट्रीय विस्तार सेवा खण्डों की संख्या क्रमशः २२० और ४९८ हो चुकी थी—इनके कार्य-क्षेत्र में कुल मिला कर ७३,४५० गाँव और ५ करोड़ ४४ लाख की आबादी थी। इसके फलस्वरूप देहातों की आर्थिक क्रियाशीलता का स्तर काफ़ी ऊँचा उठा है—जैसे खाद-गढ़े खोदना, बेकार ज़मीन को खेती योग्य बनाना, सड़कें बनाना, स्कूल बनाना, अच्छे बीज और अधिक उपयुक्त कृषि-उपकरणों का प्रयोग, छोटे-छोटे सिंचाई-कार्यों का विस्तार और सहकारी समितियों की संख्या में वृद्धि। इन योजनाओं के अन्तर्गत सरकार ने दो वर्ष के अरसे में १८,३५० गाँवों के ऊपर ८ करोड़ ७० लाख रुपया खर्च किया और लोगों ने नक़द, श्रम अथवा सामग्री आदि के रूप में कुल मिलाकर ३ करोड़ ८० लाख रुपये का योगदान किया।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था अब द्रुत एवं सप्रयोजन आर्थिक विकास के युग के लिए समुद्यत हो रही है। द्वितीय महायुद्ध और विभाजन के फलस्वरूप जो आर्थिक समस्याएँ भारत को विरासत के रूप में मिली थीं, वे बहुत कुछ अंशों में हल की जा चुकी हैं—देश ने राजनीतिक स्थिरता पा ली है। आर्थिक विकास की पंचवर्षीय योजना में जो लक्ष्य उसने रखे थे, वे बहुत-कुछ हद तक प्राप्त कर लिए गये हैं। राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था के विस्तार की राह में जो कुछ बाधाएँ थीं वे अब हटाई जा चुकी हैं—और अब पहले की अपेक्षा कहीं बड़े पैमाने पर और कहीं अधिक तेज़ी से आर्थिक विकास की बात सोची जा सकती है। जितने क्षेत्र में सिंचाई हो सकती है वह अब काफ़ी बढ़ा लिया गया है—इसी तरह विद्युत्-शक्ति की तैयारी भी। कई मूल उद्योग शुरू किए जा चुके हैं या किए जा रहे हैं, प्राविधिक और वैज्ञानिक कौशल की भी पूँजी अब हमारे पास कहीं अधिक है—विश्वास और आत्म-निर्भरता की एक नई भावना देश भर में जाग उठी है जो निस्संदेह आर्थिक प्रयास को सहारा देगी। अतः देश के लिए अब पहली योजना की अपेक्षा कहीं बड़ी और साहसपूर्ण दूसरी पंचवर्षीय योजना की बात सोचना उचित ही है और यह भी ठीक ही है कि उसमें उद्योग पर अधिक ज़ोर दिया जाए। दूसरी पंचवर्षीय योजना के मसौदे पर विचार किया जा रहा है—इसमें राष्ट्रीय प्रयत्न की मात्रा और वेग को पहली योजना से दुगुना कर देने का इरादा है। विचार है कि अगले पाँच वर्ष में राष्ट्रीय आय में २५-२७ प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए, बचत और पूँजी-निवेश की दर बढ़कर १०-११% हो जानी चाहिए और इस योजना के ख़त्म होते-होते एक उद्योग-खनिज-परिवहन-समन्वित ऐसा आधार तैयार हो जाना चाहिए जिसके बल पर इससे भी बड़ी और साहसपूर्ण तीसरी योजना बनाना सम्भव हो सके। निस्सन्देह भारत आर्थिक प्रगति की राह पर बढ़ चला है।

इतना कहने के बाद यह भी कह देना ज़रूरी है कि यह काम उतना आसान नहीं है। कई ऐसी समस्याएँ हैं जो देश के आयोजित आर्थिक विकास की राह में बाधा डाल रही हैं और इनमें कुछ ऐसी हैं जिनका कोई हल नहीं सूझ पा रहा है। बढ़ती हुई आबादी की समस्या ऐसी ही है—उसमें सिर्फ़ अधिक लोगों के लिए रोटी का प्रबन्ध करने को बात ही शामिल नहीं है, उसके साथ एक और कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या जुड़ी है और वह यह कि इसके साथ श्रमिक शक्ति भी बराबर बढ़ती जा रही है जिसके लिए कुछ न कुछ

प्रतिफलात्मक कार्य ढूँढना ज़रूरी है। फिर, देश के उत्पादक क्रिया-कलाप में जब समुन्नत वैज्ञानिक तरीक़ों का प्रयोग किया जायेगा तो थोड़े अरसे के लिए बेरोज़गारी बढ़ेगी—विशेषतः उद्योग के क्षेत्र में—यह भी एक विकट समस्या है। इसके साथ ही एक और बहुत बड़ी समस्या है जिसका हल अभी तक नहीं हुआ है—कृषि से सम्बद्ध वर्तमान श्रमिक-शक्ति का बहुत बड़ा अंश या तो एक तरह से बेकार ही है या अगर उसके पास काम है भी तो बहुत कम। इस प्रकार, रोज़गार की समस्या देश पर बुरी तरह छाई हुई है— विशेषतः उक्त संक्षिप्त काल में रोज़गार की समस्या। एक और क्षेत्र लें—ऐसे समुदाय में बचत की दर में स्वैच्छिक वृद्धि कराने की व्यापक समस्या हमारे सामने है जिसमें अधिकांश लोग ग़रीब हैं और जो अगर तुरन्त ही खपत में वृद्धि कराने की माँग करें तो अनुचित न हो, दूसरे यह समुदाय एक सक्रिय राजनीतिक लोकतंत्र के चौखटे में रह कर कार्यरत होता है और उसमें लोक-अप्रिय काम करने अथवा ऐसी नीति पर चलने में सरकार की शक्ति पर कुछ अनिवार्य प्रतिबन्ध निहित रहते हैं जिसमें तात्कालिक के बजाय दूर तक ही बात सोची गई हो। विदेशी पूँजी की भी समस्या देश के सामने है। पंचवर्षीय योजना के अधीन जितना व्यापक और बहुमुखी कार्यक्रम बनाया जा रहा है उसे लागू करने के लिए विदेशी पूँजी की बहुत ही आवश्यकता है—भौतिक पदार्थों के रूप में भी और विदेशी मुद्रा के रूप में भी। यह विदेशी पूँजी ऋण के तौर पर मिले या अनुदान के—इसका उतना महत्त्व नहीं।

राजनीतिक गुटों में बुरी तरह से विभक्त आज की दुनिया में भारत जैसे देश के लिए—जो अपने को सैनिक गुटबन्दी के बन्धनों से बिलकुल अलग रखना चाहता है—विदेशी पूँजी और उपकरण पाना कितना कठिन कार्य है! अगर घाटे के अर्थ-प्रबन्ध का बहुत दूर तक सहारा लिया गया तो मुद्रा-स्फीति की प्रवृति के उभर आने की आशंका हो सकती है—उसे रोकने के लिए अनेक और विविध आर्थिक विनियम लागू करने की समस्या से भी देश को जूझना है। और अन्त में, 'अनेक' के आर्थिक प्रेरक-हेतुओं का 'कुछ' के आर्थिक प्रेरक-हेतुओं से सामंजस्य करने की पेचीदा समस्या भी सुलझानी है और भारत में समाजवादी समाज की स्थापना के लक्ष्य से सम्बद्ध समस्त नीतियों और संस्थाओं को भी उसके अनुकूल ढालना है। अतः स्पष्ट है कि भारत आर्थिक क्षेत्र में जैसी प्रगति करना चाहता है, वैसी प्रगति कर पाना आसान नहीं होगा। परन्तु फिर भी भविष्य के सम्बन्ध में निराशावादिता की ज़रूरत नहीं। आर्थिक पृष्ठभूमि सुदृढ़ है, लोग कृत-निश्चय और अदम्य-विश्वास से युक्त है, बाहरी दुनिया का रुख़ भी कुल मिला कर मित्रतापूर्ण है और वह सहायता करने को तत्पर है और वातावरण भी वैसा ही है जैसा किसी महान् प्रयत्न के लिए अनुकूल होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि प्रधान मंत्री के रूप में देश के पास एक ऐसा नेता है जो दूसरों को प्रेरणा तो देता ही है, स्वयं भी प्रेरित है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत का आर्थिक भविष्य बहुत उज्ज्वल है। स्वातन्त्र्य के प्रसव की पीड़ा को उसने सहार लिया है और पहली पंचवर्षीय योजना के रूप में अपने स्वतन्त्र जीवन का बड़ा शुभ समारम्भ किया है। भारत की अर्थ-व्यवस्था जब विकसित होगी और लोग समृद्ध होंगे तो उससे सिर्फ़ भारत और भारतीयों का ही कल्याण न होगा वरन् समूचे संसार और उसके नागरिकों का भला होगा। सबसे बड़ी बात तो यह है कि वह एशिया में राजनीतिक और संसदीय लोकतन्त्र के भविष्य के लिए बहुत शुभ होगा अतः अन्ततोगत्वा समूची दुनिया का ही कल्याण उसमें निहित है—इस दुनिया का जो राजनीतिक लोकतन्त्र के अनुकूल जीवन-पद्धति के नागरिक स्वातन्त्र और व्यक्ति की अक्षय महत्ता के अभाव से पीड़ित है।

★

मराठी कविता

रीता

मनोहर भ० देशपांडे

व्यर्थ हिलती है चम्पा
जब नहीं फूल, पत्ते
कैसे जायेगा हमसे यों
मिलना ले मन रीते!

गुनगुनाता है निज से
शब्दहीन गीत
हो गई है मानों आदत
लीक-लीक चलते!

पीना चाहता हूँ नीलिमा
सपने को पकड़ना?
लेकिन यदि उससे भर उठता,
तो ऐसा रहता क्यों रीता?

★

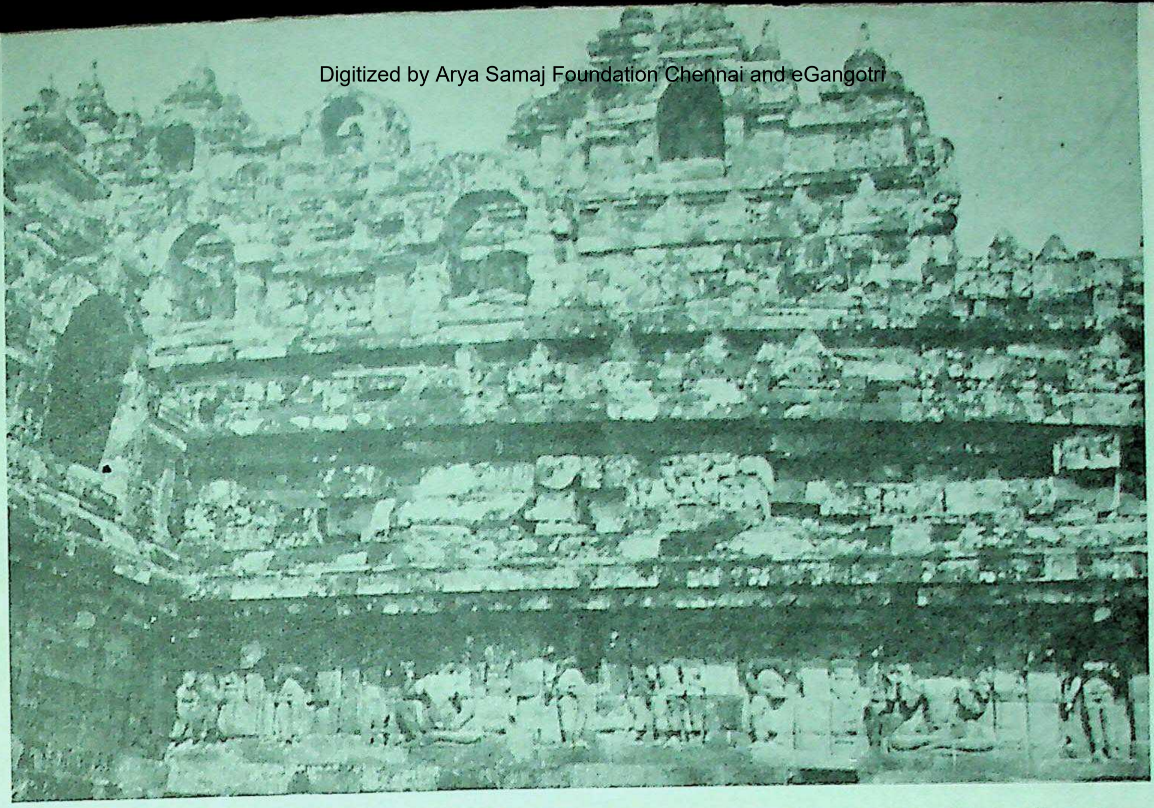

बोरोबुदुर बौद्ध मन्दिर

जावा के साहित्य-संस्कृति पर भारतीय प्रभाव

सूर्यनारायण व्यास

जावा, सुमात्रा, बाली, स्याम, बोर्नियो, मलाया, इन्डोनीसिया आदि देश यद्यपि आज भारत से अलग हैं और उन पर अनेक संस्कार भी पड़े हैं, तथापि, विभिन्न संस्कारों के मिश्रण के पश्चात् भी इनकी भारतीयता, इनकी भाषा, संस्कृति और साहित्य से स्पष्ट प्रकट होती है। आज भी इन देशों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव है। यह कहना कठिन है कि इन देशों में बौद्धों ने आरम्भ में प्रभाव डाला है या ब्राह्मणों ने। सिंहल द्वीप में बौद्धों के पूर्व आर्यों का प्रसार हो चुका था। इससे प्रतीत होता है कि इन देशों में भी आर्य संस्कृति बहुत पहले प्रविष्ट हो चुकी थी।

बाली द्वीप में दो लौकिक-भाषाएँ हैं और दो लेखन की भाषाएँ हैं। मूल देश्य-जनों की भाषा मलायी, सूडानी है। जावा के ग्रन्थों की भाषा आधुनिक प्रचलित जावानी-भाषा से सर्वथा भिन्न है। चार सौ वर्ष पूर्व यहाँ मुसलमानों ने प्रवेश किया। उसके पूर्व जो हिन्दू इस द्वीप में गए, उन्होंने इस प्रचलित भाषा का प्रचार किया है। वही आज लौकिक-भाषा बनी हुई है।

हिन्दुओं ने अपने साथ संस्कृत भाषा ले जाकर वहाँ प्रचारित की। बाली में एक ब्राह्मण 'निरर्थ' नामक बहुत समय पूर्व गया था और उसने 'काक समुच्चय' ग्रन्थ लिखा था। पर यह कहाँ तक तथ्य है, यह जानने के साधन सुलभ नहीं हैं। तथापि जावा और भारतीय शासन व्यवस्था में अद्भुत समानता मिलती है। राजा, रानी, मन्त्री, दरबार और अनेक अधिकारियों के नामों में भी समानता मिलती है। कुछ समय पूर्व प्रकाशित जावा के 'नागरिक कृतागम' नामक काव्य ग्रन्थ में अमात्य, पुरोहित, धर्माध्यक्ष आदि ४३ नाम आए हैं, जो हमारे यहाँ पूर्ण परिचित हैं। अवश्य उन नामों में 'जलधि मन्त्री' आदि कुछ नाम ऐसे हैं, जिनकी हमें आवश्यकता नहीं हुई थी। यह 'समुद्रमन्त्री' का पद है। परन्तु बहुतेरे नाम ऐसे हैं, जिनका हमारे यहाँ उपयोग हुआ है। जैसे—अमात्य, अध्यक्ष, आत्मराज, अधिमन्त्री, आर्य, उपमन्त्री, पति, पुरोहित, मंधुरी, मन्त्री, महागुरु, महाधिकार, युद्ध-मन्त्री, राज पराक्रम, राजाध्यक्ष, राजाधिकार, राजाधिराज, वीर प्राण, वीर-मण्डलिक, वीराधिकार, वृद्ध मन्त्री, शूराधिकार, सिंघाधिकार, सुजनोत्तम, सुधर्मोपपति, स्थापक इत्यादि।

जावा में चतुर्वर्ण का महत्त्व समाज में स्वीकृत था। वर्ष गणना के लिए शालिवाहक-शक का प्रचार था। काव्य में ऐसे अधिकांश छन्दों का प्रयोग हुआ है जो उत्तरकालीन भारत में प्रचलित रहे हैं, भारतीय कामन्दकीय-नीतिसार का भी जावा में प्रचार है। किन्तु हमारे पुरातन नाट्य-ग्रन्थों का जावा में प्रवेश प्रतीत नहीं होता। इससे यह ज्ञात होता है कि जब भास और कालिदास के काव्यों से हमारे देशवासी अज्ञात थे, (या निर्माण भी नहीं हुए थे) तब भारतीयों ने जावा प्रवेश किया होगा। जावा के लोग पूर्व काल में शैव-भावना-प्रधान रहे होंगे क्योंकि भारत में बुद्ध को विष्णु का अवतार माना है, जबकि जावा में बुद्ध को शैव-भावना में गृहीत किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि जावा वैष्णव धर्म से भिन्न नहीं था, वहाँ विष्णु मूर्ति पुरातन मिलती हैं। इससे यह अनुमान होना स्वाभाविक है कि जब पौराणिक ब्राह्मण ग्रन्थों का उदय हुआ था, और उनका पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़

पाया था, उस समय भारतीयों ने जावा से सम्बन्ध स्थापित किया था। भारतीयों की भाषा संस्कृत होने के कारण जावानी भाषा में उसका व्यापक प्रवेश हो जाना स्वाभाविक था। शिक्षा, ग्रन्थ-निर्माण, धर्म, अध्यात्म की भाषा में संस्कृत का अधिक प्रयोग है, जबकि लौकिक भाषा जावानी होते हुए भी संस्कृत-समन्वित बनी हुई है। और जावा में संस्कृत पवित्र भाषा के रूप में मान्य है। जावा-बाली में चारों सम्पूर्ण वेद प्राप्त नहीं हैं, तथापि उनका महत्त्वपूर्ण अधिकांश भाग प्राप्त है। वेद के बाद ब्रह्माण्ड-पुराण मिलता है। बाली में शैव का ही प्रभुत्व रहा है। इसके बाद तुतुर अर्थात् तत्त्व-ग्रन्थ या तन्त्र ग्रन्थों का स्थान रहा है। यह पुरोहितों के लिए और साधारण समाज के लिए भिन्न-भिन्न रूप में रहे हैं। यथा—पुरोहितों के लिए—बुवन संक्षेप (भुवन संक्षेप), भुवन कोष, बृहस्पति तत्त्व, सार समुच्चय, तत्त्व ज्ञान, कंदमन, तम्भक मोथी आदि।

साधारण समाज के लिए—राजनीति, नीति प्रण (नीति शास्त्र), कामन्दक नीति, नर नाट्य, रण जन्य (रण यज्ञ), और तिथि-दशगुणित, आदि।

इनके बाद संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद, रामायण, महाकाव्यों का रूपान्तर, रामायण के ६ काण्ड ही यहाँ प्रचलित रहे हैं, उत्तर काण्ड एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्राप्त होता है। मि० बेवर ने इससे यह अनुमान लगाया है कि भारत में रामायण में जब उत्तर काण्ड जुड़ाया नहीं गया था, तब यह जावा में ६ काण्डों में प्रचलित हो गई थी। उस समय जावा में महाभारत अपरिचित रहा है। परन्तु महाभारत के कर्त्ता का नाम और १८ पर्वों का पता जावा में मिलता है। ६ पर्वों का तो वहाँ अस्तित्व भी है।

कविरायण के कर्त्ता रायकुसुम के पुत्र हेम्पू दर्सण का निर्मित—'समर दहन' काव्य भी है जो सम्भवतः कुमारसम्भव का रूपान्तर है। इसी प्रकार 'सुगान सतक' काव्य के लिए बेवर का मत है कि यह 'रघुवंश' का स्वतन्त्र भाषान्तर है। बोम काव्य अर्थात् भौम काव्य में भौम को पृथ्वी पुत्र कहा गया है जो भारतीय रूप के अनुसार ही है।

अर्जुन-विजय काव्य-रामायण के उत्तर काण्ड की कथा से सम्बन्धित है। इसी प्रकार 'सुत सोम' में भी कई कथाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार अनेक भारतीय ग्रन्थों, कथा-गाथाओं का जावा में प्रवेश हुआ है। सम्भवतः भारत से ये ग्रन्थ नष्ट हो गए हैं, इनका रूपान्तर करके भारत साहित्य में समावेश होना आवश्यक है।

बुद्ध की जीवन-झाँकी

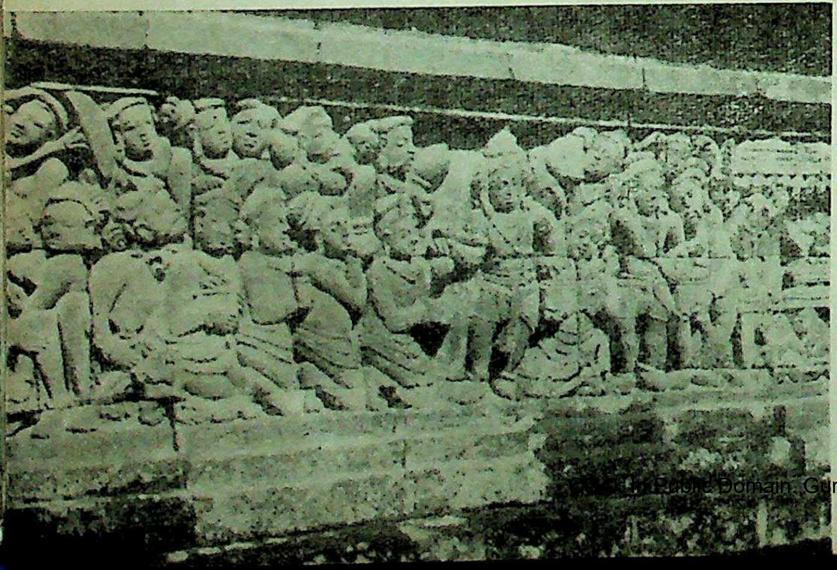

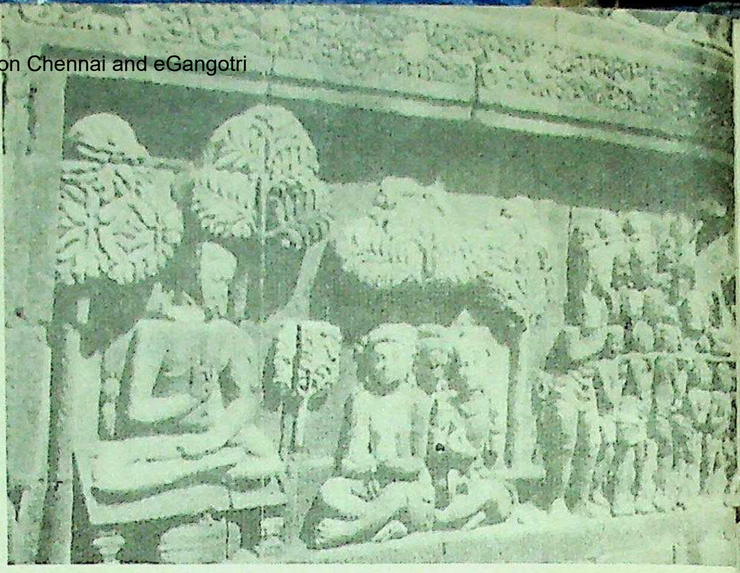

मन्दिर की भित्ति पर ध्यानमग्न बुद्ध

इसके पश्चात् भिक्षुओं और शासकों ने यहाँ साहित्य-वृद्धि का कार्य जारी रखा है। संस्कृत में धर्म ग्रन्थों की रचना भी पर्याप्त हुई है। जावा का धर्म शास्त्र भी मनु प्रणीत है। यह मनु 'प्रबु-मनु' कहा जाता है। इनके अतिरिक्त पौराणिक ग्रन्थों की कड़ी भी लम्बी मिलती है, यथा—अगस्त्य पर्व, अर्जुन प्रबध, सहस्र बाहु, अर्जुन विजय, अर्जुन विवाह, भारत युद्ध, भीष्म पर्व, भौम काव्य, कुंतिकाव्य, नवरुचि, इत्यादि। इनके अतिरिक्त जावा निवासी पण्डितों की की हुई स्वतन्त्र रचनाएँ भी पर्याप्त हैं। काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त गद्य-ग्रन्थ भी बहुत से निर्मित हुए हैं। लायडून की सूची में बहुत से ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। 'बाबद-संगू कल' (भारत शृंखला) नामक पुस्तक में पृथ्वी की उत्पत्ति से लेकर जावा में भारतीयों के प्रवेश-निवास आदि का वर्णन है। इसमें भारतीय अवतारों का पौराणिक रूपकमय वर्णन है।

जावानी साहित्य में कथा सरित्सागर, कादम्बरी की तरह का विविध कथा साहित्य भी मिलता है। इनमें सिंहासन बत्तीसी से लेकर मुसलमानी कथाएँ भी हैं। परन्तु इनका क्रम अजीब है। ऐतिहासिक व्यक्तियों का पौराणिक पुरुषों से सम्बन्ध जुड़ाकर रोचक रूप दे दिया गया है। नीति शास्त्र सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ हैं, राजधर्म, और नीति-परक कथाएँ कही गई हैं। पंचतन्त्र की तरह वार्ताएँ भी अनेक मिलती हैं।

भारतीय काव्यों में जिस प्रकार छन्दों का सौन्दर्य विस्तृत है उसी प्रकार जावा के साहित्य में भारतीय छन्दों में अनेक काव्य निर्मित हैं। साहित्यिक समानता के ये सुन्दर उदाहरण हैं, जैसे—शार्दूल विक्रीड़ित, कृतिसूर्त, अत्यष्टि सूर्त, सुवहना, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, वसन्त तिलका, पृथ्वी, कृति सूर्त, विकृति सूर्त, प्रहर्षिणी, स्वागता, वंश पत्र पतित, मद्रक, शिखरिणी, भुजंगप्रपात, वंशस्थ, तोटक, अर्म्म गति सूर्त, विलासिनी, रजनी, अभिनव ताम रस, हरिणी, महामालिका, विपुल वक्ता आदि। इन छन्दों के नाम, रूप, मात्रा आदि में भारतीय छन्दों का अधिकांश साम्य है।

'नगर कृतागम' का एक उदाहरण शार्दूल विक्रीड़ित छन्द में इस प्रकार है :

तिक्कन् भक्ति सिरान् सकेबुरिसिरा,
श्रीराज पटनीश्वरी ।
सरयानूत् व्रत पत्त सोगत ससंस्कारे
दगन् संग्विजाः ।
तंसाः श्रीकृत वर्धनेश्वर पिता
पे श्री नरेन्द्राधियः ।
सदंयाप पगेः सिरेंग्सुगत मार्ग्गाब्दे-सुकानिंग्जगरु ।
(नागर कृतागम—३-१)

भारतीय आयुर्वेद, कामशास्त्र और कला कौशल पर भी कई ग्रन्थ हैं।

जावा में भारतीय संस्कृति के दर्शन की साक्षी वहाँ के स्थानों, नगरों-रथ्याओं के नामों में स्पष्ट मिलती है । वे नाम हमें परकीय प्रतीत नहीं होते । जैसेः—

अन्तःपुर, अन्तर-शशि, अन्य वसुधा, अमृत वर्द्धिनी, अमृत सभा, अयोध्यापुर, आधि राज्य, आर्य, ईशान, वज्र, ईश्वर गृह, कण्डव वन (खाण्डव वन) कमल पण्डक, कर्णातक, कांचि, कांचिपुरी, काम्बोज, कुटि रत्न-पंकज, कुमुद, कुल नंदन, केतकी, गृहस्थ घर, चम्पा, जगच्दित, जम्बुद्वीप, जय, जयकृत, जलगिरि, तरुण, तरुणध्वज, ताल ध्वज, ताल, श्रीफल, धर्म नगरी, नन्दन वन, नन्दी नगर, नील कुसुम, नैरांजना, वकुल पुर, वज्रलक्ष्मी, वज्रासन,, रंगपुर, रतिमन्मथाश्रम, लोचन पुर, सिद्धमात्र, हिमवाक, सुगतासण, इत्यादि ।

जावा के ब्राह्मण बौद्धों का तिरस्कार करते हैं, वे अपने को शैव समझते हैं, नगर में ब्राह्मणों का आवास पूर्व की ओर रहता है, और दक्षिण की ओर बौद्ध समाज का निवास होता है । ब्राह्मणों में पर्व-प्रसंगों पर उपवास की प्रथा है । कर्म काण्ड की प्रवृत्ति है । पंचांग निर्माण, ज्योतिष कला भी उनका कार्य होता है । धोती पहनने की प्रथा तो अब तक प्रचलित है । वहाँ देवों की उपासना, यन्त्र-मन्त्र और तन्त्र का भी प्रभाव हैं । स्त्रियों को भी वेदाधिकार है ।

यहाँ चान्द्रमास मानने की पद्धति है । भारतीय पंचांग का उपयोग होता है । यह तो इतिहास से विदित है कि जावा-सुमात्रा आदि देशों में बौद्ध काल में अनेक भारतीय विद्वान धर्म प्रचार के लिए गए हैं, और दो हज़ार वर्ष से इन देशों से हमारा सांस्कृतिक सम्बन्ध बना हुआ है । इसलिए इन देशों में भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा होना स्वाभाविक है । यद्यपि परवशता के दीर्घ काल में हमारे देश के लोगों ने अपनी सनातन-संस्कृति के प्रति उपेक्षा की, और विकृतियाँ अपना लीं । किन्तु जावा-सुमात्रा वाली आदि द्वीपों ने भारतीय संस्कृति के चिर संस्कारों को अधिक सुरक्षित बनाए रखा है । उनके नाम-धाम-काम-वेश-भूषा में वह आज भी जीवित जागृत बनी हुई है । साहित्य संस्कृति में उसका निखरा रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ता है । जितने संस्कृत शुद्ध नाम उनमें दिखाई पड़ते है, अन्यत्र नहीं । उनके संस्कारों में भारतीयता सर्वत्र विकसित दिखाई देती है । आज भी स्याम के विश्वविद्यालयों में संस्कृत को महत्त्वपूर्ण स्थान है, विशेष रूप से नारियों में संस्कृत में अभिरुचि है, और उनके विद्यापीठ की उपाधियों में 'महाविशक' के पद की प्रतिष्ठा है । विविध संस्कारों और उत्थान-पतनों के चक्रव्यूह में पड़कर भी इन देशों ने अपने भारतीय संस्कारों को सुरक्षित बनाए रखा है । यह सिद्ध करता है कि ये देश इसी भारत के पुरातन अंग हैं, और अलग रहते हुए भी भारतीय बने रहेंगे । प्राचीन यवद्वीप और वर्तमान जावा हमारी संस्कृति श्रृंखला की एक अटूट कड़ी है, इनके सुरक्षित साहित्य की अमूल्य निधि को भारतीय भाषा में रूपान्तरित कर अपने विश्रृंखलित इतिहास को सुश्रृंखलित किया जा सकता है । शासन के सांस्कृतिक सम्पर्क विभाग को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए ।

(ज्ञानकोश के आधार पर—लेखक)

* * *

बोरोबुदुर मन्दिर का पूर्वी भाग

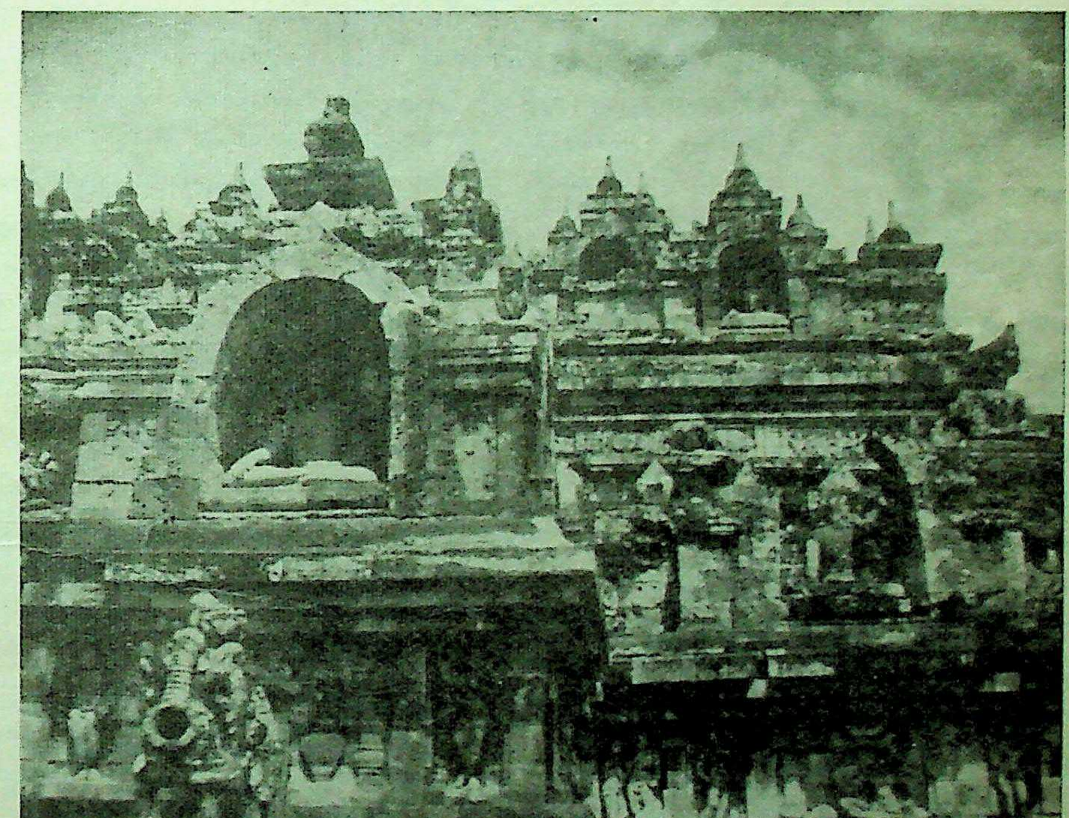

ऐतिहासिक एकांकी

कुम्भनदास

सेठ गोविन्ददास

[वल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र गुसाँई श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने पिता के समय के चार और अपने समय के चार अर्थात् आठ कवियों और कीर्त्तनकारों की 'अष्टछाप' के नाम से एक मण्डली बनाई थी । हिन्दी भाषा में इन कवियों का जो उच्च स्थान है वह सर्वविदित है । कुम्भनदास जी इनमें से एक थे । कुम्भनदास जी वल्लभाचार्य जी के समय के थे । गोवर्धन पर श्रीनाथ जी की मूर्ति के प्रकट होने के पश्चात् श्रीनाथ जी के प्रथम कीर्त्तनिया नियुक्त किए गए । सूरदास जी भी श्रीनाथ जी के मन्दिर में इनके बाद आए ।

कुम्भनदास जी क्षत्रिय थे । उनका परिवार भी बहुत बड़ा था । जैसे उच्च कोटि के वे कवि और गायक थे वैसे ही भगवद्भक्त और निस्पृही तथा अपरिग्रही । इस नाटक में वर्णित प्रसंग ऐतिहासिक है, जो गुसाँई विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ जी ने 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' नामक ग्रन्थ की एक वार्ता में लिखा है ।]

मुख्य पात्र—कुम्भनदास : नाटक के नायक
जमुना : कुम्भनदास की विधवा भतीजी
मानसिंह : जयपुर-नरेश

स्थान—मथुरा ज़िले में 'जमुनावती' गाँव का परासोली टोला

समय—बादशाह अकबर के राज्य समय के उत्तर काल का कोई वर्ष

(परासोली के एक भाग में प्रातःकाल समय)

[दाहिनी ओर कुछ दूर पर गाँव के झोंपड़े दिखाई पड़ते हैं। दाहिनी ओर ही निकट कुम्भनदास के झोंपड़े का कुछ भाग दिखाई देता है। झोंपड़ा जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है, पर इतने पर भी स्वच्छ है। खेत हैं, जिनकी फसल पकने पर आ गई है। बाईं ओर कुछ दूर पर एक करील का और एक बेर का वृक्ष दृष्टिगोचर होता है। झोंपड़े के सामने बैठने के लिए एक छोटा-सा आँगन है, जो गोबर से लिपा हुआ है। इस आँगन में एक तुलसी-घरा है जिसमें तुलसी का वृक्ष है। सारे दृश्य से गरीबी दृष्टिगोचर होती है पर गरीबी में भी मलिनता न होकर स्वच्छता है। कुम्भनदास इस चौक में बैठे हुए फसल की ओर देखते तकली से यज्ञोपवीत का सूत कात रहे हैं और गा रहे हैं। कुम्भनदास वृद्ध हैं। वर्ण कुछ साँवला है। शरीर ऊँचा पूरा, पर दुबला है। नीचे के शरीर पर धोती धारण किये हैं जो कई स्थानों पर फटी है और यहाँ-वहाँ उसमें थिगड़े भी लगे हैं पर है स्वच्छ। ऊपर के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है। मोटा स्वच्छ यज्ञोपवीत है और गले में तुलसी के काष्ठ की दो मोटी ख़ूब स्वच्छ कंठियाँ। सिर पर चौड़ी श्वेत शिखा है और मुख पर सफ़ेद छोटी-छोटी मूँछें।]

गान : जयति जयति हरिदास बर्य धरने ।
बारि वृष्टि, निवारि, घोष-आरति टारि
देवपति अभिमान भंग करने ।
जयति पटपीत कामिनी रुचिर वर
मृदुल अंग साँवल सजल जलद वरने।
कर अधर वेनु धरि गान कलरव सुसब्द
सहज व्रज जुवति जन-चित्त हरने ।
जयति वृन्दा विपिन भूमि डोलनि
अखिल लोक-वंदनि अंबु सह चरने ।
तरनि तनया बिहार नंद गोपकुमार
दास कुम्भन नवम तवसि सरने ।

[कुम्भनदास का गान पूर्ण होते-होते जमुना का प्रवेश । उसकी अवस्था लगभग पैंतीस वर्ष की है । वह गेहुँए रंग की स्त्री है । उसकी वेश-भूषा व्रज की महिलाओं की वेश-भूषा के सदृश है । लँहगा तथा चोली पहने है और ओढ़नी ओढ़े है । सभी वस्त्रों में थिगड़े लगे हैं, पर इतने पर भी वस्त्र स्वच्छ हैं । शरीर पर कोई भूषण और हाथों में चूड़ियाँ न होने से जान पड़ता है कि वह विधवा है ।]

कुम्भनदास—(तकली जमुना को देते हुए) लै जमुना, मैंने पूरे जज्ञोपवीत को सूत कात दियो है । तू या तकली को सूत के साथ भीतर धरि दे । मैं जाय नहाय आऊँ ।

जमुना—(तकली लेते हुए) आछो, बाबा ।

[कुम्भनदास का प्रस्थान । जमुना तकली लेकर झोंपड़े में जाती है पर तुरन्त ही झाड़ू लेकर बाहर आती है और आँगन को झाड़ते हुए गाती है ।]

गान : भावत तोहिं टोड को घनौ ।
काँटे बहुत गोखरू बूड़े फारत सिंह परायो तनौ ।
आवत-जावत बेलि नियारे,
बैठत है जहाँ एक जनौ ।
तब बूड़त तैं राखि लिये हैं
सुरपति तो तृन हूँ न गन्यौ ।
कुम्भनदास प्रभु गोवर्धन धर
यह तो नीच ढेढनी जन्यौ ।

[जमुना का गान पूरा होते-होते आँगन भी साफ़ हो चुकता है । एक शरीर रक्षक और एक भृत्य के साथ मानसिंह का प्रवेश । मानसिंह

की प्रौढ़ अवस्था है, वेश-भूषा उस काल की मुग़ल राजसी। सिर पर पगड़ी उस पर सिरपेच और कलगी। ऊपर के शरीर पर घेरदार जरी का अँगरखा और नीचे के शरीर पर पजामा। गले में रत्नजटित हार, भुजाओं पर भुजबन्द, हाथों में कड़े और उँगलियों में मुद्रिकाएँ। कमर में कमरबन्द और बाईं ओर सोने की जड़ाऊ मूठ का खड्ग। शरीर-रक्षक तथा भृत्य भी उस काल की वेश-भूषा में हैं। शरीर-रक्षक सिर पर बड़ा-सा मुँडासा बाँधे है। शरीर पर अँगरखा और पजामा है। उसके कमरबन्द की बाईं ओर भी खड्ग है। वह बाएँ कन्धे पर हाथ से पकड़े हुए बन्दूक रखे है। भृत्य सिर पर टोपी लगाए है और कुरता तथा पजामा पहने है। उसके दाहने हाथ में रेशम का एक बड़ा-सा झोला है।]

मानसिंह—(जमुना से) क्या कुम्भनदास जी यहीं रहते हैं?

जमुना—हाँ, वे या ही ठौर रहत हैं।

मानसिंह—आप⋯⋯आप उनकी⋯⋯

जमुना—मैं उनके भाई की बेटी हूँ। मेरो नाम जमुना है। और⋯ और आप?

मानसिंह—मैं जयपुर का राजा मानसिंह हूँ। मथुरा और ब्रजमण्डल की यात्रा को आया था। कल गोवर्द्धन पर श्रीनाथ जी के दर्शन किए और कुम्भनदास जी का कीर्त्तन सुना। इस समय कुम्भनदास जी के दर्शनार्थ आया हूँ।

जमुना—आछो, आप जयपुर नरेश। वे नहाइबे को गए हैं। वेग ही आवत होंगे। आप बिराजो (कुछ रुक कर)⋯⋯कहा दऊँ आपके बैठबे के ताईं⋯⋯

मानसिंह—इसकी आप क्यों चिन्ता करती हैं। पवित्र और पावन ब्रज-भूमि में, भूमि से बढ़कर बैठने के लिए अन्य कोई वस्तु हो सकती है? (मानसिंह भूमि पर ही बैठ जाते हैं। उनका शरीर रक्षक और भृत्य खड़ा रहता है। जमुना भी खड़ी रहती है। कुछ देर निस्तब्धता।)

मानसिंह—बैठो, जमुना, आप भी बैठो। चाहे कितनी ही देर में कुम्भनदास जी क्यों न आवें मैं उनके दर्शन से कृतार्थ होकर ही जाऊँगा, यों नहीं। (जमुना बैठ जाती है। फिर कुछ देर निस्तब्धता।)

मानसिंह—मैंने सुना, जमुना, कुम्भनदास जी का बहुत बड़ा परिवार है।

जमुना—हाँ, उनके सात बेटा हैं, सात बहू, एक मैं उनके भाई की बेटी, वे और मेरी काकी।

मानसिंह—सत्रह मानवों का कुटम्ब! सात पुत्र!

जमुना—पर वे तो अपने डेढ़ बेटा ही मानत हैं।

मानसिंह—(कुछ आश्चर्य से) डेढ़ बेटा?

जमुना—हाँ।

मानसिंह—इसका क्या अर्थ है?

जमुना—वे कहत हैं जो उनके पाँच बेटा संसारी प्रपंच में लगे रहत हैं वे काहे के बेटा? एक बेटा कछु बिसेस पढ़ो-लिख्यो नहीं, वह श्रीनाथ जी की गऊ चरावत है याने आधो बेटा और एक चतुर्भुजदास उन सौं ही कीर्त्तन करत है वह पूरो बेटा।

मानसिंह—(गद्गद् स्वर में) वाह, वाह! सच्चे भगवद्भक्त ऐसे ही होते हैं। (फिर कुछ देर निस्तब्धता।)

मानसिंह—मैंने सुना कुछ दिन पूर्व बादशाह सलामत ने मिलने को उन्हें बुलाया था।

जमुना—हाँ, बुलाए हते।

मानसिंह—उनके लिए सवारी भी भेजी थी। वे बादशाह सलामत से मिलने तो गए परन्तु सवारी पर नहीं, पैदल। सो क्यों?

जमुना—वे काहू सवारी पर कबहूँ नहीं चढ़ैं। सदा पाँव-प्यादे ही चलत हैं।

मानसिंह—परन्तु उनकी वृद्धावस्था है। यहाँ से सीकरी तक पाँव-प्यादे?

जमुना—या अवस्था में हूँ वे खेती को सगरो काम करत हैं। (कुम्भनदास का प्रवेश। उनको देखकर मानसिंह खड़ा हो जाता है।)

मानसिंह—(कुम्भनदास को दण्डवत कर) मैं जयपुर-निवासी मानसिंह कछवाहा हूँ। आपके दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ।

कुम्भनदास—(नम्रता से) कृपा, बड़ी कृपा की आपने। मैंने आपको कल संध्या समय श्रीनाथ जी के दर्शन में देखा था। आसन⋯ आपके योग्य आसन तो यहाँ न होगा।

मानसिंह—इसकी आप चिन्ता न करें। ब्रजभूमि से अधिक पवित्र और पावन आसन कौनसा हो सकता है, जिसकी रज में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं लोटे हैं और जिन्होंने उस रज को खाया तक है।

कुम्भनदास—अच्छा आप विराजिए। तिलक और संध्या के लिए तो इस पुण्य-भूमि पर भी आसन की आवश्यकता होती है। संध्या में तो समय लगेगा, अतः मैं आप से बात करने के उपरान्त करूँगा, पर तिलक कर लेता हूँ क्योंकि किसी वैष्णव को बिना तिलक अपना मुख किसी को नहीं दिखाना चाहिए। (जमुना से) ला, मेरो आसन और आरसी तो ला।

(जमुना झोंपड़े में जाती है पर तुरन्त ही खाली हाथ लौट आती है।)

जमुना—बाबा वह आसन तो पड़िया खाइ कै आरसी पी गई। मैं दूसरी लावत हूँ। (शीघ्रता से दूसरी ओर प्रस्थान)

मानसिंह—(आश्चर्य से) आसन पड़िया खाकर आरसी पी गई, अर्थात्? (कुम्भनदास का अट्टहास। जमुना का एक हाथ में कुछ घास और दूसरे हाथ में एक दोने में पानी लेकर प्रवेश। कुम्भनदास उस घास को बिछा कर दोना हाथ में लेते हैं। जमुना फिर झोंपड़े में जाकर कुमकुम लाती है। कुम्भनदास दोने के पानी में अपना मुख देख कर तिलक करते हैं। जमुना खड़ी रहती है।)

मानसिंह—(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) यह आपका आसन और यह आपकी आरसी!

कुम्भनदास—क्यों, इससे अच्छा और कौन आसन तथा आरसी हो सकती है।

मानसिंह—(उठ कर अपने भृत्य के निकट जा, उसके झोले में स्वर्ण की एक रत्नजटित आरसी निकाल, कुम्भनदास के सम्मुख रख कर) यह आरसी मैं आपको भेंट करता हूँ।

कुम्भनदास—(आरसी देखते हुए) तो यह भेंट कर आप मेरी हत्या का प्रबन्ध कर रहे हैं।

मानसिंह—(आश्चर्य से) हत्या का प्रबन्ध ?

कुम्भनदास—राजा साहब, मेरी इस झोंपड़ी में यह आरसी रही तो चोर क्या मेरे प्राण न ले लेंगे ?

मानसिंह—(उठ कर आरसी को वापस भृत्य के झोले में डाल, उसी झोले में से मोहरों की एक थैली ला, उसे कुम्भनदास जी के सामने रख कर) आप तो निस्पृह हैं यहाँ तो अपरिग्रह ही अपरिग्रह है, पर हम लोगों का भी तो कुछ कर्त्तव्य है। हम महलों में निवास कर सातों सुख भोगें और आप सदृश भक्त कवि तथा गायक इस प्रकार के झोंपड़ों में सड़ा करें। मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करने की कृपा करें।

कुम्भनदास—(मुस्कराते हुए) पर यह तो खाने की वस्तु नहीं है और न इससे शरीर ढँक सकता है। आप चाहते हैं मैं क्रय-विक्रय का व्यापार करूँ ?

मानसिंह—नहीं मैं आपको व्यापारी बनाने की धृष्टता किस प्रकार कर सकता हूँ ?

कुम्भनदास—पर जो भेंट आप दे रहे हैं, उससे तो मैं व्यापारी बन ही जाऊँगा।

मानसिंह—यह कैसे ?

कुम्भनदास—मोहरों का यह सोना बेचूँ और इससे अन्य वस्तुएँ खरीदूँ ?

मानसिंह—(थैली को उठा कर) तो फिर अपना मोदी बता दीजिए, उससे मिल मैं भोजन, वस्त्र आदि वस्तुओं का प्रबन्ध कर दूँ।

कुम्भनदास—(बाईं ओर के करील तथा बेर के वृक्षों की ओर संकेत कर) यह करील और बेर के वृक्ष मेरे मोदी हैं। खेती से जो कमी रहती है, उसे ये पूरा कर देते हैं।

मानसिंह—महाराज ! महाराज ! आप तो बड़े अद्भुत व्यक्ति हैं। परन्तु इस अवस्था में आप खेती करने का श्रम उठाव, इससे तो काव्य-रचना आदि में, जो ऊँचे कार्य आप कर रहे हैं उनमें, बाधा पड़ती है। अतः इस जमुनावती गाँव को जागीर में ले लीजिए जिससे आपको कम से कम जीविका उपार्जन के लिए तो श्रम न करना पड़े।

कुम्भनदास—राजा साहब ! मैं ब्राह्मण न होकर क्षत्रिय हूँ। दान लेने का कार्य ब्राह्मण का है और यह आपने ख़ूब कहा नीचा और ऊँचा कार्य। शारीरिक श्रम के कार्य नीचे कार्य नहीं हैं। भगवान् ने मनुष्य को शरीर और मस्तिष्क दोनों दिए हैं। अतएव सच्चे और पूर्ण जीवन के लिए दोनों के उपयोग की आवश्यकता है। जो व्यक्ति दूसरे के श्रम पर अपने शरीर को जीवित रखता है वह चोर और लुटेरा है। मैं खेती कर अपने शरीर का पोषण करता हूँ और भगवान् का कीर्त्तन कर इस मनुष्य-जीवन को सार्थक करने का प्रयत्न। आप जानते हैं कुछ समय पूर्व मुझे बादशाह सलामत ने भी बुलाया था।

मानसिंह—हाँ, वह वृत्त मुझे ज्ञात है।

कुम्भनदास—उन्होंने भी कदाचित् मुझे उसी उद्देश्य से बुलाया होगा जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर आप यहाँ पधारे हैं। मैं अशिष्ट तो हूँ नहीं, उनकी आज्ञा पाते ही तुरन्त सीकरी गया।

मानसिंह—और वह भी पैदल।

कुम्भनदास—किसी जीव पर अपना भार रख मैंने उसे कष्ट दे जीवन भर कभी भी अपने को नहीं ढुलवाया। मैं आज तक कभी किसी वाहन पर नहीं बैठा, तो पैदल तो जाता ही, जब वहाँ पहुँचा तब बादशाह सलामत ने आज्ञा दी कुछ गान सुनाने की। सुनेंगे आप वह गान, जो उसी समय आप से आप मेरे कण्ठ से फूट निकला था ?

मानसिंह—अहोभाग्य मेरा कि आपके मुख से गान सुनने को मिले।

कुम्भनदास—सुनिए। (गाते हैं)

गान : भक्तन को कहा सीकरी सों काम।
आवत-जात पन्हैया टूटी बिसरि गयो हरिनाम ॥
जा को मुख देखत दुःख उपजे ताको करनी परी प्रनाम।
कुम्भनदास लाल गिरिधर बिन यह सब झूठो धाम ॥

मानसिंह—वाह ! वाह !

कुम्भनदास—बादशाह सलामत बड़े उदार पुरुष हैं। मेरा यह उद्दण्ड गीत सुन कर भी अप्रसन्न नहीं हुए। मैंने प्रार्थना की कि आज्ञानुसार मैं इस बार तो आ ही गया हूँ अब भविष्य में मुझे कोई ऐसी आज्ञा न दी जाए।

[मानसिंह का सिर झुक जाता है। कुछ देर निस्तब्धता।]

कुम्भनदास—तो कहिए आपके यहाँ पधारने का तो यही प्रयोजन था न जो आपने विविध रूपों से कहा ?

मानसिंह—क्या कहूँ पर मुझे किसी सेवा की तो आज्ञा दीजिए।

कुम्भनदास—आप कोई सेवा किया ही चाहते हैं ?

मानसिंह—(प्रसन्नता से) अवश्य।

कुम्भनदास—तो आप मेरी इतनी ही सेवा करें कि फिर इस प्रकार के कार्य के लिए कभी भी न पधारें।

मानसिंह—(दण्डवत कर) इस प्रकार का अपरिग्रह किसी विरक्त या संन्यासी की समझ में आ भी सकता है परन्तु किसी गृहस्थ का और ऐसे गृहस्थ का जिसका इतना बड़ा परिवार हो यह अपरिग्रह ! अपरिग्रह की यह पराकाष्ठा है, पराकाष्ठा !

[मानसिंह का प्रस्थान। उनके शरीर रक्षक और भृत्य भी कुम्भनदास को दण्डवत कर जाते हैं।]

कुम्भनदास—(जमुना से जो अब तक स्तब्ध-सी खड़ी-खड़ी इस सारे वार्तालाप को सुन रही थी) तू···तू जमुना कछु लोभ में पड़ गई हती, क्यों ? (जमुना कोई उत्तर नहीं देती) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरता को पास में हूँ नाहीं आवने देनो। (गाते हैं)

गान : तुम बिनु को ऐसी कृपा करै ?
लेत सरन ततछिन करुणानिधि त्रिविध संताप हरै।
सफल कियो मेरो जनमु महाप्रभु प्रभुता कहि न परै।
पूरन ब्रह्म कृपा कटाच्छ तें अब तो कुम्भन तरै।

(गाने के पश्चात्) आछो अब अतिकाल हो रह्यो है। जा जल ला, सन्ध्या-वंदन कर श्रीनाथ जी की सेवा में पहुँचूँ। [यवनिका]

पंजाबी कविता

कुकनूस

अमृता प्रीतम

लिख जा न, मेरे भाग्य को
मेरे लिए !
मैं जी रही तेरे बिना
तेरे लिए !

मेघमाया[1] हर घड़ी
बनती रही !
मेघमाया हर घड़ी
मिटती रही !

कौमुदी भी दूधिया
हँसती न अब !
रस भरा फल में, बिना
मधुमास, कब ?

उम्र भर की प्रीत
बे-आवाज़ है !

गीत जो भी है,
मेरी आवाज़ है !

तड़प उठता है मेरा
अक्षर-अक्षर !
सुलगते हैं ज्यों सितारे
रात भर !

निर्मोही यह आयु
बीती जा रही !
रूह तेरे बिना
चैन न पा रही !

आज फिर कुकनूस[2]
दीपक गाएगा !
प्यार की इस लौ में वह
जल जाएगा !

चीर सपनों की तहें
आ जा ज़रा !
रात बाक़ी है बहुत
मत जा ज़रा !

राख ही इस राग का
परिणाम है !
राख को कुकनूस का परनाम है !

जब गगन फिर रोएगा
जी खोल कर,
जन्म लेगा एक नया
कुकनूस फिर !

लिख जा न, मेरे भाग्य को
मेरे लिए !
मैं जी रही तेरे बिना तेरे लिए !

★

बंगला कविता

तीन गोलियाँ

प्रेमेन्द्र मित्र

तीन गोलियों के उपरान्त एक स्तब्ध
कण्ठरुद्ध रात्रि भूल गई चन्द्र-सूर्य और
भूल गई कि प्रभात कहाँ है !

तुमने कितना कुछ दिया । सूर्य के समान
तपोदीप्त जीवन की समस्त विभूति तथा
प्रेम और करुणा के रूप में समस्त
परमायु बिखरा दी ।
(किन्तु) अन्त में हमने दीं तुम्हें
तीन कठोर क्रूर गोलियाँ ।

पहली गोली का नाम अन्ध-मूढ़-भय है ।
दूसरी हमारे आलोकहीन मन का संशय

और तीसरी गोली का परिचय है अन्तर-
विवर-विलासिनी हिंसा ।

तीन गोलियों का शब्द ! उसकी अन्तहीन
प्रकम्पित प्रतिध्वनि दिग्दिगन्तर को
भेद मानव-इतिहास को विदीर्ण कर
पार निकल जाती है ।

सुदूर भविष्य की ओर एक टक निहार
रहा हूँ । पिस्तौल का शब्द अब नहीं है ।
युग-युगान्तर से अगणित मनुष्यों
के हृदय में बज-बज कर वह प्रतिहत
शब्द अपने को भूल परिशुद्ध हो आशीर्वाद
और अभय की मृत्युञ्जयी वाणी हो
उठता है । अन्त में
अत्यन्त लज्जित होकर संहारक अस्त्रों
का नाद शान्ति के अमृत-मन्त्र में लय
हो जाता है ।

---

[1] मेघमाया अथवा हरचंदौरी बादलों की वह मायानगरी है, जो घड़ी-घड़ी बनती-मिटती, तरह-तरह के रूप बदलती रहती है ।

[2] कहते हैं, कुकनूस चिड़िया साल भर कोई न कोई राग गाती रहती है । पर जब वसन्त ऋतु आती है तो वह दीपक राग गाती है और उस राग से जो आग उठती है, उसमें स्वयं को जला कर भस्म कर देती है । वर्षा ऋतु में जब मेंह जी भर कर बरस लेता है, तो जले हुए कुकनूस के भस्म से नया कुकनूस जन्म लेता है ।—अनुवादक

पैंतीस वर्ष बाद

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

ब्रह्मनिष्ठ स्वामी रामतीर्थ जी महाराज का अन्त समय बड़ा ही करुण प्रसंग है। जिस समय वे जापान और अमेरिका में 'वेदान्त' की दुंदुभी बजाकर लौटे थे, काशी में किसी ने कह दिया कि "क्या वेदान्त वेदान्त लिये फिरते हैं, संस्कृत का तो कुछ ज्ञान ही नहीं।"

कभी-कभी बड़े-बड़ों को भी छोटी बात लग जाती है। स्वामी रामतीर्थ का सरूर जाता रहा। हरिद्वार चले गये और वहाँ संस्कृत व्याकरण घोखने में लग गये।

उन्हीं दिनों उनकी पूर्वाश्रम की पत्नी उनका पता पाकर हरिद्वार पहुँची और उन्होंने 'राम बादशाह' के दर्शन करने चाहे। 'राम बादशाह' ने उन्हें दर्शन देने से इन्कार कर दिया। श्री पूर्णसिंह स्वामी रामतीर्थ की सेवा में रहते थे। उनसे न रहा गया। बोले—"स्वामी जी! मेरा भी आपको नमस्कार है। आप कहते रहे हैं कि सारा विश्व ब्रह्मस्वरूप है। क्या आपके ये घर वाले उस विश्व से बाहर हैं? आप उन्हें क्यों दर्शन नहीं देते? लीजिये, मैं भी चला।"

उस समय 'राम बादशाह' की मानवता फूट पड़ी। बोले—"पूर्णसिंह! मैंने तो संन्यास को एक मुक्त जीवन समझ कर ग्रहण किया था। मुझे क्या पता था कि यह भी एक बंधन है।"

पूर्णसिंह जी की साक्षी है कि 'राम बादशाह' गेरुआ छोड़कर पाजामा पहनने लग गए थे। वह मस्ती, वह सरूर जो अपने साथ हज़ारों को बहा ले जाने की सामर्थ्य रखता था, यथार्थ की ज़रा-सी खसोट में बह गया।

उसके बाद तो स्वामी रामतीर्थ गंगा की धारा में 'ब्रह्मलीन' ही हो गए।

गृह-त्याग के बाद कुछ समय तक साधु-संन्यासी घर से दूर-दूर रहें, यह बात एक साधक की दृष्टि से समझ में आती है। किन्तु संन्यास जीवन पक जाने पर भी कभी घर की ओर मुँह ही न करे, घर वालों को 'दर्शन' तक न दे, यह बात सचमुच बड़ी अस्वाभाविक-सी जँचती है।

इन पंक्ति के लेखक ने जब से घर छोड़ा उसके बाद कोई तेरह वर्ष तक तो किसी को पता नहीं लगा कि वह कहाँ है ताकि उसको खोज निकाला जाए। किन्तु एक वर्ष जब वह बिरला मन्दिर के साथ वाले 'बुद्ध-मन्दिर' के शिलान्यास के अवसर पर भाषण दे रहा था, उसी के एक पुराने मित्र ने उसे देख पहचान लिया। भाषण के बाद जब वह सड़क पर चला जा रहा था तो उसने पीछे से आकर कन्धे पर हाथ रखा और सीधा सवाल किया—"आप अपने घर क्यों नहीं जाते?"

"आजकल जैसे कामों में व्यस्त रहता हूँ, वैसा घर पर कोई काम ही नहीं। घर जाकर क्या करूँ?"

न बात यहीं समाप्त होने वाली थी और न हुई। उस मित्र की कृपा से घर वालों को पता लग गया। उनमें से एक ने दिल्ली तक और फिर सारनाथ (बनारस) तक पीछा किया। इस प्रसंग को मैं यहाँ विस्तारपूर्वक लम्बायमान करना किसी तरह योग्य नहीं समझता। सारांश इतना ही है कि मुझे यह वचन देना पड़ा कि जब कभी मेरा दिल्ली आना होगा, तो उन्हें भी दर्शन देने चला आया करूँगा।

अब दिल्ली आना-जाना तो बहुत बार होने लगा। हर बार 'दर्शन' देने जाना कैसे सम्भव होता। इसलिए उस प्रस्ताव में काफ़ी सुधार हो गया है। किन्तु तो भी जब-तब बीच-बीच में आना-जाना ही पड़ा है।

इस बार मेरे अनुज की चिट्ठी आई—"आपको स्याम जाने की छुट्टी रहती है, जापान जाने की छुट्टी रहती है, केवल यहीं आने की छुट्टी नहीं रहती?" सोचा इस बार दिल्ली से और आगे थोड़ा अच्छी तरह घूम आऊँ।

कालिम्पोंग से हम चले थे तो चार साथी थे। एक-एक करके दो तो अपनी-अपनी राह लग गये। तीसरे साथी को भी दिल्ली तक ही साथ रहने में दिलचस्पी थी। 'पंजाब' में उनकी विशेष दिलचस्पी न थी। आगरे का ताजमहल उनके लिए कहीं अधिक आकर्षण का विषय था। उन्हें उधर जाने की अनुमति दे दी।

मैं पंजाब अकेला ही घूमना चाहता था कि चटगाँव के श्री कल्याण मित्र 'बरुआ' ने साथ चलने की इच्छा प्रकट की। मैंने उन्हें सहर्ष साथ ले लिया। रेल-यात्रा में 'एक से दो' हमेशा भले रहते हैं।

निजी सम्बन्धियों की चर्चा एक तो यों ही व्यक्तिगत विषय है, फिर साधु-संन्यासियों के लिए वर्जित भी है। इसलिए स्वाभाविक रूप से थोड़े संयम से काम लेना होगा।

दिल्ली से जो लाइन भटिण्डा होती हुई फिरोज़पुर तक जाती है उसी पर बुढलाडा नाम की प्रसिद्ध व्यापारी मण्डी है। वहीं मेरे अनुज लाला हरिदास नहर के पटवारी हैं। उनकी गृहस्थी की, उनके बच्चों की न जाने कितनी बातें क़लम की नोक पर हैं। किन्तु वे वहीं रहें। काग़ज़ पर न उतरें।

हम शाम को घर पहुँचे तो लाला हरिदास घर पर न थे। उन्हें मेरे आने की सूचना और आने की तिथि तथा समय का अन्दाज़ा तो था, किन्तु, निश्चित ज्ञान न था। वे कई गाड़ियाँ देख चुके थे। आख़िर सरकारी नौकरी भी बजानी ही पड़ती है। जिस दिन शाम को वह किसी गाँव में नाप-जोख करने गए थे, उसी दिन शाम को मैं पहुँच गया। उन्हें ख़बर लगी। वे दौड़े आए।

राहुल जी को एक बार किसी ने कहा था कि आपको तो जैसे भावुकता छू नहीं गई। बोले—"ऐसी बात नहीं है। पर उसके घोड़े पर सवार रहना पड़ता है।" मेरा भी कुछ ऐसा ही हाल था।

बुढलाडा पुरानी मण्डी है। अब वह वैसी चढ़ती पर नहीं है। पहले शायद रोहतक ज़िले में पड़ती थी, अब पेप्सू राज्य में है। ज़मीन की कमी नहीं। किन्तु वह बालू से लदी है। इसीलिए इलाका ज़रखेज़ नहीं। कई मन्दिर हैं। सभी उजड़े हुए-से। आज दिन बड़े शहरों में रहने वाले हैं, तो उनके रहने के लिए घर नहीं। छोटे नगरों में घर हैं, तो उन में रहने वाले नहीं। आदमी को घर से भी पहले 'रोज़ी' चाहिए। आदमी का 'अन्नदाता' उसे न जाने कहाँ से कहाँ ले जाता है?

शाम को घूमते समय मुझे बताया गया कि गाँव में कुछ जैन मुनि आए हुए हैं। वे मुझ से मिलना चाहते थे किन्तु कारणवश आ नहीं सके। सोचा, मैं ही क्यों न चला चलूँ? मैं उनके निवास-स्थान धर्मशाला में जा पहुँचा। सन्ध्या हो चुकी थी। सभी घरों में दिया-बत्ती जल चुकी थी, किन्तु इस 'धर्मशाला' में पूरा अँधेरा था। वे महात्मा दीपक पर जल मरने वाले कीट-पतंगों की प्राण-रक्षा के लिए स्वयं अँधेरे में बैठे थे।

बात-चीत के सिलसिले में उन्हें एक ग्रन्थ का पता-ठिकाना लिखने की आवश्यकता पड़ी। वहाँ प्रकाश नहीं ही था। तब एक भाई मेरे साथ आए और मैंने उन्हें अपने निवास-स्थान से पुस्तक का पता-ठिकाना लिखा कर विदा किया।

दूसरे दिन बुढलाडा से विदा ली। मध्याह्न-भोजन के लिए खाद्य-सामग्री साथ थी। हमारा गन्तव्य स्थान था फ़रीदकोट। रास्ते में एक स्टेशन पर उतरा। सवारियाँ चढ़-उतर रही थीं। एक सरदार जी को कहते सुना—'चलो इस ज़नाने डिब्बे में ही चले चलें।'

उनके एक साथी ने कहा—'हाँ ठीक है, पगड़ी की चुनरी बना लेंगे।'

इच्छा हुई कि पूछूँ—'और दाढ़ी-मूँछ का क्या होगा?'

लेकिन साथ ही डरा कि उधर भी कोई प्रत्युत्पन्नमति हुआ और उसने कह दिया कि—'केश तो स्त्रियोचित हैं, दाढ़ी-मूँछ आपकी तरह मुड़वा लेंगे', तो क्या होगा? साथ ही, कहीं कोई हँस-मुख न हुआ तो बात बढ़ जाने का भी भय था। मैं चुप ही रहा। फरीदकोट स्टेशन पर कुछ मित्र उपस्थित थे।

ज्यों ही हम फरीदकोट स्टेशन से शहर की ओर बढ़े तो नगर का प्रथम दर्शन बहुत ही मनोरम लगा। किन्तु यह उसके पुराने वैभव का शेष था। शाम को टहलने निकले तो 'फरीदकोट' के उद्यान को उजड़ा हुआ पाया, मकानों पर म्युनिसिपैलिटी के ग़बन सम्बन्धी इश्तिहार लगे देखे, सैक्रेटेरियट के आलीशान भवन में लोगों को बैडमिंटन खेलते और साथ-साथ कबूतरों को गुटर-गूँ करते देखा। लगा कि कोई राजा नगर को सोता छोड़ चला गया है। दो मसजिदें देखीं। दोनों की दोनों अब 'गुरुद्वारा' बन गई हैं। जिज्ञासा करने पर पता लगा कि अब नगर में कोई मुसलमान नहीं है। एक बुढ़िया है जो किसी भी तरह कहीं नहीं गई। दो मुसलमान भी थे, किन्तु वे अब दोनों सिख बन गए हैं।

सोचा कि इसी प्रकार जब पंजाब का जन-जन बँट गया होगा तभी पंचनद-भूमि भी बँट सकी होगी।

नौ अप्रैल को प्रातःकाल हमने अपने मित्रों से विदा ली। घर पर जब एक मित्र की माताजी ने स्वामी जी को हाथ दिखाना चाहा तो मेरा बड़ा मनोरंजन हुआ।

फिरोज़पुर होते हुए अपराह्न में हम जालन्धर पहुँचे। वहाँ गुलाब देवी अस्पताल में टैलीफ़ोन करने पर मालूम हुआ कि ला० मोहनलाल जी यहीं हैं। अब वे हमें और कहाँ जाने देते? रात भर वहीं रहे। लगभग तीस वर्ष पहले मैं जालन्धर में जहाँ रहा था, जिस तन्दूर पर बैठकर भोजन किया करता था उस स्थान को ढूँढ निकालने के लिए मैं रात को ही बाहर निकला। देखा केवल सड़कें और रेलवे लाइन अपनी जगह पर हैं, शेष सब कुछ बदल गया है।

अभी दो दिन पहले यहाँ हॉकी टूर्नामेंट हो चुका था जिसमें सुना कि पाकिस्तान से पच्चीस हज़ार मुसलमान दर्शक बन कर आये थे। अधिकांश उनमें वे थे जो अपने पुराने 'वतन' को देखने के लिए आये थे। ला० मोहनलाल जी ने बताया कि जिस घर में वे इस समय रह रहे हैं उसका मालिक भी आया था और किस हसरत भरी निगाह से अपने 'घर' को देख रहा था। ला० मोहनलाल जी बड़े दर्द से कह रहे थे कि मेरा सारा जीवन लोक-सेवा में ही बीता है, किन्तु वह पहला दिन था जिस दिन एक मुसलमान उनके घर में रहा।

शाम को हम जालन्धर से होशयारपुर चले आए। साधु-आश्रम के देखने की वर्षों पुरानी लालसा पूरी हुई।

ला० धनीराम जी भल्ला मशहूर 'भल्ले दी हट्टी' के मालिक थे। सच-मुच धनी और भल्ले साथ-साथ। उन्होंने होशयारपुर से बाहर एक ज़मीन लेकर उसमें बाग़ और भवन बनवा दिए थे और ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि किसी भी मान्यता के कोई भी साधु हों वहाँ रहकर साधु-जीवन व्यतीत कर सकें। उनका बहुत-बहुत आग्रह था कि वैशाखी के समय, मैं एक बार वहाँ आऊँ। खेद है कि उनके जीवन-काल में वह सम्भव न हो सका। अब गया तो वहाँ उनकी पुण्य-स्मृति ही शेष थी।

यह बड़ा ही सुयोग हुआ है कि इस साधु-आश्रम में इस समय पंडित विश्वबन्धु जैसे धुन के पक्के, एकनिष्ठ साधक की देख-रेख में वैदिक खोज-कार्य हो रहा है। वैदिक वाङ्मय की जो अनुक्रमणिका वहाँ बन रही है उसके लिए यह वैदिक साधना-अनुष्ठान पीढ़ियों तक याद किया जाता रहेगा।

यहीं पास ही प्रसिद्ध जात-पाँत तोड़क मण्डल के मन्त्री पंडित सन्तराम जी रहते हैं। महाभारत की कथा में जैसे अर्जुन को केवल मछली की आँख दिखाई देती थी वैसे ही पंडित जी की हर गोली हिन्दू समाज के जात-पाँत के किले को तोड़ने के लिए ही सुरक्षित है। उनके पास जितनी भी साहित्यिक बारूद है उसे इस किले की दीवार में सुरंग लगाने के अतिरिक्त दूसरा काम नहीं।

११, १२ अप्रैल के दोनों दिनों का साधु-आश्रम का निवास चिर-स्मरणीय रहेगा।

१३ अप्रैल 'वैशाखी' का दिन है। हम जालन्धर वापस लौटने की तैयारी ही कर रहे थे कि पता लगा कि हिन्दी 'मिलाप' के सम्पादक अपने सभी कर्मचारियों के साथ भाकड़ा-नंगल देखने जा रहे हैं। आज

पुस्तकालय
079547

हिन्दी 'मिलाप' का स्थापना-दिवस है। मुझे यह अपने अख़बार का 'स्थापना-दिवस' इस प्रकार मनाना बड़ा ही भव्य जँचा। जालन्धर की ओर प्रस्थान करने के लिए बिस्तर बँधे ही थे। हम भी बस में जा बैठे। बहुत दिनों बाद 'मुक्त हास्य, मुक्त बात-चीत और मुक्त यात्रा' का आनन्द मिला।

होश्यारपुर से नंगल कोई ३४ मील है। हम वहाँ पहुँचे तो हलकी बदली और बूँदा-बाँदी थी। बड़ा सुहावना समय था। यहाँ सतलुज में से एक नहर निकाली गई है। इस महानद के ऊपर एक पुल है और नीचे आर-पार एक सुरंग। सुरंग के आर-पार आने-जाने और उसे देखने के लिए अनुज्ञा लेनी पड़ती है। उसमें थोड़ा समय लगता है। सोचा गया सुरंग देखने का कार्यक्रम लौटते समय किया जाय। 'मिलाप-मण्डली' के पास खाने-पीने की जो सामग्री थी उसमें से कुछ का 'जलपान' हुआ।

नंगल से भाकड़ा बहुत दूर नहीं है। थोड़ी ही देर में हम भाकड़ा जा पहुँचे। भाकड़ा का बाँध देश के महानतम रचनात्मक कार्यों में से एक है। ढाई-ढाई हजार आदमियों का एक-एक साथ काम में जुटे रहना और इस प्रकार प्रत्येक आठ घंटे पर ढाई हज़ार आदमियों की दूसरी टोली का काम में आ जुटना और इस तरह लगातार पूरे चौबीस घंटे दिन-रात काम का जारी रहना और यह सिलसिला कुछ दिनों नहीं, कुछ महीनों नहीं, कई वर्ष तक लगातार जारी रहना क्या कोई छोटा आयोजन है? देश भर की आँखें भाकड़ा-नंगल पर लगी हुई हैं। पंजाब और राजस्थान को तो न बिजली की कमी रहने वाली है और न पानी की। शीघ्र ही वे दिन आने वाले हैं जब रातें दिन की तरह चमकेंगी और दिन हरियाली तथा ख़ुशहाली से सरसब्ज़ होंगे।

भाकड़ा से आनन्दपुर साहब, आदर्श के लिए इतिहास में जब-तब पर सात्विक बलिदान भी हुए हैं! आनन्दपुर की गाथा भी उनमें से एक है। यहीं सामने वह देवी का मन्दिर है जिस देवी के नाम पर गुरु गोविन्दसिंह महाराज ने अपने सिखों की परीक्षा ली थी। बड़े भाग्यवान् थे वे पाँच प्यारे जिन्होंने उस दिन गुरू-शिष्य के सम्बन्ध की लाज रख ली थी। उनकी शहादत की तैयारी ने—जो एक प्रकार से उनकी शहादत ही थी—सिख धर्म को अमृत पान करा दिया। जब तक संसार में एक भी 'गुरू का प्यारा' सिख रहेगा तब तक आनन्दपुर साहब के 'पाँच प्यारे' अमर रहेंगे।

आनन्दपुर साहब से ही हम थोड़ा आगे गंगूवाल की ओर बढ़ गए। समय कम था। जल्दी-जल्दी में सब कुछ देखा-भाला। भाकड़ा में क्या कुछ होने जा रहा है, इसका कुछ अनुमान गंगूवाल को देख कर भी लगा। यहाँ तीन ही यूनिट हैं। उनसे बहत्तर हज़ार किलोवाट बिजली पैदा होती है। सुनते हैं इतनी बिजली एशिया भर में और कहीं पैदा नहीं होती। भाकड़ा तो लगता है संसार के विद्युत-गृहों में अपना एक रिकार्ड स्थापित करेगा।

'गंगूवाल' से साधु-आश्रम होते हुए हम रात के कोई नौ बजे जालन्धर आ पहुँचे। दो सौ मील की बस की सवारी और दिन भर का चलना-फिरना। थके तो थे ही। मध्याह्न की डाक-गाड़ी से हमने पटियाला के लिए प्रस्थान किया। शाम होते-होते पटियाला पहुँच गए।

१५, १६ अप्रैल के दोनों दिन हम 'पेप्सू राज्य' के ही मेहमान रहे। भिक्षु कहीं भी रहे, वह जनता का ही मेहमान है और आज का हर राज्य जनता का राज्य है, इसीलिए लिखा गया कि 'पेप्सू राज्य' के मेहमान।

'पहले भी आप कभी पटियाला आये हैं?' यह प्रश्न मुझसे एकाधिक बार पूछा गया। 'हाँ' मेरा उत्तर था, 'जिस वर्ष मैंने मैट्रिक की परीक्षा दी थी, उसी वर्ष अर्थात् १९२० में भी यहाँ के महिन्द्र कालेज में पढ़ने के लिए आया था। किन्तु उस समय के शिक्षा-विभाग के डाईरैक्टर के परामर्श से उसी वर्ष अम्बाला-छावनी में खुलने वाले बनारसीदास कालेज में पढ़ने चला गया था। १९२० को अब पूरे ३५ वर्ष हो गए हैं। सो मैं पटियाले केवल एक बार आया हूँ। एक रात रहा हूँ और वह भी पैंतीस वर्ष पूर्व।'

एक प्रकार से यह मेरा पटियाले पहली बार आना ही हुआ।

इस बार मैं पटियाले, पेप्सू सरकार के पंजाबी-विभाग को ही विशेष रूप से देखने के लिए गया था। मुझे यह लिखते बड़ा संतोष होता है कि 'पंजाबी-विभाग' को देख कर वहाँ की विद्वत-मण्डली से मिल कर, वहाँ के 'पंजाबी' के ही नहीं, 'हिन्दी' के भी प्रकाशनों को देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

राजनीतिक लोगों के 'नारों' ने पंजाबी के विकास के प्रश्न को हिन्दी के ह्रास का प्रश्न बना दिया है। मुझे यह देख कर प्रसन्नता हुई कि पटियाले में, न केवल पंजाबी-विभाग के भीतर बल्कि उसके बाहर भी, 'पंजाबी' तथा 'हिन्दी' के साहित्यिक एक दूसरे के साथ पूरी तरह घुले-मिले हैं। मुझे निमित्त बना कर वहाँ जो दो साहित्यिक आयोजन हुए, उनमें पहला 'हिन्दी' का था और दूसरा 'पंजाबी' का। दोनों आयोजन एक ही स्थान पर हुए और दोनों आयोजनों में उपस्थित सज्जन-मण्डली भी प्रायः समान रही। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि पंजाबी साहित्यिक गोष्ठी ने मेरे हृदय और भावनाओं को अधिक स्पर्श किया। इधर वर्षों से पंजाब जाना नहीं हुआ था। गया तो पंजाबी की साहित्यिक शक्ति और गुरमुखी लिपि की प्रगतिशीलता से प्रभावित होकर लौटा।

१७ अप्रैल को हम अम्बाला छावनी पहुँचे, जहाँ आर्यसमाज में एक सज्जन ने हमारे रहने तथा खाने-पीने की सुखद व्यवस्था कर दी और हम स्नानादि से निवृत्त हो शहर देखने चले। जिस आदमी के जीवन के आरम्भिक पन्द्रह-बीस वर्ष अर्थात् बचपन और विद्यार्थी जीवन किसी एक ही नगर में बीता हो और जो वहाँ तीस-पैंतीस वर्ष के बाद आया हो वही इन पंक्तियों के लेखक की उन भावनाओं को समझ सकता है जो १७ अप्रैल के दिन अम्बाला छावनी की सड़कों पर घूमते समय उसके मन को तरंगित कर रही थीं।

भोजनालय में भोजन करते समय भाग्य से एक सज्जन मिल गए थे जिन्होंने उस दिन कृपापूर्वक हमारा मार्ग-दर्शक बनना स्वीकार किया।

(शेष पृष्ठ ७० पर)

काव्य और संगीत

देवीशंकर अवस्थी

इस प्रतिक्षण परिवर्तनशील संसार की मनुष्य के हृदय पर बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया यह होती है कि वह 'शाश्वत' और 'चिरन्तन' के चक्कर में पड़ जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार वह ऐसे तथ्यों, ऐसे सम्बन्धों की प्यास जगा लेता है जो 'शाश्वत' या सनातन हों। इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उसके मन में अनेक धारणाएँ बद्धमूल हो जाती हैं और उन धारणाओं की कभी ही वह विवेकपूर्वक समीक्षा करने बैठता है। काव्य और संगीत में कोई अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, ऐसा विश्वास हमारे मन में अनजाने ही गहरी जड़ें जमा बैठा है। यों तो कला के सभी प्रकार मूल रूप से एक हैं। उनकी जड़ में एक सहज प्रयोजनातीत आनन्दिनी वृत्ति, सृजन के लिए एक उत्कट लालसा, अभिव्यक्ति और प्रकाश की दुर्दम अभिलाषा विद्यमान है। यहाँ पर बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक छानबीन करने से संभवतः अपने मूल विषय से हम हट जावेंगे, परन्तु फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि कला मूल रूप से एक है। लेकिन यदि इसके आगे बढ़कर यह कहा जाय कि कला के विविध प्रकार, उसके विकसित रूप भी एक हैं, अन्योन्याश्रित हैं, तो मैं आपत्ति करूँगा।

काव्य और संगीत दोनों के मूल में कहते हैं ध्वनि या नाद है। लयात्मक ध्वनि के आधार पर ही संगीत चलता है, और ध्वनियों से ही शब्द बनते हैं, जो काव्य के उपजीव्य हैं तथा अब तक की प्रचलित परिपाटी के अनुसार छन्द की लयात्मकता के भीतर होकर गुज़रते हैं। यहीं पर प्रश्न उठता है कि क्या संगीत और छन्द की लय एक ही है? ऐसे स्थलों पर दार्शनिक विवेचन न कर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए, ऐसा मेरा अनुरोध है। अन्यथा हम कुछ ऐसी भाषा में बातें करने लगेंगे कि सारे विश्व में एक लय व्याप्त है, सारी कलाएँ लय पर आधारित हैं, आदि। और यह भाषा, स्पष्ट है कि, विश्लेषण से दूर ले जाने वाली और अवैज्ञानिक है। हम बहुधा देखते हैं कि छन्दशास्त्र की दृष्टि से ग़लत चरणों को संगीत द्वारा ठीक कर लिया जाता है। छन्द के दोष संगीत के आरोह-अवरोह में व्याघात नहीं उपस्थित कर पाते। कवि लोग बहुधा गले द्वारा मात्राएँ घटा-बढ़ा लेते हैं, इसका अनुभव कवि सम्मेलनों में कभी भी किया जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास में स्वामी हरिदास (तानसेन के गुरू) पर लिखी यह पंक्तियाँ इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं, "इनके पद कठिन राग-रागिनियों में गाने योग्य हैं, पढ़ने में कुछ-कुछ ऊबड़-खाबड़ लगते हैं। पद-विन्यास भी और कवियों के समान सर्वत्र मधुर और कोमल नहीं है……"

यदि छन्द और संगीत को आप खींच-खाँच कर अविभाज्य भी मानें तब भी यह प्रश्न शेष रहता है कि क्या छन्द ही कविता है? यदि छन्द के कोई गहरे अर्थ खोदकर न लाए जाएँ तो संभवतः यह बात निर्विवाद मानी जायगी कि छन्द, या अधिक स्पष्ट कहें तो तुकबन्दी और कविता में अन्तर होता है। छन्द का कार्य काव्य के अर्थ को और अधिक 'प्वाइन्टेड' बनाना है। इस तथ्य से सभी सहमत होंगे कि कविता और गद्य का अन्तर केवल छन्द का अन्तर नहीं है। केवल छन्दबद्ध-भाषा को आप कविता नहीं कहेंगे। इस सम्बन्ध में मुझे अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध समीक्षक हर्बर्ट रीड की बात याद आ रही है। 'इंगलिश प्रोज़ स्टाइल' की भूमिका में उसने बतलाया है, "गद्य को पद्य से अलग करने के दो मार्ग हैं, एक तो केवल यान्त्रिक और बाह्य है: यह कविता को अभिव्यक्ति का ऐसा प्रकार मानता है जो अनिवार्यतः नियमित छन्द से सम्बन्धित है।" उसने आगे बताया है कि यह परिभाषा केवल तुकबन्दी की है। अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए रीड का कहना है, "काव्य सृजनात्मक अभिव्यक्ति है, गद्य निर्माणात्मक अभिव्यक्ति है।" सृजनात्मक का अर्थ 'मौलिक' है। "काव्य में विचार-प्रक्रिया के साथ-साथ शब्दों का जन्म और पुनर्जन्म होता है।……विचारों और शब्दों के मध्य कोई समय का अन्तरावकाश नहीं रहता। विचार शब्द है और शब्द-विचार तथा दोनों शब्द और विचार कविता है।"

"निर्माणात्मक से तात्पर्य बने-बनाये माल से है, स्रष्टा के चतुर्दिक प्रयोग के लिए तैयार राशिभूत शब्द। गद्य बने-बनाये शब्दों के आकार को कहते हैं।" श्री जे० मिडलटन मरी ने बताया है कि गद्य में निश्चित चिन्तन और निश्चित वर्णन होता है।[1] इस बात को यों समझा जाए कि यदि कोई कवि कमल के फूल पर लिखेगा तो वह उसके सौन्दर्य का प्रभावात्मक पक्ष उपस्थित करेगा। परन्तु वह ऐसा वर्णन होगा कि आप उसे पढ़कर कमल का फूल पहचान सकें। शायद आप कमल और कुमुदिनी के मध्य भटक जाएँ। परन्तु गद्यकार को पुष्प के संवेगात्मक प्रभावों से कोई तात्पर्य नहीं। उसका 'निश्चित वर्णन' पढ़कर आप उसे देखते ही पहचान लेंगे। कविता के बाद गद्य का विकास 'निश्चित चिन्तन' के कारण ही हुआ है। उसने गद्य और पद्य के अन्तर को आगे बताया है कि 'यह अन्तर संवेग की मात्रा का है'। शेक्सपियर और मैसिन्जर की तुलना करते हुए 'मरी' का कथन है "एक आवेग की कविता है और दूसरा गणना (विचार) का गद्य है।" स्पष्ट है कि अन्तर आवेग और भावकुता का है न कि छन्द की यति, गति, ताल और लय का। क्योंकि छन्द तो 'एक प्रकार का गद्य में भी होता है।' संस्कृत-साहित्य के रसज्ञ बाण

---

[1] प्राबलम आफ़ स्टाइल : अध्याय ३—जे० मिडलटन मरी।

की लयात्मकता से परिचित है। वर्ड्सवर्थ ने 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका में इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है "……गद्य लिखते समय इतने सहज और स्वाभाविक रूप में छन्द की पंक्तियाँ और अंश आ जाते हैं कि भले ही उनका आ जाना उचित न हो, परन्तु उनसे बच पाना लगभग असम्भव हो जाता है।" हर्बर्ट रीड और भी आगे बढ़कर बताते हैं कि यह भले ही विरोधाभास जान पड़े परन्तु कविता तो एक ही शब्द में हो सकती है (जैसे जापानी कविता।) परन्तु गद्य तो सदैव मुहावरे में होगा और मुहावरे में किसी न किसी प्रकार की लय निश्चित रूप से होगी।[1] जे० डेनिस ने आवेग को संगति (हारमनी) से अधिक आवश्यक माना है। कारण बताते हुए उन्होंने कहा कि संगीत का कार्य केवल इतना है कि वह माध्यम की इस विशिष्टता की ओर संकेत कर दे जो गद्य में नहीं है। तात्पर्य वही जो ऊपर मैं कह चुका हूँ कि छन्द अर्थ को अधिक 'प्वाइन्टेड' बना देता है। कविता इसी लिए कविता है क्योंकि वह गद्य से अधिक आवेगपूर्ण और ऐन्द्रिक है। "संगतिरहित आवेग आनन्द दे सकता है, परन्तु आवेग-रहित संगति उबा देती है।" बल्कि कहना यों चाहिए कि बहुधा आवेग के कारण संगति टूट जाती है। टी० एस० इलियट ने 'रेफ़्लेक्शन्स आन वर्स लिब्रि' नामक निबन्ध में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए कहा है—"सबसे घनीभूत और सान्द्र क्षणों में वेब्सटर की कविता एक छन्दजन्य स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेती है।"

संगीत और काव्य में ध्वनि या नाद सम्बन्धी मूलभूत एकता का प्रश्न फिर भी शेष रहा। यदि हम तनिक विचार कर देखें तो विदित हो जाता है कि संगीत की आधारभूत ध्वनियाँ सप्त स्वर हैं जो मात्र कम्पनों पर आश्रित हैं। इनका सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं और प्रक्रिया से कोई सम्पर्क नहीं होता। काव्य-साहित्य में ध्वनि-समूहों द्वारा निर्मित शब्द प्रयुक्त होते हैं, तथा शब्द अर्थप्रकाशक होते हैं। उनका सम्बन्ध बाह्य जगत से होता है। शब्द और अर्थ पर विचार करने वाले जानते हैं कि यह सामाजिक सम्बन्धों के प्रतीक हैं। इस सम्बन्ध में पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन द्रष्टव्य है, "वस्तुतः अर्थहीन छन्दप्रवाह संगीत ही है। संगीत में बाह्य जगत की उस सत्ता से जो शब्द द्वारा प्रकाशित होती है, कम से कम योग होता है।…काव्य द्वारा और संगीत द्वारा स्पन्दित मानव-चित्त के आवेगों में थोड़ा अन्तर होता है। काव्य में आवेग द्वारा जो स्पन्दन उत्पन्न होता है वह बाह्य सत्ता से पूर्णतया सम्बद्ध होता है। हम बाह्य घटनाओं की अनुभूति से चालित होते रहते हैं। संगीत से उत्पन्न कम्पनों का योग बाह्य सत्ता से कम होने के कारण श्रोता के चित्त में उतनी गाढ़ अनुभूति नहीं होती जितनी काव्यजनित आवेग के कम्पन से होती है।"

वास्तव में संगीत में एक विश्वजनीनता होती है जिसका काव्य में अभाव है। बहुधा जिन भाषाओं का हम एक भी अक्षर नहीं जानते यदि वहाँ के गीतों की 'ट्यूनिंग' ही हम सुन लेते हैं तो आत्मविभोर हो उठते हैं। संगीत की स्वर-माधुरी मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी तक को सम्मोहित कर लेती है। पर काव्य के साथ यह बात नहीं है; वह भाषा की सीमाओं से बँधा है (शेक्सपियर या गेटे कितने ही बड़े कवि क्यों न हों, यदि हम उनकी भाषाएँ नहीं जानते तो व्यर्थ है।) परन्तु यहाँ पर मैं आपको उस मनोवैज्ञानिक तथ्य की याद दिलाना चाहूँगा जिसके अनुसार मनुष्य का मन सर्वदा कार्य-कारण की शृंखला खोजता रहता है। 'संगीत अविच्छिन्न (एब्सट्रेक्ट) होने के कारण अहैतुकी होता है।' कार्य-कारण की समुचित परम्परा का उसमें निर्वाह नहीं हो पाता। इस कारण संगीत की अनुभूति प्रगाढ़ नहीं हो पाती, जब कि अर्थ का आवेग अत्यन्त सान्द्र होता है। स्वर और अर्थ नितान्त भिन्न वस्तुएँ हैं। स्वर शीघ्र आकर्षक पर क्षणिक होता है। अर्थ बौद्धिकता की अपेक्षा रखता है और अपेक्षाकृत स्थायी होता है। 'निशिदिन बरसत नैन हमारे' किसी शास्त्रीय राग के बोल हो सकते हैं, परन्तु जब तक पूरा न पढ़े तब तक उसमें काव्य की सत्ता ढूँढ़ना व्यर्थ है। पर इतने ही बोल हमें संगीत में पूरा आनन्द दे जाते हैं।

काव्य और संगीत का पृथकत्व एक बात से और स्पष्ट है। हम अंग्रेजी से परिचित नहीं, पर शेली का काव्य हमें आनन्द देता है। संगीत का विश्वजनीन गुण कहकर आप इस तर्क को निरस्त्र कर सकते हैं। परन्तु अपने मौलिक रूप में ही नहीं अनुवाद में भी वे कविताएँ हमें आनन्द देती हैं। अनुवाद में उसके संगीत की रक्षा तो होती नहीं पर उसके वक्तव्य का सौन्दर्य, उसकी चित्रात्मकता हमें रस प्रदान करती है। जितने अंशों में वह अनुवाद मूल जैसा आनन्द नहीं दे पाता उसका कारण मूल भाषा के शब्दों का अपना संयोग और चित्र-विधान है। इस सम्बन्ध में इलियट ने बड़ी सटीक बात कही है, "अपने आगे-पीछे आने वाले शब्दों के सम्बन्ध तथा संदर्भ के प्रासंगिक अर्थ और उस शब्द के अन्य संदर्भों में प्रयुक्त अर्थ तथा संयोगों की वृद्धि या ह्रास के द्वारा शब्द के संगीत का उदय होता है।" इस कथन में व्यंजित 'अर्थ' की प्रधानता स्पष्ट है।

कम से कम बीसवीं शताब्दी के युग में काव्य की संगीतात्मकता पर ज़ोर देना वास्तविकता से मुँह मोड़ना है। वर्तमान काल की अधिकांश कविता गाने के लिए नहीं, पढ़ने के लिए होती है। साहित्य की ग्राहिका इन्द्रिय बदल गई है। प्रसाद जैसे अतीतोन्मुख कवि ने भी इस बात को पहचान श्रव्य काव्य को पाठ्य काव्य की संज्ञा दी थी। छापे की मशीन ने कविता को सुनने नहीं, पढ़ने की सामग्री बना दिया है। यह साधारण बात नहीं है। इसने समस्त उपादानों को परिवर्तित कर दिया है। पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "इस मशीन ने पाठक को भावावेश पर से ढकेल कर बुद्धि प्रवाह में फेंक दिया है।" अब पदझंकारमात्रेण मोहित करने का स्थल एकमात्र कवि-सम्मेलन रह गया है। तथा कवि सम्मेलनों की उपयोगिता के बारे में शायद दो मत नहीं हो सकते।

जहाँ तक सम्बन्ध का प्रश्न है—काव्य का जितना सम्बन्ध संगीत से है उतना ही चित्र से भी है। काव्य की सबसे बड़ी विशेषता आवेग

(शेष पृष्ठ ७२ पर)

---

[1] इंगलिश प्रोज़ स्टाइल—भूमिका, पृष्ठ ११।

कन्नड़ कहानी

चम्पा के फूल

एन० व्यासराय बल्लाल

पाँच खण्डों के उस मकान का एक-एक खण्ड ऊपर से गिर रहा है। पास कोई भी नहीं। ऊपर के तीसरे खण्ड में गए हुए 'वे' भी क्या जल्दी नहीं लौटेंगे? और एक क्षण का भी विलम्ब हुआ, तो तीसरा खण्ड भी गिर जायगा। हाय हाय! ऊपर की छत टूट रही है। 'वे' अब भी नहीं आयेंगे?

पास कोई नहीं। प्रभा, सास, ससुर—कोई नहीं।

वह तीसरा खण्ड भी गिर गया।

ऊफ़! हाय!···

सारा शरीर काँप रहा है। कितनी कोशिश की, मगर आँखें खोली भी नहीं जा सकतीं। सिर पर किसी ने एक पहाड़ ही लाद दिया है। ऐसा बाँध छोड़ा है कि इधर-उधर हिलना भी नहीं होता। कोई आकर उसे क्यों न ढकेल दे? मेरे शरीर के इन बन्धनों को क्यों न ढीला कर दे?

एकाएक रसोईघर की 'टंकी' के नल के पानी की गति बढ़ गई है। सारे रसोई घर को बहा ले जाने वाला पानी का प्रवाह! वही जल एक नदी बना है। वह नदी एक समुद्र बनी है।

उस समुद्र के बीच में वह मैं अकेली ही और कोई नहीं? 'मेरीन बीच' के मकान नहीं दिखाई देते। 'बेकके' की सुन्दर इमारतें पता नहीं कितनी दूर हैं। 'ब्रीच कैंडी' तो कहाँ है, यह भगवान् ही जाने। 'माहीम' समुद्र किनारा बेशक पास नहीं है।

तो मैं कहाँ हूँ? क्या मैं डूब रही हूँ? मर रही हूँ?

बहुत बड़ा शार्क मुँह खोले मेरा पीछा कर रहा है। और एक ही क्षण में पास आ ही जायगा। उसके मुँह में···दाँतों के नीचे···हाय हाय! उफ़!···

मेरे सिर पर ये यह क्यों यों मार रहे हैं? मुझे क्या इन्होंने निर्गतिक अनाथा जान लिया है? मेरे ससुरजी···प्रभा···सास······!

"सोना!···ससुरजी का बिस्तर ठीक कर चुकी क्या बेटी···? सोना!···प्रभा का भोजन हो गया क्या बेटी···?"

प्रभा ने क्या भोजन कर लिया? रसोईघर में जाकर देख भी नहीं सकती, किसी ने इन आँखों पर यह कपड़ा बाँध रखा है।···हाय हाय! कोई मार रहा है! ऐसा लग रहा है कि सारे शरीर में काँटे चुभ रहे हैं। मेरा हाथ टूट गया। वह पहाड़ फिर आकर मेरे सिर पर डट गया है। इधर-उधर हिलना अब सम्भव ही नहीं।

इन सारी चीज़ों ने, जिन्हें मैं देख रही हूँ, अन्धकार का घूँघट डाल लिया है। मकड़ी का जाला है। एक लाल बिन्दु है। उस पर रेखाएँ! लम्बी-चौड़ी। आँखों के सामने रेखाएँ ही रेखाएँ हैं।

और उसके बाद कुछ नहीं। केवल अन्धकार है। आँखें नहीं दिखाई देतीं। सिर पर का पहाड़ हिल भी नहीं रहा है।

उफ़! हाय हाय!

× × ×

यशोदा जिस राज्य में थी, वहाँ न रात थी, न दिन। बिना हिले, दृढ़ता से उसके सिर पर जो पहाड़ डट गया था, उसने टलने का नाम तक नहीं लिया। उस बोझ को ढोते उसने सात समुद्रों को देखा था, आसमान में उड़ चुकी थी, शिशु की तरह रो चुकी थी, हैना की तरह हँस चुकी थी।

लेकिन उसे बाहरी दुनिया का सच्चा ज्ञान नहीं था।

और एक दिन वह पहाड़ धीरे-धीरे विचलित नहीं, विगलित होने लगा। किसी एक शीतल स्पर्श का, जो इतने दिन तक पास न था। मैं मन-ही-मन सुखद अनुभव कर रही हूँ। इस पहाड़ का बोझ अगर उतार दिया गया तो आँखें खोलना सम्भव होगा। सास-ससुरजी, प्रभा सब को देख सकूँगी, ऐसा लग रहा था। यह सुयोग तो कई दिनों के निरशन व्रत की समाप्ति पर स्वादिष्ट भोजन को किसी एक श्रावण के धुले हुए दिन में देखने के समान है। और यहाँ भूख भी लग रही है।

लेकिन आँखें खोल भी नहीं पा रही हूँ। सारे शरीर में असह्य श्रान्ति भर गई है। अब और कुछ करना ठीक नहीं। केवल नींद में सोना ही ठीक, घण्टों तक, युग-युग तक—निर्भयता से सो जाना है।

सिर पर का पहाड़ कभी नीचे ढुलक गया होगा। शरीर सुखद निद्रा का यह कैसा आराम पा गया है। दोनों हाथों को फैलाकर, सिर के पीछे ले जाकर अँगड़ाई लेने को जी चाहता है। करवट बदल कर बगल के तकिए को छाती से लगाकर गाते-गाते सो जाने के लिए मन ललचा रहा है। अब सहज ही आँखें खोल सकती हूँ। न जाने यह अभी कितनी देर हो गई है। सास अब तक जाग गई होंगी। ससुरजी भी। छिः अब और सोते रहना शरम की बात है। पास ही किसी की बातें भी सुन रही हूँ। पर···पर···यह अंग्रेज़ी में कौन बोल रहे हैं?

"शायद जाग रही हैं। टेम्परेचर कम हो गया है न? कितना है? सौ? कल ठीक हो जायगा। दो ग्लूकोज़ इंजेक्शन लिखे दे रही हूँ। अगर जाग गईं, तो वे जितना चाहें उतना दूध लें।"

यशोदा को ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उसकी छाती पर साँप रेंग रहा है। धीरे-धीरे उसने आँखें खोलीं। पास ही एक सुन्दरी लेडी डाक्टर खड़ी थी। उसके गले में लटकने वाला स्टेथस्कोप यशोदा की छाती पर खेल रहा था। पास ही एक दाई थर्मामीटर लिये खड़ी थी।

यशोदा ने आँखें खोल कर उसी सुन्दर चेहरे को टकटकी लगाए देखा। अच्छी तरह सँवारे गए बाल, काजल के बिना ही काली-काली

दीखने वाली आँखें। भरे गालों के लाल रंग पर ही रूज़ का पुट दिया गया था। ओंठ लिपस्टिक के रंग के बिना ही बहुत लाल थे। पूर्ण यौवन की उस अप्सरा ही को दो क्षण तक अनिमेष नेत्रों से यशोदा देखने लगी।

लेडी डाक्टर के चेहरे पर हँसी नाच उठी। "जाग गईं? कल सब ठीक हो जायगा।" यशोदा की तरफ़ झुक कर उन्होंने कहा।

लेडी डाक्टर ने अपने जूड़े में चम्पा के फूलों की माला पहनी थी। जब वे झुक कर बोल रही थीं, तो चम्पा के फूलों की तीव्र सुवास का अनुभव यशोदा ने किया। वह सब कुछ भूल गई और उसने आँखें बन्द कर लीं। उस सुगन्ध के नशे से, होश पाकर आँखें खोलने के बाद उसमें अपनी परिस्थिति के प्रति जो कौतूहल जगा था, वह यकायक ग़ायब हो गया। वह भूल गई कि वह कहाँ है, उसकी देहस्थिति कैसी है। किसी आशातीत वैभव के राज्य में यशोदा प्रवेश करने लगी।

वह राज्य उसके जीवन के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वर्षों की घटनाओं का राज्य था, उसके जीवन के वैभव का, मधुरतम स्वप्नों का राज्य था।

उस राज्य को छोड़ कर, वेदना के, प्रतिदिन की निराशा के, दुःख के इस राज्य में यशोदा तब आई थी, जब उसके 'वे' नहीं रहे।

'वे' साथ न रहे, इसलिए इस राज्य में यशोदा के लिए कोई भी सुख सुख न रहा। कोई भी वैभव वैभव नहीं है। 'हँसी' है केवल प्रभा, सास और ससुरजी के लिए।

इसी कारण से, जब से 'वे' चले गए, उसने सिनेमा जाना ही बन्द कर दिया है। वह तो इसकी परवाह भी नहीं करती थी। प्रतिदिन का परिश्रम समाप्त हो जाने पर गृहस्थी का काम तो है ही। कुछ भी हो, ढलती उमर की सासजी पर घर का सारा काम-काज छोड़ देना भी उसे पसन्द न था। और कभी सासजी आग्रह के साथ कहें कि "सोना, थोड़ी देर टहल कर क्यों नहीं आती बेटी?" तो चर्नी रोड का उपवन है, चौपाटी का समुद्र किनारा है।

जिन सहस्र स्मृतियों को भूल जाने को उसका मन हज़ार कोशिश करता, वे इन सब स्थानों में जाने पर उसकी आँखों के सामने जब झूलने लगतीं तब उसे असह्य वेदना होती। इसी कारण से मालाबार हिल जाने पर खुद ही कड़ी मनाही डाल रखी है। परन्तु 'केम्पस कौर्नर' पार कर, महालक्ष्मी के रास्ते आगे बढ़कर सुन्दर अरब समुद्र के किनारे कहीं निर्जन स्थान चुन कर एक-दो घड़ी तक बैठ कर वापस लौटने से उसे बहुत शान्ति मिल जाती।

वही उसका आज का स्वर्ग था। वैधव्य ने सिन्दूर को मिटा दिया है। आधुनिक सुधार ने उसके जूड़े को बचा रखा है। सास-ससुर के प्यार ने उसकी एकान्तता के अभाव को कुछ हद तक भुला दिया है। उसकी शिक्षा ने जीविका का मार्ग दिखाया है।

और अगर वह इस पथ पर न जाती, तो सास-ससुरजी का जीवन-यापन भी दूभर हो जाता। यदि यह सम्भव भी होता, तो प्रभा की शिक्षा की वहीं पर इतिश्री कर उसे राशन आफ़िस की क्लर्की की गद्दी पर बिठाना पड़ता। उसे जो सौ-डेढ़ सौ रुपये मिल सकते थे, उसकी मदद से प्रतिदिन का आँसू का जीवन बिताना पड़ता। जीवन के अन्तिम दिनों की राह देखने वाले तीन व्यक्तियों के अस्तित्व के संघर्ष में सहायता पाने के उद्देश्य से व्यर्थ ही एक असाधारण प्रतिभाशाली बालक के उज्ज्वल भविष्य की बलि देनी पड़ती।

यशोदा ने यह न होने दिया। उसने कहा था—"आपको आपत्ति न हो तो मैं नौकरी करूँगी। माँ, इससे मुझे कुछ भी दुःख नहीं होगा। बहू बेटी बनी है, उसने बेटे का स्थान ले लिया है—यों समझ कर मुझे अनुमति दीजिए। प्रभा की शिक्षा अपूर्ण नहीं रहेगी।"

ज्येष्ठ पुत्र माँ-बाप की ढलती उमर में असमय ही चल बसा। बचे हुए एक ही बच्चे की शिक्षा अपूर्ण रह जाय, यह माँ को कैसे सहन हो सकेगा? लेकिन सोहाग खोकर भी, इस अनाथ स्त्री का, जिसने अपने माता-पिता को पहले ही खो दिया था, अपने पति के परिवार के पालन-पोषण का भार ढोना उचित है? जिस दिन पहले यशोदा घर आई थी, उसी दिन सास ने बड़े लाड़ से पीठ सहलाते हुए पुकारा था—'सोना'। सास के हृदय की दुविधा आख़िर यशोदा की इच्छा के अनुकूल निर्णय दे कर रुक गई।

प्रभा की पढ़ाई जारी रही। यशोदा अपनी मौसी के आश्रय में रहकर पैरों पड़ कर जो इंटर तक की शिक्षा पा सकी थी, उसका अब उपयोग हो सका। दो सौ रुपये माहवार की नौकरी उसे आसानी से मिल गई।

इस प्रकार बीते तीन वर्षों में यशोदा ने एक भी सिनेमा नहीं देखा था। उसे देखने की चाह भी कभी नहीं हुई। विलास और वैभव की दुनिया को उसने अपने से बहुत दूर ही रखा था। खादी की सादी साड़ी के सिवाय वह किसी आकर्षक वेश-भूषा की ओर न झुकी। इस खादी की तरह ही मैं अपने हृदय को भी कठिन बनाने की कोशिश करूँगी। मेरी नम्रता संस्कार-व्यवहारों में ही आ जाय। सौन्दर्य का संभ्रम मेरे उनके पीछे चला गया है, ऐसा समझूँगी। इस तरह उसने अपने हृदय को पत्थर बना दिया था।

तीन व्यक्तियों की सेवा के लिए मेरा जीवन अर्पित है, यह उसका अचल विश्वास था।

बम्बई जैसे बड़े शहर का प्रलोभनों का जाल, उसके दफ़्तर का वह वातावरण, जहाँ समान वय के युवक-युवती हिल-मिलकर साथ रहते थे—इनमें से कोई भी उसके स्थिर चित्त को विचलित करने का कारण नहीं बन सका।

फिर भी प्रभा ने जिस आनन्द के दिन आग्रह के साथ बुलाया कि आओ, उस दिन सिनेमा देखने मैं नहीं जाऊँगी यह कहने में यशोदा असमर्थ रही।

उस दिन उसके दफ़्तर से घर आये एक क्षण भी बीता न था। प्रभाशंकर दौड़ा-दौड़ा आया था।

"भाभी! प्रेसीडेन्सी भर में फ़र्स्ट आया हूँ भाभी! फ़र्स्ट क्लास में फ़र्स्ट! क्या तुमने पत्रिका देखी ही नहीं?"

प्रभा का बी० एस-सी० परीक्षा-फल उस दिन प्रकाशित होगा, यह वह जानती थी। निस्सन्देह वह उत्तीर्ण हो जायगा, यह भी वह

जानती थी। इसीलिए पत्रिका ख़रीद कर देखने का कुतूहल उसे नहीं हुआ था। मगर उसने इसकी आशा नहीं की थी कि वह इस प्रकार का गौरव प्राप्त कर लेगा।

"सच कहते हो? एक्सीलेंट···मिठाई, सिनेमा···जोगेश्वरी···महाबलेश्वर······"

आनन्दातिशय में पता नहीं यशोदा क्या-क्या कह गई। लेकिन इन सबके लिए अपने मन में उसने केवल औपचारिक महत्त्व ही दिया था।

लेकिन प्रभा तो कब छोड़ने वाला था! वह ज़िद करने लगा कि वह अपने वृद्ध माता-पिता, अपनी भाभी जिसने उसे शिक्षित बनाया था, इन सबको लेकर दूसरे दिन सिनेमा देखने अवश्य जाएगा। पिता तो चिर-रोगी थे, वे नहीं जा सकते थे। माँ सोच रही थीं कि कम से कम पुत्र की तृप्ति के लिए ही जाना होगा। मगर उनकी भी तबीयत अच्छी न थी। उन्होंने कहा था—"सोना, तुम जाओ बेटी! जब मेरा लाल इतना कह रहा है, तो जाने में क्या हर्ज है?"

अपनी प्रतिज्ञा भंग करने की इच्छा यशोदा की निश्चय ही नहीं थी। मगर इतने आग्रह के साथ अनुरोध करने वाले प्रभा के मन को दुःख पहुँचाना भी उसे इष्ट न था। प्रभा की बी० एस-सी० की ऐसी आनन्दकर सफलता के शुभ अवसर पर इस अनुरोध के उत्तर में 'नहीं' कहना भी कठिन था।

यशोदा ने स्वीकार कर लिया।

वह तीन वर्षों के बाद फिर अपने देवर के साथ सिनेमा देख आई।

वे गए थे, चार बजे का 'मेटिनी' देखने। लौटते-लौटते क़रीब सात बजने लगे थे। शाम के वक्त की भीड़ की छीना-झपटी की 'ट्राम' यात्रा को छोड़कर दोनों ने पैदल ही चल कर घर की राह ली थी। प्रार्थना समाज को पार कर जब वे आगे जा रहे थे, तब एक फूल बेचने वाला टोकरी भर चम्पा के फूल लेकर इनके सम्मुख आ गया। उसने इस पर ध्यान न दिया कि यशोदा के चेहरे पर सिन्दूर नहीं लगा है। उसने पूछ ही लिया, "फूल चाहिएँ?"

चम्पा के फूल मुश्किल से देखने को मिलते थे। उन्हें देखकर यशोदा की चाल अनायास ही धीमी पड़ गई। उसकी मनोस्थिति को पहचान कर फूल बेचने वाला भी उसके साथ-साथ चलने लगा। भाभी फूल नहीं पहनतीं, इसे जानते हुए भी प्रभा पूछ ही बैठा—"चम्पा के फूल चाहिएँ भाभी?"

यशोदा ने प्रभा के मुँह की ओर टकटकी लगाये देखा। उस दृष्टि को देख कर प्रभा डर गया।

"ले लूँ भाभी? माँ भी चम्पा के फूलों को बहुत पसन्द करती हैं। पूजा के लिए भी काम आयेंगे।"

यशोदा बोली नहीं। हाथ का पर्स खोल कर दो हार ख़रीद लिये और आगे चली।

हाथ में फूल थे। उसकी मधुर सुगंध का अनुभव यशोदा कर रही थी। चुपचाप आगे बढ़ते-बढ़ते यशोदा मन-ही-मन चम्पा के फूलों की सुगंध की किसी एक दूसरी रात की याद कर रही थी।

वह थी पूना में। उसकी मौसी के घर की एक छोटी-सी कोठरी में। मुँह-बोली बेटी की पसन्द के फूल हैं, सुयोग से बाज़ार में बहुत मिल गए हैं इसलिए मौसी ने जूड़े भर में चम्पा के फूल पहना कर यशोदा को उसके 'उनके' वश में सौंपा था। पूर्ण यौवन जीवन को देखने की नई, सुन्दर दृष्टि। प्रीति के महापूर के जैसे उमड़ आ कर, स्नेह की प्रतिमूर्त्ति बन कर, उसे सुख के स्वर्ग में पहुँचाने वाले 'वे'। उस सुन्दर स्वप्न के, उस रात के मधुर अनुभवों के ऊहातीत सम्भ्रम के साक्षी थे जूड़े में बँधे चम्पा के फूल।

उसे बाहु-बन्धन में अधिक दृढ़ता के साथ जकड़ते हुए उन्होंने पूछा था—

"सोना······माँ ने जो नाम रखा है, उसी से मैं भी तुम्हें पुकारा करूँगा यशू······! कितने चम्पा के फूल पहन लिये हैं!"

"क्या आपको चम्पा के फूल पसन्द नहीं हैं?"

"छिः! यह क्या कहती है! लेकिन यशू·········इस सुवासना के कारण तेरे मुँह पर मानों परदा पड़ गया है।"

उन्होंने झूठ ही कहा था। हँसते-हँसते यशोदा ने जूड़े से चम्पा के हार को उतार दिया था। मगर उसके पहले ही वह उनके चुम्बन की मधुर मिठास को चख चुकी थी।

चम्पा के फूलों का वह आनन्द उनके पीछे-पीछे चला गया है। अब चम्पा का स्मरण दिला रहा है प्रभा। सोचते-सोचते यशोदा आगे बढ़ ही रही थी कि प्रभा ने उसे जगा दिया।

"सिनेमा देख चुके भाभी! 'कॉफ़ी' चाहिए क्या? 'ताम्बे' पास ही है।"

"तुम पर क्या पागलपन सवार हो गया है प्रभा! यों तुम्हें कॉफ़ी पीनी ही है तो क्या अब हम घर को नहीं जा रहे हैं?"

"घर की कॉफ़ी तो रोज़ की है भाभी! मैंने तो यही कहा कि परीक्षा पास करने की ख़ुशी में बाहर की कॉफ़ी का स्वाद भी देखा जाए।"

बातों में यशोदा ने प्रभा की इच्छा का विरोध किया था, पर 'ताम्बे' विश्रामगृह में प्रवेश किये बिना न रह सकी। जब प्रभा ने कहा 'कॉफ़ी', तो उसने कहा था 'मट्ठा'। कॉफ़ी पीते-पीते प्रभा ने पूछा था।

"चम्पा के फूल क्यों नहीं पहन लेतीं भाभी? इतनी 'कन्ज़र्वेटिव' बनीं तो कैसे?"

उस सवाल से भी उस बात को मुँह पर लाने प्रभा की हिम्मत ने यशोदा को अधिक आश्चर्य-चकित कर दिया। दो वर्षों तक पति के साथ चलाई गई गृहस्थी के दिनों में प्रभा केवल बच्चा था। 'उनके' चले जाने के बाद प्रभा ने उसके आश्रय में विद्यार्थी बन कर तीन वर्ष व्यतीत किये थे। तब भी प्रभा केवल 'बच्चा' ही रहा। प्रभा के साथ यशोदा का आत्मीयता का व्यवहार इसी प्रकार का था।

तो क्या आज प्रभा ऐसी बात कह सकता है?

छात्रावस्था समाप्त हो चुकी थी। यौवन की उमंग, बातों में और बर्ताव में स्पष्ट व्यक्त हो रही थी। यशोदा ने पहली बार जाना कि प्रभा क्या इतना बड़ा हो गया है। अवस्था में तो एक वर्ष छोटा है। लेकिन

अपना बड़प्पन दिखाने के ढंग से जब प्रभा ने बातें कीं तो यशोदा को मालूम नहीं हुआ कि क्या जवाब दे।

"चम्पा के फूल पहन कर मुझे कौन-सा सौभाग्य पाना है प्रभा?"

"अपने सौभाग्य को हमें खुद बनाना है भाभी! जब हम रूढ़िवाद का विरोध करने की हिम्मत बाँध कर आगे बढ़ने की इच्छा करते हैं तभी हमारे सौभाग्य का महाद्वार खुलता है।"

"क्या मुझे उपदेश दे रहे हो?"

"नहीं भाभी! जो फूल तुम्हें पसन्द हैं उन्हें जूड़े में पहन लेने के पहले चार लोगों की आँखें कैसी हैं, इसे देखने की क्या ज़रूरत है?"

यशोदा का क्रोध बढ़ रहा था। लेकिन प्रभा को धमका कर उसका मुँह बन्द करने की हिम्मत उसमें नहीं थी।

"मुझे समझाने का अधिकार क्या तुम्हें है प्रभा?"

"चाहे दुःख कहीं भी हो, वह मुझ से देखा नहीं जाता। मुझे दुःख से द्वेष है। जिस चेहरे को रोज़ हँसते रहना चाहिए उसमें जब सिन्दूर नहीं हो, जूड़े में जब फूल न हों........"

"प्रभा!......"

यशोदा मट्ठा पी न सकी। शेषांश प्याले में वैसे ही छोड़ कर वहाँ से निकली। प्रभा ने चुपचाप 'बिल' चुका दिया और उसके पीछे-पीछे चला।

तीन वर्षों के संयम और समाधान का जीवन एक घड़ी में नष्ट हो चुका था।

उसके बाद रास्ते भर में घर पहुँचने तक वह एक ही विचार के बारे में सोच रही थी। प्रभा इस तरह क्यों बोला?

विद्यार्जन की अवधि समाप्त हुई है, अब तो उसे जीविका के लिए परिश्रम करना है, इसलिए भाभी की परवाह क्यों? क्या यह सोच कर वह इस तरह बोला?

या.......

छुट्टी के दिन की भीड़ थी। गिरगाँव रोड में ऐसे दिनों में पैदल चलना कछुए की गति का अनुकरण करना होता है। उस भीड़ में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता। वैसे जाते वक्त भी, साथ ही आने वाले प्रभा का शरीर उसके शरीर से कभी-कभी टकरा गया था। पर आज यशोदा की उद्विग्नता की मनोस्थिति में उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह स्पर्श उसे किसी ऐसे राज्य में ले जा रहा था जिसे वह एक बार पाकर खो चुकी थी।

प्रभा ने उस तरह क्यों कहा? प्रभा क्यों बदल गया है? प्रभा को इतनी हिम्मत कहाँ से आ गई? या......या.....

यशोदा का सारा शरीर पसीने से तर हो गया था। अपने आप से पूछ रही थी, तीन वर्षों में जिस संयम को मैंने पाया था वह आज कहाँ है, कहाँ है?

चुपचाप भाभी के साथ प्रभा आ रहा था। यह जान कर भी कि भाभी नाराज़ हैं वह बिना बोले अब रह न सका।

"मुझ पर नाराज़ हुईं भाभी?"

यशोदा ने जवाब न दिया।

"हम वैज्ञानिक हैं भाभी! हम सत्य को सत्य मानने वाले हैं। निरी भावना को हमारी विचारधारा में कोई स्थान है ही नहीं। इस कारण से तुम्हें दुःख पहुँचा हो तो उसे भूल जाओ भाभी!"

अगर कोई दूसरा अवसर होता, तो यशोदा भी प्रभा के इस गर्व को देख कर आनन्दित होती। उसका उपहास भी करती। लेकिन आज वही गर्व उसे असह्य दिखाई पड़ा।

"अभी से सिर पर सवार हो गई है क्या तुम्हारी बी० एस-सी०?" तनिक क्रोध ही में उसने पूछा।

लेकिन उसका मन चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था कि वह ठीक ही कह रहा है।

घर पहुँचने पर बहू के चेहरे को देख कर ही सास सन्न रह गई। "हुआ क्या सोना? सिनेमा अच्छा न था?" उन्होंने पूछा था। यशोदा के उदासीपूर्ण उत्तर से पता नहीं उनको कितना समाधान मिला। यशोदा ने कहा था "हिन्दी चित्र कोई था। सिर-दर्द शुरू हो गया है।"

चम्पा के फूल की पोटली भगवान् के चित्र के पास ही रह गई। उन्हें सास जी को पहनाने की बात तो दूर, पोटली को खोल कर भी देखने का विचार यशोदा ने नहीं किया था। रात का भोजन समाप्त होने के बाद रसोईघर में सास जी ने जब पूछा—"चम्पा के फूल की सुगन्ध आ रही है न सोना? लाई हो क्या?" तब यशोदा ने जवाब दिया "पूजा घर में है माँ, देना मैं भूल गई।"

उस दिन रात भर यशोदा चम्पा के फूल की सुवासना के नशे में खोई थी। उसके उद्द्वित मन को कोई भी श्रृंखला समाधान नहीं पहुँचा सकती थी। सवेरा होते-होते स्वप्न में 'वे' दिखाई दिये। 'उनके' बाहु-बन्धन में मैं अब भी जा रही हूँ ऐसा यशोदा को प्रतीत होता था। इसी आनन्द संभ्रम में ओठों पर हल्की हँसी नाच रही थी। सवेरा होते ही यशोदा ने आँखें खोलीं।

सामने ही था प्रभा।

पिछले दिन जिस सिनेमा को देखा था उसी के किसी एक गीत को गुनगुनाते हुए वह अपने बाल सँवार रहा था।

और तीन-चार दिन तक यशोदा ने प्रभा से बोलने का भी साहस नहीं किया। कभी अधीरता, कभी कातरता, फिर कभी क्रोध इस प्रकार उससे किस तरह का बर्ताव करना ठीक होगा, किस प्रकार के व्यवहार से अपने मन को समाधान होगा इसे भी यशोदा नहीं जानती थी। प्रभा ने तो इस पर तनिक भी ध्यान न दिया था कि भाभी बदल गई हैं या नहीं। ध्यान देने की फुरसत भी उसे कहाँ थी? उत्तीर्ण होने के, वह भी इतने गौरव के साथ उत्तीर्ण होने के, उपलक्ष्य में अभिनन्दन स्वीकार करने में उसे यह भी ज्ञात न होता था कि दिन कैसे बीत रहे हैं? भाभी कैसी हैं—यह सोचने का भी अवकाश न था।

चार दिन बीत जाने के बाद एक रात को प्रभा भोजन के बाद भाभी के पास आया था।

"मुझे एम० एस-सी० की सीट मिली है।"

एक क्षण के लिए यशोदा दंग रह गई। हमेशा वह उसे 'भाभी'

079447

कहा करता था, वह शब्द भी आज ग़ायब था। उसे सन्देह भी होने लगा कि अब तो स्वतन्त्र होकर कमाने का अवसर आ गया है क्या यह अब भी अपनी 'भाभी' के अनुग्रह की शिक्षा को आगे जारी रखेगा ?

"पिता जी से पूछ लिया क्या ?"

"हाँ ! उन्होंने कहा कि पैसे की चिन्ता तुम्हें नहीं है ?"

"स्कॉलरशिप मिल रहा है भाभी, तो फिर पैसे की चिन्ता क्या !" 'भाभी' फिर आ गया था।

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

"तुम्हें तो कोई असन्तोष नहीं है न ?" प्रभा आँखें गड़ाए यशोदा को ही देख रहा था। यशोदा उस दृष्टि को सह न सकी। मुँह नीचा कर उसने कहा—"तुम्हारी भलाई हो रही है तो मैं क्यों 'ना' कहने लगी ?"

"हमारे केमिस्ट्री प्रोफ़ेसर का आग्रह है भाभी ! यही नहीं। फुल ब्राइट स्कॉलरशिप पाने का प्रयत्न करने के लिए भी उन्होंने कहा है। तब अमेरिका जाना पड़ेगा। उनके छोटे भाई दिल्ली में एजुकेशन मिनिस्ट्री में हैं !"

"तब जाओ न।"

प्रभा की आगे की शिक्षा की अनुमति देकर भेज देने पर भी प्रभा के बारे में सोचना यशोदा न छोड़ सकी।

प्रभा का भविष्य किस प्रकार का होगा ? प्रभा अमेरिका जा सकेगा ? प्रभा सम्प्रदायबद्ध समाज का विरोध करेगा ? प्रभा किसी विदेशी लड़की से ब्याह कर घर लौटेगा ?

प्रभा की दृष्टि में मेरा क्या स्थान है ?

प्रभा में मेरे प्रति अनुकम्पा है ? आत्मीयता है ? अनुरक्ति है ?

प्रभा मुझ से प्रेम कर रहा है ?

जब कभी घर में सास-ससुर जी को देखती, जब कभी अपने पलँग के सामने दीवार पर टँगी 'उनकी' तस्वीर को देखती, उसका दुःख उमड़ आता।

इतने दिन तक उसने अपने भविष्य के बारे में खुद न सोचा था। अब इस चिन्ता से एक पल के लिए उसे छूट न मिलती थी।

इसी वेदना के संघर्ष में यशोदा ने तीन महीने बिता दिए थे। प्रभा की एम० एस-सी० की पढ़ाई निर्विघ्न चल रही थी।

और उसके बाद एक दिन सिर-दर्द के कारण दफ़्तर से छुट्टी लेकर घर लौटी और लेट गई। लेटते-लेटते उसके मन में कोई अस्पष्ट भय सताने लगा था। सिर-दर्द से बुख़ार जो चढ़ आया, वह पीछा न छोड़ता था। बुख़ार में यशोदा जब पड़ी हुई थी प्रभा ने आ कर कहा था—"कल मैं दिल्ली जा रहा हूँ भाभी !" यशोदा ऐसी हालत में न थी कि वह पूछती कि "क्या और क्यों ?" लेकिन ऐसी पारिस्थिति में मुझे यह छोड़ कर कैसे जा सकता है—यह सोच कर यशोदा को बहुत दुःख हुआ। मगर वह यह भी न समझ सकी कि उसे जाने से रोक रखने की आवश्यकता भी क्या है ?

प्रभा दिल्ली गया। यशोदा का बुख़ार उतरा ही नहीं। छः-सात दिन तड़पते-तड़पते बिताना ही वह जानती थी। वह यह भी जानती थी कि उसने बुख़ार की अर्ध-विस्मृतावस्था में कहा था—"माँ ! ऐसा लगता है कि मेरा अस्पताल जाना ही ठीक है।"

मगर उसके बाद वह वास्तविकता की दुनिया को छोड़ कर बहुत दूर चली गई थी, लेडी डॉक्टर के जूड़े के चम्पा के फूलों के उसे मीठी नींद सुलाने तक।

× × ×

यशोदा जब जागी उसने पहले देखी थी दीवार पर की बिजली-घड़ी। चार बजने में पाँच मिनट की देर थी। बगल में सिर घुमा कर उसने देखा। पास ही और एक खाट थी। उसके पैरों के पास कतार में तीन खाटें थीं। उसके पास की दो खाटों की तरह ही दूसरे सिरे पर भी दो खाटें थीं। दस खाटों में दस स्त्रियाँ सोई थीं।

जब चार बज गए, तो तुरन्त एकाएक सारे कमरे के खाटों के आस-पास लोग आने लगे। तभी यशोदा को पहली बार सूझा कि यह अस्पताल है—यह भेंट का समय है। उसके पास वाली खाट पर जो लेटी थी वह उठ बैठी। यशोदा को उठना तो दूर रहा, करवट बदलना भी मुश्किल था। बाक़ी आठों खाटों के पास रोगियों के बन्धु-बान्धव आए थे, पर उन दोनों की खाट के पास कोई नहीं आया।

यशोदा को प्रभाकर की याद आई।

मुझे यहाँ किसने ला छोड़ा ? प्रभा दिल्ली से लौट आया है ? प्रभा मुझे देखने इन दिनों आया था ? प्रभा मेरी बीमारी से कितना दुःखी हुआ है ?

बाक़ी सब खाटों के पास बातें सुनाई दे रही थीं। यशोदा की बगल की खाट वाली स्त्री दरवाज़े की ओर ही देख रही थी। यशोदा ने भी एक-दो क्षण तक देखा। कोई न आया। फिर वह स्वयं अनुमान करने लगी। प्रभा अगर दिल्ली से वापस नहीं आया है तो उसका आना सम्भव नहीं है। सासजी बेचारी कैसे आ सकेंगी ? ससुरजी कभी घर छोड़ कर आने वाले नहीं हैं। उनमें उतनी शक्ति नहीं है।

जब इस तरह यशोदा सोच ही रही थी तो एक नर्स उसकी खाट के पास आई। मुँह देखते ही यशोदा ने उसे पहचान लिया। वह 'उनके' सहोद्योगी की कोई बहन थी। पहले अपने पति के साथ उसके भाई के निमन्त्रण को स्वीकार करके दो बार यशोदा उनके घर गई थी।

"तुम ! मंजुला !......यहाँ ?"

"हाँ यशोदा ! जब से तुम आई हो, सुयोग से मैं इसी वार्ड में हूँ। तुम्हारी सासजी दोपहर तक बाहर प्रतीक्षा कर रही थीं। मैंने खुद कहला भेजा कि घबराने की कोई आवश्यकता नहीं, ज्वर उतर चुका है। मैंने यह भी कहा है कि शाम को आने की ज़रूरत नहीं है। बेचारी ! पति को घर में छोड़ वह बूढ़ी यहाँ बैठी क्या करेंगी ? मैं तो यहाँ हूँ ही। लेकिन फिर भी सात दिन तक तुमने काफ़ी तकलीफ़ दी है। चार दिन पहले ही यहाँ आ जाती तो अच्छा होता। लेकिन तुम्हारे कोई पड़ोसी तुम्हें यहाँ ले आए थे, 'एम्बुलेन्स' बुला कर। तुम्हारे देवर शहर में नहीं हैं न ?"

यशोदा ने सिर हिला दिया। प्रभा दिल्ली से नहीं आया था।

सास के न आने पर भी, एक परिचित सहेली मेरी देख-रेख कर रही है अतः प्रभा के मेरे पास न रहने पर भी, भय के लिए कोई कारण नहीं। यह सोचकर यशोदा मन ही मन तसल्ली पा रही थी। सहेली मंजुला चादर ठीक कर, सिर सहला कर चली गई तो यशोदा का मन आनन्द से भर गया। लेकिन उसी समय पास वाली महिला रोने-धोने लगी।

"आप क्यों रो रही हैं ?" यशोदा ने क्षीण स्वर में पूछा।

"मेरे पति आज भी शायद नहीं आयेंगे। सात दिन से राह देख रही हूँ। वे आते ही नहीं।"

"आपके पति क्या करते हैं ?"

"कल्याण में वे 'सिग्नल' का काम करते हैं। लेकिन क्या सात दिन में एक बार भी आकर देख जाने की फ़ुरसत उनको नहीं मिलती ?"

"आ ही जाएँगे। अभी और एक घंटे की देर है।" यशोदा ने धीरज बँधाने का प्रयत्न किया। लेकिन यह व्यर्थ ही था। उस स्त्री के पति उस दिन भी नहीं आए।

दूसरे दिन शाम के ठीक चार बजे यशोदा की सास आईं। सास को देखते ही यशोदा का मन यह पूछने के लिए उत्कंठित हो उठा कि प्रभाकर आया है ? लेकिन बात ही न निकलती थी। सास की आँखें डबडबा आईं। बहू का सिर सहलाते हुए बिना बोले ही रोते-रोते बैठ गईं। यशोदा भी अपने आँसुओं को न रोक सकी। लेकिन उसने कहा—"चिंता की कोई बात नहीं है माँ! मैं तो ठीक ही हूँ न ? बुख़ार तो कभी का उतर गया है।"

"जल्दी ही घर आ जाओ बेटी सोना……। प्रभा कल सवेरे आने वाला है। तार और पत्र जब दोनों गए, तभी जवाब में तार दिया है।" सास ने कहा।

यशोदा ने जवाब न दिया। मेरी हालत जानकर भी प्रभा ने वापस लौट आने में देरी की ? यशोदा का मन यही सवाल पूछ रहा था। वही मन यह भी सवाल करने लगा कि तार द्वारा उसने अपने आने की सूचना दी है—यह उसके प्रेम का सूचक है ?

जब सास घर जाने लगीं तो यशोदा ने कहा—"आप कोई भी चिन्ता न करें माँ! मैं जल्दी ही घर आ जाऊँगी।"

जब वे निकलीं तब भी पास वाली स्त्री का रोना न रुका था। उसके पति उस दिन भी न आये थे।

३६ घंटों तक ज्वर नहीं रहा। यशोदा का 'टेंपरेचर' 'सब नार्मल' तक आ चुका था। बहुत अशक्त थी, फिर भी वह यही सोच रही थी कि शाम के चार कब बजेंगे ? मन यही गीत गा रहा था कि प्रभा आयेगा, दिल्ली से लौटकर प्रभा आज मुझे देखेगा। मगर इस निर्णय तक वह अभी नहीं पहुँची थी कि प्रभा से वह क्या चाहती थी ?

शाम के चार बज गए, मगर प्रभा न आया, सास भी नहीं आईं। एक घंटे तक यशोदा बेचैन रही। बार-बार गर्दन घुमा कर देखा भी। किसी को न देखकर निराश हुई। पास वाली स्त्री रोज़ की तरह रोने लग गई थी। लेकिन यशोदा का मन स्वयं इतना विकल था कि वह उस रोने पर ध्यान देने कि स्थिति में न थी।

छः बजने में केवल १५ मिनट की ही देर थी कि प्रभा दौड़ा आया। यह वही प्रभा था जिसने स्नेह से, प्रेम से कहा था कि "सिनेमा देखने जाना ही होगा भाभी!" आते ही खाट के पास स्टूल को खींच कर बैठ गया और भाभी के हाथ पकड़ कर पूछा—

"कैसी हो भाभी ?"

प्रभा इस प्रकार की आज़ादी लेगा, यह यशोदा नहीं जानती थी। प्रभा के हितकर स्पर्श ने ऐसा सुख पहुँचाया जिसका अनुभव उसने पहले कभी न किया था। प्रभा के हाथ यशोदा के हाथ की उँगलियों से खेल रहे थे, तो उसकी आँखों में आँसू उमड़ने लगे।

"कुछ देर हो गई भाभी! सवेरे ही फ्रंटियर में आया। माँ से मैंने कह भी दिया था कि वे आज अस्पताल न आवें। लेकिन हमारे प्रोफ़ेसर को एक ज़रूरी काम पर मिलना था। वहाँ विलम्ब हो ही गया। तुम अब कैसी हो ? बुख़ार तो उतर गया न ?"

यशोदा ने केवल 'हूँ' कहा। वह इस समय बोलना नहीं चाहती थी।

"फुल ब्राइट स्कॉलरशिप मिल गया भाभी। अक्तूबर में अमेरिका को……"

"अच्छा ?" अपने क्षीण स्वर में यशोदा ने पूछा।

"हाँ। सब काम पूरा हो गया। एक छोटी सी परीक्षा ही बाक़ी है। वह तो बस नाममात्र की है। हमारे प्रोफ़ेसर के छोटे भाई के द्वारा ही यह सब हो सका। वे हमारे ही गाँव के हैं।"

"तो 'फारिन रिटर्नड' बन कर लौटोगे तुम प्रभा ?" यशोदा ने आनन्द से पूछा।

"हाँ भाभी! और एक ख़ुशख़बरी है। सुनाऊँ ?"

"क्या है वह ?"

"हमारे प्रोफ़ेसर के भाई की बेटी से मुझे विवाह कर लेना है। लड़की तो अच्छी है। इंटर साइन्स पढ़ रही है। अमेरिका से लौटने के बाद भी विवाह कर लेना काफ़ी है। यह हो सकता है न भाभी ?"

पिछले प्रश्न से यशोदा के मुँह पर जो मुस्कराहट नाच उठी थी उसी की छाया अब तक वहाँ थी। अब उसने कुछ न कहा। मुलाक़ात के समय की समाप्ति की सूचना में घंटी बजने लगी। कमरे में लोगों की भीड़ कम होने लगी। "कल आ जाऊँगा भाभी!" यह कहते हुए प्रभा जल्दी में दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा।

यशोदा ने पास की खाट की तरफ़ देखा। उस स्त्री के पति उसी समय एक टोकरी भर फल लिए पत्नी को देखने आये थे। सदा जो रो रही थी वह आज हँस रही थी।

यशोदा ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। कोमल तकिये पर अपने मुँह को पूरा ढँक लिया। वह सिसक-सिसक कर रो रही थी।

अनुवादक—ए० कृष्णराव

★

कुछ शब्दों की कहानी

भोलानाथ तिवारी

प्रत्येक शब्द की अर्थ तथा ध्वनि आदि की दृष्टि से अपनी कहानी होती है और वह कहानी मनुष्यों की कहानी से कम मनोरंजक नहीं होती। यहाँ कुछ शब्दों की कहानी सुनाई जा रही है। पहला शब्द 'एकड़' लीजिए।

एकड़

एकड़ हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। यह १$\frac{3}{५}$ बीघे के बराबर की भूमि की एक नाप है।

एकड़ शब्द की उम्र इतनी अधिक लम्बी है कि वर्षों में उसे नहीं व्यक्त किया जा सकता। यूरोपीय, ईरानी तथा भारतीय आर्य जब अपने मूल स्थान पर एक साथ रहते थे तो यह शब्द अपने किसी पुराने रूप में उनमें प्रचलित था। बाद में जब आर्य यूरोप तथा भारत में गए तो यह शब्द भी उनके साथ दोनों स्थानों में गया। संस्कृत में खुली भूमि या आँगन के अर्थ में प्रयुक्त 'अजिर' शब्द यही है। यूरोपीय भाषाओं में ग्रीक शब्द 'आर्गस' तथा लैटिन शब्द 'एजर' भी इसी 'एकड़' के पुराने रूप हैं। इन ग्रीक और लैटिन शब्दों का भी अर्थ संस्कृत 'अजिर' की भाँति 'खुली जगह' ही है। इस प्रकार 'एकड़' शब्द का प्राचीनतम ज्ञान अर्थ भूमि की विशिष्ट नाप न होकर खुली भूमि या खुला स्थान है। और आगे चलकर ऐंग्लो सैक्सन शब्द 'एकर' के रूप में हमें 'एकड़' शब्द मिलता है। यहाँ तक आते-आते इस शब्द का अर्थ खुली भूमि से हट कर 'भूमि-खण्ड' हो गया था। और आगे चलने पर इस शब्द के अर्थ में परिवर्तन की तीन सीढ़ियाँ दृष्टिगत होती हैं। पहले इसका अर्थ 'भूमि-खण्ड' से बदल कर 'चरागाह' हुआ तथा और आगे चल कर 'चरागाह' से परिवर्तित होकर 'घेरी हुई भूमि' हो गया। परिवर्तन की तीसरी सीढ़ी में 'घेरी हुई भूमि' अर्थ बदल कर 'घेरा हुआ खेत' हो गया।

१३वीं सदी तक आते-आते इंग्लैंड में 'एकर' उतनी बड़ी भूमि या खेत को कहने लगे जो एक हल से एक दिन में जोता जा सके। यहीं आकर सर्वप्रथम 'एकर' शब्द के साथ 'नाप' के भाव का गठ-बन्धन हुआ। पर, इस रूप में इस शब्द के अर्थ में निश्चितता नहीं थी। अच्छे बैलों के हल से बड़ा खेत जोता जा सकता था और ख़राब या कमज़ोर बैलों के हल से छोटा। इस प्रकार 'एकर' का अर्थ बड़ा खेत भी सम्भव था और छोटा भी। और आगे चलकर इसके अर्थ की इस अनेकरूपता को दूर कर एकरूपता लाने के लिए एडवर्ड प्रथम, एडवर्ड तृतीय, हेनरी अष्टम तथा जार्ज चतुर्थ ने क़ानून बनाए और १८७८ ई० तक आते-आते ४८४० वर्ग गज़ का एक 'एकर' मान लिया गया। इसी अर्थ में भारत में 'एकर' शब्द अंग्रेज़ी के साथ आकर 'एकड़' बन गया और आज तक प्रचलित है। यह भाग्य की ही बात है कि इतने महान् लोगों के प्रयास के बाद भी इस शब्द के अर्थ में एकरूपता नहीं आ सकी है। भारत तथा इंग्लैंड में तो यह ४८४० वर्ग गज़का है, पर स्काटलैंड, आयरलैंड, वेल्स तथा कुछ अन्य देशों में अब भी इसके कई रूप प्रचलित हैं। स्काटलैंड का एकड़ ६१५०'४ वर्ग गज़ का होता है तो आयरलैंड का ७८४० वर्ग गज़ और वेल्स का ४३२० या ३२४० वर्ग-गज़ का।

एकड़ के पूरे जीवन पर एक दृष्टि डालने से कितना आश्चर्य होता है? कहाँ तो यह शब्द अपने मूलरूप में खुली जगह (सं० अजिर) का द्योतक था और कहाँ आज बिलकुल परिवर्तित होकर एक नाप हो गया है।

दूसरा शब्द अमेरिका लीजिए।

अमेरिका

'अमेरिका' एक महाद्वीप है जिसके दक्षिणी और उत्तरी दो भाग हैं। इसके नाम का इतिहास बड़ा ही विचित्र है। अमेरिका का पता कोलम्बस ने १२ अक्तूबर, १४९२ में लगाया था। उसने इसका नाम 'सैन सलकेडर' रखा पर इस नाम का प्रचलन न हो सका। कोलम्बस का एक मित्र अमेरिकस वैसपुसियस था जो कोलम्बस के लगभग ९ वर्ष बाद १५०१-२ ई० में अमेरिका गया। यह भाग्य की ही बात है कि अमेरिका का सर्वप्रथम पता लगाने वाले कोलम्बस का नाम उसकी इस जगत्प्रसिद्ध खोज के साथ संसार ने नहीं जोड़ा, और उसके ९ वर्ष बाद उस देश की यात्रा करने वाले अमेरिकस वेसपुसियस के नाम के आधार पर इसका नाम अमेरिका रख दिया। अंग्रेज़ों की लोकोक्ति भी है जिसका आशय है—अमेरिका का नाम कोलम्बस के नाम पर नहीं रखा गया।

एक भूगोलवेत्ता मार्टिन वेल्शी मूलर ने सर्वप्रथम १५०७ में अपने एक निबन्ध में 'अमेरिकी डेरा' नाम से इस देश को पुकारा। उसके नक्शे में यथार्थतः यह नाम पूरे अमेरिका का न होकर केवल दक्षिणी अमेरिका का था। बाद में जब उत्तरी अमेरिका का पता चला तो स्पेन निवासियों के विरोध के बावजूद भी दोनों ही भागों को अमेरिका कहा जाने लगा और यह नाम प्रचलित हो गया। आज दोनों अमेरिका के लिए इसका प्रयोग करने के अतिरिक्त सामान्य प्रयोग में 'यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका' के लिए भी लोग अमेरिका शब्द का प्रयोग करते हैं।

कहना न होगा कि इस महाद्वीप के अमेरिका नाम में बेचारे कोलम्बस के प्रति संसार की अकृतज्ञता मूर्त हो उठी है।

नारंगी

'नारंगी' एक प्रसिद्ध फल का नाम है। आक्सफ़ोर्ड तथा वेब्स्टर के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कोषों में इसका मूल शब्द अरबी 'नारंज' माना गया

है। टर्नर ने अपने प्रसिद्ध कोष 'नेपाली डिक्शनरी' में मूल शब्द फ़ारसी 'नारंगी' माना है, पर ये तीनों ही कोष इस दृष्टि से अशुद्ध हैं।

नारंगी फल के मूल स्थान तथा विकास के सम्बन्ध में श्री गैलेशियो की खोजों से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि इस फल का मूल स्थान भारत ही है। सिलहट, कुमायूँ, सिक्किम तथा नीलगिरि की पहाड़ियों पर आज भी इसकी जंगली जातियाँ पाई जाती हैं। ऐसी स्थिति में नारंगी के मूल शब्द को फ़ारसी या अरबी का न होकर किसी भारतीय भाषा का ही होना चाहिए।

संस्कृत में नारंगी के लिए 'नागरंग' शब्द है। यही नारंगी का मूल शब्द है। संस्कृत में 'नाग' का अर्थ सिन्दूर होता है। नारंगी सिन्दूर के रंग की होती है, इसी से उसे 'नागरंग' या 'नागरंगक' आदि कहा गया है। संस्कृत का 'नागरंग' शब्द ही भारत की अनेकानेक भाषाओं और बोलियों में नारंगी, नारंगि तथा नवरंगी आदि रूपों में मिलता है। फ़ारसी में जाकर इस शब्द का रूप 'नारंग' तथा अरबी में 'नारंग' हो गया। अरबी भाषा से यह शब्द यूरोप की भाषाओं में पहुँचा और कुछ ध्वनि परिवर्तन के साथ विभिन्न भाषाओं में प्रचलित हो गया। लैटिन में इसका रूप 'ओरेंजिया' मिलता है तो पुर्तगाली में 'लारंज', स्पेनिश में 'नारंज', फ्रांसीसी में 'आरेंज', पुरानी अंग्रेज़ी में 'ओरेंज' और जर्मन तथा अंग्रेज़ी में 'आरेंज'।

इस सम्बन्ध में एक और बात की ओर भी संकेत कर देना आवश्यक है। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि नारंगी का मूल शब्द संस्कृत का 'नागरंग' नहीं है। मूल शब्द कोई द्रविड़ शब्द था जिसके आधार पर लोगों ने संस्कृत 'नागरंग' गढ़ लिया।

बैंक

यह सुनकर किसे आश्चर्य न होगा कि बैठने की 'बेंच' और रुपया लेने-देने का कारबार करने वाला 'बैंक' ये दोनों ही मूलतः एक शब्द हैं। बैंकों की मूल परम्परा इटली से प्रारम्भ होती है। वहाँ का वेनिस नगर किसी समय विश्व व्यापार का केन्द्र था। अतः व्यापारियों की सहूलियत के लिए बहुत से लोग सेंट मार्क के चौराहे पर बेंचों पर सिक्के रखकर बैठते थे और मनी-चेंजिंग या सिक्के की अदला-बदली करते थे। 'बेंच' के लिए इटैलियन शब्द 'बैंको' है अतः इनके बेंच जिन पर पैसे रखे रहते थे 'बेंको' कहलाते थे। बाद में ये लोग बेंच के स्थान पर टेबुल या मेज़ का प्रयोग करने लगे तो वही 'बैंक' नाम उन मेज़ों के लिए प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार 'बैंको' शब्द का अर्थ 'बेंच' से परिवर्तित होकर रुपए पैसे रखने की बेंच तथा और आगे चलकर रुपए-पैसे रखने की मेज़ हो गया। और आगे चलकर रुपए-पैसे की ढेर को बैंक कहने लगे और उसी से विकसित होकर इस शब्द का आज के बैंक का अर्थ आया।

अंग्रेज़ी शब्द 'बेंच' तथा इटैलियन बेंच वाची शब्द बैंको या बैंक ये दोनों ही बेंचवाची ट्यूटनिक शब्द 'बैंका' से निकले हैं। इस प्रकार बेंच और बैंक शब्द एक ही हैं। इन्हें देखकर कहावत याद आ जाती है—कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। कहाँ तो आज के कारबार का प्रमुख साधन बैंक और कहाँ बैठने की एक सामान्य-सी चीज़ बेंच! नामतः मौलिक रूप से दोनों एक हैं पर अर्थतः आज इनमें कितना अन्तर है?

बाईकाट

'बाईकाट' शब्द आज तो अधिक प्रचलित नहीं है पर भारत के स्वतन्त्र होने के पूर्व स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए उठाए गए पगों में 'बाइकाट' आन्दोलन भी एक था। उस समय यह सभी की ज़बान पर था। देहातों में आज भी लोग 'असहयोग' के अर्थ में इसका प्रयोग करते हैं। 'बाइकाट' का अर्थ है 'किसी प्रकार का सम्पर्क न रखना।'

'बाइकाट' यथार्थतः एक व्यक्ति का नाम था। आज से लगभग ७५ वर्ष पूर्व आयरलैण्ड में जब भूमि सम्बन्धी आन्दोलन चल रहे थे कैप्टेन बाइकाट मेयो में लार्ड अर्न का एजेन्ट था। किसानों ने लगान घटा दी थी, पर बाइकाट महोदय ने कम लगान लेना अस्वीकार कर दिया। फल यह हुआ कि दिसम्बर १८८० में वहाँ के लोगों ने संगठित होकर इनसे असहयोग करना शुरू कर दिया। कोई भी व्यक्ति उनका काम करने को तैयार ही नहीं होता था। तभी से इनका नाम अंग्रेज़ी भाषा का 'असहयोग करना' या 'कोई सम्पर्क न रखना' अर्थ का बोधक शब्द बन गया।

आश्चर्य है कि असहयोग किया वहाँ के लोगों ने और असहयोग करने का अर्थ लादा गया बेचारे बाइकाट के नाम पर और इस प्रकार यह बिल्कुल उल्टी चीज़ हुई। हाँ, यह अवश्य हुआ कि इस उल्टी चीज़ ने ही सही, बाइकाट महोदय के नाम को अमर कर दिया।

कलेंडर

कलेंडर उस पत्रक या पत्रक-समूह को कहते हैं जिसमें हर महीने के दिनों तथा तारीखों का उल्लेख रहता है। इस शब्द का यथार्थ अर्थ हिसाब या सूद की कापी है। रोमन लोगों में इस कापी का प्रचार था। वहाँ के कर्ज़ देने वाले महाजन सूद की गणना के लिए अपनी कापी या बही में महीने तथा तारीख आदि लिखते थे। यह कापी या बही कलेन्डरियम कहलाती थी। इस कापी के ही अनुकरण पर रोमुलस ने ७३८ ई० पू० वर्ष, महीना, सप्ताह तथा दिन का कलेंडर चलाया। अतः स्वभावतः इसका भी वही नाम पड़ा। रोमुलस के कलेंडर में १० ही महीने थे, बाद में नामा पाम्पीलियस ने दो और महीने जोड़ कर पूरे वर्ष का कलेंडर बनाया।

'कलेंडर' शब्द को और पहले की कहानी भी कम मनोरंजक नहीं है। मूलतः इस शब्द का सम्बन्ध लैटिन की धातु 'कैलारे' से है। 'कैलारे' का अर्थ 'पुकारना' होता है। रोम में महीने के पहले दिन की घोषणा जनता में पुकार-पुकार कर की जाती थी। अतः महीने के पहले दिन को रोमनों ने 'केलेंड्स' कहा। आगे चलकर महाजनों ने जब अपने हिसाब और सूद की बही बनाई तो उसमें सूद पाने की तारीख होने के कारण पहली तारीख या महीने के पहले दिन का महत्त्व अधिक था अतः उस आधार पर उस बही या कापी को उन्होंने 'कैलेंडरियम' कहा जो आगे चलकर आज का कलेंडर हो गया।

कैंडिडेट

'उम्मीदवार' का यह हिन्दी समानार्थी है। हिन्दी में भी इस

शब्द का कम प्रचार नहीं है। लोक भाषाओं तक में लोग इसका धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं।

यह शब्द भी पूर्ववर्ती शब्द 'कलेंडर' की भाँति ही रोमनों का ही है। लैटिन की एक धातु है 'कैन्डेरे' जिसका अर्थ 'चमकना' या 'सफ़ेद दिखाई पड़ना' होता है। रोम साम्राज्य में जो लोग ऊँची नौकरियों के लिए 'उम्मीदवार' होकर आते थे वे प्रायः सफ़ेद चमकीले लबादे (या चोगे) पहने रहते थे। धीरे-धीरे यह परम्परा सी चल पड़ी और सभी उम्मीदवार सफ़ेद चमकीली पोशाक में आने लगे। फलतः 'कैन्डेरे' धातु से बने शब्द का उनके लिए प्रयोग होने लगा, जिसका अंग्रेज़ी रूप कैंडिडेट है। इस प्रकार 'कैंडिडेट' का मूल अर्थ उम्मीदवार न होकर 'चमकीला सफ़ेद' या 'सफ़ेद चमकता हुआ' आदि है। यों आजकल तो कैंडिडेट काले, नीले, भूरे, बादामी और कत्थई आदि सभी रंग के कपड़ों में दिखाई पड़ते हैं। विशेषतः जाड़े के दिन में होने वाले इन्टरव्यू में तो शायद ही कोई कैंडिडेट, कैंडिडेट (मूल अर्थ में) कहलाने का अधिकारी हो।

मीनार

पतली ऊँची इमारत जैसे कुतुब मीनार या किसी इमारत के छोरों पर बने पतले ऊँचे भाग को 'मीनार' कहते हैं। आज तो यह शब्द हिन्दी, बंगला, मराठी आदि भारतीय, फारसी एवं अंग्रेज़ी तथा स्पेनिश आदि यूरोपीय आदि अनेकानेक भाषाओं में इसी अर्थ में प्रचलित हैं, पर मूलतः यह अरबी भाषा का है। अरबी में 'नार' शब्द का अर्थ आग है, जिससे रोशनी का समानार्थी शब्द 'नूर' बनता है। इस 'नार' से ही 'मीनार' शब्द बना है और इसका मूल अर्थ है 'आग की जगह'।

प्रश्न यह है कि 'आग की जगह' से बदल कर इस शब्द का अर्थ 'ऊँची इमारत' कैसे हो गया?

अरब रेगिस्तान है। अतएव वहाँ रास्ते को पहचानना बड़ा कठिन होता है। एक घण्टे पहले जिस स्थान पर रास्ता है एक घण्टे बाद वहाँ तूफ़ान से उड़ कर बालू का छोटा-मोटा टीला दिखाई पड़ सकता है। इसीलिए वहाँ के लोग अतिथियों की आसानी के लिए ऊँची जगहों पर रात में आग जलाते थे, जिसे देखकर अतिथि बस्ती में आ सकें। इस ऊँची जगह पर जलने वाली आग को भी मीनार कहा गया। आगे चलकर 'मीनार' का अर्थ इसी से कुछ विकसित होकर प्रकाश स्तम्भ हो गया। अंग्रेज़ी में आज भी 'मीनार' का प्रयोग कभी-कभी प्रकाश स्तम्भ या लाइट हाउस के लिए होता है। फ़ारस तथा हिन्दुस्तान में आने पर 'मीनार' के अर्थ का स्तम्भ या ऊँचा होने का भाव तो बना रहा पर आग या प्रकाश का भाव बिल्कुल लुप्त हो गया। इस प्रकार 'आग का स्थान' का पर्याय शब्द 'मीनार' हिन्दी तथा फ़ारसी आदि में ऊँची पतली इमारत का अर्थ देने लगा।

रोज़ की बोल-चाल के अधिकतर शब्दों की कहानी इसी प्रकार मनोरंजक है और उन्होंने अपनी उम्र में अनेक उत्थान-पतन देखे हैं।

★

तेलुगु कविता

ताज महल

जि० जापुवा

हुई प्यारी रानी जब नयन से ओझल अहो
न जाने ज्वाला के अचल कितने फूट पिघले
गला फोड़ रोये, मुग़ल नृप के नेत्र-दृग से
बहे आँसू सारे जम कर रहे ताज बन के।
थका-थका जग अपने बाट
ढूँढ़ लेता यह रजत हाट,
था विभवशाली मुग़ल राज
भरत-भूमि का है नाज ताज।
दिल्ली के नृप शाहजहान अपनी छाती जला रक्त की
छींटों से बनवा चुके महल के पाषाण-पाषाण को
कैसे दारुण वर्ष तीस उनकी बीती जरा कैद में
प्यारी की स्मृति ताज हो जब उन्हें गांसी लगी-सी रही।
हुए निशीथ सहस्र अतीत
गा चुके नृप प्रिय-विरह गीत
छप गई वह कृति नृप प्रणीत
स्फटिक कण में हो संग्रहीत।
बाँटते छवि नभ-धरणि चीर
खिला वह तरनिजा के तीर
ले कला का पूर्व संभार
निचोड़ा शिल्पियों ने सार।
पति-हृदय में झोंक अंगार
चली बेगम विश्व के पार
'तेलुगु शिल्पी-कला की थाह
परख लूँ' होगी उसे चाह।
'इस्लामी नृप, बादशाह सब थे दुष्टात्मा' धो डालने
मानों निर्मित दूध का महत्त्व है अध्यात्म-सौंदर्य में
नीलोर्मी यमुना-नदी-पुलिन में आग्रा-पुरी-क्रोड़ में
यात्री शीतल छाँह बैठ बहते आनन्द में आज भी।

गढ़वाली लोकगीत : एक परिचय

गोविन्द चातक

गढ़वाल का हृदय संगीतमय है। वहाँ की धरती गाती है, डाँडी-काँठियाँ (पर्वत-श्रेणियाँ) गाती हैं, ढाकी-बाद्यी (नाचने-गाने वाली जाति) गाते हैं और चरवाहे, घसियारिनें गाती हैं। वहाँ जीवन स्वतः ही कला के मर्म को स्पर्श करता है।

गढ़वाल कई स्वरों में गाता है। वहाँ के जागर, पवाड़े, बाजूबन्द, खुदेड़ गीत लिखित साहित्य की भक्ति, वीर, शृंगार तथा करुणा की परम्पराओं का द्योतन करते हैं। पवाड़े मौखिक प्रबन्ध-काव्य अथवा खण्ड-काव्य की क्षमता रखते हैं। बाजूबन्द संयत और उदात्त शृंगार के मनोहर संवादगीत हैं। खुदेड़ गीत नारी-हृदय की करुणा के मुक्ता-कण हैं और जागर देवी-देवताओं की स्तुति अथवा अर्चना के गीत।

इनमें जागर गीत गढ़वाली लोकगीतों के आदियुग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार के गीतों की परम्परा संस्कृत से होती हुई गढ़वाल के जागर गीतों में स्वतन्त्र रूप से विकसित हुई, जहाँ का गाँव इस बीसवीं शताब्दी में भी उसी पुरानी सीढ़ी पर खड़ा अकबका रहा है जिस पर कभी वैदिक सभ्यता ने उसे लाकर छोड़ दिया था। यही कारण है कि आर्यों के उन वैदिक गीतों के स्वर गढ़वाल के जागर गीतों में खोजे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, उसके पश्चात् भी भारत में भक्ति की विविध धाराएँ समय-समय पर प्रवाहित हुईं, उनका प्रभाव भी इन जागरों पर देखा जा सकता है। बौद्ध, वज्रयानी, सिद्ध और नाथपन्थी साधुओं का उल्लेख जागर गीतों में कई सन्दर्भों में मिलता है। गढ़वाल में अभी भी बौद्ध अवशेष हैं। नाथों ने गढ़वाल में लोक-जीवन को बहुत प्रभावित किया। आज भी इस सम्प्रदाय के योगी गढ़वाल के विभिन्न भागों में मिल जाते हैं। इन्हीं के प्रभाव से यहाँ शैव, स्मार्त तथा बौद्ध धाराओं ने विभिन्न रूप धारण किए। वस्तुतः कोई भी धर्म की धारा गढ़वाल में अपने विशुद्ध रूप में न रह सकी। इसीलिए भक्ति की नारायणी धारा ने आगे चलकर वैष्णव धर्म का रूप धारण किया और उसी प्रकार शैव धर्म बौद्ध धर्म में रल-मिल गया। यही नहीं वैदिक कर्मकाण्ड शाक्त रूप धारण कर जब बौद्ध धर्म की ओर अग्रसर हुआ तो तन्त्र-मन्त्र ही धर्म का प्राण बन गया। ओझा के मन्त्रों, रखवाली, झाड़ा-वाड़ा, भूत हटाने आदि के तन्त्रों में शिव, मछन्दरनाथ, गोरखनाथ, कबीर, रैदास आदि ही प्रमुख रूप से आते हैं और जागर गीत इन्हीं प्रभावों को व्यक्त करते हैं।

जागर गीत रात को जागरण कर देवता को नचाते हुए थाली और डमरू के साथ गाए जाते हैं। हमारे नाट्य-शास्त्रों में यह विश्वास प्रकट किया गया है कि नृत्यों से देवता रीझते हैं। ठीक इसके अनुरूप ही गढ़वाल में देवी-देवताओं को नचाया जाता है। गाँव का ही आदमी होता है वह, जिस पर देवता 'आता' है। स्थानीय बोली में उसे 'पस्वा' कहते हैं। ऐसे अवसर पर जब देवता नचाना होता है तो पस्वा को एक पवित्र स्थान पर बिठा दिया जाता है। पुरोहित थाली और डमरू बजाते हुए उस देवता की स्तुति के गीत गाना प्रारम्भ करता है। वस्तुतः तब थाली और डमरू का मिश्रित संगीत स्वर बड़ा व्यग्र कर देने वाला होता है। रात्रि के सूने प्रहर, थाली और डमरू का तीक्ष्ण किन्तु मधुर नाद, पुरोहित का कथा गाने का ढंग और लोगों का श्रद्धा-भाव कुल मिलाकर सम्मोहन का एक ऐसा वातावरण उपस्थित करते हैं कि अपने दिल को पक्का कर बैठे नास्तिक का हृदय भी एक बार काँपे बिना नहीं रहता।……और कुछ ही क्षणों में लोग देखते हैं कि 'पस्वा' काँपने लगता है और कँपकँपी बढ़ते ही वह खड़ा होकर नाचने लगता है। यह माना जाता है कि 'पस्वा' में उस समय दैविक शक्ति आ जाती है। 'पस्वा' को नचाते हुए ही ये गीत गाए जाते हैं।

न जाने गढ़वाल में इस प्रकार कितने देवता नचाए जाते हैं। उनकी वहाँ कमी भी नहीं। कृष्ण सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। गोपियों के प्रणय, नाग-मन्थन, गोचारण और कन्दुक-क्रीड़ा के कथा-गीत कृष्ण के जागर में आते हैं। कृष्ण के साथ ही पाण्डव भी गढ़वाल में देवता बन बैठे हैं। उनका भी गाँवों में मंडाण लगता है और उस अवसर पर उनकी वीरता, और उनके 'पुत्र' गोविन्द (?) का किसी विसल्या रानी के प्रेम-पाश में दुख भोगने की गीत-कथा गाई जाती है जिसका सूत्र महाभारत में नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त नरसिंह, निरंकार, दाणु (स्थाणु), महासु (महेश्वर), कैलापीर, क्षेत्रपाल आदि देवताओं के साथ अप्सराओं और भूतों की मनौती भी इसी प्रकार नृत्य और गीतों से की जाती है। कहते हैं जीवन की अतृप्ति लिए ही जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो उसकी प्रेतात्मा इधर-उधर भटकती किसी मनुष्य में प्रवेश कर जाती है। तब उससे छुटकारा पाने के लिए जिस व्यक्ति पर वह लगी हो, उसे नचाना पड़ता है। इन नृत्यों के साथ गीतों का आवश्यक रूप में समावेश होता है। आछरियों (अप्सराओं) की मनौती में कृष्ण और राधा के प्रेम-विषयक गीत ही अधिक गाए जाते हैं। भूतों के गीतों में जीवन के मोह का विरोध सुन्दर शब्दों में व्यक्त हुआ है।

इन नृत्यों को देखने और उनके साथ गाए जाने वाले गीतों को सुनने के पश्चात् हम दो निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। पहला यह कि ये जागर गीत भक्ति के व्यक्त स्वरूप हैं, जिनके द्वारा जागरी गाकर और दर्शक भक्त नृत्य की मुद्राएँ देखकर अपने इष्ट से तादात्म्य का अनुभव करता है। दर्शक भक्त को तादात्म्य की अनुभूति तक ले जाने वाली

शिशिर-सुषमा

बर्फ़ और बादल

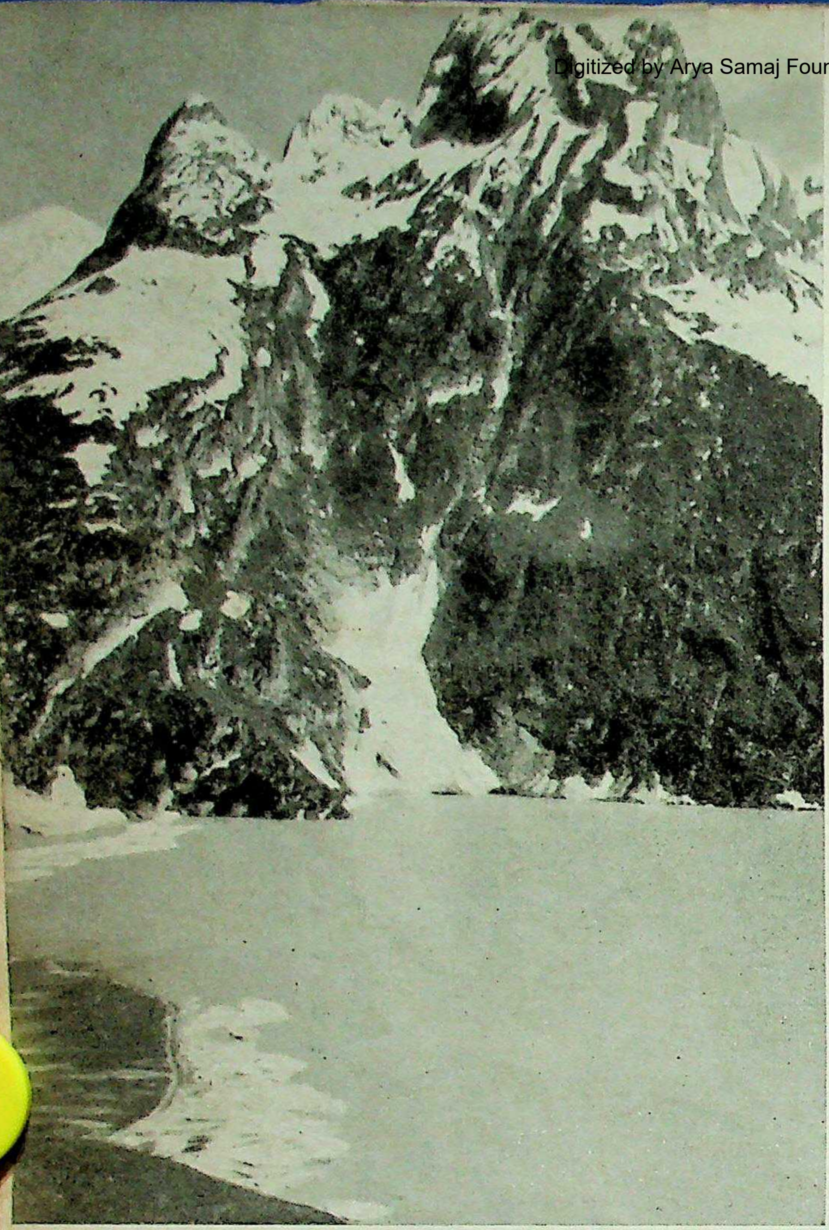

शेषनाग झील

सर्दियों में श्रीनगर

टंगमर्ग का एक दृश्य

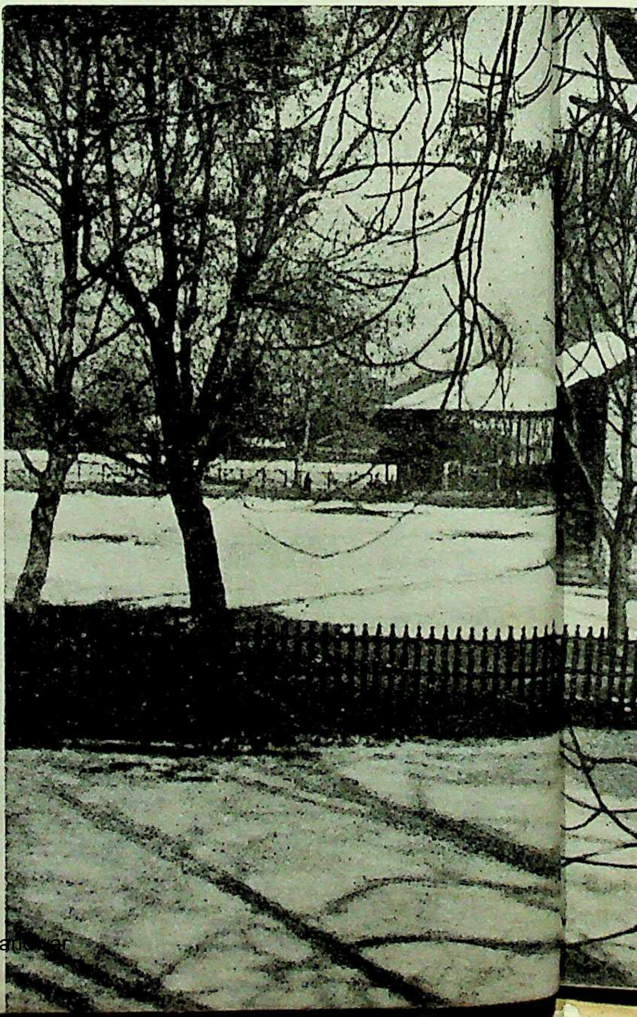

CC-0. In Public Dom kul Kangri Collection, Ha

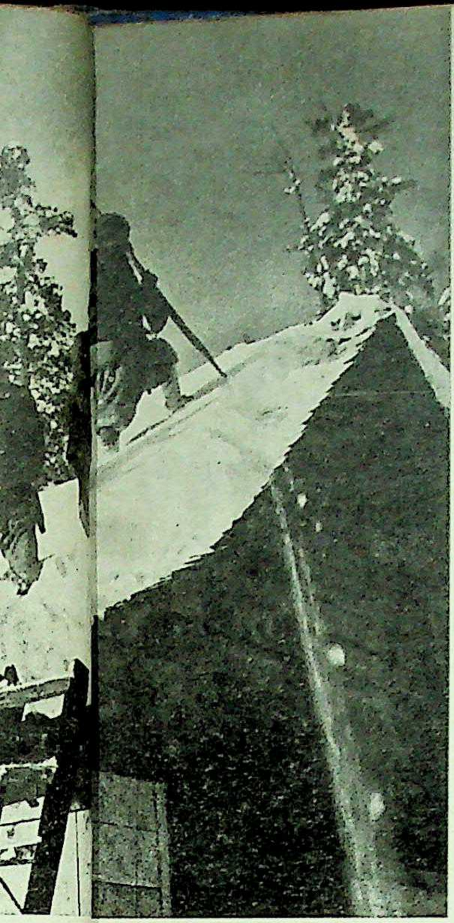

छत से बर्फ़ हटाते हुए

हिमपात के बाद

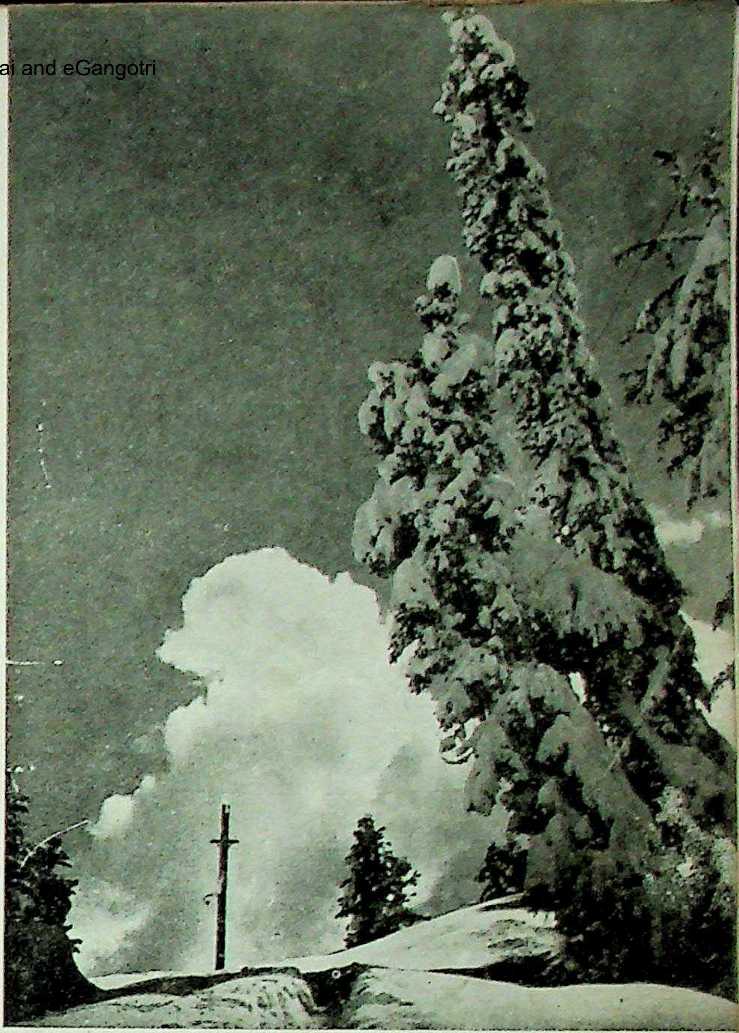

हिमाच्छादित एक बस्ती

टंगमर्ग में हिम-यात्री

उंड कर दार्यी हाती, देऊ देलू धरम ।
कौड़ी लाया छुमा,
डाली स्वैंन लाण परोसणी मेरा जुमा ।
हीरू पीसे जीरू,
उच्चू डांडू निसू करलू तेरा खातीरू ।
लंगलंगी साई,
तेरी मेरी माया दूजा जनम ताईं ।
चाँदी को तखत,
तू मेरी जोगीण प्यारी मैं तेरो भगत ।

—'घास काटने वाली लड़की तू किस गाँव की है ?'
'किसी भी गाँव की होऊँ मैं, तू पूछ कर क्या करता है ?'
'प्रेम का भूखा हूँ, तेरे वन आया हूँ ।'
'उँह, परदेशी भौंरे कभी अपने नहीं होते !'
'राम ने सीता को जपा, मैं तुझे जपूँगा !'
'प्रेम करना सरल होता है, निभाना कठिन !'
'दर्पण के ऊपर पानी का बूँद किसने टिका जाना ?'
'दाहिना हाथ इधर कर वचन देता हूँ ।
तू प्रेम का वृक्ष लगा दे, परोसना मेरे जिम्मे रहा ।
तेरे लिए ऊँचे पर्वत को भी झुका दूँगा ।
तेरा मेरा प्रेम युग-युगान्तर तक रहेगा ।
तू मेरी जोगिन है और मैं तेरा भक्त ।'

रूप की सराहना की सुन्दर उक्तियाँ बाजूबन्दों में भरी पड़ी हैं :

गुड़ खायो माख्यांन,
और खाँद गिचीन तू खाँदी आँख्योंन ।
पकी जाला स्यू,
ओठ ड्यूँ की लाली तरस्योंदी ज्यू ।
तितर की पाँख,
दाँतु चौक ढके लेणी, घुमै लेणी आँख ।
दरजी की कैंची,
रतन्याली आँखी छोरी, मैं दी देणी पैंछी ।
धरती की खैणी,
तू खड़ी होदी छोरी धार मा-सी गैणी ।
दूध माँजे छनी,
मुलमुल हैंसदी दै खतेणी जनी ।
कान की बुजनी,
कै जगा विराजली विना दिवा रोशनी ?

—'और तो मुँह से खाते हैं तू आँखों से खाती है ।
तेरे अधरों की लाली जी तरसाती है ।
इन दाँत को ढक कर रख, आँखें फेर ले ।
अपनी ये रतनारी आँखें मुझे उधार क्यों नहीं दे देती ?
तू धार पर तारिका की तरह शोभित होती है ।
धीरे-धीरे मुस्कराती है, जैसे मुँह से दही गिर रहा हो ।
विना दीप की ज्योति तू कहाँ विराज रही है ?

अंग्रेज़ों के आने के बाद गढ़वाल के आर्थिक जीवन में नए परिवर्तन हुए । गढ़वाल के नज़दीक अंग्रेज़ी छावनियाँ खुलीं । नौकरी पेशा, कुलीगिरी और सेना में भर्ती होने को गढ़वाल के लिए द्वार खुले । सैनिक जीवन की प्रतिक्रियाएँ कई गढ़वाली लोक-गीतों में व्यक्त हुई हैं । इसके अतिरिक्त भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम ने देश को जब नई चेतना से भर दिया तो गान्धी, नेहरू, सुभाष, पटेल, सुमन, नागेन्द्र, भोलू लोक-गीतों के आधार बन कर लोक जीवन में आए । गढ़वाली किसान के सामने गान्धी का यह रूप था :

सातमा गाँधी बड़ो भागी छ,
देस मुलक को अनुरागी छ !
पंद्र अगस्त लायो वो,
अंग्रेजू तें भगैंगो वो !
देस किसानू तैं दिलैगो वो ।
राज पंचैती बणैगो वो !

—'महात्मा गांधी बड़ा भाग्यशाली है ।
देश का अनुरागी है ।
पन्द्रह अगस्त लाया वह,
अंग्रेज़ों को भगा गया वह ।
वह देश किसानों को दे गया,
राज पंचायती बना गया !'

परन्तु पंचायती राज के स्थापित होने के बाद जो जीवन सामने आया, उसकी आशा-निराशा और प्रतिक्रिया भी सजीव रूप से लोक-गीतों में मुखरित हुए बिना न रही । मँहगाई, गरीबी, छुआछूत, नए ज़माने की फ़ैशन-विरोधी भावनाएँ, स्त्री-जागृति तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के गीत आज के गढ़वाल में विशेष रूप से प्रचलित हैं । घटना मूलक और सामयिक गीत अधिक प्रचार पा रहे हैं । आज कोई भी विषय लोकगीतों से अछूता नहीं—पहले-पहल गोचर में जहाज़ उतरा, टिहरी में मोटर आई, सतपुली में बाढ़ आई, बाजरा बिकने आया, अछूतों ने जनेऊ पहने, टिड्डियाँ आईं, कोई आन्दोलन हो गया—बस क्या था, उन को लेकर गीत चल पड़े । समय-चक्र जैसे चलता रहता है, लोक-गीत उसके स्वर सदा मुखरित करते रहते हैं ।

★

हिन्दी कहानी

बात का धनी

चन्द्रकिरण सौनरिक्सा

कोठी ख़ूब बड़ी थी, साथ में आमों का बाग भी था, परन्तु शहर से तीन मील दूर सिविल लाइन के अन्तिम सिरे पर होने से वहाँ सन्ध्या के बाद ही जो गीदड़ों की 'हुआ' 'हुआ' और दूर-पास के खेतों को सन्नाटा व्यापता था उससे, अकेले रहने के नाम से सरला ने एकदम ही इन्कार कर दिया।

"तुम सामान तो लगवाओ रानी," डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस, रमेश सिन्हा ने पत्नी को तसल्ली दी—"इतनी बढ़िया कोठी शहर में दूसरी नहीं है। डर किस बात का? दिन में तो सिपाही रहते ही हैं। दो सिपाही अर्दली के हैं जो रात को रहेंगे। उनमें हीरासिंह जाट तो कमाल का आदमी है। अकेला ही दो-तीन को भारी रहे। भगवानदास जाति का ब्राह्मण है, खाना बहुत अच्छा बनाता है, तुम्हें रसोई में झाँकने की आवश्यकता भी न रहेगी, बस एक बार समझा देना।"

अर्दली के सिपाही जब मेम साहब को सलामी देकर अन्य सहयोगियों के साथ कोठी की सफ़ाई-धुलाई कराने चले गये तो सरला ने भुनभुना कर अपने पति से कहा—"खूब छाँट कर अर्दली लिए हैं। जो रसोई बनायेगा भगवान की दुआ से उसकी एक ही नज़र खुली है, सवेरे उठते ही काने के दर्शन करो। और तुम्हारा हीरासिंह तो अर्दली क्या है; जाट-सौंदर्य-प्रतियोगिता का माडल है, भला इतने रूपवान सजीले जवान को अर्दलीगीरी में क्यों लिया? तुम तो दौरों पर……" रमेश ने हँस कर बात काट दी—"डरो मत डालिंग! वह बहुत सीधा, सरल और बाल-बच्चेदार सिपाही है। आज ही गाँव जाकर अपने परिवार को भी ले आयेगा। उसकी ओर से वैसा कोई ख़तरा नहीं है। हाँ अगर तुम्हीं को वह पसन्द आ जाय तो बात दूसरी है…।" पति के मज़ाक पर चिढ़ सरला ने उनके एक चिकोटी काटी फिर "तुम बड़े वैसे हो" कहती हुई दूसरी ओर चली गई। दिन भर उठा-धराई और सफ़ाई कराते सिपाहियों के बीच सरला के पारखी नेत्रों ने इतना अवश्य परख लिया कि हीरासिंह कामकाजी आदमी है, साथ ही विनम्र भी। अन्य सिपाहियों की भाँति न तो उसने अपना काम किसी अन्य पर डालकर अपनी बड़ी-बड़ी उजली झील-सी नीली आँखें मटका कर गप्पें ही लगाईं और न एकान्त पाते ही भूरी मूँछों पर ताव दे बीड़ी के कश लगाये। दोपहर के खाने की छुट्टी में भी वह सबसे पहले लौट आया और अकेला ही सामान उठा कर सरला के बताए अनुसार लगाता रहा। चार बजे तक कोठी बन-सँवर गई, अन्य सिपाही जब मेम साहब को लम्बी सलामें झुका कर विदा हो गये तो हीरासिंह ने अदब से आँखें झुकाए पूछा—"मेम साहब! आप कहें तो मैं अब गाँव चला जाऊँ? देर होने पर पहुँचते-पहुँचते रात हो जाएगी। सवेरे आठ-नौ बजे तक लौट आऊँगा।"

"कितनी दूर है तुम्हारा गाँव?"

"जी! यही दस-बारह कोस होगा, भगवानदास की साइकिल पर चला जाऊँगा। साहब से कहकर रात को सोने के लिए गारद से चार सिपाही बुला लेना। एक ही रात की तो बात है।"

"अच्छा जाओ।"

सरला की आज्ञा पाते ही हीरासिंह नौकरों वाले क्वार्टरों की ओर चला गया, पाँच मिनट बाद खाकी वर्दी और बूट-जुराबें पहन साफा बाँधे जब बाहर आया तो एक क्षण को सरला की दृष्टि बँध सी गई। वह एक अदना सिपाही है। उसके ऊपर कुछ भी सोचने की इच्छा सरला की नहीं थी परन्तु विचार बरबस आते चले गये—कितना सुन्दर युवक है! फुरसत के समय बनाया है ईश्वर ने, जो कहीं पढ़ा-लिखा होता और फ़ौज में कप्तान या लेफ्टिनेंट हो जाता तो अपने शहर के क्लब की युवतियों के आकर्षण का केन्द्र इसी को होना था। इसकी स्त्री पता नहीं कैसी होगी? जो जाटनी भी ऐसी ही सुन्दरी हुई (और इसमें सरला को तनिक भी सन्देह न था) तो बच्चे भी वैसे ही अंग्रेज़ों जैसे होंगे। लेकिन……बाबा को तो उनसे दूर ही रखना होगा, गँवार बच्चों के साथ रह कर असभ्य हो जाएगा। और दूसरे हा दिन उसे कानवेन्ट में भरती करने का संकल्प करती हुई वह "ड्रैस" करने गुसलखाने में चली गई।

सिन्हा सबेरे ही नाश्ता करके किसी 'तफतीश' में चले गये थे। सरला भगवानदास को दोपहर के भोजन की वस्तुएँ बता रही थी, कि साइकिल पर सवार हीरा के पीछे एक इक्का फाटक से आकर नौकरों वाले क्वार्टरों की ओर चला गया। सरला न चाहते हुए भी उधर वाले बरामदे में जा खड़ी हुई। हीरा की जाटनी को एक नज़र देखने का लोभ संवरण नहीं हो हुआ। यद्यपि नौकरों-अर्दलियों के प्रति इतनी उत्सुकता दिखाना वह अपनी पद-मर्यादा के लिए ठीक नहीं समझती थी। इक्के में से गठरी-मुठरी उतार कर हीरा ने एक बच्चे को उतारा, दस-ग्यारह वर्ष का होगा, कुछ-कुछ साँवला सिर घुटा हुआ, फिर एक दो वर्ष का बच्चा उसे थमाकर जो स्त्री इक्के से कूद कर उतरी उसे देखकर सरला आश्चर्यचकित रह गई। ऊँचे जूड़े और पिण्डलियों तक ऊँचा घाघरा पहने हुए वह औरत जाटनी तो अवश्य थी, परन्तु न तो सुन्दरी थी और न तरुणी ही। वह भारी देह की गेहुँए रंग पर मोटे नाक नक्श वाली एक प्रौढ़ा स्त्री थी। यत्र-तत्र चेचक के दाग भी थे आयु पैंतीस से ऊपर ही होगी। हीरा ने मेम साहब को सलाम बजाया। जाटनी अपने भारी कूल्हों पर ऊँचा लँहगा मटकाती मन्थर गति से सरला के समीप आई, दोनों हाथ जोड़ उसने सरला के पाँव छुए, फिर बड़े लड़के से बोली—"ओरे धन्ना! मेम साहब को नमस्ते कर।"

उनकी नमस्ते पर सरला ने तनिक सिर हिला, हीरा से पूछा—"घरवाली को ले आये हीरा ?"

"हाँ सरकार ! अब दो एक दिन में भगवानदास भी अपने बालकों ने ले आवेगा फिर तो सरकार यहाँ रौल-चौल मच जागी। शहर से कुछ लाना हो तो बताएँ; ले आऊँ।"

हीरा की उस भद्दी-मोटी प्रौढ़ा घरवाली पर पुनः दृष्टि डाल सरला उसे सामान गिनाने लगी।

दोपहर में सिन्हा लौटे, सरला ने एकान्त पाते ही कहा—"अजी तुमने हीरा की घरवाली देखी ?"

"अभी तो नहीं"—सिन्हा मुस्कराये—"क्या बहुत खूबसूरत है ?"

"खाक ! मैं कहती हूँ वह उसकी ब्याहता बहू तो कदापि नहीं हो सकती। बच्चे भी हीरा के नहीं लगते। हीरा की उम्र तुम्हारे अन्दाज में कितनी होगी ?" सिन्हा का मूड मज़ाक करने का था, पत्नी की बाँह मसक कर बोले—"डार्लिंग ! लगता है हीरा को अर्दलीगीरी से हटाना पड़ेगा नहीं तो······।" सरला ने क्रोध से कहा—"बस लगे वाही तबाही बकने। हर बात में मज़ाक अच्छा नहीं लगता। मैं कहती हूँ हीरा पच्चीस-छब्बीस से ज़्यादा हरगिज़ नहीं है, पर उसकी वह मुटल्ली घरवाली तो पैंतीस से ऊपर की है। बड़ा लड़का भी ग्यारह-बारह से कम नहीं है, इतना बड़ा लड़का हीरा का तो हो नहीं सकता। दूसरा बच्चा भी साँवला है नाक भी फैली सी······।"

"नाराज़ क्यों होती हो रानी !"—सिन्हा ने पत्नी को मनाया। "जाटनी उसकी ब्याहता न होकर विधवा भौजाई वगैरह होगी। इन लोगों में ऐसे रिश्ते हो जाते हैं। बच्चे भी इसके न होंगे उसके पहले पति के होंगे। गरीब आदमी का ब्याह भी मुश्किल से होता है। परन्तु हीरा की पत्नी सचमुच ही बदसूरत और अधेड़ है तो उसके भाग्य पर मैं भी अफसोस करता हूँ। अच्छा लाओ इसी बात पर खाना तो लगवाओ। एस० पी० ने बुलाया है, खाकर तुरन्त भागना है।"

सरला तब रसोई घर की ओर चली।

दस-ग्यारह दिन निकल गए। सरला इच्छा होने पर भी हीरा या उसकी घरवाली से संकोच छोड़कर यह नहीं पूछ सकी थी कि उन लोगों का यह गठबंधन कैसे हो गया, किसी की पारिवारिक बातें पूछने का अर्थ यही तो है कि हम उससे थोड़ी बहुत आत्मीयता रखते हैं, किन्तु एक गैजेटेड आफिसर और अदना सिपाही में आत्मीयता कैसी ? जाटनी यदि पन्द्रह-बीस वर्षीया तरुणी होती तो सम्भव था सरला उससे रानी की दासी-सखियों की भाँति दूर की आत्मीयता दिखाकर कुछ सखीपना बरत लेती परन्तु उस अधेड़ जाटनी से हँसी-मज़ाक में भी कुछ पूछना उसे सम्भव न दिखा। हाँ, आँख-कान सतर्क रख कर इतना उसने अवश्य देख लिया कि जाटनी और हीरासिंह की गृहस्थी बड़े सुख-संतोष से चल रही है। हीरा जाटनी को सदैव हवलदारनी कह कर सम्बोधित करता था। छुट्टी के समय उसे ले जाकर क्रमशः शहर की सभी दर्शनीय वस्तुएँ दिखा लाया। इतवार को सिनेमा भी ले गया। यही नहीं, जाटनी ने कदाचित् भैंसें पालने को कहा होगा तो साहब से सौ रुपये उधार माँग कर वह एक मरियल-सी भैंस भी खरीद लाया। पैसों के बदले प्रतिदिन दो सेर दूध देने का वायदा किया। जाटनी रात-दिन उसी भैंस की सार-सम्हाल में लगी रहती थी, परन्तु घास हीरासिंह स्वयं काट कर लाता था। उस अधेड़ जाटनी के भाग्य पर सरला को ईर्ष्या होती थी और हीरा के भाग्य पर दया।

सवेरे के नौ बजे थे। 'बाबा' ममी को गुडमार्निंग कर, हीरा के साथ साइकिल पर बैठ कान्वैन्ट जा रहा था, उसे 'टाटा' करने सरला फाटक तक गई। क्योंकि यदि वह स्वयं ही बालक के साथ 'एटीकेट' न बरतेगी तो बच्चा 'सभ्य समाज' के व्यवहार कैसे सीखेगा। साइकिल आँख से ओझल हुई तो सरला ने देखा फाटक पर आकर एक इक्का रुका। उसके रुकते न रुकते उसमें से एक स्त्री धम से कूदी। ऊँचा जूड़ा पैरों में कसे हुए कड़े थे, पिण्डलियों तक का लँहगा। दो लम्बे डग भर कर वह सरला के समीप आ गई और ऊँचे स्वर में बोली—"ऐ मेम साब, हीरासिंह जाट इसी बंगले में रहे है ?"

सरला ने अब ध्यान पूर्वक स्त्री को ताका, सत्रह-अठारह वर्ष की सुन्दर युवती थी, ऊँची पतली नाक, बड़े-बड़े नेत्र और गोरा दूधिया रंग, शहरी सौन्दर्य-प्रसाधन से मुक्त उसका दमकता यौवन किसी भी सुन्दरी के हृदय में ईर्ष्या जगाने को पर्याप्त था। गर्द का पाउडर उसके उजले रंग को भूरा बना कर और भी मोहनी डाल रहा था। सरला ने उत्तर दिया—"रहता तो है। तुम उसकी क्या लगती हो ?"

"लुगाई।"—कहती हुई युवती एक साँस में भीतर गयी।

सरला चमक उठी। तब तो उसका सन्देह सच था। परन्तु हीरा अपनी इस रूप सुन्दरी स्त्री को छोड़ उस भैंस जैसी जाटनी से कैसे उलझ गया ? वह भीतर आई। और आज प्रथम बार नौकरों के क्वार्टरों तक आई। वहाँ तो पूरा घमासान मचा था। युवती और प्रौढ़ा दोनों जाटनियाँ परस्पर ताल ठोंक कर गुथी हुई थीं। एक दूसरी की पीठ पर घूँसे लात लगाती हुई अपनी हरियाणी भाषा में वे जो आशु वचन बोल रही थीं उनमें युवती का ही स्वर प्रधान था। सरला जितना समझी वह यह था—मेरी सौत—तू ही थी मेरी जन्म की बैरन—बहन होकर दगा करी। अरी तू ने मुझे गोदी खिलाया, तू ही मेरा खसम समेट बैठी।—तूने उस पर जादू कर दिया है। नहीं तो जो हीरा सात बरसों तक क्वांरेपन में मेरे पीछे दीवाना था, जिसने ब्याह बाद फूल की छड़ी से भी मुझे नहीं मारा, आज मुझे त्याग कर तुझे कर लेता ! गाँव की सब धरती तू ले ले, मेरा 'मालक' मुझे फेर दे—नहीं तो राँड मैं तेरा खून कर दूँगी।" प्रौढ़ा भी तुरकी बतुरकी जवाब दे रही थी, परन्तु उसमें वह ज़ोर नहीं था। राँड और सौत तो उसने भी बराबर बनाया, हाँ ! अन्य तर्क मात्र यही थे—मैंने क्या हीरा को बाँध रक्खा है ? जाता हो तो ले जा अपने साथ। पर मैं तुझे साथ में रखने की नहीं—सरला चुप तमाशा देखती रही। भगवानदास और उसकी स्त्री आ गये थे। अपने भरसक बीच-बचाव भी कर रहे थे।

आध घंटे में ही हीरा लौट आया।

सरला को देख, वह यह कहता हुआ साइकिल से उतरा—"अरी मेम साब की तो सरम करो। क्या झगड़ा मचाया है ?"

युवती हीरा को देखते ही प्रौढ़ा को धक्का दे दौड़ कर हीरा से लिपट गई, फफक कर रो उठी। ओह उसका वह रुदन! मानो उसका हृदय ही पिघल कर बहा जा रहा हो। सरला का जी भर आया।

हीरा चुप रहा। रोकर जब तरुणी की सिसकियाँ बँध गईं तो उसे छोड़ कर अलग खड़ा हो गया। रूखेपन से बोला—चुप भी हो जा द्रोपद, किसमत के लेख कभी मिटे हैं? तू यहाँ आई क्यों? गाँव में इतनी धरती है खेती कर और खा। और जो हवलदारनी दया करके तुझे राख ले तो मुझे इन्कार नहीं। इसके पैरों पड़ देख……।"

हीरा की बात पर दोनों उबल पड़ीं।

"मैं इस सौकण के पैरों पड़ूँगी? राँड, कलिहारी, डायन?" युवती गरजी।

"इस साँपण (नागिन) को मैं तो रखती न, तेरी मरजी हो तो राख।" प्रौढ़ा गुर्राई। "हाय न हवलदार मरता न मेरी ये गत होती।"—प्रौढ़ा रोने लगी।

हीरा थोड़ी देर चुप रहा। फिर युवती का हाथ पकड़ बाहर खींच ले चला—"द्रोपद, तू घर नें जा। अब कहीं इधर आई तो सच मानियो मैं सहर छोड़ कर चला जाऊँगा।"—युवती रोती, प्रौढ़ा को कोसती उसके पीछे चली गई।

सरला इस कांड से दंग रह गई। हीरा को वह आज ही निकाल बाहर करेगी कैसा चुप्पा बदमाश है। नियत का खोटा, खीर का कटोरा छोड़, छाछ की हाँडी गले लटकाये है। इस भद्दी हवलदारनी के पीछे ऐसी सुन्दर विवाहिता वधू छोड़ दी। इसकी चाची जैसी तो लगती है पर बदमाश आदमियों को दूसरे की जूठी पत्तल चाटने में ही आनन्द आता है।

वह बेसब्री से सिन्हा के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी। दोपहर को जब वह लौटे तो उन्हें सारी कथा सुना कर बोली—"यही है तुम्हारा सीधा, सरल, बाल-बच्चेदार हीरा अर्दली। इसे मैं एक क्षण भी नहीं रखने की आप तुरन्त क्वार्टर खाली करवा दें।"

सिन्हा किसी जटिल केस के बनाने में व्यस्त थे। बात टालने को कहा—"इन लोगों के घरेलू झगड़ों में तुम क्यों पड़ती हो? जाने असली मामला क्या है? जब तक इसकी ब्याहता बहू अदालत में केस नहीं लाती तब तक हमें क्या। कोई अकारण अपनी स्त्री छोड़ता है? तुम तो कहती हो वह युवती अत्यन्त सुन्दरी है! मैं भी पुलिस का आदमी हूँ, रात-दिन गुण्डों-बदमाशों से ही वास्ता पड़ता है। हीरासिंह बदमाश नहीं है इतना मैं कह सकता हूँ।"

"बदमाश नहीं तो क्या है?"—सरला बिगड़ी—"साथ ही निर्दयी भी है। उस बेचारी रोती-कलपती को खींच कर इक्के में बैठा आया, फिर आकर अपनी मोटी पटरानी को मनाने लगा। पानी लाकर मुँह धोया। शरबत बना कर पिलाया। नहीं जी, तुम उसे बुलाकर पूछो, या तो अपनी सफाई दे नहीं तो क्वार्टर छोड़ कर चला जाय।"

सिन्हा समझ गये सरला अड़ गई है।

भोजन की मेज़ पर बैठे तो आवाज़ लगाई—"हीरासिंह!"

"जी हुजूर।" हीरा हाज़िर था।

"बैठो हीरासिंह। तुमसे दो एक बातें करनी हैं।"—सिन्हा ने पास पड़े स्टूल को इंगित किया। हीरा ने साहब के सामने बैठने की बेअदबी नहीं की, दीवार के सहारे खड़े हो उत्तर दिया—"पूछिए सरकार!"

सिन्हा ने आत्मीयता प्रदर्शित करते हुए मुस्करा कर कहा—"अरे भई बैठ जाओ! देखो तुम्हारी मेम साहब को तुमसे बड़ी शिकायत है, काम की तरफ़ से नहीं, इस बात से कि तुमने अपनी ब्याहता स्त्री को छोड़ कर एक अन्य स्त्री को घरवाली बना कर रक्खा है। मैं तो तुम्हें बहुत अच्छा आदमी समझता हूँ, यह मामला क्या है?"

"जी कुछ नहीं, हवलदारनी मेरी घरवाली ही है, मेरी अपनी भाभी; मैंने उसे चादर डाल ली है। द्रोपद मेरी ब्याहता थी, पर उसे मैंने छोड़ दिया है।"

"सो क्यों?"—सिन्हा ने उत्सुकता दिखाई—"क्या वह बदचलन थी?"

"नहीं हुजूर!"—हीरा का स्वर भारी हो गया।

"तो क्या बाँझ है, उसे कोई रोग है…"

"सरकार ऐसी कोई बात नहीं है। बस कुछ बानक ही ऐसे बन गये जो उसे छोड़ना पड़ा। नहीं तो हम दोनों तो एक प्रान दो देह थे। जैसे एक डाल के दो फूल, पर…" हीरा रुक कर अपने अँगूठे का नाखून दाँतों से कुतरने लगा।

"चुप क्यों हो गये हीरासिंह! यदि कोई हानि न हो तो खोल कर सब बातें बताओ। शायद मैं तुम्हारी सहायता कर सकूँ।"

"नहीं हुजूर, उस मामले में कुछ नहीं हो सकता।"

"तुम बताओ तो सही। तुम्हारी मेम साहब तो आज के किस्से से बड़ी परेशान हैं।" उत्तर की प्रतीक्षा में उन्होंने रोटी तोड़ी और तरकारी में डुबो कर खाना प्रारम्भ किया। सरला ने भी हाथ चलाये।

हीरा कुछ क्षण चुप रहा फिर खाँस कर गला साफ़ किया—मानो कण्ठ में भरे आवेग को भीतर उतार रहा हो। धीमे स्वर में बोला—"सरकार की इतनी इच्छा है तो सुनिये—हुजूर, हम दो भाई हैं, एक तरह से बड़े भाई ने ही मुझे पाला है। आयु में भी कोई दस बरस बड़ा होगा। सरकार वह फ़ौज में सिपाही है और पलटन के सौ में निन्नानवे सिपाहियों की भाँति शराब पीता है और स्त्री को सरकारी वर्दी से अधिक नहीं समझता। इसी पीने-पिलाने से उसने कई बार नुकसान उठाया, ग्रेड टूटा; आज तक भी हवलदार न हो सका। मेरी भाभी इसी दुःख में रो-रो कर चल बसी पर उसने पीना न छोड़ा। उसका अफ़सर हवलदार भी म्हारे ही गाँम का जाट था; ये मेरी घरवाली उसी की ब्याहता स्त्री है। मेरी स्त्री जो सवेरे आई थी हवलदारनी की सौतेली बहिन है। कोई छः बरस हुए ये अपनी इसी बहन के घर आई थी वहीं मेरी इसकी देखा-देखी हो गई। तब ये छोकरी ही थी। मैंने हवलदारनी से मिन्नत की 'भाभी, इससे मेरा ब्याह करा दे।' तो उसने बताया—'देवर इसका मोल बड़ा भारी है। मेरे बाप के लड़का तो है नहीं जो बुढ़ापे में कमा खिलायेगा। डेढ़ हज़ार से कम पर तो काका इसे देने का नहीं।' हुजूर, मैं मामूली किसान था। डेढ़ हज़ार बहुत बड़ी रक़म थी। तिस पर बड़े भाई के कर्ज़े भी लगे रहते थे। परन्तु द्रोपद की सूरत मेरे मन में ऐसी बसी कि मैं हिम्मत न हारा। छोकरी का मन भी मुझ

से लग गया था। बस सरकार, मैं काम में जुट पड़ा। अपने खेत जोते, दूसरों के जोते, कटाई करी, समय मिला तो शहर जाकर मजूरी करी, न पेट भर मैं खाता न ढंग से सोता, चार बरसों में हाड़ पेल कर कोई बारह सौ रुपये बचाये। इस बीच बस यही सहारा था कि द्रोपद हवलदारनी के आती और सूरत दिखा जाती, कभी चोरी-छिपे उसके गाँव जाता तो खेत-खलिहान में भेंट हो जाती। हवलदारनी ने भी म्हारी बड़ी सहायता करी। अपने लोभी बापू को मनाये रक्खा क्योंकि द्रोपद के रूप के बहुत से रसिया उसे डेढ़ हज़ार देने को तैयार थे। हवलदारनी तो मेम सा'ब के सामने ही है, न तो सुन्दर है न मेहनती ही। पर हवलदार ने इसे रानी बना कर रक्खा था। सोने की तो हमेल पहनती थी, पैर से जूती कभी उतरी नहीं। दो-दो भैंस बँधी थीं, द्वार पर। जाड़ों में हवलदार छुट्टी आया, जाने कैसे उसे निमोनिया हो गया, हवलदारनी के फूटे भागों से पाँचवें दिन वह मर गया। घर का अकेला था इससे उसकी तेरहवीं पर हवलदारनी पर किसी ने चद्दर न डाली; वह रांड ही रही।

"अरे!" सरला चौंकी। भोजन करना रोक, बोली—"क्या जिसके घर में कोई हो तो उसे चादर ओढ़नी ही पड़ती है?"

"मेम सा'ब अपनी-अपनी रीत है। सहरों में तो, बहुत बातें बदल गईं पर गामों में पुरानी लीक जल्दी नहीं बदलती। हमारे तो बारह बरस का देवर होगा तो उसी से चालीस बरस की भाभी पर चादर डलवा देंगे। और पचास बरस का जेठ होगा तो उससे गिरवा देंगे। पराये कुल में बहू का जाना भारी अपमान समझते हैं। हवलदारनी के कोई था नहीं, वह स्वतन्त्र थी, चाहे बापू के रहे चाहे एक बरस रँडापे का शोक मनाकर किसी से नाता कर ले। गाँव में हवलदार की थोड़ी धरती थी, उसके मोह में वह वहीं बनी रही। वह मेरे सपनों की रानी द्रोपद की बहन थी। भाई के अफ़सर की स्त्री थी, गाँव-नाते की भाभी थी। मैंने उसे धीरज बँधाया, कहा—'भाभी, फिकर न कर, जब तक तेरा लड़का सयाना नहीं होता मैं तेरा काज देखूँगा। द्रोपद ब्याह के आ जायगी तो वह भी तेरी टहल करेगी।' उसके आने में अब कोई कसर थोड़ा ही थी, पाँच पंचों के बीच नक़द बारह सौ उसके काका को दे चुका था, सगाई हो गई थी, ब्याह गर्मियों में था। इसी बीच मेरा भाई भी छुट्टियों में घर आ गया। हवलदार के घर भी गया और फिर नित्य ही जाने लगा। उसे मैंने मना भी किया कि रौंड लुगाई के घर रात-बिरात आना-जाना ठीक नहीं। गाँव में उसकी चर्चा होने लगेगी। जो तेरे मन में कुछ और विचार है तो वैसी कर। बिरादरी के सामने नाता करके घर ले जा। हुज़ूर भाई ने मेरा कहा हँस कर उड़ा दिया। बोला—'गोबर के चोथ जैसा तो हवलदारनी का मुँह है। मोटी भैंस जैसी। मैं उसे गले क्यों बाँधने लगा? तनिक उसे धीर बँधाने चला जाता हूँ।' छुट्टी बिता कर वह नौकरी पर लौट गया। सरकार! मैं तो उन दिनों जागते में भी द्रोपद के सुपने देखता था। उन दिनों खेतों में सरसों फूली थी, कद्दू में फूल आने लगे थे। जौ, चने, गेहूँ के खेत बसंती हवा में झूम-झूम उठते थे। तीन महीने कुल ब्याह को रह गये थे। इसी उमंग में मैं तो सब सुध भुला रात-दिन खेतों की रखवाली में जुटा रहता। इस बार अन्न लक्ष्मी के साथ मेरे हृदय और घर की लक्ष्मी भी आने वाली थी।

"धन्ना एक दिन बुलाने आया। उसके घर गया तो देखा हवलदारनी तो बेहाल हो रही थी। मुझे देख कर मेरे पैरों में गिर पड़ी। रोकर बोली—'देवर अब तू ही बचावेगा तो मैं बचूँगी। नहीं तो हवलदार का नाम तो डूब ही जाएगा। मेरे प्राणों के भी लाले हैं।' सरकार गाँवों में थानेदार हवलदार की इज़्ज़त शहर के कलक्टर से कम नहीं होती। इतने बड़े आदमी की स्त्री मेरे पैरों में बिलख रही थी। मैंने उसे क़सम देकर उठाया, दिलासा देकर बात पूछी तो उसने बताया, पिछले दिनों मेरे भाई से उसकी दोस्ती हो गई थी, जिसके फलस्वरूप वह गर्भवती है। तब भाई मुझसे कह गया था कि गर्मियों में आकर वह उससे नाता कर लेगा, परन्तु यहाँ से जाकर उसने कुछ ख़बर नहीं ली। छः-सात ख़त हवलदारनी उसे लिखवा चुकी है, उत्तर एक का भी नहीं दिया। 'मैंने तो उसका विश्वास करके अपनी जमा पूँजी का आठ सौ रुपया भी उसे दे दिया था। हाय मैं इतने बड़े अफ़सर की घरवाली, तेरे भाई ने मुझे पथ की भिकारन कर दिया। मैं किस कुए में डूब मरूँ। देवर तू या तो अपने भाई को बुला कर चादर डलवा दे नहीं तो मुझे संखिया ला दे खाकर सो रहूँ। काला मुँह कराके गधे पर चढ़ने से तो गले में फाँसी लगा कर मर जाना अच्छा है'—सरकार, हवलदारनी की उस समय की दशा का क्या वर्णन करूँ? सारे गाँव की चौधरान हवलदारनी की इज़्ज़त एक चादर पर टँगी थी। हुज़ूर हम जाटों में स्त्री बारी-बारी से चाहे छः घर कर ले या एक घर के चार भाइयों की शामिल घरवाली बन जाय, कोई उँगली नहीं दिखा सकता, पर विधवा या क्वाँरी के गर्भ रह जाय तो उसकी ख़ैर नहीं। बिरादरी और पंच चोटी काट, काला मुँह करके गाँव से बाहर कर दें। मैं बड़े छः-पाँच में पड़ा। भाई पर क्रोध भी आया। वह मर्द क्या जो ज़बान देकर पलट जाय। एक बार औरत का हाथ थाम कर, चाहे वह पंचों के बीच पकड़ा हो या अकेले खेत खलिहान में, जो जीते-जी छोड़ दे उससे बढ़कर कायर कोई नहीं। पर मैं क्या करता। हवलदारनी को धीरज बँधा भाई को किसी भी तरह बुला कर चादर डलवाने का विश्वास दिला घर लौटा। आकर भाई को बैरंग लिफ़ाफ़ा डाला। फिर दस दिन उत्तर की राह देख रजिस्ट्री से ख़त भेजा। उसका उत्तर उसने दिया परन्तु वह न देने के समान था। लिखा था, "कौन कहता है मैंने उससे घर बैठाने का वायदा किया था, वह झूठी है। जाने किस की बला मेरे सिर लगा रही है।" भाई की इस चाल से मेरे गले में तो फाँसी-सी पड़ गई। अपने भाई की यह कायरता हवलदारनी से कैसे कहूँ। एक स्त्री के मान का ही नहीं प्राणों का सवाल था। स्त्री भी कौन! जिसे सदा अपनी बड़ी साली मानकर आदर किया। जो आज भाई का गर्भ धारण कर, हमारे बंस की बेल बढ़ाने वाली, हमारे कुल की लाज, भाभी बन गई थी। दिन बीत रहे थे मैं मुँह छुपाये खेतों में बना रहता। कोई उपाय न सूझता था। महीना बीत गया। एक रात को धन्ना रोता हुआ आया—बोला, 'माँ बीमार है, बड़ा ज़ोर से बुख़ार है।' मैं उसके साथ गया देखा कि बात सच थी, हवलदारनी इस बीच में

सूख कर आधी हो गई थी। मुझे देखकर बोली—'देवर तू धन्नू के सिर पर हाथ रखियो। मैं तो अब दस-पाँच दिन की हूँ। चाहे फाँसी लगा कर मरना पड़े पर बिना बाप के बालक को माँ बनकर कुल को दाग नहीं लगाऊँगी।'—सरकार! हीरा ने अनजाने ही मेज़ पर मुक्का जमा कर कहा—ये सब मेरे भाई के कारण था। मेरा मन दुःख से भर उठा। उसकी पीठ पर हाथ रख कर मैंने कह दिया—'तू घबरावे मत भाभी! वह कायर निकला पर मैं नामर्द नहीं हूँ। तुझे ऐसे मरने न दूँगा। अगर वह चादर नहीं डालेगा तो मैं डालूँगा।'

'तू!' हवलदारनी अविश्वास से हँसी—'होस से बात कर देवर! काका फिर द्रोपद को कभी ब्याहने वाला नहीं। रुपया भी हज़म कर जायगा। सरकार, हवलदारनी पर चादर डालना मेरे लिए जीवन की सब कमाई दाँव पर लगा कर हार जाने के समान था। परन्तु यहाँ कुल की आन और एक स्त्री का मान जा रहा था। मैंने उत्तर दिया—'कर जाने दे रुपये हज़म। भाई ने भी तो तेरा माल हज़म किया है। फिर जब तुझ पर ही चादर डालनी पड़ गई तो द्रोपद को लाकर क्या होगा?'

मैंने घर आकर भाई को बैरंग पत्र डाला। लिख दिया—'तुरन्त आकर हवलदारनी से नाता कर ले जिससे अगले महीने में जनम लेने वाले बालक को मैं ढोल बजा कर भतीजा पुकारूँ। नहीं तो तेरे किये का दण्ड मैं तो भरूँगा ही। मैं खुद हवलदारनी पर चादर डालूँगा।'

पत्र ने साहब तार का काम किया। भाई चौथे दिन आ गया। रात को मुझ से उसने कहा—'तुझे मैंने लड़के बराबर समझा है, उमर से बारह वर्ष बड़ी अधेड़ औरत तेरे गले क्यों बाँधूँ? ला मैं ही नाता करे लेता हूँ। जी में तो नहीं थी पर तेरी ज़िद से लाचार हूँ। परन्तु पहले तेरा ब्याह द्रोपद से हो जाय।'

मैं उसकी चालाकी समझ गया। मैंने कहा—'न पहले हवलदारनी घर आवेगी पीछे द्रोपद। जो तूने धोखा देने को चादर डाली और पीछे और किसी से नाता किया तो सच जानियो इधर तैंने भाभी छोड़ी और मैंने द्रोपद। मैं भाभी के बालकों को वीरान न होने दूँगा।'

ख़ैर साहब मेरा ब्याह हो गया। हवलदारनी भाभी बन कर घर आ गई। भाई तो दस दिन रहके चला गया। भाभी के पीछे लड़का हुआ। ये छोटा लड़का इन्दर वही बालक है।

सरला मुँह बाये हीरा की कहानी सुन रही थी। प्लेट में मिले दाल-भात ठण्डे होकर सूख चले थे इसका ध्यान ही भूल गया था। एकदम से बोली—"अच्छा ये इन्दर भी तेरा नहीं है? तभी तो मैं सोचूँ थी कि हीरा से तो तनिक भी सूरत नहीं मिलती।"

हीरा कुछ नहीं बोला, सिर झुका कर खड़ा रहा।

सिन्हा ने पूछा—'हाँ, हीरासिंह फिर क्या हुआ?"

"होना क्या था सरकार"—हीरा ने एक लम्बी साँस लेकर उत्तर दिया—"इसी प्रकार छः महीने निकल गये। वो दिन तो ऐसे बीते जैसे हवा पर तैरते बादल तनिक देर में एक देस से दूसरे देस पहुँच जायें। मेरी द्रोपद मेरे घर-आँगन में झमकती फिरती थी। नन्हे इन्द्र को गोदी लिये वह खेत-क्यार में मेरे साथ डोलती रहती, घर का काम भी करती, हवलदारनी को तिनका न तोड़ने देती, फिर भी भाभी हर समय चिढ़ी रहती, बात-बात पर उसे ताने देती कि तेरा मोल तो बड़ा भारी है। बारह सौ में आई है मैं तो फालतू ही हूँ। मुझ से भी शिकायत करती। मैंने द्रोपद से कहा—'क्या तू ढंग से काम नहीं करती भाभी तेरे से ख़ुश नहीं है। देख भइया परदेस में है, वैसे भी भाभी हवलदार की, इतने बड़े अफ़सर की घर वाली थी। तू मेरी चिन्त छोड़ कर उसकी सेवा कर मैं तो तेरी सूरत देख कर ही भूख-प्यास भूल जाता हूँ।'

उसने उत्तर दिया—'मेरी सेवा या तेरे आदर से उसका जी क्य थमे। जिस कारन उसने जेठ की चादर ओढ़ी। गाम और बिरादरी के ताने सुने वही सुख उसे मिला कहाँ। जेठ ने तो घर का रास्ता ही छो दिया आठ महीनों में घर आना तो दूर एक चिट्ठी तक नहीं डाली। सरकार! द्रोपद का रूप मेरी आँखों में बसा था, उसका प्रेम मेरे हृदय में छाया था, मुझे इधर ये विचार ही नहीं आया कि भाई ने इस बा जाकर कोई पत्र ही नहीं डाला। अब मैंने भाई को ख़त पर ख़त लिखे परन्तु वह सब को पी गया। साल बाद जब छुट्टी आया तो भी घर आकर दूसरे गाँव अपनी पहली सुसराल में उतरा। फिर हमने सुन उसने वहीं एक जाटनी से नाता कर लिया। मैं वहाँ गया, भाई से झगड़ बिरादरी की पंचायत करी पर सरकार! पैसा तो पंचों को भी झुक देता है। पैसे के ज़ोर पर सरकारी कचहरियों की कलमें झुक जाती हैं वह तो गाँव के गँवार ठहरे, सब सुसरों ने कह दिया—जब तेरा भा हवलदारनी को चलनदार नहीं समझता तो तेरी गवाही क्या करेगी वह तो कहता है ये बालक भी उसका नहीं। मैं हार झक मार कर चल आया। घर आकर भाभी को समझाया तसल्ली भी दी—कि तेरे दो दो लाल हैं। तू फिकर क्यों करे। घर की मालकिन तू ही रहेगी हम दोनों तेरे गुलाम रहेंगे। बैठी राज कर। तू टुकड़ा देगी तो खालें नहीं भूखे सो रहेंगे। पर हजूर वह जाटनी थी, हवलदारनी थी। औ सबसे बड़ी बात कि औरत थी—मरद से धोखा खाई औरत। दूध पी जिसका मुँह जल गया था उसने हमारी छाछ ठोकर मारी। बोली—'मालिक की घर वाली घर की मालकन होवी है। तुम्हारी दया की रो मुझे न चाहिए। मैं हवलदार की मालकन थी आज भी वही हूँ अपने बालक को लेकर अलग झोंपड़ी डालूँगी, मजूरी करके खाऊँगी रहूँगी तो असली मालकन बन कर, नह. तो मैं तो यह चली।' उसकी बात दो टूक थी। प्यार के बल अधिकार पाने में वह मुँह के ब गिरी थो। हवलदारनी से सिपाहिन बनने को तैयार हुई थी। पर अ धोखा खाने को तैयार न थी, चाहे वह धोखा न होकर विश्वास भरा पक वायदा ही था। उसने इन्दर को गोद में उठाया, धन्ना का हाथ पकड़ और बोली—'देवर, तेरा भाई चादर डाल कर बेईमान हो गया तो ते बात का भरोसा क्या? जिस घर में साल भर बड़े भाई की घरवाल बन कर राज किया वहीं अब हाथ उठाई रोटी खाऊँ? जब घरवाले नाता छोड़ा तो घरवाली कहाँ रही? इस घर में तो घरवाली बन क रहूँगी? यूँ टुकड़ा खाना होगा तो बाप के द्वारे जा पड़ूँगी।'

(शेष पृष्ठ ६८ पर)

डाकती संझा

नरेश मेहता

डाकती संझा, बनपाखी ! सुनो !!

नारिकेलों पर थमे हैं
भाद्रपद के मेघ कजरारे,
नील आकाशे खिंचे हैं
जलधुले नव क्षितिज उनियारे,
दीर्घपर्णी गुच्छैले सागौन कुल के बीच
उत्सवप्रिया इन द्रोणियों में झिरन रेखा खींच;
ऽ विनम्री बादल प्रणत लौं से—
गुरुजनों-सी शाल की ये पंक्तियाँ
मित्र-बाँहों सी उठीं वनवाटियाँ;
सीख देती हैं हमें
यह आयु का अभिषेक है
स्वीकारती संझा, बनपाखी ! सुनो !!
डाकती संझा, बनपाखी ! सुनो !!

चरण में दाबे क्षितिज ये
पंक्तिबद्ध चिनार,
मेघकपिला दुह रहे ये
देवचरितों के ऽ देवदार उदार;
गिलहरी-सी चंचला वनबाट दूर्वों बीच,
हंस देशों ओर ले जाती हमें यह खींच;
हेमलोकी यही हंस-द्वार—
शिखर वस्त्रित वायु की वनबोलियाँ
साँझ संगीतामयी घनघंटियाँ;
सुनो, यात्रिक ! सुनो—
शेष गायन गा रहे सुधिहंस
सह-संगीतिका संझा, बनपाखी ! सुनो !!
डाकती संझा, बनपाखी ! सुनो !!

★

तुम और मैं

रामानन्द 'दोषी'

तुम व्यतीत की सुधि बौराईं, आगत की मृदु कल्पना,
मैं क्षण वर्तमान का, तुमको बाँध न पाया बाँह में।

यूँ तो मैंने जिसे छू दिया, वह तन कंचन हो गया,
फिर भी मैं पाषाण, मुझे वर मेरा बंधन हो गया;
कैसे पूरी हो पाएगी, जग की माँग अनन्त है—
मुझको केवल चलना जब तक मैं हूँ या ये पन्थ है;
शायद पाप न होगा यदि मैं चित्र साथ ये ले चलूँ—
मुझे हेरती विकल खड़ी तुम कहीं घनी-सी छाँह में।
मेरी साँस-साँस पर पहरा दायित्वों की भीड़ का,
मुक्त गगन बनने को आतुर बन्दी मेरे नीड़ का;
नहीं दूसरा कोई, मैं खुद अपनी सीमा घेरता—
कस जाते हैं तार और तब, जब मैं वँशी टेरता;
बहुत बार साधों की मंज़िल आई मेरे द्वार तक—
किन्तु रहा मैं दूर कहीं दहता हिम-शीतल दाह में।
राका की सित सेज, रजनिगंधा के मृदु पर्यंक पर,
शबनम दुलहन पौढ़ी, जैसे शून्य रूप के अंक पर;
चटुल चरण से कौन आ गया तन्द्रा यह झकझोरने—
अनगिन दीप बुझाए आने से पहले इस भोर ने;
मेरे विश्वासों के कितने तट प्लावन में डूबते—
फिर भी मैंने नाव छोड़ दी अपनी इसी प्रवाह में।
तुम व्यतीत की सुधि बौराईं, आगत की मृदु कल्पना,
मैं क्षण वर्तमान का, तुमको बाँध न पाया बाँह में।

★

स्वतन्त्रता के बाद प्रकाशित मलयालम पुस्तकें

रवि वर्मा

स्वतन्त्र देश में किस तीव्र गति से संस्कृति की उन्नति हो सकती है इस बात का, १५ अगस्त १९४७ के बाद के मलयालम साहित्य का इतिहास अच्छा उदाहरण है। स्वतन्त्रता के बाद केरल के साहित्य की नाना शाखाओं का इतना विकास हुआ है कि उसे 'वामनावतार' कहने में अत्युक्ति न होगी।

बात यह है कि साक्षरों की संख्या केरल में अधिक होने से वहाँ पाठकों की तादाद अन्य प्रान्तों से अधिक, लेकिन पुस्तकों के खरीदारों की संख्या कम थी। कारण था गरीबी और लाचारी। ज्यादातर लोगों के लिए ज्ञान-पिपासा बुझाने का एकमात्र आश्रय पुस्तकालय था लेकिन स्वतन्त्रता के बाद जैसे-जैसे जीवन का स्तर उन्नत होता गया, लोगों की खरीदने की शक्ति बढ़ती गई, पुस्तक-प्रकाशकों को भी प्रोत्साहन मिला जिसका फल यह हुआ कि लेखकों को और अधिक लिखने की प्रेरणा मिली। मलयालम साहित्य की हर एक शाखा से एक-एक पुस्तक का परिचय नीचे दिया जाता है।

भाषा-विज्ञान सम्बन्धी—'भाषा विज्ञानीयम' जिसके लेखक हैं—स्व० डा० के गोदवर्मा यह पुस्तक मलयालम साहित्य की स्वातन्त्र्योत्तर कालीन रचनाओं में अपना अलग स्थान रखती है। तिरुवितांकूर विश्वविद्यालय के आदेशानुसार यह पुस्तक लिखी गई है और सन् १९५३ में प्रकाशित हुई। व्याकरण और साहित्य के इतिहास की दृष्टि से मलयालम सम्पन्न थी, लेकिन भाषा के इतिहास का कोई विस्तृत विवेचन अब तक नहीं हुआ था। केरल भाषा विज्ञानीयम इसी कमी को पूरा करता है।

इस ग्रन्थ में भाषा की उत्पत्ति, विभाग, परिवार और द्राविड़ भाषाओं के सम्बन्ध में सामान्य रूप से और मलयालम के सम्बन्ध में विशेष रूप से अध्ययन किया गया। पहले, दूसरे और तीसरे अध्यायों में भाषा-शास्त्र सम्बन्धी सामान्य तत्वों की चर्चा है। चौथे व पाँचवे अध्यायों में द्राविड़ भाषा परिवार के अध्ययन के लिए लेखक ने काल्डवेल और ग्रियर्सन के ग्रन्थों से सहायता ली है। श्री वर्मा ने लिखा है कि सूक्ष्म निरीक्षण करने पर पता चलता है कि इस सिद्धान्त में कोई तथ्य नहीं है कि मूल द्राविड़ भाषा की प्रकृति तमिल में ही अधिक सुरक्षित है, इसलिए तमिल ही अधिक प्राचीन है। नवीनतम खोजों का हवाला देकर लेखक ने अपने मत की पुष्टि की है। पुस्तक के बाकी अंशों पर मलयालम भाषा की विशेष चर्चा है। लेखक ने काल्डवेल, गुण्डर्ट, राजराज वर्मा आदि विद्वानों और भाषा विज्ञान के नवीन आविष्कारों के आधार पर सिद्ध किया है कि प्रागैतिहासिक काल में भी केरल की भाषा स्वतन्त्र थी, तमिल या तमिल की कोई शाखा-उपशाखा न थी।

'आधुनिक मलयालम साहित्यम'—मलयालम साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित पुस्तक है, जिसके लेखक हैं—श्री पी० के० परमेश्वरन नायर। साहित्य के इतिहास के बारे में कई पुस्तकें केरल में प्राप्त हैं, जिनमें स्व० महाकवि उल्लूर का 'साहित्य चरित्रम' और श्री आर० नारायण पणिक्कर का 'भाषा साहित्य चरित्रम' प्रसिद्ध हैं। लेकिन उनमें से यह इतिहास सर्वथा भिन्न रीति से रचा गया है। इसमें सोलहवीं सदी से लेकर बीसवीं सदी के प्रथम दशक तक के केरल साहित्य का अध्ययन किया गया है। लेखक ने काल-देश की सीमाओं के अतीत कला-मूल्यों से इस चार सौ साल के साहित्य को आँका है। वे तत्कालीन समाज एवं संस्कृति की पृष्ठ-भूमि पर आधुनिक साहित्यिक मान्यताओं के तराजू पर साहित्य को तोलते हैं। केरल के आदि कवि 'एलुत्तच्छन' से ग्रन्थ का आरम्भ होता है। 'एलुत्तच्छन' केरल के तुलसी हैं। जब आपस की फूट से केरल का वातावरण विषैला बन गया था 'एलुत्तच्छन' ने लोगों को भक्ति के सूत्र में बाँधने का परिश्रम किया। लेखक ने सप्रमाण स्थापित किया है कि एलुत्तच्छन की रचनाएँ भारतीय आदर्शों व तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक यथातथ्यों की सम्मेलन स्थली हैं। केरल के प्रसिद्ध हास्य कवि कुंचन को जिसने साहित्य को समाज-सुधार के शस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया था—लेखक ने जनता के कवि के रूप में चित्रित किया है। केरल की 'कथाकलि' के प्रचार से साहित्य की इतनी उन्नति हुई कि उसे कथाकलि साहित्य कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं। हर महाकवि ने कथाकलि साहित्य को कुछ-न-कुछ दिया है। लेखक ने कथाकलि के विचित्र वेष-विधान मौनाभिनय आदि पर भी काफ़ी प्रकाश डाला है। मलयालम गद्य साहित्य के विकास पर भी इस पुस्तक में विस्तृत विवेचना की गई है जो ऐतिहासिक दृष्टि से तथ्यपूर्ण है। ग्रन्थ का प्रथम भाग आलोचनात्मक है, मध्य भाग ऐतिहासिक और अन्तिम भाग में दोनों साथ-साथ चलते हैं। निस्सन्देह इस पुस्तक के निर्माण से केरल का आलोचना साहित्य एक कदम आगे बढ़ा है।

पद्य शाखा में, श्री एन० वी० कृष्ण वारियर का 'कोच्चु तोम्मन' स्वतन्त्र कालीन कविता-संग्रहों में श्रेष्ठ है। उदारता के साथ शब्दों को बिखेर कर पाठकों के दिमाग को चौंधिया देने की अपेक्षा, उनका उचित मात्रा में संयत प्रयोग करना इस संग्रह की रचनाओं की खूबी है। उक्ति वैचित्र्य की अपेक्षा प्रभाव की ओर कवि का ध्यान अधिक है। इस पुस्तक की रचनाएँ चंगमपुल कृष्ण पिल्ला, जिन्हें केरल का 'बच्चन' कह सकते हैं—की अपेक्षा 'दिनकर' की याद दिलाती हैं। रचनाएँ शब्दों से बोझिल नहीं, अर्थगाम्भीर्य से अगाध हैं।

(शेष पृष्ठ ५३ पर)

वियना

रामकुमार

मैं काहलेनबर्ग की चोटी पर एक खुले समतल स्थान में धूप में पेट के बल लेटा हुआ हूँ। सामने वियना नगरी दूर-दूर तक फैली दिखाई दे रही है। एक ओर देन्यूब की नीली धारा शहर को बाँटती हुई पहाड़ों की ओट में खो गई है। मैं कभी अपनी आँखें खोल लेता हूँ और कभी बन्द कर लेता हूँ। वर्षों पुरानी एक बात याद आती है। तब मैं कालेज में पढ़ता था। एक दिन एक साहित्यिक मित्र ने कार्ने ज़्विग की पुस्तक 'वर्ल्ड आफ़ यस्टरडे' पढ़ने के लिए कहा। पुस्तक पढ़ कर वियना की ज़िन्दगी विशेषकर बौद्धिक का जो चित्र मेरे दिमाग़ में बना, वह कभी भूल नहीं सका। तब सोचा था कि एक बार वियना अवश्य जाऊँगा। आज काहलेनबर्ग में बैठा वियना के मकानों की चिमनियाँ, देन्यूब पर बने हुए पुल सब देख रहा हूँ।

हल्की-हल्की सितम्बर की धूप। आज यहाँ ज़्यादा लोग नहीं हैं, इतवार को सारे वियना निवासी परिवार समेत सारे दिन का प्रोग्राम बनाकर यहाँ आते हैं। घास के तिनके मेरी नाक का स्पर्श कर रहे हैं। चारों ओर ऊँची-नीची पहाड़ियाँ वियना को घेरे खड़ी हैं। वियनिज़ वुड्स का सौंदर्य दुनिया भर में प्रसिद्ध है क्योंकि यहीं विश्व के कितने ही प्रसिद्ध संगीतकारों को प्रेरणा मिली थी। चारों ओर फैला सन्नाटा मेरे अन्दर घुसता जा रहा है और मुझे ऐसा महसूस हो रहा है मानो मेरे भीतर कोई धीमा-धीमा संगीत बजा रहा हो। ऐसे सुन्दर और नीरव स्थानों में मुझे प्रायः अपने देश की याद आने लगती है, प्रायः मेरा अकेलापन उभर कर मेरे चारों ओर घिर जाता है। इस नगरी में किसी को जानता नहीं, यहाँ की भाषा नहीं जानता, लोगों से पूछ-पूछ कर रास्तों पर चलता हूँ और डरते-डरते रेस्तरों में जर्मन भाषा में लिखे हुए 'मिनू' में से बैरे को भोजन का आर्डर देता हूँ। तब अकेला महसूस करना स्वाभाविक ही है।

फिर शाम को धीरे-धीरे वियना के मकानों में बिजलियाँ जलती दिखाई देती हैं जो दूर से टिमटिमाते दिये-सी जान पड़ती हैं। शहर का रंग-रूप बदल जाता है। मैं नीचे उतरने लगता हूँ। काफ़्का, आर्थर श्नीज़लर, ज़्विग, बीथोवां, मोज़ार्ट जिन्होंने वियना की संस्कृति को इतना उन्नत किया—मैं मन ही मन उन सब को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

जहाँ काहलेनबर्ग जाने वाली चढ़ाई शुरू होती है वहाँ ग्रिंज़िंग नाम की एक बस्ती है जो वियना की सब से पुरानी बस्तियों में से एक है। पुराने एक या दो मंज़िले मकान, तंग सड़कें, सारा का सारा वातावरण अपनी एक विशेषता लिये हुए है। यहाँ की ताज़ी शराब दूसरे देशों में भी प्रसिद्ध है। शायद यहाँ हर एक घर शराबख़ाना भी है। इन शराबख़ानों के बाहर पत्तियों का बड़ा-सा गुच्छा लटका रहता है जिससे लोगों को पता चले कि यहाँ नई शराब मिलती है। जहाँ दुनिया में पुरानी से पुरानी शराब मूल्यवान समझी जाती है, उसके विपरीत यहाँ नई शराब का प्रचार है।

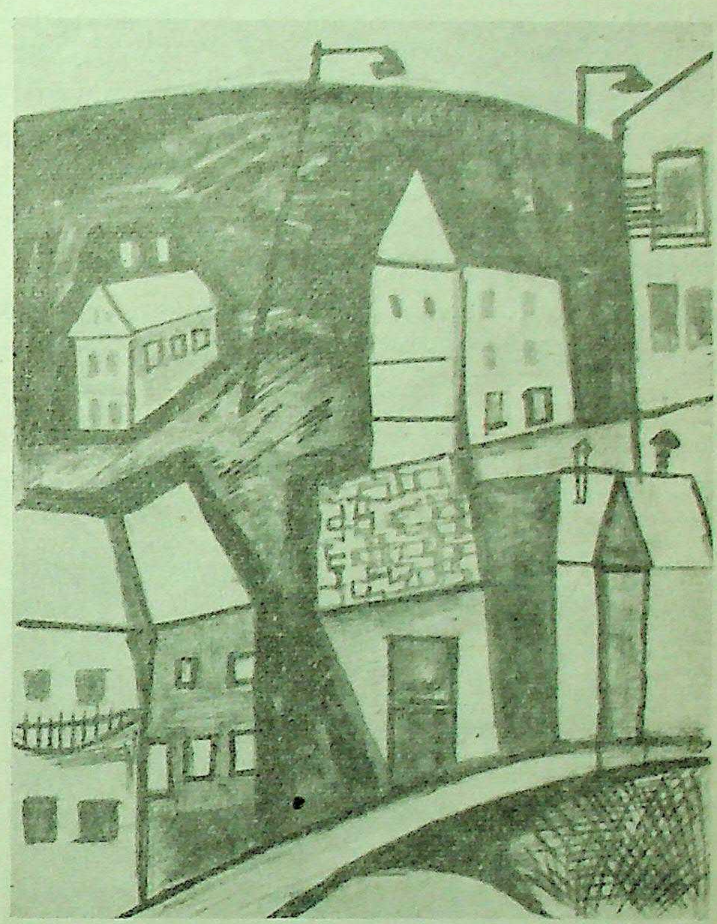

काहलेनबर्ग

मैं एक छोटे-से बार में घुस जाता हूँ। लकड़ी के बेंच बिछे हुए हैं, कुछ लोग अपनी-अपनी टोलियाँ बनाए बैठे नई शराब पी रहे हैं। एक एकर्डियन बजा रहा है और दूसरा गिटार और वे हर मेज़ का चक्कर लगा रहे हैं। वातावरण में बहुत अपनापन है, बाहरी आडम्बर जैसी कोई चीज़ यहाँ नहीं मिलती। वियना के रेस्तरों और कैफ़ों में पश्चिमी यूरोप की अपेक्षा संगीत बहुत ज़्यादा प्रचलित है। इससे पता चलता है कि आस्ट्रियन लोग कितने संगीत-प्रेमी हैं।

मैं प्राते के पास एक कमरे में रहता हूँ जिसका प्रबन्ध मेरे एक मित्र ने मेरे वियना आने से पहले ही कर दिया था। हमारे मकान के ठीक सामने कैफ़े पीटर है जिसकी ख्याति वियना में फैली हुई है। यहाँ रात्रि को क्या धमा-चौकड़ी होती है सो नहीं जानता, लेकिन रात

को सोते-सोते अचानक किसी स्त्री के चिल्लाने का स्वर सुनाई देता है और मेरी आँख खुल जाती है। मेरे मित्र ने बतलाया कि जब कोई अधिक पी जाता है तो कैफ़े में काम करने वाली वेश्या को पीटने लगता है और वह चिल्लाती है। इसी तरह के वियना में कितने ही कैफ़े और होटल हैं जहाँ कमरे घंटों के हिसाब से दिए जाते हैं।

अक्तूबर की एक सुबह—मैं कातनाख्रासा के एक कैफ़े में बैठा गरम-गरम काफ़ी पी रहा हूँ। कुछ लोग बैठे अख़बार पढ़ रहे हैं, कुछ पुस्तक और कुछ पत्र लिख रहे हैं या अपनी कापी पर झुके हुए हैं। चारों ओर एक प्रकार की शान्ति फैली हुई है। यह भी वियनी कैफ़ों की अपनी विशेषता है कि यहाँ घंटों बैठ कर एक प्याला काफ़ी या एक बीयर के गिलास को अपने सामने रख कर लोग अपनी भारी पढ़ाई-लिखाई करते हैं। पता चला कि दूसरे युद्ध से पूर्व वियना की संस्कृति का एक बहुत बड़ा भाग कैफ़ों में ही दिखाई देता था जहाँ किसी नई पुस्तक, किसी नये लेखक, किसी नई नाटक अभिनेत्री, किसी नये आपेरा के विषय में बड़े ज़ोर-शोर से बहस की जाती थी, लेखक अपनी ताज़ा कृतियों को कैफ़ों में बैठ कर अपने मित्रों को सुनाया करते थे। अब वह सब ख़त्म हो गया, केवल उसके कुछ चिन्ह बाकी रह गए हैं। मैं जब कभी किसी कैफ़े में बैठता हूँ तो इन पुराने दिनों की कल्पना किया करता हूँ जिन्हें मैंने कभी नहीं देखा।

कातनाख्रासा—पर लोग धूप में चहल-क़दमी कर रहे हैं, कभी-कभी किसी दुकान की शो विंडो में कोई नई या आकर्षक वस्तु को देख कर क्षणभर के लिए ठिठक जाते हैं परन्तु ख़रीदने की क्षमता कम में ही होती है। आपेरा की इमारत के पास यहाँ मैंने वियनीज़ लोगों को खड़े देखा है जो युद्ध में नष्ट हुई इमारत को बनते हुए देखना चाहते हैं। उनकी आँखों में प्रसन्नता और गर्व की एक चमक-सी होती है और साथ-साथ पुरानी स्मृतियों की एक छाया भी होती है। कितनी शामें उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में इस आपेरा में बिताई थीं, और जब से युद्ध आरम्भ हुआ तब से कभी इसके बन्द दरवाज़े फिर नहीं खुले। बमों से छतें टूटीं, दीवारें गिरीं और देख-देख कर लोगों के आँसू सूख गए। और अगले महीने इतने सालों के बाद फिर आपेरा के दरवाज़े खुलने वाले हैं। पहली रात को टिकट के कम से कम दाम १००) रु० के क़रीब हैं और लोग पैरिस, रोम, लन्दन आदि से जहाज़ों में उड़ कर उद्घाटन देखने के लिए आएँगे।

एक रेस्तराँ

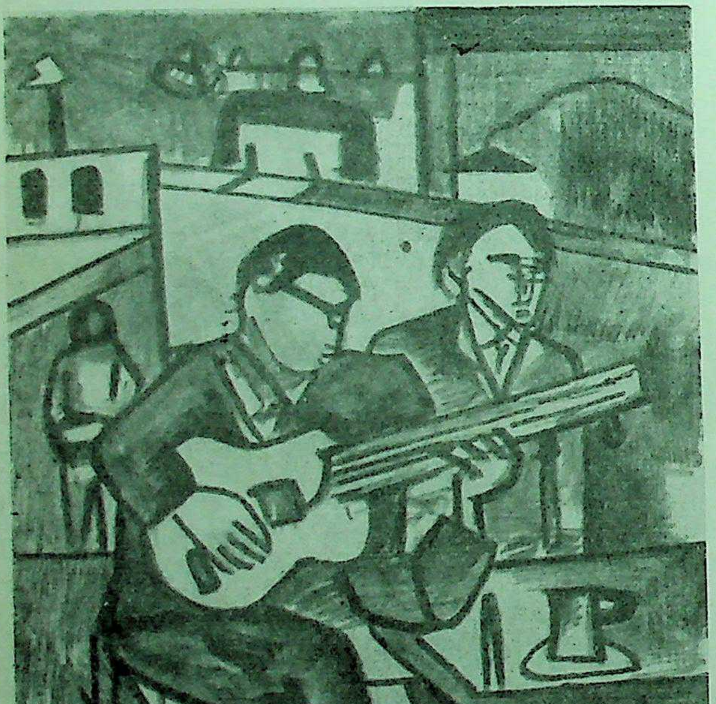

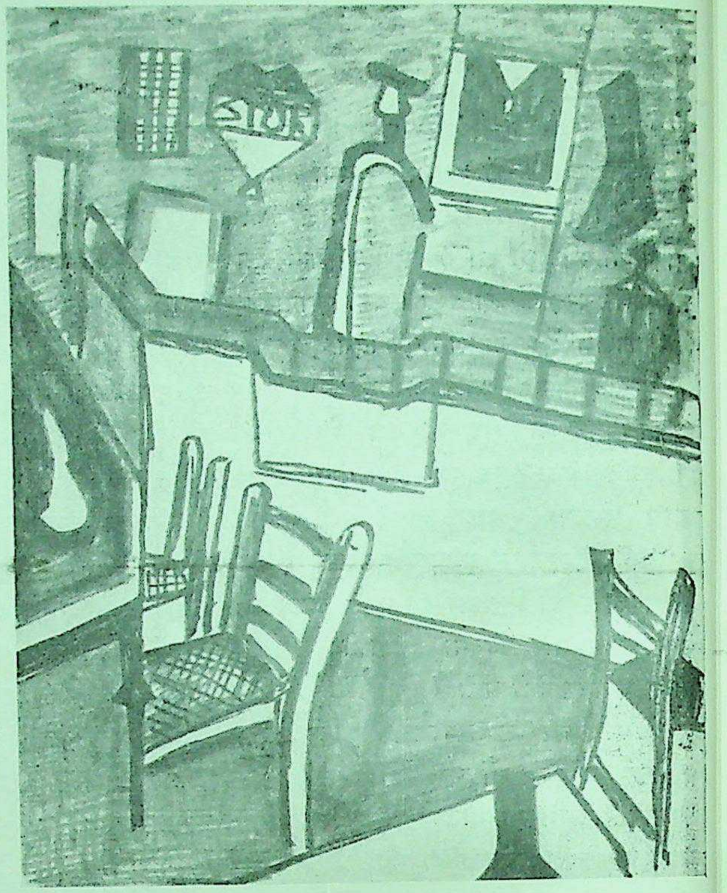

रात्रि क्लब

पास ही सेंट स्टीफ़ेन का गिरजा है जो १२वीं शताब्दी में बना था, आज भी इसके चारों ओर लोग खड़े इस गिरजे की शिल्पकला की प्रशंसा करते हैं। यहाँ शहर का केन्द्र है।

दो दिनों की लगातार वर्षा और सर्दी के बाद फिर धूप निकली है जिसमें पानी में धुली इमारतें और काली कोलतार की सड़कें चमक रही हैं। वियना में थोड़ी-थोड़ी दूर जाकर कोई गिरजा, कोई पुराना महल कोई सदियों पुरानी इमारत दिखाई देती है जिससे शहर की संस्कृति और घनी परम्परा का आभास होने लगता है।

मैं सारा दिन शहर, शहर के आस-पास की बस्तियों व संग्रहालयों के निरुद्देश्य चक्कर लगाता रहता हूँ और जब थक जाता हूँ तो किसी कैफ़े में बैठ कर स्केच करने लगता हूँ या अपने मित्रों को पिक्चर-पोस्टकार्ड लिखता हूँ। जीवन में शायद कभी इस तरह से सैर के लिए सैर नहीं की। किताबों की दूकानों में टामस मान शिलर, गेटे, ज़्विग, राबर्ट, म्यूजिल की दस-दस जिल्द बँधी पुस्तकों को देखकर मेरे मुँह में पानी भर आता है परन्तु सब जर्मन भाषा में हैं, मैं एक भी पुस्तक ख़रीद नहीं पाता। मुझे बहुत भारी कोफ़्त होती है। जर्मन भाषा सीखने का मोह हो रहा है।

राष्ट्रीय संग्रहालय में पीटर ब्रूगेल के १२ अनमोल चित्रों को देख कर मेरी आँखें खुली की खुली रह जाती हैं। दुनियाँ भर में यही एक संग्रहालय है जहाँ ब्रूगेल के १२ चित्र हैं नहीं तो कहीं एक है, कहीं दो। वियना आने का यह सब से बड़ा आकर्षण था। अलबर्टीना में आठ आने का टिकट खरीद कर दुनिया के किसी भी भाग में छपी कला पुस्तक या 'रिप्रोडक्शंस' देखी जा सकती हैं।

अक्तूबर के महीने में इतना खुला आसमान और इतनी उजली धूप कम ही दिखाई देती है नहीं तो सर्दी आने के पूर्व वर्षा और ठंडी हवा वियनिज़ लोगों को सर्दी की चेतावनी देना आरम्भ कर देती है। इस मौसम का लाभ उठाने के लिए गाड़ी में बैठकर वियना से लगभग दस मील के अन्तर पर मैं शोनबर्ग आ जाता हूँ। शहर के मुकाबले में कभी-कभी शहर की बस्तियाँ, वहाँ बने छोटे-छोटे कैफ़े और दो मंजिले मकान अधिक आकर्षक जान पड़ते हैं।

शोनबर्ग का आस्ट्रिया में वही स्थान है जो फ्रांस में वर्साई का है। मारी थेरेस यहीं एक महल में रहती थी जब आस्ट्रो-हंगेरियन एम्पायर की दुनिया भर में धाक जमी हुई थी। महल के सामने एक बहुत बड़ा मैदान है, जिसके अन्त में एक बहुत बड़ा फ़व्वारा है जिसका पानी नीचे तालाब में गिरता है, उसके ऊपर हरी घास का ऊपर उठता हुआ फिर एक मैदान और उसके अन्त में एक छोटी सी ऊँची इमारत। दोनों ओर सड़कें और दायें-बायें फैले हुए लम्बे-चौड़े जंगल जिनके बीच में लोगों की सैर के लिए पगडंडियाँ बनी हुई हैं। इतने सुन्दर दृश्य जीवन में मनुष्य कम ही देखता है। वर्साई की अपेक्षा शोनबर्ग छोटा होते हुए भी अधिक सुन्दर, अधिक कलात्मक जान पड़ता है। पेड़ों की कतारें इतनी सफ़ाई से काटी हुई हैं जिन्हें देख आसमान से लटकते हरे परदे का आभास होने लगता है। शोनबर्ग इतना सुन्दर होगा, इसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी। ऊपर एक खंडहर की चोटी पर चढ़ कर वियना दिखाई दे रहा है, पास ही हल्के नीले और हरे रंग की पहाड़ियाँ वियना के सौन्दर्य को दूना कर रही हैं। छोटे-छोटे गिरजों की मीनारें मकानों की चिमनियों से ऊपर उठ कर अपना महत्व प्रगट करती जान पड़ती हैं।

पास ही बाग में बने एक कैफ़े में मैं भोजन करता हूँ। पेड़ों पर लगे लाउडस्पीकरों से कैफ़े में लगे रेडियो का संगीत धीमे स्वर में हमारे कानों तक पहुँच रहा है और एक बार कुर्सी पर बैठ कर फिर उससे उठने को जी नहीं चाहता। इसी से जिन लोगों को कोई काम नहीं है, वे अपने पढ़ने-लिखने का सामान यहाँ ले आते हैं और घंटों बैठे रहते हैं। मैं भी बैठा रहता हूँ। मुझे आस्ट्रियन लोग काफ़ी पसन्द हैं। कैफ़ों में बैठने के बहुत शौकीन और बहुत ही मिलनसार। ट्रेन में कंडक्टर से किसी स्थान का पता पूछने पर पास खड़े सभी पूछने वाले को घेर लेते हैं और अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ी या फ्रेंच में पता समझाने की कोशिश करते हैं। सड़क पर किसी से मार्ग पूछने पर वह अपना रास्ता छोड़ कर आपको रास्ता दिखाने लगता है और आप लाख समझाने की कोशिश करें कि आप समझ गए परन्तु वह आपको अकेला नहीं छोड़ेगा।

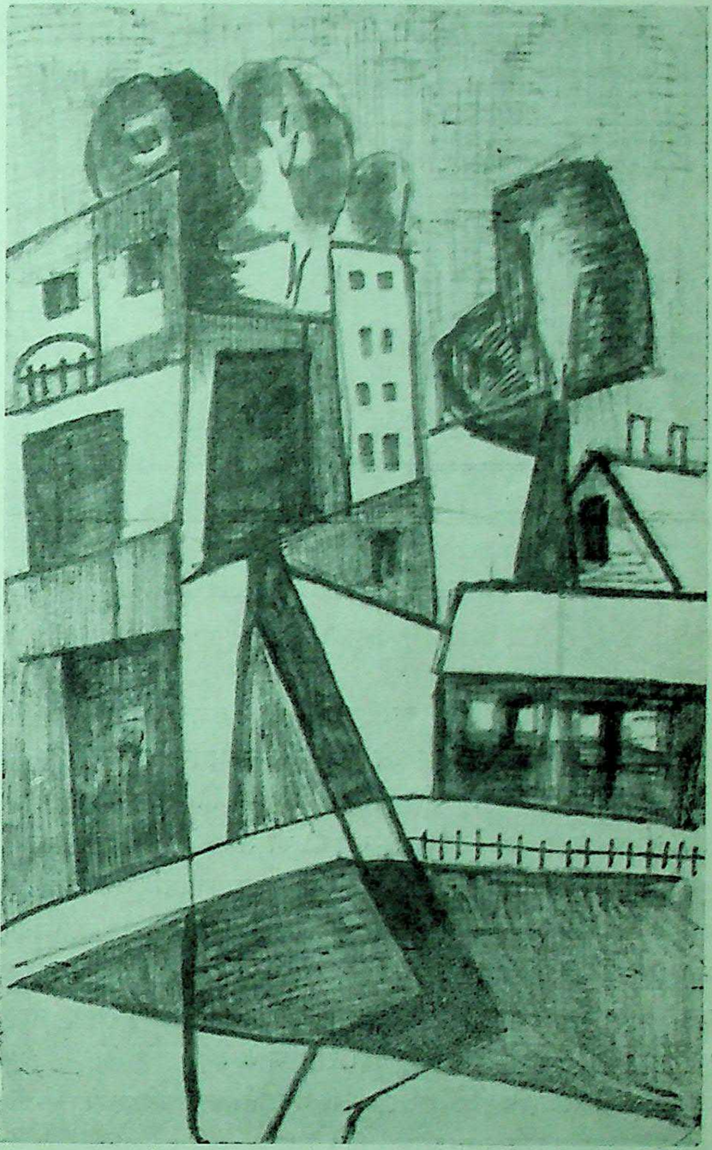

ग्रिंजिग

मैं रेनासाँ बार में रात्रि के भोजन के पश्चात् बैठा 'रेड वाइन' पी रहा हूँ। वियना में अब तीन-चार दिन और रहना है। वियना मेरी यात्रा का अन्तिम पड़ाव है। कितने नये शहर देखे, कितनी नई भाषाओं को सुना, कितने नये परिचय हुए, मेरी डायरी नये-नये नामों और पतों से भर गई है जिन्हें कभी-कभी देख मुझे समझ में नहीं आता कि किस व्यक्ति का कौन सा पता है। कभी कभी यह सोच कर मन बहुत

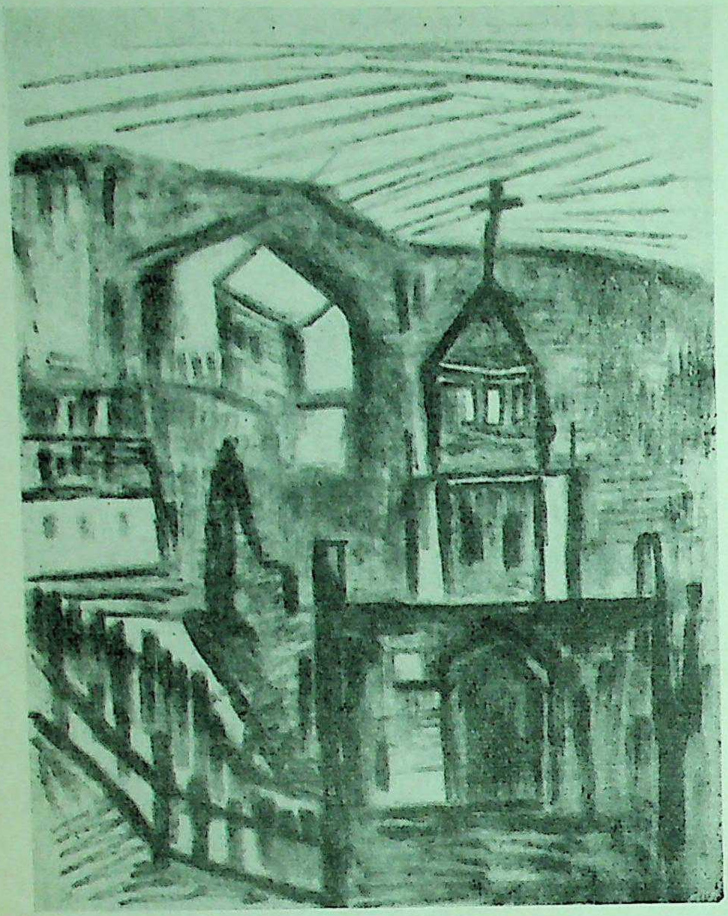

एक चौक

विचलित सा हो जाता है कि अब इन चेहरों को कभी नहीं देख सकूँगा, ज़िन्दगी में अब इन से फिर कभी मुलाकात नहीं होगी।

प्यानो, एकोर्डियन, सेलो और वायलिन से निकलता संगीत मुझ तक पहुँच रहा है। 'लाइम लाइट' की मन को झिंझोड़ देने वाली धुन रेनासाँ बार की दीवारों से टकरा कर गुम होती जा रही है। काउंटर पर अध-पके बालों वाला कोई धनी ग्राहक वेटरेस से हँस-हँस कर बातें कर रहा है और अपने लिए शराब ख़रीदते समय एक पेग उसके लिए भी ख़रीदता है और दोनों हँस कर पीते हैं। ज़्यादा व्यक्ति नहीं हैं लेकिन जो हैं वे शायद यहाँ रोज़ आते हैं। काले रंग के सूट, कलफ़ लगी सफेद कमीजें, और काली नकटाई पहने वेटर इधर-उधर घूम रहे हैं और अच्छा पुरस्कार पाने की आशा में अपने ग्राहकों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं।

एक स्त्री 'टेप नृत्य' करने लगी है। उसके ऊँची एड़ी के जूते से ज़ोर-ज़ोर की ढोलक जैसी आवाज़ निकल रही है। वह युवा है, सुन्दर है और 'बार' में बैठे सब व्यक्तियों की आँखें उसकी ओर लगी हुई हैं। संगीत बजाने वाले भी झूमने लगे हैं। वह थक रही है, उसके माथे पर पसीने की बूँदें छलकने लगी हैं और कुछ देर बाद वह धप से कुर्सी पर आ गिरती है। लोग तालियाँ बजा रहे हैं।

पैरिस, मास्को, बुदापेस्त, प्राग, काबुल—कितने ही शहरों के चित्र मेरी आँखों के सामने उभर रहे हैं। छोटे से मन में इतनी बड़ी दुनिया किस प्रकार समा जाता है? किसी दिन एकाकी शामों के सूनेपन में ये सब स्मृतियाँ धुँधली-धुँधली परछाइयाँ बन कर मेरे मन पर मँडराया करेंगी यह मैं जानता हूँ और मैं समुद्र के किनारे सुन्दर-सुन्दर सीपियाँ इकट्ठी करने वाले एक बालक की भाँति इन सब सुन्दर क्षणों को अपनी झोली में डालता जा रहा हूँ।

रात को अपने घर लौटते वक्त मुझे अपना मन भारी-भारी-सा जान पड़ता है। ट्रेम से उतर कर मैं अपने घर जाने लगता हूँ। सर्दी बहुत बढ़ गई है, मैंने अपने ठिठुरते दोनों हाथ पेंट की जेबों में डाल लिए हैं, तभी सड़क के नुक्कड़ पर एक कैफ़े के बाहर शराब के नशे में चूर एक युवक को कैफ़े के बन्द दरवाज़े ज़ोर-ज़ोर से खटखटाते हुए देखता हूँ। क्षण भर के लिए पाँव रुक जाते हैं, अन्दर केवल एक बत्ती जल रही है। एक मोटा-सा वेटर दरवाज़ा खोलता है, क्रोध से उसका चेहरा लाल है, वह उस युवक को तीन-चार थप्पड़ लगाता है लेकिन फिर भी वह युवक अन्दर घुसने के लिए हठ कर रहा है, उसे धक्का देकर वेटर दरवाज़ा बन्द कर लेता है। युवक की दो-तीन उँगलियाँ दरवाज़ों के भीतर भिंच जाती हैं और उसके ओंठों से एक हल्का-सा चीत्कार निकलता है। मैं आगे बढ़ जाता हूँ। रात को कैफ़ों में युवक क्या करते हैं, कितना पीते हैं, उनका नैतिक पतन कहाँ तक हुआ है, वह सब मैं नहीं जानता लेकिन इस प्रकार के दृश्य देख कर थोड़ा-बहुत आभास अवश्य लग जाता है।

एक दृश्य

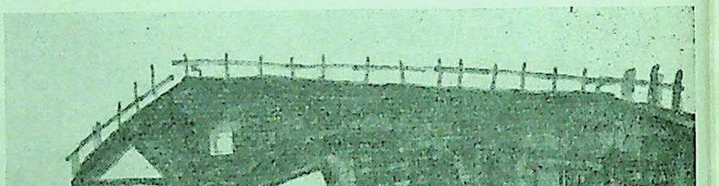

वियना में एक और महत्त्वपूर्ण बात यह दिखाई देती है कि स्थान-स्थान पर दुनिया भर के प्रसिद्ध लेखकों, कलाकारों, संगीतकारों आदि की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। अगर कहीं मोजार्ट कैफ़े और बीथोवाँ रेस्तराँ दिखाई देते हैं तो कहीं हैंडल स्क्वैयर, गेटे स्ट्रीट के बोर्ड पढ़े जा सकते हैं। प्रसिद्ध कलाकारों के नाम दिन में कई बार लेने पर आम लोगों को इन कलाकारों की कृतियों में स्वाभाविकतः दिलचस्पी हो जाती हैं। मोजार्ट, बीथोवाँ, गेटे, शिलर आदि के संग्रहालय हैं और उनसे सम्बन्धित ऐसे कितने ही मकान और पार्क हैं जिससे उनकी स्मृति हमेशा ताज़ी बनी रहती है। प्रसिद्ध आपेरा, नाटक और म्यूज़िक कंसर्ट के बड़े-बड़े इश्तिहार शहर की दीवारों पर चिपके रहते हैं और राह चलते आम लोग भी अपने काम से लौटते समय इन इश्तिहारों को पढ़ कर अपने प्रोग्राम निश्चित करते हैं। किसी नए नाटक या अपेरा का उद्घाटन शहर की ज़िन्दगी की एक महत्त्वपूर्ण घटना होती है। वह आज की बात नहीं, इसके पीछे शहर की कलात्मक परम्परा है। कितने ही बुद्धिजीवियों ने अपनी कला के सृजन से इस जीवन को धनी बनाया है। और आज राजनीतिक दाँव-पेंचों का शिकार बनने के बावजूद भी, पुरानी ज़िन्दगी के इतने छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी एक आस्ट्रियन कभी कला के प्रति उदासीन नहीं रह सकता।

मैं देन्यूब की नहर के साथ-साथ चला जा रहा हूँ। सड़क पर अनगिनत मोटरें, बसें, ट्रेमें भागी जा रही हैं। सामने वियना की पहाड़ियाँ सूर्य की उजली धूप में चमक रही हैं। देन्यूब के किनारे लगे ऊँचे-ऊँचे पेड़ों की पत्तियों पर पीलापन छाने लगा है। जब हवा तेज़ चलती है तो पेड़ों की शाखाएँ झूमने लगती हैं। मेरे विचार इधर-उधर दौड़ रहे हैं, कहीं ठिकाना नहीं पाते। कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है कि हमारे जीवन का कितना मूल्य है। इतना सौन्दर्य, इतना सन्तोष मिल सकता है। जिससे हमारी ज़िन्दगी की कीमत बहुत बढ़ जाती है। सोचता हूँ कि मैं इस क्षण मरना नहीं चाहूँगा, ज़िन्दगी की सब समस्याएँ, सब उलझनें मुझे केवल मन का धोखा जान पड़ती हैं। ऐसे कुछ क्षण जीवन के प्रति कितना प्यार, कितना उत्साह जगा देते हैं। मेरे कानों में बाक की एक धुन गूँजने लगती है। केवल यहीं नहीं सब शहरों के निवासी अपने शहर से अपार प्रेम और लगाव रखते हैं। उनके सामने उनके शहर की प्रशंसा करने से उनकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहता। अपने संग्रहालय, अपने गिरजे, अपनी कला, अपनी सड़कों, अपनी नदी की बातें करते समय गर्व से उनका मस्तक ऊँचा हो जाता है। वास्तव में उनकी खुशी में वास्तविकता का पुट होता है। संगीत, साहित्य और कला का दर्जा उद्योगों से कहीं ऊँचा होता है। कभी-कभी सोचता हूँ कि हमें भी अपने अजन्ता और एलोरा, ताजमहल और जामा मस्जिद, तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बातें करते समय गर्व महसूस होता है लेकिन फिर भी हमारे दिल से उतने ज़ोर से वह आवाज़ नहीं निकलती जितनी यहाँ सुनाई देती है। युद्ध के ख़तरे की बात करते समय लुव्र और कथेड्राल, सेंट पीटर और सेंट स्टीफ़ेन के नष्ट होने का भय लोगों को उनकी जड़ों तक सिहरा देता है।

मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा हूँ। वियना की काफ़ी विश्व-विख्यात है, धूप में बने एक कैफ़े में बैठ कर मैं एक प्याला गरम-गरम काफ़ी का पीता हूँ। सामने वही ऊँची-नीची रेखा बनाती हुई पहाड़ियाँ हैं, देन्यूब में एक नाव पर एक पुरुष और एक स्त्री धीरे-धीरे पानी के रुख़ के साथ बहे जा रहे हैं। मुझे बीथोवाँ का 'ब्लू देन्यूब' याद आता है लेकिन इन सब भावनाओं के लिए अधिक समय नहीं है। मुझे स्टेशन जाना है, पैरिस के लिए गाड़ी पकड़नी है, लेकिन न जाने कौन-सी शक्ति मुझे कैफ़े की कुर्सी के साथ बाँधे जा रही है।

★

स्वतन्त्रता के बाद प्रकाशित मलयालम पुस्तकें : (पृष्ठ ४८ का शेषांश)

केरल के कई प्रदेशों से पत्थरों तथा ईंटों के तहखाने पाये गये हैं। उनमें से मिट्टी के बर्तन और जंगआलूद लोहे के टुकड़े निकले हैं। अभिज्ञों का मत है कि ये तहखाने मानव-संस्कृति के विभिन्न युगों के साक्षी हैं। कहते हैं कि ये बौद्धों की समाधियाँ हैं। इनके मलयालम में नन्नंगाड़ी, मुनियर आदि कई नाम प्रचलित हैं। ये हिन्दू-संस्कृति के प्रचार के पहले के हैं। कहीं इन्हीं तहखानों के द्वारा मानव संस्कृति के मूल तक पहुँच जाता है और ऐसी शिल्प चातुरी से वर्णन करता है कि ऐतिहासिक खोज की शुष्कता की बू तक आने नहीं पाई है। दूसरी कविता है 'अफ्रीका'। अफ्रीका की नव-जागृति की जयगाथा करने वाली ऐसी कविता शायद ही किसी अन्य साहित्य में हो।

कोलिकोडु केन्द्र कला समिति के तत्वावधान में केरल में हर जगह कला समितियाँ स्थापित की गई हैं। हर साल बड़े धूम-धाम से नाटकोत्सव भी मनाया जाता है। शायद कथाकलि के प्रभाव से केरल का नाटक साहित्य और रंगमंच पीछे पड़ा हुआ था। अचानक सन् १९४३ में पूर्वोक्त कलासमिति की स्थापना के साथ इस दिशा में भी नई करवट दिखाई देती है। इस सिलसिले में अनेक नाटक भी लिखे गये। उनमें एक है श्री० के० टी० मुहम्मद का 'करवट्ट पशु' नाटक जो कथावस्तु और रंगमंच की दृष्टि से अत्यन्त सफल रहा और पुरस्कारों और अभिनन्दनों का पात्र भी बना।

'मुखछायकल' (ले० एम० आर० बी०) मलयालम साहित्य में एक नई शाखा का सूत्रपात करता है। बंगला में जिसे रम्यरचना कहते हैं शायद इसे उस श्रेणी में मान सकते हैं। इस ढंग की पुस्तक मलयालम में यह पहली है। इसमें गद्य-कविता की-सी लय है, लेकिन कविता की कृत्रिमता नहीं। इसमें और दो विशेषताएँ पाई जाती हैं। पहली विशेषता है वर्णन यात्रा-विवरण। इसके लिए लेखक कहीं दूर नहीं जाता। कार्यवश कहीं किसी गाँव में जाना पड़ता हो, किसी सभा-समाज में भाग लेना हो तो उस सिलसिले में होने वाली घटनाओं का वर्णन करते हैं। कभी-कभी स्वाभाविक रूप से समाने आने वाली वस्तुओं और व्यक्तियों का परिचय भी देते जाते हैं। इस पुस्तक की दूसरी विशेषता यह है कि पूरा ग्रन्थ रेखा-चित्रों का 'एल्बम' सा बन गया है।

स्वातन्त्र्योत्तर तमिल साहित्य के कुछ मुख्य ग्रन्थ

र० शौरिराजन

स्वतन्त्रता प्राप्ति के चालीस साल पहले ही तमिल के युग-प्रवर्तक कवि स्व० भारती ने स्वाधीन भारत का सपना देख लिया था । कविवर की कल्पना ही नहीं, बड़ी आशा भी रही कि स्वतन्त्र भारत में ही साहित्य, कला आदि का सर्वतोमुखी विकास हो सकता है और अवश्य होगा । उनकी वह कल्पना स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय साहित्यधारा में साकार होती नज़र आ रही है । इसी के सिलसिले में स्वाधीनता के बाद, तमिल-साहित्य की प्रगति के परिचायक कुछ प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख यहाँ किया जाता है ।

उपन्यास

पोन्नियिन् शेल्वन्—स्व० रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि' का रचित बृहत्तर ऐतिहासिक उपन्यास है । चोल साम्राज्य के सुविख्यात चक्रवर्ती राजराज चोलन के प्रारम्भिक जीवन तक की कथा इसमें कही गई है । चोल राज्य की (दसवीं सदी की) शासन-प्रणालियाँ, तत्कालीन संस्कृतियाँ, जनजीवन की विशेषताएँ और राजनीति की चालबाज़ियाँ बहुत ही रोचक ढंग से बताई गई हैं । यह उपन्यास लोकप्रिय साहित्यस्रष्टा श्री 'कल्कि' की अनुपम कला का अच्छा नमूना है ।

वालविन् ऑलि (जीवन की शोभा)—श्री पी० एम० कण्णन का यह सामाजिक उपन्यास मनोविज्ञान की कई उलझनों को सुलझाने वाली सुन्दर कलाकृति है । बड़ी मुश्किल से मान्यता देनेवाले कट्टर समालोचकों ने भी इसकी प्रशंसा की है । तमिल संवर्धक संघ के पारितोषिक (पाँच सौ रुपये) द्वारा यह सम्मानित हुआ है ।

जीवभूमि—श्री 'शांडिल्यन' का यह सफल ऐतिहासिक उपन्यास है। आततायी औरंगज़ेब के खिलाफ़, मेवाड़ के राणा राजसिंह के नेतृत्व में संघटित होकर राजपूतों के क्रान्तिकारी स्वातन्त्र्य समर का सजीव चित्रण है । चरित नायिका अखिला देवी के उज्ज्वल नारीत्व के प्रभाव से शौर्य, आदर्श आदि से विलुप्त-प्राय राजस्थान की उजड़ी हुई भूमि 'जीवभूमि' बन गई, हठी और मनमौजी रतन चन्दावत सलूम्ब्रा (चरित नायक) मुगलशाही की गुलामी छोड़ कर जन्मभूमि की मुक्ति के लिए लौट आता है और विजयश्री के साथ, गृहश्री के स्थान पर अखिला देवी भी उसे वर लेती है । रोचक कथावस्तु और कलापूर्ण अभिव्यंजना इस उपन्यास की विशेषताएँ हैं ।

इदयनादम् (हृदयनाद)—श्री न० चिंदबर सुब्रह्मण्यन का यह उपन्यास एक संगीत कला के पुजारी की हृदयस्पर्शी गाथा है । कला के समक्ष दुनियावी भेद-भाव और समाज की भ्रष्टता-भद्रता सब तुच्छ हो जाते हैं—इसका मार्मिक समर्थन इसमें हुआ है ।

कल्लो कावियमो (गद्य या काव्य ?)—श्री मु० वरदराशनार का यह प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास काव्यात्मक चित्रणों से भरा है । जीवन और कला के आन्तरिक सम्पर्क की स्थापना ही इस रचना का मुख्य उद्देश्य है । विद्वान लेखक की विशिष्ट भाषा-शैली की छाप इसमें है । इसको 'तमिल संवर्धक संघ' का पारितोषिक मिला है ।

पेण कुरल (नारी का स्वर)—श्रीमती राजम् कृष्णन का यह प्रथम उपन्यास होने पर भी अपने कलासौष्ठव और मार्मिक चित्रण के कारण बहुत उत्तम बन पड़ा है । जीवन की देहरी पर पग रखनेवाली नारी जब अपनी चिरसंचित आशा-अभिलाषाएँ निराशा से टकरा कर चूर होते देखती है, तब उसका स्वर कितना करुण क्रंदित और उत्तप्त हो उठता है । यही स्वर उक्त उपन्यास का श्वासोच्छ्वास है । साहित्यिक मासिक 'कलैमगल्' का 'नारायणस्वामि ऐयर' पारितोषिक (एक सहस्र मुद्रा) इसको मिला है ।

कहानी

मोहिनी—श्री चिद्दमूर्ति की श्रेष्ठ कहानियों का यह संग्रह 'कहानी-कला' का श्रेष्ठ नमूना है । इनकी जीवन की सुन्दर झाँकियों को कलात्म रूप देती हैं ।

कालि दरिशनम् (काली का दर्शन)—श्री ति० ज० र० की आठ सुन्द कहानियों का यह संग्रह है । भावुकता और कलापूर्ण अभिव्यंजन आपकी कहानियों की जान है । समाज और जीवन के प्रति मीठा व्यंग इन कहानियों में कहीं-कहीं हास्यरस का पुट भर देता है ।

पूवुम् पोन्नुम् (फूल और सोना)—श्री वि० एस० रामैया की सुन्द कहानियों का यह संग्रह तमिल कथा साहित्य की प्रगति का परिचाय है । इन कहानियों में जीवन की यथार्थता सजीव हो उठती है सरल और रोचक शैली इन कहानियों को और भी जानदा बनाती हैं ।

मुल्लैक्काडियाल—श्री 'विन्दन' की ऊँची श्रेणी की कहानियों का य संकलन है । हरेक कहानी में, मानव समाज और जीवन की विषमता विवशताओं का प्रभावकारी चित्रण है । इस कहानी-संग्रह के कार अपनी लेखनी की विशिष्ट ओजस्विता के धनी श्री 'विन्दन' की ब प्रसिद्धि हुई । यह संग्रह तमिल साहित्य संघ द्वारा पुरस्कृत हुआ था।

कुंकुमच्चिमिल् (कुंकुम की डिबिया)—श्री आर० वि० (आर० वेंकटरामन की बारह उच्च कोटि की कहानियों का यह संग्रह है । ग्रामजी-वन क सौन्दर्य और नर-नारी की उमंगों का चमत्कारी वर्णन इ कहानियों की विशेषता है । सत्यं, शिवं, सुन्दरं का अच्छा निर्वाह हम इ पुस्तक में पाते हैं । 'तमिल संवर्धक संघ' की सिफ़ारिश पर मद्रा सरकार का पुरस्कार (पाँच सौ रुपये) इसको मिला है ।

वलि पिरन्ददु (मार्ग मिल गया)—यह श्री 'अखिलन' की सुन्दर कहानिय का संग्रह है । इन कहानियों में भिखमंगे, कंगाल, मज़दूर आ

पददलित लोगों के जीवन की कुछ झाँकियाँ प्रमाणपूर्ण ढंग से गूँथी गई हैं। प्रभावकारी शैली, कोमल भाषा, मार्मिक अभिव्यंजना और सुन्दर कल्पना इन कहानियों की सफलता की कुंजी है।

कोट्टु मेलम् (मंगल वाद्य)—श्री ति० जानकीरामन की बारह उत्कृष्ट कहानियों का यह संग्रह है। मध्यवर्ग का समाज ही इन कहानियों का क्षेत्र है। लेखक की ये कहानियाँ उसे 'अपने क्षेत्र का अनुपम कलाकार' साबित कर चुकी हैं। जानदार भाषा, मार्मिक उक्तियाँ, कलात्मक अभिव्यक्ति और कथोपकथन की विशिष्टता के कारण ये कहानियाँ काफ़ी लोकप्रिय हुई हैं।

पद्य साहित्य

इंदियत्ताय (भारत माता)—कविवर श्री जगवीर पांडियनार की श्रेष्ठ कविताओं का यह संकलन है। भारत के प्राचीन गौरव और आधुनिक स्थिति की गाथा इनमें गाई गई है। भारत के तपःपूत महापुरुषों के प्रति अपनी श्रद्धांजलियाँ भी इनमें कविवर ने अर्पित की हैं। साथ-साथ पाश्चात्य सभ्यता के पीछे पागल हुए हमारे नवयुवक-युवतियों के प्रति तीखे व्यंग भी कसे गये हैं।

तमिलत्तेन (मधुभरी तमिल वाणी)—यह सुकवि श्री नामक्कल वे० रामलिंगम पिल्ले की मधुर कविताओं का संग्रह है। तमिल-वाणी, तमिल-काव्य, प्रकृति, जनजीवन, कला, संस्कृति आदि विषयों पर रची गई ये कविताएँ काफ़ी लोकप्रिय हुई हैं।

कुडुम्ब विलक्कु (कुटुम्ब का दीप)—सुकवि 'भारतीदासन' की कोमल कविताओं के दो संग्रह उक्त नाम से निकले हैं। आदर्श जीवन बिताने की कल्पना कवि की वाणी में साकार हो उठी है। जीवन के उत्कर्ष-अपकर्ष का सजीव वर्णन भी इन कविताओं में हुआ है।

इलवेनिल (वसन्त)—सुकवि श्री 'सामू' की सुन्दर भावुक कविताओं का यह संग्रह 'तमिल संवर्धक संघ' के पारितोषिक द्वारा सम्मानित हुआ है। जीवन के कला-पक्ष की मोहक अभिव्यंजना इन कविताओं में हुई है। तमिल कविता धारा के नये मोड़ की प्रतीकात्मक कविताओं में इनका विशिष्ट स्थान है।

गद्य साहित्य

तमिलिंबम (तमिल की मधुरिमा)—यह ग्रन्थ श्री रा० पि० सेतुप्पिल्ले की विपुल विद्वता का उत्तम मानदंड है यह ग्रन्थ। तमिल भाषा, साहित्य और तमिल देश की प्राचीनतम संस्कृति आदि गम्भीर विषयों का अनुसंधान-पूर्ण चर्चा इसमें की गई है। हाल ही में केन्द्रीय सरकार की साहित्य अकादमी द्वारा यह ग्रन्थ पुरस्कृत हुआ था।

इलक्किय उदयम् (साहित्य का उदय)—श्री एस० वैयापुरि पिल्ले के उक्त ग्रन्थ के दोनों भाग उनके प्रकांड पांडित्य के अच्छे परिचायक हैं। ये दोनों, भारत, मिस्र, ईरान और अन्य पाश्चात्य देशों में साहित्य के आविर्भाव तथा विकास के बड़े विद्वत्तापूर्ण अनुशीलनात्मक ग्रन्थ हैं।

संघनूक्कीट्चिहल (संघकालीन साहित्य के दृश्य)—श्री कि० वा० जगन्नाथन के आठ ग्रन्थों का एक बड़ा संकलन है। इनमें सहस्राब्दियों के पूर्व रचित संघसाहित्य के दुरूह पद्यों की विशद और विवेचनात्मक व्याख्या की गई है। यह बृहत् संकलन विद्वान लेखक की अगाध मेधा और मेहनत का परिचायक है यह बृहत् संकलन।

मेय्प्पोरुल (तत्वार्थ) और आत्मचिन्तनै (आत्मचिन्तन)—तमिल के ज्ञान-वृद्ध साहित्य-सेवी श्री राजा जी के ये दोनों आध्यात्मिक ग्रन्थ, विशुद्ध चिन्तन, तर्कपूर्ण विवेचन, सरल, साथ-साथ गहरे भाव भरे भाषण तथा प्रभावकारी शैली के कारण लाखों तमिल भाषियों के लिए 'पूज्य ग्रन्थ' बन गये हैं।

नाटक

राजसुन्दरी—श्री ति० ना० सुब्रह्मण्यन का यह ऐतिहासिक नाटक चोल साम्राज्य की कुछ रोचक घटनाओं के आधार पर रचा गया है। रंग-मंच पर कई बार खेला गया यह नाटक विद्वानों की प्रशंसा भी पा चुका है।

अलगु मयक्कम् (सौंदर्य की मोहकता)—श्री पे० तूरन के श्रेष्ठ एकांकियों का यह संकलन है। यह संग्रह एकांकी कला का उत्तम प्रतीक माना जाता है।

राजराज चोलन—श्री अरु० रामनाथन का यह लोकप्रिय ऐतिहासिक नाटक रंगमंच के प्रदर्शन में आशातीत सफलता पा चुका है। नाटक के सम्वाद उत्तम गद्यकाव्य की तरह कोमल एवं गम्भीर होने के कारण नाटक के पाठक या दर्शक आत्म-विभोर हो जाते हैं।

तमिल चेल्वम् (तमिल की सम्पत्ति)—श्री कि० आ० पे० विश्वनाथन का यह भावप्रधान नाटक है। प्रगतिवादी लेखक की अपनी धारणाएँ और कल्पनाएँ इसमें मूर्त हो उठी हैं। इसके सम्वाद भी सूक्तियों की तरह हज़ारों नवयुवकों के कंठों में घर कर चुके हैं।

यात्रा साहित्य

पिरयाणम् आरु कलै (पर्यटन एक कला है) और अमेरिकावैप्पार (अमेरिका को देखो)—श्री सोम० ले० इलक्कुमण चेट्टियार की ये दोनों यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकें काफ़ी लोकप्रिय हुई हैं।

मलेया मुदल् कानडा वरै (मलाया से कैनडा तक)—श्री ए० के० चेट्टियार का यह रोचक ग्रन्थ कई उपयोगी सामग्रियों से पूर्ण है। यात्रा साहित्य के प्रवर्तकों में आपका नाम उज्ज्वल है। इसका श्रेय उक्त पुस्तक को भी अच्छी मात्रा में है।

जनपदीय साहित्य

यद्यपि इस दिशा में तमिल साहित्यकारों का ध्यान बहुत कम ही गया है, फिर भी श्री कि० वा० जगन्नाथन और ति० ना० सुब्रह्मण्यन आदि विद्वानों ने श्लाघनीय काम किये हैं। श्री कि० वा० जगन्नाथन के लोकगीत संग्रह कुलन्दै उलगम् (बच्चों का संसार), कंजियिलुम् इन्बम (सूखी-रोटी में स्वर्ग), मच्चु वीडु (बड़ा घर-मोद) उल्लेखनीय हैं।

बाल साहित्य

मलरुम् उल्लम् (खिलनेवाला दिल)—बाल साहित्य के लोकप्रिय कवि श्री अल-वल्लियप्पा की सुकोमल कविताओं का संग्रह है। तमिलनाड की बालक-बालिकाएँ इन कविताओं को झूम-झूमकर गाती हैं, तो इनकी विशेषता के विषय में कहने को रह ही क्या जाता है। इनके अतिरिक्त राजाप्पेण् पवलवल्लि, शिरिप्पपोलि केट्टु आदि अन्य ग्रन्थ भी उल्लेखनीय हैं।

मनीआर्डर

एम० गोविन्दन्

“आज कैसे हैं ?”

“ज़रा सुधर रहे हैं ।”

“कफ़ की शिकायत ?”

“दवा लेने पर ज़रा कम हो गई है ।”

“शंकुरिण वैद्य भी कोई मामूली वैद्य तो नहीं है ।”

एक ओर ऐसी बातें चल रही थीं तो दूसरी ओर इससे भिन्न प्रकार के विचार-विमर्श भी हो रहे थे ।

“पैरों की सूजन तो ज़रूर कम है । फिर भी……कल हम लोग ज़रा घबराये ।”

“मगर………?”

“मगर-अगर क्या ?”

“कोई आशा नहीं दीखती । ढलती उम्र है न ?”

“ख़तरे से बच जाना तो अच्छा…”

“वह तो हम लोगों का अहोभाग्य ही समझना ।”

ये लोग हमारे बीमार चोयिमूप्पर से मिलने जाने वाले या मिल कर लौटने वाले हैं । इस तरह का आना-जाना एक हफ़्ते से हम लोगों का नियम-सा हो गया था । जो जिस किसी से मिलता, पहला सवाल यही करता—“चोयिमूप्पर से मिलने जा रहे हो या मिल कर लौट रहे हो ?”

हम लोगों ने भी सुना, गोडसे ने गान्धी जी की हत्या की । उस समय भी हम इतने परेशान नहीं हुए; दुखी नहीं हुए । गाँव के प्रधान, मंदिर के अधिपति और धनी-मानी “अच्छन्” तालाब में डूब मरे, तब भी हमें उतना दुःख-दर्द नहीं रहा ।

“क्या किया जाए ? उनके भाग्य में वही बदा था ।” यह सोच, हम लोग शान्त चित्त हो गये । मगर इस तरह हम लोग चोयिमूप्पर को विधि के हाथों में छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे ।

“कुछ विशेष प्रकार के पौधे होते हैं । वे जहाँ उगते हैं, वहाँ से उठा कर, दूसरी जगह रोपने पर ही वे ठीक-ठीक बढ़ते, फलते-फूलते हैं । बिल्कुल ऐसी ही दशा रही, हमारे चोयिमूप्पर की भी । न उनका जन्म हुआ हमारे गाँव में, न उनकी शिक्षा ही । वे अपनी चढ़ती जवानी में हमारे गाँव आये । फिर भी हमारे गाँव के सब कुछ बन गये । उनका गाँव वालों के साथ सब प्रकार से सम्बन्ध रहा । चुनाव के समय मतदान के लिए पार्टी वाले जब हमारे पास आते तो हम कहते : “देखिये, चोयिमूप्पर का घर वही है, ज़रा उनसे पूछ कर आना ।”

“चोयिमूप्पर ने मान लिया है ।”

“तब तो ठीक है ।”

उनकी बात के आगे हम लोगों को किसी तरह का एतराज़ नहीं रहता । दूसरे गाँव वाले हमारे गाँव में शादी-ब्याह करने की बात लेकर जब आते तो माँ-बाप चोयिमूप्पर से ही सलाह-मशविरा करते। वे एक दृष्टि से गाँव वालों के अभिभावक जो हो गये थे ।

घर के अन्दर-बाहर लोग जमा हैं । बरामदे में नम्बरदार आदि धनी-मानी सभी बैठे हैं तो आँगन में पारु, कोरन्, आयिच्चुम्मा आदि समाज के निम्न स्तर के लोग । भोजन के पहले ही ‘महन् नंपूतिरी’ तीन बार आकर चले गये । “किसी बुरी बात की आशंका हो तो तुरंत ख़बर देना ।” इस आदेश के साथ अपने कारिन्दे को वहीं छोड़ कर वे चले गये हैं ।

सभी का दिल उत्कंठा से मचल रहा था ।

वैद्यजी ने कहा : “शुक्रवार हो जाय ।”

सभी ने ईश्वर से प्रार्थना की “आज बुध, कल गुरु, परसों शुक्र। ख़तरे के बिना वह दिन गुज़र जाय तो अच्छा ।”

“वह गोली नहीं दी ? वायु की शिकायत के लिए अच्छी है ।”

“हाँ, दी तो ।”

“एक और दो न, अदरक के रस में मिला कर ।”

“इस बुढ़िया को ले चलने कोई यम नहीं आता । उसे चाहि अच्छे-बड़े लोग,” आँगन में बैठी बूढ़ी पारु ने शिकायत की—“मेर उम्र तो ढल चुकी । चोयिमूप्पर कितने जवान हैं ?”

“ख़ुदा की मर्जी ही चलेगी,” आयिच्चुम्मा बोली ।”

“हूँ ।……वह अब भी मेरी आँखों के सामने फिर रहा है मूप्पर कब यहाँ आये । तुमको याद नहीं ! कितने साल पुरानी बा है ।” बुढ़िया खाँसती-खाँसती पुरानी कहानी रटने लगी ।

अब उसे सोच कर हँसी आ रही है : “मैं और मेरा आदमी दोन खेत में फसल काट रहे थे । हमने देखा कि दूर से कोई आ रहा है पाँवों में बूट्स हैं । सिर पर टोपी । शर्ट-पतलून पहने हुए । हाथ एक छतरी भी । न आव देखता है न ताव । धड़ा-धड़ चला आ रह है । सच, मेरे पेट में जैसे आग लगी । ख़िलाफ़त का ज़माना भी था कौन जाने, कौन क्या है । मैं एकदम सब-कुछ वहीं छोड़ भाग गई और मेरे आदमी ने क्या किया, मालूम है ? वे एकदम छत पर च कर छिप गए । और बहुत देर तक काँपते बैठे रहे । आज ख़ूब तमाश सा लगता है ।”

“तमाशा-वमाशा सब बाद को । चुप रह…” किसी बड़े आदेश था ।

हाँ, बुढ़िया की स्मृतियाँ सच्ची-सही हैं ।

उस समय हमारा गाँव जंगल जैसा ही था, जबकि चोयिमूप्प पहले-पहल हमारे बीच आ गये । नवीन सभ्यता की रश्मियाँ हम त

नहीं पहुँची थीं । इसलिए दूसरे गाँव वाले हमारा मज़ाक करते, तुम्हारे गाँव की ओर कामदेव ने अपनी पीठ दिखाई है । सच आमतौर पर मामूली गाँव में जो सुविधाएँ होती थीं, हमारे गाँव में नहीं थीं । न अच्छी-ख़ासी सड़कें, न प्रारम्भिक स्कूल या डाक-घर । इसलिए यह आश्चर्य की कोई बात नहीं थी कि शर्ट-कोट पहने, टोपी लगाये, छतरी थामे किसी को देख लोग घबरा गये थे । लोगों में भ्रम फैला कि वह कोई बड़ा सरकारी अफ़सर है । पुलिस अफ़सर या कलक्टर या उस तरह का कोई और । कानों-कान ख़बर फैली, पुलिस अफ़सर आये हैं । धान कूटने वाली नाणियम्मा ने गर्भपात कराया था । उसकी तलाशी करने के लिए सरकार ने अपना आदमी भेजा है । क्या क्या उत्पात नहीं मचेंगे ? सब लोग भयभीत हो गए और घर के अन्दर घुस गए । लोगों की ऐसी भगदड़ देख, चोयिमूप्पर को भी आश्चर्य हुआ था । खेतों में काम करने वाले भी हल-हँसिया छोड़ भागे जा रहे थे ।

"कृष्णन्, तुम जाके देख आओ, कौन आया है ?" नंपूतिरि ने अपने कारिन्दे को भेजा—"कम से कम यह तो दिखाना चाहिये कि यहाँ पर आदमी रहते हैं ।"

कुट्टिकृष्ण मेनन पुराना 'हायर एलिमेंटरी' है । कोषिकोट (कलिकट) दो-तीन बार देख आया है । वह हम लोगों के बीच में अन्धों में काना जैसा था ।

"आप कहाँ से आ रहे हैं ?" विनम्र हो, सहमी हुई आवाज़ में कुट्टिकृष्ण मेनन ने चोयिमूप्पर से पूछा । 'हायर एलिमेंटरी' होने पर भी वह ज़रा डरा हुआ था ।

"पुत्तूर का घर कहाँ है ?" चोयिमूप्पर ने कारिन्दे को नख-शिखान्त देखते हुए पूछा ।

"यहीं है । मैं वहाँ का कारिन्दा हूँ । प्रथम कारिन्दा हूँ । हायर एलिमेंटरी पास हूँ ।"—इतना सब-कुछ कुट्टिकृष्ण मेनन ने एक ही साँस में कह डाला । शायद इसीलिए कि अपने गाँव की शान बची रहे ।

"बड़े नंपूतिरि से मिलना है ।"

"श्रीमान वहीं हैं । आप बता सकते हैं बात क्या है ?"

"मुझे उनसे सीधे मिलना है ।"

कारिन्दा ज़रा शरमा गया ।

चलते-चलते कुट्टिकृष्णन् कुछ नहीं बोला । वह बिल्कुल सहमा-सिकुड़ा हुआ जो था । चोयिमूप्पर के पीछे चलने वाले कुट्टिकृष्ण मेनन से लोगों ने इशारे से दरियाफ़्त किया कि कौन है । उसने भी इशारा किया कि चुप रहो ।

पुलिस अफ़सर आया है, यह जान कर नाणियम्मा दस मील चल कर अपनी मौसी के यहाँ चली गई । "हाय भगवान् । बला टल जाय ।" यही उसकी प्रार्थना थी ।

पूजा-पाठ से निवृत्त हो, बड़े नंपूतिरी बाहर बरामदे में आये । और आगत का अभिवादन किया ।

"हम मानते हैं कि कोई बुरी बात नहीं है ? हम सब मान-सम्मान रखने वाले हैं !"

"इस पर अपना हस्ताक्षर कीजिये ।" चोयिमूप्पर ने एक कागज़ बढ़ा दिया ।

"क्यों ? बात क्या है ?"—बड़े नंपूतिरि ने घबराई हुई आवाज़ में पूछा । कारिन्दे के चेहरे पर भी घबराहट के चिन्ह थे ।

"ख़तरा तो नहीं है न, कृष्णन्?"—नंपूतिरि ने अपने कारिन्दे से भी राय पूछी, "क्योंकि आजकल हस्ताक्षर करते वक्त बहुत सावधान रहना अच्छा है ।"

"जी नहीं, कोई ख़तरा नहीं है ।" चोयिमूप्पर ने समझाया । और हस्ताक्षर के बाद रक़म गिन कर दे दी ।

"हम बिल्कुल घबरा गए थे । पैसे के लिए था, तो पहले ही कह सकते थे ।" उस बूढ़े ब्राह्मण ने कहा । "तब तुम ⋯⋯ आप डाकिया हैं क्या ?" स्वभाववश नंपूतिरि के मुँह से 'तुम' आया, बाद को याद आया कि वे सरकारी नौकर हैं ।

चोयिमूप्पर के चले जाने के बाद 'अच्छन् नंपूतिरि' ने अपने कारिन्दे से पूछा—

"जाति-वाति का कोई पता नहीं है । सीधे बरामदे में आकर बैठ गए । अच्छा आज यहाँ शुद्धि-कर्म करना चाहिए । पर हाँ, सरकारी नौकर क्षत्रिय हैं, ऐसा भी एक मत है । इसलिए शुद्धि-कर्म न किया जाय तो भी कोई हर्ज़ नहीं है ।"

इस तरह एक नाटकीय ढंग से चोयिमूप्पर हमारे गाँव में पहले-पहल आये थे ।

अंदर से रोगी का खाँसना ज़ोर से सुनाई पड़ा । लोग घबरा गए । खाँसी का हरेक दौरा जैसे उन लोगों के जिगर का टुकड़ा कर रहा था ।

"बिटिया, पिता जी ने आज कुछ खाया क्या ?" यह नम्बरदार का सवाल था ।

पिता जी को पंखा करती चोयिमूप्पर की बेटी बैठी थी । वह बोली—"थोड़ी कंजि (क्वाथ) पी ली । बस ।"

रोगी को खाँसी रह-रह कर आती थी ।

"वैद्य जी से यहाँ आने के लिए कहना," किसी बुज़ुर्ग ने नौकर को आदेश दिया ।

चोयिमूप्पर का जीवन बिल्कुल साहसी और धीर था, विशेषकर, पुराने ढर्रे की दृष्टि से । प्रथम महायुद्ध में हवलदार बने । बसरा और एडन में जाकर लड़ाई की है । बंदूक लेकर दनादन गोली चलाना उनके लिए खेल-सा हो गया था । उनके पास फ़ौजी जीवन की बहुत-सी मज़ेदार बातें हैं । उस युद्ध-सेवा के उपलक्ष्य में ही चोयिमूप्पर को डाकिये की यह नौकरी मिली थी ।

पहले चोयिमूप्पर को उसी गाँव में नौकरी मिली, जहाँ उनका जन्म और शिक्षा वगैरह हुई थी । मगर शुरू में ही, खीर में लहसुन की बास की तरह एक घटना घटी । डाकिए ने ग्रामपति ज़मींदार का सम्मान नहीं किया । वे और उनके परिवार वाले जा रहे थे, चोयिमूप्पर ने सलाम नहीं किया । यही उनका अपराध था ।

"कौन है, वह बदमाश जो जा रहा है ?"

ग्रामपति ने पूछा। सचमुच उनका गुस्सा स्वाभाविक था। क्योंकि ऐसा साहस कौन करेगा कि उनके सामने से 'चरमराती' चप्पल पहने गुज़रे।

"पड़ौस का चोयि है।"

"हूँ, इतना उद्दण्ड।"

"थू"—डाकिए ने थूक दिया। उसका यह व्यवहार ज़मींदार को तीर-सा लगा। ग्रामपति का अपमान हुआ। इसलिए चोयिमूप्पर का तबादला हमारे गाँव के पास हुआ।

रोगी की जाँच करने शंकुरिण वैद्य अंदर गये।

"वैद्य जी, ज़रा होशियारी से देखना।"—किसी ने पीछे से, धीमी आवाज़ में मिन्नत की।

अनुशासनहीन और उद्दंड डाकिए का स्थान परिवर्तन हमारे गाँव से छः मील की दूरी पर एक गाँव को हुआ था। वहाँ पर नया डाकघर खुला था। मगर उसने अपना अड्डा जमाने के लिए हमारा गाँव ही चुन लिया था।

"मेरे लिए यही अच्छी जगह है। सुबह-शाम नदी में नहा-धो सकता हूँ। फिर किसी चीज़ की कमी भी नहीं।"—यही उसका कहना था।

हमारे गाँव की ही लड़की के साथ मूप्पर ने शादी भी कर ली। घर बसाया। पहले-पहल हमारे गाँव में एक पक्का मकान दिखाई पड़ा—गाँव का सेहरा—जैसे वही मूप्पर का मकान था। उसका घर किसी की नज़र से बच नहीं सकता था। वह हरे पत्तों के बीच में खिली हुई चमेली जैसा था।

"किसी डाक्टर को बुलाना ठीक मालूम होता है।"—किसी जवान ने राय दी जिसको शायद आयुर्वेद में उतनी आस्था न हो।

"वैद्य जी से भी सलाह लेना और क्या? शंकुरिण वैद्य कम योग्य नहीं है।"—बुजुर्गों को आर्य संस्कृति ही अधिक पसंद है।

हम लोगों को यह बिल्कुल पसन्द नहीं था कि उसको केवल चोयि या डाक वाला चोयि पुकारें। और भी सम्मान देना चाहिए। इसलिए हम लोगों ने उनके नाम के साथ "मूप्पर" (बुजुर्ग) भी लगा दिया। यों वे चोयिमूप्पर बन गये।

वैद्य जी को बाहर आते देख, लोगों ने सवाल शुरू किये।

"वैद्य जी........"

"एक बात........?"

"ज़रा सुनिए तो........"

उनके कान में किसी की आवाज़ घुसी भी नहीं। वे शायद कोई श्लोक याद कर रहे थे।

चोयिमूप्पर का दफ़्तर बरगद का साया था। सप्ताह में दो बार चिट्ठियों के साथ वे वहाँ बैठते।

कुट्टिभालू अम्मा, पी० के०
मूसकुट्टि मौलवी
चिरुतेयि उर्फ श्री देवी अम्मा
पल्लियालिल् पारु की बेटी चीरु

वे हरेक का पता ज़ोर से पढ़ते। अगर आदमी वहाँ रहता तो उसी के हाथ में पत्र दे देते। नहीं तो उसके पड़ोसी के हाथ में सौंप देते। हमारे गाँव के हर किसी का पता उनको कंठस्थ-सा था।

"इनको देख कर ही तो पहले हम लोग डर कर भाग गये थे।"—कोई पत्र लेते-लेते पुरानी बात याद करता।

आजकल उनको देखे बिना कोई नहीं रह सकता, ऐसी हालत हो गई है।

"अम्मिणिकुट्टि, तुम्हारे लिए एक पत्र है।"

"मेरे लिए?"—उसके गालों पर लालिमा फैलती और दिल में सपनों की दुनिया उतर आती।

"पत्र किसका है?" चोयिमूप्पर के ओंठों पर शरारत भरी मुस्कान छा जाती।

"हँसी-मज़ाक छोड़ के पत्र दीजिए न?"

चोयिमूप्पर को मालूम है सब-कुछ। इसलिए वह उसको अकेले में ले जाकर पत्र दिया करता। वैसे तो कितने ही प्रेम-नाटकों के सूत्रधार का काम उन्होंने किया था। प्रेम-नाटकों में कुछ सुखान्त होते तो कुछ दुखान्त।

"देखिए चोयिमूप्पर, पिता जी और भाई से मत कहना।"

"कहूँगा नहीं, मगर गड़बड़ न करना।"

गड़बड़ का मतलब वह जान लेती।

इक्कालि वारस्यार एक लोटा हाथ में लिए आ गई।

"यह क्या है?" किसी ने दरियाफ़्त किया, जो बरामदे में बैठा हुआ था।

"यह पलानी का पंचामृत है। मूप्पर बीमार है न? इसलिए उनको देने को लाई हूँ।"

"अन्दर जाइए।"

चोयिमूप्पर को देखते ही वह रो पड़ी। वे बिस्तरे पर परेशान पड़े थे। "डरने की कोई बात नहीं" इस आशय की मुस्कान मूप्पर के ओंठों पर छा गई। इक्कालि वारस्यार के जीवन में मूप्पर का बड़ा हाथ है। वह प्रेम में निराश हो, आत्म हत्या करने गई थी। उस समय मूप्पर ने ही उसको बहुत-कुछ समझाया और बचाया। जिन्होंने उस दिन उसको मृत्यु से बचाया था, आज वे ही मृत्यु की तरफ़ बढ़ रहे हैं। इसीलिए इक्कालि वारस्यार रो पड़ी थी। पलानी का पंचामृत उनको बचा सकता है कि नहीं, यह देखने के लिए शायद वह उसे ले आई थी।

दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। गाँव वालों में बहुत से जवान सेना में भर्ती हो गये। वे अपने-अपने घर वालों को पैसा भेजने लगे। मनीआर्डर पर मनीआर्डर आने लगे—इधर से, उधर से, चारों ओर से।

"अहमद को थोड़ा पैसा आया है।"

"कितना होगा? लड़के ने कोलंब से भेजा होगा।"

"अभी देखो न? पचास रुपये। ऐसी ही तो दूसरी पेटी बनानी होगी।"

"आप क्या जानते हैं, हमारी तकलीफ़ें ? खेत में काम करना है तो बैल चाहिएँ । कैसे खरीदूँ, यही मेरी फ़िक्र है ।"

"अच्छा, इस पर हस्ताक्षर करना ।"

"आप जानते नहीं, मुझे लिखना आता नहीं ।"

"छिः शरम की बात है । दाढ़ी-मूँछ लगाई है । लिखना आता नहीं । अच्छा, अपना अँगूठा तो दिखाओ ।"

अहमद का अँगूठा मनीआर्डर फार्म पर लग गया ।

"देखो, आगे हस्ताक्षर नहीं करोगे तो पैसा नहीं दूँगा । यह सरकारी क़ानून है ।"

"हम क्या करेंगे, मूप्पर ?"

"क्या करेंगे ? ज़रा लिखना सीखो ।"

"ऐसी ढलती उम्र में ?"

"शाम को रोज़ हमारे घर आओ । देखूँ, ये बूढ़े लोग सीखेंगे कि नहीं ?"

"मैं ज़रूर आऊँगा ।......अरे भूल ही गया । यह लीजिये न ! मेरी ख़ुशी ।"

"सब बाद को ।"

"नहीं, अभी ।"

मूप्पर ने अहमद की 'ख़ुशी' स्वीकार कर ली । वैसे उनकी आमदनी दूसरों की 'ख़ुशी' से बढ़ने भी लगी ।

सो इस डाकिए ने हमारे गाँव के बूढ़ों को हस्ताक्षर करना सिखाया, अपने बेटों के पते लिखने सिखाये । यह एक दृष्टि से किसी ग्रामीण शिक्षक का सिर झुकाने वाली बात थी । नौकरी से निवृत्त होते वक़्त उनका सारा आग्रह पूरा नहीं हुआ था । तभी वे रुग्णावस्था में पड़ गये । एक एलिमेंटरी स्कूल की स्थापना कराने में वे सफल हुए । ग्रन्थालय का काम पूरा नहीं हो पाया था । अभी थोड़ा बाकी है ।

खिड़की से कोच्ची ने झाँक कर अन्दर देखा । वह बेचारी बूढ़ी पुलायी थी (केरल की एक अंत्यज जाति की स्त्री) चोयिमूप्पर से मिलने आई थी । उनको देख बुढ़िया दुखी हुई । वे कैसे हट्टे-कट्टे थे ?

"पारु, खिड़की पूरी खोलो । कौन ? कोच्ची हो न ?"—चोयिमूप्पर ने पूछा ।

"जी हाँ, मूप्पर, कोच्ची हूँ । लड़की भी साथ है ।"

"कौन ? हवलदार ? कहाँ है ?"

अभिमान के साथ बुढ़िया ने अपने लड़के को नज़दीक बुलाया । वह छुट्टी पर आया हुआ था । मूप्पर बीमार है, यह जान वह क्या-क्या नहीं लाया है—बढ़िया कंबल, ओवलटिन, गूलूकोज़, टीन-दूध वगैरा वगैरा ।

कोच्ची की स्मृतियाँ हरी हो आईं ।

"हमारे लड़के की कोई ख़बर है मूप्पर ?"—एक बार रास्ते में चोयिमूप्पर से उसने पूछा था ।

"कौन ? लैन्स नायक की ?"

"हाँ, वह अब अविलतार है ।"

"अविलतार नहीं, हवलदार बोलो, ह-व हवलदार । लड़के की नौकरी का नाम भी नहीं बोल पातीं ।"

"हवल—"

"तार"

"कोलतार नहीं, दार, दार ।"

"हवलदार ।"

"अच्छा । गुरु दक्षिणा-निकालो । चूना है क्या ?"

"तंबाकू का टुकड़ा है क्या ?"

"हाँ तो ।"

मूप्पर तेज़ चल रहे थे । फिर भी वे वहीं खड़े-खड़े पान-सुपारी खाकर ही गए थे ।

"तुम्हारा लड़का होशियार है । मैं भी हवलदार था । जब अगली बार आयेगा, तो ले आना मेरे पास ।"

"ज़रूर ।"

"पारु," रोगी ने अपनी लड़की को बुलाया । "बिटिया, तुम तंग आ गईं, मेरी सेवा करते-करते ।"

"पिताजी, आप क्यों ऐसा कहते हैं ?"—बेटी का गला रुँध-सा गया ।"

"रोओ नहीं । मैंने यों ही कहा, बस । कणारन् और माधव कहाँ हैं ?"

"बाहर ही हैं ।"

"इधर बुलाओ तो ।"

बहन दोनों भाइयों को बुला लाई । तीनों पिता की रुग्ण-शय्या के पास खड़े हो गए । पिता अपनी तीनों संतानों को एकटक देखते रहे ।

"मैं ज़रा बैठना चाहता हूँ ।"

तीनों ने मिल कर पिता को बिठाया ।

जब कभी मूप्पर पारु का चेहरा देखते, उनको अपनी मृत पत्नी लक्ष्मी की याद आती । उसी का टुकड़ा जैसी थी, पारु । वही हँसी, वही दाँत, वही विनम्रता, सब कुछ लक्ष्मी का था । माता की हूबहू । मूप्पर को अब भी याद है—वह अपनी अन्तिम घड़ियों में मूप्पर के हाथों में लड़की को सौंप गई थी । ......अब तो कोई चिन्ता नहीं । क्योंकि पारु सयानी हो चुकी, कणारन् और माधव वे भी अपने ही परिश्रम से गुज़ारा कर सकते हैं ।

"तीनों मिल-जुल कर रहना ।"

तीनों फूट-फूट कर रोने लगे ।

"रोना नहीं बच्चो ! तुम्हारे लिए डरने की कोई बात नहीं । यहाँ के सभी लोग हमारे ही आदमी हैं । उन सबके साथ मिल-जुल कर रहना ।"

"पिताजी, आपकी जैसी आज्ञा ।"

"पारु, तुम जाके मेरी पेटी ले आओ ।"

कफ की शिकायत बढ़ने लगी थी । मूप्पर ने पेटी खोली और तीन पुस्तकें निकालीं । तीन पुरानी पुस्तकें, जिनको कहीं-कहीं दीमक ने खा लिया है । हरेक किताब एक-एक को दी गई ।

"देखो, यह तुम्हारे दादा की सम्पत्ति है। यही हमारी ध्रुवतारा है। यह तुम्हारे काम आएगी, जब तुम्हें कोई बात न सूझती हो जब कभी तकलीफ़ होती हो, इन ग्रन्थों को पढ़ना। कणारन्, तुम्हारी किताब क्या है?"

"आरोमच्चेकवर।"

"माधवन्, तुम्हारी?"

"आरोमुरिण।"

"और मेरी बिटिया की?"

"उरिणयाचा।"

"देखो, ये हमारे उन पूर्वजों की गाथाएँ हैं, जिन्होंने केरल का मान उन दिनों ऊँचा रखा था। उन्हीं के क़दमों पर चलना।"

"हाँ, पिताजी।"—तीनों सन्तानों की आँखों से आँसू टपकने लगे।

"अच्छा, बिटिया, वह गाना गाओ।

"सीधे लड़ कर मरते जाना,
वही मान है, वही शान है।"

"बच्चो, न किसी को धोखा देना, न किसी के धोखे में आना। यह बड़ा संसार एक रण-भूमि है। हर कोई अपनी लड़ाई खतम करके चला जाता है।……बिटिया, मैं थोड़ा समय बाहर बरामदे में जाकर बैठना चाहता हूँ। सूरज का प्रकाश देखे कितने ही दिन हुए।"

"अधिक दिन तक नहीं रहेंगे।" वैद्य जी ने बरामदे में बैठे बुजुर्गों से कहा, "शुक्रवार नहीं गुज़रेगा!"

"भगवान् मालिक है।"

कोई कुछ नहीं बोला।

बेटों के सहारे चोयिमूप्पर धीरे-धीरे बरामदे में आए। एक आराम-कुरसी पर लेट गए। चारों ओर आँखें दौड़ाईं। कितने लोग आए हुए हैं। सभी लोगों की आँखों में आँसू भरे हैं। सभी लोगों के आगे पुरानी स्मृतियाँ सजीव हो उठीं। सभी लोग यही जानने आए हैं कि अपने प्रिय मूप्पर की अन्तिम अभिलाषा क्या है?

मूप्पर के पीले चेहरे पर संतृप्ति और अत्यधिक कृतज्ञता के चिह्न दिखाई पड़े। सारा गाँव उनसे मिलने आया है। ऐसे विशिष्ट हृदय जो प्रेम कर सकते हैं और पा सकते हैं, विजित होते हैं, मृत्यु को भी हरा देते हैं। प्रेम का बदला प्रेम है, सेवा का बदला सेवा। यही सबसे बड़ी अमूल्य सम्पत्ति है, हरेक के जीवन में। यह सम्पत्ति हमें ब्याज सहित वापस मिलती है, न चोर उड़ा ले जाता है, न डाकू डाका मारता है।

"करीब…तीस साल हुए, मुझे यहाँ आए।"—चोयि मूप्पर धीरे से बोला: "मैं तीस…साल का था।"

वे लगातार बोल नहीं पाते थे। बीच-बीच में कमबख़्त खाँसी आ रही थी।

"इस अरसे में कितने लोगों को कितने पत्र दिए? कितने मनीआर्डर दिए। कोई हिसाब नहीं।"

सभी लोगों ने सम्मति में सिर हिला दिया।

"हाँ मैंने बहुत दिए हैं।"

कफ़ की शिकायत ने रोगी का गला रोक दिया। खाँसी शुरू हुई।

"कितने लोगों से हस्ताक्षर करवाए। अँगूठे का निशान लगवाया। कितने लोगों को मनीआर्डर दिए मगर…अब तक…मुझे…मु…झे…कोई…मनी…आर्डर…न…हीं…मि…ला…।"

वे बात पूरा नहीं कर पाए। बहुत हाँफने लगे, मानों मृत्यु उनकी आत्मा को तिल-तिल बाहर निकाल रही हो।……

उस घर के बरामदे में एक नया आदमी आया और बोला—"चोयिमूप्पर के नाम मनिआर्डर है।"

बहुत-से लोग बैठे हुए थे, बरामदे में। कोई कुछ नहीं बोला। आपस में देखा, बस। नए डाकिए की ओर भी देखा।

"मनीआर्डर है, उनके नाम," डाकिए ने दुहराया।

बरामदे में दवात और कलम हैं। पास ही एक चवन्नी भी, आँसू की बड़ी बूँद की तरह। पारु ने बिना कुछ बोले चवन्नी डाकिए को दे दी।

अनुवादक: पी० एन० भट्टतिरी

* * *

मराठी कविता

चट्टान

मंगेश पाडगांवकर

कुलबुल ठण्डी हुई
झूलती शान्त तरंगे।
कब की मिटी कि
सिकता पर की
वे पदांक की राहें।

वेला पर
तरल सजल है शांति,
झिलमिल ऊपर
तृप्त धूप की
पीली रेशम कांति।

उठती धीमी
पानी पर तरंग,
अभी नहा कर
धीमे-धीमे
मानो यह चट्टान सुखाती अंग!

* * *

मुहम्मद इक़बाल

रामधारीसिंह 'दिनकर'

(दिसम्बर अंक से आगे)

नीत्से के समान इक़बाल भी जीवदया और अहिंसा सिखाने वाले दर्शनों के विरुद्ध हो गये और इस्लाम में उन्होंने जो संशोधन किया उससे जिहाद की कल्पना सार्थक दीखने लगी।[1] उन्होंने एक बात पकड़ी और उस पर वे आग्रहपूर्वक अड़ गये। "मनुष्य में जीवन का जो केन्द्र-बिन्दु है, वही उसकी खुदी या व्यक्तित्व है। व्यक्तित्व मनुष्य के भीतर की संघर्ष या तनाव की स्थिति को कहते हैं। जब तक मनुष्य के भीतर तनाव की हालत मौजूद है, जब तक संघर्ष करने की उसकी योग्यता बाक़ी है, तभी तक उसका व्यक्तित्व भी क़ायम है। तनाव के ढीला होते ही शिथिलता आरम्भ हो जाती है। चूँकि तनाव की स्थिति या व्यक्तित्व मनुष्य की सबसे बड़ी प्राप्ति है, उसे चाहिए कि आख़िरी दम तक अपने भीतर वह शैथिल्य को न आने दे। जो भी बातें तनाव और संघर्ष को तेज़ करती हैं, वे ही हमें अमरता प्रदान करने वाली हैं। इस प्रकार, व्यक्तित्व के विचार से ही जीवन के मूल्य उत्पन्न होते हैं, उसी से पाप और पुण्य का भी निर्धारण होता है। पुण्य वह है जिससे व्यक्तित्व की दृढ़ता बढ़ती है, पाप वह है जिससे उसका ह्रास होता है। कला, धर्म और आचार, सबकी परीक्षा इसी व्यक्तित्व की कसौटी पर की जानी चाहिए। अफलातून की मैंने जो आलोचना की है, वह, असल में उन सभी धर्मों और दार्शनिक सिद्धान्तों की आलोचना है जो जीवन नहीं, मृत्यु को मानव-जीवन का आदर्श बतलाते हैं। जीवन की सबसे बड़ी बाधा भूत (मैटर) है और ये धर्म मैटर को जीत कर उसे आत्मसात् करने के बदले मनुष्य को उससे भाग खड़े होने की शिक्षा देते हैं।

"......बौद्ध धर्म, ईरानी रहस्यवाद और उनके समान अन्य सारी आचार-पद्धतियाँ हमारे उद्देश्य के प्रतिकूल हैं, उनसे हमारा काम नहीं चलेगा। फिर भी, उनका थोड़ा-बहुत उपयोग हो सकता है, जैसे कि काम से थके मनुष्य के लिए कभी-कभी अफ़ीम और नशे की भी ज़रूरत होती है। ऐसे दर्शन, ऐसे विचार और ऐसे कार्य जीवन की धूप में रात की अँधियाली रचते हैं।"[2]

इसी से मिलता-जुलता इक़बाल का 'खुदी' विषयक सिद्धान्त है जिसे लेकर विद्वानों में काफ़ी माथा-पच्ची रही है और जिसके कारण मुल्लाओं ने इक़बाल का विरोध भी किया था। खुदी से कुछ लोग आत्मा या रूह का अर्थ लेते हैं। अब तक के सभी धर्मों ने आत्मा का गुण विनय और निर्मलता कहा था, किन्तु, लोग यह देख कर विस्मित रह गये कि इक़बाल इसका प्रयोग अबाध वीरता और अहंकार के पर्याय के रूप में करते हैं।

खुदी को कर बुलन्द इतना कि हर तक़दीर के पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रज़ा क्या है?

किन्तु, इक़बाल की खुदी आत्मा नहीं, मनुष्य के व्यक्तित्व का पर्याय है। इक़बाल आत्मा और शरीर को दो नहीं, एक मानते हैं। अतएव, जो गुण शरीर का है वही आत्मा का भी होना चाहिए अथवा जो गुण आत्मा का है वही शरीर में भी आना चाहिए। अपनी खुदी की फ़िलासॉफ़ी की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि "मनुष्य का नैतिक और धार्मिक आदर्श जीवन को स्वीकार करना है, उसे ठुकराना नहीं। और इस आदर्श की प्राप्ति वह व्यक्तित्व के विकास द्वारा करता है। व्यक्तित्व औरों से भिन्न तथा अपने अधिक अनुरूप होने को कहते हैं। सबसे अधिक भिन्न व्यक्ति ईश्वर है। इसीलिए, कुरान की आज्ञा है कि अपने भीतर उन गुणों का विकास करो जो ईश्वरीय हैं। अतएव, मनुष्य जब ईश्वर के समान बनने की कोशिश करता है, तभी उसका व्यक्तित्व औरों के व्यक्तित्व से अधिक से अधिक भिन्न होने लगता है। खुदी इसी व्यक्तित्व के विकास का चरम-बिन्दु है जहाँ पहुँच कर मनुष्य केवल अपने समान आप रह जाता है। ईश्वर के जो अधिक से अधिक समीप है, मनुष्यों में वही अधिक से अधिक श्रेष्ठ और महान् है। और ऐसा नहीं होता कि एक दिन वह ईश्वर में समा जाता है, प्रत्युत्, यह कि काल पाकर वही ईश्वर को अपने भीतर लीन कर लेता है। सच्चे मनुष्य में केवल भूत (मैटर) ही नहीं समाते, उसके भीतर ईश्वर भी विलीन हो जाता है।[3] जीवन का लक्षण है कि वह प्रत्येक बाधा को आत्मसात् करके आगे बढ़ता जाता है। जीवन का दूसरा लक्षण यह है

---

[1] 'रमूज़े-बेखुदी' में तीर तलवार से कहता है कि "तुम में जो आग है वह परमेश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का तेज है। तुम्हारी छाया में स्वर्ग विजेताओं की प्रतीक्षा करता है।" उसी पुस्तक की एक दूसरी कविता में इक़बाल कहते हैं, "तलवार धर्म की तेजस्विता के लिए जीती है। वह जब भी म्यान से बाहर निकलती है, केवल धर्म की रक्षा करने के लिए।"

(रमूज़े-बेखुदी के द मिस्ट्रीज़ ऑव सेल्फ़लेसनेस नामक अंग्रेज़ी अनुवाद से)

[2] सिक्रेट्स ऑव द सेल्फ़ की भूमिका में उद्धृत इक़बाल का मत।

[3] काफ़िर की यह पहचान कि आफ़ाक़ में गुम है,
मोमिन की यह पहचान कि गुम इसमें है आफ़ाक़।
× × ×
जँचते नहीं कुंजश्को-हमाम इसकी नज़र में,
जिबरीलो-सराफ़ील का सैयाद है मोमिन। (बाले-जिबरील)

आफ़ाक़=दुनिया। जिबरील-सराफ़ील=दो देवदूतों के नाम।

कि वह रोज़ अपने भीतर नई-नई इच्छाएँ और नई-नई कामनाएँ उत्पन्न करता है और उन्हें प्राप्त करके फिर नई कामना लेकर नये लक्ष्य की ओर बढ़ जाता है।[४] जीवन की सबसे बड़ी बाधा प्रकृति है, किन्तु, प्रकृति भी बुरी नहीं कही जा सकती क्योंकि उसी की बाधा के कारण जीवन को अपनी अन्तर्हित शक्तियों को प्रत्यक्ष करने का अवसर मिलता है।"

खुदी और प्रेम का समन्वय करते हुए इक़बाल ने लिखा है कि "खुदी की दृढ़ता इश्क से आती है। इस शब्द का प्रयोग मैंने व्यापक अर्थ में किया है। यहाँ इसका अर्थ दूसरों को आत्मलीन या आत्मसात् करना है। इसका सबसे ऊँचा रूप मूल्यों और आदर्शों का निर्माण तथा उन्हें प्राप्त करने का प्रयास है। प्रेम के कारण प्रेमी और प्रेमिका दोनों अनूठे, दोनों ओरों से भिन्न हो जाते हैं। अतएव, जो सबसे अनूठा व्यक्तित्व (अर्थात् ईश्वर) है, उसकी अनुभूति का प्रयास प्रेमी के व्यक्तित्व को भी अनूठा बना देता है। किन्तु, प्रेम यदि व्यक्तित्व को बढ़ाता है तो सवाल (याचना) उसे कमज़ोर भी करता है।[५] जो बेटा बाप के धन पर जीना चाहता है, वह सवाली है, याचक है। ऐसे ही वे सभी लोग हैं जो दूसरों के विचारों पर जीवित रहना चाहते हैं। अतएव, व्यक्तित्व की रक्षा और विकास का उपाय यह है कि हम याचना करना छोड़ दें।"[६]

इक़बाल खुदी के तीन नियम मानते हैं। पहला यह कि साधक धर्म की आज्ञा माने, दूसरा यह कि वह अपने ऊपर नियंत्रण रखे जो खुदी या आत्मचेतना का सबसे बड़ा प्रमाण है। तथा तीसरा यह कि वह पृथ्वी पर भगवान् का प्रतिनिधि (नायब या वाइस-रिजेंट) बन कर रहे या राज करे।[७]

इक़बाल जिसे ईश्वर का वाइस-रिजेंट या नायब कहते हैं, वह नीत्से के महामानव (सुपरमैन) का अरबी अनुवाद है। नीत्से ने ईश्वर का नाम नहीं लिया, इतना फ़र्क़ अवश्य दीखता है किन्तु, बाक़ी बातों में नीत्से के सुपरमैन और इक़बाल के वाइस-रिजेंट में कोई भेद नहीं है।[८] इक़बाल कहते हैं, "यह नियाबते-इलाही पृथ्वी पर मनुष्य विकास का तीसरा और अन्तिम सोपान है। नायब पृथ्वी पर भगवा प्रतिनिधि-स्वरूप है। वह खुदी की पूर्णतम प्रतिमा और मानवता मंज़िल है। हम में जो मानसिक अशान्ति और विरोध है, वह नाय आकर अपना समाधान पा लेती है। उसमें उच्च-से-उच्च शक्तियाँ से-उच्च ज्ञान से मिल कर एकाकार रहती हैं। उसके जीवन, वि और कर्म में बुद्धि और सहज प्रवृत्ति में विरोध नहीं रहता। मान के वृक्ष का वह अन्तिम फल होगा एवं मनुष्यता ने आज तक वि की जो भी वेदनाएँ सही हैं वे, नायब के अवतार के साथ सार्थक जायेंगी। मनुष्यों का सच्चा शासक नायब ही होगा, क्योंकि उ शासन धरती पर परमात्मा का शासन होगा। वह विकास का अ बिन्दु होगा। विकास के क्रम में हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, त्यों- हम नायब के समीप होते जाते हैं। और उसके पास पहुँचने की कोशि में हम अपने आपको ऊपर उठाते जाते हैं। मनुष्य के शरीर और का सम्यक् विकास वह शर्त है जिसके बिना नायब का जन्म होगा। आज तो वह सिर्फ़ कल्पना है, विचार और आदर्श है, कि मानवता का विकास होते-होते मनुष्यों की ऐसी जाति उत्पन्न हो जिसके सदस्य बहुत कुछ अनूठे व्यक्तित्व वाले होंगे और ऐसे माता-पिता से नायब उत्पन्न होगा। इस प्रकार, पृथ्वी पर परमात्मा

---

[४] जीवन अन्वेषण के बीच है। उसका जन्म अज्ञात इच्छाओं के भीतर से होता है। अपने हृदय में कामनाओं को जिलाये रखो, अन्यथा तुम जिस मिट्टी से निर्मित हुए हो वह क़ब्र बन जायगी। (असरारे-खुदी)

[५] "ईश्वर उसे प्यार करता है जो अपनी जीविका आप कमाता है। उस व्यक्ति को धिक्कार है जो अपनी रोटी दूसरों की मेज़ से पाता है।...वह मनुष्य धन्य है जो धूप में प्यास से जलने पर भी खिज़र से एक प्याला पानी नहीं माँगता। ...भीख में मिला हुआ समुद्र भी ज्वालादधि है। अपने हाथों से संचित थोड़ी-सी शबनम भी उससे श्रेष्ठ और सुस्वादु होती है।" (असरारे-खुदी)

[६] सिक्रेट्स ऑव द सेल्फ़ की भूमिका से।

[७] "जो भी सूरज और सितारों पर हुक्म चलाने का अभिलाषी है, उसे पहले धर्म का हुक्म मानना चाहिए।...तारे भी अपने लक्ष्य की ओर किसी धर्म के सामने मस्तक नत किये हुए चलते हैं।"

"जो अपने ऊपर हुक्म चलाने की योग्यता से हीन है वह दूसरों के हुक्म में रहेगा।"

"यदि तुम अपने ऊँट को बस में रख सके तो सारा संसार तुम्हारे बस में हो जायगा।"

"पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि बन कर राज करना श्रेष्ठ है। उसी नाय व्यक्तित्व में सामंजस्य भरने के लिए मुट्ठी भर धूलों की धरती ऊपर उठ है। इसी धूल से वह विजेता उत्पन्न होगा। ओ भाग्य पर सवारी करने वाले उठो! क्रान्ति की अँधियाली के प्रकाश! अब प्रकाश में आओ! जीवन का अंधकारपूर्ण है, इसमें किरणें छिटकाओ। राष्ट्रों के कोलाहल को शान्त क उठो और मिल्लत (इस्लामी भ्रातृत्व) की वीणा में अपना सुर भरो। जो युद्ध रहे हैं, उन्हें शान्ति का सन्देश दो।" (सिक्रेट्स ऑव द सेल्फ़)

[८] नीत्से की कल्पना की भाषा यह है: "मैं तुम्हें महामानव के विष समझाता हूँ। मनुष्यता वह चीज़ है जिससे मनुष्य को आगे जाना है। मनुष्यता सीमा पार करने के लिए तुमने क्या किया है? सभी जीवों ने अपने से आ जीव तैयार किये और तुम भाटे के वेग में बह कर पीछे जाना चाहते हो तु पीछे हट कर पशु बन जाना पसन्द है. किन्तु, तुम मनुष्य से आगे बढ़ कर मनुष्य नहीं बनोगे? बन्दर मनुष्य के आगे क्या है? केवल हँसी की चीज़, वे ग्लानि का पात्र। जो स्थिति बन्दर की मनुष्य के आगे है, वही स्थिति मनुष्य महामनुष्य के सामने होगी। तुम कीट से बढ़ कर मनुष्य हुए हो, किन्तु, अभी तुम में कीटों की संख्या कम नहीं है। एक समय तुम मर्कट थे और आज भी मनु में मर्कटता मर्कटों से भी अधिक है।

"...इस पृथ्वी का सारा अर्थ महामानव है। अपने संकल्प को जगा कर भी कहो कि पृथ्वी का सारा अर्थ महामानव है।

"...मनुष्य लक्ष्य नहीं, सेतु है। उसका सबसे प्यारा गुण यह है कि वह उ जा रहा है और नीचे आ रहा है।...मैं उन्हें प्यार करता हूँ जो नीचे जा हैं, जो पृथ्वी को क़ुर्बानी चढ़ा रहे हैं कि महामानव की पृथ्वी अस्तित्व में आ मैं उन्हें प्यार करता हूँ जो ज्ञान के लिए जीते हैं जिससे कि महामानव का अव हो। महामानव के अवतार की कामना, यही उनकी अधःयात्रा है।...मैं उसे करता हूँ जो श्रम कर रहा है, आविष्कार कर रहा है जिससे कि महामानव भवन तैयार हो, जिससे कि महामान के लिए धरती, पशु और पौधे तैयार हो

(नीत्से कृत दस स्पेक जरथुस्त्र

राज्य का अर्थ यह है कि यहाँ जो प्रजातन्त्र क़ायम होगा उसके सदस्य नूठे व्यक्तित्व वाले होंगे, जिनका मुखिया वह व्यक्ति होगा जिसका यक्तित्व सबसे अनूठा, सबसे भिन्न होगा । इस आदर्श जाति झाँकी नीत्से ने भी देखी थी, किन्तु, नास्तिक और अमीरों पक्षपाती होने के कारण, उसने अपनी कल्पना को कुरूप बना या ।”[९]

आज की भाषा में, नीत्से की कल्पना का महामानव फ़ासिस्ट कहा ायगा, किन्तु, इक़बाल की कल्पना का महामानव किसी प्रकार का जातन्त्री मनुष्य है । हाँ, इतना इज़ाफ़ा हम और कर सकते हैं कि वह सलमान होगा, क्योंकि पाश्चात्य ढंग की प्रजासत्ता इक़बाल को पसन्द हीं थी । उन्होंने लिखा है कि “यूरोप का प्रजातन्त्र यूरोपीय समाज के ार्थिक उद्धार के क्रम में प्रकट हुआ इसलिए, उसके भीतर समाजवादी र अराजकतावादी आन्दोलनों का आतंक व्याप्त है । किन्तु, नीत्से प झुण्ड-शासन से घृणा करता है और जन-साधारण के ऊपर कोई रोसा या विश्वास न रख कर समस्त उच्च संस्कृति का ध्येय महानवों की एक ख़ास जाति का उद्भव और विकास बताता है । किन्तु, ा जनसाधारण, सचमुच ही, इतना अपदार्थ है ? इस्लामी प्रजातन्त्र जन्म आर्थिक अवसरों के विकास से नहीं हुआ । इस्लाम में प्रजाता या जम्हूरियत एक आध्यात्मिक सिद्धान्त है जिसका आधार यह व है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर अनन्त सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं निका विकास चरित्र विशेष के पालन से किया जा सकता है । इन्हीं धारण व्यक्तियों में से इस्लाम ने अद्भुत मनुष्य तैयार किये थे नका जीवन और जिनकी शक्ति अत्यन्त उत्तम थी । इस दृष्टि से क्या लाम का आरम्भिक प्रजातन्त्र नीत्से के प्रजातन्त्र-विरोधी मतों के डन की दलील नहीं है ।”[१०]

कवि जैसे संस्कारों में पलता है, उसकी भावना भी वैसी ही होती है । इक़बाल को पढ़ते हुए क़दम-क़दम पर यह अनुभव होने ाता है कि यूरोपीय राष्ट्रों से इस्लाम का संघर्ष, इंग्लैंड द्वारा टर्की कुसेवा और ईसाइयों द्वारा इस्लाम की आलोचना उन्हें याद थी । लिए, वे, मौक़ा मिलते ही, यूरोपीय सभ्यता पर डंक मार बैठते ।[११] यह भी अनुभव होता है कि सर सैयद, हाली, चिराग अली, ीर अली और, सबसे बढ़कर, मौलाना शिबली ने मुसलमानों अपने धर्म और इतिहास के प्रति जो गौरव जगाया था, उसका कार इक़बाल में अत्यन्त प्रबल था । इसीलिए, वे इस्लाम के सिवा और किसी धर्म की प्रशंसा करने में असमर्थ रहे ।[१२] साथ ही, भारत में चूँकि प्रजा-सत्ता मुसलमानों को पूरी अनुकूल नहीं दीखती थी, इसलिए, उन्होंने राष्ट्रीयता और प्रजा-सत्ता, दोनों में अपना विश्वास खो दिया । खिसकते-खिसकते, वे एक ऐसी जगह जा पहुँचे जहाँ देश, राज्य, इतिहास तथा शासन की एकता और एक साथ जीने-मरने और संघर्ष करने की बातों का राष्ट्रीयता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था । किन्तु, राष्ट्रीय भाव इक़बाल मुसलमानों में भरना ज़रूर चाहते थे । अतएव, उन्होंने उपदेश दिया कि विश्व भर में फैले हुए मुसलमान राष्ट्रीयता के एक सूत्र में आबद्ध किये जा सकते हैं ।[१३] किन्तु, तफ़सील में आने पर यह कल्पना उन्हें भी कठिन जान पड़ी । अतएव, उन्होंने सोचा कि “अभी तो यही सम्भव है कि प्रत्येक मुस्लिम राष्ट्र अपने भीतर डूब कर विचार करें, अपना सारा ध्यान अपने आप पर केन्द्रित करे । फिर, जब ये सब के सब सुदृढ़ और बलवान हो जाएँ, तब उन्हें लेकर प्रजातंत्रों का एक सम्मिलित परिवार खड़ा किया जा सकता है । सच्ची और प्राणवती एकता किसी पर ऊपर से लादी नहीं जा सकती । इसके लिए आवश्यक होगा कि प्रत्येक प्रजातन्त्र की स्वाधीनता बरकरार रहने दी जाए, उनके आपसी तनाव और आनुवंशिक (रेसियल) द्वन्द्व परस्पर सामंजस्य में ले आए जाएँ और उन सब के बीच एकता का वह भाव प्रतिष्ठित रहे जो समान आध्यात्मिक उमंगों से प्रवाहित होती है । मुझे तो ऐसा दीखता है, मानो, परमेश्वर धीरे-धीरे हम सब को यह बता रहे हैं कि इस्लाम राष्ट्रीयता नहीं है, वह साम्राज्यवाद भी नहीं है, असल में, वह राष्ट्रों का समूह है जो देशगत सामाओं को केवल नाम और सुविधा के लिए ही अंगीकार करता है, अपने सदस्यों के सामाजिक क्षितिजों को सीमित करने को नहीं ।”[१४] यही मनोदशा थी जिसने उन्हें बाँगे-दरा के वातावरण से बाहर निकाल दिया । यही वह मुद्रा थी जिसमें इक़बाल इस्लाम को भारत से बाहर ले जाने को अपना श्रेष्ठ सुकर्म समझने लगे । और यही वह पीड़ा थी जिसने उनके भीतर पाकिस्तान की कल्पना प्रस्फुटित की । संयोग की बात कि जब वे सन् १९३० ई० में मुस्लिम लीग के सभापति हुए तब अखिल भारतीय मंच से पहले उन्हीं के मुख से पाकिस्तान शब्द निकला और उन्हीं ने पाकिस्तान

---

९. सिक्रेट्स ऑव द सेल्फ की भूमिका से ।

१०. वही ।

११. तेरी हरीफ है या रब, सियासते-अफरंग,
मगर, हैं इसके पुजारी फ़कत अमीरो-रईस ।
बनाया एक ही इबलीस आग से तू ने,
नाए खाक से उसने दो सद हजार इबलीस । (बाले-जिबरील)

× × ×

म्हारी तहजीब अपने खंजर से आप ही खुदकुशी करेगी ।
ो शाखे नाज़ुक पै आशियाना बनेगा नापायदार होगा ।

१२. “मेरे बाद और कोई पैगम्बर नहीं होगा, यही ईश्वरीय आज्ञा है ।”

“मुसलमान सबसे विरत हो कर ईश्वर में अनुरक्त रहता है और एलान करता है कि मनुष्य-जाति में हम से आगे और कोई नहीं है ।” (रमूज़े-बेख़ुदी)

१३. “हमारा अस्तित्व किसी एक स्थान के घेरे में नहीं है । हमारी शराब की तेजी किसी एक प्याले में महदूद नहीं है । हमारी सुराही की मिट्टी चीनी भी है और हिन्दुस्तानी भी, हमारे शरीर की धूल टर्की की भी है और सीरिया की भी । मगर, हमारा दिल न तो हिन्दुस्तान में है, न सीरिया और रूम में । इस्लाम को छोड़ कर हम किसी भी पितृदेश में विश्वास नहीं करते ।”

“जानते हो कि मुहम्मद अपनी जन्मभूमि मक्का को छोड़ कर मदीना क्यों भाग गए ? हिजरत मुसलमान का ईमान है; हिजरत उसके जीवन में स्थायित्व भरती है । इसका अर्थ है संकीर्णता को छोड़ कर विशालता में पहुँचना, शबनम को छोड़ कर समुद्र पर विजय पाना ।” (रमूज़े-बेख़ुदी)

१४. ‘रिकंस्ट्रक्शन ऑव रिलीजियस थाट इन इस्लाम ।’

प्राप्त करने का दर्शन तैयार कर दिया जिससे हिन्दुओं से अलग होकर मुसलमानी राज बसाने की माँग में मुसलमानों को जो संकोच[१५] होता था, वह जाता रहा।

'माडर्न इस्लाम इन इण्डिया' के लेखक ने एक स्थान पर इक़बाल को 'विफलताबोध' (फ्रस्ट्रेशन) का कवि कहा है और ऊपर के संदर्भ में उनकी निराशा प्रत्यक्ष है भी। ख़िलाफ़त के टूट जाने पर भी, इक़बाल इस आशा में रहे कि फिर कोई ख़िलाफ़त तैयार हो सकती है जिसके अधीन संसार के तीस करोड़ मुसलमान एक धर्म सूत्र में आबद्ध रहेंगे। किन्तु, वह नहीं हुआ। तुर्कों का साम्राज्य खंडित हो गया। ख़िलाफ़त अदृश्य हो गया। टर्की ने अपने को धर्म-राज्य मानना छोड़ दिया। और अरबी राज्य टूट कर कई स्वाधीन एवं अर्ध-स्वाधीन राज्यों में बँट गया। यह इस्लाम के विघटन का दृश्य था जिसे इक़बाल बर्दाश्त नहीं कर सके। अतएव, इस्लाम का विश्व-राज्य स्थापित करने को छोड़ कर उन्हें, मुसलमानों की उन्नति का और कोई उपाय पसन्द नहीं आया।

कोई-कोई लेखक इक़बाल पर यह आरोप भी लगाते हैं कि उन्होंने लोगों की क्रिया-शक्ति को उभार कर उसे चंचल तो कर दिया, किन्तु, वे यह बताना भूल गये कि क्रिया-शक्ति का उपयोग किस ध्येय की प्राप्ति के लिए किया जाय। यही कारण है कि हर तरह के आदमी उनका नाम लेकर उछलने लगे और प्रत्येक प्रकार के कर्मठ आन्दोलन को उनसे समर्थन मिलने लगा। यहाँ विचारणीय यह है कि पाकिस्तान का नाम लेकर इक़बाल ने भारतीय मुसलमानों को किसी भ्रम में नहीं रखा, किन्तु, यह नाम उन्होंने काव्य में नहीं, राजनीति के मंच से लिया था। कवि के लिए तक़सील में जाकर नक्शा बनाना सम्भव नहीं होता। वह तो बादल है जो बरस जाता है। यह कैसे सम्भव है कि बादल बरसे भी और अपने पानी को किसी खेत में जाने दे एवं बाकी खेतों में जाने से उसे रोक रखे? कवि 'डायनिमो' है जो शक्ति क्षरित करता है। उस शक्ति का उपयोग किस उद्देश्य के लिए किया जाय, इसका निर्धारण करने वाले और लोग होते हैं।

इक़बाल दलित जाति के कवि थे, इसलिए उनमें बेचैनी का होना स्वाभाविक था और चूँकि इस जाति के दलन का सबसे बड़ा कारण उसकी निश्चेष्टता थी, इसलिए, इक़बाल ने सबसे अधिक ज़ोर भी कर्मण्यता पर ही दिया।[१६] सुकर्म की प्रशंसा तो सभी करते हैं। इक़बाल ने अकर्मण्य की अपेक्षा उस व्यक्ति को भी श्रेष्ठ समझा जो और नहीं तो ग़लतियाँ ही करता रहता है।[१७] धर्म के बाह्य आडम्ब की निन्दा तो सब दिन से होती आई थी। इक़बाल की विशेषता है कि उन्होंने आडम्बरों को पुण्य की विकृति नहीं, सीधे पाप कहा उनका ध्यान मुसलमानों की ग़रीबी पर था[१८], उनका ध्यान संस की पूँजीवादी व्यवस्था पर था, जिसके अधीन अमीर ग़रीब को लू रहते हैं।[१९] ऐसी अवस्था में धर्म यदि ग़रीबों को सन्तुष्ट रहने कहे, दुःखों को उनके अपने कर्मों का फल बता कर उन्हें निश्चेष्ट र का उपदेश दे तो धर्म मनुष्य की प्रगति का बाधक बन जाता है। अतए इक़बाल ने असन्तोष और बेचैनी को पौरुष का लक्षण बताया, क्यों जो सन्तुष्ट है उसकी क्रिया ढीली और प्रयत्न शिथिल पड़ जाते हैं।[२०]

इक़बाल ने अनवरत कर्म, निरन्तर संघर्ष और सतत नि प्रयास का जो दर्शन तैयार किया, वह केवल मुसलमानों ही न हिन्दुओं तथा अन्य जातियों के लोगों के भी फ़ायदे की चीज़ थी पर, चूँकि उन्होंने कर्म की दिशा का संकेत नहीं किया, न य बताया कि हिंसा, उत्पात और व्यर्थ की हलचल, कर्म नहीं, कुकर्म है[२१]

---

१५. पिछले युद्ध के दिनों में आरबेरी ने 'इस्लाम टू डे' नामक एक पुस्तक निकाली जिसमें सर हसन सुहरावर्दी का एक लेख है। इस लेख में भी लेखक ने कहा है कि पाकिस्तान की माँग भारत के विभाजन की माँग नहीं है। वह विभाजन की माँग तो थी ही, मगर, आरम्भ में शर्म से अच्छे लोग वैसा नहीं कहते थे।—लेखक

१६. ख़ुदा तुझे किसी तूफ़ाँ से आशना कर दे,
कि तेरे बह्र की मौजों में इज्तराब नहीं।
तुझे किताब से मुमकिन नहीं फ़राग़ कि तू
किताबख्वाँ है, मगर, साहबे-किताब नहीं।
(तालबे-इल्म; बाले-जिबरील)

१७. तू समझता नहीं अय जाहिदे नादाँ इसको
रश्के-सद सिज्दा है एक लग़ज़िशे मस्तानाये-दिल। (बाँगे-दरा)

१८. वो फ़ाक़ाक़श कि मौत से डरता नहीं ज़रा,
रूहे-मुहम्मद इसके बदन से निकाल दो। (बाले-जिबरील)

× × ×

बुतखाने के दरवाज़े पै सोता है बरहमन
तक़दीर को रोता है मुसल्माँ तहे-मेहराब। (बाले-जिबरील)

१९. उट्ठो, मेरी दुनिया के ग़रीबों को जगा दो,
काख़े-उमरा के दरो-दीवार हिला दो।
जिस खेत से दहक़ाँ को मयस्सर न हो रोज़ी,
उस खेत के हर ख़ोशये-गन्दुम को जला दो। (बाले-जिबरील)

× × ×

बता क्या तेरी ज़िन्दगी का है राज़?
हज़ारों बरस से है तू ख़ाक़बाज़।
इसी ख़ाक में दब गई तेरी आग,
सहर की अज़ाँ हो गई, अब तो जाग। (पंजाब के दहकान से; बाले-जि
गो इसकी खुदाई में महाजन का भी है हाथ,
दुनिया तो समझती है फरंगी को खुदावन्द। (बाले-जिबरील)

× × ×

२०. है वही तेरे ज़माने का इमामे बरहक़
जो तुझे हाज़िरो-मौजूद से बेज़ार करे
मौत के आइने में तुझको दिखा कर रुख़े-दोस्त
ज़िन्दगी और भी तेरे लिए दुश्वार करे
देके एहसासे—ज़ियाँ तेरा लहू गरमादे
फ़क्र की शान चढ़ा कर तुझे तलवार करे। (बाले-जिबरील)

२१. उदाहरण के लिए नीचे की पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं जिनके हिंसा और उत्पात के समर्थक होने के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकते

हमामो-कबूतर का भूखा नहीं मैं
कि है ज़िन्दगी बाज़ की ज़ाहिदाना।
झपटना-पलटना, पलट कर झपटना
लहू गर्म रखने का है एक बहाना। (शाहीं; बाले-जिबरील)

× × ×

इसलिए, राजनीतिज्ञों एवं आन्दोलनकारियों को यह अवसर मिल गया कि वे इक़बाल की प्रतिष्ठा और उनके दर्शन का मनमाना उपयोग करें। इसीलिए, अक्सर, इस बात पर दृष्टि चली जाती है कि, हो न हो, इक़बाल के कर्मवादी दर्शन और मुस्लिम लीग की सन् १९४६ ई० वाली सीधी कार्रवाई के बीच कारण-कार्य का सम्बन्ध आ बैठा।

मुसलमानों को कर्मनिष्ठ बनाने के साथ-साथ इक़बाल उन्हें यह उपदेश भी देते गए कि यूरोप का अन्धानुकरण बुरा है।[२२] यूरोप के पास सभी गुण ऐसे नहीं हैं जिनसे मुसलमानों का कल्याण हो सकता हो। अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे यूरोपीकृत युवकों के लिए उनके पास अच्छे शब्द नहीं थे। उनकी दृष्टि में ऐसे सभी लोग उधार ली हुई साँस पर जीने की कोशिश करने वाले थे। टर्की ने यूरोप की नक़ल इतनी दूर तक की कि उसके पास इस्लाम की विरासत नाम-मात्र को ही रह गई। इस स्थिति की इक़बाल पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने एक कविता में लिखा, "तुर्कों के रबाब में कोई नया सुर नहीं है। वे जिसे नया समझ रहे हैं वह यूरोप का पुराना लिबास है।" इक़बाल का विचार था कि यूरोप का एक पाँव क़ब्र में लटक चुका है। यह आशा व्यर्थ है कि वह एशिया की रक्षा कर सकेगा।

जिन मूल्यों को लेकर यूरोप खड़ा है, उनके प्रति आलोचना के भाव गान्धी, रवीन्द्र और राधाकृष्णन् में भी मिलते हैं। सच पूछिए तो एशिया की आत्मा ही उन मूल्यों के विरुद्ध है। ताक़त कितनी ही बड़ी चीज़ हो, किन्तु, वह दया और प्रेम से बढ़ कर नहीं है। बुद्धि चाहे जितनी बड़ी शक्ति हो, अनुभूति से वह हीन ही होती है। और ऐसा कहने से बुद्धि या शक्ति का अनादर नहीं होता है। एशियावासी तो सिर्फ़ यह कर रहे हैं कि ताक़त और बौद्धिकता की चकाचौंध में आदमी प्रेम और अनुभूति की महत्ता से दूर नहीं चला जाए। यह दृष्टिकोण इक़बाल में भी बहुत स्पष्ट है। दया, माया, अहिंसा और सहिष्णुता को तो उन्होंने महत्त्व नहीं दिया है, किन्तु प्रेम की महिमा से वे भली भाँति परिचित हैं तथा दिमाग़ के मुक़ाबले वे बराबर दिल का साथ देते हैं।[२३] इक़बाल तर्क और बुद्धि की अपेक्षा प्रेम और अनुभूति को बहुत बड़ा स्थान देते हैं। यूरोप से उनकी विरक्ति और उदासी का एक कारण यह भी था कि यूरोप में ज्ञान, बुद्धि, तर्क और भौतिक शक्तियाँ बहुत काफ़ी हैं, फिर भी वहाँ के लोग गरीबों को लूटने में आनन्द लेते हैं, फिर भी यूरोप में व्यक्ति-व्यक्ति और राष्ट्र-राष्ट्र के बीच संशय और छल-प्रपंच का राज है। फिर भी यूरोप का धनी और सुशिक्षित वर्ग भीतर से खोखला और अशान्त है। इक़बाल ने इन सब का कारण यह समझा कि यूरोप वालों ने धर्म की अवज्ञा कर दी है, अन्तरात्मा की आवाज़ को सुनना छोड़ दिया है, प्रेम और अनुभूति की महत्ता वे भूल बैठे हैं। जब तक ये गुण वापस नहीं लाए जाते, मनुष्यता का कल्याण असम्भव है। पूँजीवादी व्यवस्था के वे ख़िलाफ़ थे। इक़बाल व्यक्ति का उत्थान चाहते थे, किन्तु पूँजीवाद के अन्दर व्यक्ति को बढ़ने की राह नहीं मिलती, वह मशीन के पुर्ज़े का एक अंग बन जाता है। यूरोप की शक्ति उन्हें प्रेमहीन होने के कारण निन्द्य लगी। यूरोप का ज्ञान उन्हें आत्म-रहित होने के कारण छूछा दीख पड़ा।

'बाले-जिबरील' में दो-एक ऐसी भी कविताएँ हैं जिनसे इक़बाल का समाजवाद के प्रति अटल विश्वास प्रकट होता है। 'आस्पेट्स ऑव इक़बाल' नामक पुस्तक की भूमिका में 'तासीर' नामक लेखक ने इक़बाल का यह उद्धरण दिया है कि "मैं यदि किसी मुस्लिम राज्य का डिक्टेटर होता तो सबसे पहला काम यह करता कि उसे समाजवादी राज्य बना डालता।" रूस के बारे में उनका ख़याल था कि वह अज्ञात रूप से परमात्मा का ही काम कर रहा है। उसकी नास्तिकता इस कारण है कि क्रान्ति के पहले वहाँ का ईसाई संगठन भ्रष्ट हो गया था। इक़बाल की आशा थी कि काल पाकर धर्म रूस में वापस आएगा और रूसी लोग मुसलमान हो जाएँगे।

किन्तु, साथ ही यह बात भी है कि 'पयामे मशरिक' नामक अपने फ़ारसी काव्य में उन्होंने 'लेनिन को कैसर' के साथ नरक की अग्नि में जलते दिखाया है और 'बाले जिबरील' में उन्होंने लेनिन को परमात्मा के मुख से उपदेश दिलवाए हैं।

किसी ने सत्य ही कहा है कि इक़बाल का समाजवाद भावात्मक था, बुद्धि से इस विषय को समझने की उन्होंने कभी कोशिश ही नहीं की। उनकी कविताओं से जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है कि धर्म और समाज दोनों दो तत्त्व हैं और अच्छे समाज को दोनों के कुछ-कुछ अंश चाहिएँ। समाजवाद में जो धार्मिकता है तथा धर्म का जो सामाजिक पक्ष है, उस पर उनकी कभी दृष्टि ही नहीं गई।

है शबाब अपने लहू की आग में जलने का नाम,
सख्त-कोशीसे है तल्खे-ज़िन्दगानी अंगमी।
जो कबूतर पर झपटने में मज़ा है अय पेशर,
वह मज़ा, शायद, कबूतर के लहू में भी नहीं। (नसीहत; बाले-जिबरील)

× × ×

सोचा भी है अय मर्दे-मुसल्माँ कभी तूने,
क्या चीज़ है फ़ौलाद की शमशीर जिगरदार ?
इस बैत का य मिसरये-अव्वल है कि जिसमें
पोशीदा चले आते हैं तौहीद के असरार (बाले-जिबरील)

[२२] वह आँख कि है सुरमए-अफ़रंग से रौशन,
पुरकारो-सख़ुनसाज़ है, नमनाक नहीं है।

× × ×

योरप की ग़ुलाम पे रज़ामन्द हुआ तू,
मुझको तो गिला तुझसे है योरप से नहीं है॥ (बाले-जिबरील)

[२३] राज़े-हस्ती को तू समझती है,
आँख से उसको देखता हूँ मैं। (बाँगे-दरा में अक्ल के प्रति दिल की उक्ति)

× × ×

जो अक्ल का ग़ुलाम हो, वो दिल न कर क़बूल। (बाले-जिबरील)

★

मधुमक्खी पालन

सावित्री निगम

यह युग कुटीर उद्योगों के जीर्णोद्धार का युग कहा जा सकता है। देश के उन अधिकारियों और कर्णधारों की नीति तथा विचारधारा में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया है जो अन्य देशों की औद्योगीकरण की नीति पर अन्धानुराग रखते थे। अब योजना कमीशन तथा सरकारी विभाग सभी ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को सुरक्षित एवं सुदृढ़ बनाने के लिए और किसानों की आंशिक आय वृद्धि के लिए कुटीर उद्योगों की पुनः प्रतिष्ठा में लगे हुए हैं। किन्तु खेद है आंशिक रोज़गार और आय दिलाने वाले ऐसे उत्कृष्ट उद्योग, मधुमक्खी पालन की ओर अभी तक विशेष ध्यान नहीं दिया गया जिसमें न तो कीमती अथवा दुर्लभ औज़ारों की ही आवश्यकता है न वर्षों के प्रशिक्षण या लम्बी-चौड़ी, रकमों की ही। मधुमक्खी पालन एक ऐसा कुटीर उद्योग है जो देश की जलवायु, तथा भारतीय ग्रामीण व्यवस्था के लिए सबसे अधिक उपयोगी, लाभदायक तथा सुलभ है।

यों तो अति प्राचीन काल से ही, यहाँ तक प्राचीन धर्म ग्रन्थों में भी जगह-जगह शहद के गुणों और उसकी उपयोगिता की चर्चा होती आई है। पर भारतवर्ष में सुसंगठित और वैज्ञानिक रूप से शहद उत्पादन का प्रयास दो शताब्दियों पूर्व से ही प्रारम्भ हुआ है। उसके पहले शहद के उत्पादन के स्थान में शहद की लूट और 'शहद उत्पादक मक्खियों' की हत्या द्वारा ही शहद एकत्रित किया जाता था। यही कारण था कि उस देश में जहाँ किसी ज़माने में शहद और दूध की नदियाँ बहती थीं, शहद धीरे-धीरे दुर्लभ होता गया।

कुछ विशेषज्ञों का कथन है कि अगर भारतवर्ष में २५-३० वर्ष शहद निकालने का वही पुराना क्रूर ढंग, जिससे तमाम मधुमक्खियों की हत्या हो जाती है, जारी रहता तो शहद की मक्खियों की जाति ही समाप्त हो जाती।

इसमें सन्देह नहीं है कि हमारे कृषि-प्रधान देश की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में शहद उत्पादन उद्योग एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि योजना कमीशन और राज्य सरकारें दोनों ही संगठित और संयोजित ढंग से एक सुनिश्चित योजना द्वारा शहद उद्योग का पूर्ण विकास कर सकीं तो शहद का उत्पादन २-३ वर्षों में ही आठगुना किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लाखों किसानों की आंशिक आय वृद्धि का एक उत्तम साधन बन सकता है।

इतना ही नहीं जिन्हें वनस्पति विज्ञान का कुछ भी ज्ञान है वे भली प्रकार जानते हैं कि शहद और मोम के अतिरिक्त ये मधुमक्खियाँ फल तथा अन्न की फ़सलों के लिए भी बहुत बड़ी वरदान हैं। मधुमक्खी पालन के विशेषज्ञों ने अनेक ऐसे परीक्षण किए हैं और उनका कथन है कि जिन वृक्षों पर या पौधों पर मधुमक्खियाँ अपने पंखों द्वारा पराग का छिड़काव करती हैं, उनके उत्पादन में १० से ५० प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। रामगढ़ के फलों के बगीचों में जिस वर्ष मधुमक्खी विभाग ने अपने मौनालय वहाँ नहीं रखे, वहाँ फलों की उपज आधी ही रह गई और जिस फ़सल में दुबारा रख दिए गए वहाँ फलों की उपज फि ड्योढ़ी हो गई। अब तो धीरे-धीरे वे फल तथा अनाज उगाने वाले किसान भी मधुमक्खियों को उत्पादन बढ़ाने वाला अग्रदूत समझने ल हैं और वे मधुमक्खी पालन विभाग के पास बराबर प्रार्थना-पत्र भेज रहते हैं कि मधुमक्खियों के छत्ते उनकी बगीची और खेत में र जाएँ।

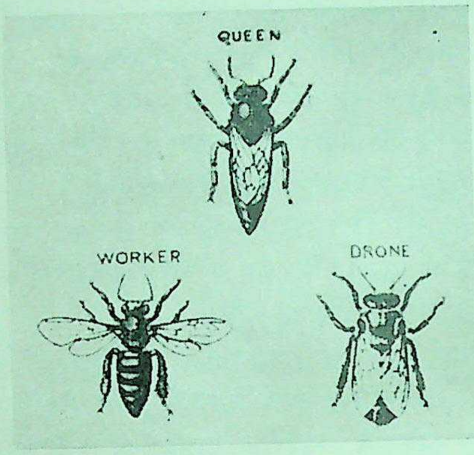

मधुमक्खियों की तीन क़िस्में

अब आवश्यकता इस बात की है कि इस बात पर गम्भीरतापूर्व विचार किया जाए कि मधुमक्खी पालन की उपयोगिता और महत्त को समझते हुए भी पिछले २५ वर्षों में हमने इस दिशा में उतनी तरक नहीं की जितनी की जानी चाहिए थी। यह बात नहीं है कि इन दिनों कोई विकास योजनाएँ नहीं बनाई गईं और वैज्ञानिक ढंग से मधुमक्ख पालन का वैसा प्रचार नहीं हुआ, जैसा होना चाहिए था। निम्नलिखि कारण ही किन्हीं अंशों तक इस धीमी प्रगति के लिए ज़िम्मेदार हैं।

(१) लगातार अनेक परीक्षण होने के कारण यह उद्योग जम नहीं सका
(२) ऐसी जगहों में इस उद्योग को चलाने का प्रयत्न किया गय जो इस उद्योग के लिए उपयोगी और अनुकूल न थीं।
(३) अधिकतर उस स्तर के लोगों ने इस कार्य में दिलचस्पी जो इस कार्य के उपयुक्त ही न थे।
(४) इस उद्योग के विषय में अधिकतर गलत धारणाएँ औ दृष्टिकोणों का बनाया जाना।
(५) शहद की खरीद और बेच की संयोजित व्यवस्था का अभाव
(६) ऐसी योजना का अभाव जिसके द्वारा गाँव के निवासि को मधुमक्खी पालन की उचित शिक्षा दी जाय।

(७) ऐसे अधिकारियों का अभाव जिन्हें गाँव के विकास और रीति-रिवाज का ज्ञान हो ।

(८) सरकारी अधिकारी जिन्हें इस उद्योग को आगे बढ़ाना था उनकी अनभिज्ञता और उदासीनता ।

यद्यपि हमारे देश की जलवायु मधुमक्खियों के लिए इतनी अनुकूल एवं स्वास्थ्यवर्धक है कि इस बात की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती कि मधुमक्खियों की महामारी रोकने के उपायों में अन्य देशों की तरह हज़ारों रुपया ख़र्च करना पड़े अथवा अत्यधिक शीत से उनकी रक्षा करने के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़े । फिर शहद का उत्पादन हमारे देश में अपेक्षाकृत कहीं कम है । सबसे बड़ी बात यह है कि इस कृषि प्रधान देश में जहाँ देश की तीन-चौथाई जनता ग्रामवासिनी है मधुमक्खी पालन जैसे कुटीर उद्योग का, जो कि ग्राम जीवन का वरदान हैं, न पनपना देश के लिए एक बड़े दुर्भाग्य की बात है ।

यहाँ की जलवायु, स्थिति, रहन-सहन, ग्रामीण व्यवस्था तथा भोजन सम्बन्धी आदतों के लिए मधुमक्खी पालन, एक ऐसा उपयोगी उद्योग है जिसे यदि अन्य कुटीर उद्योगों के सम्मुख उपयोगिता की कसौटी पर कसा जाय तो भी हर दृष्टि से प्राथमिकता देनी ही होगी ।

निम्नलिखित कारणों से मधुमक्खी उद्योग एक श्रेष्ठ कुटीर उद्योग कहा जा सकता है ।

(१) इसका पूर्ण विकास प्राकृतिक रूप से प्रकृति के अत्यन्त निकट बनों, जंगलों और दुर्गम घाटियों में ही किया जा सकता है ।

(२) शहद (मधु) हमारे भोजन व औषधियों का एक प्रमुख अंग है यह अत्यन्त पोषक एवं शक्ति वर्धक है ।

(३) शहद उत्पादन में लगाई जाने वाली रकम इतनी थोड़ी है कि सब राज्य सरकारें और समाज-सेवी संस्थाएँ इसकी योजना बिना अधिक धन व्यय किए कार्यान्वित कर सकती हैं ।

(४) प्राकृतिक स्थिति तथा जलवायु की अनुकूलता के कारण तथा सीखने में सरलता होने के कारण किसानों को आंशिक व्यवसाय दिलाने का इतना उत्तम दूसरा उद्योग है ही नहीं ।

(५) मधुमक्खी पालन से किसानों को मोम एवं शहद के अतिरिक्त जो सब से बड़ा लाभ होता है वह है उनकी अन्न व फलों की उपज में पराग छिड़काव द्वारा दुगनी तरक्की होना ।

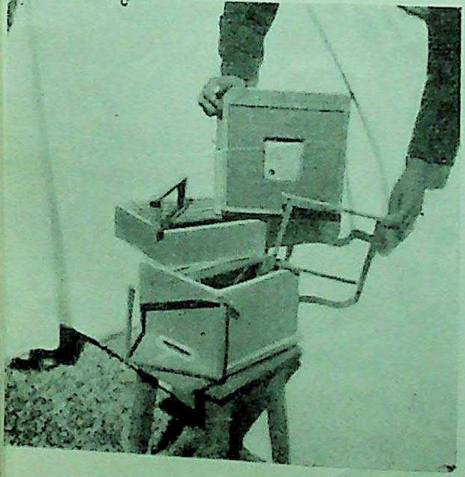

शहद का कृत्रिम
छत्ता

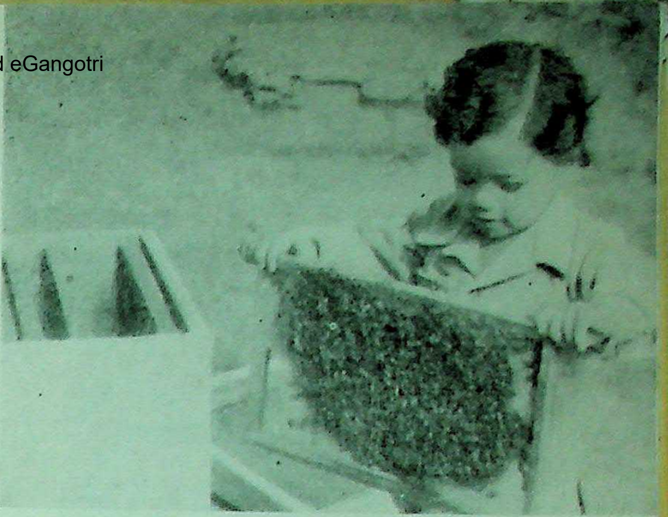

शहद का कृत्रिम
छत्ता खोलते हुए

(६) अपनी कोटि का यह अनोखा उद्योग है जिसके द्वारा एक नया धन्धा किसानों को मिलेगा जिससे उनकी आमदनी बढ़ेगी ।

(७) यह उद्योग गरीब-अमीर, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, सबल-दुर्बल तथा अपाहिज लोगों को बिना अधिक व्यय किए हुए रोज़गारी दिलाने की क्षमता रखता है ।

यों तो सरकारी मधुमक्खी पालन केन्द्रों में प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है और आम तौर से दो प्रकार की ट्रेनिंग दी जाती है । चार मास के प्रशिक्षण में मधुमक्खी पालन की वैज्ञानिक तथा क्रियात्मक ट्रेनिंग दी जाती है । इसके अतिरिक्त यहाँ प्रशिक्षार्थी को एक कृत्रिम मौनालय (छत्ता) लकड़ी से बनाना सिखाया जाता है । प्रशिक्षण काल में हर प्रशिक्षार्थी को मधुमक्खियों की एक नयी बस्ती बसानी पड़ती है, किन्तु ऐसे प्रशिक्षार्थी नियमित संख्या में वर्ष में एक ही बार भर्ती किए जाते हैं दूसरे प्रकार का प्रशिक्षण छः सप्ताह के लिए दिया जाता है । जिसमें केवल क्रियात्मक शिक्षा ही दी जाती है और कोई पाठ्यक्रम नहीं होता और परीक्षा भी नहीं ली जाती ।

सब से हानिकारक बात तो यह है कि वे किसान जो सबसे अधिक लाभ इस प्रशिक्षण से उठा सकते हैं, अज्ञान, अवकाश के अभाव तथा अनभिज्ञता के कारण बिल्कुल ही वंचित रह जाते हैं । अक्सर यह ट्रेनिंग जनवरी और जुलाई के महीने में प्रारम्भ होती है, जब किसान खेती के कामों में ऐसा लगा रहता है कि उसे दम मारने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती । वह भला कैसे छः सप्ताह या चार महीने के लिए आकर प्रशिक्षण ले सकता है । यदि हम सचमुच इस उद्योग को देश में फलते-फूलते देखना चाहते हैं तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना में हमें हर राज्य के लिए ऐसी व्यवस्था करनी होगी, जिससे हर किसान को उसके द्वार पर ही मधुमक्खी पालन की पूरी ट्रेनिंग मिल जाय और शहद का उत्पादन हर खेतिहर के घर में होने लगे, क्योंकि यही एक ऐसा उद्योग है जिसमें इतने कम श्रम में इतना अधिक लाभ हो सकता है ।

यों तो पिछले १५ वर्षों में मेलों में प्रचार प्रदर्शनी चार्ट पोस्टर्स, तथा छत्ता वितरण तथा मौनालय के प्रचार का बहुत अच्छा असर हुआ है किन्तु फिर भी प्रचार के साधनों में और अधिक उन्नति की आवश्यकता है । यदि ग्राम सेवकों, पंचायत अफ़सरों और ग्रामीण शिक्षकों को

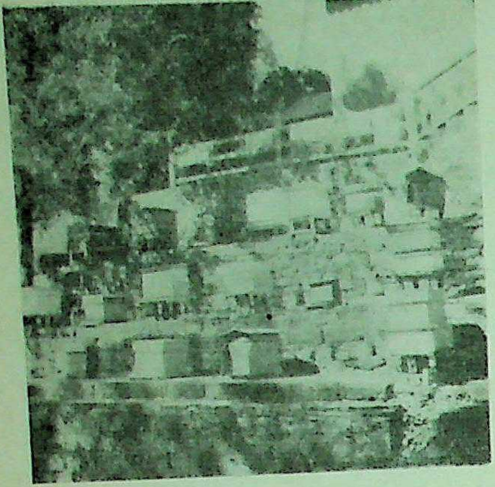

घर के बगीचे में
शहद के छत्ते

मधुमक्खी पालन की शिक्षा देना अनिवार्य कर दिया जाय और ग्राम पाठशालाओं, कालिजों और ग्रामीण विश्वविद्यालयों में मधुमक्खी पालन को एक विषय बना दिया जाय तो धीरे-धीरे ग्रामीणों को जानकारी और उत्साह भी अवश्य बढ़ेगा। मधुमक्खी पालन के अच्छे चार्ट पोस्टर्स बनवा कर हर विद्यालय और पंचायतघर में अवश्य भेजने चाहिएँ। यदि सम्भव हो और निगरानी के लिए मौनालय का कोई अधिकारी और उसकी सेवाएँ उपलब्ध हों तो स्कूलों और पंचायतघरों में कुछ मौनालय अवश्य लगाने चाहिएँ। मौनालयों के विषय में जैसी पत्रिकाएँ और सूचना तथा समाचार पत्र अंग्रेज़ी में निकलते हैं वैसे ही प्रादेशिक भाषाओं में निकालने की शीघ्र व्यवस्था होनी चाहिए।

मधुमक्खी पालन, मौनालय संरक्षण, शहद निकालने, बेचने और खरीदने के लिए सहकारी समितियों का शीघ्र ही हर गाँव में निर्माण होना चाहिए। क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि जो किसान शहद इकट्ठा करते हैं, उन्हें शहर बेचने जाने में इतना खर्च करना पड़ जाता है कि पूरा लाभ नहीं मिल पाता, फिर उनसे शहद खरीदने वाले उनकी बेबसी का लाभ उठा कर आधे दामों में ही शहद खरीद लेते हैं। सहकारी समितियों के द्वारा—शहद निकालने के, छत्ते साफ़ करने और बनाने के एक ही जोड़ी औज़ारों का सैकड़ों व्यक्ति उपयोग कर सकते हैं और साथ ही सस्ते दामों में मधुमक्खियों की बस्ती (बीज) छ आदि भी उधार या आधे दामों में ग्रामवासियों को मिल सकते हैं। जो मौजूदा मौनालय हैं, उनमें ही यदि निरीक्षकों और सहायकों क संख्या बढ़ाकर उन्हें गाँव-गाँव के हर घर में नए ढंग से मधुमक्ख पालने की शिक्षा देने का आदेश दिया जाए तो थोड़े ही दिनों में ह गाँव में वैज्ञानिक ढंग से शहद का उत्पादन होने लगेगा।

कुछ लोगों का यह अनुमान है कि केवल पर्वतीय क्षेत्र में ह मौनालय बनाए जा सकते हैं, पर विशेषज्ञों ने यह प्रामाणित कर दिय है कि मैदानों में खेतों और विशेष रूप से सरसों तथा अलसी के खेतों शहद का उत्पादन मात्रा में तो अधिक होता ही है साथ ही शहद क फ़सलें भी जल्दी-जल्दी होती हैं। एक और रुकावट अक्सर उन लोग के रास्ते में आती है जो मधुमक्खी पालन करना चाहते हैं। वह पालतू मक्खियों की बस्तियों का अभाव किन्तु यदि मौनालयों में ए नया विभाग केवल नर्सरी के लिए खोल दिया जाए, तो मधुमक्खि की बस्ती अर्थात् बीज का कोई अभाव न रहेगा। गर्मी की छुट्टी दिनों में स्कूलों के अध्यापकों और सुयोग्य विद्यार्थियों के पर्वतीय में कैम्प लगाकर बड़ी सुगमता से चार सप्ताह में मधुमक्खी पाल की शिक्षा दी जा सकती है। एक सवाल अक्सर उठाया जाता है प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता ही उपलब्ध नहीं होते, इसीलिए इस विभाग कार्य का प्रसार नहीं होता। पर यह बात नहीं है और यदि ऐसा है तो बड़ी आसानी से उत्साही नवयुवकों को चुन कर उन्हें ४ मह के प्रशिक्षण के लिए, यदि इस वायदे पर भेजा जाए कि बाद उन्हें नौकरी मिल जायेगी, तो सैकड़ों की संख्या में कार्यकर्ता सकते हैं।

★

बात का धनी—(पृष्ठ ४६ का शेषांश)

भाभी का इशारा साफ़ था। वह कोई समझौता करने को तैयार न थी। मैंने उससे विनती की—'तू यहीं रह। तुझे विश्वास न हो तो मैं चादर डालने को भी तैयार हूँ। तू मालकिन बन कर रह हम दोनों तेरी सेवा करेंगे।"

'सेवा!'—हवलदारनी व्यंग से हँसी—'मुझे सेवा न चाहिए अभी तो मैं पहर रात से उठ कर चार घड़ी नाज पीस सकती हूँ। कोस भर से इकट्ठे तीन घड़े पानी भर कर एक बार में ला सकती हूँ। चार भैंसों की दही बिलो कर फेंक दूँ और चार मन कुट्टी काट कर गेर दूँ। कुछ तेरे भाई ने मालकिन बनाया कुछ तूने बनाया। हाँ, रात-दिन सौत का जलाया ज़रूर सहना पड़ेगा। हाय हवलदार मर गया तभी तो ये दिन देखना पड़ा!'—रोती हुई घर से बाहर चली गई।

"सरकार! मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया। हवलदारनी ने झूठ नहीं कहा था, द्रोपद के रहते मैं उसे घरवाली के अधिकार क्या देता? सन्तरों के ढेर का मालिक कभी कद्दू से पेट भरना चाहेगा? को एक बार प्यार न भी मिले, मरद के दुःख-सुख के साथ का अधि मिल जाए तो उसके सहारे ही वह दिन काट लेगी पर झूठी सेवा नहीं जी सकती। भाभी मेरे पौरुष को मेरे पहले वचन को चुन देकर चली गई!"—हीरा का स्वर यहाँ आकर टूट गया जैसे तैराक बीच मँझधार में दम उखड़ जाय। कुछ देर बाद बोला "सरकार! वह मरद क्या जो अपनी बात का न हो। हवलदारनी को बिरादरी के बीच अपनी घरवाली बना लिय उसने कहा द्रोपद के साथ नही रहूँगी तो सरकार मैं पुलीस नौकरी करके शहर चला आया, क्योंकि द्रोपद भी सौत के साथ रहना चाहती। बस इतनी ही तो बात है, आप बताएँ इस म में कहीं कुछ गुंजाइश है?"

सिन्हा और सरला निरुत्तर हो उसे देखते रह गए।

पुस्तक समालोचना

पत्थर के देवता : लेखक—आर्थर कोयस्लर, इगनेज़ियो सिलोने, रिचर्ड राइट, आॅन्द्रे जीद, लूई फ़िशर, स्टीफ़न स्पैण्डर; प्रकाशक—प्राची प्रकाशन, १२ चोरंघी स्क्वायर, कलकत्ता; पृष्ठ संख्या ३३१; मूल्य १ रुपया।

इस पुस्तक में उक्त छः विख्यात व्यक्ति कम्युनिज़्म के प्रति अपने मत-परिवर्तन की कहानी कहते हैं। इस पुस्तक को कुछ साल पहले बहुत ख्याति प्राप्त हुई थी, पर अब जबकि हिन्दी-अनुवाद हमारे सामने आया है उसकी उस समय जो थोड़ी-बहुत उपयोगिता थी वह शायद नष्ट हो गई है। सह-अस्तित्व के युग में शायद ऐसी पुस्तक का कोई विशेष अर्थ नहीं होता, फिर भी कुछ बड़े विद्वानों और अपने क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्तियों के मत-परिवर्तन की कहानी ऐतिहासिक महत्त्व रखती है और इस दृष्टि से प्रत्येक स्वतंत्र विचार के व्यक्ति को यह पुस्तक पढ़ना चाहिए। रहा यह कि उन्होंने जो बातें कही हैं, वे कहाँ तक सत्य हैं और कहाँ तक केवल प्रचार कार्य हैं इसका निर्णय पाठकों को स्वयं अपनी स्वतंत्र बुद्धि से ही करना पड़ेगा क्योंकि जो कोई व्यक्ति जिस किसी मतवाद को छोड़ देता है वह स्वाभाविक रूप से उस मतवाद के सम्बन्ध में बहुत सी ऐसी बातें कहता है जो कदाचित् तथ्य और इतिहास की दृष्टि से सही न हों।

राजनीति-विज्ञान : लेखक—विनयेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय, केशरीकान्त शर्मा; प्रकाशक—विश्वभारती, ६/३ द्वारकानाथ टैगोर लेन, कलकत्ता-७; पृष्ठ संख्या १३४; मूल्य २ रुपया।

यह पुस्तक स्पष्ट ही पाठ्य-पुस्तक के रूप में लिखी गई है और राजनीति की प्रथम भूमिका के रूप में अच्छा प्रयास जान पड़ता है। अन्त में ो राजनीतिक शब्दावली दी गई है वह भी बहुत काम की चीज़ है।

—मन्मथनाथ गुप्त

●

'कहानी' वार्षिक अंक—जनवरी १९५६ : सम्पादक—श्रीपतराय और भैरवप्रसाद गुप्त; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, सरदार पटेल मार्ग, लाहाबाद; पृष्ठ संख्या ३००; मूल्य २ रुपये।

इस अंक के साथ 'कहानी' अपने तीसरे वर्ष में प्रवेश कर रही । गत वर्ष के प्रकाशनों में 'कहानी' का वार्षिक अंक एक अत्यन्त हत्त्वपूर्ण प्रकाशन माना गया था। उस अंक में हिन्दी के नए और राने अधिकांश कहानी-लेखकों की ३० से ऊपर कहानियाँ दी गई ें। इतने लेखकों से नई कहानी प्राप्त कर सकना अपने में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात थी। जैसा कि उस अंक की आलोचना करते हुए हमने लिखा था, वह अंक वर्तमान हिन्दी कहानी-साहित्य का सही-सही प्रतिनिधित्व करता था। हमें खेद है कि 'कहानी' के इस नए वार्षिक अंक के सम्बन्ध में हम वह बात नहीं कह सकते। इस अंक में कुल मिलाकर ३३ कहानियाँ हैं, जिनमें से मौलिक हिन्दी कहानियों की संख्या १६ है। इन १६ कहानियों में भी कुछ कहानियाँ बहुत ही घटिया दर्जे की हैं। उदाहरण के लिए 'सिन्दबाद मन्त्री कैसे बना'। कुछ कहानियाँ अच्छी भी हैं, जैसे मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', अमरकान्त की 'डिप्टी कलक्टरी', आनन्द प्रकाश जैन की 'आटे के सिपाही' और कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया'। परन्तु दूसरी और चौथी कहानियों को अनावश्यक रूप से लम्बा कर दिया गया है। यह अनावश्यक विस्तार का दोष हिन्दी-कहानी में बेतरह बढ़ रहा है। श्रीपतराय का 'युद्धोत्तर हिन्दी कथा-साहित्य' शीर्षक लेख इस अंक का एक विशेष लेख है। इस लेख की शैली आकर्षक और ओजपूर्ण है, यद्यपि लेखक कहीं-कहीं बहुत झुँझलाया हुआ और बेचैन प्रतीत होता है। सब मिलाकर 'कहानी' का यह वार्षिक अंक गत वर्ष के वार्षिक अंक का किसी भी दृष्टि से मुक़ाबला नहीं करता। हम आशा करते हैं कि भविष्य में वार्षिक अंकों का स्टैण्डर्ड ऊँचा करने का प्रयत्न किया जाएगा।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

दूब के आँसू : रचयिता—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'; प्रकाशक—सहयोगी प्रकाशन, आगरा; पृष्ठ संख्या ३६; मूल्य २ रुपया।

गीतों के इस संग्रह में कवि की करुण आत्माभिव्यक्ति मुखर हुई है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि उसका "वास्तविक रूप उन गीतों में है, जिनमें वेदना के विष को पीकर आगे बढ़ने के निश्चय की सूचना है।" संग्रह में ऐसे गीत कम ही हैं। पर हमें आशा करनी चाहिए कि आगामी रचनाओं में 'कमलेश' जी इस दिशा में अधिक सचेष्ट बनेंगे। प्रस्तुत संग्रह के गीतों में कवि की अभिव्यक्ति अधिक सशक्त नहीं हो सकी है। पर 'बादलों का हास' जैसे गीत के रचयिता से हमें बहुत आशाएँ हैं।

धरती और आकाश : रचयिता—जीवनराम अग्रवाल 'जीवन'; प्रकाशक—मानसरोवर प्रकाशन, गया; प्राप्ति-स्थान—श्री 'जीवन', धनबाद; पृष्ठ संख्या ७२; मूल्य १। रुपया।

'जीवन' जी ने अपनी भूमिका में कहा है कि 'धरती और आकाश' के गीतों की त्रुटियों को वे अगले संस्करण में सुधार लेंगे। अतः त्रुटियों की चर्चा करना उचित नहीं प्रतीत होता। इन गीतों की अच्छाई यह है कि इनमें से अधिकांश व्यक्ति और समाज-यथार्थता के गीत हैं। इसी से कई गीत सशक्त हैं। परन्तु केवल विषय-वस्तु के आधार पर कोई कविता उच्च कोटि की कविता नहीं हो सकती। अभिव्यक्ति की काव्यात्मक परिपक्वता भी आवश्यक होती है। आशा है कि 'जीवन' जी जीवन की साधना के साथ-साथ कला की साधना में भी प्रवृत्त रहेंगे ताकि इस मणि-कांचन योग से उनकी प्रतिभा दिनोंदिन निखरती जाए।

हिम-कण : रचयिता—श्रीमन्त पाठक; प्रकाशक—शारदा पुस्त भण्डार, समस्तीपुर; पृष्ठ संख्या २८; मूल्य आठ आना।

'हिम-कण' में कवि की १६ कविताएँ संग्रहीत हैं। इन कविता पर पंत, प्रसाद, दिनकर आदि पूर्ववर्ती और वर्तमान कविवरों क स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित है। परन्तु इन्हें अनुकरण मात्र नहीं कहा ज सकता। कवि में प्रतिभा है, चिन्तन है। उसने भाषा और छन्द क अच्छी साधना की है। हमें आशा है कि भविष्य में इस साधना-भूि के विकसित कुसुम काव्य-वाटिका की शोभा की अभिवृद्धि करेंगे।

—प्रयागनारायण त्रिपाठ

* * *

पैंतीस वर्ष बाद—(पृष्ठ २२ का शेषांश)

बचपन में जो सड़कें बहुत लम्बी-चौड़ी मालूम देती थीं, स्थान एक दूसरे से बहुत दूर मालूम देते थे, वे सड़कें लम्बाई में छोटी लगीं और वे स्थान भी परस्पर बहुत समीप लगे। अनाज-मण्डी के नुक्कड़ पर अभी भी वह 'चौबारा' खड़ा है जिसे पिता जी ने २) माहवार पर किराए पर ले रखा था और जहाँ वह स्कूली-अध्यापन के अतिरिक्त समय में लड़कों को पढ़ाया करते थे। मेरी इच्छा हुई यह जानने की कि अब उस मकान में कौन रहता है और क्या करता है? किन्तु सोचा मेरी 'जिज्ञासा' कहीं दूसरों की जिज्ञासा को जाग्रत न कर दे और मुझे यूँ ही लेने के देने न पड़ जाएँ।' इसलिए चुपचाप आगे बढ़ गया।

जिस चौबारे पर हम रहते थे, उससे कुछ ही दूर पर, पुलिस की चौकी थी। खोजने पर मिल गई। किन्तु लगा कि जैसे उसका मुँह दूसरी ओर हो गया हो। हो सकता है इसमें मेरा ही दिशा-भ्रम कारण हो। हमारे घर के पास हनुमान जी का एक मन्दिर था और साथ ही एक कुआँ। बचपन में न जाने उस कुएँ के शीतल जल ने मुझे कितनी बार ठण्डक पहुँचाई थी। मैं उस मन्दिर तथा उस कुएँ की तलाश में था। किन्तु वह कहीं दिखाई न देता था। हमारे कृपालु मित्र का कहना था कि वह कई वर्षों से यहाँ रहते हैं किन्तु इस प्रकार का कोई मन्दिर और कुआँ वहाँ नहीं है। एक जगह पहुँच कर मैंने आग्रहपूर्वक कहा कि यहीं कहीं आस-पास होना चाहिए। तब उन्होंने एक दुकानदार से पूछा। पता लगा कि इधर जो दुकानें बन गई हैं, उनके पीछे हनुमान जी का एक मन्दिर और कुआँ अवश्य है। उस मन्दिर और कुएँ वाले आँगन में खड़े होने से न जाने कितनी स्मृतियाँ आईं और गईं।

अब मेरे लिए अपने 'घर' को भी निश्चित कर लेना सहज था। देखा कि अभी भी वह चौबारा ज्यों का त्यों है। एक हिस्से में थोड़ा फेरफार अवश्य हुआ है किन्तु वह 'दीवार' ज्यों की त्यों है जिसके उस पार से न जाने पिता जी ने मुझे कितनी बार इधर लटकाया होगा? बचपन में कोई भी भूल होने पर पिता जी प्रायः कोई दूसरा दण्ड न देते थे। उठाकर दीवार के इस पार लटका देते थे और डराते थे वि अब छोड़ता हूँ और अब छोड़ता हूँ। मन में विश्वास था कि छोड़ें नहीं, यह केवल डराने के लिए है किन्तु तो भी बिना माफी माँगे औ बिना यह वचन दिए कि भविष्य में फिर कभी यह गलती न करूँग कभी छुटकारा न मिलता था।

मैंने उस 'घर' को भावना-द्रवित मन से देखा। उसकी बा करते समय मेरा गला कुछ रुँधने-सा लगा। क्योंकि उसी घर की उस दीवार के पास लेटे हुए पूज्य पिता जी का शरीरांत हुआ था।

उनकी स्मृति को मैं कैसे न नमस्कार करता?

पास ही मैंने वह पुल देखा जिस पर चमेली के फूल बिका कर थे। मुझे पता लगा कि अभी भी वह 'चमेली का पुल' कहलाता है।

न जाने सब जगहें कैसे एक दूसरे के इतनी समीप आ गई थीं ज़रा ही दूर चलने पर वह हाई-स्कूल आ गया, जहाँ से मैंने मैट्रि पास किया था। एक-एक करके मैं उन सब कमरों के सामने से गुज जिनमें मैंने अपने जीवन के दस वर्ष बिताये थे।

स्कूल बन्द था। स्कूल के चपरासी से ही कुछ बात-चीत कर सका जिस पत्थर पर स्कूल का पुराना नाम लिखा था—'हिन्दू मोहम्मड हाई-स्कूल' उस पत्थर को औंधा करके वह चपरासी आजकल उस प अपने जूठे बरतन रगड़ा करता है।

पास में ही वह ईदगाह देखी। वह नाला देखा और इन चम चक्षुओं से आगे बढ़कर मन की आँखों ने न जाने और क्या-क्या देखा हमें अम्बाला शहर भी जाना ही था।

वहाँ मेरे विद्यार्थी-जीवन के दो कृपालु मित्र थे जिनसे भेंट कर अनिवार्य था। लगा कि बहुत चीज़ें बदल जाने पर भी कदाचित् दो व्यक्तित्व नहीं बदले हैं। आज भी उनकी परोपकारी वृत्ति ज की त्यों बनी है।

जनता एक्स्प्रैस में भीड़ बड़ी थी। उसी में जैसे-तैसे हमारे सींग समा गए और हम दिल्ली वापस लौट आए।

* * *

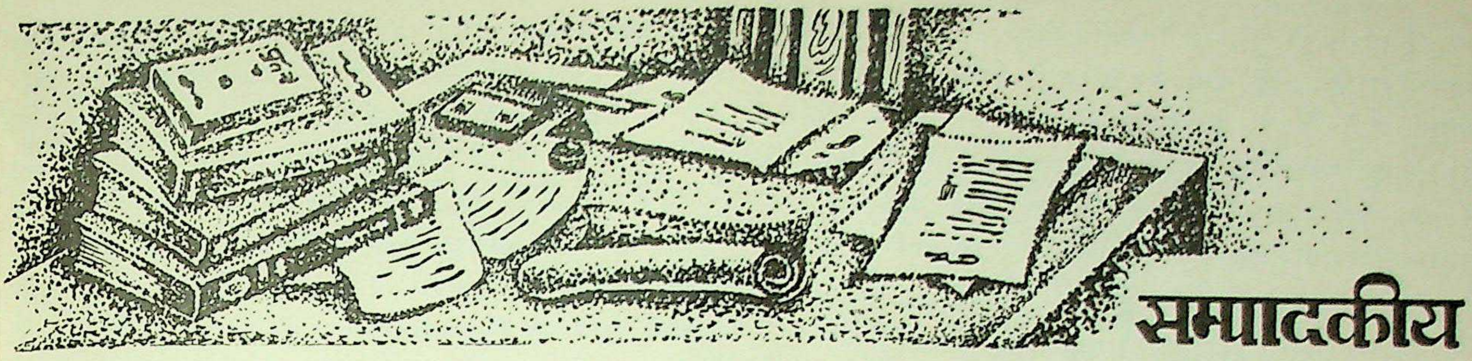

सम्पादकीय

अणु-विस्फोट के परीक्षण

दूसरे महायुद्ध के बाद से संसार भर के बड़े-बड़े वैज्ञानिक अणु सम्बन्धी खोजों में व्यस्त हैं। दूसरे महायुद्ध में जिन एटम बमों का विस्फोट हुआ था, आज उनकी अपेक्षा सैकड़ों गुणा अधिक शक्तिशाली हाइड्रोजन बम, संसार के कम से कम दो राष्ट्रों के पास विद्यमान हैं। प्रतिवर्ष अधिक से अधिक बड़े पैमाने पर आणविक विस्फोट के परीक्षण किए जा रहे हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि सब मिलाकर इस पृथ्वी पर इन परीक्षणों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। पिछले ३-४ वर्षों में विश्व भर का प्राकृतिक वातावरण असाधारण रूप से विक्षुब्ध प्रतीत होता रहा है। अति-वृष्टि, अनावृष्टि, असमय वृष्टि आदि के अतिरिक्त कितनी ही अन्य अस्वाभाविक-सी दिखाई देने वाली वातावरण सम्बन्धी विकृतियों से यह अन्दाज़ लगाना स्वाभाविक है कि यह सब अणु-विस्फोट के परीक्षणों का परिणाम है। यद्यपि वैज्ञानिकों की ओर से इस सम्बन्ध में अभी तक निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा गया। यह तो स्पष्ट ही है कि एक-एक आणविक विस्फोट के साथ वातावरण में अग्नि का अत्यन्त शक्तिशाली और मीलों लम्बा-चौड़ा जो स्फुलिंग पैदा होता है, उसका आस-पास के वातावरण पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। यह भी सर्वसम्मत बात है कि प्रत्येक विस्फोट के साथ वातावरण में तो बहुत बड़ी रेडियो एक्टिविटी पैदा होती है, वह न केवल महीनों क विद्यमान रहती है, अपितु वह सैकड़ों-हजारों मील दूर तक फैल ाती है।

इसी कारण संसार के कितने ही बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने यह अनुरोध किया था कि आणविक विस्फोट के परीक्षण बन्द कर दिए जाएँ। रन्तु हमें इस बात का खेद है कि संसार के दोनों सबसे अधिक क्तिशाली राष्ट्रों पर अभी तक इस अनुरोध का कोई प्रभाव नहीं ड़ा। कुछ ही समय पूर्व रूस में हाइड्रोजन बम के विस्फोट का एक हुत बड़ा और सफल परीक्षण किया गया था। रूस के नेता श्री श्च्योव का कथन है कि इस विस्फोट में हजारों-लाखों टन साधारण रूद के विस्फोट की शक्ति थी। अब मालूम हुआ है कि अमेरिका ओर से भी बहुत शीघ्र अत्यन्त शक्तिशाली हाइड्रोजन बमों के स्फोट के परीक्षण किए जाने वाले हैं। स्पष्ट है कि संसार के स्वास्थ्य, लवायु तथा साम्पत्तिक भविष्य पर इन परीक्षणों का बहुत बुरा भाव पड़ेगा। हम चाहते हैं कि संसार के सब राष्ट्र मिल कर ऐसा तावरण उत्पन्न करें कि आणविक विस्फोट के ये परीक्षण जल्दी से जल्दी बन्द कर दिए जाएँ। नहीं तो भय है कि महायुद्ध प्रारम्भ हुए बिना ही उसके दुष्परिणाम मानव जाति को भुगतने पड़ेंगे। भारत बहुत समय से इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि आणविक विस्फोट के ये परीक्षण बन्द कर दिए जाएँ। अब समय आ गया है कि संसार के अन्य सभी समझदार राष्ट्रों को भारत की इस माँग का समर्थन करना चाहिए।

●

भारतीय उद्योग प्रदर्शनी

भारत की राजधानी दिल्ली में गत नवम्बर और दिसम्बर मास में जो उद्योग प्रदर्शनी संगठित की गई थी, वह संभवतः अपने ढंग की एशिया की सबसे बड़ी प्रदर्शनी थी। लगभग ३५ लाख दर्शकों ने यह प्रदर्शनी देखी। अनुमान है कि भारतवर्ष भर से कम से कम १५ लाख व्यक्ति मुख्यतः इसी प्रदर्शनी को देखने के लिए दिल्ली आए। यह भी मालूम हुआ है कि प्रदर्शनी में करोड़ों रुपये का लेन-देन हुआ और भारत तथा अन्य देशों के व्यावसायिकों में नए सम्बन्ध स्थापित करने में इस प्रदर्शनी द्वारा बहुत बड़ी सहायता मिली। प्रत्येक दृष्टि से यह प्रदर्शनी अत्यन्त सफल रही। इस सफलता से उत्साहित होकर यह सोचा जा रहा है कि तीन वर्ष के बाद, अर्थात् सन् १९५८ में पुनः इसी तरह की एक प्रदर्शनी संगठित की जाए। वह प्रदर्शनी तो खैर भविष्य की वस्तु है, हमारा ख्याल है कि इस प्रदर्शनी का एक भाग राजधानी में स्थायी प्रदर्शनी के रूप में सुरक्षित कर लिया जाए। इस प्रदर्शनी में कितने ही देशों ने बहुत बड़े-बड़े भवनों का निर्माण किया था। भारत की ओर से भी कितने ही अत्यन्त सुन्दर भवन इस प्रदर्शनी में बनाए गए थे। ये सब भवन एक स्थायी प्रदर्शनी का काम बहुत आसानी से दे सकते हैं। यह एक लोकप्रिय सुझाव है कि इस स्थायी प्रदर्शनी में विभिन्न अवसरों पर विभिन्न व्यवसायों का प्रदर्शन किया जाए, विशेषतः उन व्यवसायों का जो आज के आर्थिक विकास की दृष्टि से नए तथा महत्त्वपूर्ण हैं। हमारा ख़्याल है कि ऐसी प्रदर्शनी में चित्रकला, स्थापत्य आदि सांस्कृतिक पक्षों का प्रदर्शन भी किया जाए। पिछले १० वर्षों में दिल्ली की आबादी और दिल्ली के मकानों का क्षेत्रफल बहुत शीघ्रता से बढ़ा है। संसार भर में शायद ही किसी नगर का इतनी शीघ्रता से विकास हुआ होगा। १९४१ में जिस दिल्ली की आबादी ५ लाख से भी कम थी, आज केवल १५ वर्षों के बाद उसी दिल्ली की आबादी १७ लाख से ऊपर है। दिल्ली का राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व भी बहुत बढ़

गया है। आज की दिल्ली सच्चे अर्थों में संसार के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नगरों में से है, जहाँ संसार भर से हज़ारों दर्शक तथा बीसों नेता प्रतिवर्ष आते हैं। इन परिस्थितियों में यह अत्यन्त उपयुक्त होगा कि दिल्ली में एक अच्छे पैमाने की स्थायी प्रदर्शनी का प्रबन्ध नियमित रूप से रहे। हमें विश्वास है कि इस सम्बन्ध में दिल्ली म्युनिसिपैलिटी, दिल्ली सरकार तथा भारत सरकार यथोचित कार्यवाही करेंगे।

इस्लामी पाकिस्तान

१४ अगस्त १९४७ को पाकिस्तान का निर्माण किया गया था। आज इस बात को लगभग ८½ वर्ष हो गए। इन ८½ वर्षों में संसार बड़ी शीघ्रता से बदलता रहा है। पाकिस्तान में भी इस बीच बहुत से उलट-फेर हुए, परन्तु अभी तक पाकिस्तान अपना संविधान नहीं बना पाया था। अब आशा हुई है कि पाकिस्तान की संविधान सभा बहुत शीघ्र पाकिस्तान को एक नया संविधान दे सकेगी। हाल ही में पाकिस्तान के संविधान का जो ख़ाका संसार के सम्मुख आया है, उसके अनुसार पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य होगा। पाकिस्तान के राष्ट्रपति पद पर कोई ग़ैर-मुस्लिम नहीं चुना जा सकेगा। साथ ही पाकिस्तान में कोई ऐसा कानून नहीं बनाया जा सकेगा जो कुरान और सुन्नह में प्रतिपादित सिद्धान्तों के विरुद्ध हो। सन् १९५६ में कोई राष्ट्र इस तरह का साम्प्रदायिक संविधान बनाएगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। ख़ास तौर से यह देख कर आश्चर्य होता है कि आज भी पाकिस्तान में १ करोड़ से ऊपर हिन्दू और लाखों की संख्या में ईसाई विद्यमान हैं। संसार में और भी कितने ही राष्ट्र हैं, जहाँ मुसलमानों का बहुमत है और जहाँ के मुसलमान सच्चे अर्थों में मुसलमान हैं, परन्तु उनमें से किसी भी प्रगतिशील राष्ट्र ने इस तरह का इस्लामी राज् बनाने का प्रयत्न नहीं किया। यह देख कर हमें और भी अधि आश्चर्य होता है कि पाकिस्तान के अल्पसंख्यक के लोग तो सम्मिलि निर्वाचन के पक्ष में हैं और वे नहीं चाहते कि उनके लिए को विशेष सीटें रिज़र्व की जाएँ, परन्तु पाकिस्तान के अधिकांश वर्तमान नेत उनका यह अत्यन्त युक्तियुक्त अनुरोध मानने को भी तैयार नहीं हैं पाकिस्तान हमारा पड़ोसी राज्य है। स्वभावतः हम चाहते हैं कि हमार पड़ोसी राज्य भी एक प्रगतिशील राष्ट्र हो। हमें विश्वास है पाकिस्तान की प्रबुद्ध जनता आज नहीं तो कल प्रगति की ओर अग्रस होगी।

हमारा मार्च अंक

'आजकल' के मार्च अंक में हम भारत के सुप्रसिद्ध कलाकार औ यशस्वी लेखक मामा वरेरकर का एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित क रहे हैं। इसके अतिरिक्त इसी अंक में हिन्दी पत्रकारिता के सम्ब में भी हिन्दी के तीन यशस्वी पत्रकारों के तीन लेख प्रकाशित कि जाएँगे।

हमारा आगामी वार्षिक अंक

मई १९५६ से 'आजकल' का नया वर्ष प्रारम्भ हो रहा है। वर्ष के वार्षिक अंक के सम्बन्ध में हमारे मार्च अंक में विस्तृत सूच प्रकाशित कर दी जाएगी। परन्तु यह निश्चित है कि यह नया वा अंक महात्मा बुद्ध की २५००वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में होगा और उस नाम 'बुद्ध-जयन्ती अंक' रहेगा।

* * *

काव्य और संगीत—(पृष्ठ २४ का शेषांश)

के बाद विम्ब-विधान या चित्रात्मकता ही है। शुक्ल जी ने बताया है, "विभाववस्तु चित्रमय होता है"[1] अतः संगीत पर विशेष ज़ोर देना अनावश्यक है।

आधुनिक युग के महानतम महर्षि श्री अरविन्द ने अपने 'द फ़्यूचर पोइट्री' नामक ग्रन्थ में काव्य की अपील का मूल्यांकन करते हुए तीन अवस्थाएँ मानी हैं—ध्वनि मूल्य, विचार मूल्य और आत्मिक मूल्य। उनके अनुसार जब प्रारम्भ में मनुष्य काव्य के आनन्द की ओर उन्मुख हुआ होगा तब यह आकर्षण शब्द की आह्लादक संगीत-ध्वनि के माध्यम से आया होगा। संभवतः श्री अरविंद की इस प्रथम अवस्था के लिए ही 'पोइट्री इज़ द बेस्ट वर्ड्‌स इन बेस्ट आर्डर' कालरिज़ की यह परिभाषा उपयुक्त है। कुछ और विकसित अवस्था में विचार पाठकों को आकर्षित करता है। पं० पद्मसिंह विहारी की 'बात की करामात' स्पष्ट करते थे परन्तु आज हम तुलसी या प्रसाद का जीवन-दर्शन जानने का प्रयत्न करते हैं। काव्य के आत्मिक मूल्यों को हम और ऊँची अवस्था में जाकर अनुभव कर पाते हैं। श्री अरविंद के अनु "भविष्यत् काव्य वह काव्य है, जिसमें यह आध्यात्मिक मूल्य अ घोषित रूप में रहेगा।"

यदि काव्य के इतिहास की यह अरविन्दी अवस्थायें न स्वीकार की जाएँ तब भी व्यक्ति के जीवन में आप कुछ ऐसी अवश्य पा सकते हैं। गीता में इस प्रकार की अवस्थाओं की ओर सुन्दर संकेत किया गया है :—

> इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
> मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः॥

आज की कविता इसी बुद्धि (जो केवल आत्मा के नीचे है) कविता है, तथा बौद्धिक अवस्था मनुष्य की विकसित आयु सम्भव है। लड़कपन में तो वह रंगों और ध्वनियों की ओर ही है। काव्य और संगीत के सम्बन्ध में इलियट की यह बात मुझे अच्छी लगी कि "कवि और संगीत का निकटतम सम्पर्क बस लय आकारबोध के साथ ही होता है।" पर यह लय और आकारबोध वस्तुएँ हैं यह हम पहले ही देख चुके हैं।

---

[1] काव्य में प्राकृतिक दृश्य : पृष्ठ १०।

योजना की प्रगति नं० २

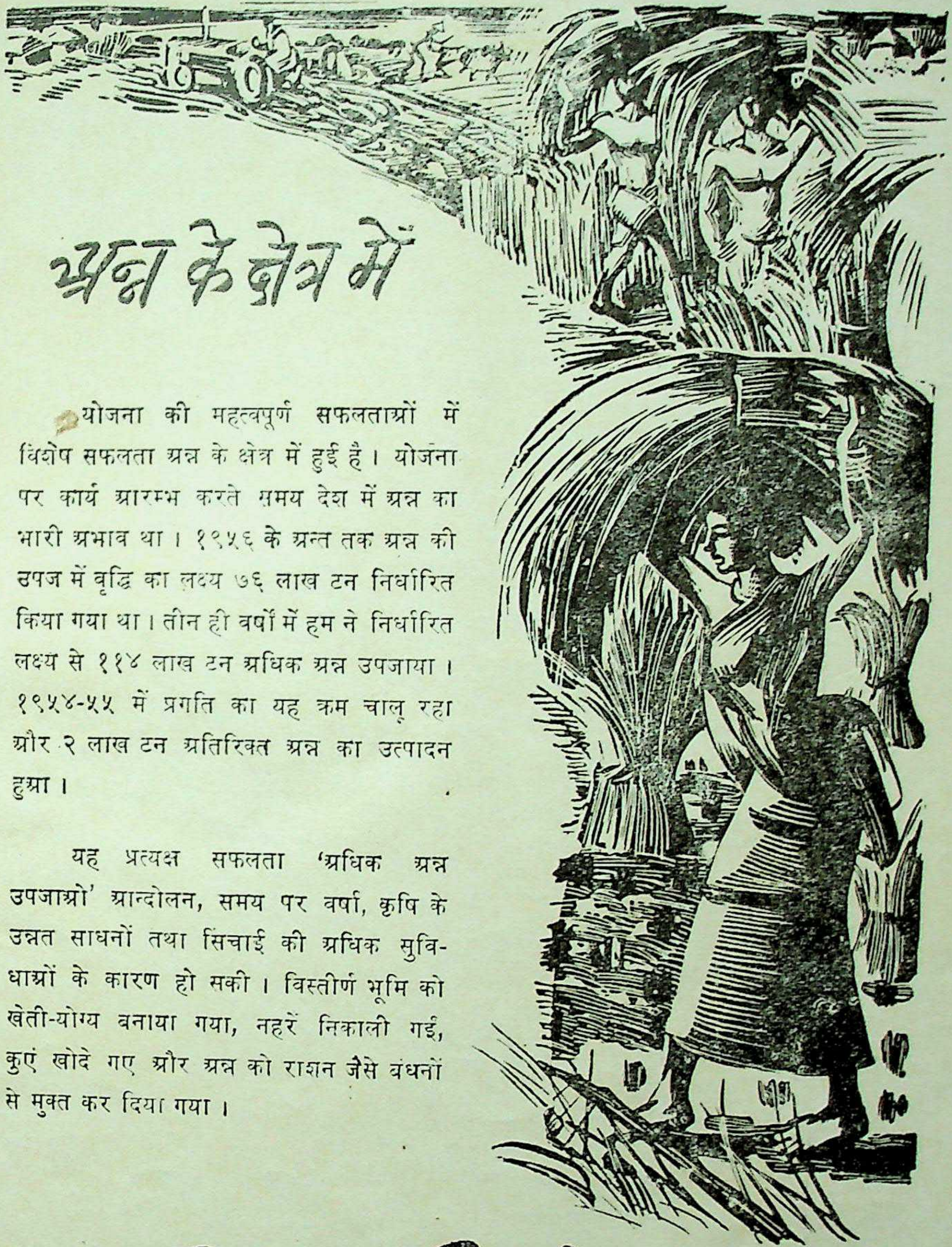

अन्न के क्षेत्र में

योजना की महत्वपूर्ण सफलताओं में विशेष सफलता अन्न के क्षेत्र में हुई है। योजना पर कार्य आरम्भ करते समय देश में अन्न का भारी अभाव था। १९५६ के अन्त तक अन्न की उपज में वृद्धि का लक्ष्य ७६ लाख टन निर्धारित किया गया था। तीन ही वर्षों में हम ने निर्धारित लक्ष्य से ११४ लाख टन अधिक अन्न उपजाया। १९५४-५५ में प्रगति का यह क्रम चालू रहा और २ लाख टन अतिरिक्त अन्न का उत्पादन हुआ।

यह प्रत्यक्ष सफलता 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन, समय पर वर्षा, कृषि के उन्नत साधनों तथा सिंचाई की अधिक सुविधाओं के कारण हो सकी। विस्तीर्ण भूमि को खेती-योग्य बनाया गया, नहरें निकाली गई, कुएं खोदे गए और अन्न को राशन जैसे बंधनों से मुक्त कर दिया गया।

जनता की योजना
जनता के हित में

DA-55/117

भारत की एकता का निर्माण

(सरदार वल्लभ भाई पटेल)

भारत की एकता के निर्माता सरदार पटेल के २७ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषणों का यह संग्रह हाल ही में प्रकाशित हुआ है।

१५ अगस्त १९४७ को जब भारत स्वाधीन हुआ, तब भारत में ९ प्रान्तों के अतिरिक्त ५८४ रियासतें थीं। इन ५८४ रियासतों में केवल हैदराबाद, काश्मीर और मैसूर यही ३ रियासतें ऐसी थीं, जो आकार और आबादी के लिहाज़ से पृथक् राज्यों का रूप धारण कर सकती थीं। अधिकांश रियासतें बहुत छोटी थीं और २०२ रियासतें तो ऐसी थीं, जिनका क्षेत्रफल १० वर्गमील से अधिक नहीं था। उस पर भी ये सब की सब रियासतें शासन की पृथक् इकाइयाँ बनी हुई थीं।

भारत के प्रथम उपप्रधान मन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने दो वर्षों के भीतर ही सम्पूर्ण भारत को एक बना दिया। उक्त ५८४ रियासतों का ५,८८,००० वर्ग मील क्षेत्रफल और १० करोड़ के लगभग आबादी इस अल्पकाल ही में भारत के आन्तरिक भाग बन गए। उसी तरह, जिस तरह भारत के अन्य राज्य हैं। हैदराबाद, मैसूर और काश्मीर को पृथक्-पृथक् और अन्य कितनी ही रियासतों के संघ बनाकर उन्हें 'बी' श्रेणी के राज्य बना दिया गया। सैंकड़ों छोटी-छोटी रियासतें आसपास के बड़े राज्यों में मिला दी गईं। परिणाम यह हुआ कि भारत भर में पूर्ण प्रजातन्त्र स्थापित हो गया और सन् १९५२ का निर्वाचन समूचे देश में बालिग़ मताधिकार के आधार पर समान रूप में हुआ।

इस नवीन भारत की एकता के निर्माण में सरदार पटेल के इन २७ भाषणों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वाधीनता के पहले २½ वर्षों की भारतीय समस्याओं पर इन भाषणों में जो प्रकाश डाला गया है, उसका महत्त्व ऐतिहासिक है। ये भाषण देश के लिए चिरकाल तक प्रकाश-स्तम्भ का काम देते रहेंगे।

इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक ग्रन्थ का मूल्य प्रचार के उद्देश्य से बहुत कम रक्खा गया है। पुस्तक में ३५० बड़े आकार के पृष्ठों के अतिरिक्त १६ पृष्ठ सरदार पटेल के सुन्दर चित्र और नवीन भारत का एक मानचित्र भी दिया गया है।

मूल्य : सजिल्द ५) रुपया

प्रकाशक :

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरियट,
दिल्ली-८

Published by the Director, Publications Division, and printed by the Production Officer, United Press, Government of India, Old Secretariat, Delhi.

Regd. No. D—510

18-7-56

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

जुलाई १९५६

आठ आना

अधिकृत प्रकाशन

स्वाधीनता और उसके बाद (जवाहरलाल नेहरू के भाषण १९४६-४९)	५	०	०
भारत की एकता का निर्माण (स्वर्गीय सरदार पटेल के भाषण १९४७-५०)	५	०	०
भारत १९५५	४	८	०
पहली पंचवर्षीय योजना (जनता संस्करण)	२	०	०
आठवाँ साल	१	८	०
हमारा संविधान	१	०	०
आचार्य विनोबा भावे	०	१२	०
हमारा झंडा	०	८	०
सामाजिक कल्याण	०	८	०
द्वितीय पंचवर्षीय योजना—संक्षिप्त प्रारम्भिक रूपरेखा	०	६	०
रेडियो विकास योजना	०	६	०
वैदिक साहित्य	०	६	०
हिन्दी साहित्य की नवीन धाराएँ	०	६	०
सूरदास एक विश्लेषण	०	६	०
मानव विज्ञान	०	४	०
प्रयाग दर्शन	०	४	०

मिलने का पता :

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली–८

बच्चों को **ड्यूमेक्स** दीजिए और उन्हें फलता-फूलता देखिए!
बेबी फ़ूड

बच्चे यह बता तो नहीं सकते कि
उन्हें ड्यूमेक्स क्यों ज्यादा पसन्द है...
लेकिन जब ड्यूमेक्स उन्हें
दिया जाता है तो उनकी खुशी साफ़ दिखायी
पड़ जाती है। इसलिए इसमें
कोई अचरज नहीं कि माँ के दूध के बाद
ड्यूमेक्स ही सर्वोत्तम है।

अच्छे साफ
दाँतों
के लिये
Aryan
Regd.
भारत का
लोकप्रिय
टुथ ब्रश
प्लास्टिक कन्टेनर्स
में भी मिलता है
कहीं अधिककाल चलता है।

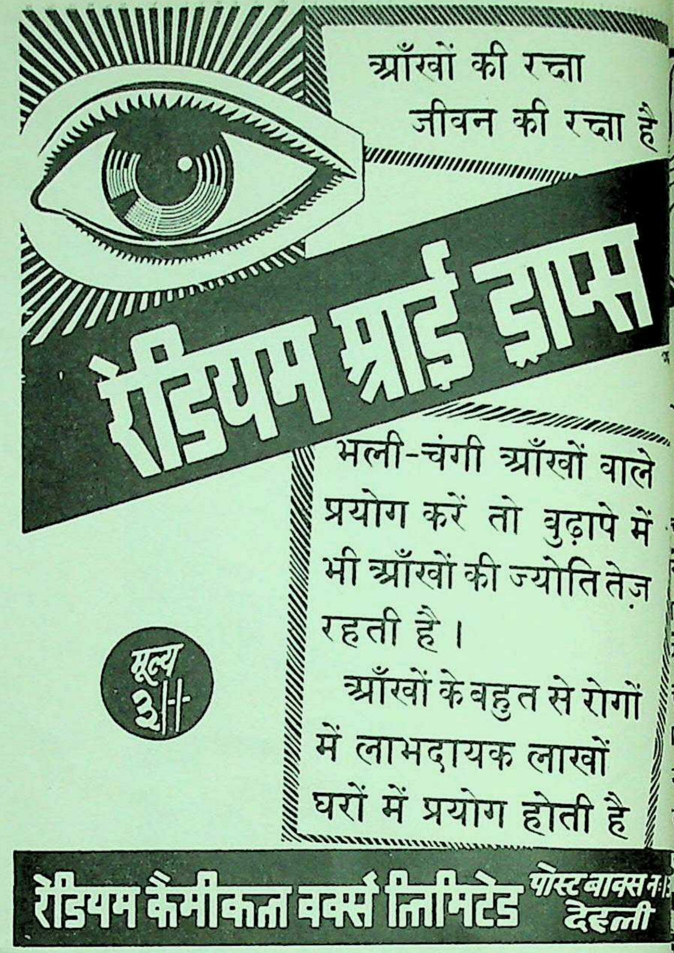
आँखों की रक्षा
जीवन की रक्षा है
रेडियम आई ड्राप्स
भली-चंगी आँखों वाले
प्रयोग करें तो बुढ़ापे में
भी आँखों की ज्योति तेज़
रहती है।
आँखों के बहुत से रोगों
में लाभदायक लाखों
घरों में प्रयोग होती है
मूल्य ३/-
रेडियम कैमीकल वर्क्स लिमिटेड
पोस्ट बाक्स नं.
देहली

❀ प्रसारिका ❀

अमेरिका में हर दूसरे आदमी के पास रेडियो होता है। यूरोप में हर छठे व्यक्ति के पास रेडियो है, जबकि एशिया में हर पचासीवाँ व्यक्ति ही रेडियो रखता है। परन्तु भारत में हर दो ऐसे व्यक्तियों पर जिनके पास रेडियो है, नौ सौ अट्ठानवे ऐसे हैं जिनके पास रेडियो नहीं है। अगर आपके पास रेडियो नहीं है और जब तक आप इस कमी को दूर नहीं कर सकते, रेडियो से हिन्दी में प्रसारित होने वाली स्थायी महत्त्व की चीज़ें आप 'प्रसारिका' से प्राप्त कीजिए।

'प्रसारिका' साहित्य, कला, इतिहास, यात्रा, दर्शन, धर्म, विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषयों पर देश भर के प्रख्यात व्यक्तियों के चुने हुए भाषणों का संग्रह है। उच्च कोटि की बौद्धिक सामग्री के अलावा इस संग्रह में कहानी, कविता, नाटक, हास्य-रस के लेख आदि भी होते हैं। ऐसी उत्कृष्ट सामग्री सभी को सुलभ करने के लिए इस सचित्र, लगभग सौ पृष्ठ की पत्रिका का मूल्य केवल आठ आने रखा गया है।

नोट—प्रसारिका के पहले दो अंक 'रेडियो संग्रह' नाम से प्रकाशित हुए हैं।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न

ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली–८

ना है
म
वाले
पे में
ति तेज़
रोगों
वों
ी है
बावस न
हल्ली

आजकल

वर्ष १२ अंक ३ पूर्णांक १४५

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
शशधर सिन्हा, डाइरेक्टर
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मन्त्री)

सहायक सम्पादक—जगदीश गोयल

जुलाई १९५६

त्तर. वेला (हिन्दी कविता)	बालकृष्ण राव	···	५	१८।२ बी, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
रे संस्मरण	आचार्य नरेन्द्रदेव	···	६	
ाचार्य नरेन्द्रदेव	बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर	···	१३	८ हेस्टिंग्स रोड, नई दिल्ली–२
ोतिस्तम्भ	जवाहरलाल नेहरू	···	१५	
र-रत्न' नरेन्द्रदेव	श्रीप्रकाश	···	१६	राज्यपाल, मद्रास
ाचार्य जी के कुछ संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	···	१८	९९ नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली
द्धेय आचार्य नरेन्द्रदेव	शकुन्तला श्रीवास्तव	···	२०	२ टैलीग्राफ लेन, नई दिल्ली
त्याग्रही (बंगला कविता)	गोपाल भौमिक	···	२४	५०–ए, बालीगंज प्लेस, कलकत्ता-१९
लमुहर के फूल (अंग्रेज़ी कविता)	सरोजिनी नायडू	···	२४	
ाज का मराठी साहित्य	कुसुमावती देशपाण्डे	···	२५	८८ वैस्ट पार्क रोड, धनतोली, नागपुर–१
ल्ली और उसकी वेदनाएँ	राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह	···	२९	६२ साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली
म्प पोस्ट (उर्दू कहानी)	देवेन्द्र इस्सर	···	३३	एच ३१५ न्यू राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली
दरिया थम-थम कर झर री !	माखनलाल चतुर्वेदी	···	३५	सम्पादक 'कर्मवीर', खण्डवा
ई कविता—नया साहित्य	भगवतीचरण वर्मा	···	४३	आकाशवाणी, लखनऊ
ाधुनिक भारत की दार्शनिक समस्याएँ	इन्द्रसेन	···	४६	श्री अरविंद आश्रम, पाण्डुचेरी
लता पानी (गुजराती कविता)	उमाशंकर जोशी	···	४९	सम्पादक 'संस्कृति', एलिस ब्रिज, अहमदाबाद–६
र्मा में बुद्ध जयन्ती और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन	सेठ गोविन्ददास	···	५०	३ कैनिंग लेन, नई दिल्ली
प्र प्राचीर दुर्ग (कन्नड़ कविता)	रामचन्द्र शर्मा	···	५६	
ो बादल, ओ जलधर ! (हिन्दी कविता)	रामदरश मिश्र	···	५७	द्वारा श्री जंगी मिश्र, बेखिया हाता, गोरखपुर
ालाना जलसा (मलयालम कहानी)	वी० के० एन० 'कुट्टी'	···	५८	द्वारा सम्पादक 'दक्षिण भारत', मद्रास–१७
क साथ ! (हिन्दी कविता)	शमशेरबहादुर सिंह	···	६१	१९३, वार्ड नं० ८, बहादुरगंज, इलाहाबाद
मक के लिये (हिन्दी कहानी)	शशि भूषण सिंहल	···	६२	२९२३, लोहा मण्डी, आगरा
स्तक समालोचना	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, सत्यकेतु विद्यालंकार, प्रयागनारायण त्रिपाठी, जगदीश गोयल		६५	
म्पादकीय		···	६९	

ावरण चित्र : बौद्ध विहार, दार्जलिंग (चित्रकार : बी० एन० जिजा)
स मास का चित्र : भगवान बुद्ध का उपदेश

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट दिल्ली-८

●

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—आठ आने, दस सेंट या नौ पेंस

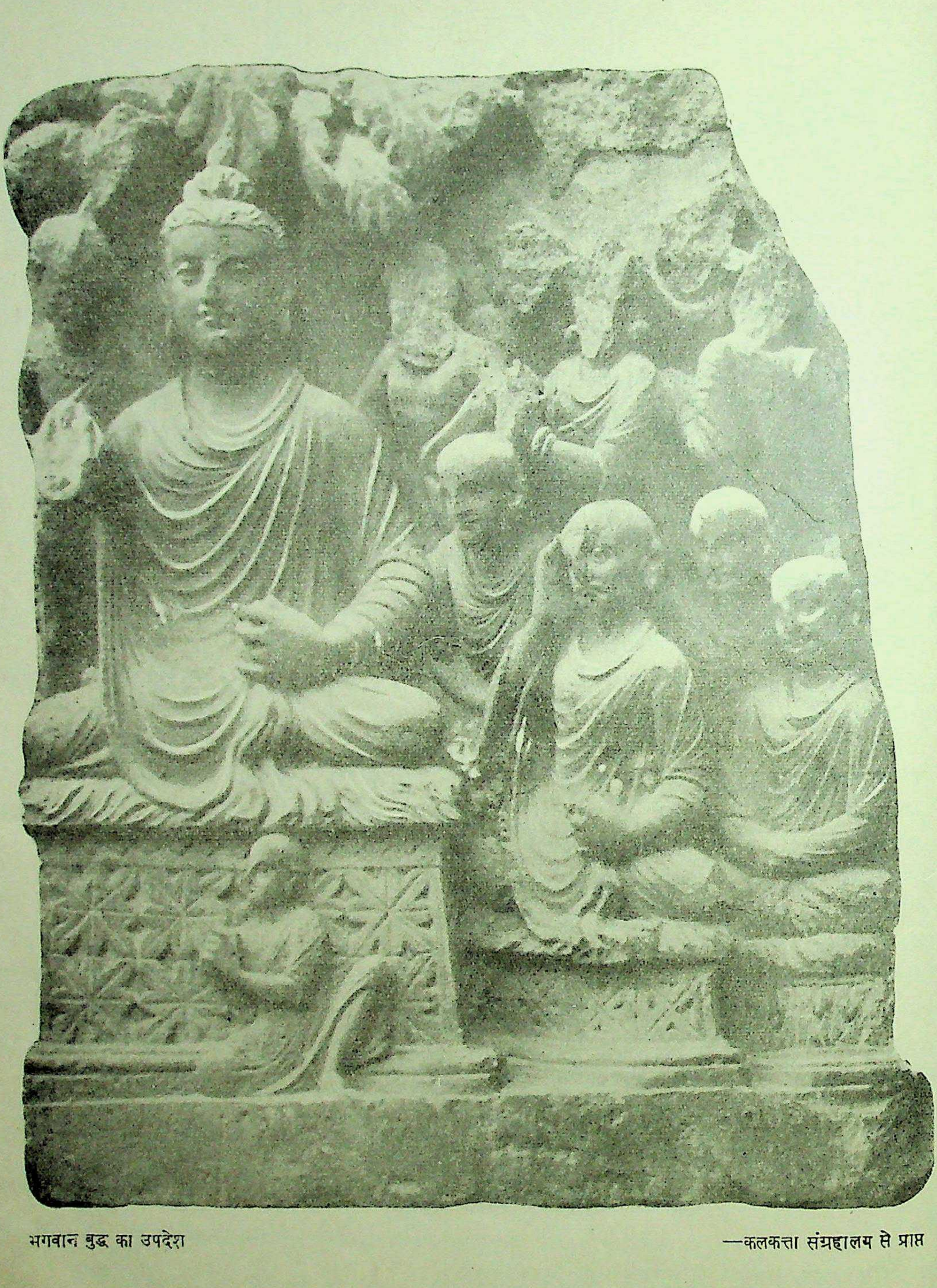

भगवान बुद्ध का उपदेश

—कलकत्ता संग्रहालय से प्राप्त

वर्ष १२ जुलाई १९५६ अंक ३

उत्तर वेला

बालकृष्ण राव

> 'तुम कहते उत्तर वेला यह,
> मैं संध्या का दीप जलाऊँ ?'
> —पंत : 'नव अरुणोदय'

तुम कहते उत्तर वेला यह,
हाँ, उत्तर की ही वेला है—
प्रश्न किए थे तुमने जो
उनके उत्तर की।

घटी प्रखरता,
मन्द हुआ रवि का प्रकाश अब,
किन्तु पूर्वजो !
सायंतन आकाश न देखो;
सुने न उसने प्रश्न, बधिर है,
मूक न उत्तर ही दे पाता—
हमसे पूछो;
किन्तु पूछने से पहले यह हमें बता दो
जितनी आँखें जाग रही हैं अब धरती पर
क्या उतनी ही खुली मिली थीं प्रथम किरण को ?

मेरे संस्मरण

आचार्य नरेन्द्रदेव

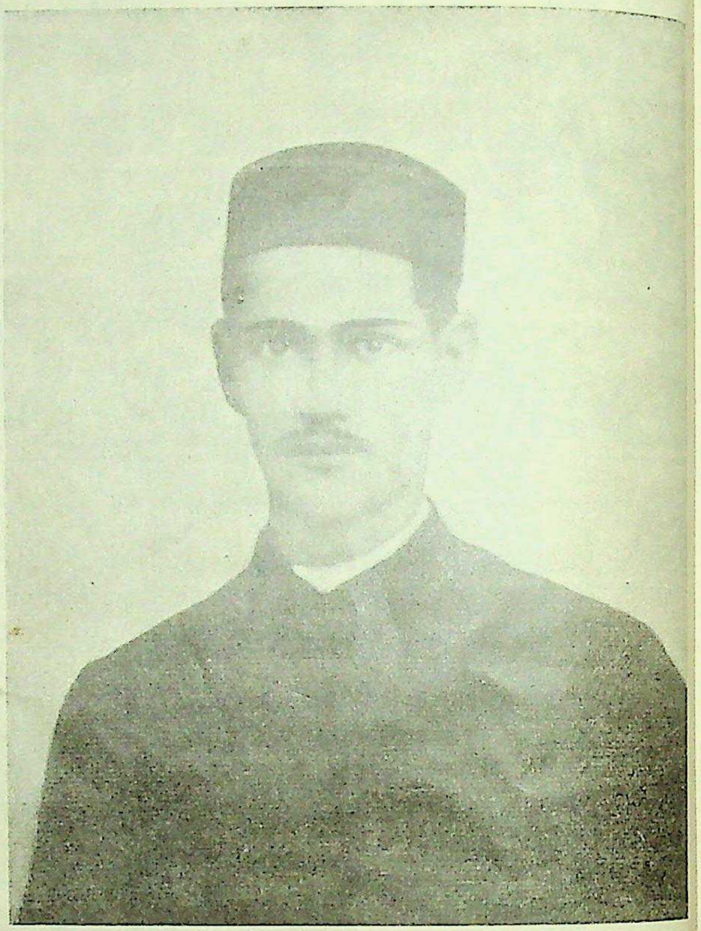

आचार्य नरेन्द्रदेव क्वीन्स कालेज के छात्र के रूप में

मेरा जन्म संवत् १९४६ में कार्तिक शुक्ल अष्टमी को सीतापुर में हुआ था। हम लोगों का पैतृक घर फ़ैज़ाबाद में है किन्तु उस समय मेरे पिता श्री बलदेवप्रसाद जी सीतापुर में वकालत करते थे। हमारे ख़ानदान में सबसे पहले अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति मेरे दादा के छोटे भाई थे। अवध में अंग्रेज़ी हुकूमत सन् १८५६ में क़ायम हुई। इस कारण अवध में अंग्रेज़ी शिक्षा का आरम्भ देर से हुआ। मेरे बाबा का नाम बाबू सोहनलाल था। वह पुराने कैनिंग कालेज में अध्यापक का काम करते थे। उन्होंने मेरे पिता और मेरे ताऊ को अंग्रेज़ी की शिक्षा दी। पिता जी ने कैनिंग कालेज से एफ० ए० कर वकालत की परीक्षा पास की थी। आँखों की बीमारी के कारण वह बी० ए० नहीं कर सके। मेरे बाबा उनको क़ानून की पुस्तकें सुनाया करते थे और सुन-सुन कर ही उन्होंने परीक्षा की तैयारी की थी। वकालत पास करने पर वह सीतापुर में मेरे बाबा के शिष्य मुंशी मुरलीधर जी के साथ वकालत करने लगे। दोनों सगे भाई की तरह रहते थे। दोनों की आमदनी और ख़र्च एक ही जगह से होते थे। मुंशी जी के कोई सन्तान न थी। वह अपने भतीजे और मेरे बड़े भाई को पुत्र के समान मानते थे। मेरे जन्म के लगभग २ वर्ष बाद मेरे दादा की मृत्यु हो जाने के कारण पिता जी को सीतापुर छोड़ना पड़ा और वह फ़ैज़ाबाद में वकालत करने लगे। जब वह सीतापुर में थे तभी उनकी धार्मिक प्रवृत्ति शुरू हो गई थी। किसी संन्यासी के प्रभाव में आने से ऐसा हुआ था। वह बड़े दानशील और सात्विक वृत्ति के थे। वेदान्त में उनकी बड़ी अभिरुचि थी और इस शास्त्र का उनको अच्छा ज्ञान था। संन्यासियों का सत्संग सदा किया करते थे। जिस समय उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी उस समय फ़ारसी का प्रचलन था। किन्तु अपनी संस्कृति और धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने संस्कृत का अभ्यास किया था। वह एक नामी वकील थे किन्तु वकालत के अतिरिक्त भी उनकी अनेक दिलचस्पियाँ थीं। बालकों के लिए उन्होंने अंग्रेज़ी, हिन्दी और फ़ारसी में पाठ्य-पुस्तकें लिखी थीं। इनके अतिरिक्त उन्होंने कई संग्रह-ग्रन्थ भी प्रकाशित किए थे। अंग्रेज़ी की प्राइमर तो उन्होंने मेरे बड़े भाई को पढ़ाने के लिए लिखी थी। मेरा विद्यारम्भ इन्हीं पुस्तकों से हुआ था। उनको मकान बनाने और बाग़ लगाने का भी शौक था। हमारे घर पर एक छोटा सा पुस्तकालय भी था। जब मैं बड़ा हुआ तो गरमी की छुट्टियों में इनकी देख-भाल भी किया करता था। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मेरे पिता जी धार्मिक थे और इस नाते सनातनधर्म के उपदेशक, संन्यासी और पंडित मेरे घर पर प्रायः आया करते थे। किन्तु पिता जी कांग्रेस और सोशल कानफ़रेन्स के कामों में भी थोड़ी बहुत दिलचस्पी लेते थे। मेरे प्रथम गुरु थे पंडित काली दीन अवस्थी। वह हम भाई-बहनों को हिन्दी, गणित और भूगोल पढ़ाया करते थे। पिता जी मुझ से विशेष रूप से स्नेह करते थे। वह भी मुझे नित्य आध घंटा पढ़ाया करते थे। मैं उनके साथ प्रायः कचहरी जाया करता था। वहाँ मेरे पिता के वकील मित्र मुझे अंग्रेज़ी पढ़ाया करते थे। मैं पिता जी के साथ बाहर भी जाया करता था। मुझे याद है कि वह मुझे अपने साथ एक बार दिल्ली ले गये थे। वहाँ भारत धर्म महामंडल का अधिवेशन हुआ था। उस अवसर पर पं० दीनदयालु शर्मा का भाषण सुनने को मिला था। उस समय उसके मूल्य को आँकने की मुझ में बुद्धि न थी। केवल इतना याद है कि शर्मा जी की उस समय बड़ी प्रसिद्धि थी।

मैंने घर पर तुलसीकृत रामायण और समग्र हिन्दी महाभारत पढ़ा। इनके अतिरिक्त बैताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, सूरसागर

आदि पुस्तकें भी पढ़ीं। उस समय चन्द्रकान्ता की बड़ी शोहरत थी। मैंने इस उपन्यास को १९ बार पढ़ा होगा। चन्द्रकान्ता सन्तति को भी जो २४ भाग में है एक बार पढ़ा था। न मालूम कितने लोगों ने चन्द्रकान्ता पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी होगी। उस समय कदाचित् इन्हीं पुस्तकों का पठन-पाठन प्रायः हुआ करता था। १० वर्ष की आयु में मेरा यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। पिता जी के साथ नित्य मैं सन्ध्या-वंदन और भगवद्गीता का पाठ करता था। एक महाराष्ट्र ब्राह्मण मुझको सस्वर वेदपाठ सिखाते थे और मुझ को एक समय रुद्री और सम्पूर्ण गीता कंठस्थ थी। मैंने अमरकोश और लघु कौमुदी भी पढ़ा था। जब मैं १० वर्ष का था अर्थात् सन् १८९९ में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ था। पिता जी डेलिगेट थे। मैं भी उनके साथ गया था। उस समय डेलिगेट का 'बैज' होता था—कपड़े का फूल। मैंने भी दरजी से वैसा ही एक फूल बनवा लिया और उसको लगाकर अपने चचाज़ाद भाई के साथ 'विज़िटर्स गैलरी' में जा बैठा। उस ज़माने में प्रायः भाषण अंग्रेज़ी में होते थे और यदि हिन्दी में भी होते तब भी मैं कुछ ज़्यादा न समझ सकता। ऐसी अवस्था में सिवाय शोर-गुल मचाने के मैं कर ही क्या सकता था? दर्शकों ने तंग आकर मुझे डाँटा और पंडाल से भागकर मैं बाहर चला आया। उस समय मैं कांग्रेस के महत्त्व को क्या समझ सकता था। किन्तु इतना मैं जान सका कि लोकमान्य तिलक, श्री रमेशचन्द्र दत्त और जस्टिस रानाडे देश के बड़े नेताओं में से हैं। इनका दर्शन मैंने प्रथम बार वहीं किया। रानाडे महाशय की तो सन् १९०१ में मृत्यु हो गई। दत्त महाशय के दर्शन दोबारा सन् १९०६ में कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर हुए।

मैं सन् १९०२ में स्कूल में भरती हुआ। सन् १९०४ या १९०५ में मैंने थोड़ी बंगला सीखी और मेरे अध्यापक मुझको कृत्तिवास की रामायण सुनाया करते थे। पिता जी का मेरे जीवन पर बड़ा गहरा असर पड़ा। उनकी सदा शिक्षा थी कि नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार किया करो, उनको गाली-गलौज न दो। मैंने इस शिक्षा का सदा पालन किया। विद्यार्थियों में सिगरेट पीने की बुरी प्रथा उस समय भी थी। एक बार मुझे याद है कि अयोध्या में कोई मेला था। मैंने शौक़िया सिगरेट की एक डिबिया खरीदी। सिगरेट जला कर जो पहला कश खींचा तो सर घूमने लगा। इलायची-पान खाने पर तबियत सँभली। मुझे आश्चर्य हुआ कि लोग क्यों सिगरेट पीते हैं। मैंने उस दिन से आज तक सिगरेट नहीं छुआ। हाँ! श्वास के कष्ट को कम करने के लिए कभी-कभी स्ट्रैमोनियम के सिगरेट पीने पड़े हैं। मेरे पिता जी सदा आदेश दिया करते थे कि कभी झूठ न बोलना चाहिए। मुझे इस सम्बन्ध में एक घटना याद आती है। मैं बहुत छोटा था। कोई सज्जन मेरे मामू को पूछते हुए आए। मैं घर के अन्दर गया। मामू से कहा कि आपको कोई बाहर बुला रहा है। उन्होंने कहा कि जाकर कह दो कि घर में नहीं हैं। मैंने उनसे यह संदेसा ज्यों का त्यों कह दिया। मेरे मामू बहुत नाराज़ हुए। मैं अपनी सिधाई में यह भी न समझ सका कि मैंने कोई अनुचित काम किया है। इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि मैं बड़ा सत्यवादी हूँ किन्तु इतना सच है कि झूठ कम बोलता हूँ। ऐसा जब कभी होता है तो लज्जित होता हूँ और बहुत देर तक सन्ताप बना रहता है। पिता जी की शिक्षा चेतावनी का काम करती है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मेरे यहाँ अक्सर साधु-संन्यासी और उपदेशक आया करते थे। मेरे पिता के एक स्नेही थे। उनका नाम था पंडित माधवप्रसाद मिश्र। वह महीनों हमारे घर पर रहा करते थे। वह बंगला भाषा अच्छी जानते थे। उन्होंने 'देशेर कथा' का हिन्दी में अनुवाद किया था। यह पुस्तक ज़ब्त कर ली गई थी। हिन्दी के बड़े अच्छे लेखक थे। यह राष्ट्रीय विचार के थे। मैं इनके निकट संपर्क में आया। मेरा घर का नाम 'अविनाशीलाल' था। पुराने परिचित आज भी इसी नाम से पुकारते हैं। मिश्रजी पर बंगला भाषा का अच्छा प्रभाव पड़ा था। उन्होंने हम सब भाइयों के नाम बदल दिये उन्होंने ही मेरा नाम 'नरेन्द्रदेव' रखा। सनातनधर्म पर प्रायः व्याख्यान मेरे घर पर हुआ करते थे। सन् १९०६ में जब मैं एन्ट्रेन्स में पढ़ता था स्वामी रामतीर्थ का फ़ैज़ाबाद आना हुआ। और वे हमारे अतिथि हुए। उस समय वह केवल दूध पर रहते थे। शहर में उनका एक व्याख्यान 'ब्रह्मचर्य' पर हुआ था और दूसरा व्याख्यान वेदान्त पर मेरे घर पर हुआ था। उनके चेहरे पर बड़ा तेज था। उनके व्यक्तित्व का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा और बाद को मैंने उनके ग्रन्थों का अध्ययन किया। वह हिमालय की यात्रा करने जा रहे थे। मिश्रजी ने उनसे कहा कि संन्यासी को किसी सामग्री की क्या आवश्यकता। इतना कहना था कि वह अपना सारा सामान छोड़ कर चले गए और पहाड़ से उनकी चिट्ठी आई कि राम ख़ुश है।

हमारे स्कूल में एक बड़े योग्य शिक्षक थे। उनका नाम था—श्री दत्तात्रेय भीखाजी रानाडे। उनका मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनके पढ़ाने का ढंग निराला था। उस समय मैं ८वीं कक्षा में था। किन्तु अंग्रेज़ी व्याकरण में हमारे दर्जे के विद्यार्थी दसवें दर्जे के विद्यार्थियों का कान काटते थे। मैं अपनी कक्षा में सर्वप्रथम हुआ करता था। मेरे गुरुजन भी मुझ से प्रसन्न रहा करते थे। किन्तु संस्कृत के पंडित महाशय अकारण मुझसे और मेरे सहपाठियों से नाराज़ हो गए और उन्होंने वार्षिक परीक्षा में हम लोगों को फ़ेल करने का इरादा कर लिया। हम लोग बड़े परेशान हुए। उस समय मेरी कक्षा के अध्यापक मास्टर राधेरमणलाल स्कूल लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन थे। इनका भी हम लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। अपने जीवन में एक बार यह विरक्त हो गए थे। इनके घर पर हम लोग प्रायः जाया करते थे। यह अपने विद्यार्थियों को बहुत मानते थे। लाइब्रेरी की कुंजी मेरे सपुर्द थी और मैं ही पुस्तकें निकाल कर दिया करता था। मुझे याद आया कि पंडित जी ने दो वर्ष के कैलेंडर अपने नाम issue कराये हैं। ख्याल आया कि कहीं इन्हीं वर्षों के एन्ट्रेन्स के प्रश्न-पत्रों से प्रश्न न पूछ बैठें। मैंने अपने सहपाठियों के साथ बैठ कर उन प्रश्न-पत्रों को हल किया। देखा क्या कि उन्हीं प्रश्न-पत्रों से सब प्रश्न पूछे गए हैं। परीक्षा-भवन में पंडित जी ने मुझ से पूछा कि कहो कैसा कर

रहे हो। मैंने भी उत्तेजित होकर कहा कि जीवन में ऐसा अच्छा पर्चा कभी नहीं किया। उन्होंने कोर्स के बाहर के भी प्रश्न पूछे थे।

मुझे उन्हें विवश होकर ५० में से ४६ अंक देने पड़े और कोई भी विद्यार्थी फेल न हुआ। यदि मैं लाइब्रेरियन महाशय का सहायक न होता तो अवश्य फ़ेल हो गया होता। सन् १९०५ में पिता जी के साथ बनारस कांग्रेस में गया। पिता जी के निकट संपर्क में आने से मुझे भारतीय संस्कृति से प्रेम हो गया था। यह मौखिक प्रेम था। उसका ज्ञान तो कुछ था नहीं किन्तु इसी कारण आगे चलकर मैंने एम० ए० में संस्कृत ली। सन् १९०४ में पूज्य मालवीय जी फ़ैज़ाबाद आए थे। भारत धर्म महामण्डल से सम्बन्ध होने के नाते वह मेरे पिता जी से मिलने घर पर आए। गीता के एक-आध अध्याय सुने। मेरे शुद्ध उच्चारण से बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि एन्ट्रेन्स पास कर प्रयाग आना और मेरे हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहना। पूज्य मालवीय जी के दर्शन प्रथम बार हुए थे। उनका सौम्य चेहरा और मधुर भाषण अपना प्रभाव डाले बिना रहता नहीं था। यद्यपि मैंने सेंट्रल हिन्दू कालेज में नाम लिखाने का विचार किया था किन्तु साथियों के कारण उस विचार को छोड़ना पड़ा। ऐन्ट्रेन्स पास कर मैं इलाहाबाद पढ़ने गया और हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहने लगा। मेरे ३-४ सहपाठी थे। हम को एक बड़े कमरे में रखा गया। छात्रावास में रहने का यह पहला अवसर था। बंग भंग के कारण कांग्रेस में एक नए दल का जन्म हुआ था जिसके नेता लोकमान्य तिलक, श्री विपिनचन्द्र पाल आदि थे। उस समय तक मेरे कोई ख़ास राजनीतिक विचार न थे। किन्तु कांग्रेस के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव था। मैं सन् १९०५ में दर्शक के रूप में कांग्रेस में शरीक हुआ था। प्रिंस ऑफ़ वेल्स भारत आने वाले थे और उनका स्वागत करने के लिए एक प्रस्ताव श्री गोखले ने कांग्रेस के सम्मुख रखा था। तिलक ने उसका घोर विरोध किया किन्तु अन्त में दबाव में उसे वापिस ले लिया। किन्तु उस समय पंडाल से बाहर चले आए। विरोध की यह पहली ध्वनि सुनाई पड़ी। सन् १९०६ में कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। प्रयाग आने पर मेरे विचार तेज़ी से बदलने लगे। हिन्दू बोर्डिंग हाउस उग्र विचारों का केन्द्र था। पंडित सुन्दरलाल जी उस समय विद्यार्थियों के अगुआ थे। अपने राजनीतिक विचारों के कारण यह विश्वविद्यालय से निकाले गए। उस समय बोर्डिंग हाउस में रात-दिन राजनीतिक चर्चा हुआ करती थी। मैं बहुत जल्द गरम दल के विचार का हो गया। हममें से कुछ लोग कलकत्ते के अधिवेशन में शरीक हुए। रिपन कालेज में हम लोग ठहराए गए। नरम-गरम दल का संघर्ष चल रहा था और यदि श्री दादाभाई नौरोजी सभापति न होते तो वहीं दो टुकड़े हो गए होते। उनके कारण यह संकट टला। इस नवीन दल के कार्यक्रम के प्रधान अंग स्वदेशी, ब्रिटिश माल का बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा थे। कांग्रेस का लक्ष्य बदलने की भी बातचीत थी। दादाभाई नौरोजी ने अपने भाषण में 'स्वराज' शब्द का प्रयोग किया और इस शब्द को लेकर दोनों दलों में विवाद खड़ा हो गया। यद्यपि पुराने नेता बहिष्कार के विरुद्ध थे—उनका कहना था कि इससे विद्वेष और घृणा का भाव फैलता है—तथापि बंगाल के लिए उनको भी इसे स्वीकार करना पड़ा। जापान की विजय से एशि में नवजागृति का आरम्भ हुआ। एशियावासियों ने अपने खोए हु आत्म-विश्वास को फिर से पाया और अंग्रेज़ों की ईमानदारी पर बालोचित विश्वास था वह उठने लगा। इस पीढ़ी का अंग्रेज़ी शिक्षि वर्ग समझता था कि अंग्रेज़ हमारे कल्याण के लिए भा आया है और जब हम को शासन के कार्य में दक्ष बना दे तब वह स्वेच्छा से राज्य सौंप कर चला जाएगा। बिना इ विश्वास को दूर किए राजनीति में प्रगति आ नहीं सकती थी लोकमान्य ने यही काम किया। इस नए दल की स्थापना घोषणा कलकत्ते में की गई। इसकी ओर से कलकत्ते में दो सभा हुईं। एक सभा बड़ा बाज़ार में हुई थी। उसमें मैं भी मौजूद था इस सभा की विशेषता यह थी कि इसमें सब भाषण हिन्दी में हुए थे श्री विपिनचन्द्रपाल और लोकमान्य भी हिन्दी में बोले थे। श्री पा को हिन्दी बोलने में कोई विशेष कठिनाई नहीं प्रतीत हुई कि लोकमान्य की हिन्दी टूटी-फूटी थी। बड़ाबाज़ार में उत्तर भारत लोग अधिकतर रहते हैं। उन्हीं की सुविधा के लिए हिन्दी में भाषण कराए गए थे। बंगाल में इस नए दल का अच्छा प्रभाव था कलकत्ते की कांग्रेस के बाद संयुक्त प्रान्त को सर करने के लिए दो दलों में होड़ लग गई। प्रयाग में दोनों दलों के बड़े-बड़े नेता आए औ उनके व्याख्यानों को सुनने का मुझको अवसर मिला। सबसे पह लोकमान्य आए। उनके स्वागत के लिए हम लोग स्टेशन गए उनकी सभा का आयोजन थोड़े से विद्यार्थियों ने किया था। शहर नेताओं में से कोई भी उनके स्वागत के लिए नहीं गया। उनकी सवारी के लिए एक सज्जन घोड़ा-गाड़ी लाए थे। हम लोगों ने घो खोल कर स्वयं गाड़ी खींचने का आग्रह किया किन्तु उन्होंने इ स्वीकार नहीं किया। लोकमान्य के शब्द थे—"Reserve tha enthusiasm for a better cause"—इस उत्साह को कि और अच्छे काम के लिए सुरक्षित रखिए। एक वकील साहब के यहां में उनका व्याख्यान हुआ था। वकील साहब इलाहाबाद से बाहर गा हुए थे। उनकी पत्नी ने इजाज़त दे दी थी। हम लोगों ने दा बिछाई। एक विद्यार्थी ने बंदे मातरम् गान गाया और अंग्रेज़ी भाषण शुरू हुआ। लोकमान्य तर्क और युक्ति से काम लेते थे। उनके भाषण में हास्य-रस का भी पुट रहता था। किन्तु वह भावुकता से बहुत दूर थे। उन्होंने कहा कि अंग्रेज़ी मसल है कि ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता करता है। तो क्या तुम समझते हो कि अंग्रेज़ ईश्वर से भी बड़ा है। इसके कुछ दिनों बाद श्री गोखले आए और उनके कई व्याख्यान कायस्थ पाठशाला में हुए। ए व्याख्यान में उन्होंने कहा कि आवश्यकता पड़ने पर हम टैक्स देना भी बन्द कर सकते हैं। इसके बाद श्री विपिन पाल आए और उनके ओजस्वी व्याख्यान हुए। इस तरह समय-समय पर किसी न किसी दल के नेता प्रयाग आते रहते थे। लाला लाजपतराय और हैदर रज़ा भी आए। नरम दल के नेताओं में केवल श्री गोखले का कुछ प्रभाव हम विद्यार्थियों पर पड़ा। हम लोगों ने स्वदेशी का व्रत लिया औ

गरम दल के अख़बार मँगाने लगे। कलकत्ते से दैनिक 'वन्देमातरम्' आता था जिसे हम बड़े चाव से पढ़ा करते थे। इसके लेख बड़े प्रभावशाली होते थे। श्री अरविन्द घोष इसमें प्रायः लिखा करते थे। उनके लेखों ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया। शायद ही उनका कोई लेख होगा जो मैंने न पढ़ा हो और जिसे दूसरों को न पढ़ाया हो। पांडिचरी जाने के बाद भी उनका प्रभाव क़ायम रहा और मैं 'आर्य' का वर्षों ग्राहक रहा। बहुत दिनों तक यह आशा थी कि वह साधना पूरी करके बंगाल लौटेंगे और राजनीति में पुनः प्रवेश करेंगे। सन् १९२१ में उनसे ऐसी प्रार्थना भी की गई थी। किन्तु उन्होंने अपने भाई बारीन्द्र को लिखा कि सन् १९०८ के अरविन्द को बंगाल चाहता है किन्तु मैं १९०८ का अरविन्द नहीं रहा। यदि मेरे ढंग के ९९ भी कर्मी तैयार हो जाएँ तो मैं आ सकता हूँ। बहुत दिनों तक मुझे यह आशा बनी रही किन्तु अन्त में जब मैं निराश हो गया तो उधर से मुँह मोड़ लिया। उनके विचारों में ओज के साथ-साथ सच्चाई थी। प्राचीन संस्कृति के भक्त होने के कारण भी उनके लेख मुझे विशेष रूप से पसन्द आते थे। उनका जीवन बड़ा सादा था। जिन्होंने अपनी पत्नी को लिखे उनके पत्र पढ़े हैं वह इसको जानते हैं। उनके सादे जीवन ने मुझ को बहुत प्रभावित किया। उस समय लाला हरदयाल अपनी छात्र वृत्ति छोड़ कर विलायत से लौट आए थे। उन्होंने सरकारी विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा-प्रणाली का विरोध किया था और "हमारी शिक्षा समस्या" पर १४ लेख 'पंजाबी' में लिखे थे। उनके प्रभाव में आकर पंजाब के कुछ विद्यार्थियों ने पढ़ना छोड़ दिया था। उनके पढ़ाने का भार उन्होंने स्वयं लिया था। ऐसे विद्यार्थियों की संख्या बहुत थोड़ी थी। हरदयाल जी बड़े प्रतिभाशाली थे और उनका विचार था कि कोई बड़ा काम बिना कठोर साधना के नहीं होता। Edwin Arnold की "Light of Asia" को पढ़ कर वह बिल्कुल बदल गए थे। विलायत में श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा का उन पर प्रभाव पड़ा था। उन्होंने विद्यार्थियों के लिए दो पाठ्यक्रम तैयार किए थे। इन सूचियों की पुस्तकों को पढ़ना मैंने आरम्भ किया। उग्र विचार के विद्यार्थी उस समय रूस-जापान-युद्ध, गैरिबाल्डी और मैज़िनी पर पुस्तकें और रूस के आतंकवादियों के उपन्यास पढ़ा करते थे। सन् १९०७ में प्रयाग से रामानन्द बाबू का "Modern Review" भी निकलने लगा। इसका बड़ा आदर था। उस समय हम लोग प्रत्येक बंगाली नवयुवक को क्रान्तिकारी समझते थे। बंगला साहित्य में इस कारण और भी रुचि उत्पन्न हो गई। मैंने रमेशचन्द्र दत्त और बंकिम के उपन्यास पढ़े और बंगला साहित्य थोड़ा-बहुत समझने लगा। स्वदेशी के व्रत में हम पूरे उतरे। उस समय हम कोई भी विदेशी वस्तु नहीं ख़रीदते थे। माघ मेला के अवसर पर हम स्वदेशी पर व्याख्यान भी दिया करते थे। उस समय हमारे कालेज के प्रिंसिपल जैनिंग्स साहब थे। वह कट्टर Anglo-Indian थे। हमारे छात्रावास में एक विद्यार्थी के कमरे में खुदीराम बोस की तसवीर थी। किसी ने प्रिंसिपल को इसकी सूचना दे दी। एक दिन शाम को वह आए और सीधे मेरे मित्र के कमरे में गए। मेरे मित्र कालेज से निकाल दिए गए किन्तु श्रीमती एनीबेसंट ने हिन्दू कालेज में उनको भरती कर लिया।

धीरे-धीरे हम में से कुछ का क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध होने लगा। उस समय कुछ क्रान्तिकारियों का विचार था कि I.C.S. में शामिल होना चाहिए ताकि क्रान्ति के समय हम ज़िले का शासन सँभाल सकें। इस विचार से मेरे चार साथी इंग्लैण्ड गए। मैं भी सन् १९११ में जाना चाहता था किन्तु माताजी की आज्ञा न मिलने के कारण न जा सका। इधर सन् १९०७ में सूरत में फूट पड़ चुकी थी और कांग्रेस से गरम दल के लोग निकल आये थे। कनवेंशन बुलाकर कांग्रेस का विधान बदला गया। इसे गरम दल के लोग कनवेंशन कांग्रेस कहते थे। गवर्नमेंट ने इस फूट से लाभ उठाकर गरम दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। कई नेता जेल में डाल दिए गए। कुछ समय को प्रतिकूल देख भारत से बाहर चले गये और लंदन, पैरिस, जेनेवा, बर्लिन में क्रान्ति के केन्द्र बनाने लगे। और वहीं से साहित्य प्रकाशित होता था। मेरे जो साथी विलायत पढ़ने गये थे वह उस साहित्य को मेरे पास भेजा करते थे। श्री सावरकर की War of Indian Independence की एक प्रति भी मेरे पास आई थी और मुझे बराबर हरदयाल का "वन्देमातरम्" बर्लिन का "तलवार" और पैरिस का Indian Sociologist मिला करता था। मेरे दोस्तों में से एक सन् १९१४ की लड़ाई में जेल में बन्द कर दिए गए थे तथा अन्य दोस्त केवल बैरिस्टर होकर लौट आये। मैंने सन् १९०८ के बाद से कांग्रेस के अधिवेशनों में जाना छोड़ दिया क्योंकि हम लोग गरम दल के साथ थे। यहाँ तक कि जब कांग्रेस का अधिवेशन प्रयाग में हुआ तब भी हम उसमें नहीं गए। सन् १९१६ में जब कांग्रेस में दोनों दलों में मेल हुआ तब हम फिर कांग्रेस में आ गए।

बी० ए० पास करने के बाद मेरे सामने यह प्रश्न आया कि मैं क्या करूँ। मैं क़ानून पढ़ना नहीं चाहता था। मैं प्राचीन इतिहास में गवेषणा करना चाहता था। म्योर कालेज में भी अच्छे-अच्छे अध्यापकों के सम्पर्क में आया। डाक्टर गंगानाथ झा की मुझ पर बड़ी कृपा थी। बी० ए० में प्रो० ब्राउन से इतिहास पढ़ा। भारत के मध्ययुग का इतिहास वह बहुत अच्छा जानते थे। पढ़ाते भी अच्छा थे, उन्हीं के कारण मैंने इतिहास का विषय लिया। बी० ए० पास कर मैं पुरातत्व पढ़ने काशी चला गया। वहाँ डाक्टर वेनिस और नारमन ऐसे सुयोग्य अध्यापक मिले। क्वींस कालेज में जो अंग्रेज़ी अध्यापक आते थे वह संस्कृत सीखने का प्रयत्न करते थे। डा० वेनिस जैसे पढ़ाने वाले कम होंगे। नारमन साहब के प्रति भी मेरी बड़ी श्रद्धा थी। जब मैं क्वींस कालेज में था तब वहाँ भी शचीन्द्रनाथ सान्याल से परिचय हुआ। विदेश से आने वाला साहित्य वह मुझ से ले जाया करते थे। उनके द्वारा मुझे क्रान्तिकारियों के समाचार मिलते रहते थे। मेरी इन लोगों के साथ बड़ी सहानुभूति थी किन्तु मैं डकैती आदि के सदा विरुद्ध था। मैं किसी भी क्रान्तिकारी दल का सदस्य न था। किन्तु उनके कई नेताओं से परिचय था और वह मुझ पर विश्वास करते थे और समय-समय पर मेरी सहायता भी लेते रहते थे। सन् १९१३ में जब मैंने

एम० ए० पास किया तब मेरे घर वालों ने वकालत पढ़ने का आग्रह किया। मैं इस पेशे को पसन्द नहीं करता था। किन्तु जब पुरातत्त्व विभाग में स्थान न मिला तब इस विचार से कि वकालत करते हुए मैं राजनीति में भाग ले सकूँगा मैंने क़ानून पढ़ा।

सन् १६१५ में मैं एल० एल० बी० पास कर वकालत करने फ़ैज़ाबाद आया। मेरे विचार प्रयाग में परिपक्व हुए और वहीं मुझ को एक नया जीवन मिला। इस नाते मेरा प्रयाग से एक प्रकार का आध्यात्मिक सम्बन्ध है। मेरे जीवन में सदा दो प्रवृत्तियाँ रही हैं—एक पढ़ने-लिखने की ओर, दूसरी राजनीति की ओर। इन दोनों में संघर्ष रहता है। यदि दोनों की सुविधा एक साथ मिल जाये तो मुझे बड़ा परितोष रहता है और यह सुविधा मुझे विद्यापीठ में मिली। इसी कारण मेरे जीवन का वह सबसे अच्छा हिस्सा है जो विद्यापीठ की सेवा में व्यतीत हुआ और आज भी उसे मैं अपना कुटुम्ब समझता हूँ।

सन् १६१४ में लोकमान्य मांडले जेल से रिहा होकर आये और अपने सहयोगियों को फिर एकत्र करने लगे। श्रीमती बेसंट का उनको सहयोग प्राप्त हुआ और दो होम रूल लीग की स्थापना हुई। सन् १६१५ में हमारे प्रान्त में श्रीमती बेसंट की लीग की स्थापना हुई। मैंने इस सम्बन्ध में लोकमान्य से बातें की और उनकी लीग की एक शाखा फ़ैज़ाबाद में खोलना चाहा। किन्तु उन्होंने यह कह कर मना किया कि दोनों के उद्देश्य एक हैं, दो होने का कारण केवल इतना है कि कुछ लोग मेरे द्वारा क़ायम की गई किसी संस्था में शरीक नहीं होना चाहते और कुछ श्रीमती बेसंट द्वारा संस्थापित किसी संस्था में नहीं रहना चाहते। मैंने लीग की शाखा फ़ैज़ाबाद में खोली और उसका मन्त्री चुना गया। इसकी ओर से प्रचार का कार्य होता था और समय-समय पर सभाओं का आयोजन होता था। मेरा सबसे पहला सार्वजनिक भाषण अली बन्धुओं की नज़रबन्दी का विरोध करने के लिए आमंत्रित सभा में हुआ था। मैं बोलते बहुत डरता था। किन्तु किसी प्रकार बोल गया और कुछ सज्जनों ने मेरे भाषण की प्रशंसा भी की। इससे मेरा उत्साह बढ़ा और फिर धीरे-धीरे संकोच दूर हो गया। मैं अब सोचता हूँ कि यदि मेरा पहला भाषण बिगड़ गया होता तो शायद मैं भाषण देने का फिर साहस न करता।

लीग के साथ-साथ कांग्रेस में भी था और बहुत जल्द उसकी सब कमेटियों में बिना प्रयत्न के पहुँच गया। महात्मा जी के राजनीतिक क्षेत्र में आने से धीरे-धीरे कांग्रेस का रूप बदलने लगा। आरम्भ में तो वह कोई ऐसा हिस्सा नहीं लेते थे किन्तु सन् १६१६ से वह प्रमुख भाग लेने लगे। ख़िलाफ़त के प्रश्न को लेकर जब उन्होंने असहयोग आन्दोलन चलाना चाहा, तो असहयोग के कार्यक्रम के सम्बन्ध में लोकमान्य से उनका मतभेद था। जून १६२० में काशी में A. I. C. C. की बैठक के समय मैंने इस सम्बन्ध में लोकमान्य से बातें कीं। उन्होंने कहा कि मैंने अपने जीवन में कभी गवर्नमेंट के साथ सहयोग नहीं किया; प्रश्न असहयोग के कार्यक्रम का है। जेल से लौटने के बाद जनता पर उनका वही पुराना विश्वास नहीं रह गया था और उनका ख़्याल था कि प्रोग्राम ऐसा हो जिस पर जनता चल सके। वह कौंसिलों के बहिष्कार के ख़िलाफ़ थे। उनका कहना था कि यदि आधी भी जग ख़ाली रहें तो यह ठीक है किन्तु यदि वहाँ जगहें भर जावें तो अ को प्रतिनिधि कह कर सरकारपरस्त लोग देश का अहित करेंगे उनका एक सिद्धान्त यह भी था कि कांग्रेस में अपनी बात रक्खो औ अन्त में जो उसका निर्णय हो उसे स्वीकार करो। मैं तिलक अनुयायी था। इसलिए मैंने कांग्रेस में कौंसिलों के बहिष्कार के विरु वोट दिया किन्तु जब एक बार निर्णय हो गया उसे शिरोधार्य किया वकालत के पेशे में मेरा मन न था। नागपुर के अधिवेशन में ज असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया तो उसके अनुसार मैंने तुर वकालत छोड़ दी। इस निश्चय में मुझे एक क्षण की भी देर न लगी मैंने किसी से परामर्श भी नहीं किया क्योंकि मैं कांग्रेस के निर्णय अपने को बँधा हुआ मानता था। मैंने अपने भविष्य का भी ख़्या नहीं किया। पिताजी से एक बार पूछना चाहा किन्तु यह सोच कर यदि उन्होंने विरोध किया तो मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन न क सकूँगा। मैंने उनसे भी अनुमति नहीं माँगी, किन्तु पिताजी को ज पता चला तो उन्होंने कुछ आपत्ति न की। केवल इतना कहा कि तुमक अपनी स्वतन्त्र जीविका की कुछ फ़िक्र करनी चाहिए और जब त जीवित रहे मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होने दी। असहयोग आन्दोलन के शुरू होने के बाद एक बार पं० जवाहरलाल फ़ैज़ाबा आए और उन्होंने मुझ से कहा कि बनारस में विद्यापीठ खुलने जा रहा है और तुम्हें लोग वहाँ चाहते हैं। मैंने अपने प्रिय मित्र श्री शिवप्रसाद जी को पत्र लिखा। उन्होंने मुझे तुरन्त बुला लिया। शिवप्रसाद जी मेरे सहपाठी थे और विचार-साम्य होने के कारण मेरी उनकी मित्रता हो गई। वह बड़े उदार हृदय के व्यक्ति थे। दानियों में मैंने उन्हीं को एक पाया जो नाम नहीं चाहते थे। क्रान्तिकारियों की भी वह धन से सहायता करते थे। विद्यापीठ के काम में मेरा मन लग गया। श्रद्धेय डा० भगवानदास जी ने मुझ पर विश्वास कर मुझे उपाध्यक्ष बना दिया। उन्हीं की देख रेख में मैं कार्य करने लगा। मैं २ वर्ष तक छात्रावास में ही विद्यार्थियों के साथ रहता था। एक कुटुम्ब सा था। साथ-साथ हम लोग राजनीतिक कार्य भी करते थे। कराची में जब अली बन्धुओं को सज़ा हुई थी तब हम सब बनारस के गाँवों में प्रचार के लिए गए थे। अपना-अपना बिस्तर बग़ल में दबा नित्य पैदल घूमते थे। सन् १६२६ में डाक्टर साहब ने अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दिया और मुझे अध्यक्ष बना दिया। बनारस में मुझे कई नए मित्र मिले। विद्यापीठ के अध्यापकों तथा कार्यकर्त्ताओं से मेरा बड़ा मीठा सम्बन्ध रहा है। श्रीप्रकाश जी से मेरा विशेष स्नेह हो गया। यह अत्युक्ति न होगी कि वह स्नेहवश मेरे प्रचारक हो गए थे। उन्होंने मुझे आचार्य कहना शुरू किया यहाँ तक कि वह मेरे नाम का एक अंग बन गया है। सबसे वह मेरी प्रशंसा करते रहते थे। यद्यपि मेरा परिचय जवाहरलाल जी से होम रूल आन्दोलन के समय से था तथापि श्रीप्रकाश जी द्वारा उनसे तथा गणेश जी से मेरी घनिष्ठता हुई। मैं उनके घर में महीनों रहा हूँ। वह मेरी सदा फ़िक्र उसी तरह करते हैं जैसे माता अपने बालक की। उनकी मेरे बारे में राय है कि मैं अपनी फ़िक्र नहीं करता

हूँ, शरीर से बड़ा लापरवाह हूँ। मेरे विचार उनसे चाहे मिलें या न मिलें, उनका स्नेह घटता नहीं। सियासत की दोस्ती पायदार नहीं होता है। किन्तु विचारों में अन्तर होते हुए भी हम लोगों के स्नेह में फ़र्क़ नहीं पड़ा है। पुराने मित्रों से वियोग दुःखदायी होता है किन्तु यदि शिष्टता बनी रहे तो सम्बन्ध में बहुत अन्तर नहीं पड़ता ऐसी मिसाल हैं किन्तु बहुत कम हैं। नेता के मुझ में कोई भी गुण नहीं हैं। मुझ में महत्त्वाकांक्षा नहीं है। यह बड़ी कमी है। मेरी बनावट कुछ ऐसी हुई है कि मैं न नेता हो सकता हूँ और न अन्धभक्त अनुयायी। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं अनुशासन में नहीं रहना चाहता हूँ। मैं व्यक्तिवादी नहीं हूँ। नेताओं की दूर से आराधना करता रहा हूँ। उनके पास बहुत कम जाता रहा हूँ। यह मेरा स्वाभाविक संकोच है। आत्म-प्रशंसा सुनकर कौन खुश नहीं होता। अच्छा पद पाकर किसको प्रसन्नता नहीं होती। किन्तु मैंने कभी इसके लिए प्रयत्न नहीं किया। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति होने के लिए मैंने अनिच्छा प्रकट की किन्तु अपने अन्य नेताओं के अनुरोध पर खड़ा होना पड़ा। इसी प्रकार जब पं० जवाहरलाल नेहरू ने मुझ से वर्किंग कमेटी में आने को कहा, मैंने इन्कार कर दिया। किन्तु उनके आग्रह करने पर मुझे निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ा।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि मैं नेता नहीं हूँ। इसलिए किसी नए आन्दोलन या पार्टी का आरम्भ नहीं कर सकता। सन् १९३४ में जब जयप्रकाश जी ने समाजवादी पार्टी बनाने का प्रस्ताव रखा और मुझे सम्मेलन का सभापति बनाना चाहा तो मैंने इन्कार किया। इसलिए नहीं कि समाजवाद को नहीं मानता था किन्तु इसलिए कि मैं किसी बड़ी जिम्मेदारी को उठाना नहीं चाहता था। उनसे मेरा काफी स्नेह था। और इसी कारण मुझे अन्त में उनकी बात माननी पड़ी। सम्मेलन पटने में मई सन् १९३४ में हुआ था। बिहार में भूकम्प हो गया था। उसी सिलसिले में मैं विद्यार्थियों को लेकर कार्य करने गया। वहाँ पहली बार डाक्टर लोहिया से परिचय हुआ। मुझे यह कहने में प्रसन्नता है कि जब पार्टी का विधान बना तो केवल डाक्टर लोहिया और हम इस पक्ष में थे कि उद्देश्य के अन्तर्गत पूर्ण स्वाधीनता भी होनी चाहिए। अन्त में हम लोगों की विजय हुई। मेहर अली से एक बार सन् १९२८ में मुलाकात हुई थी। बम्बई के और मित्रों को मैं उस समय तक नहीं जानता था। अपरिचित व्यक्तियों के साथ कार्य करते मुझ को घबराहट होती है। किन्तु प्रसन्नता की बात है कि सोशलिस्ट पार्टी के सभी प्रमुख कार्यकर्त्ता शीघ्र ही एक कुटुम्ब के सदस्य की तरह हो गए।

यों तो मैं अपने सूबे में बराबर भाषण किया करता था किन्तु A. I. C. C. में मैं पहली बार पटने में बोला। मौलाना मुहम्मद-अली ने एक बार कहा था कि बंगाली और मद्रासी कांग्रेस में बहुत बोला करते हैं, बिहार के लोग जब औरों को बोलते देखते हैं तो खिसक कर राजेन्द्र बाबू के पास जाते हैं और कहते हैं कि रौवाँ बोलीं बोलीं और यू० पी० के लोग खुद नहीं बोलते और जब कोई बोलता है तो कहते हैं क्या बेवक़ूफ़ बोलता है। हमारे प्रान्त के बड़े-बड़े नेताओं के आगे हम लोगों को कभी बोलने की जरूरत नहीं पड़ती थी। एक समय पं० जवाहरलाल भी बहुत कम बोलते थे किन्तु सन् १९३४ में मुझे पार्टी की ओर से बोलना पड़ा। यदि पार्टी न बनी होती तो शायद मैं कांग्रेस में बोलने का साहस भी नहीं करता।

पं० जवाहरलाल जी से मेरी विचारधारा बहुत मिलती-जुलती थी, इस कारण तथा उनके ऊँचे व्यक्तित्व के कारण मेरा उनके प्रति सदा आकर्षण रहा है। उनके सम्बन्ध में कई कोमल स्मृतियाँ हैं। केवल एक बात का उल्लेख यहाँ करता हूँ। हम लोग अहमदनगर के किले में एक साथ थे। एक बार टहलते हुए कुछ पुरानी बातों की चर्चा चल पड़ी। उन्होंने कहा—नरेन्द्रदेव! यदि मैं कांग्रेस के आन्दोलन में न आता और उसके लिए कई बार जेल की यात्रा न करता तो मैं इन्सान न बनता। उनकी बहन कृष्णा ने अपनी पुस्तक में जवाहरलाल का एक पत्र उद्धृत किया है जिससे उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। पं० मोतीलाल जी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने अपनी बहनों को लिखा कि पिता की सम्पत्ति मेरी नहीं है, मैं तो सब के लिए उसका ट्रस्टी मात्र हूँ। उस पत्र को पढ़ कर मेरी आँखों में आँसू आ गए और मैंने जवाहरलाल की महानता को समझा। उनको अपने साथियों का बड़ा ख़्याल रहता है और बीमार साथियों की बड़ी शुश्रूषा करते हैं।

महात्मा जी के आश्रय में मुझे ४ महीने रहने का मौक़ा सन् १९४२ में मिला। मैंने देखा कि वह कैसे अपने प्रत्येक क्षण का उपयोग करते हैं। उनका जीवन बड़ा संयत था। वह रोज़ आश्रम के प्रत्येक रोगी की पूछ-ताछ करते थे। प्रत्येक छोटे-बड़े कार्यकर्त्ता का ख़्याल रखते थे। आश्रमवासी अपनी छोटी-छोटी समस्याओं को लेकर उनके पास जाते थे और वह सबका समाधान करते थे। आश्रम में रोग शय्या पर पड़े-पड़े मैं विचार किया करता था कि वह पुरुष जो आज के हिन्दू धर्म के किसी नियम को नहीं मानता वह क्यों असंख्य सनातनी हिन्दुओं का आराध्य देव बना हुआ है। पंडित समाज चाहे उनका भले ही विरोध करे किन्तु अपढ़ जनता उनकी पूजा करती है। इस रहस्य को हम तभी समझ सकते हैं जब हम जानें कि भारतीय जनता पर श्रमण संस्कृति का कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति घरबार छोड़कर निःस्वार्थ सेवा करता है उसके आचार की ओर हिन्दू जनता ध्यान नहीं देती। पंडितम्मन्य उनकी भले ही निन्दा करे किन्तु सामान्य जनता उनका सदा सम्मान करती है। अक्तूबर सन् १९४१ में जब मैं जेल से छूटा तब महात्मा जी ने मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मुझ से पूछा और प्राकृतिक चिकित्सा के लिए आश्रम में बुलाया। मैं महात्मा जी पर बोझ नहीं डालना चाहता था। इसलिए कुछ बहाना कर दिया। पर जब मैं A. I. C. C. की बैठक में शरीक होने वर्धा गया और वहाँ बीमार पड़ गया तब उन्होंने रहने के लिए आग्रह किया। मेरी चिकित्सा होने लगी। महात्मा जी मेरी बड़ी फ़िक्र करते थे। एक रात मेरी तबियत बहुत ख़राब हो गई। जो चिकित्सक नियुक्त थे वह घबरा गये यद्यपि इसके लिए कोई कारण न था। रात के एक बजे बिना मुझे बताये महात्मा जी को जगाने गये और वह मुझे देखने आए।

वह उनका मौन का दिन था । उन्होंने मेरे लिए मौन तोड़ा । ऐसे मौक़े थोड़े थे । उसी समय मोटर भेजकर वर्धा से डाक्टर बुलाये गए । सुबह तक तबियत सँभल गई । दिल्ली में Stafford Cripps वार्तालाप के लिए आए थे । महात्मा जी दिल्ली जाना नहीं चाहते थे किन्तु आग्रह होने पर गए । जाने के पहले मुझसे कहा कि वह हिन्दुस्तान के बँटवारे का सवाल किसी न किसी रूप में लावेंगे । इसीलिए उनकी दिल्ली जाने की इच्छा न थी । दिल्ली से बराबर फ़ोन से मेरी तबियत का हाल पूछा करते थे । बा भी उस समय बीमार थीं । इस कारण वह जल्दी लौट आए । जिनके विचार उनसे नहीं मिलते थे यदि वह ईमानदार होते थे तो वह उनको अपने निकट लाने की चेष्टा करते थे ।

उस समय महात्मा जी सोच रहे थे कि जेल में वह इस बार भोजन नहीं करेंगे । उनके इस विचार को जान कर महादेव भाई बड़े चिन्तित हुए । उन्होंने मुझ से कहा कि तुम भी महात्मा जी से इस सम्बन्ध में बातें करो । डाक्टर लोहिया भी सेवाग्राम उस दिन आ गये थे । उनसे भी यही प्रार्थना की गई । हम दोनों ने बहुत देर तक बातें कीं । महात्मा जी ने हमारी बात शान्तिपूर्वक सुनी । किन्तु उस दिन वह अन्तिम निर्णय न कर सके । बंबई में जब हम लोग ९ अगस्त को गिरफ़्तार हो गये, स्पेशल ट्रेन में अहमदनगर ले जाए गये । उसमें महात्मा जी, उनकी पार्टी और बंबई के प्रमुख लोग थे । नेताओं ने उस समय भी महात्मा जी से अन्तिम बार प्रार्थना की कि वह ऐसा काम न करें । क़िले में भी हम लोगों को सदा इसका भय लगा रहता था ।

सन् १९४५ में हम लोग छूटे, मैं जवाहरलाल जी के साथ अलमोड़ा जेल से १४ जून को रिहा हुआ । कुछ दिनों के बाद मैं पूना में महात्मा जी से मिला । उन्होंने पूछा कि सत्य और अहिंसा के बारे में अब तुम्हारे क्या विचार हैं । मैंने उत्तर दिया कि मैं सत्य की तो सदा से आराधना किया करता हूँ किन्तु इसमें मुझे सन्देह है कि बिना कुछ हिंसा के राज्य की शक्ति हम अंग्रेज़ों से छीन सकेंगे ।

महात्मा जी के सम्बन्ध में अनेक संस्मरण हैं किन्तु समयाभाव हम इससे अधिक कुछ नहीं कहते ।

इधर कई वर्ष से कांग्रेस में यह चर्चा चल रही थी कि कांग्रेस कोई पार्टी नहीं रहनी चाहिए । महात्मा जी इसके विरुद्ध थे । स्वत होने के बाद मेरी यह राय थी कि कांग्रेस से अलग होने का सम अभी नहीं आया है क्योंकि देश संकट से गुज़र रहा है । सोशलिस्ट पार्टी इस सम्बन्ध में मतभेद था । किन्तु मेरे मित्रों ने मेरी सलाह मान निर्णय को टाल दिया । मैंने यह भी साफ़ कर दिया था कि यदि कांग्रे ने कोई ऐसा नियम बना दिया जिससे हम लोगों का कांग्रेस में रह असम्भव हो गया तो मैं सबसे पहले कांग्रेस छोड़ दूँगा । कोई व्यक्ति जिसको आत्म-सम्मान का ख्याल है, ऐसा नियम बनने पर न रह सकता । यदि ऐसा नियम न बनता और पार्टी कांग्रेस को छोड़ने निश्चय करती तो यह तो ठीक है कि मैं आदेश का पालन करता कि मैं यह नहीं कह सकता कि मैं कहाँ तक उसके पक्ष में होता । कांग्रेस निर्णय के बाद मेरे सब सन्देह मिट गए और अपना निर्णय करने मुझे एक क्षण भी न लगा । मेरे जीवन के कठिन अवसर जिनका भविष्य पर गहरा असर पड़ा है, ऐसे ही हुए हैं । इन मौकों घटनाएँ ऐसी हुईं कि मुझे अपना फ़ैसला करने में कुछ देर न लगी इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ ।

मेरे जीवन के कुछ ही वर्ष रह गए हैं । शरीर-सम्पत्ति अच्छी न है । किन्तु मन में अब भी उत्साह है । सदा अन्याय से लड़ते बीता । यह कोई छोटा काम नहीं है । स्वतन्त्र भारत में इसकी और आवश्यकता है । अपनी ज़िन्दगी पर एक निगाह डालने से मालूम हो है कि जब मेरी आँखें मुँदेंगी, मुझे यह परितोष होगा कि जो का मैंने विद्यापीठ में किया है, वह स्थायी है । मैं कहा करता हूँ कि य मेरी पूँजी है और इसी के आधार पर मेरा राजनीतिक कारोबार चल है । यह सर्वथा सत्य है ।

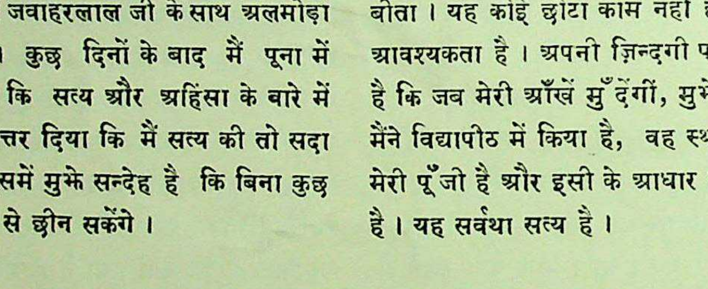

आचार्य नरेन्द्रदेव

बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर

आचार्य नरेन्द्रदेव जी के देहान्त ने देश को बहुत गहरी क्षति पहुँचाई है। उनके जैसे महान् नेता देश के पिछले पचास साल के इतिहास में इने-गिने ही हुए हैं।

देश-भक्ति का सबक तो उनको बचपन से ही मिला था और देश के लिए काम करने की लगन कालेज के ज़माने से ही उनको लग गई थी। तिलक जी के नेतृत्व में उन्होंने राजनीतिक कार्य आरम्भ कर दिया था। गान्धी जी के असहयोग का सन्देश पाते ही वे वकालत छोड़ कर फ़ौरन आन्दोलन में शामिल हो गए। उसी सिलसिले में नरेन्द्रदेव जी गान्धी जी द्वारा स्थापित काशी विद्यापीठ में अध्यापन करने लगे। कुछ सालों तक उसके उपाचार्य रह कर बाद को आचार्य हुए।

आचार्य नरेन्द्रदेव के साथ डा० केसकर

नरेन्द्रदेव जी बहुगुणी आदमी थे। उनके व्यक्तित्व में विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, चारित्र्य और स्वार्थ-त्याग का ऐसा मेल मिलता है कि उसकी उपमा और शायद ही किसी के चरित्र में मिले। वे संस्कृत, प्राकृत, पाली के विद्वान थे। प्राचीन भारतीय इतिहास का उनका सूक्ष्म अध्ययन था लेकिन साथ ही साथ आधुनिक भारत के उत्थान का इतिहास भी उन्हें अच्छी तरह अवगत था। भारतीय इतिहास के इस अध्याय का ज्ञान बहुत कम लोगों को है और इसे अच्छी तरह से जानने वाला उनके बराबर मुझे कहीं नहीं मिला। विद्यापीठ में उन्होंने इस विषय को बराबर पढ़ाया। इसमें उनको इतना रस था कि वे बड़े चाव से पढ़ाते थे। इसका कारण यह है कि उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से इसका अध्ययन किया था और वे जीवित इतिहास के सम्पर्क में रहे तथा उसमें भाग लेते रहे।

नरेन्द्रदेव जी अच्छे काबिल वकील थे और कोई सन्देह नहीं कि अगर आगे चलते तो वकालत में भी बहुत बड़ा नाम कमाते। लाजवाब वक्ता थे। उनकी विशेषता यह थी कि हिन्दी और उर्दू दोनों में जब चाहे बोल सकते थे। वक्ता तो मैंने बहुत देखे लेकिन बुद्धिमान और समझदार श्रोता के लिए उनके जैसा वक्ता मिलना कठिन है। धारा-प्रवाह चुने हुए शब्दों में कठिन-से-कठिन विषय को चित्रित कर देते थे। उर्दू पर भी उनका इतना अधिकार था कि कठिन दार्शनिक विषयों पर भी जानकारों की बैठक में ऐसा अच्छा व्याख्यान दे देते थे कि सब की तबीयत खुश हो जाती थी।

उनकी नम्रता और सौजन्य हद दरजे का रहा। अपने को आगे बढ़ाने की उन्होंने कभी कोशिश नहीं की। शायद राजनीति में उनको इससे कुछ हानि उठानी पड़ी। मुझे याद है कि बहुत दिनों तक, १९२८-२९ तक, उनको विद्यापीठ से बाहर कम लोग जानते थे। उस समय गान्धी जी एक दौरे में जब बनारस आए तब उनका परिचय नरेन्द्रदेव जी से हुआ और वह उनसे इतने प्रभावित हुए कि कई जगह उनको खींच ले गए और इस प्रकार धीरे-धीरे उनका नाम देश भर में फैल गया। लेकिन उनका स्वभाव जैसा पहले था वैसा हमेशा बना रहा। आगे बढ़ने की कोशिश कभी नहीं की। अपने दूसरे साथियों को खुशी से आगे बढ़ाया।

वे कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य रह चुके थे। जो मशहूर वर्किंग कमेटी अगस्त १९४२ में अहमदनगर जेल में बन्द कर दी गई थी, उसमें वे थे। खेद है कि वे कांग्रेस के सभापति नहीं बनाए गए। दो बार उनका नाम निश्चित रूप से आगे आया और यदि पार्टी का सवाल न होता तो वे शर्तिया हो जाते—चूँकि वे कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नेता थे इसलिए कांग्रेस नेताओं के एक दल ने उनके सभापतित्व का विरोध किया। नहीं तो वे एक नहीं बल्कि दो बार शायद सभापति हो जाते। कांग्रेस समाजवादी

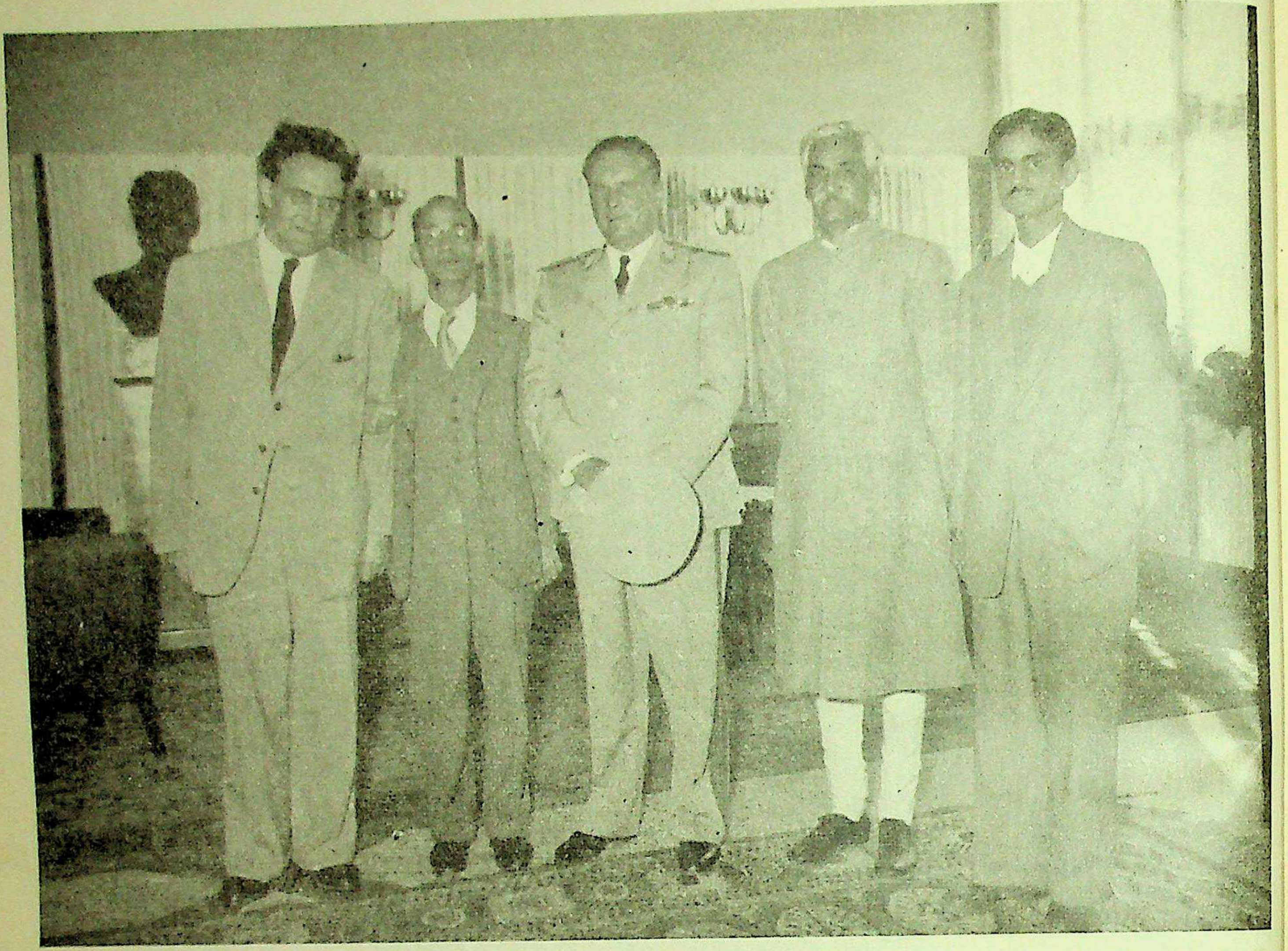

यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो के साथ

दल के तो वे शुरू से ही स्थापकों में थे। वहाँ भी उन्होंने नेता बनने की कभी कोशिश नहीं की। हमेशा दूसरों को बनने दिया। अन्त में मजबूर किए जाने पर ही वे सोशलिस्ट पार्टी के चेयरमैन बने थे।

अपने साथियों से वे हमेशा बहुत प्रेम करते रहे। विशेष तौर पर विद्यापीठ में जो उनके साथ थे, चाहे वे अध्यापक रहे हों या उन्हें विद्यार्थी बन कर उनसे सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, उनको अपना कुटुम्बीय हो उन्होंने मान लिया। विद्यापीठ में बीता हुआ अपना जीवन-काल उनको सब दृष्टि से सुखदायी मालूम हुआ और इसलिए उसकी वे बार-बार याद करते थे। विद्यापीठ परिवार के वे हमेशा आचार्य रहे।

उनका जीवन स्वार्थ-त्याग की एक कहानी है। उन्होंने अपना सर्वस्व देश की सेवा में लगाया। बाद को जब वे यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर हुए तब भी अपनी तनख्वाह का एक अच्छा अंश विद्यार्थियों के स्कॉलरशिप के लिए दे देते थे। देश और समाज के काम को व्यक्तिगत या कुटुम्ब के काम से वे हमेशा अधिक महत्त्व का समझा करते थे, परिणामस्वरूप हमेशा आर्थिक कठिनाई में रहे। लेकिन इसकी परवाह नहीं की।

उनको काफी पहले से दमे का रोग हो गया था। शुरू में तो मामूली रहा लेकिन आगे बढ़ता ही गया। बाद को उनके रोग ने काफी उग्र रूप धारण किया। मुख्य कारण शायद यह था कि देश और पार्टी के काम के लिए उन्होंने अपने स्वास्थ्य की तरफ़ ध्यान न दिया और किसी प्रकार का नियम पालन तो शायद ही कभी किया हो या पथ्य कभी लिया हो। नतीजा यह हुआ कि उनकी दमे की हालत बिगड़ती ही गई और उसी में उनका अन्त हुआ।

पिछले पचास साल में जो बड़े-बड़े नेता हमारे देश में हुए हैं उनमें से ऊपरी आठ-दस में ही उनकी गिनती होगी। विद्वत्ता, वक्तृत्व, चरित्र की दृढ़ता और स्वार्थ-त्याग—ऐसे गुणों का मेल उनके अलावा लोकमान्य तिलक में ही मिलता है। यह देश के लिए अत्यन्त दुःख और खेद की बात है कि उनके जैसा नेता ऐसे समय में चल बसा। उनकी मृत्यु से जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होना बहुत कठिन है।

हम लोग जो ३९ साल उनके साथ रहे, जिन्होंने उनसे शिक्षा पाई और उनके व्यक्तित्व से जिनको स्फूर्ति मिली, उनकी जो हानि हुई है उसकी पूर्ति हो ही नहीं सकती। जब

वे विद्यापीठ में आए तब से उनसे पढ़ने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी विद्वत्ता और स्नेह ऐसा था कि विद्यार्थी उन पर लुब्ध-से रहते थे। एक समय ऐसा आया था कि अपने पिता की मृत्यु के कारण आचार्य जी विद्यापीठ छोड़कर फ़ैज़ाबाद में घर पर रहने का विचार कर रहे थे। थोड़े दिनों के लिए वे छोड़ कर चले भी गए। उस समय काफ़ी विद्यार्थियों ने आपस में सलाह-मशवरा करके यह तय किया था कि उनके न रहते हुए काशी विद्यापीठ में रहना व्यर्थ है और किसी और विद्यापीठ में हम सब चले जाएँ। सौभाग्य से वे फिर वापस आ गए। उनका मन फ़ैज़ाबाद में नहीं लगा।

विद्यापीठ की शिक्षा के अलावा उन्होंने हम सब को अपनी बातचीत के द्वारा काफी ज्ञान दिया और सबक सिखाया। विद्यापीठ एक कुटुम्ब की तरह था। सब लोग वहीं रहते थे इसलिए दिन में कई बार मुलाकात होती थी, बातें होती थीं, चर्चा होती थी और पुस्तकों के बारे में तथा सिद्धान्तों के बारे में बहस भी हुआ करती थी। उसमें हम लोगों पर आचार्य जी की छाप सबसे गहरी पड़ी। जो विद्यार्थी उनसे शुरू से पढ़ते रहे उनके साथ आचार्य जी का बहुत गहरा स्नेह रहा। वे उन्हें अपने कुटुम्बीय की तरह मानते थे और यह स्नेह-सम्बन्ध राजनीतिक जीवन के परिवर्तन के बावजूद भी अटूट रहा। इसलिए मेरे लिए तो उनका जाना ऐसा ही है जैसे अपने कुटुम्ब का बहुत स्नेही बुज़ुर्ग चल बसे। अपने जीवन में जो कुछ थोड़ा-बहुत मैं कर सका या करने की कोशिश करता हूँ उसका बहुत कुछ श्रेय आचार्य जी को है।

ज्योतिस्तम्भ

आचार्य नरेन्द्रदेव की मृत्यु से मुझे गहरा आघात पहुँचा है। भारत में उनकी कोटि के बहुत कम लोग थे और उनके सम्पर्क में जो भी आता था, भले ही वह किसी भी पार्टी का हो, या उसके कुछ भी विचार हों, उनसे सहज ही प्रेम करने लगता था। उनकी मृत्यु से जो अभाव उत्पन्न हुआ है वह मुश्किल से ही भरेगा। धीरे-धीरे स्वतन्त्रता युद्ध के महापुरुष और ज्योतिस्तम्भ गिरते जा रहे हैं और जो स्थान रिक्त होता है, वह भरने को नहीं आता।

मेरे वह लगभग चालीस वर्ष के मित्र और सहयोगी थे। उनके साथ विभिन्न जेलों में और अन्त में अहमदनगर किल्ले में जो समय बीता, उसे मैं कभी नहीं भूल सकूँगा।

—जवाहरलाल नेहरू

निधन से कुछ काल पूर्व आस्ट्रिया में स्वास्थ्य लाभ करते हुए

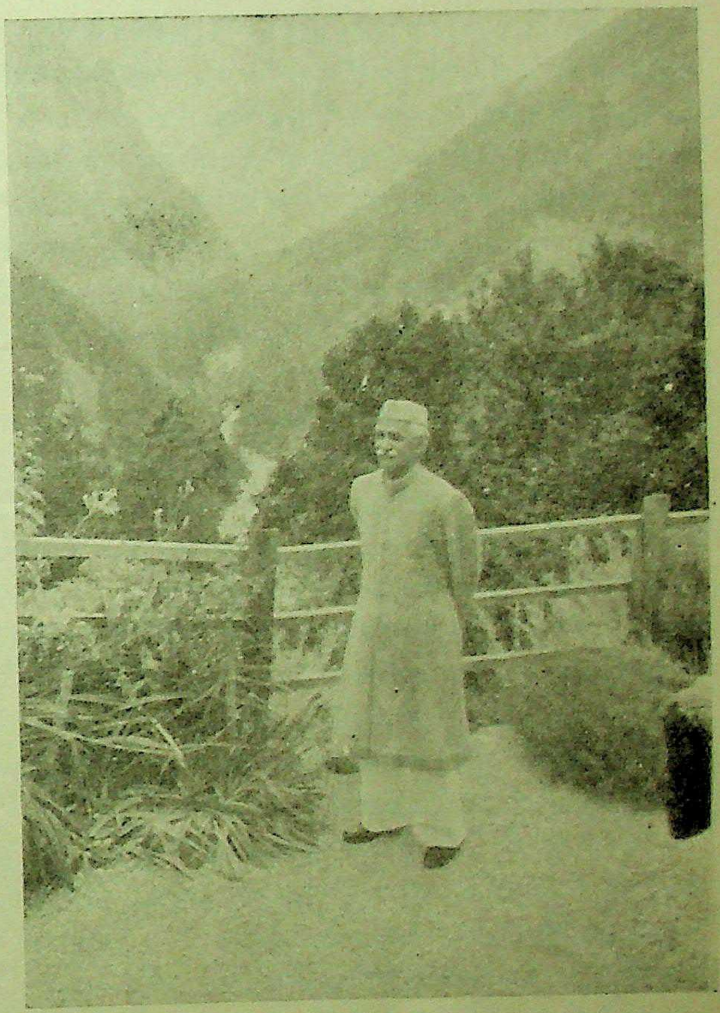

'नर-रत्न' नरेन्द्रदेव

श्रीप्रकाश

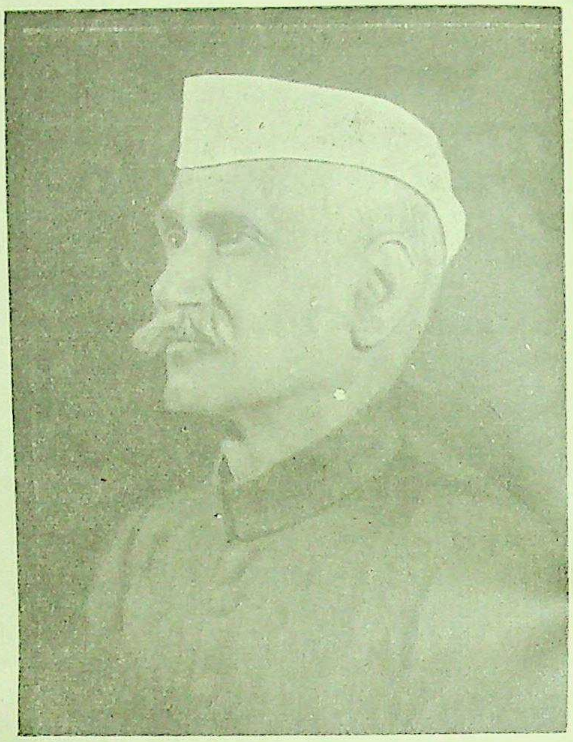

स्निग्ध आचार्य जी

आचार्य नरेन्द्रदेव आज नहीं रहे । शोक और विषाद की इस घड़ी में उनके साथ अपने दीर्घ साहचर्य की इतनी विविध और असंख्य स्मृतियाँ मेरे मानस-पट पर उभरती आ रही हैं कि मैं सोच नहीं पाता कहाँ से शुरू करूँ ।

नरेन्द्रदेव जी को हम लोग स्नेहवश आचार्य कहते थे और वह सचमुच थे भी 'आचार्य' ही । जलियाँवाला बाग काण्ड के थोड़े दिन बाद इलाहाबाद में पण्डित मोतीलाल नेहरू के निवास स्थान पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में पहले-पहल हम लोगों की भेंट हुई थी । अगले वर्ष अपने मित्र श्री शिवप्रसाद गुप्त की उदारता और महात्मा गान्धी की प्रेरणा से हमने बनारस में काशी विद्यापीठ की स्थापना का निश्चय किया । नरेन्द्रदेव जी से अनुरोध किया गया कि वह, फ़ैज़ाबाद में अपना घर और अपनी खूब चलती हुई वकालत छोड़कर, उसके अध्यक्ष के रूप में बनारस पधारें । इसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया । १९२१ के आरम्भ में ही हमने पूरी तेज़ी से अपना कार्य आरम्भ कर दिया था । संस्था का कार्य करते हुए मुझे नरेन्द्रदेव जी के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । यह सम्पर्क धीरे-धीरे अत्यन्त प्रगाढ़ मैत्री में परिणत हो गया और उस पर जीवन भर किसी प्रकार की मलिनता की छाया नहीं पड़ी । इसे मैं अपने जीवन की अत्यन्त मूल्यवान निधियों में मानता हूँ ।

आचार्य नरेन्द्रदेव बड़े स्निग्ध और अभिभावी व्यक्ति थे । जीवन भर भीषण अस्थमा का शिकार रहने पर भी उनके स्वभाव में अद्वितीय सन्तुलन और स्थिरता थी । मैंने जो कुछ इने-गिने आकर्षक व्यक्तित्व देखे हैं, वह भी उनमें से एक थे । जो कोई उनके सम्पर्क में आता, उनका प्रशंसक बन जाता और उनसे स्नेह कर उठता । वे सरल और सदय थे, सभ्य और विनम्र थे । कोई भी व्यक्ति किसी भी समय उनके पास तक पहुँच सकता था । जो जाता प्रसन्न होकर लौटता, हर व्यक्ति को उनकी सहायता और सहानुभूति अनायास ही प्राप्त हो जाती थी । वह बड़े विनोदी थे और वाग्विदग्ध भी । एकान्त में बैठकर उन्मुक्त भाव से मित्रतापूर्ण बातचीत करने में वह बड़ा आनन्द लेते थे ।

शिक्षक के रूप में वह अप्रतिम थे । अनेक देशों के इतिहास, अनेक युगों के दर्शन, अनेक भाषाओं के साहित्य सभी में उनकी समान गति थी । आश्चर्य की बात यह है कि उनकी सबसे अधिक दिलचस्पी का विषय था राजनीति । इस विषय पर भी उनका वैसा ही अधिकार था, जैसा अन्य विषयों पर । अपने अगाध ज्ञान को वह अत्यन्त विनम्रतापूर्वक धारण किये थे । जिस किसी विषय पर वह बोलते थे उसे वह इतना स्पष्ट, रोचक और सहज सुगम बनाकर प्रस्तुत करते कि श्रोता उनका अर्थ सरलता से ग्रहण कर लेते और दुर्बोध विषय को सुबोध रूप देने पर उनकी प्रशंसा किये बिना न रहते । बहुत समय तक अपने कुछ निकट के लोगों को छोड़कर कोई उन्हें जानता भी न था, परन्तु प्रसिद्धि की उन्होंने कभी परवाह नहीं की । उनके हाथ में जो काम होता था, उसी से वे पूर्णतः सन्तुष्ट रहते थे, उसी में उनकी लगन थी । शुरू से ही देश को स्वतन्त्र कराने की उनमें अदम्य लालस थी । अनेक राजनीतिक आन्दोलनों में वह हँसते-खेलते कूद पड़े थे और बड़े-से-बड़े खतरे के अवसरों पर भी वे कभी पीछे नहीं हटे ।

१९२९ में जब महात्मा जी काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करने आये तो नरेन्द्रदेव जी से पहली बार उनका निकट सम्पर्क हुआ । उस समय गान्धी जी मेरे अतिथि थे । बाद में उन्होंने मुझ से कहा कि नरेन्द्रदेव जी के सम्बन्ध में उन्हें पहले कुछ न बताक मैंने बड़ी भारी गलती की है, वह तो 'नर-रत्न' हैं जिन्हें बहुत पहले ही मुझे जान लेना चाहिए था । तब मैंने महात्मा जी से कहा था कि जिन्हें रत्नों की ज़रूरत होती है वे स्वयं ही तो उनकी खोज करते हैं रत्न तो कभी उनके पीछे नहीं जाते । तब से महात्मा जी नरेन्द्रदेव जी की ओर बहुत ही आकर्षित हुए थे और उनकी बहुत प्रशंसा किया करते थे । वे प्रायः नरेन्द्रदेव जी को अपने आश्रम में बुला लेते थे और उनक

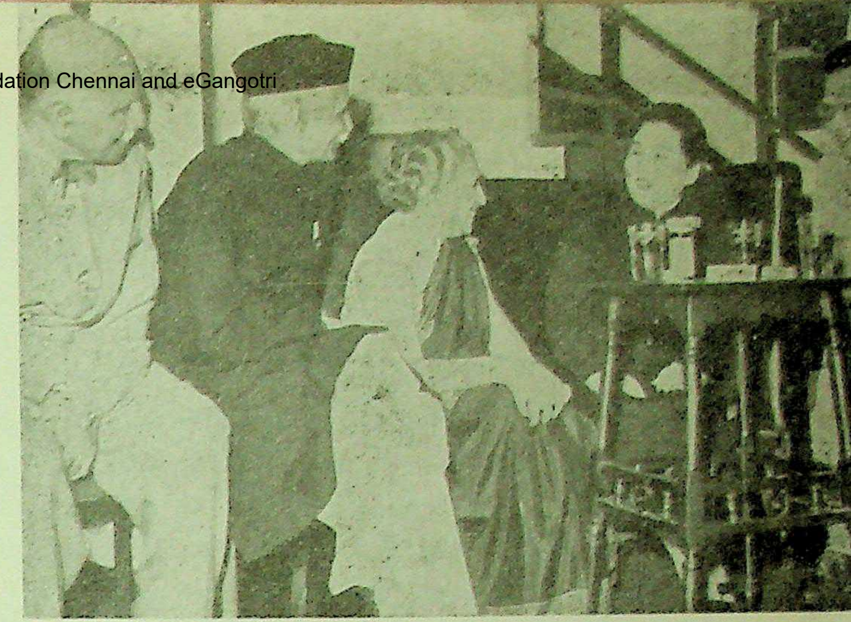

श्रीमती विजयालक्ष्मी के साथ चीन में

उपचार करते कि किसी तरह वह उस भीषण और क्लेशकारी व्याधि से मुक्ति पा जायें ।

शीघ्र ही नरेन्द्रदेव जी राजनीतिक क्षेत्र में प्रख्यात हो गए । जो भी उनके सम्पर्क में आता, उनके चरित्र, उनके विवेक और ज्ञान के कारण उनका आदर करने लगता । महात्मा जी ने एक बार कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए भी उनका नाम प्रस्तावित किया था । वह बहुत समय तक कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य रहे और अन्य सदस्यों के साथ कई वर्ष तक अहमदाबाद किले में नज़रबन्द रहे । वे प्रायः मुझ से कहते कि जीवन में मेरी दो ही चीजों में दिलचस्पी है—एक तो दर्शन और दूसरी राजनीति । राजनीति में, अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि के बावजूद, उनकी प्रवृत्ति अतिवाद की ओर थी । स्वराज्य प्राप्ति के बाद भी, जिसके लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया था और मुसीबतें झेली थीं, उन्होंने शासन व्यवस्था से अलग रह कर ही अपने भावित समाजवाद के लिए प्रयत्न करना पसन्द किया । बुद्ध के भव्य व्यक्तित्व, उनकी चिन्तनधारा और दर्शन में नरेन्द्रदेव जी के लिए बड़ा प्रबल आकर्षण था । प्राचीन भारत के इस महान सपूत के उपदेशों और विचारों का उन्होंने अत्यन्त गहन अवगाहन किया था । जैसे उनकी रुचि का प्रसार राजनीति से बौद्ध दर्शन तक था, वैसे ही उनकी बातचीत के भी ये दो छोर थे । आज अगर बुद्ध के प्रति अगाध श्रद्धा और उनके उपदेशों का पालन करने का प्रयास हमारी राजनीतिक स्पृहाओं में एक जीवन्त सत्य बन गया है, यहाँ तक कि जिसने राजनीतिक सम्बन्धों को भी प्रभावित किया है, तो वह नरेन्द्रदेव जी के अचेतन प्रयत्नों द्वारा ही सम्भव हुआ है । एक इतिहास प्रेमी के रूप में विभिन्न देशों के इतिहासों के विभिन्न युगों के सम्बन्ध में उनके व्याख्यानों को सुनकर स्वयं मैं मुग्ध हो जाया करता था । अतीत की धुँधली परिस्थितियों और व्यक्तित्वों को वह अपने श्रोताओं के सामने जीवन्त वास्तविकताओं के रूप में प्रस्तुत कर देते । इन विषयों पर मैंने जब कभी भी उन्हें सुना तो आश्चर्य-चकित और श्रद्धा-विनत हुए बिना नहीं रह सका ।

एक व्यक्ति के रूप में तो नरेन्द्रदेव जी में कोई कमी या दोष कभी दिखाई ही नहीं पड़ता था । मित्र के रूप में वह पर्वत के समान अडिग थे । शिक्षक के रूप में वह अद्वितीय थे—ज्ञान के विस्तार की दृष्टि से भी और अपने छात्रों को उन्होंने जितना स्नेह दिया और पाया उसके देखे भी । एक विद्वान के रूप में देखा जाए तो उनका पाण्डित्य अगाध था और जिन विभिन्न विषयों पर उनका अधिकार था, वे उनके अत्यन्त व्यवस्थित और अपरिमित ज्ञान के विषय थे । प्रत्येक विषय में उनकी समान गति थी । राजनीतिज्ञ के रूप में उनमें सच्चाई और ईमानदारी की पराकाष्ठा देखने को मिलती थी । दूसरों के मत के प्रति वह सहिष्णु थे । वह उसे भी माफ़ कर देते थे, जिसके बारे में जानते कि उसने उन्हें और उनके ध्येय को आघात पहुँचाया है । परन्तु वह अपना कर्म-पथ सदा निर्धारित कर लेते थे और भय, पक्षपात, स्नेह एवं मनोमालिन्य से ऊपर उठ कर जिस राह को ठीक समझते उसी पर निर्द्वन्द्व होकर चलते थे ।

उनके देहावसान से देश ने एक महान देशभक्त, संसार ने एक प्रकाण्ड विद्वान और उनके साथियों और मित्रों ने उदारता, सरलता और स्नेह की एक जीवन्त प्रतिमा को खो दिया है । दूसरों की सेवा में अपना जीवन होम देने वाले महात्मा के रूप में उनकी स्मृति और दृष्टान्त सदा जीवित रहेंगे; जिसके हम सैकड़ों-हजारों लोग ऋणी हैं, पर जो किसी का ऋणी न था; जिसने सदा देना ही जाना, लेना कभी नहीं । मुझे तो आशा नहीं कि मैं कभी फिर वैसे किसी व्यक्ति के दर्शन कर पाऊँगा ।

●

कार्ल मार्क्स की समाधि पर

आचार्य जी के कुछ संस्मरण

बनारसीदास चतुर्वेदी

वह दिन मुझे अब भी याद है जब कि कानपुर कांग्रेस के अवसर पर श्री सम्पूर्णानन्द जी ने आचार्य जी से मेरा प्रथम परिचय कराया था और इन पिछले ३१ वर्षों में अनेकों बार आचार्य जी के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। कई अवसर मुझे खास तौर पर याद आ रहे हैं।

आचार्य जी कलकत्ते पधारे हुए थे। 'विशाल भारत' पर उनकी विशेष कृपा थी और उसके लिए कई लेख लिखने की कृपा उन्होंने की थी मैंने आचार्य जी की सेवा में निवेदन किया, "तय्यब शेख नामक एक क्रान्तिकारी युवक, जो एम० एन० राय के साथी हैं और जो जर्मनी में रह चुके हैं और रूस भी जा चुके हैं, आपके दर्शन करना चाहते हैं, पर वे फरार हैं और पुलिस उनके पीछे है। क्या आप उन्हें दर्शन देंगे? यहीं मेरे यहाँ मुलाकात हो सकती है।"

आचार्य जी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब मैंने निवेदन किया, "तो शाम का भोजन और विश्राम भी यहीं रखिए।"

आचार्य जी रात के वक्त पधारे और तय्यब शेख से उनकी कई घंटे बातचीत होती रही। राय के अनुयायी उन दिनों काफी खतरनाक माने जाते थे और तब तक राय महोदय ने उस राष्ट्रविरोधी नीति का अवलम्बन नहीं किया था, जो आगे चलकर उनके तथा उनके साथियों के लिए विघातक सिद्ध हुई।

तय्यब शेख ने इस परिचय से जो लाभ उठाया उसका ब्योरा मुझे बहुत दिनों बाद स्वयं आचार्य जी से मालूम हुआ।

आचार्य जी ने कहा, "आप के भेजे हुए तय्यब शेख मेरे घर पर आए थे और मैंने उन्हें सकुशल आगे पहुँचा दिया।" बात यह हुई थी तय्यब शेख जब बम्बई से पकड़े जाकर पुलिस द्वारा कलकत्ते लाये गए तो लाल बाज़ार पुलिस थाने के पास से ही, पुलिस की गिरफ्तारी से भाग निकले और हथकड़ी पहने हुए सीधे मेरे यहाँ पहुँचे। मैंने उनकी हथकड़ी कटवा दी और एक सुरक्षित स्थान पर रखकर तीसरे दिन कलकत्ते से उत्तर भारत के लिए एक प्राइवेट मोटर द्वारा रवाना करा दिया। वे सीधे आचार्य जी के यहाँ पहुँचे! मुझे इस बात का बिलकुल पता न था। उन दिनों पता लग भी नहीं सकता था। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ और मैंने आचार्य जी से पूछा, "फिर आपने क्या किया?" उन्होंने कहा, "मैंने एक परिचित गार्ड के साथ बिठला कर रेल द्वारा उन्हें गुजरात तक पहुँचा दिया।"

आचार्य जी ने यह बात इतने सीधे सादे ढङ्ग से कही कि मुझे उनके प्रति और भी श्रद्धा हो गई। वे बड़ी आसानी से कह सकते थे:—

"आपने अच्छा परिचय कराया! उस भले मानस ने मुझे ख़तरे में डाल दिया होता" पर आचार्य जी स्वयं क्रान्तिकारी थे—वास्तविक अर्थों में क्रान्तिकारी—और ख़तरों से डरना वे जानते ही नहीं थे।

आचार्य जी से मैंने कई बार निवेदन किया कि वे आत्मचरि लिख दें। उन्होंने यही उत्तर दिया, "वक्त कहाँ मिल पाता है? कितन ही बातें याद हैं पर कितनी ही भूल गया हूँ और भूलता जाता हूँ।"

मुझे एक बात का खेद बराबर रहा और अब भी है—वह यह कि आचार्य जी से गम्भीर वार्तालाप करने का अवसर मुझे कभी भी नहीं मिला! आचार्य जी अत्यन्त व्यस्त रहते थे। अपनी पार्टी के तथा अन् पार्टियों के सदस्यों से घंटों तक गम्भीर विषयों पर बातचीत करते करते वे थक जाते थे। उस वक्त उन्हें हँसी-मज़ाक की बातों से कुछ विश्राम मिल जाता था और ऐसे अवसरों पर वे अवसर मुझे याद क लिया करते थे। राज्य सभा में वे जब-जब पधारे अथवा जब कभी वे राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण जी गुप्त के यहाँ आए उन्होंने बराबर मुझे बुलवाया और फिर घंटे सवा घंटे हास्य रस की बातें होती रहती थीं। दद्दा (कविवर गुप्तजी) के यहाँ पधारने पर वे कहते, "चौबे जी को बुलवाओ।" आज्ञानुसार मैं सेवा में उपस्थित हो जाता। फिर इन दोनों महानुभावों के कटाक्षों का पात्र मुझे बनना पड़ता। मैंने एक बार कुछ झुँझलाकर आचार्य जी के सामने कहा, "ग़रीब की जोरू सब की भाभी! आप दोनों हमीं से मज़ाक करते हैं।" इस पर दद्दा ने तुरन्त ही उत्तर दिया, "अरे भाई! हम लोग तो उस आदमी की तलाश में हैं, जिसकी तुम जोरू हो!"

एक बार तो पार्लामेण्ट से दद्दा ने फ़ोन पर हुक्म भेजा, "आचार्य जी तुम्हें तलाश कर रहे हैं और तुम गैरहाज़िर हो? चले आओ।" मैं शीघ्र ही पार्लामेण्ट पहुँचा। मेरा ख़याल था कि कोई आवश्यक कार्य होगा। पहुँचते ही आचार्य जी ने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। उनके इस प्रेमपूर्ण व्यवहार को मैं कदापि नहीं भूल सकता। मैं महापुरुषों से एक खास फ़ासले पर रहता हूँ और कभी इतने निकट सम्पर्क की कल्पना भी नहीं करता, पर आचार्य जी के स्नेहपूर्ण स्वभाव का मैं कायल था।

भारतीय शिष्टमण्डल के साथ चीन में

बर्मा में सोशलिस्ट पार्टी के लोगों के साथ

मैंने फिर दद्दा से पूछा, "कोई खास काम था मुझसे ?" दद्दा ने तब अलग ले जा कर निजी तौर पर मुझसे कहा, "आचार्य जी बहुत थके हुए हैं। उनका कुछ मनोरंजन करना हम लोगों का कर्त्तव्य है। बस इसी लिए तुम्हें बुलाया है। चौबे लोगों का यह प्राचीन कर्त्तव्य है।" जब जब आचार्य जी दिल्ली में पधारे मैंने अपना यह कर्त्तव्य सहर्ष पालन किया। एक बार जब मैं घंटे सवा घंटे अपने इस कर्त्तव्य का पालन कर चुका और आचार्य जी दद्दा के यहाँ से मोटर में सवार होकर अपने स्थान पर जाने लगे, मैंने उनके पास पहुँच कर कहा "आचार्य जी ! मुझे कुछ सीरियस (गम्भीर) बातचीत आपसे करनी है।" आचार्य जी ने तुरन्त ही उत्तर दिया, "देखिये, मैं मुँह देखकर बात करता हूँ !" फिर खूब हँसी हुई ! मैं निरुत्तर रह गया।

एक बार डाक्टर केसकर साहब के यहाँ से फ़ोन आया, "आचार्य जी याद कर रहे हैं।" उन दिनों आचार्य जी काफी अस्वस्थ थे और डाक्टर केसकर का यह प्रयत्न रहता था कि दर्शकों से उनकी रक्षा करें। मैं तुरन्त समझ गया कि मुझे अपना प्राचीन कर्त्तव्य पालन करना है। शीघ्र ही मैं वहाँ हाज़िर हुआ। मेरा अनुमान ठीक निकला। इस बार भी डेढ़ घंटे तक खूब हँसी मज़ाक रहा। जाते ही मैंने कहा :—

"असत्य भाषण के प्रति मेरे मन में जो संकोच था, वह आपकी कृपा से दूर हो गया।" आचार्य जी ने कहा, "सो कैसे ? और मेरी कृपा से, इसके क्या मानी ?" मैंने निवेदन किया, "आपने अपनी रेडियो टॉक में, जो लखनऊ से प्रसारित हुई थी, कहा था कि आप को भी कभी-कभी झूठ बोलना पड़ता है ! बस उसी से मुझे प्रोत्साहन मिला है।"

आचार्य जी खूब हँसे और तब मैंने उनके हस्ताक्षरों की प्रति उन्हें दिखलाई। वे बोले "अच्छा ! यह आपके पास सुरक्षित है !" मैंने कहा, "जी हाँ।" आचार्य जी मेरे साथ मज़ाक करने का कोई भी मौका हाथ से न जाने देते। एक बार उन्होंने उर्दू की एक कविता मुझ पर कटाक्ष करते हुए कही :

"हुसूले आरज़ू की क्या तवक़्को ऐसे गाफ़िल से
जो दिल में रहके भी वाकिफ न हो बेताबिये दिल से।"

उर्दू के विषय में अपने अज्ञान के कारण मैं इसका अर्थ न समझ सका, तब इसका मतलब किसी ने मुझे समझाया।

श्री बैजनाथ दुबे (मेम्बर राज्य सभा) ने एक बार रींवा में मुझसे कहा, "बनारस से कल ट्रंक कॉल आया था और आचार्य जी पूछ रहे थे कि राज्य सभा में चौबे जी के पहुँचने की कितनी सम्भावना है।" यद्यपि मैं कांग्रेस पार्टी की ओर से खड़ा हुआ था, पर आचार्य जी मेरे चुनाव के लिए चिन्तित थे ! यह जानकर मुझे हर्ष और आश्चर्य भी हुआ।

जब स्वयं दुबे जी ने समाजवादी पार्टी छोड़ दी और कांग्रेस में शामिल हो गये, तब आचार्य जी ने उन्हें लिखा, "आप किसी भी पार्टी में क्यों न रहें, मेरा स्नेह आप पर ज्यों का त्यों पहले जैसा ही रहेगा।" श्री दुबे जी ने बड़ी कृतज्ञता पूर्वक बतलाया कि कान में लगाने का यंत्र स्वयं आचार्य जी ने अपने पास से पाँच सौ रुपये में खरीद कर उन्हें भेंट किया था।

आचार्य जी की उदारता के बीसियों किस्से मैं सुन चुका था। उनकी सहृदयता की एक बात श्री उमापति राय चन्देल ने मुझे लिख भेजी थी। अपने कार्यकर्ताओं की कितनी चिन्ता आचार्य जी को रहती थी, यह पत्र इस बात का प्रमाण है :—

काशी
२७-१२-५१

प्रिय चन्देल जी,

नमस्कार। आपका कृपा पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं कन्वोकेशन में व्यग्र था और उसके बाद ही जबलपुर चला गया था। इस कारण उत्तर में कुछ विलम्ब हुआ।

आपकी शिकायत बहुत कुछ सही है। मैं समझता हूँ कि मेरा कर्तव्य था कि मैं अस्पताल जाकर आपको देखता। मेरी कई बार इच्छा भी हुई। अजय से कहा भी कि मुझे जाना है, पर न मालूम क्या हुआ—कभी कार का प्रबन्ध न हो सका, कभी कोई और बात हो गई—कि मैं आप तक न पहुँच सका। इसका मुझे स्वयं पछतावा है। पर आपका यह ख्याल कि मैंने आपकी उपेक्षा की, बिलकुल ठीक नहीं है। जब आपका पिछला पत्र मिला था तब मैंने अजय को अस्पताल में प्रबन्ध करने के लिए लिखा था। बराबर समाचार लेता रहता था। पहले तो यह मालूम हुआ कि Nature cure छोड़ना नहीं चाहते हैं। उस समय आपकी हालत बहुत खराब थी। मैंने उनको लिखा कि आपसे अनुरोध करें। डाक्टर गुजराल को भिजवाया। जब अजय ने कहा कि एक नई दवा निकली है, उसका प्रबन्ध कर दीजिए—वह उस

(शेष पृष्ठ २३ पर)

श्रद्धेय आचार्य नरेन्द्रदेव

शकुन्तला श्रीवास्तव

मुझे आचार्य जी के निकट सम्पर्क में आने का अवसर सन् १९४८ में उनके उप-चुनाव के समय मिला था। इसके पूर्व मैं अपने पति (स्व० श्री हरिहरनाथ शास्त्री, जो उनके काशी विद्यापीठ के छात्र थे) के साथ सन् १९४१ के नवम्बर मास में अल्मोड़ा गई थी। शास्त्री जी व्यक्तिगत सत्याग्रह में जेल गए थे और छूटने के बाद ही वे आचार्य जी के दर्शनार्थ उनके यहाँ पहुँचे थे। वहाँ डाक्टरों की राय से अल्मोड़े में आचार्य जी स्वास्थ्य-सुधार के लिए गए हुए थे। उन दिनों वे काफ़ी अस्वस्थ थे। दमे के दौरे प्रायः हुआ करते थे। अल्मोड़े की जलवायु उनके अनुकूल नहीं थी। अस्वस्थता की ऐसी दशा में भी मिलने वाले आते रहते थे। डाक्टरों ने अधिक बोलने को मना किया था, शास्त्री जी चाहते थे कि आचार्य जी बात कम करें और कष्ट रहने पर तो मिलना एकदम बन्द ही कर दें। अतः वे आने वालों को मना करते थे, परन्तु जब आचार्य जी को पता चलता तो वे आगतों को बुला लेते और विभिन्न विषयों पर (जिसमें राजनीति और साहित्य प्रमुख होता) बात चलती रहती। रात में दौरा पड़ता तो सारी रात बैठे-बैठे ही काट देते। परन्तु ज़रा स्वस्थ होने पर फिर वही प्रसन्न मुख-मुद्रा हँसी-मज़ाक और बात-चीत का दौर चलता रहता। मुझे याद है उन दिनों श्री श्रीप्रकाश जी (वर्तमान राज्यपाल मद्रास) भी वहाँ आए थे।

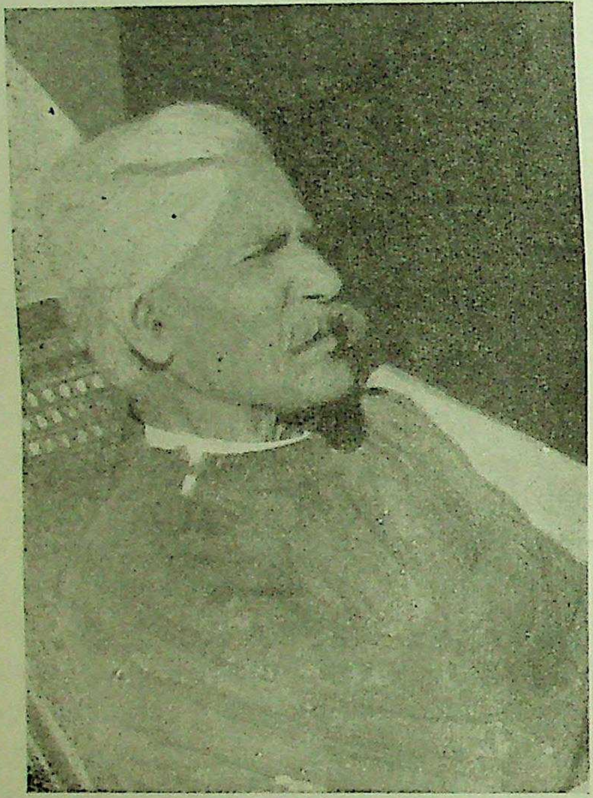

आचार्य जी रुग्णावस्था में

कांग्रेस छोड़ने के पश्चात आचार्य जी ने विधान-सभा से इस्तीफ़ दे दिया था। अन्य समाजवादियों ने भी। उनके उप-निर्वाचन में काम करने के लिए कानपुर से कई स्त्रियों और लड़कियों को लेकर मैं ग थी। चुनाव का कार्य जोरों से चल रहा था। आचार्य जी के पास यद्यपि साधनों की कमी थी, फिर भी वह अपने सिद्धान्त से रंच मा भी कभी विचलित नहीं हुए। प्रत्येक काम ऐसी ईमानदारी और श्रद्ध से करते थे कि विरोधी भी देख कर दंग रह जाते। उन दिनों नित ही उनसे बात करने का मौका पड़ता था। अनेक कठिनाइयों, चोट और आक्षेपों पर भी वह विचलित नहीं होते थे। उनमें इन सब बातों के गरल-पान करने की शंकर की भाँति अपूर्व क्षमता थी। मुझे याद फ़ैज़ाबाद के एक पुराने कार्यकर्त्ता ने जब कुछ लोगों से दबाव डालक वोट माँगे, तो उन्होंने उनकी काफ़ी भर्त्सना की और स्पष्ट शब्दों कहा कि चाहे वे चुनाव हार जाएँ, परन्तु इस तरह की बात नहीं होने देंगे।

उसके बाद तो फिर उनसे प्रायः मिलने का अवसर मिलता रहत था। शास्त्री जी पर उनका सहज स्नेह था। आई० एन० टी० यू० सी (राष्ट्रीय मज़दूर कांग्रेस) का निर्माण करने के कारण शास्त्री जी क सोशलिस्ट पार्टी से त्याग-पत्र देना पड़ा था। दिल्ली में जब समाजवाद पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी का शास्त्री जी की नीति से मतैक न हो सका, तो उन्होंने पार्टी छोड़ दी। शास्त्री जी की राय थी कि कांग्रेस के सहयोग से एक मज़दूर संस्था का निर्माण हो (जो ए० आई टी० यू० सी० से स्वतन्त्र हो) और उसमें समाजवादी पार्टी का भ सहयोग प्राप्त हो। आचार्य जी को भी (वह अस्वस्थतावश राष्ट्री कार्यकारिणी में सम्मिलित नहीं हो पाए थे) लम्बा पत्र लिखा, जिस वस्तु-स्थिति का पूरा दिग्दर्शन था। परन्तु पत्र देर में मिला और पा त्याग की सूचना पहले। आचार्य जी कुछ दुखी हुए, परन्तु बाद वस्तु-स्थिति का पता लगने पर गलतफ़हमी दूर हो गई। इसके बा तो सदा ही उनका स्नेह तथा वात्सल्य शास्त्री जी पर पूर्वव ही रहा।

उप-निर्वाचन के कुछ दिन पूर्व ही श्रम प्रतिनिधिमण्डल में शास्त्र जी सेनफ्रांसिस्को गए हुए थे। जब समाजवादी पार्टी कांग्रेस से अल हुई तब मैंने भी कांग्रेस छोड़ दी थी। आचार्य जी के चुनाव में कार्य किया था। इस पर कांग्रेस के एक प्रतिष्ठित महानुभाव ने शास्त्र जी से मेरे चुनाव में जाने के सम्बन्ध में आश्चर्य प्रकट किया था शास्त्री जी ने विदेश से जो पत्र मुझे भेजा, उससे आचार्य जी के प्र

अटूट श्रद्धा एवं भक्ति प्रकट होती है। उन्होंने लिखा था—"इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह तो विचार-स्वातन्त्र्य का मामला है। फिर आचार्य जी जो मेरे पितृवत् हैं, तुम उनके चुनाव में गईं यह मेरे लिए परम हार्दिक सन्तोष की बात है। आज मैं यद्यपि उनसे दूर हूँ (केवल राजनीति में) परन्तु तुम उनका कार्य कर रही हो। मैंने सुना है कि कुछ मित्र फ़ैज़ाबाद गए हैं। मैं वहाँ होता तो सम्भवतः कांग्रेस की ओर से आदेश मिलने पर भी उनके विरोध में काम करने न जाता।"

जब हार हुई तब बड़ा धक्का लगा, क्योंकि यह हार प्रजातन्त्र की बहुत बड़ी खामी थी। कुछ दिन मन काफ़ी विक्षुब्ध रहा परन्तु आचार्य जी पर इसका कोई असर न था। एक बार कानपुर में मुझे देर में सूचना मिली कि आचार्य जी प्रेस कान्फ्रेंस कर रहे हैं (उन दिनों मैं 'जागरण' में सह-सम्पादिका थी) मैं जब पहुँची तो वह भाषण समाप्त करने वाले थे। देर में पहुँचने के कारण मुझे बड़ी लज्जा का अनुभव हो रहा था। मैं सोच रही थी कि भाषण समाप्त होते ही मैं नमस्कार करूँगी। पर मैं तो चकित हो गई जब आचार्य जी ने अन्तिम वाक्य समाप्त करते ही नमस्कार किया। उनकी इस महानता पर मैं नत-शिर हो गई। उसके बाद तो अनेक अवसरों पर ऐसा ही होता और उनकी तत्परता के कारण मैं लज्जित एवं गद्‌गद् हो जाती।

शिष्ट हास्य

मुज़फ्फरनगर में यू० पी० पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक थी। मैंने महिला संगठन के सम्बन्ध में बात करते हुए उनसे कहा—"आचार्य जी लखनऊ विश्वविद्यालय में तो अनेक लड़कियाँ (छात्राएँ) पढ़ती हैं, उनमें से बहुत सी काम करने वाली मिल सकती हैं। यदि आप कुछ दिलचस्पी लें तो।"

आचार्य जी बोले—"इस काम के लिए तो मैं माफ़ी चाहता हूँ।" फिर कुछ हँसकर कहा—"शास्त्र में लिखा है कि स्त्रियाँ नर्क का द्वार होती हैं।"

मैंने फौरन उत्तर दिया—"माँ भी तो स्त्री ही है।"

इस पर फरीद साहब (फरीदुल हक अंसारी) बोले—"कुरान में लिखा है माँ के पैरों पर जन्नत लोटती है।"

आचार्य जी हँस पड़े। कुछ देर वातावरण में हँसी गूँजती रही। उसी दिन सेठ जी (श्री दामोदरस्वरूप) रींवा से आये थे। उनका बिस्तर अन्य साथियों के सामान में था, वह गुम हो गया। परेशान थे। आचार्य जी ने रिमार्क कसा—"अच्छा है थोड़ा बोझ ही हल्का हो गया।"

सेठ जी बिगड़ पड़े।

एक बार लोगों ने कहा—"आचार्य जी फ़ैज़ाबाद में कुछ काम नहीं हो रहा, चिराग तले अँधेरा है।"

आचार्य जी ने उत्तर में मुस्कराते हुए कहा—"ऐसा न होता तो मैं प्रकाश कैसे फैलाता।" आचार्य जी हास-परिहास और शिष्ट व्यंग्य करने में कुशल थे। बात का उत्तर ऐसे देते कि उपस्थित व्यक्ति उनकी वाक्‌पटुता की दाद दिए बिना न रहते। अल्मोड़े में एक बार उन्होंने अपनी पत्नी से कहा—"तुम यहाँ चादर नहीं ओढ़तीं क्या बात है?"

उन्होंने उत्तर दिया—"यहाँ रिवाज नहीं है।"

तो आचार्य जी तपाक से बोले—"हाँ तो और कोई कुएँ में गिर तो तुम भी गिरोगी?"

एक बार जब वहाँ वज़न लिया गया तो आचार्य जी ने अपनी पत्नी को लक्ष्य करके कहा—"मैंने इनकी सब बीमारी ले ली है, और इन्होंने मेरी तन्दुरुस्ती।"

जब दिल्ली आए तो हम लोगों ने आग्रह किया उन्हें अपने साथ ठहराने के लिए, तो बोले—"नहीं भई, ऐसी भीड़-भाड़ में कहाँ रह सकता हूँ। यहाँ तो बहुत लोग रहते हैं। पूरा कबूतर का दरबा है।"

स्नेह-मूर्त्ति एवं भक्तवत्सल

आचार्य जी के यहाँ सदैव ही मिलने वालों का ताँता लगा रहता था। उसमें सभी विचारों तथा पार्टियों के व्यक्ति रहते। विभिन्न विषयों पर बातें होती रहतीं। राजनीतिक कटुता तो कभी उनके स्वभाव में देखी ही नहीं गई। शत्रु-मित्र अपना-पराया इन सबके भेदों से वह विमुक्त थे। उनके घर का द्वार प्रत्येक के लिए खुला था और पहुँचने पर मंद मुस्कराहट के साथ प्रत्येक का स्वागत होता था।

लोहिया जी जब विदेश से लौटे तो आचार्य जी ऐरोड्रोम (हवाई अड्डे पर) उन्हें लेने गए। घर पर आने पर अनेक योजनाएँ चल रही थीं। आगामी चुनाव सम्बन्धी (पिछले आम चुनाव के पूर्व) बातें चल रही थीं। उस दिन लोहिया जी के आगमन पर वह इतने प्रसन्न थे, इतनी खुशी किसी को अपने भाई या लड़के से मिलने पर ही हो सकती है।

अपने शिष्यों के प्रति तो उनका प्रेम अद्वितीय ही था। उनका सौजन्य और छात्रों की श्रद्धा देख कर तो गत युग की याद आती थी, जब गुरु और शिष्य का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त उच्च स्तर पर था। बिना इसकी परवाह किए कि वे गुरु तथा इतने महान व्यक्ति हैं, अक्सर उनके (शिष्यों के) यहाँ बिना किसी पूर्व सूचना के पहुँच जाया करते थे। परिवार के सदस्य और अनुज तथा आत्मज की भाँति ही उनकी चिन्ता करते थे।

शास्त्री जी से तो एक प्रकार से उनका पारिवारिक सम्बन्ध था। काशी विद्यापीठ में छात्रावस्था में, एवं इसके बाद भी अनेक अवसरों पर उन्होंने इनका मार्ग-प्रदर्शन किया था। लोक सेवक मण्डल का आजीवन सदस्य बनने के लिए न केवल इन्हें प्रोत्साहित ही किया अपितु लाला लाजपतराय जी को भी पत्र लिखा। ऐसे समय जब घर वाले चाहते हों कि लड़का कोई अच्छी नौकरी करके धनोपार्जन करे, ये आजीवन लोक सेवक मण्डल के सदस्य रहे। आचार्य जी ने काशी विद्यापीठ के सदस्यों को केवल विद्यादान ही नहीं दिया वरन् उन्हें एक प्रकार से जीवनदान दिया; यानी वास्तविक ढंग से मानव बनाया, तथा देश एवं समाज की बलिवेदी पर न्यौछावर होने की प्रेरणा प्रदान की। इन लोगों के कार्यों और सेवा का सारा श्रेय आचार्य जी को ही है।

नवयुवकों को प्रेरणा देना तथा उनका पथ-प्रदर्शन करना तो उनके स्वभाव में ही शामिल हो गया था। जब वह लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे तो अपने वेतन का अधिकांश भाग दान कर देते थे। छात्रावास की कमी के कारण प्रारम्भ में अपना बंगला भी उन्होंने छात्रों

के लिए दे दिया था और स्वयं अपने एक मित्र के यहाँ रहते थे। वाइस-चान्सलर स्कॉलरशिप द्वारा गरीब छात्रों को छात्र-वृत्ति मिलती थी। अपने छात्रों के प्रति उनका व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण होता था। प्रत्येक की कठिनाई को समझ कर उसका निराकरण करना एवं उसको राहत पहुँचाना उनका स्वाभाविक धर्म बन गया था।

आम चुनाव के समय की बात है। मुझे सीतापुर-कम-खीरी से लोकसभा के लिए खड़ा किया गया। सीतापुर मेरे लिए अपरिचित स्थान न था, क्योंकि महिला संगठन के सिलसिले में मैं वहाँ कई बार गई थी। परन्तु वह मेरा कार्य-क्षेत्र न था। वहाँ के कुछ प्रमुख व्यक्तियों से ही मैं परिचित थी। पारस्परिक मतभेद के कारण कुछ कर्मठ साथी खिंचे-से थे। अतः कार्य करने में दिक्कत होती थी। जब आचार्य जी मेरे चुनाव क्षेत्र का दौरा करने आये तो मैंने तथा अन्य लोगों ने सब बातें बतलाईं। उन्होंने फौरन ही उन साथी से (जो आचार्य जी के मित्र भी थे) सहयोग करने का अनुरोध किया। लखनऊ पहुँच कर फिर पत्र भी भेजा। आचार्य जी के अनुरोध का असर जादू की भाँति हुआ और फिर तो चुनाव के अंतिम दिन तक उन साथियों ने तन-मन से जो सहयोग दिया वह मैं अपने जीवन में कभी नहीं भूल सकती। मुझे कार्य करने में जो सुविधा एवं सफलता मिली उसका श्रेय बहुत कुछ उन लोगों को है।

मेरा चुनाव क्षेत्र काफी बड़ा था। पैसे का अभाव था। यहाँ तक कि ज़मानत जमा करना भी कठिन था। आचार्य जी को ट्रंक-कॉल किया और फौरन ही उन्होंने रुपये का प्रबन्ध करवा दिया। उसके पश्चात भी जीप एवं चुनाव सम्बन्धी अन्य खर्च व आवश्यकताओं की पूर्ति का भी प्रबन्ध किया।

वैसे तो शास्त्री जी की पत्नी होने के कारण आचार्य जी को मेरा काफी ख्याल था, परन्तु उनके असामयिक निधन के बाद तो मुझ पर उनकी कृपा और स्नेह पिता की भाँति ही रहा। जब तक वे जीवित रहे, तब तक मेरी चिन्ता उन्हें थी और मेरे भविष्य के लिए भी हर सम्भव प्रयत्न करते रहे। आज मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि पिता की स्नेह-मयी छाया सिर पर से हट गई। कठिन दुःख में भी उनका आश्वासन तथा वात्सल्य मुझे सहारा देता था।

आचार्य जी की क्षमाशीलता भी प्रसिद्ध थी। यह जानते हुए भी कि यह आदमी गलत है, वह उसकी भर्त्सना नहीं करते थे। समझा-बुझाकर प्रेमपूर्वक उसे ठीक करने का प्रयत्न करते थे। वह स्वयं अत्यन्त सरल हृदय थे, अतः किसी के प्रति सन्देह भी उन्हें नहीं होता था और इसका परिणाम अक्सर यह होता था कि गलत लोगों पर भी उनका वरद् हस्त बना रहता था। अक्सर लोग मज़ाक में कहते थे कि आचार्य जी तो शंकर हैं, अच्छे-बुरे सभी पर उनकी समान कृपा रहती है। किन्तु फिर भी गलती करने वालों की वे कड़ी भर्त्सना करते थे।

प्रकाण्ड विद्वान

आचार्य जी अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान थे। हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू में जब भाषण करते या लिखते तो क्या मज़ाल कोई शब्द दूसरी भाषा का प्रयुक्त करते? कानपुर के डी० ए० वी० कॉलेज में उनका भाषण हुआ तो अनेक प्रोफेसर इतनी दुरूह हिन्दी न समझ सके। एक बार लखनऊ में प्रेस कर्मचारी सम्मेलन में उर्दू में बोले। एक दिन पूर्व मैंने जयप्रकाश जी के भाषण की रिपोर्टिंग साप्ताहिक 'संघर्ष' के लिए की थी, परन्तु आचार्य जी की उर्दू तो इतनी जटिल थी कि मेरे लिए उसकी रिपोर्टिंग करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव था।

समाजवादी विचारक

वह समाजवादी विचारधारा के भारत में ही नहीं किन्तु विश्व में माने हुए विचारक थे। उनकी नीति स्पष्ट, विचार सुलझे हुए एवं सुसंस्कृत थे। जीवन में अनेक ऐसे अवसर आए जब यदि वे चाहते तो केन्द्र में भी आ सकते थे। परन्तु उन्होंने तो समाजवाद की स्थापना का व्रत लिया था। वह तपस्वी अनेक प्रलोभनों के सम्मुख भी अडिग और चट्टान की भाँति दृढ़ रहा। यही कारण है कि आज उनके विरोधी भी उनकी महत्ता को स्वीकार करते हैं।

वह प्रजा-समाजवादी दल के लगभग डेढ़ वर्ष तक सभापति रहे। यह अवधि पार्टी के लिए बड़ी नाजुक थी। आन्तरिक वाद-विवाद एवं कटुता बढ़ गई थी, ऐसी स्थिति में आचार्य जी ने जिस कुशलता एवं योग्यता से उसे सम्हाला वह अद्वितीय है। इसके लिए उन्हें प्राणों की बाजी लगा देनी पड़ी। स्वास्थ्य की दशा दो-ढाई वर्ष से अत्यन्त चिन्तनीय थी। परन्तु उद्देश्य-पूर्ति के सामने उन्होंने उसकी परवाह न की। वे ही साथी जिनके साथ उन्होंने पार्टी का निर्माण करके उसे बड़ा बनाया था और जो उनके सहयोगी थे उनसे अलग हुए। काफी प्रयत्नों के बावजूद भी वह उन्हें रास्ते पर न ला सके। इसका उन्हें बड़ा आघात पहुँचा। उनका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता गया। आस्ट्रिया जब वे स्वास्थ्य-सुधार के निमित्त गए थे तो काफी स्वस्थ हो गए थे। वहाँ के उनके चित्र देख कर मन में पूरी आशा हो गई थी कि वे अब स्वस्थ हो जाएँगे। परन्तु भारत भूमि पर आते ही उनकी हालत बिगड़ी। दूसरी ओर पार्टी का उत्तरदायित्व भी उनके कन्धों पर था। सोते-जागते हर समय पार्टी की चिन्ता और साथियों के गैर-जिम्मेदाराना कामों का गम उन्हें रहता था। स्वप्न में भी वे अक्सर बड़बड़ाते रहते थे। सभी उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में बहुत चिन्तित रहते थे। परन्तु वे दृढ़ता से पार्टी की बागडोर सम्हाले थे।

उदार प्रकृति

आचार्य जी कितने उदार प्रकृति एवं वैयक्तिक स्वतन्त्रताप्रिय थे, यह उनके दैनिक व्यवहार एवं उनके गृह-जीवन से प्रकट होता था। उनकी पत्नी धार्मिक प्रकृति की हैं। पूजा-पाठ अत्यन्त निष्ठा से करती हैं। खान-पान में अत्यन्त नियम का पालन करती हैं। आचार्य जी की आस्था यद्यपि इन बातों में नहीं थी, किन्तु उनकी पत्नी को इन सब बातों की काफी आज़ादी थी। मुझे याद है जब हम लोग अल्मोड़े गए थे तो नवम्बर का अन्त और दिसम्बर का प्रारम्भ था। ठण्ड इतनी पड़ती थी कि हाथ भी गर्म पानी से धोते। परन्तु आचार्य जी की पत्नी उतने शीत में ठण्डे जल से स्नान करके पूजा-पाठ में संलग्न रहती थीं। किन्तु इतना होते हुए भी उनमें पराकाष्ठा का सेवा-भाव निष्ठा एवं धैर्य है, जो आचार्य जी जैसे महान व्यक्ति की पत्नी में ही

होना सम्भव है। इनकी मूक तपस्या के कारण ही आचार्य जी घर-गृहस्थी से निर्लिप्त रह कर इतना कर पाए, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। यद्यपि वे (आचार्य जी की पत्नी) आजीवन घर-गृहस्थी, अतिथि-सत्कार और बच्चों के पालन-पोषण में लगी रहीं, फिर भी उनके विचारों की महानता त्याग-वृत्ति एवं उदारता उनके बहुत बड़े गुण हैं। ज़रा-सा स्वस्थ होने पर आचार्य जी ने पार्टी का घोषणा-पत्र लगभग सौ पृष्ठ का तैयार किया था, जो पार्टी विचारधारा व नीति की एक सुन्दर सैद्धान्तिक पुस्तक है।

कोयम्बटूर से समाचार मिलता था कि वे अब स्वस्थ हो रहे हैं। वज़न भी बढ़ा है। हम लोग उत्साह से उनके आने की प्रतीक्षा करते थे। यह सोच कर हर्ष विभोर हो जाते थे कि अब आचार्य जी स्वस्थ होकर आ रहे हैं। परन्तु काल के बुलावे का किसे पता था? १९ फरवरी को शाम के ५॥ बजे समाजवाद का वह महान विचारक, नेता और प्रकाण्ड विद्वान उस अमर ज्योति में लीन हो गया। वह दीनबन्धु, अजातशत्रु और परम उदार थे। उनकी महानता यही थी कि वे छोटे-बड़े, गरीब-अमीर और मजदूर-किसान सभी के अपने थे। उनके निधन से मानवता अनाथ हो गई। उनका बहुत बड़ा परिवार (परिचित साथी आदि) उनके वियोग से विचलित एवं क्षुब्ध है। उस अभाव की पूर्ति होना असम्भव है। फिर भी उनकी प्रेरणा हमारा पथ-प्रदर्शन करेगी ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

◆

आचार्य जी के कुछ संस्मरण—(पृष्ठ १९ का शेषांश)

समय तक बाजार में नहीं मिलती थी—तब मैंने राजकुमारी अमृतकौर से कहकर वह दवा आपके लिए भिजवाई। बीच-बीच में हाल लेता रहता था। अजय ने बताया कि आफिस में आप रखे गये हैं और व्यवस्था हो गई है। पीछे मैंने उनको लिखा कि डाक्टर टण्डन को मैं लिख सकता हूँ यदि आवश्यकता हो। किन्तु इसकी जरूरत न पड़ी और आप अस्पताल में भरती कर लिए गए। यह जानकर बड़ा सन्तोष हुआ था कि वहाँ आपको आशातीत लाभ हुआ है। इसकी पुष्टि आपके पत्र से भी होती है।

यह सब लिखने का यह आशय नहीं है कि मैंने आपके लिए कोई विशेष बात की। मुझे तो आपके लिए बहुत कुछ करना चाहिए था। मैं लज्जित हूँ कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। किन्तु इसका कारण उपेक्षा नहीं है, मेरा चलने-फिरने का आलस्य है। श्वास रोग के कारण चला-फिरा नहीं जाता, मोटर का मोहताज हो गया हूँ।

इस पत्र के लिखने का केवल इतना ही उद्देश्य था कि मुझे आपकी याद बराबर थी और मैं समझता था कि अजय तथा पार्टी के अन्य लोग फिक्र कर रहे हैं। अब यह जानकर दुःख हुआ कि इधर वे लोग भी नहीं आते जाते हैं।……

भवदीय
नरेन्द्रदेव

आचार्य जी की कृपाओं के कितने ही संस्मरण हैं, पर उन्हें स्थानाभाव से यहाँ नहीं दिया जा सकता। मथुरा की प्रान्तीय कानफरेंस में जब उन्हें १०३॥ डिग्री का बुखार चढ़ा हुआ था, डाक्टरों के मना करने पर भी उन्होंने मुझे समय दिया था। जब वे काशी विश्वविद्यालय में वाइस चान्सलर की हैसियत से रहते थे उन्होंने मुझे अपने निकट ही ठहराया था और उस समय उनके अत्यन्त व्यस्त जीवन की कुछ झलक मिली थी।

अपने ९।११।५१ के पत्र में उन्होंने मुझे लखनऊ से लिखा था—

"काम बहुत ज्यादा है और शरीर जवाब देता जाता है। किन्तु कर्तव्यविमुख कैसे हूँ?" आचार्य जी ने जिन कठोर परिस्थितियों में अत्यन्त अस्वस्थ होते हुए भी निरन्तर देश सेवा का कार्य किया वह किसी दूसरे के लिए अत्यन्त ही कठिन होता।

उनके सम्भाषण का वह वाक्य आज भी हमारे कानों में गूँज रहा है—

"जीवन सदा अन्याय से लड़ते ही बीता। यह कोई छोटा काम नहीं है। और स्वतन्त्र भारत में इसकी और भी अधिक आवश्यकता है।" आचार्य जी से कभी गम्भीर वार्तालाप करने की मेरी इच्छा मन की मन में ही रह गई! पर सन्तोष इसी बात का है कि उनके कुछ क्षणों को मैं थोड़ा-सा आनन्दमय बना सका। अन्त में उनकी स्वर्गीय आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए मैं भी यही कहता हूँ—

सदय समुदार औ' था नम्र कितना वह बड़प्पन भी।
कि था तेरा कृपाभाजन, भला मुझ-सा अकिंचन भी॥

◆

बंगला कविता

सत्याग्रही

गोपाल भौमिक

सदा जागरूक विवेक बुद्धि और असीम प्रेम
लेकर जग रहा है केवल एक मानव
इस विशाल महादेश में ।
प्यार से
करोड़ों अर्द्ध मनुष्यों को
वह परिपूर्ण मानव कहता है—
"प्रेम के द्वारा हृदय में
अनिर्वाण दीप जला लो,
धो डालो आत्मा के सारे मैल ।"
अर्द्ध मनुष्यों की टोली हहराकर हँस उठती है
अविश्वास से, भीरुता से चंचल हृदय होकर ।

हिमालय से कुमारिका तक
सहसा थिरक उठता है,
मनुष्य की प्रवृत्ति की आँधी में
अन्धकार उतर आता है
जीवन के विशाल चबूतरे में ।
धर्म से बावले मनुष्य के भय से
यह जीवन जंगल के जीवन में परिणत हो जाता है,
जल गए नगर और प्रान्तर
कौन जाने कैसा भविष्य है इसके बाद ।
पशुता के अभिमान में जितने भी संस्कार हैं
मिल गए वे पथ की धूल में—
उसी का परिणाम है अस्थियों का यह पहाड़ ।
निष्क्रिय जड़ता और भीरुता के बोझ से
बिभीषिकामय दिन चुपचाप बीतता है ।

रक्तलिप्त उस महाश्मशान में
फिर भी जग रहा है एक मानव,
लांछना और निर्यातनों से
निर्विकल्प परम निर्भय—
मनुष्यता के भविष्य पर उसे रंच मात्र भी सन्देह नहीं है ।
दिल्ली से नोआखाली—सारे देश में
वह घसीटता ले जाता है अपने जीर्ण देह-यन्त्र को
घर-घर में पहुँचा देता है वाणी
न्याय, सत्य, अहिंसा, प्रेम,
सम्मति, तितिक्षा, क्षेम की,
स्निग्ध कण्ठ से पुकार कर कहता है वह—
"कोई डर नहीं,
हम सब हैं सत्याग्रही ।"

मुर्दा देश में गूँज उठता है प्राण
फिनिक्स की भाँति देशवासी जग उठते हैं
धुल जाते हैं प्राणों के सारे कलुष ।

अनुवादिका—माया गु

अंग्रेजी कविता

गुलमुहर के फूल

सरोजिनी नायडू

हे ! बसन्त के चटकीले रंगों के उत्सव !
मैं तुम्हारे उज्ज्वल रंगों की किससे तुलना करूँ ?
तुम्हारा लाल रंग है
नई दुलहन के कपड़ों की तरह चमकदार लाल,
या एक वन्य पक्षी के पंख की तरह गहरा लाल.
या उस रहस्यमय मणि की तरह,
जो कि नागराज के फण पर चमकती है ।

तुम्हारी आह्लादपूर्ण चमक और कान्ति की
किससे तुलना की जा सकती है ?
अरुण से आरक्त स्वच्छ बादल
जो कि समुद्र की लहरों को रंग देते हैं,
या उस रक्त के समान लाल,
जो कि एक राजपूत तरुणी के मन को जीतने के लिए
हजारों योद्धाओं की छातियों से प्रवाहित होता है ।

तुम्हारी चंचल, दर्पपूर्ण और विजयोज्वल
ज्वाला की किससे तुलना की जा सकती है ?
यह आशा की ज्वाला है, या घृणा की,
या मेरे हृदय की धधकती हुई कामना की,
या ये वे उल्लासपूर्ण लपटें हैं,
जो कि एक सती की चिता से
ऊपर आकाश में उठ रही हैं ।

अनुवादक—वंशीधर विद्यालंकार

आज का मराठी साहित्य

कुसुमावती देशपाण्डे

किसी राष्ट्र के इतिहास का जिन मुख्य घटनाओं से मार्ग निर्धारित होता है, आवश्यक नहीं है कि उन्हीं घटनाओं से उसके साहित्य के इतिहास की गति-दिशा भी तय हो। कभी ऐसा होता है कि साहित्य में नई विचारधाराएँ फूट पड़ती हैं और वे नवीन राष्ट्रीय युग का पथ प्रशस्त करती हैं। कभी साहित्य में दिखलाई पड़ने वाले नए तत्त्व अनेक राष्ट्रीय घटनाओं के मन्द गति से पड़ने वाले प्रभाव के फल होते हैं। भारत के राजनीतिक इतिहास में स्वतन्त्रता प्राप्ति का वर्ष बहुत ही बड़ी घटना का वर्ष है। इस वर्ष आत्मनिर्णय और भौतिक प्रगति के महान युग का श्रीगणेश हुआ। लेकिन भारतीय साहित्य में भी इस घटना से नए युग का सूत्रपात हुआ—यह पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता। स्वतन्त्रता की प्राप्ति जिन सामाजिक और विशेषतः बौद्धिक गतिविधियों का परिणाम थी, वे तो उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में ही आरम्भ हो गई थीं। उन दिनों हर भारतीय भाषा के साहित्य में ऐसे ही तत्त्व उद्भूत हुए। ये तत्त्व गत पचास वर्षों में तरह-तरह की भली-बुरी परिस्थितियों से होकर गुजरे और इन्होंने अनेक उतार-चढ़ाव देखे। इसलिए भारतीय भाषाओं के साहित्य में गत आठ वर्षों में नई प्रवृत्तियों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सच तो यह है कि इतने लघु काल में साहित्यिक प्रवृत्तियों का अनुमान लगाया ही नहीं जा सकता। तथापि, कुछ नई प्रवृत्तियाँ तो स्पष्टतः उभर आई हैं। जागरूक और सजग पाठक की दृष्टि से यह छिपा नहीं रह सकता कि गत आठ वर्षों में नए आदर्शों के निर्माण की चेष्टा की गई है; साहित्य को नए रूप देने का प्रयास किया गया है; साहित्य के कलेवर को नए दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा की गई है। नीचे की पंक्तियों में इन्हीं बातों की संक्षिप्त समालोचना प्रस्तुत की जा रही है।

मराठी साहित्य में उपन्यास का जन्म सौ वर्ष पूर्व हुआ। यह कला उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में श्री हरिनारायण आप्टे की रचनाओं में सर्वोत्कृष्ट रीति से पल्लवित हुई। बीसवीं शती के चौथे दशक में मराठी उपन्यासों की कला-धारा और भी विस्तृत हुई तथा उसकी कई शाखा-प्रशाखाएँ भी निकलीं। एन० एस० फड़के की कृतियों में यदि उपन्यास कला के परिष्कार के साथ उसे बाह्य गरिमा या ऊपरी चमक-दमक मिली तो खाण्डेकर और माडखोलकर की रचनाओं में आदर्शवादिता ही अधिक दिखलाई पड़ती है। हृदय की गहराइयों में छिपी तीव्र अनुभूति पी० वाई० देशपाण्डे के उपन्यासों में मुखरित हुई है। उपन्यास कला की इस धारा को सन् १९४० के बाद के कुछ वर्षों में विभावरी शिरुरकर ने मनो-सामाजिक उपन्यास लिख कर, बोकिल ने हलकी-फुलकी व्यंग्य-विनोद की चीज़ें लिख कर, दीघे ने अपने उपन्यासों में ग्राम-जीवन का चित्रांकन कर के, तथा अन्य उपन्यासकारों ने भी तरह-तरह से योगदान दे कर विस्तृत किया। सन् १९४७ में उपन्यास प्रेमियों के हृदय में ऐसी आशंका उत्पन्न होने लगी कि कहीं उपन्यास की शक्ति साहित्य के माध्यम के रूप में समाप्त तो नहीं हो गई है। उदीयमान लेखकों की पीढ़ी लघु कथा की ओर झुक पड़ी थी। वयोवृद्ध लेखकों ने या तो लेखन कार्य बन्द कर अवकाश ग्रहण कर लिया था या फिर वे कथा लेखन की अपनी पुरानी पद्धति का ही पिष्ट-पेषण कर रहे थे। इसके साथ ही उनकी मनोवृत्तियों में भी कोई अन्तर नहीं प्रतीत होता था। लेकिन कुछ ही दिन बाद उपन्यास कला का नए ढंग के साथ शृंगार किया गया। विभावरी शिरुरकर ने अपराधी जातियों के जीवन को आधार बना कर 'बलि' नाम का उपन्यास लिखा। नोआखाली की सामाजिक पृष्ठ भूमि के आधार पर विवलकर ने 'सुनीता' नाम का उपन्यास लिखा। एस० एन० पेंडसे ने ग्राम अध्यापक के जीवन की 'हद्दपार' में हृदय-स्पर्शी कथा लिखी। इन सबने मराठी उपन्यास साहित्य को पुनर्जन्म दिया। मराठी उपन्यास कला ने मोड़ पर पहुँच कर नई गति-दिशा ग्रहण की। यह गति-दिशा थी सहज अभिव्यक्ति की और गहरी सहृदयता की। आजकल एस० एन० पेंडसे, जी० एन० दाण्डेकर, व्यंकटेश माडगूलकर आदि मराठी के प्रमुख उपन्यासकार हैं। माडगूलकर का 'बनगरवाडी' उपन्यास तो बहुत ही प्रसिद्ध है। ये सब कलाकार अत्यन्त सरल और सजीव शैली में सामाजिक और आर्थिक जीवन के जटिल ताने-बाने के बारे में लिखते हैं। प्रत्येक लेखक ने चरित्र-चित्रांकन करने के लिए विशिष्ट क्षेत्र चुन लिया है। तरह-तरह के चरित्र हों और लेखक क्षेत्रवाद की अति कर दे तो वह फिर चाहे कोई भी भाषा हो, रचना की 'अपील' सीमित हो जाती है। लेकिन मराठी के उपन्यासकारों की यह विशेषता है कि सफलता के क्षणों में इनकी शैली की यथार्थवादिता और सजीवता और भी उभर आती है। दृश्य वर्णन और चरित्रांकन में गहरी कवित्व शक्ति झलक उठती है।

वसन्त कानेटकर या मुक्तिबोध जैसे उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में भिन्न प्रकार के प्रयोग किए हैं। मुक्तिबोध का उपन्यास 'घर' ग्राम जीवन के चित्रण से आरम्भ होता है। ग्राम जीवन का वर्णन अत्यन्त आकर्षक और कोमल शैली में किया गया है। इसमें ऐसी परिश्रमी तरुण पत्नी का वर्णन किया गया है, जिसका पति नौकरी के लिए शहर गया हुआ है। ग्राम जीवन के इस संक्षिप्त चित्र के बाद दृश्य बदल जाता है। पाठक को नगर जीवन की गतिविधियों के उलझे हुए जाल में लेखक ले आता है और नायक की चेतना की धारा को

समझाने का यत्न करता है। उनका दूसरा उपन्यास 'पंख' ऐसे अध्यापक की कथा है जिसे अभिनय का बड़ा शौक है। मुक्तिबोध तीन भागों में 'क्षिप्रा' नामक उपन्यास लिख रहे हैं। अभी इसका एक ही भाग प्रकाशित हुआ है। लेकिन पहले ही भाग में लेखक की नूतन दिशा की ओर बढ़ने की झलक दिखलाई पड़ गई है और यह भी ज्ञात हो गया है कि उनमें अपने आपको भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने और चरित्र-चित्रण करने की कितनी अधिक क्षमता है।

इन नई प्रवृत्तियों के अलावा पुराने उपन्यासों की शैली-परम्परा तो है ही। इनकी अपील का क्षेत्र बना-बनाया है, किन्तु कथा की रूपरेखा पुरानी ही रहती है। इस प्रकार के सबसे अधिक उपन्यास श्री एन० एस० फड़के ही लिखते हैं। वे हर उपन्यास में स्थान और सामाजिक पृष्ठभूमि तो बदल देते हैं, लेकिन उपन्यास की कथा मूलतः रोमाण्टिक प्रेम पर ही आधारित रहती है। माडखोलकर तक ने अपने नए उपन्यास 'स्वप्नान्तरिता' में इसी प्रकार की कथा लिखी है, जिसमें पलायनवाद (escapism) और गुरुडम दोनों का मिश्रण है।

लघु कथाओं का इतिहास उपन्यास से भी अधिक ऊहापोहमय है। आज की मराठी लघु कथा विगत दशक की कहानियों से इतनी अधिक भिन्न है कि इसे 'नवकथा' या नई कहानी कहा जाने लगा है। कुछ दिनों पूर्व तक नए और पुराने लघु कथा लेखकों में 'पुस्तकों' का युद्ध (Battle of Books) चला करता था। फड़के और खाण्डेकर की शैली नवकथा के प्रादुर्भूत होने तक पुरानी पड़ गई थी। उनके उद्देश्य कृत्रिम होने लगे थे और वे कथा की रूपरेखा में छिप नहीं पाते थे। इस प्रकार की कहानियों की शैली का बहिष्कार सर्व प्रथम सन् १९३०-४० में किया गया। इसके बजाय दिवाकर कृष्ण, चोरघड़े, पाध्ये, जोशी तथा अन्य कहानीकारों ने कोमल, आत्म-निरीक्षणात्मक और विश्लेषणात्मक शैली अपनाई। किन्तु अगले दशक के तरुण लेखकों ने औपचारिकता और पुरानी शैली के आदर्शों को बिल्कुल छोड़ दिया। अब वे बिल्कुल भिन्न शैली में लिखते हैं। भावे बड़ी भाव-प्रवणता से धाराप्रवाह लिखते हैं। कभी-कभी उनकी शैली बड़े भोंडे ढंग से भौतिकवादी हो जाती है किन्तु कभी-कभी वे संचेत्य, स्वतन्त्रताप्रिय व्यक्ति भी गहन मनोव्यथाओं का बड़ी सफलता से अंकन करते हैं, जैसा उन्होंने 'मुक्ति' नाम की कहानी में किया भी है। गंगाधर गाडगील की शैली विश्लेषणामय मनोवैज्ञानिक है। वह नागरिक जीवन के मध्यवर्ग की ही समस्याओं पर कहानियाँ लिखते हैं। उनकी लेखन शैली में निराशा का भाव है और उसमें यह भी झलकता है कि कहानीकार समाज और व्यक्ति के मानस की विघटनात्मक प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में बड़ा चैतन्य और जागरूक है। गोखले का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक कोमल और रचनात्मक है। जयलता और बम्बई की दुग्धशाला (डेरी) में बँधी भैंस 'पारू' का भी उनकी कोमल कल्पना चित्रांकन करने में समर्थ है। माडगूलकर ग्राम-जीवन का सजीव चित्रण बड़ी सफलता से करते हैं। लघु कथा जैसे सीमित माध्यम द्वारा अग्निहोत्री, सोकाशी और शान्ताराम आदि कलाकार मानव विचारों और भावनाओं के विभिन्न सूक्ष्म पक्षों के बड़ी चतुराई से उभार कर सतह पर ले आते हैं। हमीद दलवई, विजया आप्टे, रणजीत देसाई तथा अन्य ऐसे ही कलाकारों से तरुण लेखकों का भी एक वर्ग प्रभावित हुआ है और उनके पथ का अनुकरण कर रहा है।

नव कथा या नवीन प्रकार की लघु कथाओं का बाह्य और आन्तरिक क्षेत्र पहले से कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत हो गया है। बाह्य दृष्टि से जीवन के गुह्यतम स्थलों तक इसकी पहुँच है और आन्तरिक क्षेत्र में नई लघु कथा मानस के अन्तरतम की भावनाओं तक पहुँचने की क्षमता रखती है। लघु कथा में दृश्य पदार्थों के विश्लेषण से लेकर चेतना-धारा तक को स्पर्श किया जाता है। कहीं उदासीन या तटस्थ भाव से लिखा जाता है तो कहीं अत्यन्त सफलता और भाव-प्रवणता से कुछ बातों का समर्थन भी किया जाता है। नवीन लघु कथा ने रूपकों और 'पेरेबिल' (parable) को भी आत्मसात कर लिया है। लघु कथा ने एक ओर संतुलित यथार्थवाद अपनाकर और दूसरी ओर काव्यात्मक आत्म-चिन्तनवाद का मिश्रण करके गद्य और पद्य के क्षेत्रों को जोड़ने वाली कड़ी स्थापित कर दी है।

लेकिन लघु कथा की शैलियों में क्लान्ति के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे हैं। लघु कथा लेखक भी पुरानी लकीर पीटते रहने के आदी हो गए हैं—ऐसा लगता है। बहुधा भाव और विचार स्पष्ट नहीं हो पाते। कभी तो इसका कारण लेखक का अति स्वतन्त्र होने का स्वभाव होता है और कभी लेखक पूरी तरह से उस अनुभूति पर काबू कर नहीं पाता जिसे वह लघु कथा में अभिव्यक्त करना चाहता है। निराशा तो कभी-कभी इतनी कृत्रिमता के साथ प्रकट की जाती है कि उसमें एकरसता का दोष उत्पन्न हो जाता है। अब फिर वह समय आ गया है जब इस बात की आवश्यकता है कि पुरानी रूढ़ियों को छोड़ कर लघु कथा का माध्यम साहित्य क्षेत्र में नवशक्ति के साथ अवतरित हो।

कविता मानव भावनाओं को अभिव्यक्त करने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। हाल ही के मराठी साहित्य में काव्य साहित्य का बड़ी मात्रा में सृजन हुआ है। सम्भवतः मराठी भाषा में उसके काव्य-साहित्य का भण्डार ही सबसे अधिक समृद्ध है। मराठी में कविता के नए-नए रूप और नई-नई दिशाएँ विकसित हुई हैं। कविता की गहराई और ऊँचाई, दोनों में ही वृद्धि हुई है। उसकी सृजनात्मक शक्ति का और भी परिष्कार हुआ है। शब्दबहुलता और आकार-बहुलता, दोनों दोषों को दूर किया गया है। व्यर्थ का शब्दाडम्बर नहीं रहा है। मराठी कविता पहले से अधिक संक्षिप्त, छँटी-छँटाई और तराशी हुई होने लगी है। यदि गत आठ वर्षों में प्रकाशित सर्वोत्तम कविता संग्रहों को ही चुना जाए तो इनकी संख्या दर्जनों हो जाएगी। मार्ढेकर का 'आणखी कही कविता', अनिल का 'पेरतेवा', मुक्तिबोध का 'नवी मलवाट', पडगाँवकर के 'धारानृत्य' और 'जिप्सी', बापट का 'बिजली', इन्दिरा संत का 'सेला और मेंदी', पद्मा गोखले का 'नोहार', करन्दीकर का 'स्वेदगंगा' और 'मृद्गंध', देशपाण्डे

'शील', कुसुमाग्रज का 'किनारा', बोरकर का 'आनन्द भैरवी', कान्त की 'रुद्रवीणा', रेगे का 'दोला' और 'गंधरेखा' आदि संग्रहों का नाम लिया जा सकता है। इनमें से प्रत्येक की अपनी अलग और स्वतन्त्र शैली है। ये कवि किसी विशेष विचारधारा के नहीं हैं। सच तो यह है कि इनको एक समूह में रखा भी नहीं जा सकता। जिसने जिस माध्यम को अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करने का सर्वोत्तम साधन समझा है उसी माध्यम द्वारा ईमानदारी से उसे प्रकट किया है। फलतः, मराठी कविता में कल्पनाबहुलता है, गतिमयता है। इससे कविता की पुरानी शैलियों को भी बल मिला है। आधुनिक मराठी कविता की अन्य विशेषता है उसकी बौद्धिकता। आज की मराठी कविता जीवन और जगत की दृश्य वस्तुओं के चित्रण से सन्तुष्ट नहीं होती। वह व्यक्ति के मानस की गहराइयों में उतर कर उसकी उन समस्याओं का समाधान करना चाहती है, जो उसके चिन्तन का अंग बन गई हैं और वह व्यक्ति तक ही सीमित न रह कर सामाजिक समस्याओं का हल खोजने के लिए भी व्यग्र दिखलाई पड़ती हैं। सर्वोत्तम कविताओं में बौद्धिक विश्लेषण में भावनात्मक गहनता का समन्वय हो गया है। अनिल, बोरकर, पडगाँवकर, देशपाण्डे आदि ने कविता के किसी-न-किसी पक्ष के भण्डार की अपने गहन आत्म-चिन्तन और मौलिकता द्वारा अभिवृद्धि की है। उन्होंने बड़े मधुर गीतों की रचना की है। इनमें से प्रत्येक के गीतों में कोमलतम गहरी भावनाएँ और तीव्र आत्मानुभूति दिखलाई पड़ती है। मुक्तछंद के प्रमुख कवि अनिल की रचनाओं में सामाजिक समस्याओं का समावेश हो जाने के कारण उसका क्षेत्र पहले से अधिक व्यापक हो गया है। उनकी कविता में परम्परागत आदर्शों को बनाए रखने की भी प्रवृत्ति है और नए समाज के निर्माण की भी प्रेरणा है। उन्होंने मुक्तछंदों के जो दो नए रूप प्रचलित किए हैं वे आज मराठी कवियों की भावनाभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम बन गए हैं। आधुनिक कविता पर मर्ढेकर की गहरी छाप है। उन्होंने ओवी और अभंग छंदों की शैली में ही काव्यरचना की है, लेकिन उनके शब्द चयन और कल्पना में अतिनूतनता है। मशीनों और आधुनिक जगत से उन्होंने स्वतन्त्रतापूर्वक उपमाएँ ली हैं। विदेशी शब्दों का उन्होंने आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है। रूढ़िवादी आलोचकों को उनकी शैली मिश्रित और कर्कश लगती है। वे मर्ढेकर की निराशा, साधारण व्यक्ति के जीवन की घृणित दशाओं के चित्रण को और पुराने आदर्शों की त्याज्यता को भी अच्छा नहीं समझते। लेकिन मर्ढेकर में आत्म-चिन्तन और मौलिकता है, इससे वे भी इन्कार नहीं कर सकते। रचना शैली और शब्द चयन की दृष्टि से करन्दीकर मर्ढेकर के अधिक निकट हैं, लेकिन उन्हें अनिल की भाँति मानव में मर्ढेकर से अधिक विश्वास है। मुक्तिबोध की कविताएँ भी इसी श्रेणी में आती हैं। उनकी कविताओं में अपेक्षाकृत अधिक संयम और अधिक विश्लेषण है और कभी-कभी तो वे करन्दीकर से भी अधिक नीरस हो जाती हैं। लेकिन इन गुणों के कारण उनकी कुछ कविताओं में अन्दर तक पैठने की शक्ति आ जाती है और उन्हें पढ़ कर बौद्धिक तुष्टि भी होती है। इन्दिरा सन्त की वेदनाओं और मानोव्यथाओं का अपना जगत है। उनकी कविता सबसे भिन्न है। उनके कुछ गीतों का तो हृदय पर बिजली जैसा प्रभाव होता है। कुछ कविताएँ तो आँसू की बूँद की तरह सुडौल होती हैं। रेगे के कोमल शब्द-चित्रों में सूक्ष्म भावनाओं और विशुद्ध प्रेम का अद्भुत समन्वय दिखलाई पड़ता है।

आज के कवियों में पडगाँवकर अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न कवियों की श्रेणी में आते हैं। अब तक की उनकी उपलब्धि यथेष्ट है। उनका प्रकृति प्रेम, उनके काव्य की संगीतमयता, उनका शब्द चयन और उनकी व्यापक आध्यात्मिकता उनके काव्य को मनोमोहकता प्रदान करती है। अनेक युवक कवि भी अपने भावों को अभिव्यक्ति दे रहे हैं।

गत पीढ़ी का काव्य निःशेष हो गया हो ऐसा नहीं है। समय-समय पर यशवंत के गीति काव्य की झलक मिलती रहती है। बी० जी० खापर्डे ने बृहद् रहस्यात्मक काव्य 'काव्य कान्तार' का दूसरा अंक प्रकाशित किया है। प्रथम अंक की तुलना में द्वितीय अंक में सच्ची काव्यानुभूति अधिक मात्रा में विद्यमान है। डब्ल्यू० एन० देशपाण्डे ने आदिवासी जीवन पर आधारित अपने 'कोरकू' नामक नये लम्बे काव्य में एक नया प्रयोग किया है।

साहित्यिक निबन्ध भी लघु कथा की भाँति ही शास्त्रीय औपचारिकता तथा आत्म-चिन्तन को अंकित करने की अवस्था या अवस्थाओं से होकर गुजरा है। किन्तु उपन्यास, लघु कथा और काव्य के समान निबन्ध साहित्य के भण्डार में अभिवृद्धि नहीं हुई है। पिछला निबन्ध साहित्य तो काफ़ी है लेकिन अब, प्रतीत होता है, लघु कथा की वेगधारा में वह खो गया है। तिलक और आगरकर के ज़माने से लम्बे-लम्बे पांडित्यपूर्ण निबन्ध लिखने की जो परम्परा मराठी गद्य-साहित्य में रही है और जिसने मराठी साहित्य के विकास में इतना महत्त्वपूर्ण योग दिया है, वह आज भी है। उसमें चमक-दमक नहीं है, किन्तु उसका महत्त्व कम नहीं हुआ है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न विषयों पर प्रकाशित लेखों का भण्डार विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ ही हैं। आचार्य जवडेकर, प्रोफ़ेसर माटे, आचार्य धर्माधिकारी, माडखोलकर आदि कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध निबन्ध लेखक हैं। विनोबा भावे के भाषण और लेखों की तो अपनी अलग और निराली ही शैली है। उनमें सरलता, संक्षिप्तता, सूक्ष्मता और मानस के अन्दर तक पैठने की शक्ति होती है। इस क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी के दिग्गज निबन्ध लेखकों ने जो परम्परा स्थापित कर दी है उसका भली भाँति विकास किया जा रहा है।

मराठी रंगमंच को भी संसार की समस्त भाषाओं के रंगमंचों की भाँति १९३० से ही सिनेमा से होड़ करनी पड़ी है। मराठी रंगमंच के दो यशस्वी कलाकार हैं—मामा वरेरकर और पी० के० अत्रे। मामा वरेरकर १९१४ से नाटकों की रचना करते आ रहे हैं। उनके प्रारम्भिक नाटक समकालीन शैली से प्रभावित हैं। संगीत की उनमें प्रधानता थी और कथानक परिपाटी के अनुसार होता था, उदाहरणार्थ: 'कुंज विहरी'। तब से वह निरन्तर मराठी नाटकों में नूतनता और स्फूर्ति लाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। उनके नाटक सामयिक समस्याओं से

सम्बद्ध रहते हैं। अब तक वह ४० नाटक लिख चुके हैं, किन्तु उनकी सृजन-शक्ति अभी भी सक्रिय है। 'सारस्वत' उनके अनुपम नाटकों में से है। इसमें एक प्रतिभा-सम्पन्न निर्धन व्यक्ति का जीवन चरित्र बड़े मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। 'भूमि कन्या सीता' नामक उनका नाटक १९५५ में प्रकाशित हुआ, जिसमें सीता की कहानी को एक मौलिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। मामा वरेरकर स्त्रियों के अधिकारों के पक्षपाती हैं और सामाजिक न्याय में विश्वास रखते हैं। सीता और उर्मिला का चरित्रांकन उन्होंने अनुभूति के इसी स्तर से किया है। 'अपूर्व बंगाल', और 'सिंगापुराकड़े' आधुनिकतम विषयों पर लिखने और नये प्रयोग करने की उनकी प्रवृत्ति के परिचायक हैं। पी० के० अत्रे ने मराठी रंगमंच को उसके कठिन समय में नया बल दिया। हास्य और व्यंग्य का सहारा लेकर उन्होंने नई और पुरानी विचार-सरणी की हास्यास्पद एवं अवांछनीय बातों पर कुठाराघात किया। उनके 'साष्टांग नमस्कार' नाटक से सर्वत्र हलचल मच गई। 'घराबाहेर', 'उद्याचा संसार' तथा अन्य नाटक जो बाद में लिखे गए बड़े लोकप्रिय सिद्ध हुए। इसके उपरांत उन्होंने 'जग काया म्हणेल', 'मी उभा आहे' नाटक लिखे। अन्तिम कुछ वर्षों में उन्होंने फ़िल्मों की ओर भी ध्यान दिया और 'श्याम ची आई' तथा 'ज्योति बा फुले' आदि फ़िल्मों के द्वारा इस दिशा में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया।

वरेरकर और अत्रे के नाटक व्यापकता की पुट लिए रहते हैं और किसी महान आकांक्षा से प्रेरित होते हैं। श्री एम० जी० रांगणेकर ने अपने नाटकों में विशेषकर मनोरंजन का दृष्टिकोण ही अपनाया है। १९४१ में उन्होंने ज्योत्सना भोले, जागीरदार, मोहिते तथा अन्य कलाकारों की सहायता से एक नाटक कम्पनी की स्थापना की। 'कुलवधू' 'नन्दन वन' आदि उनके चुटीले और हल्के-फुल्के नाटक हैं। 'रम्भा' अथवा 'सत्रा वर्षे' आदि उनके नाटकों में कुछ गम्भीरता भी परिलक्षित होती है। 'नाट्य-निकेतन' द्वारा प्रस्तुत इन सफल नाटकों ने मराठी रंगमंच को और नाटकों को आधुनिकता प्रदान की है। डाक्टर वर्टी ने अपने नाटक 'रानी चा बाग' में, मुक्ताबाई ने अपने नाटक 'जुगार' और 'अन्धेर' में, नाना जोग ने अपने सामाजिक व आर्थिक नाटक 'चित्रशाला', 'सोनया चे देव' और मनोवैज्ञानिक नाटक 'भारती' में और नागेश जोशी ने अपने नाटक 'देव मानूष' में कुछ गहनतर आदर्शवादिता को अंकित किया है। उत्कृष्ट यूरोपीय नाटकों के अनुवाद अथवा रूपान्तरण से मराठी नाटकों में विविधता का समावेश हुआ। पी० एल० देशपाण्डे ने 'अमलदार' नाम से 'इंसपेक्टर जनरल' को रूपान्तरित किया। शिरवाडकर ने 'राजमुकुट' नाम से मेकबेथ को और 'वैजयन्ती' नाम से मोना वना को रूपान्तरित किया। उनका ऐतिहासिक नाटक, जिस पर उन्हें पुरस्कार भी मिला कला और रंगमंच दोनों की दृष्टि से सराहनीय है। सी० वाई० मराठे का 'होनाजी बाला' भी इसी कोटि का नाटक है। नवोदित कलाकार तारा वानारसे का 'कक्षा' नाटक आधुनिक मनोवैज्ञानिक समस्या पर आधारित होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

एकांकी नाटकों के क्षेत्र में भी यथेष्ट विविधता है। कला प्रेमियों के प्रयासों और प्रसारण माध्यम के कारण इस दिशा में काफ़ी प्रगति हो रही है। ताम्हनकर वकील, गाडगील, विजय तेंडुलकर आदि इस क्षेत्र में कुछ प्रमुख लेखक हैं।

मराठी साहित्य के एक और पक्ष पर हम प्रस्तुत लेख में विचार कर सकते हैं। साहित्यालोचन की ओर लोगों का ध्यान पहले से अधिक आकृष्ट हो रहा है। अभी हाल ही में मराठी साहित्य का इतिहास एक या अधिक भागों में कई व्यक्तियों ने लिखा है। कई प्रतिभा-सम्पन्न लेखक आधुनिक मराठी काव्य, मराठी उपन्यास आदि के अलग-अलग आलोचनात्मक इतिहास लिख रहे हैं। प्राचीन मराठी साहित्य में अनुसंधान भी किया जा रहा है। उदाहरण के लिए ऐसे अनुसंधान कार्यों में ज्ञानेश्वर की कृतियाँ और दर्शन का नाम लिया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य सन्त कवियों के साहित्य की भी शोध की जा रही है। उपरोक्त प्रथम श्रेणी के कार्यों के क्षेत्र में डा० दाण्डेकर, प्रो० जोग और देशपाण्डे के नाम उल्लेखनीय हैं। द्वितीय श्रेणी में डा० पेंडसे, प्रोफ़ेसर फाटक आदि का नाम आता है। आलोचना के सिद्धान्त, विभिन्न साहित्यिक रूपों की सिद्धान्त वाली साहित्यिक व्याख्या, तथा सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी समस्याओं के विषय पर प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में निबन्ध लिखे जाते हैं। साहित्यिक आलोचक पहले से अधिक जागरूक होते जा रहे हैं। वे सूक्ष्म-से सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। परिष्कृत सृजनात्मक रचनाओं का सौन्दर्य ऐसे मानदण्ड विकसित कर रहा है जो सृजनात्मक व्याख्या के अनुकूल हों। यह बड़ा परिश्रमसाध्य कार्य है और इसमें सावधानी की भी अपेक्षा है। साहित्य का आलोचक, साहित्यिक तथ्यों और घटनाओं का भी अच्छा ज्ञाता होने का प्रयास कर रहा है। इस दिशा में प्रोफ़ेसर डब्ल्यू० एल० कुलकर्णी, एम० वी० राजाध्यक्ष, गंगाधर गाडगील, डी० वी० देशपाण्डे, जी० एम० कुलकर्णी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। आलोचना जगत और सौन्दर्यशास्त्र की पिछले दशक की सर्वोत्कृष्ट निधि स्वर्गीय श्री बी० एस० मर्ढेकर थे। पश्चिमी सौन्दर्य शास्त्र, कला व साहित्य का अच्छा ज्ञान होने से उनके आलोचना साहित्य में बड़ी पैनी सूझ-बूझ पाई जाती थी। इसके अतिरिक्त वह मौलिक रचनाकार भी थे जिससे उनके आलोचनात्मक लेखों को दोहरा बल मिला था। मराठी आलोचना साहित्य को उनकी देन अविस्मरणीय रहेगी।

दिल्ली और उसकी वेदनाएँ

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

"दिल्ली जो इक शहर था आलम में इन्तख़ाब
रहते थे मुन्तख़ब ही जहाँ रोजगार के
उसको फलक ने लूट के वीरान कर दिया—"

उर्दू के एक प्रसिद्ध शायर मीर ने कहा था, पर आज नयी दिल्ली की अट्टालिकाओं-इमारतों को देखकर कवि के इस कथन की सत्यता पर कौन विश्वास कर सकेगा ? किन्तु कवि की इस उक्ति में सत्य ही नहीं, घोर सत्य छिपा है। दिल्ली उन नगरों में है, जिसे एक नहीं बारम्बार लुटेरों के आक्रमण का सामना करना पड़ा है। और मीर यहाँ उन दिनों बसते थे जबकि दिल्ली की रौनक समाप्त हो चुकी थी, उसके गौरव का सूर्य अस्तप्राय था, मुगल साम्राज्य का पतन हो चुका था, चौकियाँ बदल गयी थीं, थाने बदल चुके थे, मुगल सल्तनत की जगह ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन आरम्भ हो चुका था—दिल्ली की तत्कालीन अवस्था मानो किसी कवि की इस उक्ति को चरितार्थ कर रही हो—

सदा न बागीं बुलबुल बोले,
सदा न बाग बहारीं,
सदा न ज्वानी रहती यारो,
सदा न सोहबत याराँ।

वह दिल्ली जो एक जमाने में संसार में अपनी सुन्दरता एवं दौलत के लिये प्रसिद्ध थी, उजड़े हुए चमन की याद दिला रही थी।

दिल्ली शताब्दियों से किसी-न-किसी साम्राज्य अथवा लोकपाल की राजधानी रही है। कितने नगर बने और बिगड़े, यह इतिहास के पृष्ठ बतलाते हैं अथवा दिल्ली के आस-पास प्रायः ४० मील की परिधि में फैले हुए पुराने खण्डहर। प्राक् ऐतिहासिक काल में, पौराणिक आधार पर विशेषज्ञों का कहना है, कि आर्यों ने प्रायः ईसा के पूर्व १४वीं सदी में यहाँ आकर एक उपनिवेश का निर्माण किया था। सबसे पहला शहर जो आर्यों ने यहाँ बसाया था और जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में पाया जाता है, वह था इन्द्रप्रस्थ। महाभारत में पाण्डवों के हस्तिनापुर से जाकर जंगलों से नाग नामक एक अनार्य जाति के भगाने तथा जंगल साफ कर इन्द्रप्रस्थ के निर्माण की कथा वर्णित है। कहते हैं यमुनातट पर वर्तमान फिरोजशाह की कोटला और हुमायूँ की कब्र के बीच के इलाके में यह नगर बसा हुआ था। पर आज दिन इसके कोई ध्वंसावशेष अथवा चिह्न प्राप्य नहीं हैं, सिवाय इन्द्रप्रस्थ नाम के जिसके द्वारा यह इलाका आज भी ज्ञात है। भागवत पुराण के अनुसार युधिष्ठिर के बाद अर्जुन की तीस पीढ़ियों ने यहाँ शासन किया, जब तक कि इस पीढ़ी के अन्तिम सम्राट के मंत्री विसर्व ने उससे गद्दी न छीन ली। विसर्व वंश के लोगों ने पाँच सौ बरसों तक राज्य किया। उनके बाद गौतमवंश के १४ राजाओं ने, तत्पश्चात मयूर वंशियों ने। फिर तो हम ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दि के मध्य में पहुँचते हैं, जब कि सर्वप्रथम 'दिल्ली' नाम का प्रवेश होता है। तब तक शहर प्राचीन स्थिति से आगे, दक्षिण दिशा को फैल चुका था, वहाँ जहाँ कि आज कुतुब मीनार खड़ा पठान शासन की याद दिला रहा है।

जनरल कनिंघम के कथनानुसार इस नये नगर का निर्माणकर्त्ता दिलू नामक एक राजा था, जो मयूर वंश का अन्तिम सम्राट था तथा जिसका टालमी ने अपने ग्रन्थ में दैदालर के नाम से उल्लेख किया है। फेरिश्ता का भी यही मत है और शायद कनिंघम के पूर्वोक्त कथन का आधार फेरिश्ता ही है।

साक वंशी राजा साकादित्य ने, इतिहासज्ञों का कथन है कि राजा दिलू से, दिल्ली की गद्दी छीन ली पर वह स्वयं थोड़े दिनों के बाद ही महाराज विक्रमादित्य के द्वारा पराजय को प्राप्त हुआ। इसके बाद कई सदियों तक दिल्ली का कोई पता नहीं मिलता। किंवदन्ति है कि ७८२ वर्षों तक वह उजाड़ पड़ी रही पर यह बात इसलिए मान्य नहीं कि तीसरी किंवा चौथी शताब्दी (ईसोपरान्त) राजा धाव के प्रसिद्ध लौह स्तम्भ का निर्माणकाल बताया जाता है। इस स्तम्भ के सम्बन्ध में पुरातत्व एवं इतिहास के विद्वान विशेषज्ञों ने तरह-तरह की अटकलबाजियाँ लगायी हैं, पर प्रामाणिक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि राजा धाव कौन थे ? किन्तु इस पर जो संस्कृत के कुछ शब्द खुदे हुए हैं उनसे यह साफ-साफ परिलक्षित है कि इसका निर्माता कोई महान शक्तिशाली व्यक्ति था। जेम्स प्रिंसेप ने इन शब्दों को बड़ी मेहनत से पढ़ा था और उसका कहना है कि इस पर जो पंक्तियाँ अंकित हैं उनमें इस स्तम्भ को राजा धाव की 'कीर्ति-भुजा' कहा है, तथा यह भी लिखा है कि उन्होंने अपने बाहुबल से इस पृथ्वी पर बहुत दिनों तक एकतंत्र शासन किया। निष्कर्ष यह कि इस लेख से यह स्पष्ट है कि राजा धाव कोई प्रतापी शासक था और यह स्वाभाविक है कि दिल्ली उसके राजत्वकाल में धन-धान्य से सम्पन्न रही हो, पर यह कौन था उसका निश्चित पता आज तक न लगा। हाँ, सादृश्यता के सिद्धान्त पर इस शिलालेख का अंकनकाल तृतीय अथवा चतुर्थ शताब्दी आसानी से माना जा सकता है। तोमर वंशीय राजाओं के सम्बन्ध में कनिंघम आदि का मत है कि इस वंश की स्थापना अनंगपाल ने ७३८ ई० में की तथा दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया। उसके बाद इस वंश के कई राजाओं ने दिल्ली को ही अपनी राजधानी रखा। पर कालान्तर में, ऐसा प्रतीत होता है कि वे कन्नौज चले गये और दिल्ली राजधानी न रही। ११वीं सदी के मध्य में राठौर वंशीय चन्द्रदेव ने द्वितीय अनंगपाल को कन्नौज से मार भगाया और

उसने पुनः दिल्ली की शरण ली; तोमर वंशीय राजाओं की वह फिर राजधानी बनी। अनंगपाल द्वितीय ने दिल्ली की सजावट के अनेक प्रयत्न किए तथा सुरक्षा के उद्देश्य से 'लाल कोट' नामक एक किले का निर्माण किया, जिसके ध्वंसावशेष अब भी कुतुब मीनार के इर्द-गिर्द पाए जाते हैं। राजा धाव के जिस लौह-स्तम्भ की चर्चा ऊपर की गयी है उसके ऊपर बड़े ही संक्षेप में लिखा है '११०६ संवत् में अनंगपाल ने दिल्ली बसाई।' कई विद्वानों ने इसी लिखावट के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि राजा धाव तोमर कुल का ही कोई व्यक्ति था। सौ वर्षों तक दिल्ली में अमन-चैन बना रहा। पर इस अवधि के बीतते-न-बीतते अजमेर के चौहान वंशीय राजा विशालदेव ने दिल्ली पर आक्रमण किया। अनंगपाल ने पराजय प्राप्त कर उसकी अधीनता ही स्वीकार न की, बल्कि अपनी पुत्री भी उसे भेंट की। विशालदेव ने उसे वधू रूप में स्वीकार किया। इसके ही गर्भ से प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज चौहान उत्पन्न हुए, जो कि अनंगपाल के स्वर्गारोहण के बाद दिल्ली की गद्दी पर बैठे और जिन्होंने तोमर एवं चौहान वंशों का एकीकरण किया, उन्हें एक सूत्र में बाँधा।

महाराज पृथ्वीराज दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा थे, प्रतापी थे, गुणी थे तथा उनकी कथाएँ भारतवर्ष के इतिहास एवं साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं; कविवर चन्दवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' लिख कर उन्हें अमरत्व प्रदान किया है। सन् ११९१ ई० में मुहम्मद शहाबुद्दीन गोरी का भारतवर्ष पर प्रथम आक्रमण हुआ। पृथ्वीराज के द्वारा उसे हार खानी पड़ी पर वह वर्षों में ही पुनः भारत पर चढ़ आया तथा युद्ध-क्षेत्र में उसने पृथ्वीराज को पराजित किया। पृथ्वीराज बन्दी हुए तथा उसके द्वारा कत्ल कर दिए गए। दिल्ली उसके एक मुख्य सेनानायक कुतुबुद्दीन के हाथों पड़ी। शहाबुद्दीन गोरी के जीवन-काल तक तो वह दिल्ली पर बतौर उसके प्रतिनिधि के शासन करता रहा। पर १२०६ में जब वह मृत हुआ तो कुतुबुद्दीन निज को स्वतन्त्र घोषित कर हिन्दुस्तान का बादशाह बन बैठा। वह तुर्क तथा दास वंश का था। अतः वह तथा उसके वंशज दास कुल के बादशाह कहलाए। दिल्ली की कई मशहूर इमारतें—कुतुब मीनार आदि इसी वंश के बादशाहों की कृतियाँ हैं।

सन् १२८२ ई० तक दास वंश का शासन रहा, फिर खिलजियों का। इस वंश की नींव डालने वाला जलालुद्दीन खिलजी था, पर इस वंश का विख्यात शासक अलाउद्दीन हुआ जिसने दो बार मुगलों के आक्रमण का सामना किया तथा उन्हें मार भगाया। जिस स्थान पर उसने मुगल आक्रमण का सामना कर उन्हें पराजित किया, वहाँ शाहपुर नामक स्थान में उसने एक किले का निर्माण भी किया।

सन् १३२१ ई० तक खिलजियों का राज रहा, फिर आया तुग़लक वंश का शासन-काल। इस वंश के ही एक बादशाह ग़ियासुद्दीन ने तत्कालीन दिल्ली से प्रायः पाँच मील दूर एक नगर बसाया—तुग़लकाबाद, जो अधिक दिनों तक आबाद न रह सका, खण्डहरों में परिवर्तित हो गया। उसका पूरा नाम मुहम्मद तुगलक था जिसके सम्बन्ध में एलफिन्सटन नामक एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ने लिखा है कि संसार में मानव-प्रकृति को शृंगारित अथवा कलंकित करने वालों में वह एक प्रमुख व्यक्ति था, अतिशय विद्या-सम्पन्न, साथ ही भयंक उत्पीड़क भी! तीन बार वह अपनी राजधानी दिल्ली से उठा देवगिरि (दक्कन) ले गया और वापस लाया। दिल्ली के बाशिन् को वहाँ जाने और लौटने को, राजाज्ञा से विवश होना पड़ा, जिस परिणामस्वरूप उन्हें धन-जन की अपार क्षति तो उठानी ही पड़ी, दिल् भी उजाड़ हो गई। उन्हीं दिनों इब्नबतूता नामक एक विदे (अफ़्रीकी) यात्री यहाँ आया था जिसने दिल्ली के सम्बन्ध में लिख है कि 'वह एक परम सुशोभित नगर है जिसकी मस्जिदों तथा दीवा का मुकाबला करने वाली मस्जिदें और दीवारें दुनिया के किसी हिस्से में प्राप्य नहीं हैं। पर वह आज आबादी की कमी के कार मरुभूमि-सा हो रहा है। संसार के सबसे बड़े शहर की आबादी आ सभी शहरों से कम है।' मुहम्मद तुग़लक के उत्तराधिकारी फ़िरोज़ कुतुब से कई मील उत्तर हट कर एक नया नगर बसाया जिसका ना फिरोजाबाद रखा। यह भी आज खण्डहरों में परिणत है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, महाराज पृथ्वीराज मुहम्म गोरी के हाथों मारे गए और उनके साथ-ही-साथ हिन्दू आधिपत्य क सूर्य भी इस देश से अन्तर्हित हो गया। हिन्दू शासन के विनाश ए भारतवर्ष में इस्लाम धर्म के प्रवेश के सम्बन्ध में इस्लामी दुनिया एक मनोरंजन कथा प्राचीन काल से प्रचलित है। किस तरह अरब एक पीर के द्वारा इस्लाम यहाँ आया तथा चिश्त के ही एक दूसरे प्रसिद्ध पीर का अभिशाप सुल्तान ग़ियासुद्दीन के लिए घातक सिद्ध हुआ इनके सम्बन्ध में यहाँ कुछ लिखना अप्रासंगिक न होगा।

कहते हैं मुहम्मद गोरी के भारत आक्रमण के पूर्व ही चिश्ती सम्प्रदाय के एक परम विख्यात पीर ख़्वाजा साहिब[1] एक दिन काबे के चारों ओर परिक्रमा कर रहे थे जब कि उन्होंने स्वर्ग की एक वाणी

---

[1] ख़्वाजा साहब का जन्म सन्जर नामक एक गाँव में हुआ था। बालप ख़ुरासान में बीता। उनके पिता सैय्यद ग़ियासुद्दीन अहमद ने सन् ११५६ ई० निशापुर में शरीर छोड़ा, साथ-साथ पुत्र के लिए एक बाग और जल का कारखान भी। तदुपरान्त उन्हें—ख़्वाजा साहब को उनकी वालदा बीबी महनूर ने पाल पोसा। इसके बाद के उनके जीवन के पृष्ठ अज्ञात-से हैं, पर प्रचलित किंवदन्ती कि वह कम ही उम्र में इब्राहीम नाम के किसी फ़कीर के प्रभाव में आए तथा अपन सारी सम्पत्ति बेच उसकी कीमत गरीबों को बाँट दी और स्वयं भी फ़कीर हो गए फिर बोखारा और समरकन्द की यात्रा की। और अन्त में हारून नामक एक गाँ में जा बैठे। वहीं रहते-रहते वह ख़्वाजा उस्मान हारुनी चिश्ती नामक एक सूफ़ी महात्मा के शिष्य हो गए। चिश्ती-सम्प्रदाय में शामिल हो ख़्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती नाम से विख्यात हुए। वहीं से मक्का और मदीने की सफर की और अन्त में ४ वर्ष की उम्र में अजमेर पधारे, मुहम्मद गोरी की फ़ौज के साथ। अजमेर में ही उन्होंने समाधि ली। उनकी कब्र पर तब से सालाना जलसा होता है, मेले लगते हैं दूर-दूर से लोग आते हैं, सिजदा करते हैं। कहते हैं जो कोई जिस इरादे को ले लेकर वहाँ जाता है उसकी अवश्य पूर्ति होती है। सदियों से यह धारणा लोगों में चली आती है। बादशाह अकबर ने भी पैदल ही आगरे से अजमेर की यात्रा की थी।

इस्लाम में संगीत को स्थान नहीं, पर ख़्वाजा साहब के मजार पर हमेशा से बाजे-शहनाई आदि, बजते हैं, तथा महफिलखाने में देश भर से तवायफें आकर जाती हैं। इस्लाम के कट्टरपंथियों तथा सूफ़ियों के रीति-रिवाज में यह एक बड़ा-सा अन्तर है, जिसका आरम्भ कब और कैसे हुआ, यह अज्ञात है।

सुनी, जिसमें उन्हें मदीना जाने का आदेश था। वे तत्काल मदीना के लिए रवाना हो गए।

मदीने में हज़रत मुहम्मद ने उन्हें ख़्वाब में कहा—"ख़ुदा ने हिन्दुस्तान को तुम्हारे सुपुर्द किया है। वहाँ जाओ और अजमेर में अपना कयाम रखो। ख़ुदा के फ़ज़्ल से तुम्हारे तथा तुम्हारे अनुगामियों के द्वारा उस मुल्क में इस्लाम फैलेगा।" ख़्वाजा साहब आदेश पाकर हिन्दुस्तान चले आए तथा उन्होंने अजमेर में अपना आसन जमाया। दिल्ली के तख्त पर उन दिनों महाराज पृथ्वीराज आसीन थे। उन्होंने ख़्वाजा साहब के पथ में रोड़े अटकाने की चेष्टा की तथा उनके शाप के भाजन बने। कहते हैं उन्हीं के शाप के कारण इन्हें मुहम्मद गोरी के हाथों मरना पड़ा तथा उनकी दुआ से हिन्दुस्तान इस्लाम धर्मियों के हाथ आया। सन् १२३५ ई० में १७० वर्ष की अवस्था में उन्होंने शरीर छोड़ा। आज उनके मज़ार का इस्लाम-संसार के प्रमुखतम तीर्थ-स्थानों में शुमार है।

ख़्वाजा साहब के बाद चिश्त के तीन और पीरों ने हिन्दुस्तान में इस्लाम का प्रचार किया तथा तरह-तरह के अलौकिक करिश्मे दिखलाए। इनमें सबसे अन्तिम निज़ामुद्दीन औलिया थे, जिनके मजार पर गत छः सौ वर्षों से लोग जाते और सिजदा करते हैं। दिल्ली के तख्त पर उन दिनों गियासुद्दीन तुगलक आसीन थे। दिल्ली से पाँच मील दूर वह एक नए शहर के निर्माण में संलग्न थे। एक नया किला और उसके भीतर एक संगमरमर तथा लाल पत्थर की कब्र अपने लिए बनवा रहे थे। चूँकि वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुके थे, इच्छुक थे कि उन्हें शीघ्रातिशीघ्र तैयार करा लें। संयोग ऐसा कि उन्हीं दिनों निज़ामुद्दीन औलिया भी एक जलाशय के खुदवाने में लगे हुए थे। पर बादशाह की आज्ञा सर्वोपरि थी, अतः सभी मजदूर शाही काम में जा जुटे। इधर पीर साहब भी बूढ़े हो चुके थे, मालूम नहीं किस दिन आँखें मूँद लें, अतएव उन्होंने बाजार से तेल खरीदवाया और मजदूरों से रात में काम करवाना शुरू किया। दिन की थकावट तथा नैश जागरण के कारण मजदूरों की कार्य-शक्ति में ह्रास-सा हो चला। काम करते-करते बहुधा वे सो जाते या ऊँघने लगते। बादशाह को जब यह खबर लगी तो वह क्रोध से आगबबूला हो उठे, आज्ञा दी कि कोई भी दूकानदार पीर साहब को तेल न बेचे। पीर साहब ने यह खबर बड़े दुःख के साथ सुनी और भगवान से कातर स्वरों में प्रार्थनाएँ करने लगे। कहते हैं सन्ध्या होते ही जलाशय से एक अलौकिक प्रकाश बाहर हुआ जिसकी ज्योति से खुदाई का कार्य पुनः पूर्ववत् चलने लगा। पर सुल्तान की अध्यात्मिक शक्ति भी कोई कम न थी, क्रोधावेश में आकर उन्होंने जल को शाप दे डाला, जिसके फलस्वरूप पानी के भीतर से एक ऐसी बदबू आने लगी कि लोग उसे पीने से वंचित रहे। इधर निज़ामुद्दीन औलिया ने भी इसे देख कर दर्द-भरे दिल से अभिशाप दिया "तुग़लकाबाद गुर्जर लोगों का निवास स्थान हो या जन-हीन एक वीरान-सी जगह।"

दोनों ही बातें सच हुईं—पूर्वोक्त जलाशय के पानी में अन्ध-विश्वासी जनों का ख्याल है कि आज भी सड़े हुए अण्डे की बू आती है तथा तुग़लकाबाद अधिक दिनों तक आबाद न रह सका; सुल्तान तुग़लक के इन्तकाल के बाद ही उसके पुत्र ने जल की कमी के कारण इस शहर को त्याग दिया और आज इस उजड़े हुए स्थान में थोड़े से गुर्जर लोगों के घरों के अतिरिक्त और कुछ देखने को नहीं मिलता।

सूबा बंगाल बलबन के बाद से ही दिल्ली के आधिपत्य से स्वतन्त्र हो चुका था, उसे पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से सुल्तान ग़ियासुद्दीन बंगाल की यात्रा पर गया। इधर उसके लड़के मुहम्मद ने पिता से गद्दी छीनने की सोची और पीर की मदद चाही। पीर ने कहा—"तुग़लक पुनः दिल्ली पर पाँव न रख पाएँगे।" कुछ ही दिनों के बाद, यह खबर पहुँची कि सुल्तान विजयी होकर दिल्ली लौट रहे हैं। मुहम्मद घबराए हुए से पीर के पास पहुँचे और कहा कि सुल्तान दिल्ली लौट रहे हैं, रास्ते में हैं। पीर ने तसबी (माला) फेरते-फेरते कहा—"दिल्ली दूर अस्त", अर्थात् दिल्ली दूर है। सुलतान के और निकट आने की खबर आयी। मुहम्मद ने पुनः जाकर यह संवाद पीर साहब को सुनाया और कहा कि कल वे यहाँ आ रहे हैं। अतः हम लोग आज ही कहीं भाग चलें। पीर फिर भी विचलित न हुए, बोले—"दिल्ली हनीज दूर अस्त"—दिल्ली अब भी दूर है। अन्ततः सुल्तान आ ही पहुँचे, मुहम्मद ने अपने भाइयों के साथ जाकर नगर के बाहर ही उनका स्वागत किया तथा नदी के तट पर एक नव निर्मित काष्ठ-मण्डप में उन्हें दावत दी। भोजनोत्तर मुहम्मद ने हाथियों के परेड प्रदर्शन के लिए सुल्तान से अनुमति चाही तथा उनकी आज्ञा से तमाशा शुरू हुआ।

तुग़लक अपने छोटे बच्चे के—जिसे वह अत्यधिक प्यार करते थे तथा अपने संग बंगाल भी लेते गये थे—साथ मण्डप में विराजमान थे। बगल में एक शेख बैठे थे जिनसे शाम होते देख शाहजादा मुहम्मद ने कहा—"शेख! नमाज़ का वक्त हो आया" और वह दोनों बाहर निकल पड़े। इतने में ही सहसा जोरों की एक आवाज़ सुनकर शेख लौटे तो सारे मण्डप को भूमिसात् पाया। एक विशाल-काय गज की टक्कर से वह ताश के घर की भाँति नीचे जा चुका था। सुल्तान काठ की छतों के नीचे थे। मुहम्मद ने एक दिखाऊ व्याकुलता के साथ चिल्ला कर कहा, फौरन सफाई के औज़ार लाये जायँ। लोग दौड़े पर सामान जुटाने में फिर भी घंटों लग गये। अन्ततोगत्वा जब टूटे हुये काठों की सफाई की गयी तो सुल्तान अपनी छाती से अपने कनिष्ठ पुत्र को लगाये प्राणहीन अवस्था में दृष्टिगोचर हुए। दोनों ही कालकवलित हो चुके थे। सुल्तान दिल्ली न पहुँच पाये, पीर ने ठीक ही कहा था "दिल्ली हनीज दूर अस्त।"

बाद का दिल्ली का इतिहास एक उथल-पुथल का इतिहास है, आपसी झगड़े, मार-काट, खून-खराबी का। दिल्ली की अवस्था अत्यन्त ही शोचनीय एवं उपद्रवपूर्ण हो गई। जान-माल सभी अनिश्चितावस्था को प्राप्त थे।

यही परिस्थिति थी जब कि तैमूरलंग तथा उसका झुण्ड टिड्डियों की भाँति फारस, मेसोपोटामिया तथा अफगानिस्तान होता हुआ पंजाब में आ धमका और फिर खून की दरिया बहाता हुआ दिल्ली पर आ

छाया । कहते हैं दिल्ली पहुँचने तक उसके पास एक लाख हिन्दू कैदी थे जिन्हें, यह सोच कर कि लड़ाई की गड़बड़ी में वे कहीं निकल न भागें और दुश्मन का साथ दें, उसने मौत के घाट उतार डाला । अपने स्मृति-ग्रन्थ में बड़े गर्व से एक विद्वान परामर्शदाता के सम्बन्ध में वह लिखता है कि अपने समस्त जीवन में कभी एक गौरैये तक का उसने बध नहीं किया पर इस वक्त मेरी आज्ञा से स्वयं अपने हाथों १५ बुतपरस्त हिन्दुओं का काम तमाम किया ।

सुल्तान महमूद आतंक से काँपता हुआ गुजरात की ओर भाग निकला, उसकी फ़ौज ने मोर्चा लेना चाहा पर असफल रही । तैमूर ने वायदा किया कि वह शहर की पूरी तरह रक्षा करेगा और एक आम जलसे में बादशाह घोषित हुआ, पर अपने वायदे को वह फौरन ही भूल गया । दिल्ली की लूटपाट शुरू हुई और पाँच दिनों तक नगर की जो अवस्था रही वह शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती है । खून की नदी बहती रही और सड़कों पर झुण्ड-की-झुण्ड लाशें पड़ी रहीं । अन्त में लूट एवं संहार से सन्तोष पा, तैमूर और उसका जत्था समरकन्द की ओर लौट चला । साथ में हजारों नर-नारियों को अपने दास कार्य के निमित्त लेता गया । कहते हैं उनके चले जाने के बाद दो महीनों तक दिल्ली में न तो कोई शासन रहा न बाशिन्दा ।

सुल्तान महमूद दो महीनों के बाद अपनी उजड़ी हुई राजधानी को लौटा तथा दिल्ली और कन्नौज में अपने जीवन के शेष दिन बिताए । सन् १४१२ ई० में वह मरा और उसके साथ ही तुग़लक वंश का भी अन्त हो गया । दिल्ली धन, यौवन, सौन्दर्य से रहित, एक अति साधारण नगरी के रूप में अवस्थित रही ।

तत्पश्चात कुछ दिनों तक सैयद और लोदी इन दो वंशों का राज्य रहा पर नाम-मात्र को ही । दिल्ली के प्राचीन साम्राज्य क्षेत्र को वे वापिस न ला सके । अन्त में सन् १५२६ ई० में बाबर ने—जो कि तैमूर की छठी पीढ़ी में था—इब्राहीम लोदी के शासन काल में हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की । पानीपत में इब्राहीम लोदी को हराता एवं कत्ल करता हुआ दिल्ली आ पहुँचा । और इस प्रकार दिल्ली से अफ़गानों का शासन सदा के लिए विलीन हो गया ।

बाबर ने हिन्दुस्तान में मुगल सल्तनत की नींव डाली । यह भी इतिहास की एक प्रबल विडम्बना है कि तैमूर यद्यपि मुगल जाति का न था, तुर्क था, फिर भी बाबर की स्थापित सल्तनत को इतिहास मुगल सल्तनत के नाम से ही पुकारता रहा । बाबर ने अपने स्मृ ग्रन्थ में जहाँ कहीं भी मुगलों का ज़िक्र किया है, बड़े ही निन्द शब्दों में किया है । उसकी माँ ने मुगल कुल में जन्म पाया थ तथा उन दिनों अफ़गानों को छोड़ कर बाकी सभी मुसलमानों को य मुगल कहा करते थे । सम्भव है इन्हीं कारणों से बाबर तथा उ वंशज मुगल कहलाए । बाबर मुख्यतः आगरा को ही अपनी राजधा मानता रहा और वहीं कालगत भी हुआ । उसके पुत्र हुमायूँ ने पु दिल्ली आने की सोची तथा पुराने किले को फिर से आबाद किया, सन् १५४० ई० में शेरशाह ने बिहार से आकर हुमायूँ के हाथों से दि छीन ली तथा अपनी सल्तनत कायम की । नगर का पुनर्निर्माण भी किया

शेरशाह के वंशज अधिक दिनों तक दिल्ली में शासन न कर पाए सन् १५५५ में हुमायूँ ने पुनः दिल्ली पर कब्ज़ा किया लेकिन छः मही के भीतर ही अपने ग्रन्थागार की सीढ़ियों से गिर कर इस संसार वह चल बसा ।

हुमायूँ के बाद चार बादशाह—अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ त औरंगज़ेब अतिशय प्रतापी हुए । इसमें सन्देह नहीं कि उनके शास काल में दिल्ली ने बड़ी तरक्की पाई । संसार के महान नगरों में उसक गणना होने लगी । एक इतिहासज्ञ के शब्दों में—"आज से दो स वर्ष पहले दिल्ली एक महान् एवं बड़े साम्राज्य की राजधानी थी औ सौ वर्षों तक रही । यह भारतवर्ष की ही नहीं वरन् पूर्व की कुस्तुन तुनिया से लेकर कैंटन तक की, सब से बड़ी और प्रसिद्ध नगरी थी पर ५० वर्षों के भीतर ही इसके अधीनस्थ प्रान्त अन्तर्हित हो गए इसका धन अपहृत हो गया, इसके बादशाह अन्धे बना डाले गए तथा यह नगर एक छोटे से सूबे की राजधानी मात्र रह गया जिसक आबादी दो लाख से भी कम थी ।"

तभी तो मीर ने कहा :

दिल्ली जो एक सहर था, आलम में इन्तख़ाब,
रहते थे मुन्तखब ही जहाँ रोज़गार के,
उसको फलक ने लूट के बीरान कर दिया ।

किसी शायर के दिल की तरह यह शहर भी बारम्बार लूटा गया—

"दिल की वीरानी का क्या मज़कूर है,
यह नगर सौ मरतबा लूटा गया ।"

(अगले अंक में समाप्य)

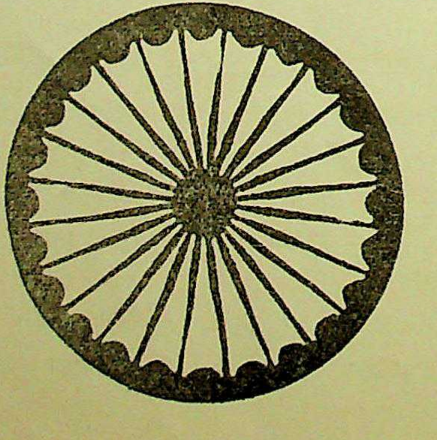

लैम्प पोस्ट

देवेन्द्र इस्सर

शाम होते ही बूढ़ा फ़ज़लदीन अपने दुर्बल कन्धों पर बाँस की छोटी-सी सीढ़ी उठाए गली के मोड़ पर आकर रुक जाता। कुछ समय तक वह ज़ोर-ज़ोर से खाँसता जिससे उसकी दोनों ओर की पसलियों के बीच नाली-सी बनती और फिर मिट जाती। लैम्प जलाने के लिए जब वह चिमनी उतार कर अपने घुटनों में दबा लेता और दियासलाई सुलगाता तो उसके लकड़ी जैसे खुश्क पाँव काँपने लगते और बाँस की सीढ़ी उसकी कमर की तरह झुक जाती। उसी समय किसी मस्जिद से मग़रब की अज़ान गूँजती और फ़ज़लदीन चिमनी अपनी जगह पर टिका कर और केस बन्द करके 'ख़ुदाए दो जहान' का कलमा पढ़ता हुआ नीचे उतर आता और कंधे पर सीढ़ी उठा कर धीरे-धीरे किसी थके माँदे राही की तरह वापस चला जाता। उसकी झुकी हुई कमर देख कर ऐसा मालूम होता था कि यह धरती बैल के सींग की अपेक्षा उसकी पीठ पर खड़ी है। उसका जला हुआ चेहरा कच्चे मांस की तरह था जिस पर एक स्याह गुठली थी। उसकी आँखों से सदैव मैला पानी रिसता रहता था, जिससे उसकी दाढ़ी दाग़दार हो गई थी। फ़ज़लदीन लैम्प के पीले प्रकाश में श्मशान भूमि के भूत की भाँति दिखाई देता था, जो भूले-भटके आदमी की बस्ती में आकर परेशान हो गया हो।

मैं बूढ़े के कुरूप चेहरे से दृष्टि हटा कर एंग्लो इंडियन जज के मकान की खिड़कियों में लटके हुए रंगीन रेशमी पर्दों में गड़ा देता। कभी-कभी वायु का कोई तेज़ झोंका इन पर्दों को एक ओर से सरका देता तो प्यानो पर पड़ा हुआ साराह का चित्र दिखाई दे जाता। मेरी दृष्टि इन पर्दों में उस समय तक खोई रहती जब तक कि बूढ़ा अगली गली के मोड़ पर ग़ालिब की ग़ज़ल अपनी बेसुरी आवाज़ में गाता हुआ गायब न हो जाता। क्षण प्रति क्षण गहरे होते हुए अँधेरे में लैम्प का उज्ज्वल होता हुआ प्रकाश मुझे बड़ा ही भला मालूम होता। लेकिन यह लैम्प शाम से ही बुझा हुआ सा रहता था। शायद तेल की कमी थी या वर्षों से जलने के कारण बत्ती छोटी हो गई थी। चिमनी भी धुँधला गई थी। इसलिये प्रकाश मद्धिम-मद्धिम मटियाला सा प्रतीत होता था। लैम्प के केस पर बर्षा की बूँदों और रेत के कणों ने अपने अनगिनत चिन्ह छोड़ दिए थे। जब सामने वाली दीवार पर प्रकाश का पीला घेरा पड़ता तो उसमें छोटे-बड़े काले धब्बे लैम्प की लौ के साथ-साथ नृत्य करते थे। इस समय शीशम की बूढ़ी टहनियों से पीले चाँद की किरणें सृष्टि पर इस तरह पड़तीं, जैसे किसी पीलिया के रोगी पर मृत्यु की परछाईं पड़ रही हो। लैम्प के केस के अन्दर हज़ारों पतंगों के जले हुए पर बिखरे पड़े थे और उसके गिर्द सैकड़ों परवाने प्रकाश को अपने आलिंगन में समेटने के असफल प्रयत्न में मँडराते हुए मृत्यु से गले मिल रहे थे। लैम्प के साथ दीवार पर एक चमगादड़ ने बसेरा कर रखा था जो कभी-कभी अत्यन्त बेचैनी की दशा में इधर-उधर दौड़ती फिरती थी। जब मैं दिन भर काम के बाद प्रेस रिपोर्ट भेज कर अपने प्रेतग्रस्त कमरे में कदम रखता था तो लैम्प के मद्धिम प्रकाश में चमगादड़ का इधर-उधर भटकना मालूम नहीं क्यों मेरे मन में एकाकीपन की उदासी पैदा कर देता।

इस गली ने अँधेरे में जन्म लिया था और अँधेरे में ही मर जाएगी और यह लैम्प हमेशा इसी तरह ऊँघता रहेगा। सूर्य के प्रकाश से दूर इस गली में सहस्रों प्रकार के घातक कीटाणु रेंगते रहते थे, जो गन्दी नालियों और कूड़े करकट के ढेरों पर जीवन का निर्वाह कर रहे थे। और अपनी संख्या में प्रतिक्षण वृद्धि कर रहे थे। मिट्टी के टीले और उड़ते हुए तिनके, कच्ची सब्ज़ियों और अंडों के छिलके, मुर्गियों के टूटे हुए पर, मक्खियों की भिनभिनाहट, खून में लिथड़े हुए चीथड़े, उलझे हुए बालों के गुच्छे, दवाइयों की टूटी हुई शीशियाँ, पिचके हुए डिब्बे, गले-सड़े फल, और कूड़े-करकट के दुर्गन्ध से भरे ढेर इस भीगी हुई गली की शोभा थे। कई बार अजनबी दर्शकों के मनोरंजन के लिए मुहल्ले के छोटे-छोटे बच्चे नाली के किनारे पंक्तिबद्ध बैठ जाते और 'एक, दो, तीन' कह कर प्रकृति के आह्वान का उत्तर कुछ इस ढंग से देते कि राह चलने वालों को विवश हो कर अपनी नाक पर हाथ या रूमाल रखना पड़ता। गली के वातावरण में हमेशा जली हुई गंधक की गंध बसी रहती थी। गंदगी और कूड़े के ढेरों पर खारिशज़दा कुत्ते मुँह मार कर चले जाते या वहीं दीवार से लग कर सो जाते थे। वे कभी-कभी पाँव की चाप सुनकर चौंक पड़ते और भौंक कर चुप हो जाते। गली से गुज़रने वाले लोग कई बार काँच के टुकड़ों से अपने नंगे पाँव जख्मी कर लेते या केले के छिलकों पर से फिसल कर नाली में गिरते-गिरते बचते जिसमें साबुन का मैल घिनौने विचारों की तरह बहता रहता। इस गली की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील थी, केवल गंदगी को ही स्थिरता प्राप्त थी। यही नित्य प्रति का नियम था। लोग आते, मुँह के बल गिरते और गुज़र जाते। और वह साँवली लड़की भी अपने आँचल को सँभालती लैम्प के जलते ही गली में प्रवेश करती और सीधी गुज़र जाती। वह कई महीनों से लगातार इसी तरह आती और चली जाती। जब मैंने उसे पहले-पहल देखा तो उस का चेहरा हर प्रकार के भावों से खाली नज़र आया था। उसके मौन ओंठों पर मुस्कान और वेदना की हल्की लहरें एक रहस्यमयी सम्मिश्रण पैदा कर देती थी। ज्योंही यह लड़की गली में प्रवेश करती, एंग्लो इंडियन जज के मकान की खिड़कियों के पर्दे गिर जाते और फिर उनके पीछे ठहाकों की ध्वनि गूँज उठती। सेठ जी के मकान का गली वाला दरवाज़ा खट से बन्द हो जाता और गली में

खेलते हुए बच्चे भीतर खींच लिए जाते, जैसे कोई राक्षसी आत्मा इस गली से गुज़र रही हो या किसी प्रेत की अपवित्र परछाईं पड़ रही हो। मगर वह लड़की प्रतिमा की भाँति थी—मौन, गम्भीर और शान्त, जिसमें किसी निपुण कलाकार ने साँस की गति पैदा कर दी हो। उसकी सफ़ेद सारी पर जंगली फूल खिले रहते थे। उसके हाथ पर तीन लाल चूड़ियाँ थीं जो घटते-घटते गायब हो गईं और एक दिन उसके नंगे हाथ उसके आँचल को सम्हाले हुए थे। मालूम नहीं ये लोग उसे देख कर छिप क्यों जाते थे। माताएँ अपने बच्चों को उसकी नज़र से बचाना क्यों चाहती थीं? एंग्लो इंडियन जज के मकान की खिड़कियों के पर्दे गिर क्यों जाते हैं और उसकी लड़की साराह व्यंग्यात्मक ठहाके क्यों लगाती है। लेकिन मुझ पर एक जादू सा छा जाता और मेरी दृष्टि उस समय तक उसका पीछा करती रहती जब तक कि वह गली के अगले मोड़ पर ओझल न हो जाती। उसे देख कर मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई निर्मल जल वाली नदी फूलों से लदी चाँद की आलोकित चादर ओढ़े बह रही हो। जब वह लड़की आती तो दाईं ओर वाले मकान की ऊपरी मंजिल की चिलमन के पीछे एक जीवित परछाईं प्रगट होती और दो उदास आँखें उस लड़की के कदमों की चाप के साथ-साथ हरकत करतीं और एक क्षण बाद ही चूड़ियों की खनक के साथ ही किसी अथाह अन्धकार में खो जातीं। इस मकान के रहने वालों ने गन्दगी और ग़िलाज़त के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिए गली के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक पाँच फ़ुट ऊँची दीवार खड़ी कर रखी थी, जो धीरे-धीरे गिर रही थी। कई स्थानों पर सुराख और दरारें बन गई थीं जिनमें छिपकलियों, मकड़ियों और नन्हे-नन्हे पक्षियों ने अपने घर बना रखे थे। कभी-कभी किसी सुराख से कोई साँप भी झाँक लेता था। किसी-किसी स्थान से ईंटें भी खिसक गई थीं और जब हवा का तेज़ झोंका आता तो इन सुराखों से दुर्गन्ध की एक लपट मकान के अन्दर पहुँच ही जाती थी। शायद इस मकान के रहने वाले बहुत ही पवित्र वृत्ति के लोग थे। वह अपनी लड़की को गहरे सब्ज़ रंग की मोटी चादर में लपेट कर स्कूल भेजते थे, ताकि दुर्गन्ध और दूसरे सैकड़ों कुरूप दृश्यों से उस लड़की की कोमल वृत्ति पर बोझ न पड़े। चादर इक्के के चारों ओर इस तरह बाँध दी जाती थी कि चलता हुआ इक्का गतिशील कैम्प प्रतीत होता था। यह मोटी चादर भी समय के साथ-साथ घिस चुकी थी। एक-दो स्थानों पर छोटे-छोटे सुराख भी हो गए थे जो धीरे-धीरे बड़े होते गए, नीचे वाले सुराख से हमेशा दो लम्बी उँगलियाँ निकली रहा करती थीं और पर्दे पर ऐसे हरकत करती रहतीं जैसे कोई हारमोनियम की 'कीज़' से खेल रहा हो। ऊपर वाले सुराख से प्रकाश की दो किरणें फूटने लगतीं जो पथिकों को कुछ फ़ासले तक इक्के के साथ-साथ चलने पर मजबूर कर देतीं। इस मकान वालों ने पुरानी चादर को रफ़ू करवा दिया था और फीके पड़ते हुए सब्ज़ रंग को स्याह करवा दिया था। जीवन का चक्कर एक बार फिर इक्के के पुराने पहिए की तरह घूमने लगा। कभी-कभी तेज़ हवा से चादर फड़फड़ाने लगती और ऐसा जान पड़ता कि अगर यह चादर स्वयं ही न हटाई गई तो किसी दिन 'भक' से उड़ जाएगी और अपने साथ इस लड़की को भी किसी अज्ञात दुनिया में ले जा फेंकेगी, जो उसकी जानी-पहचानी न होगी और जहाँ कोई राजकुमार उसकी प्रतीक्षा में फ़क़ीरों के भेस में दर-बदर मारा न फिरता होगा।

साराह शुरू में इस साँवली लड़की पर हँसती नहीं थी, बल्कि प्रशंसा की दृष्टि से देखती थी। जब वह प्यानो बजाते-बजाते थक जाती, तो उसका जी चाहता था कि वह प्यानो को छत से नीचे फेंक दे और स्वयं उस लड़की के साथ हमराही हो जाए। साराह अपने साज-श्रृंगार की सब वस्तुओं को फेंक देना चाहती थी, सजीव और खिलती हुई मुस्कराहट के लिए। लेकिन दूसरे क्षण ही उसके मस्तिष्क में आनन्दमयी शाम का ख्याल अँगड़ाइयाँ लेने लगता। बालरूम के रहस्ययुक्त बल्बों के प्रकाश में राजकुमारों और परीज़ादों के नृत्य और युवा सीनों के स्पर्श का आनन्दमय अनुभव उसे शाम को ही वहाँ पहुँचा देता था। साराह कभी-कभी अपने छोटे से लान में आराम कुर्सी पर बैठी हुई मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ा करती और भूरी-भूरी आँखों वाले खरगोश से खेला करती। साराह को अब उस लड़की से घृणा हो गई थी और वह उसे देख कर तिरस्कार से दृष्टि फेर लेती थी। शाम को फ़ज़लदीन जब लैम्प जलाने के लिए आता तो वह पुस्तक मेज़ पर रख कर आँखें मूँद के कुर्सी की बैक पर लेट-सी जाती और उसके सुनहरी बाल धरती को चूमने लगते। वह उस समय चौंकती जब बेतेवा गली की सफ़ाई करके अपने मैले-कुचैले बच्चे को उठाए साराह के सामने आ खड़ी होती। साराह अँगड़ाई लेकर उसकी ओर देखती। गुलाब की कोमल पंखुड़ियों जैसे उसके ओंठ खिल उठते और उसके गालों पर कमल मुस्कराने लगते। उसकी नीली-नीली आँखों पर लम्बी-लम्बी पलकें इस तरह झुकी रहती थीं जैसे किसी झील पर सनोबर की छाया पड़ रही हो। लम्बी अलकें उसके वक्षस्थल पर इस तरह फैल जातीं जैसे शालीमार पर गुबार छा जाएँ।

साराह बेतेवा को एक विचित्र पोज़ में बैठने के लिए कहती और स्वयं पैलेट, रंग, ब्रुश और ईज़ल लेने के लिए अन्दर दौड़ जाती। जब वह चलती तो उसकी कमर लता-बेल की तरह बल खाती। उस समय ऐसा मालूम होता कि साराह एक लड़की नहीं बल्कि कोई झोंका खाया हुआ उपवन है। बेतेवा साराह के कहने के अनुसार अपनी लटकी हुई छाती से चोली सरका लेती और अपने बच्चे का मुँह अपनी नंगी छातियों पर रख लेती। वह अपने धूल से भरे बालों को बिखरा कर भूमि पर देखने लगती। एक हाथ से अपने बच्चे को सम्हाल कर दूसरा हाथ भूमि पर रख लेती, जैसे वह किसी भारी बोझ से दबी जा रही हो। साराह चुटकी बजा कर 'फाइन' कहती और थोड़ी देर में स्केच पूर्ण करना शुरू कर देती। वह साथ-ही-साथ कहती भी जाती, "जब तुम्हारा चित्र पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ पर छपेगा तो तुम्हें अत्यन्त हर्ष होगा। तुम्हारी ख्याति संसार के कोने-कोने में फैल जाएगी। जानती हो तुम्हारे चित्र का नाम क्या होगा—'लाइफ विद्आऊट लाइट।' कितना अर्थपूर्ण नाम है! काश तुम इसकी

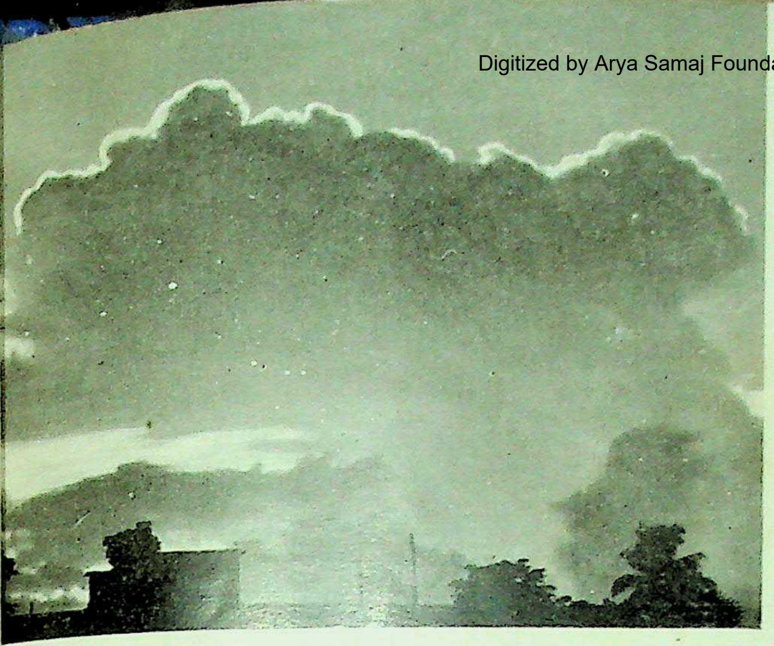

ली घटा

छतरियों के नीचे

धान रोपना

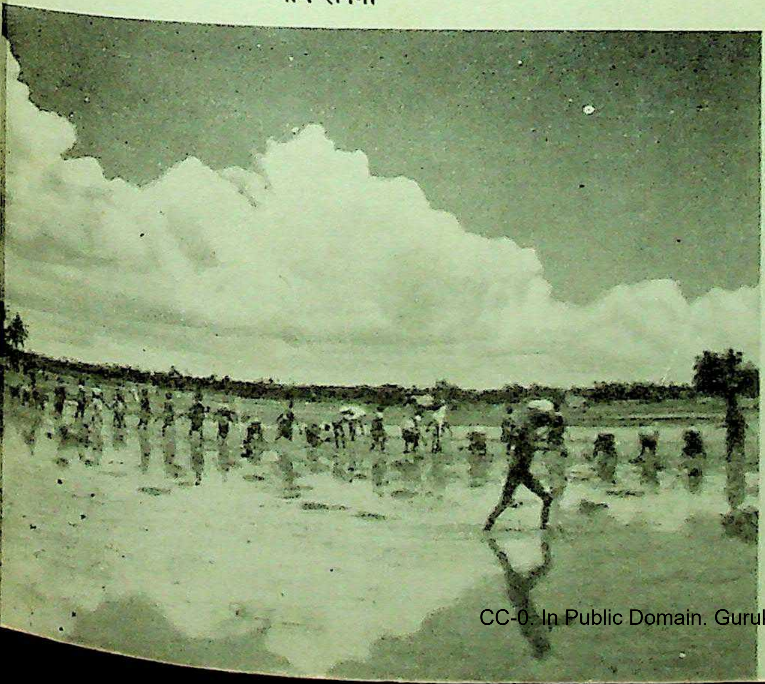

बदरिया थम-थम कर झर री !

माखनलाल चतुर्वेदी

बदरिया थम-थम कर झर री !
सागर पर मत मरे अभागन
गागर को भर री ।
बदरिया थम-थम कर झर री !

एक-एक दो-दो बूँदों में
बँधा सिन्धु का मेला
सहस-सहस बन विहँस उठा है
यह बूँदों का रेला ।
तू खोने से नहीं बावरी
पाने से डर री !
बदरिया थम-थम कर झर री !

जग, आये घनश्याम देख तो
देख गगन पर आगी
तूने बूँद, नींद खेतिहर ने
साथ-साथ ही त्यागी ।
रही कजलियों की कोमलता,
झंझा को वर री !
बदरिया थम-थम कर झर री !

●

वृक्ष और बादल

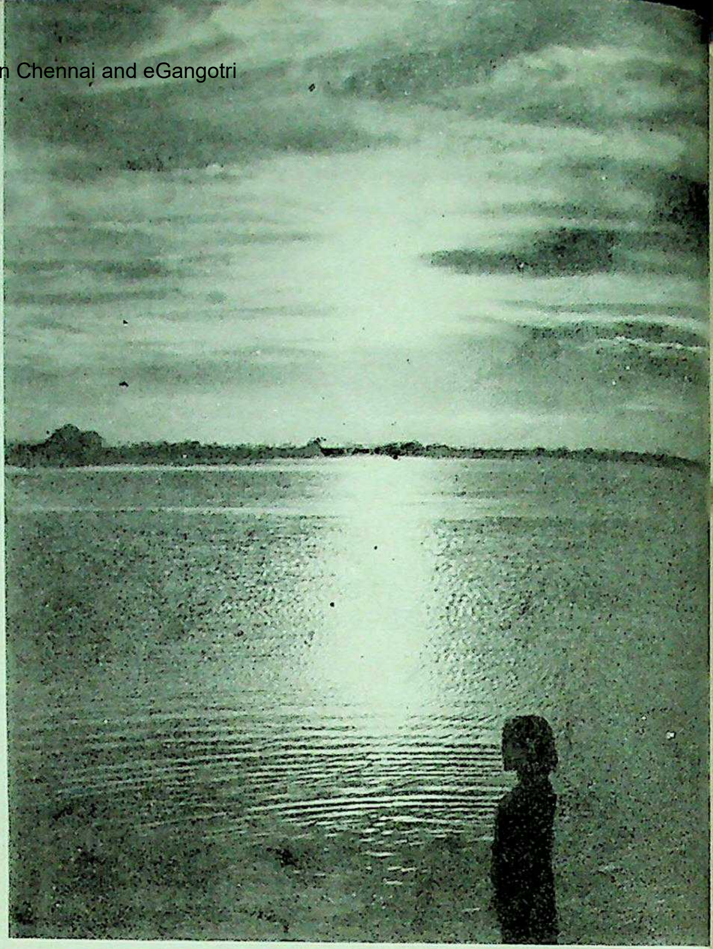

प्रकाश पुंज

वर्षा मंगल

विद्याव्रत

सावन की साँझ

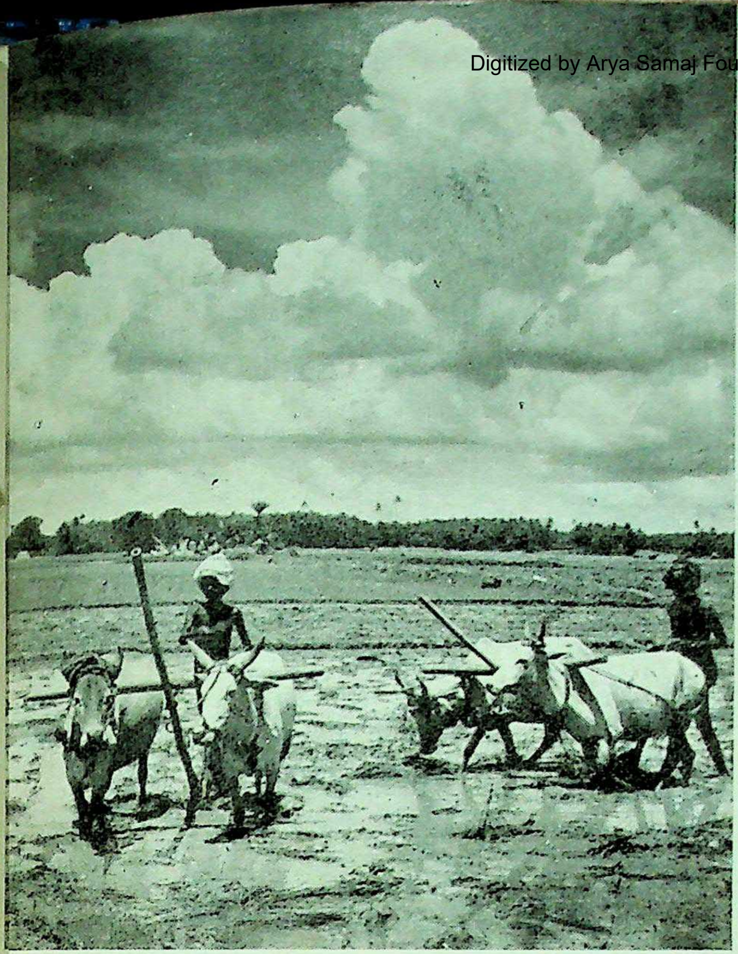

धरती के लाल

घन गर्जन क्षण

मंगल विद्याव्रत

गगन हिलोर

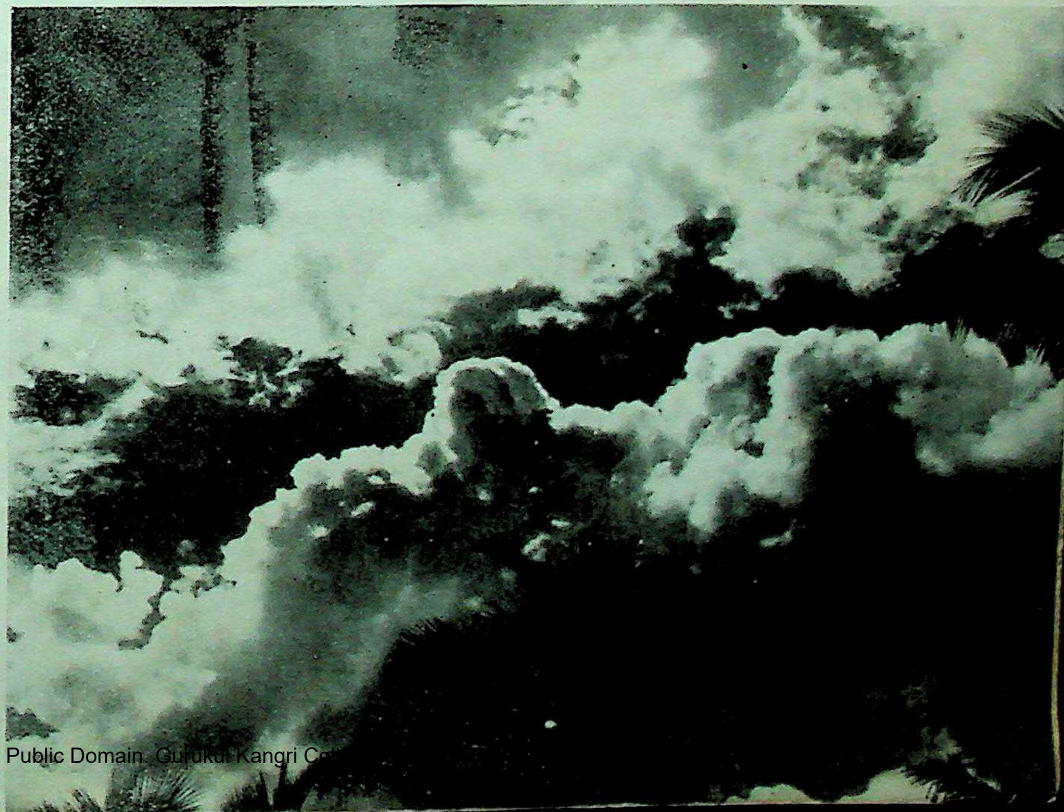

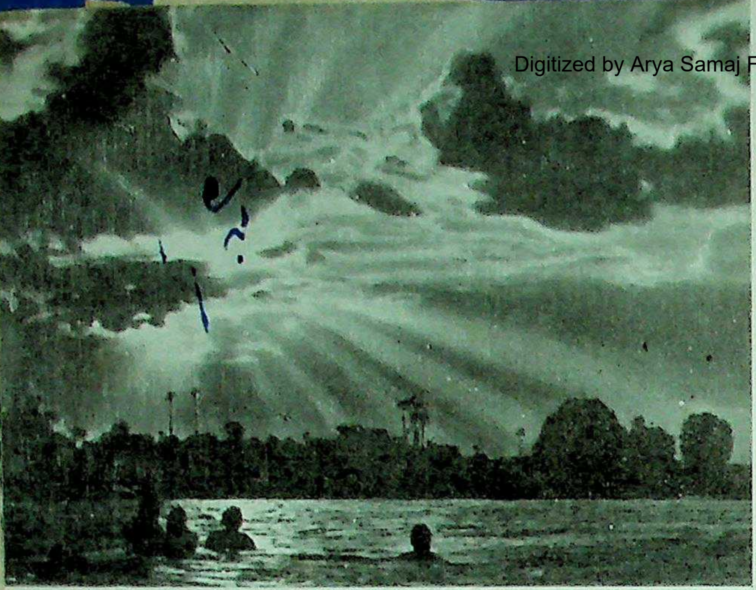

किरण जाल

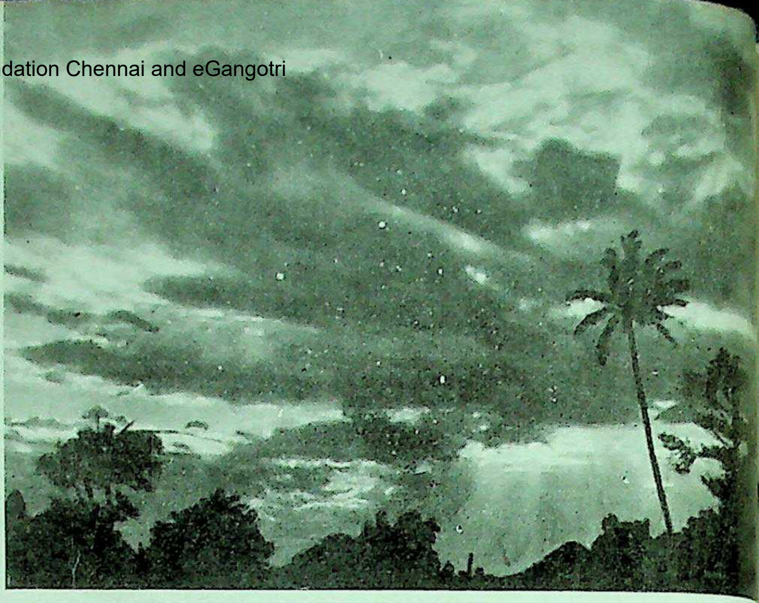

एकाकी ताड़

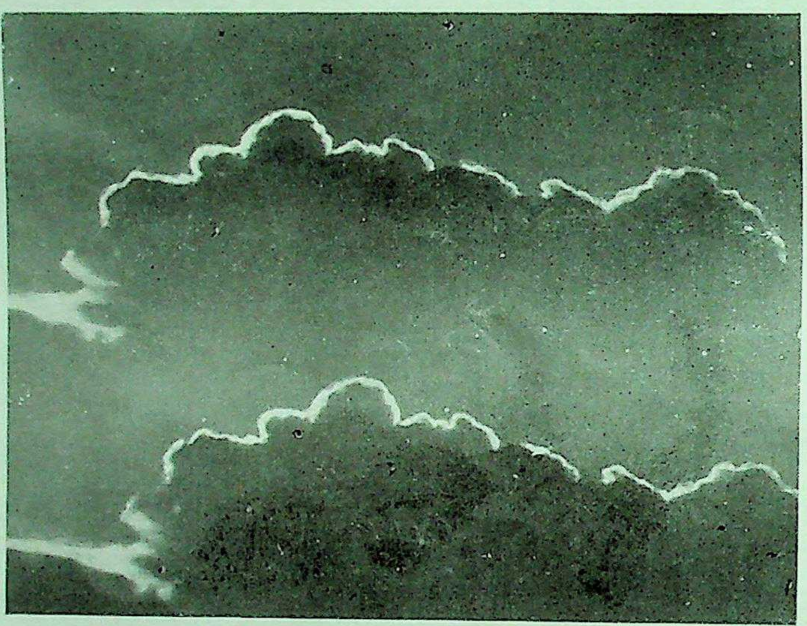

कनक रेखाएँ

समवेत गान

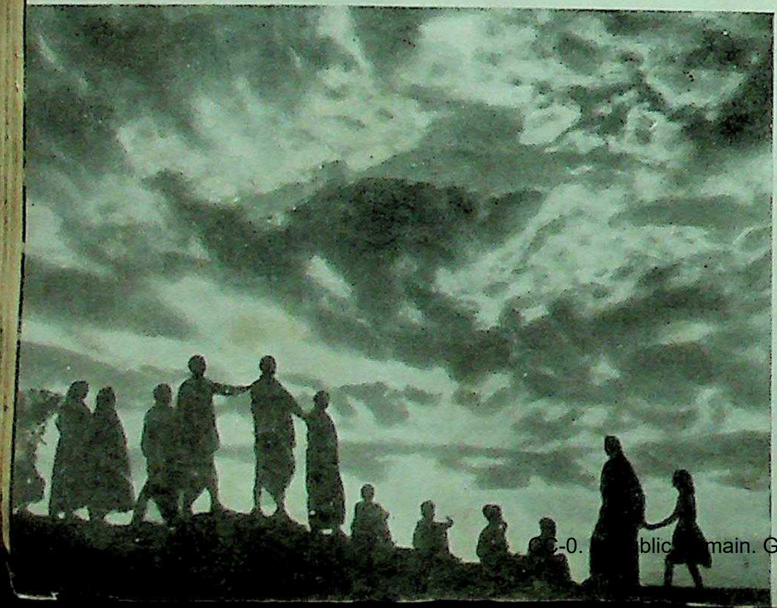

वृक्षावलि

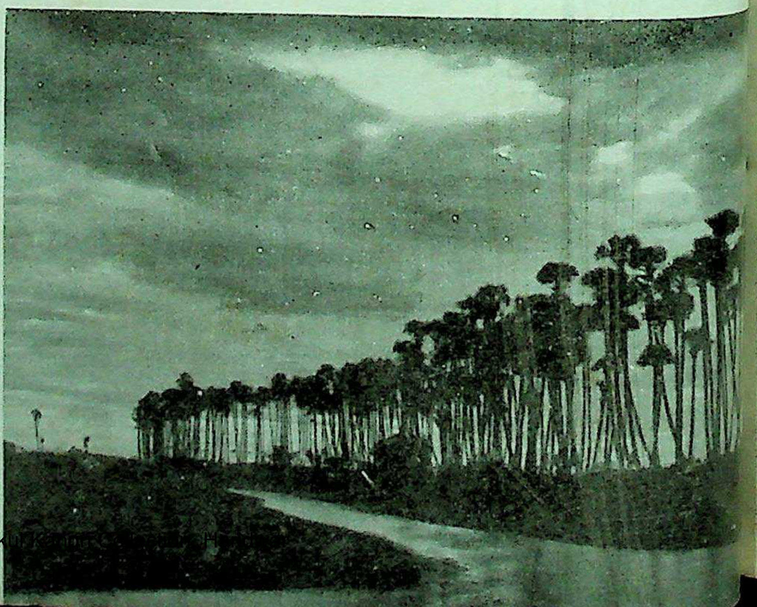

गहराइयों में डूब सकतीं !" साराह यह सोच कर उदास हो जाती कि बेतेवा बिल्कुल मूर्ख है। वह रंग भरते-भरते सोचने लगती कि कब वह समय आएगा जब बेतेवा भी कीट्स और शेली के रोमांटिक कविता-संसार में विलीन हो सकेगी। दूसरे क्षण ही उसे विश्वास-सा हो जाता कि धरती पर रेंगने वाले यह कीड़े कभी भी प्रेम की मादक भावना से आनन्द नहीं ले सकते। इनका काम तो बच्चे पैदा करना और मर जाना है।

पन्द्रह-बीस मिनट तक यही क्रम जारी रहता और फिर साराह उसके रोते हुए बच्चे को पैपरमिंट की गोली देकर विदा कर देती। लेकिन बेतेवा खड़ी रहती और प्रार्थनायुक्त स्वर में उससे अपने पापा से सिफ़ारिश करने के लिए कहती, "बीबी, नहीं तो मैं मर जाऊँगी। परमात्मा तुम्हारा भला करे। तुम्हें चाँद-सा बच्चा दे।" साराह को बच्चे के नाम से ही चिढ़ थी। उनसे जीवन का सारा रोमान्स समाप्त हो जाता है। इसे वह बुरे किस्म की प्रतिक्रियावादी गाली समझती। बेतेवा कोई उत्तर न पाकर सिर झुकाए अपने पल्लू से आँसू पोंछती फाटक से बाहर निकल जाती। साराह अपने भविष्य की कल्पना में खो जाती। जब बरगद की टहनियों के पीछे चाँद मुस्कराएगा और बिजली के बल्बों से प्रकाशमान बंगलों से प्यानो की जादुई मधुर ध्वनि वातावरण में मिलकर एक विचित्र समाँ बाँधेगी और वह स्टूडी बेकर में अपने प्रेमी के पहलू में बैठी 'मेराबली' जा रही होगी, जिसके बाग़ में गहरे नीले और लाल रंग के फूल खिले होंगे और वह अपने प्रेमी के सिगरेट के धुएँ, सुगन्धित श्वास और आरकेस्ट्रा की धुन में अंग्रेज़ी गीत गाया करेगी और खुशी से विभोर होकर नाचा करेगी।

साराह के कमरे में सुन्दर जिल्दों वाली बड़ी-बड़ी पुस्तकें थीं, जिन के नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे थे। वह घण्टों अपने कमरे या इंडिया काफ़ी हाउस में दर्शन, जीवन, साहित्य, समाजवाद और शान्ति सम्मेलन पर विवाद किया करती। अंग्रेज़ी फिल्मों पर समालोचना उसकी 'हाबी' थी। वह अंग्रेज़ी में कविता करती थी जिसमें अधिकतर फ्रांसीसी शब्द प्रयोग में लाए जाते थे। उसकी कविताएँ देश की उच्चकोटि की पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर सर्वप्रिय हो चुकी थीं। उसे इस बात का गर्व था कि वह कई अंग्रेज़ी शब्दों का उच्चारण फ्रांसीसी स्वर में कर सकती है। वह कहा करती कि इंग्लैंड में एक समय ऐसा भी था कि फ्रांसीसी जानने वाले भद्रलोग अधिक सभ्य समझे जाते थे और समाज में उनका सम्मान बढ़ जाता था। वे फ्रांसीसी सीखने के लिए ख़ास तौर पर पैरिस के होटलों, कैफ़ों और वेश्याघरों में घूमते थे और इंग्लैंड की सोसाइटी गर्ल्स उनके इन्तज़ार में अपनी कई शामें वीरान कर देती थीं।

कभी-कभी साराह की कविता में लाल रंग झलकने लगता। चित्रकारी में उसे लाल रंग सबसे अधिक पसन्द था—रक्त की भाँति गाता, नाचता, उबलता रंग उसके चित्रों पर फैला रहता था लेकिन जब से उसकी मित्रता एक भूतपूर्व अमेरिकन सारजेंट से हुई यह रंग हल्का होते-होते गुलाबी पड़ गया और फिर बिलकुल गायब हो गया। एक बार अमेरिकन सारजेंट ने उसके सुनहरे बालों में लगे हुए लाल फूल से खेलते हुए उससे शिकायत की थी कि तुम्हारी कविता और चित्र में लाल रंग बहुत उभरा हुआ है। मुझे इस रंग से सख्त घृणा है। साराह ने अमेरिकन प्रेमी की छाती पर सिर रखते हुए कहा—"डार्लिंग, तुम्हें मेरे गुलाबी ओंठ और क्षितिज की तरह खिलते हुए कपोल पसन्द हैं ?" अमेरिकन सारजेंट ने उसके ओंठों का चुंबन करते हुए कहा—"तुम कितनी सुन्दर हो !" एक क्षण बाद सारजेंट ने साराह के व्यंग्य को महसूस किया। उसके गले में ह्विस्की की कड़वाहट तीव्र हो गई। वह जल्दी-जल्दी घूँट पीते हुए बोला—"तुम नीली-नीली आँखों वाली बिल्ली की तरह शरीर हो।" सारजेंट ने झेंप मिटाने के लिए कहा, लेकिन कड़वाहट कुछ तेज़ ही थी। और साराह हँस रही थी। साराह सारजेंट को नाराज़ नहीं कर सकती थी। उसने अपने भविष्य को उससे सम्बन्धित कर रखा था। उसे सारजेंट के भावों और विचारों का आभास था। वह अब नीले रंग का अधिक प्रयोग करने लगी। उसके चित्रों में नन्हें-नन्हें तारे टूट कर इस तरह जगमगाने लगे जैसे कोई किरण टूट कर सैकड़ों रंग बिखेर गई हो। उस दिन के बाद उसने गली वाली लड़की पर ठहाके लगाने शुरू कर दिए। उसने एक कविता भी लिखी, "एक लड़की"। इसी नाम से उसने एक चित्र भी बनाया। इस चित्र को बनाने में उसने दिन-रात एक कर दिया। यह चित्र उसका मास्टरपीस था—एक लड़की सख्त चट्टान पर खड़ी अपने हाथ फैलाए सितारों के जमघट में कूदने का असफल प्रयत्न कर रही है। शायद वह इससे भी आगे किसी और संसार में जाना चाहती है। लेकिन उसके हाथ हवा में फैले ही रह गए। उसकी दृष्टि शून्य में खो गई। चट्टान के नीचे ठाठें मारता हुआ समुद्र बह रहा है। लड़की की ज़रा-सी गफ़लत उसे समुद्र की तह में पहुँचा सकती है। इस चित्र पर उसे प्रदर्शनी में पुरस्कार भी मिला था। उसका पहला चित्र अधूरा ही रह गया था। जब दूसरे दिन बेतेवा आई तो उसने एक रुपया उसके हाथ में देकर विदा करते हुए कहा—"अब अपने चित्र के लिए तुम्हें आने की आवश्यकता नहीं।" बेतेवा ने रुपया वापस करते हुए कहा—"मुझे रुपया नहीं चाहिए। तुम्हारा जी खुश हो जाए। मेरी झोली भर जाएगी। ज़रा पापा से मेरी सिफारिश कर दो। पापा तुम से बहुत प्यार करते हैं।" साराह रोज़-रोज़ के इस मूर्खतापूर्ण अनुरोध से तंग आ चुकी थी। वह वैसे ही उदास बैठी रही, क्योंकि उसका अमेरिकन प्रेमी अपने देश वापस जा रहा था। वह भी उस के साथ अमेरिका जाना चाहती थी। वहाँ वह उसके साथ विवाह करके अपना जीवन व्यतीत करना चाहती थी। लेकिन सारजेंट उसे अपने साथ न ले जा पा रहा था। साराह ने गम्भीर स्वर में बेतेवा को बताया—"देखो बेतेवा, पापा स्वयं इन मामलों में बेबस हैं। तुम्हारे बाप ने उस पर तुम्हें अपहरण करने का दावा कर रखा है। जब तक यह अभियोग झूठा सिद्ध नहीं हो जाता, उसे हवालात में रहना पड़ेगा। कानून का पालन करना हर नागरिक का कर्त्तव्य है।" साराह यह कह कर चली गई। बेतेवा ने उसके पाँव पकड़ने चाहे लेकिन वह अपने कमरे में जा चुकी थी। प्यानो के उदास स्वर में उसकी सिसकियों की आवाज़ घुल गई थी। वातावरण में उदासी थी।

बेतेवा कुछ देर ख़ामोश रही और फिर वह फाटक से निकल कर झाड़ू सँभाल कर डगमगाते क़दमों से वापस चली गई। वह हफ़्तों अपनी नंगी छातियों का प्रदर्शन करती रही, लेकिन फिर भी अपने प्रेमी को रिहा न करा सकी। उसे साराह पर असीम क्रोध आ रहा था। वह चाहती थी कि अपने चित्र के टुकड़े-टुकड़े कर के नाली में फेंक दे। उसे यह चित्र नहीं चाहिए। वह चाहती थी कि साराह का गला घोंट दे या उसको सेंट जार्ज चर्च की बुलन्दी से नीचे गिरा दे। लेकिन वह विवश थी, बेबस और लाचार थी। साराह दूसरी मंजिल से उस के चित्र को फ़ाड़ कर हवा में उड़ा रही थी। दूसरे ही क्षण साराह अपने कुशन को आँसुओं से भिगो रही थी। उसकी सब आकांक्षाएँ और तमन्नाएँ मन्दिरों में बजती हुई घंटियों की ध्वनि के साथ आकाश में गुम हो गईं। इतने में जमादार बेतेवा को गालियाँ देता हुआ गली में पहुँच गया। "इस हरामी को लिए कहाँ घूम रही हो? अभी तक मैला नहीं कमाया!"—जमादार अपनी गरज़दार आवाज़ में बोला। "साफ़ तो कर चुकी हूँ!" बेतेवा ने आवाज़ में कठोरता पैदा करते हुए कहा। आज वह लड़ने पर आमादा थी। आज से पहले वह जमादार की गालियाँ सिर झुकाए सुन लिया करती थी। "और यह क्या है? तुम्हारी…" जमादार ने मिट्टी के छोटे से ढेर की ओर संकेत करते हुए गाली दी।

"जमादार!" बेतेवा की आँखें सुलग उठीं और झाड़ू पर उसकी पकड़ मज़बूत हो गई।

"चालान करना है तो कर लो। गाली मत बको। इस गली के लोग ही गंदे हैं। इधर साफ़ करो, उधर फिर कूड़ा।" बेतेवा ने झाड़ू उठाई और चलने लगी। जमादार बेतेवा की सख़्त कलामी से चौंक पड़ा। उस ने स्वर में नम्रता पैदा करते हुए कहा।

"तुम तो अपनी दुश्मन हो जानी। ऐसे ही इस निखट्टू के लिए अपनी जवानी गँवा रही हो।" जमादार की आँखों में चमक प्रगट हुई। लेकिन बेतेवा उसे झाड़ू से धकेलती हुई आगे निकल गई। "साली देख लेना, जो उस बदमाश को सात साल चक्की न पिसवाई तो अपने बाप का न कहना।"

जमादार कह रहा था। बेतेवा ने उसकी बातों पर कोई ध्यान न दिया और वापस चली गई।

२

अंधकार बढ़ रहा था और गली का दृश्य भयानक हो रहा था। पीला, रोगी-सा चाँद साराह के मकान की ओट में झाँकने लगा और मुझे याद आया कि सेठ जी के घर जाने में देर हो गई है। फ़ज़लदीन के आते ही मुझे सेठ जी के घर जाना पड़ता है। जहाँ लगातार दो घंटे उनकी दूसरी पत्नी सरस्वती की बुद्धिहीनता का शिकार बनना पड़ता है। सेठ जी रूई के व्यापारी हैं। साहित्य कला इत्यादि से उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं है। उनकी आयु पचास के लगभग होगी। वह दिन-रात इसी ग़म में रहते हैं कि किसी प्रकार उनके दो लड़के हो जाएँ तो रूई का तमाम कारोबार सँभाल लें। आख़िर मुनीमों पर कब तक भरोसा किया जा सकता है। दुर्भाग्य से उनकी पहली पत्नी से केवल लड़कियाँ ही हुई थीं। उनकी पहली पत्नी की आयु भी पैंतीस के ऊपर ही होगी। जो मनुष्य बिना सन्तान के मर जाए वह नर्क का भागी बनता है। सेठ जी धर्म कर्म के पूरे पाबन्द थे। वह नहीं चाहते थे कि प्रतिदिन प्रातः एक साधु को खाना खिलाने के बाद भी स्वर्ग के अधिकारी न बनें। इसलिए उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया। सेठ जी का भाग्य खुल गया। उनके यहाँ गोल-मोल गोरा सा लड़का पैदा हुआ। सेठ जी दुबले-पतले काले रंग के थे। वह सुन्दर-सा बच्चा पा कर खुशी से फूले न समाते थे। अब वह भगवान से यही प्रार्थना करते रहते थे कि एक लड़का और हो जाए तो वह किसी तपोवन में कुटिया बना कर तपस्वी हो जाएँ और भगवान के भजन में अपना हीरा जन्म सफल बना लें।

सरस्वती हिन्दी की विद्याविनोदनी की परीक्षा अच्छे नम्बरों से पास कर चुकी थी और उर्दू में थोड़ी बहुत सुद्ध-बुद्ध रखती थी। वह एक ही समय में दो पत्रिकाओं—'अप्सरा' और 'हूर' का सम्पादन करती थी। मेरा काम उसके हिन्दी लेखों की नोक-फलक ठीक करके उर्दू में अनुवाद कर देना और सम्पादकीय लिखना था। दोनों पत्रिकाएँ प्रेम की उत्तेजनापूर्ण कहानियों, भावुक कविताओं और हार-श्रृंगार के आधुनिक फैशन के विवरण के आधार पर देश भर में लोकप्रिय हो चुकी थीं। स्कूल की लड़कियों की ये रुचिकर पत्रिकाएँ थीं। खाते-पीते घरानों की स्त्रियाँ भी इन पत्रिकाओं से हाज़मे की दवा का काम लेती थीं और रजिस्टर्ड नम्बर से लेकर अन्तिम विज्ञापन तक पढ़ जाती थीं, जिसमें एक छोटी-सी शीशी से नन्हें-नन्हें बच्चे भाप की तरह निकलते दिखाई देते। पत्रिका के ग्राहकों को बढ़ाने के लिए हमने प्रश्नोत्तर का स्तम्भ भी शुरू कर रखा था जो काफ़ी लोकप्रिय हुआ। इसी स्तम्भ में दिल धड़कने, नींद न आने और बाज़ार में ख़रीद-फ़रोख़्त करने तक प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दिया जाता था। इस सब काम के लिए मुझे साठ रुपए प्रतिमास मिलते थे। और काम यह था कि जो जी में आए लिख दो। मुझे इस गली में आए हुए छः महीने बीत गये और उसी दिन से इन दो सर्वप्रिय पत्रिकाओं में काम कर रहा हूँ। इन पत्रिकाओं की सराहना में हमें सैकड़ों पत्र मिल चुके हैं, जिससे हमें प्रोत्साहन मिलता है। और हम इन्हें अधिक से अधिक रंगीन बनाने की कोशिश करते हैं। कई बार स्कूल की लड़कियाँ ऐसे विचित्र प्रश्न पूछ बैठती हैं कि मैं डर से काँप जाता हूँ।

३

आज इतवार है और हर इतवार को मुझे निश्चित समय से एक घण्टा पहले जाना पड़ता है। लेकिन आज देर हो गई। मैंने वस्त्र पहने और सेठ जी के घर पहुँच गया। सेठ जी हर इतवार को अपने मित्र विधिचन्द के यहाँ हिसाब-किताब चुकाने जाते थे और मित्र के अनुरोध पर वहीं सो जाते थे। स्टेनले रोड पर स्थित सेठ जी का दोमंजिला मकान रात को बहुत सुन्दर दिखाई देता था। जब भी रेशमी पर्दों से प्रकाश की किरणें छन-छन कर कोलतार की सड़क पर पड़तीं तो सड़क जगमगा उठती थी। इस मकान में पहुँच कर मैं एक क्षण के लिए अपनी प्यारी गली को भूल जाता हूँ। मेरे देर से जाने

पर सरस्वती ने बाज़पुर्स की। मैंने अपनी परेशानी और मानसिक उलझनों के कारण बताने शुरू किए तो वह हँस पड़ी, "साहित्य तो मनोरंजन के लिए लिखा जाता है, भावों में हलचल पैदा करने के लिए। लेखक नैतिक प्रोपेगेंडिस्ट नहीं। यदि नीति शास्त्र ही पढ़ाना हो तो मन्दिरों और मस्जिदों में जाना चाहिए।" मेरा मस्तिष्क सरासर विद्रोह करने पर तुला हुआ था और मैं पेन्सिल लिए मेज़ पर झुका रहा और सरस्वती अपनी नई कविता सुनाती रही—

"चाँद की शीतल किरणें—हम दोनों एक—" घड़ी ने दस बजाए और उसकी आँखों में नींद झाँकने लगी। उसने बोझिल आँखों से मेरी ओर देखा और सोई हुई अँगड़ाई लेकर विदा कर दिया। मैं चाहता था कि यह अंक प्रकाशित करके हमेशा के लिए छुट्टी ले लूँ। इसलिए देर तक काम करना चाहता था। लेकिन वह मुझे आज जल्दी छुट्टी देना चाहती थी। मैं वापस चला आया।

स्टेनले रोड जाग रही थी। आकाश पर तारों का जाल फैला हुआ था। मैं अपने वीरान कमरे की कल्पना से ही उदास हो गया। और आज तो मिट्टी का तेल भी ख़त्म हो चुका था। मैं अनायास क्रिश्चियन सिमेट्री की ओर चल पड़ा। आज कई मास बाद मैं यहाँ आया था। सिमेट्री का शान्त और निस्तब्ध वातावरण आत्मा को शान्ति प्रदान करता है। सिमेट्री में सैकड़ों नई और पुरानी कब्रें थीं जिन पर मरने वालों के सम्बन्धियों और मित्रों ने उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्यार भरे शब्दों में अपने दुख को प्रगट किया था। पुरानी कब्रों पर मुरझाए हुए फूलों और पत्तों की बनी हुई सलीबें पड़ी थीं। कई कब्रें सुन्दर थीं, कई टूटी हुई और कई तो केवल मिट्टी का ढेर थीं। कब्रों का निरीक्षण कर, मरने वालों की सामाजिक हैसियत का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। कब्रिस्तान से एक फर्लाङ्ग के फ़ासले पर धीरे-धीरे यमुना बह रही थी। इन रातों में यह दृश्य ऐसा मालूम होता था जैसे समस्त सृष्टि सुख की नींद सो रही हो। मैं कब्रिस्तान की दीवार पर ख़ामोश बैठा रहा। मेरे अतिरिक्त वहाँ कोई ज़िन्दा आदमी न था। मुझे आशा थी कि ऐंग्लो इंडियन जज अपनी प्यारी माँ की कब्र पर फूल चढ़ाने के लिए अवश्य पधारेंगे। उन्हें अपनी माँ से बहुत स्नेह था और वह हर इतवार को शाम से ही कब्रिस्तान की ओर पैदल रवाना हो जाते थे और रात वहीं प्रार्थना में व्यतीत करते थे। आज भी वह इसी इरादे से घर से निकले थे। मालूम नहीं अभी तक यहाँ क्यों नहीं पहुँचे। कब्रिस्तान में केवल क्लाक की आवाज़ ही हर आध घंटे बाद उसकी निस्तब्धता को तोड़ती थी। मैं कई घंटे निस्तब्ध और मौन बैठा रहा। मेरे मस्तिष्क में कोई विचार नहीं था। मैं भूल गया था कि कब्रिस्तान में रात को भूत नाचा करते हैं। इतने में कब्रिस्तान की ख़ामोशी में हल्का सा कंपन पैदा करती सिसकियों की आवाज़ आने लगी। कुछ क़दमों पर ताड़ के वृक्ष के नीचे कोई साँवली लड़की फूलों की कोमल पत्तियाँ लिए घुटनों के बल बैठी थी। मैं कुछ क्षण तक उसे देखता रहा। चाँद वृक्षों की पत्तियों के पीछे से उस पर प्रकाश की किरणों के जाल बुन रहा था। मैं धीरे धीरे क़दम उठाता उस के पास जा कर बैठ गया। उसके कपोल पर आँसू मोतियों की तरह चमक रहे थे। वृक्षों के सूखे हुए पत्तों पर क़दमों की हल्की सी आवाज से वह चौंक पड़ी। उसकी आँखों में भय की हल्की सी लहर उठी जो दूसरे क्षण ही वेदना की गहरी रेखा में डूब गई। मैंने अनायास उस के सिर पर हाथ रख दिया। वह रो रही थी। सहानुभूति के कुछ शब्द सुन कर उसका दर्द पिघल गया और वह कहने लगी :

"मैं रीटा हूँ—रीटा—मैं एक निर्धन नर्स हूँ। माँ-बाप के स्नेह से वंचित। एक दिन ऐसी ही चाँदनी रात में जब गिरजे के क्लाक ने बारह बजाए, मैं यहाँ आई। मैंने अपनी माँ की कब्र के पास सफ़ेद कपड़े में लिपटा हुआ नन्हा सा चाँद का टुकड़ा पाया। जो आज इस कब्र में सो रहा है। लोगों ने मुझ पर लांछन लगाए, लेकिन मैंने इस अबोध बालक के लिए सब कुछ सहन किया। एक दिन वह बीमार पड़ गया। मैं एक रोगी की सेवा में व्यस्त थी जो मृत्यु और जीवन के संघर्ष में हाथ-पैर मार रहा था। जब मैं घर पहुँची तो मेरे नन्हे का शरीर ठंडा हो चुका था। मेरे गालों की गरमी और मेरे ओंठों की तपिश भी उस के मृत शरीर में हरकत पैदा न कर सकी। मुझ से मेरी ज़िन्दगी छीन ली गई—"

लड़की भावुक हो रही थी, "उस के नन्हे-नन्हे हाथों का स्पर्श मेरी बेज़ार जिन्दगी में बिजली की लहर दौड़ा देता था।" साँवली लड़की मेरा हाथ थाम कर रोने लगी। उस के गरम-गरम आँसू मेरे हाथों पर गिर रहे थे और वह लगातार रोए जा रही थी। मेरा दिल भर आया। लेकिन मैं रो नहीं सकता था और उसका दुख से आतुर चेहरा भी नहीं देख सकता था। मालूम नहीं कब वह लड़की मेरा हाथ छोड़ कर चली गई। कब्र पर फूल की पत्तियाँ बिखरी पड़ी थीं। शायद मरने वाले बच्चे के लिए उस लड़की का अन्तिम उपहार था। उस के हृदय की तरह कोमल और सुन्दर और उस के बच्चे की तरह प्यारा प्यारा सा। मैंने कब्र पर झुक कर इन कोमल पत्तियों को चूम लिया।

मैं उदास और लज्जित कब्रिस्तान से वापस लौट आया। रास्ते भर मुझे सड़कों पर भयानक भूत नाचते दृष्टिगोचर होते रहे और मैं सर्दी से काँपता रहा। सड़क की बिजली के अतिरिक्त सब रोशनी बुझ चुकी थी। मकानों के अन्दर अँधेरा था। फुटपाथ पर सोये हुए मनुष्य धरती पर उभरे हुए फोड़ों की तरह दिखाई दे रहे थे। जब मैं गली में मुड़ा तो एक परछाईं सेठ जी के घर से प्रगट हुई। परछाईं मिटती गई। लैम्प के प्रकाश में वह परछाईं एंग्लो इण्डियन जज बन गई। परछाईं मोड़ पर गायब हो गई। मुझे पहली बार इस रोगी लैम्प के महत्त्व का पता चला। इस के साथ ही बूढ़े फ़ज़लदीन की सेवा भी याद आ गई। दुर्गंध की एक तेज़ लपट ने मुझे नाक पर रुमाल रखने पर विवश कर दिया। कूड़े-करकट के ढेर ऊँचे होते हुए पहाड़ बन रहे थे। नालियों का गंदा पानी विष की नदी बन कर तेज़ी से बह रहा था। चमगादड़ इसी बेक़रारी की अवस्था में चक्कर काट रही थी। छिपकलियों की आवाज़ विचित्र शोर पैदा कर रही थी। काश कि चाँद की चाँदनी इस अँधेरी गली को धो दे और इस पर सितारों की रुपहली छाँह पड़ जाए। लेकिन यहाँ पूर्ण अंधकार था। मैं अपने

उजड़े घर में दाख़िल हुआ और लेट गया। विचित्र भयानक स्वप्नों ने नींद हराम कर दी। ऐसा मालूम होता था कि कमरे की दीवारें एक दूसरे के निकट आती जा रही हैं और मैं उन में पिसा जा रहा हूँ। मेरे ऊपर छत गिर रही है, दीवारें काँप रही हैं और यह ढाँचा चटाख़ कर के टूट जाएगा।

लैम्प की लौ वायु के तेज़ झोंकों में टिमटिमा रही थी। दूसरे दिन फ़ज़लदीन लैम्प जलाने के लिए आया। साँवली लड़की तेज़ क़दम उठाती गली में आई और जल्दी से गुज़र गई। मुझे उसके चेहरे की रेखाओं में और रीटा के चेहरे में बहुत समानता प्रतीत हुई। इतनी गहरी समानता मैंने जीवन में पहली बार देखी थी। लेकिन रीटा की आँखों में दीनता और बेबसी फैली हुई थी और यह लड़की अपने दुख के बावजूद भी विश्वास और साहस का आँचल थामे हुए थी। यह लड़की रीटा का बदला हुआ रूप थी या शायद रीटा ही थी जिसे मैं रात के अँधेरे में न पहचान सका था। आज साराह ने ठहाके भी नहीं लगाए। वह उदास थी और अपने हाथों से चेहरा थामे लान पर बैठी थी। मैं सेठ जी के मकान में चला गया। सेठ जी अपने कमरे में मदिरा पान कर रहे थे क्योंकि एंग्लो इण्डियन जज ने उन्हें चोरबाज़ारी के एक अभियोग में बरी घोषित कर दिया था। सरस्वती खुश नज़र आती थी। मैं नौकरी छोड़ने का संकल्प कर चुका था।

मैंने सेठ जी के घर में प्रवेश करते ही नौकरी छोड़ने का इरादा प्रगट कर दिया। सरस्वती के चेहरे पर शंका के चिन्ह प्रगट हुए। उसने व्यंग्यात्मक हँसी से मेरे विचारों का उपहास किया और जब मैंने अपने विचारों की व्याख्या की तो वह चौंक पड़ी। उसके कमरे में हालीवुड की सिनेतारिकाओं के अर्धनग्न चित्र मुस्करा रहे थे। इत्र में बसे हुए चकाचौंध कमरे में मेरा दम घुटा जा रहा था। सरस्वती ने समस्या पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया। वह कहने लगी, "मालूम होता है कि उस लड़की ने जादू कर दिया है। मालूम नहीं वह लड़की कितने लोगों को बहका चुकी है।" सरस्वती ने धमकी और लालच से काम लिया लेकिन विद्रोही आत्मा पुराने पिंजरे में फिर से बंदी होना स्वीकार नहीं कर सकी। सरस्वती एकदम चारपाई पर गिर पड़ी और उसने चीख़ना शुरू कर दिया। मैंने समझा उसे दौरा पड़ गया है, क्योंकि उसे प्रायः ऐसे दौरे पड़ा करते हैं। और वह इसी तरह भयानक चीत्कार करती है। ज्योंही मैं उसे सम्हालने के लिए उस पर झुका ही था कि सेठ जी कमरे में दाख़िल हुए। मैंने बात करने के लिए ओंठ खोले ही थे कि सरस्वती ने रोते-रोते सेठ जी से कहना शुरू किया—"इसने मेरी इज़्ज़त पर हाथ डालना चाहा है यदि आप समय पर न आ जाते तो··· ·।" उसने सेठ जी की भीतर धँसी हुई छाती पर अपना सिर रख दिया और अपने आँचल से आँसू पोंछने लगी जो बह नहीं रहे थे। सेठ जी क्रोध से बेकाबू हो रहे थे। शराब के नशे में चूर सेठ जी काँप रहे थे। शराब की गंध के भभके उनके मुँह से निकल रहे थे। मैंने अपनी सफाई में कुछ कहना चाहा लेकिन मेरी आवाज़ सेठ जी की गालियों और सरस्वती की कृत्रिम सिसकियों में डूब गई। सेठ जी ने एंग्लो इण्डियन जज को बुला भेजा। जज घबराए हुए आए। लेकिन सरस्वती ने गुप्त मुस्कराहट से उनके मुँह में जुबान दे दी। उन्होंने मामले की गम्भीरता पर विचार करते हुए फ़रमाया कि ऐसे बदमाश आदमियों से मुहल्ले की नैतिकता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ने का अंदेशा है। मुहल्ले की बहू-बेटियों के सम्मान का मामला है। वास्तव में सबके सम्मान का मामला था। इसलिए सबके प्रस्ताव के अनुसार मुझे २४ घण्टों के अन्दर कमरा ख़ाली कर देने की आज्ञा मिल गई। और यदि मैंने इसका उल्लंघन किया तो मुझे भी बेतेवा के प्रेमी के साथ खटमल वाली किसी कोठड़ी में जीवन का कुछ भाग व्यतीत करना पड़ेगा। मैं चुपचाप बाहर चला आया। मुझे कोई गम नहीं था, कोई खुशी नहीं थी, कोई अनुभूति नहीं थी। मैं कुछ सोच नहीं रहा था, कुछ महसूस नहीं कर रहा था।

४

बीस घंटे गुज़र चुके थे। सेन्ट जाज चर्च के क्लाक ने छः बजाए और बूढ़ा फ़ज़लदीन लैम्प जलाने के लिए आ गया। एंग्लो इण्डियन जज मेरी ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देख कर टेनिस खेलने चले गए। बेतेवा की चीखें मुहल्ले के शान्त वातावरण में ख़लल डाल रहीं थीं। उसने एंग्लो इण्डियन जज के पाँव पकड़ने चाहे लेकिन उसके हाथ फैले ही रह गए और जज साहब अपनी कार में क्लब चले गए। साराह अपने लान में बैठी अपनी सखी से कह रही थी, "दूर आकाश पर अस्त होते हुए सूर्य की लाली फैल रही थी जब जहाज़ ने तट को छोड़ा और मैं उस समय तक नन्हे-नन्हे सितारोंवाले झंडे को देखती रही जब तक कि वह दूर जाकर खो नहीं गया।"

मैं चाहता था कि साराह ठहाके लगाए लेकिन वह ख़ामोश थी और किसी फ़िल्म कम्पनी में हीरोइन बनने की सोच रही थी। दाईं ओर के मकान वाली लड़की इक्के में बैठे सेनाटोरियम जा रही थी। उसके आलोकहीन नेत्र शून्य में झाँक रहे थे। उसके पीले चेहरे पर ओंठ काले पड़ गए थे जैसे किसी काले नाग ने डस लिया हो। उसके माँ-बाप की आवाज़ गली में गूँज रही थी—'सुरैया—सुरैया—' लेकिन सुरैया सितारों की महफ़िल से टूट कर अथाह अंधकार में डूब चुकी थी, फिर कभी न उभरने के लिए। फ़ज़लदीन ने लैम्प जला हुए मेरे जाने पर शोक प्रगट किया। जब मैंने उसे अपने जाने क समाचार सुनाया और कहा कि भलेमानसों के मुहल्ले में बदमाश नहीं रह सकते तो बूढ़े के हाथ से चिमनी छूट कर भूमि पर गिर गई औ चूर-चूर हो गई। उसके दुर्बल पाँव के नीचे से सीढ़ी खिसक गई औ वह गिर गया। मैंने लपक कर उसे सँभाला, उसके चेहरे की पिंडली न पड़ गई थी। बूढ़ा फ़ज़लदीन अपनी मैली पगड़ी से आँखों का मैल पानी पोंछते हुए कह रहा था—"भलेमानसों की बस्ती में हम जै बदमाशों की गुजर नहीं होनी चाहिए।"

बूढ़े के मुँह से 'हम जैसे बदमाशों' के शब्द सुन कर दिल भ आया। जी चाहता था कि बूढ़े के गले से लिपट कर ज़ोर-ज़ोर से रो और उसकी सफ़ेद दाढ़ी को अपने आँसुओं से भिगो दूँ।

(शेष पृष्ठ ६१ पर)

नई कविता—नया साहित्य

भगवतीचरण वर्मा

"नई कविता, नया साहित्य !" इस नारे के साथ जिस कविता और साहित्य का प्रचुरता के साथ सृजन हो रहा है, उससे वर्तमान हिन्दी साहित्य की गतिविधि पर जो प्रभाव पड़ा है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। और इसलिए इस नई कविता तथा साहित्य पर अपने विचार व्यक्त करना मेरे लिए अप्रासंगिक न होगा, ऐसा मेरा मत है। बहुत सम्भव है मेरे विचार विवाद का रूप धारण कर लें, पर मुझे इसमें भी सन्तोष होगा, क्योंकि इस विवाद से उन नवीन मान्यताओं का स्पष्टीकरण हो जाएगा जिनसे यह नवीन कविता और साहित्य प्रेरित है।

अपने विचार प्रकट करने के पहले मुझे नई कविता की परिभाषा कर देनी पड़ेगी, क्योंकि 'नई कविता' शब्द का व्यवहार एक विशेष अर्थ में ही किया जा रहा है और वह भी कुछ इने-गिने व्यक्तियों द्वारा। वैसे आज के दिन लिखी जाने वाली हरेक कविता नई कहला सकती है, पर नई कविता से प्रयोजन उस कविता से है जो नए युग का प्रतिनिधित्व करती है।

यह नया युग क्या है ? इसका रूप कैसा है ? इसमें कितना स्थायित्व है ? नई कविता की समीक्षा करने के पहले इन प्रश्नों का सामने आ जाना स्वाभाविक है।

आज का युग संघर्षों का युग है, आज का युग अनास्था का युग है, आज का युग मानसिक असन्तुलन का युग है। पिछले दो महायुद्धों में जिस विनाश का ताण्डव हुआ है; हत्या, झूठ, विनाश और क्रूरता का जो सार्वजनिक प्रदर्शन दुनिया को देखने को मिला है, उसके फलस्वरूप आज का युग अविश्वास का युग कहला सकता है। जितनी पुरानी आस्थाएँ और मान्यताएँ थीं, वे एकबारगी ही नष्ट हो गईं; नितान्त नवीन मान्यताओं और आस्थाओं की स्थापना और विकास में समय लगेगा। और इसलिए आज मानव की विचारधारा में रचनात्मक प्रवृत्ति न रह कर एक प्रकार की विनाशात्मक प्रवृत्ति आ गई है। जो प्राचीन है वह सब झूठा है, अकल्याणकारी है, त्याज्य है—विनाश और विध्वंस से त्रस्त मानव-मनोविज्ञान ने गौण रूप से अथवा स्पष्ट रूप से यह स्वीकार कर लिया है। किस नवीन का सृजन हो और किस नवीन की स्थापना सम्भव है, यह विवादग्रस्त है, तथा इस पर अभी दुनिया में बहुत अधिक मतभेद है। इस नवीन का सृजन और इसकी स्थापना वैयक्तिक विकास पर न निर्भर होकर राजनीतिक विचारधारा द्वारा संचालित विभिन्न राज्यों की शासन-व्यवस्था के हाथ में आ पड़े हैं।

नई कविता, जैसा मैं निवेदन कर चुका हूँ, आज के उस युग की प्रतिनिधि कविता है जिसमें चेतन मानव राजनीतिक आधिपत्य से कुण्ठित होकर व्यक्तित्व की स्थापना का प्रयत्न तो कर रहा है, पर उसका यह व्यक्तिवाद संघर्ष-रत, अनास्था और अविश्वास से भरा हुआ है। वैसे अधिकांश में जो कविताएँ लिखी जा रही हैं या जिस साहित्य का सृजन हो रहा है वे या तो प्रचलित मान्यताओं और आस्थाओं को लेकर लिखी जा रही हैं या फिर राजनीति द्वारा आरोपित नवीन मान्यताओं और आस्थाओं को लेकर लिखी जा रही हैं, पर वे नए युग की मूल प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं इसलिए वे नई कविताएँ नहीं कहला सकतीं—ऐसा नई कविता के प्रवर्तकों एवं आचार्यों का मत है और कम-से-कम मुझे तो इस मत से असहमत होने का कोई कारण नहीं दीखता, क्योंकि जो सत्य है उससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

प्राचीन के प्रति विद्रोह और उस प्राचीन के विनाश की प्रवृत्ति आधुनिक कविता के शिल्प तथा उसकी विषय-वस्तु दोनों ही स्थानों में मिलती है। सबसे पहले हमें नई कविता के शिल्प को ही देखना पड़ेगा।

: २ :

कविता का माध्यम अनादि काल से पद्य रहा है, गद्य नहीं—हमें सबसे पहले यह स्वीकार कर लेना पड़ेगा। यहाँ हमें पद्य और गद्य में जो अन्तर है, उसे समझ लेना पड़ेगा।

पद्य को गद्य से पृथक् करने वाला उसका रूप होता है। जहाँ पद्य में लय और छन्द की प्रधानता मिलती है वहाँ गद्य केवल व्याकरण के सहारे चलता है, लय और छन्द से उसे कोई प्रयोजन नहीं। जितनी प्राचीन कविता है वह पद्य में ही मिलती है, गद्य के माध्यम द्वारा अन्य साहित्यिक कलाएँ विकसित हुई हैं, उपन्यास, नाटक, कहानी आदि आदि। पर कविता हमेशा से ही पद्य में ही लिखी गई है। लय और छन्द के साथ अनुप्रास, अलंकार आदि न जाने कितनी अन्य चीज़ें कविता के आवश्यक अंग समझे गए हैं।

पर नई कविता में लय और छन्द को निरर्थक समझा गया है, क्योंकि लय और छन्द की मान्यता प्राचीन है और जो प्राचीन है वह सड़ा-गला है, उसे नष्ट होना ही चाहिए। नई कविता का आधार केवल भावना को माना गया है, रूप को नहीं माना गया है। यह कहना गलत नहीं होगा कि जिसे अब तक कविता का शिल्प समझा गया है उस शिल्प का अभाव ही नई कविता का सब से बड़ा शिल्प है। छन्दों और तुकोंवाली कविता को नई कविता के प्रवर्तक केवल तुकबन्दी कह सकते हैं, उसी प्रकार की तुकबन्दी जैसी चूरन के लटके कहने वाले, ख़यालबाज़ या गाँवों के बिना पढ़े लोग कर दिया करते हैं। सम्भवतः छन्द और अनुप्रास के प्रति इसी वितृष्णा के कारण वे कवि लोग जो छन्द लिख सकते हैं, अन्त्यानुप्रास लाना जिनके लिए कठिन काम नहीं है, नई कविता लिखते समय सतर्कता के साथ और चेष्टापूर्वक छन्दों और अनुप्रासों की उपेक्षा करते हैं।

यहाँ कुछ लोग जो नई कविता से परिचित नहीं हैं, यह प्रश्न कर

सकते हैं कि फिर नई कविता में और गद्य में रूप का भेद क्या रह जाता है ? उत्तर में मैं केवल इतना ही कहूँगा कि वे नई कविता का कुछ थोड़ा-सा ध्यानपूर्वक अध्ययन करें और उन्हें भेद स्पष्ट हो जाएगा। जहाँ गद्य में व्याकरण होता है वहाँ नई कविता में व्याकरण को तोड़ा-मरोड़ा या गायब ही कर दिया जाता है। भावना के अनुसार, बिना विचारों के तारतम्य के नई कविता की पंक्तियाँ छोटी-बड़ी, पूर्ण-अपूर्ण, विराम-कॉमा-डैश आदि से युक्त मिलेंगी। नई कविता केवल भावना का प्रतिनिधित्व करती है, तर्क और विचार शुद्ध भावना के क्षेत्र से अलग हैं और इसलिए नई कविता में इनका कोई स्थान नहीं। गूढ़ से गूढ़ विचार भी भावना की विश्रृंखल अनुभूति के रूप में ही नई कविता में आ सकते हैं। महाकाव्य और खण्डकाव्य तो नहीं नाटक प्रचुरता के साथ इस नई कविता में लिखे गए हैं—यद्यपि नाटकों में विचारों की विश्रृंखलता को दूर रखा गया है, क्योंकि ये नाटक अभिनय के लिए लिखे गए हैं और अभिनय की कसौटी पर विचारों की विश्रृंखलता नितान्त हास्यास्पद साबित होती।

: ३ :

कुछ दिनों तक लय के शिल्प को नई कविता में स्वीकार किया गया, पर लय के शिल्प को स्वीकार करने पर छन्द के शिल्प को स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है, क्योंकि शिल्प में पूर्णता प्राप्त करने के सिद्धान्त को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता और मात्र लय के शिल्प को स्वीकार करने से कलाकार में शिल्प की कमज़ोरी समझी जाती। सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखते हुए नई कविता के प्रवर्तकों को लय के शिल्प को भी छोड़ ही देना पड़ा।

इस लय और छन्द के शिल्प को छोड़ने का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण है जिसकी ओर दुर्भाग्यवश अभी लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं हो पाया।

प्रत्येक मनुष्य में कविता है, लेकिन प्रत्येक मनुष्य छन्द नहीं लिख सकता और न लय का ठीक तरह से निर्वाह कर सकता है। ऐसी हालत में लय और छन्द के बन्धनों से कविता को बाँध कर कोटि-कोटि जनों को कवि बनने से वंचित रखना—यह सामाजिक न्याय नहीं है। नई कविता में उस शिल्प का परित्याग कर दिया गया है, जो कुछ इने-गिने लोगों की बपौती (Monopoly) है जिनके कान संगीतमय हैं, जो लय, छन्द एवं अनुप्रास में पारंगत हैं।

हम सब भावना से प्रेरित होते हैं, भावना के वेग में बिना व्याकरण के सोचते हैं, अस्पष्ट और धुँधले विचार हमारे सामने आते हैं। इन भावनाओं और विचारों को शब्दों में लिख देना—व्याकरण सही न हो और जो लिखा है उसमें उलझाव स्पष्ट रूप से दिखे—हरेक पढ़े-लिखे आदमी के लिए आसान काम है। कविता कुछ इने-गिने लोगों की विशेष सम्पत्ति न रह जाए, वह प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति की मुट्ठी में आ जाए—नई कविता के शिल्प में इस बात का ध्यान रखा गया है।

मुझे व्यक्तिगत रूप से तो इस पर कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से अगर मैं इस दृष्टिकोण की निस्सारता पर कुछ कहूँ तो अनुचित न होगा। कविता का ध्येय आत्म-सन्तुष्टि ही नहीं है, कविता मुख्यतः दूसरों के मनोरंजन के लिए लिखी जाती है। वही कविता समाज द्वारा स्वीकृत होगी जो दूसरों का मनोरंजन कर सके। छन्द और अनुप्रास दूसरों के मनोरंजन में कविता के सहायक रहे हैं। आज भी जो कविताएँ जनता द्वारा पढ़ी जाती हैं और प्रशंसित हैं, वे छन्द और अनुप्रास के सहारे ही मनोरंजन करती हैं। हरेक आदमी भावनामय प्राणी है, लेकिन हरेक आदमी कवि नहीं है। कविता कला है और 'कला' शब्द में ही कृत्रिमता का बोध है। यह कृत्रिमता परिष्कार और सजावट की है। इस कृत्रिमता को दूर करने से कविता व्यक्तिगत चीज़ रह जाती है, वह सामाजिक सम्पत्ति नहीं बन सकती। जिस तरह कालिदास, तुलसीदास आदि कवियों की कृतियाँ समाज एवं लोक की निधियाँ बन चुकी हैं।

आज का युग अनास्था, अविश्वास तथा इस अनास्था और अविश्वास द्वारा जनित अराजकता और असंयम का युग है—मैंने माना, पर यह अराजकता और असंयम नियम नहीं है, केवल अपवाद है।

: ४ :

कुछ लोग कहेंगे कि नई कविता पिछले दो महायुद्धों की उपज नहीं है, वह उन महायुद्धों के पहले ही आ गई थी। और उनका कहन ठीक है। वह असंयम और अनास्था जो १९१४-१८ वाले महायुद्ध पहले यूरोप तथा अमेरिका की कला में दिखती है, वह उन्हीं मानसि विकृतियों को प्रतिबिम्बित करती है, जिनके कारण पिछले महायुद हुए। केवल इस बात को कह कर कि नई कविता पिछले महायुद्ध द्वारा जनित अविश्वास और अनास्था की उपज नहीं है, वरन् उस पहले आ गई थी, नई कविता के अन्दर वाले अविश्वास औ अनास्था से इन्कार नहीं किया जा सकता।

अविश्वास और अनास्था की इस कविता को नई कविता का ना अभी हाल में ही दिया गया है क्योंकि इधर इस कविता के शिल्प क शिथिलता के कारण इस कविता के लिखने वालों की संख्या बेतहाश बढ़ गई है और चूँकि इस कविता का लिखने से विशेष सम्बन्ध इसलिए इस कविता के कवि पढ़े-लिखे लोग हैं और उनमें संगठन त प्रचार की उपादेयता का ज्ञान है। तो इस कविता के लिखने वालों इस कविता को नई कविता मान लिया है।

आज के वैज्ञानिक और वस्तुवादी जगत में भावना को अधि महत्त्व न देने की प्रथा चल पड़ी है। वैज्ञानिक एवं श्रमिक वर्ग बात अलग है, स्वयं साहित्यकार विचारक माने जाने में गौरव सम लगे हैं। इसका एक परिणाम यह हुआ कि जनता में कविताओं के प्र प्रेम कम होने लगा। आज का युग गद्य का युग कहलाता है, कवि का युग नहीं। कविता के प्रति जनता की उदासीनता ने नई कविता विकास में और भी सहायता की। इस वस्तुवादी जगत में जहाँ चीज़ का मूल्य सोना-चाँदी से आँका जाता है, साहित्यकारों कविता को छोड़ कर गद्य का आश्रय लिया। भारतवर्ष में ही नह दुनिया के किसी भी देश में कविता की पुस्तकों की रायल्टी पर क भी साहित्यकार जीवन-यापन नहीं कर सकता। ऐसी हालत में सा और संयम के साथ कविता पर अथक परिश्रम करने वालों की सं

धीरे-धीरे कम होती गईं। और जब परिश्रम, संयम, एवं साधना कविता के मामले में नियम न रह कर अपवाद ही बन चुके हों, तब नई कविता को आज के युग की प्रतिनिधि कविता के रूप में स्वीकार कर लेने से भला किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?

: ५ :

नई कविता के शिल्प पक्ष पर इतना कह लेने के बाद नई कविता के भावना पक्ष पर भी कुछ थोड़ा-बहुत कह देना मैं उचित समझूँगा।

नई कविता में जो कुछ लिखा जाता है वह भी प्रचलित परिपाटी के विरुद्ध ! प्रकृति-वर्णन, मनोविज्ञान, दर्शन, प्रेम, शृंगार—सभी कुछ तो नई कविता में है, पर इन सबका रूप बदला हुआ है। स्वप्न और कल्पना पर नई कविता को विश्वास नहीं, वह तो आज की वास्तविकता से प्रेरित है, वह आज की कुरूपता को चित्रित करने में विश्वास करती है। सौन्दर्य सृजन प्राचीन की परम्परा रही है, इस प्राचीन परम्परा को कुरूपता के सृजन से ही नष्ट किया जा सकता है।

कुरूपता जीवन का उतना ही बड़ा सत्य है जितना सौन्दर्य है, पर अनास्था और अविश्वास की जिस मान्यता को लेकर नई कविता आगे बढ़ रही है वह सौन्दर्य के विनाश को प्रेरित करती है—कुरूपता की सृष्टि द्वारा। और यहाँ मुझ पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि मैं इस नए युग को ही रोग-ग्रस्त समझता हूँ। जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, यह युग अनास्था और अविश्वास का युग है, और मैं यह भी मानता हूँ कि यह अविश्वास और अनास्था स्वाभाविक है। समय के साथ मान्यताओं और आस्थाओं का रूप बदला करता है; इन आस्थाओं और मान्यताओं के प्राचीन रूप मिट जाते हैं और उनके नवीन रूप हमारे सामने प्रकट हो जाते हैं। प्रत्येक आस्था और विश्वास के दो पहलू हैं, एक वैयक्तिक पहलू जो अमिट और अक्षय है, दूसरा सामाजिक पहलू जो निरन्तर परिवर्तनशील है। वह जो मिटा है, आस्था और विश्वास का सामाजिक पहलू है, आस्था और विश्वास का वैयक्तिक पहलू कभी नष्ट नहीं हो सकता क्योंकि वह शाश्वत और चिरन्तन है। आस्था और विश्वास के इन वैयक्तिक पक्षों में से कोई एक पक्ष फिर से सामाजिक पहलू का रूप धारण कर लेगा। मानव शून्य में तो स्थित नहीं रह सकता, उसे स्थित रहने के लिए आस्था और विश्वास का आधार चाहिए।

अनास्था और अविश्वास जीवन का रचनात्मक दृष्टिकोण नहीं, वह केवल ध्वंसात्मक दृष्टिकोण है। दुनिया में इतना व्यतिक्रम और इतनी विकृतियों के होते हुए भी मानव का सत्य एवं संयम पर विश्वास रहा है, इनके प्रति आस्था रही है और इसीलिए मानव सामाजिक प्राणी बन सका तथा वह स्थित है। वैयक्तिक अनास्था और अविश्वास को सामाजिक अनास्था और अविश्वास बना देने से तो समाज का विनाश अवश्यम्भावी हो जाता है। यह अनास्था और अविश्वास समाज स्वीकार नहीं करेगा—नई कविता में यह अनास्था और अविश्वास का दोष स्वयं उसके लिए घातक है।

साहित्य में उसी भावना का स्थान है जो मानव की बुद्धि और बुद्धि द्वारा जनित संतुलन के आधार पर स्थित है। बिना बौद्धिक संतुलन के भावना, भावना न रह कर प्रलाप का रूप धारण कर लेती है। यह जो कविता का शिल्प है, या कहना यह उचित होगा कि यह जो कला का शिल्प है, इसकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है ? इस शिल्प के निखार के बिना कोई भी भावना या तो प्रलाप के रूप में सामने आएगी, या फिर भद्दे और निर्जीव नारे के रूप में सामने आएगी। भावना को सजीव, प्राणवान और संयत बनाने का एकमात्र माध्यम है कला का शिल्प।

नई कविता का कला-शिल्प स्पष्ट रूप से निर्बल ही नहीं बल्कि विकृत है और इसलिए नई कविता जनता को आकर्षित करने की बजाय उसमें वितृष्णा और ग्लानि उत्पन्न करती है। आज जो अनास्था और अविश्वास युग में प्रतिबिम्बित है, क्या वह मानव के निर्माण-प्रयत्नों को रोक सकता है ? जो शाश्वत सत्य है वह किसी विशेष युग की क्रिया-प्रतिक्रिया से बिलकुल भिन्न है। आधुनिक कविता युग की क्रिया का ही प्रतिनिधित्व करती है, वह सर्वदेशीय और सर्वकालीन सत्य से बहुत दूर है।

वह जो प्राचीन है क्या उसे एकदम नष्ट कर देना सम्भव है ? मानव आस्था और विश्वास पर ही स्थित है। और मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि कविता स्वयं किन्हीं आस्थाओं और विश्वासों को लेकर आगे बढ़ी है, ये आस्थाएँ और विश्वास रचनात्मक न होकर विनाशात्मक भले ही हों।

: ६ :

नई कविता का विश्लेषण करते हुए मुझे एक कुरूप और कटु सत्य भी कहना पड़ रहा है, पर यदि मैं उसे न कहूँ तो मेरी बात अधूरी ही रह जाएगी।

भौतिक सभ्यता के इस युग में जहाँ जीवन अत्यधिक व्यस्त है और मनुष्य सुख-सुविधा को जीवन में प्रधानता देने लगा है—नई कविता के पीछे जल्दी-से-जल्दी ख्याति पाने की प्रवृत्ति है, यश-लिप्सा है। यह युग महत्वाकांक्षा का है, लेकिन महत्वाकांक्षा के पीछे जिस लगन और अथक परिश्रम की आवश्यकता है, वह इस युग में बहुत कम मिलती है। सम्भवतः लोगों के पास न इतनी लगन है और न इतना समय है कि वह साधना करें, परिश्रम करें।

साधना और परिश्रम के अभाव की पूर्ति नवीन विचारों से और नवीन शैली से करने की प्रवृत्ति ही इस युग का गुण हो गया है। पर यह नवीनता भ्रामक है—यह केवल अप्रचलित का ग्रहण ही है। समाज में अप्रचलित वही है जो विकृत है और इसलिए यह नवीनता अन्ततोगत्वा विकार का ग्रहण ही है।

कला का क्षेत्र विचार है भी नहीं, कला का क्षेत्र भावना है। और भावना का उदात्तीकरण ही उच्च कला का ध्येय है। भावना को सजीवता प्रदान करना—इसमें साधना की आवश्यकता है, शिल्प के साथ परिश्रम की आवश्यकता है।

नई कविता में बिना परिश्रम यश और ख्याति प्राप्त करने की जो प्रवृत्ति है, उससे जो वास्तविक कलाकार हैं उन्हें बचने की नितान्त आवश्यकता है। युग बदलता रहता है; आज का अनास्था और अविश्वास वाला युग बदल जाएगा और इस युग के साथ आज जिसे नई कविता कहा जा रहा है वह नष्ट हो जाएगी। जीवित वही कविता रहेगी जो भावना और शिल्प इन दोनों के आधारभूत सत्य पर अवलम्बित है।

आधुनिक भारत की दार्शनिक समस्याएँ

इन्द्रसेन

दर्शन मानव-जीवन की पथप्रदर्शक ज्योति है। जीवन का प्रयोजन और अर्थ समझने के लिए तथा उसे ठीक दिशा में ले जाने और उसका समुचित विकास करने के लिए दर्शन की आवश्यकता होती है, जो इस परिवर्तनशील जगत का ही बोध नहीं कराता, वरन् जीवन के तत्व को भी समझने की दृष्टि देता है। इस प्रकार जीवन के समान दर्शन की धारा भी सतत प्रवाहित होती रहती है। दर्शन शाश्वत जीवन का दर्शन होता है। इस नाते वह नित्य और सनातन तत्व का अनित्य और परिवर्तनशील स्थितियों से समन्वय करता है। दर्शन यदि एकांगी हो तो वह सम्पूर्ण और शाश्वत तत्व को नहीं देख पाता, क्योंकि शाश्वत तत्व एकांगी नहीं होता।

दर्शन जीवन की जाग्रत शक्ति है। इसलिए उसे मानव के सामने प्रतिक्षण आने वाली नई-नई समस्याओं को समझने और सुलझाने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। कहा जा सकता है कि यहाँ वर्तमान और परिवर्तनशील तत्वों पर अधिक ज़ोर दिया जा रहा है और शाश्वत या परमतत्व की उपेक्षा की जा रही है। किन्तु यदि यह मान लिया जाय कि परिवर्तनशील और नित्य तत्व में घनिष्ठ सम्बन्ध है तो यह समझने में कठिनाई न होगी कि वर्तमान या परिवर्तनशील स्थिति से होकर ही हम परम और तत्व तक पहुँच सकते हैं। इस प्रकार परम और शाश्वत का परिवर्तनशील वर्तमान से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। और उसका अनुभव करने के लिए हमें ऐसे जीवित दर्शन की आवश्यकता है जो हमारे जीवन को गति और ज्ञान दे। पिछले युग में परम तत्व की जो धारणा थी वह आज के युग में हमारी अधिक सहायता नहीं कर सकती थी।

अस्तु हर पीढ़ी को अपने जीवन-दर्शन का विकास करना चाहिए और फिर उस जीवन-दर्शन से पथप्रदर्शन ग्रहण करना चाहिए। आज सम्पूर्ण मानव जाति अधिकाधिक निकट आ रही है और एकता के सूत्र में बँधती जा रही है। इसलिए मानव मात्र की समस्याएँ समान होती जा रही हैं। लेकिन जिस जाति के दार्शनिक चिन्तन की अपनी परम्परा, विशिष्ट संस्कृति और अपना एक विशिष्ट वातावरण होगा, उसकी अपनी अलग दार्शनिक समस्याएँ भी होंगी और वह उन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास भी बराबर करेगी। दीर्घकाल से भारत का अपना विशिष्ट सांस्कृतिक जीवन रहा है और उस जीवन के अपने एक दर्शन का भी विकास हुआ है। हमारे यहाँ अत्यन्त मौलिक विचारक भी उत्पन्न हुए हैं। तथा यहाँ चिन्तन का विशिष्ट वातावरण भी है। अतएव यह स्वाभाविक है कि हमारे देश की दार्शनिक समस्याएँ भी अधिकांशतः भिन्न होंगी। ये विशिष्ट दार्शनिक समस्याएँ क्या हैं, यह रोचक जिज्ञासा है और दार्शनिक मस्तिष्क के लिए आवश्यक भी है।

भारत की क्या समस्याएँ हैं और उनका क्या वास्तविक समाधा है, इसका सम्बन्ध इस बात से है कि हम भारतीयों की क्या विशेष है और क्या स्थिति है। यही हमारी असली स्थिति है और य हमारे जीवन की आधारशिला है। एक ओर हमारा चरित्र और हमा व्यक्तित्व, हमारा स्वभाव, व्यवहार, रुचि और आदर्श तथा दूसरी ओ हमारे देश की, हमारे पास-पड़ोस की और बाहरी दुनिया की भौतिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, इन्हीं दोनों बातों से हमा समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं और उनका समाधान भी होता है किन्तु सामयिक या वर्तमान समस्याओं का समाधान ढूँढ़ते समय ह अपनी दृष्टि शाश्वत की ओर भी रखनी चाहिए अन्यथा वह समाधा काम चलाऊ होगा, स्थायी समाधान नहीं। बाहरी परिस्थितियों अवस्थाओं को भौतिक तथ्यों के रूप में समझना कठिन नहीं। लेकि हमारा व्यक्तित्व और स्वभाव जटिल चीज़ है। हो सकता है कि हमा स्वभाव ऊपर से कुछ और हो तथा अन्दर से कुछ और। ऊपरी स्व अन्दर हमारा एक दबा हुआ स्व भी हो सकता है, जिसकी मान्यताएं बिलकुल भिन्न हों। ऐसी दशा में छिपे हुए स्व की प्रेरक शक्ति वर्तमान या ऊपरी स्व को बहुत कुछ उपलब्ध न होंगी। परन्तु जीव में वास्तविक कार्य या सृजन तो तभी किया जा सकता है जब अपन समग्र शक्तियों को बटोर कर निर्दिष्ट लक्ष्य या कार्य में लगाया जाय इसके अलावा वातावरण का भी वास्तविक अर्थ और स्वरूप हमा स्वभाव से ही स्पष्ट होता है। इस प्रकार स्व का दोहरा महत्व है।

राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ राष्ट्रीय सरकार बनी। हमें अपना प स्वयं निर्दिष्ट करने की शक्ति प्राप्त हुई और आत्मविकास का अवस मिला। लेकिन अब भारतीय जनता का वह कौन सा स्व है जो कार्य प्रवृत्त होगा, जो आत्मानुभूति कर आत्मसंतोष का लाभ पाएगा स्वतंत्रता के बाद से राष्ट्रीय आत्मा और स्व की खोज के प्रयत्न चा ओर से आरम्भ हो गए हैं। लेकिन यह खोज कर लेना कुछ सरल न है। गत ३० वर्षों के स्वाधीनता संघर्ष काल में हमारा एक विशिष्ट विकासोन्मुख हुआ है। क्या वही हमारा प्रतिनिधि स्व है? या ह अपने समूचे ऐतिहासिक अस्तित्व पर दृष्टिपात करें, विशेष रूप से उ कालों के स्व पर जो हमारे सर्वाधिक सर्जनात्मक काल रहे हैं औ जिन्होंने हमें संदेश के लिए जीवन के सतत आदर्श प्रदान किए हैं त अधिक सतत स्व की खोज के लिए प्रेरित किया है। जैसा गीता कहा गया है स्वभाव सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस कथन के अनुसा आधुनिक भारत के स्वभाव की खोज आधुनिक भारत की सबसे मह पूर्ण सांस्कृतिक समस्या है।

ज्यों-ज्यों आधुनिक भारत के स्वभाव को समझते जायेंगे त्यों-

हम अपनी छिपी हुई गहरी अन्तर्प्रवृत्तियों का उपयोग कर सकेंगे। यह उपयोग हमारी सर्जनात्मक शक्ति को बढ़ाएगा। फलतः, हमें अपने कार्यों द्वारा पहले से अधिक आत्मसन्तोष होगा।

स्व की जिज्ञासा राष्ट्रव्यापी है। परन्तु, देश के वातावरण में इस जिज्ञासा के विरुद्ध भी कुछ शक्तियाँ काम कर रही हैं। ये प्रवृत्तियाँ हैं: "दूसरे क्या कर रहे हैं?" "आधुनिक जगत में क्या करना आवश्यक है?" "हमें प्रगतिशील होना चाहिए।" "सफलता क्या है?" "हम दूसरों से पिछड़े न रहें।" ये सब सामान्य चीज़ें हैं। इनके प्रभाववश हम कार्यप्रवृत्त होते हैं। ऐसी दशा में स्वभावतः ये प्रवृत्तियाँ हमारे प्रयत्नों-प्रयासों की गति-दिशा का निर्देशन भी करती हैं। परन्तु जिस हद तक हम इन सामान्य प्रवृत्तियों के निर्देशन द्वारा अपनी गति-दिशा का निर्धारण करते हैं उस हद तक हम अपने आपको आत्मनिर्णय के अधिकार से वंचित रखते हैं। ऐसा करने से हमारे प्रयत्न गहराइयों को छू पाने की बजाय ऊपरी सतह तक ही सीमित रह जाते हैं। जीवन उन्नत नहीं हो पाता। हम उचित ढंग से तभी काम कर सकते हैं जब होश-हवास में हों, हम पर कोई बाहरी ज़ोर या दबाव न हो। हम अपने स्वभाव को समझते हों। हमें अपने निश्चय करने का अधिकार आप हो। जब ये सारी बातें हों तब हमें यह तय करना चाहिए कि हमें अमुक कार्य करना है।

आजकल हमारे देश में अनेक राष्ट्रीय योजनाओं पर काम चल रहा है। उदाहरण के लिए इन योजनाओं में सन्निहित अन्तर्प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना काफी रोचक होगा। इन योजनाओं को बनाने वालों ने दो बातों का स्थूलतः ध्यान रखा है। एक तो यह कि उस क्षेत्र में अन्य देश क्या कर चुके हैं और दूसरे यह कि लोगों में नागरिक भावना के प्रति कितनी सजगता है। योजना बनाने वालों के ये अत्यन्त साधारण कार्यप्रवृत्तकारी तत्व हैं। ये योजनाएँ कुछ अंशों में भारतीय जनता की परम्परागत निस्स्वार्थता और सेवा की भावना पर राष्ट्रीय विकास की लक्ष्य प्राप्ति के लिए निर्भर करती हैं। उत्तरोक्त वृत्तियों के कुछ मौलिक भारतीय आदर्श हैं, जबकि पूर्वोक्त बातों का आधार साधारण स्वार्थ है।

प्रजातन्त्र और राजनीति ने स्वतन्त्रता के बाद से हम पर सबसे अधिक प्रभाव डाला है। सामान्यतः इन दोनों का समन्वय भी सन्तोषजनक है। परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि यह समन्वय स्वतन्त्र ढंग से हुआ है। इस समन्वय का पुरानी और इससे मिलती-जुलती उन गहरी प्रवृत्तियों के साथ मिश्रण होना आवश्यक है जो हमारे स्वभाव में गहराई से जड़ पकड़ चुकी हैं। अभी तक यह नहीं हो पाया है। कहा जा सकता है कि समय के साथ राष्ट्रीय जीवन में भी प्रौढ़ता एवं सुचारुता आती जायगी। लेकिन यदि हम चाहें तो वांछित प्रौढ़ता और सुचारुता अपेक्षाकृत जल्दी भी आ सकती है। इसका उपाय यह है कि हम अपनी छिपी हुई राजनीतिक प्रवृत्तियों को मुखरित करें, उनको चिन्तन और अभ्यास द्वारा सशक्त बनायें जिससे उसमें वर्तमान के सर्वोत्तम और अविच्छिन्न तत्व भी घुलमिल जायँ।

हमारे जीवन में कार्य करने वाली उपरोक्त दोनों शक्तियों (प्रजातंत्र और राजनीति) ने धर्म के साथ बड़ी भीरुता से व्यवहार किया है। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त शक्तियों ने राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बड़ी पटुता से व्यवस्था की है। लेकिन भारत में धर्म प्राचीनकाल से ही भारतीय जीवन के परिचालन का बड़ा शक्तिशाली तत्व रहा है। धर्म ने भारतीयों से बड़े-बड़े कार्य कराये हैं। किन्तु कालान्तर में जब धर्म का पतन हो गया तो उसका दुरुपयोग भी हुआ। परन्तु कोई भी प्रजातन्त्र, जिसका लक्ष्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना हो किसी भी ऐसे शक्तिशाली तत्व की सहायता लेने से विमुख नहीं हो सकता जिससे उसके लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान मिले। मानव-मात्र को जिन शक्तियों ने सबसे अधिक प्रेरणा दी है और कार्यप्रवृत्त कराया है, धर्म का उन सब शक्तियों में प्रमुख स्थान है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत में इस धर्म की दशा बड़ी अस्तव्यस्त रही है। तो क्या हम अपने राजनीतिक और प्रजातांत्रिक जीवन को इस अस्तव्यस्तता से अलग ही रखना चाहते थे यह बात कुछ समझ में नहीं आती। जो भी हो हमें धर्म की अस्तव्यस्तता की समस्या का साहसपूर्ण समाधान खोजना होगा। हमें धर्म के मूलभूत तत्वों को समझना होगा। इसके उपरान्त राजनीति और धर्म के बीच खड़ी दीवाल को ढहाना पड़ेगा। इस दीवाल के गिरा देने का अर्थ होगा कि हम धर्म की उन समस्त प्रेरक शक्तियों को आत्मसात कर लेंगे जो आज हमें उपलब्ध नहीं हैं। इसके अनन्तर हम उन शक्तियों को व्यक्ति और राष्ट्र की सेवा में प्रयुक्त कर सकेंगे। हमारी बुद्धि विकसित होगी और जीवन में एकरसता आएगी। हम जिन साधनों से राजनीतिक जीवन और उसकी विभिन्न गतिविधियों को सबल बनाना चाहते हैं उन साधनों को ऐसा करने से विशेषतः प्रेरणादायी शक्तियों को बड़ा बल मिलेगा।

इस समस्या के समाधान की ओर आधुनिक काल के आरम्भ में ही संकेत किया जा चुका है। श्री रामकृष्ण ने अपने महान आदर्श द्वारा दिखला दिया था कि हर धर्म में ईश्वरानुभूति और ईश्वर प्राप्ति के रास्ते हैं और वे उनके जीवन को किस प्रकार सम्पन्न बना चुके हैं। इसी अनुभूति को श्री अरविन्द ने दार्शनिक रीति से सूत्रबद्ध किया था। वह मानवता के आध्यात्मिक धर्म के पोषक हैं। सम्पूर्ण मानवता की एक ही आत्मा है। इसलिए विभिन्न धर्म एक ही ईश्वर की अनुभूति के विभिन्न और विशिष्ट प्रकार हैं। यही सब धर्मों का सारभूत सत्य है। इस तथ्य की मान्यता व्यक्ति (की आत्मा) को सबल बनाएगी, उसे ईमानदार बनाएगी तथा राष्ट्रीय एकता की वृद्धि कर उसे सुदृढ़ करेगी।

हमें एक मौलिक आधिभौतिक समस्या का समाधान भी करना है। यह तो सब ही सरलता से मान लेंगे कि भारतीय स्वभाव अनिवार्यतः आधिभौतिक है। वह केवल अनुभूतिमात्र से सन्तुष्ट हो जाने वाला नहीं है। वह हर प्रश्न का, हर समस्याका, पूर्ण समाधान चाहता है। भारतीय जन जीवन के इतिहास में कभी कोई रचनात्मक समाधान सामने ही न आया हो—ऐसा नहीं है। बुद्ध धर्म का जन्म भारतीय आत्मा की इस सबल प्रवृत्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। लेकिन बुद्ध धर्म भी उसे अनिश्चित काल तक सन्तुष्ट नहीं कर सका। उसने

कुछ आधिभौतिक सिद्धान्त स्थिर किए थे, किन्तु कालान्तर में उसे भी अपने मान्य सिद्धान्तों और जीवन के तरीकों को बदलना पड़ा।

कुछ शताब्दियों का इतिहास देखिए। आप पाइएगा कि इस इतिहास में भारतीय जीवन-दर्शन में जगत को न्यूनाधिक निस्सार समझा गया है। यही विरासत हमें मिली है। लेकिन आधुनिक जीवन सांसारिक या भौतिक सफलताओं को बड़ा महत्त्व देता है। इस स्थल पर हमें मानसिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है। यदि मैं अनुभव करता हूँ कि यह जगत निस्सार है; मिथ्या है, तो जिन सिद्धान्तों को मैं मानता हूँ और जिनके अनुसार आचरण करता हूँ, उनके होते हुए जागतिक क्षेत्र में मैं निर्बाध रूप से अपनी सारी शक्तियों और प्रवृत्तियों का किस प्रकार उपयोग कर सकता हूँ? यहाँ पर किसी दार्शनिक संश्लेषण (Synthesis) की बड़ी आवश्यकता है। जो स्वभाव से ही रचनात्मक स्वभाव के हों, उनके लिए ऐसा संश्लेषण आवश्यक नहीं है लेकिन भारतीय स्वभाव के लिए यह व्यक्तिमात्र की आवश्यकता है और साथ ही राष्ट्रीय आवश्यकता भी। वह जो काम कर रहा है उसका संसार से क्या मतलब है और इन दोनों का पूर्ण सत्य से क्या सम्बन्ध है? यदि इन दोनों के बीच कोई सावयवी सम्बन्ध खोज लिया जाता है तो प्रजातन्त्र को, राष्ट्रीय एवं नागरिक जीवन को तथा हमारे सब प्रयत्नों को अपेक्षाकृत अधिक पुनीत स्थान प्राप्त हो जाएगा। या यों कह लीजिए कि वे सब ईश्वर और सत्य की प्राप्ति के साधन बन जाएँगे।

विज्ञान और प्रौद्योगशास्त्र के क्षेत्र में राष्ट्रीय शक्ति का बहुत बड़ा अंश लगा हुआ है। लेकिन इन दोनों का ही हमारे उस जीवन-दर्शन से कोई सम्बन्ध नहीं है जो हम पीढ़ियों से मानते चले आ रहे हैं। यदि उपरोक्त आधिभौतिक समस्या का कोई सन्तोषजनक हल निकाल लिया जाता है तो हम भारतीय चरित्र में वे सारी शक्तियाँ समाविष्ट कर सकेंगे जो भारतीय जीवन में सर्वोत्तम मानी जाती हैं। यदि प्रकृति पूर्णतः भौतिक है और मैं मन ही मन उसे अयथाथ मानता हूँ तो मैं उसमें निहित सत्य को खोजने के लिए उत्साहित कैसे हो सकता हूँ? लेकिन यदि प्रकृति ब्रह्म का एक यथार्थ पक्ष है और यदि कोई चाहे तो ब्रह्म को इस पक्ष का अध्ययन करके भी पा सकता है, तो वह प्रकृति का अध्ययन अत्यन्त प्रेरणादायी विषय बन जाता है।

जीवन की बहुमुखी गतियों का क्रमिक संश्लेषण भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट प्रवृत्ति रही है। भारतीय इतिहास में हमें बारम्बार परस्पर विरोधी तत्वों का विस्मयकारी ढंग से सम्मिश्रण और समन्वयीकरण हुआ है तथा उसमें नए तत्व मिल गए हैं। इस प्रवृत्ति ने अपनी शक्ति और अपने बल का अभी पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्रीय जीवन और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में पर्याप्त परिचय दे दिया है। सम्पूर्ण भारत का एक राष्ट्र के रूप में संगठन और छोटे-छोटे राज्यों का विलयन हमारी गृह नीति के क्षेत्र की सबसे अधिक उल्लेखनीय सफलता है। विदेशी क्षेत्र में इस प्रवृत्ति की शक्ति विश्व शान्ति और नैतिक मूल्यों के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने के रूप अभिव्यक्त हुई है।

लेकिन इनमें हमें अचेतन भाव से अपनी विरासत का लाभ हु है। हम इसकी गुप्त सचाई नहीं जानते। परन्तु यह विरासत यदि हमा इतनी मज़बूती से साथ देती है और यदि हमें अपने देश में विघटनका प्रवृत्तियों को जीतने तथा विदेशों में विभिन्न राष्ट्रों के व्यापक मतभेदों दूर करने के लिए इतनी अधिक आवश्यकता है तो हमारे लिए यह ब आवश्यक है कि हम उस विरासत की शान्ति का स्रोत जान लें औ यह भी जान लें कि वह कैसे विकसित होती है। इसे भी हमें ए समस्या के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। हमें यह मानना चाहि इस समस्या का हल हमारे राष्ट्रीय जीवन की पूर्णतर अभिव्यक्ति लिए आवश्यक है।

एकता की समस्या इसका केवल एक अन्य रूप है। भारत में, ह कहते हैं, अनेक प्रकार के लोग हैं और सदैव रहे हैं। भाषा, क्षे जाति, सम्प्रदाय और धर्मों के विभिन्न दावों के बीच हम अपने आप अरक्षित पाते हैं। इसका अर्थ यह है कि हम भारत की एकता मौलिक आधार को नहीं जानते—जो भारत के पास है और सदैव र भी है। हम कहते हैं, यह आधार संस्कृति है। लेकिन संस्कृति में तो विभिन्नता है। निस्सन्देह सांस्कृतिक विभिन्नता में भी एकता कोई न कोई आधार रहा है। वह क्या है—यह भी हमारे लिए अत्य महत्त्वपूर्ण समस्या है। इसके ज्ञान बिना हम लोग राजनीतिक, आर्थि तथा अन्य ऊपरी बातों के समन्वय और हेर-फेर द्वारा एकता प्राप्ति चेष्टा करते रहेंगे और फिर भी राष्ट्रीय एकता की अरक्षा की भाव बनी रहेगी।

भारतीय जीवन में मौलिक मूल्यों को सदैव समझने, सराह करने और उन मूल्यों का आनन्द उठाने का सदैव प्रयास किया ग है। उदाहरण के लिए सत्य, अच्छाई, ईश्वर, सेवा, निस्स्वार्थता आ का नाम मौलिक मूल्यों का दृष्टान्त के रूप में लिया जा सकता है भारतीय ऋषि, मनीषी, सन्त और महात्मा स्वयं इन मूल्यों के जी जागते उदाहरण थे। इन मूल्यों की सराहना और इनके द्वारा आन लाभ करने की भावना, कोई कह सकता है, जनता या समाज क सर्वोत्तम अनुभव था और प्रेरणादायी भी था। इन्होंने भारतीय चरि को कुछ विशिष्टताएँ प्रदान कर दी हैं जो भारतीय जीवन की स शक्ति बन गई हैं।

आज, विश्व संस्कृति के अंग के रूप में, जीवन का उपयोगितावा दर्शन अधिक प्रभावशील है। भारतीय जीवन पर इसकी कै प्रतिक्रिया होती है या होनी चाहिए, यह बड़े महत्त्व की बात है। य मौलिक मूल्यों को जीवन की सच्ची आधारशिलाएँ मान लिया जा तो हमें देखना होगा कि उनको किस प्रकार सुरक्षित रखा जा सक है, उन्हें किस प्रकार उत्पन्न किया जा सकता है, अपने ही अनुभव क्षेत्र में नहीं अपितु समग्र विश्व में।

भारतीय जीवन में व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध कई शताब्दि तक निर्बल रहे हैं। जीवन के आध्यात्मिक पक्ष पर बहुत अधि

जलता पानी

उमाशंकर जोशी

नदी दौड़ी जाती, भड़भड़ जलें गिरि-वन पार्श्व-सरिता;
पड़े आगी प्रतिबिम्ब जल में; सरित हिया सुलगता।
जले देह भारी, तपतप उड़ रहे बिन्दु जल के,
किन्तु हृदय की भाप भी न कर पाती कुछ मदद ही।
औ' न बन पाता कि कर दे छाँट शीतल पर्वतों को
ज़रा रुक कर, उछल ऊपर, मार उड़ी छोर तट के।
अरे! निचोई निज सर्व दे दिया जिन पर्वतों ने
निपानों में, उसे समय पर न दे सके एक भी बूँद।
बँधी-बँधाई किनारे की यह जड़ कठोर सीमा
उलँघ कर, स्वजन दुःख को किस भाँति शान्त करना?
जल कर मरते पड़ोसी की करके अवगणना नदी को
जाना होगा सुदूर सिन्धु की बड़वाग्नि बुझाने!
वहाँ से फिर किसी दिन मेघ का रूप धर के,
यहाँ आ, कदाचित् होगा सम्भव गिरिदव बुझाना!
अरे! पर यह कब? भसम सब हो जाएँ तब क्या?

अनु०—गौरीशंकर जोशी

●

बल दिये जाने के कारण व्यक्ति को पूर्णात्मा मानने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक जीवन और उसके उत्तरदायित्व बाह्यात्मक आवश्यकता मात्र रह गए। इससे सामाजिक सुदृढ़ता की भावना तो उत्पन्न हो ही नहीं सकती थी। लेकिन व्यक्ति की एक आत्मा तो अवश्य है, किन्तु, आत्माएँ तो बहुत सी हैं, उनमें से उसकी भी एक आत्मा है जिसका अखिल ब्रह्माण्ड के अस्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार व्यक्ति का सार्वभौमिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं मानवीय पक्ष भी है। वह पक्ष सम्पूर्ण सत्य का ही एक अंश है। हमें इस पक्ष का समुचित शोध करना है। सामाजिक चैतन्यता का उचित स्थान निर्धारित करना है तथा क्रमशः उसका निर्माण करना है।

ऊपर हमने उन अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार किया है, जिन पर समकालीन भारतीय जीवन का दार्शनिक दृष्टि से विचार करने के लिए विवश होना पड़ सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम इन समस्याओं को संभवतः व्यवस्थित रीति से एक समुच्चय के रूप में रख सकते हैं। भारतीय जीवन के दीर्घ इतिहास तथा उसके व्यापक तत्वों का गहन चिन्तन करने से लगता है कि व्यक्ति की आत्मा को और जगत में व्याप्त सार्वभौमिक तत्त्व की अनुभूति उसके मौलिक तथ्य रहे हैं। उन्होंने हमारे शेष जीवन को प्रभावित ही नहीं किया, अपितु प्रेरणा भी दी है। इस परिवर्तनशील एवं बहुरूपयुक्त भौतिक जगत की पृष्ठभूमि में आत्मा स्वभावतः ऐकिक और सतत तथ्य है। यह अनुभूति ही संभवतः हमारी दूरदर्शिता, सहिष्णुता, संश्लिष्टता, आग्रहशीलता, अभिनवीकरण तथा सतह के नीचे छिपी एकता के गुणों का मूल स्रोत तथा प्रेरणादायी शक्ति थी। यदि यह सच है तो आत्मा की खोज उसके गुणों को समझने की इच्छा को जाग्रत करना, हमारी प्राथमिक और सर्वाधिक आवश्यक समस्या है। जिस हद तक हम ऐसा करने में सफल होंगे उसी हद तक जीवन धारा की ऊपरी लहरियों के झकझोरों से हमारे बह जाने की संभावना कम रह जाएगी। हम अपने आपको समझेंगे तथा विभिन्न और बहुरूपयुक्त बाह्य तत्वों को उनमें छिपी वास्तविक एकता द्वारा समझने लगेंगे और उनका उपयोग करना सीख लेंगे।

६१ लाख रुपये से निर्मित राजगृह की सप्तपर्णी गुहा के सदृश गुहा जहाँ छठी बौद्ध संगायन हुई

बर्मा में बुद्ध जयन्ती और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

सेठ गोविन्ददास

सन् १९५२ में जब मैं कनाडा में होने वाले कामनवैल्थ पार्लियामेण्ट्री कान्फ्रेंस के प्रतिनिधि के रूप में कनाडा गया, उस समय मैंने सारी पृथ्वी की ही परिक्रमा कर डाली थी। उस पृथ्वी-परिक्रमा पर मेरी एक पुस्तक 'पृथ्वी-परिक्रमा' के नाम से निकली है। कुछ लेख भी इस यात्रा पर 'धर्मयुग' में निकलते रहे हैं और कुछ रेडियो पर भी इस परिक्रमा के सम्बन्ध में मैं बोला हूँ। इस परिक्रमा की समाप्ति मैंने बर्मा में ही की थी।

यों तो बर्मा से मेरा बचपन से ही कुछ सम्पर्क रहा था। उस समय मेरे पितामह राजा गोकुलदास जी का बहुत बड़ा रोज़गार-धन्धा था। उनके कोई ८०० गाँव थे और ३०० दुकानें। उनकी एक दुकान रंगून में भी थी और, न जाने क्यों, मैं उस समय रंगून को लंगूर कहा करता था। बचपन के बर्मा के सम्पर्क के बाद मैं पहले-पहल बर्मा सन् १९५२ में ही गया। उस समय मैं नहीं जानता था कि कुछ दिनों के अनन्तर मुझे फिर बर्मा आना है।

इस बार मेरा बर्मा जाना हुआ वहाँ के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के कारण। बर्मा किसी समय भारत से अलग था। फिर भारत में सम्मिलित हुआ और फिर अंग्रेज़ों ने उसे भारत से अलग कर दिया। आज बर्मा एक पृथक देश है और यह पहला अवसर था जब भारत के बाहर किसी देश में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन हो। हिन्दी के राज-भाषा होने के उपरान्त मैंने संसद् में तथा अन्य अनेक स्थलों पर अपने भाषणों में कहा है कि हिन्दी को अब अन्तर्राष्ट्रीय स्थान प्राप्त होना चाहिए तथा राष्ट्रसंघ (यू० एन० ओ०) में भी उसे वै ही स्थान मिलना चाहिए, जैसा अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, रूसी और स्पैनि भाषाओं को प्राप्त है। मेरे ये भाषण बर्मा के हिन्दी भाषा-भाषियों पास भी पहुँचे और उन्होंने २५००वीं बुद्ध जयन्ती के अवसर प हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन करने का निश्चय किया, त उसके उद्घाटन के निमित्त मुझे निमन्त्रित किया। बर्मा में ब हुए इन हिन्दी भाषा-भाषियों ने इस सम्मेलन में एक यह विशेष की कि इसमें बर्मा निवासियों को भी सम्मिलित किया ज इसकी स्वागत-समिति का अध्यक्ष एक बर्मा निवासी श्री ऊ पा को बनाया।

दिनांक २० मई को दिल्ली से चलकर कलकत्ता में एक दिन ठ दिनांक २३ मई को मैं वायुयान द्वारा रंगून पहुँचा। बुद्ध जयन्ती कारण रंगून में इस समय बहुत अधिक चहल-पहल थी। भगव बुद्ध की यह २५००वीं जयन्ती, यद्यपि सारे संसार में मनाई तथापि मैं समझता हूँ कि बर्मा में यह दुनिया में सबसे अधिक उत्स और शान से हुई। इसका केवल यह कारण नहीं है कि बर्मा अधिकांश निवासी बौद्ध धर्मावलम्बी हैं। अन्य अनेक देशों के अधिकांश निवासी बौद्ध हैं। पर बर्मा में बुद्ध जयन्ती के इस प्र मनाए जाने का प्रधान कारण यह है कि बुद्ध जयन्ती के दिन बुद्ध की उस छठवीं संगायन के समारोह का आयोजन भी हुआ, जो गत वर्षों से बर्मा में बैठी हुई थी। बुद्ध धर्म की इन संगायनों का

लम्बा इतिहास है, जिन्हें संगीति भी कहते हैं। पहली संगायन भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के तीन मास पश्चात भारत के राजगृह में अजातशत्रु की संरक्षता में सप्तपर्णी नामक गुहा में बुद्ध भिक्षु महाकाश्यप की अध्यक्षता में हुई थी, जिसमें ५०० भिक्षुओं ने भाग लिया था। यह संगीति सात मास में पूर्ण हुई और इसमें सम्पूर्ण बुद्ध वचनों को संकलित कर तीन पिटकों में विभक्त किया गया, जिन्हें त्रिपिटक कहते हैं। दूसरी संगायन बुद्ध के परिनिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात कालाशोक की संरक्षता में उत्तरी बिहार के वैशाली में वालुकाराम महाविहार में स्थविर रेवत की अध्यक्षता में हुई थी। इसमें ७०० भिक्षुओं ने भाग लिया। इसका कार्य आठ मास में पूर्ण हुआ। यह संगीति वज्जीभूमि के भिक्षुओं के भिक्षु विनय उल्लंघन और कुछ परिवर्तन के कारण हुई थी। तीसरी संगीति सम्राट् अशोक की संरक्षता में बुद्ध भगवान के परिनिर्वाण के २१८ वर्ष बाद पाटलिपुत्र के अशोकाराम नामक महाविहार में मोग्गलिपुत्त तिस्य स्थविर की अध्यक्षता में हुई और इसमें १,००० भिक्षुओं ने भाग लिया तथा यह नौ मास तक चली। इसी संगायन के उपरान्त अशोक ने सत्धम्म के प्रचार के लिए अनेक धर्मदूतों को संसार में भेजा और ८४,००० बिहारों तथा स्तूपों का निर्माण कराया। चौथी संगायन भगवान तथागत के निर्वाण के ५३५ वर्ष बाद लंका के मलय गाँव की अशोक गुहा में महाथेर की अध्यक्षता में हुई, जिसमें ५०० भिक्षुओं ने भाग लिया और पहली बार भगवान तथागत के उपदेशों को लिपिबद्ध किया गया। पाँचवीं संगीति आज से ८६ वर्ष पूर्व उस समय की बर्मा की राजधानी माण्डले में राजा मिण्डोन द्वारा आयोजित हुई थी। इसमें २४०० भिक्षुओं ने पाँच मास तक कार्य किया था और इसके पश्चात संगमरमर की ७२९ शिलाओं पर भगवान बुद्ध के उपदेशों को लिपिबद्ध किया गया। बर्मा के रंगून में यह जो संगायन हुई वह बुद्ध धर्म की छठी संगायन थी। संगायन का प्रमुख उद्देश्य धर्म सम्बन्धी विवादों का निराकरण करना और बुद्ध शासन का संशोधन होता है। यह जो छठी संगायन हुई इसकी एक विचित्र पृष्ठभूमि भी है।

कुछ साल पहले बर्मा के प्रधान मन्त्री ऊ नू भारत आए थे। ऊ नू बड़े धर्मपरायण महानुभाव हैं। उस समय उन्होंने पवित्र बौद्ध तीर्थों का पर्यटन किया था और इन पर राजगृह की सप्तपर्णी गुहा का बड़ा प्रभाव पड़ा था। राजगृह से जब ये बौद्धगया में बोधिवृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित अवस्था में बैठे हुए थे, तो उन्होंने एकाएक कुछ स्वप्न-सा देखा कि सप्तपर्णी जैसी गुहा में बुद्ध भिक्षु और सद्गृहस्थ एकत्र होकर संसार में शान्ति की नींव डालेंगे। बर्मा के प्रधान मन्त्री का यह स्वप्न इसी छठी संगायन के रूप में साकार हुआ। बर्मा के संसद् ने एक विशेष विधेयक द्वारा बौद्ध शासन कौंसिल स्थापित कर, इसे इस छठी संगीति की तैयारी और आयोजन का भार सौंपा। इस संगायन का मुख्य उद्देश्य भगवान तथागत के उपदेशों को ऐसे प्रामाणिक रूप में उपस्थित करना था, जो समस्त थेरवादी बौद्ध भिक्षुओं को मान्य हो।

इस संगायन के लिए राजगृह की सप्तपर्णी नामक गुहा के सदृश एक गुहा बनाई गई। इस गुहा का नाम पवित्र महापसना गुहा रखा गया। बड़े-बड़े इंजीनियरों ने इस गुहा को बनाया और इसमें ६१ लाख रुपया व्यय हुआ। बाहर से यह गुहा ठीक राजगृह की सप्तपर्णी गुहा के सदृश दिखती है। और भीतर से यह गुहा क्या वर्तमान काल का एक हाल है। बाहर से इसकी लम्बाई ४५५ फुट और चौड़ाई ३७२ फुट है और भीतर से इसकी लम्बाई २२० फुट और चौड़ाई १४० फुट है। गुहा की छत ६ स्थूल स्तम्भों पर स्थित है। और इसमें लगभग १०,००० व्यक्ति सुविधापूर्वक बैठ सकते हैं। इस गुहा के बनाने में केवल १४ महीने लगे।

यह गुहा ऊ नू द्वारा बनाए गए शान्ति पगोडा के अहाते में ही बनी है और गुहा के साथ अन्य अनेक इमारतें भी बनी हैं। इनमें प्रधान हैं—बौद्ध भिक्षुओं के रहने के स्थान। हर भिक्षु के लिए एक कमरा बनाया गया है। इस प्रकार अढ़ाई हज़ार कमरों का निर्माण किया गया है। इन इमारतों में कोई ४५ लाख रुपया अलग लगा।

कोई दो वर्ष पहले इसी गुहा में छठी संगायन बैठी, जिसमें अढ़ाई हज़ार भिक्षुओं ने ऊ खिन बौद्ध भिक्षु की अध्यक्षता में कार्य किया। इन अढ़ाई हज़ार भिक्षुओं में से लगभग दो हज़ार भिक्षु बर्मा के ही थे और शेष ५०० थाइलैण्ड, श्रीलंका, कम्बोदिया, लाओस,

शान्ति पगोडा जो बर्मा के प्रधान मंत्री ऊ नू ने बनवाया है

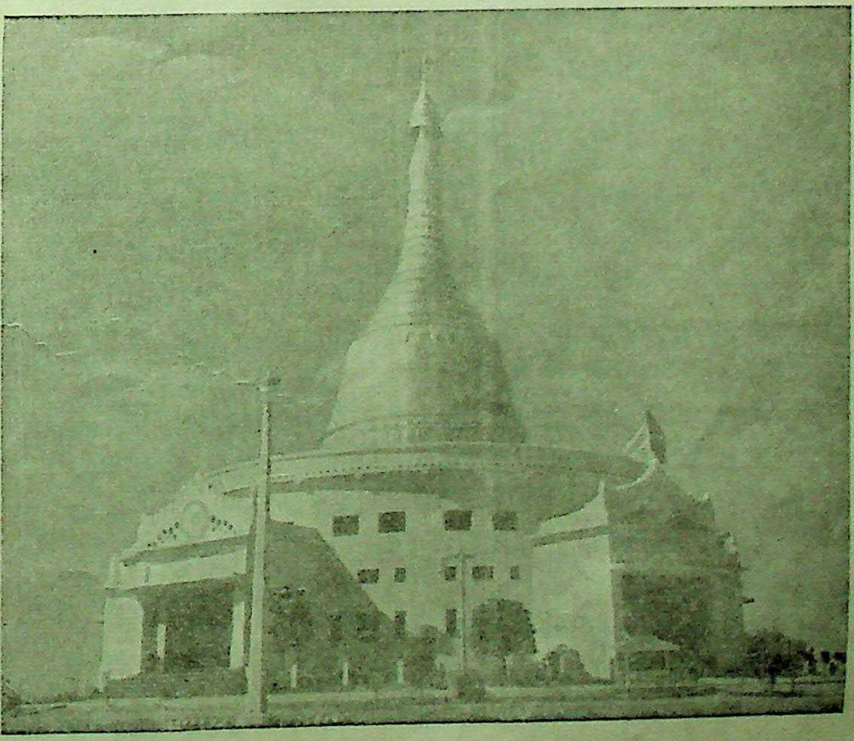

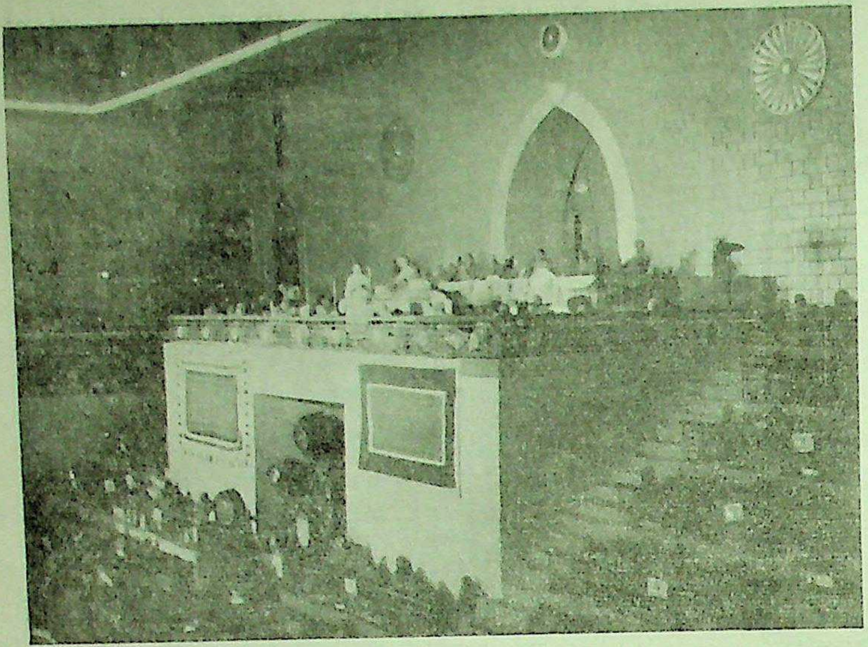

पवित्र गुहा के भीतर मंच

जापान, नवचीन, भारत, इन्दोनीशिया, तिब्बत, नेपाल, सिक्किम, लद्दाख, वियतनाम, पाकिस्तान और मलाया से आए थे।

बौद्ध धर्म में वैशाख शुक्ला पूर्णिमा का सबसे अधिक महत्त्व है। उसी दिन भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, उसी दिन उन्हें बुद्ध पद प्राप्त हुआ था और उसी दिन उनका निर्वाण हुआ था। भगवान बुद्ध की २५०० वीं परिनिर्वाण तिथि इस वर्ष २४ मई को पड़ी थी और उस दिन जब इस संगायन का समारोह हो रहा था, उस समय मैं भी बर्मा में इस पवित्र महापसना गुहा में बैठा हुआ इस समारोह का दर्शन कर रहा था। कैसा भव्य था वह सारा दृश्य ! जीवन में वैसा सांस्कृतिक आयोजन कभी नहीं देखा था और न भविष्य में वैसा दृश्य देखने की सम्भावना है।

गुहा बिजली के प्रकाश से जगमगा रही थी। इस पबित्र गुहा के हॉल के ऊँचे रंगमंच पर संगायन के अध्यक्ष अनेक बौद्ध भिक्षुओं के साथ बैठे हुए थे। गुहा की लम्बाई में मंच के दोनों ओर पाँच-पाँच कतारों में, जो एक के ऊपर एक थीं, लगभग अढ़ाई हज़ार बौद्ध भिक्षु विराजमान थे। सजावट में चक्र और छत्र दो वस्तुओं की प्रधानता थी। इन कतारों के सामने जो रेलिंग थी उस पर सुनहरे रंग के अशोक चक्रों की पंक्तियाँ थीं और सजावट के जो कागज के पदार्थ थे वे अधिकांश छत्र के आकार के थे। ये बौद्ध भिक्षु अपने केसरी रंग के चीवर धारण किए हुए थे। हर भिक्षु के सामने एक नीले रंग का चमकदार काष्ठ का पटा रखा था। हाल की भूमि पर रंग-बिरंगी बिछावन थी, जिस पर जन समूह एकत्रित था।

सबसे आगे बर्मा के राष्ट्रपति विराजमान थे। उनके बर्मा के प्रधान मन्त्री और उनके पीछे भिन्न-भिन्न देशों आए हुए कुछ महानुभाव, भिन्न-भिन्न देशों के बर्मा स्थित राजदूत तथा कुछ अन्य व्यक्ति भी थे। उन्हीं में भी बैठा हुआ था।

दिनांक २४ मई को यह समारोह प्रातःकाल बजे से साढ़े दस-बजे तक चला। पहले एक वाद्य उसके पश्चात वन्दना हुई। फिर बाहर से आए सन्देश पढ़े गए। यह सन्देश हर देश ने अपनी-भाषा में भेजे थे। मेरा हृदय उस समय दुःख से गया, जब भारत के राजदूत श्री सक्सेना ने भारत राष्ट्रपति का सन्देश अंग्रेज़ी भाषा में पढ़ा। यही सन्देश था जो किसी विदेशी भाषा में पढ़ा सन्देशों के पठन के पश्चात बर्मा के राष्ट्रपति ऊ का भाषण हुआ। उसके बाद संगायन के अध्यक्ष तदुपरांत संगायन के दो वर्ष के कार्यों का विवरण गया, फिर अभिधम्म पिटक के कुछ अंश पढ़े गए उसके बाद कुछ धार्मिक प्रश्नोत्तर हुए। इसके उन पाँच भिक्षु समुदायों ने, जिन्होंने दो वर्ष तक पाँच विभागों विभक्त हो संगायन का काम किया था, पिटक के रूपों को स्वीकृति और अन्त में संगायन समाप्ति की घोषणा की गई। समारोह सारा कार्य पाली और बर्मा की भाषा में हुआ। बीच-बीच में भिक्षु साधु-साधु शब्द का तीन-तीन बार उच्चारण करते थे, उस तो रोमांच हो आता था।

दो वर्ष पूर्व छठी बौद्ध संगायन के उद्घाटन अवसर पर संयुक्त राष्ट्र की तत्कालीन अध्यक्षा श्रीमती विजयालक्ष्मी भाषण देते हुए

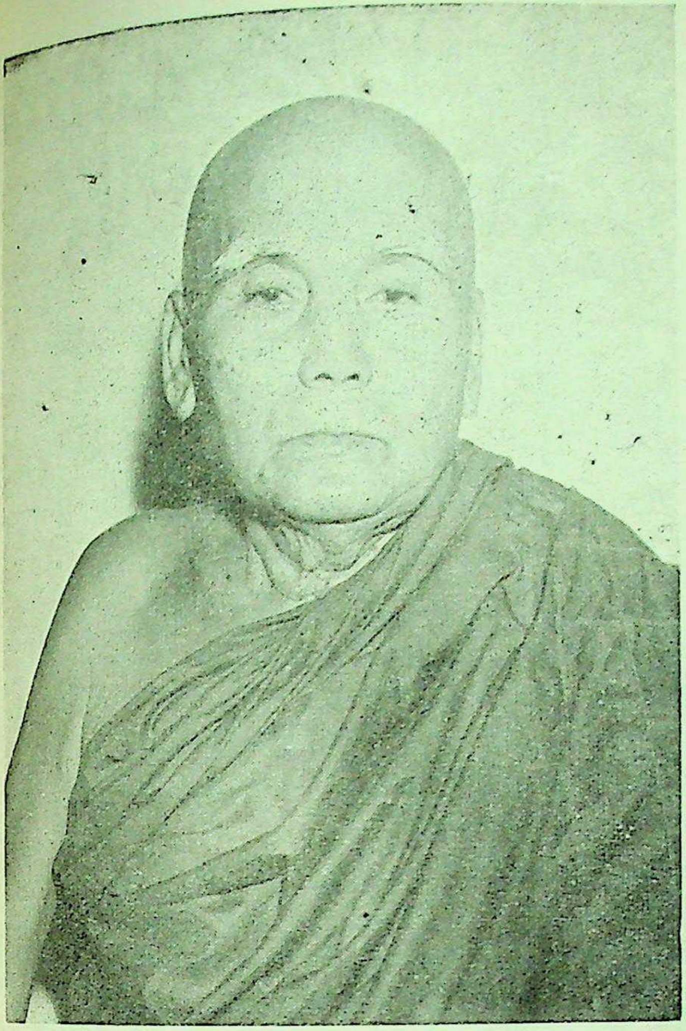

बौद्ध संगायन के अध्यक्ष

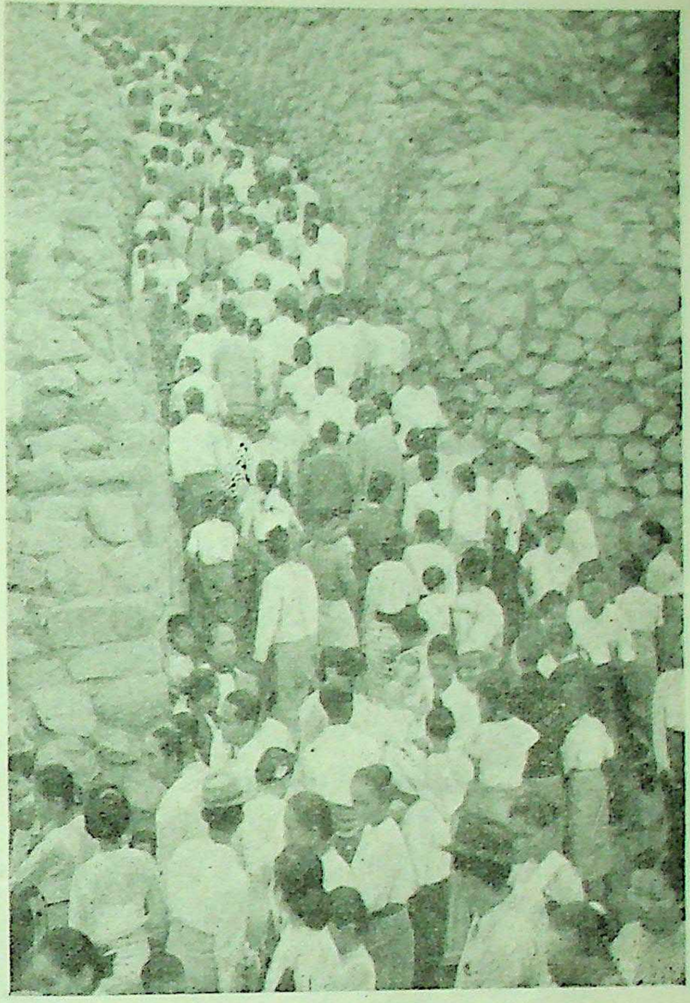

पवित्र गुहा में प्रवेश करता हुआ नर समूह

इस गुहा में केवल निमन्त्रित व्यक्ति ही जा पाए थे। शेष जनता गुहा के बाहर एकत्र थी। ध्वनिविस्तारक यन्त्र की ऐसी व्यवस्था थी, जिससे गुहा के भीतर जो कार्य हो रहा था वह बाहर घूमने वाली जनता को भी सुनाई दे। बाहर की जनता की संख्या लाखों ही थी।

बुद्ध जयन्ती के इस अवसर पर बर्मा के २,६६८ युवक-युवतियाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ भी हुए। उन्हीं में बर्मा के प्रधान मन्त्री ऊ नू की एक पुत्री भी भिक्षुणी हुई हैं। मैंने जब यह सुना तो हठात् मेरे मुँह से निकला कि इस अवस्था में इस प्रकार भिक्षु-भिक्षुणी होने से इतने युवक-युवतियों के जीवन क्या संयमपूर्वक चल सकेंगे? पर मेरी इस शंका का तुरन्त ही निराकरण हो गया, इसलिए कि इन युवक-युवतियों को जीवन भर भिक्षु-भिक्षुणी रहने की आवश्यकता नहीं। बर्मा के हर निवासी को चार महीने से लेकर चार वर्ष तक भिक्षु और भिक्षुणी होना ही पड़ता है। उनका यह संस्कार हमारे देश

बौद्ध भिक्षुओं का सहभोज

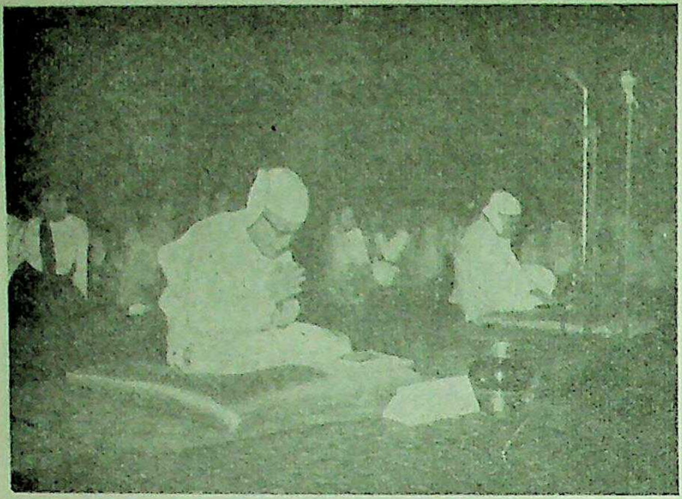

पवित्र गुहा में प्रार्थना करते हुए बर्मा के राष्ट्रपति

पवित्र गुहा में प्रार्थना करते हुए बर्मा के प्रधान मंत्री

के प्राचीन वैदिक उपनयन संस्कार के अनुसार है। उपनयन के पश्चात समावर्तन तक इस देश के निवासियों को जिस प्रकार ब्रह्मचारी रहना पड़ता था और समावर्तन के पश्चात वे जिस प्रकार गृहस्थ-आश्रम में आते थे, उसी प्रकार बर्मा के बालक और बालिकाओं तथा युवक और युवतियों को कुछ दिन के लिए भिक्षु और भिक्षुणी रहना अनिवार्य है।

एक बात और हुई। बुद्ध जयन्ती के उत्सव पर दिनांक २२ मई से २६ मई तक यात्रियों के भोजन की मुफ़्त व्यवस्था को गई थी। यह व्यवस्था बर्मा की अनेक सार्वजनिक संस्थाओं ने की थी। किसी ने किसी दिन और किसी ने किसी दिन। उस व्यवस्था के लिए इन्हीं संस्थाओं ने चन्दा भी एकत्रित किया था। इसका सबसे बड़ा भार, दो दिन के दोनों बार के भोजन का, बर्मा के मारवाड़ी ऐसोसिएशन पर पड़ा था। सुना गया कि इस ऐसोसिएशन ने हर दिन लगभग २५-२ हज़ार व्यक्तियों को भोजन कराया था।

दिनांक २६ मई के ४ बजे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का आयोज हुआ। बड़ी अच्छी उपस्थिति थी। भारतवासियों के अतिरिक्त ब निवासी काफी संख्या में उपस्थित थे। पहले मीरा का एक गीत हुआ उसके पश्चात स्वागताध्यक्ष ऊ पारगू का हिन्दी में भाषण हुआ। पारगू काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। बर्मी और हिन्दी दों भाषाओं के पण्डित हैं। इन्होंने हिन्दी के कुछ ग्रन्थों का बर्मी भाष में अनुवाद किया है। स्वागताध्यक्ष के भाषण के पश्चात मेरा उद्घाटन भाषण हुआ और उसके पश्चात सम्मेलन के अध्यक्ष पद श्री सत्यनारायण जी गोयनका का। गोयनका जी के पूर्वज भारत से ब में गए थे और अब उनका कुटुम्ब बर्मा में रहता है सत्यनारायण जी बर्मा के ही नागरिक हो गए हैं गोयनका जी के भाषण के पश्चात बर्मा के प्रधान मन्त्री ऊ नू का सम्मेलन के लिए आया हुआ अत्यन्त उत्साहवर्द्धक सन्देश पढ़ा गया। इसके बाद डा ओमप्रकाश ने बर्मा में हिन्दी का जो कार्य हो रहा है उसका संक्षिप्त विवरण पढ़ा। इस विवरण के बाद इ अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव पास हुआ, जिसमें कह गया था कि हिन्दी को अब वैसा ही अन्तर्राष्ट्रीय स्था प्राप्त होना चाहिए जैसा अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, रूसी औ स्पैनिश भाषाओं को है।

इस सम्मेलन की सफलता का श्रेय सम्मेलन अध्यक्ष श्री सत्यनारायण जी गोयनका, स्वागताध्य ऊ पारगू, मन्त्री डा० ओमप्रकाश, महावीरप्रसाद जी दांईवाला, रामगोविन्द जी वर्मा वहाँ के हिन्दी दैनि 'प्राची प्रकाश' के सम्पादक श्री चन्दूलाल ठक्का, संचाल श्री प्रसिद्ध नारायण पाठक और हिन्दी साप्ताहि 'नवजीवन' के सम्पादक श्री रामप्रसाद बर्मा को है।

संगायन के दर्शन के लिए जाता हुआ गाता-बजाता नर समूह

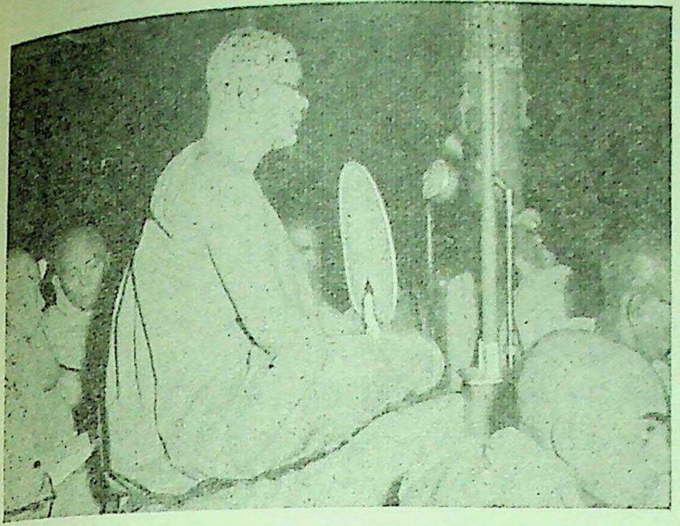

अन्तिम दिन के प्रश्नोत्तर : उत्तरदाता

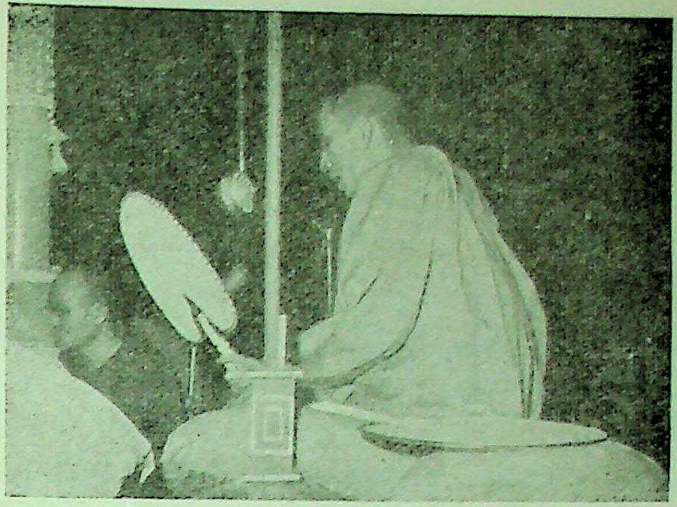

अन्तिम दिन के प्रश्नोत्तर : प्रश्नकर्ता

श्री सत्यनारायण जी रंगून के एक बहुत बड़े व्यापारी हैं। इनका काम-काज बर्मा के बाहर भी अनेक स्थानों पर है। इन्होंने मुझे आश्वासन दिया है कि वे बहुत जल्दी इसी प्रकार के हिन्दी साहित्य सम्मेलनों को मलाया की राजधानी सिंगापुर, स्याम की राजधानी बैंकाक, जापान के नगर ओसाका और हाँगकाँग में भी आयोजित करेंगे।

मेरी दृष्टि से बर्मा के बुद्ध जयन्ती उत्सव के अवसर पर हिन्दी भाषा के इस आयोजन ने सोने में सुगन्ध मिला दी।

मेरे जीवन के अनेक स्वप्नों में एक स्वप्न था भारत की राष्ट्रभाषा के पद पर हिन्दी को आसीन कराना। यह स्वप्न साकार हो गया। उसके पश्चात इसी सम्बन्ध में मेरा एक दूसरा स्वप्न है कि हिन्दी को वही अन्तर्राष्ट्रीय स्थान प्राप्त हो जो विश्व की कुछ भाषाओं को है। बर्मा के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इस अधिवेशन से मुझे आशा हो गई कि जीवन में शायद इस स्वप्न को भी साकार देख सकूँ।

भारत और बर्मा का सम्बन्ध २,००० वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। हिन्दी भाषा इस सम्बन्ध को और भी दृढ़ करेगी, इसमें मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है।

बोधि वृक्ष के सिंचन के लिए पवित्र नीर ले जाने वाली नारियाँ

सप्त प्राचीर दुर्ग

रामचन्द्र शर्मा

सप्त प्राचीर दुर्ग
कड़ा पहरा उसके बाहर भीतर !
महल बीच में, नीचे
तहख़ाना।
वहाँ रो रही है सुन्दर राजकुमारी
मान रक्षा का रह गया एक ही मार्ग,
नदी, आग, गरल, छुरा !
पल भर का अन्तर है जीवन और मरण के बीच में ?
सप्त प्राचीर पार कर
सौ वीरों को मार कर
क्या न बढ़ आएगा राजकुमार प्रिया के पास ?
लो वहाँ पैरों की आहट ! नयनों का विश्वास न करें तात ?
कौन है यह आँखों के सम्मुख !
रात-दिन का मधुर स्वप्न उतरा तो नहीं धरती पर ?
'प्यारी मेरी, लो मैं आया
खलनायक को मार आया
तेरे लिए !'
मुँह पर मुस्कान चमकी; आँखों ने कुशल पूछा, धरती ने पिया विष
सौ साल तक सुख से जीते रहे रूप और अनुराग साथ साथ !
नानी की कहानी, साथ साथ गुल्ली-डंडा
कौड़ी, गेंद और काँच की गोली,
ऐसे लोक में
एक शिशु आया, आया !

क्या आयेगा सचमुच ?
प्रभु के आने पर क्या बजे नगाड़े ?
चली क्या कोई मार्गदर्शक सवारी ?
बादल को नभ में क्या तुमने तिरते देखा ?
कहो तो किस घड़ी कुसुम में सौरभ आया ?
शिशु आया ?
अथवा घर में ही था !
अज्ञात गहराई में छिपी स्मृति की तरह क्या वह निकल आया !
शिशु के आने पर ही उसका भान हुआ
प्यारा मुँह, बँधे हाथ, सुन्दर तन, दीनता नयनों में
'आया हूँ तेरे ही भरोसे पर
रहने भर की जगह देना; कुछ चिंता नहीं खाने की।'

शिशु के साथ खेल-कूद मन भाया
दिन पर दिन
बीते मास पर मास, नव मास आया
वर्ष पर वर्ष, नूतन आया
उसके आने की स्मृति भी भूल गया !
अंतर हुआ यही हृदय ने सुख पाया
जिस दिन मेरी उम्र अठारह हुई
उसी दिन उमर शिशु की भी अठारह हुई
पल-पल बढ़ा हमारा नेह नाता।
भर लिया आँखों ने उसका दिया ऐनक
जग की विभूति मुझे लगी अति मनमोहक
अरविंद के आँचल में छिपने के पहले भौंरे ने
दृष्टि डाल दी अपनी ओर एक बार
आम्रतरु को बंदी बनाकर लगी नाचने लताएँ
मुझे फूल ने छेड़ दिया अपनी मुस्कान से
(उसमें कैसा घमण्ड)
उभरी छाती पर
संध्या सूर्य की सुनहली उँगलियों की लीला !
नीचे फूस बिछी है।
ऊपर चाँदनी की मृदु चादर—
चुपके से
स्त्री की ध्वनि से मोद भरा मोहक कलकल हास !
सप्त प्राचीर दुर्ग
अन्दर राजकुमारी
मान रक्षा का रह गया एक ही मार्ग,
नदी, आग, गरल, छुरा !
सुनाई देता नहीं आक्रन्दन ? आगे बढ़ो !
मैं ही हूँ राजकुमार : लो आया
मेरी मन भावनी !
प्राण तजने की चिन्ता ही अब क्यों प्यारी ?

जो बच्चा बन आया था अब बना है गगनचुम्बी !
मैं ही बच्चा बना, छोटा बना,
उसने ताल दिया, मैं नाचने लगा बेताल !
जग भर फैला वह, शत रूप धर कर लगा सताने निरन्तर
मेरे तन में अपना घर बना कर, कर दिया सुख-दुख को एक-सा

ओ बादल, ओ जलधर !

रामदरश मिश्र

झाँक-झाँक जाते हो
क्षण भर के लिये, जोहती आँखों में
श्यामल आभा लहरा कर
तिर जाती है
लेकिन कब बरसोगे ?
ओ बादल !
ओ जलधर !
आदिगन्त रुद्ध ताप की छाती
नये रुद्र गर्जन से बार-बार आलोड़ित करने वाले
कजरारे बादल !
धरती को धानों की नई सजल आभा से
रँग-रँग देने वाले
ओ प्रियदर्शी जलधर !
हम धरती के छोटे-छोटे ये जीव
ग्रीष्म से लड़ते
तुम्हें हाँक देते हैं
…लेकिन कब बरसोगे ?

रेती का सुनसान
नये हरे पातों से पीते, बढ़ते
ईखों के बचपन
बार-बार तुम्हें बुला रहे—
कि ओ, ओ बादल !
ओ जलधर !
तुम्हारे यहाँ आने तक हम मरु से लड़ते
अपना सब रस निचोड़
दग्ध रिक्त आँखों को सींच रहे
लेकिन हम उगते-से प्राण हैं
कहो कब तक…?
कब बरसोगे नवाम्बु
नई फसल, नये अन्न
ओ फसलों के बादल !
ओ फसलों के जलधर !

लाल-लाल अनगिन कोमल हथेलियों ऊपर
दहकती दुपहरी का शैल उठाये
पथ के गुलमोहर
स्तब्ध उमस में अपनी लाल हँसी घोल रहे,
बार-बार पूछ रहे—
तुम्हारे यहाँ आने तक बोझिल पथ
ढोते जाते हम
लेकिन कब तक…?
कब तुम बरसोगे
नव फूलों का प्लावन
ओ मंजिल के बादल !
ओ मंजिल के जलधर !

आसमान की जलती सूनी चट्टानों पर
ये पंछी—
नन्हें-नन्हें पंछी !
प्यासे कण्ठों से स्वर के निर्झर बरस रहे
छोटे-छोटे निर्झर बरस रहे
बुला रहे तुमको ये—
तुम्हारे यहाँ आने तक नभ से लड़ते हम !
किन्तु रिक्त कण्ठों से कब तक गायेंगे ?
कब तक अम्बर का फैला सूनापन चीरेंगे ?
कब बरसोगे झर-झर स्वर
गीतों की झड़ियाँ ?
ओ गीतों के बादल !
ओ गीतों के जलधर !

◆

मैं हुआ कंटीला झाड़
अग्नि-पर्वत में बन्दी है अभिलाष-दावानल
तन में बन्दी पागल नदी
बहती है अंबुधि में मिल जाने को बड़ी उत्कंठा से !
युगल पर्वत पर चढ़ कर
कन्दक गहराई में चल कर
समतल पर दूर बह कर
भूमध्य रेखा के अगल-बगल का घना जंगल पार कर
सागर के आँचल में अस्तित्व अपना भुला देने की लालसा से।

मैं हूँ एक जर्जर, वृद्ध
पागल हूँ, यह भी सम्भव है;
बच्चा बन आया था, साथ दिया था
उसके आए कितने ही युग बीते !
परछाईं रात बनी।
हृदय देख रहा है उसकी मधुर स्मृति का स्वप्न
गिरि राजियाँ खड़ी हैं स्मृति-सी आँखों के सम्मुख;
छिपाने पर भी विवरण
सुस्पष्ट
'तात, जी ऊब गया है, कहानी सुनाना एक अच्छी'
'सुन बच्चा,
सप्त प्राचीर दुर्ग
कड़ा पहरा उसके बाहर भीतर।'

अनुवादक : हिरण्मय

सालाना जलसा

वी० के० एन० 'कुट्टी'

मैं इस देहात का प्रथम नागरिक हूँ। वहाँ दो ही सरकारी अफसर हैं—एक मैं, सरकारी एस्टेट का मैनेजर; और दूसरा, देहात का अधिकारी।

बाहरी दुनिया के साथ इस देहात का कहने लायक कोई सम्बन्ध नहीं। हफ्ते में सिर्फ एक ही दिन वहाँ पत्र-पत्रिकाएँ पहुँचा करती हैं। किसी बस या बैलगाड़ी में बैठ कर कहीं जाना हो तो देहात से छः मील पैदल जाना पड़ता है। आज भी वहाँ ऐसे लोगों की कमी नहीं, जिन्होंने बस या कार कभी नहीं देखी। हवाई जहाज वगैरह की तो बात ही क्या ? पिछले एक दिन की बात है, एक बूढ़ा किसान अपना खेत जोत रहा था। उस वक्त आसमान से एक हवाई जहाज उड़ता चला गया। किसान ने तुरन्त बैलों को रोक दिया और ऊपर की ओर गौर से देखा। वह एकदम चिल्ला उठा, "ओह ! यमराज का दूत !"

इस देहात में पहुँचने के दो ही मार्ग हैं—एक तो पैदल जाना और दूसरा हैलिकोप्टर। हाइड्रोजन या नाइट्रोजन बम के गिरने से अगर सारे संसार का सर्वनाश हो जाय, तो भी हमारे यहाँ उस खबर के पहुँचते-पहुँचते एक हफ्ता से ज्यादा लग जायगा।

बात कुछ भी हो, दूर तक फैले हुए इस देहात का जीवन वास्तव में आनन्दमय है।

मुझे काम पर लगे एक हफ्ता भी नहीं बीता था कि एक दिन शाम को दो सज्जन मेरे दफ्तर के कमरे में दाखिल हुए और उन्होंने मुझे सलाम किया। उनमें से एक मध्य आयु का था और दूसरा नौजवान।

"आप स्थानीय एलिमेंटरी स्कूल के हेडमास्टर हैं, और मैं उसी स्कूल का एक सहअध्यापक।"—मध्य आयु के व्यक्ति का और स्वयं अपना परिचय देते हुए नवयुवक ने कहा।

"मिलकर बड़ी खुशी हुई, बैठ जाइए।" मैंने उनसे कहा। दोनों ज़रा सकुचाते हुए खड़े रहे।

"हम इसी गाँव के रहने वाले हैं," इस बार हेडमास्टर ने फरमाया।

"और भी खुशी की बात है, बैठ जाइए," मैंने दुहराया।

दोनों आगन्तुक मुक्त कण्ठ से हँस पड़े और कुर्सियों पर विराजमान हो गए।

इसके बाद हेडमास्टर ने अपने आने का कारण संक्षेप में ही बता दिया—"आगामी शनिवार को हम अपने स्कूल का जलसा मनाने जा रहे हैं। अध्यक्ष का आसन स्वीकार करने के लिए मैनेजर साहब से विनती करने के ख्याल से हम लोग आए हैं।"

मैं दुविधा में पड़ गया। फिर भी मैंने कहा—"मैंने आज तक किसी जलसे का सभापति बनने का साहस नहीं किया है। कभी कहीं भाषण भी नहीं दिया है। अतः किसी दूसरे अनुभवी सज्जन को……

मैं वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि हेडमास्टर ने मेरी काट कर कहा—"खैर, देखा जाएगा। अगर दूसरा आदमी नहीं मि तो आपको ही मंजूर करना होगा।"

मैंने सोचा कि चलो बला टली और कहा—"ठीक है।"

"अच्छा, तो नमस्ते ! हम दो दिन के बाद मिलेंगे।" इतना कर दोनों सज्जन विदा हो गए।

ठीक दो दिन बाद दोनों पुनः मेरे यहाँ उपस्थित हुए। हेडमा ने मेरा पता लिखा हुआ एक लिफाफा उठा कर मेरी ओर बढ़ा मैंने उसे खोल कर देखा तो उसमें मेरे सम्मान्य सभापतित्व में होने एलिमेंटरी स्कूल के सालाना जलसे का निमन्त्रण-पत्र था।

"तो, दूसरा कोई उपयुक्त व्यक्ति इस काम के लिए नहीं मिला मैंने थोड़ी घबराहट के साथ सवाल किया।

"जी नहीं", हेडमास्टर ने क्षमा-प्रार्थना के स्वर में उत्तर दिया

मैंने निमन्त्रण-पत्र को दुबारा ध्यान से पढ़ा, तभी मुझे मा हुआ कि उसमें एक बड़ी भारी भूल हुई है। मेरे नाम के 'बी० ए०' की डिग्री जोड़ी गई है।

"मास्टर जी, मैं तो बी० ए० नहीं हूँ", मैंने नम्रता से कहा।

"नहीं ?" मास्टर साहब हँस पड़े। फिर बोले—"चलो कुछ प नहीं, कुछ परवाह नहीं। शनिवार को दोपहर के बाद मैं यहाँ जाऊँगा और तब साथ-साथ चलेंगे।"

"हूँ !" कुछ परवाह नहीं ! उनकी बातों से ऐसा मालूम होता कि जैसे एलिमेंटरी स्कूल ने मुझे बी० ए० की डिग्री देकर सम्मा किया है।

शनिवार की शाम को ठीक साढ़े-तीन बजे हेडमास्टर साहब कमरे में हाजिर हो गए। स्कूल डेढ़ मील दूर है। पैदल जाना मेष राशि के उच्च स्थान का सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणें हमारे बरसा रहा था। स्कूल पहुँचते-पहुँचते हम पसीने से तर-बतर हो

स्कूल क्या है, उत्तर-दक्षिण की दिशा में एक हॉल है और मध्य भाग में बाहर एक चबूतरा। उसी चबूतरे पर एक स्टेज किया गया था। हॉल बाँस की तीन टट्टियाँ लगा कर चार भा विभाजित किया गया था। "इन्हीं कमरों में कक्षाएँ लगती हेडमास्टर ने मुझ से कहा।

मुझे तो बेहद प्यास लगी हुई थी। गला सूख गया था। हेडमास्टर से कहा—"एक गिलास पानी चाहिए।"

मास्टर ने चारों ओर नजर दौड़ाई, फिर वह स्वयं बाहर और पल भर में वापस आकर उन्होंने पूछा—"थोड़ी चाय पीएँगे

मैंने कहा—"नहीं।"

"चाय की दुकान स्कूल से एक मील दूर है चाय मिलना मुश्किल है।" हेडमास्टर ने लम्बी साँस खींचकर कहा। उनका हरेक शब्द मानों मुझसे कह रहा था कि अगर आप चाय माँगते तो घोर निराशा हो जाती।

"शरबत हो तो..." हेडमास्टर ने फिर पूछा।

"आप जो चाहें दे सकते हैं, मगर प्यास बुझाने लायक रहना चाहिए। यही जरूरी है।" मैंने कुछ अधीरता से कहा।

मास्टर हँस पड़े और बाहर चले गए। थोड़ी देर बाद एक गिलास उन्होंने मेरे सामने लाकर रखा और कहा—"लीजिए, शरबत।"

मैं एक ही घूँट में पूरा-का-पूरा शरबत पी गया। मास्टर ने उसको शरबत कहकर सचमुच पानी का अपमान किया था। उस पानी के साथ शक्कर या अन्य किसी वस्तु का लेश मात्र भी सम्पर्क नहीं हुआ था।

खैर! अब सवाल यह उठा कि हॉल में कैसे बैठा रहूँ। वहाँ गर्मी असह्य थी। मैं चबूतरे पर जाकर खड़ा हो गया और चारों तरफ की प्रकृति का सौन्दर्य निरखने लगा।

प्रकृति वास्तव में रमणीय थी। सामने एक छोटी-सी चट्टान; उसके उस पार कुछ खेत, बीच-बीच में इने-गिने झोंपड़े। दूर पश्चिमी घाट को भी मात करने वाला एक उन्नत पहाड़ और बरफ से ढकी हुई चोटियाँ। अस्त होने वाले सूर्य की किरणों के पड़ने से ऐसा मालूम होता था कि वे चोटियाँ क्षण-क्षण पर रंग बदलती जाती हैं।

मैं इस प्राकृतिक दृश्य को निहारता रह गया। अचानक पीछे से एक आवाज सुनकर मैं घूम पड़ा—"व्याख्यानदाता श्री कुरुप अभी तक नहीं आए न!" हेडमास्टर अत्यन्त अधीर होकर कह रहे थे।

"आते ही होंगे। अब समय हो ही रहा है न!" दूसरे अध्यापक ने कहा।

मैंने घड़ी की ओर देखा। छः बज चुके थे। ठीक ५ बजे नाटक शुरू कर ९ बजे समाप्त करने की बात निमन्त्रण-पत्र में घोषित की गई थी। यहाँ तो छः बजने पर भी नाटक शुरू होने का लक्षण नहीं दीखता। तिस पर भी यह टिप्पणी कि "समय हो ही रहा है न!" खूब रहा, मैंने मन ही मन सोचा।

मैं फिर घूम पड़ा और बाहरी दृश्यों का निरीक्षण करने लगा। हॉल के सामने आँगन में कुछ बेंचें पड़ी हुई थीं। आठ-दस लोग श्रोतागण के अग्रिम दल के रूप में इधर-उधर घूम रहे थे। नए रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए बच्चे उछल-कूद मचा रहे थे। चाहे कोई आए या न आए, इसकी उन्हें चिन्ता नहीं थी। माइक आ गया। उसे फिट कर दिया गया। एक जगह दो-एक पेट्रोमैक्स लैम्प जलाने का प्रयत्न हो रहा था। इसी बीच व्याख्यानदाता श्री कुरुप आ पहुँचे।

श्री कुरुप कोषिकोड के रहने वाले हैं। एक गाँव तक बस में आए। वहाँ से उन्होंने एक साइकिल किराए पर ली। पूरे आठ मील साइकिल पर आए हैं। स्वास्थ्य तो खराब है। आने का वायदा किया था, इसलिए चले आए। ज्यादा तो नहीं बोल सकेंगे, तो भी कोशिश करेंगे। इन शब्दों में श्री कुरुप ने अपना परिचय दिया।

देखने से ऐसा मालूम होता था कि श्री कुरुप भाषण देने के काबिल ही नहीं, बल्कि भाषण सुनकर श्रोताओं में से कोई बिगड़ कर उठ खड़ा हो तो उसका अकेले ही सामना करने की हिम्मत भी रखते हैं। उम्र करीब पैंतीस वर्ष होगी—मोटा-ताज़ा शरीर, छाती चौड़ी और फूली हुई।

"थोड़ी चाय पीकर कार्यक्रम शुरू कर देंगे", हेडमास्टर ने सूचना दी।

हम सब हॉल के अन्दर चले गए। दाल के बड़े और चाय सामने आई। बड़े ऐसे थे, मानों दाल के नहीं लोहे के बने हों। काटने पर दाँत टूटे तो टूटे लेकिन बड़े कभी नहीं टूटेंगे, अतः मैंने सिर्फ़ चाय पी।

"बड़े नहीं खाएँगे?" श्री कुरुप ने प्रश्न किया।

"इच्छा नहीं" मैंने उत्तर में कहा।

उन्होंने मेरे हिस्से का भी सदुपयोग किया। उनके दाँत मेरे दाँतों की अपेक्षा बहुत मज़बूत थे।

चाय पीकर बाहर आए तो पौने सात बज चुके थे। अंधकार फैलने लगा था। स्टेज पर एक पेट्रोमैक्स रखी हुई थी। उसके नीचे एक मेज पर खादी का एक सुन्दर शाल बिछा था। उसके ऊपर एक बोतल में फूलों के गुच्छे रखे थे। मेज के पीछे सिर्फ़ अध्यक्ष के लिए एक कुर्सी और एक ओर दो कुर्सियाँ रखी थीं। एक अध्यक्ष का तात्कालिक स्थान और दूसरी ओर भाषणदाता का स्थायी स्थान, यह स्टेज की सजावट थी।

मैं अध्यक्ष की तात्कालिक सीट पर और श्री कुरुप अपने स्थायी स्थान पर आसीन हो गए। श्रोताओं की भीड़ लग गई। उनमें ज्यादातर मजदूर थे जो पास के मन्दिर के तालाब से कीचड़ निकालने का काम करते थे। उस दिन का काम समाप्त करके जाने लगे तो सुना कि स्कूल में नाटक होने वाला है, इसलिए सब-के-सब वहाँ चले आए थे। बेंचों पर गाँव के प्रतिष्ठित सज्जन और मुट्ठी भर महिलाएँ विराजमान थीं। भीड़ के बीच में एक गंजे सिर वाला आदमी बैठा था। पेट्रोमैक्स की रोशनी में उसका सिर चमक रहा था। कुछ शरारती लोग उसके सिर की ओर इशारा कर हँसने लगे। आए हुए सभी लोगों का ध्यान उस ओर गया। लेकिन उस व्यक्ति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने चुपके से रुमाल लेकर सिर पर बाँध लिया, मानों उसने कुछ जाना ही नहीं। उसके साथ उस प्रदर्शन का भी अन्त हो गया।

हेडमास्टर स्टेज पर आए और उन्होंने घोषणा की कि अब कार्यक्रम शुरू हो रहा है।

कार्यक्रम में पहला कार्य अध्यक्ष का स्वागत था। हेडमास्टर साहब पास आकर खड़े हो गए और उन्होंने आगन्तुकों का स्वागत किया। उन्होंने यह भी कहा—"हम सब लोगों का सौभाग्य है कि इस साल हमें एक सम्मान्य सज्जन सभापति के स्थान के लिए प्राप्त हुए हैं। भविष्य में कभी ऐसे व्यक्ति प्राप्त होंगे या नहीं इसमें बड़ा सन्देह है। अध्यक्ष महाशय बी० एस० सी० परीक्षा भी पास हैं।"

शायद यही पक्की धारणा है कि जो बी० ए० पास नहीं हैं, वे अवश्य बी० एस० सी० डिग्री प्राप्त व्यक्ति होंगे। मैंने मन में ही

कहा—"शरीर के नार्मल ताप ६८·४ डिग्री के अलावा मेरे पास तो दूसरी कोई डिग्री नहीं है।"

हेडमास्टर ने आगे कहा—"इसलिए मैं उनसे नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि वे इस उत्सव के अध्यक्ष के आसन पर आसीन होकर आज के कार्यक्रम को चलावें।"

आगन्तुकों ने तालियाँ बजाकर समर्थन किया। मैं उठा, माला स्वीकार की और अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठ गया।

कार्यक्रम का दूसरा कार्य था प्रार्थना। स्कूल की छोटी लड़कियों ने मधुर-कोमल कण्ठ से प्रार्थना के गीत गाए। उनके गाने सुनने वालों के कान व मन दोनों को अत्यन्त मधुर लगे।

उसके बाद अध्यक्ष का प्रारम्भिक भाषण था। मुझे जो कुछ कहना था उपसंहार में कहने का वायदा करके मैंने श्री कुरुप को अपना भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया।

श्री कुरुप ने उठ कर मेरे कान में कहा—"भाषण के लिए कितने मिनट ले सकता हूँ?"

सवा सात बज चुके थे। अतः मैंने कहा—"प्रायः आधा घंटा ले सकते हैं।"

"ठीक है" कह कर श्री कुरुप माइक के पीछे खड़े हो गए और उन्होंने अपना भाषण शुरू किया—"भाइयो और बहनो! आज नए फैशन के लोग पुरानी रीति को अपनाते जाते हैं, सो ठीक भी है। दुनिया में कुछ भी नया नहीं है। सब पुराने ही हैं। उदाहरण के लिए स्त्रियों के ब्लाऊज़ को ही देखिए। शुरू में यह कैसा था। प्रतिदिन उसकी शक्ल-सूरत में कैसे-कैसे परिवर्तन होते गए। परिवर्तन की पराकाष्ठा तक पहुँचने के बाद वह कैसे अपने मूल स्वरूप को प्राप्त कर गया। ज़िन्दगी के पहिए घूमते रहते हैं, लेकिन घुमाव पीछे की तरफ होता है। आज जो हवाई जहाज, पन-डुब्बी वगैरह हम देखते हैं, उनका आविष्कार सदियों पहले हमारे ऋषियों-मुनियों ने किया था। तत्सम्बन्धी एक ग्रन्थ बंगलूर में है, कोई भी जाकर देख सकता है। पाश्चात्य………"

एकाएक माइक फेल हो गया। भाषण को शुरू हुए चालीस मिनट गुज़र चुके थे। श्रोताओं को भाषण बेहद पसन्द आया था। वे चुपचाप सुन रहे थे। नितान्त निस्तब्धता फैली हुई थी। एक नहीं दसों सुइयाँ गिर पड़तीं तो उनका शब्द ज़रूर सुनाई पड़ता।

"कार्यक्रम में और भी कई कार्य हैं, भाषण को जल्दी समाप्त करने के लिए कह दीजिए", एक अध्यापक ने मेरे कान में कहा।

मैंने इन शब्दों को ज्यों-के-त्यों श्री कुरुप के कान में दुहराया। लेकिन उन पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। उलटे उन्होंने एक कड़ी ताकीद दी—"मुझे बहुत कुछ कहना बाकी है, और भी समय चाहिए। आप सभापति हैं तो क्या हुआ? बीच में डिस्टर्ब मुझे न कीजिए।"

इस बीच में माइक ठीक कर दिया गया। श्री कुरुप ने अपना भाषण पुनः जारी किया। बाल्मीकि की रामायण से अभिज्ञान शाकुन्तलम् तक और शाकुन्तलम् से रामायण तक के सभी महाकाव्यों के नाम वह एक-एक करके बताने लगे। भारतीय संस्कृति की महा को स्पष्ट करना ही उनका उद्देश्य था।

सवा आठ बज गए। वक्ता महाशय अपना भाषण समाप्त का का नाम तक नहीं लेते थे। हेडमास्टर ने पीछे से उनका कुर्ता पकड़ खींचा। उन्होंने इस पर ध्यान ही नहीं दिया, मानो उनको इसका प ही न लगा हो।

श्री कुरुप ने पुरानी गुरुकुल प्रणाली का वर्णन करना शुरू किया

नौ बजने जा रहे थे। मालूम होता था कि बादल अब बरसे अब बरसे। श्री कुरुप को कड़ी चेतावनी देकर तुरन्त ही भाषण ब कराने का पूरा अधिकार हेडमास्टर ने मुझे दे दिया।

मैं उठ खड़ा हुआ और ज़रा खाँसा। बाएँ हाथ को श्री कुरुप सामने बढ़ाया जिसमें घड़ी बँधी हुई थी। यह देख कर इन कटु श में उन्होंने अपना भाषण जारी रखा, "मालूम होता है कि हमारे सभ पति महोदय को सब्र करना आता ही नहीं। उन्होंने इसके पहले कि सभा में कभी भाग लिया है कि नहीं—इसमें मुझे बड़ा सन्देह है। जिस महत्त्वपूर्ण विषय की चर्चा कर रहा हूँ, उसे वे समझ ही न पाते और अपना भाषण बन्द कर देने के लिए मुझे मजबूर कर रहे हैं यह मेरा ही नहीं, सारे सम्मान्य सदस्यों का अपमान है। भाइयो चाहे कुछ भी क्यों न हो जाए, पूरी बातें बताए बिना मैं यहाँ से न हटूँगा। इस बात का आप पूरा विश्वास रखें।"

श्रोतागण मेरी ओर उँगलियाँ दिखाने लगे और उन्होंने श मचाया। मैं अपना-सा मुँह लेकर बैठ गया। विजय पताका फहरा हुए श्री कुरुप आगे कहने लगे—

"पुराण के चार वेद और छः शास्त्रों को छोड़ कर बाकी स शास्त्र झूठे हैं। बी० एस० सी० डिग्री प्राप्त महाशयों को अन्दमा टापू में भेज देना चाहिए।"

श्रोताओं में फिर से शोर-गुल मचा। छोटे-छोटे कंकड़ मेरी मेज़ प आकर गिरने लगे। मैं सहम गया। श्री कुरुप ने श्रोताओं को पूर्ण से अपने वश में कर लिया था। वह ज़रा इशारा कर दें तो मे खैरियत नहीं, वे मुझे नोंच डालेंगे।

"यही नहीं, ऐसे लोग देश के दुश्मन हैं", कह कर उन्होंने कनखि से मेरी ओर देखा। बेशुमार तालियाँ और गगन-भेदी शोर-गुल हुआ

"मैनेजर अध्यक्ष जी! बाहर निकलिए, तब देखा जाएगा सदस्यों में से किसी को कहते मैंने सुना। मुझे ऐसा लगा कि दुनि की कोई भी ताकत श्री कुरुप को चुप नहीं करा सकती। मैं निरा होकर बैठ गया।

लेकिन किस्मत का खेल! क्षण भर में प्रकृति देवी ने हमारी का में दखल दिया। आँखों को चौंधिया देने वाली बिजली चमकी बादलों के भैरव-निनाद से अन्तरिक्ष मुखरित हो उठा। रिमझि रिमझिम पानी बरसने लगा। अपना भाषण बन्द करने के लि श्री कुरुप मजबूर हो गए।

हेडमास्टर ने बताया कि सभा यहीं समाप्त की जाएगी और का क्रम का बाकी अंश फिलहाल स्थगित रखा जाएगा।

मैं माइक के पास गया। लेकिन मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। बारिश के कारण भागने वाली भीड़ बीच-बीच में मेरी ओर देख कर दाँत पीसती थी और मुट्ठी दिखाती थी। मैं घूम कर भागा और हॉल में दाखिल हुआ।

हेडमास्टर ने हाँफते-हाँफते मुझसे कहा—"मुझे बड़ा अफ़सोस है कि आपको कष्ट हुआ। आगे से इस कुरुप को किसी भी जलसे का न्यौता नहीं दिया जाएगा।"

"कोई बात नहीं, थोड़ी-सी सहायता मात्र कीजिए", मैंने प्रार्थना की।

"बताइए, आप क्या चाहते हैं ?"

"किसी तरह मुझे अपने दफ्तर पहुँचवा दीजिए।"

"इसमें क्या मुश्किल है ?" हेडमास्टर ने फ़रमाया।

इसी समय एक आदमी ने आकर मुझसे कहा, "श्री कुरुप ने कहला भेजा है कि आप जाने से पहले उनसे ज़रा मिल लें। वह रास्ते में खड़े हैं।"

"उनके साथ और कौन हैं ?" मैंने पूछा।

"चार-पाँच सज्जन हैं", उसने कहा।

"मेरी हिम्मत नहीं पड़ती", मैंने हेडमास्टर और उस व्यक्ति को लक्ष्य करके कहा।

"जाकर कह दो कि अध्यक्ष जी चले जा चुके हैं", कह कर हेडमास्टर ने उस आदमी को विदा कर दिया।

"अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं", मैंने कहा।

हेडमास्टर और उस नवयुवक की संरक्षा में जब मैं अपने दफ़्तर पहुँचा तो बारह बज चुके थे

अपने शरीर की सुरक्षा के लिए मैं उन दोनों मित्रों का आभारी हूँ।

भविष्य में किसी सालाना जलसे में सम्मिलित होना पड़े तो मैंने पुलिस की ही नहीं, बल्कि फ़ौज की भी मदद माँगने का दृढ़ निश्चय कर लिया है।

★

लैम्प पोस्ट—(पृष्ठ ४२ का शेषांश)

फ़ज़लदीन मोहल्ले वालों को अश्लील गालियाँ देता हुआ चला गया। इतने में वह साँवली लड़की आई। उसके चेहरे पर वही दुख भरी मुस्कराहट थी।

"आप भी जा रहे हैं।" इसके बाद वह हल्का-सा कहकहा लगा कर चुप हो गई और गली के लैम्प की ओर देखने लगी। वह अपरिचित लड़की ही मेरी मित्र थी। मैंने उसकी ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा।

"मैं रीटा हूँ। यहीं करीब ही एक अस्पताल में नर्स हूँ," उसने कहा और गली के मोड़ पर ओझल हो गई। दूर से फ़ज़लदीन की आवाज़ आ रही थी। आज वह ग़ालिब की ग़ज़ल नहीं गा रहा था, बल्कि ऊँचे स्वर में अश्लील गालियाँ दे रहा था।

●

एक साथ !

शमशेरबहादुर सिंह

सूरज
उगाया जाता
फूलों में :
यदि हम
एक साथ
हँस पड़ते !

चाँद
आँगन बनता :
आँखों में रासभूमि यदि
सौरमण्डल की मिलती !

सार हम होते
काव्य के—
अनुपम भूत-भविष्य के :
यदि हम
वर्तमान
में
एक साथ
हँसते-रोते-गाते !

●

नमक के लिये*

शशि भूषण सिंहल

अन्त में ऊब कर कैदी शाहजहाँ ने शहन्शाह औरंगज़ेब को पत्र लिखने का निश्चय किया। औरंगज़ेब ने बाप की सल्तनत छीनी, उसे कैद में डाला। अब वह उसे पत्रों द्वारा ज़लील करने पर उतारू था। पत्रों में अनेक दोषारोपण होते थे। शाहजहाँ ने उन सब का पहला और अन्तिम उत्तर दिया, "बरखुरदार! हम निहायत नालायक हैं। इसलिए तुम्हारे कैदखाने की रौनक अफ़रोज़ी कर रहे हैं। लेकिन इतना याद रखो कि तुम पर हमारा अहसान ही है। तुमने सल्तनत हमसे जबरन हासिल की और ज़िन्दगी भी तुमने हम से पाई। क्या खूब! चोरी और सीनाज़ोरी! लेकिन लिहाज़ से तुम्हारा वास्ता क्या? अलबत्ता हम शरमिन्दा हैं, तुम्हारे बाप होने के नाते—"

ख्वाजासरा पत्र लेकर शंकित हृदय से अंगूरी बाग में दाखिल हुआ। सामने अंगूरों की बेलों से घिरा आलमगीर औरंगज़ेब सफेद कपड़ों में टहल रहा था। दायें हाथ में घूमती तस्बीह और माथे पर बल। चेहरे की दाढ़ी फुफकारते सर्प के फन जैसी। ख्वाजासरा काँपता हुआ आगे बढ़ा। उसने फर्शी सलाम किया और चिट्ठी पेश कर दी।

शहन्शाह ने उपेक्षा से पत्र लिया और झटके से खोला। दृष्टि एक स्थल पर अटकी—'···और ज़िन्दगी भी तुमने हम से पाई···' "हूँ।" आँख के डोरे रक्तिम हो गए। माथे की रेखाएँ सिमटीं। खँखार कर थूक सटका। पत्र पढ़ कर फेंका जाने वाला था कि अन्तिम पंक्ति पढ़ी—'अलबत्ता हम शरमिन्दा हैं, तुम्हारे बाप होने के नाते—' औरंगज़ेब के मुँह पर जैसे ज़ोर का थप्पड़ पड़ा। उसने अपनी दाढ़ी सहलाई और उसकी दृष्टि सम्मन बुर्ज की दिशा में, जहाँ शाहजहाँ बन्दी था, केन्द्रित हो गई। क्रमशः वह ताजमहल की ओर घूमी और अदृश्य में खो गई।

न जाने कब तक वह यों ही खोया रहता, यदि मुँह लगा ख्वाजासरा उसे न टोकता। "जहाँपनाह!" शायद वह कुछ नमक-मिर्च लगाना चाहता था। औरंगज़ेब जगा, जैसे उसे दूसरा तमाचा लगा हो। उबल पड़ा—"निकल कम्बख़्त यहाँ से!" और दूसरे ही क्षण पत्र की चिंदियाँ क्यारियों में उड़ रही थीं। ख्वाजासरा के होश उड़ गए, होम करते हाथ जला। सहमी निगाहों से उसने फर्शी सलाम किया, धीरे-धीरे पीछे कदम हटाते-हटाते दूर पहुँचा और सर पर पैर रख कर भागा।

बात आई-गई हो गई। औरंगज़ेब ने अपनी भूल स्वीकार की। उसे अपने पिता से ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था। शाहजहाँ के कष्टों पर ध्यान दिया गया। वह अरसे से बीमार था। शाहज का प्रिय हकीम मर चुका था। हकीम का पुत्र था मुकर्रम खाँ। ती वर्ष की आयु में ही खासा ख्याति प्राप्त हकीम। इलाज के लि मुकर्रम खाँ की नियुक्ति हुई। बाँदियाँ गुल-अनार, गुलाल और सखी भी छम-छम करती सम्मन बुर्ज में आने-जाने लगीं। बुर्ज की यमु की ओर वाली खिड़कियाँ खुल गईं। नीचे मैदान में जानवरों लड़ाइयों का आयोजन होने लगा। कभी-कभी बुर्ज में महफ़िल जम की इजाज़त भी मिल जाती। सब इस परिवर्तन से प्रभावित थे, कि शाहजहाँ स्वयं चुप था।

यह कौन जानता था कि रहमदिल जहाँपनाह आलमगीर की ते निगाहें वास्तव में शाहजहाँ के गुप्त खजाने के हीरे-जवाहरातों को खो रहीं थी। एक दिन जमी महफ़िल में शाहजहाँ को अपने मेहरबान का खत मिला। पत्र में पिछले किए पर पछतावा था। शीघ्र ही बहु अच्छा प्रबन्ध करने के आश्वासन के साथ-साथ दबे शब्दों में शाहजहाँ उसके गुप्त खजाने के हीरे-जवाहरात दान कर देने की सलाह थी। अ में इस दान कार्य का भार स्वयं वहन करने की इच्छा भी प्रगट गई थी।

औरंगज़ेब पत्र भेज कर संतुष्ट था। उसने लम्बा जाल फेंका था आठ-दस दिन में स्वीकारात्मक उत्तर की आशा थी। वह नगी मस्जिद में वजू कर रहा था, किन्तु ध्यान उन चकाचौंध कर देने वा हीरों की कल्पना में था। उठ कर खड़ा हुआ ही था कि सामने गुल अनार पत्र का उत्तर लिए पेश थी। औरंगज़ेब चकराया। मन्त्रमुग्ध-स पत्र देखने लगा। लिखा था—"काश तुम्हारे पत्थर दिल के सा तुम्हारा दिमाग पत्थर का न होता। गिरगिट के से रंग बदलने वा औरंगज़ेब! तुम्हें उन जवाहरातों को देने के बदले, उन्हें हकीम के ख में डाल कर चूर-चूर कर देना ज्यादा पसन्द करूँगा!" हाथों से प गिर गया। बजू वाला बँधना भी लुढ़क कर घन-घन करता हुआ दीवा से जा टकराया।

जासूसों ने किले और महल का कोना-कोना छान मारा। ता महल और किले के बीच की सुरंग का चप्पा-चप्पा खोद डाला गया पर शाहजहाँ के गुप्त हीरे-जवाहरातों का पता न लगा और न लगा औरंगज़ेब कभी झुँझलाता, कभी फुंकारता, कभी षड्यन्त्र सोच और कभी मुट्ठियाँ बाँध कर रह जाता। हृदय में कभी-कभी टी जगती! मन गिरने सा लगता। क्या यह पश्चाताप की लहर थी शाहजहाँ का वह पत्र भी भुलाये न भूलता। वह दो वाक्य हृदय कचोटे डालते थे। फिर सम्मन बुर्ज की ओर दृष्टि जाती। ताज गुम्बद को देखता। ठण्डी आह भर कर रह जाता। कदम बहुत आ

---

* औरंगज़ेब कालीन, इटैलियन यात्री 'निक्कोलो मुनिक्कि' के संस्मरण-ग्रन्थ 'स्टोरिया डी मोगेर' की एक घटना के आधार पर।

बढ़ चुका था। लौटना असम्भव था। आखिर अब करे भी तो क्या? क्या सल्तनत छोड़ दे? नहीं, हरगिज़ नहीं! जिस बेल को भाइयों और अज़ीज़ों के रक्त से सींचा गया है, क्या उसे वह योंही ज़रा सी भावुकता में नोच कर फेंक दे? यह सोच कर उसकी क्षणिक दुर्बलता का लोप हो जाता और वह दृढ़ प्रतिज्ञ रहने का संकल्प करता।

आखिर औरंगज़ेब को बीमारी ने धर दबाया। उस मानसिक व्याधि से वह अकेला लड़ता तो कब तक? कोई हृदय की बात सुनने वाला न था। कहता भी किस से। उसे अपने पीछे भागती अपनी छाया पर भी विश्वास नहीं था। औरंगज़ेब और नगीना मस्जिद—यही दो साथी रह गए थे।

शाही हकीमों और वज़ीरों की राय हुई कि शहन्शाह को स्वास्थ्य लाभ के लिए काश्मीर जाना चाहिए। औरंगज़ेब स्वयं आगरे के घुटते हुए वातावरण से ऊब उठा था। हृदय कहीं भागने को बेचैन था। फिर भी उसकी स्वार्थबुद्धि सतर्क थी। यदि बाद में शाहजहाँ ने विद्रोह खड़ा कर दिया? प्रत्येक वज़ीर, सरदार और क्या छोटे-से-छोटे अहलकार, सभी मन-ही-मन सुलग रहे थे। विनाश की ज्वाला भड़काने को बयार का एक झोंका भर चाहिए था। और शाहजहाँ तो जीता-जागता तूफ़ान था। वही सब झंझटों की जड़ और केन्द्र था। काश, उसे उखाड़ कर फेंक पाता! और फिर गुप्त जवाहरातों वाली बात। बूढ़े की सल्तनत गई पर अब भी वह उन हीरों को तहखाने में दबाए सड़ रहा था। उन हीरों से तो भारी युद्ध चलाया जा सकता था। दक्षिण में मराठे बराबर सर उठा रहे थे। उन्हें मटियामेट किया जा सकता था। किन्तु शाहजहाँ की खुले-आम हत्या करना भी टेढ़ी खीर थी। प्रजा और अनेक दबे हुए विरोधी तत्वों के एक साथ भड़क उठने की आशंका। औरंगज़ेब नैतिक दृष्टि से लोगों की निगाहों में गिरना भी न चाहता था। आखिर उसने एक निश्चय किया, जिससे साँप मरे और लाठी भी न टूटे।

शाहजहाँ को अत्यधिक परेशान करने की योजना अमल में लाई जाने लगी। उसे दी गई सभी सहूलियतें बन्द कर दी गईं। मौत का पंजा कस उठा। यमुना और ताज की ओर खुलने वाली खिड़कियाँ बन्द कर दी गईं। बुर्ज के नीचे आस-पास चाँदमारी प्रारम्भ हो गई। चाँदमारी वालों को आज्ञा की गई कि यदि शाहजहाँ तनिक भी बाहर झाँके तो तुरन्त उसे भून दो। दिन भर की ठाँय-ठाँय—धूँ-धूँ और भाग-दौड़ ही शाहजहाँ को ऊबा कर मार डालने के लिये पर्याप्त थे। उस पर शाहजहाँ की व्यक्तिगत प्रिय वस्तुएँ उससे छीन ली गईं। जानवरों की लड़ाइयाँ बन्द। महफ़िल-तमाशे सब बन्द। हाँ, हकीम को रहने दिया गया। न जाने क्यों?

किन्तु शाहजहाँ क्या नहीं समझता था? जिन्दगी का खेल उसके लिए शतरंज की बाजी से कम दिलचस्प न था। वह औरंगज़ेब को जता देना चाहता था कि पहली बाजी में भले ही शाहजहाँ हार गया हो, लेकिन था वह शातिर। दूसरी बाजी बिछ गई थी। उसमें मात खाने के लिये वह हरगिज़ तैयार न था। शाहजहाँ औरंगज़ेब की इच्छानुसार क्यों मरता? इन शरारतों के उत्तर में वह जीवन से, कष्टों से, यहाँ तक कि जीवन की आसक्ति से भी तटस्थ हो गया। भला अब बुर्ज की घुटन, बन्दूकों की ठाँय-ठाँय और सामान की लूटपाट कुछ भी उसे विचलित न कर सके। औरंगज़ेब की शह बेकार गई। वह पागल हो उठा। उसका स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। वह काश्मीर जाना चाहता था। किन्तु राह की बाधा, यह रोड़ा! वह झुँझला उठा। औरंगज़ेब ने अब अन्तिम दाँव फेंका।

आज हकीम मुकर्रम खां की परेशानी देखते ही बनती थी। वह, शाहजहाँ का विश्वासपात्र था। उसके खानदान की कितनी ही पीढ़ियाँ शाहजहाँ और उसकी बेगमों के नमक पर पलती आ रही थीं। पहले कभी उसके सामने ऐसी समस्या नहीं आई थी, जैसी आज आलमगीर के फरमान ने उत्पन्न कर दी थी। हकीम के चौड़े सुन्दर माथे पर वक्र रेखायें उभरीं। लम्बी पुष्ट नाक किसी अज्ञात पीड़ा से तनिक सिकुड़ गई।

शाहजहाँ की दवा का समय हो गया था। हकीम ने तत्परता से कई शीशियों से अर्क एक प्याली में डाले। फिर काँपती दृष्टि से उस शाही फरमान की ओर देखा और तब देखा तिपाई पर रखी उस शीशी को, जो फरमान के साथ भेजी गई थी। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हकीम! हाथ का फरमान और तिपाई की शीशी, फरमान और शीशी! शाहजहाँ और औरंगज़ेब! माथे से पसीने की बूँदें हाथ के फरमान पर टपक गईं। हकीम एकाएक चौंका, फरमान उसने दूर फेंक दिया। जैसे हाथ में जलता हुआ अंगारा हो। खुश्क ओंठों पर खुश्क जीभ फेरने का प्रयास उसने किया।

नहीं यह तो करना ही होगा! न करोगे तो जान से हाथ धोओगे। गुल-अनार का क्या होगा? अपने सपनों का क्या होगा? हकीम का रक्त जमने लगा। दिमाग घूमने लगा। मुट्ठियाँ कस गईं और दाँत भिंच गए। नहीं, नहीं! गुल ने किसी का क्या बिगाड़ा है? मुझे जीवित रहना है, उसे जीना है। हम अपनी दुनियाँ क्यों उजाड़ें। दो शतरंज के खिलाड़ी जमे हुए हैं। मैं तो उनके हाथ मोहरा भर हूँ! महज़ एक गुलाम! औरंगज़ेब का जो हुकुम होगा वह अब मानना होगा। दयानतदारी, ईमानदारी, नमक हलाली, सब बकवास है! किन्तु हृदय गवाही न देता था। मुकर्रम ने फिर तिपाई की शीशी को घूरा, जैसे जाल में फँसा हरिण बधिक को ताक रहा हो। कुछ संकल्प किया, फिर भी आँखें अपने आप बन्द हो गईं। आँख खोलने का साहस न होता था। मुँदी निगाहों, हाथ फैलाये मुकर्रम तिपाई की ओर बढ़ा था, पागल-सा, खोया-सा हाथ फैलाये। फैले हाथ से टकरा कर शीशी गिर ही जाती, यदि बीच में मीठी खिलखिलाती आवाज़ उसे न टोक देती—"क्यों जनाब! क्या कोई नाटक हो रहा है?"

मुकर्रम ने आँखें खोल दीं और फैले हाथ पीछे कर लिये, जैसे चोरी करते पकड़ा गया हो। सामने शाहजहाँ की मुख्य परिचारिका गुल-अनार थी, ओंठों पर स्मित लिये। मुकर्रम के सपनों की साकार प्रतिमा। मुकर्रम ने सन्तोष की लम्बी साँस ली। गुल की ठोढ़ी के तिल को अपलक निहारता रहा। गुलाबी ओढ़नी में लिपटी गुल-अनार अपनी लम्बी नागिन-सी वेणी से खेलती आगे बढ़ आई। 'रात की रानी' की भीनी-भीनी सुगन्ध वातावरण में बस गई। गुल ज़ोर से खिलखिलाई,

"दवादारू का झंझट भूल कर यह क्या करने लगे ? क्या ख़ूब शायराना अन्दाज़ है जनाब का !" हँसती गुल का गोरा रंग कुन्दन-सा हो गया। नाभि पर हीरों से जड़ी करधनी कमर में थिरक उठी। मुकर्रम ने पीड़ा से उसकी गहरी तरल आँखों में झाँका और पुकारा—"गुल !"

गुल की हँसी क्षण भर में विलीन हो गई, जैसे तुषारपात हुआ हो। उसे परिस्थिति की गम्भीरता का बोध हुआ। "गुल, तुम शायद मुझे बुलाने आई हो, शाह को दवा देने के लिये !" मुकर्रम ने हारे जुआरी के से स्वर में कहा। गुल ने अपनी लम्बी पतली नाक हिलाकर हुँकारी भरी सहमे नेत्रों से, जैसे उससे कुछ अपराध बन पड़ा हो।

एकाएक मुकर्रम के चेहरे पर प्यार दौड़ गया। उसने आँखें बन्द कर लीं और बोला—"गुल तुम्हें याद है, हमने क्या सोचा था ?" बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वह बोलता गया—"सोचा था, हम दोनों इस दुनिया को छोड़ जायेंगे, इस मक्कारी की दुनिया को, फरेब की दुनिया को ! और शायद वह समय अब आ गया है !"

गुल को सब बातें याद थीं। उसे यह भी याद था कि दोनों ने फतेहपुर सीकरी में जाकर बसने का और वहीं विवाह करने का इरादा किया था। मुकर्रम ने गम्भीर सीधे स्वर में पूछा, मानो कोई न्यायाधीश अपने पुत्र की फाँसी की घोषणा कर रहा हो—"मुझे फ़र्ज़ अदा करना चाहिए न गुल। मुझे लोग नमक हराम कहें, यह तुम पसन्द करोगी ?"

गुल के गले से इतना ही निकला—"फ़र्ज़ ! मुकर्रम। मैं क्या कभी तुम्हारे रास्ते में रुकावट...?" इसके बाद उससे बोला नहीं गया !

मुकर्रम को जैसे उत्तर मिल गया। उसके चेहरे पर दृढ़ता उभर आई। आँखें खुल गईं। तिपाई की शीशी की दवा उसने अर्कों की प्यालों में पलट दी। शीशी को हिलाकर बन्द कर दिया और मुस्करा कर बोला—"बताओ गुल, इसमें क्या है ?"

गुल-अनार के चेहरे पर फिर से हँसी दौड़ गई। मानो सुबह की किरणों के स्वागत में कमल खिल गया हो। बोली—"तुम्हारे हाथ का ज़हर भी अमृत है !"

"यह अमृत पीकर अमर हो जाऊँ न गुल ?"

"क्यों नहीं ?" गुल ने निश्चिन्त उत्तर दिया।

"लेकिन फिर तुम कैसे पहुँचोगी मुझ तक !" मुकर्रम ने पूछा।

"मर कर मेरे आक़ा !" गुल-अनार ने तुरन्त उत्तर दिया।

मुकर्रम को जैसे समस्या का हल मिल गया हो। वह आगे बढ़ आया। गुल की ठोड़ी ऊँची कर मुकर्रम ने उसकी आँखों में देखा। और गुल झुक गई।

आगरे का किला। ठण्ड के दिन। रात के बारह बजे का गजर बजा। चारों ओर हवा साँय-साँय चल रही थी और दूर पर सि की हुआ-हुआ सुनाई दे रही थी। किले में जहाँ-तहाँ जलती म दीख पड़ती थीं, जैसे रात के वीराने में किसी की चिता के उसासें ले रहे हों।

मुकर्रम, दवा की शीशी लेकर सम्मन बुर्ज में हाज़िर हुआ। फरमा यही समय लिखा हुआ था। उसे ज्ञात था, यहीं-कहीं दीवारों से औरंगज़ेब की तेज़ निगाहें निगरानी कर रही होंगी। सा शाहजहाँ था। मुकर्रम ने दवा प्याले में उँड़ेल कर आगे बढ़ा शाहजहाँ के हाथों में प्याला उठा और ओंठों तक पहुँच गया।

"ठहरिए, जहाँपनाह !" हकीम ने एकाएक टोका। "आप को पर कभी शक नहीं होता ? दवाएँ जाँच कर ही पीनी चाहिएँ।"

"शक ! तुम पर ?" शाहजहाँ ने आश्चर्य से उसकी ओर दे

"जी हाँ।" मुकर्रम तलवार के-से पैने स्वर में बोला, "पहले खुद इस दवा का इम्तिहान लूँगा !" और उसने शाहजहाँ के ओंठों टिके प्याले को छीन-सा लिया। अगले क्षण मुकर्रम था और प्याल वह पूरा प्याला गट-गट पी गया। एकाएक चेहरे पर ज़ोर पसीना आया, कमल पर फिसलती हुई जल की बड़ी-बड़ी जैसा। मुकर्रम लड़खड़ा कर गिर पड़ा !

"ज़हर !!!" शाहजहाँ चीखा।

"मेरे खून में आपका नमक है, जहाँपनाह !" मुकर्रम कराहा।

चीख सुनकर गुल-अनार अन्दर से दौड़ी आई। मशाल की रो में उसने देखा, ठगा-सा बूढ़ा शाहजहाँ खड़ा था। और उसके स पड़ा था अन्तिम साँसें गिनता, ढलते सूर्य-सा अपना मुकर्रम ! पड़े प्याले ने सारी कहानी कह दी। मुगलिया सल्तनत में यह सब ही रहता था। क्षण भर में वह सब कुछ समझ गई। मुकर्रम धीरे- बोला—"गुल प्यारी ! यह सब मैं नमक के लिए—" और अन्तिम हिचकी ली।

गुल ने लम्बी चीख भरी। लगभग आधे मिनट तक सारे कि वह करुण चीत्कार गूँजता रहा। फिर गहरी खाइयों और कठोर से टकराकर स्तब्धता की गोद में वह चीत्कार खो गया। गुल पड़ी—"तुम अमर हो गए मुकर्रम ?" और कटे वृक्ष की भाँति उस पर जा गिरी।

बूढ़ा शाहजहाँ सिसक रहा था। वह बड़बड़ाया—"जिसे मैंने दिया, जो मेरा बेटा था, वह तो मेरी जान का गाहक बन बैठा ! थोड़े से नमक के लिए तुमने, मेरी खातिर, अपनी जान दे दी मुकर्रम

पीछे दीवार से सटी हुई एक छाया एकाएक हिली। शह आलमगीर औरंगज़ेब बुरी तरह मात खा कर चुपचाप खिसक की कोशिश कर रहा था।

★

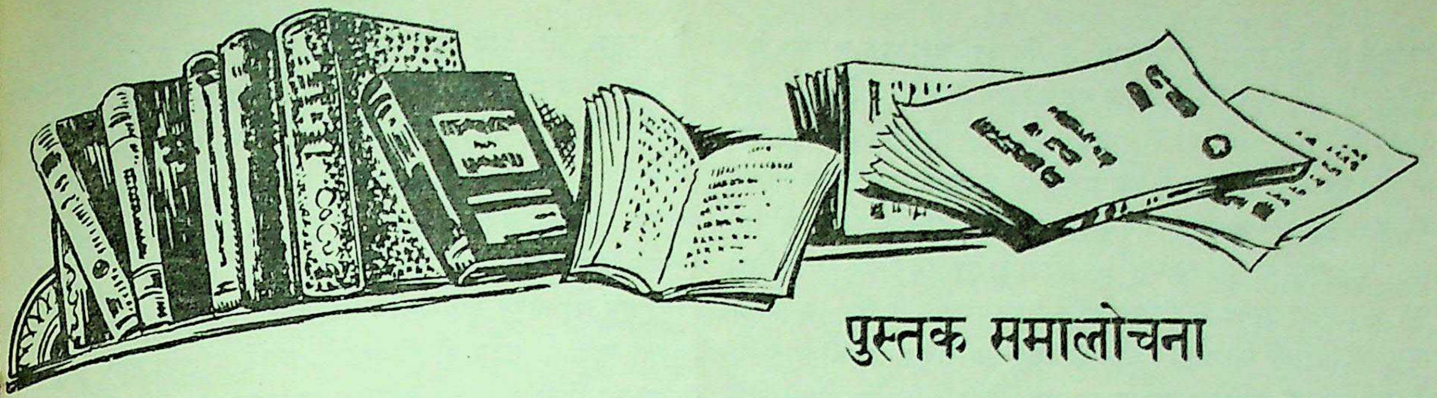

पुस्तक समालोचना

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय के बालोपयोगी प्रकाशन

पता—ज्ञानवापी, पोस्ट बौक्स नं० ७०, बनारस।

ज्ञान की कहानियाँ (चार भाग) : लेखक—सी० एस० भण्डारी; प्रत्येक की पृष्ठ संख्या ३२; प्रत्येक का मूल्य साढ़े पन्द्रह आना।

चारों भागों में कुल मिला कर ५६ कहानियाँ दी गई हैं। इन कहानियों के स्रोत विभिन्न हैं। पंचतन्त्र, ईसप, लोक-साहित्य तथा महापुरुषों के जीवन—इन सभी से उपयोगी और ज्ञानवर्धक कहानियाँ इन चारों भागों में एकत्र की गई हैं। प्रत्येक कहानी में दो चित्र दिए गए हैं। कहानियों की भाषा बालोपयोगी तथा अच्छी है। पुस्तकों की छपाई दो रंगों में है, टाइप बड़ा है और कागज़ श्रेष्ठ कोटि का है।

आदि मानव की कहानी : लेखक—योगेन्द्रनाथ शर्मा; पृष्ठ ४०; मूल्य सवा रुपया।

तीन रंगों में छपी इस सुन्दर पुस्तिका में आदि मानव की जीवन-कथा २० मनोरंजक कहानियों के रूप में दी गई है।

दूध-बताशा : लेखक—सुधाकर पाण्डेय; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य सवा रुपया।

यह पद्यात्मक रंगीन पुस्तिका नन्हे मुन्नों के लिए है। जिस आयु के बच्चों के लिए 'दूध-बताशा' लिखी गई है, उस आयु की दृष्टि से इसकी शैली कठिन है। चित्र निस्सन्देह अच्छे हैं।

अनिता सरकस गई : लेखक—बालबन्धु; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य सवा रुपया।

इस पुस्तिका में अनिता नाम की दिल्ली-निवासिनी एक लड़की सरकस देखने जाती है और वहाँ नए-नए जानवरों को देखती है। पुस्तिका मनोरंजक शैली में लिखी गई है।

फलों का झोला : लेखक—मोहन लहरी; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य सवा रुपया।

'फलों का झोला' में पद्यात्मक शैली द्वारा विभिन्न फलों का परिचय दिया गया है। पद्य सरल तथा आकर्षक शैली में लिखे गए हैं।

चाँद-सितारे : लेखक—हरिऔध; पृष्ठ ३०; मूल्य सवा रुपया।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि स्वर्गीय हरिऔध की एक बालोपयोगी अत्यन्त आकर्षक रचना का यह बहुत सुन्दर और सचित्र संस्करण, हमें विश्वास है कि अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध होगा।

सितारों की बरात : लेखक—एस० सी० खत्री; पृष्ठ ३२; मूल्य साढ़े पन्द्रह आना।

पद्यात्मक इस पुस्तिका में विभिन्न सितारों का परिचय दिया गया है। पद्य रचना आकर्षक, सरल और प्रवाहमयी है।

हाथी दादा : लेखक—बालबन्धु; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य साढ़े पन्द्रह आना। **दमकलवाले और मोती** : लेखक—बालबन्धु; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य साढ़े पन्द्रह आना।

इन दोनों पुस्तिकाओं में क्रमशः हाथी तथा कुत्ते का वर्णन दो कहानियों के रूप में दिया गया है। दोनों लम्बी कहानियाँ आकर्षक शैली में लिखी गई हैं। छपाई तथा चित्र सुन्दर हैं।

पढ़ लो बेटा पढ़ लो : लेखक—बेणीमाधव शर्मा; पृष्ठ संख्या ४८; मूल्य साढ़े पन्द्रह आना।

अक्षराभ्यास प्रारम्भ करने वाले बच्चों के लिए।

मुन्नू की दुनिया : लेखक—हरीश; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य साढ़े पन्द्रह आना।

उपर्युक्त प्रवेश पुस्तिका के बाद पढ़ने के लिए।

भीं-भीं इंजन : लेखक—बालबन्धु; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य साढ़े पन्द्रह आना।

छोटे बच्चों के लिए।

रानी घोड़ी : लेखक—बालबन्धु; पृष्ठ संख्या ३२; मूल्य साढ़े पन्द्रह आना।

इन सभी पुस्तकों की छपाई-सफ़ाई सुन्दर और आकर्षक है। रंगीन चित्रों वाली इन बालोपयोगी पुस्तकों के दाम भी अधिक नहीं रखे गए। हम चाहते हैं कि हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों से बालोपयोगी साहित्य लिखवाए। हिन्दी में इस तरह के साहित्य की बहुत बड़ी आवश्यकता है। बंगला में महाकवि रवीन्द्र-नाथ ठाकुर तथा अन्य सुप्रसिद्ध लेखकों ने यथेष्ट बालोपयोगी साहित्य लिखा है, पर अभी तक हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

ईशोपनिषद्भाष्य : लेखक—श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति; प्रकाशक—गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरिद्वार; पृष्ठ संख्या १५०; मूल्य दो रुपये।

वैदिक साहित्य एक गहन वन के समान है जिसमें उपनिषद् इस वन में बहता एक ऐसा शीतल जल का झरना है जिसके किनारे बैठ कर इस वन की थकान को मिटाया जा सकता है। जितने भी प्राचीन

आचार्य हुए हैं, उन्होंने उपनिषदों पर लिखना आवश्यक समझा है। इन उपनिषदों में ईशोपनिषद् का प्रमुख स्थान है और उसी पर विद्वान् लेखक ने यह भाष्य लिखा है। पुस्तक को तेरह परिच्छेदों में बाँटा गया है और एक-एक परिच्छेद में इस उपनिषद् के किसी एक मुख्य विचार को लेकर उसकी सुन्दर व्याख्या की गई है। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' तथा 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'—ये दो परिच्छेद बड़े रोचक ढंग से लिखे गए हैं। सारी पुस्तक के लिखने का ढंग हृदयाकर्षक है और आत्मिक-ज्ञान की पिपासा को शान्त करने के लिए भटकने वालों को ज्ञान-रस पिलाने का यह पुस्तक उत्तम साधन बन सकती है। जैसे बीज-गणित तथा रसायन-शाला में फ़ारमूले बने होते हैं और एक-एक फ़ारमूले में उनका अथाह ज्ञान सिमटा पड़ा होता है, इसी प्रकार उपनिषदों का एक-एक वाक्य अध्यात्म-शाला का एक-एक फ़ारमूला है—उसे जितना भी फैलाया जाए, थोड़ा है। इस व्याख्या को करते हुए प्राचीन आचार्य प्रमाणों का संग्रह कर दिया करते थे, एक वाक्य की पुष्टि में वेद, ब्राह्मण-ग्रन्थ, उपनिषद् न जाने क्या-क्या इकट्ठा कर देते थे, वर्तमान युग में इस प्रकार की प्रमाणवादी व्याख्या उपयुक्त नहीं प्रतीत होती। आजकल तो उपनिषद्-वाक्य को खोल कर समझा देना, प्रमाणों से पुष्ट न कर उसे बुद्धि-गम्य बना देना ठीक समझा जाता है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने प्रमाण संग्रह करने में कमी नहीं की, परन्तु साथ ही उपनिषदों के फ़ारमूलों को उनकी गुत्थियों में से निकाल कर स्पष्ट रूप से खोल कर रखने का अधिक प्रयत्न किया है। पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ जाने में पाठक के हृदय पर लेखक की विद्वत्ता या प्रतिभा की इतनी छाप नहीं पड़ती जितनी उसके उत्तम तथा सुसंस्कृत लेखक होने की छाप पड़ती है। पुस्तक उपादेय है।

गीता-नवनीत : लेखक—श्री केशवदेव आचार्य; प्रकाशक—श्री अरविंद पुस्तकालय, रेलवे रोड, हापुड़; पृष्ठ संख्या २४२; मूल्य साढ़े तीन रुपये।

श्री केशवदेव आचार्य वेदान्त शास्त्र के पंडित तथा पाश्चात्य-दर्शन में उच्चकोटि की शिक्षा प्राप्त किये हुए हैं। आप गृहस्थाश्रम के जंजाल में नहीं पड़े और सीधे सन्यस्त हुए हैं। वर्षों तक आपने पांडीचेरी के अरविन्द आश्रम में रह कर साधना की है और श्री अरविन्द के साहित्य का मनन किया है। श्री अरविन्द वर्तमान युग के उच्च-कोटि के अध्यात्म शास्त्री हुए हैं और उन्होंने अनेक मौलिक ग्रन्थ अंग्रेज़ी में लिखे हैं। श्री अरविन्द की विचार-धारा का आधार वेद, उपनिषद् तथा गीता को कहा जा सकता है और इसीलिए उन्होंने जहाँ 'दिव्य-जीवन' आदि ग्रन्थ लिखे वहाँ गीता पर भी अनेक प्रबन्ध लिखे। श्री अरविन्द के उन्हीं प्रबन्धों के आधार पर श्री केशवदेव आचार्य ने 'गीता-नवनीत' नामक ग्रन्थ तैयार किया है। श्री अरविन्द के गीता पर लिखे निबन्धों को पढ़ने की रुचि श्री केशवदेव जी की तब हुई जब एक सज्जन ने उनसे यह कहा कि जिस समय श्री अरविन्द का 'एसेज़ आन दी गीता' छपा था, उस समय ऐसी प्रसिद्धि हो गई थी कि इसके लेखक वही हो सकते हैं, जिन्होंने मूल गीता कही है। श्री अरविन्द के गीता-प्रबन्धों को पढ़ कर, उन्हें मथ कर, श्री केशवदेव जी ने यह गीता-नवनीत निकाला है। पुस्तक को तेरह परिच्छेदों में बाँटा गया है, जिनमें गीता उसका मानव जीवन से सम्बन्ध, गीता का अधिकारी, गीतोपाख्यान तात्पर्य, सिद्धान्त-सार, सांख्य और ज्ञान-योग, क्षत्रिय-धर्म, बुद्धि-यो कर्मयोग का महत्त्व-ज्ञान, कर्म और संन्यास-यज्ञ का रहस्य, अहंकार त्याग, मुक्त-कर्म तथा दिव्य-कर्म—इन विषयों की चर्चा की गई प्रत्येक विषय का प्रतिपादन श्री अरविन्द के दृष्टिकोण से किया गया और हमें यह कहते हुए संकोच नहीं होता कि वह दृष्टिकोण दिमाग बैठता जाता है, हृदय को खींचता है, उसमें नवीनता तथा अपूर्वता गीता पर जिन्होंने तिलक महाराज का भाष्य पढ़ा है उन्हें श्री अरवि के विचार भी जानने चाहिएँ। लेखक ने श्री अरविन्द के विचारों हिन्दी में प्रकट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

गो-सेवा : लेखक—महात्मा गान्धी; प्रकाशक—नवजीवन प्रका मन्दिर, अहमदाबाद; पृष्ठ संख्या २४०, मूल्य डेढ़ रुपया।

महात्मा गान्धी की 'अहिंसा' उनके जीवन का एक क्रिया सिद्धान्त था और इसे वे हर दिशा में लागू करते थे। इस सिद्धान्त अपने जीवन का आधारभूत सिद्धान्त समझते हुए उनका ध्यान गो की तरफ़ न जाता यह असम्भव था। महात्मा जी के लेखों में गो-सं गो-रक्षा आदि के विचार जहाँ-तहाँ बिखरे हुए हैं। गो-सम्बन्धी सब लेखों का इस पुस्तक में संग्रह कर दिया गया है। महात्मा जी लेख-संग्रहों में से गो-सम्बन्धी लेखों को अलग से ढूँढने की मेहनत इस संग्रह ने बचा दिया है और जो व्यक्ति सिर्फ़ गो-सम्बन्धी विचारों को जानना चाहें उनके लिए सहल रास्ता बना दिया है। पुस की ५ हज़ार प्रतियाँ पहले बिक चुकी हैं और यह संस्करण भी ५ ह प्रतियों का निकला है। इससे स्पष्ट है कि महात्मा जी के गो-सम्ब विचारों को जानने वालों की संख्या पर्याप्त है।

प्रौढ़ और सामाजिक-शिक्षा के नए प्रयोग : लेखिका श्रीमती उर्मिला जौहरी एम० ए०; प्रकाशक—विद्या मन्दिर लिमि नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या १०४, सचित्र तथा सजिल्द पुस्तक का साढ़े तीन रुपया।

श्रीमती उर्मिला जौहरी ने अमेरिका जाकर वहाँ प्रौढ़ सामाजिक शिक्षा के जो प्रयोग हो रहे हैं, उनका क्रियात्मक रूप से उपलब्ध किया। अपने उन्हीं अनुभवों के आधार पर श्रीमती जौहरी यह पुस्तक लिखी है जिसमें अमेरिका में चल रही प्रौढ़ तथा सामाजि शिक्षा का सजीव चित्र खींचा है। हमने अभी तक इस विषय जितनी पुस्तकें देखी हैं उनमें यही एक पुस्तक देखने में आई है सामाजिक शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ क्रियात्मक निर्देश लेकर उन्हें देश में भी घटाया जा सकता है। सामाजिक शिक्षा का आजकल बहुत लोग लेते हैं, परन्तु प्रौढ़ व्यक्तियों को अक्षराभ्यास करा दे अतिरिक्त वे कुछ नहीं करते। श्रीमती जौहरी की इस पुस्तक में ज जगह ऐसे नवीन निर्देश मिलते हैं, जिन्हें हम अपने देश की परिस्थि के अनुसार क्रियात्मक रूप दे सकते हैं।

—सत्यव्रत सिद्धान्तालं

●

सर्वोदय साहित्य

मेरी सर्वोदय यात्रा : लेखक—भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या ८४; मूल्य ७ आने।

सर्वोदय दैनिक जीवन में : लेखक—भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला; दारागंज, प्रयाग; पृष्ठ संख्या.४२; मूल्य ६ आने।

समाजवाद, साम्यवाद और सर्वोदय : लेखक—भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या १०४; मूल्य १२ आने।

भूदान, श्रमदान, जीवनदान : लेखक—भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या १०४; मूल्य १)।

राजव्यवस्था सर्वोदय दृष्टि से : लेखक—भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या १६०; मूल्य १॥)।

समाज-रचना सर्वोदय दृष्टि से : लेखक—भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या १६४; मूल्य १॥)।

सर्वोदय अर्थशास्त्र : लेखक—भगवानदास केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या ३५२; मूल्य ४ रुपये।

आर्थिक क्रान्ति के आवश्यक कदम : लेखक—जवाहिरलाल न; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग; पृष्ठ संख्या ५६; मूल्य ७ आने।

श्री भगवानदास केला ने राजस्थान, दिल्ली, पंजाब, बिहार, कलकत्ता पुरी आदि में खादी केन्द्रों, शिविरों शिक्षा-संस्थाओं आदि का निरीक्षण किया। पुरुषों, स्त्रियों, विद्यार्थियों, अध्यापकों और रचनात्मक कार्य करने वालों से तरह-तरह की सर्वोदय चर्चा हुई। लेखक इस यात्रा को सर्वोदय यात्रा क्यों कहते हैं, समझ में नहीं आया। वे तो कई तरह की चर्चा करते हैं, जो बहुत सुन्दर हैं, पर इन से सर्वोदय का क्या सम्बन्ध। एक उदाहरण लीजिए—"नगरा-सिलावली (मुरैना) में अक्तूबर मास में जो सामूहिक हत्याएँ हुई उनसे तो परिस्थिति और भी अधिक शोचनीय प्रतीत हुई। शासन ने इसका सामना अपने ढंग से पुलिस और फ़ौज द्वारा किया। जनता में आतंक, अशान्ति और निराशा की भावना बहुत बढ़ गई। शान्ति और प्रेम को देश की नव-रचना का साधन मानने वालों को यह स्थिति एक चुनौती थी, जिसका जवाब दिया जाना आवश्यक था। इस प्रकार इस शिविर का महत्त्व स्पष्ट था।

"सामूहिक हत्याकाण्ड की बात—ऊपर जो सामूहिक हत्या की बात कही गई है, उसके विषय में हमें जो जानकारी प्राप्त हुई वह इस प्रकार है—डाकू लाखनसिंह से जनता की रक्षा करने के निमित्त सरकार ने इस क्षेत्र में पुलिस रखी हुई है, वह हवेली वाले जमींदार रघुबीर की हवेली में रहती है। इस पुलिस के होते हुए लाखनसिंह के दल ने गाँव के पाँच आदमियों की हत्या की। तब पुलिस ने कुछ न किया, पीछे १० अक्तूबर को सुबह उसने भिन्न-भिन्न स्थानों से सात व्यक्तियों को पकड़ा। ये ही सात व्यक्ति ११ अक्तूबर को सवेरे सिलावली गाँव के पास मारे गए। पुलिस का कहना है कि ये आदमी संघर्ष में मारे गए, पर गाँव वालों की मान्यता है कि ये निर्दोष थे, इनमें से दो तो सरकारी पेन्शन पाते थे, और डेढ़-दो महीने पहले तक पेन्शन की रकम लाए थे। पुलिस का इन सात आदमियों को दोषी कहना असत्य है। गाँव वालों का यह भी कहना था कि 'हम एक ओर लाखनसिंह से सताए जाते हैं तो दूसरी ओर पुलिस से। पुलिस हमारी रक्षक नहीं है, इसे तुरन्त हटा लिया जाना चाहिए।' हाँ, इस तरह की बातें आदमी साफ़-साफ़ खुले-आम नहीं कहते, उन पर आतंक छाया हुआ था।"

इसके बाद लेखक ने यह बताया कि लाखनसिंह डाकू क्यों बना? यदि लेखक ने उसे सर्वोदय के मन्त्र द्वारा सुधारा होता, या कम-से-कम चेष्टा की होती, तो इस पुस्तक के नाम की कुछ सार्थकता होती। यह तो कहीं रिपोर्ताज है, कहीं भ्रमण कहानी, कहीं आत्मकथा। किसी भी शब्द को महज़ एक नारे के रूप में यत्रतत्र प्रयोग करना उसे इतरीकृत करना है।

'सर्वोदय दैनिक जीवन में' पुस्तक में खान-पान, पहनावा, खेती, उद्योगधन्धे, व्यापार तथा व्यवसाय पर सर्वोदय का दृष्टिकोण बताया गया है। थोड़े में यह दृष्टिकोण इस प्रकार है—'संसार में सर्वोदय की यह भावना बहुत पुराने जमाने से है। भारत के ऋषियों और विद्वानों ने हजारों वर्ष पहले कहा था कि अपने और पराए की बात छोटे दिल वाले करते हैं, उदार हृदय वालों के लिए तो सारा संसार ही अपना परिवार है। इस जमाने में इस भावना के मुख्य प्रचारक महात्मा गान्धी हुए हैं और उनके शिष्य विनोबा अब पैदल यात्रा करते हुए भूदान-यज्ञ, सम्पत्तिदान-यज्ञ और श्रमदान-यज्ञ के द्वारा जगह-जगह लोगों में यह भावना फैला रहे हैं।'

'किसी पदार्थ का उपयोग करते समय हम यही न सोचें कि हमारी जरूरत पूरी हो जाए, बल्कि हम यह भी विचार करें कि क्या लोकहित की दृष्टि से इसका इसी प्रकार उपयोग किया जाना उचित है, या इसमें कुछ फेर-बदल होना चाहिए। खान-पान में लेखक बाजार, दुकान तथा होटल में खाने के विरुद्ध राय देते हैं। लेखक पास के ही स्थानों में पैदा होने वाली चीजों पर जोर देते हैं और कहते हैं : "इसके अतिरिक्त यह भी याद रखने की बात है कि साधारणतया जो व्यक्ति जहाँ का निवासी होता है, उसकी प्रकृति के लिए वहाँ के ही पदार्थ अधिक अनुकूल रहते हैं। इसलिए भी हमारे वास्ते स्थानीय पदार्थों के उपयोग की बात का विशेष महत्त्व है।" पहनावे में लेखक कहते हैं "हम कई-कई जोड़ी कपड़े रखते हैं और फिर भी अगर बस चले तो कुछ नए कपड़े बनाने की योजना करते रहते हैं। क्या हम नहीं जानते कि हमारे अनेक भाई-बहनों की अपनी शरीर-रक्षा के लिए अथवा लज्जा-निवारण के लिए भी यथेष्ट वस्त्र नहीं मिलता? हम लोग

भारत में रहते हुए और भारतीय कहलाते हुए भी वास्तविक भारत से (गरीब ग्रामीणों से) अपरिचित से रहते हैं अथवा जान-बूझकर उनकी ओर देखना और उनका ख्याल करना नहीं चाहते। हमारा किसान भाई प्रायः 'आधा-नंगा' रहता है।" सादापन का विचार ठीक है, पर एक व्यक्ति के कम कपड़े पहनने से अधनंगों को लाभ होगा, यह बात समझ में नहीं आती। क्या ऐसा कोई नियम है? हाँ यदि कोई कम-से-कम कपड़े रखकर बाकी अधनंगों में बाँटता रहे तो बात और होगी। पर जब लेखक जूठन रखने का यह कह कर विरोध करते हैं कि हमारी जूठन गरीबों या नीची कही जाने वाली जातियों के आदमियों के काम आती है, तो मानवता का अपमान करना है, हम किसी को जूठन क्यों दें, तब फिर कपड़ों का दान देना क्यों अच्छा होगा? खेती के विषय में कहते हुए लेखक व्यापारिक फसल के वजाय चावल और गेंहू उगाने पर जोर देते हैं। यह कहाँ तक सम्भव है? क्या दोनों में समन्वय नहीं हो सकता? यदि हम माल बेचेंगे नहीं तो मशीन आदि खरीदेंगे कैसे? तो क्या हमारी योजनाएँ सर्वोदय विरोधी आधार पर बनी हैं?

'समाजवाद, साम्यवाद, और सर्वोदय' में लेखक ने समाजवाद और साम्यवाद के मुकाबले में श्रेष्ठता दिखलाई है, उनका मुख्य कथन इस सम्बन्ध में इस प्रकार है—'समाजवाद का सिद्धान्त है कि राज्य भर के सब आदमियों की सम्पत्ति का अधिकार राज्य को हो, किसी आदमी के पास कोई निजी सम्पत्ति न हो। हरेक आदमी की निजी सम्पत्ति राज्य द्वारा छीन ली जाए, और सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण हो। इसके विरुद्ध, सर्वोदय में किसी भी आदमी के पास अपनी निजी सम्पत्ति हो सकती है, और वह चाहे जितनी हो सकती है। हाँ, सम्पत्ति का अधिकारी अपने आपको उसका ट्रस्टी समझे और उसका उपयोग समाज की एक अमानत या धरोहर के रूप में करे। अगर कोई धनी यह शर्त पूरी नहीं करता तो जनता को अधिकार है कि वह उसे ट्रस्टी न रहने दे; हाँ, इसमें अहिंसात्मक उपायों से ही काम लिया जाए।' प्रश्न यह है कि यदि वह जबरदस्ती ट्रस्टी बना रहे तो? यदि वह अपने धन से जन बढ़ा ले और भाड़े के टट्टू दार्शनिक उसका साथ दें? पर लेखक का कहना है विजय सत्य की अवश्य होगी।

'भूदान, श्रमदान, जीवनदान' में विनोबा के विचार प्रतिपादित हैं। 'राजव्यवस्था—सर्वोदय की दृष्टि में' पुस्तक में सर्वोदय पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'समाज रचना सर्वोदय की दृष्टि में' पूर्वोक्त ग्रन्थ का पूरक है।

'सर्वोदय अर्थशास्त्र' में अर्थशास्त्र में सर्वोदय का क्या दृष्टिकोण होना चाहिए, यह बताने की चेष्टा की गई। भूमिका में श्रीकृष्णदास जाजू कहते हैं प्रचलित अर्थशास्त्र की किताबों में जो विचार पाये जाते हैं, वे प्रायः पाश्चात्य राष्ट्रों की आर्थिक व्यवस्था को लेकर हैं, यंत्र-युग शुरू होने पर वहाँ जो केन्द्रित और पूंजीगत आर्थिक व्यवस्था निर्माण हुई, उस पर वे आधारित हैं, समय के साथ कुछ परिवर्तन जरूर हुआ, पर मूल ढाँचा जैसा का तैसा बना रहा, इसमें प्रधानता है बड़े-बड़े केन्द्रित उद्योगों की, जिनसे बनी हुई चीज जगत् के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचती हैं; इतना ही नहीं, वरन् जहाँ आवश्यकता नहीं है, वहाँ भी नाना युक्ति-प्रयुक्तियों से लाद दी जाती हैं, और उनके कच्चा माल जगत् भर से बटोर कर और कई देशों को अपने कर प्राप्त करने की आवश्यकता खड़ी होती है, बड़े-बड़े वर्ग-भेद हो कर संघर्ष के कारण बनते हैं, स्पर्द्धा तो उसका प्राण ही है, छोटे पीसे जाते हैं, और ग़रीबों का शोषण होता है। कुछ थोड़े व्य के हाथ में विराट स्वरूप के कारोबार आकर, भले ही कानूनन न व्यवहार में एकाधिकार आ जाता है। वे अपनी संगठित शक्ति से में मनचाही उथल-पुथल कर सकते हैं। सब देशों में प्रजातंत्र दुहाई दी जाती है; पर जहाँ आर्थिक व्यवस्था जनतांत्रिक न रहते केन्द्रित रहती है और उसे कानून से संरक्षण मिलता है तो प्रज वास्तव में एक दिखावा रह जाता है, आज के पेचीदे समाज में नीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं का बहुत प्रभाव है, अगर उनका मेल न हो तो समाज का सच्चा हित कैसे सध सकता है? इस व्यव में अमीरों का ही बोलबाला रहता है गरीबों को उनकी मर्जी पर लम्बित रहना पड़ता है, न कि अपने मानवोचित हक के आधार इस पूंजीवाद की आँच कुछ मंद करने के लिए अब राज्य का कार 'वेलफेयर स्टेट' के नाम से चलने लगा है। समाजवाद भी आ हुआ है, और विरोध में हिंसात्मक साम्यवाद तो है ही।"

"समाज में सुख-शान्ति रहने के लिए अर्थशास्त्र पैसे की मानवता पर आधारित होना चाहिए, व्यक्ति का अपना निज मानवो स्वतन्त्र स्थान होना चाहिए; सबल हो या निर्बल, सबको स्वाभिम पूर्वक रहने का मौका मिलना चाहिए। सब प्रकार की कृत्रिम विषमत मिट कर व्यवहार में यथासम्भव समता आनी चाहिए और स्पर्द्धा बदले सहकार। मनुष्य को अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं के बा स्वावलम्बी रहे बिना सच्ची स्वतन्त्रता सम्भव नहीं; इसलिए ऐसी च का उत्पादन विकेन्द्रित होना चाहिए। राजसत्ता भी यथास विकेन्द्रित हो। अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाने की अपेक्षा, मन और को स्वस्थ रखते हुए, कम-से-कम चीज़ों से काम चलाना चाहिए जाजू जी यह मानते हैं कि—

"सर्वोदय का सम्पूर्ण अर्थशास्त्र लिख डालना आसान नहीं है, वैसे समाज का व्यापक पैमाने का नमूना हो और उसका कुछ तक परीक्षण हो तब कहीं उस शास्त्र के नियम और वे भी अंशत हाथ आ सकते हैं, सर्वोदय समाज का रूप क्या हो, इस विषय अब तक कुछ फुटकर विचार अवश्य किया गया है। पर उसका चित्र नहीं खींचा जा सकता; आज की दशा में इतना ही विवेचन जा सकता है कि अर्थशास्त्र के प्रचलित विचारों में सर्वोदय की से क्या फर्क होना चाहिए। इस किताब में यह किया गया है।"

लेखक धन तथा उसके उपयोग में सामाजिक दृष्टि को महत्त्व हैं। वे सादा जीवन और उच्च विचार पर ज़ोर देते हैं, पर वे यह नहीं करते कि यदि उच्च रहन-सहन और उच्च विचार साथ-साथ हों उन्हें कोई आपत्ति होगी या नहीं। हाँ वे रहन-सहन का दर्जा करने को अनिष्टकारी सनक मानते हैं। वे टूथ पेस्ट के बजाय रा

(शेष पृष्ठ ७० पर)

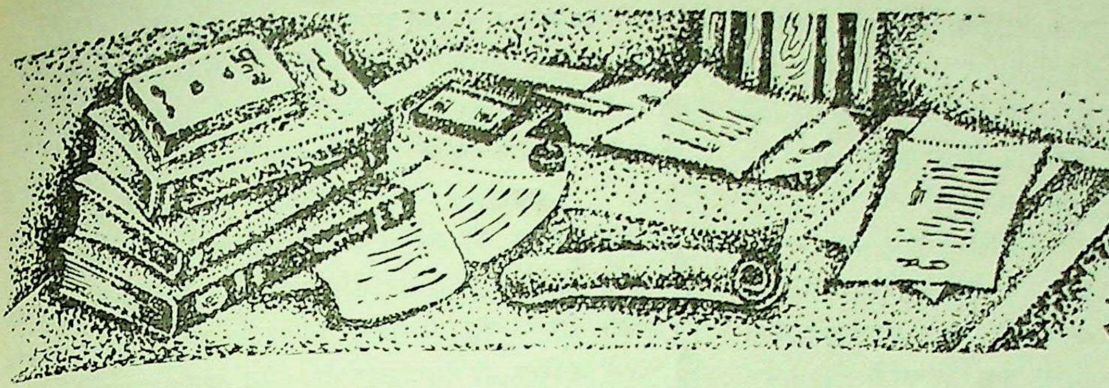

सम्पादकीय

"बहता दरिया"

हाल ही में संसदीय हिन्दी परिषद् के वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"जीवित भाषा तो एक बहते दरिया के समान होती है, जिसमें नए-नए पानी के समान नए-नए शब्द मिलते रहते हैं।" उन्होंने बताया कि अंग्रेज़ी भाषा में प्रति वर्ष लगभग ५,००० नए शब्दों की वृद्धि होती है। कितने ही शब्द अप्रचलित होकर पुराने पड़ जाते हैं। प्रधान मन्त्री ने कहा कि हिन्दी को भी नए-नए शब्द ग्रहण करने चाहिएँ ताकि हमारी भाषा समृद्ध हो सके। संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य को भारत की एकता कायम रखने का सबसे बड़ा उपकरण स्वीकार करते हुए भी उन्होंने सलाह दी कि हिन्दी को अब पूर्ण रूप से अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनानी चाहिए। संस्कृत से पूरी सहायता लेते हुए भी सभी बातों में संस्कृत की नकल करना उचित नहीं है।

प्रधान मन्त्री की उक्त स्थापना निस्सन्देह मनन करने के योग्य है। आज हिन्दी जिस रूप में विद्यमान है, उस रूप पर भी कितने ही स्पष्ट प्रभाव देखे जा सकते हैं। अधिकांश शब्द संस्कृत तथा तद्भव भाषाओं से लिए गए हैं। मुहावरों और विभक्तियों पर उर्दू का प्रभाव है और शैली पर पिछले २५ वर्षों में अंग्रेज़ी का ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा है। इन सब प्रभावों के अतिरिक्त अन्य भी कितनी भाषाओं से हिन्दी अपना शब्दकोश समृद्ध करती रही है।

कुछ राजनीतिक तथा अन्य कारणों से हिन्दी जगत के एक भाग में यह आन्दोलन भी चल पड़ा था कि हिन्दी में से वे सब शब्द निकाल दिए जाएँ, जो तद्भव या तत्सम नहीं हैं। यह प्रवृत्ति स्पष्टतः प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति थी। बहिष्कार की यह प्रवृत्ति पहले उर्दू जगत में आई और उसका गहरा प्रभाव हिन्दी पर पड़ा। स्पष्टतः इस प्रवृत्ति ने हिन्दी को कमज़ोर बनाया। हिन्दी तो अभी विकास की दिशा में है और अभी हिन्दी को ज्ञान-विज्ञान के लाखों नए शब्दों का निर्माण करना है। इसके साथ-ही-साथ अभी हमें हिन्दी शैली का मानकरण करना है और शब्दों को निश्चित अर्थ देना है। इस स्थिति में शब्दों और मुहावरों के बहिष्कार की प्रवृत्ति और भी अधिक हानिकर होती है। हमें इस बात का हर्ष है कि हिन्दी जगत का बहुत बड़ा भाग अब इस प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति के पक्ष में नहीं है और वह समझता है कि हिन्दी भी एक बड़ा बहता हुआ दरिया है।

इस प्रसंग में हमें यह भी निवेदन करना है कि हिन्दी में आज जो नए पारिभाषिक शब्द बनाए जा रहे हैं, वे न केवल हिन्दी के लिए अपितु भारत की सभी भाषाओं के लिए एक रूप में ही बनने चाहिए। इस स्थापना का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि भारत की १४ राष्ट्रीय भाषाओं के प्रतिनिधियों को एक साथ मिल कर सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक ही पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण करना चाहिए। तब ये १४ बहते दरिया एक साथ मिल कर एक शक्तिशाली महा समुद्र का निर्माण कर सकेंगे।

●

राष्ट्रीय प्लेग

हाल ही में हड़तालों का एक अत्यन्त जघन्य रूप देश के सामने आया है। खड़गपुर में यात्रियों (जिनमें अधिकांश रेलवे कर्मचारी थे) से भरी गाड़ी के एंजिन को चलाकर हड़तालियों ने ड्राइवर और उसके सहकारी को ज़बर्दस्ती एंजिन से नीचे खींच लिया। यात्रियों से भरी इस चलती गाड़ी को दुर्घटना का शिकार होना ही था। स्वभावतः बहुत बड़ी संख्या में इस गाड़ी के यात्री ज़ख्मी हुए। उसके बाद कालका, अम्बाला, दिल्ली आदि स्टेशनों पर भी हड़तालियों ने रेलों के यातायात को रोक दिया। यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है। खड़गपुर में जो गुण्डागीरी हुई, वह ट्रेड यूनियनों के इतिहास में शायद सबसे अधिक काला कारनामा है। हमारा देश आज पुनर्निर्माण के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। बहुत बड़ी आबादी वाला हमारा यह देश सदियों की पराधीनता के कारण इतना दुर्बल और दरिद्र हो चुका है कि स्वाधीन भारत की पहली पीढ़ी का यह पुण्य कर्तव्य है कि वह अपनी सारी शक्ति अपने देश को सम्पन्न बनाने में लगाए। यह इतना बड़ा काम है कि हमें बरसों तक जुट कर अध्यवसाय करना होगा। इन परिस्थितियों में इस तरह की हड़तालें प्लेग से कम खतरनाक नहीं हैं। यह ऐसी प्लेग है, जो न केवल देश के आर्थिक विकास में अड़चन सिद्ध होगी, अपितु जो काला बाजार आदि को भी प्रोत्साहित करेगी। देश के नवयुवकों को इस तरह के राष्ट्र विरोधी कार्यों को रोकने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

●

देहातों के लिए नाटक

हमारे देश में साक्षर लोगों की संख्या २० प्रतिशत के लगभग है। देश की ८० प्रतिशत जनता अभी तक निरक्षर है। दूसरे शब्दों

में भारत में आज प्रचार के लिए जितना साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है, वह हमारे देश की ८० प्रतिशत जनता के लिए निरर्थक है। और नई बातें बताने तथा समझाने की सबसे बड़ी आवश्यकता इसी ८० प्रतिशत जनता को है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस ओर ध्यान देने का गम्भीर प्रयत्न किया गया था और अब दूसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ के साथ इस काम का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। यह काम इस प्रकार किया जा रहा है—जादू की लालटेन से तस्वीरें दिखाना, तस्वीरों वाले बड़े-बड़े पोस्टर प्रकाशित करना, शिक्षाप्रद गीतों का प्रचार करना, रेडियो द्वारा शिक्षा तथा देहातों के लिए नाटक मण्डलियाँ बनाना।

हाल ही में इनमें से कुछ नाटकों का प्रदर्शन दिल्ली में किया गया। इन नाटकों में 'सवेरा' नामक नाटक विशेष लोकप्रिय सिद्ध हुआ। नाटक का अभिनय एक सफल संगठन की अपेक्षा करता है। नाटक के अभिनय द्वारा अभिनय करने वालों को भी बहुत अच्छा प्रशिक्षण मिलता है। यह आवश्यक है कि सबसे पूर्व देहातों के लिए अच्छे नाटक लिखवाने के कार्य को प्रोत्साहन दिया जाए और उसके बाद विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन नाटकों को खेलने वाली नाटक मण्डलियाँ तैयार की जाएँ। ये नाटक मण्डलियाँ यथावसर देहातों में उक्त नाटकों का अभिनय करें, तो उससे न केवल ग्रामवासियों को भी उचित शिक्षा दी जा सकेगी अपितु यह अनुभव हमारे नवयुवक विद्यार्थियों के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। देहातों में ग्रामवासियों की निजी नाटक मण्डलियाँ तो बनानी ही चाहिएँ। इन देहाती नाटक मण्डलियों में परस्पर सामुख्य की प्रथा जारी करना भी आवश्यक है।

पुस्तक समालोचना—(पृष्ठ ६८ का शेषांश)

नमक अधिक पसन्द करेंगे। वे दो-तीन जोड़ी कपड़ों से सन्तुष्ट होने को कहते हैं। यह सब एक हद तक ठीक है, पर कहीं इस प्रकार के विचार 'गरीबी का दर्शन' बन कर न रह जाय जिससे लोगों में सन्तोष हो जाए, वे विद्रोह भावना से बचे रहे और धनी आनन्द करते रहें।

"आर्थिक क्रान्ति के आवश्यक कदम" में लेखक इन विचारों को सामने रखते हैं—"सबै भूमि गोपाल की," "सम्पत्ति सब रघुपति के आहि" सब एक ही वर्ग श्रमिक वर्ग में शामिल हों, वेतनों की विषमता दूर हो, श्रम ही विनिमय और जमा का साधन हो, ग्रामोद्योगों को प्राथमिकता दी जाय, यन्त्रोद्योग मर्यादित तथा पंचायती हो, व्यापार संस्थागत हो, जीवन-यापन के लिए उत्पादक उद्योग अनिवार्य बनें।

—मन्मथनाथ गुप्त

●

ज्ञान सरोवर (भाग १)—इस पुस्तक को भारत सरकार के लिए मक्तबा जामिया, जामिया नगर, देहली ने तैयार किया है, और इसका प्रकाशक भारत सरकार का शिक्षा मन्त्रालय है। पुस्तक की भूमिका में श्री हुमायूँ कबीर ने इसके प्रकाशन का प्रयोजन निम्नलिखित शब्दों में प्रगट किया है—"भारत सरकार ने जनसाधारण के लिए "ज्ञान सरोवर" के नाम से एक विश्वकोश लिखाने की व्यवस्था की है। इस विश्वकोश की तैयारी में यह ध्यान रक्खा गया है कि आम लोग इसे पढ़ें तो आजकल की दुनिया में जो नए-नए माली और राजकाजी विचार पैदा हो रहे हैं उनको समझने लगें और साइंस और टेकनीक में जो दिन-दिन बढ़ती हो रही है उसे भी जान लें। इस तरह अपनी जानकारी बढ़ाकर हमारे देश के लोग नए भारत के और अच्छे नागरिक बन सकेंगे। इन सब बातों को इस विश्वकोश में ऐसी बोली में बताने की चेष्टा की जाएगी जो आम लोगों की बोली है और जिसे सब सहज में समझ सकते हैं। इसी प्रयोजन को दृष्टि में रख कर इस "ज्ञान सरोवर" में ब्रह्माण्ड की कहानी, आदमी की कहानी, हमारी दुनिया, हमारे पड़ोसी, विश्वसाहित्य, विज्ञान की बातें, इंजीनियरी के चमत्कार, रोग पर विजय, जीव-जन्तु और पौधे आदि शीर्षकों से बहुत-सी उपयोगी बातों की जानकारी कराने का प्रयत्न किया गया है। ज्ञान-विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों के साथ सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी बातों का परिचय इस पुस्तक में आ गया है और आशा है कि जब इस "सरोवर" के सब भाग प्रकाशित हो जाएँगे, तो उनमें उन सब बातों का समावेश हो जाएगा, जिनका ज्ञान स्वतन्त्र भारत के नए नागरिकों को अवश्य होना चाहिए।

क्योंकि यह "पुस्तक नए पढ़े हुए और कम पढ़े लोगों के लिए" लिखी गई है, अतः यह ध्यान में रखा गया है कि इसकी भाषा बहुत सरल हो, और विषय के प्रतिपादन का ढंग भी रुचिकर हो। इस उद्देश्य में पुस्तक के लेखकों को सफलता भी प्राप्त हुई है। आठ-दस साल की आयु के बालक भी इसे रुचिपूर्वक पढ़ते हैं, और एक बार शुरू करके उनका मन इसे छोड़ने को नहीं करता। निःसन्देह, इससे उनके ज्ञान में वृद्धि भी होती है। चित्रों के बाहुल्य के कारण पुस्तक की उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है। बड़े आकार के ३०१ पृष्ठों के लिए २ रु० मूल्य भी बहुत कम है।

पर कुछ बातें ऐसी हैं, जो भारत सरकार द्वारा प्रकाशित इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक के अनुरूप नहीं हैं। चित्रों के डिज़ाइन सुन्दर नहीं कहे जा सकते। महाभारत पुराण और कालिदास की कथाओं के साथ जो चित्र दिए गए हैं, उनकी वेशभूषा उस युग के अनुरूप नहीं है जिसके साथ इन कथाओं का सम्बन्ध है। जिस काल में ये ग्रन्थ लिखे गए थे, उसके अनेक ऐसे भग्नावशेष भी वर्तमान समय में मिलते हैं जिनमें उस युग की वेशभूषा को सूचित करने वाले चित्र अंकित हैं। यदि उनके आधार पर इन चित्रों के डिज़ाइन बनवाए जा सकते, तो बहुत उत्तम होता। पुस्तक के विविध प्रकरण किन सज्जनों के लिखे हैं, और इसका सम्पादन किन्होंने किया है, यह भी कहीं नहीं लिखा गया। पर इन साधारण कमियों के बावजूद यह "ज्ञान सरोवर" बहुत

उपयोगी प्रकाशन है, और इसको तैयार कराने के लिए मक्तबा जामिया साधुवाद का पात्र है।

—सत्यकेतु विद्यालंकार

◆

मेघदूत : रचियता—नारायण सिंह भाटी; प्रकाशक—पीथल प्रकाशन, कचहरी रोड, जोधपुर; पृष्ठ संख्या १४४; मूल्य ढाई रुपया।

'मेघदूत' के अनेक अनुवाद हिन्दी में प्रकाशित हो चुके हैं। श्री भाटी ने इस महान् काव्य का राजस्थानी में अनुवाद करके एक नवीन मार्ग-दर्शन किया है। श्री भाटी को अपनी मातृ-भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार है। इससे पहले आपका प्रथम राजस्थानी काव्य 'साँझ' प्रकाशित हुआ था जिसका सर्वत्र अभूतपूर्व स्वागत हुआ। 'मेघदूत' का अनुवाद भी सफल और सुन्दर कृति है। अनुवाद के साथ-साथ मूल काव्य और हिन्दी गद्यानुवाद भी दिया गया है जिससे कालिदास के इस ग्रन्थ-रत्न को सूक्ष्मता से समझने में सहायता मिलती है। अन्त में राजस्थानी शब्दों के अर्थ भी दिए गए हैं। हम इस अनुवाद का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि भाटी जी भविष्य में हमें अन्य सुन्दर अनुवाद देंगे।

तुलसी-साहित्य और सिद्धान्त : लेखक—यज्ञदत्त शर्मा; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली; पृष्ठ संख्या १६०; मूल्य ढाई रुपया।

तुलसी पर अनेक आलोचनात्मक पुस्तकें लिखी गई हैं। तुलसी-साहित्य एक ऐसा अपार सागर है जिसमें जितनी ही गहरी डुबकी लगाई जाए, उतने ही नए-नए रत्न प्राप्त होते हैं। आलोच्य पुस्तक का उद्देश्य तुलसी-साहित्य पर कुछ नया प्रकाश डालना तो नहीं है, परन्तु तुलसी पर अब तक प्रकाशित साहित्य के आधार पर तुलसीदास की जीवनी, विचारधारा, रचनाओं आदि के विषय में संक्षेप में उपयोगी सामग्री एकत्र की गई है। पुस्तक विद्यार्थियों के लाभ की अधिक है जैसा कि भूमिका में स्वीकार भी किया गया है। प्रसंगोचित उद्धरण भी दिए गए हैं जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में उस अध्याय का संक्षिप्त सार भी दिया गया है। तुलसी-साहित्य के प्रेमियों के लिए पुस्तक पठनीय है।

सृष्टि की साँझ : रचयिता—सिद्धनाथ कुमार; प्रकाशक—पुस्तक मन्दिर, बक्सर (आरा); पृष्ठ संख्या १७६; मूल्य साढ़े चार रुपये।

आलोच्य पुस्तक में श्री कुमार के पाँच काव्य-नाटक संगृहीत हैं जो रेडियो के लिए लिखे गए और ऑल इण्डिया रेडियो के विभिन्न स्टेशनों से अनेक बार प्रसारित हो चुके हैं। नाटकों का विषय स्वस्थ और विचारोत्तेजक है और शैली उपयुक्त। सभी नाटकों में मुक्त छन्द का प्रयोग किया गया है, यद्यपि सर्वत्र प्रवाह का निर्वाह ठीक से नहीं हो सका है। आज के जीवन-यथार्थ की प्रभावशाली अभिव्यक्ति सभी नाटकों में हुई है, यद्यपि संस्कृतनिष्ठ भाषा होने के कारण कहीं-कहीं अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता और प्रभावकता घट गई है। नाटकों की—विशेषतः उन नाटकों की जो रेडियो या रंगमंच के लिए लिखे जाते हैं—सफलता के लिए यह आवश्यक है कि भाषा सरल हो और जीवन-यथार्थ के अधिक से अधिक निकट। फिर भी सिद्धनाथ कुमार के नाटकों में पाठकों को आन्दोलित करने की क्षमता है। गहराई की अवश्य कमी है, जो आशा है, समय के साथ दूर हो जाएगी।

—प्रयागनारायण त्रिपाठी

◆

आलोचना के सिद्धान्त : लेखक—व्योहार राजेन्द्रसिंह; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६; पृष्ठ संख्या २०५; मूल्य चार रुपये।

पूर्वात्य और पाश्चात्य साहित्य-मनीषियों का विस्तृत अध्ययन करके लेखक महोदय ने यथासाध्य परिश्रम द्वारा एक सुन्दर और सुपाठ्य ग्रंथ की रचना की है। स्वयं लेखक के कथनानुसार उत्तम-कला-कृति के अनिवार्य लक्षणों के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों को एकत्र करके संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव कर यह पुस्तक तैयार की गई है। प्रथम भाग में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है और द्वितीय भाग में आलोचना के विकास पर प्रकाश डाला गया है। अन्त में संदर्भ ग्रन्थों की सूचना दे दी गई है। लेखक महोदय पर अंग्रेज़ी ग्रन्थों का गहरा प्रभाव जान पड़ता है और कभी-कभी ऐसा मालूम होता है कि वह अंग्रेज़ी में सोचने के आदी हैं। पर इससे पुस्तक की उपादेयता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अध्ययन की प्रचुरता पुस्तक में सर्वत्र परिलक्षित होती है, और कहीं-कहीं उसमें अति का भी आभास होने लगता है। इस प्रकार के शास्त्रीय दृष्टिकोण से यह साहित्य-विवेचन साहित्य-प्रेमियों के लिए तो रुचिकर होगा ही विद्यार्थी वर्ग के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। पुस्तक की छपाई, सफाई और गेटअप आदि उत्कृष्ट और सुन्दर हैं।

मिहिरकुल : लेखक—डाक्टर कैलाशनाथ भटनागर; प्रकाशक—भारतीय गौरव ग्रन्थमाला, करौल बाग; नई दिल्ली-५; पृष्ठ संख्या १४४; मूल्य ढाई रुपया।

यह नाटक तीन अंकों में लिखा गया है। लेखक 'कुणाल', 'भीम-प्रतिज्ञा' तथा 'श्रीवत्स' आदि जनप्रिय नाटकों के रचयिता हैं और आशा है कि अभिनय की दृष्टि से उनका यह नाटक भी सफल सिद्ध होगा। उनके उक्त नाटकों की भाँति यह नाटक भी भारतीय संस्कृति और आदर्शों के गौरव प्रकाशन का साधन है। नाटककार ने इतिहास से कुछ भिन्न परिस्थितियाँ दिखलाई हैं, सो नाटकत्व की दृष्टि से। इसलिए इस विषय में क्या कहा जा सकता है। ज्ञात होता है कि नाटक जल्दी में छापा गया है इससे छपाई को अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं, जो आगामी संस्करण में सुधारी जा सकेंगी। चरित्रों का चित्रण रंगमंच की दृष्टि से सामान्य सुन्दर है।

—जगदीश गोयल

◆

मई अंक में हमने वैद्यक के नुस्खों की एक पुस्तक 'स्वास्थ्य के साधन और औषधि विज्ञान' की आलोचना की थी। उसमें प्रकाशक का पता छपने से रह गया था जो इस प्रकार है: बाबू प्रसाद गुप्त विशारद, श्री जगदीश ज्योतिष कार्यालय, सुन्दर विलास, अजमेर।

सर्वोत्तम भारतीय चीनी-मिट्टी के
बर्तनों से
अपनी मेज की खूबसूरती
बढ़ाइए

प्रस्तुतकारक—
बंगाल पॉटरीज़
लिमिटेड
४५, टैंगरा रोड, कलकत्ता-१५

सोल सेलिंग एजेंट्स :—
एलाइड डिस्ट्रीब्यूटर्स एण्ड कंपनी
हेड आफिस :- ३३, ब्रे बोर्न रोड, कलकत्ता-१

BP 551.

विक्रेता
शाखा का पता

एलाईड डिस्ट्रीब्यूटरज़ एण्ड कम्पनी
१३-१४ अजमेरी गेट एक्सटेंशन,
नई दिल्ली

कलात्मक बुनाई के प्रतीक
प्रभावशाली वस्त्र ....

फ़ैशन के अनुरूप, हस्त-करघा निर्मित वस्त्रों द्वारा अपना वस्त्र-भण्डार सामयिक बनाए रखिए।

राष्ट्रीय पोशाक बनवानी हो अथवा स्थानीय, विशेष अवसरों पर अथवा साधारण प्रयोग के लिए—सुखदायक सूती, मुलायम और हल्के रेशमी तथा कड़ाके की ठण्ड से बचाने योग्य मोटे ऊनी—विविध प्रकार के हस्त-करघा निर्मित कपड़े प्राप्य हैं। श्री-सम्पन्नों के लिए, समारोह के अवसरों पर पहिनने योग्य, मश्रु, हिमरू, किनखाब तथा ब्रॉकेड भी मिलते हैं।

भारत के करघा-बुनकरों की परंपरागत निपुणता तथा कला-कौशल के प्रतीक

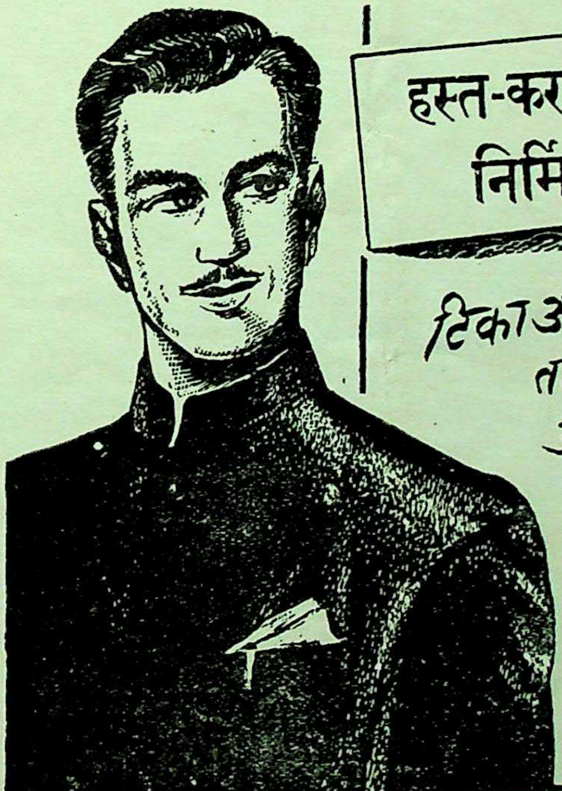

हस्त-करघा
निर्मित वस्त्र

टिकाऊ
तथा
उत्कृष्ट

आल इण्डिया हैण्डलूम बोर्ड

१८ मौब्रेज रोड,
मद्रास-१८

शाहीबाग़ हाऊस,
विटेट रोड, बैलार्ड एस्टेट, बम्बई

७/१९२ स्वरूपनगर,
कानपुर

DASS/121

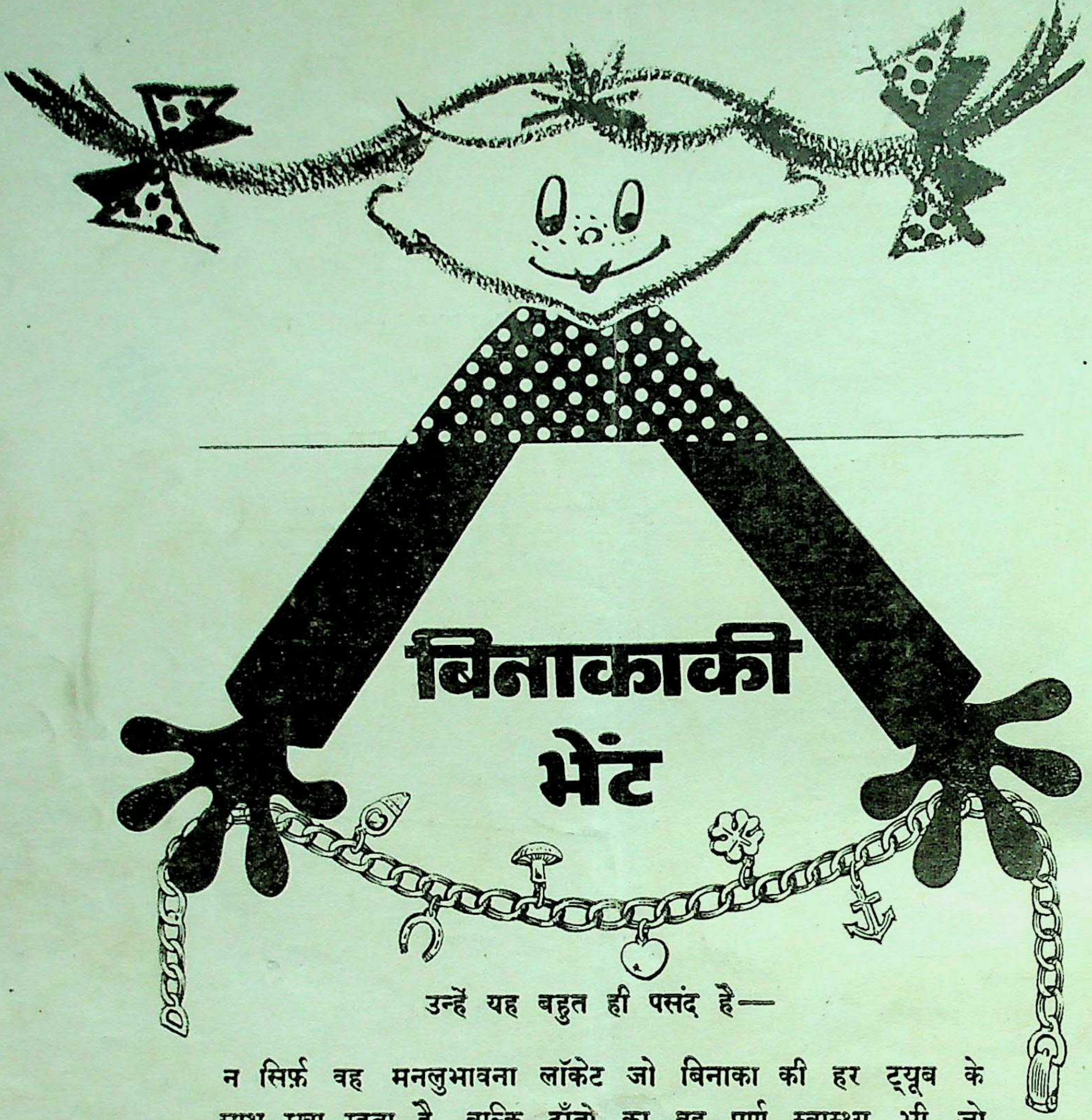

बिनाकाकी भेंट

उन्हें यह बहुत ही पसंद है—

न सिर्फ़ वह मनलुभावना लॉकेट जो बिनाका की हर ट्यूब के साथ रखा रहता है, बल्कि दाँतो का वह पूर्ण स्वास्थ्य भी जो बिनाका टुथपेस्ट का उपयोग करने से मिलता है।

बिनाका टुथपेस्ट का फलों-सा स्वाद आपके परिवार का मन शुरू ही से मोह लेगा, लेकिन बच्चों को दाँत साफ़ और स्वस्थ रखने के लिये बिनाका टुथपेस्ट बनाने वालों ने और भी बढ़ावा दिया है — मुफ़्त भेंट जिन्हें पा कर सब ख़ुश होंगे।

(सोने की तरह हमेशा चमकनेवाला एक लॉकेट और "गिफ्ट स्कीम" के नियम बिनाका टुथपेस्ट की हर ट्यूब के साथ दिये जाते हैं।)

'सीबा' द्वारा बनाया हुआ निराला टुथपेस्ट

CBK-28056

Published by the Director, Publications Division, and printed by the Production Officer,
United Press, Government of India, Old Secretariat, Delhi.

Regd. No. D—519

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

9.8.56

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी

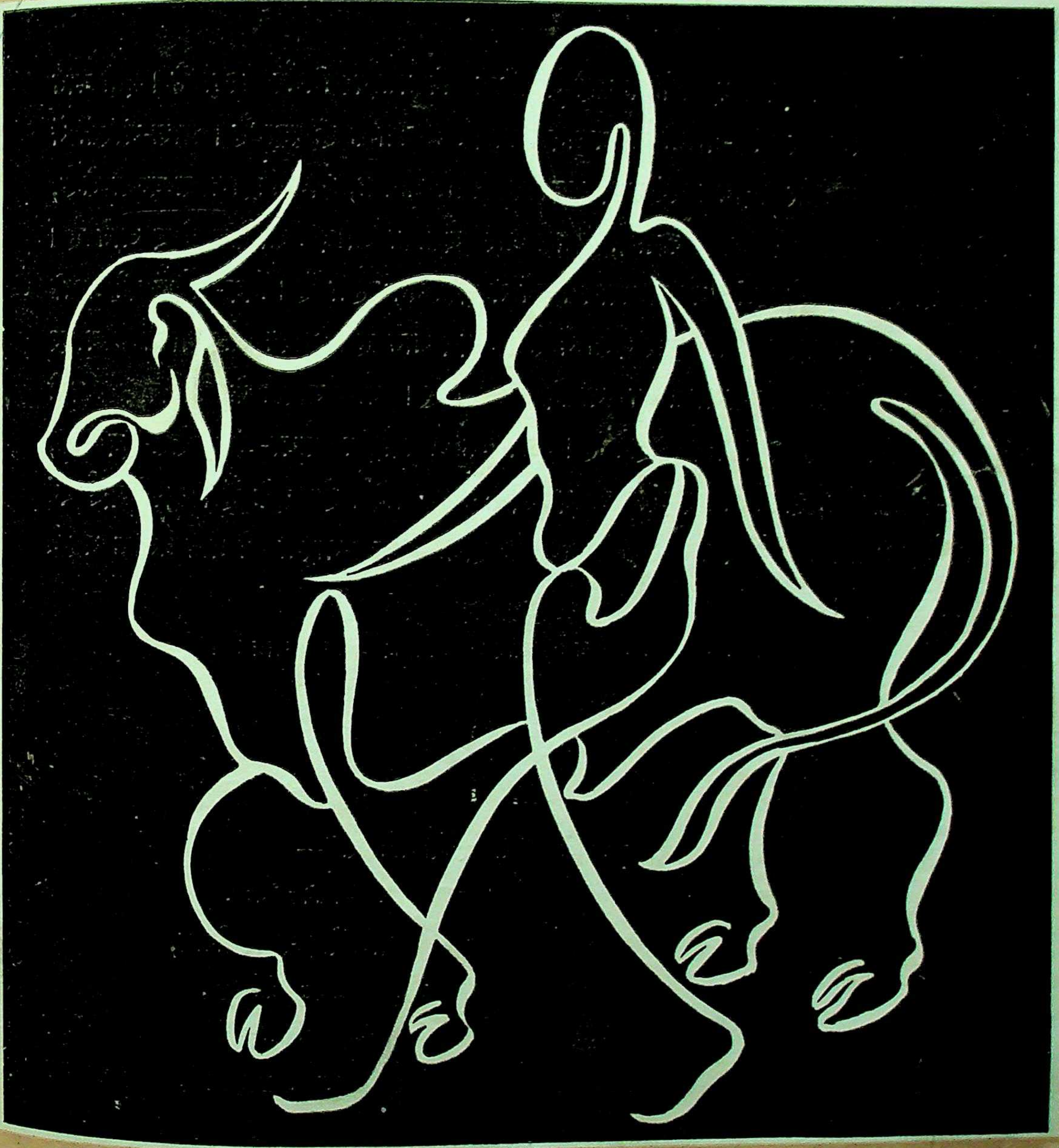

अगस्त १९५६

आठ आना

बाल-भारती

बच्चों की प्रिय मासिक पत्रिका

देश का भविष्य बच्चों के सही मानसिक विकास पर निर्भर करता है। इसी बात को ध्यान में रख कर बाल-भारती का प्रकाशन पिछले ८ वर्षों से हो रहा है। बाल-भारती में हर महीने रोचक, प्रेरणादायक एवं उपदेशप्रद कहानियाँ, जीवनी, ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेख, चुटकुले, कविताएँ और काव्य कथाएँ, रूपक और एकांकी आदि प्रकाशित किए जाते हैं। बाल-भारती का प्रत्येक अंक नयनाभिराम चित्रों से सुशोभित रहता है। देश-विदेश की प्रगति के सम्बन्ध में भी सरल भाषा और शैली में लेख दिए जाते हैं। भारत और भारत से बाहर के प्रत्येक भाग की लोक-कथाओं को भी दिया जाता है। बाल-भारती के विशेषांक अपनी अभिनव सजधज लेकर प्रकाशित होते हैं। अब तक अन्तर्राष्ट्रीय कथा-अंक, खेल-कूद अंक, बाल-लेखक अंक, हास्य-विनोद अंक आदि विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्री के लिए बालक-बालिकाओं के हाथों में बाल-भारती की प्रति प्रत्येक महीने अवश्य ही देवें।

बाल-भारती का वार्षिक मूल्य ४) और एक प्रति का ६ आना मात्र है।

सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त या सीधा लिखें—

बिज़िनेस मैनेजर,
पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट,
दिल्ली—८

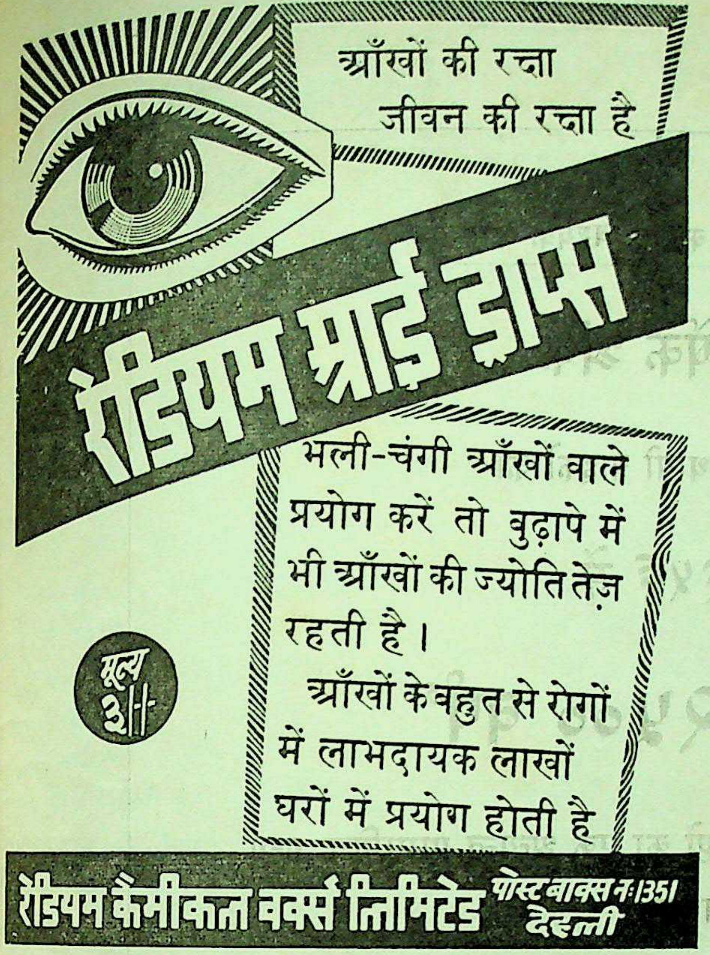
आँखों की रक्षा
जीवन की रक्षा है

रेडियम आई ड्राप्स

भली-चंगी आँखों वाले प्रयोग करें तो बुढ़ापे में भी आँखों की ज्योति तेज़ रहती है।

आँखों के बहुत से रोगों में लाभदायक लाखों घरों में प्रयोग होती है

मूल्य ३।-

रेडियम केमीकल वर्क्स लिमिटेड पोस्ट बाक्स नं॰ 1351 देहली

अच्छे साफ
दाँतों
के लिये

Aryan
Regd.

भारत का लोकप्रिय टुथ ब्रश प्लास्टिक कॅन्टेनर्स में भी मिलता है

कहीं अधिककाल चलता है।

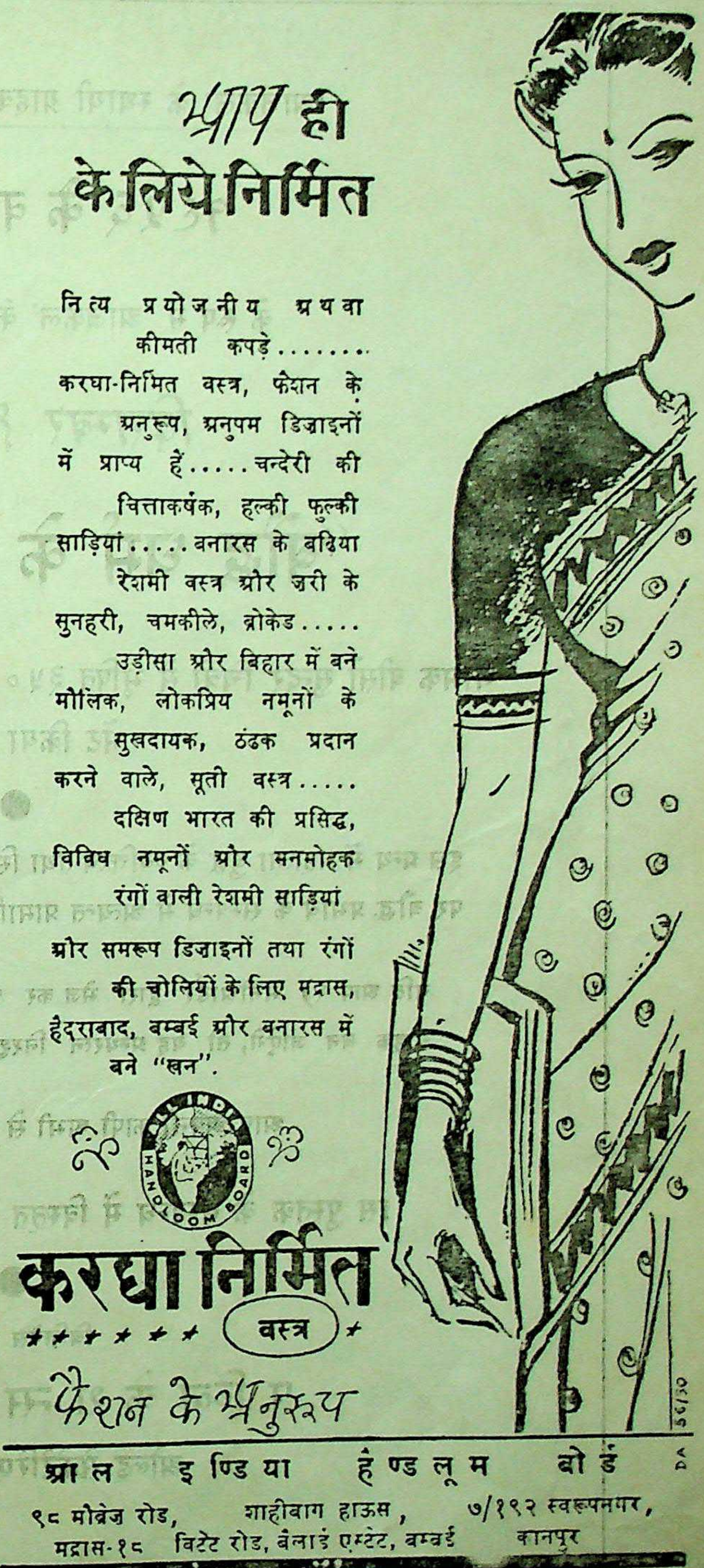
आप ही
के लिये निर्मित

नित्य प्रयोजनीय अथवा कीमती कपड़े....... करघा-निर्मित वस्त्र, फैशन के अनुरूप, अनुपम डिज़ाइनों में प्राप्य हैं.....चन्देरी की चित्ताकर्षक, हल्की फुल्की साड़ियां.....बनारस के बढ़िया रेशमी वस्त्र और ज़री के सुनहरी, चमकीले, ब्रोकेड.....उड़ीसा और बिहार में बने मौलिक, लोकप्रिय नमूनों के सुखदायक, ठंढक प्रदान करने वाले, सूती वस्त्र..... दक्षिण भारत की प्रसिद्ध, विविध नमूनों और मनमोहक रंगों वाली रेशमी साड़ियां और समरूप डिज़ाइनों तथा रंगों की चोलियों के लिए मद्रास, हैदराबाद, बम्बई और बनारस में बने "खन".

ALL INDIA HANDLOOM BOARD

करघा निर्मित
वस्त्र

फैशन के अनुरूप

आल इण्डिया हैण्डलूम बोर्ड

९८ मोब्रेज रोड, मद्रास-१८
शाहीबाग हाउस, विटेट रोड, बैलार्ड एस्टेट, बम्बई
७/१९२ स्वरूपनगर, कानपुर

'आजकल' के स्थायी ग्राहकों को आवश्यक सूचना

१९५६ के वार्षिक अंक

के रूप में 'आजकल' के स्थायी ग्राहकों को

दिसम्बर १९५६ में

"बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष"

नामक बीसों सुन्दर चित्रों से भूषित ३५० पृष्ठों का एक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ भेंट किया जाएगा

●

इस ग्रन्थ में महात्मा बुद्ध के व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तों के अतिरिक्त भारत तथा अन्य देशों पर बौद्ध प्रभाव के सम्बन्ध में अत्यन्त प्रामाणिक लेखकों द्वारा प्रकाश डाला गया है।

यदि आप ६) मनीआर्डर द्वारा भेज कर अभी से एक वर्ष के लिए 'आजकल' के ग्राहक बन जाएँगे, तो यह ग्रन्थरत्न निश्शुल्क रूप में आपको भेंट किया जायगा।

आप अपनी कापी अभी से सुरक्षित करवा लीजिए।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ अगले अंक में देखिए

●

विज़िनेस मैनेजर,

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,

ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली–८

आजकल

वर्ष १२ अंक ४ पूर्णांक १४६

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
शशधर सिन्हा, डाइरेक्टर
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मन्त्री)

●

सहायक सम्पादक—जगदीश गोयल

अगस्त १९५६

बाँसुरी वाला (गुजराती कविता)	उमा शंकर जोशी	...	५	सम्पादक 'संस्कृति', एलिस ब्रिज, अहमदाबाद-६
शंकर का उत्तर भारत में धर्माभियान	आचार्य चतुरसेन	...	६	ज्ञानधाम, शाहदरा-दिल्ली
भारत और पड़ोसी एशियाई भाषाएँ	प्रभाकर माचवे	...	९	२२-यार्क होटल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
गुलाब की ऋतु (अंग्रेज़ी कविता)	सरोजिनी नायडू	...	१३	
काव्य और कवि	सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी	...	१४	१३०-पटौदी हाउस, नई दिल्ली
पानवाला (तमिल कहानी)	'सुखी'	...	१६	३५ मरचेक पेत्ताई, त्रिचनापल्ली
जब जीवन जाग उठा और संस्कृति मुस्कराने लगी	सावित्री निगम	...	१९	एम० पी०, १२०-नार्थ एवेन्यू, नई दिल्ली
ग्रहण (हिन्दी कविता)	'अंचल'	...	२४	रावर्ट्सन कालेज, जबलपुर
श्री श्री और आधुनिक तेलुगु काव्य	वैंकटाचार्युलु	...	२५	प्राध्यापक, निज़ाम कालिज, हैदराबाद (दक्कन)
अन्धकार (बंगला कहानी)	आनन्द बागची	...	३०	५-ए, नीमतल्ला लेन, कलकत्ता-६
देवताओं का आँचल, कुल्लू	सोमेश चौधरी	...	३४	वकील, पठानकोट
लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक	अमरनाथ विद्यालंकार	...	४१	१३५, नार्थ एविन्यू, नई दिल्ली
भारत के विदेशी व्यापार की कुछ नई प्रवृत्तियाँ	राजनारायण गुप्त	...	४२	पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरिएट दिल्ली—८
उड़ान (हिन्दी कहानी)	बलवंत सिंह	...	४४	इम्पीरियल होटल, चौक, इलाहाबाद
हरियाणा प्रदेश	देवव्रत शर्मा वशिष्ठ	...	४७	वशिष्ठ भवन, भिवानी (हिसार)
दिल्ली और उसकी वेदनाएँ (शेषांश)	राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह		५०	एम० पी०, ६२-साउथ एवेन्यू, नई दिल्ली
श्रमजीवी पत्रकारों को कानूनी संरक्षण	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	...	५५	१५-विंडसर प्लेस, नई दिल्ली
राग (हिन्दी कविता)	शमशेरबहादुर सिंह	...	५८	१६३-वार्ड नं० ८, बहादुरगंज, इलाहाबाद
संस्कृति की परिकल्पना	सत्यदेव विद्यालंकार	...	५९	४०-ए हनुमान लेन, नई दिल्ली
पत्नी की खोज (संस्कृत कहानी)	अशोक	...	६२	कपिलवस्तु, मेरठ छावनी
मैथिली साहित्य : प्राक्विद्यापति युग	रमाकान्त झा	...	६४	
पुस्तक समालोचना	मन्मथनाथ गुप्त, विष्णु प्रभाकर, प्रयागनारायण त्रिपाठी	...	६७	
सम्पादकीय		...	७०	
आवरण चित्र : "खेत की ओर"	ब्रह्मदेव शर्मा			
इस मास का चित्र : लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक				

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट दिल्ली—८

●

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—आठ आने, दस सेंट या नौ पेंस

लोकमान्य
बाल गंगाधर
तिलक

वर्ष १२ अगस्त १९५६ अंक ४

गुजराती कविता

बाँसुरी वाला

उमा शंकर जोशी

'चार-चार आने !
लो, भाई लो,
और सुधा बरसाओ, कान में अपने ।
चार-चार आने !
क्यों न हिये रुँधाये ।'
यों, वह बाँसुरी वाला
गाता-बजाता,
अपनी मीठी ज़बान से लोगों के दिल ललचाता—
किसी श्रमिक को,
जो है तो रसीला मगर जिसकी जेब में है नहीं अधेला,
निरर्थक ही पीड़ा पहुँचाता
जोर से आवाज़ लगाता—
'चार-चार आने ।'
सच्चे गाहक सुन नहीं पाते थे
वे तो तेज़ी से भागती गाड़ी में
चिपट कर एक-दूसरे से
प्रणयोमिंगोष्ठि का बीन में थे लीन ।
'चार-चार आने ।'
ना कोई माने
और उसके कंधे पर रखा बंसी का गट्ठर
बहुत भटकने के बावजूद ज़रा भी हलका न हुआ ।
'चार-चार आने ।'
लो, भाई लो,
और इसकी स्वर्गीय तान में रमो
रात-दिन ।
'चार-चार आने ।'
'दे एक आने ।'
'ना, भाई ना,
गाँव जाऊँगा अपने
भले ही न खपें । ईंधन से तो नहीं जाएँगी न !
'चार-चार आने ।
बस, एक ही मोल है, चार आने ।'
गाँव को मुड़ते गट्ठर में से एक बढ़िया बंसी निकाली ।
और आषाढ़ की सन्ध्या की रिमझिम में
स्वरों के इन्द्र-धनुष उड़ाती—
अपने हृदय की तान छेड़ दी ।
इस सजीव विज्ञापन को सुन कर
झरोखे से थोड़ा झुक कर, उसे
बुलाया किसी बाला ने ताली देकर ।
किन्तु अब तो लययुक्त कान
गाहक का रहा न लेश भान !

अनुवादक—गौरी शंकर जोशी

शंकर का उत्तर भारत में धर्माभियान

आचार्य चतुरसेन

भारतीय धर्मक्षेत्र की यह असाधारण घटना है, कि वैदिक काल से तथागत बुद्ध काल तक उत्तर भारत ही हिन्दू सभ्यता और धर्म का केन्द्र रहा। धर्म और संस्कृति मूलक साहित्य—वेद, उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ उत्तर भारत में ही लिखे गए। उत्तर भारत ही में धर्म और समाज के नेता उत्पन्न हुए। और सहस्रों वर्ष तक उत्तर भारत से दक्षिण की ओर धर्म और संस्कृति की गंगा का प्रवाह निरन्तर बहता रहा।

परन्तु मसीह की आठवीं शताब्दी में यह एक सर्वथा नवीन और असाधारण सांस्कृतिक घटना घटी, कि धर्म का प्रथम प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ। शंकराचार्य ही इस धर्म-प्रवाह को लेकर उत्तर से दक्षिण-भारत में आए, और अपनी असाधारण सामर्थ्य से इस धर्म तत्व, का उत्तर भारत में आरोप किया। शंकर का लाया हुआ यह धर्म सर्वथा नवीन धर्म था; जिसने उत्तर भारत के जन-जन को अपने व्यापक अंक में लपेट लिया। शंकर के इस धर्म-प्रवर्तन को हम "संप्रदाय प्रवर्तन" कहेंगे। इस धर्म-प्रवर्तन के फलस्वरूप आर्यों का वैदिक-धर्म हिन्दू-धर्म बन गया।

वैदिक आर्यों के पहिले भी भारत में एक सुसंस्कृत धर्म था। इस धर्म में और मिस्र, ईराक और एशिया माइनर तथा भूमध्य सागरीय प्रदेशों की संस्कृतियों और वंशों में बहुत समानता थी। आर्यों का वैदिक-धर्म ऐहिकता-प्रधान था। बल, वीर्य, पराक्रम, विजय, शत्रु-नाश, कीर्ति, कवित्व, विद्वता, आरोग्य, दीर्घायुष्य, पर्जन्य, पशु, शस्य, सुवर्ण, धन आदि ऐहिक साधनों की कामनाओं से वैदिक-साहित्य भरा पड़ा है। संक्षेप में वैदिक-धर्म भौतिकवादी धर्म था। यह आर्यों का धर्म था, और उनका अवैदिक प्रजा पर अधिकार था, यद्यपि यह अधिकार सार्वभौम न था। आर्यों ने यह अधिकार दो मार्गों द्वारा प्राप्त किया था: प्रत्यक्ष राज सत्ता द्वारा और ब्राह्मण पुरोहितों के धार्मिक आधिपत्य के द्वारा। अवैदिक लोगों को अपनी अधीनता में रखने में धर्म कल्पना का ही अधिक उपयोग किया गया था; जिनमें प्रधानता वैदिक यज्ञों की रही। आगे श्रौत स्मार्त-धर्म ने वैदिकेतरों को सामाजिक दासता में रखने के लिए उन्हें वैदिक-धर्माचरण का अधिकार नहीं दिया। प्राचीन धर्म सूत्रों में वेदाध्ययन करने पर शूद्रादि को प्राण दण्ड देने की व्यवस्था है। इस प्रकार वैदिक-यज्ञ और स्मार्त-धर्म से पवित्र हुआ आर्य ही तब समाज का सच्चा स्वामी होता था। परन्तु इस यज्ञ प्रधान वैदिक-समाज में भी क्रांति हुई। कल्पसूत्र, धर्मसूत्र, वेदांग, व्याकरण, कामशास्त्र और मोक्ष शास्त्र की उत्पत्ति हुई। मोक्ष शास्त्र का आरम्भ उपनिषदों से हुआ। उपनिषदों ने वैदिक-यज्ञों और देवताओं की समीक्षा करके उनकी व्यर्थता सिद्ध की और ब्रह्मवाद और मानसिक उपासना का सम्प्रदाय उत्पन्न कि वैदिकेतरों ने भी नए विचारों को जन्म दिया, जिसके फलस्व ब्रह्मवाद, वैराग्यवाद, प्रव्रज्या और एकेश्वर-भक्ति के नए उत्पन्न हुए। और ऐसी सामाजिक स्थिति उत्पन्न हो गई कि वैदि गृहधर्म और यज्ञ-धर्म का निर्वाह कठिन हो गया। क्योंकि वैदिक की अपेक्षा इस नई धर्म-संस्था का निरालापन यह था—कि इसमें धर्मों के लिए श्रेय का मार्ग खोल दिया गया था। इसमें समाज किसी भी परिस्थिति और जाति का व्यक्ति बिना भेद-भाव के योग्यता से धार्मिक स्थिति को पा सकता था। ये संसार के प्राचीन विश्व-धर्म थे; जिन्होंने वैदिक आर्यों की समाज-संस्था के सिर उठाया। उस समय तक जीवन-विज्ञान और समाज-शास्त्र परिपक्व नहीं हो पाया था—कि सामाजिक जीवन की ठीक व्यवस्था की जा सकती। अतः भोगतृष्णा के नाश ही को परम मान लिया गया। उन्होंने जीवन और जगत को दुःखमय ही दे कपिल, बुद्ध और जिनमुनि महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व दुःखवादी तत्व ज्ञान की प्रतिष्ठा की थी। इस नए धर्म के सबसे नेता तथागत बुद्ध थे। उनके शिष्यों में समाज के सारे स्तरों के थे। ब्राह्मण, राजा, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र, और स्त्रियाँ थीं। तपस्सु और मल्लिक वैश्य थे। उपालि नाई था, का वन्धु जटिल, और चुन्द लुहार, सारिपुत्र और मोग्गलान ब्रा आनन्द और देवदत्त क्षत्रिय, अम्बपाली वेश्या, तथा मगध, को वैशाली और कपिलवस्तु के राजा उनके शिष्य थे। बुद्ध लोगों अपनी बोल-चाल की भाषा में उपदेश देते थे। उन उपदेशों स्थविरवादी बुद्ध अनुयायियों ने पालि-भाषा में, महासांघिकों पैशाची-भाषा में, और सीमन्तीयों ने अपभ्रंश में कलमबद्ध कि यह साहित्य त्रिपिटक नाम से आगे विख्यात हुआ। बुद्ध ने अहिंसा, सादा जीवन, मिताहार, तृष्णाक्षय, और जीवन की भंगुरता पर उपदेश दिए। गौतम बुद्ध जिस काल में अपने उपदे रहे थे, वह काल भारतीय समाज में बुद्धि-प्रधान था। उपनिषदों लेकर षड्दर्शन तक के उस काल में भारतीय बौद्धिक विचार उत्क अंतिम सीमा पर पहुँच गए थे। मैक्समूलर ने इस काल को—भा नव-जीवन युग कहा है। तथागत बुद्ध इस विचार आन्दोलन के बिन्दु थे। उनके जन्म के पूर्व चार्वाक, बृहस्पति, उशनस, क कणाद, अजित केश कम्बलि आदि बड़े-बड़े तार्किक तत्वज्ञ और शास्त्री उन्हें राह दिखा गए थे। बुद्ध के सौ वर्ष बाद ही सि भारत में आया, जिससे ग्रीकों का संपर्क भारतीयों को मिला। इस विचार-आन्दोलन भूमि में मौर्यों का साम्राज्य स्थापित हुआ—

हिन्दुओं का सबसे बड़ा साम्राज्य था । इसका जन्म बौद्धोत्तर काल में हुआ । परन्तु रोमन साम्राज्य की भाँति यह चिरस्थायी न हो पाया । इसलिए ईसाई-धर्म की भाँति यह विश्वधर्म समूचे भारत में एकरूप न हो सका, फिर भी मौर्य सम्राट अशोक ने इसे भारत की सीमाओं से पार कर इसे संसार का सर्व प्रथम विश्वधर्म होने में मदद की । मौर्य साम्राज्य को विदीर्ण कर जो पुष्यमित्र ने फिर से ब्राह्मण-धर्म की स्थापना की, सो वह उसे पूर्व वैदिक-धर्म की वेदी पर स्थापित नहीं कर सका । उसने पुराने-नए सब प्रचलित-अप्रचलित धर्मों, सम्प्रदायों, हीन देवताओं की पूजा विधियों आदि को मिलाकर उसे श्रौत-स्मार्त पौराणिक हिन्दू-धर्म का नया रूप दे दिया । इससे वहाँ शास्त्रीय लौकिक कायदे की समाज संस्था स्थापित न हो सकी । जैसा कि ईसाई संस्कृति के आधार पर रोमन साम्राज्य ने सारे जगत को कायदे की संस्था का दान दिया ।

दुबारा श्रौत स्मार्त पुराणोक्त हिन्दू-धर्म की स्थापना से समाज क्रांति को गति धीमी पड़ गई, और भारतीय समाज एक दीर्घकालीन स्थैर्य के युग में प्रविष्ट हो गया । इस युग में काव्य, नाटक, टीका भाष्य, अलंकार और तर्क-शास्त्र की तो प्रगति अच्छी हुई, पर नवजीवन निर्माण करने वाली हलचल समाप्त हो गई । इसी दीर्घकालीन स्थैर्य युग के अन्तिम चरण में मसीह की सातवीं शताब्दी में उत्तर भारत में कुमारिल भट्ट और दक्षिण में शंकराचार्य का जन्म हुआ । इन दोनों महापुरुषों ने हिन्दू-धर्म को नया यौवन दिया । कुमारिल सातवीं शती के अन्तिम चरण में और शंकर आठवीं शती के प्रथम चरण में उत्पन्न हुए । कुमारिल ने अपनी पूर्व मीमांसा के भाष्य में प्रामाण्य की सूक्ष्म छानबीन की, वेदों का स्वतः प्रामाण्य भारी परिष्कार से सिद्ध किया । उन्होंने धर्म-शास्त्र निर्णय की ऐसी विशिष्ट पद्धति निकाली कि—बारह सौ बरस बीत जाने पर भी पंडित गण उसी पद्धति से धर्म व्यवस्था करते रहे । कुमारिल वैदिक यज्ञ मार्ग और स्मार्त गृहस्थ धर्म का पुनरुज्जीवन करना चाहते थे, परन्तु शंकर के दिग्विजय से उनका यह प्रयत्न विफल हो गया । कुमारिल ने जिस शुद्ध प्रामाण्य की स्थापना करके पंडितों को मोह लिया था, उसे शंकर ने भी गृहण किया, पर जिस प्रवृत्तिवाद की स्थापना कुमारिल ने की थी—उसे शंकर ने त्याग दिया । क्योंकि वह श्रौत-स्मार्त प्रवृत्ति मार्ग था, भौतिकवाद पर आधारित नहीं था । उन दिनों अगतिकता का इतना आधिक्य था—कि शंकर ने अगतिकता का ही तत्वज्ञान मायावाद और संन्यासवाद के रूप में प्रतिष्ठित किया । शंकराचार्य बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे । उनकी बौद्धिक और मानसिक स्थिति अत्यन्त श्रेष्ठ थी । उन्होंने अपने काल तक के सारे परम्परा से प्राप्त तत्वज्ञान और विचार सम्प्रदाय बुद्धि की कसौटी पर कस डाले । उन्होंने शैवों-वैष्णवों का एकेश्वर वाद और सर्वेश्वरवाद, कणाद और नैयायिकों का परमाणुवाद, सांख्यों का जड़प्रकृतिवाद, बौद्धों का क्षणिकवाद और विज्ञान व जैनों का अनेकान्तवाद, चार्वाक का देहात्मवाद और योगियों का योगदर्शन आदि विचार धाराओं को अनुपपन्नत्व तर्क दृष्टि से साधा । उन्होंने यह भी प्रगट किया कि उनका ब्रह्मवाद भी मानव बुद्धि से नहीं, तर्क से ही सिद्ध है । उन्होंने कहा कि बुद्धि से आत्मा और पुनर्जन्म का निर्णय नहीं हो सकता है । उन्होंने कहा कि सारे मानवीय विचार जीवन और विश्व सम्बन्धी खोज करने ही से कुंठित हो जाते हैं । चूँकि वस्तु अनिर्वचनीय है । वह अस्ति नास्ति कुछ भी नहीं है, इसलिए वह मिथ्या है । वस्तु विषयक विचारों की अगतिकता ही पर उनका मायावाद स्थापित हुआ । परन्तु श्रुति के प्रामाण्य को माने बिना वस्तु का मिथ्यात्व सिद्ध नहीं हो सकता था । श्रुति ने कहा है—ब्रह्म ही सत्य है, अतः जगत मिथ्या है—यह उन्होंने स्थिर किया । इस प्रकार शंकर का मायावाद अगतिकता के कारण कुंठित बुद्धि का फल है । यह ब्रह्मवाद या मायावाद बुद्धि की समीक्षक प्रणाली से सिद्ध नहीं किया जा सकता था । इसी से उन्होंने श्रुति प्रामाण्य का आश्रय लिया । इसका फल यह हुआ कि उपनिषद काल के बाद भारत में जो बुद्धिवाद और तत्वज्ञान का विकास हुआ था, वह दब गया । दर्शन अथवा तत्वज्ञान वस्तु की—विश्व की मानव बुद्धि से की हुई छानबीन है । उस समय यदि विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ होता तो शंकराचार्य के प्रखर तर्क-शास्त्र से छिन्न-भिन्न तत्कालीन तत्वज्ञान के विनाश से नवीन भौतिकवाद उत्पन्न हो सकता था । पर उस समय सामाजिक परिस्थिति विज्ञान के अनुकूल न थी । अतः मायावाद—जो विज्ञान का उल्टा स्वरूप था, उत्पन्न हुआ और तत्कालीन विकसित सारा बौद्धिक पराक्रम व्यर्थ गया । बारहवीं शताब्दी से लेकर हिन्दू राज्यों के अन्त होने तक यही मायावाद, भक्तिवाद और जातिभेद ही हिन्दू-धर्म का सच्चा स्वरूप रहा । जो मुसलमानों और मराठों के राज्य काल में भी चलता रहा ।

परन्तु श्री शंकराचार्य इस नवीन विचार परम्परा के मूलभूत विचारक और प्रचारक न थे । मूल प्रचारक एक गोष्ठी थी, जिसके मूल पुरुष बादरायण थे । बादरायण की शिष्य परम्परा में बादरायण के शुक, शुक के गौड़पाद, गौड़पाद के गोविन्द और गोविन्द के शंकराचार्य शिष्य थे । बादरायण ने वेदान्त दर्शन लिखा । महत्त्वपूर्ण बात यह है—कि यह गोष्ठी दक्षिण भारत में संगठित हुई थी । कुमारिल की पूर्व मीमांसा के समक्ष वेदान्त को उत्तर मीमांसा कहा गया । परन्तु दोनों में भारी अन्तर था । पूर्व मीमांसा में उत्तर भारत के आर्यों की वैदिक संस्कृति थी, वैदिक कर्मकांड की व्याख्या थी । उस का मूलाधार वेद था, परन्तु वेदान्त का मूलाधार उपनिषद थे । उसमें उपनिषद को ही श्रुति के नाम से पुकारा गया था । क्योंकि वेदान्त में जिस ब्रह्म जिज्ञासा की बात कही गई है, वह वेद में नहीं था, उपनिषद में था । अतः बादरायण गोष्ठी ने उपनिषद को श्रुति कहकर एक नई समस्या खड़ी कर दी थी । श्रुति के साथ स्मृति और समीक्षा दर्शन की आवश्यकता थी । अतः शंकराचार्य ने गीता को स्मृति और वेदान्त को समीक्षा दर्शन का रूप दिया । इस प्रकार जैसे बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक साहित्य का संगठन था, वैसा ही संगठन शंकर ने उपनिषद, गीता और वेदान्त को मिला कर प्रस्थान त्रयी के नाम से विख्यात किया । इसी प्रस्थान त्रयी के द्वारा शंकर ने उत्तर भारत के विद्वानों को पछाड़ डाला, और कुमारिल के कर्म कांड और यज्ञ मीमांसा पर पानी फेर दिया । शंकर के इस असाधारण प्रयास के कारण उत्तर

भारत में वैदिक धर्म का लोप हो गया; और नए हिन्दू-धर्म की स्थापना हुई, जिसका मूल आधार प्रस्थान त्रयी था। यह एक ऐसा असाधारण प्रयास था—कि जिसने एक ओर तो सनातन से चले आते हुए उत्तर से दक्षिण की ओर के सांस्कृतिक धर्म प्रवाह का रुख फेर दिया और अब धर्म प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर आना आरम्भ हुआ, जो रामानुज, रामानन्द निम्बार्क स्वामी, माध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्य तक पन्द्रहवीं शताब्दी पर्यन्त निरन्तर चलता रहा, तथा इसका सांस्कृतिक प्रभाव यह हुआ कि दक्षिण की द्रविड़ संस्कृति और उत्तर की आर्य संस्कृति का मेल हो गया, जिसने न केवल धर्म क्षेत्र में, अपितु साहित्य और सामाजिक क्षेत्रों में भी उत्तर भारत और दक्षिण भारत की एकता सम्पादित की।

शंकराचार्य का यह अमोघ प्रभाव था कि अकेले उन्हीं के उद्योग से उत्तर भारत में यह वेद रहित धर्म स्थापित हो गया। और किसी ने इस पर विचार ही नहीं किया। सनातन ही से वेद संहिता भाग को ही श्रुति कहा जाता रहा था, तथा उपनिषद्, ब्राह्मणों के कतिपय भाग थे। गीता ही में लिखा है—'ऋषिभिर्बहुधागातं छन्दोभिर्विविधै प्रथक्।' यही सब छन्द उपनिषदों से लेकर ब्रह्मसूत्रों में ग्रन्थित किए गए हैं। शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में—जहाँ-जहाँ श्रुति प्रामाण्य की आवश्यकता हुई है, इन्हीं उपनिषदों से उद्धृत किए हैं। यह कैसे आश्चर्य की बात है कि उस समय उत्तर भारत में एक भी पण्डित ऐसा उन्हें न मिला, जो उन्हें ललकार कर यह कहता—कि श्रुति तो संहिता को कहते हैं। शंकर के प्रखर तेज के सामने सभी की बुद्धि कुण्ठित हो गई, और शंकर ने उत्तर भारत से वैदिकों को धर्मच्युत कर दिया। जिस तरह उन्होंने उपनिषदों को श्रुति बनाया, उसी तरह गीता को स्मृति बना दिया। इस समय तक गीता को किसी ने भी स्मृति नहीं कहा था। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियाँ ही स्मृति कहाती थीं। पर इनमें वे सब प्रमाण नहीं थे, जिनकी शंकर को आवश्यकता थी। इसलिए ब्रह्मसूत्रों के भाष्य में जहाँ-जहाँ स्मृति के प्रमाणों की आवश्यकता हुई, वहाँ शंकर ने गीता ही के श्लोक उद्धृत किए हैं। वेदान्त के अनेक-सूत्र गीता और उपनिषद में आए हुए शब्दों का खुलासा ही है। जैसे—वेदान्त सूत्र—'स्मृतेश्च'—गीता के—'ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति'—की ओर संकेत करता है। और 'अपिस्मर्यते' सूत्र—'ममैवांशोजीवलोके जीवभूतः सनातनः'—के आ पर है। इन सूत्रों में स्मृति के प्रमाणों की जिज्ञासा है, जिसकी पू गीता ही कर सकती थी। शंकराचार्य वेदान्त भाष्य में स्वयं लि हैं—'स्मर्यते भगवद्गीता सुगीतास्त्वपिच स्मर्यते।'

शंकर की गुरु परम्परा के सम्बन्ध में शंकर दिग्विजय का प्र श्लोक प्रमाण है—

व्यासःपराशरसुतः किलसत्यवत्यां तस्माद्भूच्छुकमुनिः प्रथितानुभावः।
तच्छिष्यतामुपगतोकिल गौड़पादः गोविन्दनाथ मुनिरस्यच शिष्यमुक्तः

शंकराचार्य का विरोध भी उत्तर भारत में हुआ। उनमें प्रयुक्त गू शब्द—कूटस्थ, चेतन, चिदात्मा, आदि पारिभाषिक शब्दों से तथा—'न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा, नमे धारण ध्यानयोगादयोपि। न मा पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रूवन्ति।'

इस प्रकार के भाषण से लोग कहने लगे कि—

'मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मेव च।'

शंकर ने अपने भाष्यों में अद्वैत मत का प्रतिपादन किया है 'एकमेवाद्वितीयं', 'विज्ञानमानन्दंब्रह्म' यह छान्दोग्य और बृहदारण्यक मूलाधार 'ब्रह्म' है। इस ब्रह्म को सजातीय भेद, विजातीय भेद औ स्वगत भेद से वे रहित मानते हैं। इस सम्बन्ध में वे ब्रह्मसूत्र भा करते हुए कहते हैं—वैधर्म्यंहिभवति स्वप्नजागरितयाः। बाध्यतेहि स्वप्नोपलब्धं वस्तुप्रतिबुद्धस्यमिथ्यामयोपलब्धौमहाजन समागम इति नैवं जन-जागरितोपलब्ध वस्तु स्तम्भकं कस्याचिदपि अवस्थां बाध्यते अपिच स्मर्यतेरेवायत्र स्वप्नवत्। उपलब्धिस्तु जागरित दर्शनम्।

शंकराचार्य ने प्रस्थान त्रयी पर तो भाष्य किया ही, और भी अने ग्रन्थों की रचना की। उन्होंने बहुत कम आयु पाई। परन्तु इसी अल आयु में उन्होंने युग पलट दिया। उत्तर से दक्षिण तक उनकी कीर्ति फैल गई। उन्होंने सच्चे अर्थों में दिग्विजय किया। अद्वैतवाद की दुन्दुभी समूचे उत्तर भारत में बज उठी। बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान उनकी शिष्य मण्डली की शोभा बढ़ा रहे थे, जिन्होंने शंकर मत पर वार्तिक लिखीं। उन्होंने भारत की चार दिशाओं में चार पीठों की स्थापना की, जिनकी परम्परा आज तक चली आती है।

उन्होंने कहा—कृतेविश्वगुरुर्ब्रह्मा त्रेतायां ऋषि सत्तमः।
द्वापरे व्यास एवाख्यात् कलावत्र भवाम्यहम्॥

★

"मुझे शक है कि कोई भी मुल्क यह दावा कर सकता है कि वह बहुत अच्छा है या एक दम सही राह पर है; कम-से-कम मैं हिन्दुस्तान के लिए तो यह दावा हरगिज़ नहीं करता। हम लोगों में कमज़ोरियाँ भी हैं और हमें नाकामयाबी भी हुई है। कोई भी देश पूरे तौर से सही या ग़लत नहीं है। यह कहना कि सब देश एक ही तरीके से सोचें, न तो सम्भव है और न यह प्रजातन्त्रात्मक ही है। यह कहना कि संसार भर के सभी मनुष्य सभी बातों में पूरी तरह सहमत हों, प्रजातन्त्र विरोधी बात है। मैं यह हरग़िज़ नहीं कहूँगा कि अमुक लोग ग़लत है या जो हमारे देश की नीति के विरुद्ध हैं, वे अनैतिक हैं।"

—जवाहरलाल नेहरू
६ जुलाई १९५६

भारत और पड़ोसी एशियाई भाषाएँ

प्रभाकर माचवे

अक्सर कहा जाता है कि भारत के आसपास के देशों में आर्य-संस्कृति और संस्कृत का प्रभाव है। यह कहाँ तक सच है ? इसी जिज्ञासा से प्रेरित होकर यह लेख लिखा गया है कि प्राचीन भारतीय भाषाएँ और एशिया में पड़ोसी देशों की भाषाओं के बीच क्या सम्बन्ध था ? और वह किस रूप में विकसित हुआ ? वस्तुतः भाषा-शास्त्र का आज जिस प्रकार से अध्ययन किया या कराया जा रहा है वह बहुत एकांगी है। भाषा संस्कृति का मेरुदंड है। भाषा के अध्ययन में इतिहास, रीति-नीति, आचार-व्यवहार, मानववंश-शास्त्र, पुरातत्व, सामाजिक मनोविज्ञान आदि का बहुत गहरा सम्बन्ध है। उनसे कटकर जो लोग भाषा का अध्ययन केवल मत-विशेष की पुष्टि के लिए या भावनाओं को उभारने के लिए करते हैं, वह बहुत बड़ा अन्याय इस विज्ञान के थ करते हैं।

मेरा यह अध्ययन कई ग्रन्थों, ज्ञानकोशों, और विद्वानों से विचार विनिमय पर आधारित है। अतः मेरी इच्छा है कि इस विषय में और चार-विनिमय बढ़े, और भारत में कम से कम किसी एक विश्व-यालय में एशिया की सभी भाषाएँ पढ़ने-पढ़ाने का शीघ्रातिशीघ्र बन्ध हो सके।

भारत के मानचित्र में सबसे पहले हमारे तीन प्राचीन पड़ोसियों ध्यान हो आता है : श्रीलंका, बर्मा और तिब्बत। इनकी हली, बर्मी और तिब्बती भाषाओं का विचार करने पर उनका नी-जापानी और दक्षिण-पूर्व के द्वीपकल्प की भाषाओं में हरा सम्बन्ध दिखाई देता है। उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया एगा।

हली

सिंहली भाषा के बारे में गैज़र का मत है कि वह प्राकृत से निकली। न दोनों में वर्णोच्चार और शब्द-सिद्धि के मामले में साम्य है। गैज़र अनुसार ई० पू० ५०० के करीब आर्य सिंहल में आए और तब से लू' नामक भाषा बनने लगी। पर 'एलू' का एक अर्थ सिंहल की चीन काव्य-भाषा भी है। आजकल भी कई सिंहली कवि 'एलू' का प्रयोग करते हैं। श्रीलंका की यह प्राचीन राष्ट्रभाषा आधुनिक हली से बहुत भिन्न है। इस पर संस्कृत का भी प्रभाव खाई देता है। अनेक संस्कृत-पालि शब्द साहित्यिक सिंहली में नहीं, बोलचाल की भाषा में भी घुस गए हैं। बोलचाल की षा में 'घोड़े' को 'अस्वया' कहते हैं, 'एलू' में 'अस' है। कई हर से आए हुए शब्दों का बड़ा विचित्र रूप में सिंहलीकरण हो या है।

संस्कृत	पालि	प्राकृत	सिंहली (एलू)	हिन्दी
पृष्ठ	पिट्ठ	पिट्ठ	पिट	पीठ
शृगाल	सिगाल	सिआल	हिवालु	सियार
भृंग	भिंग	भिंग	बिंगु	भौंरा
मृग	मिग	मिअ	मुव	मृग

गैज़र ने अनेक उदाहरणों द्वारा यह शब्द-साम्य अपने लेख सिंहली भाषा की उत्पत्ति' (म्यूनिख़, १८७७) में दिए हैं। कुछ संस्कृत-पालि रूप सिंहली दीर्घ हो गए हैं :

संस्कृत	पालि	सिंहली	हिन्दी
रात्रि	राति	रा	रात
आयुष्	आ-उ	आ	आयु
समुद्र	समुद्द	मूदु	समुन्दर
नारिकेल	नलिकेर	नेरलु	नरियल

कहीं-कहीं आद्यवर्ण का लोप हो जाता है।

संस्कृत	पालि	सिंहली	हिन्दी
चतुर्दश	चतुद्दस	तुदस	चौंदस
अरण्य	अरञ्ञ	रण	अरण्य
अनुराग	अनुराग	नुरा	अनुराग
अशोक	असोक	हो	अशोक

इसी तरह डा० गैज़र ने स्वर-विपर्यय के भी उदाहरण दिए हैं। सिंहली में सर्वनाम और संख्यावाचक शब्द शुद्ध आर्य हैं। क्रियाओं में आर्य-भाषाओं से भिन्नता जान पड़ती है। पर गैज़र ने उनका भी सम्बन्ध आर्य-भाषाओं से खोजने की कोशिश की है। उनके अनुसार सिंहली प्राकृत का ही एक रूप है। जो कई अनार्य शब्द भी सिंहली में हैं, वे इस मूल कथन के विरोध में नहीं रखे जा सकते।

ये अनार्य शब्द कुछ द्राविड़ हैं और कुछ मूल सिंहली के। उदाहरणार्थ निम्न शब्दों की व्युत्पत्ति आर्य-भाषाओं में नहीं मिलती : अंड = शोर; इब्ब = कछुआ; दूंग = जंघा; कोंड = फल; बैली = सीप; रावुलू = दाढ़ी; हुलंगि = हवा आदि।

पर सिंहली में कई तमिल शब्द भी है। जैसे : अडि = पैर, नींव; अलि = हाथी; काडि = सिरका, काढ़ा; तक्कडि = झूठा; टेक्क = टीक या सागौन का पेड़; पंगु = हिस्सा; पुंचि = छोटा। मगर अब सिंहल देश ने

तमिल को राजभाषा स्वीकार नहीं किया है । यद्यपि तमिल की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका श्रीलंका में छपती है ।

मालदिवी

श्रीलंका की बाँईं ओर अरब सागर में लंकद्वीप और मालद्वीप दो छोटे-छोटे टापू हैं । यहाँ की 'मालदिवी' बोली को गुणशेखर सिंहली की ही उप-भाषा मानते हैं । उदाहरण के लिए—

पालि	सिंहली	मालदिवी	हिन्दी
मरिच	मिरिस	मिरस	मिर्च
अंगुलि	आंगिलि	इगिलि	उंगली
भूमि	बिम	बिन	भूमि
अट्ठ	अट	अर	आठ

मालदिवी में 'र' वर्ण का विशेष उच्चारण पाया जाता है । इस 'र', में 'र्', 'ह्', 'स्' तीनों का मिश्रित उच्चारण रहता है । पालि 'ऊ' के बदले सिंहली की भाँति मालदिवी में 'इ' आता है; जहाँ सिंहली में 'आ' होता है, मालदिवी में 'ए' होता है । पालि संयुक्ताक्षर सिंहली और मालदिवी में सादा अक्षर बन जाते हैं । पालि वर्ण 'च्' और छ्' का 'स्' हो जाता है । 'ज्' का 'द्' और 'ट' का 'र' । सत्रहवीं सदी में ख्रिस्टाफर और पिरार्ड ने इन भाषाओं का अध्ययन किया तो 'पहेत' (=पांच) और 'पाए' (=पैर, पाँव) रूप दिए थे । मालदिवी में धीरे-धीरे 'प' का 'फ' हो और 'पहेत' का 'फहेइ' और 'पाए' का 'फा' हो गया ।

रास्स ने सिंहली और मालदिवी दोनों को द्राविड़ भाषा माना है । यही फ्रेड मुल्लर का भी मत है । लेसेन के अनुसार सिंहली मलायी भाषा की एक शाखा है । ठीक इससे उल्टे, डी० अल्विस, काल्डवेल, हिस डेविस ने सिंहली को आर्यकुल की भाषा माना है । कुहन् के मत से सिंहली भाषा आर्य-भाषाओं जैसी दिखाई देती है, पर है वह संमिश्र भाषा । उसमें के कुछ दृढ़मूल विशेष अंश अनार्य-भाषाओं से आए हैं ।

इस सम्बन्ध में अभी बहुत अनुसन्धान होना है । क्योंकि ये दोनों द्वीप बड़े उपेक्षित-से पड़े हैं ।

बर्मी

दूर से बर्मा एक देश जान पड़ता है पर वहाँ बोली जाने वाली भाषाएँ और उप-भाषाएँ अनेक हैं । ख़ास ब्रम्ही या बर्मी भाषा पहले एक अक्षर वाली थी । आगे चलकर उसमें पालि का मिश्रण हुआ । और उसमें मूल शब्द एक से एक मिलकर नए शब्द बनाए गए । इस भाषा में शब्दों के रूप बिल्कुल नहीं बदलते । शब्दों का अर्थ केवल वाक्य में उनके स्थान से निश्चित होता है । भाषा की रचना रुखेंग की तरह सादा है । अलग-अलग श्रेणी के लोग भी इस भाषा में अलग-अलग तरह के शब्द प्रयुक्त करते हैं । ये सब विशेषताएँ आर्य-भारतीय भाषाओं से सर्वथा भिन्न हैं । लिपि मात्र भारत जैसी है : कन्नड़, तेलुगु या सिंहली के समान ही यह है । पहले इस लिपि को भारतीय नहीं मानते थे । विद्वानों में मतभेद था । कार्यानिअस का अनुमान था कि हिब्रू से फ़ारसी में और फिर जावा की भाषा-लिपि से संयुक्त होकर यह लिपि बनी । रामदुतिअस के मत से यह लिपि और मलयालम लिपि आर्मेनियन लिपियों से निकलीं । परन्तु लेडेन के हिसाब से ये अन्दाज़ ग़लत हैं ।

बर्मी भाषा में तुकें आसानी से मिल जाती हैं । इसलिए वहाँ गद्य भी पद्य जैसा जान पड़ता है । इस भाषा का सबसे पहले अ मिशनरियों ने किया । किन्तु अभी इसका और अध्ययन किया बाकी है । वस्तुतः सभी एकाक्षर भाषाएँ कठिन होने से उनका अ कम किया गया है । फिर तिब्बती-बर्मी, स्यामी-चीनी, मोन-ख (मोन-ख्मेर) भाषा-कुलों का अध्ययन तो और भी कम हुआ है ।

बर्मा की एक प्रमुख उप-भाषा है रुखेंग । यह भी एकाक्षरी यह अराकान के मूल निवासियों की भाषा है । इसमें कई पालि अनेकाक्षर शब्द भी मिले हुए हैं । अराकान के लोग प्रायः सभी हैं और मगधवासी रहे होंगे । इसी से बंगाली उन्हें मग या कहते हैं । रुखेंग की वर्णमाला भी देवनागरी जैसी ही है । अक्षरों रूप बर्मी अक्षरों जैसा है । भाषा-रचना में मलयु भाषा की सम है । इस भाषा में वचन, विभक्ति, क्रियाओं के रूप में कुछ अन्तर होता । रुखेंग भाषा के ग्रन्थों के नामों से स्पष्ट लगता है कि उ संस्कृत का गहरा प्रभाव है :

रुखेंग	संस्कृत
रामवत्थुच	रामचरित
बुद्धोवद	बुद्धचरित
हितोपदेस	हितोपदेश
थम्मसत् मनु	धर्मशास्त्र मनु
सुवन्न अस्यंग	सुवर्ण श्रृंग

डा० बुकनन ने रुखेंग भाषा के कुछ शब्दों का कोश बमाया उन्होंने अराकान के मुसलमानों की बोली 'रुहंगा' (अरबी, हि रुखेंग का मिश्रण) और अराकान के ब्राह्मण और हिन्दुओं की (बंगाली संस्कृत का अपभ्रंश) का उल्लेख किया है । रुखेंग लोग प्रदेश को 'रो' कहते हैं और बर्मी 'यां' कहते हैं उस प्रान्त की रुखेंग की ही एक उप-भाषा है ।

मोन या तलैंग

यह उप-भाषा पेगू प्रान्त के मूल निवासियों की है । ये लोग को मोन कहते हैं, बर्मी लोग इन्हें तलैंग कहते हैं । स्याम मिंगमोन कहते हैं । इस भाषा के उच्चारण चीनी की भाँति होते बहुत से धातु एकाक्षरी हैं । बर्मी और करेन भाषाओं की अनेकाक्षरों पर आधारित हैं । व्यंजन और मूल स्वर मिल क अक्षर बनता है और व्याकरण तो बहुत ही आसान है : क्रिया कर्त्ता और बाद में कर्म रख दीजिए—बस वाक्य बन गया है ।

तलैंग की कोल उप-भाषाओं से बड़ी समानता है । इसके थाई, बर्मी, करेन, नाग भाषा-धातुओं से भिन्न हैं । यह चीनी- या तातरि भाषाओं से भी भिन्न है । यह ठेठ देशज भा भारत के कोल, गोंड, मुण्डा आदिवासियों की भाषाओं और में बड़ा साम्य है :

हिन्दी	तलैंग	कोल
एक	म्वोआ	मोय
दो	बा	बई
चार	पोन	पोनिअ
छः	तरिओ	तुरिया

इन उप-भाषाओं का भी अध्ययन नहीं के बराबर हुआ है। भारत में आज भी आदिवासियों की भाषाओं के विशेषज्ञ बहुत थोड़े हैं। प्रोफ़ेसर अमृतराव ने, द्राविड़ शब्द व्युत्पत्ति शास्त्र के विषय में लिखते हुए तलैंग पर हिन्दू प्रभावों के मत का खण्डन किया। लागेन ने मुण्डा और सोनाकेर का सम्बन्ध बताते हुए खासी और कोल भाषाओं की समानता दिखाई है। स्टेन कोनाउ ने इस परस्पर-सम्बन्ध की बड़ी चर्चा की, जिसे ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे' (खण्ड ४ पृष्ठ ११) में आधारभूत माना है। रायल एशियाटिक सोसायटी के सन् १८७८ के जर्नल में 'पेगू के मौन और मध्य भारत के कोल' नामक निबन्ध में फोर्बस् ने कहा है कि—'तलैंग तैलंग या तिलंगाना (तिलंगा) का एक रूप है। समुद्र मार्ग से थातुन् में जा कर वे रहे होंगे। आर्यों के आने से पहले मध्य-भारत के जो कोल हैं वे ही तैलंग आदि बड़े कुल के होंगे। ये अभी भी अपने को 'मून' कहते हैं।' हिन्दी के तिलंगे की व्युत्पत्ति क्या है?

गोंडी की तेलुगु-प्रभावित 'कोरकु' उप-भाषा में और मोन (तलैंग) में बहुत से शब्दों की समानता है ऐसा अब नए उपलब्ध अनुशीलनों से पता चला है।

हिन्द-चीन

श्रीलंका की भाँति यहाँ हिन्द-चीन में भी बौद्ध ग्रन्थों की भाषा पालि ही है। परन्तु पालि यहाँ की बोलचाल की भाषा नहीं है। यहाँ की भाषाओं पर अरबी का भी बड़ा प्रभाव हुआ है। हिन्द-चीन की भाषाओं के तीन विभाग किए जाते हैं—

अनेकाक्षरी	एकाक्षरी	पंडिताऊ (ग्रान्थिक) भाषा
मलयु	रुखेंग	पालि
जावा	बर्मी	
बूगी	मोन	
बिभ	थाइ	
बत्ता	खोहमेन	
गाल (तागाल)	लाव	
	अनाम	

मलायी (मलयु) और संस्कृत के साम्य को लेकर सर विलियम जोन्स से डाक्टर रघुवीर तक संस्कृत को मूल भाषा मानने की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है वह अन्य भाषा-शास्त्री के अनुसार पर्याप्त तर्कयुक्त नहीं। लेडेन ने और 'युनिवर्सल हिस्ट्री' में सयाम पर लेख लिखने वाले ने माना है कि मलयु भाषा में इधर-उधर से लेने की व्यापारी-प्रवृत्ति ही प्रधान है। जैसे संस्कृत के हैं, वैसे अरबी के भी शब्द मलायी में हैं। मलायी की कई प्राथमिक बातें संस्कृत से नहीं मिलतीं। मार्लडेन के अनुसार मलायी भाषा में अरबी शब्दों की उच्चार पद्धति ज्यों-की-त्यों बनाई रखी है, जबकि संस्कृत को बहुत कुछ अदला-बदला भी है। मलायी लोगों को संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं का परिचय शायद गुजराती लोगों ने सबसे पहले कराया। डी० बरास आदि का ऐसा मत है। लेडेन के अनुसार मलायी और बंगला तथा उड़िया में बड़ा साम्य है। कलिंग से मलाया का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा ऐसा भी एक विश्वास है।

बंगला	मलयु
तथापि	ततापि
पुनः	पुन
वंश	बंग्स
किच्छु	किचि

बरो के अनुसार मलायी लोग चीनियों की ही एक शाखा है। उन्होंने सुमात्रा के बहुत से शब्द चीनी में भी मिलते हैं ऐसा माना है।

जहाँ मलय भाषा में 'पान्तुन' या 'सामेर' पद्य मिलते हैं जो मलयाली 'पाट्टु' ओं से बहुत साम्य रखते हैं, वहाँ संस्कृत या तैलंग से ली हुई कई कथाएँ भी हैं। जैसे: 'पिण्डव लिम' (पाँच पाण्डवों की कथा), 'पिण्डव पिंजम बलि' (पाण्डव महल उधार लेते हैं), आदि। मलयु भाषा में ग्रन्थों के 'हिकायत श्रीराम' जैसे संस्कृत-अरबी मिश्र नाम भी हैं। हिकायत अमीर हुमदा, हिकायत राजा खैबर, हिकायत मैमुन, हिकायत एबलीस आदि कई कहानियाँ अरबी से मलायी में ली गई हैं। कुरआन का तर्जुमा भी मिलता है। कई हिकायतें इतिहास-विषयक हैं।

मलायी लोग अरबी लिपि का उपयोग करते हैं—छः अक्षर और बढ़ाकर। इस भाषा का अध्ययन विदेशियों ने बड़े जोरों से किया। डैविड हीक्स ने मलयु-डच कोश बनाया, जिसका लैटिन अनुवाद सन् १६३१ में प्रकाशित हुआ। एम्स्टरडम में मलायी का पहला व्याकरण सन् १७२६ में छपा। बावरे, हाविसन आदि ने अंग्रेज़ी-मलय कोश बनाए हैं।

मलायी में कई भारतीय पुराण-अनुश्रुति की कथाएँ बड़े ही मिश्रित रूप में मिलती हैं। ये भारतीय पुराण-कथाएँ आदम-हव्वा की कहानी से मिला दी गई हैं। उसी प्रकार से भाषा में भी हुआ है।

ता-गाल

यह फ़िलिपाइन द्वीपों की मुख्य भाषा है। इसमें लैटिन की तरह से प्रत्ययादि होते हैं। वैसे विसाय भी बोली जाती है। इस्पाहानी मिशनरी फ्रायर ग्रास्कर ने सन् १७०३ में ता-गाल भाषा का एक व्याकरण लिखा। सन् १८८२ में फ़ाव्यूम नट्टि ने 'बिब्लियोथीका फ़िलिपीना' प्रकाशित की।

ता-गाल भाषा में १४ व्यंजन और ३ स्वर, कुल १७ वर्ण हैं। यह भाषा बाँस पर कील से लिखी जाती है और चीनी भाषा की तरह ऊपर से नीचे की ओर। लेडेन के अनुसार बत्ता उप-भाषा की तरह शायद यह नीचे से ऊपर को लिखी जाती थी। यह भाषा मलयु, बुगीस और जावानी वर्ग की है।

सयामी या थाई

सयाम या थाइदेश के लोग अपने को 'तहाई' कहते हैं। बर्मी लोग उन्हें 'स्यन' कहते हैं। पुर्तगालियों ने सिश्रम, सिश्रश्रोम कहा। इसी से स्याम बना। फ्राँसीसी राजदूत ल लुबेर ने सन् १६८७-८८ में सयामी भाषा पर ग्रन्थ लिखा। थाई भाषा के अंक भी चीनी की तरह होते हैं इस भाषा में कई शब्द पालि से भी आए हैं। सयामी लोग जब कविता पढ़ते हैं तो सामवेद-पाठ की तरह जान पड़ता है। मगर लेडेन उसे चीनी ढंग कहता है।

इस भाषा में बीस स्वर और सैंतीस व्यंजन हैं। इतिहास पर इस भाषा में बड़े ग्रन्थ लिखे गए हैं। वैसे ही जीवनियाँ भी बहुत हैं। 'रामकिरान' रामायण जैसा ग्रन्थ है जिसमें 'राजा प्राम' और उसके भाई 'प्रलक' (लक्ष्मण) के पराक्रमों का वर्णन है। 'नंगसेद' (सीता) का हरण करने वाला 'तोत्सकन' (दशकन्ध) युद्ध में मारा जाता है। 'उन्नसत' में अनिरुद्ध की कथा है। 'महाचिनोक' में महाजनक की कथा है। पर कथा के बीच में फ्रेंच और फ्रैंकों का उल्लेख है।

अनामी

अनामी भाषा को सयामी और मलायी 'जुआन' भी कहते हैं। सन् १६५१ में 'अलेक्ज़ैंडर डी रोड्स' ने इस भाषा का एक कोश रोम में प्रकाशित किया। वह जेसुइट पादरी था। पेरिस में अनाम भाषा पढ़ाने के लिए एक विशेष प्रोफ़ेसर नियुक्त था।

लोग चीनी लिपि को 'चूव' कहते हैं। स्वयम् 'नोम' का प्रयोग करते हैं। यह लिपि थाई से बहुत मिलती-जुलती है। अनाम भाषा में लिंग, वचन, विभक्ति, कारक, क्रिया के बदलते रूप—कुछ नहीं होते। सब काम अव्यय करते हैं। बहुत से शब्दों का अर्थ सन्दर्भ से जाना जाता है।

कांबोजी या 'रम्भैर' भाषा उससे भिन्न है। फ्रेंच लोगों ने इसका बहुत अध्ययन किया है। लाओ सयामी राष्ट्र से मिलता-जुलता है। सिंहल द्वीप में विश्वास है कि असल श्रीपाद पर्वत पर बुद्ध के बाँए पैर का निशान है। वैसे ही सयाम में 'स्वन्नपबतो' (सुवर्ण पर्वत) पर दाहिने पैर के चिह्न हैं ऐसी किम्वदन्ती है। लाओ भाषा के नाम हेमचन्द्राचार्य के अभिधानचिन्तामणि के अन्तिम चार बुद्ध नामों से बहुत मिलते-जुलते हैं—

लाओ	हेमचन्द्र
प्रकुकुसोन	कुदुच्छन्द (क्रकुच्छन्द)
प्रकोन्नकोन	कांचन
प्रपुत्थकत्सोप	काश्यप

जावा, बालि, सुमात्रा तथा सेलिबिस की भाषाएँ

जावा की भाषा मलाया से पुरानी है। इसके अन्तःप्रदेशस्थ और तटवर्ती दो रूप हैं। तटवर्ती भाषाएँ अधिक अपभ्रष्ट हैं। जावा भाषा की लिपि का देवनागरी से कोई सम्बन्ध नहीं। इसकी वर्णमाला में २० वर्ण हैं और ए, उ, इ, ओ यह चार ही स्वर हैं। मगर उच्चारण कहीं अधिक हैं। यह उर्दू की तरह दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाती है। जावा द्वीप की बागेलेन और सुंदा भाषाएँ जावानी से भिन्न हैं। बागेलेन से सुलु भाषा निकली है ऐसा भी एक मत है। जावानी भाषा के कुछ शब्दकोश बटाविया की एशियाटिक सोसायटी ने प्रकाशित कि हैं। कुरान का अनुवाद जावानी में भी है।

ग्रीक ग्रन्थों में यद्यपि कई जगह पालि का उल्लेख बालि की तरह मिला है। किन्तु बालि द्वीप में प्रचलित बालि भाषा जावानी की उप-भाषा है। बालि द्वीप वासियों और भारतीय हिन्दुओं में बहुत आचारिक समानताएँ हैं। सेलिबिस की मूल भाषा बूगी है। तटवर्ती बूगी संस्कृतजन्य शब्द बिल्कुल नहीं है। बूगी भाषा में बाईस वर्ण हैं; अ, उ, इ, ए, ओ, उँग यह छः स्वर हैं। लेडेन ने बूगी और मका का एक छोटा कोश बनाया पर वह अधूरा और अपर्याप्त है। डा० म ने सन् १८१५, १८८१ और १८८३ में बूगी और मकासर साहि की वर्णनात्मक सूचियाँ प्रकाशित कीं, व्याकरण और कोश भी लि के० जी० नीमन ने अलफुरू नाम से सेलिबिस की तटवर्ती भाषाओं एक ग्रन्थ १८६६ में एम्स्टरडम में प्रकाशित किया।

सुमात्रा में प्रचलित भाषा है बुत्ता। बुत्ता भाषा का मलायी, और बिम भाषाओं से विशेष सम्बन्ध है, फिर भी उसमें कई बातें जैसी ही है। रचना के मामले में वह मलयु जैसी सादी है। प उसका बूगी से बड़ा साम्य है। बूगी लोगों में बहुत से रिवाज बुत्ता तरह से हैं। इन दोनों भाषाओं और मलवा की मोप्ला भाषा में समानता है। उसके कई शब्द इनमें हैं। उसके कई शब्द इनमें हैं।

इस बुत्ता भाषा की वर्णमाला बड़ी विचित्र है। अक्षरों की आकृ और अनुक्रम भी अजीब है। कुल अक्षर उन्नीस हैं और बूगी की भाँ छः स्वरों के हिसाब से उनका अलग-अलग उच्चारण हैं। ये लोग हिन्दी की तरह बाँये से दाहिनी ओर, न अरबी की तरह दाहिने बाँयी ओर, न ही चीनी की भाँति ऊपर से नीचे की ओर, नीचे से ऊ को लिखते हैं। मैक्सिको की चित्रलिपि भी ऐसी ही लिखी जाती थी बाँस के टुकड़े या पेड़ की टहनी पर काँटे से ये लोग लिखते हैं। इन ग्रन्थ बाँस और लकड़ी के गट्ठर हैं। मार्सडेन ने सुमात्रा के इतिहास इस भाषा की वर्णमाला दी है। परन्तु ये वर्ण रोमन या नागरी की त से लिखे गए हैं, इसलिए बहुत गड़बड़ होती है।

काम्बोजी के सब ग्रन्थ तालपत्र पर न होकर हिरण और नील- के चमड़े पर है। चमड़े को काला रंग कर ऊपरी दूसरे रंग की स्य काम में लाते थे। काम्बोजी लिपि और सिरियन जाति की 'होएइ या 'उइगुरेस' लिपि की समानता को लासेन आदि विद्वानों ने अमा किया है। इसमें वर्णों के ऊपर-नीचे स्वर लिखे जाते हैं। इसमें अपभ्रष्ट पालि शब्द भी हैं।

तिब्बती

'तिब्बत' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है तिब्बती लोग अपने देश को 'बोद-युल' और भाषा को 'बोद-स्क कहते हैं। मध्य तिब्बत में बोद-स्कद का उच्चारण 'भो-क' किया जा है। तिब्बती में मनुष्य को 'बोद-प' कहा जाता है। इसी से भारती ने भोट, भोटिया अपभ्रंश बनाया। भारत में तिब्बत की सीमा प रहने वाले लोगों को 'भोट' और तिब्बत ख़ास को 'हून्-देस्' कहते वहाँ के रहने वालों को 'हूनिय' कहते हैं।

बाल्तिस्तान और लद्दाख मिलाकर समूचे तिब्बत में इस मूल तिब्बती भाषा के कई रूप प्रचलित हैं। श्रीनगर से इसकी ओर जाने वाले मुख्य रास्ते पर जोज़िला का रास्ता नृवंशशास्त्र की दृष्टि से आर्य और तिब्बती बस्तियों के बीच की सीमा रेखा है। इस स्थान से पूर्व की ओर लाहौल, स्पिति, कुनावर, गढ़वाल, नेपाल, सिक्किम और भूटान आदि उत्तर के स्थानों को जोड़ने वाली जो रेखा बनेगी वह तिब्बती भाषा को भिन्न बनाने वाली रेखा है। पूर्व की ओर यह भाषा चीन के स्सेचुअन प्रान्त तक चली गई है।

तिब्बती भाषा का बोलचाल का रूप एक-सा नहीं है। तिब्बती साहित्य की पुरानी अभिजात भाषा से पता चलता है कि आरम्भ में इसमें संयुक्ताक्षर थे, ऐसी एकाक्षरी भाषा यह न थी। मध्य-तिब्बती भाषा में वर्णोच्चार की एक विशेष पद्धति है। मध्य-तिब्बती भाषाओं का विस्तार पश्चिम में स्पिति से पूर्व की ओर भूतान तक है। इन भाषाओं में कई उप-भाषाएँ आती हैं। पश्चिम की ओर से चलें तो इस क्रम से उसके रूप मिलते हैं :

१. स्पिति २. न्यम्कत् ३. जड ४. गढ़वाली
५. काग्ते ६. शेर्पा ७. दङ् जाङ् क ८. ल्होके

ङ् री नाम का तिब्बत का जो पश्चिमी भाग है उसके तीन भाग हैं :

(१) मंग्युल—यहाँ की भाषा पूर्व नेपाल में प्रचलित शेर्पा और काग्ते भाषा से मिलती-जुलती है।

(२) खोरसुम—यहाँ की भाषा स्पिति, न्यमक्त्, जड़ आदि गढ़वाली प्रदेशों की तिब्बती भाषाओं से मिलती है।

(३) मन्थुल—खोरसुम के उत्तर में उदोक की भाषा लद्दाखी और बाल्टी भाषाओं से मिलती-जुलती है।

पश्चिमी तिब्बती नामक एक दूसरा भाषा वर्ग भी है जिसमें तीन उप-भाषाएँ हैं : बाल्टी, पुरानी पुरिक, और लद्दाखी। लाहौल की तिब्बती, पश्चिमी और मध्य-तिब्बती को जोड़ने वाली भाषा है। पूर्व तिब्बत में खम्स में जो भाषा चलती है, उसे पूर्व-तिब्बती कह सकते हैं। उत्तर में और पूरब में सिक्रन और स्सेचुअन प्रान्तों में पूर्व तिब्बती से सम्बद्ध भाषाएँ चलती हैं। ये उप-भाषाएँ तिब्बती और आसाम या भारत की पूर्वी सीमा की तिब्बती-बर्मी भाषाओं की सन्धि-भाषा है। रेवरेण्ड एस० जस्खे ने तिब्बती-अंग्रेज़ी कोश की भूमिका में लिखा है कि सातवीं सदी के पहले ही तिब्बती साहित्य-भाषा बन चुकी थी। प्राचीन तिब्बती के विशेषज्ञ डा० जार्ज रोरीक ने मुझे बताया कि चौथी शती के उपलब्ध तिब्बती व्याकरण के आरम्भ में 'ॐ शिवाय नमः' है, जबकि ग्रन्थ एक बौद्ध धर्मानुयायी का लिखा हुआ है। तिब्बती यथार्थ अर्थ में एक 'बोली' मात्र है, क्योंकि इसमें छपाई के कोई साधन अभी तक नहीं हैं। कालिङ् पोङ् में एकमात्र तिब्बती समाचारपत्र 'दर्पण' के प्रकाशक और तिब्बती के दुनिया भर में एकमात्र छापेखाने के संचालक थार्चिन ने मुझे बताया कि उनके पास तिब्बती-हिन्दी शिक्षक बना हुआ तैयार पड़ा है। द्रव्य के अभाव में वे उसे छाप न सके। थार्चिन ईसाई हैं और मिशन के काम से बीसियों बरस तिब्बत में रहे हैं। इसके उलटे चीन की ओर से तिब्बत को मुक्ति दिलाने के उत्साह में शायद वहाँ की भाषा और लिपि भी बहुत जल्दी सु-संस्कृत बना दी जाए। यानी तिब्बती के बदले चीनी का व्यवहार शुरू हो। पर इस 'चीनी' में कुछ और ही छिपा हुआ है!

इसी प्रकार से भुटानी; नेपाली आदि भाषाओं के बारे में भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है। राहुल जी ने इस विषय में हिमालय के आसपास की बोलियों पर बड़ा ही मूल्यवान अध्ययन किया है, और उसमें से कुछ प्रकाश में भी आया है।

●

गुलाब की ऋतु

सरोजिनी नायडू

प्रिय, गुलाब की ऋतु आ गई है
धूप से चमकते खेतों और बगीचों में
गुलाब कैसे हँस और खिल रहे हैं
ऊपर और नीचे,
चारों ओर
आनन्दोज्ज्वल !
गहरे लाल रंगों में गुलाब —
सुन्दरता ही सुन्दरता और रंग ही रंग !

उनकी भीनी मधुर सुगन्ध से
आकृष्ट होकर चली आ रही हैं
टोलियों की टोलियाँ
वन्य मधु-मक्षिकाओं की,
आनन्द-निर्भर होकर मधु-संचय के लिए,
तुम्हारी पगड़ी में लगे हुए तुर्रे के समान
वे हिल रहे हैं—
और वायु को प्रदान कर रहे हैं अपनी हँसी
और सुगन्ध का वैभव !

उगते हुए प्रातःकाल में
वे कैसे झूम और मुस्करा रहे हैं
प्रसन्न, उज्ज्वल और चंचल !
चाँदनी से चमकती घास में,
ये गुलाब के फूल प्रतीत होते हैं
एक तरुणी के सुहाग की चादर की तरह ।

मुझे गुलाबों में समाधि प्रदान करना,
मुझे गुलाब की उस शराब में डुबाना
जिसे कि सुगन्धित गुलाब के प्रत्येक
वृक्ष में से खींचा गया है !
मुझे गुलाब की चिता पर लिटाना,
मुझे गुलाब की आग में जलाना,
मुझे प्रेम के गुलाब का मुकुट पहनाना।

अनुवादक : वंशीधर विद्यालंकार

काव्य और कवि

सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी

हमारे विचार में अन्तर्दृष्टि सापेक्ष वह लयात्मक रचना, जिसके वाक्यों के चयन में कोई अनूठापन हो, जिसकी प्रतीति रसात्मक हो और जिसमें लोक-मंगल साधन के हेतु बीजरूपेण अथवा प्रत्यक्ष ढंग से कोई सन्देश सन्निहित हो काव्य की संज्ञा से अभिहित होगी। इस प्रकार की रचना अनिवार्यतः आमोदकारी एवं आनन्ददायिनी होगी। इसका अनुभव मस्तिष्क और हृदय दोनों ही के द्वारा और एक ही समय होता है पर प्रक्रिया भिन्न होती है। मस्तिष्क की दृष्टि से जिसे हम रसानुभव कहेंगे हृदय की दृष्टि से वही आनन्द होता है, अथवा यों कहें कि रसानुभव का हृदय पक्ष ही आनन्द कहलाता है। इन दोनों तथ्यों का जिस रचना में संयोग हो जाए उसे निस्संकोच काव्य कहा जा सकता है।

काव्य आनन्दमूलक होता है। उसके पठन से हृदय की सारी चिंताएँ मिट जाती हैं और एक अतीन्द्रिय सुख मिलता है। यह सब सही है। किन्तु कवि के समक्ष जो लक्ष्य होता है वह आनन्द की साधना न होकर रस की और लोकहित की साधना होता है। आनन्दानुभव प्रत्येक काव्यनामधारी रचना से होना ही चाहिए पर समझने की बात यह है कि जो रचना किसी कवि की हृद्गत संवेदनाओं की दर्पण है और अपने प्रभाव में रसात्मक और लोक-हितात्मक है उससे आनन्द की प्राप्ति निर्बाध होगी। ऐसा नहीं है कि कवि को अपनी कविता में आनन्द-तत्त्व लाने के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास करना पड़े। वास्तव में यदि कवि रस और लोकहित की साधना—इन दो आदर्शों के प्रति पूरा-पूरा सचेष्ट है तो वह यह आसानी से भुला सकता है कि उसकी रचना को पाठक के हृदय को आनन्दातिरेक से मन्त्र-मुग्ध भी करना है। अतएव काव्य में आनन्द तत्व का समावेश स्वाभाविक और बिना किसी विशेष प्रयत्न के हुआ और कवि के काव्य-प्रयास की दृष्टि से प्रासंगिक हुआ।

काव्य में आत्म गुण का संयोग अनिवार्य है जो कवि की अन्तर्दृष्टि एवं संवेदना से परिपुष्ट और संपोषित हो उनकी वैयक्तिकता का सूचक बनता है। जो कवि अपनी कविता में अपनी आत्मा को उतार कर रख देता है वही सच्चा कवि है, और जब कवि की उसके काव्य में सुरक्षित आत्मा का पाठक की आत्मा से मेल खा जाता है तब आनन्द और रस दोनों की संसृष्टि होती है। ऐसी दशा में कवि और पाठक दोनों के व्यक्तित्व मिलकर एक हो जाते हैं और उनकी आत्माएँ प्रेषणीय (Communicable) एवं एक दूसरे के प्रति संवेदनशील हो उठती हैं। जब तक किसी क्रूर व्याघात से उसका स्वप्न टूट नहीं जाता, पाठक एक मोहक विस्मृति की अवस्था में रहता है। कवि और पाठक का यह व्यक्तित्व-समन्वय चिरंतन है और इस व्यापार को घटित कराने में जो काव्य समर्थ होता है उसे सच्चा काव्य मानना चाहिए।

जागरूक संवेदना और स्वस्थ कल्पना एक कवि के व्यक्तित्व दृढ़ आधार हैं, जिनके सौकर्य से वह रुचिर काव्य की रचना कर पा है। कवि एक भाव तथा हृदय-प्रधान प्राणी है, उसे अपने मस्तिष्क सहारा तभी लेना पड़ता है जब किसी रचना को समाप्त कर लेने पश्चात उसके लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि उस आकार-प्रकार, रूप-रंग संसार की मान्यताओं के अनुरूप है अथ नहीं, या कि उसके प्रत्येक अवयव अपने-अपने स्थान पर इस प्र ठीक बैठते हैं या नहीं कि वे साधारण पाठक को बुद्धिग्राह्य हों और भाव-प्रेषणीयता में व्याघात उपस्थित होने का भय न रह जा कवि बुद्धि के सौजन्य से अपनी रचना को संसार के सामने रखने पूर्व उसमें कुछ काट-छाँट करता है और उसके स्वरूप को सँवारता नहीं तो, कवि के व्यक्तित्व में हृदय और भावपक्ष अधिक विकसित हैं। जो अनोखी सूझें एक कवि की रचना में सुलभ होंगी वे बुद्धि और तर्क-प्रधान गद्यलेखक की कल्पना में बहुधा नहीं आएँगी कवि अपनी पैनी दृष्टि से जितनी दूर तक और किसी विषय में गहराई तक प्रवेश कर पाता है वहाँ तक उसके अतिरिक्त और कोई कर सकता। कवि की अन्तर्दृष्टि एक ऐसी ईश्वरप्रदत्त गोप्य निधि जो उसके चुने हुए विषय—भले ही वह स्वतः नवीन न हों—के में एक नवलता एवं अनूठापन उत्पन्न कर देती है जो रचना को अत्य मोहक और हृदयग्राही बना देती है। कवि अपनी भावना के स जो एक रूपरेखा खड़ी करता है उसमें रंग भरने में वह अपनी कल शक्ति से मदद लेता है, और यह निश्चय करने में कि कहाँ कौन अधिक उपयुक्त होगा उसकी सहायता के लिए बुद्धि आ खड़ी हो है। किन्तु यह सम्पूर्ण व्यापार अलग-अलग न चलकर सामूहिक से और लगभग एक ही साथ चलता है और इसके फलस्वरूप काव्यरूप सामने आता है वह निश्चय ही ओजपूर्ण और हृदय होता है। काव्य-रचना और उसकी प्रभावोत्पादकता का यही मर्म

जिस व्यापार अथवा क्रिया की अभी चर्चा हुई है उसके पक्ष के अधिक या कम प्रधान होने से काव्य का सन्तुलन खो जा और रचना अस्तव्यस्त एवं असंयत हो जाती है। अतएव, विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं से गुजर कर काव्य अपना मनोहारी रूप ग्रहण करता है उनके बीच सन्तुलन का होना अत्य आवश्यक है। इस सन्तुलन की नाप-जोख के लिए कोई नि मापदण्ड अथवा सिद्धान्त नहीं है, यह तो अनुभव से, संयोग विशेष प्राप्त होता है। इसके अभाव में भी प्रतिभा अपने विकास मार्ग ढूँढ़ ही निकालती है किन्तु उसके प्रस्फुटन में एक अटपटा और उसके कारण प्रसाद गुण की कमी, कहीं-कहीं अस्तव्यस्त

रचना और परिमार्जन की कमी के आ जाने का भय बना रहता है। कबीर और जायसी का काव्य या सन्तों की वाणी ऐसी ही रचनाएँ हैं जिनमें प्रतिभा के दर्शन तो होते हैं किन्तु भाषा-संस्कार अथवा संयम का सर्वथा अभाव है।

शास्त्रीय नियमों का ज्ञान प्रतिभा के स्वतन्त्र तथा स्वस्थ विकास में किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित करता है यह हम मानने को तैयार नहीं हैं। यह समझने की बात है कि जिस व्यक्ति को किसी विषय के हरएक पहलू का पूरा-पूरा ज्ञान होगा वही उस विषय के नियमों-सिद्धान्तों को साधिकार तोड़-मोड़ कर नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बना सकता है या नवीन आवश्यकताओं की भूमिका में उन्हें खपा सकता है। इसलिए काव्य-शास्त्र से भिज्ञता कवि की स्वतन्त्रता में कभी भी बाधक नहीं हो सकती। कवि जब अपनी भावना के वशीभूत हो अपनी वृत्तियों को किसी वस्तु में केन्द्रीभूत कर उसमें एकदम तल्लीन हो जाता है तो किसी प्रकार के बाहय अवरोध उसके लिए निरर्थक हो जाते हैं। और जब वह कुछ कहने के लिए बेचैन हो उठता है तो उसकी भावना कुछ विशिष्ट शब्दों में स्वरित हो उठती है। यही उसका काव्य बन जाता है। शिक्षा-दीक्षा के अभाव में भावना का यह स्वरित होना अटपटी और अस्थिर भाषा (जिसे सधुक्कड़ी भाषा भी कहा गया है) में होगा, पर यही क्रिया सुसंस्कृत-भाषा में प्रस्फुटित होगी, यदि कवि अपने क्षेत्र के साहित्य का सुयोग्य विद्वान भी है। वास्तव में उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा संस्कार रूप में संकलित हो उसके मस्तिष्क के अर्धचेतन या अवचेतन भाग में गुम्फित होती है और जब किसी भावना-विशेष के आवेश में उसकी वाणी मुखर हो उठती है तो उसके (वाणी) विन्यास में उसका सम्पूर्ण पिछला संस्कार स्वाभाविक ढंग से प्रवेश कर जाता है। इस सम्पूर्ण क्रिया में अवरोध या स्वातन्त्र्य की कमी के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। कवि की प्रतिभा किसी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करती। यदि वह काव्य-शास्त्र से भी परिचय रखता है तो यह उसके लिए गौरव की बात है न कि निन्दा की। विद्वत्ता की भूमिका में निर्मित काव्य इस तत्व के अभाव में रचित रचना की तुलना में अधिक श्रेष्ठ और यशस्वी होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

रसात्मक बोध को हमने काव्य का एक स्थायी गुण माना है। यदि किसी काव्य-रचना के पठन के उपरान्त पाठक रसानुभव से वंचित रह जाय तो यह वैसे ही होगा जैसे किसी अत्यन्त मधुर कहलाने वाली वस्तु को पूरा खा लेने पर भी उसके स्वाद का अनुभव न हो। काव्य में रस क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देना शायद गूँगे के गुड़ के समान है, जिसका स्वाद वह मन ही मन ग्रहण करता है पर व्यक्त नहीं कर पाता। या इसका एक उत्तर यह है कि यदि आप पूछिए न कि रसानुभव क्या है तो हम कहेंगे कि हम उसे जानते हैं, और यदि आप उसकी व्याख्या करने को कहें तो हम कहेंगे कि हम उसे जानते ही नहीं। इसी प्रकार की रस की कुछ और टालने वाली परिभाषाएँ दी गई हैं। एक में कहा गया है कि रस रस ही के समान है (रसो वै सः), तो दूसरी के अनुसार जो कुछ आस्वादन किया जाय वह रस है (रस्यते इति रसः)। सार यह है कि रस के स्वरूप का वर्णन सीधे स्पष्ट शब्दों में करना कठिन है, हाँ, उदाहरण देकर उसे समझाया जा सकता है। जैसे हम कहें कि ब्रह्मानन्द के अनुभव में जो सुख मिलता है, लगभग वैसे ही सुख की उपलब्धि रसानुभूति की स्थिति में होती है।

वास्तव में किसी काव्य-रचना में प्राप्य रस, ग्रहण करने की वस्तु है और उसकी व्याख्या की चेष्टा में उसके रसत्व का ह्रास है। भरत जैसे निष्णात् आचार्य ने भी केवल यही बताया है कि रस की निष्पत्ति कैसे होती है, रस क्या है इस सीधे प्रश्न को उन्होंने नहीं उठाया है। जब पाठक का व्यक्तित्व काव्य की रमणीयता में अवगाहन करते-करते उसमें पूर्णतया तल्लीन होकर रम जाता है, तब एक स्थिति उत्पन्न होती है जिसमें उसका कवि के व्यक्तित्व से समन्वय होता है और दो आत्माओं के इस आदान में पाठक का व्यक्तित्व अपने को जिस सूक्ष्म और उत्कृष्ट भावना से ओत-प्रोत पाता है उसकी अनुभूति को रस कह सकते हैं और पाठक की वह अवस्था रसानुभव की अवस्था कही जा सकती है। रस-ग्रहण की स्थिति काव्य और पाठक दोनों ही की दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि काव्य का उच्चतम लक्ष्य रस की संसृष्टि है और पाठक का किसी रचना के पढ़ने का यही उद्देश्य हो सकता है कि वह उसके रस का आस्वादन कर सकें। अतएव रस की अनुभूति को काव्य के सम्पूर्ण व्यापार का सर्वोच्च बिन्दु मान सकते हैं। इसी बिन्दु पर पहुँच कर आनन्द की चरम स्थिति, जिसे लोकोत्तर आनन्द कह सकते हैं, का भी आभास मिलता है।

रस की संसृष्टि के साथ ही साथ लोकहित की साधना को भी हमने काव्य का उच्चतम लक्ष्य माना है। वस्तुतः जनहित साधन को ही काव्य का सर्वोपरि उद्देश्य मानना चाहिए। काव्य में जनता की मनोवृत्ति को बदल कर उसे दूसरे मार्ग पर लगा देने की शक्ति होती है। जिस कार्य की सिद्धि में बड़े से बड़ा समाज सुधारक अथवा राजनीतिज्ञ विशेष सफलता का अधिकारी नहीं हो पाता उसे काव्य अपने ओज तथा प्रसाद इत्यादिक गुणों के सम्मोहन से सरलता से पूर्ण कर लेने में सक्षम है। शब्द, छन्द, लय और स्वर के संयोग से जो अनुपम सृष्टि होती है उससे जन-जागृति का गहरा सम्बन्ध है क्योंकि उसमें जनता को अपनी ओर खींचने की शक्ति होती है। कवि उसी के माध्यम से अपने सन्देश को जनता तक पहुँचाता है, अतएव उसका प्रभाव अवश्यंभावी है। इसलिए कवि-कर्म के पीछे यह आदर्श होना अपेक्षित है कि वह जो भी काव्य-रचना संसार को देने का निश्चय करे वह जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हो अथवा उसमें जन-समुदाय की जीवन के प्रति आस्था को दृढ़तर बनाने के निमित्त कवि का सन्देश निहित हो।

कवि का वास्तव में सामाजिक जीवन की अभिवृद्धि से घनिष्ट सम्बन्ध है और इस कारण समाज के प्रति उसका विशेष उत्तरदायित्व है। प्रत्येक कवि को इस उत्तरदायित्व के प्रति विशेष रूप से सजग रहना पड़ता है। जिस कवि को अपने इस दायित्व का ध्यान नहीं

(शेष पृष्ठ २४ पर)

पानवाला

'सुखी'

"हेड क्लार्क क्या आसमान से उतर कर आए हैं ? उनके सुरखाब के पर तो नहीं लगे हैं ? तुम्हें कहना चाहिए था कि दूकान की बाकी चुका दें, फिर बात करें"—अय्यामुत्तु चिल्लाकर अपने बेटे से कह रहा था। असल में उसका गुस्सा लड़के पर नहीं था। वह चाहता था कि उसकी बातें चपरासी चिन्नस्वामी, जो पान लेने आया था, सुन ले फिर हेड क्लार्क से जा कर कहे और हेड क्लार्क शरम और झुँझलाहट के मारे फ़ौरन पैसा चुका दे। यदि पैसा न भी चुकावे तो कोई बात नहीं, परन्तु पानवाले ने झुँझलाहट से जो बातें कहीं उन्हें हेड क्लार्क कान खोलकर सुन ले।

पानवाले की ज़बान सर-सर चलती थी। उसके हाथ, सोडा बॉटल खोलना, केले का छिलका निकालना, शीशे के जार से बड़ी जल्दी से मिठाइयाँ निकालना, पान बनाना आदि काम इतनी तेज़ी से करते थे मानो वे हाथ न होकर मशीन हों।

आज दूसरी तारीख है। तनख्वाह मिलने के बाद भी गाहक उसकी आँख बचाकर चले जाते थे। इसलिए वह गुस्से से चिल्ला रहा था। दूसरे गाहकों के साथ उसका व्यवहार जैसा भी रहा हो, लेकिन हैड क्लार्क से उसकी दुश्मनी सी थी। उन्हें चीज़ें देता था बड़ी उदारता से, परन्तु पैसा माँगता था कड़ाई से। ज़रा भी रियायत नहीं दिखाता था। पैसा इस तरह माँगता कि गाहक बेचारे शरम के मारे चुल्लू भर पानी में डूब कर मरना पसन्द करें।

हेड क्लार्क कई बार कसम खा चुके थे कि उसकी दूकान से चीज़ें उधार नहीं खरीदेंगे, परन्तु इसका पालन उनसे नहीं हो सका।

"जा बे, गधे के बच्चे ! जा, माँग ला उनसे पैसा। पूछना, क्या पैसा माँगने मेरे बाप को आपके पास आना पड़ेगा ? मुझे तो दे देंगे न ? 'गेट आउट' कहकर तुझे उन्होंने कमरे से बाहर कर दिया था न ? अब जाकर पूछ—'गेट आउट' के माने क्या हैं ? उसके आगे कुछ कहें तो कह देना—आप पैसे न देंगे तो दफ्तर के बड़े बाबू से जाकर इसकी रिपोर्ट करूँगा। जा, छाती तानकर माँग। तेरे जैसे छोकरे को ही उनसे पैसे माँगना चाहिए। जा अभी जा।" इस तरह पानवाला अपने लड़के को गाहक से पैसा माँगने की ट्रेनिंग दे रहा था। उसका उद्देश्य पैसा वसूल करना ही नहीं था, हेड क्लार्क की खिल्ली उड़ाना भी था।

छोकरे की उम्र सात-आठ साल की होगी। सिर हिलाते हुए, अपने मटके से बड़े पेट पर हाथ फेरते हुए वह दफ्तर की तरफ जाने लगा। जाते हुए छोकरे से फिर एक बार धीरज बँधाते हुए पानवाले ने कहा—"सुन रे, हेड क्लार्क धमकियाँ देंगे। घबराना नहीं, अच्छा।"

"अरे जाने भी दो जी। हमें दो छटाँक चना खाने को दो। तुम्हारा पैसा लेकर हेड क्लार्क भाग थोड़े ही जाएँगे, दे देंगे भाई। अब हमें जल्दी छुट्टी दो।"—रोज़गार दफ्तर के चपरासी चिन्नस्वामी ने पानवाले से कहा। उनके लिए चना तौलते हुए पानवाले ने कहा—"सुनो भाई, तुम पर भी तो पैसा निकलता है। उसके लिए तो हम तकाज़ा नहीं करते हैं, तुम जानते ही हो। हेड क्लार्क से तो सिर्फ़ कुछ ही रुपए मिलने हैं। अगर वह न मिले तो क्या मेरी दूकान नहीं चलेगी ? छः महीने पहले तुम भी ऐसे ही गुस्सा करते थे। मामूली अनपढ़ आदमी समझकर हमने उसका ख्याल ही नहीं किया। लेकिन यह हेड क्लार्क पढ़ा-लिखा आदमी है, उसका इस तरह बोलना ठीक नहीं है न ?"

"तुम तो बड़े चालाक आदमी हो। बहुत पुरानी बात को लेकर मुझ पर भी चोट करते हो। बड़े बाबू तक तुम से डरने लगे हैं। रोज़ हमारे दफ्तर में सैकड़ों पढ़े-लिखे आदमी आते हैं। लेकिन कोई भी तुम्हारे जैसा व्यवहार-कुशल और बुद्धिमान नहीं मिला," पानवाले की तारीफ़ में चपरासी ने कहा।

"छः महीने पहले जब मैं तुम्हारे दफ्तर में आया था तब तुम भी मुझे देख कर कुत्तों की तरह गुर्रा उठे थे। अगर मेरे पास पैसा होता तो काहे को तुम्हारे दफ्तर में नौकरी की तलाश में आता ? अनपढ़ आदमी जो ठहरा। मुहल्लेवालों ने कहा कि रोज़गार दफ्तर में जाओ नौकरी मिल जाएगी,"—पानवाला बोला।

"जाने दो इन पुरानी बातों को। बड़े बाबू के आने का समय हो गया। दो केले और एक रांजन बीड़ो मेरे नाम भी लिख लो," यह कहते हुए चपरासी ने भुने चने से मुट्ठी भर ली और वहाँ से भागा।

एक मुट्ठी चना बिना पैसे दिए ले गया। पानवाला बड़े उदार दिल का आदमी था। इन छोटी-छोटी बातों पर वह ध्यान नहीं देता था। ऐसे मौकों पर कड़े शब्द कहकर अपने उदार स्वभाव पर बट्टा नहीं लगने देता था। उसे दुनियाँ के किसी शख्स पर अविश्वास नहीं था। उसने एहसान फरामोश रामस्वामी तक को उधार दिलवाया था। उसे नई दूकान खोलने के लिए सेठ मंगूमल से पैसा उधार दिलवाया था। पत्नी प्रेमी रामस्वामी ने अपनी बीवी के लिए उन पैसों से जेवर बनवाए। पानवाले अय्यामुत्तु के डर से कहीं अज्ञातवास करने लगा। सेठ जी से किए वायदे के अनुसार पानवाले ने अपना माल बेचकर सेठ जी का ऋण चुकाया। उस तरह उसने अपने को तकलीफ़ में डालकर अपना वायदा पूरा किया था। ऋण चुक जाने की बात सुनकर रामस्वामी फिर उसी शहर में आया, जहाँ पानवाला रहता था। उसे देखकर पानवाले ने कुछ नहीं कहा। वही परोपकारी पानवाला आज हेड क्लार्क से इतना नाराज़ क्यों है ?

छः महीने पहले की बात है। सुबह का वक्त था। मोहल्ले वालों के कहने में आकर वह रोज़गार दफ्तर में गया—नंगे बदन, बिना दाढ़ी बनाए। उसे देखकर चपरासी चिन्नस्वामी ने पूछा—"क्यों बे, क्या देखता है ?"

पानवाले अय्यामुत्तु ने अपने साले को, जो रजिस्ट्रार के आफ़िस में चपरासी है, कई बार लोगों को बेकार डाँटते हुए देखा है। इसलिए वह चिन्नस्वामी की गीदड़-भभकी से नहीं डरा। उसने अदब से कहा—"काम की तलाश में आया हूँ, भाई।"

"अपना नाम रजिस्टर में लिखवाया है ?" ज़रा जोर से चपरासी ने पूछा। उसका ख्याल था कि अय्यामुत्तु घबरा जाएगा।

"मुझे कुछ मालूम नहीं है। जैसा कहोगे, करूँगा।"

"अच्छा, अहाते के बाहर जो नीम का पेड़ है, उसकी छाया में खड़े रहो।"

अय्यामुत्तु दुनियादारी से खूब वाकिफ़ था। नन्हे से बच्चे से लेकर बड़े-बड़े अनुभवी आदमी तक को वह जल्दी पहचान लेता था। चपरासी की बात सुनकर वह हँसने लगा। उसकी व्यंग्य भरी हँसी चपरासी को बुरी लगी। उसे गुस्सा आ गया। पूछा—"क्यों बे, हँस क्यों रहा है ?" "पेड़ की छाया में खड़े रहने के लिए भी तुम्हारी आज्ञा की ज़रूरत है ? सरकारी सड़क पर जो पेड़ खड़ा है उसकी ओर इशारा करके लोगों को वहाँ जाने को कहने के लिए सरकार को तुम्हारे जैसे आदमी की ज़रूरत पड़ रही है ?" यह कहता हुआ पानवाला अय्यामुत्तु पेड़ की तरफ चला गया। वह पहले ही जानता था कि उसे गरीब, चार बच्चों का बाप समझ कर कोई नौकरी देने की कृपा नहीं करेगा।

उसने देखा कि पेड़ के नीचे उससे भी ज़्यादा पढ़े-लिखे युवक खड़े हैं। हरेक युवक के हाथ में एक-एक पुस्तक थी, मानो वह उनके शिक्षित होने का प्रमाण थी। सबके चेहरे पर भूख और निराशा की रेखाएँ स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। उन्हें इस बात की चिन्ता थी कि उन्हें कैसी नौकरी मिलेगी और वह भी कब ? अय्यामुत्तु ने इन सब को देखा। वह चुपचाप खड़ा रहा। इतने में एक शख्स तेज़ी से आया और दफ्तर में घुस गया। उसे देखकर दो-चार शख्सों ने सलाम किया। अय्यामुत्तु को यह जानने में देर नहीं लगी कि वही रोज़गार दफ्तर के बड़े बाबू हैं। उसे ये बाबू देवता स्वरूप मालूम हुए। उसने भी बाबू को नमस्कार किया। दूसरों ने तो सलाम करने के बाद बाबू साहब की आलोचना शुरू कर दी, परन्तु अय्यामुत्तु ने ऐसा नहीं किया। वह मानो नेकनीयती की मूर्त्ति बनकर खड़ा था। बड़े साहब ने उसकी तरफ देखा तक नहीं।

कड़ाके की धूप पड़ रही थी। लू ऐसी चल रही थी मानो पेड़-पौधे गरम साँस छोड़ रहे हों। अय्यामुत्तु को खाना खाए तीन दिन हो गए थे। उसके पास दो ही पैसे थे। साफ़-सुथरे कपड़े पहने कई युवक अफ़सर के कमरे में आ-जा रहे थे। कुछ हँसते-मुस्कराते निकल रहे थे, और कुछ रोनी सूरत लेकर।

अय्यामुत्तु हिम्मत करके हेड क्लार्क के कमरे में पहुँचा। हेड क्लार्क सिर झुकाए कुछ लिख रहे थे। उन्हें मालूम था कि कोई सामने खड़ा है, फिर भी उन्होंने उसकी परवाह नहीं की। वह कुछ लिखते ही रहे। अय्यामुत्तु ने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्ते कहा। उन्होंने सुना, फिर भी सिर नहीं उठाया। अय्यामुत्तु को जो अपने पास आने वाले को "आइए! आइए!" कहकर स्वागत करने का आदी था, हेड क्लार्क का यह मौन और उपेक्षा भाव बर्दाश्त नहीं हुआ। उसे बहुत गुस्सा आया। फिर भी अपनी हाजिरी जता देने के लिए वह खाँसा। तब भी उनका मौन भंग नहीं हुआ।

एकाएक उन्होंने घंटी बजाई और चपरासी को बुलाया। उन्होंने चपरासी से पूँछा—"इसे आफ़िस में क्यों घुसने दिया ?"

"उसने नहीं भेजा, बाबू जी। मैं खुद चला आया। उसका कोई दोष नहीं है। दोष मेरा है।" अय्यामुत्तु ने नम्रता से कहा।

"अच्छा, जाकर क्लार्क से मिलो।"

"मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। लोगों ने कहा कि आपके पास आने से काम बन जाएगा।"

"बेकार बक-बक मत करो। वहाँ जाकर, अपना नाम लिखवा लो। इन सालों के कारण नाकों दम है।" अब भी हेड क्लार्क ने सिर नहीं उठाया। शायद सिर उठाकर बात करने की उनकी आदत शादी के बाद छूट गई थी। अमीर घराने की लड़की से शादी करने के बाद से उन्हें उसके पैसे के आगे सिर नवाने की जो आदत पड़ी वह लगातार जारी रही।

"मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ"—अय्यामुत्तु ने फिर चिरौरी की।

"तुम्हें जो कुछ कहना है, और जो नहीं कहना है, सबका बयान क्लार्क के पास जाकर देना। यहाँ से जल्दी हटो।" यह कहते हुए उन्होंने चपरासी की ओर देखा। चपरासी ने दाएँ हाथ से अय्यामुत्तु को पकड़कर दरवाज़े की ओर खींचा। पर अय्यामुत्तु टस-से-मस न हुआ। जिसने अय्यामुत्तु से हेड क्लार्क के बारे में कहा था उसने यह भी कह रखा था कि हेड क्लार्क के पास से, जब तक काम न बने, न हिलो। वे टालते हुए कहेंगे कि 'कल आओ'। तब भी न हिलना। अय्यामुत्तु ने इन बातों को ब्रह्म वाक्य माना हुआ था और वह मूर्तिवत खड़े होकर उनका पालन कर रहा था।

"आपको मेरा उद्धार करना ही होगा। मेरे लिए काला अक्षर भैंस बराबर है। दस्तखत उलटा-सीधा कर लेता हूँ। एक जमाने में अच्छी हालत में था। अब समय बुरा है। माहवार दस रुपए का ही सही, कोई काम दिलाइए। नहीं तो मेरे बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे।" अय्यामुत्तु ने बड़ी विनय से कहा।

हेड क्लार्क ऐसे वाक्य हर रोज़ और वह भी बीसियों बार सुनते थे। केवल भाषा और बोलने के तरीके में फर्क होता था। उन्होंने पढ़े हुए युवकों को रोते हुए देखा था। नौकरी की ज़रूरत और उसके बिना होने वाली मुसीबतों का वर्णन करके कई लोगों ने उनके सामने आँसू बहाए थे। इसलिए अय्यामुत्तु का यह रोना उनके लिए नया नहीं था। अलावा इसके जब पढ़े-लिखे युवकों को काम मिलना मुश्किल हो रहा है, तो ऐसे अनपढ़ आदमी को क्या काम मिल सकता है ?

"जा, जा, अपने को बड़ा पंडित समझ कर बातें करने लगा है मानो आई० सी० एस० पास किया हो। हट जा, यहाँ से। क्लार्क के पास जाकर नाम लिखा ले।"

"जो भी काम दें, मैं करूँगा। किसी तरह आधा पेट भर लेने के लिए कुछ मिल जाय तो बड़ी कृपा होगी। अगर काम नहीं दे सकें तो ५०) उधार ही………"

"जब लेन-देन की दूकान खोलूँगा, तब लाट साहब को खबर भेजूँगा। हूँ, हट यहाँ से!" यह कहकर हेड क्लार्क स्वयं उस कमरे से बाहर चले गए।

अय्यामुत्तु का सिर चक्कर खाने लगा। उसका ख्याल था कि हेड क्लार्क ख्वाह-म-ख्वाह काम देने से इनकार कर रहे हैं। बेचारे ने निश्चय किया कि धरना देकर ही सही, उनके द्वारा कोई काम ढूँढ़ लेना चाहिए।

आधा घंटा बाद भी जब वह वहाँ से नहीं हटा तो हेड क्लार्क गुस्से से पागल हो गए। उन्होंने उसे बहुत समझाया। कहा कि उसका वहाँ खड़ा रहना दफ्तर के काम में बाधा पहुँचाता है। उनका गुस्सा भी न्याय-संगत था। अब वे उठे और बोले—"तुम चुपचाप यहाँ से जाओगे कि पुलिस बुलवाऊँ।"

अब इस अस्त्र के आगे अय्यामुत्तु को झुकना ही पड़ा। पुलिस के चंगुल में पड़ने की अपेक्षा वह नौकरी की आशा छोड़ने को तैयार हो गया। पुराने अनुभवों की याद आते ही, उसे जेल के मुफ्त के भोजन की अपेक्षा इस दुखमय संसार का स्वाधीन जीवन ही बेहतर जान पड़ा।

"आप इतना ही कर सकते हैं या और कुछ? अगर आप और आपके आफिस वालों को अपने सामने थोड़ी देर भी खड़ा नहीं रखा, तो मेरा नाम अय्यामुत्तु नहीं। अपने को दानी कर्ण ही समझ लिया है। जल्दी ही मैं भी दिखा दूँगा कि मैं कौन हूँ?" इस प्रकार प्रतिज्ञा करते हुए वह रोज़गार दफ्तर से बाहर निकल गया।

दफ्तर के अन्य कर्मचारियों ने सोचा कि इसके लिए उचित स्थान पागलखाना ही है। वे लोग उसे देखकर हँस रहे थे। एक अनपढ़, गरीब आदमी उन पढ़े-लिखों के सामने नाचीज़ और भोंदू मालूम पड़ रहा था।

अब अय्यामुत्तु सोचने लगा: "मैंने जो बातें कहीं, उनका पालन कैसे होगा? इन लोगों को मेरी कृपा की क्या ज़रूरत पड़ेगी? इन लोगों को सबक कैसे सिखाया जाय?" यह सोचते हुए उसने देखा कि वहाँ काम की खोज में जो लोग आए हुए थे, उनमें से कई सिगरेट के प्रेमी थे, कइयों को भूख और प्यास लग रही थी। यह दृश्य देखकर अचानक उसके मन में एक विचार बिजली की तरह कौंध गया।

दूसरे हफ्ते रोज़गार दफ्तर से लगे हुए दूसरे अहाते में एक छोटी-सी दूकान खुल गई। एक-एक करके कई चीज़ें दूकान को सजाने लगीं। दूकान का किराया दस रुपया मासिक था। अय्यामुत्तु की योजना सफल हुई। जितने लोग नौकरी की खोज में रोज़गार दफ्तर में आते थे, सब उसकी दूकान से सिगरेट, पान, फल, बिस्कुट, मिठाई आदि खरीद कर खाते थे। उसका व्यापार दिन-दिन चमकने लगा। रोज़ कितने लोग उस दफ्तर में आते हैं, इसका विवरण अय्यामुत्तु की दूकान पर मिल जाता था। यहाँ तक कि दफ्तर के सभी कार्यकर्त्ता उधार खाते उसी से सिगरेट, सोडा, पान आदि खरीदने लगे। बड़े बाबू, हेड तक के नाम उसकी पाकेट बुक में चढ़ गए।

ग्यारह बजते ही वह सीधे आफिस में पहुँच जाता था। किसी उसके आने में ज़रा देरी हुई तो ग्राहक खुद उसके आने की राह लगते। पहले जिन्होंने पूछा था कि 'तुम यहाँ क्यों आए', वे ही अब पूछते थे कि अय्यामुत्तु क्यों नहीं आया? जिसने पिछले की बाकी नहीं चुकाई, वह उसकी आँख बचाकर दूसरे दरवाज़े से जाता है। अब पानवाले अय्यामुत्तु की ख्याति बढ़ गई है। सब की पर उसका नाम है। कोई पान के बहाने, कोई सोडा खरीदने के और कोई बिस्कुट के बहाने उसका नाम ले लेता है। कहना कि उसकी कीर्त्ति आज चरम सीमा तक पहुँच गई है।

× × × ×

जब अय्यामुत्तु बीती बातों की याद कर रहा था, तभी चपरासी आकर कहा कि हेड क्लार्क तुम्हें याद फरमा रहे हैं।

पानवाले ने कहा—"हमें इस वक्त फुरसत नहीं है। उन्हीं यहाँ ले आओ।"

"अगर तुम नहीं चलोगे तो हेड क्लार्क कहते हैं कि तुम्हा दूकान के मुकाबले में दूसरी दूकान खुलवायेंगे।" चपरासी ने धमकी स्वर में कहा।

"जाकर कह दो कि हम उस दूकान में नौकरी करने के दरख्वास्त नहीं भेजेंगे," पानवाला बोला।

"सुनो भाई अय्यामुत्तु," विनय के साथ चपरासी ने शुरू "तुम्हारे छोकरे का हेड क्लार्क के कमरे में पैसे के लिए धरना अच्छा नहीं लगता। कहता है कि जब तक पैसा नहीं देंगे, तब यहाँ से नहीं हटूँगा। हेड क्लार्क ने कहला भेजा है कि तुम जाकर छोकरे को बुला लाओ। इसीलिए मैं दौड़ा हुआ आया हूँ। जल्दी करो।"

"देने दो धरना। दफ्तर के बड़े बाबू आएँ और सारे हालात वाकिफ हो जाएँ। मेरा लड़का नौकरी के लिए धरना नहीं दे रहा दूकान की बाकी माँग रहा है। पैसा दिलवा दो तो वहाँ से चला आएगा"

चपरासी मिन्नत करके बोला—"अगर बड़े बाबू को मालूम जाए कि बाकी के लिए लड़का खड़ा है, तो हेड क्लार्क की नौकरी खैर नहीं। वे इन मामलों में बहुत ही स्ट्रिक्ट रहते हैं। देर हो रही अय्यामुत्तु, चलने की कृपा करो!" यह कहते हुए चपरासी ने पान के पैर पकड़ लिए।

"हाँ, मेरे जैसे अनपढ़ आदमी नौकरी न रहने पर भीख माँग चार पैसे कमा सकते हैं। लेकिन पढ़े-लिखे आदमी की नौकरी जाएगी तो वह कहीं का न रहेगा। उसका सारा परिवार ही बर हो जाएगा। दस रुपए मेरे लिए कोई बड़ी बात नहीं है। जाकर दो कि हमने १०) माफ़ कर दिया!"

(शेष पृष्ठ २४ पर)

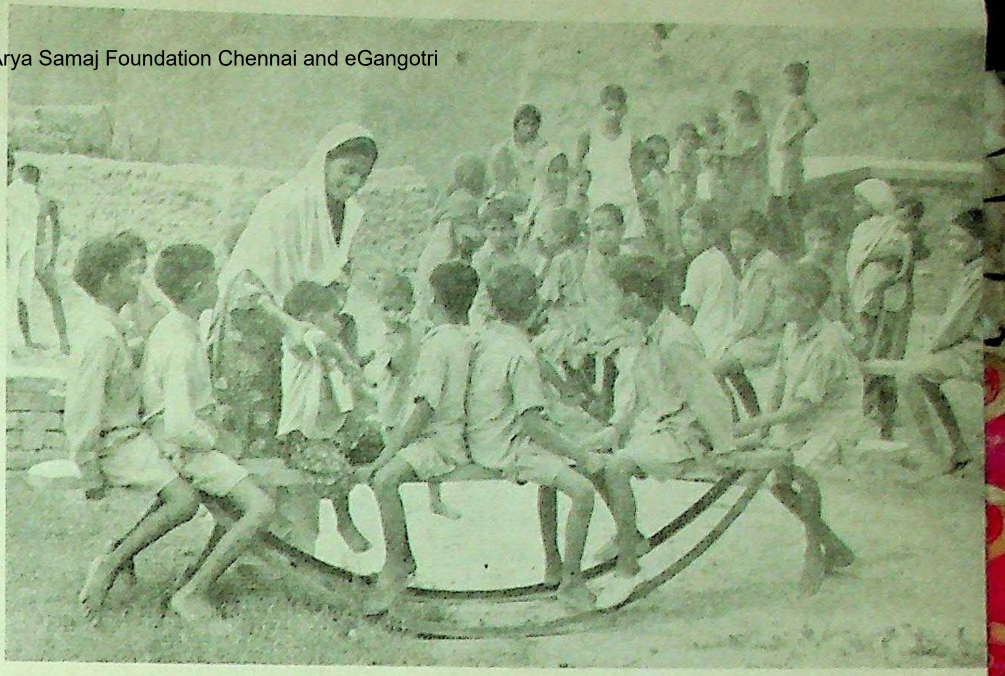

एक पंजाबी गाँव
में ग्राम सेविका

जब जीवन जाग उठा और संस्कृति मुस्कराने लगी

सावित्री निगम

इसमें सन्देह नहीं कि सदियों की सूखी बंजर जमीन को तोड़ उर्वर और उपजाऊ बनाना और पिछड़े हुए रूढ़िग्रस्त तथा अशिक्षा और अज्ञान के अन्धकार में निमग्न गाँवों में नव-जागृति लाने में सफलता प्राप्त करना लगभग एक ही स्तर के कठिन कार्य हैं। पर कभी-कभी तो ग्राम सेवा भूमि सेवा से भी अधिक कंटकाकीर्ण प्रतीत होती है।

प्रारम्भिक कठिनाइयाँ और स्थान का चुनाव—भारत सेवक समाज में शिविर चलाने का जब हमने निर्णय कर लिया तो प्रयोग रूप में कुछ शिविर दिल्ली राज्य की शाखा के तत्वावधान में चलाना आवश्यक प्रतीत हुआ। अपनी अनुभव शून्यता के कारण हम यह तो जैसे मान ही बैठे थे कि दिल्ली के आस-पास के गाँवों में अवश्य ही राजधानी की जागृति एवं प्रगति का प्रभाव पड़ा होगा—कुछ ऐसी ही विचित्र धारणाएँ बनाकर हमारी टोली दिल्ली तथा पंजाब की सीमा के गाँवों का निरीक्षण करके शिविर के लिए उपयुक्त स्थान चुनने के इरादे से रवाना हुई और लगभग २० मील चलने के पश्चात हमारी भेंट एक वृद्ध ग्रामीण से हुई जो कि निकट के गाँव का प्रतिष्ठित व्यक्ति था।

हमारी बातें ध्यान से सुन कर उसने बड़े गम्भीर स्वर में अपनी ग्रामीण भाषा में कहना आरम्भ किया—"जी हयाँ तो यू ही बहुतेरे आवें हैं एवेई सेवा, वेवा करन वास्ते पर ये तो गूजान की बस्ती ठहरी हयाँ कोऊ की दाल कब्बहू ना गली वे ऐसई सौ बेर करके फेर चले जाएँ यों ही।"

ग्राम सेविकाओं के शिविर का दृश्य

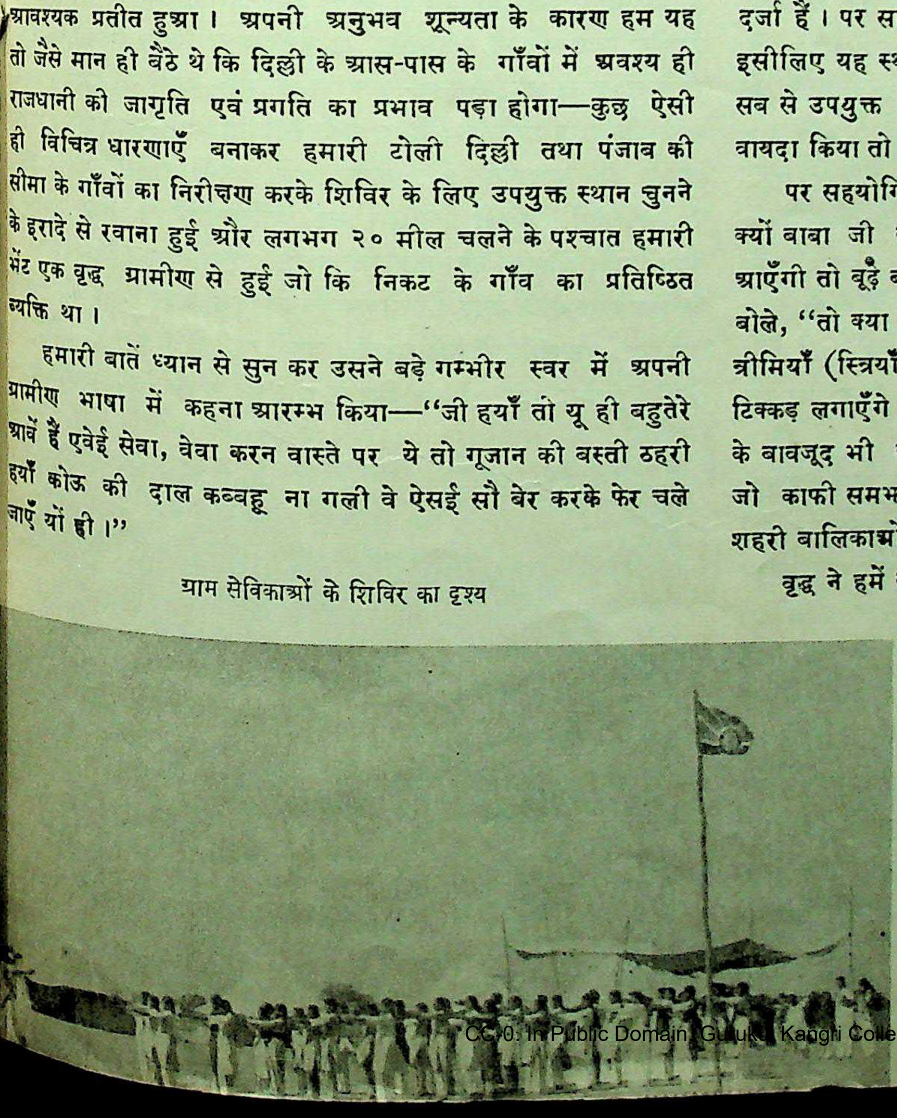

उसकी साफ खरी बातें तथा अपने ऊपर उसका अविश्वास देख हम हतप्रभ हो उठे। बार बार पूरी विद्वत्ता लगाकर जब हमने उन्हें शिविर लगाने के इरादे का पूरा परिचय दिया तो वृद्ध ने अपना रवैया तुरन्त बदल कर बड़े ही प्रेम से हमें यह बताया कि यदि हम चमुच शिविर लगा कर सुधार करना चाहते हैं, तो सबसे उपयुक्त स्थान वही गाँव है क्योंकि उसकी राय में वहाँ सबसे पिछड़ा हुआ तथा कुरीतिग्रस्त इलाका वही था।

लोग किसी न किसी अपराध के मामले में अक्सर दिल्ली पुलिस के क्रोध का शिकार बनते रहते हैं और अनेक दस नम्बरी रजिस्टर्ड सी० दर्जा हैं। पर साथ ही बड़ी विनम्रता के साथ उसने यह भी कहा कि इसीलिए यह स्थान जिसे सेवा की सब से अधिक आवश्यकता है सब से उपयुक्त रहेगा। इतना ही नहीं जब उसने पूरे सहयोग का वायदा किया तो हम सब की बाँछें खिल गईं।

पर सहयोगिनी बहन ने साधारण उत्सुकता के साथ जब पूछा—क्यों बाबा जी क्या कुछ ग्रामीण लड़कियाँ भी हमारे शिविर में आएँगी तो बूढ़े बाबा ऐसे चौंके मानों किसी ने चिकोटी काट ली हो। बोले, "तो क्या ये मीमियों का शेबिर है। हूँ क्या बेरा है खूब ठनेगी त्रीमियाँ (स्त्रियाँ) शेबिर में मज़े करेंगी और मर्द गोबर उठाएँगे, टिक्कड़ लगाएँगे और लल्ला खिलाएँगे।" आकस्मिक व्यंग्य एवं निराशा के बावजूद भी हम अपनी हँसी न रोक सके। एक दूसरी समस्या जो काफी समझदारीपूर्ण ढंग से हमारे सम्मुख रक्खी गई, वह थी शहरी बालिकाओं के सामान की रक्षा का प्रश्न ?

वृद्ध ने हमें बताया कि चोरियाँ यहाँ इतनी होती हैं कि गाय, बैल भैंसें तथा खेत की फसलें ताकना भी असम्भव हो रहा है क्योंकि ये गाँव सीमा के निकट हैं। हम बड़े असमंजस में थे। पर हमारी साथ की बहन ने कहा, "बहन जी, स्थान तो यही उत्तम है, रक्षा की जिम्मेदारी मेरी रही। दिन भर सोऊँगी, रात को पहरा दूँगी।"

ग्रामीण बहनों के शिविर वासी बनने की आशा छोड़ हमने शहरी बालिकाओं की भर्ती शुरू की,

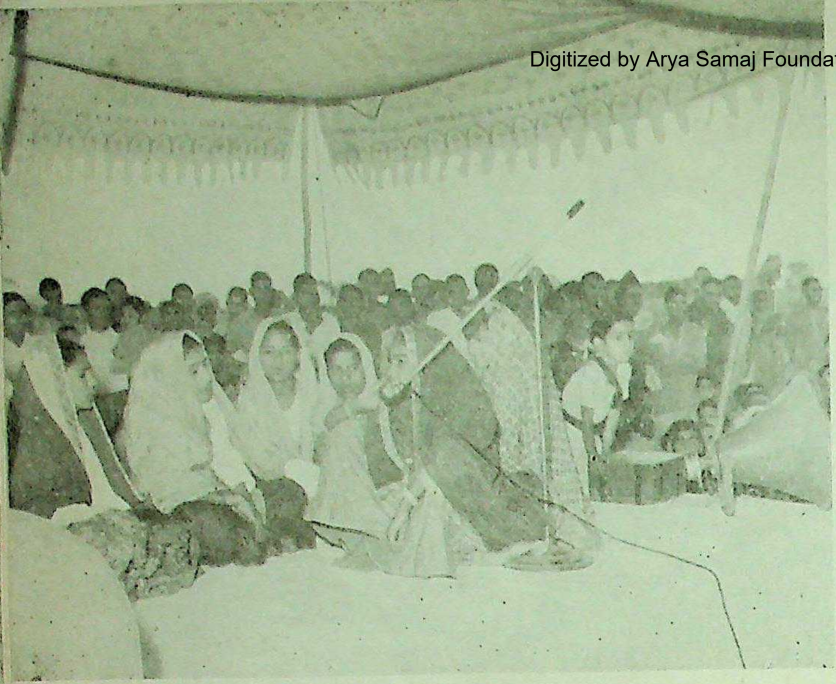

ग्राम में संगीत का आनन्द

पर विचित्र हाल था । इण्टरव्यू में अनेक बालिकाएँ प्रसन्नमुद्रा में आती थीं, पर जहाँ शारीरिक श्रम, ग्राम सेवा, सामूहिक सफाई के कार्यक्रम पर दो-चार प्रश्न करके वे सही उत्तर पाती थीं वहीं उनकी प्रसन्नता उलझन तथा परेशानी और चिन्ता का रूप धारण कर लेती थी ।

आशा के विपरीत हमें बालिकाओं की निश्चित संख्या जुटाने में बड़ी जद्दोजेहद और दौड़-धूप करनी पड़ी ।

शिविर के प्रथम दिन के अनुभव—पूरी चौकसी और सतर्कता से कार्यकारिणी की सभी सदस्याओं ने एक-एक काम के लिए एक-एक अलग कमेटी बना दी । सारी सम्भावित समस्याओं और कठिनाइयों को सुलझाने की पूरी तैयारी के बाद जब हम ४५ बालिकाओं के बोरिया-बिस्तर के साथ गाँव के लिए रवाना हुए तो हमारा मन सफलता के गर्व से मुस्करा उठा । खाना बनाने के लिए सवेरे ही बहनें गई हुई थीं । हम निश्चिन्त थे कि अब बढ़िया गरमागरम भोजन तैयार मिलेगा । घड़े, सुराहियाँ, सब्जियाँ, दालें, चावल, मसाले, बर्तन आदि सभी देकर, हमने यह भी हिदायत कर दी थी कि पहले दिन गाँव वालों से कोई चीज़ हर्गिज न माँगी जाए । किस प्रकार सफ़ाई और कमरों की धुलाई हो, कैसे छिड़काव किया जाए सब के लिए लिखित आदेश कार्यकर्ताओं को मिल चुके थे ।

पर जब हम शिविर पहुँचे हमारे उत्साह का सारा नशा काफूर हो गया—न कहीं धुलाई, न कहीं गरमागरम भोजन, न ठण्डा पानी । अगर एक क्षण हमारी प्रमुख कार्यकर्ता शिविर संचालिका ने आकर उल्टी शिकायत न शुरू की होती, तो हम सभी उन पर बरस पड़े होते । "आपने भी अन्धेर किया सब कुछ भेजा पर रस्सी तो भेजी ही नहीं, पानी कैसे भरते ? इतना ही नहीं न दियासलाई है, न लकड़ियाँ ।" दूसरी बोल उठी "कोयले हैं तो उसका चूल्हा नहीं । फिर आपने यह भी कह दिया था कि कुछ माँगा न जाए ।" अपनी गलती स्वीकार करने के बाद मैंने कहा तो ऐसा बाबा वाक्यम प्रमाणम क्या था । सब को भूखा मारने से तो कहीं अच्छा होता कि रस्सी तो माँग लेतीं और आग माँग कर जंगल की लकड़ी से खाना शुरू करवा देतीं ।

एक बहन ने आगे बढ़ कर कहा "बस कुछ कहो नहीं कम-से- बीस घरों में रस्सी माँगी होगी, पर सब ने इन्कार ही नहीं दस-बीस खरी-खोटी बातें भी सुनाईं । पर घबराइए नहीं रस्सी में देर नहीं है, हमने साइकिल पर एक आदमी भेज दिया है, रस्सी, लकड़ी आदि के अलावा ५ सेर मिठाई और १० सेर भी मँगवा लिया है । आज पिकनिक ही सही ।

शहर की लड़कियाँ ठहरीं । दस-पन्द्रह मील कच्ची धचके और सुस्ती की स्वाभाविक आदत से इधर-उधर पलंग डाल नाश्ते के बाद ही विश्राम लेने लगीं । पहला दिन था, देर भी हो थी । इसलिए हमारा साहस तो हो नहीं रहा था कि उनसे कुछ पर इधर-उधर फैला सामान और बेतरतीबी भी असह्य-सी हो उठी इसलिए मैं और शिविर संचालिका धोती कमर से लपेट झाड़ू चुपचाप कमरे धोने में जुट गईं । सहायक नौकर पानी भर रहे थे । हम एक ही कमरा धो पाए थे कि लड़कियों ने देख लिया और पाँच- दौड़ कर आ गईं । हमारी झाड़ू और लोटे छीन लिए । उनका आग्रह हम न टाल सके । जब हमने सामान चुनना शुरू किया दूसरा दल हमला कर बैठा और फिर तो सेवा की कुछ ऐसी होड़ प्रतिस्पर्धा चली कि दो घण्टे के अन्दर हर वस्तु ऐसी व्यवस्थित गई कि जिसकी हमें आशा भी न थी । भोजन आदि से निवृत्त हो विश्राम के पहले कार्यक्रम पर प्रकाश डाल कर हम वापस लौटने तो शिविर संचालिका ने कहा, "और सब ठीक है पर सायंकाल ग्राम को हम नहीं जाना चाहते ।" "मैंने उन्हें उस समय हँसी-हँसी डरपोक कायर सभी बना डाला था, पर जब सायंकाल हम लोग पहुँचे तो लाख-लाख अनुनय-विनय पर भी गाँव वालों ने हमें करने के लिए घरों के भीतर न जाने दिया और कहा "कि हम चीज़ों की जमानत कौन लेगा, हमें अपनी चीज़ों की (चोरी) नहीं करानी ।" हार कर बालिकाओं ने फिर सड़कों और चौपालों तथा कुओं की सफाई की और जब हम के लिए चौपाल के ऊपर बैठे तो एक बिगड़े दिल आदमी ने आकर "चौपाल पर मीमियाँ नहीं चढ़तीं । उतरो यहाँ से ।" जब नीचे हमने प्रार्थना शुरू की तो मिट्टी और ईंट के छोटे-छोटे टुकड़े

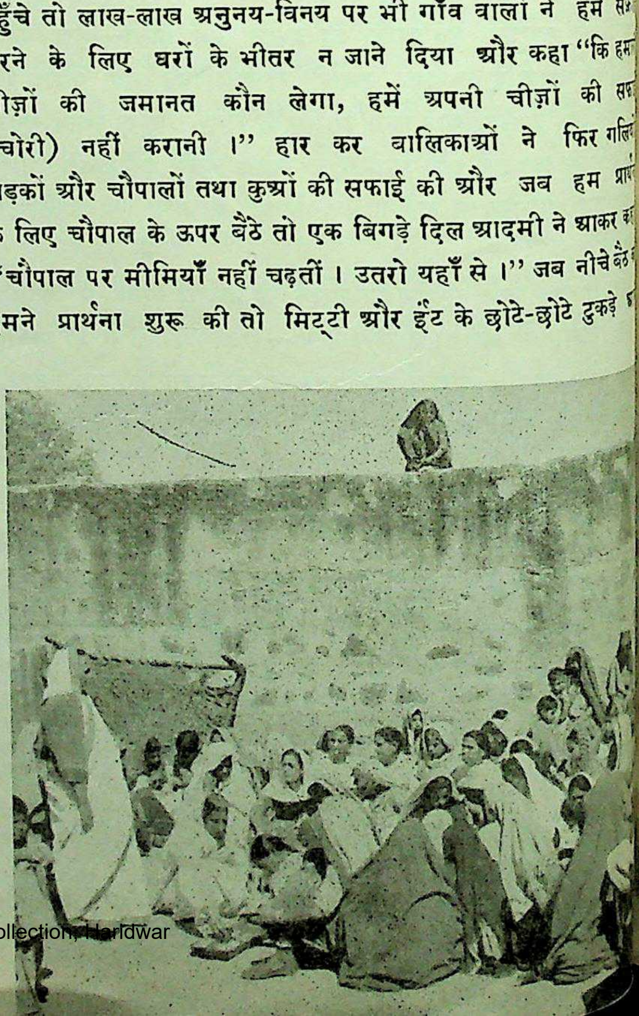

ग्राम वधुओं और कन्याओं को नई बातें सिखाने का प्रयत्न

शुरू हुए। एक लड़की ने शिकायत की तो शिविर संचालिका ने उच्च स्वर में कहा, "बच्चियो, चुपचाप बैठी रहना। तुम उनकी सन्तान हो जिन्होंने देश से गुलामी के अन्धकार को दूर करने के लिए गोलियों की बौछार के सामने हँसते-हँसते सीने खोल दिए थे। क्या इन छोटी कंकड़ियों के डर से तुम अज्ञान का अन्धकार दूर करने से झिझकोगी? तुम भगवान की सच्ची सेवा के लिए यहाँ आई हो। जैसे मीराबाई के लिए राजा का भेजा हुआ साँप पुष्पमाला बन गया था, ये पत्थर तुम्हारे लिए फूल बन कर रहेंगे। तुम इनकी महमान हो, समझीं! जो ये तुम्हें दें, चुपचाप ग्रहण करो। भारतीय परम्परा में महमान के स्वागत के लिए लोग गहने ज़ेवर तक गिरवी रख कर मिठाई-पकवान से स्वागत करते थे पर इनके पास कंकड़-पत्थर हैं, इन्हीं से तुम्हारा स्वागत कर रहे हैं। उठो, इनको हार्दिक धन्यवाद दो। फिर प्रार्थना आरम्भ करो।" पता नहीं किस घड़ी में उनके मुँह से यह शब्द निकले थे कि वे कंकड़-पत्थर सचमुच दूसरे ही दिन से फूलों में बदल गए। उसी समय कई लोग जो दूर खड़े तमाशा देख रहे थे, पास आ गए और पत्थर फेंकने वालों को ललकारा। फिर खेस और दरियाँ लाकर बिछा दीं। एक सज्जन छाछ की बाल्टी ले आए, दूसरे कई पंखे लाकर डाल गए। प्रार्थना और गीत के बाद जब भजन शुरू हुए तो घूँघट और घाघरे से ढकी हुई गूजर और जाट बहनें भी साथ देने लगीं और ढोलक मजीरे भी बिना माँगे ही आ गए। फिर क्या था? बात की बात में पूरा गाँव इकट्ठा हो गया और ७॥ बजे तक यह मनोरंजक कार्यक्रम चला, क्योंकि जभी उठने की तैयारी होती, ग्रामीण बहनें और भाई आग्रह-पूर्वक बिठा लेते। शिविर संचालिका ने मेरे कान में कहा कि यह अवसर है जब आप सहयोग की अपील करें तथा ग्राम समस्याओं के बारे में मालूम करके उनको सुलझाने के ढंग पर प्रकाश डालें। बातचीत के ढंग पर दिए गए भाषण के ऐसे अच्छे प्रभाव की हमें आशा न थी कि आँखों में आँसू भर-भर कर उन्होंने अपने भाइयों के दुर्व्यवहार के लिए क्षमा याचना की और दूसरे दिन से पूरे-पूरे सहयोग का वायदा किया। साथ ही हमारे सहयोग से एक नए कुएँ के निर्माण का और सड़कों की मरम्मत का प्रस्ताव भी हमारे सामने रखा। हमने उसी समय ग्रामीण भाइयों का एक रक्षक दल बनाया, जिसमें बारी-बारी से चार-चार व्यक्तियों को पहरे की जिम्मेदारी सौंपी गई।

अन्धकार से प्रगति और प्रकाश की ओर—जब हमने नेब सराय में शिविर लगाने का निश्चय किया था तो न तो हमें कंकड़-पत्थर डाँट-फटकार की ही आशा थी और न ऐसे अच्छे वातावरण की जैसा कि हमें दूसरे दिन प्रभात फेरी के लिए गाँव जाने पर मिला। हर घर के द्वार हमारे स्वागत के लिए खुले थे। झाड़ू, खुरपी, टोकरी देने के अतिरिक्त घर की स्त्रियाँ और बच्चे हमारे सुझावों को मिनटों में कार्यान्वित करने के लिए तैयार थे। सामूहिक सफ़ाई तथा प्रार्थना के बाद पाँच-पाँच बालिकाओं के ग्रुपों को दस-दस मकान सौंप दिए गए। शिशु शुश्रूषा २५ लड़कियों को सौंप दी गई। पशुपालन, खेती के शत्रुओं पर विजय का कार्यक्रम चलाने के लिए १० बालिकाओं और २५ ग्रामीणों की एक सभा बन गई। क्या खायें, कैसे पकायें के लिए दोपहर का समय, जब ग्रामीण बहनें खाली रहती हैं, निर्धारित्त कर दिया गया। दोपहर को सिलाई, दरी बनाना, बुनाई और चर्खा तथा गत्ते और कपड़े के खिलौने बनाने और सीखने आने वाली बालिकाओं और स्त्रियों की संख्या तो इतनी बढ़ गई कि सम्हालना कठिन होने लगा। पाँच-सात दिन में गाँव के कुओं और गलियों तथा सड़कों की शक्लें ही बदल गईं। मुँहबन्द नालियों और सेनेटरी पिट्स ने तो गाँव की गलियों में एक अजीब स्वच्छता और आकर्षण ला दिया।

बच्चे नंगे न रहें और सड़क पर गन्दगी न फेंकी जाए, खुले खेत में टट्टी करना निर्लज्जता है आदि नारों ने खूब चमत्कार दिखाया।

बूढ़े से जवान और पुराने से नए बनो—यह आन्दोलन भी खूब चला। सैकड़ों गुदड़ों, टूटी डालियों, सूप और टूटे-फूटे सामान के ढेर लग गए और उनसे नन्हें सूप व छोटी-छोटी टोकरियाँ बनने लगीं। कपड़ों की धुलाई, रँगाई, कटाई, सिलाई देखकर छोटी-मोटी फैक्टरी का भ्रम होने लगता था। घूँघट काढ़े बुढ़ियाँ, मुँह लपेटे युवतियाँ रंग-बिरंगी चुन्नियाँ ओढ़-ओढ़ कर देहाती मेले का दृश्य उपस्थित कर रही थीं।

सिलाई की शिक्षा
और बच्चों की देखभाल

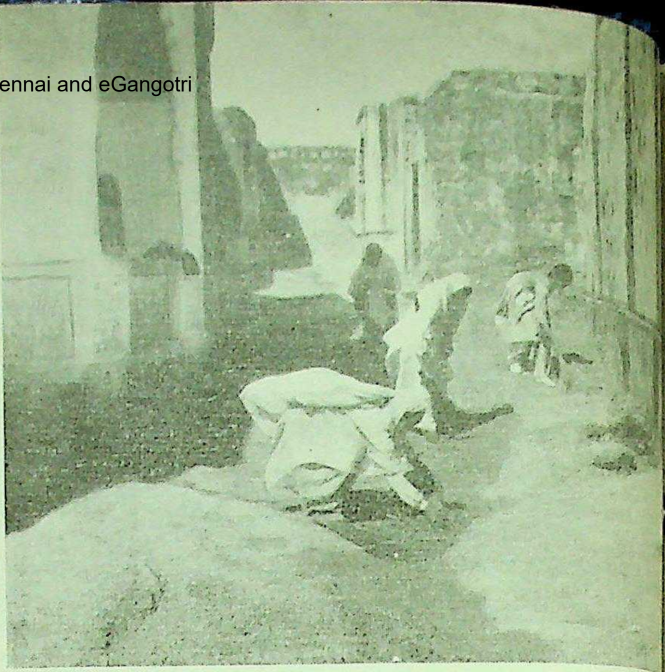

ग्राम की सफ़ाई

सड़क की मरम्मत के काम में जब बूढ़े-बूढ़े आदमियों को फावड़ा चलाते हुए गाँव के मुखिया ने देखा तो वह कहने लगा, "बहन जी आपने तो इस गाँव में जादू कर दिया है। बूढ़े जवानों को मात करते हैं। पुराने नया रूप धरते हैं।" एक दिन में चार फर्लांग सड़क बन सकेगी, जब यह बात हमने कही तो इंजीनियर्स और ओवरसियर बोले, "बिना नियन्त्रित मज़दूर रक्खे आप आठ दिन में भी श्रमदान से इतनी सड़क न बनवा पायेंगी।" हमने बिना उनसे अधिक बहस किए उनसे पूरी सलाह ले ली और निशान आदि लगवा दिए। पर दूसरे दिन जब वे आए उन्होंने बड़े आश्चर्य में आकर कहा, "बहन जी हम मान गए कि इस प्रकार के शिविर ही ग्रामीण जीवन को जगा सकते हैं। सचमुच यह गूजर जाटों का गाँव इतनी शीघ्रता से बदल जाएगा, ऐसी आशा हमें न थी।"

नियम से नित्य हमारी प्रार्थना सभा और प्रभात फेरी में गाँव का बच्चा-बच्चा सम्मिलित होने लगा। इधर शहरी बालिकाओं में शारीरिक श्रम के प्रति इतनी श्रद्धा उत्पन्न हो गई कि भोजन तथा पानी भरने वाले सहायकों की यह शिकायत थी कि उन्हें कोई अन्य काम दिया जाए, क्योंकि व्यर्थ बैठने में उन्हें भी बुरा लगता था।

शिविर की छोटी-मोटी समस्याएँ वरदान बनीं—एक दिन सायंकाल को जब मैं शिविर पहुँची तो वातावरण में कुछ स्तब्धता नज़र आई। लड़कियों के मुँह भी सहज प्रसन्न मुद्रा में न हो कर कुछ उदास से थे। पूछने पर पता चला कि कुछ बालिकाओं को शिकायत है कि उन्हें सोने के लिए चारपाई नहीं मिलती। दूसरे दल का कहना है कि हमीं लोग शारीरिक श्रम के लिए रोज जाते हैं। एक दल जो कि कार्यक्रम निरीक्षक का प्रिय है, हमेशा श्रम से बचा रहता है। सबसे बड़ी समस्या की बात यह थी कि शिकायत करने वाली बालिकाओं को शिविर संयोजिका का भी समर्थन प्राप्त था। मैंने उनकी सारी शिकायतों को सही मान लिया, परन्तु जैसे ही उनसे पूछा कि तुम्हारे शिविर में आने का क्या उद्देश्य है तो सब एक स्वर से बोलीं गाँव में एक नई क्रान्ति लाना, सेवा की कला सीखना!

जब क्रान्ति की अग्रदूत बनी हो तो इन छोटी-मोटी असुविधाओं का ख्याल आया ही कैसे? धन्यवाद दो प्रभू को कि तुम्हें विदेशियों की गोलियों और दमन के कुचक्रों का सामना देश के अन्य क्रान्तिकारियों की तरह नहीं करना पड़ता। मर्यादा पुरुषोत्तम राम जब वन गए थे तो रेशमी वस्त्र न मिलने की शिकायत क्यों नहीं करते थे क्यों प्रसन्नता से वल्कल वस्त्र पहनते थे? योगिराज कृष्ण जब गुरु यहाँ थे तो सुदामा तथा अन्य साथियों के साथ गाय चराने और पा भरने सहर्ष जाते थे। तभी उन्हें योगिराज की उपाधि मिली। पक्षपा तो असल में उनके साथ हुआ है और शिकायत भी उन्हीं को हो चाहिए जिन्हें शारीरिक श्रम का अवसर नहीं मिल रहा। पिलपि से आराम-पसन्द शरीर लेकर आई थीं, वैसे ही बिना कुछ सीखे-सम वापस जाएँगी। यहाँ जंगल में रह कर कष्ट भी उठाया, समय भी बर्बा किया, न शरीर बदला न विचार, ऐसी बालिकाएँ दया तथा सहानुभू की पात्र हैं, ईर्ष्या की नहीं। मुझे तो ईर्ष्या तुमसे हो रही है। श्र से जिनके मन शरीर अंग-प्रत्यंग सुडौल एवं स्वस्थ बन रहे हैं। ह हुई सहज मुस्कान सब के चेहरों पर फिर लौट आई।

दूसरे दिन पता चला कि उस रात सारी चारपाइयाँ खड़ी रहीं स जमीन पर सोये और सांस्कृतिक कार्यक्रम की लड़कियाँ सचमु शारीरिक श्रम करने को जबर्दस्ती गईं और विश्राम के समय उन्हों सांस्कृतिक कार्यक्रम के रिहर्सल किए। इस प्रकार थोड़ी सी भाव भर कर शहरी और तथाकथित फैशनेबिल और आलसी लड़कियाँ स वीरांगनाएँ बन सकती हैं।

बापू की सफलता का रहस्य जहाँ अन्य वस्तुएँ और अन्य मानवी श्रेष्ठ गुण थे वहाँ उनको सेवाग्राम तथा साबरमती आश्रमों में सच्चे कार्यकर्ता और ऊँचे इन्सान बनाने की सुविधा को भी उन सफलता का बड़ा श्रेय दिया जाना चाहिए।

इस शिविर की सफलता का सब से बड़ा प्रमाण था गाँव वा का अत्यन्त प्रेमपूर्ण सहयोग। प्रतिदिन आई हुई भेंटों को लौटा हमारे लिए बड़ा ही कठिन कार्य बन जाता था। एक ओर हमारे न लेने के नियम, दूसरी ओर उनका अश्रुपूर्ण प्रेमाग्रह।

एक और तमाशा हुआ। हरिजन बहनें और भाई हमारे लिए दा का पैगाम लेकर आए, पर हमने कहा कि शराब पीने वालों के घर ह

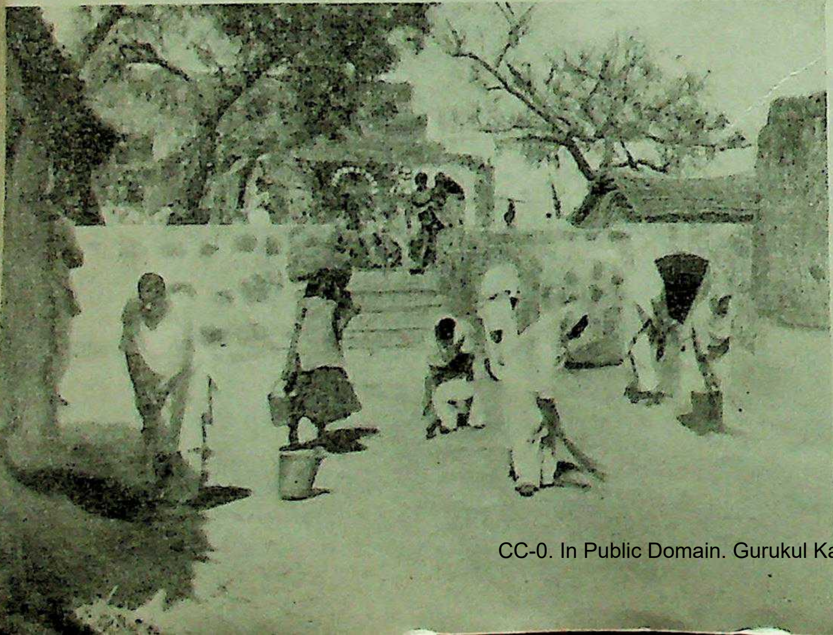

पाठशाला में
आँगन की सफ़ाई

बच्चे भोजन नहीं कर सकते । हमने सोचा चलो इसी बहाने इन विचारों को अपव्यय से तथा कष्टों से मुक्त किया जाय । पर दूसरे दिन सवेरे एक कागज पर ३० घरों के निवासियों के हस्ताक्षर लेकर वे फिर आ पहुँचे । यह एक प्रतिज्ञापत्र था कि वे शराब नहीं पीएँगे । उनके इस साहसपूर्ण निश्चय ने हमें निरुत्तर बना दिया । उनकी सामूहिक दावत का निमंत्रण हम न टाल सके ।

स्वस्थ रहो और खूब जियो तथा नेत्र सुधार का कार्यक्रम—एक दिन ग्राम-सेवा के समय बच्चों के एक झुण्ड को हमने गौर से देखा तो पता चला कि लगभग ८० फी सदी बच्चों की आँखें खराब हैं । सेवा शुश्रूषा तथा स्नान के ग्रुप को बुला कर मैंने कहा कि आप क्या ख़ाक नहलाती हैं । इनकी आँखें क्यों साफ़ नहीं कीं ? तो उनकी संयोजिका ने बताया बच्चों की आँखें रोज़ बोरिक लोशन से धोई जाती हैं पर धूल तथा रोहों के कारण आँखों में सुधार नहीं होता । बस तुरन्त मुझे ख्याल आया कि बेचारे वे डाक्टर जो हमेशा अस्पताल के दमघुटाऊ कमरों में बन्द रहते हैं, इस 'ओपन एअर' अस्पताल शिविर में क्यों न बुलाये जाएँ । सब को यह बात पसन्द आ गई ।

हमारा नेत्र सुधार शिविर तो इतना सफल हुआ कि दस गाँवों के लोग इसमें सम्मिलित हुए और इतनी भीड़ रहने लगी कि दो बालिकाएँ तो केवल क्यू बनाने के लिए नियुक्त करनी पड़ीं । पूरे ग्रामवासियों का मेडिकल चेक-अप किया गया, जिससे २० ऐसे संक्रामक पुराने रोगों के मरीज निकले जिन्हें तत्काल औषधि तथा सहायता की आवश्यकता थी ।

पशुओं की देखभाल

मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी करने की शिक्षा

गाँव को अधिक लाभ हुआ या शहर को—एक दिन एक सम्मानित उपदेशक ने गाँव की सफाई के कार्यक्रम को देख कर कहा ? "मैंने देखा कि आपने गाँव में नालियाँ, साफ़ पाखाने आदि बनाए । इन बहनों को घर सजाना, बच्चे नहलाना सिखाया पर आपका यहाँ शिविर लगाने का प्रमुख उद्देश्य क्या है ?"

दो लड़कियों ने उत्तर के लिए हाथ ऊँचे किए और क्रमशः दोनों ने कहा प्रथम उद्देश्य गाँव वालों से शारीरिक श्रम की शिक्षा लेना और गाँव रूपी धड़ से शहर रूपी सिर को जोड़ना और समाजवादी समाज की रचना करना । दूसरी बालिका ने उत्तर दिया ग्रामीण जनता से निष्काम सेवा व अप्रशंसित त्याग की शिक्षा लेना । उनका दूसरा प्रश्न था इस शिविर से गाँव को अधिक लाभ हुआ या शहर को ? एक स्वर से सब ने उत्तर दिया दोनों को ही बराबर ।

जब विदाई का अवसर आया तो ग्रामीण बहनों की करुणाजनक सिसकियों और बूढ़ों की स्नेहयुक्त बातों ने हमारे हृदय को पारिवारिक बिछोह की भावनाओं से भर दिया । सांस्कृतिक कार्यक्रम के क्रान्तिकारी प्रभाव हुए । शराब तथा तम्बाकू पर जब नाटक दिखाए गए तो नाटक के पश्चात ग्रामीण नेताओं के भाषण हुए और उन्होंने कहा कि जो लोग शराब तमाखू के बुरे प्रभाव समझ कर छोड़ना चाहें वे अपने नाम दें । १३४ नाम तो तुरन्त ही आ गए । सबसे बड़ी बात यह हुई कि हरिजन समाज के दण्ड विधान से शराब हटा दी गई, बल्कि दावतों सहभोजों में भी पंचायत ने सख्त मनाही कर दी कि शराब हर्गिज़ न चलाई जाय ।

★

ग्रहण

अंचल

यह काला बादल सूरज को कहाँ लिये जाता है ?

दिशा-दिशा बेचैन कि कैसा ज्वार उठा है ऊपर,
भय-कातर प्रकाश की किरणें लटक गिरीं धरती पर,
नभ के मन में शान्ति नहीं है, शान्ति नहीं है बाहर—
दिन की अरथी देख रहे हैं चाँद-सितारे छिपकर ।
अरे दिवा-स्वप्नों के स्वामी ! क्या होता जाता है ?
यह काला बादल सूरज को कहाँ लिये जाता है ?

उड़ा छाँह-सा ताप, तेज बन गया कालिमा गहरी,
मरघट-सा बन गया गगन होते-होते दोपहरी,
सृष्टि भरी है गहन व्यथा से, धरती का दिल जलता—
त्यक्त केंचुली जैसा चारों ओर धुँधलका गलता ।
हुए अनमने पाट नदी के, जल भी अकुलाता है !
यह काला बादल सूरज को कहाँ लिये जाता है ?

व्याप्त चतुर्दिक भय संशय के अनजाने अन्धे स्वर,
अन्तिम पीली किरण पी गए ये तम के यायावर,
कसमसाती है सान्ध्य, धूलिमा, जल, थल और पवन पर—
कैसा स्तब्ध प्रलय, कंपन भी भूल गया है थरथर ।
कोटर में भयभीत खगों का कंठ न खुल पाता है !
यह काला बादल सूरज को कहाँ लिये जाता है ?

सूरज का यह हाल हुआ तो चन्दा का क्या होता ?
काले प्रेतों ने उसको दफ़ना कर छोड़ा होता,
पर डूबा सूरज संकट को चीर सदा चमकेगा—
काले बादल की छाती को फूँकेगा, दमकेगा ।
मेरी बात सुनो—युग-युग से यही चला आता है !
यह काला बादल सूरज को कहाँ लिये जाता है ?

★

पानवाला—(पृष्ठ १८ का शेषांश)

"अरे भाई, तुम खुद चलकर पहले अपने लड़के को वहाँ से बुला लाओ ।"

पानवाला थोड़ी देर के लिए अपनी दूकान चिन्नस्वामी के सुपुर्द कर हेड क्लार्क के कमरे की ओर गया । अब किसी ने उसे नहीं रोका । हेड क्लार्क पानवाले को देखकर अब भी सिर झुकाए बैठे नहीं रह सके । उसे देखकर हेड क्लार्क ने बनावटी मुस्कुराहट के साथ कहा—"मैं भाग थोड़े ही जाऊँगा । इस छोकरे ने आज हमारी इज्जत मिट्टी में मिला दी ।"

"बाबू जी, मैंने आपकी बाकी माफ़ कर दी हैं । आगे से आप नकद देकर चीज़ें ख़रीद लीजिएगा । आज से आपका हिसाब नहीं रक्खा जाएगा । आपने उस दिन मुझ में जो क्रोध पैदा किया, उसके बदले में यह रियायत दे रहा हूँ । क्योंकि उस दिन अगर आप ज़लील करके मुझे नहीं भगाते तो आज पान की दूकान से १००) नहीं कमाता । (लड़के की ओर देखकर) चल रे, आगे से बाबू जी से पैसे का तकाज़ा न करना । उन्होंने पैसा दे दिया । शुक्रिया बाबू जी आदाब अर्ज़ ।" यह कहता हुआ अपने शरीर के हाव-भाव से उन खिल्ली उड़ाते हुए वह तेज़ी से बाहर चला गया ।

हेड क्लार्क कुछ कहना चाहते थे । लेकिन तब तक पानवा अपने लड़के को साथ लिए कमरे से बाहर जा चुका था । उन्हें थो सन्तोष हुआ कि बला टली ।

तीसरे पहर का समय था । आरेंज क्रश लिए हुए वही छोक फिर हेड क्लार्क के कमरे में पहुँचा । "बाबू जी कोल्ड ड्रिन्क पीयेंगे मुस्कराते हुए छोकरे ने पूछा । उन्हें लड़के का यह सवाल कैसा ल होगा, यह कहने की ज़रूरत नहीं है । उनके जवाब की प्रतीक्षा कि बिना ही वह क्रश का गिलास मेज़ पर रखकर चला गया । हेड क्ल को कुछ सूझा नहीं । किसी काम में उनका मन नहीं लगा । ६ ब तक वह पत्थर की मूर्त्ति की तरह कुर्सी पर बैठे रहे ।

अनुवादक : एम० सुब्रह्मण्य

★

काव्य और कवि—(पृष्ठ १५ का शेषांश)

रहता वह स्थायी महत्व से रहित एक छन्दबद्ध रचना प्रस्तुत करके रह जाता है । काव्य वही अमर होता है जो एक काल तक जनता के जीवन को अपने साथ लेकर चले और जिसमें युगों-युगों तक एक मनोवृत्ति-विशेष का नेतृत्व करने की शक्ति हो । निश्चय ही प्रत्येक युग या काल में इस कसौटी पर खरी उतरने वाली रचनाओं की संख्या बहुत छोटी होती है । बाकी की रचनाएँ जन-जीवन-सम्पर्क-विहीन होने के कार निर्जीव होती हैं और कुछ ही दिन चलकर समाप्त हो जाती हैं । इ काव्य वही अपने अस्तित्व को सार्थक कर सकता है जो समाज की आश निराशाओं, सुख-दुःख अथवा उसकी विशेष मनोवृत्तियों से सामंज स्थापित कर अपने निर्माण में लोक-मंगल की भावना से अनुप्राणित हो

श्री श्री और आधुनिक तेलुगु काव्य

वेंकटाचार्युलु

यह लो नई दुनिया
नई दुनिया
और कोई दुनिया
बुला रही है—बुला रही है
बढ़ो बढ़ो आगे
बढ़ो बढ़ो
राह बनाते
चलेंगे हम; चलो भी तुम
चलेंगे आगे-आगे (महा प्रस्थान)

सहृदय रसिकगण, कौन हैं ये कवि जो हम सबको डंका बजाते हुए आगे बढ़ने का न्योता दे रहे हैं और एक नई दुनिया की झलक दिखा देने की कसम-सी खा रहे हैं ? वे हैं श्री श्री उपनामधारी कवि ।

मैं भी
भुवन भवन पर
झण्डा बन
उठूँगा
ऊपर । (जय भेरी)

कौन हैं आप जो दुनिया रूपी हवेली पर झण्डा बनकर फरफराने की उम्मीद रखते हैं ? आप ही हैं श्री रंगम श्रीनिवासराव ।

फूँक देंगे
मरण में भी प्राण,
लगा देंगे
नसेनी
स्वर्ग तक !
उड़ायेंगे खिल्ली
जगत की ।
करेंगे हुकूमत
भविष्य पर ।
लगायेंगे
लगाम
काल पर भी ।
खोल देंगे
कुण्डी
मुहब्बत पर
लगी हुई ।
अगर
आनन्द हो सागर,
अगर
अनुराग हो अम्बर,
देख लेंगे
किनारा
अनुराग का
देख लेंगे
थाह
आनन्द की ।

कौन हैं वे जो मौत तक में जान फूँक देने की हिम्मत रखते हैं और कौन हैं ये निराला जो वक़्त तक की गति को रोक देने का साहस या, आप चाहें तो, दुस्साहस दिखाते हैं ?

वे ही हैं आज मेरे प्रसंग के विषय । आपका पूरा नाम है श्रीरंगम श्रीनिवासराव । यदि मैं कहूँ कि तीन करोड़ की आबादी में से बिरला ही कोई ऐसा तेलुगु भाषी होगा, जो आपके नाम से परिचित न हो, तो अत्युक्ति नहीं होगी । जब कभी श्री श्री का नाम किसी के मुँह से निकलता है, तो श्रोता उनकी 'नयी दुनिया' वाली कविता के प्रारम्भिक पद, जो मैंने आप लोगों को सुनाए हैं, अवश्य गुनगुनाने लगता है ।

ई० सन् १९१० जनवरी में इनका जन्म हुआ, विशाखापट्टणम् ज़िले में । यह वर्ष हमारे आन्ध्र देश के इतिहास में युग-प्रवर्तक है । उसी साल कवि ब्रह्मश्रद्धेय गुरजाड़ा अप्पाराव ने कृत्रिम ग्रान्थिक पण्डिताई की बू से सराबोर भाषा के खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलन्द की थी और पुराने पाषाण-छन्दों को तिलांजलि देकर जनता की समझ में आने वाले नए छन्द 'मुत्यालसरम' की सृष्टि की थी, और चलती भाषा की बुनियाद डाली थी । उसी वर्ष आन्ध्र देश की नवचेतना के मूल पुरुष प्रातःस्मरणीय वीरेशलिंगम् पन्तुलु की देखादेखी बरहमपूर नगर में जात-पाँत पर लात मार कर सह-पंक्ति-भोज आयोजित किया गया, जिसमें सारे मज़हब के अनुयायी और अखिल वर्ण और वर्ग के लोग पहली बार शामिल हुए थे। उसी समय विनायक दामोदर सावरकर ने लन्दन के India House में एक विप्लव संस्था की स्थापना की थी, जिसके सदस्यों में से कई आन्ध्र भी थे । उसी साल, आप लोग जानते हैं, यूरोप के सारे राष्ट्र विश्व की पहली लड़ाई के लिए सामग्री जुटाने में संलग्न थे । ऐसे संघर्षमय और सामाजिक सुधार होने वाले शुभ समय में इन्होंने जन्म लिया । अब इसमें ताज्जुब करने की बात ही क्या रह गई है, कि ये आगे चल कर एक इन्क़लाबी शायर निकले और अपनी पीढ़ी के युवक कवियों के लिए काव्य-क्षेत्र में एक नया रास्ता बनाया और उनके पथ-प्रदर्शक बन गए ।

आधुनिक तेलुगु कविता में दिलचस्पी रखने वाले सब लोग आपके नाम से भली भाँति परिचित हैं। ख़ास कर, नवयुवक मण्डली में आपको विशेष सम्मानित और सर्वप्रथम स्थान प्राप्त तो हुआ ही है। आपकी अनेक कविताएँ लाखों आन्ध्रों को कण्ठस्थ हैं। आधुनिक कविता की समीक्षा करते हुए जितने भी मज़मून प्रकाशित हुए हैं, उन सब में श्री श्री का, खण्डन या मण्डन के तौर पर, ज़िक्र अवश्य पाया जाता है।

इनके पिता जी का नाम है वेंकटरमणप्पा जी। ये विशाखपट्टणम् के विद्यालय में गणितशास्त्र के अध्यापक थे। जब श्री श्री डेढ़ साल के ही थे, उनकी माता का देहान्त हो गया। बचपन में ही वह मातृ-स्नेह से वंचित हो गए। पिता ने दूसरी शादी की, लेकिन इनकी सौतेली माँ सुभद्रम्मा जी ने इनका लालन-पालन किया बड़े लाड़-प्यार से। वह भी बाद में चल बसीं। अपना पहला कविता-संग्रह 'प्रभवा' इन्हीं सौतेली माँ के पाद-पद्मों में समर्पित कर श्री श्री ने इनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि प्रकट की। जैसा रिवाज है, श्री श्री का अक्षराभ्यास पाँच साल की उम्र में किया गया। जब श्री श्री की आयु कुल सात बरस की थी, उन्होंने अपनी पहली कविता बनाई, 'कन्द' नामक छन्द में। कविता की ओर अपने पुत्र का झुकाव देखकर पिता ने 'सुलक्षणसारं' तथा 'अथप्पकवीयम्' जो छन्दों और अलंकारों की पुस्तकें हैं, श्री श्री के हाथों में सौंप दीं। उनके अध्ययन के बाद तेलुगु के प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य 'मनुचरित्र' एवं श्रीनाथ और रामकृष्ण कवि के काव्य ये पढ़ने में दत्तचित्त हुए।

सन् १९१९ में जगन्मित्र समाज नाटकमण्डली में, जिसमें सारी भूमिकाएँ धारण करने वाले बालक ही होते थे, श्री श्री ने कई पात्रों के रूप में काम किया। वे दिन गान्धी युग के थे। उन दिनों हरएक आन्ध्र, देश-भक्ति से लैस होकर अपने को एक राजपूत वीर समझ रहा था। उसी साल वीर-भावना से अनुप्रेरित होकर श्री श्री ने एक उपन्यास लिख डाला। उसका नाम है 'वीरसिंहविजये'। सन् १९२० से हमारे आन्ध्र देश के साहित्य-क्षेत्र में एक रोमांटिक युग का श्रीगणेश होता है। साहिती-समिति के नाम से एक संस्था की स्थापना हुई है। उनकी कविता भाव-कविता नाम से हमारे देश में प्रसिद्ध है। प्रेम, संयोग, बियोग, बहार, कोयल, बुलबुल, प्रकृति-प्रेम आदि उन दिनों की कविता की वस्तुएँ बन गईं। इस संस्था के कई लब्धप्रतिष्ठ कवि श्री श्री के आराध्य देव बन गए।

सन् १९२५ में उनका विवाह हुआ। उसी साल 'परिणय-रहस्य' उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह एक जासूसी उपन्यास है। तत्काल के लिए उनकी गद्य-रचना बन्द हो गई और वह जी-जान से कविता की ओर झुके। साहिती-समिति से प्रेरणा पाकर अपनी बस्ती विशाखापट्टणम् में इन्होंने कई और कवि मित्रों के साथ सन् १९२६ में कविता-समिति की स्थापना की।

यह दशाब्द श्री श्री के बिकास का प्रथम चरण है। अब तक संस्कृत, आन्ध्र और अंग्रेज़ी साहित्य का इन्होंने गम्भीर अध्ययन कर लिया था। साहिती-समिति की भाव-कविता से भी काफ़ी प्रभावित हो चुके थे। यह विकास सन् १९३० तक परिमित था। इस चरण में उनकी कई स्फुट कविताएँ निकलीं और ये 'भारती' प्रसिद्ध मासिक में प्रकाशित हुईं। 'प्रलय नर्तन', 'अहमुखम्', 'अन्धकार', 'निशी सान्त्वना', 'सुमार्चना', 'खण्डशशि' आदि इनकी कविताएँ प्रसिद्ध हैं। पुरातन-पन्थियों के बताए हुए छन्दों का ही वह प्रयोग करते रहे और शैली भी वही जो मुद्दत से आ रही थी।

'प्रलय नर्तन' की शैली सलक्षण भाषा की है। यह उनका प्रथम गीत है। इसमें आप अभिलाषा करते हैं कि शिव का ताण्डव नृत्य होवे। शायद तब तक ही ये वर्तमान सृष्टि से निराश हो गए हों और प्रलय के बाद नई सृष्टि होने की आशा रखते हों। नाश पुनः सृष्टि का पूर्व रंग होता है न? भाषा मनमोहक है और सन्निवेश के अनुकूल परुष है।

'अहमुखम्' में ये एक सपना देखते हैं सवेरे-सवेरे प्राचीन भारत की उज्जवल महत्ता आँखों के आगे विद्यमान है। पुराने ऋषि-मुनियों के आश्रम और वेद-गान देखते हैं और सुनते हैं। इतने में सपना टूट जाता है। इसमें भारत की प्राचीन उन्नति का नक्शा हमारे सामने रखते हैं और इसलिए इनकी ओर लोग खिंच जाते हैं।

'अन्धकार' में सन्ध्या, अन्धकार, नक्षत्र—इन तीनों का सुन्दर सम्वाद चलता है।

अब तक उन्होंने साबित किया था कि लाक्षणिक शैली लिखने में सफल है। भाषा स्वभावतया संस्कृत-बहुल होती थी। पण्डितगण इनका आदर करते थे। प्रकृति सौन्दर्य, शृंगार प्रेम आदि के वर्णन में प्रवीण माने जाते थे।

'भविष्य का सुख-स्वप्न' आधुनिक यूरोपीय साहित्य की एक रूढ़ि है। जगत की जीर्ण-शीर्ण और सड़ी-गली व्यवस्था के स्थान पर नूतन सुखमयी सुवर्णमयी व्यवस्था के निकट होने के आभास का वर्णन श्री श्री की 'भावी दृष्टि' नामक कविता में मिलता है। लेकिन वह अस्पष्ट-सा ही रहता है, Utopia मात्र ही रह जाता है।

सन् १९३० के अनन्तर उनके विकास का दूसरा चरण शुरू होता है। उस समय की तेलुगु कविता की हृदय-रानी प्रेयसी मात्र ही रहती है। प्रायः सारे कवि प्रेम के समुद्र में गोते लगाते नजर आते हैं। प्रेम-गीतों के सिवा दूसरी कोई चीज सुनने के लिए युवक-मण्डल लालायित नहीं होता। ऐसे समय में श्री श्री अपनी पुरानी केंचुली उतार देते हैं और करवट बदलते हैं। कविता के क्षेत्र में एक नया पथ दिखाने के लिए कदम उठाते हैं। उस समय से लेकर आज तक की जो रचनाएँ उन्होंने कीं, उसी के कारण उनकी ख्याति हुई है।

सन् १९२९ में वह मद्रास पहुँच गए जन्तु-शास्त्र की डिग्री की तैयारी के लिए। वहाँ पर उनका श्री के० जनार्दन राव से परिचय हुआ। यह परिचय स्नेह में बदल गया। जनार्दन भी कवि थे। दोनों मद्रास के समुद्र-तट पर बैठकर अन्तमुंखी हो जाते थे। अपनी रचनाओं की समीक्षा करने लगते थे और आखिर इस फैसले पर पहुँचे कि अब तक जो कुछ रचनाएँ उनसे हुईं, वे निरे अनुकरण मात्र थे। सख्त आत्म-निरीक्षण के बाद अपने ही साहित्य के विषय में निर्णय करते हैं कि अब तक की हमारी सारी रचनाएँ जूठन

मात्र हैं। नतीजा यह होता है कि अपनी मौलिक और दिल की सच्ची आवाज़ जनता को सुनाने का बीड़ा उठाते हैं।

ई० ए० पो० स्विनबर्न ब्राउनिंग और बण्डलै आदि कवियों की कविताओं का मन्थन करने लगते हैं श्री श्री। जनपद-साहित्य का भी गम्भीर अध्यन करते हैं। बी० ए० की डिग्री प्राप्त कर विशाखापट्टणम् लौट आते हैं।

कई महीनों तक हाई स्कूल में विज्ञान-शास्त्र के टीचर रहते हैं। लेकिन यह विप्लवी वैतालिक बन्धनों में कहाँ जकड़े जा सकते थे? कविता-कौमुदी को 'मरू-भूमि' सदृश शब्दकोश से, व्याकरण की जंजीरों से, छन्दों के बंधन से "मुक्त कर देने वाले ये क्रान्तकारी कवि सेवक होकर" कैसे रह सकते थे? अतः आजाद हुए।

जरा ठहर कर उन दिनों के हाल पर नज़र डालें। राजनीतिक क्षेत्र में नमक-सत्याग्रह, गान्धी-इर्विन समझौते के बाद स्थगित किया जाता है। गान्धी जी गोलमेज़ कान्फ्रेंस से वापिस भारत में पहुँचते ही गिरफ्तार किये जाते हैं। बाद में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरुआत होती है। उसमें दुर्भाग्य से हमारी हार होती है। युवक-दल निराश से हैं। आर्थिक क्षेत्र में मन्दी का जमाना जोरों पर है। बेकारी की महामारी से, शिक्षित और अशिक्षित, दोनों त्रस्त और पीड़ित हैं। कांग्रेस में जयप्रकाश, नरेन्द्रदेव आदि कां० सो० पार्टी की स्थापना करते हैं। साम्यवाद और समाजवाद की ओर जनता आकृष्ट होती है। इन सब का प्रभाव श्री श्री पर भी पड़ता है। वे भी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद का अध्ययन करके आत्मसात कर लेते हैं।

एक दिन सन् १९३३ में (जून दो को) विशाखापट्टणम् के समुद्र के किनारे अकेले श्री श्री समाधिस्थ से पहुँच जाते हैं। सागर का गम्भीर घोष उनका एकमात्र संगी-साथी रह जाता है। वहीं पर उनके अन्तस्तल से एक विप्लवी वाणी उमड़-घुमड़ कर फूट पड़ती है। वही 'नई दुनिया' का गीत है, जिसका उल्लेख मैं आरम्भ में कर चुका हूँ। उसके तेलुगु पद कई आपको सुनाने का लोभ संवरण नहीं कर सकता। यह तराना' मार्चिंग साँग कहा जा सकता है। या यों कहें, तब से लेकर अब तक जितने भी आन्दोलन चले आन्ध्र देश में, उन सब आन्दोलनों में हिस्सा लेने वाले लोगों को इस गीत ने बैकग्राउंड संगीत का-सा काम दिया।

यह गीत मार्चिंग साँग है—युद्ध गीत है—इससे अनेक देश सेवकों को जोश मिला—इसी ढर्रे पर मैंने, इन पंक्तियों के लेखक ने भी, एक विप्लवी गीत की रचना कर डाली सन् १९३९ में अज्ञातवास में रहते हुए "स्वतन्त्र भारत पिलिचिन्दी" जो बराबर 'भारत छोड़ो' के आन्दोलन तक आन्ध्र के वीर युवक शहर-शहर में गाँव-गाँव में गाते रहे और आगे झूमते हुए बढ़ते रहे।

हैदराबाद रियासत में भी उसी गीत से प्रेरणा पाकर कविराज मूर्त्ति नामधारी एक तेलंगी भाई ने उर्दू में यह गीत लिखा था, जो तेलंगाने में जनप्रिय रहा—

बढ़े चलो
बढ़े चलो
कदम मिला
चले चलो
ज़मीं भी तेरे साथ है
जमाँ भी तेरे साथ है
ख़िज़ाँ भी तेरे साथ है
हवा भी तेरे साथ है
बढ़े चलो
बढ़े चलो
ये ज़ुल्म जो है रोक दो
हवा के रुख को टोक दो
ये संगे मील तोड़ दो
अमन के बीज पेर दो
बढ़े चलो……

जिस प्रकार हिन्दी कवि निराला जी को छन्द के बन्धन अरुचिकर हैं, उसी प्रकार इस कवि को भी। मेरा विश्वास है कि इसमें पाठकों को पढ़ने का आनन्द भी अवश्य मिला होगा। इसलिए भी इसकी उपयोगिता सिद्ध होती है।

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि तेलुगु साहित्य में मुक्त छन्द, गद्यात्मक पद्य, भिन्नतुकान्त या स्वच्छन्द छन्द के जन्मदाता यही माने जाते हैं। आजकल के दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक तेलुगु अखबार का कोई भी अंक ऐसा नही निकलता, जिसमें एक या दो मुक्त छन्द की रचनाएँ पढ़ने को न मिलें। इसका पूरा श्रेय अकेले श्री श्री ही को देना चाहिए। गत दो दशकों में सैकड़ों की संख्या में तेलुगु के नए कवि निकल पड़े और हरएक पर श्री श्री का असर स्पष्ट रूप से नजर आता है। इसीलिए हैदराबाद के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य कुकमंडि सीतारामय्या जी जब श्री श्री को भावी-नव्य-आन्ध्र-साहित्य के मार्गदर्शी की उपाधि प्रदान करते हैं, तो हमें उनसे सहमत होना पड़ता है।

इसी चरण में श्री श्री ने अन्यों से एकदम भिन्न मार्ग अपनाया। आप आन्ध्र के विप्लवी कवि के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इन सब नई कविताओं का संग्रह ही 'महाप्रस्थान' है। इस संग्रह के प्रकाशित होते ही पाँच हजार प्रतियाँ एक मास के अन्दर बिक गईं। इससे इनकी लोकप्रियता का कुछ अन्दाजा आप लगा सकते हैं। अब आप विद्वज्जनों के सम्मुख कई उदाहरण पेश करने की इजाजत माँगता हूँ।

शीर्षकों पर ज़रा ध्यान दीजिये। 'महाप्रस्थान,' 'जय-भेरी', 'ज्वाला तोरण', 'नव कविता', 'कला-रवि', 'कविते हे कविते', 'भिक्षुवर्षीयसी', 'अद्वैत', 'देश के इतिहास', 'उसरार', 'मिथ्यावादी', 'मानव', 'गर्जन करो रूस', 'जगन्नाथ के रथ-चक्र जनार्दनराव को' और

'मैं'

भूत हूँ
यज्ञोपवीत हूँ
वैप्लव्य-गीत हूँ।
स्मरण करूँ

तो निकल पड़ता है
पद्य,
मुँह खोल दूँ
तो उमड़ पड़ता है
वाद्य
अनल की वेदिका के सामने
अस्त्र नैवेद्य ।
लोक
भवभूति के श्लोक,
परमेष्ठि के झूमक—
मेरे महोद्रेक हैं ।
मेरी ऊहा है चम्पा की माला,
है रस-राज्य-झूला
मेरी ऊहा है केदार राग
गिरि, सागर, कंकेलिका गजरा
निर्झर-झरने
हैं मेरे सगे भाई ।
हूँ मैं एक दुर्ग
है मेरा एक स्वर्ग
अनर्गल,
अनितर-सांध्य
है मेरा मार्ग

'अभ्युदय' में से—
ये कहते हैं कि
देख रहा हूँ
नर जाति में परिवर्तन,
देख रहा हूँ, यार,
नव-जीवन शुभ-वेला
अरु 'अभ्युदय'

हमारे यथार्थवादी कवि श्री श्री, प्रकृति से हट कर अपने चारों ओर के, दीन-दुखी एवं पीड़ित मानव-समाज की ओर दृष्टिपात करने लगते हैं। आर्थिक विषमता के कारण जो गरीबी विकराल रूप धारण करके हमारे सामने ताण्डव नृत्य कर रही है, उसके प्रति वह उदासीन नहीं रह पाए। उन्हें भी आर्थिक और सामाजिक इन्कलाब की चाह है।

'नव कविता' के लिए आवश्यक उपकरणों का उल्लेख वह यों करते हैं—

सिन्दूर, रक्त-चन्दन,
बन्धूक, सन्ध्या-राग,
बाघ-हत-हिरण-रक्त,
रुद्रालिका-नयन-ज्वाला,
कलकत्ता-कालिका-जिह्वा

नवीन कविता की रचना के लिए सिंदूर, लाल चन्दन, बन्धूक पुष्प, साँझ की सुर्खी बाघ के मारने से प्राप्त हिरन का गरम खून वगैरह चाहिए।

हिन्दी कवि 'नवीन' जी के विप्लव-गायन से इस कविता की तुलना की जाए, तो विचार-साम्य स्पष्ट होगा।

लेकिन पाठक यह न समझें कि कवि बिलकुल क्रान्ति को प्रोत्साहित करने वाली कविता ही लिखना चाहता है। इस कविता में वे आगे फरमाते हैं—

कविता ऐसी हो जो खुद द्रवीभूत हो और दूसरों को द्रवीभूत करे। खुद बदले और दूसरों में परिवर्तन लाए, खुद गाए और दूसरों से गवाए।

वह ऐसी हो, जो हमारी सुस्ती को दूर करे और पूर्ण जीवन प्रदान करे।

इस कविता से स्पष्ट होता है कि ये कवि अपनी कविता के द्वारा एक नवीन सामाजिक, तथा आर्थिक व्यवस्था को स्थापित करना चाहते हैं, वे केवल क्रान्तिमात्र से सन्तुष्ट नहीं हैं।

अब 'कविते, हे कविते' शीर्षक कविता-खण्ड को लेते हैं। कविता-देवी की आराधना करते हुए एक दिन कवि

एक लाख सितारों के सम्वाद,
एक करोड़ जल-प्रपात के गीत,
सौ करोड़ समुद्र-तरंगों की चीखें,

सुन लेते हैं। इसी में ये कहते हैं—

मेरे रचे हुए गान में
मेरे पाप-समूह
धुल गए हैं।

आगे यह आशा करते हैं—

मेरी रचनाओं में
लोक प्रतिबिम्बित हों,
और मेरा गीत
हृदय को स्पंदित करते हुए
मेरे राष्ट्र-भाई
राष्ट्रीय-गीत के तौर पर
गाने लगे

और ठीक हुआ भी यही। 'नई दुनिया' इनका गीत आन्ध्रों का राष्ट्रीय-गीत बना।

इनकी 'भिक्षुवर्षीयसी' बूढ़ी भिखारिन की तुलना निराला की 'भिक्षुक' कविता—

वह आता
दो टूक कलेजे को करता

से की जा सकती है। वह भिखारिन को 'बुझी हुई अँगीठी' कहते हैं।

× × ×

भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर जब वह मर जाती है, तो कवि कहते हैं—

एक जूठा-सूखा पत्तल
हवा में उड़कर
गिर पड़ा उस मुर्दे पर
यह कहते हुए
कि माँ, तेरे बुरे हाल
की वजह
मैं तो नहीं हूँ।

'गरीब' कविता में कवि कहते हैं :

गरीबों की आँखें
झुकी हुई हैं
वे व्यथा के घाव हैं।
आँधी की बारिश में
गीली डरी हुई
गो-माताओं की आँखों के भाई
हैं
गरीबों की आँखें।

'शैशव-गीति' में वह नादान बच्चों को सम्बोधन करके कहते हैं

समस्त विश्व तुम्हारा ही है
तुम लोग ही विश्व के
भाग्य विधाता हो
तुम लोगों की हँसी में
आने वाले दिनों के
प्रभातों की छटाएँ
झिलमिलाती हैं।

'व्यत्यास फर्क' में वह कहते हैं हम गरीब सन्ध्याजीवी हैं

शंका-शील हैं
आमने-सामने सवाल ही
सवाल हैं
जवाब आपके,
हमें मंजूर नहीं
आन्दोलन ही हमारी ज़िन्दगी है।

चलना ही हमारी साँस है
इन्कलाब ही हमारी फिलासफी है

इनका 'मानव', पन्त के 'मानव' से मिलता-जुलता है।

'गर्जन करो रूस' का तर्जुमा अंग्रेज़ी में हुआ है। और 'Indian Literature' में उद्धृत है।

अब 'जगन्नाथ-रथ-चक्र' कविता के कुछ अंश देखिए।

पतितो,
भ्रष्टो,
बाधा-सर्प-दृष्टो
दग़ा खाए हुए भाइयो।
आपके वास्ते
लेखनी लेकर
जगन्नाथ के रथ चक्रों के
प्रलय-घोष को
धरती के रास्ते पर
लाऊँगा
और एक जलज़ला पैदा करूँगा।

× × ×

यह लोक आप का ही है
इस राज्य पर
शासन करें
आप ही।

'देश के इतिहास' इनकी एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

किसी भी देश का
इतिहास पढ़ो
कोई है
गर्व करने का कारण ?
नरजाति का समस्त
इतिहास
पर-पीड़न-परायणत्व है।
नरजाति का समस्त
इतिहास
एक दूसरे को लूट लेने का
सतत प्रयत्न ही है।
नरजाति का इतिहास
समस्त
है रण-रक्त-प्रवाह सिक्त।
चंगेज़ख़ाँ, तामर्लेन,
नादिरशाह, ग़ज़नी, गौरी,
या
सिकन्दर, कोई भी हो
एक-एक
एक महान
जल्लाद है।
दीनों के लिए
आशा की किरण दिखा रहे हैं ये—
एक व्यक्ति को
दूसारा व्यक्ति
एक राष्ट्र को
दूसरा राष्ट्र
पैरों तले कुचल
डाल देने का
सामाजिक धर्म।
अब चल नहीं सकता।
कौन लड़ाई कहाँ हुई ?
कौन राज्य कब तक रहा ?
तारीख, दस्तावेज—
यह नहीं
इतिहास के मानी।
इस रानी का प्रेम-पुराण
उस चढ़ाई के जमा-खर्च
मतलब और क़ैफ़ियत
यह नहीं
इतिहास का
निचोड़ ?

तब क्या चाहते हैं इतिहास से बताओ इतिहासकार ?

नील नदी की नागरिकता में
जन-साधारण की
जिन्दगी कैसे गुजरी ?
बताओ
ताजमहल के निर्माण के लिए
पत्थर ढोने वाले
मजदूर कौन थे ?
सल्तनतों की चढ़ाइयों में
मामूली सिपाही की
हिम्मत का बखान करो।
साहब की बैठी हुई
पालकी नहीं—
उसके ढोने वाले कहार कौन थे ?

यह कहूँ, इनकी कविता खून और आँसू को मिला कर बनाई हुई फोनिक है, अथवा कहूँ पाल राबसन के गम्भीर संगीत के समान है।

★

शुद्धः स एव कुलजश्च स एव धीरः
श्लाघ्यो विपत्स्वपि न मुंचति यः स्वभावम्।
तप्तं यथा दिनकरस्यमरीचिजालैः
देहं त्यजेदपि हिमं न तु शीतलत्वम्॥

"जिस प्रकार बरफ़, सूर्य की किरणों से तप-तप कर, अपनी देह को तो गला देता है, पर अपने स्वभाव की शीतलता को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार जो व्यक्ति अपना साधु-स्वभाव विपत्तियाँ पड़ने पर भी नहीं बदलता, वह वास्तव में सराहना के योग्य है, उसी को संस्कारी कुलीन और धैर्यवान भी समझना चाहिए।"

●

अन्धकार

आनन्द बागची

एक रस्सी से बीड़ी और सिगरेट सुलगाते समय हम दोनों की चार आँखें हो गईं। बुझा कर रक्खी हुई बीड़ी को दोबारा सुलगाते हुए समीरण मुझे देख कर चौंक पड़ा, बोला—अरे बागची तुम !

समीरण मेरे सामने सशरीर खड़ा है, इस बात को स्वीकार करने में मैं भी अकचका गया। सिगरेट के धुएँ से गले में खसखसी पैदा हो गई। खाँसते हुए मैंने उसे और एक बार घूर कर देखा। इस समय समीरण की उम्र कितनी थी, यह कहना सम्भव नहीं था। उसके बाल काफ़ी बढ़ रहे थे, और उनमें कहीं-कहीं रुपहली खरोंचें थीं। दाढ़ी भी बढ़ी हुई थी, इससे मैंने पहले सोचा कि शायद वह मुर्दनी में हो। पर जब मैंने उसे सिर से पैर तक ध्यान से देखा, तो सब समझ में आ गया। उसके पैर में जो जूते पड़े हुए थे, वे अजायबघर के लायक हो चुके थे।

इसी बीच में समीरण ने बीड़ी छिपा दी थी। हाथ की सफ़ाई की बलिहारी है। चलो जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ, नहीं तो फ़जूल में लज्जित होना पड़ता। समीरण कभी बीड़ी भी पी सकता है, यह हमारे लिए अकल्पनीय था। उसे तो हम लोग बराबर सबसे कीमती सिगरेट सुलगाते और दूसरों को पेश करते देखते थे। नसें निकले हुए अपने लम्बे हाथ को मेरी तरफ़ बढ़ाते हुए समीरण ने कहा—चलो मेरे ठीहे पर चलो।

यह तो मालूम था कि अपने पिता के साथ उसकी कुछ अनबन चल रही थी, पर वह भी एक युग पहले की बात थी। इस बीच में ऐसा क्या हो गया कि समीरण की यह दशा हो गई। खानदानी रईस घराने के लड़के के मुँह से 'ठीहा' सुन कर बात कुछ-कुछ साफ़ होती मालूम पड़ी। मेरे स्तम्भित चेहरे को करीब-करीब फटकार बताते हुए समीरण हँसा और बोला—हा, हा, हा क्या बात सुनकर घबड़ा गए ?

मैंने सिर हिलाते हुए कहा—करीब-करीब।

मजबूरी से समीरण के निकट आत्मसमर्पण करना पड़ा। चुपचाप दो मिनट तक पैदल चलने के बाद उसने एक मकान के सामने आकर हँसते हुए मेरी तरफ़ देखा। इसके बाद उसने मुझे उसी प्रकार मुस्कराते हुए यह हिदायत दी कि मैं सावधानी से चलूँ। कह कर उसने मकान के अन्दर लम्बी डगें भर कर चलना शुरू कर दिया। इस बीच में मैंने मकान में लगे हुए साइन बोर्ड को एक ही दृष्टि में पढ़ लिया था। तो अन्त में वह इस समय एक धर्मशाला में पड़ा हुआ था। सीढ़ी से ऊपर की मंजिल में जाते हुए मैंने उससे पूछा—यहाँ कितने दिन से टिके हुए हो ?

—कोई छः महीने हो गए। ज़रा बचकर चलना, फ़र्श पर काई बहुत जम गई है।

बात यह है कि एकाएक आगे पीछे हो जाने के कारण मेरी दृ उसके कुर्ते के पीछे की ओर लगे हुए पैबन्द पर जमने से मैं कु अन्यमनस्क हो गया था। समीरण का मुँह आगे की ओर थ इसलिए उसे पता नहीं लगा कि मैं उसको इस प्रकार बारीकी से जाँ करने में व्यस्त था।

स्कूल से लेकर कालेज के एक स्टेशन तक समीरण और बराबर साथ-साथ आये थे, रेल के बगल वाले डिब्बे जिस प्र साथ-साथ रहते हैं। जो कमरा दूसरे दर्जे का है, वह वहीं रहता और जो तीसरे दर्जे का है, वह भी वहीं रहता है, पर दोनों साथ-सा कंधे से कंधा भिड़ाकर चलते रहते हैं। समीरण में और मुझ में कं फासला भले ही न रहा हो, पर दोनों में कहीं कोई अटक अवश्य थी इस कारण समीरण कभी तो मुझे तुम कहता था और कभी तू, मैंने बराबर उसके लिए आज तक एक ही सम्बोधन रखा था।

इन्टर तक आ कर एकाएक हम लोगों की लाइन बदल गई। अलग चला गया और मैं अलग। समीरण ने कालेज से डुब लगाई और मैंने भी उसका पता लगाने की कोई जरूरत नहीं समझी

एक बार यह उड़ती हुई खबर मिली कि समीरण ने अपने पि की राय के विरुद्ध एक शादी कर ली है। मेरे एक मित्र ने बताया आजकल का प्रगतिशील विवाह है, पहले से दोनों में साँठ-गाँठ थी बड़े दिनों तक न मालूम कितने लोगों के मुँह से समीरण की कहानी नए-नए रंग और रस से प्लावित होकर पहुँचती रही। के किनारे, गंगा पार या काफी हाउस के कितने ही खण्डचित्र बी बीच में कानों में पड़ते थे। लोगों का कहना था कि लड़की बिल् परी है। कुछ लोग इसे इस प्रकार से बताते थे मानो बन्दर के गले मोतियों का हार पड़ा है। पर यहीं तक सुनते थे। मेरा कौतूहल इससे एक कदम आगे नहीं गया।

हम सभी यह समझते थे कि समीरण की कहानी दुखान्त है क्योंकि सन्दीपन बापू की बदमिजाजी के सम्बन्ध में बहुत-सी कहानि सुन रखी थीं।

चौखट पर खड़े होकर उसने खखारते हुए कहा—देखो जी, लाया हूँ, देखो।

पर 'जी' की कोई आहट नहीं मिली। कोई दस सेकिण्ड तक बुद्धि रह कर उसने ज़रा मुँह फुला लिया और एकाएक जल्दी से हुए तालव्य 'श' को अर्द्ध अस्फुट रख कर मुझ से बोला—भीतर आ

पीछे-पीछे मैंने चौखट पार की। छोटा-सा कमरा था। उ दरवाजे पर एक टाट का पर्दा लटक रहा था। शायद उधर कोई नहीं बरामदा था। सारी दीवारें रंगबिरंगे कागजों से ढकी हुई

जब ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि ये तस्वीरें हैं। एकाएक याद पड़ गया कि कभी समीरण को चित्रकला की लत थी। ओहो मैं तो इस महत्त्वपूर्ण बात को एकदम भूल ही गया था।

समीरण को मेरे मन की बात शायद मालूम हो गई। इसलिए वह कोमल आँखों से हँसा और बोला—यह लत मुझ से नहीं छूटी, किसी भी प्रकार नहीं छूटी।

समीरण के लहजे में दर्द था, जो कदाचित् इन सालों की साधना थी। उसने अन्तिम शब्दों को आदर्शवादी की तरह गम्भीर लहजे में कहा था, मैंने सिर हिलाया। समीरण की बनाई हुई तस्वीरों को मैं घूम-घूम कर कमरे के अन्दर देख रहा था। पहले तो कुछ समझ में ही नहीं आता था कि ये हैं क्या। ऐसा मालूम होता था कि कूँची से बनाई हुई कुछ पहेलियाँ हैं। पर जब उसने व्याख्या करके एक-एक चित्र को समझाया, तो मुझे बड़ा आश्चर्य होने लगा। प्रत्येक चित्र के पीछे एक दुरूह चिन्तन था, जो शायद सम्पूर्ण रूप से चित्र में व्यक्त नहीं हो पाया, अथवा जिसे जानबूझ कर प्रच्छन्न रक्खा गय था। कूँची के उद्भट रंग तथा असम लकीरों के पीछे एक विचित्र समीकरण था, जिसे ढूँढ कर आविष्कार करना पड़ता था। मैं इस चित्र गणित को (और इसके लिए नाम ही क्या हो सकता है) जितना ही देखता जाता था, उतना ही दाँतों तले उँगली दबा कर रह जाता था। हम लोगों का यह सुपरिचित समीरण, यह खामख्याल और अन्य-मनस्क समीरण रंग और कूँची के सम्पर्क में आते ही बिलकुल दूसरा ही व्यक्ति हो जाता है, और चित्र की एक मामूली-सी रेखा खींचने के पहले इतना चिन्तन या दुश्चिन्तन करता है, कम-से-कम किसी बात को कठिनाई के साथ सोचने की चेष्टा करता है, यह भी एक आश्चर्य की बात थी।

समीरण अपने स्वप्न में तन्मय होकर अपने चित्रों की व्याख्या कर रहा था और उसका छरहरा बदन उस जोश में थर-थर काँप रहा था। उसकी आत्मविभोर आँखों की ओर देखने पर ऐसा मालूम होता था, जैसे वह धर्मशाला की इस कोठरी, भद्दी, गई बीती कोठरी का अधिवासी न होकर किसी और ही संसार का अधिवासी हो, उसकी आँखों में दूसरे ही किसी राज्य की छाया हो।

कोठरी के किनारे से जैसे एक चिरपरिचित गीली आवाज़ आई, जिससे सुनते ही मैंने चौंक कर उधर देखा। उन्नीस बीस साल की एक सद्यस्नाता मूर्त्ति कोठरी के अन्दर पैर रखते ही ठिठक कर खड़ी रह गई थी। जंगले को घूम कर आई हुई दिनान्त की मखनिया पतली धूप में जिसे मैंने इस समय देखा, उसे असह्य सुन्दरी नहीं कहा जा सकता, पर यह मुहूर्त सचमुच ही असह्य था। एक क्षण की दुर्लभ लज्जा और स्वच्छ काँच की तरह गीली साड़ी उसके शुभ्र शरीर पर अच्छी तरह लिपटी हुई थी।

सिहरी हुई आँखों को उधर से फेर कर जब मैंने फिर उधर दृष्टि डाली, तब दरवाजे पर लगा हुआ टाट का पर्दा ज़रा-ज़रा लरज़ रहा था। फर्श पर कमल की तरह कई जोड़े भीगे पैरों का आल्पना दिखाई पड़ रहा था और समीरण मेरी बगल में खड़े रह कर ग्रामोफोन के रेकार्ड की तरह बराबर बोलता जा रहा था। और-और फिर ऐसा मालूम हुआ (क्यों यह मैं नहीं बता सकता) कि कोठरी सूनी पड़ गई है, और उसका प्राण पखेरू उड़ चुका है।

मन कुछ उदास हो गया था। रंग उड़े हुए ट्रे पर रक्खी हुई रंग वाली दवातों की रिक्तता तथा ईज़ेल का बेबापन देख कर मैं समझ गया कि कलाकार समीरण पर इन दिनों बहुत ही बुरा वक्त पड़ा है। फटे हाल कूँचियों को देखकर यह स्पष्ट धारणा बन जाती थी कि काफी दिनों से कला की आराधना बन्द पड़ी है।

पता नहीं वह अपने आप और कितना बोलता, पर इतने में टाट के उस पार से महीन आवाज़ आई—अजी सुन रहे हो ?

फिर भी समीरण नहीं सुन पाया, तब मैंने उसे पुकार कर कहा—देखो उधर से कुछ कह रही हैं।

समीरण चौंक कर बोला—क्या सुजाता लौट आई ?

मैंने हिलते हुए टाट की ओर इशारा कर के कहा देखो।

समीरण जल्दी से टाट के उस पार चला गया और सुजाता को लगभग घसीटते-घसीटते इधर ले आया। सुजाता, उसकी स्त्री अपने कपड़े-सपड़े सम्हालती हुई आरक्त चेहरे से बोली—छोड़ दो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

समीरण ने सुजाता को मेरे सामने लाकर ही दम लिया, बोला—बागची, यह रही मेरी घरवाली—कह कर उसने डी० एल० राय के एक गाने का अनुकरण करते हुए तरन्नुम के साथ कहा—सारे संसार में खोजने पर भी नहीं मिलेगी ऐसी बीवी। कह कर वह बड़े जोर से हँस पड़ा।

सुजाता ने लजा कर समीरण को कटाक्ष करते हुए कहा—जाओ तुम बड़े वैसे हो।

इसके बाद ही बड़े ढंग से मुझे हाथ जोड़ कर नमस्कार करती हुई बोली—अभी मैंने आपका परिचय सुना, आप से परिचित होकर बड़ी खुशी हुई।

मैंने कहा—यह तो आपकी ज्यादती है।

कभी नहीं—कह कर वह गायब हो गई !

अगले मुहूर्त चाय ला कर पेश करते ही मैं समझ गया कि पहले ही से सुजाता ने तैयारी कर ली थी। स्नान के बाद एकाएक सामने पड़ जाने के कारण चेहरे पर जो विह्वल लज्जा आ गई थी, अब ढूँढने पर भी उसका कहीं पता नहीं था।

सुजाता ने किनारे से टूटे हुए प्याले में बिना डिश के ही चाय पेश करते हुए कहा—गरीबखाने में पधारे ही हैं, तो जैसी आवभगत होनी चाहिए वैसी न होने पर नाराज़ न होइयेगा। त्रुटि अनिच्छित है।

मैंने बनावटी गाम्भीर्य के साथ कहा—नाराज न हूँगा, भूल भी माफ कर दी गई, पर आप जो चूक गईं, उसका क्या किया जाए ?

सुजाता ने प्रश्न भरी शंकित दृष्टि से मुझे देखा। कहीं पर जैसे उसे एक काँटा खटक रहा था। इसी कारण मैंने जल्दी से कहा—भाभी जी समीरण की चाय किधर है ? गृहस्वामी को सब से पहले देना चाहिए, यह आप भूल गईं ?

कह कर मैं हँसा। वे एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। इसके बाद समीरण ने एकाएक कह डाला—पर मुझे गिलास में चाय देना। मुझे कप-वप बुरा लगता है—मैं समझ गया कि समीरण ने घरवाली की इज़्ज़त बचाई है। मैंने सुजाता की अनुपस्थिति में चुपचाप समीरण से पूछा—तुम अपनी तस्वीरें बेचते क्यों नहीं? फिर तो यह मुसीबत न रहे।

समीरण ने गहरी साँस ली, बोला—कोई खरीददार नहीं है। आधुनिक कला का नाम सुनते ही लोग नाक-भौं चढ़ाते हैं। कुछ लोग तो मेरी कला को रेखागणित का अभ्यास भी कह देते हैं। कोई नहीं समझता—समीरण ने खेद के साथ कहा।

दोष तुम्हारा भी है। तुम इतने दुरूह चित्र क्यों बनाते हो, जो किसी की समझ में न आवें? इससे न तुम्हारा भला होता है, और न कला का। यों तो तुम अच्छे चित्रकार हो, रेखाओं में बड़ी जान है।

—समीरण एकाएक फुफकारते हुए बोला—कलाकृति का सृजन धन के लिए नहीं है।

—पर कला के लिए धन चाहिए यह तो मानते हो न?

मैंने कप को सम्हाल कर उतारते हुए यह बात कही। मैं नहीं सोच पाया था कि ऐसा भी हो सकता है। अगले ही क्षण देखता क्या हूँ समीरण ने मेरे हाथों को अपने हाथों में जकड़ रक्खा है, और वह कह रहा है—"बागची, पाँच रुपये दोगे? रंग खरीदूँगा।"

यह बिल्कुल ही दूसरे संसार की बात थी। इन बातों में मैंने एक मंत्रशासित सर्प की अवनति पाई। मैंने हाथ छुड़ा लिए। वह फिर बोला—कितनी रातें बिना तस्वीर बनाये निकल गईं—कह कर उसने फिर हाथ फैला दिए।

मेरी जेब में एक दस रुपये का नोट पड़ा हुआ था, जो महीने के अन्तिम दिनों का सम्बल था। अभी थोड़ी देर पहले ही कह सुनकर मैं इसे पेशगी लाया था। मैंने कुछ क्षण तक सोचा, और कुछ क्षण तक उधेड़बुन में पड़ा रहा। पर आश्चर्य की बात है कि समीरण उसी प्रकार मेरे सामने हाथ फैलाये खड़ा रहा। एक बार यह विचार आया कि साफ़ इन्कार कर दूँ फिर विचार आया कि बहाना बना दूँ कि मेरे पास रुपये नहीं हैं, पर ऐसा मैं अन्त तक कर न सका और मैंने जेब से नोट निकाल ही लिया।

नोट समीरण के लुब्ध हाथों तक पहुँच नहीं पाया था कि पीछे से हँसी की आवाज़ सुनकर मैं ठिठक कर खड़ा हो गया। सुजाता मुँह में कपड़ा लगा कर मुश्किल से हँसी रोकती हुई सामने आ गई, मानो यह कोई बहुत बड़ी हँसी की बात हो। बोली—उसे फिर जेब में ही वापस कर लीजिए। दान के लिए और भी बहुत से स्थान आपको मिल जायेंगे।

कौन कह सकता था कि ये बातें, आलता से मानो धोए हुए ओंठों से उच्चारित हो सकती हैं। मेरे दोनों कान ऐसे दर्द करने लगे जैसे उन पर जोर के थप्पड़ पड़े हों।

समीरण ने कुछ डूबती हुई आवाज़ में कहा—मैं दान थोड़े ही लेता हूँ, मैं उधार ले रहा था—

—कर्ज़ अदा कैसे करते?—कह कर वह चुपचाप हँसी।

समीरण ने बचकाने लहजे में कहा—अदा कब करूँगा?

सुजाता के चेहरे पर की ललाई लो हुई हँसी जहाँ की तहाँ ठिठक कर रुक गई। रुखाई से बोली—हाथ पसार कर भीख माँगते में तुम्हें शर्म नहीं आती?

मैंने बहुत पहले ही अपने मानो चोट खाये हुए हाथ को जेब में छिपा लिया था। मैंने कहा—समीरण आज मैं चला। भाभी आज इतने ही से माफ़ी माँगता हूँ।

इसके बाद कई दिनों तक जान बूझ कर मैं पुरनारी धर्मशाला की ओर नहीं गया, पर मन में बराबर एक बेचैनी कचोटती रही। उस ज्वाला के बीच में माला की गुरिया की तरह सुजाता का मुख-मण्डल सामने आता रहता था। मुझे अपनी यह कमज़ोरी अच्छी नहीं मालूम हुई और मैंने बहुत कोशिश की कि इससे छुटकारा पा लूँ पर किसी भी प्रकार सफल न हो सका।

समीरण की बात भी याद आती थी। बेचारा खानदानी रईस घराने का था, पर हाथ, पैर समेट कर बैठते-बैठते बेकार बन गया है। जो कुछ करना है, वह सुजाता ही करती है, फिर भी सुन रक्खा था कि वह कोई अधिक पढ़ी-लिखी भी नहीं है, पर बड़ी अक्लमंद है। बड़ी ही सजग और अभिमानी है। पर यह अभिमान कितने दिन काम दे सकता है?

इसी बीच में एक लड़का और एक लड़की पैदा हो चुकी थीं। समीरण ने बताया था कि वे दोनों कार्पोरेशन के स्कूल में पढ़ते हैं, पर वे हमेशा तो वहाँ नहीं पढ़ सकते। उनके पढ़ने का खर्च देना पड़ेगा और दरबानों को घूस दे कर धर्मशाला में कितने दिन रहा जा सकता है? फिर भी सुजाता किसी के सामने हाथ पसारना नहीं चाहती, सिर झुकाना नहीं चाहती। ऐसा कितने दिन चल सकता है? मैं साफ़ देख रहा था कि एक अच्छा खासा परिवार धीरे-धीरे पातालपुरी की ओर धँसता चला जा रहा था। बस थोड़े से दिन और, थोड़े से लमहे और फिर उनका कहीं और पता नहीं लगेगा।

उस दिन दोपहर को एक-एक हाथ में कुछ रुपये आ गए। मैंने सोचा रुपये तो दे नहीं सकता, सुजाता को इससे आघात लगेगा, इससे अच्छा है कि लड़कों के लिए कुछ लेते चलें। कुछ फल और एक दो बिस्कुट खरीद कर जब मैं दूसरी मंजिल की सीढ़ी के बीचोंबीच पहुँचा गया, तो मुझे समीरण की तेज़ आवाज़ सुनाई पड़ी। वह बुरी तरह बिगड़ रहा था। मैं ठिठक कर खड़ा हो गया। समीरण सुजाता के साथ लड़ रहा था। वह एक बनैले पशु की तरह ललकार कर बातें कर रहा था। उसकी बातें साफ सुनाई पढ़ती थीं। इसके उत्तर में सुजाता शान्त होकर कुछ समझाना चाह रही थी, पर वह क्या कह रही थी, यह नहीं सुन पड़ रहा था।

लौटूँ या आगे बढ़ूँ, इस उधेड़बुन में पड़कर भी अन्त तक लौटा नहीं हुआ। बाकी सीढ़ियाँ पार कर मैंने बहुत ज़ोर से चिल्लाकर कहा—समीरण, समीरण भाई, घर पर हो क्या?

एक मुहूर्त के लिए दोनों को जैसे काठ मार गया। कोई

बोला ही नहीं। फिर समीरण उद्भ्रान्त ढंग से दरवाजे के पास आकर मुझे देख कर ज़ोर से हँसने की चेष्टा करते हुए बोला—अरे बागची तुम हो? आओ, आओ भीतर आओ।

पर जवाब में मैं हँस नहीं सका। शायद उसकी भी हँसी मँझधार में ही रह गई थी। कोठरी में प्रवेश करते हुए मैंने कहा—इस भरी दोपहरी में मियाँ बीवी की लड़ाई के लिए क्या खूब मौका चुना है? भाभी जी लीजिए, इन चीज़ों को रखिए।

सुजाता ने हँस कर मेरे हाथ की ओर देखा। बोली—यह सब क्या है? मामला क्या है?

बच्चों के लिए कुछ ऐसे ही ले आया।

मैं जानता था कि अब की बार सुजाता इन्कार न कर सकेगी। पर समीरण पर अभी झगड़े का नशा सवार था। वह उसी के आवेश में बकने लगा। मैंने समीरण को बड़े जोर से समझाया, पर वह बोला—हाँ, हाँ, चुप करता हूँ। इतने दिनों तक तो चुप ही था। क्या किसी दिन मैंने यह पूछा था कि रोज़ रात को देर से क्यों लौटती हो? कहाँ से गृहस्थी का खर्च चलाती हो?

मैंने समीरण को रोकते हुए कहा—फिर तुमने वही पागलपन शुरू किया? तो फिर मैं चला।

मुझे सचमुच उठ खड़े होते देख कर समीरण कुछ सम्हल गया, बोला—नहीं, नहीं उठो मत। कुछ दिनों से मेरा दिमाग ठीक नहीं रहता। अब मैं सहने की सीमा पार कर चुका, इसीलिए कुछ बातें निकल गईं।

कहते-कहते वह दरवाजे की तरफ बढ़ चला। मैंने कहा—कहाँ चले? बात तो सुनो।

—जरा घूम आऊँ। दिमाग ठंडा हो जाएगा, तुम बैठो।

समीरण के बाहर जाते ही सुजाता ने मेरी ओर देख कर कहा—आजकल इनका यही रंग है, जरा नाराज हुए कि बस घर छोड़ कर चल देते हैं, पर मैं तो ऐसा नहीं कर सकती। यदि लड़का और लड़की न होते, तो मैं भी किसी दिन निकल पड़ सकती थी।

प्रेममूलक बहुत सी शादियों में इसी प्रकार होते देखा गया है। इसके पहले भी कई बार ऐसा देखने में आया। सन्देह करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है और उसके फलस्वरूप ताश का बना मकान धूलिधूसरित हो जाता है। मैंने समझा कि न तो समीरण का ही सुजाता पर विश्वास है और न सुजाता का ही समीरण पर विश्वास है। कठोर वास्तविकता के कारण खेल के घर का मोह टूटता जा रहा है। पर अब बहुत देर हो चुकी है।

थोड़ी देर चुप रह कर मैंने कहा—जब आपने घोंसला बनाया है, तो उसे अब बचाना भी पड़ेगा।

सुजाता ने मेरी आँखों के अन्दर जैसे कोई बात खोजी और फिर भर्राई हुई आवाज़ में बोली—पर अब तो मुझसे सहा नहीं जाता। मन के अन्दर बार-बार मैं टूट कर बिखर पड़ती हूँ।

—क्या अब समीरण के प्रति आपके मन में सचमुच प्रेम अवशिष्ट नहीं है?

—यह बात क्यों?—सुजाता ने यह कहकर चौंक कर मेरी ओर देखा। उसकी आँखों में जैसे किसी ज्वाला का दर्शन हुआ, जिसे देख कर मैं चौंक पड़ा। पर केवल आग ही नहीं पानी भी था। उसकी दोनों आँखें एकाएक धुँधली हो गईं। आँचल में मुँह ढाँप कर सुजाता जरा घूम कर बैठ गई। रुके हुए क्रन्दन की धमक के मारे उसका सारा शरीर लहर की तरह काँपने लगा।

मैं समझ गया कि अब भी सुजाता के मन में समीरण के प्रति गहरा प्रेम है। उसने खर-पात से घोंसला बनाया, पर आँधी के आक्रमण से उसे बचाने के लिए भी उसने कोई कसर नहीं रक्खी है। पर समीरण उसे सन्देह की दृष्टि से देखता है। इस मार्मिक आघात से वह अब तिलमिला गई है। उसके पैर लड़खड़ा चुके हैं और किसी भी समय......

मैं करता भी क्या? लम्बी साँस भर कर चुपचाप उठ पड़ा। सुजाता उस समय भी आँचल में मुँह ढाँप कर रो रही थी। शायद उसे मेरे चले आने का पता नहीं लगा या पता लगा हो तो चुप रही, कुछ बताया नहीं। वह रोवे। उसे इस समय रोने की ही ज़रूरत है।

मैंने रास्ते में निकल कर देखा कि शाम हुई थी। उद्देश्यहीन ढंग से जल्दी-जल्दी चलता गया। दिमाग में असंख्य चिन्ताएँ एक दूसरे के ऊपर चलने वाले कीड़ों की तरह आ-जा रही थीं। दिमाग़ में एक तपा हुआ लोहे का छड़ जैसे अटका हुआ था। अपने विचारों में मैं खोया हुआ था। फटेहाल निम्न मध्यवित्त परिवार की बात सोच कर मनुष्य पागल क्यों नहीं हो जाता, यही सोच रहा था। मध्यवित्त की गृहस्थी समस्याओं का कोई अन्त नहीं है और समस्याएँ भी कैसी, जिनका कोई समाधान नहीं।

पता नहीं कब अन्यमनस्क होकर मैं जाकर हेदुआ के एक बेंच पर बैठ गया था। सीढ़ी लेकर जब बत्ती जलाने वाला आया, तब मैं चौंक पड़ा। कुछ हवाखोर हवा खाकर लौट गए, कुछ आपस में बातें बनाने लगे। यदि समीरण को जिलाना हो तो गृहस्थी नहीं बचती। और यदि गृहस्थी बचती है, तो फिर दूसरी बातें पैदा होती हैं। रहा मैं। सो मैं क्या कर सकता हूँ? कितनी मेरी क्षमता है और मेरी जिम्मेदारी ही कितनी है? इसी कलकत्ता शहर में न मालूम कितने समीरण भूखों मर रहे हैं। मैं उनका क्या कर सकता हूँ? मेरी ताकत कितनी है?

कुलफी बेचने वाला अपना विज्ञापन कर गया। शायद बेला के फूल बेचने वाला भी गुहार लगा गया। मैं मन ही मन हँसा। इनमें से किसका अधिक प्रयोजन है? देह का या मन का। शायद मैं कुछ जोर से हँस पड़ा था। पास ही बैठे हुए बूढ़े सज्जन एकाएक घबड़ा कर उठ गए। शायद उन्होंने मुझे पागल समझा।

—सहायता कीजिए—किसी ने कहा। लहजे में कुछ दावा भी मालूम हुआ। देखता क्या हूँ कि एक छः सात वर्ष का लड़का है, सुन्दर कहा जा सकता है। हाथ बढ़ा कर बोला—सहायता कीजिए, मेरे पिता जी अपाहिज हैं।

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

देवताओं का आँचल, कुल्लू

सोमेश चौधरी

दूर दूर तक फैले हुए खेतों का विस्तार, और उस विस्तार के एक छोर पर हल पर झुका हुआ किसान धरती का कलेजा चीर कर अपनी जीविका खोज रहा है। खेतों में यहाँ-वहाँ पहाड़ी युवतियाँ ढोर चरा रही हैं। कुछेक पीठ पर पुआल के गट्ठे उठाए हँसती-अठखेलियाँ करती गाँव को लौट रही हैं। पीछे क्षितिज को ओट दिये हरी-भरी चोटियाँ हैं, और बाँई ओर खेतों के पार्श्व में बहती जल रेखा, उस जल रेखा के तीर एक बड़ी चट्टान पर बैठा एक चरवाहा मस्ती में पोरी बजा रहा है। बाँस की उस पोरी से स्वर छूटता है और समूची घाटी में गूँजकर वायुमण्डल में विलीन हो जाता है—

× × ×

नीले आकाश में काले सफ़ेद बादलों की टुकड़ियाँ मँडरा रही हैं, या कुछ चीलें हैं जो स्वच्छन्द उड़ानें लेकर शून्य को सप्राण बनाने का प्रयास कर रही हैं। ऊपर पहाड़ को ढलान पर गद्दी भेड़ें चरा रहे हैं। भेड़ों के झुण्ड चरते हुए नीचे की ओर सरकते आ रहे हैं, जैसे सफ़ेद बादलों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ उर्वी के उरोजों पर रेंग रही हों।

× × ×

पलकें बन्द किए क्षितिज की पृष्ठभूमि लिये ख़ामोश स्याह वीरान चोटियाँ दिन के मरण का तमाशा देख रही हैं। ज्यों-ज्यों क्षितिज की लालिमा क्षीण होती जा रही है, उन चोटियों का अस्तित्व रात की कालिमा में घुलता जा रहा है और ऊपर आकाश पर तारों की दीप्ति बढ़ती जा रही है।···दूर पहाड़ की एक अँधेरी खोह में कोई दीया टिमटमा कर अपनी कहानी कह रहा है।

× × ×

ऐसे ही अनेक दृश्य आँखों के सामने घूमते जाते हैं। यात्री काँगड़ा और हिमाचल की घाटियों को पार कर, चूम लेता है धरती के उस छोर को जिसे हम "देवताओं का आँचल" कहते हैं। कुल्लू घाटी हिमाचल की सीमा है। वहाँ से कुछ मील तक घाटी बहुत तंग है। वस्तुत समूची कुल्लू घाटी व्यास नदी के दो कूलों के साथ-साथ चली जाती है। सड़क बिलकुल व्यास के किनारे पर है। घाटी के गर्भ में स्वाभावि रूप से विस्तार कम होता है। किन्तु यात्री ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है घाटी का विस्तार अधिक होता जाता है। किसी घाटी के सौन्दर्य का आनन्द उसके गर्भ में खड़े होकर नहीं लिया जा सकता। सौन्दर्य की खोज में ऊँचाई पर चढ़ते जाना होगा। यात्री पर्वत शिखर की ओर लपकता जाता है, घाटी स्वाभाविक रूप से खुलती जाती है, और नीचे-ऊपर, सामने, दाएँ-बाएँ दृश्य को सुघड़ता मिलती जाती है। चोटी पर खड़े होकर घाटी के सौन्दर्य-दर्शन और पर्वतमालाओं के ऊपर से क्षितिज की धूमिल रेखा तक फैले विस्तार को देखकर यात्री के अन्तर में एक विशेष प्रकार के आनन्द की रिमझिम होने लगती है।

मनाली का एक दृश्य

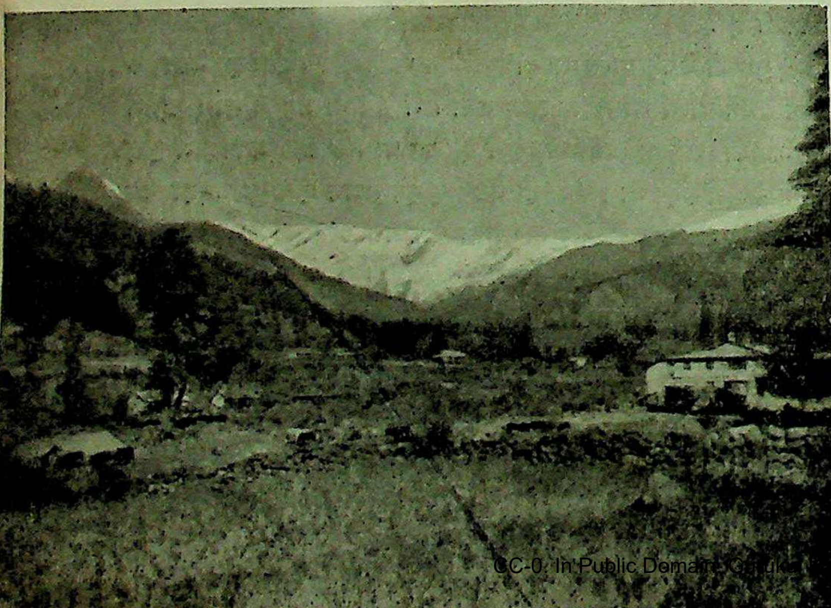

कुल्लू घाटी का जन-जीवन छोटे-छोटे गाँवों पर आधारित है। कुछेक गिनी-चुनी बड़ी बस्तियाँ भी हैं। किन्तु उन बस्तियों का जीवन भी ग्राम्य जीवन की छाया में पलता है। वह छाया प्रकृति की छाया है, जिसे इन्सान और विज्ञान के कृत्रिम साधनों ने अभी अपनी लपेट में नहीं लिया। कहना न होगा कि प्रकृति के मुक्तहास का सतत गुंजन यात्री को मोह लेता है। व्यास नदी, जलप्रपातों और कलकल बहते झरनों की रागिनी, देवदारों की सरसराहट, साँझ ढले झींगुरों का सामूहिक गान, चाँदनी रातों में पहाड़ों पर चाँदनी को बिछलन— ऐसे में यात्री की चेतना पर आनन्द की अनुभूति छा जाती है। कुल्लू के लगभग प्रत्येक गाँव का अपना देवता है। तभी तो कुल्लू घाटी को देवताओं का आँचल या देवताओं की धरती कहते हैं। देवता स्वर्ग में वास करते हैं, ठीक ही सुना। इससे अच्छा स्वर्ग उन्हें और कहाँ मिलता?······

मनाली रोड पर कुल्लू से बारह मील दूर 'कटराई' नामक एक बस्ती है। वहाँ से नगर तक फैलाव समस्त कुल्लू घाटी में सबसे विस्तृ है। नगर व्यास के उस पार पहाड़ की ऊँचाई पर स्थित है। कटरा से नगर को जाने वाली कच्ची सड़क पुल पर से नदी पार कर चीड़ के जंगल के बीचोंबीच चली जाती है। वहाँ पुल के आस-पास शिकार मौसम में यात्री व्यास के किनारे-किनारे ख़ेमे डालकर 'ट्राउट' मछ का शिकार खेलते हैं। पुल के पास ही 'ट्राउट' फ़ार्म भी हैं जहाँ सर को ओर से मछली सम्बन्धी अनुसन्धान और मछलियों के पाल पोषण की व्यवस्था की जाती है। उस भाग में नदी का दृश्य अधि सुहाना हो गया है। बहाव से पहाड़ कट गिरने के कारण नदी पाट बहुत चौड़ा हो गया है। धारा तो विशेष फैली हुई नह परन्तु फैलाव के चिन्ह सफ़ेद पत्थरों के रूप में दूर-दूर तक फैले हैं।······नगर को जाने वाली सड़क, चढ़ाई में कहीं-कहीं पगडण्डी

देवताओं की घाटी

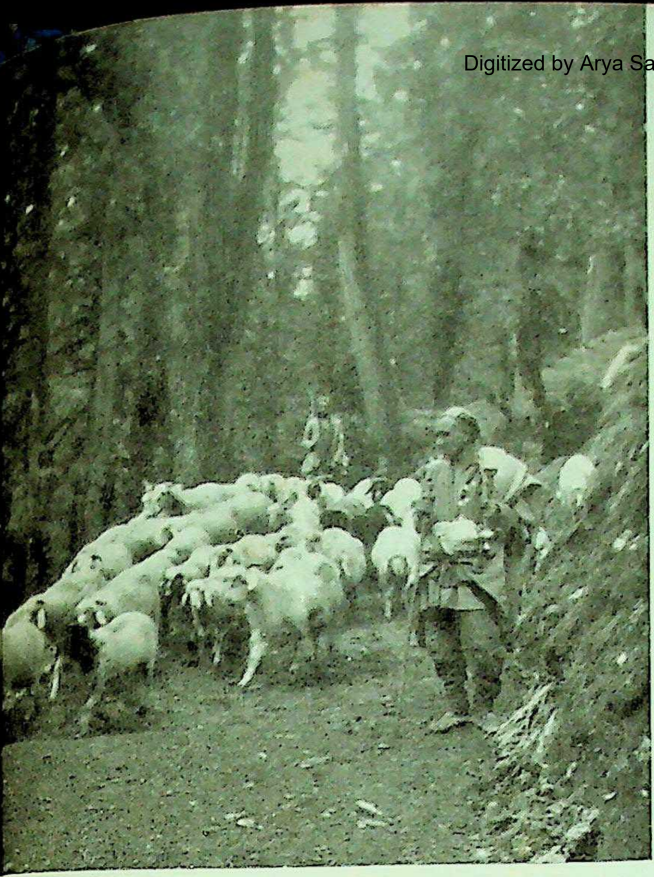

कुल्लू का गद्दी चरवाहा

मनाली के चरवाहे

कुल्लू घाटी का एक मनोरम दृश्य

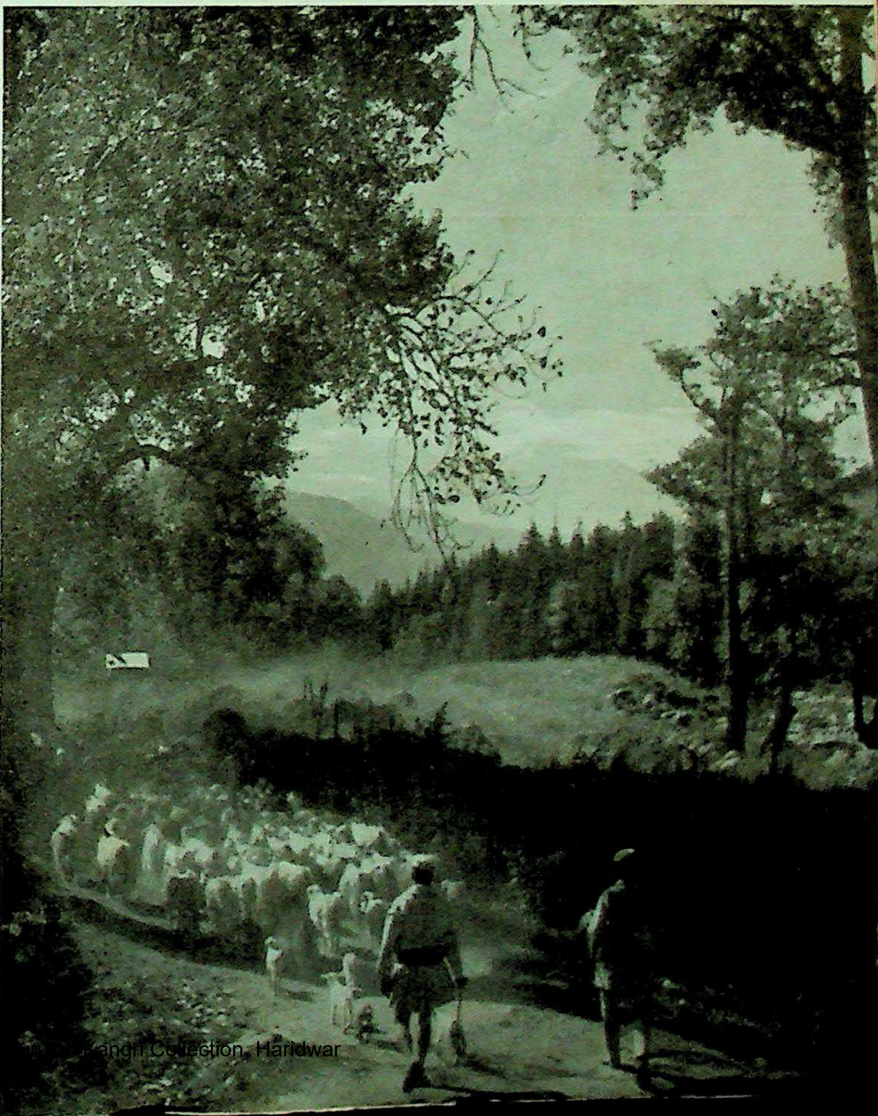

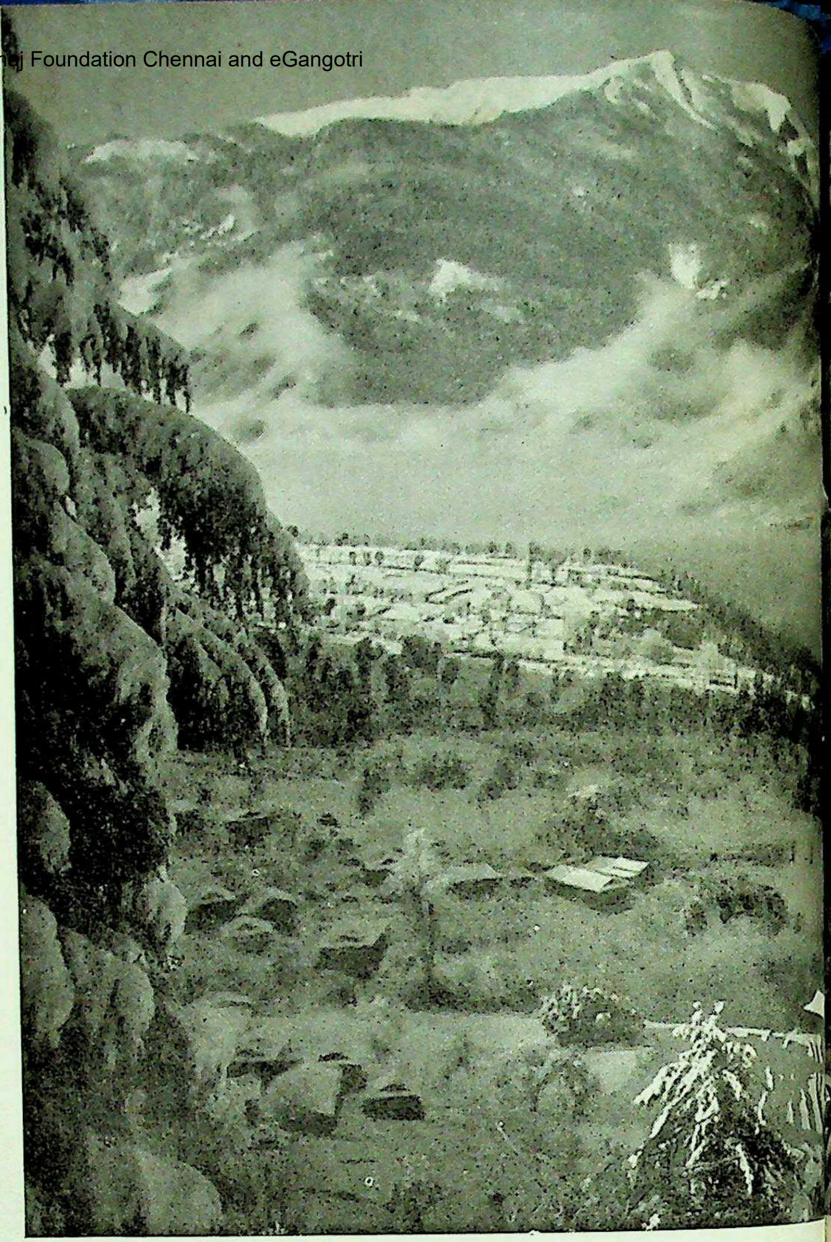

कुल्लू में लाहौल के व्यापारी

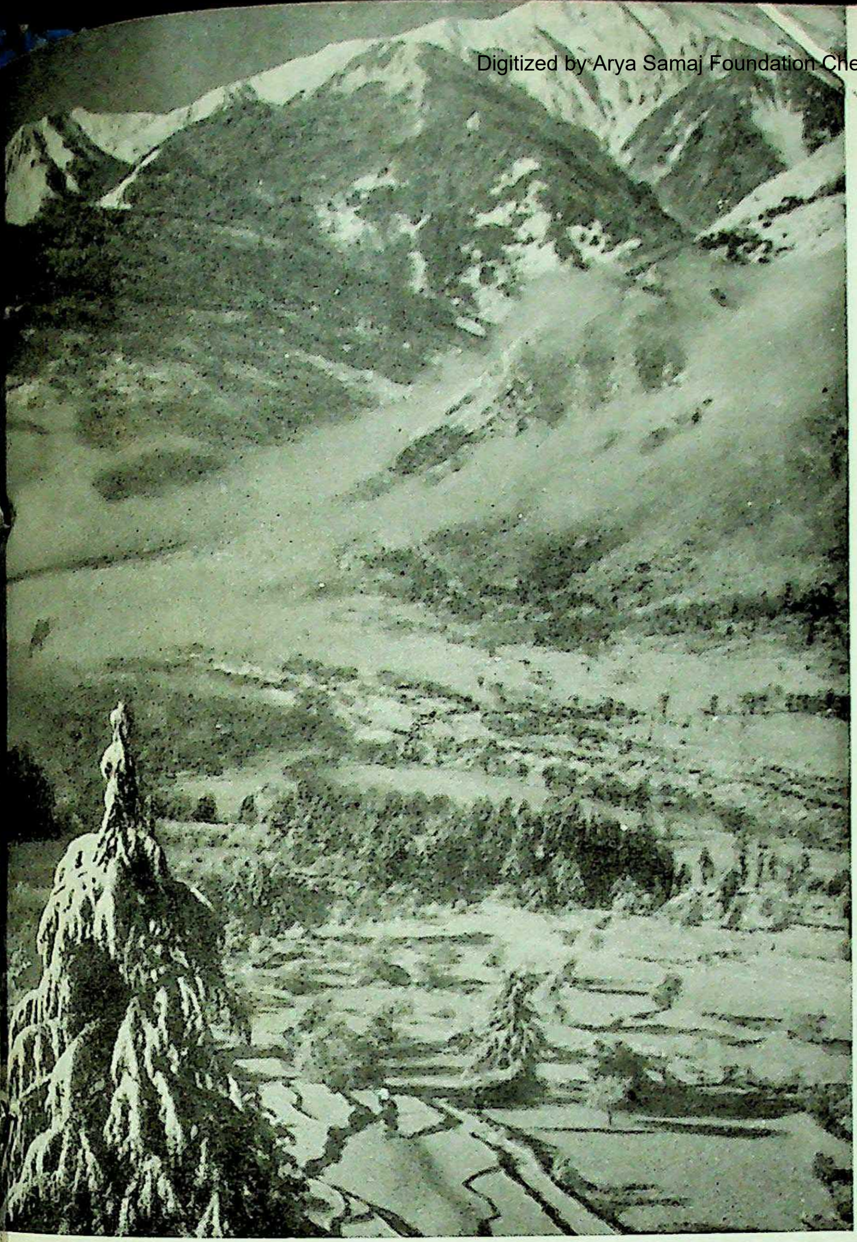

कुल्लू घाटी का सामान्य दृश्य

कुल्लू का एक प्रमुख मेला

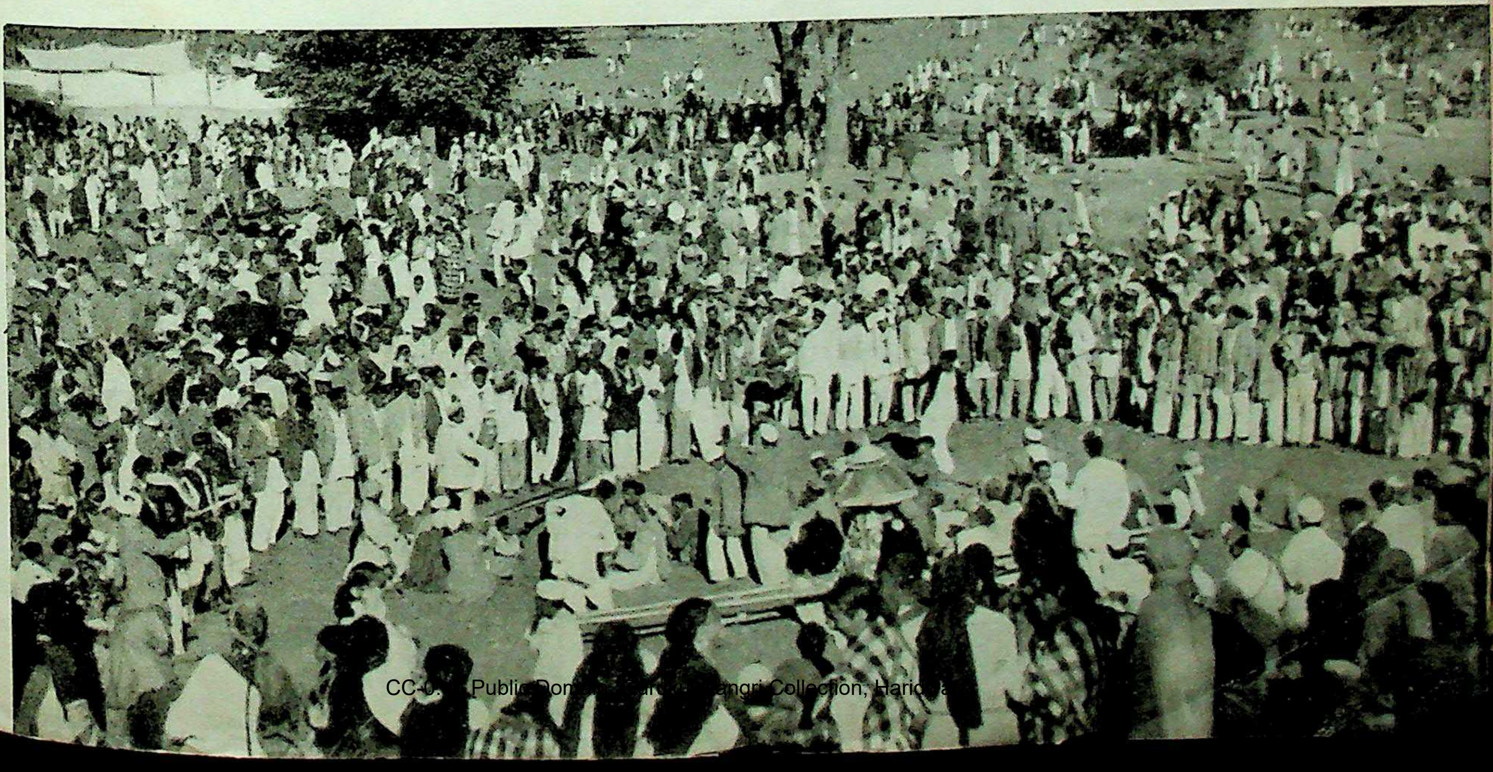

कुल्लू के किसान मेले की ओर जाते हुए

बैजनाथ की एक गायिका

रूप धारण कर लेती है। ऊपर चढ़ते चलिए, व्यास नदी पैरों में छूटती जा रही है। रास्ते के साथ-साथ चीड़ के गली गैल, सामने हिमाच्छादित पर्वतशृंगों तक का खुला विस्तार, ऊपर नीले आकाश में मँडराते आवारा बादल, नीचे व्यास की जलधारा चीड़ वन की स्वरलहरी के साथ सुर मिलाकर गाती इठलाती बही जा रही है, जैसे धरती के सोने पर आकाश-गंगा रेंग रही हो। पगडण्डी करवटें बदलती जाती है और हर करवट पर दृश्य नया रूप धारण कर लेता है। उस दृश्य के एक रूप को कविता के फ्रेम में देखिए—

"पार्श्व गिरि का नम्र, चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों सी,
बिछी पैरों में नदी, ज्यों दर्द की रेखा,
विहग शिशु मौन नीड़ों में,
मैंने आँख भर देखा।
दिया मन को दिलासा—पुनः आऊँगा,
भले ही बरस दिन अनगिन युगों के बाद……"

कवि ने तो इतना भर कह मन को दिलासा दे दी और प्रकृति से विदा ले ली थी। लेकिन प्रसिद्ध रूसी चित्रकार स्व० निकोलस रोरिक अपनी हिमालय यात्रा में नगर रुके तो वहीं के हो रहे। जिस मकान के पास श्री रोरिक ने डेरा डाला, वह मण्डी के राजा की कोठी थी। वह स्थान रोरिक को इतना पसन्द आया कि उन्होंने भारी मूल्य देकर मण्डी के राजा से वह कोठी और उसके साथ की जमीन खरीद ली। उस जमीन में आजकल सेब और नाशपाती के बगीचे हैं। स्व० निकोलस रोरिक का मज़ार भी उन्हीं बगीचों में है। नगर के सौन्दर्य से मुग्ध होकर ही कुल्लू के राजा ने उस स्थान को राजधानी बनाया था। राजाओं के पुराने महलों तथा अन्य इमारतों के रूप में राजधानी के अवशेष वहाँ अब भी मौजूद हैं। वे महल आजकल यात्रियों के लिये डाक बंगला बने हुए हैं। नगर ऊँचाई पर होने के कारण वहाँ से समूचा दृश्य आँखों के सामने रहता है। यात्री की आँखें उस सौन्दर्य रस को पीते थकती नहीं हैं। मानव का बस चले तो दोनों बाहों को फैलाकर उस समूची प्राकृतिक छटा को उनमें बाँध घेरे। नगर से दीखने वाला दृश्य समस्त कुल्लू घाटी में सुन्दरतम है। कुल्लू की

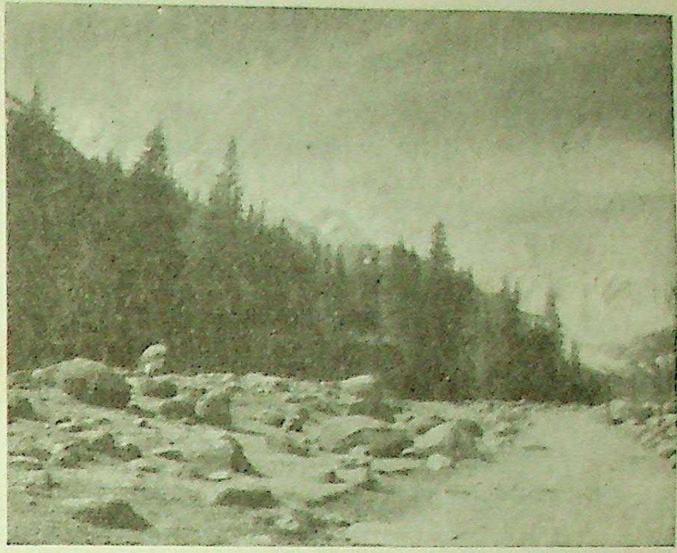
व्यास नदी का प्रारम्भिक रूप

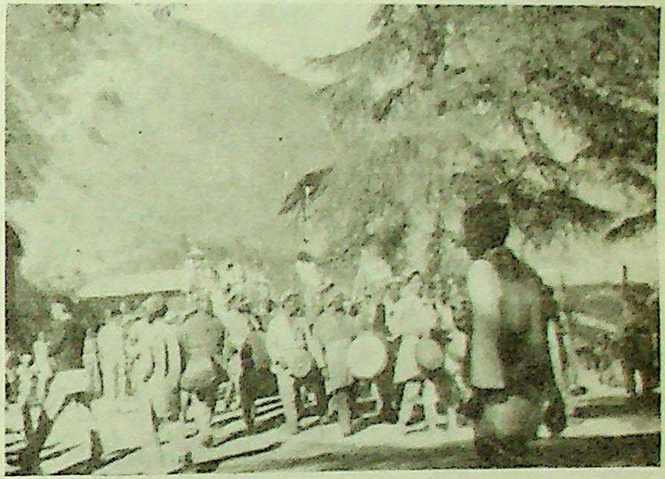
देवताओं का नृत्य

कटराई और नगर के बीच व्यास का पुल

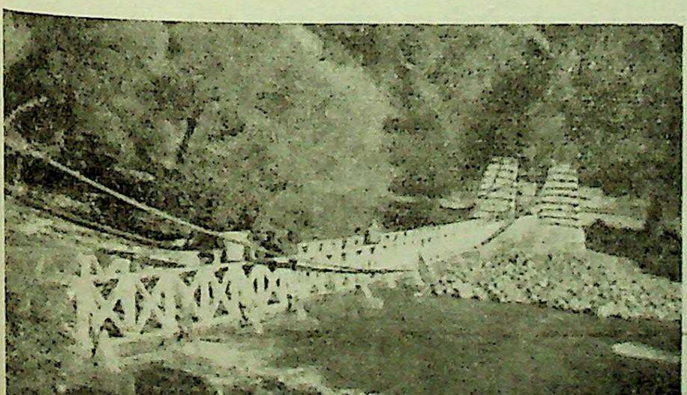

नगर में निकोलस रोरिक का बंगला

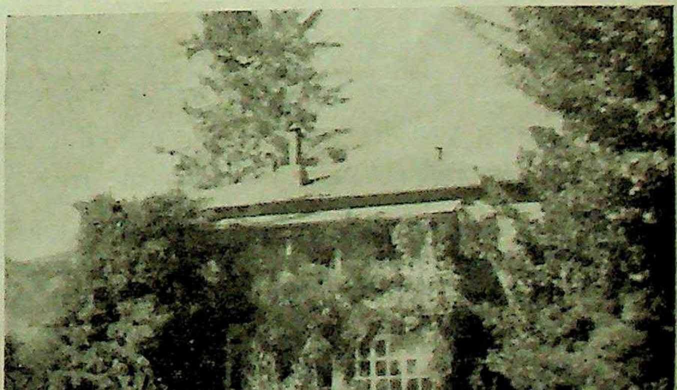

यात्रा पर निकलने वाला एक भी यात्री ऐसा न होगा जो नगर को बिना देखे लौट आया हो ।

देवताओं के उस धड़कते आँचल में यात्री के लिए एक बड़ा आकर्षण है—मनाली । कुल्लू से तेईस मील दूर मनाली कुल्लू घाटी की प्रथम उपत्यका है । हिमानी शैल-मालाओं, देवदार के हरे-भरे घने जंगलों की गोद में और धान के सुनहरी खेतों के पार्श्व में बसी मनाली यात्री के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ती है । झिलमिलाती बर्फ़ानी चोटियाँ, देवदार के घने जंगलों में बिछी मखमली हरियाली, धान के खेतों का सुनहरी विस्तार, पार्श्व में व्यास नदी की गुनगुनाहट—मानव को स्वर्ग में विचरने का आभास देती हैं ।

मनाली से दो मील दूर 'रोहतंग पास' से होकर लाहौल को जाने वाली सड़क से ऊपर पर्वत की ऊँचाई पर 'वसिष्ठ' नाम का एक स्थान है । वसिष्ठ में गरम पानी के कुण्ड हैं । वहाँ गरम पानी के कुण्डों में स्नान का आनन्द यात्रियों को आकर्षित करता है । उन कुण्डों में पानी गन्धक के पहाड़ से निकलने वाले सोतों में से आता है । पानी से गन्धक की गन्ध भी आती है । कहा जाता है—उस स्थान पर वसिष्ठ जी ने तपस्या करते-करते देहत्याग किया था । वसिष्ठ जी की पाषाण मूर्त्ति वहाँ के लोगों से आज भी पूजा पाती है । वहाँ खड़े होकर चारों ओर का दृश्य दर्शनीय है । धूप में बर्फ़ की चमक से समूची घाटी चौंधिया जाती है और व्यक्ति अपने भीतर एक विशेष प्रकार की उष्णता महसूस करता है ।

सुरम्य स्थलियों के अतिरिक्त यात्रियों के आकर्षण का कारण है वहाँ का जन-जीवन । वह लोग प्रकृति के पालने में पलकर जिस ढंग का स्वच्छन्द और उन्मुक्त जीवन व्यतीत करते हैं, देखकर स्पर्धा होती है । वेशभूषा, आचार-व्यवहार, हँसी-खिलवाड़ सब का सब एकदम प्राकृतिक । पुरुषों के पहनावे में कुल्लू टोपी के अतिरिक्त कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं । हाँ, स्त्रियों का पहनावा ज़रूर निराला है । महिलाएँ, युवतियाँ और बालिकाएँ, प्रायः समूचे शरीर को 'पट्टू' से कसे रखती हैं । सिर पर किसी गाढ़े रंग का पटका बँधा रहता है । युवतियाँ प्रायः काला या लाल हलका रंग पसन्द करती हैं । वस्त्रों में श्रृंगार की दृष्टि से प्रधानता पट्टू और सिर के पटके को दी जाती है । युवक टोपी पर मुनाल नामक पक्षी की कलगी और युवतियाँ सिर पर रेशमी पटका बड़े चाव से पहनती हैं । मुनाल मुर्ग के आकार का बहुत सुन्दर पक्षी है । टोपी पर उसकी कलगी बहुत खूबसूरत जान पड़ती है । कलगी लगाए युवक और सिर पर काला या लाल रेशमी पटका पहने युवती के पाँव, एक दूसरे से नज़र टकरा जाने पर, धरती पर मुश्किल से ही टिकते हैं । यात्री उस जीवन के सूत्रों को वहाँ के मन मेले उत्सवों में ही देखता है । कारण, उन लोगों के बीच रहकर उनके जीवन का अध्ययन करने की प्रवृत्ति हर किसी की नहीं होती । वहाँ के लोकोत्सवों में दशहरा प्रमुख है । सप्ताह भर तक रहने वाला यह मेला उन लोगों की मासूम चाहतों का केन्द्र है । सुदूर प्रदेशों से लोग दशहरे पर कुल्लू पहुँचते हैं । कुल्लू नगरी की रौनक उन दिनों कई गुना बढ़ जाती है । दशहरे के दिनों में यदि कोई यात्री वहाँ के किसी गाँव में जा निकले तो उसे अधिकतर किवाड़ बन्द मिलेंगे । बच्चे, बूढ़े, जवान, नर-नारी, सब के सब अपने दैनिक जीवन के पाटों से छुटकारा पाकर दशहरा उत्सव में सम्मिलित होने कुल्लू पहुँच जाते हैं । कुल्लू का वह मेला परसाल के बिछुड़े साथियों का मिलनोत्सव माना जाता है ।

कुल्लू के दशहरे का आध्यात्मिक और व्यापारिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है । सभी गाँवों के देवता दशहरा उत्सव में लाये जाते हैं । उन देवताओं के अनुयायी गाते-बजाते और उनकी पालकियों को कन्धों पर नचाते हुए आते हैं । वहाँ उन देवताओं को रघुनाथ जी की मूर्ति के सामने नचा कर रघुनाथ जी की आराधना की जाती है । देवताओं का वह सामूहिक नृत्य दर्शनीय होता है । वे देवता प्रायः चाँदी के होते हैं, जिन्हें पालकियों में सजाकर रखा जाता है । देवताओं के अतिरिक्त वहाँ के लोकनृत्य भी दर्शनीय हैं । लोकनृत्य में स्त्रियाँ प्रायः भाग नहीं लेतीं । वे अलग नाचती हैं । कुल्लू का गद्दी नृत्य तो जाना-माना है । नगाड़े और शहनाई की रुनझुन में उनका मन झूम-झूम नाच उठता है ।

ऊन, पशम और जड़ी-बूटियों के व्यापारी विभिन्न प्रान्तों से आकर दशहरे के मेले पर एकत्रित होते हैं । लद्दाख़, लाहौल तथा अन्य सीमाप्रदेश के इलाकों से व्यापारी आकर दशहरे पर अपने माल के दाम खरे करते हैं। हज़ारों रुपया देखते-देखते हाथ बदल लेता है।

दशहरे के दिनों में कुल्लू घाटी की यात्रा पर निकलने वाले यात्रियों के लिए एक और भी आकर्षण है । उन दिनों वहाँ सेब और 'परसिमन' (जिसे हम जापानी फल कहते हैं) की भरमार होती है । फल पक कर पूरी तरह तैयार हो जाता है । कुल्लू के सेब और परसिमन स्वाद और रंगत में अद्वितीय हैं । वहाँ के सेब की गोल्डन डेलिशियस और रेड डेलिशियस जातियाँ तो सुविख्यात हैं। उन सेबों का प्रतिबिम्ब ही वहाँ के स्वस्थ चेहरों पर दिखाई देता है ।

मानव और प्रकृति में रागात्मक सम्बन्ध है । उस रागात्मक सम्बन्ध के सूत्र कुल्लू की जीवन धारा में दीख आते हैं । यात्री वहाँ प्रकृति में इतना तल्लीन रहता है कि अपनी सत्ता तक उसके अर्पण कर देता है । प्रकृति ने वहाँ के कण-कण, क्षण-क्षण, बूँद-बूँद को इतना दुलार, इतना प्यार दिया है कि देवताओं की उस धरती का मानव भी अपने को देवताओं का समकक्ष मानने लगता है ।

* * *

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

अमरनाथ विद्यालंकार

२३ जुलाई स्वर्गीय लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की पुण्य तिथि है। आज से सौ वर्ष पूर्व सन् १८५६ में इसी तिथि को भारत के इस महान युग निर्माता ने जन्म लिया था।

भारत ने अंग्रेजों से अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जो महान संघर्ष किये, उनका इतिहास कई पर्वों में लिखा जाने वाला है। उस इतिहास में एक युग वह भी आया जब हमारे स्वाधीनता संग्राम के सैनिकों ने धुंधले प्रकाश में पूर्ण स्वाधीनता के आदर्श की कुछ-कुछ झलक देखी और इस युग में भारत को प्रेरणा देने वाली विभूति लोकमान्य तिलक थे, जब उन्होंने निर्भिक होकर घोषणा की "स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे उपलब्ध करके रहूँगा।"

महापुरुष जब किन्हीं भावनाओं और लक्ष्यों का प्रतिपादन करते हैं, तो वह सदा देश और काल की मर्यादाओं के भीतर रह कर ही ऐसा कर पाते हैं। यदि वह देश और काल की मर्यादाओं का उल्लंघन करके अव्यवहारिक आदर्शवाद की बातें कहने लगें तो वे कारोबारी सामान्यजनों का सफल नेतृत्व करने के अयोग्य हो जाते हैं। लोकमान्य तिलक की प्रतिभा में जहाँ आदर्शवाद की पराकाष्ठाओं को छूने की योग्यता और सामर्थ्य थी, वहाँ वह एक सफल व्यवहारिक राजनीतिज्ञ थे, और आजन्म उन्होंने व्यावहारिकता की तुला पर ही अपने आदर्शों को परखा। जहाँ नर्मदल वालों की ढीली-ढाली और कृतत्व विहीन राजनीति उन्हें कुर्सीनशीन राजनीतिज्ञों की विलास लीला समान जान पड़ती थी, वहाँ जब महात्मा गाँधी जी ने सम्पूर्ण राजनीति को अहिंसात्मक व्यवहार की तुला पर तोलना चाहा तो लोकमान्य ने अहिंसा सिद्धान्तों को व्यावहारिकता की मर्यादाओं में रखने पर बल दिया। लोकमान्य आदर्शवाद और व्यावहारिकता में समन्वय स्थापित करने में सिद्धहस्त थे।

युगधर्म को दृष्टि में रखते हुए ही उन्होंने भगवान कृष्ण की गीता की कर्मयोग के सिद्धान्त के अनुसार सुन्दर व्याख्या 'गीता-रहस्य' के रूप में की, क्योंकि लोकमान्य तिलक की धारणा के अनुसार केवल ज्ञान-भक्ति और त्याग-योग का एकांकी उपदेश देने वाली गीता की व्याख्या आज के भारत के लिए अनुपयोगी, निरर्थक, अतएव अव्यवहारिक थी।

लोकमान्य को अपने जीवन की प्रथम प्रेरणा स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे से मिली। रानाडे उस समय महाराष्ट्र के एक दीप्तिमान प्रकाश पुंज थे, जिनसे उस समय के नवयुवकों ने अध्ययन शीलता, उत्सर्गमय जीवन और देशसेवा-व्रत की दीक्षा ली थी। लोकमान्य तिलक और स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले उन गिने चुने नवयुवकों में से थे। प्रारम्भ ही से लोकमान्य तिलक में ओजस्विता की मात्रा अधिक थी और गोपाल कृष्ण गोखले में प्रशान्त और गंभीर वृत्ति प्रधान थी। यद्यपि रानाडे लोकमान्य तिलक के राजनीतिक गुरु थे और उन तीन-चार व्यक्तियों में से थे जिन्होंने पहले-पहल इंडियन नैशनल काँग्रेस की कल्पना और स्थापना की थी, परन्तु शीघ्र ही जब उनके विचारों और वृत्ति लोकमान्य तिलक के अन्तःस्थल को प्रभावित नहीं कर सके तो लोकमान्य ने उनका विरोध करने में भी हिचकिचाहट नहीं की। सन् १८८५ में काँग्रेस की स्थापना हुई और सन् १८८९ में हम लोकमान्य को काँग्रेस में उनके विरोध में साहस के साथ खड़ा पाते हैं।

उस समय काँग्रेस के नर्मदल के नेता श्री फिरोज़ शाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले इत्यादि थे। सरदार, जमींदार, सरकारी पेंशनर और कई सरकारी नौकरों का समर्थन नर्मदल वालों को उपलब्ध था। लोकमान्य के पीछे कुछ तो पुराणपन्थी हिन्दू लग गए थे, जिन्हें नर्मदल वालों के समाज-सुधार के प्रोग्राम पसन्द न थे, लेकिन क्रमशः लोकमान्य के ओजस्वी नेतृत्व से प्रभावित होकर आने वाले लोगों में अधिकतर नवयुवक वकील, शिक्षक, और अखबार-नवीस लोग थे। विष्णु शास्त्री चिपलूणकर इन में से प्रमुख थे।

काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन पूना में होने को था, परन्तु वहाँ हैज़ा फैल जाने के कारण यह अधिवेशन वहाँ न हो सका। यदि अधिवेशन पूना में होता तो अवश्य लोकमान्य प्रारम्भ से ही काँग्रेस के प्रमुख महारथियों में होते। सर्वश्री रानाडे और गोखले को धनियों और समाज के गण्य-मान्य व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त था। तथापि तिलक की अनुयायी युवक मंडली निरन्तर काँग्रेस में अधिक से अधिक प्रभाव प्राप्त करती गई।

सन् १८९७ में लोकमान्य पर राजद्रोह का प्रथम केस चला और यद्यपि उन्हें सज़ा होने पर नर्मदली नेता भी दुखी थे परन्तु उन्हें यह साहस न हुआ कि वह अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध कोई आवाज़ उठाते। जेल से छूटने पर लोकमान्य कुछ दूसरे केसों में फंस गए।

सन् १९०४ में बम्बई काँग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर काँग्रेस के विधान के सम्बन्ध में कुछ चर्चा हुई, जिसमें स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी की विधान के मामले पर स्वर्गीय फिरोज़ शाह मेहता से कुछ झड़पें हुईं। लोकमान्य ने खुले तौर पर ला० लाजपतराय का समर्थन किया। इसी समय वंग भंग हुआ और लार्ड कर्जन की नीति के विरुद्ध देश में घोर आन्दोलन आरम्भ हुआ। स्वदेशी आन्दोलन भी चला। नर्मदल के नेता सार्वजनिक आन्दोलनों से बहुत घबराए हुए थे, परन्तु लोकमान्य ने इन आन्दोलनों को पूर्ण समर्थन प्रदान किया। कहना

(शेष पृष्ठ ४९ पर)

भारत के विदेशी व्यापार की कुछ नई प्रवृत्तियाँ

राजनारायण गुप्त

पिछले कुछ वर्षों में भारत के वैदेशिक व्यापार के स्वरूप में जो क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं, वह देश की प्रगति के इतिहास को गौरवान्वित करने वाले हैं। यह सच है कि यदि केवल आयात व निर्यात के आँकड़ों को ही देखा जाय तो समुद्र की लहरों के समान उनमें कभी उतार व कभी चढ़ाव देखने को मिलेगा, कारण, विदेशी व्यापार की मात्रा को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व होते हैं, जिन सब का एक स्थान पर वर्णन करना भी अत्यन्त कठिन कार्य है। उदाहरणार्थ देश में खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति, दूसरे कच्चे माल की पैदावार, मौन्सून की स्थिति, विनिमय की दर, सरकार की नियंत्रण नीति, विदेशों की माँग, अन्य देशों की आर्थिक स्थिति, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, युद्ध का भय, दूसरे देशों की प्रतिस्पर्धा, इत्यादि—अनेक ऐसे कारण हो सकते हैं, जिनसे किसी एक वर्ष में आयात या निर्यात की मात्रा कम तथा दूसरे वर्ष में उनकी मात्रा अधिक हो सकती है। व्यापार के आँकड़ों का अध्ययन करते समय, इसलिए इन सभी कारणों को दृष्टि में रख कर, यह देखना चाहिए कि किसी वर्ष में हमारे देश के व्यापार की स्थिति में अमुक परिवर्तन क्यों कर हुआ?

द्वितीय महायुद्ध से पहले हमारे देश के वैदेशिक व्यापार के तीन मुख्य लक्षण थे। प्रथम यह कि हमारा देश अधिकतर कच्चा माल विदेशों को भेजता था तथा बना हुआ तैयार माल आयात करता था। दूसरा यह कि भारत से बाहर जाने वाले माल की मात्रा आयात होने वाले माल से कहीं अधिक होती थी, इसलिए व्यापार की बाकी प्रायः हमारे पक्ष में ही रहती थी। इसका एक कारण यह भी था कि हमारे देश को परतन्त्रता के काल में एक बहुत मोटी रक़म इंगलैण्ड की सरकार को "गृह भार" (होम चार्जेज) के रूप में देनी पड़ती थी, जिसका भुगतान अनुकूल व्यापार की बाकी के द्वारा ही सम्भव हो सकता था। तीसरा यह कि हमारा विदेशी व्यापार अधिकतर इंग्लैंड तथा राष्ट्र मंडल के देशों के साथ ही होता था और हमारी ब्रिटिश सरकार इस प्रकार की व्यापार नीति का अवलम्बन करती थी कि इन्हीं देशों के साथ व्यापार करने में हमें अधिक लाभ है, दूसरे देशों के साथ नहीं। "ओटावा समझौता", "इम्पीरियल प्रीफरैंस" तथा "रुपये की ऊँची विनिमय दर" इत्यादि नीतियाँ इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए अपनाई जाती थीं।

द्वितीय महायुद्ध तथा उसके पश्चात के काल को एक प्रकार से हम अपने विदेशी व्यापार की इन तीनों विशेषताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन का द्योतक मान सकते हैं। एक प्रकार से इस काल में यह तीनों ही विशेषताएँ विपरीत अवस्था को प्राप्त कर गई हैं। अब हमारा देश कच्चे माल का निर्यात बहुत कम तथा बने हुए तैयार माल का निर्यात अधिक करता है। विदेशों से हम कारखानों में काम आने वाले औद्योगिक कच्चे माल का आयात अधिक करते हैं। हमारे विदेशी व्यापार की बाकी अब हमारे पक्ष में नहीं होती वरन् प्रायः विपक्ष में ही रहती है, जिसका अर्थ हुआ कि आजकल हम विदेशों से अधिक मूल्य का माल आयात करते हैं और बदले में कम माल निर्यात करते हैं। डालर तथा स्टर्लिंग दोनों ही क्षेत्रों के देशों के साथ व्यापार की बाकी हमारे विपक्ष में रहती है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में इस स्थिति के और भी अधिक विकट हो जाने की सम्भावना है, कारण इन वर्षों में हम दूसरे देशों से बहुत अधिक मूल्य की मशीनें, लोहा, रासायनिक पदार्थ तथा औद्योगिक कच्चा माल मँगाना चाहते हैं, जिससे हमारे देश का द्रुत गति से औद्योगीकरण हो सके। अन्त में, आजकल हमारा व्यापार इंग्लैण्ड तथा राष्ट्र मंडल के देशों के साथ ही सीमित नहीं, वरन् उसका क्षेत्र बराबर बढ़ता ही जा रहा है। और मध्य पूर्व तथा सुदूर पूर्व के देशों में हमारा निर्यात बराबर बढ़ रहा है। अमेरिका से हमारे आयात की मात्रा बराबर अधिक हो रही है। यूरोप के साम्यवादी व प्रजातन्त्र देशों के साथ भी हमारी सरकार ने अनेक व्यापारिक समझौते किए हैं जिनके कारण 'बारटर' के आधार पर हमारा इन देशों के साथ भी व्यापार निरन्तर बढ़ रहा है।

यहाँ कुछ उन अत्यन्त अनुकूल बातों का जो पिछले १५ वर्षों में हुई हैं तथा जिनके कारण हमारे विदेशी व्यापार की कुल मात्रा तथा उसके स्वरूप में भारी परिवर्तन हुए हैं वर्णन कर देना असामयिक न होगा। पिछले महायुद्ध के समय जहाज़ों की कमी, शत्रु से भय तथा मित्र राष्ट्रों को स्वयं अपने यहाँ युद्ध तथा जनता की आवश्यकता के लिए बने हुए माल की भारी माँग के कारण, भारत में विदेशी माल का आयात बहुत कम हो गया। इसके विपरीत हमारे कच्चे माल जैसे रुई, पटसन, अनाज, चाय, लोहा, चमड़ा, खनिज, रबड़, तिलहन इत्यादि की माँग विदेशों में बहुत अधिक बढ़ गई। परिणाम यह हुआ कि जहाजों की कमी तथा हर प्रकार के नियंत्रण होने पर भी हमारे देश से मित्र राष्ट्रों को बहुत अधिक मात्रा में माल का निर्यात हुआ और बदले में बहुत कम बना हुआ माल हमारे देश में आया। इस स्थिति से हमारे देश को दो बड़े लाभ हुए—एक तो यह कि हमारा देश जो इंग्लैंड का भारी कर्जदार था तथा जिसे उसको लगभग १३ अरब रुपये का ऋण चुकाना था, अब एक साहूकार देश बन गया और हमारे देश की अनुकूल व्यापार की बाकी के कारण, इंग्लैंड लगभग १ अरब रुपये की रकम से हमारा कर्ज़दार हो गया। इस स्थिति में यह आवश्यक नहीं रहा कि आगे के वर्षों में हम इंग्लैंड से थोड़ा माल मँगाएँ तथा अधिक निर्यात करें जिससे हम अपने कर्ज़ का भुगतान

कर सकें। उल्टे इंग्लैंड में हमारे पौंड-पावना की इतनी रक़म जमा हो गई कि उसका भुगतान हम यहाँ से या स्टर्लिंग क्षेत्र के दूसरे देशों से अधिक माल मँगा कर ही कर सकते थे। दूसरे, इंग्लैंड तथा साथी राष्ट्रों से आयात में कमी हो जाने के कारण, हमारे देश में अनेक नए उद्योगों की स्थापना हो गई और युद्ध के काल में इन कारखानों ने खूब लाभ कमाया। पिछली लड़ाई में ज़र्मनी तथा जापान की हार से हमें यह भी अवसर मिल गया कि मध्य पूर्व तथा सुदूर पूर्व के देशों में हम इन देशों के निर्यात व्यापार का स्थान ले सकें। लड़ाई से पहले जापान का सस्ता माल इन सब बाज़ारों में बिकने के लिए आता था। युद्धोत्तर काल में इन सब देशों में भारत के बचे हुए माल की माँग बढ़ने लगी।

परन्तु यहाँ कुछ उन प्रतिकूल अवस्थाओं का वर्णन कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है जिनके कारण हमारा देश विदेशी व्यापार के क्षेत्र में अनुकूल अंतर्राष्ट्रीय स्थिति का पूरा लाभ नहीं उठा सका। सन् १९४७ में हमारे देश का विभाजन हो गया और उसके कारण तेल, अनाज, चावल, पटसन इत्यादि बहुत सी निर्यात वस्तुएँ पाकिस्तान के क्षेत्र में चली गईं। अब भारत स्वयं इन वस्तुओं के आयात की आवश्यकता अनुभव करने लगा। दूसरे युद्ध के पश्चात सस्ती विलायत की बनी चीज़ों का आयात पुनः आरम्भ हो गया और उनके मुकाबले में बहुत से भारतीय कारखाने बन्द होने लगे। हमारे निर्यात की मात्रा कम हो गई और आयात के एकदम बढ़ जाने से हमारे व्यापार की बाकी हमारे विपक्ष में हो गई। सन् १९४९ और १९५५ के बीच प्रत्येक वर्ष में ही हमारी व्यापार की बाकी हमारे विपक्ष में रही। निम्न आँकड़े इस बात को प्रमाणित करते हैं :

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	आयात	निर्यात	व्यापार की बाक़ी
१९४९	६६१	४८५·५	–१७५·५
१९५०	५५१·६	५३९·०	– १२·६
१९५१	८४४·१	७५७·३	– ८६·८
१९५२	७९९·९	६०८·८	–१९१·१
१९५३	५६७·१	५१२·५	– ५४·६
१९५४	५८५·५	५४७·७	– ३७·८
१९५५	६४४·०	६०४·०	– ४०·०

इन वर्षों में भारत अपने प्रतिकूल व्यापारान्तर का भुगतान पौंड-पावना की रक़म तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विदेशों की सहायता के द्वारा कर सका। घट कर अब हमारे पौंड-पावना की बाकी केवल ७०० करोड़ रुपया रह गई है। पिछले पाँच वर्षों में हमें लगभग ३०० करोड़ रुपये की विदेशी सहायता भी प्राप्त हुई है। अंतर्राष्ट्रीय बैंक तथा मुद्राकोष से भी हमने ऋण लिया है। आयात की मात्रा को कम करने के लिए सरकार ने अनेक नियंत्रण लगाए हैं। अनावश्यक व विलासिता की चीज़ों का आयात बन्द कर दिया गया है, निर्यात की नीति को हर प्रकार से प्रोत्साहन प्रदान किया जा रहा है, अनेक वस्तुओं के निर्यात के लिए "निर्यात विकास परिषदें" स्थापित कर दी गई हैं, विदेशों में भारतीय चीज़ों की माँग को बढ़ाने के लिए जगह-जगह व्यापारिक एजेंट तथा दूत नियुक्त किए गए हैं, जो अपने दूतावास में भारतीय चीज़ों का प्रदर्शन करते हैं तथा औद्योगिक प्रदर्शनियों में भाग लेते हैं। आयात होने वाली आवश्यक चीज़ों को भारत में ही बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, इस सम्बन्ध में अनेक नए कारखाने विदेशी मूलधन के सहयोग के द्वारा स्थापित किए गए हैं। ऐसे उद्योगों में तेल शोधक—बर्मा शैल, स्टैंडर्ड वैक्यूम व कालटैक्स—के कारखाने, मोटर उद्योग, साइकिल फैक्ट्रियाँ, रसायनिक व दवाई उद्योग प्रमुख हैं।

आगे आने वाले वर्षों में जिस क्षेत्र में भारत अपनी निर्यात की वस्तुओं को सबसे अधिक आगे बढ़ा सकता है, वह हल्की बनी हुई इंजीनियरिंग की वस्तुएँ हैं। इन चीज़ों में हम बिजली का सामान—पंखे, तार, मीटर, स्विच, बिजली के मोटर, सिलाई की मशीनें, हार्ड वेयर का सामान, कब्ज़े, पेच, कील, हैंडिल, खटके इत्यादि, सैनीटरी सामान, छोटी-छोटी मशीनें, पंच, प्रेस, छापेखाने, टाइप, स्प्रेयर इत्यादि—मोटर के हिस्से, बाइसिकिल व उसका सामान इत्यादि का नाम ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त रासायनिक, पेंट, सीमेंट, लोहे का सामान, शीशे की चीज़ें, कागज़ व कागज़ की बनी चीज़ें, चमड़े का सामान, दवाइयाँ, कपड़े, हाथ करघे का सामान, गृह उद्योग की चीज़ं इत्यादि भी भारी मात्रा में निर्यात हो सकती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमारे देश के वैदेशिक व्यापार में आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। सन् १९३०-४० के बीच हमारे देश के वैदिक व्यापार की कुल मात्रा लगभग २५०-४०० करोड़ रुपया थी। पिछले कुछ वर्षों में यह मात्रा लगभग चार गुनी बढ़ गई है। आजकल हमारे देश के वैदेशिक व्यापार का कुल मूल्य लगभग १३ अरब रुपया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में जिस दिशा में सबसे अधिक संतोषजनक प्रगति हुई है वह यह है कि हमारी अनाज व रूई की आयात बहुत कम हो गई है। इन दोनों ही चीज़ों के उत्पादन में हम प्रायः स्वावलंबी बनते जा रहे हैं और इस प्रकार करोड़ों रुपये लागत की आयात बन्द होती जा रही है, जिसके लिए हमें अपने अमूल्य विदेशी मुद्रा कोष की बलि देनी पड़ती थी। सन् १९४६ और १९५२ के बीच हमारे देश को लगभग ९५० करोड़ रुपये का अनाज विदेशों से मँगवाना पड़ा। सन् १९५१ के अकेले एक वर्ष में इस आयात का मूल्य २१७ करोड़ रुपया था। पिछले तीन वर्षों में इस आयात की मात्रा में भारी कमी हुई है। सन् १९५३ में हमें ८३ करोड़, सन् १९५४ में ७५ करोड़ तथा सन् १९५५ में केवल ६६ करोड़ रुपये का अन्न आयात करना पड़ा। इसी प्रकार हमारी रूई की पैदावार भी निरंतर बढ़ रही है और इसका आयात कम हो रहा है। सन् १९५१-५२ में हमारे देश में १५ लाख ४०,००० गाँठ रुई आई, सन् १९५३-५४ में इसकी मात्रा केवल ६ लाख ९० हज़ार रह गई थी। जूट की पैदावार भी बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है। आगे आने वाले काल की ओर इसलिए हम संतोष की दृष्टि से देख सकते हैं। निर्यात के क्षेत्र में हमारे देश के सम्मुख एक बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा है और आशा है विभिन्न "निर्यात विकास परिषदों" की सहायता से इस स्थिति का पूरा लाभ

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

उड़ान

बलवन्त सिंह

हाथ—एक खूबसूरत गोरा हाथ—पलंग की पट्टी के नीचे की ओर लटक रहा था। यह हाथ मेरी बीवी का था। उसकी आदत थी कि वह मेंहदी घोल कर एक-एक पोर तक उँगलियाँ उसमें डुबो देती। सिंगार का यह साधन कितना सादा था, लेकिन कितना मन लुभाने वाला था। फिर नाच करते समय यही हाथ कई हसीन शक्लों में ढाले जा सकते थे। कबूतरों के-से पाँव, जो स्वर और ताल पर मदमस्ती से नाच सकते थे। और वे दूधिया पिण्डलियाँ जो चकफेरियाँ लेते समय लहँगे के इधर-उधर उड़ जाने से बिजली की तरह कौंध जाया करती थीं।

मेरी खुशनसीबी इस बात में नहीं थी कि मुझे ऐसी प्यारी बीवी मिली थी, बल्कि इसमें थी कि मैं इस योग्य था कि उसे जीवन के सब आराम दे सकता था। वरना वह तो एक फूल के समान थी, मुर्झा कर रह जाती; वह तो एक गीत की भाँति थी, कराह कर रह जाती; वह तो एक सपने की तरह थी, परेशान होकर रह जाती।

वह खुद कविता थी और कविताओं की आशिक, खुद सुन्दरता की मूर्त्ति थी और खूबसूरती की पुजारिन, खुद भगवान की कला का नमूना थी और हर कला की मतवाली। और इन सब से ऊपर वह भोली और नेकदिल थी। वह एक भरे-पूरे घर में पली थी और एक प्यार करने वाले पति के दिल के सिंहासन पर विराजमान हो गई। यह सब कुछ इस दुनिया में हुआ, जहाँ इतनी गरीबी है, इतनी भूख है, इतनी बदसूरती है।

क्या मैं शायरी कर रहा हूँ? लेकिन दुनिया में कुछ ऐसी भी चीज़ें हैं, जिनका वर्णन कविता में ही हो सकता है।

मेरे लिए मधु सदा दूसरी दुनिया की चीज़ रहती, अगर वह एक दिन अपने कोमल और गुलाबी ओंठ मेरे कान के पास लाकर कुछ कहते-कहते शरमा न जाती—

वह मेरे बच्चे की माँ बनने वाली थी। अभी करीब चार महीने बाकी थे।

वह सो रही थी, मैं उसे जगाना चाहता था। लेकिन कैसे? यह समझ में नहीं आ रहा था। मेरा दिल शायर ज़रूर था, लेकिन मेरी सूरत, मेरी आवाज़ या मेरी हरकतों में शायरी की झलक नहीं दिखाई देती थी। तो भी उसे जल्दी जगाना ज़रूरी था। सो मैं उसके पलंग के करीब धरती पर बैठ गया और उसकी आँख के ऊपर से होकर गाल पर परेशान एक काली लट को हल्की-सी फूँक मार कर ज्योंही मैंने उस लट को और परेशान किया तो वह कसमसाई, उसके पपोटों पर हल्की-सी हलचल पैदा हुई और फिर दो जोड़ों में चार सुन्दर पलकें कली की तरह चटक कर कुछ अलग-अलग हो गईं।

मैंने उसकी अधखुली आँखों के आगे दो उँगलियाँ खड़ी कर दीं। उसे रात वाली बात याद आ गई तो उसके ओंठों पर नटखट मुस्कान की लहरें दिखाई देने लगीं। उसने पहले एक मेंहदी-रँगी उँगली उठाई और नींद में डूबी आवाज़ में बोली—"पहला काम डाक्टर के पास जाना और दूसरा" यह कह कर उसने दूसरी उँगली उठाई "दस बजे अंग्रेज़ी पिक्चर।"

मैंने सँपेरे की तरह उसके कान में मंत्र फूँका—"इसलिए देर नहीं होनी चाहिए। मैं शेव करने जा रहा हूँ। फिर से तो न सो जाओगी?"

उसने एकबारगी आँखें पूरी तरह से खोल कर मेरी नज़र से नज़र मिलाई और फिर मेरी आँखों से छलकते हुए प्यार को एक ही घूँट में पीकर आँखें झुका लीं और शरारत से बोली—"ज़रूर सो जाऊँगी!"

हम तैयार बैठे थे कि नौकर ने रिक्शे के आ जाने की खबर दी। रिक्शा साफ़-सुथरा था और सीट भी अच्छी दिखाई दे रही थी लेकिन रिक्शे वाला बुड्ढा था। उसके चेहरे पर लकीरों का जाल-सा बुना हुआ था। उसके सिर और दाढ़ी के बाल बर्फ़ की तरह सफ़ेद थे। रंग काला, खाल मोटी व खुरदरी, मैला चीकट कुर्ता, धोती बिल्कुल चिथड़ा।

मैं रिक्शे की सवारी पसन्द नहीं करता। अगर मोटर खराब हो जाए, जैसा कि उस दिन हुआ, तो मैं कम-से-कम इतनी तसल्ली कर लेता हूँ कि रिक्शा साफ़-सुथरा हो और रिक्शे वाला तगड़ा-जवान हो।

बुड्ढे रिक्शे वाले को देख कर हम दोनों कुछ झिझक कर आगे बढ़े। मैंने ऐसी आवाज़ में कि जिससे उसके दिल को दुःख न हो पूछा—"क्यों भाई! दो सवारी खींच लोगे?"

"हाँ मालिक, हींच लईं!" उसने कारोबारी अन्दाज़ में जवाब दिया।

वह हट्टा-कट्टा तो नहीं था लेकिन कुछ ऐसा मरियल भी नहीं था। और फिर यह मुश्किल भी तो थी कि उसको क्या कह कर टाला जाए, सो हम ज़रा बेदिली से रिक्शे पर सवार हो गए।

थोड़ा-सा पैदल चल कर रिक्शे वाला भी साईकिल की गद्दी पर बैठ गया।

रिक्शा अपनी रफ़्तार से दौड़ने लगा तो मैंने मधु की ओर देखा। गर्मी के कारण उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। आँखें शरबत के कटोरों की तरह हो रही थीं और सन्तरे की बारीक फाँकों की तरह ओंठ ऐसे दिखते थे जैसे उनमें से रस टपकने को हो। उसका शरीर रंग और खुशबू का एक सपना-सा दिखाई दे रहा था। मैंने अपने दिल को यकीन दिलाने के लिए कि वह सपना नहीं थी अपना हाथ बढ़ा कर उसके दूसरे कंधे पर रख दिया।

सुनसान सड़क धूप के कारण तप रही थी। सूर्य की किरणें तेज़ भालों की तरह आँखों में चुभ कर उन्हें झुकने पर मजबूर कर रही थीं। इसलिए हम दोनों की नज़रें रिक्शे वाले की नीचे ऊपर होती हुई टाँगों पर जम गईं।

उसकी टाँगें बिलकुल लकड़ी तराश कर बनाई गई दिखाई देती थीं। जैसे लकड़ी के दो डण्डों पर काला रोगन कर दिया गया हो। उन पर पड़ी हुई गर्द के कारण वे और भी बेजान दिखाई देती थीं। बाईं पिण्डली पर नसों का एक गुच्छा-सा बन गया था और वह जगह और भी भद्दी लग रही थी। पतले टखनों के नीचे पाँव फैल कर एकदम बड़े हो गए थे—नीचे-ऊपर; ऊपर-नीचे। दोनों टाँगें मशीन की तरह हरकत किए जा रही थीं। मैंने देखा, मधु की मदमाती आँखें उन पिण्डलियों पर जमी हुई थीं।

जून का आखिरी सप्ताह था। दूर क्षितिज से बादल उठ रहे थे। अभी तक बरसात शुरू नहीं हुई थी, बादल दूर थे और सूर्य अभी आज़ाद था। लेकिन बादलों के आगे-आगे नन्हें धब्बों की तरह उड़ती हुई चीलें इस बात का पता देती थीं कि वह बादल ठण्डे पानी की बूँदों से बोझिल हो रहे हैं। मधु लगातार उन सूखी काली दो पिण्डलियों को देखे जा रही थी। मेरे दिल को दुःख हो रहा था, क्योंकि उन हसीन आँखों के सामने ऐसा दृश्य उपस्थित करने वाला मैं ही तो था।

अपने दिल की हालत को छिपाते हुए मैंने पूछा—"क्या सोच रही हो मधु?"

उसके ओंठों पर फूल खिल गए, बोली—"सोच रही हूँ कि इनका भी कितना मेहनत का काम है।"

"हाँ, सचमुच।" मैंने ज़रा बेतुकेपन से कहा।

मैं नहीं चाहता था कि उसकी उजली-उजली सदा प्रसन्न रहने वाली आँखों के आगे यह दृश्य बहुत देर तक रहे। मैं उचित नहीं समझता था कि नागिन सी लटों से ढँके हुए उसके सिर को यह सिर-दर्दी करनी पड़े, संगीत और कविता की दुनिया में नृत्य करने वाले उसके दिल को इस दर्द से वाकिफ होना पड़े। लेकिन उस वक्त मैंने यही उचित समझा कि बुड्ढे से बात करते-करते चुपके से बात का रुख बदल दिया जाए।

मैंने बुड्ढे से कहा—"बाबा, बड़ी मेहनत का काम करते हो तुम।"

"हाँ, मालिक।"

मधु ने हमदर्दी से पूछा—"तुम्हारा दुनिया में कोई नहीं बाबा?"

इस पर उसने सिर को ज़रा-सा घुमाया। मालूम होता था कि इस बात से उसे दुख हुआ है। कुछ रुक कर वह बोला—"बिटिया, हमारी बिलादरी बहुत बड़ी है। मेरे दो बेटे हैं, तीन लड़कियाँ हैं, पोते हैं, पोतियाँ हैं, मेरी बिलादरी बहुत बड़ी है!"

"ओ! ओ!" मधु ने अपने रूमाल की चुभन को महसूस करते हुए कहा—"बाबा, माफ़ करना। बुरा न मानना।"

इस पर बुड्ढे ने ज़ोर से सिर को इधर-उधर हिलाया। मैंने देखा कि उसके नाक के दोनों ओर प्रसन्नता की लहरें दिखाई देने लगी हैं। पुचकारते हुए बोला—"नहीं बिटिया, बुरा काहे का मानी!"

इस अनपढ़ और ग़लीज़ बुड्ढे का मधु को बिटिया कहना भी मुझे अच्छा न लगा। क्या वह उसे मालकिन नहीं कह सकता था? और फिर मधु में भी कितना बचपना था।

मधु छोटे बालक की तरह चहक रही थी, बोली—"मैंने यह इसलिए कहा था कि अब तुम्हारे आराम करने के दिन हैं और फिर तुम्हारे बेटे भी काम तो करते ही होंगे?"

"हाँ, हाँ, दोनों बेटे काम पर लगे हैं। एक काफ़ी हाउस में बेरागीरी करता है और दूसरा सनीमा के जलूस के आगे बंसी बजाता है। पर मैं घर में सब से बड़ा हूँ। मेरी ज़िम्मेदारी भी तो बड़ी है। मैं भी काम करता हूँ। मैं ऐसा कमज़ोर नहीं हूँ बिटिया!"

फिर "बिटिया!" मुझे गुस्सा-सा आने लगा। उधर मधु बच्चे की तरह सिर हिला-हिला कर उसकी बातों में दिलचस्पी ले रही थी।

अब मुझ से न रहा गया—मैंने अंग्रेज़ी में कहा—"डारलिंग! तुम जिस दुनिया में रहती हो वह उसमें नहीं रहते। उनकी दुनिया बहुत छोटी है। उनकी नज़र में एक-एक दमड़ी की बड़ी कीमत है। मुझे भी इससे हमदर्दी है। लेकिन मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगरचे यह ठीक है कि हम सब इंसान हैं, फिर भी…।"

न जाने मैंने इतना कुछ क्यों कह डाला और न जाने मधु ने भी बहस क्यों नहीं की। वह चुप हो गई।

जब हम डाक्टर के बँगले के पास पहुँचे तो मैंने रिक्शे वाले से कहा—"बाबा! कुछ देर रुक कर हम मैट्रो सिनेमा जायेंगे। चार आना मिलेगा। चलना हो तो बोलो।"

"छः आना लागी मालिक।"

"नहीं, बस चार आना। जल्दी बोलो।"

"नहीं मालिक! कम न होई।"

मैंने माथे पर बल डाल कर उसका किराया दे दिया और कहा—"जाओ।"

मधु ने मेरा हाथ थाम कर शायद कुछ कहना चाहा, लेकिन मैंने उसकी आवाज़ निकलने से पहले ही फिर अंग्रेज़ी में कहा—"डोंट बी ए फूल! डारलिंग ये लोग गाँठ के बड़े पक्के होते हैं। हमेशा उचित से ज़्यादा किराया माँगा करते हैं।"

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ मधु का पाँव भारी था, उसे रिक्शे में से निकलने में दिक़्क़त महसूस हुई तो बुड्ढे ने आगे बढ़कर छत पीछे की ओर सरका दी और मैंने मधु को बाँह का सहारा देकर नीचे उतारा।

हम डाक्टर के बँगले की ओर बढ़े तो मैंने नरम लहज़े में कहा—"डारलिंग, यह न समझो कि मैं बुड्ढे से नफ़रत करता हूँ या उसे ज़लील समझता हूँ। लेकिन फिर भी यह सोचने की बात है कि उसमें और हममें कौन सी बात एक समान है। छोटे लोगों को ज़्यादा मुँह लगाना अच्छा नहीं होता। खैर छोड़ो इन बातों को। देखना तो यह है कि उसे सवारियों की कमी नहीं है, हम न मिले तो क्या? हमें रिक्शा की कमी नहीं है, वह न मिला तो क्या हुआ?"

यह कह कर मैंने हल्का-सा कहकहा लगाया और उसके कन्धे को हल्की-सी थपकी देते हुए कहा—"तुम इन दुनियादारी की बातों को

नहीं समझ पाओगी। तुम परियों के रंग-महलों में रहने वाली हो। तुम्हारे ख्यालात आकाश से भी ऊँचे उड़ते हैं। नहीं, तुम इन बातों को नहीं समझ सकतीं।"

डाक्टर से बातें हो चुकीं तो डाक्टर साहब तो किसी और मरीज़ को देखने चल दिए। इधर देखते-देखते आकाश पर काले बादल छा गए और एकबारगी बड़े ज़ोर की बारिश होने लगी।

मैं डरा कि अगर यही हालत रही तो सिनेमा का प्रोग्राम खटाई में पड़ जाएगा। लेकिन खैर हुई कि जल्दी ही बारिश थम गई। मैंने फ़ौरन एक नौकर को रिक्शा लाने के लिए भेजा। नौकर ने डरते-डरते कहा—"साहब रिक्शा तो यहाँ मुश्किल ही से मिलेगी।"

यह कह कर वह रिक्शा की तलाश में चला गया।

उस तरफ़ ज़्यादातर बड़े डाक्टर और बड़े वकील आदि रहते थे, जिनका सवारी का अपना-अपना इन्तज़ाम था।

थोड़ी देर बाद नौकर निराश होकर वापस लौट आया।

मैंने घड़ी देखी सिनेमा शुरू होने में मुश्किल से बारह मिनट थे। हफ्ते में इतवार का दिन ही तो मनोरंजन का होता है। मैंने सोचा अगर हम पिक्चर न देख सके तो मधु को कितनी निराशा होगी, काश मैं उस बुड्ढे को वहीं रोक लेता। कभी-कभी हम कैसी बेवक़ूफ़ी की हरकतें कर डालते हैं। भला दो आने के लिए अड़ जाने की क्या ज़रूरत थी। शायद यहाँ पैसे का सवाल नहीं, सौदेबाज़ी का सवाल था। हम सौदेबाज़ी में मात नहीं खाना चाहते। शायद मुझे मधु का बचपन बुरा लगा था। अगर मुझे मालूम होता कि यहाँ रिक्शा एक सिरे से ही नहीं मिलेगी, तो मैं बुड्ढे को छः आने क्या एक रुपये पर भी रोक लेता। मैंने हैरान होकर नौकर से पूछा—"क्या यहाँ एक भी रिक्शा नहीं है?"

"नहीं साहब! एक है सो पहले ही से लगा हुआ है," फिर उसने कुछ रुक कर कहा—"अगर आप टहलते हुए ज़रा आगे तक चले जाएँ, तो हो सकता है कि आपको रेलवे के पुल के नीचे कोई रिक्शा मिल जाए।"

हम बोझिल दिल से उठे। मैं दिल-ही-दिल में अपने आप कोस रहा था। मधु पैदल चल नहीं सकती थी। यों भी सिनेमा व से एक मील से कम न था।

हम फाटक से बाहर निकले तो देखा कि रेलवे का पुल भी को ऐसा नज़दीक तो नहीं है। इधर-उधर नज़र दौड़ाई तो पीपल के पे के नीचे एक रिक्शा दिखाई दिया, वही जिसके बारे में नौकर ने बता था कि लगा हुआ है। मुझे अपने आप पर रह-रह कर गुस्सा आ रहा था।

इतने में यह रिक्शा वाला हमारी तरफ़ बढ़ा तो मैंने पहचान लिया कि यह तो वही बुड्ढा है।

पास आकर बुड्ढा सीट साफ़ करने लगा तो मैंने कहा—"अ तो तुम हो! तुम हमारे लिए रुक गए थे?"

वह कुछ नहीं बोला। हम बैठ गए तो वह चुपचाप अपनी गा साफ़ करने लगा, और फिर धीरे से बोला—"हम दो आना कम लेव?"

मुझे अपनी जीत का एहसास हो रहा था। इस जीत के बा यों मैं उसे आठ आने देने को तैयार था।

कुछ मधु पर अपनी दुनियादारी का रोब गाँठने और कुछ बुड्ढे को और रंग देने के ख्याल से मैंने फिर कहा—"बाबा, तुम तो कहे थे कि कम न होई!"

बुड्ढा उस वक्त पैडल पर पाँव रख कर रुक गया। क्षण भ उसने अपनी बूढ़ी आँखों से मेरी ओर देखा, फिर बड़ी गम्भीर आवाज़ में बोला—"हमऊँ सोचा कि जो इहाँ कोई और रिक्शा न मिली तो बिटिया को तकलीफ़ होई!"

यह सुनकर मैं मानो दुनिया में अकेला रह गया। मधु की ओ देखने की मेरी हिम्मत भी नहीं हुई।

वह काली-काली टाँगें एक बार फिर ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर चल रही थीं, लेकिन मैंने अबके साफ़-साफ़ देखा—वे लक की हरगिज़ नहीं थीं! उनमें भी लाल-लाल और ज़िन्दा लहू झलक रहा था।

●

अन्धकार—(पृष्ठ ३३ का शेषांश)

मैंने उत्तर नहीं दिया। लड़का चला गया और उसने जाकर बगल वाले एक अन्य सज्जन के सामने हाथ पसारा। चाहे जितना दावा करे, हाथ पसारना ही है।

सज्जन ने पूछा—तेरा और कौन है।

—माँ—कह कर लड़के ने गैस बत्ती की तरफ कहीं उँगली दिखा दी—वह रही।

एक भद्र ढंग की महिला वहाँ अर्द्धगुंठिता खड़ी थी। आसपा से कुछ मन्तव्य सुनाई पड़े। मुझसे सहन नहीं हुआ। मैं जल्दी से ए रुपया निकाल कर उस तरफ गया, पर गैस की रोशनी में उस महि के मुख की तरफ ताक कर मैंने रुपए वाले चोट खाए हुए हाथ को ढं में डुबो दिया।

अनुवादक—माया गु

●

भारत के विदेशी व्यापार की कुछ नई प्रवृत्तियाँ—(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

उठाने का प्रयत्न किया जायगा। अगली पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए दुर्लभ विदेशी मुद्रा बचाने के लिए हमें प्रत्येक संभव उपाय से अनावश्यक वस्तुओं के आयात को रोकना तथा निर्यात को बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

भारतीय विदेशी व्यापार के संबंध में अंत में यह जानना उपयो होगा कि हमारे देश से कौन-सी मुख्य वस्तुओं का निर्यात तथा किन आयात होता है, तथा किन देशों के साथ हमारा व्या अधिक है।

हरियाणा प्रदेश

देवव्रत शर्मा वशिष्ठ

हरियाणा के सम्बन्ध में एक आम कहावत प्रचलित है, जो इस प्रकार है :

"देसाँ में देश हरियाणा, जित दुग्ध दही का खाणा।"

उक्त कहावत जहाँ इस गौरवशाली प्रदेश के पौष्टिक भोजन की द्योतक है, वहाँ इसमें इस प्रदेश के आतिथ्य सत्कार की भी एक झलक दृष्टिगोचर होती है। सघन वनों से आच्छादित और खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भर यह प्रदेश देश के सर्वाधिक पिछड़े हुए प्रदेशों में से एक है। ब्रिटिश शासनकाल में यह सदैव राष्ट्रीय विचारधारा का प्रबल समर्थक और सहायक रहा, जिसके दण्डस्वरूप अंग्रेज़ों ने सदैव इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा, और इसकी प्रगति पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। फलस्वरूप यह प्रदेश देश के अन्य उन्नतशील प्रदेशों की तुलना में सर्वाधिक पिछड़ा रह गया। किन्तु इसका एक विशेष लाभ यह हुआ कि इसकी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होने पाया, और वह आज भी अपने पूर्वरूप में विद्यमान है। मूल भारतीय संस्कृति का हरियाणा सदैव से ही पोषक रहा है।

हरियाणा की ग्रामीण स्त्रियाँ

इस प्रदेश का आतिथ्य सत्कार न केवल भारत अपितु विदेशों तक में प्रसिद्धि पा चुका है। आज भी आप हरियाणा के किसी भी गाँव में चले जाइए, आपको प्रत्येक ग्रामवासी के यहाँ कम से कम एक-एक दो-दो स्वस्थ एवं दुधारू गाएँ अवश्य बँधी हुई मिलेंगी। यहाँ के दैनिक भोजन में दुग्ध, दही, छाछ, शुद्ध घृत एवं मक्खन का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया जाता है। यहाँ के पौष्टिक भोजन का ही यह प्रभाव है कि यहाँ के निवासी शरीर से अत्यन्त सुदृढ़ एवं स्वस्थ होने के साथ-साथ आत्मिक बल से भी बलवान हैं। कृत्रिमता तो यहाँ के निवासियों को लेशमात्र भी नहीं छू गई। यहाँ के निवासी अत्यन्त भोले-भाले, निष्कपट, सत्य एवं मिष्टभाषी, अत्यन्त नम्र एवं हृदय से उदार हैं।

इस प्रदेश के लोगों के शारीरिक बल की तुलना नहीं की जा सकती। एक समय में तीन-चार मन बोझ उठा लेना तो यहाँ के लोगों के लिए मामूली-सी बात है। परिश्रम करने में यहाँ की स्त्रियाँ भी पुरुषों से किसी प्रकार कम नहीं और वे भी पुरुषों से कन्धे से कन्धा मिला कर घर पर खाना बनाने से खेतों में बुआई तथा कटाई आदि के कामों में पूर्ण सहयोग देती हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ प्रायः रात के तीसरे पहर उठ कर ही गृह कार्यों में लग जाती हैं, किन्तु इससे पूर्व वे गाँव के कुएँ से स्वयं अपने हाथों से पानी खींच कर लाना नहीं भूलतीं। जिस समय स्त्रियाँ अपने सिर पर ३-४ मटके अथवा पानी से भरे अन्य बर्तन लाती हैं, वह दृश्य देखने योग्य होता है।

हरियाणा नाम की उत्पत्ति

इस प्रदेश का नाम हरियाणा क्यों और कैसे पड़ा, इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि 'इन्द्रप्रस्थ से द्वारिका जाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण के रथ के जाने का यही निर्दिष्ट मार्ग था।' यह भी प्रसिद्ध है कि पाण्डवों ने अपने शासन-काल में राजधानी से सम्बन्ध जोड़ने के लिए जिन नए दो मार्गों का निर्माण किया था, उनमें से पश्चिम को जाने का लगभग २५० कोस तक का मार्ग इसी हरियाणा प्रदेश के मार्ग से होकर जाता था। दिल्ली के निकट नजफ़गढ़ से प्रारम्भ होने वाली परमिट की सड़क जो आज जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है, इसका प्रमाण है।

हरियाणा के यशस्वी पत्रकार एवं सुदर्शन सम्पादक एवं पं० माधवप्रसाद जी मिश्र ने हरियाणा की व्याख्या करते हुए एक स्थान पर लिखा है : "हरियाणा वेद विदित कुरुक्षेत्र भूमि का सहोदर है और इस प्रान्त की भाषा से उस प्राकृत का घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिससे वर्तमान हिन्दी का जन्म हुआ है। भिवानी स्थित हरियाणा शेखावाटी

ब्रह्मचर्याश्रम के संस्थापक एवं संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान विद्यामार्तण्ड स्वा० सीताराम जी शास्त्री ने हरियाणा की गौधन भूरि को पवित्रतम माना है।

यही नहीं हरियाणा के प्रसिद्ध वैदिक इतिहास रिसर्च स्कालर पं० प्रभुदयाल ने तो अपनी गवेषणा एवं खोजों के आधार पर हरियाणा को ही सृष्टि का उद्गम स्थल माना है। अस्तु, इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—"यूरोप के भाषा विज्ञानी कहते हैं कि ईसा से पूर्व १० सहस्र वर्षों से अधिक समय बीत गया है जबकि पुरातत्वज्ञ स्वस्तिक चिन्ह के अनुयायी इसे साथ लिये सारे एशिया, यूरोप तथा चीन आदि देशों में फैल गए थे। खोजों से पता चलता है कि समस्त जगत के देशों में स्वस्तिक खुदाई में से पाए गए हैं। यूरोप के पुरातत्वज्ञ कहते हैं कि कभी हम सारे आर्यन, एर्यन, इंडियन, इंडोयूरोपियनादि सब एक स्थान पर बसते थे, एक भाषा बोलते थे। परन्तु वे उस देश का पता अभी तक नहीं लगा सके? जो त्वष्टाम्, हरियाणा, भारतवर्ष ही है अन्य कोई नहीं!"

प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग ने, जो शताब्दियों पूर्व भारत की सद्भावना यात्रा पर आया था, इस प्रदेश (हरियाणा) के आतिथ्य-सत्कार के सम्बन्ध में लिखा है कि "इस प्रदेश में मेरा आदर-सत्कार सर्वत्र दूध-दही और मक्खन से हुआ। जब कभी मैंने यहाँ पानी की माँग की तो यहाँ के निवासियों ने अत्यन्त सहज एवं मृदु स्वभाव से उत्तर दिया कि उसे आप केवल जंगल में ही पी सकते हो।" इस प्रकार इससे इस बात की पुष्टि हो जाती है कि किसी समय यहाँ दूध-दही की नदियाँ बहती थीं।

विक्रमी १४वीं शताब्दी के अन्तिम भाग के एक शिलालेख में दिल्लिका (वर्तमान दिल्ली) नामक पुरी को तोमरवंश द्वारा निर्मित बताया गया है, उसी के एक भाग में हरियाणा को स्वर्गभिन्न कहा गया है! अर्थात हरियाणा प्रदेश की तुलना स्वर्ग से की गई है। इससे जहाँ हरियाणा के समृद्धशाली होने का आभास मिलता है, वहाँ यह भी सिद्ध होता है कि उस समय इसकी सीमाएँ दिल्ली तक विस्तृत थीं।

हरियाणा को पंजाब के साथ क्यों मिलाया गया?

हरियाणा जो कि पहले एक स्वतन्त्र प्रदेश था और आरम्भ से ही और विशेषकर विप्लव के दिनों में तो यह राष्ट्रीय विचारधारा का कट्टर समर्थक बन गया था, जिसके कई प्रमाण मिलते हैं और इसी के दण्डस्वरूप अंग्रेज़ों ने इसे पंजाब के साथ मिला दिया।

मुस्लिम शासनकाल में यहाँ के कई प्रसिद्ध वंशों ने उदयपुर के महाराणाओं का साथ देकर अपनी राष्ट्रीय भक्ति का परिचय दिया और उनकी सेनाओं में विभिन्न प्रतिष्ठित पद प्राप्त किए। पानीपत के प्रसिद्ध युद्ध में यहाँ के केवल एक-दो वर्गों को छोड़ कर शेष सारे हरियाणा प्रदेश ने पेशवाओं का साथ दिया था। भारतीय स्वतन्त्रता हेतु सन् १८५७ में लड़ी गई प्रथम लड़ाई, जिसे अंग्रेज़ों ने गदर अथवा विप्लव का नाम दिया, में भी हरियाणा ने अपनी राष्ट्रभक्ति का परिचय दिया। और यही एक विशेष कारण था कि अंग्रेज़ों ने इसका विलय पंजाब के साथ किया। अंग्रेज़ों ने केवल इतने से ही संतोष नहीं कर लिया

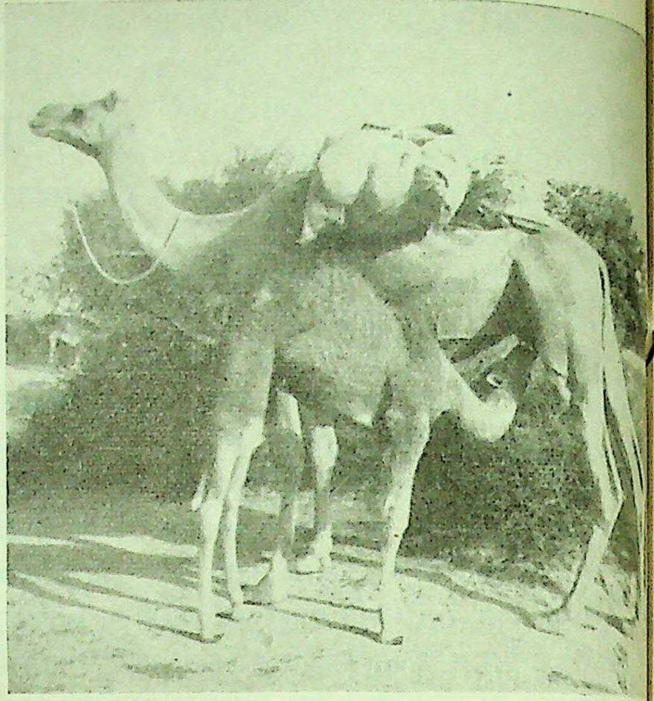

हरियाणा का प्रिय पशु : ऊँट

अपितु इसकी राष्ट्र भक्ति के दण्डस्वरूप और भी कड़ा दण्ड का संकल्प कर लिया और शीघ्र ही अपने इस विचार को मूर्त्तरूप दे दिया, फलतः झज्जर की नवाबी समाप्त करके उसके क्रमशः भाग नाभा, जींद तथा पटियाला के साथ मिला दिए गए। क्यों सिखों ने उस समय अंग्रेज़ों का साथ दिया था और अपने ही देश साथ राष्ट्र द्रोह किया था शेष सम्पूर्ण हरियाणा प्रान्त को राज्य के साथ मिला दिया गया। हरियाणा से जो भी सीधे (राजपथ) दिल्ली जाते थे उन सब को नष्ट कर दिया गया, इस प्रदेश का दिल्ली से कोई सम्पर्क न रह जाए। केवल मात्र विशेष भागों को नष्ट करने के हेतु ही एक अंग्रेज़ अफसर कर्नल को बारी-बारी भिन्न-भिन्न जिलों का जिलाधीश इसलिए नियुक्त गया कि वह प्रत्येक जिले में जाकर राजमार्गों तथा हरे-भरे वनों को काट डाले। वरना यह तो इतिहास प्रसिद्ध है कि का प्रत्येक जंगल नन्दन वन था। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार को के हरे-भरे जंगल देखकर ईर्ष्या होती थी, अतः उन्होंने एक नई चली और यहाँ के भोले-भाले ग्रामवासियों को उपदेश देना किया कि हरियाली से मच्छर पैदा होते हैं, और उनके नहीं कई प्रकार की बीमारियाँ होती हैं और दूसरी ओर चुपचाप प्रत्येक में तथा सड़कों के किनारे लगे छायादार वृक्षों को काट डाला। हरियाणा निवासी उस समय तक इतने शिक्षित नहीं थे कि चालों को समझ सकते और न ही उनकी आवाज़ का उस समय महत्त्व था। अतः यहाँ की बहुमूल्य सम्पदा पूर्णतया नष्ट हो जिसकी क्षतिपूर्ति आज तक नहीं हो सकी है। यही एक विशेष कि अब प्रायः हर तीसरे-चौथे वर्ष इस प्रदेश में अकाल पड़ते रहते और वर्षा कदापि समय पर नहीं होती। न केवल प्राचीन ऋषि,

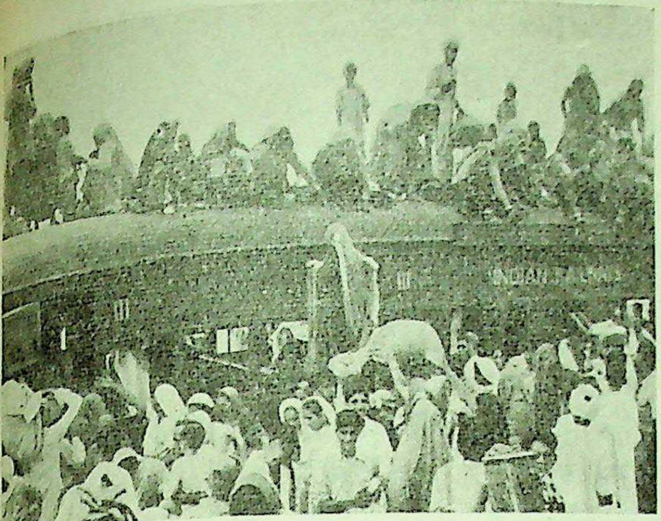

मेले की ओर जाते हुए

अपितु आज के वैज्ञानिकों का भी मत है कि जहाँ हरे-भरे वन होते हैं, वहाँ वर्षा समय पर और पर्याप्त मात्रा में होती है।

संस्कृति के क्षेत्र में हरियाणा देश के अन्य भागों की तुलना में सबसे अग्रगण्य रहा है। कुछ समय पूर्व तक तो यहाँ प्रत्येक ग्राम के साथ-साथ एक-एक संस्कृत पाठशाला होने के भी प्रमाण मिलते हैं। हरियाणा का भिवानी नगर स्थित श्री हरियाणा शेखावाटी ब्रह्मचर्याश्रम तो सर्वविदित ही है। इस प्रदेश में संस्कृत पाठशालाओं, उसके आचार्यों एवं ब्रह्मचारियों को आज भी अत्यन्त श्रद्धा एवं आदर की दृष्टि से देखा जाता है। प्रत्येक ग्राम में एक गोशाला भी अवश्य ही होती थी। यहाँ सुन्दर स्वस्थ एवं दुधारू गायों के साथ लँगड़ी-लूली तथा दूध से सूखी हुई गायों को भी रखा जाता था। किन्तु आज स्थिति इसके विपरीत है, गो-पालन पर भाषण कर्त्ता तो अधिक हैं, किन्तु उसको मूर्तरूप देने वाले नहीं के बराबर हैं। इस प्रदेश में संस्कृति की बढ़ती हुई लोकप्रियता देख कर और उसे अंग्रेज़ी के विकास में बाधक समझ कर अंग्रेज़ों ने इस कहावत को मूर्तरूप दिया कि घर तो जलेगा ही चूहे भी क्या सुख पाएँगे? और इस प्रकार सन् १८७४ में हिन्दी के स्थान पर उर्दू को राजभाषा घोषित कर दिया गया। उर्दू को राजभाषा बनाने का सर्वाधिक लाभ यह हुआ कि उर्दू का अवलम्बन पाकर इस प्रदेश में अंग्रेज़ी का भी समुचित विकास हुआ।

हरियाणा कृषि प्रधान प्रदेश है और यहाँ के निवासियों की जीविका का मुख्य साधन खेती-बाड़ी है। यहाँ की मुख्य उपज, क्रमशः गेहूँ, चना-बाजरा, गन्ना तथा जवार आदि की है। भूमि यहाँ की काफी उपजाऊ है। केवल दो विशेष जातियों—वैश्य तथा ब्राह्मणों को छोड़कर शेष प्रायः सभी जातियाँ आज भी खेती-बाड़ी पर ही निर्भर करती हैं। हरियाणा के पशु अपनी नस्ल के लिए विश्व विख्यात हैं। हिसार का 'कैटल फार्म' एशिया का सबसे बड़ा पशु पालन केन्द्र है। यहाँ के यातायात के मुख्य साधनों में बैलगाड़ियों, ठेले, रथ, बहल तथा ऊँटों का ही सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। भिवानी का अनाथालय तथा दो कपड़ा मिलें इस प्रदेश के सबसे बड़े औद्योगिक केन्द्र हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से पंजाब सरकार इस प्रदेश के विकास पर समुचित ध्यान देने लगी है, जिससे आशा है हरियाणा अपने अतीत के शानदार गौरव को पुनः प्राप्त कर सकेगा।

●

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक—(पृष्ठ ४१ का शेषांश)

चाहिए कि सन् १९०४ के वर्ष से ही देश की राजनीति में तिलक युग का आरम्भ हुआ। उसके बाद तो लोकमान्य का प्रभाव देश भर में बढ़ता ही चला गया और यद्यपि काँग्रेस पर सन् १९२० तक नर्मदल वालों का अधिकार रहा, तथापि देश को और काँग्रेस को सम्पूर्ण राजनीतिक प्रेरणा और संघशक्ति लोकमान्य से ही प्राप्त होती रही।

सन् १९०७ में सूरत काँग्रेस में खुला विभाजन हो गया उसके अगले ही वर्ष लोकमान्य पर फिर राजद्रोह का मुकद्मा चलाया गया और उन्हें छः वर्ष का कारावास हुआ। इस बार उन्हें माण्डले भेज दिया गया। अब सम्पूर्ण देश का समर्थन लोकमान्य को प्राप्त हो गया। लोकमान्य की अनुपस्थिति में उनके अनुयायियों ने नागपुर में एकत्र होकर एक मुकाबले की काँग्रेस खड़ी करने का यत्न किया। परन्तु लोकमान्य ने जेल से आकर इस का समर्थन नहीं किया। वह काँग्रेस को आगे बढ़ाना चाहते थे, 'उसमें फूट डालना उनका लक्ष्य नहीं था। परिणाम यह हुआ कि लखनऊ में न केवल काँग्रेस के सब दल इकट्ठे हो गए, बल्कि हिन्दू-मुसलमानों में एक समझौता भी हुआ, जिसे लखनऊ के समझौते के नाम से याद किया जाता है। इस समझौते को लोकमान्य का समर्थन और आशीर्वाद प्राप्त था। उन्हें आशा थी कि इससे अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध वह सब शक्तियों को एकत्रित कर सकेंगे।

महात्मा गान्धी जब काँग्रेस के कर्णधार बने तो लोकमान्य जीवित थे। महात्मा गान्धी की प्रगतिशील राजनीति को लोकमान्य का पूर्ण समर्थन प्राप्त था। केवल साधनों के सम्बन्ध में लोकमान्य राजनीति को 'अहिंसा नीति' के बन्धन में सर्वथा बाँध देने के विरुद्ध थे। उनका मत यह था कि जैसा समय, अवस्थाएँ, और परिस्थितियाँ हों उन्हीं के अनुसार साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। लोकमान्य के अन्य अनुयायी भी उस समय अहिंसा नीति को संदेह की दृष्टि से देखते थे। परन्तु आने वाली घटनाओं ने प्रायः लोकमान्य के सभी समर्थकों को महात्मा गान्धी का समर्थक बना दिया था। दुर्भाग्य से लोकमान्य सन् १९२१ और उसके बाद के राष्ट्रीय आन्दोलनों को देखने के लिए जीवित न रह सके। अन्यथा राष्ट्रीय आन्दोलन को उनसे अवश्य ही महान प्रेरणा मिलती। देश की परिस्थितियों, देश की जनता की शक्ति और सामर्थ्य के अनुरूप ही साधन भी हो सकते हैं। राष्ट्र का आन्दोलन जो सम्पूर्ण जनशक्ति के सक्रिय सहयोग और समर्थन पर आश्रित था व्यावहारिक रूप से सामूहिक अहिंसा नीति पर कायम रहते हुए ही चलाया जा सकता था। परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतन्त्रता संग्राम की अन्तिम सफलता तक निरन्तर लोकमान्य के

(शेष पृष्ठ ५४ पर)

दिल्ली और उसकी वेदनाएँ

राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह

(गतांक का शेषांश)

औरंगज़ेब की मृत्यु के उपरान्त ही मुगल साम्राज्य का टूटना आरम्भ हो गया। इसके बाद जो अधिकार की लड़ाइयाँ हुईं उनमें दिल्ली को बड़े-बड़े कष्ट उठाने पड़े, कठिन पीड़ाओं का मुकाबला करना पड़ा। ज़फ़र के शब्दों में बार-बार विधाता ने उसे……

"झटके पर झटके दिए, सदमे पर सदमे लाखों"

औरंगज़ेब के पुत्र बहादुरशाह प्रथम ने बहुत हद तक अपने पुरखों की परम्परा निभाई। राजपूत, सिख, मराठे, जाट, सबसे लड़े और कामयाबी से लड़े पर जीत कर भी सबके साथ मित्रता का व्यवहार किया। उदयपुर, जोधपुर दोनों राज्यों को स्वतन्त्रता दी, संबा जी के पुत्र साहुजी को बन्दीगृह से मुक्त किया, फिर सिखों से भिड़े, पर अधिक सफलता न हासिल कर पाए थे कि प्रायः ७० साल की उम्र में लड़ाई के पड़ाव में ही इस संसार से वह चल बसे और फिर उसके बाद क्या हुआ उसका वर्णन एक अंग्रेज़ इतिहासज्ञ के शब्दों में सुनिए,

"बादशाह की छावनी में कुहराम मच गया। हर तरफ से ज़ोरों की आवाज़ आने लगी। नैश अन्धकार में ही अमीर-उमरा तथा उच्च-पदाधिकारी—बादशाह का खीमा छोड़ शाहज़ादों का साथ देने दौड़े। वे जो किसी दल में शामिल न थे, समझ न पाए कि उनकी किस्मत में क्या लिखा है आतंक से भरे अपने परिवारों के साथ शहर की ओर चल पड़े। दुष्ट और हत्यारे सामान लूटने में संलग्न हो गए। छोटी-छोटी दूकानों में लोग शरण लेते हुए नज़र आए। मित्र और सम्बन्धी पुकार सुनते पर कुछ न कर पाते थे। शाहज़ादों की फौजों में घोर अशान्ति फूट पड़ी, तथा श्रेष्ठ जन जीवन रक्षा से निराश-से हो उठे। फौज के सिपाही ज़ोर-ज़ोर से अपने वेतन माँगने तथा साधारण नौकरों के साथ होकर अपशब्दों का व्यवहार करने लगे—गालियाँ देने लगे—और जो कुछ भी पाते उसे हथियाने लगे। पिता पुत्रों की रक्षा करने में असमर्थ थे, पुत्र पिता की। सभी आत्मरक्षा में व्यस्त थे और इस दृश्य को देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो क़यामत के दिन आ गए हैं।"

प्रायः सारे देश में आगामी एक सदी तक यही हाल रहा, कम या अधिक, और दिल्ली बराबर अशान्ति की चक्की में पिसती रही। बहादुरशाह के बाद से मुहम्मदशाह तक जितने भी बादशाह हुए, निकम्मे तथा ऐशोआराम में दिन बिताने वाले तथा राज परिवार के सभी जन राजासन के लिए एक दूसरे से श्वान-रीति से लड़ते रहे। मुगल साम्राज्य की सीमा दिन-प्रतिदिन क्षीण होती गई तथा मुगल वंश के आधिपत्य का सूर्य अस्तगामी हो चला। उस वंश का, जिसने अकबर तथा शाहजहाँ जैसे पुरुष रत्न पैदा किए, विनाश निकटप्राय था।

भारत के राजनीतिक व्योममण्डल में उन दिनों दो जाज्वल्यमान थे—अफगान उत्तर में, मराठे दक्षिण में। अफगानों नेता अहमदशाह अब्दाली में वीरता थी, लड़ने की दक्षता एवं भी, पर राजनीतिक एकता और संगठन की कमी थी। मराठों में और युद्ध कौशल दोनों ही पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे पर पास पैसों की कमी से समुचित साधन न थे। वर्षों की लड़ाई कारण उनकी आर्थिक दशा क्रमशः क्षीण हो चली थी और किसी युद्ध में अधिक दिनों तक लगा रहना उनके लिए असम्भव था। पानीपत के युद्धक्षेत्र में जब इन दोनों, मराठों तथा अफगानों, मुठभेड़ हुई तथा मराठे हारे तो उस हार का नतीजा स्थायी धारण न कर सका। कुछ वर्षों में ही अफगानों को अपनी बुद्धि कमी के कारण भारत छोड़ना पड़ा तथा मराठे पुनः अपनी आर्थि दशा सुधार एवं युद्ध के साधनों से सुसज्जित हो दिल्ली की ओर आए। पर उनमें सबसे बड़ी कमी पारस्परिक एकता की थी, जिस वे विजय न पा सके। माधव राव सिंधिया, तुकाजी होल्कर आदि पेश के सेनानी यद्यपि युद्धकौशल में पूरे दक्ष थे, मध्य भारत, मालवा आ तक पर उन्होंने अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी, फिर भी पारस्प ईर्ष्या एवं द्वेष के कारण वे तरक्की न कर पाए—मराठा साम्राज्य नींव न डाल सके। उत्तर में सिख जिन्हें बहादुरशाह प्रथम फ़र्रूखसियर ने पहाड़ों में मार भगाया था—पुनः बाहर निकल और पंजाब में दल बाँध कर विचरने तथा स्थानीय ज़मींदारों पर कि अधिकतर मुसलमान थे आघात पर आघात देने लगे और अन्त बारह संगठित दलों का निर्माण किया। अवध में नवाब शुजाउद्दौ की तूती बोल रही थी, आगे चलकर वह मुगल साम्राज्य के वज़ीर मुकर्रर हुए पर उसे बचा न पाए। दिल्ली के पूर्व, गंगा नदी तथा कुमा के पहाड़ों के बीच रोहिलखंड में जो कि किसी समय अवध का एक हिस्सा था, पर जिसे नादिरशाह के भगाये हुए अफगानों को रुहे नामक एक जाति ने सन् १७४० में अपने अधिकार में कर लिया अफगान अशान्ति एवं उपद्रव के कारण हो रहे थे। गरज़ यह दिल्ली के चारों ओर विभिन्न शक्तियों ने अपना आधिपत्य जमा था। प्रायः १२० मील लम्बी तथा १०० मील चौड़ी भूमि वह उसी प्रकार स्थित थी जैसी कि दंतपंक्तियों के बीच जिह्वा "जिमि दशनन मँह जीभ विचारी!" यह क्षेत्र अब भी बादशाह अधीन था, पर नाम मात्र को ही। कई सरदारों के बीच जिन

ज़िम्मेदारी लड़ाई के समय लड़ने तथा शाही फौज के लिए सेना प्रस्तुत करने की थी, बँटी हुई थी और वे किसी कदर कम दुखदाई न थे। रैयतों में जाट ज़्यादा थे और वे सूरजमल नामक एक व्यक्ति के नेतृत्व में काफी संगठित हो गए तथा अन्त में सन् १७१४ ई० में दिल्ली तक आ पहुँचे। उसे इनके हाथों भी लूट-मार सहनी पड़ी। सूरजमल ने ही वर्तमान भरतपुर राज्य की नींव डाली। इस क्षेत्र के पश्चिमी भाग में मुसलमान मियों तथा हिन्दू गुर्जर उपजातियों की आबादी थी। ये जिप्सियों की तरह घुमक्कड़ थे तथा जब कभी शासन का हाथ कमज़ोर पाते लूट-पाट में लग जाते थे। उत्तर-पश्चिम के हिस्सों में सिखों के लुटेरे दल घूमा करते तथा अशान्ति फैला रहे थे। आगे चलकर इन्हीं दलों ने पटियाला आदि राज्यों की स्थापना की। केन्द्रीय सरकार के कमज़ोर पड़ जाने का एक ज़बर्दस्त नतीजा यह हुआ कि चारों ओर भय का साम्राज्य हो गया तथा दिल्ली के इर्द-गिर्द दूरों तक लुटेरों ने ऐसी परिस्थिति कर डाली कि दिन-दहाड़े डाके पड़ने लगे, किसी की जान-माल सुरक्षित न रही। लोगों ने लूट के भय से खेती करनी छोड़ दी। अच्छी-अच्छी ज़मीनें गैरआबाद रहने लगीं तथा सड़कों के आस-पास से हटकर लोगों ने अपने घर दूर-दूर पर बसाए ताकि लुटेरों की आँखों से बचे रहें। गाँवों के चारों ओर मिट्टी की ऊँची-ऊँची दीवारें खड़ी कर लीं जो आज भी दिल्ली के चतुर्दिक मीलों तक लक्षित हैं, या प्राचीन टूटे-फूटे किलों और सरायों के अन्दर जाकर वे बस गए। बिना अस्त्र-शस्त्र से रास्तों से चलना अपनी जान को घोर संकट में डालना था। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" सोलहों आने चरितार्थ था। वर्षा की कमी, सतत लूटमार, नहर का अभाव आदि कारणों से कृषि-सम्बन्धी कार्यों तथा भूमि की उपज में उत्तरोत्तर कमी होती गई, दिल्ली शहर ही नहीं बल्कि आस-पास मीलों तक फैली हुई भूमि उजाड़-सी हो गई। एक लम्बे अर्से तक यही स्थिति रही और यदि दिल्ली की अड़ोस-पड़ोस की ज़मीनों को आप ध्यानपूर्वक देखेंगे तो इस स्थिति के अवशेष आज भी जहाँ-तहाँ देखने को मिलेंगे।

बादशाह के शासनाधीन केवल दिल्ली तथा आस-पास की जगहें रह गईं थीं जिनकी आय से उनके तथा राजपरिवारों के इतरजनों के काम किसी भाँति चलते रहे। उनके समक्ष जो सबसे बड़े महत्व का प्रश्न था वह था पार्श्ववर्ती राजशक्तियों के सम्बन्ध का। ये शक्तियाँ काफी शक्तिशाली थीं, पर इनमें भी एक जबर्दस्त कमी थी और वह यह कि उनका शासन सुगठित न था। किन्तु ये सभी सिख, राजपूत, जाट, मराठे तथा रूहेले—काफी वीर थे तथा युद्ध क्षेत्र में अपने अद्भुत बल का परिचय देते थे। साथ ही ये सभी, धन और शक्ति के प्रबल लोभी थे तथा सबों का उद्देश्य एक ही था—दिल्ली को अपने प्रभाव तथा नियन्त्रण में लाना। इस उद्देश्य-पूर्ति के लिए उनके बीच पारस्परिक संघर्ष चलता रहा। स्पष्ट है कि इस परिस्थिति में यदि बादशाह चाहते तो एक को दूसरे से लड़ा कर अपनी सत्ता कायम ही नहीं रख सकते बल्कि बढ़ा भी सकते थे, पर तत्कालीन बादशाहों में न तो इस उद्देश्य सिद्धि की योग्यता ही थी न उनके पास योग्य व्यक्ति ही थे, फलतः इस काम को वे पूरा न कर पाए।

पर सर्वसाधारण में अब भी बादशाह के नाम का काफी प्रभाव था। ऊनके उपर वह जादू का-सा असर डालता था, यही कारण था कि माधव राव सिन्धिया तथा निज़ाम जैसे लोग भी अपने कामों पर बादशाह की स्वीकृति की मुहर लगवाते रहे। उदाहरणार्थ, सन् १८०३ ई० में जब निज़ाम गद्दी पर बैठे तो उन्होंने बादशाह की स्वीकृति की याचना की। मेजर ब्राउन ने तभी तो लिखा था, "मैं शाह आलम के नाम को उतना ही महत्व का मानता हूँ जितना कि पार्लियामेंट का कोई कानून।"

स्पष्ट है कि उपर्युक्त परिस्थितियों में दिल्ली को बारम्बार लूट-पाट एवं रक्त-प्रवाह के दावानल में दग्ध होना पड़ा। शक्तिहीन बादशाह, चतुर्दिक शक्तिशाली व्यक्तियों का दिल्ली पर अधिकार जमाने की चेष्टा, नादिरशाह जैसे बाहरी आक्रमणकारियों की चढ़ाई—संक्षेप में, तत्कालीन दिल्ली का यही इतिवृत है।

बहादुरशाह प्रथम के युद्ध क्षेत्र में मरने की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। उनके पौत्र फर्रुखसियर की मृत्यु १७१९ में हुई और दिल्ली के तख्त पर मुहम्मद शाह रँगीला बैठा। वह पुरुषार्थहीन व्यक्ति था और सारा वक्त ऐशोआराम में बिताया करता था। इसके शासन-काल में ही प्रथम मराठों ने दिल्ली में प्रवेश पाया जबकि तालकटोरा में मुग़ल सेना के साथ उसकी जमकर लड़ाई हुई। बादशाह की ओर से निज़ाम जो उसके प्रधान मन्त्री थे और उसका सच्चे दिल से भला चाहते थे, बड़ी चेष्टाएँ करके भी कुल ३४ हज़ार ही सिपाही जुटा पाए। बाजीराव की जीत हुई। विवश होकर निज़ाम को उनके संग संधि करनी पड़ी जिसके अनुसार नर्मदा तथा चम्बल के बीच का सारा इलाका मालवा प्रान्त के साथ-साथ, मराठों को देना पड़ा।

बादशाह के सलाहकारों में निज़ाम ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो उसका हित ही नहीं चाहते थे बल्कि इस योग्य थे कि इस टूटते हुए साम्राज्य के स्तम्भ बन सकें, पर धीरे-धीरे उनका ही दिल स्वयं टूटने लगा कारण बादशाह का निकम्मापन तथा दरबार में शोहदों का बोलबाला था। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, बादशाह स्वयं विलासी था, राज्य-कार्यों में कोई दिलचस्पी नहीं रखता था, अपनी एक प्रेमिका के हाथों का गुलाम था। वह अँगूठी जिस पर राज्य की मुहर अंकित थी, उसे दे रखी थी और वह जिस तरह भी चाहती उसका दुरुपयोग करती थी। वृद्ध निज़ाम आसफजाह के प्रति साधारण शिष्टाचार तक न दिखाती थी। जब कभी वे दरबार में आते उसके इशारों पर दरबार के लौंडे जिनसे वह भरा था और जो बादशाह के दिन-रात के साथी हो रहे थे, कानाफूसी करने लगते, बादशाह से कहते, "हजूर ! दक्कन के बन्दर किस तरह नाचते हैं, देखें।"

क्षुब्ध और अपमानित आसफजाह दिल्ली त्याग कर दक्कन चले गए और इधर दिल्ली के ऊपर मराठों से भी कहीं भयंकर आपदा आ पड़ी।

नादिरशाह जिसने फारस का तख्त छीन गज़नी, काबुल और कान्धार पर भी आधिपत्य जमाया था, सन् १७३२ ई० में सिन्धु पार कर हिन्दुस्तान में आ धमका। खबर दिल्ली पहुँची। बादशाह के सलाहकारों के बीच किस तरह उसका सामना करें, इस सम्बन्ध में

मतैक्य न हो सका। निज़ाम, शाही फौज के सिपहसालार "खाँ दौराँ" तथा अवध के राज्य प्रतिनिधि सादतअली आपस में लड़ते रहे, बादशाह में यह ताकत नहीं कि वह उनके पारस्परिक कलह पर नियन्त्रण कर सकें, इधर फारस की फौज दिल्ली की ओर अग्रसर होती गई। पानीपत के आस-पास बादशाह की सेना जिसे सादतअली तथा "खाँ दौराँ" ने सम्मिलित चेष्टा कर अति शीघ्रता में एकत्र किया था, के साथ मुठभेड़ हुई। वह बड़ी बहादुरी से लड़ी, जिसकी नादिरशाह कभी उम्मीद भी न करता था, यहाँ तक कि नादिरशाह फारस लौटने तक को तैयार हो गया बशर्ते कि उसे युद्ध-व्यय की क्षतिपूर्ति के रूप में काफी रुपये मिल जाएँ, किन्तु ठीक ऐसे ही समय में जबकि नादिरशाह वापिस होने के सोच-विचार में पड़ा हुआ था, बादशाह एक प्रबल मूर्खता का काम कर बैठा, पालकी पर चढ़ा हुआ स्वयं नादिरशाह से मिलने को उसकी छावनी में आ पहुँचा। नादिरशाह के हृदय में पुनः साहस जाग उठा। उसने बादशाह का खूब स्वागत किया, पर साथ ही घृणा-भरे शब्दों में बोला—"मुहम्मदशाह! तुमने दक्षिण में काफ़िर हिन्दुओं को कर देकर इस्लाम की इज़्ज़त धूल में मिला दी और जब मुझ जैसा आक्रमणकारी तुम से लड़ने आया तो बजाय इसके कि कसकर लड़ते हार मान ली—पूरे कायर हो तुम!" मुहम्मदशाह इस अपमान का घूँट ज्यों-का-त्यों पी गया, जवाब देने का साहस न हुआ। नादिर को रुपये दिए, दरबार की सबसे निपुण, सुन्दरी गायिका—नूरबाई की भेंट चढ़ाई, इस आशा में कि वह इन्हें लेकर कर्नाल से ही फारस लौट जावेगा, पर नादिरशाह प्रबल धूर्त था और फिर बादशाह की कमजोरियों से पूरी तरह वाकिफ़ भी हो चुका था, धीमे शब्दों में बोला—जहाँपनाह! हिन्दुस्तान आकर आपके घर न जाऊँ, यह शिष्टता के विरुद्ध होगा, मैं आपके साथ दिल्ली चलूँगा।

मुहम्मदशाह के मुँह पर हवाइयाँ उड़ गईं पर विवश था, नादिरशाह के प्रस्ताव को कैसे अस्वीकार करे? अनिच्छा होते हुए भी उसे दिल्ली लाना पड़ा। नादिरशाह ने किले में डेरा डाला तथा सुरक्षा का सारा प्रबन्ध अपने सिपाहियों के हाथ दे दिया। दीवाने-खास में जहाँ कि अब भी शाहजहाँ की ये पंक्तियाँ अंकित थीं, नादिरशाह ने अड्डा जमाया—

स्वर्ग है यदि भूमि के तल पर कहीं,
तो यहीं है, तो यहीं है, तो यहीं। (ऋ)

एक दिन सहसा दिल्ली के बाज़ारों में यह अफवाह उड़ी कि नादिरशाह बादशाह के हुक्म से मार डाला गया। लोग इस ख़बर से इतने उत्साहित हुए कि नादिरशाह के कुछ सिपाहियों को जो बाजार की दुकानों पर आटा-दाल खरीद रहे थे, मार डाला। दो चार ही होंगे, पर आधी रात के समय नादिरशाह के कुछ सिपाहियों ने जाकर उसे इत्तिला दी कि फ़ौज के करीब तीन हज़ार सैनिकों की दिल्ली वालों ने हत्या कर दी। नादिरशाह यह खबर सुनते ही क्रोध से बावला हो उठा, आँखें लाल हो गयीं और उसकी रक्त-पिपासा ने भयंकर रूप धारण कर लिया। आज्ञा दी—दिल्ली के नागरिक तलवार की धार उतार दिए जायें। फिर क्या था, उसके सैनिक दिल्ली वालों पर बाज की तरह टूट पड़े। आधी रात से आरम्भ कर पाँच बजे सुबह तक जो कोई भी मिला—स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी—कत्ल कर दिया गया। घर-घर से खून की धारा बह चली, चाँदनीचौक, दरीबाकलाँ, जामा-मस्जिद का अड़ोस-पड़ोस, सभी आग में जल रहे थे। उससे निकला हुआ धुआँ कोसों में फैल रहा था। ६ घण्टों तक हत्याकांड चलता रहा तथा झरोखे पर बैठा हुआ नादिरशाह उसे देखता रहा।

सुबह होते ही मुहम्मदशाह डरा हुआ उसके पास आया और रोते हुए, नागरिकों की ओर से क्षमा याचना की। नादिरशाह की रक्त पिपासा पूरी हो चुकी थी, उसने हत्या बन्द करने का हुक्म दिया। अपने सिपाहियों पर उसका ऐसा प्रभाव था कि क्षणों में ही वह बन्द हो गई। कहते हैं, दिल्ली के पूरे एक लाख नागरिक इस हत्याकांड के शिकार हुए, एक अंग्रेज़ इतिहासकार के शब्दों में—

बहुत दिनों तक सड़कों पर शव पड़े रहे, जैसे कि किसी पुष्पवाटिका की बीथियों पर सूखी पत्तियाँ तथा फूल बिछे होते हैं। नगर भस्मीभूत हो चुका था ऐसा लगता मानों आग से जला हुआ कोई क्षेत्र हो!

हत्या समाप्त हुई, पर दिल्ली के लोग अब भी चैन न पा सके। प्रत्येक धनी-मानी व्यक्ति से रुपए, जवाहिरात, हाथी-घोड़े जो कुछ भी मिल सके, वसूल किए गए, वह भी बड़ी बेरहमी के साथ। बहुतों ने अपमान और यातना से बचने को आत्म-हत्या की शरण ली। "शहर से नींद और आराम गायब हो गए। हर घर से, हर परिवार से, यंत्रणा-भरे शब्द, दर्द-भरी कराह, सुन पड़ने लगी।"

बादशाह से नादिरशाह ने लाखों रुपए तथा प्रायः साढ़े तीन सौ बरसों के संगृहीत शाही खजाने के जवाहिरात लिए और इनसे भी बढ़ कर तख्त-ताऊस। फिर शाहज़ादी से अपने लड़के का विवाह किया और हिन्दुस्तान से चलता बना। किले को उजाड़-सा कर गया।

१७४७ में नादिरशाह को उसके ही कुछ आदमियों ने, जबकि वह अपने खेमे में सो रहा था, मार डाला। फिर तो उसके साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गए। दक्षिणी हिस्सा अहमदशाह दुर्रानी नामक उसके एक अफगान सामन्त के अधीन आया। उसने भी नादिर की तरह भारत पर आक्रमण किया और यद्यपि पहली बार मुगल सेना के द्वारा परास्त हुआ, पर बाकी आक्रमणों में सफल रहा। दिल्ली को उसने एक बार नहीं कई बार लूटा और दिल्ली को नादिरशाह के आक्रमण के समय जिन विपत्तियों का सामना करना पड़ा था, उन्हें पुनः बारम्बार भुगतना पड़ा। बाहरी चढ़ाई और घरेलू कलह ने वर्षों तक उसे चैन से न रहने दिया। अहमदशाह दुर्रानी के बाद मराठे आए और नगर को बार-बार लूटते रहे। ६ महीनों तक दिल्ली गृह-कलह का शिकार बनी रही जबकि शायद ही कोई ऐसा दिन गया हो जब दिल्ली की सड़कों पर लड़ाइयाँ न हुई हों। सन् १७६० में आलमगीर

(ऋ) अगर फिरदौस बर रू-ए ज़मीं अस्त,
हमीअस्तो हमीअस्तो हमीअस्त।

द्वितीय की हत्या हुई और सारे शहर में अशान्ति छा गई। शाहआलम जो कि इलाहाबाद में निर्वासित थे—ने आकर शासन की बागडोर सँभाली पर मराठों को परास्त न कर सके। अन्त में १७८८ में मराठे शाही महल में आ घुसे और अपना अड्डा जमाया। बादशाह सिन्धिया के हाथों में कठपुतली बने रहे। फिर अंग्रेज़ आए उन्होंने १४ मार्च १८०३ को मराठों को हराया और बादशाह शाहआलम के संरक्षक बन बैठे। अगले वर्ष यानी १८०४ में मराठों ने होल्कर के नेतृत्व में पुनः दिल्ली पर चढ़ाई की, पर लार्ड लेक के द्वारा पराजित हुए, सफल न हो पाए। दिल्ली की रूपरेखा में तब से एक महान परिवर्तन हुआ तथा एक नए इतिहास के पृष्ठ खुले। किले के भीतर बादशाह का शासन बना रहा और बाहर शहर तथा दिल्ली सूबे में—अंग्रेजों का। ५३ वर्षों तक यही सिलसिला चला, फिर आए ५७ के गदर के दिन। बादशाह बहादुरशाह द्वितीय बलवाइयों से जा मिले पर विधाता वाम थे, बलवाई अंग्रेजी ताकत के खिलाफ टिक न सके। तमाम मुल्क में उनकी हार हुई तथा दिल्ली को पुनः एक बार खून-खराबी से गुज़रना पड़ा। अंग्रेज़ों ने शहर को लूटा ही नहीं, बादशाह को कैद कर उनके शाहजादों को कत्ल किया और उनके कटे हुए सर शहर के एक प्रमुख भाग में टाँग दिए। मुगल जाति के दिल्ली में रहने वाले लोग अधिकांशतः मार डाले गये या भाग गये, यही कारण है कि आज दिल्ली में मुगलानी खून वाले ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते।

गदर के बाद बलवाई दिल्ली से भाग निकले, फिर भी अंग्रेज़ों ने न तो लूट-पाट ही बन्द की न कत्लेआम ही। इसका वर्णन स्वयं एक अंग्रेज़ महिला श्रीमती सान्डर्स—जो दिल्ली के तत्कालीन कमिश्नर की धर्मपत्नी थीं—की जबानी सुनिए, एक खत में इन्होंने लिखा था—"सिपाही (अंग्रेज़ी सेना के) जिस किसी को भी पाते हैं मार डालते हैं……शहर का प्रत्येक घर जन विहीन हो रहा है……दिल्ली शहर, जिसकी परिधि ७ मीलों की है, के नगर निवासी अन्न और आश्रय के बिना कालकवलित होते जा रहे हैं।………गड़े हुए धन की आशा में दिल्ली के हर मकान को जो कि धनी मानी व्यक्तियों के निवास-स्थल थे, वे खोद रहे हैं।"

स्वयं बादशाह (बहादुरशाह) के सम्बन्ध में लारेन्स ने सान्डर्स को लिखा था—

"खेद है कि वह बूढ़ा शैतान जैसे ही नज़र आया गोली का शिकार न बना डाला गया—मैं होता तो उसे कैद में न लेता अर्थात गोली का शिकार ही बनाता।"

हफ्तों तक शहर में आतंक का साम्राज्य छाया रहा। लोग घर छोड़-छोड़ कर भाग गये, भोजन और शरणहीन होकर हज़ारों ने अपने प्राण दे डाले। सैनिक पागल कुत्तों की तरह नगर में विचरते तथा जिसे जहाँ पाते मार डालते थे। उनकी रक्त पिपासा और धन लिप्सा दोनों ही जागृत थीं। गड़े हुए धन के लोभ में सैकड़ों, हजारों, मकानों की सहन उन्होंने खोद डाली, सैकड़ों विशिष्ट नागरिक मौत के घाट उतारे गये। लाहौर से सर जौन लारेन्स ने अपने एक खत में पूछा—

"व्यक्तिगत लूटपाट की क्या अब भी इजाज़त है? और क्या अफ़सरान अब भी नेटिवों को गोली का शिकार बनाते फिरते हैं?" हिन्दुस्तानियों के साथ किस तरह बदला लिया गया इसका पता सिर्फ इससे जाहिर होगा कि चन्द दिनों के भीतर ही स्पेशल कमीशन ने, जिसका कम्पनी की सरकार ने निर्माण किया था, ३९२ आदमियों को शूली पर चढ़ाया तथा २०२५ को जेल की सज़ा दी।

दिल्ली के मशहूर मकानों—किले से लेकर जामा और फतहपुरी मस्जिदों तक—में फौज के सिपाहियों का डेरा था। इसके कई हिस्सों को उन्होंने तोड़-फोड़ कर भूमिसात करने के यत्न किए पर पूरी तरह सफल न हो पाये। लाल किला फौज का सबसे बड़ा अड्डा था। तय पाया कि इसके आस-पास के सारे मकान सुरक्षार्थ तोड़ डाले जाएँ (कई सुन्दर मकान तथा मस्जिदें तोड़ी भी गईं) बल्कि सारे दरीबा-कलाँ को भूमिसात कर जमीन खाली कर दी जाय, पर भाग्यवश यह निर्णय काम में न लाया जा सका। दिल्ली को किन्तु एक कड़ी अग्नि-परीक्षा से होकर गुजरना पड़ा।

बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र गोली के शिकार न हुए, परन्तु उन पर सर जान लारेन्स के आदेश से राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया। अदालत बैठी, २७ जनवरी से लेकर ९ मार्च १८५८ तक मुकद्दमों की सुनवाई हुई, सैकड़ों गवाह गुजरे जिन्होंने अंग्रेज़ों के लगाये गये आरोपों का समर्थन किया और अन्त में उन्हें देश निर्वासन की सजा मिली। बहुतेरे ऐसे लोग जिन्होंने उनके द्वारा परवरिश पाई थी, भय एवं लोभ से उनके विरुद्ध साक्षी जा बने। यह एक ऐसी घूँट थी जिसे 'ज़फ़र' आसानी से गले के नीचे न उतार सके। अपनी अन्तर्वेदना का उन्होंने कई स्थलों पर परिचय दिया है, जैसे कि—

(१) छोड़ कर घाट हमें सब हुए चलते-फिरते,
अपनी महरूमी पै हम हाथ हैं मलते फिरते।
(२) आशना जितने हैं सब अपनी गरज़ के आशना,
खूब देखा हमने अपना आशना कोई नहीं।
(३) क्यों वादी-ए-वहशत में न खटका रहे मुझको,
हर झाड़ है दुश्मन मेरा हर ख़ार मुखालिफ़।
(४) हैं लोग दगाबाज़ हुए गिर्द हमारे,
महफ़ूज खुदा रखे "ज़फ़र" इनकी दगा से।
(५) हाय, कहिए किसे यहाँ अपना,
कौन अपना है और कहाँ अपना।
(६) दोस्त अपने हुए "ज़फ़र" दुश्मन,
इस मुसीबत को कौन पहचाने।

प्रायः एक साल तक दिल्ली में बन्दी रहे वह, एक ऐसे मकान में जो गन्दगी से भरा हुआ काल-कोठरी के समान था। यहीं वह तथा उनकी पत्नी ज़ीनत महल निवास करती रहीं। अंग्रेज नर-नारियाँ बहुधा उन्हें देखने जातीं तथा उन्हें चिढ़ाया करती थीं। लार्ड राबर्ट्स ने, जो तब एक छोटे से फौजी अफसर थे, लिखा है—"कई और लोगों के साथ मैं भी बहादुरशाह को देखने गया। वृद्ध सम्राट दुर्गति-भावापन्न नज़र आए और चूँकि देखने से ही ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी भी

यूरोपियन का उनकी ओर ग़ौर से देखना उन्हें अत्यन्त अप्रिय था, मैं शीघ्र ही वहाँ से लौट आया।" १८५८ के अक्तूबर महीने में बादशाह, बेगम ज़ीनत महल, मिर्जा जीवन बख्त, उनकी पत्नी तथा राज परिवार के अन्यान्य स्त्री-पुरुष बैलगाड़ियों से कलकत्ता के लिए फौजी अफ़सर तथा सिपाहियों के पहरे में रवाना हुए। कलकत्ते से रंगून गए और वहीं उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। उनके साथ ही साथ दिल के उनके अनेकों अरमान भी रंगून में ही दफन हुए। उनकी यह तमन्ना—

"हम जो काबे जायेंगे तो वाँ से होकर ऐ ज़फ़र, फिर मदीने को, नज़फ़ को, करबला को, जायेंगे।" भी न पूरी हो पायी।

इधर दिल्ली में अंग्रेज़ों का दमन-चक्र चलता रहा। हजारों आदमी मौत के घाट उतारे गए। उनके ही सम्बन्ध में दिल्ली के एक तत्कालीन शायर मोवीन ने लिखा था—

हुए दफ्न जोकि हैं बेकफन,
उन्हें रोता अब्रे बहार है।
कि फ़रिश्ते पढ़ते हैं फ़ातेहा,
न निशान है, न मज़ार है॥

दिल्ली कुछ काल के लिए पुनः उजाड़ हो गई। उसके दुर्दिन पर आँसू गिराते हुए एक दूसरे शायर ने लिखा—

अजीब कूचए रश्के जिना[1] था देहली का।
बहिश्त कहते हैं जिसको जहां था देहली का।
दिमाग बरसरे हफ्त[2] आसमां था देहली का,
ख़िताब ख़ित्तए—हिन्दोस्तां था देहली का—
ग़ज़ब है उसको कोई शादमां न देख सका,
ज़मीं न देख सकी, आसमां न देख सका।

सौदा ने लिखा—

बागे दिल्ली में जो इक रोज हुआ मेरा गुज़र,
न वह गुल ही नज़र आया, न वह गुलशन, न बहार।
नख्ल पतझड़ हुए और सूखी पड़ी हैं शाखें,
खाक उड़ती है हर इक तरफ़ पड़े हैं ख़सोख़ार[3]
मुस्कराता था जहाँ, गुन्चा व गुल हँसते थे।
अश्के शबनम के भी क़तरे का नहीं वाँ आसार।

और दाग़—जिसके मुतल्लिक इक़बाल ने लिखा था—'नाला शीराज़ का बुलबुल हुआ बग़दाद पर, दाग़ रोया खून के औ जहानाबाद पर'—दिल्ली की दयनीय दशा पर रो पड़े, लिखा—

वह गुल रोख़ाने समनबर के कहकहे न रहे
वह बुलबुलाँने खुश-इलहाँ के चहचहे न रहे।
ज़मीं के हाल पे अब आसमान रोता है,
हर एक फ़िराके मकीं में मकान रोता है,
कि तिफ्लो-औरतो-पीरो-जवान रोता है,
गरज़ जहाँ के लिए एक जहान रोता है।

दिल्ली की तत्कालीन उजड़ी हुई अवस्था का हाल पढ़ कर सह रघुवंश का यह श्लोक स्मरण हो आता है जिसमें महाकवि कालिदा ने जनशून्य अयोध्या का वर्णन किया है—

निशासु भास्वत्कलनूपुराणां
यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्,
नदन्मुखोल्काविचितामिषाभिः
स वाह्यते राजपथः शिवाभिः।

निशाकाल में पहले जिन रास्तों पर चमकीले नूपुरोंवाली अभिसारिकाएँ चला करती थीं, उन पर अब सियारिनें विचरतीं, जिनके मुख चिल्लाते समय चिनगारियाँ निकलती हैं—अर्थात् स्वर्ण-नूपुरों की जगह अब उनके मुख की चिनगारियाँ ही चमक पाती हैं।

कालान्तर में दाग़ की यह प्रार्थना कि—

'इलाही, फिर उसे आबादो शाद दिखला दे,
इलाही, फिर उसे हसबे-मुराद दिखला दे'—

पूरी हुई ज़रूर पर इस नई दिल्ली में प्राचीन दिल्ली की विशेषताएँ न आ सकीं जिनके लिए वह संसार में मशहूर थी। पुरा बातें न रहीं, बदल गयीं—

वह मुतरिब अरु वह साज़, वह गाना बदल गया,
नींदें बदल गयीं, वह फ़साना बदल गया।
रंगे रुखे बहार की जीनत हुई नयी,
गुलशन में बुलबुलों का तराना बदल गया।

---

[1] सुन्दरता की ईर्ष्या। [2] हिन्दुस्तान का दिल। [3] घासफूस।

★

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक—(पृष्ठ ४६ का शेषांश)

ओजस्वी व्यक्तित्व की छाप उस पर रही और देश के युवक और युवतियाँ उनकी शिक्षाओं से प्रेरणा प्राप्त करते रहे। इतना ही नहीं, क्रान्तिकारी युवकों के लिए 'गीता रहस्य' शक्ति, स्फूर्ति और आत्म-विश्वास का स्रोत बना रहा और सदा बना रहेगा।

लोकमान्य की विद्वत्ता की छाप यूरोप के बड़े-बड़े विद्वानों पर थी। वह स्वयं कहा करते थे कि यदि मुझे देश को स्वतन्त्र कराने का कार्य न होता तो मैं कहीं गणित शास्त्र का प्रोफेसर बन कर अपना जीवन विद्या विज्ञान की चर्चा में व्यतीत करता।

लोकमान्य तिलक का व्यक्तित्व और उनकी ओजस्वी और स्फूर्तिदायिनी प्रेरणाएँ चिरकाल तक भारत के युवकों के लिए मार्ग प्रदर्शक बनी रहेंगी।

★

श्रमजीवी पत्रकारों को कानूनी संरक्षण

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

संसद के हेमन्तकालीन सत्र में श्रमजीवी पत्रकारों की काम की शर्तों को नियमित करने वाला एक विधेयक पारित हो गया और वह २० दिसम्बर १९५५ को राष्ट्रपति की सम्मति प्राप्त होते ही तुरन्त लागू हो गया। भारतवर्ष में ही नहीं, समस्त राष्ट्रमण्डल (कामनवैल्थ) व एशिया महाद्वीप में श्रमजीवी पत्रकारों को संरक्षण देने वाला इस ढंग का यह प्रथम कानून है। यदि हम इसके परिणामों पर विचार करें तो केवल इसी दृष्टि से नहीं, बल्कि श्रमिक सम्बन्धों के बारे में भी कई मामलों में यह अग्रदूत सिद्ध होगा। अतएव इस अधिनियम की धाराओं तथा उनसे उत्पन्न कानूनी स्थिति पर विशद रूप से विचार करना आवश्यक है।

श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम आज भारतवर्ष के समस्त श्रमजीवी पत्रकारों के काम की शर्तों की रक्षा करने वाला ऐसा अस्त्र है. जिसका यदि सद्‌भावनापूर्वक पालन किया जाय, तो पत्र उद्योग में न केवल शांति व सुरक्षा की स्थापना होगी बल्कि पत्रकारिता का स्तर आशातीत गति के साथ बढ़ेगा।

भारतवर्ष आज संसार के उन देशों के समकक्ष आ गया है जहाँ पत्रकारिता के पेशे को अन्य पेशों की भाँति सुदृढ़ औद्योगिक आधार पर संगठित किया गया है। पत्रकारों की स्थिति के सम्बन्ध में संसार में दो पक्ष रहे हैं। एक पक्ष ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका तथा राष्ट्रमण्डलीय देशों में प्रचलित रहा, जिसमें यह माना गया कि पत्रकारों को श्रमिक संगठन के आधार पर अपने वेतन, काम की शर्तों आदि के सम्बन्ध में सामूहिक सौदेबाज़ी करनी चाहिए। फलतः इंग्लैंड, अमेरिका, जर्मनी तथा स्विटजरलैंड में पत्रकार संघों और पत्र संचालकों के बीच सामूहिक सौदे हुए हैं। इन देशों के अतिरिक्त ऐसे भी देश हैं जहाँ पत्रकारों की स्थिति कानून द्वारा निश्चित की गई। युद्धकाल में अमेरिका में राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने एक 'न्यूजपेपर कोड' बनाया और फ्रांस में १९४४ से लेकर १९५० तक विशिष्ट आदेशों के अनुसार पत्रकारों के काम की शर्तें निश्चित होती रहीं। पोलैंड, इटली, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, तथा दक्षिणी अमेरिका के अनेक देशों में या तो पत्रकारों के लिए विशेष कानून बने या उनको साधारण श्रमिक कानूनों के अंतर्गत लाभान्वित किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन व संयुक्त राष्ट्र शिक्षा संस्कृति व विज्ञान सभा ने पत्रकारों की काम की शर्तों को पत्रों की स्वाधीनता के लिए आवश्यक मानकर उनको प्राथमिकता देने की सिफारिश की।

आज से सोलह वर्ष पहले सन् १९४२ की बसन्त पंचमी को कानपुर में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के सभापतित्व में उत्तर प्रदेश के हिन्दी पत्रकारों का एक सम्मेलन किया गया। इसमें पत्रकारों को 'ट्रेड यूनियन' ढंग पर संगठित करने का निश्चय किया गया और पत्रकारों की स्थिति की जाँच के लिए सर्वश्री जयदेव गुप्त के संयोजकत्व में एक समिति नियुक्त की गई। थोड़े समय पश्चात ही दिल्ली में अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार संघ का दूसरा अधिवेशन हुआ, जिसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि श्रमजीवी पत्रकारों को कम-से-कम चालीस रुपया मासिक वेतन दिया जाय। यह रकम बहुत कम थी। जब १९४३ में कलकत्ते में इस संघ का तीसरा अधिवेशन हुआ तो उसमें यह रकम बढ़ा कर ५० रुपया मासिक कर दी गई। परन्तु इस सम्मेलन में श्रमजीवी पत्रकारों की समस्याओं पर बड़े उग्र रूप से विचार किया गया, जिसके फलस्वरूप श्री राजेन्द्रशंकर भट्ट के संयोजकत्व में एक जाँच समिति की नियुक्ति इस संघ ने भी कर दी। इसी अवसर पर अखिल भारतीय समाचार पत्र सम्पादक सम्मेलन ने भी सुब्रह्मण्यं समिति की स्थापना की। इस समिति ने अंग्रेजी पत्रों में काम करने वालों को १०० रु० मासिक व देशी पत्रों में काम करने वालों को ७५ रु० का जो प्रस्ताव किया उसका देश में बड़ा विरोध हुआ। संयुक्त प्रदेश हिन्दी पत्रकार संघ तथा अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार संघ की जाँच समितियों के सदस्य के नाते व उनके आदेश से इन पंक्तियों के लेखक ने उत्तर भारत के समस्त पत्रकार क्षेत्रों की यात्रा कर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। १९४४ की जनवरी में कानपुर में हुए द्वितीय युक्त प्रांतीय हिन्दी पत्रकार सम्मेलन व अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार संघ में इन समितियों की रिपोर्ट के आधार पर पत्रकारों की न्यूनतम माँगें स्वीकृत की गईं। ये माँगें थीं कि कम-से-कम १०० रुपया मासिक न्यूनतम वेतन हो, दस रुपया वार्षिक वेतन वृद्धि की व्यवस्था हो, काम के घंटे छः हों, सप्ताह में कम-से-कम एक दिन की छुट्टी मिले। एक महीने की अर्जित व बीमारी की और आकस्मिक छुट्टियाँ दी जाएँ। ग्रेड निश्चित किए जाएँ, संवाददाताओं का कालम रेट निश्चित हो, नौकरी से पृथक करने के लिए विधिवत नोटिस दिया जाय, जो एक मास से कम का न हो। मँहगाई का भत्ता तथा बोनस मिले और रात्रि की ड्यूटी का अतिरिक्त पारिश्रमिक हो। अन्य संस्थाओं जैसे मराठी पत्रकार संघ, पंजाब श्रमजीवी पत्रकार संघ, बम्बई पत्रकार संघ ने भी बहुत कुछ इसी ढंग की माँगें रक्खीं। इसके पश्चात उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश समाचार पत्र उद्योग समिति की सिफारिशों में इन प्रस्तावों को स्वीकार किया गया और अन्त में प्रेस आयोग ने भी पत्रकारों की काम की शर्तों को स्वस्थ परम्परा पर स्थापित करने का प्रस्ताव मान लिया।

श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम में प्रेस आयोग की अनेक सिफारिशें स्वीकार कर ली गई हैं।

इस अधिनियम के दो खण्ड हैं । एक वह जिसमें स्वयं अधिनियम ने कुछ शर्तें निश्चित कर दी हैं । वे हैं काम के घंटों के संबंध में, अनुग्रह धन के सम्बन्ध में, छुट्टियों के सम्बन्ध में तथा वेतन के सम्बन्ध में । वेतन के बारे में इतना अंतर अवश्य है कि कानून किसी वेतन को निश्चित नहीं करता । वेतन बोर्ड को यह अधिकार दिया गया है कि वह श्रमजीवी पत्रकारों के वेतन-दर निश्चित करे । पहले केवल न्यूनतम वेतन निश्चित करने की बात थी, परन्तु अब न्यूनतम वेतन का प्रश्न हटा दिया गया है । वेतन बोर्ड प्रत्येक कर्मचारी के लिए अलग-अलग वेतन तय नहीं करेगा बल्कि वेतन के क्रम या स्केल तय करेगा, जिसमें नियमानुसार प्रत्येक कर्मचारी एक सीमा तक जा सकेगा । यह क्रम अनिवार्य होंगे । उनसे अधिक वेतन भी दिया व लिया जा सकता है ।

एक शंका की गई है कि वेतन दर को वेतन क्रम नहीं माना जा सकता । सूचना मंत्री डा० केसकर ने दोनों सदनों में स्पष्ट किया था कि बोर्ड वेतन क्रम निर्धारित करेगा । हमें साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वेतन बोर्ड को एक औद्योगिक न्यायाधिकरण के अधिकार प्राप्त होंगे । अतएव वह सब श्रम निश्चित कर सकेगा ।

वेतन बोर्ड में मालिकों तथा कर्मचारियों के बराबर प्रतिनिधि होंगे और उसका अध्यक्ष एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसका किसी व्यवस्था या कर्मचारी विभाग से सम्बन्ध न होगा । यदि उसके किसी पत्र में हिस्से होंगे, तो उसे सरकार को इसकी सूचना देनी होगी ।

बोर्ड कौन सी पद्धति अपनायेगा, यह उसी पर निर्भर है । भारत सरकार जो नियम बनायेगी उसमें भी कुछ निर्देश दिये जा सकेंगे । परन्तु बोर्ड का प्रथम कार्य होगा कि भारत सरकार को अन्तरिम वेतन के प्रश्न पर परामर्श दे । बोर्ड से परामर्श लेकर सरकार अन्तरिम वेतनों की घोषणा कर सकती है । प्रत्येक पत्र संचालक के लिए यह आवश्यक होगा कि वह निश्चित वेतन से कम न दे ।

काम के घंटों के सम्बन्ध में यह नियम है कि चार सप्ताह में १४४ घंटे से अधिक काम न लिया जा सके । प्रति सप्ताह २४ घंटे की छुट्टी अनिवार्य है । इस प्रकार ६ दिन में ३६ घंटे से अधिक काम न लिया जा सकेगा ।

काम के घंटों के नियमों के बारे में कहा गया है कि उनका पालन असंभव है । परन्तु यह धारा प्रत्येक कारखाने में जो नियम चालू हैं वहीं से ज्यों का त्यों उठा ली गई हैं । फैक्टरी एक्ट की ५१वीं धारा में दिया हुआ है कि किसी कारखाने में किसी कारीगर से सप्ताह में ४८ घंटे से अधिक काम नहीं कराना चाहिए और न किसी कारीगर को इससे अधिक काम करने दिया जाना चाहिए । यही नहीं, धारा ५४ में इसको दोहरा कर कहा गया है कि कोई व्यक्ति एक दिन में ९ घंटे से अधिक काम न करे । इस बात की जिम्मेवारी मालिक पर डाली गई है कि उसके यहाँ कोई व्यक्ति समय से अधिक काम नहीं करता ।

फैक्टरी एक्ट में नियम जितने विस्तार से हैं उतने विस्तार से पत्रकार अधिनियम में नहीं हैं । यहाँ केवल सिद्धान्त निरूपण कर दिया है और पत्रकारिता के धंधे की विशेष स्थिति ध्यान में कर औसत पूरे महीने का बना लिया गया है । परन्तु इसका यह नहीं होगा कि यहाँ एक दिन में कितने ही घंटे काम करने की हो । नियमों में इस प्रकार की व्यवस्था होगी कि प्रति दिन काम घंटों का औसत विस्तार कितना होगा । फैक्टरी एक्ट में १०॥ घंटे यानी काम का प्रारम्भ, छुट्टी व अंत सब साढ़े दस घंटे में होना चाहिए ।

फैक्टरी एक्ट में तो समय से अधिक काम करने पर दूने टाइम की व्यवस्था है । हमारे यहाँ क्या व्यवस्था होती है नियमों पर निर्भर है । प्रेस आयोग की राय थी कि ओवर टाइम दिया जाय, लेकिन किसी भी शर्त में समय से अधिक काम न जाय क्योंकि उनकी दृष्टि से पत्रकारों की क्षमता कायम रखने के अवकाश की अत्यन्त आवश्यकता है ।

यह सवाल उठता है कि बाहर काम करने वालों या संवाददाता आदि का कार्य विभाजन किस प्रकार होगा । अमेरिका में तो श्रम भाप अधिनियम (Fair Labour Standard Act घर पर काम करने वाले मजदूरों तक पर लागू होता है । यही दक्षिण अमेरिका में है । इस अधिनियम का लाभ यह होगा कि तक सम्वाददाताओं या रिपोर्टरों का सम्बन्ध है उनके काम के बँध जायेंगे और यदि संचालक अतिरिक्त काम चाहेंगे, तो या ओवर टाइम देंगे या सहायक रखेंगे । यह भी सम्भव हो सकता कि ऐसा कर्मचारी अधिक काम करके सप्ताह में एक से अधिक की छुट्टी ले ले ।

संयुक्त राज्य के कई पत्रों में ३३½ घंटे का सप्ताह है और भी ५ दिनों में पूरा होता है । जहाँ साढ़े पाँच दिन काम होता है भी सप्ताह के घंटों को इस प्रकार बाँट लेते हैं । ब्रिटेन में साधारण ५॥ घंटे का सप्ताह है ।

अनुग्रह धन के सम्बन्ध में जो धाराएँ हैं, उनमें यदि कुछ हैं तो कुछ गुण भी हैं । दोष यह है कि १५ दिन का अनुग्रह बहुत बड़ी रकम नहीं है । दूसरे विधेयक की स्वीकृति से पूर्व के लिए उन पत्रों में अनुग्रह धन की मात्रा कम है जहाँ ६ से पत्रकार काम करते थे । पत्रकार संघ इस भेदभाव के विपरीत क्योंकि जिन पत्रों में पाँच से कम कर्मचारी हैं साधारणतः वहाँ भी कम है, अन्य सुविधाएँ भी कम हैं, प्रोवीडेण्ड फण्ड आदि भी व्यवस्था नहीं है । फिर भी यदि कोई पत्रकार इन संस्थाओं काफी समय तक कार्य करता रहा है तो उसे छोटे कार्यालय में करने के लिए दंडित नहीं किया जाना चाहिए ।

परन्तु इस धारा में दो-तीन विशेषताएँ भी हैं । पहली यह यह धारा औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा प्रदत्त सुविधाओं अधिकारों से स्वतन्त्र है । इसका अर्थ यह है कि जिन व्यक्तियों इस धारा से कोई लाभ न भी प्राप्त हो तो वह औद्योगिक खड़ा कर उक्त अधिनियम के द्वारा अधिक अच्छी व्यवस्था पा सकते हैं औद्योगिक न्यायाधिकरणों ने एक-एक महीने तक की ग्रेचुयटी (

धन) स्वीकार की है। कम्पनी की आर्थिक स्थिति को देखते हुए न्यायाधिकरणों ने कोआपरेटिव बीमा कम्पनी, बर्मा शैल आदि के मामलों में एक-एक महीने की ग्रेचुयटी दी है। अतएव यदि कोई श्रमजीवी पत्रकार ऐसे पत्र में कार्य कर रहे हैं जहाँ उनकी संख्या कम है परन्तु पत्र लाभ पर चल रहे हैं, तो वहाँ वह ग्रेचुयटी माँग सकेंगे।

इसी सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि औद्योगिक विवाद कानून द्वारा क्या-क्या अधिकार प्राप्त होते हैं। वास्तव में छँटनी में मुआवजे के अतिरिक्त अन्य प्रश्नों में केवल अधिकार विवाद का निर्णय कराने का है परन्तु इन निर्णयों में औद्योगिक न्यायाधिकरणों ने महत्त्वपूर्ण अधिकार निश्चित किए हैं। उदाहरण के लिए अनुग्रह धन वाली धारा में ही कहा गया है कि सिवाय उन मामलों को छोड़ जब अनुशासन की कार्यवाही के लिए किसी को निकाला जाएगा, अन्य सब मामलों में अनुग्रह धन दिया जाएगा। यह 'अनुशासन की कार्यवाही' क्या है, कैसे होनी चाहिए और किस अपराध के लिए क्या दण्ड हो, इसका न्यायाधिकरणों ने बड़े विस्तार से निर्णय किया है।

किसी कर्मचारी को किस प्रकार और किस हालत में निकाला जा सकता है, इसके लिए सबसे प्रमुख निर्णय बकिंघम कर्णाटक कम्पनी के मामले में किया गया निर्णय है। इसके अनुसार न्यायालय को यह अधिकार है कि यदि किसी कर्मचारी को निकालते समय निम्नलिखित बातों में कोई भी हों तो उस बरखास्तगी को अस्वीकार कर दें। वे हैं:

१. यदि इस आदेश में सद्भावना या ईमानदारी की कमी है।

२. यदि यह आदेश विद्वेषात्मक दण्ड (Victimization) का मामला है या मालिकों द्वारा अनुचित व्यवहार का (Unfair labour practices) या नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त (Principles of Natural Justice) के विपरीत है, उनमें तथ्यों की गलती है या जो तथ्य हैं उन पर सर्वथा अन्याययुक्त निर्णय किया गया है।

यदि किसी व्यक्ति को निकाला जाए (Discharge) तो उसे उसका कारण बताना चाहिए और उसे स्पष्टीकरण का अवसर मिलना चाहिए। यदि किसी व्यक्ति को बरखास्त (dismiss) किया जाए तो पहले तो उसका अपराध संगीन हो, दूसरे उस पर चार्जशीट (अभियोग) लगाया जाए, उसे अपना स्पष्टीकरण करने का अवसर मिले। इसके उपरान्त उसकी जाँच हो, जिसमें वह अपने विपरीत गवाहों से जिरह कर सके, अपने गवाह पेश कर सके तथा अपने-अपने संघ के प्रतिनिधि या वकील की सहायता ले सके। इसके उपरान्त उसको बरखास्त किए जाने का निर्णय किया जा सकता है। इसके उपरान्त भी यदि न्यायाधिकरण समझे कि उसके साथ अन्याय हुआ है तो उसे पुनः कार्य पर नियुक्त कर सकता है या भारी हर्जाना दिला सकता है।

'चैरिटी एड बस सर्विस' के एक मुकदमे में लेबर अपीलेट ट्रिब्यूनल ने यह निर्णय किया कि जहाँ एक व्यक्ति को बिना कारण बताए, बिना चार्जशीट लगाए या बिना जाँच के अलग कर दिया गया तो यह अलहदगी अनुचित थी और उसे काम पर वापिस लौटा दिया गया। सेक्सरिया मिल (बम्बई) के एक मजदूर के मामले में यह निर्णय किया गया कि बिना उचित जाँच किए केवल इस आधार पर किसी को निकाल देना कि कम्पमी का कर्मचारी पर विश्वास नहीं रह गया है और कम्पनी को नियमानुसार निकालने का हक है बिलकुल पुराणपंथी है और कोई अदालत इसका समर्थन नहीं कर सकती।

जानकी शुगर मिल देहरादून के नियमों में था कि यदि कोई मजदूर बिना छुट्टी काम पर न आए तो कम्पनी उसे निकाल सकती है। एक मजदूर जो पाँच दिन की छुट्टी पर गया था, छठे दिन नहीं आया और कम्पनी ने बिना पूछे-ताछे उसे निकाल दिया। इस पर अपील अदालत ने निर्णय दिया कि यदि वह सात दिन भी काम पर न आता तो भी उसे अपनी सफाई का अवसर दिए बिना निकालना न्याय विरुद्ध था।

एक मामले में एक मजदूर को चार्जशीट दी गई, परन्तु कोई जाँच नहीं हुई। बाद में इंजीनियर ने उसे एक लम्बी चिट्ठी लिखी, जिसमें लिखा कि वह किस प्रकार अयोग्य था तथा उसने क्या दुर्व्यवहार किए थे। अदालत ने इस बरखातस्गी को अनुचित माना।

एक कर्मचारी कम्पनी की जानकारी में दूसरी जगह काम कर रहा था, परन्तु बाद में इसी आरोप पर उसे निकाल दिया गया। इसे भी गलत समझा गया।

कानपुर टैक्सटाइल मिल के एक कर्मचारी को यह लिख कर निकाल दिया गया कि उसका काम बिलकुल असंतोषजनक है और कम्पनी को उसकी आवश्यकता नहीं है। पर उसे स्पष्टीकरण का कोई अवसर नहीं दिया गया। उसकी अलहदगी गलत समझी गई।

एक कर्मचारी पर दुर्व्यवहार का चार्जशीट लगाया गया। परन्तु उसने चार्जशीट लेने से इंकार किया। इस पर कम्पनी ने उसे एक महीने का नोटिस देकर अलग कर दिया। न्यायाधिकरण ने इस पर निर्णय दिया कि उक्त कर्मचारी को रजिस्ट्री से चार्जशीट भेजना चाहिए था और वह उसका निर्धारित समय में उत्तर न भेजता तो जाँच कर अलग करना चाहिए था।

एक अन्य निर्णय में कहा गया कि यदि कर्मचारी अपराध न माने तो उसकी जाँच बिना बरखास्तगी नहीं हो सकती।

जाँच भी किस प्रकार की हो इसके निर्णय हैं। प्रयाग के लीडर प्रेस में एक लाइनो ओपरेटर ३२ वर्ष से काम कर रहा था, परन्तु उसे आदतन तालेतहाली (habitual negligence) के आरोप में हटा दिया गया। पता लगा कि बरखास्तगी से पाँच महीने पहले उसे काम खराब होने की चेतावनियाँ मिलने लगीं। यू० पी० पत्रकार संघ ने उसका मामला लड़ा और अपील ट्रिब्यूनल ने निर्णय किया कि जिस व्यक्ति का काम बराबर ठीक रहा है उसे, कुछ गलतियों के कारण जो काम की जल्दी में हो गई, आदतन कामचोर नहीं कहा जा सकता और उसे पुनः पत्र में नियुक्त किया गया।

इस प्रकार के अनेक निर्णय हैं, जिनमें स्पष्ट किया गया है कि अनुशासन की कार्यवाही कैसे की जाय। बैंक अवार्ड में इसकी बड़ी विशद व्याख्या है। दुर्व्यवहार (misconduct) दो प्रकार के हैं—

राग

शमशेरबहादुर सिंह

(१)

मैंने शाम से पूछा—
या शाम ने मुझसे पूछाः
इन बातों का मतलब ?
मैंने कहा—
शाम ने मुझसे कहा :
राग अपना है ।

(२)

आँखें मुँद गईं ।
सरलता का आकाश था
जैसे त्रिलोचन की रचनाएँ ।
नींद ही इच्छाएँ ।

(३)

मैंने उससे पूछा—
उसने मुझसे :
कब ?
मैंने कहा—
उसने मुझसे कहा :
समय अपना राग है ।

(४)

तुमने 'धरती' का पद्य पढ़ा है ?
उसकी सहजता प्राण है ।
तुमने अपनी यादों की पुस्तक खोली है ?
जब यादें मिटती हुई एकाएक स्पष्ट हो गई हों ?
जब आँसू छलक न जाकर
आकाश का फूल बन गया हो ?
—वह मेरी कविताओं सा मुझे लगेगा :
तब तुम मुझे क्या कहोगे ?

(५)

उसने मुझसे पूछा,
तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है ?
मैंने कहा—कुछ नहीं ।
उसने पूछा—फिर तुम इन्हें क्यों लिखते हो ?
मैंने कहा—ये लिख जाती हैं । तब
इनकी रक्षा कैसे हो जाती है ?
उसने क्यों यह प्रश्न किया ?
मैंने पूछा :
मेरी रक्षा कहाँ होती है ? मेरी साँस तो—
तुम्हारी कविताएँ हैं : उसने कहा । पर—
इन साँसों की रक्षा कैसे होती आई ?
वे साँसों में बँध गए; शायद ऐसे ही रक्षा
होती आई । फिर बहुत से गीत
खो गए ।

(६)

वह अनायास मेरा पद गुनगुनाता हुआ बैठा
रहा, और मैंने उसकी ओर
देखा, और मैं समझ गया ।
और यह संग्रह उसी के हाथों में खो गया ।

(७)

उसने मुझसे पूछा : इन शब्दों का क्या
मतलब है ? मैंने कहा : शब्द
कहाँ हैं ? वह मौन मेरी ओर
देखता चुप रहा । फिर मैंने
श्रम-पूर्वक बोलते हुए कहा—कि :
शाम हो गई है । उसने मेरी
आँखों में देखा, और फिर—

ही रहा । क्यों फिर उसने मेरा
अपनी धुँधली गोद में खोला और
मुझसे कुछ भी पूछना भूल गया ।
मुझको भी नहीं मालूम, कौन था
वह । केवल वह मुझे याद है ।

(८)

तब छन्दों के तार खिंचे-खिंचे थे;
राग बँधा-बँधा था;
प्यास उँगलियों में विकल थी—
कि मेघ गरजे ।
और मोर दूर और कई दिशाओं से
बोलने लगे—पीयूअ ! पीयूअ !
हीरे-नीलम की गर्दनें

हरियाली के आगे चमक रही थीं ।
कहीं छिपा हुआ बहता पानी
बोल रहा था : अपने स्पष्ट-मधुर
प्रवाहित बोल ।

गहन व साधारण । गहन दुर्व्यवहार कोई ऐसा अपराध होता है जिसमें कम्पनी को आर्थिक हानि हो, अवैध हड़ताल में भाग हो, कम्पनी के व्यापार को हानि हो या जान-बूझकर छोटे-छोटे दुर्व्यवहार करने की आदत हो । इनके कई दण्ड हैं, बरखास्तगी, पृथक् करना, मुअत्तिल करना, पद वृद्धि रोक लेना, वार्षिक वृद्धि रोक लेना, जुर्माना, चेतावनी या सर्विस बुक पर विपरीत नोट । समय पर काम पर न आना, काम में ढिलाई या सुस्ती, बिना छुट्टी घर बैठ जाना आदि साधारण या छोटे दुर्व्यवहार गिने जाते हैं ।

यद्यपि ये सारी व्यवस्थाएँ पत्रकार अधिनियम में गिनाई नहीं हैं, परन्तु जिस व्यक्ति पर वह अधिनियम लागू होता है उसे ये सब अधिकार अपने आप प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि ये व्यवस्थाएँ औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्दर प्रदत्त हैं और वर्तमान कानून के जो भी व्यक्ति धन्धे से श्रमजीवी पत्रकार है और किसी पत्र किसी पत्र के लिए अथवा समाचार समिति व समाचार समिति के लिए काम करता है वह इसका लाभ उठाता है । बड़ी व्यापक है और उसके उदाहरणों में सम्पादक से लेकर दाता, प्रूफ़रीडर, फोटोग्राफर व कार्टूनिस्ट, जो पत्र के लिए करते हैं, उसकी परिधि में आ जाते हैं । हाँ जो लोग मुख्यतः निक या प्रबन्ध का कार्य करते हैं वे इस परिभाषा में नहीं आते ।

पत्रकार अधिनियम में कार्य से पृथक् करने के नोटिस साधारण कानून से अन्तर किया गया है । सम्पादकों को कम

(शेष पृष्ठ ६१ पर)

संस्कृति की परिकल्पना

सत्यदेव विद्यालंकार

धर्म, भाषा और प्रादेशिकता के समान संस्कृति की कल्पना भी हमें संकीर्णता की ओर ले जाने का कारण बन सकती है। संस्कृति की ठीक-ठीक व्याख्या करना बहुत कठिन है। इसीलिए उसके सम्बन्ध में तरह-तरह की कल्पनाएँ की जाती हैं। अंग्रेज़ी का 'रिलीजन' शब्द जिस प्रकार धर्म शब्द के ठीक-ठीक अभिप्राय को प्रकट नहीं करता वैसे ही कल्चर शब्द भी संस्कृति के ठीक-ठीक अभिप्राय का द्योतक नहीं है। धर्म वह है जिसको धारण अथवा स्वीकार किया जाता है और रिलीजन वह है जो लोगों को आपस में बाँधता अथवा एक करता है। यद्यपि धर्म का अभिप्राय भी लोगों को एक करना समझा जाने लगा है परन्तु उसका वास्तविक अर्थ अथवा प्रयोजन लोगों को एक करने की अपेक्षा व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन को परिमार्जित करना अधिक है। धर्म के जो दस लक्षण बताए गए हैं अथवा उसकी जो अन्य व्याख्याएँ की गई हैं उन सब में व्यक्तिगत गुणों पर ही अधिक जोर दिया गया है। धृत्ति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, विद्या, सत्य और अक्रोध सब ऐसे गुण हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के साथ है। इसी प्रकार जिन अणुव्रतों और महाव्रतों का प्रतिपादन धर्मचर्या की दृष्टि से किया गया है, उनका सम्बन्ध भी व्यक्तिगत जीवन के साथ है। धर्म का इस रूप में जिन आचार्यों ने प्रतिपादन किया उनकी दृष्टि में समाज की अपेक्षा व्यक्ति का महत्त्व अधिक था। वे उसको समष्टि की इकाई मान कर यह समझते थे कि इकाई के बन जाने से समष्टि अथवा समाज स्वतः ही बन जाएगा। परन्तु रिलीजन की कल्पना करने वालों की दृष्टि में व्यक्ति की अपेक्षा समाज का महत्त्व अधिक था। समाज की एकता, संगठन और मेल को अधिक महत्त्व देते थे। पश्चिम में मानव के व्यक्तिगत जीवन को उसका निजी विषय कह कर उसकी प्रायः उपेक्षा कर दी गई। इससे समाज की नींव वैसी दृढ़ नहीं हो सकी जैसी कि होनी चाहिए।

इसी प्रकार संस्कृति मानव-जीवन के परिष्कार अथवा संस्कार पर अधिक ज़ोर देती है। एक वाक्य में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति के बाद धर्म जब समाज के दायरे में पहुँचता है, तब वह संस्कृति का रूप धारण कर लेता है। धर्म व्यक्ति के जीवन को सुसंस्कृत अथवा परिष्कृत करता है तो, संस्कृति समाज के जीवन का संस्कार अथवा परिष्कार करती है। संस्कृत में एक कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जन्म से शूद्र होता है और संस्कार से द्विज बनता है। इसका रूढ़िगत अर्थ किया जाए तो, संस्कार का अभिप्रायः हो जाता है उन संस्कारों से जो व्यवहार में प्रायः निरर्थक हो गए हैं। मनुष्य भले ही जनेऊ न पहने और ब्रह्मचर्य पालन के लिए गुरुकुल न जाए; गृहस्थ-आश्रम में तो प्रवेश कर ही लेता है और उसका सारा व्यवहार यथावत चलता रहता है। सोलह में से किसी संस्कार का न होना उसके मार्ग में बाधक नहीं बनता। इसलिए इस रूढ़िपरक अर्थ में न जाकर संस्कार शब्द का अर्थ परिष्कार ही लिया जाना चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्वीकार करना होगा कि संस्कृति का सम्बन्ध उन संस्कारों के साथ है जो परम्परा से आते हुए समाज को उन्नत और प्रगतिशील बनाने में सहायक होते हैं और जो संस्कार ऐसा नहीं कर सकते उनका समावेश संस्कृति में नहीं किया जा सकता। उनको विकार कह कर विकृति पैदा करने वाला मानना होगा। संस्कृति यदि समाज का परिष्कार नहीं करती तो, उसका वास्तविक अभिप्राय नष्ट हो जाता है। कल्चर शब्द का सीधा-सादा अभिप्राय एक चीज़ की दूसरी चीज़ में कलम लगाना है, जिसका अभिप्राय है एक का दूसरे के साथ सम्मिश्रण करना। पशु-पक्षियों की नस्ल को उन्नत करने के लिए जो क्रास ब्रीड किया जाता है और पौधों को उन्नत बनाने के लिए उनकी एक-दूसरे के साथ जो कलमें लगाई जाती हैं, उनको कल्चर करना कहा जाता है। मानव समाज में भी सदा ही एक-दूसरे से हर तरह का आदान-प्रदान अथवा लेन-देन होता रहता है। एक स्थान के लोग दूसरे स्थान के लोगों से, एक समाज के लोग दूसरे समाज के लोगों और एक देश के लोग दूसरे देश के लोगों से न केवल जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक वस्तुओं का आर्थिक क्षेत्र में आदान-प्रदान अथवा लेन-देन करते हैं, परन्तु धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य क्षेत्रों में भी परस्पर बहुत-सा आदान-प्रदान तथा लेन-देन करते रहते हैं; कल्चर शब्द इसी आदान-प्रदान तथा लेन-देन का सूचक है। इसलिए जब विशुद्ध कल्चर की दृष्टि से विचार किया जाता है तब सामाजिक जीवन के परिष्कार अथवा संस्कार पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना कि उस निर्माण पर दिया जाता है जो मानव एक-दूसरे की सहायता से करता है। मनुष्य स्वभावतः सामाजिक प्राणी है। अकेले-दुकेले रह कर उसका गुज़ारा चल नहीं सकता। अपनी सामाजिक चेतना से प्रेरित होकर जब वह समूह में रहना प्रारम्भ करता है तब स्वभावतः उसमें आपस में लेन-देन अथवा आदान-प्रदान की प्रक्रिया एवं प्रवृत्ति स्वतः प्रारम्भ हो जाती है और इस प्रकार कल्चर का विकास भी स्वतः ही होना प्रारम्भ हो जाता है परन्तु सांस्कृतिक जीवन का प्रारम्भ स्वतः नहीं हो सकता उसके लिए केवल सामाजिक चेतना पर्याप्त नहीं है। सामाजिक चेतना के भी परिष्कार किंवा संस्कार की आवश्यकता है। इसीलिए संस्कृति का अभिप्राय उस सामाजिक व्यवहार से कुछ अधिक है जिसका अर्थ कल्चर से लिया जाता है।

इस भेद या अन्तर के बाद भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि रिलीजन और कल्चर जिस भाव के द्योतक हैं उसकी भी आज के

मानव को अथवा मानव-समाज को उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि धर्म और संस्कृति की है। मनुष्य चूँकि अकेला रह कर अपना गुज़ारा चला नहीं सकता, इसलिए उसको वह रिलीजन चाहिए जो उसका दूसरों के साथ मेल करता है और जब वह मिलकर रहना शुरू कर देता है तब लेन-देन अथवा आदान-प्रदान की प्रवृत्ति के स्वतः ही प्रारम्भ हो जाने से वह कल्चर से अलग नहीं रह सकता। धर्म और रिलीजन अथवा संस्कृति और कल्चर के तात्विक अर्थों में अन्तर होने पर भी उनके कार्य और परिणाम में ऐसा कोई विशेष अन्तर नहीं है। मतलब की बात सिर्फ़ इतनी है कि किसी भी धर्म, जाति अथवा देश के लोग वर्तमान युग में दूसरों से सर्वथा अलग रह कर अपना गुज़ारा नहीं चला सकते। वैसे तो पहले भी कभी मनुष्य का काम कूप मंडूकता से नहीं चला है। उसको आँखें खोल कर दुनिया को देखना पड़ा है और दुनिया में जितनी दूर तक उसकी आँखें जा सकीं उतनी दूर तक उसको अपना व्यवहार फैलाना पड़ा है। केवल अपनी नाक तक की दुनिया को देखने वाले संसार में जीवित नहीं रह सके। अपने को संकीर्ण, संकुचित अथवा अनुदार बना कर मानव का गुजारा चल नहीं सकता इसी कारण उसको दूसरों के साथ अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध कायम करने पड़ते हैं। राजनीति ने मनुष्यों को आपस में मिलाने का बहुत वर्षों तक प्रयत्न किया है, परन्तु पिछले दो महायुद्धों में राजनीति ने कूटनीति का रूप धारण करके वही काम किया, जो मानव दानव बन कर करता है। राजनीति की संहार लीला और उसके हिंसा-प्रतिहिंसा तथा घात-प्रतिघात के भीषण रूप को देख लेने के बाद मानव का हृदय सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों के महत्त्व को आँकने लगा है। पिछले कुछ वर्षों में आपस के कूटनीतिक सम्बन्ध की अपेक्षा सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है और मानव को इसमें अपना निश्चित कल्याण दीख पड़ता है।

प्रश्न यह है कि इस संस्कृति का विकास कैसे होता है? मनुष्य को सामाजिक प्राणी और उसकी सामाजिक चेतना को स्वाभाविक मान लेने पर इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ना कठिन नहीं रह जाता। यह स्वाभाविक सामाजिक चेतना संस्कृति के विकास की मूल प्रेरणा है। यदि कोई यह मानता है कि बाबा आदम या मनु के समय से सांस्कृतिक जीवन का क्रम एक ही सा चला आता है तो वह सबसे बड़ी भूल करता है। हर युग में मानव के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन होता रहता है। उसके आचार-विचार, रहन-सहन, वेश-भूषा और खानपान तक के तौर-तरीके सदा बदलते रहते हैं। जीवन का कोई क्रम और कोई दिशा ऐसी नहीं है जिसमें समय-समय पर परिवर्तन न होता हो। हम कभी संस्कृत भाषा का व्यवहार करते थे। उसके बाद प्राकृत का व्यवहार करना शुरू किया। प्राकृत का स्थान कालान्तर में दूसरी भाषा ने ले लिया। आज हम हिन्दी बोलते हैं। बीच में अरबी, फारसी, उर्दू, और अंग्रेज़ी भी आ गई। भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न भाषाओं का व्यवहार होता है। इन भाषाओं में आपस में कितना लेन-देन और आदान-प्रदान होता रहता है। एक भाषा के कितने ही शब्द दूसरी भाषाओं में समा जाते हैं। एक भाषा का शब्द-कोष दूसरी भाषाओं के मेल से हमेशा बढ़ता रहता है। साहित्य का फैलाव भी इसी प्रकार होता रहता है। एक पुस्तक एक भाषा में छपती है, दूसरी, तीसरी और चौथी में उसका अनुवाद होता है अथवा उसके आधार पर नई पुस्तकें लिखी जाती हैं। ज्ञान विज्ञान के आविष्कार भी एक से दूसरे स्थान पर जाते रहते हैं। कला और उद्योग के क्षेत्र में भी इसी प्रकार उन्नति तथा प्रगति होती रहती है। कभी हम अपने लिए कपड़े की आवश्यकता चर्खे और कर्घे से पूरी कर लेते थे। फिर ऐसा भी समय आया जब मिलें भी हमारी आवश्यकता पूरी नहीं कर सकीं। आज फिर हम इस विवाद में पड़े हैं कि चर्खे के तकुवे और मिल के तकुवे में से हम किसको अपनायें। इसी प्रकार कृषि में कभी बैल की [illegible] काफ़ी होती थी तो आज बड़े-बड़े ट्रैक्टरों से काम लिया जा रहा है। कभी बैलगाड़ी की सवारी हमारी सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर देती थी। आज हमें रेल अथवा मोटर से भी सन्तोष नहीं है। हवाई जहाज के बिना काम चलाना हमारे लिए कठिन हो रहा है। जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखने वाले हर क्षेत्र में हम आगे बढ़ना चाहते हैं। उसमें तेज़ी और प्रगति पैदा करना चाहते हैं। फिर धार्मिक एवं सामाजिक जीवन में हम पीछे क्यों बने रहें? उसमें प्रगतिशील बनने का अर्थ है सांस्कृतिक विकास। कोई माने या न माने यह विकास सदा निरन्तर होता रहा है।

अपने देश के इतिहास पर जितनी भी दूर से दृष्टि डाली जा सकती है, हमें यह स्पष्ट दीख पड़ता है कि हमारे देश में बाहर से आने वालों का ताँता लगा रहा है। बहुत से लोगों का तो यह मत है कि आर्य लोग भी बाहर से ही इस देश में आए हैं। आर्य चाहे बाहर से आए हों अथवा वे इसी देश के मूल निवासी हों, उन्होंने इस देश को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने में कुछ भी उठा नहीं रखा और दूसरों के साथ घुल-मिल जाने में भी वे पीछे नहीं रहे। वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों और स्मृतियों में अनेक ऐसी जातियों के नाम मिलते हैं जिनका आज कहीं पता भी नहीं है। उन सभी जातियों के जीवन का आर्यों की भाषा, साहित्य और इतिहास पर ही नहीं, किन्तु उनके रहन-सहन, वेश-भूषा और खान-पान के तौर तरीकों पर भी गहरा असर पड़ा। इसी प्रकार बौद्ध काल में जो लोग इस देश से चीन, जापान, स्याम, बर्मा और लंका आदि देशों में गए उन्होंने वहाँ के लोगों को अपनी भाषा, साहित्य, धर्म तथा रहन-सहन, वेश-भूषा और खान-पान के तौर-तरीकों से प्रभावित किया। बौद्धों के समान ही जैन, वैष्णव, शैव तथा अन्य लोग अपने बिचारों और संस्कारों की छाप लगाते चले गए। उससे बड़ा अभियान अरब से उठने वाले मुसलमानों ने किया जो एक ओर स्पेन की खाड़ी तक और दूसरी ओर चीन की सीमा तक पहुँचे। उन्होंने अपने विचारों और संस्कारों को निस्संदेह चारों ओर फैलाया किन्तु वे जिस-जिस देश में पहुँचे वहाँ के विचारों, संस्कारों और रहन-सहन के तौर-तरीकों से प्रभावित हुए बिना न रह सके। अरब से भारत आते हुए उन्होंने ईरान से बहुत कुछ लिया। यहाँ तक कि वे अपने धर्म-कर्म की कट्टरता को भी बहुत

कुछ भूल गए और अपने धर्म-कर्म के लिए ईरान की शब्दावली स्वीकार कर ली। यहाँ भारत में आकर वे और भी अधिक बदल गए और उनके संसर्ग से यहाँ भी बहुत सा परिवर्तन हुआ। कहते हैं कि यहाँ गंदम अथवा गेहूँ उनके साथ आया। गुलाब का फूल भी इस देश को उनकी ही देन बताई जाती है। हलवाइयों की दूकानों पर मिलने वाली मिठाइयों के नाम हमारी भाषा के नहीं, उनकी भाषा के हैं और वे प्रायः उनकी ही देन हैं। यहाँ तक कि वेश-भूषा और रहन-सहन में भी हमने उनसे बहुत कुछ ले लिया। हमारा आज का राष्ट्रीय लिबास गान्धी टोपी, अचकन और चूड़ीदार पायजामा उनकी ही देन है। इसी प्रकार अंग्रेज़ों के डेढ़ सौ वर्ष के सम्पर्क से हमने उनसे क्या नहीं लिया ? हमारी वेश-भूषा और रहन-सहन पर उनके जीवन की कितनी गहरी छाप पड़ी है। हमारी भाषा, हमारा साहित्य और हमारा इतिहास उनसे काफ़ी प्रभावित हुआ है। यही है वह लेन-देन और आदान-प्रदान जो हमेशा से मनुष्य एक-दूसरे से करता चला आया है। यह न हो तो सम्भवतः मनुष्य की स्वाभाविक सामाजिक चेतना का अन्त हो जाय। इसी को आजकल की भाषा में सांस्कृतिक लेन-देन कहा जाता है।

अपने देश के सामाजिक और धार्मिक जीवन की दृष्टि से यदि विचार करें, तो यह बहुत आसानी से समझा जा सकता है कि इस लेन-देन और आदान-प्रदान का कैसा गहरा असर आपस में एक-दूसरे पर पड़ता है। इस्लाम और ईसाई धर्म पर हिन्दू धर्म की छाप इतनी गहरी पड़ी कि छूआछूत मस्जिदों और गिरजा घरों तक में जा पहुँची। खान-पान का भेदभाव मुसलमान और ईसाइयों तक में समा गया। जात-पाँत का भेद-भाव भी उनमें घर कर गया। जो हिन्दू कभी समुद्र यात्रा को धर्म के विरुद्ध मानता था, विधवा विवाह को धर्म से वर्जित समझता था और अपनी जाति से बाहर विवाह करना जिसके लिए निषिद्ध था आज वह भी हवा में उड़ता दीख पड़ता है, विवाह की विधि निषेध उसके लिए बहुत कमज़ोर पड़ गई है और बात-बात में धर्म अब वैसी कोई बाधा नहीं पैदा करता। यह सारा परिवर्तन इस लेन-देन अथवा आदान-प्रदान का ही परिणाम है। उसके बिना मनुष्य का काम चल नहीं सकता। इसलिए यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि संस्कृति का प्रवाह गंगा और यमुना की धारा के समान है, जो कलरव करती हुई दिन-रात निर्बाध रूप से बहती रहती है। उसको तालाब की तरह चारों ओर से बाँध कर नहीं रखा जा सकता। वह संकीर्णता, अनुदारता और असहिष्णुता को जन्म न देकर मानव को विशाल, उदार और सहिष्णु बनाने वाली है। वह हर किसी को अपने रंग में रंग कर विशाल रूप देने का काम करती है। इस व्यापक दृष्टि से संस्कृति के सम्बन्ध में यदि विचार किया जा सके तो उसकी ठीक-ठीक कल्पना की जा सकती है और उसके स्वरूप एवं महत्त्व को ठीक-ठीक आँका जा सकता है। वह एक विशुद्ध भावना है जिसका सम्बन्ध उन संस्कारों के साथ है जिनका न कोई आदि है और न अन्त। मानव के सामाजिक जीवन का प्रारम्भ होने के साथ उसका प्रादुर्भाव हुआ और उसके विकास के साथ-साथ उसका भी विकास होता गया। जैसे मानव सृष्टि प्रवाह से अनादि और अनन्त मानी जाती है, वैसे ही संस्कृति का भी कोई आदि या अन्त नहीं है। मानव की प्रगतिशील आत्मा एवं स्वभाव की छाया होने से उसको भी प्रगतिशील होना चाहिए। उसके सम्बन्ध में प्रगति विरोधी कोई कल्पना नहीं की जा सकती। वह मानव और मानव समाज को सदा आगे ही बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। उसकी आड़ में कोई भी प्रतिगामी कदम उस मानव को शोभा नहीं दे सकता, जो स्वभावतः अंकुर की तरह सिर ऊपर उठा कर प्रगट होता है और जिसको उस पौधे की तरह निरन्तर और उत्तरोत्तर ऊपर ही ऊपर उठते जाना चाहिए। उसकी आत्मा उस पौधे की तरह स्वभावतः प्रगतिशील, उन्नतिशील और विकासशील है। कुहरा जैसे पौधे की प्रगति एवं उन्नति को ग्रस लेता है, वैसे ही विकृति मानव की आत्मा पर विकारों का पर्दा डाल देती है। इसलिए हमारी मान्यता यह है कि संस्कृति, मानव तथा समाज के जीवन का संस्कार एवं परिष्कार करने के साथ उसमें परस्पर आदान-प्रदान की भावना को सुदृढ़ करते हुए उसको निरन्तर प्रगति एवं विकास की ओर अग्रसर करती है। जो विचार, जो भावना, जो कल्पना और जो धारणा ऐसा करने को क्षमता नहीं रखतीं उनका संस्कृति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वे संस्कार नहीं विकार हैं। वे परिष्कार न करके विकार पैदा करते हैं। उनको संस्कृति से सर्वथा विपरीत विकृति कहना चाहिए। उनका मानव के साथ स्वभावसिद्ध सम्बन्ध नहीं है। वे उसके विकृत स्वभाव के सूचक हैं। संस्कृति की साधना अथवा उपासना करने वालों को इस विकृति से यत्नपूर्वक बचना चाहिए।

★

श्रमजीवी पत्रकारों को कानूनी संरक्षण—(पृष्ठ ५८ का शेषांश)

छः मास का व अन्य पत्रकारों को तीन मास का नोटिस मिलना अनिवार्य है। छँटनी के अवसर पर वह औद्योगिक विवाद अधिनियम के अनुसार प्रतिवर्ष की नौकरी पर १५ दिवस का वेतन क्षतिपूर्ति के रूप में पावेंगे और जो पहले नियुक्त किया गया है, उसे साधारणतः बाद में पृथक् किया जायगा। इसमें अन्तर करने पर प्रबन्ध को कारण बताने होंगे। जब उस पद पर पुनर्नियुक्ति होगी तो छँटनी किए गए आदमी को पद पर आने का पहला अधिकार होगा।

इस अधिनियम द्वारा उन समाचार संगठनों में जहाँ बीस से अधिक व्यक्ति काम करते हैं, प्रोवीडेण्ट फण्ड अधिनियम व स्टैंडिंग आर्डर्स अधिनियम भी लागू कर दिए गए हैं। इस प्रकार उन कार्यालयों में प्रोवीडेण्ट फण्ड की व्यवस्था अनिवार्य होगी और स्थायी नियमों को प्रमाणित करने तथा लागू करने का प्रबन्ध करना होगा। प्रोवीडेण्ट फण्ड कानून अभी तक केवल ६ उद्योगों तक सीमित था और स्थायी नियम उन कारखानों में होते में जहाँ कम से कम १०० कर्मचारी हैं। इस प्रकार छोटे-छोटे कारखानों में भी इन कानूनों को लागू करने का इस अधिनियम से

(शेष पृष्ठ ६३ पर)

पत्नी की खोज

अशोक

दक्षिण भारत के द्रविड़ देश में कांची नाम की एक नगरी थी। उसमें शक्तिकुमार नाम का एक करोड़पति वैश्य पुत्र रहता था। जब वह अठारह वर्ष का हुआ तो उसने सोचा कि अविवाहित मनुष्य के जीवन में कुछ सुख नहीं। साथ ही वह मनुष्य जिसकी स्त्री अवगुणों से युक्त हो वह भी सुख नहीं पाता। तब उसने सोचा कि गुणसम्पन्न स्त्री किस प्रकार प्राप्त करूँ? उसके सम्बन्धी उसके लिए अनेक रिश्ते लाये परन्तु दूसरों द्वारा लाई हुई कन्याओं में इच्छानुकूल गुणों को न पाकर उसने स्वयं ही उद्योग करने का निश्चय किया। ज्योतिषी का वेष बना, अपने वस्त्र के छोर में प्रायः एक सेर धान बाँध कर वह घर से निकल पड़ा। ज्योतिषी समझ कर बहुत से अभिभावकों ने उसे अपनी कन्याएँ दिखाईं। जब वह अपनी जाति की ही किसी गुणवती कन्या को देखता था तो उससे पूछता था, "भद्रे! क्या तुम केवल इन एक सेर धानों द्वारा ही मुझे अच्छा भोजन भर पेट खिला सकती हो?" सुन कर लोग हँस देते थे। इस प्रकार तिरस्कृत होता हुआ वह बहुत दूर निकल गया।

चलते-चलते वह कावेरी के तट पर स्थित शिबी नगर में पहुँचा। वहाँ पर एक धाय ने उसे एक अनाथ कुमारी कन्या को दिखाया। उस कन्या के विरल वस्त्राभूषणों से पता चल रहा था कि उसकी समृद्धि उसके माता-पिता के साथ ही नष्ट हो गई होगी। शक्तिकुमार ने ध्यान से उस कन्या को देखा। उसने सोचा कि निश्चय ही इस कन्या के अंग न तो अधिक मोटे हैं और न अधिक दुबले; यह न अधिक नाटी है और न अधिक ऊँची; कुरूप नहीं है प्रत्युत स्वच्छ है। इसके हाथ की अँगुली और हथेली लाल है। इसके हाथ में मीन, कमल, कलश आदि पुण्य चिन्ह और शुभ रेखाएँ हैं, जिनसे धन, सम्पत्ति और पुत्रों की अधिकता दृष्टिगोचर होती है। इसके टखने का जोड़ बराबर है अर्थात् हड्डी उठी हुई नहीं है, टाँगें मांसल हैं तथा उभरी हुई नसों से रहित हैं। नाभि कुछ छोटी तथा गहरी है। उदर तीन वलियों से युक्त है। नख मणि सदृश चिकने, कोमल तथा उठे हुए हैं। अँगुलियाँ सीधी हैं और वक्रता क्रमशः है। कन्धे सुडौल हैं। इस सुकुमारी की कुहनी की हड्डी उठी हुई नहीं है। गर्दन पतली और शंख जैसी है। इसके लाल अधरों की गोलाई बीच में विभक्त है। ठोड़ी पूर्ण और सुन्दर है। माथा प्रौढ़ तथा कठिन है। भवें क्रमशः गोल, काली और चिकनी हैं, आपस में जुड़ी हुई नहीं हैं। नासिका तिल के पुष्प के सदृश है, अधिक बड़ी नहीं। नेत्रों में श्वेत, श्याम और रतनार वर्ण शोभित हो रहे हैं। नेत्र चंचल तो हैं परन्तु मन्द गति से घूमते हैं। माथा चन्द्रमा के खण्ड के समान है। केशराशि इन्द्रनील मणि के सदृश काली और सुन्दर है। कमल जैसे मुख में, तिरछी तथा मुरझाई हुई कमलनाल के सदृश कान मनुष्यों के हृदय को आकर्षित कर लेते हैं। केश घुँघराले अवश्य हैं, परन्तु घुँ अत्यधिक नहीं हैं। केश सिरे तक काले, सुन्दर, लम्बे और एक- प्रकृति के हैं। यह कन्या सुन्दर है, परन्तु सौन्दर्य के अभिमान से इस शील का परित्याग नहीं किया है। यह कन्या मेरे मन को आकर्षि कर रही है। फिर भी इसकी परीक्षा लेकर ही इससे विवाह का उचित है, क्योंकि बिना विचारे किया हुआ कार्य कर्त्ता को दुःखों की श्रृंखला में फँसा देता है।

फिर शक्तिकुमार ने कोमल दृष्टि से उस कन्या की ओर देखते हु कहा, "हे सुन्दरी! क्या तुम इस एक सेर धान से मुझे भरपेट खिला के लिए अच्छा भोजन बना सकती हो?"

कुमारी ने अपनी वृद्धा दासी की ओर संकेत किया और उ शक्तिकुमार के हाथ से उस धान को ले लिया और पाद-प्रक्षालन पश्चात उसे स्वच्छ और जल छिड़के हुए आसन पर बैठाया। कुमारी ने उस धान को धूप में डाल दिया और बार-बार पलट सुखा लिया। फिर उसे पक्की और समतल भूमि पर रख कर मूसल पिछले भाग से धीमे-धीमे कूट कर चावलों को बिना तोड़े उन छिलका अलग कर लिया। फिर वह अपनी धाय से बोली, "हे मात इस भूसी से सुनार आभूषण चमकाते हैं। इसलिए तुम इसे कि सुनार को बेच दो और उससे प्राप्त हुई कौड़ियों से एक साधा हँडिया, दो कुल्हड़ और कुछ लकड़ियाँ ले आओ। लकड़ी मजबूत अधिक सूखी या अधिक गीली भी न हो।"

तब उस कुमारी ने उन चावलों को अर्जुन वृक्ष के काष्ठ की हुई ऊखल में डाल कर कूट लिया। ऊखल का मुँह चौड़ा था वह न बहुत गहरी थी और न बहुत उथली। मूसल खदिर की लक का बना हुआ था और उसके ऊपर लोहे का पत्तर चढ़ा हुआ था मूसल न अधिक हलका था और न अधिक भारी। यथेष्ट लम्बा और उसका मध्य भाग पतला था। कुमारी ने सूप में डाल कर कुरेद-कुरेद कर चावलों में से सारा कूड़ा निकाल दिया। फिर चाव को कई बार पानी में धो लिया। इसके पश्चात उसने चूल्हे का करके, चावलों में पाँच गुना पानी डाल कर उन्हें आग पर चढ़ा दि

जब चावल कुछ पक गए और उनके अवयव ढीले हो गए उसने चम्मच से उन्हें घोट दिया और पतीली को उलट कर उ माँड निकाल दिया। फिर पतीली को उतार कर उसके ढक्कन कुछ आग रख दी। शेष लकड़ी को पानी के छींटे देकर बुझा दि और उसके कोयले बना लिए। बची हुई लकड़ी और कोयले धाय बाजार में बेच आई और उससे प्राप्त कौड़ियों से थोड़ा-

साग, घी, दही, तेल, आँवला, इमली आदि ले आई। कुमारी ने इन वस्तुओं में से ही दो-तीन प्रकार के भोज्य पदार्थ, चटनी, रायता, सलाद आदि बना लिये। चावल के माँड को भी नए सकोरों में डाल कर गीली बालू में जमा दिया और पंखे द्वारा धीमी-धीमी हवा करके उसे कुछ ठण्डा कर लिया। फिर उसमें नमक मिला कर उसे अंगार द्वारा धूप से सुगन्धित कर लिया। आँवले को बारीक पीस लिया और दासी द्वारा उससे स्नान करने को कहलवाया। शक्तिकुमार ने क्रमशः तेल और आँवले का प्रयोग करके स्नान किया। स्नान करके वह गीले बदन ही फर्श पर रखे हुए पटे पर बैठ गया। आँगन में ही लगे हुए केले के पेड़ के चौथाई कटे हुए पत्ते पर सकोरे उसके समक्ष लाए गए।

कुमारी ने सर्वप्रथम चावल के माँड की बनी हुई पेय वस्तु (सूप) उसके समक्ष रखी। उसको पीकर उसके शरीर से मार्ग की सारी थकावट दूर हो गई और उसके समस्त शरीर में प्रसन्नता फैल गई। तब कुमारी ने उसकी पत्तल में दो चम्मच चावल डाले और शाकादि अनेक व्यंजन और घी उसको दिया। उसने इस प्रकार मिर्च, सोंठ और पीपल के चूर्ण से युक्त मट्ठे की काँजी से शेष भोजन भी किया। इस प्रकार उसने तृप्तिपूर्वक भोजन किया। तब भी कुछ चावल, शाकादि शेष रह ही गए।

भोजन करने के उपरान्त शक्तिकुमार ने जल की याचना की। तब कुमारी ने नए घड़े के जल को धार बाँध कर गिराया। जल अगरु की धूप, नए गुलाब और उत्फुल्ल कमल की सुगन्ध से सुरभित था। उसने भी मुख पर लगाए हुए सकोरे से हिमवत शीतल उस जल को आकण्ठ किया। शीतल जल के छींटों से उसकी पलकें कुछ लाल और तिरछी हो गईं, धारा के शब्द से उसके कान सुनन्दित हो गए, जल के स्पर्श के सुख से उसके कपोल कठोर और रोमांचित हो गए, सुगन्धित वायु से उसकी नासिका के रन्ध्र फूल गए और मधुरता के कारण उसकी रसनेन्द्रिय तृप्त हो गई।

सिर हिलाकर उसने कुमारी को और जल डालने से रोका और फिर दूसरे हाथ में जल लेकर आचमन किया। वृद्धा धाय ने तब तक जूठन को उठा कर ताज़े गोबर से फर्श को लीप दिया और अपने उत्तरीय द्वारा मध्य में पर्दा कर दिया।

इस प्रकार पूर्णरूपेण तृप्त होकर शक्तिकुमार ने कुमारी से विधिवत विवाह कर लिया और उसे अपने घर ले गया। फिर भी उसकी परीक्षा लेने के लिए शक्तिकुमार ने उससे उदासीन हो जाने का स्वाँग रचा और एक वेश्या को रख लिया। उस कन्या ने वेश्या से भी प्रिय सखी के समान ही व्यवहार किया तथा आलस्य-रहित हो, पति को देवता तुल्य मानकर उसकी सेवा की। गृह-कार्यों को भी वह भली भाँति करती रही। उसने अपने कुटुम्बियों को भी अपने गुणों और चतुरता के वश में कर लिया। उसके गुणों के वशीभूत होकर शक्तिकुमार ने उसे समस्त परिवार की स्वामिनी बना दिया। अपने जीवन और शरीर को भी उसके अधीन करके धर्म, अर्थ और काम तीनों का उपभोग किया।

इसीलिए कहा गया है कि पत्नी के गुण पति को प्रिय लगने वाले और कल्याणकारी होने चाहिएँ।

* * *

श्रमजीवी पत्रकारों को कानूनी संरक्षण—(पृष्ठ ६१ का शेषांश)

श्रीगणेश होता है। प्रस्तावित संशोधन विधेयक के अनुसार जो संसद के समक्ष है, श्रमिकों को कार्यालय के स्थायी आदेशों में परिवर्तन कराने व उनका पालन कराने का अधिकार होगा। प्रोवीडेण्ट फण्ड की दर भी ६¼ प्रतिशत से ८⅓ प्रतिशत बढ़ाने का प्रस्ताव चल रहा है।

छुट्टियों के सम्बन्ध में यह अधिनियम सभी श्रमिक अधिनियमों से अधिक उदार हैं। प्रत्येक कर्मचारी अपने सेवा काल के १।११ भाग की अर्जित व १।१८ भाग की बीमारी की छुट्टी ले सकेगा। अर्जित छुट्टी पूरे वेतन पर व बीमारी की आधे वेतन पर होगी। त्यौहारों की व आकस्मिक छुट्टियों की संख्या सरकार नियमों में निर्धारित करेगी।

इस विधेयक में दो-तीन अन्य धाराएँ भी बड़ी ही महत्त्वपूर्ण और क्रांतिकारी हैं। एक धारा के अनुसार जिस कर्मचारी को अनुग्रह धन, वेतन आदि के सम्बन्ध में मालिक से वसूली करनी है वह इस दिशा में राज्य सरकार को एक आवेदन देगा और उस पर सरकार आदेश देकर उस धन को मालगुजारी की भाँति वसूल कर सकती है। इससे रुपये की वसूली के लिए मुकदमेबाजी बच जाएगी। दूसरा अधिकार यह है कि यदि किसी पत्रकार की वर्तमान सुविधाएँ किसी सौदे, शर्तें, कानून या अन्य किसी भी भाँति कानून की धाराओं से अधिक हैं तो वह उन समस्त सुविधाओं का उपभोग तो करेगा ही, साथी ही कानून की जो धाराएँ उसके उपयोग की होंगी उनका उपभोग करेगा। इस प्रकार बैंक कर्मचारी विवाद की सी स्थिति कभी उत्पन्न न होंगी कि कुछ लोगों के वेतन में कटौती हो।

इस प्रकार इस कानून में यथासम्भव अधिकाधिक श्रमजीवियों के हितों की रक्षा का प्रयत्न किया गया है। केन्द्रीय सरकार इसके परिपालन के लिए नियम बनाएगी और वेतन बोर्ड की नियुक्ति करेगी। इन नियमों के अन्तर्गत पत्रकारों के प्रोवीडेण्ट फण्ड की एक अलग योजना होगी तथा वेतन बोर्ड पूरे समय के व फुटकर रेट भी तय करेगा। इससे बाहरी सम्वाददाता भी पूरा लाभ उठाएँगे। इस प्रकार देश के तीन हजार नौकर पत्रकार व लगभग एक हजार सम्वाददाता इस कानून से लाभ उठाएँगे। साथ ही इसमें जो सिद्धान्त निरूपित किए गए हैं—जैसे वेतन बोर्ड का, नोटिस का, छुट्टियों का, अनुग्रह धन का—वे भारतीय मजदूर कानून के लिए अभिनव हैं और अन्य श्रमिकों के लिए प्रेरणा केन्द्र होंगे। यह अधिनियम समाजवादी राज्य की कल्पना को एक अंश में कार्यान्वित करने का प्रथम चरण है।

मैथिली साहित्य : प्राक्विद्यापति युग

रमाकान्त झा

भारतीय आर्य एवं तदितर भाषा मध्य मैथिली भाषा-साहित्य का एक विशिष्ट स्थान है, इसे प्राच्य एवं प्रतीच्य विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। इस ओर विद्वानों का ध्यान अठारहवीं शताब्दी के सप्तम दशाब्द से ही आकृष्ट होता आया है। फलतः भाषा शास्त्रीय दृष्टि से मैथिली के सम्बन्ध में अनेक अनुसन्धानात्मक कार्य हुए हैं। मैथिली साहित्य का अध्ययन-मनन ग्रियर्सन आदि विद्वानों द्वारा बाद में हुआ।

सर्वप्रथम 'अल्फाबेटम ब्राम्हनिकम' (प्रकाशित—१७७१ ई०) में मैथिली पर विचार किया गया और इसे एक पृथक भाषा माना गया। पुनः कालब्रुक ने १८०१ में अपने 'संस्कृत एवं प्राकृत भाषाएँ' शीर्षक सुविख्यात निबन्ध में तथा श्री फेलोन एवं डा० ग्रियर्सन ने अपनी परवर्ती कृतियों में मैथिली पर व्यापक विवेचन उपस्थित किया। देशीय पण्डितों में श्री हरप्रसाद शास्त्री, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, खगेन्द्रनाथ मित्र, डा० उमेश मिश्र, डा० सुधाकर झा, डा० सुभद्र झा, डा० जयकान्त मिश्र प्रभृति विद्वानों ने नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपाद्य विषय है मैथिली साहित्य के प्रारम्भिक युग का संक्षिप्त परिचयात्मक विवेचन उपस्थित करना। अतः मैथिली भाषा के सम्बन्ध में यहाँ अधिक और कुछ कहना विषयान्तर होगा। मिथिलेतर क्षेत्र के साहित्यानुरागी विद्यापति की कोमल-कान्त पदावली तथा उनके उत्तरकालीन कवियों की रचनाओं से तो परिचित हैं, किन्तु विद्यापति के पूर्व वाणी के वरद पुत्रों ने मैथिली भारती के चरणों में अपने जो भाव-प्रसून अर्पित किए, उनसे अधिकांश वे अनभिज्ञ ही हैं। मैथिली साहित्य का सृजन मिथिला के अतिरिक्त नेपाल, आसाम, बंगाल एवं उड़ीसा प्रदेश में हुआ। मैथिली साहित्य की अमूल्य निधियाँ उन क्षेत्रों में बिखरी पड़ी हैं, किन्तु अभी तक उन क्षेत्रों में अपेक्षित मात्रा में गवेषणात्मक कार्य नहीं हुए हैं। अतः इस स्थिति में इस काल के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ कहना न तो सम्भव है और न उचित ही। उपलब्ध सामग्री के आधार पर निम्न विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

महायान सम्प्रदाय के बौद्ध सिद्धाचार्यों की रचना मैथिली की प्राचीनतम निधि है। १९१६ में श्री हरप्रसाद शास्त्री नेपाल दरबार पुस्तकालय से पर्याप्त मात्रा में 'गान और दोहे' नोट कर लाए जो 'बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता की ओर से १९१६ में 'बौद्ध गान ओ्दोहा' के नाम से प्रकाशित हुए। श्री शास्त्री का अभीष्ट था बंगला के प्राचीन रूपों का अन्वेषण करना, अतः उन्होंने ऐसे ही पदों का संकलन किया जो आपाततः बंगला से साम्य रखते थे। किन्तु बाद में राहुल जी जैसे विद्वानों द्वारा जिस अपरिमित सिद्ध-साहित्य का उद्धार हुआ, उसके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि जितना अधिकार उस पर मैथिली का होना चाहिए, उतना किसी अन्य भाषा का नहीं। असमिया, बंगला और उड़िया के विद्वान, जो चर्यापदों पर अपने-अपने दावे कर रहे हैं, वे निराधार एवं भ्रान्तिमूलक हैं। किन्तु चर्यापदों के रचयिता, वर्ण्य-विषय, स्थानीय वातावरण, शब्दावली, वाक्य-विन्यास, व्याकरण एवं भाषा की प्रकृति का सम्यक् अनुशीलन करने के पश्चात उन पर मैथिली का सवा-सोलह आना स्वत्व स्थिर हो जाता है। ८४ सिद्धों का उल्लेख कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर कृत 'वर्ण-रत्नाकर' (१३वीं शताब्दी) के अष्टम कल्लोल में हुआ है। इससे अनुमान किया जाता है कि मिथिला क्षेत्र से उन सिद्धों का घनिष्ठ सम्पर्क था। अपने मत के प्रचारार्थ वे सतत भ्रमण-शील रहते थे और तदर्थ जन-भाषा का सहारा लेते थे। उस समय पूर्वी भाषा समुदाय मध्य मैथिली के अतिरिक्त, किसी जन भाषा में अभिव्यक्ति की क्षमता नहीं थी। अतः उन आचार्यों ने प्राचीन मैथिली को अपनी रचना का माध्यम बनाया। कुछ लोगों का तर्क है कि मिथिला बौद्ध धर्म के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रही। अतः सिद्ध साहित्य एवं मैथिली का सम्बन्ध अनर्गल-सा दीखता है। उनकी यह उक्ति आंशिक रूप से ही सत्य है। सचमुच मिथिला के ब्राह्मण वर्ग ने बौद्ध धर्म का उग्र विरोध किया, किन्तु निम्नवर्ग ने बौद्ध धर्म के प्रति आदर का भाव प्रदर्शित किया—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं होना चाहिए। ब्राह्मणों द्वारा चिरकाल से निम्नवर्ग के लोगों का बौद्धिक एवं सामाजिक शोषण हो रहा था। बौद्ध धर्म ने उन्हें समता का अवसर एवं विश्व मैत्री का सन्देश दिया। अतः उस ओर उनका आकर्षित होना स्वाभाविक ही था। बाद में मुसलमानी आक्रमण के फलस्वरूप भारत से बौद्ध धर्म का मूलोच्छेदन होने के उपरान्त, उन लोगों ने पुनः ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर लिया हो—यह सम्भव है। अद्यतन काल में भी बौद्ध धर्म का प्रभाव मिथिला में दृष्टिगोचर होता है; यथा, शक्ति की पूजा में पंचमकार पर जोर और तांत्रिक संस्कृति में जादू-टोना की महत्ता। चर्यापद में नदी और नाव का निरन्तर उल्लेख मिथिला का प्राचीन नाम 'तीरभुक्ति' के अनुकूल ही है। सम्प्रति काल में भी मिथिला की जनसंख्या में ग्वालों की अधिकता चर्यापद में वर्णित गोप-जीवन की साक्षी है।

भाषा एवं व्याकरण की दृष्टि से चर्यापद को मैथिली का प्राचीन रूप मानना सर्वथा युक्ति-संगत है। सानुनाशिक वर्णों का बाहुल्य मैथिली की प्रकृति के अनुकूल ही है। षष्ठी विभक्ति के 'क', 'एर', 'अर', 'केर' आदि चिह्न मैथिली के हैं। आधुनिक मैथिली में 'कर' (हुनकर), 'क' एवं 'करे' रूप विद्यमान हैं। उत्तमपुरुष सर्वनाम

'अप्पण', 'मो', 'मज्ञे' मैथिली के हैं और मध्यम पुरुष 'तों', 'तोहर', 'तोरा' जैसे प्रयोग तो चर्यापद में अधिकता से हुए हैं। क्रियापद तो स्पष्टतः प्राचीन मैथिला के हैं ही; यथा 'थक', 'अछ' आदि। आधुनिक मैथिली में उनके रूप क्रमशः 'थिक' और 'अछि' हो गए हैं।

शब्दावली का आधा से अधिक अंश मैथिली का है जो आधुनिक मैथिली में उसी रूप में मिल सकता है, यथा—अप्पण, वितु, अवस्स (अवश्य), पइसल, पाँक, चँगेड़ा, भनइ (भनइ विद्यापति), चउदह, वैरो, सोहालो (सोहारो), हक्क (हाक), पियरि (पीअर) दुव्वरि, खणे-खणे, पुंप (खोपा), खीरू (खीर), ताँति, वेंग (मेंढक), माँझ, महुलि, तिन्मण (व्यंजन), अणठीया आदि।

स्व० काशीप्रसाद जयसवाल, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, डा० उमेश मिश्र, डा० सुभद्र झा, डा० जयकान्त मिश्र आदि विद्वानों ने एक स्वर से बौद्ध सिद्ध साहित्य की भाषा को मैथिलो का प्राचीन रूप और उसे मैथिली का प्राचीनतम साहित्य स्वीकार किया है। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने 'बंगला भाषा की उत्पत्ति और विकास' (पृष्ठ ११७) में स्वीकार किया है कि चर्यापदों का लिखित रूप नेपाल में दिया गया—'जहाँ मैथिली प्रचलित थो और नाटकों में उसका प्रयोग होता था; और दक्खिन-पूर्वी नेपाल (मोरंग देश) में मैथिलो बोली जाती थो। अतः चर्यापद में मैथिली रूपों का होना स्वाभाविक ही है।'

चर्यापद की विषय-वस्तु सिद्धों की रहस्यात्मक साधना और अनुभूति है। इसका उद्देश्य था बौद्ध धर्म के परवर्ती सिद्धान्तों का प्रचार करना। अतः इसमें साहित्यिकता की मात्रा अधिक नहीं है, किन्तु मैथिली भाषा के विकास-क्रम को समझने में उसकी उपादेयता महान है।

अब उपरोक्त उपस्थापना की पुष्टि में चर्यापद की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जातो हैं—

(१) 'पुणु धसइ पुणु खसइ, पुणु ललइ पुणु घुमइ'
(२) 'केअइ धूलि सब्बदिस पइसइ, पीअर सब्वइ भासे
आउ वसंत काह सहि करिअइ, कंत न थाकइ पासे।'
(हि० का० ३२४)

(३) काजण कारण ण एहु जुगती
सअ सवेअण बोलथि सान्ती
(चर्यापद)

(४) अप्पण माँसे हरिणा वइरी, खणहु ण घाड़इ भुसुक अहेरी
हरिणी बोलअ सुण हरिणा तों, ए बन छाड़ि होहु भान्तो
(भुसुकपाद, ८०० ई०)

(५) वरुफल दरिसण णउ अग्घाइ
वैद देखि की रोग पलाई
(साहपाद, ७६० ई०)

सिद्ध साहित्य के बाद का जा मैथिली साहित्य है वह अद्यावधि मौखिक ही है। स्वभावतः कलाप्रिय मैथिल लोक-समुदाय शताब्दियों से उसे अपनी जिह्वा पर सुरक्षित रखती आई है। वह है लोरिक का गीतमय काव्य। इसका सर्वप्रथम उल्लेख ज्योतिरीश्वरकृत 'वर्ण रत्नाकर' मध्य नगर वर्णन के प्रसंग में आया है। लोरिक की गीत-कथा ज्योतिरीश्वर के समय मिथिला के सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी; अन्यथा 'वर्ण रत्नाकर' जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थ में उसका उल्लेख नहीं होता। लोक-प्रिय एवं लोक-प्रचलित होने में किसी साहित्यिक कृति को कुछ समय की अपेक्षा होती है। अतः इसका रचना-काल अनुमानतः 'वर्ण रत्नाकर' से दो शताब्दी पूर्व (लगभग ११ शताब्दी) माना जा सकता है। लोरिक का मैथिली साहित्य में वही स्थान है जो आल्हखण्ड का हिन्दी में। लिखित रूप के अभाव में कालक्रमेण इसमें भाषागत परिवर्तन होता रहा है। तथापि कोटि-कोटि निरक्षर, किन्तु भावुक, हृदय की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पिपासा की परितृप्ति जो इसके द्वारा हुई है, वह क्या कम महत्त्व का विषय है?

लोरिक का विषय घटना-संघटन मध्ययुगीन, तथा वातावरण एवं शैली रोमांटिक है। इसमें लोरिक के प्रणय एवं युद्ध के प्रसंगों का वर्णन है। लोरिक एक ग्वाल युवक है। उसकी विवाहिता स्त्री का नाम मंझारी है जो अनुपम रूपमती है। एक दिन प्रातःकाल लोरिक राजा सहदेव की पुत्री चनैन से प्रणयालाप कर रहा था कि मंझारी ने देख लिया। ज्योतिष गणना में निष्णात मंझारी उनके सम्भाषण के विषय से अवगत हो गई तथा उनके पलायन की योजना को विफल करने का प्रयास करने लगी। किन्तु दैवी सहायता से लोरिक चनैन के साथ निशीथ वेला में हरदी (एक स्थान) के हेतु चल पड़ा। मार्ग में चनैन साँप के काटने से मर गई। लोरिक का अभ्रभेदी करुण-क्रंदन स्वर्ग तक पहुँचा। देवताओं की सभा ने एक देवी को विषय का अनुसंधान करने के लिए नियुक्त किया। उसने लोरिक के अनन्य प्रेम एवं हृदय-द्रावक व्यथा से आर्द्र होकर चनैन को पुनर्जीवित कर दिया। वे आगे बढ़े और अपने गंतव्य स्थान को पहुँचे। वहाँ के मोचनि राजा का समुचित अभिवादन न करने के कारण लोरिक उसका कोप-भाजन हुआ। दोनों के बीच भीषण युद्ध हुआ जो निरन्तर सात दिनों तक चलता रहा। पुनः दैवी शक्ति की मध्यस्थता से संधि हुई। लोरिक को मोचनि के राज्य का अर्द्धांश मिला। वह वहाँ पूरे बारह वर्षों तक चनैन के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करता रहा। एक रात अचानक उसकी विवाहिता पत्नी एवं वृद्धा माता की करुण स्मृति उसके हृदय को विलोड़ित करने लगी। दूसरे दिन प्राची दिशा में सूर्य की प्रथम किरण के फूटने के पूर्व ही वह अपने ग्राम-देश को चल पड़ा। निरन्तर दिन भर चलने के बाद संध्या काल वह घर पहुँचा। मंझारी के प्रति किए गए विश्वासघात पर पश्चाताप प्रकट कर पुनः वह उसका प्रेम-भाजन हुआ। मंझारी और चनैन सहोदरा की भाँति प्रेमपूर्वक रहने लगीं और लोरिक की माँ के सुख-आनन्द का तो कुछ कहना ही नहीं।

संक्षेप में लोरिक का यही कथानक है। जहाँ कहीं भी मार्मिक प्रसंग आया है उसका हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है। लोरिक-चनैन का पलायन, मंझारी की विरह-व्यथा, लोरिक-मोचनि का रोमांचकारी युद्ध आदि ऐसे प्रसंग हैं जिनका सजीव चित्रण हुआ है। अथ से इति तक महाकाव्योचित शैली का अनुसरण हुआ है। नायिकाओं के रूप-सौन्दर्य

का वर्णन मध्ययुगीन परिपाटी के अनुकूल हुआ, यद्यपि भाषागत परिवर्तन के कारण वह प्रभाव अक्षुण्ण नहीं रह सका है।

निम्न पंक्तियों में चनैन का सौन्दर्य कितना निखर सका है :

आँगी में जे झाँगी सोभई, रतन लागल चारि
सोन टाँकल मखमल सोभई, गोटा झमकारि
हँसइ जखन दामिनि छिटकई, हँसक ठुम्मकि चालि
जकरा दिशि उठा के ताकई, देइ करेजा सालि

हस की चाल तथा नायिका के हँसने पर दामिनी चमकने की चर्चा कर उपमा-रूपक का प्राचीन परम्परा का निर्वाह किया गया है।

लोरिक एक पराक्रमी योद्धा था। अतः उसका वर्णन भी उसी के अनुरूप हुआ है। निस्संदेह आधुनिक नायिका उसके रूप को देखकर आह्लादित न होकर भयत्रस्त हो जाय, किन्तु रूपवती चनैन तो उसी पर विमोहित थी :

रूप सन-सन कान छलई, छिट्टा सनक कपार
डांका सन-सन आँखि छलई, दाँत जेना फार
लट भरि टिक्की फहराइ छलई, सीना हाथ चार
मुट्ठी भरि जे डाँड़ छलई, धोती पेचदार

जेनरल कनिंघम ने पुरातत्व पर्यवेक्षण १८८३ के प्रतिवेदन में 'अतिमानवीय शौर्य का योद्धा' लोरिक से सम्बन्धित निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की हैं :

अस्सी मन के शेली, चौरासी मन के खाड़
मन पचहत्तरि के जम्बू कटार
सात सै मन सतसेवा, बावन मन के सोनमुठ कटार
बाइस मनक झिलमिल, अस्सी मनक लोहबंद
सात गाड़ोक भरतो लोरिक कमर लागइ बाँध

विस्तार-भय से अधिक उद्धरण नहीं दिए जा रहे हैं। सम्पूर्ण काव्य में प्रेम, विरह, मिलन, युद्ध, पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता आदि का अनोखा वर्णन हुआ है। सर्वाधिक महत्त्व का विषय यह है कि इस काव्य का नायक प्राचीन परम्परानुसार कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय सामन्त नहीं—एक ग्वाल युवक है।

साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त 'लोरिक' का समाज शास्त्रीय महत्त्व भी बहुत अधिक है। तत्कालीन मिथिला के इतिहास, राजनीति, भूगोल एवं सामाजिक स्थिति आदि अनेक विषयों का ज्ञान 'लोरिक' द्वारा होता है। अभी तक 'लोरिक' का छिटपुट संकलन एवं प्रकाशन हुआ है। एक सुसम्बद्ध संकलन एवं सुसम्पादित संस्करण की नितान्त अपेक्षा है।

'लोरिक' के बाद का साहित्य भी अधिकांश अलिखित ही है; यथा डाक-वचन, दीन भद्रीक गीत, विहुला आदि। इन सबों का विषय-क्षेत्र विभिन्न और व्यापक है। अनुमानतः ये रचनाएँ इसी युग की हैं। कुछ अंशों में इनका संकलन एवं प्रकाशन भी हुआ है। इन अलिखित लोक-काव्यों के बाद इस युग की अनुपम विभूति कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्णरत्नाकर' है।

वर्णरत्नाकर तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की रचना है। यह ग्रन्थ हरप्रसाद शास्त्री के सहकर्मी, पं० विनोद विहारी काव्यतीर्थ द्वारा मिथिला से गवेषित होकर 'रायल एसियाटिक सोसाइटी बंगा के तत्वावधान में प्रकाशित हुआ। सम्पादन एवं भूमिका लेखन कार्य डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या तथा श्री बबुआ जी मिश्र किया है। यह मैथिली का उत्कृष्ट गद्य-ग्रन्थ तो है ही श्री चाटु महोदय के मतानुसार आधुनिक भारतीय आर्य भाषा मध्य प्रामा रचनाओं में भी यह सर्व प्राचीन है।

यह ग्रन्थ आठ 'कल्लोल' (अध्याय) में समाप्त हुआ है। अंश विनष्ट हो गए हैं, किन्तु जो अवशिष्ट हैं वे सुन्दर एवं सुपा हैं। नगर वर्णना, नायक वर्णना, आस्थानक वर्णना, ऋतु वर्ण प्रयानक वर्णना, भाट वर्णना, श्मशान वर्णना एवं राज्य पुत्र वर इसका विषय-क्रम है। यद्यपि यह एक प्रकार का लक्षण ग्रन्थ है, परवर्ती काव्यकारों के लिए निर्देश-पुस्तक के काम आया, तथापि इ ऐसे अनेक स्थान हैं जहाँ ज्योतिरीश्वर की काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित उठी है।

नायिका के रूप-सौन्दर्य के प्रत्यक्ष चित्रण के अभाव में भी द पर उसके मोहक प्रभाव का वर्णन निम्न पंक्तियों में हुआ है—

'जनि कामदेव संसार जिति आएल तकरि पताका। जनि एकर रूप दे इन्द्र सहस्राक्ष भेलाह, ब्रह्मा जे चतुम्मुख कए हलु। जनि एहि आलि लागि एक कृष्ण चतुर्भुज भए गेलाह।'

अब निष्कलंक चाँद जैसा मुख और यमुना की तरंग जैसी वाली सखी के सौन्दर्य का साक्षात दर्शन किया जाय :

'काम देवक नगर अइसन शरीर। निस्कलंक चान्द अइसन मुह कंदल खंजरीट अइसन लोचन। सांकरक सलाका अइसन नाक यमुनाक तरंग अइसन भजुह। सोनाक सीप अइसन कान अन्धकार लता अइसन विरनी। पाकल बिंब अइसन अधर काम देवक पाश अइसन बाँह।'

पुनः नायिका का हास्य वर्णन जैसा कलापूर्ण एवं मनहर हुआ वैसा तो संस्कृत साहित्य में भी मिलना दुर्लभ है :

'क्षीर समुद्र दक्षिणानिले चालल तरंग सनक लहरी अइसन अमृत सरोवर तरंगक सहोदर अइसन। शरतक पूर्णिमा चान्द ज्योत्सना अइसन। त्रैलोक्यक नागरजन युवजन हृदय मोहन सन।'

महान प्रतिभा सम्पन्न काव्यकार की कल्पना सर्वदिक्गामी है। अतः ज्योतिरीश्वर ने प्रकृति (मानभ + मानवेतर) के भव्य भीषण; कोमल एवं कठोर दोनों ही पक्ष के चित्रण में समान द का परिचय दिया है। बैताल का वर्णन 'सखी वर्णना' की पृष्ठभूमि देखा जाय, कितना कुरूप और भयावह है :

'कंसारिक भाल पजरल अइसन मुह। ओवारी दीप लेसल अइ आँखि। हथिनाक पात अइसन कान। फेदखाजुरीक केसर अ भौंह। फरहदा फूल अइसन नह।'

अब अन्त में वर्षा रात्रि के निविड़ मांसल अंधकार का देखा जाय :—

(शेष पृष्ठ ७२ पर)

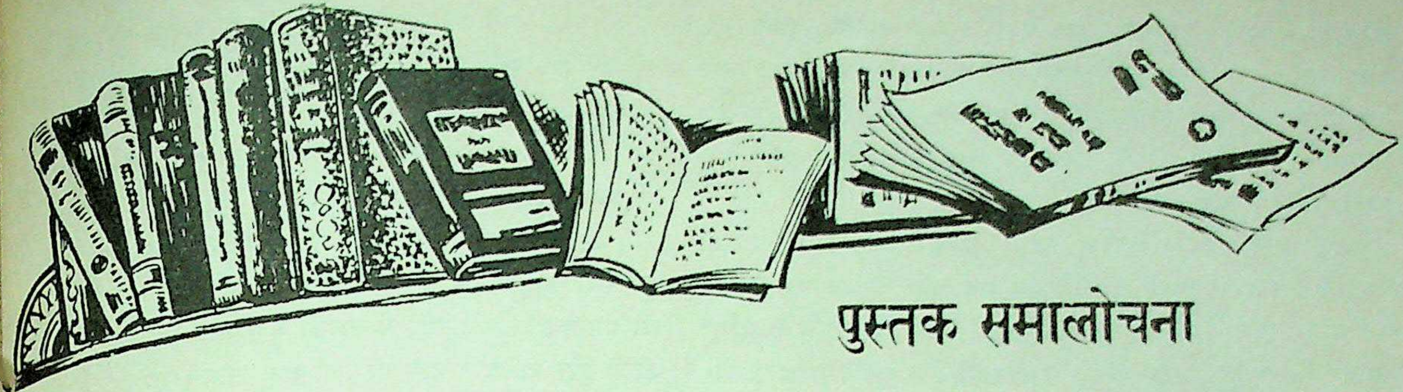

पुस्तक समालोचना

रास्ते का मोड़ : लेखक—श्री राम शर्मा 'राम'; प्रकाशक—भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली; पृष्ठ ३४०; मूल्य ५॥)

इस उपन्यास के सम्बन्ध में लेखक का यह कथन है कि प्रस्तुत उपन्यास की कथा एक व्यक्ति की नहीं अपितु एक समाज और देश की कथा है। पहले इसी कसौटी पर इस उपन्यास की जाँच की जाए तो यह कहना पड़ेगा कि समाज और देश की कथा इस पुस्तक में बहुत कम आती है। लगभग १०० पृष्ठ तक तो यह उपन्यास बिल्कुल एक साधारण प्रेम सम्बन्धी उपन्यास की तरह चलता रहता है, बाद को चलकर एकाएक पता नहीं कहाँ से उपन्यास के दोनों नायक पहले एक और बाद को दूसरा क्रान्तिकारी के रूप में दिखाए जाते हैं। सम-सामयिक समाज और आन्दोलनों का कहीं कोई विशेष जिक्र नहीं और जो है वह बहुत छिछला है। कहीं पर भी लेखक सामाजिक-आर्थिक शक्तियों की गहराई में नहीं उतर पाते।

थोड़े में इस उपन्यास का कथानक यह है कि आत्माराम अपने मित्र विपिन को लेकर अपने गाँव में आता है और विपिन का परिचय आत्माराम की भावी पत्नी रजनी से होता है। रजनी का पिता विपिन को अधिक धनी देख कर उसी से अपनी लड़की की शादी करना चाहता है पर रजनी की निष्ठा के सामने उसकी एक नहीं चलती और अन्त में आत्माराम और रजनी की शादी हो जाती है, पर रजनी के पिता ने विपिन से रजनी की शादी की बात किसी न किसी रूप में कही थी, इसलिए विपिन के मन में आलोड़न उत्पन्न होता है। यहाँ तक आत्माराम और विपिन दोनों बहुत कमजोर दिलों के व्यक्ति करके दिखाए जाते हैं। इस कथानक में एक स्वामी जी भी हैं जो जब तब आते हैं। वही स्वामी जी पहले-पहले रजनी को बताते हैं कि विपिन क्रान्तिकारी है। आत्माराम को कुछ यह शक होता है कि शायद विपिन और रजनी एक-दूसरे को चाहते हैं इसलिए शादी के बाद तो नहीं पर जब वह एक लड़के का बाप हो चुका होता है तब वह एकाएक रजनी को विपिन के घर बहाना करके छोड़ आता है। विपिन और रजनी का कुछ मानसिक द्वन्द्व दिखलाया जाता है पर इसमें मनोविज्ञान की बराबर हत्या की जाती है। इस प्रकार से चलते हुए कथानक में यह दिखाया जाता है कि आत्माराम अहिंसा का मार्ग अपना कर चला जाता है, रजनी क्रान्तिकारियों की गुप्त सभाओं में जाती हुई दिखाई देती है इत्यादि इत्यादि। विपिन क्रान्तिकारी मामले में पकड़ा जाता है पर मुखबिर बन जाता है। अन्त में रजनी के कारण उसे अदालत में बयान वापस लेते हुए तथा बाद को चल कर स्वेच्छा से फाँसी पर चढ़ते हुए दिखाया जाता है।

इस संक्षिप्त रूप में कथा फिर भी दिलचस्प मालूम होती है, पर कथा जिस रूप में लिखी गई है उसे पढ़ते-पढ़ते पाठक बराबर ऊब जाता है। लेखक न तो क्रान्तिकारी आन्दोलन को चित्रित करने में सफल हुआ है न गांधी जी के आन्दोलन को। इन दोनों आन्दोलनों के नेताओं में जो बहस हुई है उसमें भी कहीं कोई गहराई नहीं। यदि एक वाक्य में कहा जाए तो उपन्यास आदि से अन्त तक ऊलजलूल है और उपन्यास में जिस एक गुण के होने से सब दुर्गुण छिप जाते हैं यानी रोचकता, वह तो इसमें कहीं भी नहीं है। लेखक को ऐसे विषय में लिखना चाहिए जिसका उसे स्वयं ज्ञान हो और यदि वह ऐसे विषयों को लेता है जिनका उसे प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है तो उसे अच्छी तरह अध्ययन करके तभी लेखनी उठाने का साहस करना चाहिए।

—मन्मथनाथ गुप्त

●

प्रेत की छाया : लेखक—ज्योतिन्द्रनाथ; प्रकाशक—अरुण पुस्तक माला, लहरिया सराय; पृष्ठ संख्या १३४; मूल्य १)

विधाता की भूल : लेखक—वही; प्रकाशक—राजेन्द्र प्रकाशन, पटना—४; पृष्ठ संख्या १७६; मूल्य २)

ये दोनों कहानी संग्रह हैं। इनके लेखक नवोदित कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में लगभग वे सब गुण विद्यमान हैं जो एक कहानी को पढ़ने योग्य बनाते हैं। कहानियों में कला है, संवेदन है, रोचकता है और आशा होती है कि आगे चलकर श्री ज्योतिन्द्रनाथ हिन्दी साहित्य को कुछ चिर स्मरणीय कहानियाँ दे सकेंगे। कुछ कहानियाँ तो मन को पकड़ लेती हैं—जैसे 'अपराधी' कोई और लेखक इस कहानी को सुखान्त बनाकर एक आदर्शवादी कहानी बना सकता था, लेकिन श्री ज्योतिन्द्रनाथ इस लालच से बचे रहे और उन्होंने इस कहानी की कंचन को नरक में ही पड़ा रहने दिया। नवल के हृदय में अपनी ओर से कोई दया नहीं पैदा की। इसीलिए यह कहानी तिलमिला देती है। इसी प्रकार 'रूप का मोह' कहानी भी बहुत चुटीली है। और भी ऐसी कहानियाँ हैं जिनकी याद बहुत देर तक रहती है। कुछ कहानियाँ मात्र वर्णन बन कर रह गई हैं, लेकिन जहाँ कहीं लेखक ने गहरा पैठने का प्रयत्न किया है वहाँ वह सफल हुआ है मनुष्य के अन्तर को बाहर खींच लाया है—जैसे 'एक वदना'

की सुमन। 'सन्देह का विष' नामक कहानी में दर्द तो है लेकिन इस प्रकार सन्देह हो जाना और तुरन्त ही इतनी बड़ी घटना का घट जाना कुछ विश्वसनीय नहीं लगता; यों दुनिया में क्या नहीं हो जाता। सामाजिक कहानियों के अतिरिक्त जो दूसरी कहानियाँ इसमें हैं वे इतनी अधिक सफल नहीं हो सकीं।

यही बात 'प्रेत की छाया' कहानी संग्रह के बारे में भी कही जा सकती है। 'प्रेत की छाया' कहानी स्वयं एक अति कल्पनात्मक कहानी है। आज के युग में कौन इस पर विश्वास करेगा। 'स्मृति के आँसू' कहानी निस्सन्देह दिल पर चोट करती है। उसकी सरलता और उसकी मनोवैज्ञानिक पकड़ प्रभावशाली है। '३० दिन' और 'मन का दोष' कहानियाँ 'अपराधी' कहानी की तरह बहुत ही स्वाभाविक दर्दभरी कहानियाँ हैं। लेखक ने हास्य रस की एक ही कहानी लिखी है 'इलाज', लेकिन उसमें भी वह काफी सफल हुआ है।

सब मिलाकर ये कहानियाँ पढ़ने लायक हैं, पकड़ती भी हैं। लेकिन एक बात मैं कहना चाहूँगा—कहानी-लेखन की जो कला है लेखक अभी उसको पूरी तरह ग्रहण नहीं कर सका है। कहानी कहाँ से आरम्भ होनी चाहिए, कौन-सी बातें बड़ी आसानी से छोड़ी जा सकती हैं,—यह अभी उसे सीखना है। अधिकांश कहानियाँ व्यर्थ के वर्णन से लम्बी हो गई हैं। लम्बी होने का अर्थ पृष्ठों से नहीं है, बल्कि पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि काश कि लेखक इन बातों को न लिखता। यह सब कुछ अनुभव और अभ्यास की बात है। शिल्प के इस दोष के अतिरिक्त हम इन कहानियों का हृदय से स्वागत करते हैं और हमें पूर्ण विश्वास है कि लेखक आगे चलकर हिन्दी कथा साहित्य की अच्छी सेवा करेगा।

रसभरी कहानियाँ : लेखक—श्री सुदर्शन; प्रकाशक—बोहरा एण्ड कम्पनी; पब्लिशर्स लि०, कालबादेवी रोड, बम्बई; पृष्ठ संख्या ७८; मूल्य १)

रसभरी कहानियाँ सचमुच ही रसभरी हैं। भाषा, भाव और गठन सब दृष्टियों से वे उन बालकों के लिए हैं, जिनके लिए लिखी गई हैं। जैसा कि लेखक ने स्वयं लिखा है आसान भाषा लिखना बड़ा कठिन है। पुस्तक में एक भी मिलवाँ या जुड़वाँ अक्षर नहीं है। बालक और अशिक्षित प्रौढ़ भी बड़ी आसानी से पढ़ सकते हैं। कुछ कहानियाँ ऐसी हैं जो कि हम शायद बचपन से सुनते आ रहे हैं। सर गंगाराम के बड़ा बनने की कहानी भी बड़ी रोचकता से बताई गई है। इसी प्रकार हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर जो विजय प्राप्त की गई है उसको भी एक परी की कहानी द्वारा बड़ी सुन्दरता से समझाया गया है। वह लेखक की अपनी सूझ-बूझ और मौलिकता का परिचायक है। लेकिन हमें इस संग्रह में एक-दो कहानी के आने पर जरा आपत्ति है। एक तो 'परी ने बदला लिया' कहानी जिसमें शादी की चर्चा आती है, दूसरी 'दारू पीना बहुत बुरा'। बेशक इनका उद्देश्य अच्छा है लेकिन जिस तरह कहानी सामने आती है हमें डर है वह शायद उचित प्रभाव न डाल सके। बहरहाल वह मेरी अपनी राय है। अन्यथा इस संग्रह की कहानियाँ सरल, सरस और शिक्षाप्रद हैं। इनकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि ये उपदेश नहीं देतीं।
सुनाती हैं। मनोरंजन के द्वारा सीख देती हैं। छपाई, सफाई,
ठीक हैं।

उलझन : लेखक—राजाराम शास्त्री; प्रकाशक—
प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ संख्या ७६; मूल्य १॥)

प्रस्तुत संग्रह में तीन नाटक हैं। इनके लेखक बहुत दिनों से
इण्डिया रेडियो के लिए नाटक लिखते आ रहे हैं। भूमि
श्री प्रेमनाथ दर ने हिन्दी में नाटकों के अभाव के बारे में काफ़ी
की है और नाटक के नाम पर जो कुछ सामने आ रहा है उस
काफ़ी रोष प्रकट किया है।

संग्रह के पहले नाटक 'जनसेवक' में शास्त्री जी ने एक ज
का चित्र खींचा है। भाषा बोलचाल की है और नाटक प्रभाव
वाला है, लेकिन उसमें नृत्य की जो योजना प्रस्तुत की गई है वह
स्वाभाविक नहीं मालूम होती। 'हरि के प्यारे' दूसरा नाटक है।
से प्रसारित हो चुका है। रंगमंच पर शायद ही उसका उपयो
सके। कथा का स्थान यमलोक है। कुल मिला कर साधारण नाटक
तीसरा नाटक 'उलझन' भी रेडियो से प्रसारित हो चुका है।
जी में हास्य की वृत्ति है लेकिन भूमिका लेखक का यह दा
स्वस्थ हास्य एकांकीकारों में वह सर्वोत्तम हैं, गलत ही नहीं
भी है। यों भी इन तीनों नाटकों में वह ऊँचाई नहीं है
एक नाटककार में होनी चाहिए। एक सीमित स्थिति
एक सीमित जनवर्ग के लिए ये अच्छे हैं, लेकिन इसमें कोई
नहीं कि शास्त्री जी में तत्व वर्तमान हैं, जो उन्हें एक सफल नाटक
बना सकते हैं बशर्ते कि वे वर्तमान नाट्य कला का अच्छी
अध्ययन करें। छपाई, सफाई साधारण है। मूल्य अधिक है।

—विष्णु प्र

●

सावित्री : लेखक—प्रो० गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र', एम०
प्रकाशक—ग्रन्थमाला-कार्यालय, पटना-४; पृष्ठ संख्या ११५; मूल्य

सावित्री के विषय में उसके रचयिता का कहना है कि वह
महाकाव्य की परम्परा में लिखना चाहते हुए वैसा न कर सका
सावित्री के चरित्र को उभारना ही उसका उद्देश्य था। फिर भी
काव्य पुस्तक प्रबन्ध काव्य के रूप में लिखी गई है। पुस्तक
प्रधान है। कवि ने भावों की गहराई में उतरने की बजाय वर्णन
विशदता में जाना ही समीचीन समझा है। इस दृष्टि से यह
सफल काव्य है। कहीं-कहीं कवि भावों में डूबता अवश्य है,
इन पंक्तियों में :—

यह अरुणिमा लायगी शुभ रात,
रात लायेगी सुखद बारात।
वह पिरोयेगी पृथक् दो गात,
गात होंगे पुलक-श्रमजल-स्नात।
जल रचेगा प्रेम-स्वर अवदात,
सर खिलायेगा प्रमुद-जलजात;

जलज में होगा स्पृहा-अलि-घात,
प्रात यह, जीवन-प्रफुल्ल-प्रभात।

परन्तु वर्णन-क्षमता ही स्थान-स्थान पर अधिक स्पष्ट होकर प्रकट होती है, जैसे इन पंक्तियों में :—

ढँक लिया था घोर तम ने मेदिनी-आकाश,
पत्र कम्पन-हीन, मानों रुक गया जग-श्वास।
जल रहे ऊपर नखत के दीप शत अम्लान,
जल रहे नीचे कुटी में दो नयन द्युतिमान।

भूमिका में द्विजेन्द्र जी ने तोरूदत्त और अरविन्द द्वारा रचित सावित्री विषयक काव्यों की चर्चा की है और इस बात पर दुःख प्रकट किया है कि हिन्दी के किसी कवि की दृष्टि सावित्री जैसे उदात्त चरित्र के चित्रण की ओर नहीं गई। यह अच्छा ही हुआ कि द्विजेन्द्र जी ने सावित्री लिख कर उक्त कमी की पूर्ति की। परन्तु अपने इस प्रयास में वह न तो तोरूदत्त कृत सावित्री की गहरी काव्यात्मक सम्वेदना ला सके और न अरविन्द कृत्त सावित्री की गहरी प्रतीकात्मक और दार्शनिक उदात्तता ही। हाँ, सामान्य पाठकों के लिए सावित्री अवश्य ही एक सुन्दर वर्णनात्मक काव्य ग्रन्थ सिद्ध होगा। भाषा और छन्द की दृष्टि से सावित्री प्रायः निर्दोष है और इसीलिए जो दो-एक दोष मिलते हैं उनका निराकरण हो जाए तो अच्छा होगा। पृष्ठ ७ पर यह पंक्ति है—'सुलझ न पाई, गई उलझती पल-पल तू मकड़ी-सा' और पृष्ठ २७ पर यह पंक्ति—'काम-मोह का मुग्ध शलभ पड़ जिसमें होते क्षार।' व्याकरण की दृष्टि से 'मकड़ी-सा' के स्थान पर 'मकड़ी-सी' और 'का' के स्थान पर 'के' होना चाहिए था।

एक बात, जिसकी चर्चा मैं पहले भी 'आजकल' के इस स्तम्भ में कर चुका हूँ, फिर दुहरा देना चाहता हूँ। हिन्दी की पुस्तकें बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रही हैं। उनमें से अनेक पुस्तकें अनुपम सजधज के साथ प्रकाशित हो रही हैं। परन्तु प्रूफ़ की भूलों की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। 'सावित्री' में भी दो पृष्ठों का शुद्धि-पत्र लगाया गया है। काव्य ग्रन्थ में प्रूफ़ की प्रायः एक सौ भूलों के होने पर यह स्वाभाविक है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते खीझ जाए और वह पुस्तक को परे हटा दे!

हिन्दी रुबाइयाँ : लेखक—उदयभानु 'हंस' एम०ए०; प्रकाशक—अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली; पृष्ठ संख्या ७२; मूल्य १।)

इस काव्य ग्रन्थ को 'हिन्दी कविता में एक नया प्रयोग' कहा गया है परन्तु समझ में नहीं आया कि इसमें नया क्या है जिसको प्रयुक्त किया गया है। रुबाइयों का प्रचलन उर्दू में काफी लम्बे समय से है। हिन्दी में भी इस माध्यम को इस पुस्तक के प्रकाशन से पहले ही अपनाया जा चुका है। यदि विषय की दृष्टि से यह दावा किया गया है कि यह एक नया प्रयोग है तो वैसी भी कोई बात देखने में नहीं आई। प्रेम, विरह, देश-प्रेम, भक्ति, रूप, यौवन, दीवाली, आशा, महापुरुष, पाप, एकता, आदि पिष्टपेषित विषयों पर ही रुबाइयाँ लिखी गई हैं। परन्तु उस दावे को भुला दिया जाए तो कहना होगा कि हंस जी की अनेक रुबाइयाँ हृदय को काफी गुदगुदाती हैं। बानगी के तौर पर यह रुबाई देखिए:—

तुम प्रेम को जीवन की निशानी समझो,
जो बहता रहे उसको ही पानी समझो,
जब हृदय बुढ़ापे में भी रंगीन रहे,
तुम ऐसे बुढ़ापे को जवानी समझो॥

इसी प्रकार पृष्ठ २६ पर दी गई इस रुबाई को पढ़कर आप को रीतिकालीन कवियों की चमत्कार-प्रियता का स्मरण हो आएगा—

अब और न अपमान सहे जायेंगे,
सच कहते हैं, सच बात कहे जायेंगे,
माथे का पसीना ही निचोड़ें यदि मिल कर,
तिनके की तरह शत्रु बहे जायेंगे।

हंस जी की 'पाप' सम्बन्धी रुबाइयाँ विशेष ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि उनमें मनुष्यत्व की आड़ में पाप के औचित्य को बार-बार सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास कुछ बचकाना-सा ही लगता है, क्योंकि स्वयं हंस जी ने पृष्ठ ४५ पर कहा है—

जिस व्यक्ति के जीवन में सदाचार नहीं,
निर्धन के लिए दिल में भरा प्यार नहीं,
आता ही नहीं देश पे मरना जिसको,
उस नीच को जीने का भी अधिकार नहीं॥

कलाकार का दर्पण : लेखक—श्री इन्द्रिय दमन 'कौशिक'; प्रकाशक—हिन्दी साहित्यकार-संसद् दिल्ली ६; पृष्ठ संख्या ८०; मूल्य ३)

तरुण कवि ने इस संग्रह को 'मेरा प्रथम दुधमुहाँ प्रयास' कहा है और यह भी कहा है कि 'इस किशोरावस्था में जो मैंने यह साहस किया उसके लिए विनीत हूँ। कोई सन्देह नहीं इस कार्य के पश्चात् मैं उपहासास्पद बन जाऊँ।' इस स्वीकारोक्ति के बाद संग्रह की कविताओं के विषय में कुछ कहना शेष नहीं रह जाता। हाँ, एक बात अवश्य कहना चाहूँगा कि कौशिक जी यदि अपनी कविता संग्रह को प्रायः दस वर्ष और न छपाते तभी अच्छा होता। जिस सन्तान का कोई भी अंग पूर्णतः विकसित न हुआ हो उसे दुनिया में लाने के प्रयास का एक ही परिणाम हो सकता है : उस सन्तान की अकाल मृत्यु।

किरातार्जुनीय : अनुवादक—मुरलीधर दीक्षित, जगन्नाथ प्रसाद चौबे; प्रकाशक—जन-सहयोग नव-साहित्य-प्रकाशन-मन्दिर, कटनी, (सीमेण्ट,) म० प्र० ; पृष्ठ संख्या १७६; मूल्य २॥)

महाकवि भारवि-प्रणीत किरातार्जुनीय के इस पद्यानुवाद में मूल की आत्मा को यथेष्ट परिश्रम-पूर्वक सुरक्षित रखा गया है। अनुवाद में छन्दों का सहज निर्वाह हुआ है। भाषा प्रवाहयुक्त और भावोचित है। संस्कृत के अमर काव्यों के ऐसे सुन्दर अनुवाद जितने भी अधिक हों उनसे हिन्दी की श्री-वृद्धि होगी। केवल एक ही बात से मैं सहमत नहीं हो सका। अनुवादकों ने महाकवि भारवि की मूल रचना के उन अंशों को छोड़ दिया है जिनमें, उनके शब्दों में, 'खुले शृंगार' का वर्णन था।

(शेष पृष्ठ ७१ पर)

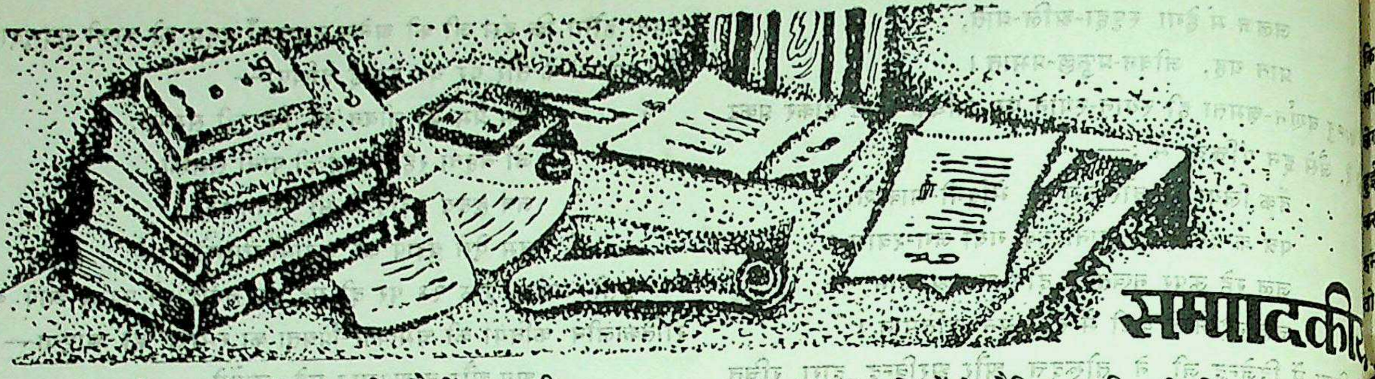

लोकमान्य तिलक की सौवीं जयन्ती

२३ जुलाई १९५६ को भारत में स्वाधीनता की अर्वाचीन लहर के जन्मदाता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की सौवीं जन्म जयन्ती बड़े उत्साह और धूमधाम के साथ मनाई गई। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक एक महान लोकनायक होने के अतिरिक्त एक महान विद्वान तथा उच्चकोटि के पत्रकार भी थे। भारतीय कांग्रेस को उन्होंने मध्य श्रेणी की संस्था बनाया, उससे पहले वह केवल धनिक शिक्षित वर्ग की ही संस्था थी। और उनके बाद गांधी जी ने उसे देश भर की जनता की संस्था बना दिया। इस अवसर पर 'आजकल' परिवार की ओर से हम लोकमान्य की दिवंगत आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

●

आशा के चिन्ह

पिछले कुछ महीनों से संसार के दोनों धड़ों के पारस्परिक तनाव में कमी आती जा रही है। यह तनाव बड़ी शीघ्रता से अत्यन्त उग्रता पर पहुँच गया था। ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मानव जाति एक महा-भयंकर खड्ड के किनारे पर आ पहुँची है, जहाँ एक ज़रा-सा भी धक्का उसे अतल गहराइयों में गिरा देगा। पर धीरे-धीरे इस तनाव में कमी आने लगी। इस कमी की रफ्तार इतनी कम थी कि पहले तो यह कमी दिखाई ही नहीं दी। पर पिछले कुछ महीनों की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह तनाव अब कम हो गया है और परिस्थिति दिनोंदिन सुधर रही है।

मानव जाति के इतिहास में पहली बार जैसे सम्पूर्ण संसार दो धड़ों में विभक्त हो गया था। इस दलबन्दी में सबसे पहले भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने यह साहस दिखाया कि खुले आम अपनी तटस्थता की घोषणा कर सकें। उससे पूर्व तटस्थता की नीति स्विटज़रलैण्ड आदि दो-एक छोटे-छोटे देशों की बपौती समझी जाती थी। जिन भयंकर विरोधों और छिपी-खुली धमकियों के बावजूद भारत अपनी तटस्थता की नीति पर स्थिर रहा, वह आज स्वाधीन भारत के इतिहास का एक सुनहला अध्याय बन गया है। इसी तटस्थता की नीति से पंचशिला के सिद्धान्तों का जन्म हुआ और क्रमशः संसार के शक्तिशाली राष्ट्रों ने भी यह समझ लिया कि 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्तों के बिना सम्पूर्ण मानव जाति का भविष्य अत्यन्त अन्धकारमय बन जाता है।

हाल ही में रूस की हवाई शक्ति के प्रदर्शन के अवसर पर कितनी ही पश्चिमी शक्तियों के सैनिक पदाधिकारी निमन्त्रित थे। अमे
कितने ही वायुसेना पदाधिकारी मास्को पहुँचे थे। दोनों धड़ों क
यह ज्ञात हो गया है कि कोई किसी का समूल नाश नहीं कर स
इस स्थिति में विपक्षी के विरुद्ध जहाद प्रारम्भ कर देना भारी
का ही काम सिद्ध होगा।

स्टालिन के देहावसान के बाद जिस तरह रूस में कट्टरता
और रूस जैसा शक्तिशाली राष्ट्र पंचशिला के आधारभूत सिद्धा
पूर्ण रूप से विश्वास करने लगा, इस तथ्य की प्रथम घोषणा भी
के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने ही की थी। आज क्रमश
स्थिति आ गई है कि संसार के अधिकाँश राष्ट्र, कुछ अपवादों को
जाने दीजिए, यह मान गए हैं कि रूस की नई नीति शान्ति के पक्ष

कॉमनवैल्थ के प्रधानमन्त्रियों की इस बैठक में संसार की
परिस्थितियों पर जो विचार विनिमय हुआ, उस पर भारत के प्रधान
तथा भारतीय विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। कॉमनवैल्थ के प्र
मन्त्रियों ने यह घोषणा की है कि उन्हें रूस के शान्तिपूर्ण इरादों
विश्वास है। हमें विश्वास है कि इस घोषणा से संसार के वात
को शान्तिमय बनाने में और भी अधिक सहायता मिलेगी।

●

क्या यह सच है?

भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में संसार भर में दिलचस्पी
रही है। संसार की कितनी ही भाषाओं में भारतीय साहित्य, विदे
नए भारतीय साहित्य का अनुवाद हो रहा है। संसार की
भाषाओं में से अंग्रेज़ी में पहले भी भारतीय साहित्य का सबसे
अनुवाद हुआ था। भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था, इससे यह
स्वाभाविक थी। आज संसार की अन्य समुन्नत भाषाओं (रूसी,
जर्मन, फ्रेंच आदि) में भी भारतीय साहित्य का अनुवाद असा
तीव्र गति से हो रहा है।

भारत की पढ़ी-लिखी जमात ने अंग्रेज़ी को अपना लिया
इससे कितने ही भारतीयों ने अंग्रेज़ी में साहित्य रचना की। आज
कितने ही भारतीय लेखक मूल अंग्रेज़ी में साहित्य रचना कर रहे
पिछले ५, ६ वर्षों में इंग्लैंण्ड तथा अमेरिका के कितने ही
प्रकाशक भारतीय लेखकों की मौलिक अंग्रेज़ी रचनाओं के प्रका
दिलचस्पी ले रहे हैं। हमें हाल ही में ज्ञात हुआ है कि इनमें से
तो नहीं, पर कुछ प्रकाशक नए भारतीय लेखकों से यह अकांक्षा

कि वे ऐसी रचनाएँ करें, जिनमें भारतीय जीवन के काले पहलू का सीधा या परोक्ष वर्णन अवश्य हो। पिछले दिनों कतिपय भारतीय लेखकों की जो नई अंग्रेज़ी रचनाएँ उक्त दोनों देशों में प्रकाशित हुई हैं, उनमें भारतीय जीवन का जो चित्रण किया गया है; उसे पढकर यह सन्देह अवश्य होता है कि कहीं उक्त स्थापना ठीक तो नहीं है। हमने स्वयं यत्किंचित रूप में यह साहित्य पढ़ा है। आवश्यकता हुई तो सम्बद्ध उद्धरण भी हम पेश करेंगे।

●

वन-महोत्सव

विभाजन के परिणामस्वरूप भारत के सन्मुख अन्न समस्या जटिल रूप में उपस्थित हुई थी। तब यह पाया गया था कि पिछले सौ सालों में भारत के जंगलों का इतना बड़ा क्षय हुआ है कि भारतीय ऋतुओं पर और विशेषतः बरसात पर उसका स्पष्टतः हानिकर प्रभाव पड़ा है। इसी कारण जुलाई के प्रारम्भ में प्रति बर्ष वन-महोत्सव मनाने की प्रथा जारी की गई थी। इस अवसर पर प्रति वर्ष देश में हज़ारों लाखों नए वृक्ष बोए जाते हैं। इन नए वृक्षों में कितने वृक्ष पनप पाते हैं और कितने नष्ट हो जाते हैं, इसका हिसाब रखना भी उतना ही आवश्यक है, जितना इस बात का ब्यौरा रखना कि इस वर्ष कितने नए वृक्षों का आरोपण हुआ है। हमें ज्ञात है कि उत्तर प्रदेश में, विशेषतः कुमायूं के पहाड़ों पर, गत वर्षों में कितने ही नए जंगलों का सफल आरोपण हुआ है। पर हमें मानना चाहिए कि वृक्षारोपण के साथ-साथ उन नए वृक्षों की वर्षों तक निरन्तर परिचर्या भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। हम यह भी चाहते हैं कि वन-महोत्सव केवल नए वृक्षों के आरोपण तक ही सीमित न रहे। वन-महोत्सव के दिन देश के हज़ारों-लाखों नागरिक वन भ्रमण के लिए जाएँ, और उस दिन बहुत बड़े पैमाने पर वनों में खेल-कूद, संगीत, नृत्य और सहभोज आदि का आयोजन हो। इस कार्य के लिए ज्येष्ठ और श्रवण के ४ रविवारों (ज्येष्ठ के अन्तिम दो और श्रवण के प्रथम दो) को वन-महोत्सव मनाया जा सकता है। तभी भारतीय जनता अपने देश के वनों में आवश्यक दिलचस्पी ले सकेगी।

●

लेखकों से अनुरोध

'आजकल' के लिए जो सज्जन अपनी रचनाएँ भेजते हैं, उनसे पुनः हमारा अनुरोध है कि—

१. जब तक आपसे अनुरोध न किया जाए, एक से अधिक रचना 'आजकल' के लिए न भेजिए।

२. प्रत्येक रचना पर शीर्षक के नीचे अपना पूरा नाम और पूरा पता अवश्य लिखिए। अन्यथा वह रचना न तो वापस की जाएगी और न उसका प्राप्ति स्वीकार ही भेजा जा सकेगा।

३. उत्तर या लेख की वापसी के लिए डाक टिकट मत भेजिए।

★

पुस्तक समालोचना—(पृष्ठ ७० का शेषांश)

यदि यह अनुवाद केवल पाठ्य पुस्तक के रूप में रखने के लिए किया गया है तो शायद उक्त बात का औचित्य हो सकता है। परन्तु भारवि के काव्य कौशल को समग्र रूप में प्रस्तुत करने के लिए यह आवश्यक था कि किरातार्जुनीय के सभी अंशों का अनुवाद किया जाता। जिसे खुले शृंगार की संज्ञा दी गई है, वह रस सिद्ध कवियों की लेखनी से छन कर क्या रूप धारण करता है, इसे जानने-समझने का अधिकार पाठकों को है और अच्छा होता कि अनुवादक पाठकों को इस अधिकार से वंचित न करते। परन्तु जैसा कुछ भी है, अनुवाद सुन्दर है और इसके लिए अनुवादक बधाई के पात्र हैं।

विविधा (अर्ध वार्षिक काव्य-संकलन): सम्पादक—राजेन्द्र किशोर, रणधीर सिन्हा; प्रकाशक—अशोक प्रेस, पटना; पृष्ठ सं० ९६; मूल्य २) रु०

'विविधा' में हिन्दी के तरुण और प्रौढ़ प्रायः ६२ कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। १६ कविताएँ गीतात्मक शैली पर लिखी गई हैं और शेष नई या मुक्त छन्द की शैली में। कुल मिला कर जिसे आज नई कविता कहा जा रहा है, उसी का प्राधान्य 'विविधा' में मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'विविधा' ने कुछ बहुत ही उच्चकोटि की काव्य सामग्री आज के पाठकों के लिए प्रस्तुत की है। हरिमोहन श्रीवास्तव, शम्भुनाथ सिंह, राजेन्द्र किशोर, व्रजविलास, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त, गजानन्द माधव मुक्तिबोध, केदारनाथ सिंह, कीर्ति चौधरी और अजित कुमार की कविताएँ मुझे प्रथम श्रेणी की लगीं। इनमें अनुभूति की गहनता और अभिव्यक्ति की नवीनता तो है ही, नई काव्य-चेतना का स्वस्थ प्रतिनिधित्व भी ये कविताएँ करती हैं। उच्चकोटि की इतनी कविताओं का एक साथ एक संग्रह में आ जाना बड़ी बात है और बड़ा शुभ-चिन्ह है। ये सभी कविताएँ हमें नई हिन्दी कविता के भविष्य के प्रति सर्वथा आश्वस्त बनाती हैं। इनमें भी राजेन्द्र किशोर कृत 'एक आत्मकथा', नरेश मेहता कृत 'ये हरिण-सी बदलियाँ', धर्मवीर भारती कृत 'घाटी के बादल' और मुक्तिबोध कृत 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' अविस्मरणीय रचनाओं में अपना स्थान ग्रहण करेंगी।

उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी कविताएँ हैं, जैसे श्यामनन्दन सहाय 'सेवक' की कविता 'जीवन का गीत' और रघुनाथ प्रसाद 'विकल' की कविता 'मानव की इच्छाएँ' जिन्हें प्रयोग के अच्छे नमूने कहा जा सकता है।

जैसा कि स्वयं सम्पादकों ने अपने वक्तव्य में स्वीकार किया है, "शायद कुछ ऐसी कविताएँ भी इस संकलन में हैं जो न होतीं तो अच्छा था।" उदाहरणार्थ मैं कुछ कविताओं के शीर्षकों का उल्लेख करूँगा: 'धूल भरी ज़िन्दगी', 'नींद को बुलाता हूँ', 'प्यार-प्रदर्शन', 'बेगार' आदि।

परन्तु कुल मिला कर यह एक अच्छा काव्य-संकलन है। सम्पादक-द्वय ने हमें वचन दिया है कि वे आगामी संकलन में और भी व्यवस्थित रूप से कविताओं का संचयन करेंगे, उन पर टिप्पणी देंगे, कवियों के

चित्र देंगे और आज की कविता पर लेख देंगे। यदि यह सब हो तो हमें आशा करनी चाहिए कि काव्य-संकलनों के अन्तर्गत 'विविधा' अपना एक विशिष्ट स्थान बनाएगी।

भूमिका (कविता संग्रह): रचयिता—राजेन्द्र प्रसाद सिंह; प्रकाशक—राका प्रकाशन, मुज़फ्फ़रपुर; पृष्ठ संख्या १७२; मूल्य ५)

'भूमिका' में बिहार के तरुण प्रतिभाशाली कवि राजेन्द्र प्रसाद सिंह की सन् १९५० तक की रचनाएँ संगृहीत हैं। इन्हें दो उप-शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित किया गया है—'संकेत' और 'गीत'। 'संकेत' के अन्तर्गत रचनाओं में कवि का निर्वैयक्तिक चिन्तन और समाज-यथार्थ के प्रति उसकी प्रतिक्रिया अधिक उभरी है और 'गीत' के अन्तर्गत रचनाओं में वैयक्तिक हर्ष-विषाद की भाव-भूमि का विकास हुआ है। राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने यद्यपि अभिव्यक्ति के माध्यम परम्परा से चुने हैं, उनके कथ्य के अन्तर्गत जगत और जीवन की नवीनतम एवं गहन अनुभूतियों का समावेश है। सिंहावलोकन की निम्न पंक्तियाँ देखिए:

> सामर्थ्य नाम उसका अब, जो कमलों से भी
> ले छीन सुरभि भरने को उनमें वज्र-कीट
> पौरुष कहते अब उसे, इन्द्र-धनु पर भी जो
> दे बिछा दहकते 'फ़ुटपाथों' के 'कंकरीट'
> हैं द्वन्द्वग्रस्त उलझे तन-मन से कोमल गुण
> भीतर-बाहर हैं दो क्षितिजों की तरह दूर
> बनती समष्टि पूर्णत्व व्यष्टि की नहीं, मगर
> है व्यक्ति-व्यक्ति को यह समाज कर रहा चूर

ओजस्विता इस प्रकार की कविताओं का विशिष्ट गुण है जैसे कि गीतों का विशिष्ट गुण है यथार्थ अनुभूतियों के माध्यम से व्यक्तित्व का निरन्तर उदात्तीकरण:

> प्राणों की पुण्य प्रभा धारा से धो शरीर, अन्तर
> भर लो अमन्द जगमग-जगमग इच्छाएँ शिव सुन्दर
> देखो संस्कृति में कुलिश और कलिकाओं का मिश्रण
> सौन्दर्य, प्रेम, करुणा का नयनों में प्रकाश लेकर।

संग्रह की अन्तिम कविता विशेष दृष्टव्य है।

मादिनी (कविता संग्रह) रचयिता—राजेन्द्र प्रसाद सिंह; प्रका मधुरिमा साहित्य प्रकाशन, मुज़फ्फ़रपुर; पृष्ठ संख्या १०८; मूल्य

'मादिनी' में राजेन्द्र प्रसाद सिंह की सन् १९५१ से १९५ रचनाएँ संगृहीत हैं। साथ में स्वयं कवि द्वारा लिखी गई एक भी है जो विशेष पठनीय है, क्योंकि उससे कवि के दृष्टिकोण को में सहायता मिलती है। पर ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ रचनाओं को कहना चाहिए था, उसे सम्पूर्णतः कह डालने की ही भूमिका की मुख्य प्रेरणा रही है। कुछ भी हो, भूमिका है कम से कम कवि का १२ सूत्री जीवन-दर्शन और 'प्रीति' के ७ का विवेचन (और उन सोपानों के अन्तर्गत अपनी रचनाओं का निर्देश) पाठकों के लिए काफी विचारोत्तेजक सिद्ध होगा।

संग्रह की कविताओं में प्रथम कविता 'मधु-सूक्त' काफ़ी णीय है। यह भूमिका में निर्दिष्ट कवि के प्रीति-विषयक विचा ही काव्यात्मक विवेचन है जिसमें यत्र-तत्र पैट्रोनियस आर टी० एस० इलियट, रवीन्द्रनाथ, जयशंकर प्रसाद, अथर्ववेद— उद्धरण समोये गए हैं। कविता में कोई नवीन जीवन-दर्शन तो प्रस्तुत किया गया है पर परम्परागत जीवन-दर्शन को नई ओजस्वी शैली में अवश्य रखने का प्रयास किया गया है। मिला कर मुझे ऐसा लगा कि इस कविता को कहीं काट-छाँट और कहीं व्याख्या-विस्तार द्वारा और अधिक काव्यात्मक, गह नवोन्मेषशालिनी बनाया जा सकता था। पर इससे कवि राजेन्द्र सिंह की क्षमता का परिचय अवश्य मिल जाता है और यह नि कहा जा सकता है कि भविष्य में उनसे हम कहीं अधिक सशक्त सुचिन्तित रचनाओं की आशा कर सकते हैं।

'व्यक्ति और व्यक्तित्व' शीर्षक के अन्तर्गत कविताओं में हासिनी' मुझे विशेष सुन्दर लगी। 'व्यक्ति और व्याप्ति' की र साधारण लगीं—विशेषतः इसलिए कि उनमें निवेदित सत्य, संग्र प्रथम कविता में आ गया है।

पुस्तक का आवरण-पृष्ठ कुछ विचित्रता लिए हुए है। अच्छा हो इस प्रकार की चिन्तनशील कविताओं का आवरण-पृष्ठ सादा रखा

—प्रयागनारायण त्रि

*

मैथिली साहित्य : प्राक्विद्यापति युग—(पृष्ठ ६६ का शेषांश)

'काजरक भीति तेलें सिंचलि अइसान रात्रि। पछेवाँ कौं बेगे काजरक मोंट फुजल अइसन मेघ। निविल मांसल अंधकार देषु।'

उक्त वर्ण में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि अंधकार जैसी सूक्ष्म वस्तु को 'मांसल' विशेषण प्रदान कर उसके गाढ़त्व को द्योतित किया गया है।

इस ग्रन्थ के साहित्यिक एवं भाषा शास्त्रीय महत्त्व की जितनी चर्चा की जाए थोड़ी होगी। इसकी शैली बाण की कादम्बरी के समकक्ष है। इसके अध्ययन से मध्ययुगीन हिन्दू संस्कृति एवं सभ्यता, आचार-व्यवहार का पता लगता है।

इस युग में 'वर्णरत्नाकर' के बाद कोई लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है। किन्तु कौन जानता है कि कितनी पाण्डुलिपियाँ मिथिला की कुटियों में किसी अन्वेषक की बाट जोहती होंगी। कम-से-कम साहित्य का तो पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना अधिक समीचीन पड़ता है कारण विद्यापति का गीत-साहित्य उनके पूर्व से आ परम्परा का ही विकसित रूप है। किसी साहित्यिक रूप के स्थि पुष्ट होने में कुछ काल तो लगता ही है, अतः ऐसा अनुमान निराधार नहीं है कि प्राक्विद्यापति काल में गीत-साहित्य का यथेष्ट मात्रा में हुआ होगा। श्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या मह चतुर्थ निखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन में यही विश्वास किया था। कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर और विद्यापति के किसी उपलब्ध सामग्री के अभाव में इस काल की चर्चा अब होती है।

उत्कृष्ट प्रकाशन

महात्मा गान्धी

महात्मा गान्धी की कहानी—चित्रों में

यह चित्रमय कहानी काल क्रम अनुसार है और महात्मा गान्धी के अलौकिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अध्यायों में बँटी हुई है। यह आशा की जाती है कि इस समय तक उनके जीवन तथा कार्य-कलाप के सम्बन्ध में जो प्रचुर सामग्री एकत्र हुई है यह प्रकाशन उसका उपयुक्त चित्रमय पूरक प्रमाणित होगा।

सादा जिल्द १०) रु०
सिल्क जिल्द १५) रु०

स्वाधीनता और उसके बाद—
जवाहरलाल नेहरू के भाषण

प्रधान मंत्री नेहरू के १९४६ से १९४९ तक विशेष अवसरों पर दिए गए ६० महत्त्वपूर्ण भाषण। स्वाधीनता, महात्मा गांधी, साम्प्रदायिकता, काश्मीर, हैदराबाद, शिक्षा, उद्योग, भारत की वैदेशिक नीति, भारत और राष्ट्र मण्डल, भारत और विश्व, आदि विषयों पर। सभी दृष्टियों से संग्रहणीय और पठनीय ग्रन्थ। रु० ५)

भारत दर्शन

(चित्रों में)

भारत की कहानी दिग्दर्शित करने वाले विविध चित्रों का अनमोल संग्रह है। देश के निवासी, पशु, वनस्पति, प्राकृतिक रचना, आदि का विहंगावलोकन। भारतीय जीवन विचारधारा, परिस्थिति, प्राकृतिक दृश्य इत्यादि, विभिन्न पहलुओं का स्थलानुरूप समावेश। रु० ७।)

भारतीय कला का सिंहावलोकन

मोहिन्जोदरो के समय से लेकर भारत के प्राचीन मध्ययुगीन तथा आधुनिक कला के ३७ रंगीन और १०० एक रंगी चित्रों का संग्रह। रु० ६।।)

भारत की एकता का निर्माण

अगस्त, १९४७ से दिसम्बर १९५० तक भारत के इतिहास के तेजस्वी काल में दिए गए सरदार वल्लभ भाई पटेल के २७ महत्त्वपूर्ण भाषण जो स्वतन्त्र भारत के निर्माण का यथार्थ प्रमाण हैं कई दुर्लभ चित्रों सहित। रु० ५)

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

उन्हें यह बहुत ही पसंद है—

न सिर्फ़ वह मनलुभावना लॉकेट जो बिनाका की हर ट्यूब के साथ रखा रहता है, बल्कि दाँतो का वह पूर्ण स्वास्थ्य भी जो बिनाका टुथपेस्ट का उपयोग करने से मिलता है।

बिनाका टुथपेस्ट का फलों-सा स्वाद आपके परिवार का मन शुरू ही से मोह लेगा, लेकिन बच्चों को दाँत साफ़ और स्वस्थ रखने के लिये बिनाका टुथपेस्ट बनाने वालों ने और भी बढ़ावा दिया है — मुफ़्त भेंट जिन्हें पा कर सब ख़ुश होंगे।

(सोने की तरह हमेशा चमकनेवाला एक लॉकेट और "गिफ्ट स्कीम" के नियम बिनाका टुथपेस्ट की हर ट्यूब के साथ दिये जाते हैं।)

'सीबा' द्वारा बनाया हुआ निराला टुथपेस्ट

CBK.28056

Regd. No. D—510

Published by the Director, Publications Division, and printed by the Production Officer, United Press, Government of India, Old Secretariat, Delhi.

8. 9-56

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

सितम्बर
१९५६
•
आठ आना

हमारे नये सिक्के

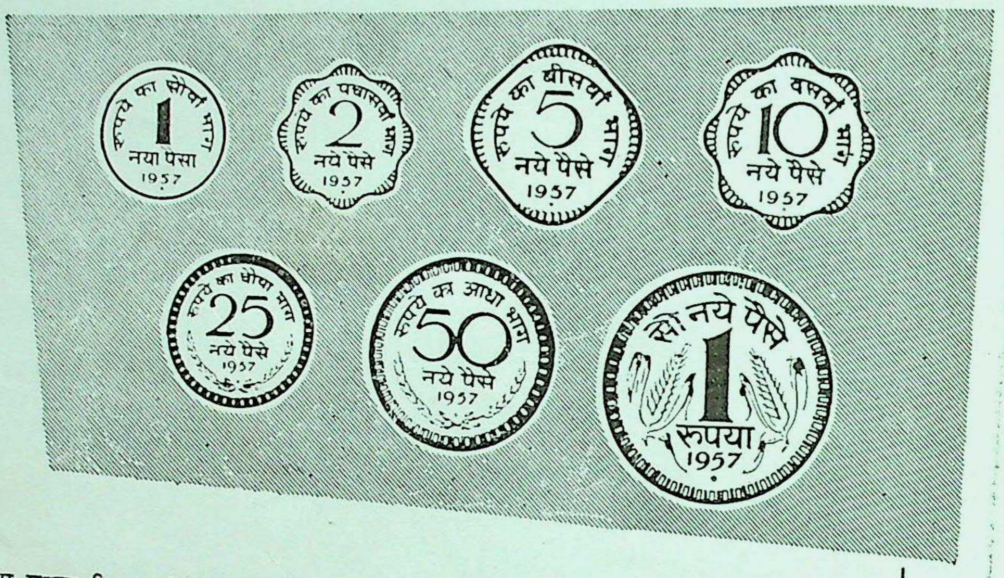
रुपये का सौवां भाग
1
नया पैसा
1957
रुपये का पचासवां भाग
2
नये पैसे
1957
रुपये का बीसवां भाग
5
नये पैसे
1957
रुपये का दसवां भाग
10
नये पैसे
1957
रुपये का चौथा भाग
25
नये पैसे
1957
रुपये का आधा भाग
50
नये पैसे
1957
सौ नये पैसे
1
रुपया
1957

आजकल आप अपना हिसाब किताब रुपये, आने और पाइयों में करते हैं। आपकी सुविधा के लिए भारत सरकार ने १ अप्रैल १९५७ से देश में दाशमिक प्रणाली के सिक्के चालू करने का निश्चय किया है। दाशमिक प्रणाली के अनुसार एक रुपये में १०० नये पैसे होंगे; और सात नये सिक्के चलेंगे।

१०० नये पैसे = एक रुपया
५० नये पैसे = रुपये का आधा भाग
२५ नये पैसे = रुपये का चौथा भाग
१० नये पैसे = रुपये का दसवां भाग
५ नये पैसे = रुपये का बीसवां भाग
२ नये पैसे = रुपये का पचासवां भाग
१ नया पैसा = रुपये का सौवां भाग

महत्त्वपूर्ण बातें

- रुपये के वर्तमान मूल्य में बदल नहीं होगा और वह प्रामाणिक सिक्का रहेगा।
- पुराने सिक्कों का नये सिक्कों में धीरे धीरे बदल होगा। लगभग तीन साल तक पुराने और नये दोनों सिक्के चालू रहेंगे।
- इस अवधि में नये, पुराने, या दोनों सिक्कों में हिसाब किताब किया जा सकता है।

इसे ड्यूमेक्स दीजिए...
आपको कोई चिन्ता नहीं रहेगी। यह
वायुरहित मुहरबन्द डिब्बों
में मिलता है—ताज़ा दूध का पावडर
जो विटामिनों से
भरपूर है। नन्हें बच्चों के लिए ड्यूमेक्स
से ज़्यादा अच्छी
व निरापद और कोई
चीज़ नहीं।

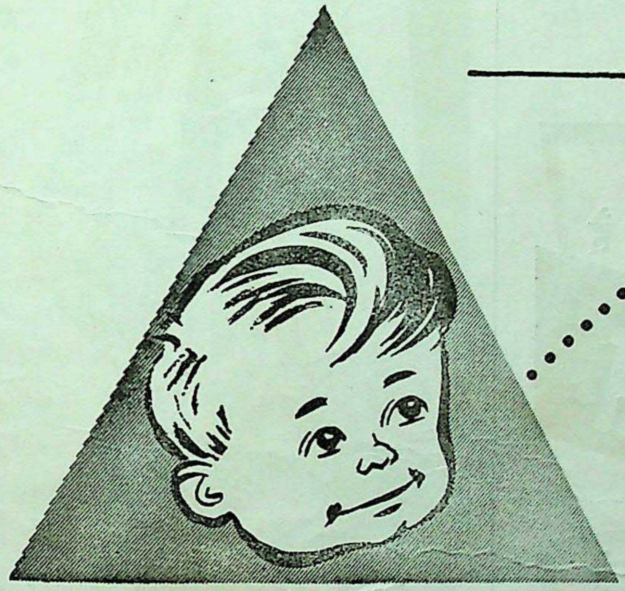

बच्चों को
ड्यूमेक्स
बेबी फ़ूड
दीजिए और उन्हें फलता-फूलता देखिए!

अच्छे साफ
दाँतों
के लिये

Aryan
Regd.

भारत का
लोकप्रिय
टुथ ब्रश
प्लास्टिक कॅन्टेनर्स
में भी मिलता है

कहीं अधिककाल चलता है।

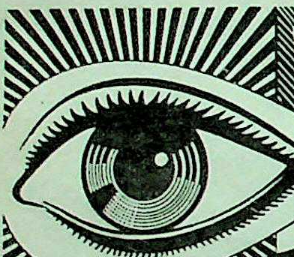

आँखों की रक्षा
जीवन की रक्षा है

रेडियम आई ड्राप्स

भली-चंगी आँखों वाले
प्रयोग करें तो बुढ़ापे में
भी आँखों की ज्योति तेज़
रहती है।

आँखों के बहुत से रोगों
में लाभदायक लाखों
घरों में प्रयोग होती है

मूल्य
३।-

रेडियम कैमीकल वर्क्स लिमिटेड पोस्ट बाक्स नं: 1351
देहली

सजावट
में
सौंदर्य

- सुन्दर नमूनों और लुभावने रंगों के मनोहर मेलों में प्राप्त बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और मद्रास के परदे।
- आसाम, बिहार, उड़ीसा, हैदराबाद और पंजाब के परम्परागत भारतीय डिजाइनों में खेस आदि सजावट के वस्त्र।
- मद्रास, मैसूर और उत्तर प्रदेश के कालीन और दरियां चमकीले रंगों की अनोखी बुनावट तथा अपने ढंग के अनुपम डिजाइनों में श्रेष्ठ हैं।
- भोजन की मेज की शोभा बढ़ाने वाली चटाइयां और मेजपोश।
- देखने में सुंदर और उपयोग में मुख नैपकिन और तौलिए।

हथकरघे के
वस्त्र

आपके विश्वास पा

ऑल इंडिया हैंडलूम बोर्ड
१८, मौब्रेज रोड, मद्रास-१८, शाहीबाग हाउस, बिटेंट रो
बेलार्ड एस्टेट, बम्बई और ७।१९२, स्वरूपनगर, कानपुर।

आजकल

वर्ष १२ अंक ५ पूर्णांक १४७

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
शशधर सिन्हा, डाइरेक्टर
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मन्त्री)

●

सहायक सम्पादक—जगदीश गोयल

सितम्बर १९५६

प्रभात की किरण (कविता)	शिवमंगलसिंह 'सुमन'	…	५	भारतीय दूतावास, खटमाँडू, नेपाल
महा प्रस्थान का गीत (तेलुगु कविता)	श्री श्री	…	६	१०-अरुणागिरी मोदली वीथि, माइलापुर, मद्रास-४
बुद्धं शरणं गच्छामि ! (कविता)	रामेश्वर राव कालोजी	…	६	एडवोकेट, नक्कालसुत्त, हमन कोंडा, वारंगल
शेख मुबारक	राहुल सांकृत्यायन	…	७	लार्न क्लिफ, हैपी वैली, मसूरी
पण्डित मोतीलाल नेहरू (संस्मरण)	इन्द्र विद्यावाचस्पति	…	१२	एम० पी० 'चन्द्रलोक', जवाहरनगर, दिल्ली-६
रात में सड़क पर (कविता)	बालकृष्ण राव	…	१६	१८।२ बी० टैगोर टाउन, इलाहाबाद
नई कविता	प्रभाकर माचवे	…	१७	२२ यार्क होटल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
स्वप्न की छलना (कविता)	महाराज कृष्ण रसगोत्र	…	२१	४ जनपथ लेन, नई दिल्ली
पागल (बंगला कहानी)	अनिलवरण गंगोपाध्याय	…	२२	२३ ए, लैन्सर्स रोड, दिल्ली-८
प्रेरणाएँ और कवि (कविता)	व्रजकिशोर 'नारायण'	…	२४	सम्पादक 'जन-जीवन' देवेन्द्रनाथ रोड, पटना-४
यमुना का उद्गम	गोपेन्द्रनाथ दत्त	…	२५	२७ चौरंगी रोड, कलकत्ता
बौद्ध-युग की कुछ विचित्रताएँ	मोहनलाल महतो 'वियोगी'	…	२९	एम० एल ए० क्वार्टर्स, फ़्लैट नं० १५, पटना-१
बुद्ध-दर्शन	गुरदयाल मल्लिक	…	३१	'निरान्त', जुहू, बम्बई-२३
तीन दृश्य (हिन्दी कहानी)	कमला चौधरी	…	३३	विनीत कुंज, छीपी तालाब, मेरठ
दार्जिलिंग (चित्रों में)	फोटो : मोतीराम जैन	…	३५	पब्लिकेशन्स डिवीज़न, दिल्ली
बेढब बुत (पंजाबी कविता)	अमृता प्रीतम	…	४०	८।२०-वैस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
मेघपाहुन, द्वार—(कविता)	नरेश मेहता	…	४०	३५ कैनिंग लेन, नई दिल्ली
पंजाबी लोक-नृत्य : भांगड़ा	पूरनचन्द्र जोशी	…	४१	बगिया मनीराम, कानपुर
शब्द और अर्थ	बद्रीनाथ कपूर	…	४३	हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस
उड़िया साहित्य की प्रगति	तारिणीचरण दास	…	४५	
निर्वाण (कविता)	नरसिंह श्रीवास्तव	…	४६	गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ़ एग्रीकल्चर, जबलपुर
भाई (गुजराती कहानी)	रमणलाल वसन्तलाल देसाई	…	४८	
साइप्रस की समस्या	अवनीन्द्र कुमार	…	५३	इतिहास सदन, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
धुन्धपाल का राज (बुन्देली लोक-कथा)	शिवसहाय चतुर्वेदी	…	५७	साहित्य-सदन, देवरी (सागर)
अपनी कविता के प्रति (कविता)	राजकुमारी श्रीवास्तव	…	५९	१० नवलकिशोर रोड, हज़रत गंज, लखनऊ
धान के खेत का गीत (काश्मीरी कविता)	प्रेमनाथ प्रेमी	…	५९	श्रीनगर, काश्मीर
अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और भारत	महेश चन्द्र	…	६०	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
पुस्तक-समालोचना	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, मन्मथनाथ गुप्त, प्र० ना० त्रिपाठी, जगदीश गोयल	…	६३	
सम्पादकीय		…	६८	
इस मास का चित्र : "भोटिया बस्ती का लामा" फोटो : ए० एल० सैयद		…		

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—आठ आने, दस सेंट या नौ पेंस

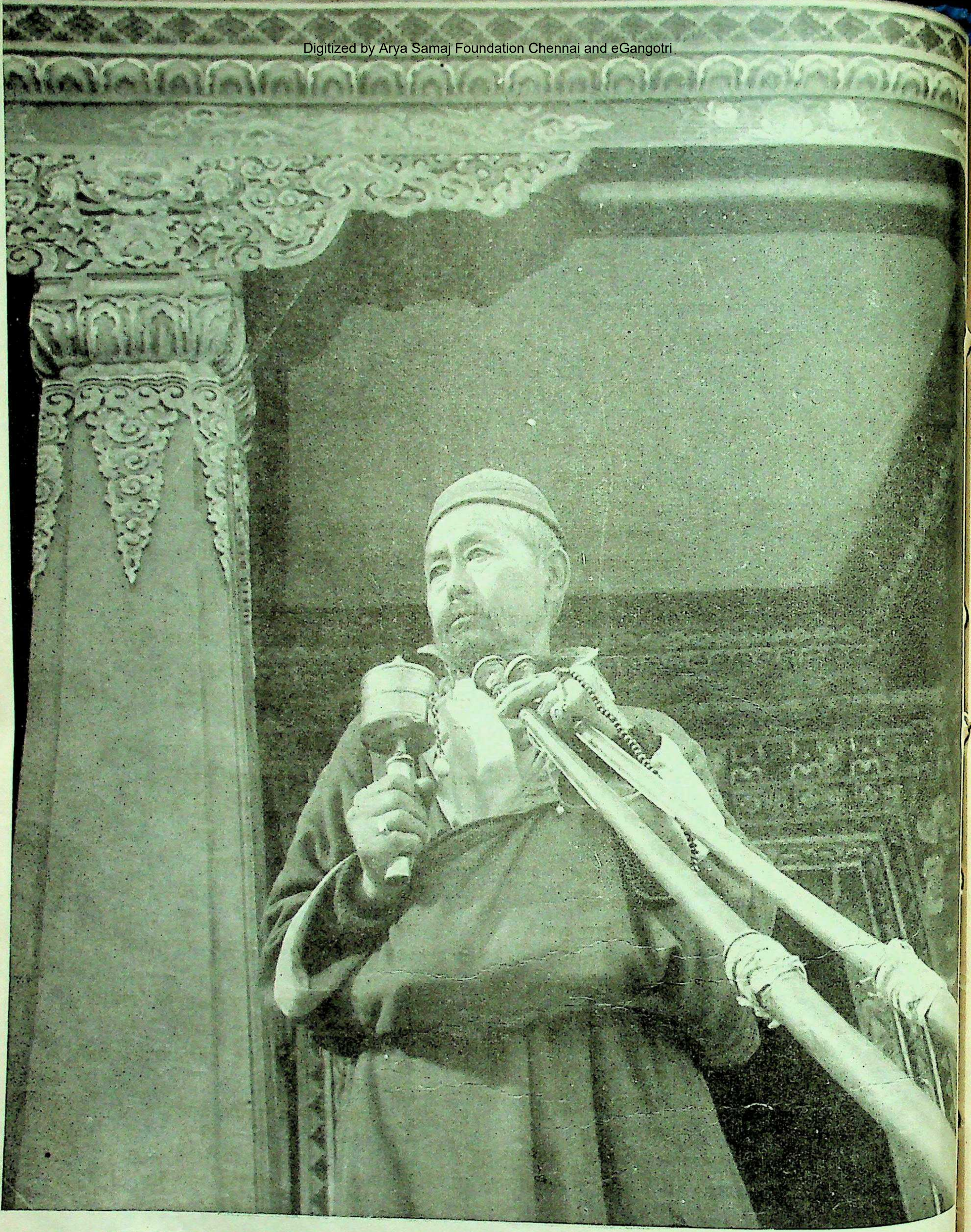

"भोटिया-बस्ती का लामा"

फ़ोटो : ए० एल० सैयद

वर्ष १२ सितम्बर १९५६ अंक ५

प्रभात की किरण

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

(१)

मैं आँखें मलता था अलसाया सा,
बीती के सपनों में भरमाया सा,
कुछ अनहोनी सी आज हो गयी रे,
मुझको प्रभात की किरन छू गयी रे !
जब तक सोचूँ क्या हुआ एक छन में,
वह एक अनी सी पैठ गई मन में,
बाहर अम्बर आतुर अभिलाषा सा,
भीतर कुछ कटने लगा कुहासा सा ।
अनजान कल्पना ने अँगड़ाई ली,
चिड़ियों की पहली चहक सुनाई दी,
झंकार ढली मीठी शहनाई सी,
सुकुमार उँगलियों से सहलाई सी,
रग, रग में ढलता लावा सा दुर्धर,
कुछ लगा सालने अन्दर ही अन्दर
अब जनम जनम की नींद खो गई रे,
मुझको प्रभात की किरन छू गयी रे !

(२)

पहले भी तो प्रभात आता ही था,
जग में स्वर्णिम प्रकाश लाता ही था,
अम्बर अवनी पर राग लुटाता था,
ऊपर ऊपर मुझको भी भाता था ।
यह किरन निगोड़ी कहाँ छिपी थी पर,
जो लुटा गयी मुझ पर स्वप्नों के स्वर ।
रोने-धोने की कोई बात नहीं,
अब तो मरना भी अपने हाथ नहीं ।
अब अन्धकार के चिर-दुराव से क्या ?
अब हार-जीत के मोल-भाव से क्या ?
नभ के नयनों का नीर धो गई रे,
तम की छाती पर तीर हो गयी रे ।
जीवन में कोई ज्वार भर गया रे,
मैं विना नाव के सिन्धु तर गया रे ।
मन-मोती की सौगात लुट मयी रे,
मुझको प्रभात की किरन छू गयी रे !

महा प्रस्थान का गीत

श्री श्री

बढ़ो विश्व पर
मिला नव्य-पथ
नया विश्व हुंकारा
बढ़ा चरण युग
बजा पटह कटु
बहिरंतर गर्जन भर
बढ़ो बढ़ो—
थड़ थड़ वह कौन घात
मेदुर घन का वर्ष-पात
नये विश्व के जल प्रपात
सुनो सुनो, बढ़ो बढ़ो
पग पग पर खूनी फव्वारे
फटें, झरें, बढ़ो बढ़ो
झीलें झरने
शहर महल देहात मुहल्ले
गंड शैल गहरे दर्रे
लाँघ नदी-नाले
चलो नव्य पथ
तोड़ दुर्ग परकोटा

पग पग का रोड़ा
बढ़ो विश्व पर
मिला नव्य पथ
नया विश्व हुंकारा
बे रीढ़ के मुर्दो,
ढली उम्र के वृद्धो,
अलसाने वाले कीड़ो,
मरे रहो—
उष्ण रक्त वालो,
लौह वक्ष के धीरो,
हरों हरों हर
हर हर हर हर
ऊष्ण कंठ चिल्लाओ,
नया विश्व वह
महा विश्व वह
खिला धरित्रि पर
रुको न पल भर
बढ़ो बढ़ो

झोंका हो झंझा का
हो प्रलयों की भीषण उल्का
फड़ फड़ फड़
सड़े विश्व पर
मरे स्तूप पर
गिरो, मरो
आगे देखो अग्नि-शिलाएँ
भक भक जलती—
नये विश्व की त्रेताएँ
उचक-उचक गिरती
मेरु-शैल चट्टानें
अतल जलधि के हैं वे
प्रलय-नृत्य चक्राकार
खल खल उबले तेल नहीं
उष्ण रक्त का सार
शिव समुद्र का
नया गरा का
जलपात बनो, कूदो
बढ़ो विश्व पर

मिला नव्य पथ
नया विश्व हुंकारा
नये विश्व का उठा शब्द वह
नया कांस्य नक्कारा
शेरों-से
फण वाले साँपों-से
फल्गुन-से धन्वा-से
बढ़े चलो
हो—हो—हो
कब देखीं
नये विश्व की
अग्नि मुकुट की लपटें
अरुण ध्वजा की
लेलिहान जिह्वाएं
होम धूप की भौंवें
बढ़ो विश्व पर
बढ़ो विश्व पर
मिला नव्य पथ
नया विश्व हुंकारा।

★

बुद्धं शरणं गच्छामि !

रामेश्वर राव कालोजी

पश्चिम में फिर इब्ने मरियम
पूरब में गान्धी औ गौतम
पैदा हों तो जग बच पाये
वरना सर्वनाश हो जाये।
सत्ता के लोभी राष्ट्रों का
जलता है मत्सर से अन्तर
खून उतर आया आँखों में
दीवानापन नाचे सर पर
शांति समय बन गया जगत में
दो संग्रामों का मध्यंतर
प्रेम भरा सन्देश बुद्ध का
लाये तो लाये मन्वन्तर
सुन ले तो ही जग बच पाये

वरना सर्वनाश हो जाये
छोड़ छाड़ कर 'ए' बम 'एच' बम
जगत कहे फिर 'धर्मं शरणं'
छोड़ छाड़ कर स्वार्थ दुराशा
व्यक्ति कहे फिर 'संघं शरणं'
सुख समृद्धि विज्ञान लक्ष्य हों
बुद्धि कहे फिर 'बुद्धं शरणं'
धर्मं शरणं संघं शरणं
बुद्धं शरणं बुद्धं शरणं
यों हो तो ही जग बच पाये
वरना सर्वनाश हो जाये
जान गया जग, मान गया युग
रण के दुष्परिणाम भयंकर

जान गया जग मान गया युग
भय से जीना कितना दुर्भर
जान गया जग मान गया युग
सह-जीवन का तत्व महत्तर
जान गया जग पंचशील के
बिना नहीं कोई गत्यंतर
फिर भी शंका से पीड़ित है
कायर जग का कातर अन्तर
फिर से कोई बजा रहा है
प्रेम बाँसुरी यमुना तट पर
सुन ले तो ही जग बच पाये
वरना सर्वनाश हो जाये
विश्व कुटुम्बी हो नव मानव

जग हो गोकुल मानव माधव
सफल कृष्ण की हो शिष्टाई
गले मिलें कौरव और पाण्डव
करे मनुज हर एक राष्ट्र का
रण से घृणा स्नेह का गौरव
प्राप्त करे मानवता अपना
असली दर्जा ऊँचा वैभव
श्रद्धा से यह मंत्र जपें हम
धर्मं शरणं संघं शरणं
नाद यही गूँजे अम्बर में
बुद्धं शरणं बुद्धं शरणं
यों हो तो ही जग बच पाये
वरना सर्वनाश हो जाये।

शेख मुबारक

राहुल सांकृत्यायन

इस्लाम ने आठवीं सदी के शुरू में सिन्ध और मुलतान पर अधिकार किया। उससे तीन सौ वर्ष बाद (ग्यारहवीं सदी के आरम्भ में) महमूद ग़ज़नवी ने पंजाब को लेकर लाहौर को अपने राज्यपाल की राजधानी बनाया। सिन्ध और पंजाब मुसलमानों के हाथ में रहे। बारहवीं शताब्दी के अन्त में कन्नौज, दिल्ली, कालंजर आदि को जीत कर प्रायः सारे उत्तरी भारत पर तुर्कों ने अपना शासन स्थापित किया। ईरान सातवीं सदी के मध्य में अरबों के हाथ में चला गया। ईरानी तख्त और उच्च संस्कृति ने रेगिस्तानी अरबों और उनके धर्म के सामने सिर झुकाया। आब पानी की तरह अपने और अपने शत्रुओं के रक्त को केवल बहिश्त के लिए नहीं बहा रहे थे। बहिश्ती हूरों और नियामतों से कहीं अधिक आकर्षक इस दुनिया की हूरें और सम्पत्ति उनके लिए थीं। उन्हीं पर हाथ साफ करने के लिए अरब नौजवान जान की बाज़ी लगा कर अपने सूखे मुल्क से निकले थे। इस्लाम ले आने पर यह बात नहीं थी कि अन-अरब मुसलमान अरब मुसलमानों के बराबर हो जाते। हमारे यहाँ अंग्रेज़ों के समय एंग्लो-इंडियन की जो स्थिति थी, वही स्थिति अरबों के सामने अन-अरबों की थी। यह जाति का अपमान था, लेकिन ईरान या हिन्दुस्तान में जो जातियाँ सबसे पहले इस्लाम के झण्डे के नीचे आईं, वह शताब्दियों से उत्पीड़ित और नीच समझी जाती थीं। उनके निकल जाने के बाद बड़ी जाति वालों ने भी उनका अनुगमन धीरे-धीरे किया। अरब मुसलमानों ने इनका विशेष ध्यान किया, क्योंकि वह संख्या में कम रहने पर भी हिम्मत में ज्यादा और विदेशी शासन के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक थे।

मुल्की गैर-मुल्की या अरब, अन-अरब मुसलमानों का भेद, ईरान, तूरान (मध्य-एशिया) में ही अपने चरम रूप पर पहुँच चुका था। शुद्ध अरब मुस्लिम-शासन सिन्ध-मुल्तान तक ही रहा। महमूद गज़नवी तुर्क था। चार दिनों की चाँदनी के तौर पर गोरी दस-पन्द्रह साल के लिए भारत में अतुर्क, अन-अरब विजेता के तौर पर आए। पर, उनके यहाँ भी असली शासक तुर्क ही थे। गुलाम, खिलजी, तुगलक तीनों तुर्क राजवंशों ने दिल्ली को इस्लामिक राजधानी बना कर भारत के ऊपर दृढ़ मुस्लिम-शासन स्थापित किया। इस समय प्रमुख स्थान तुर्कों का था। ईरानी उसके बाद आते थे, और इसीलिए कि उन्होंने तुर्कों की संस्कृति और भाषा पर भारी प्रभाव डाला था। तुर्क तुर्की और फ़ारसी दोनों का व्यवहार करते थे। भारत में आकर दो-चार पीढ़ियों में ही वह तुर्की भाषा भूल कर फारसीभाषी हो गए। अन्तिम मुग़ल बादशाह तक अभिमान करते थे कि हमारी मादरी ज़बान फारसी है। फारसी-भाषी ईरानियों की इसीलिए भारत के मुस्लिम-दरबारों में कदर थी। अरब तो न अब तीन में थे, न तेरह में। बहुत हुआ, तो मस्जिद का मुअज़्ज़िन या क़ारी (कुरान-पाठी) किसी को बना लिया। विद्या और रण दोनों के मैदान में अब अरब पीछे पड़ गए थे। तो भी शुद्ध तुर्कों को छोड़ कर बाकी सभी विदेशी मुसलमान अपना सम्बन्ध अरब के किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या खानदान से जोड़ते थे। अरब आदमी का नहीं, अरब खून के महत्त्व को जरूर माना जाता था।

अकबर के समय तक शेख, सैयद, मुगल, पठान का भेद गैर-मुल्की मुसलमानों में स्थापित हो चुका था। शेख के महत्त्व को आजकल हम नहीं समझ पाते, क्योंकि अब वह टके सेर है, वैसे ही जैसे खान। तुर्कों और मंगोलों में खान राजा को कहते थे। १९२० ई० तक बुखारा में सिवाय वहाँ के बादशाह (अमीर) के कोई अपने नाम के साथ खान नहीं लगा सकता था। युवराज भी तब तक अपने नाम के साथ खान नहीं जोड़ सकता था, जब तक कि वह तख्त पर न बैठ जाता। शेख सबसे श्रेष्ठ माने जाते थे। शेख का अर्थ था गुरु या सन्त पुरुष। इस्लाम में देखा-देखी यद्यपि अविवाहित साधुओं, फकीरों की भी चाल पड़ गई, विशेषकर मध्य-एशिया और पूर्वी ईरान जैसे बौद्ध प्रदेशों पर अधिकार करने के बाद; पर, वस्तुतः इस्लाम में मठों और साधुओं के लिए कोई स्थान नहीं था। शेखों की चल पड़ी। हमारे यहाँ ब्राह्मण गृहस्थ-गुरु बड़े सम्मान से देखे जाते हैं। वल्लभ कुल के महागुरु गृहस्थ ही होते हैं। यही स्थान इस्लाम में शेख का था। उनके बाद पैगम्बर के अपने वंश और रक्त के सम्बन्धी होने से सैयदों का नम्बर आता था। मध्य-एशिया में इन्हें खोजा कहते थे। मुगल पहले तुर्क कहे जाते थे, बाबर के वंश ने जब भारत पर अपना शासन स्थापित किया, तब वह मुगल के नाम से पुकारे जाने लगे। इनका एक पुराना नाम तूरानी भी था। चीनी और सोवियत मध्य-एशिया को पहले तूरान कहा जाता था, इसीलिए वहाँ के मंगोलायित निवासी तूरानी पुकारे जाते थे। पठान दसवीं सदी के अन्त तक पक्के हिन्दू थे। हिन्दू दर्शन और कला की उनकी देनें कभी भुलाई नहीं जा सकतीं। बौद्ध योगाचार और शंकर वेदान्त दोनों के आदि गुरु असंग पेशावर के पठान थे। पाणिनि पठान थे। गन्धार-कला पठानों की देन है, यह कहने में भी अत्युक्ति नहीं है। महमूद ग़ज़नवी ने पहले-पहल काबुल पर अधिकार किया। पठानों ने पहले जबर्दस्त संघर्ष किया, पर अन्त में उन्हें इस्लाम के झण्डे के नीचे आना पड़ा। यह बहादुर जाति न तुर्क होने का अभिमान कर सकती थी, न इस्लामी संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली ईरानी जाति का होने का दावा कर सकती थी, और न अरब ही थी। लेकिन, पठान तलवार के धनी थे, उसी के बल पर वह भारत में अपना स्थान बनाने में सफल हुए।

इन चारों के बाद हिन्दुओं से मुसलमान बने लोग आते थे। इनमें से जो प्रसिद्ध थे, वह चाहने पर भी अपने को छिपा नहीं सकते थे। हाँ, बहुत से राजपूतों और योद्धा जातियों ने मुसलमान बनाने पर अपने नाम के साथ खान लगा कर पठानों में नाम लिखाया। यह बहुत पीछे की बात है। मुल्की मुसलमान दूसरे मुसलमानों के सामने वही स्थान रखते थे, जो कि अंग्रेज़ों के काल में एंग्लो-इंडियन, यह हम कह आए हैं। मुल्की मुसलमानों में भी उच्च और नीच (अशरफ और अज़ंल) दो तरह के लोग थे। जात-पाँत की खाइयों को तोड़ने का अभिमान करने वाला इस्लाम भारत में इस खाई को कभी नहीं पाट सका। सारे ही मुसलमानों में भारत में सबसे अधिक संख्या अज़ंल मुसलमानों की थी, लेकिन वह अपने सहधर्मियों के भीतर अछूतों से थोड़ा ही बेहतर समझे जाते थे। जब तक अंग्रेज़ों ने दास प्रथा को उठा नहीं दिया, तब तक—उन्नीसवीं सदी के मध्य तक—मुसलमान होने से कोई दास बनने से छुट्टी नहीं पा सकता था। हाँ, मुसलमानों को—चाहे गैर मुल्की हों या मुल्की, चाहे अशरफ हों या अज़ंल—इसका अभिमान जरूर था, कि हम भारत के शासक हैं। अज़ंल (नीच) अपने को अपने हिन्दू सजातीयों से बेहतर स्थिति में जरूर पाते थे, यही कारण था, जो कि पेशावर से ढाका तक के सभी शिल्पी, विशेषकर पटकार मुसममान हो गए।

कुरान ने जरूर सारे मुसलमानों में भ्रातृभाव और समानता का प्रचार किया, पर वह पैगम्बर की आँख मूँदने के बाद बहुत दिनों नहीं चल सका। उनके दामाद और इस्लाम के लिए सर्वस्व त्यागी अली भ्रातृभाव और समानता के कट्टर पक्षपाती होने के कारण दूध से मक्खी की तरह बाहर रखे गए, और चौथे खलीफा बने भी, तो अन्तिम कुर्बानी देने ही के लिए। उनके दोनों पुत्र तथा पैगम्बर के नाती हसन-हुसेन अपने पिता और नाना की आन पर बलि चढ़े। दुश्मनों ने तो इस वंश को अपने जान उच्छिन्न कर डाला, पर एक बीज से भी हजारों वृक्ष और लाखों फल पैदा होते हैं, वैसे ही फातमी सैयदों का उच्छेद नहीं हो सका।

इस्लामिक एकता और समानता और भ्रातृभाव इसी स्थिति में था, जब कि तुगलकों के बाद छिन्न-भिन्न हुए इस्लामिक साम्राज्य को फिर से स्थापित करने में पठान शेरशाह सफल हुए। शेरशाह भारत में आगे आने वालों का मार्ग-प्रदर्शक था। बहुत-सी बातें जो पीछे अकबर के समय प्रचलित हुईं, उनका आरम्भ शेरशाह ने किया। शेरशाह ही ने धर्म की जगह पर मिट्टी के महत्त्व को माना, और हिन्दू-मुसलमानों को एक करने, एकता के सूत्र में बाँधने की कोशिश की, जिसे अपने दीर्घ शासन में अकबर ने और आगे बढ़ाया। शेरशाह ही का शासन था, जो कि हिन्दू हेमू 'हेमचन्द्र' को शासन और सेना के सर्वोच्च पद पर पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। और अपने स्वामियों से गद्दारी करने के ख्याल से नहीं बल्कि पठानों के आपसी झगड़े और मुगलों की जबर्दस्त शक्ति को देखकर दिल्ली के तख्त पर बैठ उसे विक्रमादित्य बनने के लिए तैयार होना पड़ा।

शेख मुबारक—जैसा कि शेख नाम से मालूम होता है—गुरुओं के वंश में पैदा हुए। इनके पूर्वज बहुत पुराने जमाने में यमन (अरब) के अरब थे। शेख मूसा की छठीं पुश्त में शेख खिजिर हुए, जो वतन को छोड़ कर दुनिया की सैर और महात्माओं के दर्शन-सत्संग के लिए निकल पड़े, तथा पन्द्रहवीं सदी में वह सिन्ध के कस्बा रेल में पहुँच कर रहने लगे। पीरी मुरीदी चलने लगी। पैगम्बर मुहम्मद ने चार की संख्या बीबियों को कम करने के लिए की थी। पीछे इस्लाम के लिए वफादार पुरुष इस संख्या की पाबन्दी करते थे, पर लौंडियों की संख्या नियत नहीं थी। इसके द्वारा खानदान बढ़ने का भी बहुत सुभीता था, मुसलमानों की संख्या-वृद्धि के लिए इसका महत्त्व था। शेख खिज़िर मुस्लिम सन्तों और उनके पवित्र स्थानों के दरस-परस के लिए रेल छोड़ कर हिन्दुस्तान में घूमते-फिरते नागौर में पहुँचे, यहीं अपने बहुत से मुरीदों और परिवार के साथ बस गए। इनके कई बच्चे होकर मर गए। १५०५ या १५०६ ई० (हिजरी ९११) में एक लड़का पैदा हुआ। बाप ने मुबारक समझ कर मुबारक अल्ला उसका नाम रक्खा, जो अन्त में शेख मुबारक के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि अपने महान पुत्रों—कवि सम्राट् फ़ैज़ी, और अकबर के महामंत्री अबुलफ़ज़ल—की रोशनी में वह छिप गए, पर जिन बीजों को उनके दोनों पुत्रों में हमने वृक्ष का रूप लेते देखा, वह शेख मुबारक में पूरी तौर से मौजूद थे। चार वर्ष की आयु में ही उनकी प्रतिभा का पता लगा। नौ वर्ष की उम्र तक फारसी अरबी तथा उसके बहुमूल्य साहित्य का उन्हें काफ़ी परिचय हो गया। चौदह साल तक पहुँचते-पहुँचते योग्यता प्रकट होने लगी। नागौर में ही शेख अत्तन नाम के एक विद्वान रहते थे। वह १४०० ई० से पहले ही किसी समय तूरान से आए थे। जाति से तुर्क थे, लेकिन शमशीर के नहीं, बल्कि विद्या के धनी थे। सिकन्दर लोदी के जमाने में वह नागौर में आकर बस गए, और १२० वर्ष की उम्र में वहीं मरे। मुबारक ने उस ज्ञान-वयो-वृद्ध के ज्ञान और तजुर्बे का पूरा लाभ उठाया।

शेख खिज़िर को सिन्ध का वतन याद आया। नागौर में अच्छी चल रही थी। सोचा, जाकर रेल से अपने और भाई-बन्दों को लाएँ। लेकिन, उनकी यह यात्रा महायात्रा साबित हुई। वह फिर नागौर लौट कर नहीं आ सके। इसी समय महान अकाल पड़ा। लोग भूखों मरने लगे। बहुतेरे घर छोड़ कर भाग गए। अकाल में शेख खिज़िर का सारा परिवार स्वाहा हो गया। छोटी उमर का मुबारक और उसकी माँ दुनिया में जीवन संघर्ष के लिए रह गए। अकाल ख़त्म हो गया, काल-रात्रि सिर से टली। मुबारक नागौर में जो कुछ त्राण पा सकते थे, पा चुके थे। विद्या की पिपासा उन्हें बाहर जाने के लिए मजबूर करती लेकिन अकेली माँ को छोड़ कर जाने के लिए उनका हृदय तैयार नहीं था।

शेख मुबारक ने अपने पुत्रों—फैजी और अबुल फ़ज़ल को एक पत्र में लिखा था :

"बाबाय मन्, अज़ फुज़लाय ईं अहद्—कि हमाँ जौफ़रोश व गन्दुमनुमाँ अन्द, व दीनरा बदुनिया फरोख़्ता, तुहमत आँ बर मा बस्ता अन्द—अज़गुफ़्ता हरफ आँहा न बायद् रंजीद। व अज़ आँकि अज़ तरफ़े नजाबत् मा गुफ़्तगू दारन्द, दिले पुर-तश्वीश न बायद् नमूद। दर ऐयामे कि वालिदे-मन् वदीअते हयात नमूद, मन् ब-हद्दे तमीज़ व

रसीदा बूदम्—वालिदए-मन् मरा दर् साये-श्रवातिफ़ एकेश्रज़ सादात उल-एहतराम दर-कमाल असरत पर्वरिश मोदाद । ऊ दर्-तवियते-मन् अज़ तरफ़े-दर्स-इल्मी व दीगर तादीब-कमाल, सई बकार मि-बर्दाज़ । आँकि पिदरम् मरा…मौसूम ब-मुबारक साख्ता बूद, रोज़ेयके अज़-हमसाय हाय हसद पेशये आँ सैयद, कि ग़मखारी मा बेकसां मीनमूद, मादरम् रा ब-कलमाते दुरुश्त रंजानीद, मरा ब-अद्मे-नजाबत मतऊन नमूद । वालिदा अम् गिरिया कुना निज़्द आँ सैयद…रफ़्त नालिश तअद्दी श्रो नमूद ।" (मेरे बच्चो, इस ज़माने के विद्वान, गेहूँ दिखा जौ बेचने वाले हैं, दुनिया के लिए दीन को बेच कर हमारे ऊपर तोहमत बाँधते हैं, उनकी कही बातों से रंज नहीं होना चाहिए, और हमारी कुलीनता के बारे में जो बात करते हैं, उसके लिए मन में ग्लानि नहीं पैदा करनी चाहिए । जिस समय मेरे पिता ने दुनिया से विदाई ली, उस समय मैं अभी अबोध था । मेरी माँ एक सम्माननीय सैयद की छाया में रहती थीं, जो मेरी पढ़ाई और शिक्षा के लिए कोशिश करता था । पिता ने मेरा नाम मुबारक रख दिया था । एक दिन सैयद से डाह रखने वाले एक पड़ोसी ने मेरी माँ को बुरा-भला कह कर दुखी करते मेरी कुलीनता पर आक्षेप किया । माँ ने रोते हुए इस बात की नालिश सैयद के पास की ।)

फैजी और अबुलफ़ज़ल ने अकबर की सल्तनत में जो स्थान पाया था, उसके कारण उनसे जलने वालों की संख्या कम नहीं थी । वह उड़ाया करते थे कि इनका बाप मुबारक लौंडी का बच्चा था, तभी तो उसका नाम मुबारक पड़ा । उस समय गुलामों में यह नाम अधिक प्रचलित था, इससे यह भी मालूम होगा, कि शेख मुबारक को केवल आर्थिक कठिनाइयों से ही गुज़रना नहीं पड़ा, बल्कि उग्र विचारों के कारण उनके ऊपर बुरी तरह के लांछन लगाए जाते थे । उन्हें विद्या की धुन थी । इसी समय मध्य एशिया के ख्वाजा एहरार घूमते हुए भारत पहुँचे । उनकी विद्वत्ता से भी लाभ उठाने का उन्हें मौका मिला । वह ख्वाजा अहरार समरकन्द के महान सन्त ख्वाजा उबैदुल्ला अहरार नहीं हो सकते, जिनका देहान्त मुबारक के पैदा होने से १५ साल पहले २० फरवरी १४९० को समरकन्द में हो चुका था ! समरकन्दी ख्वाजा अहरार बहुत परोपकारी सन्त, और मध्यएशिया के सबसे बड़े भूस्वामी भी । कहावत है—कोई आदमी अपने गदहे पर चढ़ा तूरानी अन्तर्वेद में उत्तर से दक्षिण की यात्रा कर रहा था । सैकड़ों मील चलता गया जब कभी किसी लहलहाते खेत के बारे में पूछता, तो लोग कहते—"यह ख्वाजा अहरार का है ।" अन्त में झुँझला कर मुसाफिर ने अपने गदहे को भी खेत की ओर हाँकते हुए कहा—"जा, तू भी ख्वाजा अहरार का हो जा । अस्तु, किसी ख्वाजा अहरार, (स्वतन्त्रानन्द स्वामी) से शेख मुबारक को ज्ञान प्राप्त करने का मौका मिला । समरकन्दी ख्वाजा अहरार के वचनों में कहीं-कहीं "दर्वेश पुर्सीद, व दर्वेशे गुफ्त," (एक दर्वेश ने पूछा और एक दर्वेश ने कहा) की बात आती है । उसमें दर्वेश शेख मुबारक को लिया जाता है । पर निश्चय ही है, कि समरकन्दी अहरार के सामने शेख मुबारक पूछने और कहने के लिए अभी दुनिया में आए नहीं थे ।

माता का देहान्त हो गया । शेख मुबारक की दबी उमंगें अब ऊपर उमड़ने लगीं, और सादी, नासिर खुसरू की तरह दुनिया की सैर की धुन उनके सिर पर सवार हुई । उस समय उत्तर में जैसे जौनपुर की विद्या और संस्कृति में प्रसिद्धि थी, वही बातें गुजरात में अहमदाबाद की थी । वहाँ कितने ही नागौरी भी पहुँच गए थे । मुबारक भी पहुँचे, और विद्योपार्जन में तल्लीन हो गए । यहाँ इस्लामी धर्म के अतिरिक्त दर्शन और सूफियों (मुस्लिम वेदान्तियों) के सिद्धान्तों के साथ-साथ दूसरे शास्त्रों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया । खतीब अबुलफ़ज़ल गाज़रूनी शीराज से गुजरात आए, उस समय के बहुत बड़े विद्वान थे । मुबारक जैसे प्रतिभाशाली शिष्य को पाकर वह उसे पुत्र की तरह मानने लगे । उनके पास जो भी ज्ञान था—उसे शिष्य के हृदय में स्थानान्तरित कर दिया । वहाँ पागल शेख युसुफ नाम के एक सन्त रहते थे । मुबारक पण्डिताई से संतुष्ट न हो उनकी सेवा में भी जाते थे । शेख युसुफ से समुन्दर पार के सफर की बात कही, तो उन्होंने कहा—"आगरा में जाकर बैठ । वहाँ मनोरथ सफल न हो, तो ईरान-तूरान की यात्रा करना ।"

आगरा में—११ अप्रेल १५४३ ई० को ३८ वर्ष के मुबारक आगरा पहुँचे । गर्मी का मौसम था, आगरा अपनी गर्मी के लिए और भी बदनाम था । पर, वली-फकीर की बात पर मुबारक को बहुत विश्वास था । आगरा में भी एक मस्त फकीर शेख अलाउद्दीन रहते थे । उन्होंने भी वहीं रहने के लिए कहा । जमुना पार रामबाग की बस्ती चारबाग थी, जो फिर हश्त-बहिश्त (अष्टम स्वर्ग) और बाबर द्वारा नूर-अफशां (प्रकाश-वर्षी) के नाम से प्रसिद्ध हुई । शेख मुबारक चारबाग में पहुँचे । मीर रफीउद्दीन चिश्ती के पड़ोस में रहने की जगह मिली । मीर (सैयद) मोहल्ले के रईस थे, उनके साथ घनिष्टता हो गई । वहीं एक कुरेशी परिवार में मुबारक की शादी भी हो गई । १५४७ या १५४८ ई० में सैयद मर गए । उनकी विद्वत्ता को देखकर सैयद उन्हें आगे बढ़ाना चाहते थे, सैयद कुछ किए बिना ही चल बसे । शेख मुबारक अब और भी एकान्तवासी हो गए । बहुत से विद्यार्थी उनके पास पहुँचने लगे । लोग श्रद्धा करते, उनके सन्त जीवन से आकृष्ट हो भेंट-पूजा देने वाले भी पहुँचते, लेकिन बहुत कम की ही भेंट को वह स्वीकार करते । आगरा पहुँचने के चार वर्ष बाद ४३ वर्ष की उमर में शेख मुबारक को पहला पुत्र—फ़ैजी पैदा हुआ । फैजी महान विद्वान थे, और मुसलमानों में जहाँ वह कविता में खुसरो के समकक्ष थे, वहाँ दूसरी विद्याओं में उनकी तुलना किसी से नहीं हो सकती । फैजी के चार वर्ष बाद १५५१ ई० में मुबारक के यहाँ दूसरा लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम उन्होंने अपने गुरु खतीब अबुलफ़ज़ल गाज़रूनी के नाम पर अबुलफ़ज़ल रक्खा ।

शेख मुबारक आगरा में उस समय आए, जबकि शेरशाह की बादशाहत थी । दो वर्ष बाद शेरशाह मर गया, और सलीमशाह गद्दी पर बैठा । कुछ लोगों ने चाहा, कि सलीमशाह के दरबार में शेख मुबारक की पहुँच हो । एक ओर सूफ़ियों के विचारों और जीवन ने उनको अपनी ओर आकृष्ट किया था, दूसरी ओर वह शिया और दूसरे

उदार विचारों से प्रभावित थे। पर, मुल्लों की कट्टरता भी अभी उनमें थी। कहीं गाना होता, तो वहाँ से जल्दी आगे निकल जाते, क्योंकि इस्लाम ने गाना सुनने को पाप बतलाया है। पायजामा नीचा नहीं होना चाहिए, इसलिए वह अपना ही पायजामा ऊँचा नहीं रखते, बल्कि अगर कोई नीचा पायजामा पहन कर आ जाता, तो वह उसके अधिक भाग को फड़वा डालते। लाल कपड़ा पहनना मना है, इसलिए देखने पर उतरवा देते।

उस समय मखदूमुलमुल्क मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी की तपी हुई थी। मुल्ला सुल्तानपुरी को हुमायूँ के दरबार में स्थान मिला था। सलीमशाह सूरी के तो वह नाक के बाल थे। हुमायूँ के समय दरबार में पहुँचने के कारण भीतर-भीतर उसके लिए भी खैर मनाया करते थे, जिसके ही बल पर हुमायूँ के फिर से गद्दी पाने के बाद उनका दर्जा नहीं छिना। हाँ, अकबर के दरबार का स्वतन्त्र वातावरण उनके लिए उतना अनुकूल साबित नहीं हुआ, तो भी मुल्ला ठहरे, उन्हें मोहताज होने की जरूरत नहीं पड़ी।

चारबाग के इस एकान्तवासी शेख की ख्याति दूर-दूर तक पहुँची। आगरा बाबर के समय से दिल्ली का प्रतिद्वन्द्वी था। अकबर ने इसको अपनी राजधानी बनाया। शेरशाह के खानदान ने भी आगरा के सम्मान को कायम रक्खा।

मुल्ला फतवा की कमाई खाते थे। किसी को आगे बढ़ते देख कर उस पर तुरन्त काफिर होने का फतवा लगा देते थे। मुल्ला सुल्तानपुरी से लोग परेशान थे। जिसको कोई ऐसा गाढ़ पड़ता, तो वह शेख मुबारक के पास पहुँचते। शेख मुबारक इस्लामी धर्म-शास्त्र और साहित्य के अगाध विद्वान थे। वह कोई ऐसी बात बतला देते, कि सुल्तानपुरी को मुँहकी खानी पड़ती। उसे यह मालूम होते देर नहीं लगती, कि चारबाग की मस्जिद की चटाई पर बैठने वाले शेख की ही यह कारस्तानी है। सलीमशाह के जमाने में साम्यवादी शेख अल्लाई जब पहली बार दरबार में आए, तो सुल्तानपुरी ने उन्हें बरबाद करने की कोई कसर नहीं उठा रक्खी, पर पहली बार ही जब दरबार में अल्लाई ने अपना मुँह खोला, और बतलाया, कि जिन गरीबों के खून की कमाई से तुम मौज करते हो, वे कैसी तकलीफ में हैं, तो सलीमशाह की आँखें भी बरसे बिना नहीं रहीं, और उस रात उसे अपने सामने दस्तरखान पर चुने हुए तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजनों में गरीबों का खून दिखलाई पड़ा, और उसे खाने से इन्कार कर दिया। लेकिन, कुछ समय बाद सुल्तानपुरी सलीमशाह से अल्लाई को मरवाने में सफल हुए। शेख मुबारक अल्लाई के उपदेशों में शामिल होते थे। उसकी दाद भी दिए बिना नहीं रहते थे, इसलिए यदि उन्हें लोग मेहदीपंथी (साम्यवादी) और देहरिया (नास्तिक) कहें, तो क्या अचरज।

सलीमशाह के जमाने में शेख मुबारक को बहुत सँभल कर रहना पड़ता था। शेरशाह के वंश को खतम होते-होते हेमचन्द्र का प्रभाव बढ़ा। शेख मुबारक की विद्वत्ता और उदारता की खबर हेमू के पास पहुँची, और उनके साथ उसका अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो गया। शेख की सिफारिश पर कितने ही प्राणदण्ड पाने वालों को हेमू ने छोड़ दिया। लेकिन हेमू ज्यादा दिन तक नहीं टिके। मुगलों और पठानों में जो खूनी लड़ाइयाँ चल रही थीं, उनके कारण हालत खराब थी। इसी समय अकाल पड़ गया। लोग दाने दाने के मोहताज हो गए। शेख मुबारक के घर में बच्चे, विद्यार्थी, नौकर-चाकर से लेकर सत्तर आदमी थे। उस अकाल में उन पर कैसे बीती होगी, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। कभी-कभी दिन में सेर भर अनाज आता। उसे मिट्टी की हाँडी में उबालते, और लोग उसका जूस पीकर क्षुधा शान्त करने की कोशिश करते। इस समय फ़ैज़ी आठ वर्ष का था, और अबुल फ़ज़्ल पाँच वर्ष का। इन मुसीबतों के भीतर भी शेख मुबारक सदा अपने और अपनों को खुश रखने की कोशिश करते थे।

हुमायूँ ने दिल्ली की सल्तनत (१०५५ ई० में) फिर लौटाई, लेकिन छः महीने बाद ही सीढ़ी से गिर कर मर गया। तेरह वर्ष का अकबर गद्दी पर बैठा। बैरमखाँ ने उसे अपने हाथ की कठपुतली बना कर रखने में अधिक दिनों तक सफलता नहीं प्राप्त की। बीस वर्ष की उमर (१५६२ ई०) में अकबर ने शासन की बागडोर सँभाल ली। दो ही साल बाद (१५६४ ई० में) उसने हिन्दुओं के ऊपर से जज़िया (कर) उठा लिया। भारत में एक दूसरी हवा बहने का समय आया, लेकिन, शेख मुबारक को भारी खतरों और कठिनाइयों में से गुज़रना पड़ा था।

शेख मुबारक दर्वेश नहीं थे, और न सन्त-सूफी स्वभाव और रुझान के आदमी थे। पर, अपने उदार विचारों को छिपाने के लिए सब ढोंग रचना, "अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः" बनना पड़ता था। कितनी ही सादगी से रहें, लेकिन परिवार, दास-दासी, नौकर तथा छात्र मिला कर पाँच-छः दर्जन आदमियों का खर्च था, जिसका चलाना आसान काम नहीं था। शेख अब्दुन्नबी सदर अहलेहाजत थे, शेरशाह ने अभावग्रस्त लोगों की सहायता के लिए एक विभाग खोला था, उसका यह अध्यक्ष था। फ़ैज़ी को लेकर शेख साहब भी भाग्य-परीक्षार्थ उसके पास गए। शेख बड़े विद्वान, अच्छे अध्यापक और अभावग्रस्त थे, उनसे बढ़ कर कौन सहायता का पात्र हो सकता था? सिर्फ सौ बीघा जमीन के लिए प्रार्थना की थी। लेकिन अब्दुन्नबी ने दर्खास्त लेना स्वीकार नहीं किया, और बड़े रूखेपन और घृणा के साथ कहा—इस मेहदीपंथी नास्तिक को निकाल दो। उस दिन शेख मुबारक की क्या हालत हुई होगी, और फ़ैज़ी के दिल पर क्या गुज़री होगी।

अकबर के आरम्भिक सालों में शिया और काफ़िर कह कर मीर हबश आदि कितनों को कैद और कितनों ही को प्राणदण्ड दिया गया था। अबुलफ़ज़्ल लिखते हैं, कि कुछ दुष्ट लोग मेरे पिता को शिया समझ कर बुरा कहते थे। वह इसमें विवेक करने के लिए तैयार नहीं थे, कि किसी मज़हब को मानना दूसरी बात है, और उसको जानना दूसरी बात। इराक इराक अजम अर्थात ईरान का एक योग्य विद्वान मस्जिद में इमाम था। कुछ मुल्लों ने हनफ़ी सम्प्रदाय के एक वचन का उद्धरण दे करके कहा, कि इराकी गवाही प्रामाणिक नहीं है। जब गवाही प्रामाणिक नहीं है, तो वह इमाम कैसे हो सकता है!

इमाम पद से हटा देने पर सैयद की जीविका छिन गई। उसने आकर अपना दुखड़ा शेख मुबारक के सामने रोया। शेख मुबारक ने उसमें एक नुक्ता बतला दिया, कि इमाम अबु हनीफ़ा का इराक से इराक-अजम, (ईरान) नहीं, बल्कि इराक-अरब अभिप्रेत है। उसके लिए पुस्तकों से बहुत से उद्धरण दे दिए। जब इन प्रमाणों को लिख कर अकबर के सामने रखा गया, तो उसने इमाम को अपने पद पर रहने का हुक्म दे दिया। दुश्मन दिल में बहुत जले, लेकिन करते क्या? वह जानते थे, कि कौन है कुञ्जी बताने वाला।

इतिहासकार बदायूँनी अकबर के समय का एक महान विद्वान था। दरबार में उसकी इज्जत भी थी। वह शेख मुबारक का ही विद्यार्थी था। पर कट्टर मुलंटा रहने या दिखलाने की कोशिश करता था। इसके कारण अपने गुरु को यदि कभी छोड़ भी देता, तो दोनों गुरु-पुत्रों पर तीखी कलम चलाने से बाज न आता था। बदायूँनी को मालूम था, कि उसके गुरु को लोग शिया, मेहदीपंथी, देहरिया (नास्तिक) कह कर बुरा-भला कहते हैं। वह अपने गुरु की सफाई भी कभी-कभी देता था। मियाँ हातिम सम्भली अपने समय के सर्वश्रेष्ठ धर्म-शास्त्री (फकीह) माने जाते थे। शेख मुबारक की लिखित बातों को पढ़ने का उन्हें भी अवसर मिला था। एक बार उन्होंने बदायूँनी से पूछा कि शेख की पण्डिताई और विचार व्यवहार कैसा है। बदायूँनी ने उनकी मुल्लाई, सदाचार, ज्ञान-ध्यान की बातें बतलाईं। मियाँ ने कहा—ठीक है, मैंने भी बड़ी तारीफ सुनी है, लेकिन कहते हैं, मेहदी का अनुयायी, यह बात कैसी? बदायूँनी ने कहा—शेख साहब, मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी को वली (सन्त) और बुजुर्ग मानते हैं, मगर मेहदी नहीं मानते। मियाँ हातिम ने भी स्वीकार किया, कि सैयद मुहम्मद जौनपुरी की महानता से कोई इन्कार नहीं कर सकता है। वहीं पर मीर अद्ल (न्यायाध्यक्ष) मीर सैयद मुहम्मद भी बैठे थे। दोनों की बात सुनकर उन्होंने पूछ लिया—शेख मुबारक को लोग मेहदीपंथी क्यों कहते हैं? बदायूँनी ने जवाब दिया—क्योंकि वह नेकियों का आग्रह और बुराइयों का कड़ाई के साथ निषेध करते हैं।

सलीमशाह सूरी के जमाने (१५४५-५४ ई०) में साम्यवादी शेख अल्लाई के खून से हाथ रँगने के कारण मेहदीपंथियों के विद्रोह का डर था। उस वक्त शेख मुबारक को बरबाद करने के लिए दुश्मनों को इससे बढ़कर हथियार क्या मिल सकता, कि उन्हें मेहदीपंथी कहते। अकबर के आरम्भिक वर्षों में मध्य-एशिया के तुर्कों का बोलबाला था। ईरान डेढ़-सौ साल से शिया धर्म को अपना राष्ट्रीय धर्म मान चुका था, जिसे मध्य-एशियायी तुर्क फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते थे। उस वक्त शिया या राफ़ज़ी कह कर किसी को बरबाद किया जा सकता था, इसलिए दुश्मनों ने शेख मुबारक को शिया कहना शुरू किया था। इसमें शक नहीं, कि शेख मुबारक वही नहीं थे, जो वह दिखलाना चाहते थे। वह मुलंटे नहीं, बल्कि बुद्धिवादी बहुत उदार विचारों के विद्वान थे। फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़ल ने अपने पिता से ये बातें पाई थीं, जिनके कारण अकबर के वह अत्यन्त प्रिय हो गए।

शेख मुबारक दुश्मनों के षड्यन्त्र में पड़ने से बहुत मुश्किल से बचे थे। अबुलफ़ज़ल ने उस समय की आफ़तों के बारे में बहुत-सी बातें लिखी हैं। अकबर के आरम्भिक जमाने में शेख मुबारक का मदरसा (महाविद्यालय) खूब चल निकला, अच्छे-अच्छे शिष्य उनके पास पढ़ने के लिए पहुँचने लगे। दुश्मन यह कैसे पसन्द करते? अकबरनामा में अबुलफ़ज़ल ने लिखा है, द्वेष करने वाले मुल्ला दरबार में जाल-फरेब करके तूफ़ान उठाते रहते थे। कुछ भलेमानुस भी थे, जो आग को बुझा देते थे। अकबर के आरम्भिक जमाने में सच्चे पुरुष दरबार से अलग हो गए थे, शैतानों और धोखेबाजों का बोलबाला था। मख्दूमुल्मुल्क मुल्ला सुलतानपुरी गिरगिट की तरह रंग बदलने में उस्ताद था। हुमायूँ के दरबार में था, फिर शेरशाह और सलीमशाह के दरबार में भी धर्म का सर्वेसर्वा बना हुआ था। हुमायूँ के दुबारा राज्य पाने पर फिर अपने पद पर पहुँच गया, और अकबर के आरम्भिक काल में भी उसकी वैसी ही चलती रही। अल्लाई का खून उसी के गर्दन पर था। वह शेख मुबारक को भी बरबाद करने के लिए फांड बाँधे हुए था। एक दिन अपने बेटे अबुलफ़ज़ल के साथ शेख मुबारक किसी दोस्त के घर गए। मुल्ला सुलतानपुरी भी आ गया। वह बढ़-बढ़ के बातें मारने लगा। अबुलफ़ज़ल कहते हैं—"मुझे जवानी के नशे में अकल की मस्ती चढ़ी हुई थी। आँख खोल कर मदरसा भर ही देखा था, व्यवहार की हाट की ओर कदम भी नहीं उठाया था। उसकी बेहूदा बकवास से मेरी ज़बान खुल गई। मैंने बात को यहाँ तक पहुँचाया, कि मुल्ला शरमा कर उठ गया। देखने वाले हैरान हो गए उसी वक्त वह बदला लेने की फ़िक्र में पड़ा।"

(अगले अंक में समाप्य)

●

"सहस्रेषु हि मुख्यो भवति एको न वा"

कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण २, अध्याय ४

हज़ारों व्यक्तियों में एक-आध ही व्यक्ति महान बन पाता है; वह भी कभी कभी।

●

पण्डित मोतीलाल नेहरू

इन्द्र विद्यावाचस्पति

प्रथम दर्शन

यह सन् १९१९ की बात है। वर्ष के प्रारंभ में महात्मा गान्धी जी ने रोलट एक्ट के विरोध में सत्याग्रह की घोषणा की थी। प्रारम्भिक कदम के तौर पर जो देशव्यापी हड़ताल हुई, भिन्न-भिन्न प्रान्तों की सरकारों ने उस पर अपने-अपने ढंग से प्रहार किया। पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओड्वायर की सरकार ने सत्याग्रह पर लाठी और गोली से प्रहार किया। जिसका स्थूल रूप जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड और मार्शल ला के आकार में प्रकट हुआ। ब्रिटिश टाइगर अपने असली नग्न रूप में संसार के सामने आ गया। पंजाब पर ऐसे अत्याचार हुए, जैसे इतिहास में पढ़े थे। परन्तु कभी विश्वास नहीं किया था और समझा था कि यह केवल अतिशयोक्ति मात्र है। कुछ समय तक तो पंजाब के सम्बन्ध में फाँसीघर की सी निस्तब्धता बनी रही। प्रान्त पर सैन्सरशिप का पर्दा डाल कर मार्शल ला के नाम पर जो भीषण अन्याय किये गये उनका देश को और संसार को तब पता चला, जब लोकमत से प्रभावित होकर सरकार को सैन्सरशिप का प्रतिबन्ध हटा लेना पड़ा। पर्दे के हटने पर संसार ने देखा कि सभ्यताभिमानी ब्रिटेन के प्रतिनिधियों ने पंजाब में जो राक्षसी लीला की है, उसने नीरो और चंगेजखाँ की स्मृति को भी मात कर दिया है। देश भर में हाहाकार सा मच गया। पंजाब की दशा को देखने और उसके आघातों पर मरहम लगाने के लिए देश के हर एक प्रान्त से देशभक्त पंजाब के लिए रवाना होने लगे। उन देशभक्तों में से विशेष रूप से स्मरणीय देशबन्धु चित्तरंजनदास, पंडित मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द जी और पंडित मदन मोहन मालवीय जी थे। पहले दोनों महानुभाव मार्शल ला की तहकीकात के सम्बन्ध में और शेष दोनों महानुभाव मार्शल ला द्वारा आहतों और पीड़ितों की सहायता के लिए पंजाब पहुँचे। इस प्रसंग में इन तथा इनके अन्य सहायक देशभक्तों ने जो अनुपम सेवाएँ कीं, उनके विस्तार से लिखने का यह स्थान नहीं है। वे सेवाएँ भारत के राजनीतिक इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जा चुकी हैं। मैंने तो यह चित्रपट इसलिए सामने रखा है कि मैं तत्सम्बन्धी उन चित्रों को अंकित कर सकूँ, जो मेरी स्मृति में खूब उज्ज्वल रूप से विद्यमान हैं।

पिता जी के पास पंडित मोतीलाल नेहरू का इस आशय का पत्र आया कि मैं मार्शल ला की घटनाओं की तहकीकात के लिए कांग्रेस द्वारा बनाई गई तहकीकाती कमेटी में भाग लेने के लिए लाहौर जा रहा हूँ। आप पंजाब में सेवा का कार्य करके अभी आये हैं। इलाहाबाद से लाहौर जाता हुआ दिल्ली में आप से मिलकर जाऊँगा। पत्र में अपने दिल्ली पहुँचने की तारीख और पिता जी के

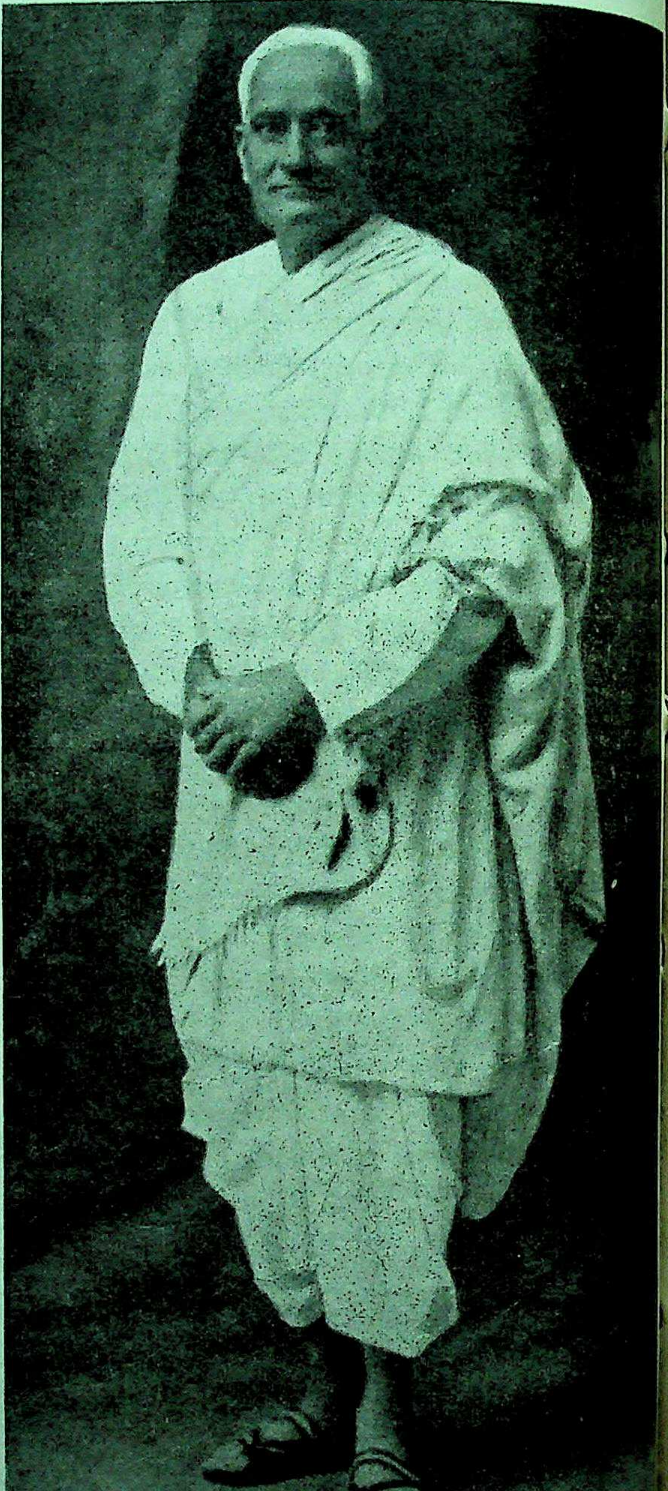

पं० मोतीलाल नेहरू

निवास-स्थान पर पहुँचने का निश्चित समय भी दिया हुआ था। निश्चित और विधिपूर्वक कार्य करने की यह प्रवृत्ति पूज्य नेहरू जी के चरित्र का एक आवश्यक अंग थी।

मुझे नेहरू जी के समीप दर्शनों की बड़ी लालसा थी। उन्हें एक बार पटना की कांग्रेस में दूर से देखा था तब आप माडरेट (नरम) विचारों के धनी नेता समझे जाते थे। उस समय मैंने नेहरू-परिवार को इलाहाबाद से रेल द्वारा पटना जाते हुए देखा था। पहले दर्जे का पूरा डिब्बा रिज़र्व कराया गया था। पूरे विलायती वेश में दोनों नेहरू—पिता और पुत्र—जब प्लेटफार्म पर पहुँचे, तो स्टेशन पर काफी सनसनी-सी फैल गई थी। नेहरू जी के धन और आनन्दभवन की ख्याति चारों ओर फैल चुकी थी। यह भी चर्चा पूरे जोर पर थी कि उनके लड़के विलायत से बैरिस्टर बन कर आये हैं, ये भी हाईकोर्ट में प्रेक्टिस करेंगे। दोनों नेहरुओं के साथ अन्य भी दो-तीन व्यक्ति थे। जो रूप-रंग और वेशभूषा से नेहरू परिवार के ही सदस्य माने जा रहे थे। वह नेहरू जी का राजसी ठाठ था, जिसे साधारण जनता उत्सुकता से देख रही थी।

उसके पश्चात यह पहला अवसर था, जब मुझे नेहरू जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त करने की आशा हुई, मैंने पिता जी से निवेदन किया कि मैं नेहरू जी के आने के समय कुछ देर के लिए उपस्थित रहना चाहता हूँ और आपकी बातचीत आरम्भ हो जाने पर चला जाऊँगा। पिता जी ने स्वीकार कर लिया।

यह दृश्य मुझे पूरी तरह याद है। प्रातःकाल के दस बजे का समय होगा। पंडित जी पिता जी के निवास स्थान पर पहुँचे। जब वे सीढ़ियों से ऊपर पहुँचे तो उनके रूप की पहली झाँकी दिखाई दी। अभी वे कोट, पैंट और हैट के वेश से निकले नहीं थे। शानदार सफेद मूँछें, उनके सुन्दर गोरे कश्मीरी चेहरे पर खूब सज रही थीं और उनकी शान को बढ़ा रही थीं। पिता जी उनका स्वागत करने के लिए कमरे से बाहर आये। उस समय जो परिस्थिति उत्पन्न हुई, वह वस्तुतः बहुत ही मनोरंजक थी, इसमें थोड़ा अभिनय का सा रंग भी आ गया था। पिता जी ने बाहर आकर पंडित जी पर नजर पड़ते ही आश्चर्य से कहा "हैं! तुम हो"। पंडित जी ने भी पिता जी की तरफ ध्यान से देख कर कहा "अरे तुम हो" मैं आश्चर्य में आ गया। दोनों ने खूब कस कर हाथ मिलाये। पिता जी ने कहा, "मैं अब तक यह नहीं जानता था कि पं० मोतीलाल नेहरू तुम ही हो।" पंडित जी ने उत्तर दिया कि "मैं भी अब तक नहीं समझता था कि महात्मा मुंशीराम और स्वामी श्रद्धानन्द तुम ही हो।" इसके पीछे थोड़ी देर के लिए दोनों बुजुर्ग अपनी आयु, ऊँची परिस्थिति और शायद मेरी उपस्थिति को भी भूल गये और पुराने कालिज के समय में वापिस चले गये। एक ने दूसरे से कहा, "तुम तब भी बहुत नटखट थे।" दूसरे ने उत्तर दिया, "तुम्हारी यह तब भी आदत थी।" किसने किससे क्या कहा यह याद नहीं रहा, सारी बातचीत से थोड़ी देर में मेरी समझ में यह आ गया कि कालेज में पढ़ने के समय दोनों बुजुर्ग इलाहाबाद में सहपाठी थे, मित्र थे और एक ही तबियत के थे; दोनों सैलानी तबियत के थे और किताबों के कीड़े नहीं थे।

इतना परिचय प्राप्त करके और दर्शनों से सन्तुष्ट होकर मैं चुपके से वहाँ से उठ गया। दोनों में लगभग दो-तीन घंटे तक बातचीत होती रही।

अमृतसर की कांग्रेस में

अमृतसर कांग्रेस में पिता जी स्वागताध्यक्ष थे और पं० मोतीलाल जी सभापति। उस अवसर पर मैंने पहिली बार पंडित जी का भाषण सुना। पंडित जा का भाषण सारगर्भित और युक्तिपूर्ण होता था। वे सदा श्रोताओं के मस्तिष्क पर प्रभाव डालने का यत्न करते थे। एक योग्य वकील को जिस भाषण-शैली से काम लेना चाहिए, पंडित जी उसके उस्ताद थे। अंग्रेजी और उर्दू दोनों भाषाओं पर उनका पूर्ण प्रभुत्व था साथ ही जिन्दादिली उनका विशेष गुण था। बड़े से बड़े कठिन समय में वे विनोद कर सकते थे, खिलखिलाकर हँस सकते थे, और गंभीर से गंभीर कठिनाई को हँसी में उड़ा सकते थे। उनका

माता स्वरूप रानी नेहरू

यह गुण भाषण के प्रभाव को बढ़ाने में बहुत उपयोगी सिद्ध होता था। वे विरोधी की अनर्गल युक्तियों का उत्तर देने में अधिक परिश्रम नहीं करते थे, प्रत्युत उसे विनोद की चुटकियों में उड़ा देते थे। इस प्रकार मौलिक रूप में वे कुशल वक्ता थे। साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि जनता के लाड़ले आरेटरों में जो विशेषताएँ होती हैं, उनमें से एक बड़ी विशेषता का उनमें अभाव था। वे दमे के पुराने मरीज़ थे, इस कारण उनका गला बहुत ऊँचा नहीं उठ सकता था और न उनके स्वर का तार बँधता था। जब कभी ज़ोर से बोलना पड़ता था तो प्रायः खाँसी उठ खड़ी होती थी, जो भाषण में विघ्न पैदा कर देती थी। इस कमी के कारण उन्हें जनसाधारण को उत्तेजित करने वाला आरेटर नहीं कहा जा सकता। वे बहुत कुशल वक्ता थे। उनकी ज़ोरदार स्पष्ट भाषा और युक्तियों का जनता पर जो प्रभाव पड़ता था, वही उन्हें जन नेता बनाने के लिए पर्याप्त था।

यह मैंने पंडित जी के कांग्रेस में प्रारम्भिक जीवन की बात कही। कुछ समय पश्चात तो नक्शा ही बदल गया। पंडित जी ने महात्मा गान्धी की आध्यात्मिक प्रेरणा से अपनी अतुल विभूति और सुखैषणा का जो अनुपम बलिदान किया, उसने उनके व्यक्तित्व को बहुत ऊँचा उठा दिया, इतना ऊँचा उठा दिया कि उनका कहा हुआ एक-एक शब्द हज़ार-हज़ार शब्दों का बल रखता था। आरेटर के योग्य भौतिक विशेषता के न होते हुए भी गान्धी-युग में पंडित मोतीलाल नेहरू के भाषण बिजली का सा असर रखते थे। यदि गान्धी-युग से पूर्व के वक्ताओं से पंडित मोतीलाल नेहरू की तुलना करें तो कहना पड़ेगा कि केवल पुरानी वक्तृत्व-कला की दृष्टि से वे कुछ न्यून थे, परन्तु वह वक्तृत्व कला जिसमें वक्ता का व्यक्तित्व सबसे अधिक महत्त्व रखता है, पंडित जी को वक्ताओं में बहुत ऊँची कोटि पर बिठा देता है।

अमृतसर की कांग्रेस में पंडित मोतीलाल नेहरू जी ने मुख्य रूप से धारासभा के अध्यक्ष का पार्ट अदा किया। वे कांग्रेस की गर्म राजनीति में नये थे। वहाँ रंगमंच में मुख्य पात्र लोकमान्य तिलक, महात्मा गान्धी और पंडित मदनमोहन मालवीय जी थे। देशबन्धु दास भी मंच पर पग बढ़ा रहे थे, परन्तु नेहरू जी संसद् के स्पीकर की भाँति लोकमत के उतार-चढ़ाव के निरीक्षक और नियंत्रणकर्ता ही बने रहे। यूँ, उनकी तथा उनके परिवार की जो राजोचित शान वहाँ दिखाई दे रही थी, वह किसी अन्य को प्राप्त नहीं थी। परमात्मा की दी हुई जन्मसिद्ध पहली विभूति सुन्दरता नेहरू परिवार को पुष्कल मात्रा में प्राप्त थी। स्वयं नेहरू जी राजपूती मूँछों और श्वेत रोबीले चेहरे के ऐश्वर्य को लिए सभापति के आसन की शोभा बढ़ा रहे थे, श्रीमती नेहरू तब यौवन और प्रौढ़ता के मध्यवर्ती काल को छू रही थीं। उनके रूप के बारे में इतना ही लिखना पर्याप्त है कि उनके सुयोग्य पुत्र जवाहरलाल जी ने उस पर उचित गर्व प्रकट किया है। विजयालक्ष्मी जी और कृष्णा जी दोनों बहनें उस समय युवती थीं। इनके अतिरिक्त श्रीमती श्यामलाल नेहरू अपनी पुत्री श्यामकुमारी के साथ वहाँ विद्यमान थीं। दर्शकों की दृष्टि उस काश्मीरी परिवार पर पड़ती थी, तो आसानी से हटती नहीं थी। वह रूप और शान नेहरू परिवार को जहाँ परमात्मा की देन थी, वहाँ परिवार के केन्द्र पंडित मोतीलाल जी की गुण-गरिमा ने उसकी चमक को सौ गुना कर दिया था।

स्वराज्य दल की स्थापना

पंडित मोतीलाल जी के चरित्र की सब विशेषताओं का एक प्रदर्शन तब हुआ जब गया की कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने और चित्तरंजन श्री देशबन्धुदास ने मिल कर स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। महात्मा जी जेल में थे। देश में राजनीतिक आन्दोलन के शिथिल हो जाने के कारण उदासी-सी छा रही थी। कांग्रेस ने भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में एक समिति बनाई थी, जिसकी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया था कि कांग्रेस को कौंसिलों का बहिष्कार उठा देना चाहिए और चुनाव लड़कर कौंसिलों के मोर्चे को भी गर्म कर देना चाहिए। आशा यह थी कि कांग्रेस के अधिवेशन में समिति की रिपोर्ट स्वीकार हो जाएगी, परन्तु अनेक प्रमुख नेताओं के विरोध के कारण वह आशा पूरी न हुई। कौंसिल प्रवेश के पक्षपातियों के नेता पंडित मोतीलाल जी और देशबन्धुदास थे, और उसके विरोधियों के नेता श्री राजगोपालाचार्य, सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री राजेन्द्रप्रसाद थे। फलतः जब आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के सामने कौंसिल बहिष्कार को स्थगित कर देने का विषय उपस्थित हुआ तो कांग्रेस के व्याख्यान मंच ने विवाद-सभा का रूप धारण कर लिया। कौंसिल प्रवेश के विरोधी बहुत प्रभावशाली थे। श्री राजगोपालाचार्य का तर्क कैंची की तरह तेज़ चलता था, सरदार पटेल की चुनौती-भरी उक्तियाँ विरोधियों को दहला देती थीं, और बा० राजेन्द्रप्रसाद की भावुकतापूर्ण वकालत परिवर्तनवाद के पाँव हिला देती थी और उनका उत्तर देने का कठिन काम अकेले पंडित मोतीलाल जी को करना पड़ रहा था। वे यह जानते थे कि अपरिवर्तनवादी बलवान हैं, और वे यह भी समझते थे कि अपरिवर्तनवादियों की पीठ पर महात्मा जी का हाथ है। साधारण योद्धा होता तो इतनी शक्तियों के सामने झुक जाता, या कम से कम मौन हो जाता, पर मोतीलाल जी राजपूती शान के बहादुर थे। खूब जम कर लड़े। महात्मा जी के नाम की दुहाई देने वालों को आपने यह उत्तर दिया कि यदि महात्मा जी जेल से बाहर होते तो वे अवश्य हमारा समर्थन करते। आपने आलोचकों को करारे उत्तर दिए परन्तु प्रतिनिधियों का बहुमत आपके विरुद्ध रहा, क्योंकि सामान्य रूप से यह विश्वास किया जाता था कि महात्मा जी कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम को पसन्द नहीं करते। बहुमत से पंडित मोतीलाल जी का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया, परन्तु पंडित जी परास्त नहीं हुए। आपने तत्काल स्वराज्य पार्टी की स्थापना की घोषणा कर दी, और उसी दिन सायंकाल के समय आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के उन सदस्यों की स्वराज्य दल में भर्ती आरम्भ कर दी जो कौंसिल को लड़ाई का मोर्चा बनाने के पक्ष में थे। जिन सदस्यों ने उसी समय स्वराज्य दल के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए, उनमें से मैं भी था। जब मैंने हस्ताक्षर करके फार्म पंडित जी के हाथ में दिया तो उन्होंने प्यार से मेरी पीठ को थपथपाया जिससे मैं वस्तुतः फूल उठा था। पंडित जी दोषी को लताड़ना जानते थे तो जिससे प्रसन्न होते थे, उसे पुचकारना भी खूब जानते

। उनकी डाँट भयावनी थी, तो उनकी हँसी की मादकता भी असन्दिग्ध थी ।

धारासभा में

जब स्वराज्य पार्टी ने पहली बार धारासभाओं में प्रवेश किया तब धारासभा में उसके सदस्यों का अल्पमत था । यह स्वाभाविक ही था कि स्वराज्य पार्टी के जन्मदाता, और योग्यतम सदस्य होने के कारण पंडित मोतीलाल जी को उसका नेता चुना जाता । उस समय धारासभा का नेतृत्व अंग्रेजों के हाथों में था, और बहुमत जी हुजूरों के हाथों में । ऐसे विकट सरकारी दल के विरोध में खड़ा होना, और अपने परिमित सैनिकों की सहायता से पग-पग पर मोर्चा लेना बहुत दुष्कर कार्य था । कई वर्षों तक उस दुष्कर कार्य को नेहरू जी ने जिस आन और शान के साथ किया, उसने न केवल दासता की बेड़ियों में बँधे हुए भारतवासियों के मस्तकों को ही ऊँचा कर दिया, विरोधियों के मुँह से भी बरबस 'वाह वाह' कहला दिया । अल्पसंख्या में होते हुए भी पंडित जी ने अपनी नीतिनिपुणता के कारण कई अवसरों पर सरकार को परास्त कर दिया, जिससे सरकारी हलकों पर उनकी धाक वज्रलेप की तरह बैठ गई थी । जिन गुणों ने उन्हें अनेक बाधाओं के होते हुए भी ऐसा प्रभावशाली बना दिया था, उनमें से तीन मुख्य थे । उनका पहला गुण था समय और परिस्थिति को पहचानने की शक्ति, उसका संक्षिप्त नाम नीतिज्ञता है । उनका आदर्शवाद यथार्थवाद का मित्र था, विरोधी नहीं था । प्रत्येक प्रश्न पर वह यह परख लेते थे कि हम आदर्श के कितने भाग को प्राप्त कर सकते हैं, और उस भाग पर अंगद का पाँव जमा देते थे । उस समय कांग्रेस के क्षेत्रों में कहा जाने लगता था कि अब पंडित जी अपनी बात पर अड़ गए हैं । विश्वास करने से पहले सब पहलुओं पर विचार कर लेना, और विश्वास कर लेने पर उस पर दृढ़ हो जाना राजनीति में सफलता का सार है ।

पंडित जी का दूसरा गुण था, उनकी सन्तुलित और प्रौढ़ वक्तृत्व-शक्ति । वे कानूनी ढंग के वक्ता थे । प्रत्येक पक्ष के केन्द्रभूत विचार को पकड़ लेना और फिर उद्भट प्रतिभा और समुचित भाषा की सहायता से उसका प्रतिपादन करना धारासभाओं में सफलता प्राप्त करने का अचूक साधन हैं, पंडित जी उस साधन से पूरी तरह सम्पन्न थे ।

उनका तीसरा विशेष गुण था, स्वभाव की लोकोत्तर विशालता । लोकोत्तर विशालता किसे कहते हैं, यह कवि भवभूति ने इस श्लोक में बतलाया है,

वज्रादपि कठोराणि
मृदूनि कुसुमादपि,
लोकोत्तराणां चेतांसि
को हि विज्ञातुमर्हति ।

लोकोत्तर व्यक्तियों के चित्तों को कौन समझ सकता है, क्योंकि वे जहाँ वज्र से भी कठोर होते हैं वहाँ फूल से भी अधिक कोमल होते हैं । पं० मोतीलाल का क्रोध प्रसिद्ध था । घर में जब उनके माथे पर त्योरी दिखाई देती थी तब आनन्दभवन की दीवारें हिलने लगती थीं, परन्तु जब क्रोध उतर जाता था तब उनके मुँह से जो अट्टहास निकलता था वह आनन्दभवन के आसपास के मकानों में भी सुनाई देता था । वह हँसी मैंने अपने जीवन में बहुत ही कम शायद कभी नहीं देखी । आप पूरे हृदय से हँसते थे, ऐसा हँसते थे कि उसके प्रवाह में बड़े से बड़े विरोधियों के हृदयों की नाराजगी धुल जाती थी । वह हँसी घर तक ही परिमित नहीं थी, कांग्रेस की बैठकों में, धारासभा के अधिवेशनों में और निजी बातचीत में भी अनायास फूट पड़ती थी जिससे गर्म से गर्म वातावरण क्षण भर में शान्त हो जाता था ।

उन दिनों वायसराय की कौंसिल में पंडित जी का जो गौरव था, जब मैं उस पर विचार करता हूँ तो मुझे उनकी तुलना का व्यक्ति दिखाई नहीं देता । जिस व्यवस्थापिका सभा के भवन में आज श्री जवाहरलाल नेहरू सरकारी नेता की हैसियत से विराजमान हैं, उसी भवन में आज से बहुत पहले उनके पिता विरोधी दल के नेता के रूप में बैठते थे । तुलना कभी अच्छी नहीं होती और फिर योग्य पिता और योग्य पुत्र में तुलना तो और भी असुविधाजनक है । मैंने तब भी देखा और अब भी देखता हूँ और मैं इतना लिखे बिना नहीं रह सकता कि कौंसिल चैम्बर में विरोधी पार्टी के नेता पंडित मोतीलाल नेहरू का जो रोबदाब और राजाओं जैसा ठाट था, वह आज भी किसी व्यक्ति का दिखाई नहीं देता । जिस समय सफेद खद्दर के रूप में परिष्कृत होकर पंडित जी अपनी गम्भीर गति से कौंसिल चैम्बर में प्रविष्ट होते थे उस समय सरकारी कुर्सियों पर बैठने वाले अंग्रेज़ महापुरुषों को भी सहम कर खड़े हो जाना पड़ता था । पंडित जी द्वारा धारासभा में की गई आलोचनाओं से सरकार थर-थर काँपती थी । फलतः जितनी शान उन दिनों विरोधी दल के नेता की थी, उतनी शान आज के सचिवों की भी नहीं है । निःसन्देह कहा जा सकता है कि पंडित मोतीलाल जी पैदायशी राजा थे । समय ने उन्हें ऐसे समय उत्पन्न किया कि उन्हें विरोधी दल के नेता बनना पड़ा ।

सत्याग्रही बनने के साथ ही पंडित जी ने अपने सम्पूर्ण राजसी ठाठ को तिलांजलि दे दी थी । उनका आनन्दभवन, जिसके सामने गवर्नर का बंगला पानी भरता था, तपस्वियों का बाना पहन कर स्वराज्य-भवन हो गया था । लाखों के विलायती कपड़े आग की भेंट हो चुके थे । पंडित जी की दशा बरसे हुए बादल के समान हो गई थी, परन्तु उससे उनका न गौरव घटा था, और न तेज । वह और भी अधिक उज्ज्वल हो गया था ।

तेजस्विता की झाँकी

अन्त में एक आँखों देखी घटना सुना कर इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ । घटना अत्यन्त साधारण है, परन्तु उससे पंडित मोतीलाल जी के स्वभाव की विशेषताएँ भली प्रकार प्रकट होती हैं । रात की गाड़ी से मैं दिल्ली से लखनऊ जा रहा था । गाड़ी के चलने का समय हो रहा था । गार्ड ने सीटी दे दी और लाइन क्लियर मिल गया, सब मुसाफिर अपने अपने स्थान पर जा बैठे, परन्तु गाड़ी चली नहीं । पाँच मिनट, दस मिनट, आधा घण्टा गाड़ी ने प्लेटफार्म पर से हिलने का नाम न लिया, तब मुसाफिर उतर उतर कर देखने लगे कि माजरा

(शेष पृष्ठ १६ के नीचे)

रात में सड़क पर

बालकृष्ण राव

दाहिने, बाएँ—
हमें है देखना दो ओर केवल,
और दोनों ओर हमको देखना है;
क्योंकि आगे और पीछे कुछ नहीं है,
मार्ग का विस्तार केवल, मील के पत्थर बहुत से
जो लगे हैं ग्लोब की इस करधनी पर
और जो शोभा बढ़ाते, जगमगाते
रोशनी में, राह पर जो पड़ रही है।

रोशनी यह मार्ग-दीपों की नहीं है,
आ रही है यह मकानों से
बने हैं जो सड़क पर
दाहिने-बाएँ।

न जाने क्यों
जलाकर दीप
घर के, लोग सोते हैं यहाँ!

उन्हें है डर
कि शायद स्वप्न टूटे, आँख खुल जाये
अचानक,
और तब शायद
उन्हें इच्छा घड़ी से पूछने की हो
समय की बात;
उठें शायद, चलें शायद,
कहीं ठोकर लगे शायद,
गिरे सामान कोई, टूट जाये।

पर हमें क्या?
वे जलायें या बुझायें, दीप उनके हैं—
हमारी राह पर तो रोशनी ही पड़
रही है,
और हम इस रोशनी में देखते हैं
नाम उनके,
जो लिखे हैं इन मकानों पर।

सभी हैं अजनबी, परदेस है यह
पाँव जिस पर पड़ रहे हैं,
राह सूनी है।

मगर ऊपर,
सितारे हैं जहाँ,
जो राह इसके साथ ही तय हो रही है,
वह पुरानी और पहचानी हुई है—
बिछा परदेस का क़ालीन जब पैरों तले
उसी दिन—हाँ, उसी दिन
शीश पर थी तन गई यह चाँदनी
घर की।

साथ कोई भी नहीं है,
सड़क सूनी,
सो रहे हैं लोग—दोनों ओर।

●

पण्डित मोतीलाल नेहरू—(पृष्ठ १५ का शेषांश)

क्या है। देखते क्या हैं कि प्लेटफार्म पर पंडित मोतीलाल नेहरू अपने सेक्रेट्री के साथ टहल रहे हैं, और उनका सामान प्लेटफार्म पर ही रखा हुआ है। मैंने कुछ पास जाकर देखा तो पंडित जी की आँखों में लाली दिखाई दी। समझ लिया कि इस समय शिवजी की तीसरी आँख सक्रिय है। कुछ घबराहट हुई, फिर भी साहस करके पास गया और नमस्कार के अनन्तर बाहर खड़े रहने का कारण पूछा। पंडित जी ने अत्यन्त शान्त भाव से उत्तर दिया, "मैंने अपने और सेक्रेट्री के लिए सीटें रिज़र्व कराई थीं। इन कूढ़मग्जों ने अपर बर्थ रिज़र्व कर दी हैं। मैंने उन्हें लेने से इन्कार कर दिया है गाड़ी स्टेशन से नहीं जा सकती, जब तक मेरे लिए लोअर बर्थ का प्रबंन्ध न हो। आप लोगों को कष्ट हो रहा है इसका मुझे दुःख है, परन्तु इनका दिमाग सीधा करना भी जरूरी है।"

यह कह कर पंडित जी जोर से हँस पड़े। इतने में स्टेशन सुपरिन्टेन्डैन्ट भागा हुआ आया, और हाथ जोड़ कर बोला कि "महाराज, स्टेशन पर इस समय कोई छोटा डिब्बा नहीं है। बहुत बड़ी बड़ी बोगियाँ हैं, परन्तु गाड़ी पहले ही सीमा से लम्बी हो चुकी है।"

अभी स्टेशन सुपरिन्टेन्डेन्ट इतना ही कह पाया था कि पंडित जी ने गर्म होकर कहा, "तो डिब्बा किसी और स्टेशन से मँगवाओ। मेरे लिए सीट की व्यवस्था हुए बिना गाड़ी नहीं जा सकती।" बेचारा सरकारी अधिकारी काँप रहा था। अन्त में बोला, "अच्छा तो एक पहले दर्जे की पूरी स्पेशल बोगी विद्यमान है, उसे लगा देता हूँ।"

यह स्मरण रहे कि पंडित जी मुख्यमन्त्री या मन्त्री नहीं थे अपितु विरोधी दल के नेता थे। थोड़ी देर में पहले दर्जे की एक पूरी बोगी ट्रेन के पिछले भाग में लगाई गई, तब पंडित जी और उनके साथी गाड़ी में सवार हो गए, और गाड़ी लगभग एक घण्टा देर में स्टेशन से रवाना हुई। गाड़ी पर चढ़ने के समय पंडित जी ने फिर एक बार हाथ जोड़ कर गाड़ी के यात्रियों से विलम्ब करने के लिए क्षमा याचना की।

पराधीन भारत में सरकार के एक प्रसिद्ध विद्रोही नेता का वह आत्मसम्मान और वह ठाठ देख कर हम लोगों की छाती गर्व से फूल गई। अनुभव हुआ कि हम राजनीतिक दृष्टि से पराधीन अवश्य हैं, परन्तु भारत माता की गोद तेजस्वी सपूतों से शून्य नहीं है।

●

नई कविता

प्रभाकर माचवे

'आजकल' के जुलाई १९५६ के अंक में "नई कविता—नया साहित्य" शीर्षक से श्री भगवतीचरण वर्मा का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उस लेख द्वारा हम 'आजकल' में नई कविता के सम्बन्ध में एक चर्चा का प्रारम्भ कर रहे हैं। इस चर्चा में भाग लेने वाले कतिपय महानुभाव इस प्रकार हैं—श्री प्रभाकर माचवे, श्री रामधारीसिंह 'दिनकर', श्री महाराज कृष्ण रसगोत्र, डा० हरिवंश राय 'बच्चन', श्री नेमीचन्द जैन, श्री राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह। हमें विश्वास है कि इस चर्चा से न केवल नई कविता पर यथेष्ट प्रकाश पड़ेगा, अपितु कविता सम्बन्धी कितनी ही धारणाएँ भी स्पष्ट हो सकेंगी। यह प्रथम लेख 'नई कविता' के पक्ष में है। लेख में सर्वत्र उद्धरण चिह्नों में श्री भगवती चरण वर्मा के विचार हैं।

—सम्पादक

(१)

जुलाई १९५६ के 'आजकल' में प्रकाशित श्री भगवतीचरण वर्मा के लेख में कई परस्पर-विरोधी विधान हैं। उदाहरण के लिए—

१. "कविता का ध्येय आत्म-सन्तुष्टि ही नहीं है, कविता मुख्यतः दूसरों के मनोरंजन के लिए लिखी जाती है। वही कविता समाज द्वारा स्वीकृत होगी जो दूसरों का मनोरंजन कर सके। छन्द और अनुप्रास दूसरों के मनोरंजन में सहायक रहे हैं। आज भी जो कविताएँ जनता द्वारा पढ़ी जाती हैं और प्रशंसित हैं, वे छन्द और अनुप्रास के सहारे म हैं।" और साथ ही—"इस वस्तुवादी जगत में जहाँ हर चीज़ का मूल्य सोना-चाँदी से आँका जाता है, साहित्यकारों ने कविता को छोड़ कर गद्य का आश्रय लिया। भारतवर्ष में ही नहीं, दुनिया के किसी भी देश में कविता की पुस्तकों की रायल्टी पर कोई भी साहित्यकार जीवनयापन नहीं कर सकता।"

अतः, निवेदन है कि कविता निरा मनोरंजन नहीं है। कविता बन्दर का तमाशा, पुतरिया का नाच, बढ़िया भोजन और सुरापन, रंगबिरंगे कैलिडिस्कोप की कोटि से कुछ अधिक और भिन्न है। जिसे अपना मनोरंजन ही करना हो वह कविता नहीं पढ़ेगा, सिनेमा के गीतों की किताब पढ़ेगा, जासूसी उपन्यास पढ़ेगा, हलके-फुलके गाने सुनेगा। कवि विट या चेट, विदूषक या मनोरंजनकर्त्ता नहीं है। वह समाज की साहित्यिक अभिरुचि का निर्माता और शास्ता भी है। कविता चाकलेट नहीं है कि चूसिये और भूल जाइये। स्वयम् मूल लेखक कविता में "आस्था, विश्वास और साधना" चाहते हैं। क्या ये मूल्य केवल मनोरंजनार्थ हैं? नई कविता मनोरंजन के लिए नहीं लिखी जाती।

२. कला के विषय में कुछ परस्पर विरोधी बातें देखिए—"कला का क्षेत्र विचार है भी नहीं, और कला का क्षेत्र भावना है।" और "भावना का उदात्तीकरण ही उच्च कला है।" परन्तु यह सब सहज न हो, क्योंकि—"कविता कला है और 'कला' शब्द में ही कृत्रिमता का बोध है। यह कृत्रिमता परिष्कार और सजावट की है।"

आशय यह हुआ कि कविता में विचार और तर्क को न आने दो। विशुद्ध भावना लिखो। और ध्यान रहे कि भावना कलात्मक यानी कृत्रिम हो, परिष्कृत और सजी-सजाई। नहीं तो बेचारी वह क्षुब्ध भावना मर जाएगी। "भावना को सजीव, प्राणवान और संयत बनाने का एक मात्र माध्यम है कला का शिल्प।" नई कविता इस कृत्रिम तथा-कथित शिल्प के प्रति विद्रोह है। रवीन्द्रनाथ ने "फार्मेलिज़्म" को "रूप-शिल्पवाद" कहा था। क्या मूल लेखक उसी का "उदात्ती-करण" चाहता है।

३. "नई कविता जनता को आकर्षित करने के बजाय उसमें वितृष्णा और ग्लानि उत्पन्न करती है।" फिर भी "नई कविता के पीछे जल्दी-से-जल्दी ख्याति पाने की प्रवृत्ति है।" यह दोनों बातें एक साथ कैसे सम्भव हैं, पता नहीं। जिस चीज़ से जनता का मनोरंजन न हो, उसमें वितृष्णा और ग्लानि पैदा हो, उसी के पीछे भागने वाले यश (?)-लिप्सु अनोखे हैं। इन फाके-मस्तों से तो वे मंदयशःप्रार्थी शायद भले हैं, जो चुस्त-दुरुस्त छन्द-अनुप्रासादि लिखकर, उसमें शिल्प वगैरह का यथामात्रा बघार देकर, "जनमनरंजन" कविता-होटल चलाते हैं।

लेख के अन्त में, इस "नई-कविता के लिखने वालों की संख्या" इतनी "बेतहाशा बढ़ गई है" कि, मूल लेखक अत्यन्त संयमपूर्ण और साधना भरी आवाज़ में भविष्यवाणी करता है—"युग बदल जाएगा, और जिसे नई कविता कहा जा रहा है वह नष्ट हो जाएगी। जीवित वही कविता रहेगी जो भावना और शिल्प इन दोनों आधारमूल सत्य पर आश्रित है।" क्या यही बात द्विवेदी-युगीन आलोचकों ने छायावाद के बारे में, और छायावादी आलोचकों ने प्रगतिवाद के बारे में बार-बार नहीं कही थी। पर इतिहास साक्षी है कि नष्ट पुराना ही होता है, नया आगे बढ़ता है। अगर "नए" में भी दोष पैदा हो गए तो वह पुराना, सड़ियल होता जाता है, और फिर दूसरा नया आगे बढ़ता है। "मानव जैसे शून्य में स्थित नहीं रह सकता", साहित्य भी कभी शून्य में नहीं रहा है।

वर्मा जी के तर्क के अनुसार कवि को समाज या जनता का मनोरंजन करना चाहिए। छन्द और अनुप्रास, तरन्नुम और संगीत (?) आदि के सहारे। तब उसमें शिल्प-साधना रूपी कृत्रिमता या कला अधिक जगेगी। वहाँ शुद्ध भावना से काम लेना चाहिए, "विचार"

को पास नहीं आने देना चाहिए। "शाश्वत और चिरंतन आस्था" और विश्वास के मूल्यों के सहारे, "साधना" करनी चाहिए। साधना करने से आप "युग की कुरूप, वस्तुवादी, अराजकतापूर्ण, असंयमी कुत्सितता" से धीरे-धीरे दूर हो जाएँगे। आपकी 'भावना का उदात्तीकरण' हो जाएगा। और आप उस राजमार्ग पर सहज पहुँच जाएँगे जिस पर कालिदास या तुलसीदास चले थे। आपको "भू की छाती पर कच्चे फोड़ों से ये उठे हुए जो घर" नहीं देखने चाहिए, "चूँ चररमरर चूँ चररमरर जा रही चली भैंसा गाड़ी" की ध्वनि नहीं सुननी चाहिए, न "हम दीवानों की क्या हस्ती, हैं आज यहाँ कल वहाँ चले" जैसी व्यक्तिवादी रचनाएँ गानी चाहिए, और न ऐसी यथार्थवादी रचनाएँ लिखनी चाहिए जैसे "यामा" की आलोचना कभी "विशाल भारत" में भगवतीचरण वर्मा ने की थी। यानी कवि को अ-कवि हो जाना चाहिए।

(२)

नई कविता पर पहला आक्षेप यह है कि उसमें "लय और छन्द को निरर्थक समझा गया है।" वह "व्याकरण के बन्धन से हीन गद्य है।" उसमें "भावना के अनुसार, बिना विचारों के तारतम्य के छोटी-बड़ी पंक्तियाँ, पूर्ण-अपूर्ण, विराम-कॉमा-डैश आदि से युक्त मिलेंगी।"

प्रश्न यह है कि लय और छन्द की व्याख्या क्या है? क्या कवितांतर्गत लय और संगीत की लय एक ही चीज़ें हैं? क्या "छन्दस्त्व" नाम की कोई चीज़ है, जो गद्य से भिन्न है? क्या पद्योच्चारी गद्य और गद्योच्चारी पद्य नहीं लिखे गए हैं? क्या रूढ़ छन्द में लिखने से पंक्तियाँ पद्य या काव्य हो जाती हैं? नीचे की पंक्तियाँ पढ़िए, जो हिन्दी के एक गण्यमान्य कवि की हैं। क्या भगवतीचरण जी इसे कविता मानते हैं? "रालीब्रदर इत्यादि को हम बेचते जो माल हैं। लेते वही पन्द्रह गुने तक मूल्य में तत्काल है। आता विलायत से यहाँ यह माल नाना रूप में। आश्चर्य क्या फिर पड़े हैं जो अंधेरे कूप में। हम दूसरों को पाँच सौ की बेचते हैं जब रुई। सानन्द कहते हैं कि हमको आय क्या अच्छी हुई। पर दूसरे कहते कि ठहरो, वस्त्र हम जब लाएँगे। तब और पैंतालीस सौ लेकर तुम्हीं से जाएँगे।" अब यह दूसरे उदाहरण कुछ ख्यातनाम गीतकारों के हैं, मैं कवियों के नाम जान-बूझ कर नहीं दे रहा हूँ :—

(१) "राजकुमारी जा! तेरे घर रोज़ बजे शहनाई,
सूरज तेरी गोदी खेल, चन्दा करे ढिठाई,
किरनें तेरे कुन्तल गूँथें, दर्पन रूप दिखाए,
आँगन लीपे धूप, चाँदनी पानी भरे लजाए,
भूले भटके कभी हमारी सुधि यदि आ जाए
तो-गा लेना यह गीत गगन जब गाए मेघ मलार।"

(२) "मैं देख रहा हूँ काफ़ी अरसे से दुनिया के रंग-बिरंगे आँगन को,
इसमें हर एक ढूँढ़ता फिरता है केवल अपने-अपने मनभावन को।"

(३) "वहाँ मैं गान गाऊँगा, वहाँ मैं प्राण पाऊँगा,
वहाँ मैं प्राण फूँकूँगा, वहाँ मैं प्राण पाऊँगा।"

(४) "मुझे शुरू से ही लगता था आकर्षक व्यक्तित्व तुम्हारा,
अलग सबों से प्रकट प्रवाही थी तुमने अपनी ध्वनि-धारा।"

(५) "तुम न सुनोगे तो मैं किसे पुकारूँगा संसार में,
तुम न रहोगी पास कहाँ देखूँगा सुख का द्वार मैं।
तुम न छुओगी पाऊँगा कैसे गति का संचार मैं।
तुम न भरोगी स्नेह जलूँगा कैसे तम के पार मैं!"

इन पंक्तियों को पढ़कर, जिन्हें 'गीत' कहा जाता है, कौन-सा नवीन काव्योद्बोधन या रस-संचार साधारण बुद्धिमान और परिपक्व भावनाओं वाले पाठक के मन में हो पाता है, यह मैं जानना चाहता हूँ। यदि वह नहीं होता है, तो ये गीत (यानी गेय शब्द रचना) चाहे हों, कविता कैसे हुई? आप कहेंगे कि किसी भी कविता में से दो-चार बीच की गद्यप्राय या नवीनता-शून्य पंक्तियाँ उसके संदर्भ से काट कर देने से। द्विवेदीयुगीन या गीतकारों की आधुनिक हिन्दी कविता के साथ अन्याय किया जा रहा है। मैंने यह इसलिए जान-बूझ कर किया है, क्योंकि छन्द-लय-व्याकरण सम्मत पद्य-रचना की मर्यादाएँ क्या हैं, यह अच्छी तरह जान ली जाएँ। किसी भी साधारणतया अच्छी प्रयोगशील या प्रयोगवादी रचना से आप यों काट कर चार पंक्तियाँ, उस कविता के संश्लिष्ट अर्थ को हानि पहुँचाए बिना कभी दे नहीं सकते। गीतवाली या भगवतीचरण जी के स्टैंडर्ड से श्रेष्ठ कविताओं में से आप पंक्तियाँ की पंक्तियाँ निकाल दीजिए, उसके भाव-प्रभाव में कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा। इस विवेचन का निष्कर्ष यह हुआ कि नया कवि वर्णन, सूक्तियाँ, उपदेश, उक्ति-चमत्कार या छन्दो क्रीड़ा के लिए पद्य नहीं लिखता। वह एक समग्र सत्य के संश्लिष्ट जीवनानुभव को, उसकी प्रगाढ़ उत्कटता और सघनता को, समूचा व्यक्त करता है। नई कविता इसलिए शीर्षकों पर टँगी, या पंक्तियों या मात्राओं की मुहताज़ नहीं होती। वह समग्र पढ़ी जाती है, समग्र गुनी जाती है, उसका प्रभाव उसकी सम्पूर्णता के साथ है। नई कविता पढ़ने पर आपको शीर्षक याद नहीं रहते, न पंक्तियाँ आप दुहराते हैं—उर्दू ग़ज़ल के शेरों की तरह—मगर उस सारी कविता से अभिभूत होते हैं। यहीं नई कविता का पुरानी कविता से अन्तर शुरू होता है। पुरानी कविता अवयव, अलंकार, छन्द, प्रास आदि के प्रति सचेष्ट थी। (चाहे उसमें की ऊहा नवीन न हो, कल्पकता मौलिक न हो, अनुभूति सैकेंडहैंड हो, विचार अप्रामाणिक हों) उसका आग्रह शिल्प की साधना पर था। वही कला थी। नई कविता आनन्दवर्धन के शब्दों में कहें तो "अवयवों से अतिरिक्त लावण्य" की ओर संकेत करती है—

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वाति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।"

यहाँ नई कविता के आलोचकों के लिए विशद करूँ कि भाषा का कवितांतर्गत प्रयोग और केवल पद्य-रचना में बड़ा अन्तर है। सभी छन्दोमय पद्य रचनाएँ काव्य होतीं तो दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि के कई संस्कृत ग्रन्थ जो पद्य में हैं, काव्य कहलाते। कविता अब निरा अनुकरण नहीं रही, न वह निरी सूझ और कल्पना ही रही, परन्तु उसमें प्राचीन रसशास्त्रियों के शब्दों में कहें तो सम्वेदना-भावना-कल्पना-चिंतना आदि का संश्लिष्ट 'अभिसम्भव' होता

है। यह कलात्मक अभिसम्भव-प्रक्रिया ही कविता की भाषा में अनुव्यवसाय से व्यंजकता की ओर संक्रमण निर्मित करती है। अरस्तू ने अभिधान के वर्णनात्मक और भावात्मक दो भेद किए थे। भगवतीचरण जी की कलामीमांसा उसी प्राथमिक अवस्था में है। कलाविषयक मनोविज्ञान और सौंदर्यशास्त्र-दर्शन ने अरस्तू से अब तक बहुत प्रगति कर ली। कांडिलाक, विको और हर्डर ने कला की अपनी स्वतंत्र भाषा मानी। विरौन ने कहा कि भाषा के तीन रूप होते हैं:—निवेदक, प्रेरक और भाव-व्यंजक। भाषा का निवेदनात्मक रूप हमें द्विवेदीयुगीन खण्ड-काव्यों में या छायावादी गीतों में मिलता है, आदेशात्मक या प्रेरणात्मक रूप 'दिनकर' के हुंकार में या प्रगतिवादी काव्य में, परन्तु भावसंक्रांति या 'इंडक्शन ऑफ मूड' सही अर्थ में प्रयोगशील या नई कविता में मिलने लगा है। चार्ल्स पीअर्स के अनुसार भाषा की मूर्तिवत् (Iconic) और संकेतरूप Conventional दो प्रकार की कलात्मक स्थिति है। साधारण व्यवहार में भाषा Unisign होती है, तो काव्य में वह Plurisign बनती है। राजशेखर ने स्पष्ट लिखा है कि काव्य की सरसता-नीरसता केवल कवि-वचन पर अवलम्बित है। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में बौद्ध साहित्यिक पाल्यकीर्ति के और अपनी पत्नी अवन्तिसुन्दरी के उदाहरण देकर कहा है कि सरसता-नीरसता 'नियत स्वभाव नहीं है', वह कवि-मनोधर्मसापेक्ष है।

(यथा तथा वास्तु वस्तुनो रूपं, वक्तृप्रकृति विशेषायत्ता तु रसवत्ता;
विदग्धभणितिभंगिनिवेद्यं वस्तुनो रूपं, न नियतस्वभावम्।)

भट्टतौत ने अभिनव भारती टीका में अनुकरण नहीं परन्तु अनुव्यवसाय को ही सृजन का मूल-बिन्दु माना है। नई कविता में भाषा का यह अभिसम्भव, यह अनुव्यवसाय सामान्य रूढ़ विचारकों के ध्यान में नहीं आता। वे लीकै लीकै चलते हुए, इस 'कुकरमुत्ते' पर ठिठक जाते हैं!

नई कविता का उत्तरोत्तर धर्म निरलंकारता, सहजता और सादगी की ओर, सर्व-रूप से स्व-रूप की ओर बढ़ने का है। आधुनिक कविता की विशेषता ही उसके रचयिता के भावलोक की प्रगाढ़ता, अनुभवविश्व की समृद्धता और व्यंजना के माध्यम की दुर्बलता का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ भान है। 'तारसप्तक' में अज्ञेय ने अपने वक्तव्य में इसे प्रेषणीयता की समस्या कहकर विश्लेषित किया था। आधुनिक कवि की अनुभूति की दुरूहता उसमें अपरिहार्य रूप में व्यंजना की दुरूहता पैदा करती है और सहजता या श्रोता तक पहुँचने के सारे प्रयत्न वहाँ अनुभूति से अप्रमाणिक होकर, अ-सहज होकर, शब्द-बहुल होकर ही समाप्त होते हैं। शब्द की पंगुता अर्थ की गति-अतिशयता के आगे स्पष्ट हो उठती है। यहीं आधुनिक कविता की समस्या पैदा होती है।

बड़े भाग्यवान हैं वे गीतकार जिनके लिए छन्द (और तुकें) आसमान से परियों की तरह उतर आती हैं। 'फरिश्तों से मजमूं मेरे आगे' चले आते हैं। बड़े भाग्यवान हैं वे पद्य-रचनाकार जिनके भाव तुकों की सीढ़ियों का सहारा पाकर बच्चों के पार्क की फिसलनी की तरह एक के पीछे एक बराबर समस्यापूर्तियाँ करते चलते हैं—रीतिकाल में प्रास और छन्द की सुविधा के अनेक उदाहरण मिलेंगे—परन्तु कविता अब शब्दों का खिलवाड़ नहीं रही। कविता अब निरा वचरना नहीं रही। वह कालिदास और तुलसीदास से क्रमशः दो हजार और चार-सौ वर्ष आगे के मानव की सांस्कृतिक थाती है। वह दर्शन और विज्ञान जहाँ समाप्त होता है, वहाँ का चिन्मय घनीभूत, क्षण-चित्रात्मक प्रामाणिक समग्र अन्तर-दर्शन है। वह विराट स्वरूप का केवल मुँह में देखा हुआ ग्यारहवाँ अध्याय है, स्थितप्रज्ञ पर कर्मण्य, अनिकेत पर स्थिरमति! स्थिति-गति के इस संरोग-अवरोह की उत्पत्ति-लय का अखण्ड लीलालास्य इस माध्यम में है। अतः जहाँ छन्द और प्रास की सचेष्ट, साग्रह शिल्प-साधना है, कविता उसमें अपवाद-प्रकर्ष से ही दिखाई देती है। हिन्दी का आज का काव्योत्पादन साक्षी है कि अच्छे गीत लिखना आसान है या अच्छी नई कविता लिखना।

(३)

तीसरा आक्षेप नई कविता के वस्तु-पक्ष या भाव-पक्ष को लेकर है। आक्षेप यों है—नई कविता में प्रचलित परिपाटी के विरुद्ध लिखा जाता है। नई कविता आज की कुरूपता को चित्रित करने में विश्वास करती है। अभी हमने आक्षेपकों से जाना था कि नई कविता में कोई विश्वास है ही नहीं। गनीमत है, अब यह तो जाना कि नई कविता एक चीज़ में यानी कुरूपता में विश्वास करती है। "सौंदर्यसृजन प्राचीन की परम्परा है," "नई कविता को प्राचीन मात्र का खण्डन करना है। अतः वह सौंदय के विनाश को प्रेरित करती है," मूल लेखक ने यह भी माना है कि "सौंदर्य, कुरूपता आदि मूल्य युगानुकूल बदलते रहते हैं।" आज यदि कोई स्त्री पति की चिता पर सती होने लगे या उसे बाध्य किया जाए, तो इस दृश्य को भव्य और सुन्दर कहा जा सकेगा क्या? यद्यपि सतीत्व का सिद्धान्त, शाश्वत और चिरंतन आस्था का वैयक्तिक पक्ष है। दूसरा उदाहरण लें नवाब वाजिदअली शाह का। उनके नज़ाकत के प्रेम को सामाजिक परिस्थितियों से काटकर देखा जाए तो वैयक्तिक आस्था का एक सुन्दर उदाहरण है। पर आज वह हास्यास्पद क्यों लगता है? नई आस्थाएँ और नए विश्वास बनते जाते हैं, यह मूल आक्षेपक भी मानते हैं। परन्तु कविता को उनसे शायद बचना चाहिए, ऐसा उनका मत है। क्योंकि "अनास्था और अविश्वास केवल ध्वंसात्मक दृष्टिकोण हैं।" क्या कोई भी रचना बिना किसी न किसी प्रकार के विनाश के सम्भव हो सकी है। बीज मिट्टी में विनष्ट होता है, अंकुर ऊपर आता है। एक पीढ़ी मिटती है, दूसरी सामने आती है: "खेतों के प्रासाद बने हैं, प्रासादों के फिर से खेत।" ऐसी दशा में जीवन की समग्रता को न देखकर केवल अपना मनचीता, 'मीठा-मीठा गप्प-गप्प, कड़ुआ-कड़ुआ थू-थू' कह कर हंस क्षीर-न्याय मानना, क्या निरी एकाक्षता नहीं है? क्या यह कवि के लिए सम्भव है कि वह केवल एक ही पहलू देखे। वह केवल पक्षधर के लिए सम्भव है। मूल लेखक पक्षधर ने आवेश से लिखा है, तभी वह भविष्यवाणी करता है कि "जिसे नई कविता कहा जा रहा है, वह नष्ट हो जाएगी।" ऐसा ही हर सुधार और हर क्रान्ति के पहले, प्रतिक्रियावादी मत वाले कहते रहे हैं इतिहास साक्षी है। और जीवित वही मत रहे हैं जो अधिकाधिक मानवकल्याण को पोषित करते रहे।

'भावना और शिल्प' यह 'दो आधारभूत सत्य' कविता के लिए काफी नहीं है। कविता केवल भाव-दशा का सुघर, शिल्पित, मनोरम कर्णप्रिय प्रेषण मात्र नहीं है। वह विचारों के आँवे में पकी भावनाओं का, समूचे सामाजिक यथार्थ का, कवि के समूचे व्यक्तित्व से निखरने वाला, सत्य है। उसमें कवि की आकांक्षा, प्रवृत्ति-निवृत्ति, राग-विराग इन्द्रिय-सम्वेदना, कल्पना, चेतना-अचेतन, स्वप्न और वास्तवदर्शन, संस्कार और शब्द-ज्ञान, सौन्दर्य-सम्वेदना, मानवीय सहानुभूति सबका परिपाक है। यानी वह एक संश्लिष्ट (इंटिग्रेटेड) रचना है। और यहीं वह निरी मधुर तुकबन्दी से भिन्न है। आधुनिक कविता में व्यंग और विच्छित्ति की अधिकता इसी कारण से है। भारत की सभी प्रौढ़ भाषाओं में न केवल छन्द-बंध की कठोर कारा को बीसियों वर्ष पहले कविता छोड़ आई है; परन्तु उत्कट अनुभूति के क्षणों का यह संमिश्र, अपरिभाषेय, सूक्ष्म, सौष्ठव कविजन अपनी तूलिका से अंकित कर रहे हैं। इस कविता का समग्र रसग्रहण करना होगा। केवल छन्द या प्रास, केवल भावना या केवल आस्था या विश्वास हमें केवल रामधुन का अखण्ड कीर्तन तक पहुँचा सकेगा। यदि केवल शिल्प देखना हो तो 'दुलारे-दोहावली' उसका आदर्श उदाहरण है—शायद उसके पीछे कवि की 'साधना' भी कम नहीं रही होगी। परन्तु क्या उसमें व्यक्त कवि का सत्य है—या उक्ति-चमत्कार का आग्रह मात्र है। क्या मूल लेखक सचमुच, सन् १९५६ के जनतन्त्रात्मक भारत को और उसके कवि को पुनः दरबारी वातावरण में ले जाना चाहते हैं, जहाँ कवि मनोरंजनकर्त्ता है, कला-शिल्पवद् है, प्राचीन परम्पराओं पर उसकी आस्था भू है। हमारे यहाँ कवि को 'मनीषी, परिभू स्वयंभू' कहा गया है। यह मनीषीपन तो उसे विचार और तर्क के बीहड़ काँटों में घसीटेगा, ('स्वायंभुवत्त्व' तो केवल वैवस्वत मनु का है) आधुनिक कवि तो जैसा जनता चाहती है, सिनेमा का डाइरेक्टर चाहता है वैसा निरा 'गीत दान' करता रहता है। फकीरों की सी एक-सी तरन्नुम में या बेसुरी, नक्की आवाज में पनियल रोमांस और भग्न-हृदय की प्रेमनिराशा के जज्बातों का इजहार करता है, मृत्यु-पूजा पर आस्था और विश्वास करता है—वही आदर्श आधुनिक कवि हुआ। बाकी तो सब घास छीलने वाले या भड़भूँजे हैं! क्योंकि या तो उनके हाथ हँसिया-खुरपी है, या वे अकेले चने से भाड़ फूँकना चाहते हैं।

(४)

इसका अर्थ यह नहीं कि नई कविता नाम से अभिहित सभी रचनाएँ आदर्श कोटि की या पूर्णतः परिपक्व हैं। उनमें भी प्रयोगशीलता के नाम पर बहुत-सा कूड़ा-कचरा लिखा जा रहा है। जब-जब नया साहित्यिक आन्दोलन चला है, चाहे छायावाद हो, प्रगतिवाद या प्रयोगवाद—क्या बाढ़ के साथ बहुत-सा छिछला और अनावश्यक बह कर नहीं आया है। जब मूल्यांकन किया जाए तो उस दुर्बल पक्ष को लेकर नहीं, बल्कि उपलब्धियों को लेकर कहा जाए। देखना यह है कि विश्वकविता, या भारत की अन्य भाषाओं की कविता की तुलना और परिपार्श्व—क्योंकि उपलब्धि का अनुमान तो इसी प्रकार से कुछ स्तर निश्चित किए बिना नहीं होगा—किस 'दल' या 'पक्ष' की कविताएँ कवितापन से अधिक परिप्लुत हैं, किसने भावना (जो विचार के बिना अपरिपक्व और पंगु है) और शिल्प (जो कि निरा कठखुदाई या मीनाकारी या पच्चीकारी नहीं है, परन्तु काव्य के वागर्थ से संपृक्त है) दोनों में अधिक संश्लेषण प्राप्त किया है, कौन अपने अनुभूत के प्रति अधिक प्रामाणिक है, कौन सचमुच आगे आने वाली कविता का चूड़-संवाहक है। इस प्रश्न का निर्णय पाठक पर छोड़ देना उचित होगा। जो न्यस्त स्वार्थों के पोषक हैं, जो रूढ़िवादी और स्थिति-स्थापक वादी हैं, वे दोनों दलों में हैं। वे 'आस्था और विश्वास' की बात बार-बार दुहराते हैं—पर आधुनिक मानव का मन खण्डित हो चुका है। वह कहीं जमता नहीं। 'जेरूसेलम, विएन्ना, पैरिस—गिरती हुई मीनारें' हैं (ईलियट)।

'कल्याण' मासिक की हिन्दी में सबसे अधिक खपत है। उसमें भावना और शिल्प की कमी नहीं है। परन्तु हिन्दी भाषी पाठक-समाज अधिकाधिक अश्रद्ध और नास्तिक बनता जा रहा है। उसका क्या कारण है? क्या गीता जी के सस्ते संस्करण, मुफ्त में बाँटने से श्रद्धा उसमें जाग जाएगी? मूलतः यह बात ही गलत है कि कविता, जो कि कवि के समग्र व्यक्तित्व का आत्माविष्करण है, ईमानदार आत्म-प्रकटीकरण है—उसे किसी काव्य-गत सत्य से बाहर की श्रद्धा, आस्था, साधना इत्यादि की लादी ढोने वाला खच्चर बना दिया जाए। तितली के पंखों द्वारा पराग-केसर ही ले जाया जाता है, ढोंगी उपदेश की, तेलसने पुराने चीथड़ों जैसे शब्दों की, घिसे-पिटे बासी उपमा-उत्प्रेक्षाओं की रसद नहीं। इस नए संघर्ष में ये अस्त्र काम नहीं आएँगे, अणु-युग में सांघिक रूप से लाठी भाँजने (या गलाबाजी करने) से कुछ नहीं होगा। अब कविता का पाठक जागरूक हो गया है। वह कवि से सौटंच 'कविता' चाहता है। लक्चर या लोरियाँ, लटके या लावनियाँ, मुकरियाँ और ढकोसले नहीं। अर्थहीन गुनगुनाहट जैसे कविता नहीं है, वैसे वाग्सौन्दर्यविहीन नव-काव्य भी सार्थक नहीं है। दोष दोनों शैलियों की नई कविता में हैं। परन्तु मूल लेखक जिस प्रकार की एक विशेष नई कविता पर आक्षेप करता है, उससे हिन्दी कविता के भविष्य पर कुठाराघात नहीं हो सकता है, केवल लेखक के मन की झाँकी मात्र मिलती है। मेरा निश्चित मत है कि हिन्दी कविता का भविष्य नई कविता की उसी शैली के हाथों है, जो अभी प्रयोगशील है यानी जो सँवर और उभर रही है।

स्वप्न की छलना

महाराज कृष्ण रसगोत्र

रात के तीसरे पहर की
गहराई की घनी नींद में खोया हुआ,
कोई पड़ा सोता हो
भुला सब ग़मो-फ़िक्र मानवी जीवन के,
औ' मुहब्बत की तरस से
ख़ाली हों तहें मन की, तो
नींद उसके लिए राहत है ।
ऐसे में दबे पाँव
स्वर्ग की रूपवती, मोहिनी
रंगमयी इन्द्रेणी[१] सी,
और लावण्यमयी रति सी
अप्सरा एक उतर आए,
और छू स्वप्न की जादू-छड़ी से पलकें
उसको उठा ले जाए
तीर पै रवितनया के
किसी शीतल बन में,
जिसके हर पेड़, शिला, पत्थर पर
जमी हो काई
सुख-स्पर्श-मयी, कोमल, शीतप्रद और हरी;
फिर घनी, महकीली शस्य की शय्या पर
लिटा कर उसको,
और बल खा
विद्युत की तरलता से
उसकी भुजाओं में सिमिट,
उसके हर अंग में औ' रूप में
विश्व के कुल भोगों का
रस भर दे, मद भर दे ।
और फिर बिन-कारण रूठ चली जाए—
उस विलासी की दशा कौन कहे ?
वह दशा मेरी है ।
यों तो कमी
दुनिया में नहीं हूरों की
और कहते हैं
सगोत्र हैं सौन्दर्य के सब रूप,
और ये रूप-शिखें लमकाती
प्रतिरूप हैं रूप के उस लवर की
जिस पर
आदि मनुज ने अपना
तन वारा मन वारा,
पर मुझे एक परी-रूह ने
स्वप्न में चूमा है :
उसके सौन्दर्य के उजियारे से भरे
मेरे नयन अन्धे हैं,
और करक ओंठों पर
अमीरस की तृषा की
बँध गई ऐसी, कि अब
मद चुम्बन का
उतर अधर पर मेरे
विष बनता है,
इन भुजाओं में स्वयं स्वग
समेटा था कभी मैंने,
इसलिए इनका अब पाश नहीं भरता है,
स्वप्न जिसका हो, उसे
सत्य से सन्तोष कहाँ मिलता है ?
प्रणयिनी, हमने प्रणय की
सौ बार शपथ ली होगी,
और सौ बार
शिथिल बाहों में सरकता प्यार
कसा है हमने,
और अभिसार के अनित्य में
नित्य का परिचय खोजा,
और निर्दीप्त गहनता में नयन की
सौ बार परस्पर हमने
दिव्य अगोचर देखा—
या कि माना देखा,
क्योंकि नयनों में उपस्थित होती
दिव्य की ज्योति, अगर,
तो न दरकार इन्हें थी
किरण दिनकर की—
और घड़ियों में समर्पण की
क्या नहीं माँगा मैंने
जो कि तुमने न मुझे दे डाला ?
किन्तु नहीं तृप्ति मिली,
और न हम
सत्य की क़ैद से मुक्त हुए ।
मेरी हर माँग अधूरी थी
और हर माँग की परिपूर्ति
आशा से कहीं कम ।
जब कभी रागीले,
परदार चणों के बल पर
निश्चेष्ट उठकर मेरे
स्वप्न की स्वर्णमयी
काया की परिधि छूने को,
सत्य की भुरभुरी धूल, लिए वे लौटे
और वह धूल निज भाल चढ़ाई तुमने !
तुम धराशायी हो, नहीं परिचित हो
मेरी उत्तुंग उमंगों से,
जो कि परवाज़ में छूती हैं
गगन की सीमा,
इसलिए धूल की दो मुट्ठी को
समझ कर दैवी सम्पद
ग्रहण किया है तुमने ।
तुम नहीं मित-सन्तोषी,
मगर मित ग्रहणी हो,
और तुम स्मारक हो
मेरी धरा-दीनता, मेरी पराधीनता की ।
अब न तुम और मुहब्बत चाहो मुझ से ।
मेरी लाचारी पर ज़रा सोचो तो—
मैं तुम्हें प्यार कभी क्या दे पाया ?
और कब तुम भूलीं
कि सतरंगी पाशों में तुम्हारे
बँध नहीं पाया कभी
स्वप्न-रसिक मन मेरा ?
तुम धारा-रूप—स्वयं धरनी हो,
और तन मेरा विनिर्मित है
मिट्टी से तुम्हारी, इसलिए
कुछ तो सहज बंधन तन के हैं,
मन मगर तन से अलग, ऊपर है,
स्वप्न का अनुरागी, नहीं भक्त है वह
तन की तरल माँगों का ।
अब न तुम मुझ से मुहब्बत माँगो,
स्वप्न का अभिसारी, नहीं मन
अपना है तुम्हें दे दूँ जो, और
कामना मन की मुहब्बत है,
तन, मगर देन तुम्हारी जो, तुम्हारा है ।

---

[१]. इन्द्रेणी नेपाली भाषा में इन्द्र-धनुष को कहते हैं ।

पागल

अनिलवरण गंगोपाध्याय

छोटा सा देहाती स्टेशन है। दिन के समय जो थोड़ी-बहुत सरगर्मी रहती है, वह सन्ध्या के उतरते ही क्षीण हो जाती है। केवल स्टेशन मास्टर के कमरे में एक बत्ती रात भर टिमटिमाती रहती है। ११-४५ की अप ट्रेन चले जाने पर स्टेशन मास्टर भी निश्चिन्त होकर अपने क्वार्टर की तरफ चल देता है।

स्टेशन की घड़ी में टन-टन करके ग्यारह बज गए। स्टेशन मास्टर के कमरे के बरामदे के एक अँधेरे कोने में जो स्त्री रात आठ बजे से गुमसुम बैठी हुई है, वह ज़रा हिल-डुल कर बैठ गई।

यहाँ पर बहुत कम मुसाफिर उतरते-चढ़ते हैं, और जो उतरते-चढ़ते हैं, उनमें से अधिकांश को स्टेशन मास्टर पहचानता है। पर वह स्त्री कपड़ों में लिपट कर इस तरह चुपचाप बैठी हुई थी मानों वह साधना कर रही हो कि अपने को विलुप्त कैसे किया जाय। हाँ, वह एक बार स्टेशन मास्टर से यह पूछ गई थी कि ११-४५ के पहले कोई गाड़ी है या नहीं।

११-४५ की गाड़ी आ गई। यहाँ पर गाड़ी एक मिनट से अधिक रुकती नहीं है। वह स्त्री जल्दी में गाड़ी पर सवार होने जा रही थी कि इतने में किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा और वह ठिठक कर खड़ी हो गई। किसी ने पुकारा—लेखा!

बस उसका गाड़ी पर सवार होना रह गया। घूँघट का जो हिस्सा उघड़ गया था, उसे बन्द करके वह थरथर काँपने लगी।

हाथ में एक सूटकेस और छोटी सी बेडिंग लेकर एक सुन्दर युवक आश्चर्य से अवाक् होकर उसकी तरफ ताक रहा था। दोनों जैसे भाषा शक्तिहीन हो गए। अति परिचित के आविर्भाव से दोनों गूँगे हो गए। फिर भी प्रथम आश्चर्य के झटके से सम्हल कर सौम्येन्द्र ने ही पहले-पहल कहा—कहाँ चली हो?

लेखा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसी तरह सिर नीचा किए हुए खड़ी रही।

सौम्येन्द्र को और भी आश्चर्य हुआ कि लेखा के साथ और कोई नहीं है। लेखा से कोई उत्तर न पाकर सौम्येन्द्र इसी उधेड़बुन में था कि क्या करे, इतने में उसे मालूम हुआ जैसे लेखा बिलख-बिलख कर रो रही है। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या मामला है। गाड़ी तो बहुत पहले ही छूट चुकी थी। अँधेरे में सौम्येन्द्र के मन को जैसे एक रहस्य ने धीरे से छू लिया। उसने कहा—मेरे साथ आओ।

इतनी देर में लेखा ने आँख उठा कर देखा। गीले शब्दों में बोली—कहाँ?

उसके चेहरे की तरफ देखकर सौम्येन्द्र का गला रुँध चला। लेखा का चेहरा ऐसा हो गया है। एक क्षीण निराशापूर्ण चेहरा। उसके दुबले पीले चेहरे की तरफ देखकर वह बोला—मैं घर जा रहा हूँ। मेरे साथ चलोगी?

—नहीं, नहीं, सामू दादा, वहाँ नहीं—लेखा जैसे चीख कर बोल उठी।

—तो इतनी रात में तुम कहाँ रहोगी?

—देखा जायगा, तुम जाओ—लेखा ने सिर नीचा करते हुए कहा।

—मैं जाऊँ और तुम यहाँ अकेली रहोगी? क्या पागल की तरह बात कर रही हो लेखा।

एक ही मुहूर्त्त के अन्दर सौम्येन्द्र ने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। बोला—चलो स्टेशन मास्टर के पास। वेटिंग रूम की चाभी लेकर उसी में रात काट दी जाएगी।

स्टेशन मास्टर को जब मोटे तौर पर सारी बात समझा दी गई, तो उसने वेटिंग रूम का दरवाजा खोल दिया। सौम्येन्द्र को यहाँ कुछ झूठ का सहारा लेना पड़ा। लेखा उसकी रिश्तेदार है। गाड़ी फेल हो जाने के कारण अब रात भर यहाँ रहने के लिए मजबूर है। झूठ के बिना स्टेशन मास्टर शायद ही वेटिंग रूम खोलने पर राज़ी होता। लेखा को वेटिंग रूम में बैठा कर सौम्येन्द्र बाहर आकर खड़ा हो गया।

कुछ खाद्य द्रव्य मिल जाता तो अच्छा रहता। पर यह तो बिल्कुल ही असम्भव है। इस उजाड़ खंड में खाद्य द्रव्य कहाँ से मिले, पर लेखा को देखकर ऐसा मालूम होता था कि उसने दिन भर खाना-पीना यहाँ तक कि नहाना भी नहीं किया। धीरे-धीरे सौम्येन्द्र टहलता हुआ प्लेटफार्म के बाहर आकर खड़ा हो गया।

बाहर के घुप अँधेरे की तरह उसके मन में भी अज्ञात चिन्ताएँ आ रही थीं। कोई भयंकर बात हुई है, यह तो सुलेखा को इस अज्ञात स्टेशन में अकेली देखकर अनुमान किया जा सकता था। पर अपने से कुछ पूछने में संकोच हो रहा था। आँखों के सामने सुलेखा का मलिन चेहरा तैरने लगा। साथ ही चित्रपट की तरह कई साल पहले की बातें भी याद आ गईं। उन दिनों सभी उनके मधुर सम्पर्क से परिचित थे। दोनों एक ही साथ एक ही पड़ोस में पले थे। नन्हीं सी शान्त लड़की मुँह बिचकाए बिना सौम्येन्द्र के सारे अत्याचार सहन करती थी। सौम्येन्द्र खेलता तो सुलेखा दौड़-दौड़ कर उसकी गेंद पकड़ लाती। वह फूल तोड़-तोड़ कर डाल देता और सुलेखा को उन्हें उसके लिए बटोरना पड़ता। कभी उसने चूँ-चपड़ नहीं की थी। सौम्येन्द्र ने उसे कितनी ही कहानियाँ सुनाईं तथा सबक तैयार करने में मदद दी। आज ऐसा मालूम हो रहा था कि सुलेखा उन दिनों उतनी अच्छी न होती, तो ठीक था।

बचपन का वह स्नेह धीरे-धीरे प्रेम का रूप धारण करने लगा। सुलेखा की माँ ने भी दोनों के मिलने-जुलने में कोई बाधा नहीं पहुँचाई। सौम्येन्द्र की तरह वह भी समझती थी कि एक दिन इनका ब्याह होना ही है। पर सब सोचा-सोचाया पाँच साल पहले एक दिन धरा रह गया। सौम्येन्द्र कलकत्ते में होस्टल में रह कर एम० एस-सी० पढ़ रहा था कि परीक्षा देने के बाद ही शादी होगी।

इतने में धूमकेतु की तरह अरविंद का उदय हुआ। सौम्येन्द्र दशहरे की छुट्टी में बड़ी आशाएँ लेकर गाँव में आया था। उसने तो कलकत्ते में शादी के बाद रहने के लिए मकान भी ठीक कर रक्खा था। सुलेखा को बहुत कुछ कहना था। उससे सलाह लेनी थी। पर वे बातें मन की मन में ही रह गईं। उसने आकर देखा कि लेखा के घर में वही आगन्तुक डटा हुआ है।

सुलेखा के माता-पिता ने उसकी तरफ़ अजीब उदासीनता का रुख अपना लिया। अब तो सुलेखा से मिलना भी मुश्किल हो गया। एकाएक लोग जैसे सौम्येन्द्र और सुलेखा की उम्र के सम्बन्ध में सचेत हो गए थे। सुलेखा की दृष्टि में भय के साथ-साथ कुछ ऐसी आत्म-करुणा थी, जिसके कारण सौम्येन्द्र पागल हो गया। पर सुलेखा के पिता टस से मस नहीं हुए। तरुण जमींदार अरविंद के सामने सौम्येन्द्र को हट जाना पड़ा। सुलेखा पर उसे क्रोध और साथ ही साथ वितृष्णा हो गई। उसकी शादी के कुछ दिन पहले ही वह होस्टल में लौट गया। सुलेखा इतनी कमजोर और इतने छोटे दिल की है, यह बात वह कभी सोच नहीं सका था, पर इसी सुलेखा को जिसने उसका जीवन नष्ट कर दिया, वह कभी भूल नहीं सका, इस कारण उसे अपने ऊपर बड़ा क्रोध आता था।

पाँच साल बाद वह उसी सुलेखा का अपमान करने के लिए ही गाँव में लौट रहा था। सौम्येन्द्र अब कोयले की एक खान का मैनेजर था। उस समय लेखा को जो बात सौभाग्य के रूप में जँची थी, आज सौम्येन्द्र यह दिखला सकता था कि वह कुछ भी नहीं था। वह चाहता था कि सुलेखा अपनी आँख से देखे और पछतावे की आग में जले।

पर यह क्या हुआ? जिसे अपमानित करने के लिए उसने संकल्प किया था, आज उसकी व्यथा देखकर उसका हृदय दुखी क्यों हो रहा है, तो क्या आज भी वह सुलेखा को उसी प्रकार······?

तभी तो रेल से उतरने के पहले भी उसी की बात याद आ रही थी। टहलते-टहलते सौम्येन्द्र प्लेटफार्म से बहुत दूर निकल आया था इसीलिए वह धीरे-धीरे लौट पड़ा। सुलेखा वेटिंग रूम के बैंच के कोने से चिपक कर बैठी हुई थी। ऐसा तो मालूम नहीं होता कि उसने इस बीच में मुँह-हाथ भी धोया है।

सौम्येन्द्र को देखते ही सुलेखा बोली—सामू दादा, तुमने मेरे लिए नाहक ही इतना कष्ट किया। मैं अच्छी तरह रह सकती थी।

सौम्येन्द्र के सिर पर से एक बोझ-सा उतर गया क्योंकि उसके सामने समस्या यह थी कि कहाँ से और कैसे शुरू करे। बोला—तुम कहाँ जा रही थीं? अरविन्द बाबू कहाँ गए?

—मैं समझ गई तुम मुझे इस प्रकार देख कर आश्चर्य में पड़ गए हो। यही बात है न?

—हाँ—सौम्येन्द्र ने कहा और चुप हो गया।

पाँच मिनट तक सुलेखा चुप रही जैसे कोई फैसला कर रही हो। फिर उसने धीरे-धीरे सारी बात बताई। बात थोड़ी सी थी। शादी के बाद ही सुलेखा को पता लगा कि अरविन्द शराब का लती है। साथ ही उसमें अन्य दुर्गुण भी हैं, जो शराब के साथ चलते हैं। इसलिए जो थोड़ी सी जायदाद थी, उसे फूँकने में कुछ देर नहीं लगी। दो साल से बहुत परेशानी में दिन बीत रहे थे। इन दिनों पैसों की कमी के कारण वह जब-तब सुलेखा पर हाथ भी झाड़ दिया करता था। उसके अत्याचार इतने बढ़ गए थे कि उन्हें सहने की सामर्थ्य अब उस में रह नहीं गई थी। यह सब कह कर वह एकाएक चुप हो गई।

सौम्येन्द्र की समझ में नहीं आया कि क्या कहे। सुलेखा बोल उठी—इसीलिए मैं भाग आई—कह कर वह फफक-फफक कर रोने लगी।

सौम्येन्द्र सारी बात सुन कर कुछ डर-सा गया। अब वह इस स्त्री को कहाँ ले जाए? बोला—ऐसी हालत में तुम्हारे लिए अपने पिता के यहाँ जाना ही शायद उचित होता। वहाँ···

—बीच में ही बात काटती हुई सुलेखा बोली—पर वे लोग जाने कब के मर-खप गए। तुम सालों से इधर नहीं आए, इसलिए तुम्हें नहीं मालूम।

सौम्येन्द्र को इन बातों का पता नहीं था। सोचकर बोला—अब लेट जाओ। कल सवेरे जो कुछ होगा देखा जाएगा। सवेरा होने में अधिक देर नहीं है।

दोनों में से कोई भी सो नहीं पाया और सवेरा हो गया। सुलेखा पहले उठी और मुँह-हाथ धोकर तैयार हो गई। सौम्येन्द्र ने यह तय किया था कि समझा-बुझाकर सुलेखा को उसके घर लौटा देना चाहिए। वह कुछ खाना ले आया। फिर खाते-खाते एक समय बोल उठा—मैं बैलगाड़ी लाता हूँ। तुम तैयार हो लो। देर करने पर धूप सहनी पड़ेगी—कह कर वह चलने को हुआ।

—पर मुझे तो नहीं जाना है।

अब सौम्येन्द्र कुछ बिगड़ गया। पर अपनी नाराज़गी को गुप्त रख कर बोला—तुम्हें और कहीं जाना हो, तो बता दो, मैं वहीं पहुँचा दूँगा।

—मैं तो पहले ही बता चुकी हूँ कि जाने के लिए कोई जगह रह नहीं गई। तुम बेकार में परेशान हो रहे हो। तुम अपनी राह जाओ और मैं जहाँ भी बन पड़ेगा चली जाऊँगी।

सौम्येन्द्र के सिर पर जैसे वज्रपात हुआ। अब वह क्या करे। न तो यह पति के यहाँ लौटना चाहती है और न अपने पैतृक गाँव में ही जाना चाहती है।

तो?

इस विपत्ति से कैसे छुटकारा मिले? एकाएक उसके दिमाग में यह बात आई कि क्यों न वह उसे लेकर अपनी कोलियारी में लौट जाए?

इसमें बुराई ही क्या है ? वह तो आश्रय भर देना चाहता है। उसने एक बार रुआँसी सुलेखा की तरफ देखा, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उलटे पाँव लौटेगा। उसने ऐसा ही किया।

इसके बाद दस साल निकल गए। अब वह एक कोलियारी का मालिक है। लक्ष्मी ने उस पर बड़ी कृपा की। पर इन दस सालों में उसका चेहरा बीस साल आगे बढ़ गया है। चेहरे पर हर समय थकावट की छाप रहती है। अक्सर वह अपने को काम में लगा रखता है। अपने जीवन की व्यर्थता फिर भी भूल नहीं पाता है। सुलेखा और उसके बीच जो खाई थी, वह कभी पाटी नहीं जा सकी। लोकचक्षु के अन्तराल में कोई काँटा दोनों के दिल में खटकता रहता है। वे कभी पास नहीं आ सके। दूर ही दूर बने रहे। एक सड़ती हुई लाश जैसे दोनों के बीच बराबर बिछी रही हो। अब तो बहुत दिनों से एक छत के नीचे रहते हुए भी वे हफ़्तों एक दूसरे का मुँह नहीं देखते।

सौम्येन्द्र को जब भी मौका लगता है, वह पास-पड़ोस की खानों में जाकर समय काट आता है। कई बार रात रात भर नहीं आता। वह अपने मित्रों में अपने को भुला देना चाहता है।

एक दिन वह अपने एक मित्र के यहाँ बाग़बानी के सम्बन्ध में व्यावहारिक आलोचना कर रहा था याने बाग़ में खड़े होकर यह बता रहा था कि इस इस प्रकार से क्यारी बनाई जाए तो अच्छा रहेगा। इतने में उसकी खान का एक युवक कर्मचारी साइकिल पर भागता हुआ आया और किसी तरह साइकिल को पेड़ से टिका कर बोला—सर, बड़ा भयंकर कांड हो गया।

—क्या ? खान में कोई दुर्घटना हो गई ?

—नहीं।

—फिर ?

उस युवक ने कुछ कहने में आनाकानी की। सौम्येन्द्र ने झिड़क कर कहा—बताते क्यों नहीं ?

वह युवक हिचकिचा कर बोला—आप चलिए, मैं चलते-चलते बताता हूँ।

सौम्येन्द्र गाड़ी निकाल कर चला तो उस युवक ने बताया कि कल वह किसी काम से नए माल बाबू को साथ में लेकर सौम्येन्द्र के बंगले में गया था। मिसेज़ राय ने कहा कि साहब बाहर गए हुए हैं।

—मैं लौट आया। आज एकाएक भजनसिंह ने आकर ख़बर दी कि मेम साहब का क़त्ल हो गया। सुनकर सब लोग दौड़ पड़े। डाक्टर भी आए, पर प्राण-पखेरू पहले ही उड़ चुका था। उसी नए माल बाबू ने हत्या की है। लोगों ने उससे पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया, तो वह कुछ नहीं बताता। बस हँसता जाता है और कहता है—"मैंने बहुत अच्छा किया, यही करना चाहिए था।" मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह आदमी पागल है। पर आश्चर्य की बात है कि कल तक वह बिल्कुल ठीक था।

सुन कर सौम्येन्द्र कुछ नहीं बोला, जैसे इसकी ही आशा थी। ऐसी घटना से जितनी घबराहट की आशंका थी, वह भी देखने में नहीं आई। उसके हाथों में स्टियरिंग ह्वील एक बार भी गुमराह नहीं हुआ। एकाएक उसने पूछा—क्या मैंने नए माल बाबू को देखा है ?

—नहीं, उसका नाम अरविन्द है।

सौम्येन्द्र ने और कुछ नहीं पूछा। उधर अरविन्द ने भी पुलिस के सामने कुछ भी नहीं कहा। बस यही कहता रहा कि मैंने जो कुछ किया ठीक किया, मैंने कोई गलती नहीं की।

अरविन्द को पागलखाने भेज दिया गया। सब लोग कहने लगे कि वह पागल है, पर सौम्येन्द्र जानता था कि पागल अरविन्द नहीं, वह स्वयं है, जिसने जबर्दस्ती घड़ी का काँटा पीछे की तरफ घुमाकर एक ऐसी समस्या सुलझानी चाही थी जो वैसे नहीं सुलझ सकती थी।

●

प्रेरणाएँ और कवि

ब्रजकिशोर 'नारायण'

कहने लगी दिवा कि मैं दर्शन सिखा दूँगी !
कहने लगी निशा कि मैं कविता सिखा दूँगी !
कहने लगी उषा कि मैं रंगीन कर दूँगी !
संध्या लगी कहने कि मैं ग़मगीन कर दूँगी !
पतझार ने कहा कि मैं बेपर्द कर दूँगी !
बहार ने कहा कि मैं दर्द भर दूँगी !
गर्मी ने कहा—'छाँव भी सहने नहीं दूँगी !'
बरसात ने कहा कि मैं रहने नहीं दूँगी !
कहने लगी शरद कि मैं तारे गिनाऊँगी !
सर्दी ने कहा—'रात भर, प्यारे ! सताऊँगी !'

× × ×

मैंने कहा सबों से—'मुझे तंग कीजिए
सुविधाएँ सभी लीजिए ! पर संग दीजिए !'

●

यमुना का उद्गम

गोपेन्द्रनाथ दत्त

दिल्ली या आगरा के समीप ग्रीष्म ऋतु में बालुयुक्त प्रदेश से प्रवाहित होने वाली यमुना के शान्त एवं मन्द गति प्रवाह का अवलोकन करने पर इस बात पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता कि उस स्थान से उद्गम की दिशा में कुछ २०० मील की दूरी पर जन-साधारण उसी नदी को सहज ही में लाँघ सकता है। आज तक जिस प्रदेश का वर्णन भी ठीक से प्राप्त नहीं हो सका, ऐसे दुर्गम स्थान का, उद्गम की ओर चलते ही चलते आपको आसानी से ज्ञान प्राप्त होता जायगा।

राना गाँव के निकट यमुना का एक अस्थायी पुल

उद्गम की दिशा में यमुना का प्रवाह नाना प्रकार की अठखेलियाँ करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कभी बालूमय शिलाखण्डों के बीच उसका रुक-रुक कर बहना, तो कभी समतल प्रदेश में चित्रविचित्र खेतों को काटता हुआ सुन्दर, श्वेत, चमकदार धाराओं में विभाजित होकर प्रवाहित होना देखते ही बनता है। हिमालय से निकली हुई कई अन्य नदियों की तुलना में इसे कष्टसाध्य प्रदेश कहना कदाचित ही तर्कसंगत प्रतीत होगा। हिमालय की दक्षिणवर्ती छोटी पहाड़ियों से यमुना का वेगपूर्ण चंचल प्रवाह जब समतल भूमि पर आने लगता है, तब इस वैज्ञानिक युग के चतुर मानव ने नहरों का एक जाल-सा बिछाकर उसके वेग को बड़ी कुशलता से रोक लिया है और विभिन्न कार्यों के लिए अतिरिक्त जल के उपयोग का प्रबन्ध भी कर लिया है। इसीलिए इस नदी में बाढ़ की सम्भावना क्वचित ही होती है। विधाता द्वारा निर्मित मानवरूपी अनुपम शृंगार के लिए यह नदी मानो एक वरदान है।

शिवालिक पहाड़ियों की घाटियों से होते हुए उत्तर की ओर इसके प्रवाह का अनुसरण कीजिए। यहाँ हमें इसके दोनों तटवर्ती प्रदेशों में साल या शीशम के दुर्गम एवं सघन वनप्रदेश का सर्वत्र विस्तार दिखाई देगा, उसमें विविध हिंस्र पशु भी इतनी विपुल मात्रा में विद्यमान हैं कि इस वनप्रदेश की गंध मात्र से ही अत्यन्त आलसी शिकारी भी उन्मत्त हो उठेगा। वसन्त ऋतु में नवविकसित फूलों का शृंगार तो अप्रतिम होता ही है, पर वहाँ की श्वेत या चित्रविचित्र मछलियों को पकड़ने की कला कुशल मत्स्यजीवी के लिए बड़ी ही मनोरंजक प्रतीत होगी।

हिमाचल प्रदेश के सिरमोर जिले में पावंटा नामक स्थान के पास यमुना काफी चौड़ी दिखाई देती है। यहाँ नदी मानो अपने दोनों किनारों से होड़ लगाती हुई प्रवाहित होती है, इसीलिए उसके भँवर-युक्त प्रवाह की शक्ति का ठीक-ठीक पता लगाना असम्भव प्रतीत होता है। परन्तु नदी की गड़गड़ाती हुई कुछ लहरें जब जल पृष्ठ पर कभी-कभी दृष्टिगोचर होने वाली चट्टानों से सहसा टकराती हैं, तब उसकी अगाध शक्ति का कुछ-कुछ आभास अवश्य होने लगता है। पर्वतीय प्रदेश से देवदार वृक्षों के दर्जनों खण्ड नदी के प्रवाह में बह कर समतल प्रदेश में आते हैं, जिनका उपयोग आधुनिक युग का चतुर मानव विभिन्न कार्यों के लिए करता है। दूर से ऐसा दिखाई देता है मानो किंचित हरे आसमानी रंग की स्लेट पर किसी ने चित्रलिपि अंकित की हो।

इससे भी अन्तर्गत पर्वतीय प्रदेश का प्रवास केवल वे ही हिन्दू पदयात्री कर पाते हैं जिन्हें परिश्रमी जीवन का अनुभव हो। उन्हें हिमालयीन देहातों में उपलब्ध रूखी-सूखी चीज़ों से ही अपनी उदर-पूर्ति करनी पड़ती है। नदी के उद्गम स्थान के समीप पहुँचने की दृढ़ाशा इन्हें सदा धैर्य प्रदान करती रहती है। नदी के उद्गम स्थान का सामीप्य मानो मोक्ष-प्राप्ति की दिशा में उनके लिए सीढ़ी की एक-एक अग्रिम पैड़ी सिद्ध होता हो।

पावंटा में प्रवासियों के लिए आकर्षक वस्तुओं का अभाव नहीं। नगर के दक्षिण की ओर एक पथरीली सीढ़ी बनी है, जिससे होकर धार्मिक पदयात्री यमुना के शीतल जल में डुबकियाँ लगाते हैं। यह पथरीला मार्ग यात्रियों को नगर के एक प्राचीन ढंग के भव्य महल तक ले जाता है। इसी महल में एक ओर गुरुद्वारे की स्थापना हो चुकी है, जिसकी पताका सिक्खों के गुरु नानक की शिक्षा की साक्षी देती है। दूसरी ओर खालसा हाई स्कूल को स्थान दिया गया है। पावंटा नगर में व साथ साथ इस भवन के अंधकारमय गुम्बजों के नीचे पश्चिम पंजाब के कई निर्वासित लोगों को आश्रय मिला है। इस नगर के वातावरण को देख कर कई व्यक्ति इस नगर को पंजाब का ही एक भाग समझने लगेंगे। इस बस्ती में नए बसे हुए निर्वासित परिवारों के बच्चों को अपने प्रचण्ड उत्साह के साथ खेतों में खेलते हुए या यमुना में तैरते हुए देखते हैं, तब हमें अनुभव होता है कि भावी भारत के प्रगतिशील नागरिक बनने की दिशा में यमुना जी ने इन बच्चों का जीवन मोड़ने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

सिरमुरी ताल के पास यमुना का गिरि नदी से संगम हुआ है। प्राचीन समय में सिरमुरी ताल के स्थान पर एक छोटा सरोवर था,

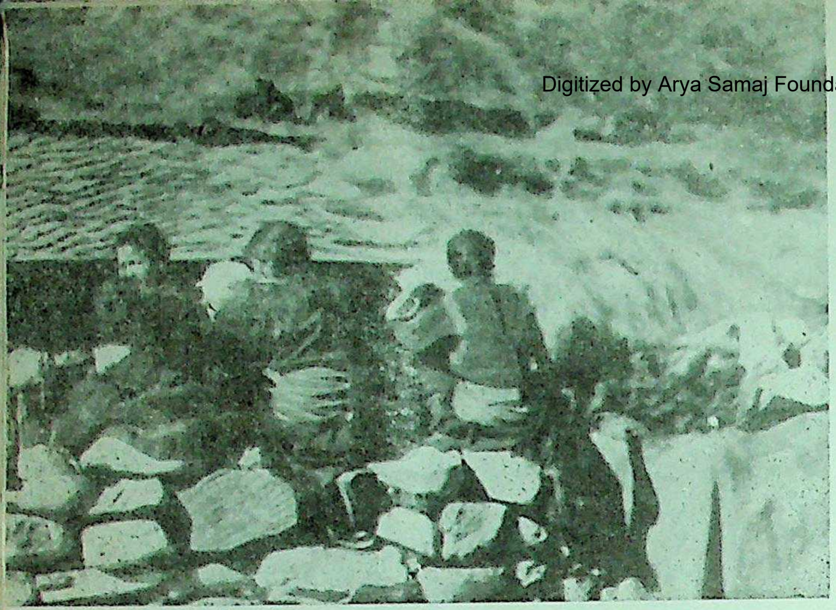

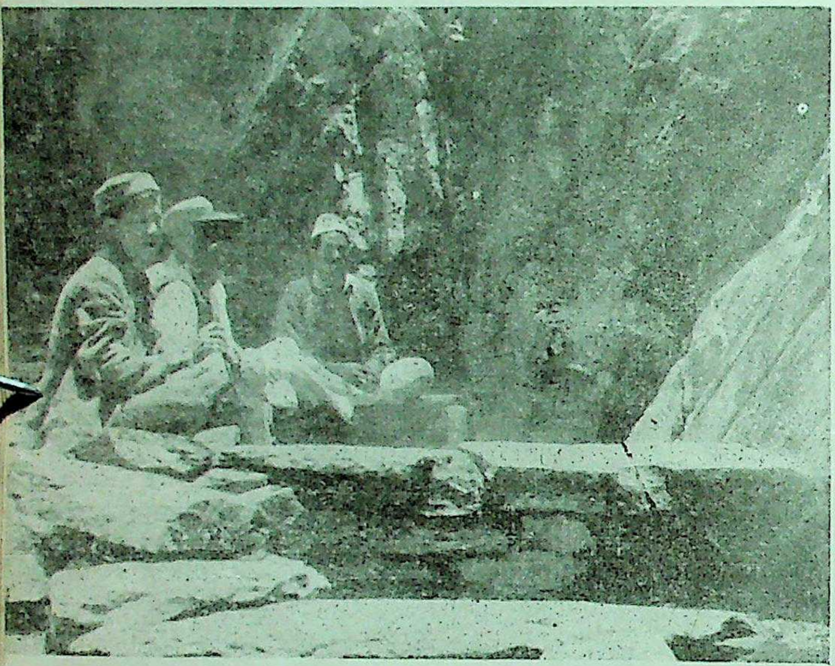

यमुना के उद्गम के पास गरम पानी का एक झरना

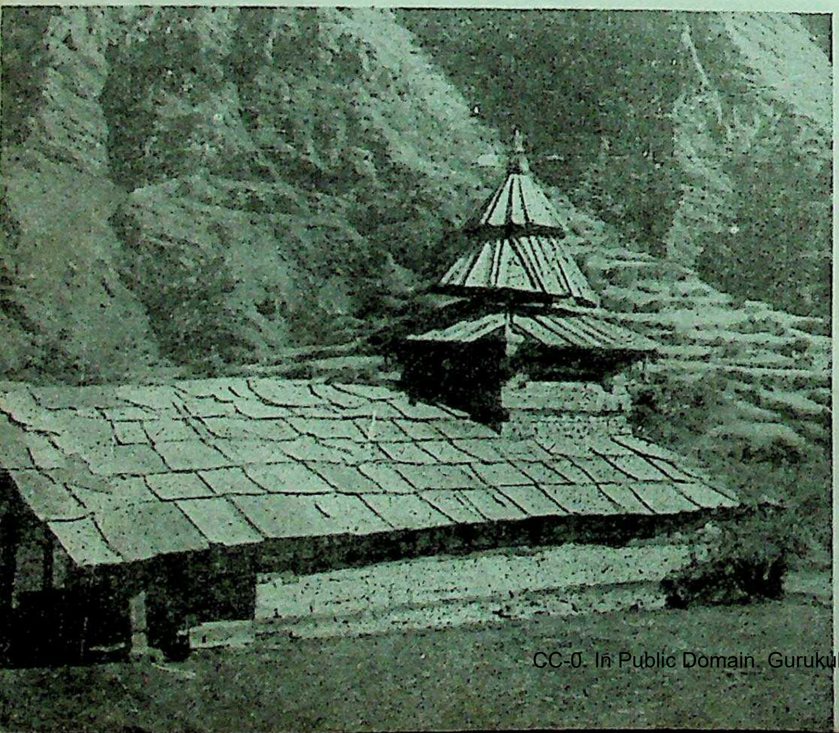

और उसकी सीमा पर पुरानी राजधानी बसी थी। सिरमुरी ताल अभी भी वहाँ पर है, पर तत्कालीन सरोवर का ऐश्वर्य व राजधानी का आडम्बर मात्र अतीत की घटनाएँ बन चुकी हैं। उस काल में वास्तु-कला पूर्णावस्था को पहुँच चुकी थी, इसकी साक्षी भी हमें यत्रतत्र बिखरी हुई दैवी मूर्त्तियों से प्राप्त हो सकती है। ऐसी ही कुछ-कुछ भग्न पर कला पूर्ण मूर्तियाँ विद्यमान सड़कों के किनारे पाई गई हैं। पावंटा से सिरमुरी ताल के लिए बस चलती है, पर इस कलापूर्ण ऐतिहासिक स्थान के भग्नावशेषों का अवलोकन करने के लिए विदेशी यात्री क्वचित ही दृष्टिगोचर होते हैं।

इस प्रकार असंख्य पर्वत-श्रेणियों को पार करते ज्यों-ज्यों आप नदी के उद्गम की ओर बढ़ते जाएँगे, उतने ही असंख्य श्वेत, चंचल व शीघ्रगति जलस्रोत आपके पीछे छूटते जाएँगे। इन्हीं स्रोतों से यमुना के प्रवाह को शक्ति प्राप्त होती है। शक्ल-सूरत व मैत्रीपूर्ण आतिथ्य में हिमालय का एक देहाती दूसरे से बिलकुल मिलता है। इसका कारण भी बड़ा स्पष्ट है चारों ओर का वातावरण उस पर्वतीय प्रदेश के ग्रामीण के लिए सदैव प्रतिकूल रहता है। दैनिक कार्य के लिए आवश्यक नमक या शक्कर के लिए भी उसे घासयुक्त, अधकची पगडंडी से गुजरना पड़ता है, जिसका मार्ग कई बार पहाड़ियों के ऊपर से नीचे व नीचे से ऊपर होकर जाता है। ऐसा करते-करते उसे कई दिन तक पैदल चलना पड़ता है। तिस पर भी प्रकृति का कोप सदैव उस पर बना रहता है। मार्ग में मलेरिया आदि बीमारियाँ उस पर आक्रमण करती हैं। मार्गस्थ वाटियों की स्फूर्तिदायी ठंडी हवा कई बार उसकी व्याधि में आरामदायक सिद्ध होती है। यमुना का प्रवाह मात्र निरन्तर अपनी नाद लहरी निनादित करता हुआ प्रवाहित होता रहता है। क्या इस मर्त्य सृष्टि का कोई व्यक्ति उस निनाद की सुरीली पद्य-रचना को जाँच भी कर सकेगा?

टोन्स यमुना की अत्यन्त प्रभावशाली सहायक नदियों में से एक महत्वपूर्ण नदी है। टोन्स नदी के साथ उसका संगम होने के पूर्व यमुना आकार में काफी छोटी दिखाई देती है। इससे भी उत्तर की ओर नदी की स्थिति के विषय में बहुत ही कम जानकारी उपलब्ध है। एक बार पुनः हम उसके कुछ कम संकटमय मार्ग का अनुसरण करेंगे। वास्तव में अधिकतर पदयात्री उसके उद्गम की ओर जाते समय इसी मार्ग का अनुसरण करते हैं।

इस समय आपको हरिद्वार नामक पवित्र नगरी से प्रस्थान करना होगा। यहीं आपकी रेलयात्रा भी समाप्त होती है। यहाँ से पास ही किसी पहाड़ी पर रात्रि में झिलमलाते हुए प्रकाश-पुंज को आप देखेंगे। वह स्थान नरेन्द्रनगर कहलाता है, जो कि टेहरी गढ़वाल जिले का प्रमुख नगर है। यों तो वह स्थान हरिद्वार से काफी समीप मालूम पड़ता है, पर बस से वहाँ पहुँचने में पूरे दो घंटे लग जाते हैं। नरेन्द्रनगर का रास्ता काफी चक्करदार है। उसके प्रत्येक सर्पाकार मोड़ पर अनुभवहीन ड्राइवर को धोखे की सम्भावना प्रतीत होगी। हिमालय के पर्वतीय प्रदेश से गुजरते समय दर्रों में कुछ सुन्दर आकर्षक दूकानें भी आपको देखने को मिलेंगी। सम्भव है कि पर्वतीय

खरसाली गाँव का शिव मन्दिर

हनुमान गंगा के निकट रहने वाली एक ब्राह्मण कन्या

प्रदेश के अनुकूल जलवायु में भ्रमण करने के कारण आपको अपनी प्रदीप्त क्षुधा शान्त करने की इच्छा भी सहसा हो उठेगी।

शाम होने के कुछ समय पहले आप चमखल की ओर से होते हुए जाइए। यहाँ पर आप प्रथम जागतिक महायुद्ध के टेहरी-गढ़वाल निवासी सिपाहियों का भव्य स्मारक देख सकेंगे।

उतार के चारों ओर आपको बिलकुल विलक्षण ढंग का दृश्य दिखाई देगा। सामने दृष्टिगोचर होने वाली प्रतापनगर की पहाड़ियों के पीछे घना कुहरा छाया हुआ रहता है। इसलिए प्रतापनगर की पर्वत-श्रेणियों के ऊपर व पीछे की ओर विद्यमान हिम कुहराच्छादित घाटियों में सहसा लुप्त होता हुआ दिखाई देगा, मानो घाटियों में पहुँचते ही वह कुहरे में घुल गया हो। इसी घाटी से पवित्र गंगा मैया का उद्गम हुआ है, यहाँ के लोग उसे ही भागीरथी कहते हैं। आपकी बस जब घाटियों के सहजगम्य सर्पाकृति मार्ग से गुजरने लगेगी तब एक बार पुनः आपको ऊष्ण प्रदेश में रहने का आभास होगा। आपके दाहिनी ओर भीलांगण व भागीरथी के संगम पर टेहरी नगर बसा है। हिमालय में नदियों के संगम के पास बसे हुए अन्य स्थानों के समान यह स्थान भी हिन्दुओं के लिए पूज्य माना जाता है। यहाँ से आप भागीरथी के पास से होते हुए धराशु तक जाइए व वहाँ से पैदल चलकर या किसी पहाड़ी टट्टू पर सवार होकर १२ मील की दूरी पर विद्यमान नकोरी तक बढ़ते जाइए। मार्ग में 'जाध' नामक अस्थिरवासी परिगणित जातियों के पड़ाव आपको स्थान-स्थान पर दिखाई देंगे, शीतकाल में उनका निवासस्थान हिमाच्छादित होने के कारण मजबूर होकर उन्हें दक्षिण का ओर प्रस्थान करना पड़ता है।

फताचु डंडे के पास विद्यमान ७,००० फुट ऊँचे दर्रे के मार्ग से जब आप आरोहण करने लगेंगे, तब आपको पर्वतीय प्रदेश के शान्त व शीतल वातावरण के सदैव हरे-भरे जंगल से गुजरना पड़ेगा। मार्ग में गोलाई के पास से जब आप गंगनी तक पहुँचने लगेंगे तब आपके सामने पवित्र यमुना आपके स्वागत में उपस्थित दिखाई देगी। दूर से हरियाली आभा से देदीप्यमान होने वाला उसका चंचल एवं मंजुल स्रोत जब सहसा विशाल शिलाखण्डों से टकराता है तब यह अप्रत्याशित श्वेत तुषार में परिणत होता हुआ अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होता है। जमुनाचट्टी की ओर चलते समय मार्ग में यमुना का आकर्षक प्रवाह देखने पर हमें सहसा इस कथन का स्मरण हो आता है—"सौन्दर्य सदैव अविनाशी होता है, परिस्थित्यनुरूप उसका स्वरूप मात्र बदलता रहता है।"

रानागाँव के पास कच्चा लकड़ी का पुल पार करने पर आप अपने को निसर्गरमणी के विशाल उद्यान का दर्शक समझने लगेंगे। यहाँ पर 'चूलो' नामक मजबूत फल को पाकर आप आनन्द मनायेंगे। इसके पास ही आपको हनुमानगंगा व यमुना के संगम पर हनुमान-

खरसाली गाँव के एक पण्डे की पुत्री

यमुना के उद्गम के बहुत निकट

षट्टी नामक छोटा-सा गाँव दिखाई देगा। सुहावने व अनुकूल मौसम के कारण यहाँ की आबादी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। पूर्व की ओर कुछ दूरी पर आपको दैदीप्यमान हिम से सुशोभित बंदरपूँच पर्वत दिखाई देगा। इस पर्वत की ऊँचाई २०,७२० फुट बताई जाती है। कुशल पर्वतारोही इसके पूर्व की ओर भी प्रस्थान कर सकता है व एक बार नदियों के जलोत्सारण-क्षेत्र को पार करने पर भागीरथी के पात्र में पहुँच सकता है।

उत्तर की ओर दस मील तक प्रस्थान करने पर आप खरसाली नामक ग्राम में पहुँचेंगे। जमनोत्री के पंडे लोग यहीं पर निवास करते हैं। एक समय था जब कि यह स्थान हिमनदियों के शीत से व्याप्त था, पर आज वह अत्यन्त उपजाऊ क्षेत्र कहलाता है। इस ग्राम में आप लकड़ी के उत्कृष्ट शैली के मकान व मन्दिर विपुल मात्रा में पाएँगे। मन्दिरों की घण्टियाँ प्रातःकाल व सन्ध्या समय सुमधुर ध्वनि निनादित करती रहती हैं। ऐसे स्थान पर तारागणों से दैदीप्यमान पूर्णिमा की रात बहुत ही मंजुल, सुखद व आह्लादकारक प्रतीत होगी। सम्भव है कि ऐसे शान्त समय में आप अपने पीछे की नीरस दुनिया को सहसा भूलने लगें।

यात्रा के अंतिम चरण में निसर्ग सुन्दरी की शोभा वास्तव में अवर्णनीय है। इस पर्वतीय प्रदेश का प्रत्येक उतार या गड्ढा श्वेत, गुलाबी, बसन्ती व चित्र-विचित्र रंगों का सम्मिश्रण मात्र प्रतीत होगा। जमनोत्री के पास पहुँचते ही यदि सन्ध्या हो जाए तो आप सहसा पीछे की ओर मुड़कर देखिए। वहीं से आप अपने दक्षिण की ओर विद्यमान प्रदेश का अवलोकन कर सकेंगे। जहाँ अपराह्न में किंचित हरितवर्ण पर्वत नीलवर्ण क्षितिज की पार्श्व भूमि में अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे, वहाँ सन्ध्या समय में वे ही पर्वत कुछ-कुछ भयावह व भूरे रंग में परिणत होते हुए दिखाई देंगे। मेघों की सुन्दर सुनहली या नारंगी पतली कोर देखकर आपका हृदय सहसा कह उठेगा कि रात्रि मानो निसर्ग रमणी की प्रयोगशाला में एक अस्थिर अवस्था मात्र है।

अब आप देखेंगे कि हिमालय की दक्षिणवर्ती पहाड़ियों में विद्यमान द्रुतगति यमुना कब की बदल चुकी है। जमनोत्री के पास यमुना का प्रवाह क्रमशः हिम-नदियों की घाटियों को काटकर शिलाओं से झरता हुआ आपको दृष्टिगोचर होगा। नदी के पश्चिम किनारे पर बसा हुआ मन्दिर अपनी प्राचीनता की कुछ-कुछ अस्पष्ट साक्षी देता हुआ दिखाई देगा। मन्दिर को जाते समय लकड़ी का एक पुल पार करना पड़ता है। समीप ही एक गरम पानी का झरना भी है। यह पुल बिलकुल सँकरा व कमजोर है। पृथ्वी के गर्भ से गरम गन्धयुक्त जल बाहर निकल कर विशिष्ट कार्य के लिए तैयार किए गए कुण्ड में इकट्ठा होता है, जहाँ धार्मिक हिन्दू यात्री यमुना की पूजा करते हैं। इस पर्वतीय प्रदेश के गरम पानी के झरने में चावल व आलू उबाल कर धार्मिक हिन्दू उसे दक्षिण की समतल भूमि में लाते हैं व उसी को यमुना का पवित्र प्रतीक मानते हैं। वास्तव में यमुना का उद्गम कुछ तो इन झरनों से व कुछ पिघली हुई बर्फ से मानना चाहिए।

यमुना के उद्गम की ओर यात्रा करने से पर्वतों की विशालता व सौन्दर्य के प्रति हमारा आकर्षण जागृत हो उठता है। यमुना का प्रवाह अत्यन्त प्राचीन समय से पर्वतीय प्रदेश व सघन जंगल से व्याप्त समतल भूमि से प्रवाहित हो रहा है। इसी प्रवाह ने अपने जीवन-काल में कई साम्राज्यों का उत्थान-पतन भी देखा है। यमुना के विषय में एक बात का निर्देश करना आवश्यक प्रतीत होता है। उस पवित्र सरिता का मधुमय, मंजुल प्रवाह भारतीय जीवन में सदैव प्रसन्नता एवं उत्फुल्लता का संचार प्रागैतिहासिक काल से करता आ रहा है। सम्भव है कि भविष्य में भी भारतीयों के लिए वह आह्लाद और स्फूर्ति का स्रोत सिद्ध होता रहे।

अनुवादक—पां० ग० अड्यालकर

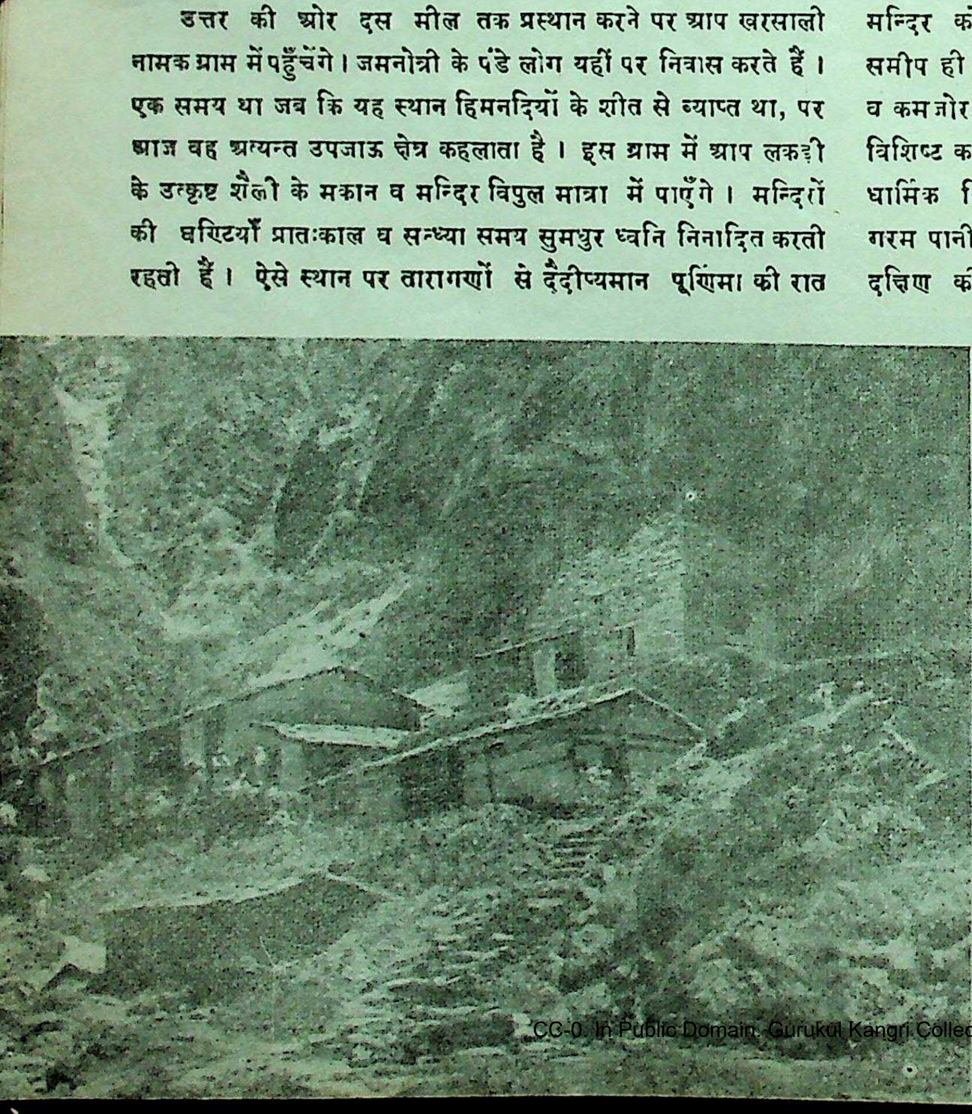

जमनोत्री का एक
प्राचीन मन्दिर

बौद्ध-युग की कुछ विचित्रताएँ

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

बौद्ध-साहित्य के पढ़ने से पता चलता है कि उस युग में भी विचित्रताओं का अन्त न था। पशु-जगत से अधिक मानव-जगत विचित्रताओं का भण्डार अपने आदिम युग से रहा है। अपनी प्रारम्भिक अवस्था में मानव कैसा भी रहा हो किन्तु ज्यों-ज्यों इसने अपनी उन्नति की इसकी विचित्रताएँ बढ़ती गईं। मानव ऊपर उठा तो ईश्वरत्व तक पहुँचा और नीचे उतरा तो शैतान के भी नाकों चने चुनवा दिए। मानव-मनोविज्ञान के पंडित लाखों साल सिर मार कर भी, दूसरे की तो बात ही अलग रही, अपने मन की गति भी समझ सकें तो बहुत बड़ी बात हो। हमें भाषा की ओर से दो शब्द मिले हैं—'क्यों' और 'कैसे'। इन दोनों शब्दों का मुँह बन्द आज तक नहीं किया जा सका—यही है हमारे ज्ञान-विज्ञान की सफलता का एक दयनीय रूप।

अब जातक-युग की कुछ विचित्रताओं की ओर ध्यान दीजिए। बौद्ध-युग को ही हम जातक-युग कहेंगे। बौद्ध-जातक-कथाओं के आधार पर ही हम यह लेख प्रस्तुत कर रहे हैं।

सुना जाता है कि कुछ ऐसी जंगली जातियाँ हैं जो नर-मांस भक्षण करती हैं किन्तु यदि कोई कहे कि एक शासक, राजा जो अपनी प्रजा का पालन न्याय और धर्म के द्वारा करता हो आदमखोर हो, नर-मांस भक्षण करता हो, कौन विश्वास करेगा। कोई विश्वास करे न करे, सत्य इसकी परवा नहीं करता। वह था, है और रहेगा। जातकों में एक जातक का नाम है महासुतसोम जातक (५३७)। वाराणसी नरेश बिना मांस के कौर नहीं उठाता था। उसे हर समय मांस खाने की रुचि जगी ही रहती थी रसोइया मांस लेकर बनाने की धुन में एक दिन था कि राज के कुत्ते मौका पाकर सारा मांस चट कर गए। रसोइया बाज़ार की ओर दौड़ा भागा कहीं मांस नहीं मिला। संयोग की बात है। राजा के भोजन का समय आ रहा था। रसोइए को एक उपाय सूझा। वह कच्चे श्मशान (जहाँ मुर्दे गाड़े जाते हैं) में गया और एक मुर्दा, जो हाल ही में गाड़ा गया था, उखाड़ कर उसके शरीर का मांस काट कर ले आया। मांस बनाया गया। राजा चटखारे मार कर खाने लगा। राजा ने इतना मज़ेदार मांस कभी खाया ही नहीं था। रसोइए से उसने पूछा। भय से रसोइए ने कहा कि—"वह मांस मनुष्य का था।" राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने रसोइए को कहा कि "रोज़ नर-मांस ही बनाओ।" रसोइए का दल चुपके-चुपके शहर में घूमता और मौका मिलते ही किसी न किसी को मार कर उसका मांस ले आता। अन्त में राजा को जनता ने खदेड़ दिया और अपने रसोइए के साथ ही जंगल की ओर वह भागा। एक दिन राजा ने रसोइया को नर मांस लाने कहा। जंगल में नर कहाँ जो नर-मांस प्राप्त हो। राजा बिगड़ा और रसोइए को ही मार कर खा गया। सारा किस्सा खत्म हो गया। क्या यह कम विचित्रता है कि एक शासक जो ज्ञान, धर्म और संस्कृति का रक्षक माना जाता है नर-भक्षी बन जाए। आश्चर्य तो यह है कि वह क्षत्रिय-वंश का था। राजा को धिक्कारता हुआ एक ब्राह्मण कहता है—

माणवो अभिरूपोसि, कुले जातोसि सोत्थिये।
न त्वं अरहसि तात अभक्खं भक्खयेतवे॥

तेरा वर्ण सुन्दर है। तू क्षत्रिय कुल-संभूत है। हे तात, तेरे लिये अभक्ष्य का ग्रहण करना सूचित नहीं।

अब एक दूसरे राजा का वर्णन सुनिए जिसने महज इसलिए अपने सात महीने के एकमात्र पुत्र को जल्लाद से कटवा दिया था कि महल की रानियाँ दिन-रात उसी राजकुमार के लाड़-प्यार में लगी रहती थीं। राजा ने इसे अपमान समझा। यह कथा चुल्लधम्मपाल जातक (३५८) के नाम से जातक-गाथाओं में आई है। यह गाथा भी वाराणसी के राजा महाप्रताप की है। एक दिन राजा महल में गया मगर रानियों ने उठ कर स्वागत नहीं किया क्योंकि वे शिशु-कुमार के साथ खेल रही थीं। राजा क्रोध से तिलमिलाता हुआ उलटे पैरों लौट गया और उसने राज्यासन पर बैठ कर जल्लाद को बुलवाया। महल में कोहराम मच गया, तूफान उठ गया। घातक को राजा ने आदेश दिया—"महल में जाकर बच्चे को ले आ।"

वधिक धड़धड़ाता हुआ महल में घुसा और रानी की पीठ पर एक मुक्का मार कर शिशु-कुमार को उठा लाया। जब राजा के सामने बच्चा लाया गया तो जल्लाद ने आज्ञा माँगी।

राजा बोला—"पहले इस बच्चे के दोनों हाथ काटो।"

हाथ, पैर और सिर कटवा कर बड़ी दुर्दशा से बच्चे की हत्या की गई—सभी रोते-बिलखते रहे मगर उस नर-राक्षस ने दया नहीं की। क्रोध और दया से क्या नाता। नर-भक्षी राजा और पुत्र की हत्या करने वाले राजा—दोनों में हम किस को कम या किस को ज्यादा मानें! हम केवल इतना ही कहते हैं कि यह विचित्रता है मानव-चरित्र की। कोई भी ऐसा यंत्र आज तक नहीं बना है जो मानव के मन की थाह ले सके।

क्या मरा चूहा पाकर, उस चूहे के सहारे, व्यापार करके करोड़पति बनने की कल्पना कोई कर सकता है? यदि किसी को यह सम्मति दी जाए तो वह सम्मति देने वाले को पागल करार दे देगा। यह शेखचिल्ली की बात है। जातक-युग में एक ऐसे चालाक व्यक्ति के अस्तित्व का पता चलता है, जिसने एक मरा हुआ चूहा पाया और उसी चूहे से करोड़ों का रोज़गार खड़ा कर लिया।

चुल्लसेट्ठि-जातक (४) में एक गाथा इस प्रकार है—एक व्यक्ति दरिद्र था। उसे रास्ते में मरा हुआ एक चूहा मिला। उसने चूहे को उठा लिया। एक दूकानदार ने चूहे के उपद्रव से बचने के लिए बिल्ली पाल रक्खी थी मरा चूहा उसी दूकानदार के हाथों में उसने एक काकणी (एक कर्षापण का आठवाँ भाग) में बेचा। उसने बिल्ली को खिलाने के लिए मरा चूहा खरीद लिया। यहीं से उस उद्योगी का रोजगार शुरू हुआ। उस काकणी से उसने गुड़ खरीदा। इसके बाद जो माली जंगल की ओर जाते उन्हें वह पानी पिलाता और गुड़ का एक टुकड़ा दे देता। माली जब लौटते तो बदले में उसे एक-एक अंजलि फूल देते। अब वह उद्योगी फूल बेच कर पैसे जमा करने लगा। मालियों की मित्रता का परिणाम यह हुआ कि राजा के बाग के सूखे-पत्ते और लकड़ियाँ उसे अनायास ही प्राप्त होने लगीं। वह बच्चों के खेलने की जगह पर जाता और उन्हें गुड़ देकर उनसे काम लेता। कुम्हार सूखे पत्ते और लकड़ियाँ खरीदने लगे, उसकी पूँजी बढ़ने लगी। अब उसने घसियारों से दोस्ती गाँठी। उन्हें वह पानी पिलाया करता और बदले में घास की पूनियाँ लेता। इस क्रम से वह आगे बढ़ता गया और दो लाख की रकम के साथ घर लौटा। एक मरे चूहे से व्यापार आरम्भ करके लखपति सेठ बन गया। अन्त में उसने नगर-सेठ का पद भी राजा की ओर से पाया। अन्त में उस उद्योगी ने यह उपदेश दिया—

अप्पकेनापि मेधावी पाभतेन विचक्खणो।
समुट्ठापेति अत्तानं अणुं अग्गिं व सन्धमं॥

एक चतुर व्यक्ति के पास यदि थोड़ी-सी भी आग हो तो वह उसे फूँक मार कर बढ़ा देता है उसी तरह (उद्योगी पुरुष) थोड़ी-सी पूँजी से भी अपनी उन्नति कर लेता है।

कहाँ मरा चूहा और कहाँ नगर-सेठ का गौरवपूर्ण पद! चतुर आदमी क्या कर सकता है, यही सोचना है।

यदि हम कहें कि ५०० अशर्फियों में एक कौआ बिकता है तो आप विश्वास करेंगे? कौआ एक ऐसा पंछी होता है जिसमें न तो रूप और न गुण; उसका स्वभाव भी महा क्रूर होता है तथा खान-पान तो इतना गंदा होता है कि कोई उसे स्पर्श करना पसन्द नहीं करेगा। आवाज भी कर्ण-कटु होती है—मगर भारत के व्यापारियों ने ऐसे वाहियात पंछी को भी कभी भारत के बाहर ५००—अशर्फियों में बेचा था और यह व्यापार चल निकला था। "बाबेलोन" एक इतिहास प्रसिद्ध स्थान रहा है। यह मिस्र में था और यहाँ की सभ्यता विख्यात थी जो अब नहीं रही। पाली में इसे "बावेरू" कहते हैं और जातक-कथाओं में एक बावेरूजातक (३३९) भी है। भारत का व्यापार मिस्र में खूब होता था। यह ई० पू० ४८० के कुछ पहले तक ही चला फिर बन्द हो गया। यूनान की भूमि भारत के मालों से पटी रहती थी। कुछ बनिये जहाज पर बावेरू गए। जहाज पर कौए भी थे जो पिछली रात को बोल कर समय का ज्ञान कराते थे, दिशा का ज्ञान भी इन्हें आकाश में उड़ाकर प्राप्त किया जाता था। यूनानियों ने काक-दर्शन नहीं किया था। फिर क्या था भारत के व्यापारियों ने कौओं के रूप, गुण की प्रशंसा करके बावेरू के धनिकों के हाथों में कौआ बेचना शुरू कर दिया और फी कौआ ५०० कर्षापण के हिसाब से मूल्य वसूल करना भी शुरू कर दिया। सोने के पिंजरों में अभागे कौए यूनानियों के घरों की शोभा बढ़ाने लगे। भारत के दूसरे व्यापारी भी इस व्यापार से ललचाये और 'मोर' लेकर वे बावेरू पहुँचे। प्रत्येक मोर १,००० कर्षापण में बिकने लगा। कौआ फिर कौआ बन गया—उसका बाजार खत्म हो गया। मोर के आगे कौआ की एक न चली।

यदा च सरसम्पन्नो मोरो बावेरुमागमा।
अथ लाभो च सक्कारो वायसस्स अहायथा॥

कौवे का लाभ और सत्कार उसी दिन घट गया जब (सुन्दर और) स्वर वाला मोर वहाँ पहुँचा।

भारत के व्यापारी कितने बढ़े-चढ़े थे यह बतलाना न होगा जिन्होंने यूनानियों के हाथों में कौआ देकर उनसे सोने के सिक्के ऐंठ लिये। क्या यह कम विचित्रता है।

बौद्ध युग में वैद्य भी एक से एक झक्खड़ होते थे। एक वैद्य की कहानी बड़ी ही शानदार है। वह साँप के काटने पर जहर उतारने का इलाज करता था। वह गाँव-गाँव घूमा पर कहीं कुछ न मिला तो उसे एक उपाय सूझा गाँव के बाहर लड़के खेल रहे थे और सामने ही एक विशाल वृक्ष भी था। वैद्य ने देख लिया कि वृक्ष के कोटर में एक नाग सो रहा है। वैद्य चाहता था कि किसी को यह नाग सूँघ ले तो मैं उसकी चिकित्सा करूँ। रोगी को आराम हो जाएगा ही फिर यश और धन मिलेगा। उसने बच्चों को यह कह कर उकसाया कि उस कोटर में "मैना का बच्चा है।" बच्चे प्रसन्न हो गए। एक बच्चा पेड़ पर चढ़ा। और उस कोटर के निकट पहुँचा जिसमें काला नाग था। बच्चा भी एक ही काइयाँ निकला। उसने नाग की गर्दन पकड़ी और एक झटके में उसे वैद्य जी पर फेंक दिया। साँप झल्ला उठा था। गिरते ही उसने वैद्य जी को अच्छी तरह भँभोड़ लिया।

यह कथा सालिय जातक (३६७) की है। मानव भी कितना विचित्र प्राणी होता है। रोग पैदा करा कर इलाज करने की प्रवृत्ति राक्षसता की पराकाष्ठा है।

इसके बाद हम एक अत्यन्त विचित्र कथा यहाँ उपस्थित करेंगे। क्या आप विश्वास करेंगे कि बुद्ध देव के रहते ही भिक्खु अपना सिर कटवाते थे और सिर काटने के लिए एक वधिक इस विहार से उस विहार में घूमता-फिरता था। भिक्खु खुशी-खुशी उस वधिक के साथ जाकर अपना सिर कटवा लेते थे। भिक्खुओं के पास कुछ भी नहीं होता था जो इस भयानक उपकार के लिए वधिक को देते। वधिक भिक्खुओं के चीवर और भिक्षापात्र लेकर ही उनकी 'सेवा' किया करता था। एक बार ऐसा हुआ कि बुद्ध देव छः महीनों के लिए एकान्त में चले गए। वे जब लौटे तो देखा कि 'विहार' खाली हो गया। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। पूछने पर पता चला कि भिक्खु अपनी खुशी से अपना सिर कटवा लेते हैं, नतीजा यह हुआ कि विहार वीरान हो गया।

(शेष पृष्ठ ३२ पर)

बुद्ध-दर्शन

गुरदयाल मल्लिक

सवेरा हो चुका था। मगर शहर के लोग अब तक भी घोर नींद में थे। एक प्रभु का प्यारा रास्ते पर गाता हुआ जा रहा था :

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ तू सोवत है,
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है।
टुक अखियाँ नींद से खोल जरा और अपने रब से ध्यान लगा,
यह प्रीत की रीत नहीं तेरी, रब जागत है तू सोवत है।

उसके गीत की हृदय-स्पर्शी आवाज़ एक सोने वाले के कानों पर पड़ी। उसने फौरन अपने मुँह से चादर हटाई और बिस्तरे से बाहर निकल पड़ा। फिर अपने कमरे का दरवाजा खोल कर वह बरामदे में आ खड़ा हुआ और बड़े ध्यान से गीत सुनने लगा। अगरचे गाने वाला तो उसकी नज़र से कब का बाहर हो चुका था, तब भी कुछ देर तक वह एक बुत की तरह खड़ा रहा। राम जाने वह कौन-से विचारों में उस वक्त मग्न था।

इतने में दिन चढ़ आया। वह शहरी अपने कमरे में दाखिल हुआ और गुनगुनाने लगा : 'काम करो, शुभ काम करो, योहि है राम का सच्चा नाम'। बाहर सूरज की किरणों ने सारे शहर को सुनहला बना दिया था और लोगों के दिलों में जैसे नया प्राण भर दिया था। हर एक जन अपना काम बड़ी तन्मयता से करने लगा।

उसी वक्त दूर से एक भिक्षुओं की टोली दिखाई दी। उन्होंने वैराग्यवल्क पहना हुआ था और वह बड़ी उमंग और शान्ति से एक मंत्र उच्चारण कर रहे थे :

बुद्धम् शरणम् गच्छामि !
धम्मम् शरणम् गच्छामि !
संघम् शरणम् गच्छामि !

यह मंत्र सुनते ही जो लोग वहाँ काम कर रहे थे, उन्होंने अपना काम बन्द कर दिया और हाथ जोड़ कर चुपचाप खड़े रहे। ज्योंही भिक्षुगण नजदीक आए उनके सिर आदर भाव से खुद-ब-खुद झुक गए। मगर जल्दी सब की नज़र सिर्फ एक विशेष भिक्षु पर आकर टिक गई। उसकी पेशानी से कितनी शान्ति टपक रही थी, उसकी आँखों में कितनी चमक-दमक थी और उसके जिस्म से चंदन की कितनी खुशबू निकल रही थी !

तब "भिक्षा दो ! भिक्षा दो !" ऐसा कह कर उन भिक्षुओं ने अपने-अपने कमण्डल शहरियों के सामने कर दिए, और हर एक व्यक्ति फौरन अपने घर से कोई न कोई वस्तु दान देने के लिए ले आया। भिक्षुओं ने दान एक कृतज्ञता से स्वीकार किया। मगर मालूम नहीं क्यों, उनके गुरुजी, जो कोई और नहीं थे बल्कि स्वयं बुद्ध भगवान थे, के उज्ज्वल मुख पर कुछ उदासी छा गई।

धीरे-धीरे भिक्षुओं की यह टोली शहर के किनारे पर आ पहुँची। वहाँ एक शहरी बुद्ध भगवान के चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने बड़े वात्सल्य से उसे अपने कमल जैसे कोमल हाथों से उठाया और फिर पूछा, "वत्स, क्या बात है ?"

उस शहरी ने जवाब दिया, "मैं आपके लिए एक दान लाया हूँ। उसे आप कृपया स्वीकार करें।"

यह सुन कर भिक्षुओं को कुछ आश्चर्य-जैसा हुआ, क्योंकि उसके हाथों में कोई भी वस्तु नहीं थी।

मगर बुद्ध भगवान ने कहा—"जो कोई भी मुझे कुछ भी श्रद्धा से देता है, उसे मैं बड़ी खुशी से स्वीकार करता हूँ।"

तब शहरी ने अपना सिर फिर बुद्ध के चरणों में रख दिया और बड़ी ही आजिज़ी से प्रार्थना की—"भगवान, लीजिये मेरी सारी खुशी, मेरी सब ख्वाहिशें। वह मुझे बड़ी प्रिय हैं और सच्ची पूजा तो अपनी सबसे प्रिय वस्तुओं को समर्पण करने से होती है।"

बुद्ध ने प्रत्युत्तर में कहा—"पुत्र, तेरा कल्याण हो !"

तब भिक्षुओं ने अपना प्रिय मंत्र उच्चारण किया :

बुद्धम् शरणम् गच्छामि !
धम्मम शरणम् गच्छामि !
संघम् शरणम् गच्छामि !

यह शहरी वही व्यक्ति था, जिसने सवेरे अपने कमरे से बाहर निकल कर 'उठ जाग मुसाफिर' का गीत ध्यान-मग्न होकर सुना था। जब वह अपनी खुशी का दान दे चुका तब स्वयं बुद्ध ने उसे आशीर्वाद दिया। उन्होंने उसके सिर पर अपना हाथ रखा जिससे उसके सारे शरीर में एक बिजली-सी दौड़ गई। फिर वह आनन्द से मस्त हो कर गाने लगा :

मैंने एक अजब भिखारी देखा !
न वह माँगे कपड़ा खाना, नहीं माँगे माल खज़ाना।
वह तो माँगे अहंकार ममता, जिन के लिए मनुष्य है दिवाना।
जिस ने अपनी खुशी की दान, वो ही मनुष्य है सच्चा स्याना।

२

एक बार सभा में बुद्ध भगवान और उनके शिष्य बैठे हुए थे। मगर आज बुद्ध भगवान बिल्कुल शान्त थे। इससे शिष्यगण जरा घबरा गए और वह एक दूसरे से पूछने लगे : "आज क्या भगवान की तबीयत ठीक नहीं है ?" कुछ अन्य शिष्यों ने चिन्ता से कहा : "आज क्या हम से कोई बड़ा अपराध हो गया है ?"

कुछ देर के बाद शिष्य चुपचाप बैठे न रह सके। उनमें से एक शिष्य ने खड़े होकर प्रणाम करने के बाद, भगवान बुद्ध से पूछा, "आज भगवन्, आप इतने गुपचुप क्यों हैं ?"

किन्तु, भगवान ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उसी समय बाहर से कोई बड़े जोर से बोल उठा—"भगवन्, मुझे आज सभा में बैठने की आज्ञा क्यों नहीं दी गई ?"

मगर भगवान आँखें बन्द कर ध्यान में मग्न हो गए।

एक बार पुनः बाहर से वही व्यक्ति चिल्ला उठा। इस पर एक शिष्य को उस पर दया आई और उसने भगवान से प्रार्थना की कि उस व्यक्ति को जो बाहर खड़ा हुआ है, उसे अन्दर आने की अनुमति प्राप्त हो।

"नहीं !" भगवान ने जवाब में कहा, "क्योंकि वह एक अछूत है।"

"अछूत ? भगवन् !" शिष्य ने आश्चर्य से कहा।

"हाँ।"

"मगर, भगवन् ! आपके धर्म में तो जात-पाँत का किसी किस्म का भेद-भाव है ही नहीं तो फिर वह अछूत कैसे हुआ ?"

बुद्ध ने कहा, "उसे आज क्रोध आया हुआ है। और जो व्यक्ति क्रोध करता है, वह जीवन की एकता को भंग करता है और जो कोई किसी भी कारण से ऐसा करता है, वह एक अछूत है। इसलिए उसे कुछ वक्त के लिए पृथक और अकेले खड़े रहना चाहिए, जिससे पश्चाताप की आग में जल कर वह एक बार पुनः याद कर ले कि अहिंसा ही सब से बड़ा धर्म है और सब से बड़ा कर्तव्य है।

तब शिष्यों ने उठकर बुद्ध को प्रणाम किया और सभा में फिर से पूर्ण शान्ति व्याप्त हो गई।

●

बौद्ध-युग की कुछ विचित्रताएँ—(पृष्ठ ३० का शेषांश)

शरीर से घृणा हो जाने के कारण और शरीर त्याग करके मोक्ष प्राप्त करने के "सद्-विचार" से ही भिक्खुओं ने यह रास्ता अपनाया था। मोक्ष के लिए वे इतना आतुर हो उठे थे कि एक क्षण भी जीना दूभर हो गया था या अपनी स्थिति से ऊब उठे थे, कुछ भी हो पर होता ऐसा ही था। यह गाथा पाराजिका (३) नाम से प्रसिद्ध है। अब एक विचित्रता की कहानी और सुनिए। बौद्ध-युग में महाजन भी थे और जब महाजन थे तो कर्जदार भी थे। शेक्सपीयर के शाइलॉक या आजकल के मुगलों से कम दबंग महाजन जातक कथाओं में नजर नहीं आते। वे कर्ज देते थे और गिरवी भी रखा करते थे। ऋग्वेद-युग ("ऋणं सन्नयामसि" ८।४७।१७) में भी लेन-देन की चर्चा है किन्तु बौद्ध-युग में महाजनी प्रथा अपनी हीनता की अन्तिम सीमा को भी पार कर गई थी। तरह-तरह के वाणिज्य-व्यवसायों में कर्ज देना और सूद लेना भी एक व्यवसाय बन गया था, जिसका समर्थन समाज और राज्य ने किया था—वह न तो समाज विरोधी समझा जाता था और न कानून विरोधी। समाज और राज्य से आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के बाद महाजनों ने अपना ऐसा रूप प्रकट किया था कि शैतान के भी छक्के छूट गए थे।

प्रायः अँगूठी रख कर कर्ज लिया जाता था (जातक १।१२१) या 'हैण्डनोट' भी लिख कर लोग कर्ज लेते थे ('ऋण'-पाणिनि और जातक १।२३०)।

एक व्यक्ति दिवालिया था। महाजन ने उसे पकड़ा तो उसने महाजन का धन भी हड़प जाना चाहा। नदी का तट था। वह छलाँग मार कर कूद पड़ा और महाजन के सामने ही डूब मरा—इस तरह उसने अपने दिवालियापन पर चार चाँद लगा दिए (जातक ४।२५६)। स्त्री अथवा पुत्र को गिरवी में रख कर भी कर्ज देते थे (जातक ६।५२१ और थेरी गाथा ४४४) और सूद में उस गिरवी में रक्खी हुई स्त्री या लड़के से बेगार करवाते थे। हद हो गई।

स्त्री और पुत्र को गिरवी रख कर कर्ज लेना—कितनी भयानक बात है और इससे भी भयानक बात है कर्ज देना किसी के स्त्री-पुत्र को गुलाम बना कर।

जहाँ मानव होगा वहीं विचित्रता भी होगी। अब एक वज्रवादी की कथा सुनिए। कटु वचन बोलने वाले सर्वत्र होते हैं किन्तु कुछ वज्रवादी ऐसे होते हैं कि उन्हें इतिहास में भी स्थान मिल जाता है। यह कथा महापरिनिव्वान सुत्त २७० की है। बुद्धदेव का निर्वाण हो चुका था। महाकाश्यप ५०० भिक्खुओं के साथ पावा और कुसीनारा के बीच में कहीं पर थे—वे भिक्षु-संघ के साथ थे। उनके साथ एक वृद्ध भिक्खु था सुभद्र जो भयानक वज्रवादी था। बुद्धदेव के निर्वाण का जब सम्वाद महाकाश्यप के निकट पहुँचा तो सभी शोकमग्न हो गए। सुभद्र को यह बात रुची नहीं और वह बोल उठा—'अलं आवुसो, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। सुमुत्ता मयं तेन महासमणेन उपद्दुता च होम इदं वो कप्पति, इदं वो न कप्पती, ति'। इदानि पन मयं यं इच्छिस्साम तं करिस्साम। यं त इच्छिस्साम न तं करिस्साम, ति'। शोक मत करो हम मुक्त हो गए। उस महाश्रमण ने हमें पीड़ित कर रक्खा था, यह करो, यह मत करो। अब हम जो चाहेंगे करेंगे और जो नहीं चाहेंगे नहीं करेंगे।

यह है वज्रवादिता का एक भयानक नमूना। इतिहास में ऐसी कटु-उक्ति खोजने से भी नहीं मिलती।

निश्चय ही वह भिक्खु सुभद्र अपने इस दुर्गुण के चलते इतिहास के महापुरुषों के साथ ही अमर हो गया।

ऐसी अमरता से भगवान रक्षा करें।

●

"लोक यात्रार्थी नित्यं उद्यतदण्ड : स्यात्"

कौटिल्य अर्थशास्त्र अधिकरण १, अध्याय ४

सभी लोक कार्य ठीक तौर से चलते रहें, इस के लिए आवश्यक है कि सरकार सख्ती से कानून की रक्षा करे।

तीन दृश्य

कमला चौधरी

लाला पन्नालाल नगर के विख्यात धनाढ्य व्यक्तियों में से थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के आन्दोलन के ज़माने में वे मिलिट्री के ठेकेदार थे और ब्रिटिश हकूमत के ख़ैरख़्वाह। इस प्रकार के रईस लोग उन दिनों जनता की दृष्टि में उपहास के पात्र बन गए थे। रायबहादुरों, ख़ानबहादुरों एवं ब्रिटिश नौकरशाही से सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों को देशद्रोही, जी हजूर आदि के विशेषणों से विभूषित किया जाता था। किन्तु लाला पन्नालाल इस परिस्थिति में अपवाद स्वरूप थे। अपने व्यापार की वृद्धि के निमित्त वे एक ओर सरकारी कर्मचारियों को बड़ी-बड़ी डालियाँ देते, सरकारी कार्यों के निमित्त कर्मचारियों को धन राशि देते, दूसरी ओर अफसरों की दृष्टि से बच कर देशव्यापी स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भी जी खोल कर धन देते थे। अतः अपकीर्ति के स्थान पर उन्हें यथेष्ट सुकीर्ति मिली। नगर में उनका विशेष मान था। उनका अतीत उन दिनों लोकोक्ति बन गया था। लोग कहते थे उन्हें लक्ष्मी और कीर्ति दोनों ही सिद्ध हैं।

लाला पन्नालाल कुछ काल पूर्व अत्यन्त साधारण स्थिति के व्यक्ति थे, एक ज़मीदार के कारिन्दे थे। ज़मीदार उनके सदाचार शालीनता एवं ईमानदारी से बहुत प्रसन्न थे। अतः लाला जी की सहायता के हेतु उन्होंने एक अंग्रेज़ अफ़सर से सिफ़ारिश करके पन्नालाल जी को मिलिट्री का एक छोटा सा ठेका दिला दिया और स्वयं ही अपने पास से चार हज़ार रुपये उन्हें काम करने को दिए।

पन्नालाल जी ने अत्यन्त परिश्रम से काम किया और लाभ का सारा धन लाकर ज़मीदार के चरणों में रख कर कहा—"यह लाभ आप ही के धन से हुआ है। अतः सब आप ही का है। मैं तो आप का सेवक हूँ।"

इस आचरण से ज़मीदार और भी अधिक प्रभावित हुए और लाला जी के आग्रह करने पर अपना मूल धन लेकर उन्होंने लाला पन्नालाल को प्रोत्साहित करके भविष्य में ठेकेदारी ही करने की सलाह दी।

लक्ष्मी की उन पर कुछ ऐसी अनुकम्पा हुई कि कुछ ही समय में वह सम्पत्तिशाली बन गए और नगर के जन समाज में चर्चा का विषय भी। लोग कहते लाला पन्नालाल यदि मिट्टी भी छू देते हैं तो वह सोना बन जाती है। साथ ही एक हाथ से कमाते हैं, दूसरे हाथ से दान करते हैं पात्र-अपात्र कोई भी उनके द्वार से खाली नहीं लौटता।

जीवन में तीन बार मुझे भी उनसे साक्षात्कार करने का अवसर मिला। सन् १९३० का आन्दोलन जोरों पर था, उन्हीं दिनों मैं गुप्त रूप से लाला जी के समीप चन्दा लेने गई। वे मिलिट्री क ठेकेदार थे। सी० आई० डी० को यदि पता चल जाता तो उन पर विपत्ति आ सकती थी। अतः खादी प्रचार के बहाने मैं हाथ में कुछ खादी की साड़ियाँ लेकर उनके घर गई और पूर्व परिचित की भाँति सीधे घर के आँगन में चली गई।

संध्या का समय था, लाला जी एक बाँस की चारपाई पर बैठ भोजन कर रहे थे। समीप ही कई चारपाइयाँ और पढ़े थीं जिन पर घर की स्त्रियाँ एवं बच्चे बैठे थे। उन लोगों से मिलने का मेरा यह प्रथम अवसर था फिर भी मेरे हाथ में खादी की साड़ियाँ देख कर किसी को यह समझने में देर नहीं लगी कि मैं कौन हूँ।

लाला जो तुरन्त ही उठकर हाथ जोड़ कर खड़े हो गए—"आइए बहन जी, बैठिए, हमारे धन्य भाग।"

मेरे मन में अत्यन्त ही संकोच उत्पन्न हुआ। हाथ जोड़ कर नमस्कार का उत्तर देते हुए मैंने कहा—"मैं बहुत ही बेमौके उपस्थित हुई, क्षमा करें। आप भोजन कर लें फिर बात होगी। स्त्रियों की ओर संकेत करते हुए मैंने कहा जब तक मैं इन लोगों को साड़ियाँ दिखाती हूँ। हम लोग आजकल खादी प्रचार का सप्ताह मनाह रहे हैं। इसलिए घर-घर खादी बेचने जाते हैं।"

लाला जी उसी प्रकार खड़े ही खड़े बोले—"आप बहुत ही ठीक समय पर पधारीं वरना मुझे यह सौभाग्य कैसे प्राप्त होता, अब तो सुदामा के तन्दुल ग्रहण ही करने पड़ेंगे। और अपनी पत्नी से कहने लगे जल्दी से एक थाली लगा लाओ।

मैंने बहुत अनुनय-विनय करके खाना न खाने के लिए क्षमा माँगी, किन्तु वे उसी प्रकार खड़े-खड़े बराबर आग्रह करते रहे फिर थाली ला कर उनकी पत्नी ने भी मनुहार का अन्त कर दिया और विवश होकर मुझे भोजन करने बैठना पड़ा। तब कहीं लाला जी भोजन करने बैठे और जेब से एक रुपया निकाल कर नौकर को देते हुए बोले—जल्दी से एक रुपये की गरम-गरम इमरती तो ले आ।

मैंने इमरती मँगाने के लिए भी बहुत ही मना किया किन्तु वे माने नहीं। उन दोनों पति-पत्नी ने अत्यन्त आदर-सत्कार से मुझे भोजन कराया।

भोजन करते हुए मेरे मन में विचार आया इतने धनाढ्य व्यक्ति हैं, किन्तु रहन-सहन में कितनी सादगी है। और घर में चारों ओर दृष्टि डाल कर मैंने अनुभव किया कि घर में कोई भी वस्तु ऐसी नहीं दिखाई देती जिससे धन-वैभव का आभास मिल सके। एक साधारण गृहस्थ के घर में जिस प्रकार की वस्तुएँ होती हैं वही हैं। मन में किंचित हँसी भी आई कि कदाचित कोई छोटी मेज भी नहीं है, क्योंकि जिस चारपाई पर मैं बैठी थी उसके समीप एक लकड़ी की कुर्सी खींच कर उसी पर मेरी थाली रख दी गई थी। किन्तु उनका आदर-सत्कार, नम्रता देख कर मैं स्तम्भित रह गई था। इस सादगी के प्रति मन में आदर का भाव ही उत्पन्न हुआ।

भोजन के पश्चात मैंने धीरे से अपने आने का तात्पर्य लाला जी से कहा। तुरन्त ही वे उसी प्रकार हाथ जोड़ कर कहने लगे, "जो आज्ञा, हाजिर हूँ, मैं इस योग्य कहाँ जो कुछ देश सेवा कर सकूँ। जिस प्रकार व्यापार कर रहा हूँ आप लोगों से छिपा थोड़े ही है हम लोग तो आज़ादी से किसी से बात भी नहीं कर सकते। हर समय भय लगा रहता है। कमाई का पैसा अच्छे कार्य में लग जाए इसमें भलाई ही है। आप को देर तक नहीं रोकूँगा, हुक्म कीजिए।"

मैंने नम्रतापूर्वक कहा, आप को संख्या बताने की आवश्यकता नहीं है। मुझे मालूम है आप हमारी सहायता करते ही रहते हैं। इस समय सुविधानुसार जो कुछ दे सकें दे दीजिए। हमारी आवश्यकता तो बहुत बड़ी है। ज़रूरत होगी तो फिर आकर कष्ट देंगे।

स्वभावानुसार लाला जी ने फिर हाथ जोड़ लिए—"कष्ट काहे का, यह तो सौभाग्य की बात है। यथाशक्ति सेवा करने से पीछे नहीं हटूँगा केवल इतनी प्रार्थना है कि किसी को कानों-कान खबर न होने पाए वरना सब कारोबार चौपट हो जाएगा।"

मैंने कहा, आप निश्चिन्त रहें। जब से कांग्रेस को सरकार ने ग़ैर-कानूनी करार दिया है हम लोग इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि हमारी सहायता करने वालों पर किसी प्रकार आँच न आने पाए।

लाला जी भीतर गए और कुछ ही क्षणों में लौट कर मेरे हाथ में एक हज़ार के नोटों की गड्डी थमा दी। मैंने धन्यवाद दिया तो वे फिर उसी प्रकार हाथ जोड़ कर कहने लगे—"धन्यवाद किस बात का हम लोगों का भी तो कुछ कर्त्तव्य है। हम कर ही क्या सकते हैं। चोरों की भाँति डरते हैं। आज़ादी से पैसा भी नहीं दे सकते हैं।"

मैंने अनुभव किया जैसे यह शब्द लाला जी की अन्तरात्मा से निकले हों, बनावट या दिखावा लेशमात्र नहीं था।

मैंने कहा कुछ खादी भी लीजिए। आप तो खादी पहनेंगे नहीं क्योंकि हकूमत के कर्मचारी खादी से भी बिदकते हैं किन्तु घर में और लोग तो पहन सकते हैं।

लाला जी ने प्रसन्नता से वे सब खादियाँ ले लीं और गान्धी जी खादी चर्खे पर इतना जोर क्यों देते हैं इस विषय पर बहुत दिलचस्पी से कुछ देर बातें करते रहे। उन्होंने अपनी ओर से सौ चर्खे बनवा कर निर्धन स्त्रियों के लिए देने का वचन भी दिया।

चलते समय एक बार फिर सी० आई० डी० का स्मरण कराया। कहने लगे पास-पड़ोस के लोगों को भी पैसे की बात मालूम न हो।

मैंने दृढ़ता से उन्हें विश्वास दिलाया, किसी को मालूम नहीं होगा। यह धन गुप्तदान में लिखा जाएगा। दोनों पति-पत्नी मुझे द्वार तक पहुँचा गए। सड़क तक आने का शायद उन्हें साहस नहीं हुआ।

लाला जी की उदारता एवं देशभक्ति की भावना से मैं अत्यन्त ही प्रभावित हुई और रास्ते भर अन्य चन्दा देने वाले व्यक्तियों से लाला जी की तुलना करती रही। न खुशामद न मनुहार न ख्याति की इच्छा, विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर हजार रुपये की गड्डी पकड़ा दी, जैसे रक्खी हुई अमानत लौटा रहे हैं, बड़े ही उदार एवं दानी व्यक्ति हैं।

इसके उपरान्त फिर कई वर्ष तक लाला जी के दर्शनों का अवसर प्राप्त नहीं हुआ किन्तु धन समृद्धि की चर्चा यदा-कदा सुनने को मिल जाती थी। शहर में उन्होंने अब बहुत बड़ी जायदाद बना ली है। सैकड़ों की संख्या में दूकानें, मकान कोठी बंगले हैं और पन्नालाल नगर के नाम से एक अलग ही कालोनी बसा ली है। ठेकेदारी का काम अब छोड़ दिया है, लेन-देन करते हैं। हजारों रुपये की मासिक आय है।

दुबारा फिर इसी प्रकार के एक सामाजिक कार्य के लिए चन्दा एकत्रित करना पड़ा। सेठ पन्नालाल जी के यहाँ जाते समय पुरानी स्मृति सजीव हो उठी और मैं बहुत प्रसन्न मन से कई अन्य साथियों के साथ गई। उस पुराने मकान के स्थान पर अब आलीशान कोठी थी। जिसका विशाल कम्पाउन्ड पार करके हम लोग सुन्दर मुज़ैक के फ़र्श वाले बरान्डे में पहुँचे। देखा बढ़िया टीक के गद्देदार पलंग पर कोई स्थूल शरीर के व्यक्ति मसनद के सहारे आधे लेटे से बैठे हैं। पेट इतना बड़ा था कि कदाचित बैठने में उन्हें कष्ट होता होगा। मैं चकित सी देखती ही रही। उन्हें पहिचान नहीं सकी। तभी एक साथी ने धीरे से कहा, यही हैं सेठ जी।

हम लोगों ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया, किन्तु सेठ जी ने जैसे देखा ही न हो। न नमस्ते का उत्तर ही दिया न किसी से बैठने ही को कहा, न हिले न डुले, न मुख पर कोई भाव ही आता जाता प्रतीत हुआ।

हम लोग स्वयं ही अप्रतिभ से, जो मूढ़े पड़े थे उन पर चुपचाप बैठ गए। यह जान कर भी कि यही सेठ पन्नालाल हैं, अतीत का स्मरण करके मन को जैसे विश्वास नहीं हुआ। जैसे वे कोई दूसरे ही पन्नालाल थे। नाम में सेठ लग जाने से अब एक ही पन शेष रह गया हो। अपमान के कारण मैं जैसे भीतर ही भीतर घुटी जा रही थी। सम्भव है सभी का यह हाल हो। मैं सोच रही थी ख़ामोशी से उठ कर चल दिया जाए, या इनसे कुछ कहा जाए। तभी सेठ जी का मौन टूटा, उपेक्षा के स्वर में बोले—"आप लोग चन्दा लेने आए हैं!"

सेठ जी की अनुमान करने की क्षमता अद्वितीय थी। मैं सोचने लगी—कदाचित इनके समीप केवल चन्दा माँगने वाले ही आते हैं इसी कारण चन्दा लेने वालों के प्रति यह इतने अशिष्ट हो गए हैं। अतः सेठ जी से वार्तालाप करने की मेरी इच्छा नहीं हुई। मुझे मौन देख कर एक साथी ने उठ कर छपी हुई अपील का एक कागज़ सेठ जी की ओर बढ़ाया।

सेठ जी ने मुख दूसरी ओर करके पढ़ने या कुछ सुनने के प्रति उपेक्षा प्रकट करते हुए तकिए के नीचे से पाँच रुपये का एक नोट निकाल कर साथी की ओर बढ़ा दिया।

सिटपिटा कर साथी ने उत्तर दिया—सेठ जी, आप समझे नहीं हम लोग किस कार्य के लिए चन्दा कर रहे हैं। काम बहुत बड़ा है। इस पाँच से काम नहीं चलेगा। इस समय आप कुछ अस्वस्थ हैं। हम लोग फिर कभी आ जाएँगे। नोट रहने दीजिए।

सेठ जी उसी प्रकार लेटे-लेटे तनिक भी उत्तेजित हुए बिना एक एक शब्द पर रुक-रुक कर बोले—एक दो थोड़े ही आते हैं चन्दा तो नित्य का धन्धा हो गया है।

नम्रता से साथी ने कहा—दानी ही के समीप लोग जाते हैं । हम लोग गोशाला के लिए माँगने नहीं आए हैं । शहर के अन्य रईसों ने जो रकमें दी हैं वह देख लीजिए और तुरन्त ही रसीद बही सेठ जी के सम्मुख पेश कर दी ।

लेकिन सेठ जी ने गर्दन किंचित घुमा कर उसी लहजे में उत्तर दिया—

चन्दा तो चन्दा है चाहे किसी के लिए हो, दान कहाँ अब तो टैक्स हो गया है ।

हम लोग चुपचाप अपमान का घूँट पीकर लौट आए । रास्ते में मैंने साथियों को पुरानी बात सुनाई तो उन लोगों ने बताया वह दिन गए अब तो सेठ जी महा कंजूस हो गए हैं । वह उदारता जाने कहाँ लुप्त हो गई । यद्यपि आय अब जब से अठगुनी होगी । बस इतना अन्तर अवश्य हुआ है कि जब परिश्रम से धन आता था अब धन से धन आता है ।

इसके बाद सामाजिक राजनीतिक कितने ही कार्यों के लिए योजनाएँ बनीं । बड़े-बड़े चन्दे हुए किन्तु मैं कभी सेठ पन्नालाल के समीप नहीं गई । और उनकी स्मृति भी जैसे लुप्त हो गई थी । वर्षों से उनकी कुछ चर्चा भी नहीं सुनी थी । अचानक एक बार नगर में कालेज भवन के लिए रुपया एकत्रित करते समय हम लोग चन्दा लेते हुए पन्नालाल नगर की ओर से निकले तो एक साथी कहने लगे, चलिए यहाँ से भी ले लें ।

मैंने तुरन्त ही इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा, "वहाँ जाना व्यर्थ है । एक बार हम लोग गए थे तो उन्होंने नमस्ते का उत्तर देना भी आवश्यक नहीं समझा । अपना अपमान कराने कौन जाए !"

वे साथी सेठ जी के रिश्तेदार थे और उनकी वर्तमान अवस्था से पूर्णतः परिचित थे । वे कहने लगे, "नहीं, जब हम लोगों ने घर-घर जाने का निश्चय किया है तो यहाँ भी चलिए । सेठ जी बहुत दिनों से बीमार हैं और आजकल तो कोई भी अच्छे काम के लिए जाता है उसे पच्चीस रुपया दे देते हैं सो वही आपको भी देंगे । न अधिक न कम ।"

सभी लोगों की राय चलने की हुई और बीमारी की बात सुनकर अपमान की बात बार-बार दोहराना अच्छा नहीं लगा ।

हम लोग फिर उसी बरांडे में जाकर खड़े होकर देखने लगे कोई आदमी दिखाई दे तो भीतर खबर करें । तभी कमरे से एक नवयुवक बाहर आया । उस साथी ने जो सेठ जी के रिश्तेदार थे हम लोगों को परिचय दिया, "ये सेठ जी के छोटे सुपुत्र हैं" और पूछा "कैसे हैं ?"

किंचित मुस्कराकर पुत्र ने उत्तर दिया, "वैसे ही हैं आप लोग आइए ।" और कमरे की चिक उठाई । तीन चार कमरे पार करके हम लोग सेठजी के कमरे में पहुँचे । बड़ा करुणाजनक दृश्य उपस्थित था । सेठ जी पलंग पर लेटे थे । शरीर सूख कर पंजर मात्र हो गया था । पेट ही पेट दिखाई देता था । पलंग के पाँयते कमोड रखा था । और सिरहाने की ओर पलंग से सटी हुई एक गाडरेज की तिजोरी । मेरे शरीर में तो जैसे रोमांच हो आया और चन्दे के लिए ऐसी अवस्था में उपस्थित होना अत्यन्त ही अनुचित लगा, अतः मैं कुछ दूर ही खड़ी रही ।

इन्हीं साथी ने समीप जाकर सेठ जी से आशय कहा ।

लड़खड़ाती जिह्वा से सेठ जी बोले, "पच्चीस रुपए की रसीद काट दो ।" और काँपते हाथों से तकिए के नीचे से तालों का गुच्छा निकाल कर वह तिजोरी खोलने लगे ।

घबरा कर मैंने कहा, "आप कष्ट न करें, जल्दी नहीं है । जब कोई आए तब निकलवा कर भेज दें ।"

सेठ जी ने उसी प्रकार लड़खड़ाती हुई जिह्वा से कहा, "नहीं लेते जाएँ" और दो दस के एक पाँच का नोट साथी के हाथ में थमा दिए और रसीद हाथ में लेकर देखी । पढ़ी नहीं गई तो पुत्र की ओर बढ़ा कर बोले, "छोटे, जरा पढ़ना ।"

पुत्र ने पढ़कर मुस्कराते हुए कहा "पच्चीस रुपये की रसीद है ।"

सेठ जी ने उसे रख कर तिजोरी बन्द करदी । हम लोग नमस्कार करके जल्दी से चले आए । मन बड़ा भारी हो गया था । बरांडे में आकर मैंने उनके पुत्र से पूछा, "कब से यह अवस्था है ? मैं जानती ऐसा हाल है तो कभी न आती । बेचारों को बड़ा कष्ट हुआ । इनके लिए एक अच्छी सी नर्स रखनी चाहिए जो हर समय देख-रेख कर सके ।"

पुत्र हँस कर कहने लगा, "डाक्टर की फ़ीस के रुपए भी उन्हें भारी लगते हैं । नर्स कौन रखे । हम लोग कर्ज लेकर अपना काम चलाते हैं । जब तक जीवित हैं तिजोरी की चाबी हम लोगों को नहीं छूने दे सकते । अब शायद समझने लगे हैं कि कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ इसलिए दान-पुन्य की प्रवृत्ति फिर उत्पन्न हुई है । लेकिन क्या ? मैंने एक पंडित लगा दिया था कि इन्हें गीता सुना दिया करे सो सुनी ही नहीं । उनकी गीता तो बहीखाता है । कितना वसूल हुआ कितना किस पर बाकी है सारे दिन मुनीम जी से यही सुनते रहते हैं ।"

उनके पुत्र की ध्वनि से व्यंग्य और आकृति से पिता के प्रति घृणा व्यक्त हो रही थी । मैंने अनुभव किया कि यदि हम लोग सुनते रहे तो यह बहुत देर तक अपनी बात समाप्त नहीं करेगा । पिता से इतना कुढ़ा प्रतीत होता है कि राह चलते के मन में उनकी कंजूसी के प्रति घृणा उत्पन्न करने का अवसर जैसे छोड़ नहीं सकता है । अतः उस प्रसंग को समाप्त करने के लिए लौटने को उद्यत होकर बीच ही में मैंने नमस्कार करके उसे चुप कर दिया ।

राह में सेठ जी के रिश्तेदार लड़कों की ऐयाशी की और सेठ जी की कंजूसी के किस्से सुनाते रहे, किन्तु मेरा मन इतना भारी हो गया था कि कुछ अच्छा नहीं लग रहा था । मन करुणा से भर गया था ।

इसके पश्चात दूसरे या तीसरे दिन सुना सेठ पन्नालाल का स्वर्गवास हो गया । और मृत्यु को भी अब बहुत समय व्यतीत हो चुका है फिर भी सेठ पन्नालाल से जीवन में जो तीन बार साक्षात्कार हुआ वे तीनों ही दृश्य बहुधा आँखों के सम्मुख तुलनात्मक रूप लेकर मेरी आँखों के सम्मुख सजीव हो उठते हैं ।

मन कहता है बिना परिश्रम के धन कमाना और एकत्रित करना भी सामाजिक कोढ़ है जो इन्सान को कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है ।

पंजाबी कविता

बेढब बुत

अमृता प्रीतम

जिसने आज उधारा माँगा
एक मनुष्य का मुँह
बाकी सिर से पाँवों तक है
दैत्य हुआ प्रधान

दो आँखों में पशुवृत्ति है
माथे पर है दानव
पाँवों बाँधे लाख दरिंदे
हाथों में हैवान

काली जीभें नील रगें हैं
हवस हुई बलवान
ओंठों पर वहशत है चिपकी
दिल में महा-मंसान

जिसका जिन है जाबर हुआ
खंडहर रहा बखेर
बसते आँगन कब्र बनाए
कहरों को वरदान

सत्य सभ्यता रूप कला को
पाए के संग बाँधा
प्यार-परी को कैद किया है
स्वयं हुआ दरबान

दोनों हाथ लुटेरे जिसके
मुँह से छीनें कौर
पत्र विहीन बनाए तरु को
करें भूख का दान

नए युद्ध का डर सा दिखलाएँ
घातक जिसके बोल
जिसकी भट्टी ज्वाला उगले
लौह चढ़ा है सान

आँगन की सब रौनक छीनें
ओंठों की मुसकान
तख़्ती पर से अक्षर पोंछें
जंगों के ऐलान

सहमे जीवन सहमीं माएँ
गले लगाये सुत
ऐसे जगत-विधान का
कैसा बेढब बुत !

अनुवादक : अमर भारती

★

मेघपाहुन, द्वार—

नरेश मेहता

पश्चिमे यामे पधारे
नतनयन से मेघपाहुन
मुझ अकिंचन द्वार।

मेघराजा !
यह अपात्री जलकृपा किस जोट बाँधे ?
किस खेत को अपना बता
मेड़ बाँधे,
हर्ष से विनये—
ओ देववर्षा !
इस आँगने, खेते अमृत बरसो।
एक भी पोखर नहीं
जो राजपाहुन को पुकारे—

प्रतीक्षा होली हुई,
सब तृप्तियाँ पथरा चुकीं,
क्यों मुझे लज्जित किया इतनी कृपा ले ?

क्या कहेंगे जब सुनेंगे शेष पुरवासी,
—बड़े सकारे
अभागे के द्वार थे ठाकुर पधारे,
लौटा दिया इस अपशकुन ने,
आँगने पीपल कहीं का—

स्वर्गराजा !
सो न होगा,
कुलदेवता, कुलअम्बिका से
पुरजनों के खेत-पोखर जहाँ फैले
चलो अमृत करो ठाकुर !
इस सहज परिवार को अपनी कृपाएँ ब्याह दो,
मनुज के सम्बन्ध से सब स्वर्ग है,
छू जिसे पाथर, अहिल्या तक हुए।
मेघराजा !
जलों को छोड़ो,
धरा को तीर्थ करने
अकिंचन पार्थिव खड़ा है केश खोले,
भले ही गल जाय,
पर धारनी है धार
मुक्ति की इस बार !!

●

पंजाबी लोक-नृत्य—भांगड़ा

पूरनचन्द्र जोशी

भांगड़ा पेप्सू और पूर्वी पंजाब का अत्यन्त प्रसिद्ध लोक-नृत्य है। भूमि से अन्न उपजाने वाला पंजाबी किसान खेती के कमर-तोड़ परिश्रम से छुट्टी पाकर अत्यन्त उन्माद और आनन्द के साथ इस नृत्य में सम्मिलित होता है।

भांगड़ा का मौसम गेहूँ की बुवाई के साथ आरम्भ होता है और इसके पश्चात जब-जब पूर्णिमा के चाँद की हँसी धरती पर चाँदनी के रूप में फैल जाती है तब-तब गाँव के नौजवान किसी भी खुले मैदान में ढोल-वादक को लेकर भांगड़ा नृत्य के लिए एकत्र हो जाते हैं। ढोल बजाने वाला नृत्य मण्डली का अगुआ होता है। उसके ढोल के बोल सुनते ही सारी नृत्यमण्डली सक्रिय हो उठती है। गीतों की धारा उन्मुक्त होकर प्रवाहित होती है और नर्तकों के पाँव नृत्य के लिए थिरक उठते हैं।

इन नृत्यों की दिनों तक पुनरावृत्ति होती जाती है और पूर्णाहुति बैसाखी के महान समारोह में होती है। जब अनाज के लहलहाते खेतों में बालियाँ पकने लगती हैं और प्रकृति अपना सुनहला ऐश्वर्य मुक्त हस्त से धरती के परिश्रमी लाल इन किसानों को लुटाती है, सारी धरती पके अनाज की सुन्दर सुगन्ध से महकने लगती है तब किसान का आल्हाद उसके गीत नृत्यों में फट पड़ता है। ढोल के बोल चारों ओर गूँजने लगते हैं और गाँव के गाँव मेले और बैसाखी के समारोह-केन्द्र की ओर उमड़ पड़ते हैं और भांगड़ा नृत्य का पूर्ण प्रदर्शन होता है।

भांगड़ा के नर्तक चमकीली, रँगीली पोशाक में प्रगट होते हैं, सिर में सुनहला रेशमी पटका, घुटनों तक फैला हुआ सफेद पंजाबी कुर्ता, और सुनहरे रंग की लुंगी (लच्छा) सफेद चमकते हुए बटन, जड़ी हुई एक काली वास्कट और पाँवों में घुँघरू।

नृत्य आरम्भ होने के पहले नृत्य की घोषणा गीत से होती है। जिसमें भांगड़ा नृत्य की कथा का प्रारम्भिक परिचय दिया होता है और जैसे ही ढोल के पहले बोल थिरक उठते हैं, नृत्य का प्रारम्भ होता है।

भांगड़ा एक सामूहिक नृत्य है। जिसमें कोई भी किसी समय सम्मिलित हो सकता है। नृत्य एक वृत्त के रूप में होता है और जैसे-जैसे अधिक-से-अधिक लोग इसमें शामिल होने लगते हैं वैसे-वैसे वृत्त का घेरा बढ़ता चला जाता है। ढोल-वादक वृत्त के बीच में खड़ा होता है, ढोल उसके गरदन में लटकता रहता है, ढोल की ध्वनि नृत्य की लय को जन्म देती है। नृत्य का आरम्भ मन्द और धीर चाल से होता है, लेकिन ज्यों-ज्यों ढोल तेजी से बजता है त्यों-त्यों नृत्य की गति भी तीव्र होने लगती है। नृत्य का पूरा सौंदर्य वेग और मंदता ढोल-वादक पर निर्भर करते हैं। ढोल-वादक जब चाहे नृत्य को मंदता और तीव्रता की दिशा में मोड़ देता है। पूरे नृत्य को संचालित करने के लिए कोई कठोर बने हुए अनुलंघनीय नियम नहीं हैं। गोलाकार नृत्य होता रहता है, बाहें हिलाते हुए पाँवों को लय के अनुकूल बढ़ाते हुए नर्तक घूमते रहते हैं। अगर कोई लय के प्रतिकूल कदम उठा बैठता है तो क्रोध से लोगों की भृकुटि नहीं चढ़ती, बल्कि लोग मस्ती से खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।

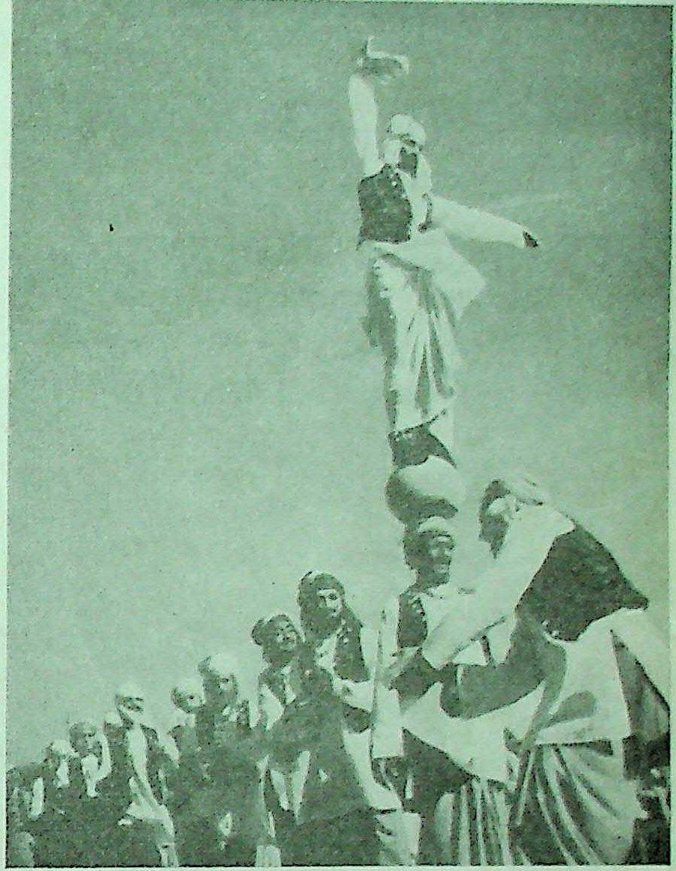
भांगड़ा नृत्य

नृत्य में उन्माद और तेजी लाने के लिए नर्तक बीच-बीच में 'होई होई ऊ ऊ' की ध्वनि करते हुए किलक पड़ते हैं। इसी प्रकार बीच में वे उँगलियों से चुटकियाँ और हाथ से तालियाँ बजाने लगते हैं।

भांगड़ा नृत्य का प्रदर्शन सन् १९५४ में दिल्ली में राष्ट्रीय लोक-नृत्य समारोह के अवसर पर हुआ। इस नृत्य में नृत्यमण्डली के प्रथम नर्तक ने मंच पर प्रवेश करके अपने सिर पर एक उल्टा घड़ा रख लिया और उसके ऊपर एक दूसरा व्यक्ति चढ़ गया और नृत्यमण्डली

भांगड़ा की पूजा

नृत्य की तैयारी

आगे बढ़ते हुए वृत्त के रूप में एकत्र हो गई। घड़े पर बैठा हुआ व्यक्ति अपनी नृत्य-चेष्टाएँ बिना किसी प्रयास या भय के करते हुए अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है।

इसी प्रकार नृत्य के बीच में एक नर्तक टोली से अलग निकल कर अपने हाथों से, या आधे बैठे हुए अवस्था में या ज़मीन में लोटते हुए आदि अनेक रूपों में भावों और क्रियाओं का प्रदर्शन करता है।

भांगड़ा की दो मुख्य विशेषताएँ हैं, उसकी मस्ती और परुषता। नृत्य की क्रियाओं में शरीर के अंगों और मांसपेशियों पर ज़ोर पड़ता है। भावों की तरंग में नृत्य होता है और किन्हीं नियमों के बन्धनों से नृत्य की उन्मुक्तता में बाधा नहीं पड़ती।

'ढोला' और 'बोलियाँ' दो प्रकार के लोक-गीत भांगड़ा नृत्य के साथ गाए जाते हैं। ये पंजाबी जन-जीवन की घटनाओं और समस्याओं, प्रेम सौन्दर्य और जीवन के आल्हाद-विषाद से भरे रहते हैं। सरलता और स्पष्टवादिता जो लोकसाहित्य के गुण हैं, इन गीतों में कूट-कूट कर भरे रहते हैं।

गीत की कुछ पंक्तियाँ गाई जाती हैं इसके बाद नृत्य क्रियाएँ और भाव व्यक्त किए जाते हैं, फिर एक 'ढोला या बोलो' की पंक्तियों का गान और फिर नृत्य—इस प्रकार अटूट क्रम चलता चला जाता है।

भांगड़ा में भी बदलती हुई परिस्थितियों के साथ परिवर्तन होते गए हैं। प्राचीन सामूहिक जीवन के छिन्न-भिन्न होने पर पंजाबी किसान नगर के आधुनिक औद्योगिक केन्द्रों में रोजगार के लिए निकल पड़े हैं। इसलिए बैसाखी के अवसर पर ही नहीं बल्कि ईद, दिवाली या मासिक वेतन मिलने के दिन भांगड़ा नृत्य का नगरों में भी प्रदर्शन होता है। शहर की व्यवस्था की छाप भांगड़ा पर भी पड़ी है। इसकी भौतिक सरलता और उन्मुक्तता में कमी आ गई है, लेकिन इसको तरतीब, शैलीबद्ध करके माँज दिया गया है। आधुनिक सिनेमाओं का असर काफी गहरा है। जहाँ अमेरिकी अश्लीलता और (exhibitionism) का समावेश इस नृत्य में हुआ है, वहाँ नृत्य में अनेक दूषित तत्व आ गए हैं। लेकिन सिनेमा के प्रभाव से भांगड़ा की एक शहरी शैलो का भी जन्म हो गया है।

इन प्रभावों से गाँवों का भांगड़ा नृत्य भी मुक्त नहीं रह पाया है। पंजाब के धनी या मध्यम जाट किसानों के बलिष्ठ बेटे जो शहर में शिक्षा के लिए आते हैं वे शहरी जीवन के प्रभावों से अपने को बचा कर अपने गाँव के फार्मों को चलाने का रोज़गार अपनाते हैं। वे भांगड़ा के परम्परागत रूप में सन्तुष्ट नहीं रह पाए। उन्होंने उसे एक शैली के रूप में बाँधने और ढालने की कोशिश की है। सरकारी विकास-योजनाओं के अधिकारियों ने भी गाँव के प्रतिभाशाली गीत-नृत्य-प्रवीण युवकों से सम्पर्क स्थापित किया है और इस प्रकार व्यापक रूप से भांगड़ा नृत्य मण्डलियों का जन्म हुआ है। राष्ट्रीय लोकनृत्य समारोह में भांगड़ा नृत्यमण्डली की अगवाई तीन दीपक बन्धुओं ने की थी जो आधुनिक शिक्षा पाए हुए चुस्त नौजवान थे, जिनका सौ एकड़ ट्रैक्टर की खेती वाला फार्म था जबकि बाकी ग्रामीण जाट तथा निम्न कृषक मेहकनत वर्गों और सम्प्रदायों के नवयुवक थे। पेप्सू सरकार द्वारा संगठित किए गए कई समारोहों में ये लोग भाग ले चुके थे।

भांगड़ा नृत्य का प्रवेश पंजाब के स्कूलों, पुलिस लाइनों तथा सैनिक केन्द्रों में भी हो गया है। भांगड़ा नृत्य में स्वच्छन्द उन्मुक्तता, उल्लास भरी मस्ती और परुषता आदि वह सभी गुण और तत्व विद्यमान हैं, जिनके आधार पर वह पंजाब के लोगों के राष्ट्रीय लोकनृत्य का रूप ले सकता है।

★

शब्द और अर्थ

बद्रीनाथ कपूर

शब्द हमारे लिए धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य आदि से भी कहीं अधिक पवित्र, महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान उत्तरदान हैं, जो हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होते हैं। न जाने इन शब्दों के बल से ही कितनी ऊँचाई, कितनी महानता और कितनी श्रेष्ठता को मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं, न जाने इनके प्रयोग से वे अपना, अपनों, और ग़ैरों की कितनी भलाई, उपकार और नेकी कर जाते हैं और इन्हीं के मेल से न जाने कैसी सुन्दर, प्रिय और अद्भुत सृष्टि मनुष्य रच देते हैं, जिसमें हम लोग विचरण करते हैं, आनन्द लेते हैं और अपना ज्ञान बढ़ाते हैं।

शब्द वह ध्वनि या घोष है जिसका अनुभव श्रवणेन्द्रियों द्वारा होता है। शब्दों के, सुविधानुसार, दो विभाग किए जा सकते हैं। एक स्फुट शब्द और दूसरे अस्फुट शब्द। स्फुट शब्दों से तात्पर्य ऐसे सार्थक शब्दों से होता है, जिनके द्वारा मानव जाति अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करती है और जिनके कुछ निश्चित तथा बँधे हुए अर्थ होते हैं। जिन शब्दों को हम व्यवहार में लाते हैं वे प्रायः सभी इसी वर्ग में आते हैं। अस्फुट शब्द वे हैं जिनके वास्तव में कुछ अर्थ नहीं होते, परन्तु फिर भी जिनसे किसी विशेष स्थिति, कार्य, क्रिया आदि का बोध अवश्य हो जाता है। जब 'धाँय-धाँय' का शब्द होता है तो हम समझ लेते हैं कि गोली चली है, जब 'धम' या 'धड़ाम' शब्द सुनाई पड़ता है तो हम समझ लेते हैं कि कोई वस्तु, भवन या व्यक्ति गिर पड़ा है और जब हमें किसी रमणी के करुण शब्द 'हाय-हाय' 'ऍं-ऍं' सुनाई पड़ते हैं तो समझ लेते हैं कि उसे कोई मार रहा है। वस्तुतः 'धाँय-धाँय', धम-धड़ाम, हाय-हाय, ऍं-ऍं आदि का कुछ अर्थ नहीं है, परन्तु फिर भी इनके श्रवण से हम किसी स्थिति, कार्य आदि का अनुभव कर लेते हैं, इसी लिए इन्हें अस्फुट शब्द कहते हैं। पशु-पक्षी जिन शब्दों का उच्चारण करते हैं यदि वे अर्थपूर्ण हैं (भले ही हम लोग उनका कुछ अर्थ समझते हों) तो उन्हें स्फुट कहा जाएगा, और यदि उनके कुछ अर्थ नहीं हैं तो उन्हें अस्फुट कहा जाएगा। यहीं कविवर पं॰ सूर्यकान्त जी त्रिपाठी 'निराला' की दो पंक्तियाँ स्मरण हो आई हैं:

> एक गऊ कुछ दूर रँभाई
> पनिहारी पनघट से आई।

और यदि सचमुच पनघट पर पानी भरने के लिए गई हुई पनिहारिन ने गऊ के विशेष प्रकार से रँभाने या पुकारने से यह समझ लिया हो कि वह मुझे बुला रही है और यह कह रही है कि तुम्हारे प्रिय घर लौट आए हैं, आओ! जल्दी से आओ, उनका स्वागत करो—तो गऊ के रँभाने का यह स्वर स्फुट ही कहा जाएगा।

शब्दों के सम्बन्ध में एक जानने योग्य बात यह भी है कि शब्दों की सृष्टि नहीं निर्माण होता है, शब्द उत्पन्न नहीं किए जाते वरन् बनाये जाते हैं। प्रायः नए शब्द अन्य शब्दों के आधार पर बनाये जाते हैं। जैसे आदरणीय श्री रामचन्द्र वर्मा ने नहीं से नहिक (Negative) के लिए, सही से सहिक (Positive) के लिए, प्रायः से प्रायिक (Frequent) के लिए, विश्व से विश्वक (Universal) के लिए, सर्व से सार्विक (General) के लिए, सम से प्रसम (Normal) के लिए और डा॰ रघुवीर ने आक्रमण से अभ्याक्रमण (Aggression) के लिए, विलयन से संविलयन (Merger) के लिए आदि सैकड़ों शब्द बनाये हैं।

'शब्द गढ़ना' पद का भी कुछ लोग अर्थ लगाते हैं—शब्दों की सृष्टि से। वस्तुतः इस पद से भी शब्दों के निर्माण से ही अभिप्रायः होता है। 'गहना गढ़ना' में भाव यह है कि सोने या चाँदी को काट-छाँट कर तोड़-मरोड़ कर, टाँका आदि लगाकर एक नया तथा सुन्दर रूप देना। 'पत्थर गढ़ना' में भी भाव पत्थर को छील कर, काट कर, मसाला आदि लगाकर उसे अच्छे रूप में प्रतिष्ठित करना होता है। 'शब्द गढ़ना' में भी वस्तुतः यही भाव है, शब्दों की सृष्टि या उत्पन्न करने का भाव इस पद में नहीं है। पुराने अथवा प्रचलित शब्दों को तोड़-मरोड़ कर, अथवा उनमें उपसर्ग या प्रत्यय लगा कर उन्हें नया रूप देना होता है।

अब जरा अर्थों के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिए। शब्दों में अर्थ कहाँ से आते हैं अथवा उनमें अर्थ कैसे लगते हैं इस सम्बन्ध में विद्वानों के कई मत हैं। 'शब्दों में अर्थ निहित होता है'—इतना सभी विद्वान मानते हैं। यदि शब्दों में अर्थ ही न लगे होते तो मानव मस्तिष्क द्वारा आज तक संचित किए हुए तथा अभिलिखित ज्ञान का मूल्य हमारे लिए कुछ भी न होता।

प्रशस्त मत यह है कि जिन शब्दों के जो अर्थ हम आज मानते हैं, वे हमारे संस्कारों द्वारा ही स्थिर होते हैं। एक उदाहरण लीजिए। छोटे बच्चों को न तो गरमी का ही विशेष अनुभव होता है और न सरदी का ही, परन्तु वे प्रायः सुनते ही रहते हैं कि आज गरमी पड़ रही है और आज सरदी पड़ रही है। धीरे-धीरे उनकी यह धारणा अवश्य बन जाती है कि सरदी और गरमी भी कोई चीज़ें हैं जो पड़ती रहती हैं। कुछ बड़े होने पर जब वह तपन और ठंडक का अनुभव करने लगते हैं तो उन्हीं पहले के सुने हुए शब्दों—गरमी और सरदी को उनके स्थान पर प्रयुक्त करने लगते हैं। शब्दों के जो अर्थ हम सुनते हैं अथवा देखते हैं वे हमारी स्मृति के अंग बन जाते हैं, फिर सभी जगह शब्द विशेष का अर्थ हम अपनी स्मृति के बल पर लगा

लेते हैं। शब्द कोश वस्तुतः हमारी शक्ति को सहायता देते हैं, हमें अनुस्मरण करा देते हैं।

शब्दों के अर्थ कई प्रकार के होते हैं। हमारे साहित्य-शास्त्रों में शब्दों के तीन प्रकार के अर्थ—अभिधेयार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ बतलाये गए हैं। हम यहाँ उनकी चर्चा इसलिए नहीं कर रहे, क्योंकि सभी लोग बहुत कुछ इनके सम्बन्ध में जानते हैं।

विदेशी विद्वानों ने शब्दों के अर्थों के दो विभाग किए हैं १. व्याप्त्यार्थ और २. गुणार्थ। व्याप्त्यार्थ से तात्पर्य किसी शब्द की अपनी निजी परिभाषा से होता है। जैसे 'पौधे' का व्याप्त्यार्थ होगा—ऐसी जीवित वस्तु जिस की जड़ें भूमि में होती हैं। 'गुणार्थ' से तात्पर्य उन सब भावों और विचारों से होता है जो उस शब्द के साथ लगे होते हैं अथवा लगा दिए जाते हैं। जैसे घर का व्याप्त्यार्थ होगा— ऐसा स्थान जहाँ लोग अपने परिवार के साथ रहते हों और गुणार्थ होगा—ऐसा स्थान जहाँ सभी प्रकार के सुख और सुभीते प्राप्त होते हों। जैसे —इसे आप अपना ही घर समझें। यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। व्याप्त्यार्थ तो सदा निश्चित ही होता है परन्तु गुणार्थ वक्ता या लेखक के प्रयोग पर निर्भर होता है।

कुछ अर्थ ऐसे होते हैं जो शब्दों की अभ्यान्तर शक्ति को व्यक्त करते हैं और कुछ अर्थ ऐसे होते हैं जो शब्दों का सार बतलाते हैं। व्हेल (Whale) मछली का अर्थ एक कोश में दिया है—ऐसी भयंकर मछली जिसमें जलयान को उलटने की सामर्थ्य होती है। यह अर्थ वस्तुतः व्हेल की अभ्यान्तर शक्ति को ही सूचित करता है। व्हेल का व्याप्त्यार्थ होगा—समुद्र में रहने वाली ऐसी मछली जो आकार प्रकार में साधारण मछलियों से बहुत बड़ी और भयंकर होती है। अर्थ सार बतलाते हैं, यह 'रहस्यवाद' की निम्न परिभाषा से स्पष्ट हो जाएगा। रहस्यवाद वस्तुतः ऐसा शब्द है जिसका ठीक-ठीक अर्थ नहीं बतलाया जा सकता। जिन-जिन लेखकों ने इस पर कलम चलाई है उन सभी ने इसके विभिन्न अर्थ लगाये हैं। इसलिए एक पुस्तक में इन सब झमेलों में न पड़कर 'रहस्यवाद' का अर्थ दिया है—जीवात्मा का परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने की क्रिया या भाव। यह व्याख्या संक्षेप में रहस्यवाद का अर्थ बतलाती है उसका सार बतलाती है, उसकी पूरी-पूरी व्याख्या नहीं करती।

शब्दों के ऐसे अर्थ भी होते हैं जो कोशों में पर्याय के रूप में दिए जाते हैं। जैसे अनुग्रह के लिए कृपा, दया तथा अनुकम्पा, मार्ग के लिए रास्ता, पथ तथा बाट, तीक्ष्ण के लिए प्रखर, उग्र तथा प्रचंड और तीव्र के लिए तीखा, तेज तथा वेगवान। शब्दों के अर्थ पर्याय रूप में देना अच्छी बात नहीं है यह तो कठिनाई से भागने या मुख मोड़ने की क्रिया मात्र है। पर्यायों से अर्थ की सिद्धि नहीं होती, वरन भ्रम उत्पन्न होता है।

अन्त में शब्दों और अर्थों पर एक और दृष्टि से भी विचार कर लेना चाहिए। प्रायः हमारे सामने ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जब हम अपने भावों या विचारों को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाते, अथवा कुछ का कुछ कहने लगते हैं। और कभी ऐसा भी होता है कि पाठक या श्रोता ही भावों या विचारों को ठीक प्रकार से ग्रहण नहीं कर पाते या कुछ का कुछ समझ लेते हैं। चाहे लेखक या वक्ता की भूल हो चाहे पाठक या श्रोता की, कारण दोनों का एक ही है कि उन्हें शब्दों और अर्थों का विशेष ज्ञान नहीं है। इस स्थिति से सभी को पार पाना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी ठीक प्रकार न कहने अथवा न समझने से अनर्थ हो सकता है। लेखक, वक्ता, पाठक तथा श्रोता को सदा शब्दों पर तथा उनके अर्थों पर पैनी दृष्टि रखनी चाहिए, तभी उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हो सकती है।

★

"यह सब को समझ लेना चाहिए कि पार्लियामैण्ट जो फैसला करेगी, वह ज़रूर लागू होगा। वह धमकियों और दँगों फसादों से बदल नहीं सकता। जब पार्लियामैण्ट एक फैसला करती है तो वह देश का, सारे भारत का फैसला होता है। उस फैसले के सामने सब को झुकना होगा। वह फैसला पत्थर की लकीर है। जो लोग बाज़ारों में ऊधम मचा कर पार्लियामैण्ट के फैसले बदलने की कोशिशें करते हैं, वे देश के हितों के खिलाफ़ काम करते हैं। आखिर सरकारी सम्पत्ति किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है, वह सारे देश की सम्पत्ति है।"

—जवाहरलाल नेहरू
१५ अगस्त १९५६

●

उड़िया साहित्य की प्रगति

तारिणीचरण दास

कालिन्दी बाबू के उड़िया सम्बन्धी 'आजकल' के 'स्वाधीन भारत का साहित्यांक' में प्रकाशित एक लेख में लेखकों तथा पुस्तकों के बारे में चर्चा करते हुए लेखक ने जो स्थापनाएँ की हैं, उनके द्वारा पाठकों के मन में उड़िया साहित्य के बारे में जो धारणाएँ बनी हैं, उनका संशोधन तथा समाधान करना इस लेख का ध्येय है।

इस लेख का कर्त्तव्य है सन् १९४७ के बाद के उड़िया साहित्य से प्रादेशिक भाषाओं या विशेषकर हिन्दी के विद्वानों को परिचित कराना। अतः यहाँ पर एक बात कह देना अनुचित न होगा कि प्रादेशिक साहित्यिक क्षेत्र में ऐसे कुछ पुरानी पीढ़ी के व्यक्ति हैं, जो बिलकुल नई साहित्यिक गतिविधियों पर ध्यान नहीं देते और अपने को ही पूर्ण समझ बैठते हैं। प्रयोगवादी दृष्टिकोण को समझने में ईमानदार न रहने, बढ़ती हुई प्रवृत्तियों से घृणा करने और तुच्छ ज्ञान आदि ऐसे उत्तरदायित्वहीन लेखों को प्रकाश में लाने में सहायक हैं।

'आजकल' में प्रकाशित लेख पर उत्कल की विशिष्ट दैनिक पत्रिका 'प्रजातन्त्र' (श्री हरेकृष्ण जी महताब द्वारा प्रतिष्ठित) लिखती है—"स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारत के विभिन्न प्रान्तीय साहित्यों की प्रवृत्तियों का परिचय हमें इस (आजकल) पत्रिका से मिलता है, परन्तु उड़िया साहित्य की वास्तविक समीक्षा उसमें नहीं की गई है।"

श्री पाणिग्राही जी ने यह भी लिखा है कि उड़िया साहित्य की आजकल की कृतियों में से कोई भी क्लासिक कोटि की नहीं है। इस बात का जवाब श्री गोपीनाथ जी महान्ति के 'अमृतर सन्तान' और 'परजा' जैसे उपन्यास दे सकते हैं। इसके बारे में 'प्रजातन्त्र' का कथन है :

"गल्प और उपन्यास के क्षेत्र में कालिन्दी बाबू ने विशेष अभिज्ञता के साथ कुछ नहीं कहा है। श्री गोपीनाथ महान्ति का ग्रन्थ 'अमृतर सन्तान' भारतीय साहित्य अकादेमी द्वारा उत्कृष्ट विवेचित हो पुरस्कृत हुआ है। कालिन्दी बाबू स्वयं अकादेमी के सदस्य होते हुए भी इस बात को कैसे भूल गए ?"

वस्तुतः सन् १९४७ के बाद ही आधुनिकतम उड़िया साहित्य की वास्तविक प्रगति हुई है। इस अवधि के भीतर हरिजन, कृष्ण, चूड़ा, मनर मृणाल, पृथ्वी बाहारे मणिष आदि बहुत से गल्प और कथा साहित्य रचे गए हैं। इन वर्षों के भीतर महापात्र नीलमणि साहु ने जो हास्यरसपूर्ण गल्प लिखे वे अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद होने योग्य हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के इस युग में श्री गोपीनाथ महान्ति, अच्युतानन्द पति और वामाचरण मित्र आदि ने नए ढंग की कहानियाँ लिखी हैं।

कविता

भारतीय उच्च साहित्यिक श्री सच्चिदानन्द राउत राय से अपरिचित नहीं हैं। वे उड़िया साहित्य के मुक्त छन्द के प्रयोक्ता हैं। हाल ही में भारतीय कवियों के प्रतिनिधि बन कर अमेरिका गए हुए थे और हवाई विश्वविद्यालय में सम्मिलित भी हुए थे, उन्हीं की 'पाण्डुलिपि', जो कि भारत सरकार द्वारा विभिन्न भाषाओं में अनूदित होने जा रही है, सन् १९४७ में ही छपी थी। कविता के क्षेत्र में ऐसी विशिष्ट रचना का उल्लेख लेखक को करना चाहिए था।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद श्री ज्ञानीन्द्र वर्मा की सरल भाषा युक्त कविताएँ सामने आईं। श्री अनन्त पट्टनायक की शैली प्रधान व्यंग कविताएँ इसी समय 'झंकार' में प्रकाशित हुईं। श्री रमाकान्त रथने नवीन तथा परित्यक्त कथावस्तुओं के प्रति अभिरुचि प्रकट कर घड़ी, चील आदि पर कविताएँ लिखीं एवं प्रयोगवादी प्रवृत्तियों के अनुसार प्राचीन कथावस्तुओं को नवीन ढंग से प्रगट किया (धर्मपदर आत्महत्या)। श्री मनोज दास की गद्य कविताएँ, श्री दुर्गाचरण परिडा की क्षुद्र परन्तु भावपूर्ण कविताएँ भी आधुनिक कविता क्षेत्र को व्यापक बना देती हैं।

एकांकी नाटक

स्वाधीनतोत्तर काल में भी श्री कालीचरण नाट्याचार्य ने अपनी धारा को अक्षुण रखा है। इनके बाद श्री हरेकृष्ण महताब जी का नाम एकांकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय है। आधुनिकतम एकांकी की क्षतिपूर्ति श्री प्राणबन्धु के द्वारा हुई है। इनकी विशिष्ट रचनाएँ स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही प्रकाशित हुई हैं।

आलोचनात्मक निबन्ध तथा आलोचना के बारे में लिखते हुए 'प्रजातन्त्र' का कहना है कि स्वतन्त्रता के बाद के सातों वर्षों में ही बहुत-सी आलोचनाएँ विश्वसाहित्य कोटि की न होने पर भी उड़िया आलोचना साहित्य को गति देने वाली हैं, जैसे—संस्कृति ओ साहित्य, युगस्रष्टा फकीर मोहन, तपस्विनी ओ मेहर साहित्य एवं उड़िया समाज ओ साहित्य आदि।

स्वाधीनता के बाद उड़िया साहित्य में शिशु साहित्य का भी निर्माण हुआ है। चिलुआनना, घटि घागुड़ि, कपि-काकुड़ि और चलन्ता राइज़र अमुहाँ नई आदि प्रसिद्ध हैं। श्री उपेन्द्र त्रिपाठी ने ५,००० का भारत अकादेमी पुरस्कार शिशु साहित्य के लिए पाया है।

उसके बाद 'साहित्य-क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं का योग' के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए लेखक ने विशिष्ट आधुनिक पत्रिकाओं का उल्लेख नहीं किया है। 'झंकार', 'आसन्ताकालि', 'प्रभाती', 'नवजीवन' आदि का जन्म स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही हुआ है।

अनुवाद क्षेत्र में भी उड़िया साहित्य में अच्छी प्रगति दिखलाई दी है। रौम्याँ रौलाँ, रेनेमार्राँ, पर्ल एस० बक, बर्नर्ड शा, हेमिंगवे आदि विशिष्ट विश्वप्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं का अनुवाद उड़िया में हो चुका है। पी० इ० एन० के सदस्य श्री लक्ष्मी नारायण जी महान्ति ने बहुत-से विश्वकाव्यों का सुन्दर अनुवाद उड़िया भाषा में किया है। प्रभास चन्द्र शतरथी ने मोपासाँ और चैखव की कहानियों का सुन्दर अनुवाद किया है। श्री प्रफुल्ल चन्द्र दास (मनमोहन प्रेस) ऐसे अनुवादों को छापने या उनका प्रकाशन करने में अग्रणी हैं।

इस प्रकार उपन्यास तथा कहानी, कविता, एकांकी, नाटक, शिशु-साहित्य एवं अनुवाद आदि विविध क्षेत्रों में उड़िया साहित्य की प्रगति हुई है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के उत्कल साहित्य-क्षेत्र में प्रयोगवादी भावनाएँ प्रविष्ट हो गई हैं। प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता की चाह, नवीन छन्द, नवीन अन्वेषण एवं नए पथ आविष्कार करने की भावना दिखलाई पड़ती है। इन कुछ वर्षों के भीतर उड़िया साहित्य ने जो कुछ प्रगति की है, उसमें से 'अनुन्नत जाति के सजीव चित्रण वाले उपन्यास', हास्यरस की कहानियाँ, व्यंग्य, कविताएँ और मनोवैज्ञानिक कहानियाँ अन्य भाषा में अनुवाद योग्य हैं।

●

निर्वाण

नरसिंह श्रीवास्तव

(१)

हंस ! जाना है मुझे उस पार
अपने पंख दे दो !
दो क्षणों को छोड़ दो तुम नील नभ का प्यार।
प्रिय वह शान्ति का संसार !
कोमल बादलों का चिर मधुर अभिसार।
आओ इस जगत में—
जहाँ कोलाहल बना है प्रीति का व्योहार।
प्रियतम ! कौन सी थी वह घड़ी, जब
रो पड़ा था पर्वतों का प्यार,
गंगा और यमुना बह चलीं थीं,
सिन्धु, सरयू धार।
किन्तु, उस दिन मैं कहाँ था ? तुम कहाँ थे ?
और इस क्षण यह अचानक प्रीति कैसी ?
प्यार कैसा ?
छोड़ दो मुझको यहीं, प्रिय, मैं विरह के
गीत गाकर
खोज लाऊँगा अमर संसार।
पाते तुम न जिसको हो युगों से,
आ गया है नील नभ का द्वार।
अन्तिम अंक दे दो
हंस ! अपने पंख दे दो।
आज जाना है मुझे उस पार।

(२)

चेतना के पंख डोले,
आज मन के तार बोले।
शान्त-स्वरवेला- मधुर मल्हार छेड़ो।
उड़ चलो उस पार !
क्षण की कौन सीमा, क्यों रुके हो हंस ?
गति का माप क्या है ?
है अनन्त वितान नभ का—
क्या भुला दी उन दिनों की बात
जब हम मानसर के तट मिले थे ?
स्वयं ले लो मोतियों को आज तक तुमने
चुने जो !
क्या करूँगा हार और श्रृंगार मैं अब,
चेतना की नींद सोता हूँ—
विरह का जागरण है।
सुप्त मानस को जगाकर—
विश्व में उन्माद भरने के लिए
कुछ शंख दे दो,
पंख दे दो !
आज जाना है मुझे उस पार।

(३)

शान्त-स्वर्ण विहान,
आया हंस का प्रस्थान।
प्रिय, तुम कब चलोगे ?
"नयन नभ की नीलिमा में मैं तनिक
विश्राम कर लूँ।
आज सौरभ सिन्धु में मैं एक क्षण स्नान
कर लूँ।
क्योंकि अन्तिम बार तेरा मधुमिलन है।
मैं न पाया जीत जग को,
मैं न पाया जीत तुमको,
मैं न पाया जीत अब तक,
वासना के कठिन मग को।
किन्तु पहली जीत भी है,
आज अन्तिम हार !"
हंस ! जाना है मुझे उस पार।

(४)

आज नभ के नयन जागे !
मूर्तममता-मानवी-मन्दिर विराट,
आज श्रद्धा ने लिया समाधि।
टूटते सब जा रहे हैं स्नेह धागे।
कालिमा की रूपरेखा मिट गई है,
स्वप्न से वर कौन माँगे ?
आज नभ के नयन जागे !
पवन ने स्वर सात साधे,
मृत्तिका का किया पूजन।
दीप ने जो अर्चना के साज साजे,
जल रहा है पूर्ण पारावार !
हंस ! जाना है मुझे उस पार।

(५)

सुन रहा हूँ इस विरह निशीथ में,
"पी कहाँ," पपीहरा पुकारता।
सिहर उठी है रूप की सुशीलता।
सकुच उठी है गंध की नवीनता।
विवश हुई है आज मन की मान्यता।

कहाँ है ज्ञान जिससे मैं भुला सकूँ ।
पुनीत प्रीति आज प्रिय अतीत को ।
वह कौन गीत है जिसे मैं गा सकूँ ।
कहाँ है प्यार जिसको मैं निभा सकूँ ।
कहाँ है चाह जिससे मैं उठा सकूँ ।
जगत की वासना का यह असह्य भार ।
क्योंकि जाना है मुझे उस पार !

(६)

बह जाने दो क्यों रोते हो,
क्यों खोते हो मन की ममता ।
दो जल के बूँद दिए मिल गई ममता ?
कितने सस्ते प्रिय प्रीति आज पहचानी ।
स्वप्नों में मैंने सत्य बहुत देखा था ।
और सत्य स्वप्न की ओढ़े थे परछाईं ।
कुछ समय रहा यों सत्य स्वप्न का झगड़ा ।
विश्वास कभी सन्देह कभी, पर अब तो
हँसता हूँ—उर नयन गले जाते हैं ।
रोता हूँ तो शाश्वत विहान-अरुणोदय ।
पर हटा न पाया अब तक जग का अन्धकार ।
हंस ! जाना है मुझे उस पार ।

(७)

दो-चार पतंग उड़ा करते हैं प्रतिक्षण
दीपक के सुनसान सुनहले घर पर ।
मृग-सर्प चले आते हैं,
बरबस वीणा के स्वर पर ।
तो मैं ही क्यों मन की ममता विश्वास छोड़ता ।
मैंने जग से वरदान स्वप्न का माँगा ।
उसने दे दी अभिलाषाओं की करवट ।
पर नहीं चाहिए अब यह झूठी आशा ।
मैं नभ का विश्वास लिये चलता हूँ ।
धरती पर मेरी प्रीति पला करती है ।
मैं अभ्र बनूँ उच्छ्वास सिन्धु का लेकर ।
फिर बरस पड़ूँ आधार प्रीति का खोकर,
खोजूँगा कब तक मैं जलनिधि विस्तार !
प्रिये ! जाना है उस पार ।

(८)

हंस ! आज तुम क्या गाते हो ?
नभ के राही,
तुम पथ की पहचान छोड़ कर
नभ से दूर कहाँ जाते हो ?
नूतन राग नवीन लहर में,
अनजानी भाषा के स्वर में,
हंस ! आज तुम क्या गाते हो ?
शांत-स्निग्ध-सन्ध्या रवि किरणें ,
आज विदा लेतीं जीवन से,
भू से वृक्ष—वृक्ष से नभतल,
लुप्त हुई आभा उपवन से ।
अश्रुकणों के बदले अब तक,
कितनी श्वासें बेच चुका था ।
किन्तु न सोचा था क्या होगा
अन्तरिक्ष के पार ?
मुझे जाना है उस पार ।

(९)

हंस ! तुम मधुऋतु में क्यों आये ?
तमस विहीन, अरुण नभ छाया
स्वर्णिम साज-सजाये ।
जीवन ज्योति जली जलने तक,
किरण माल पहनाये ।
मूक हुई है मन की ममता,
बुद्धि वन्दना गाये ।
मिलन-वियोग एक रस के स्वर
कौन विहाग सुनाये ?
केवल मैं हूँ इस मन्दिर में,
कितने पथ पर आये ?
हंस ! तुम मधुऋतु में क्यों आये ?

(१०)

फूले मन सुमन आज फूले !
मधुर-मधुर रस पराग
गूँज रहा भ्रमर राग
मन्द-मन्द शीतल सुगन्ध पवन डोले ॥
फूले मन सुमन आज फूले !
स्वागत है, जगतप्राण !
जगत-चेतना विहीन,
शुभ्र श्वेत पंखुड़ी है नयन पंथ खोले ।
शोभित नभ किरण माल,
बेसुध वसुधा निहाल,
होड़ लगी गीत और प्रीति में,
होड़ लगी हार और जीत में,
स्वर्णिम भविष्य और अतीत में,
जाऊँ किस ओर, मैं गाऊँ प्रिय कौन गीत ?
गा दूँ तो हट जाये अन्धकार !
आज मुझे मिल गया है आर-पार ।

(११)

आज मन का राग बज रहा !
झूम उठी तनिक-तनिक दसों दिशा,
बोल उठे मधुर-मधुर सातों स्वर ।
आज मन सरोज खिल गया,
थिरक रही पंखुड़ी प्रकाश में
विहँस रही चेतना विकास में,
दो स्वरूप, दो दिशा हैं प्यार के !
एक देखती नयन के कोर से,
एक देखती है सिन्धु छोर से ।
पुकारती है आज मानवी कराह,
उभर रही है आज साधना की चाह,
धन्य-धन्य अलि का मधु पराग,
धन्य गूँजता विहाग !
आज मन की साधना की जीत,
उर की वेदना की हार ।
कहाँ वियोग है जिसे मिला न दूँ ?
गिरा है कौन जिसको मैं उठा न दूँ ?
कहाँ है प्यास जिसको कुछ पिला न दूँ ?
आज बज रहा है मन का तार !
मानव-हित-स्वार्थ रहित शान्तिमय,
आज करूँ प्रीति का प्रचार ।
हंस ! मुझे रहने दो इसी पार ।

●

गुजराती कहानी

भाई

रमणलाल वसन्तलाल देसाई

हिन्दुओं के साथ लग्न सम्बन्ध स्थापित करके ही मुस्लिम राजसत्ता स्थिर तथा व्यापक बनाई जा सकती है. अकबर के इस विचार के समर्थकों को अब भी कमी नहीं थी। अमीनाबाद के युवा नवाब अहमदखाँ ने अनुभव किया, कि पड़ोस के ठाकुर राजसिंह को अपने प्रति वफादार बनाये रखने का केवल एक ही मार्ग है। यही कि राजसिंह की रूपवती पुत्री के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा जाए। प्रस्ताव स्वीकार हो गया तो ठीक, नहीं तो युद्ध के लिए एक ठोस कारण मिल जाएगा।

राजसिंह छोटा, पर एक तेजस्वी ठाकुर था। अपनी तलवार के बल पर उसने मुस्लिम प्रदेश का कितना ही भाग अपने राज्य में मिला लिया था तथा अन्य मुस्लिम प्रदेशों को अपने अधिकार में करने की ताक में रहता था। कभी नवाब की अधीनता स्वीकार कर, तो कभी उसके विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर, वह सदा नवाब को चिन्तित रखता था। आस-पास के राजपूत ठाकुरों का संगठन कर नवाब के लिए संकट उपस्थित करने का उसका षड्यन्त्र भी छिपा हुआ नहीं था।

राजसिंह के साथ युद्ध करना विकट काम था। पहाड़ी प्रदेशों में छिप कर बाज़ की-सी चपलता से मुसलमान सेना पर टूट पड़ने वाला यह राजपूत इतनी अशान्ति उत्पन्न कर देता था कि उसे शान्त रखने में ही नवाब अपनी कुशलता समझता था। पर शान्त बैठे हुए राजसिंह की शान्ति भी कम भयंकर नहीं होती थी।

राजसिंह के साथ सम्बन्ध स्थापित करना ही नवाब को सर्वोत्तम मार्ग जान पड़ा। राजसिंह का हिन्दुत्व पर अभिमान प्रसिद्ध था। वह सरलता से उसे अपनी कन्या सौंप देगा, यह सम्भव नहीं था। पर नवाब के पास अपनी सलामती के दो ही मार्ग थे, या तो राजसिंह को जड़मूल से नष्ट कर दे, या फिर विवाह सम्बन्ध स्थापित कर उसे अपना बना ले।

अस्तु, नवाब अहमदखाँ ने सैनिक तैयारियाँ शुरू कर दीं। साथ ही यह अफवाह भी फैला दी कि निकट के स्वतन्त्र मुस्लिम राज्यों के विरुद्ध अपनी सेना का उपयोग करने वाला है। इतना ही नहीं उसने राजसिंह तथा उसके समान अन्य अर्ध स्वतंत्र ठाकुरों से सहायता भी माँगी। युद्ध तत्पर राजपूतों ने उसे सहायता देना स्वीकार भी कर लिया।

एक दिन सहसा ही नवाब अहमदखाँ ने युद्ध की तैयारियों के बीच राजसिंह के पास अपने विवाह का प्रस्ताव भेज दिया। भरे दरबार में नवाब के प्रतिनिधि ने उपस्थित होकर कहा—"नवाब साहब का फरमान है कि आप एक सप्ताह के दरमियान में ही अपनी पुत्री पद्मावती की शादी उनके साथ कर दें।"

नवाब का फरमान सुन कर राजसिंह आश्चर्य-चकित रह गया। मैत्री के इच्छुक नवाब ने यह मार्ग क्यों अपनाया, यही वह नहीं समझ सका। उसे अपने हिन्दुत्व का अपमान होता दिखा।

नवाब के संदेशवाहक ने फिर कहा—"आपकी कन्या को हिन्दू धर्म पालन करते रहने की पूरी-पूरी स्वतंत्रता रहेगी।"

'विवाह मुस्लिम के साथ होगा और धर्म हिन्दू का रहेगा।' राजसिंह को लगा, कि उसके धर्म की खिल्ली उड़ाई जा रही है। क्रोधावेश में उसने कहा—"अपने नवाब से कहना जाकर, कि आज सिर धड़ से जुदा कर, थाल में रखकर यहाँ भेजे। बाद में मैं उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के प्रस्ताव पर सोचूँगा।"

नवाब के प्रतिनिधि ने धमकी देते हुए नवाब के फरमान की अवज्ञा का विपरीत परिणाम समझाया। पर राजसिंह का हिन्दुत्व अभी जीवित था। यद्यपि युद्ध में नवाब के विरुद्ध वह अधिक समय तक नहीं टिक सकता था, और न ही पहाड़ियों में छिप कर, अचानक आक्रमण करके नवाब को अधिक दिनों तक संकट में डाले रखना ही उसके लिए सम्भव था तथा यह समझते हुए भी, कि उसी के किसी सेनापति को फोड़ कर पद्मावती का हरण करवा लेना भी नवाब के लिए असम्भव नहीं है, मृत्यु से न डरने वाले राजसिंह ने नवाब के प्रतिनिधि की धमकी की कोई परवाह नहीं की। नवाब के प्रस्ताव को तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर, वह उठा, और रनिवास में चला गया।

रनिवास में भी यह बात तुरन्त फैल गई थी। रानी ने राजसिंह के निर्णय की पुष्टि करते हुए कहा—"भले ही सारा राज्य नष्ट हो जाए, पर पद्मा का विवाह एक म्लेच्छ से कदापि न होगा।"

"पर पद्मा कहाँ है?" राजसिंह ने कहा।

(२)

पद्मा पहाड़ी पर स्थित एक तालाब के किनारे बैठी थी। शिकार की शौकीन इस राजकुमारी के आज कोई बाघ या मृग तो हाथ नहीं आया था, पर उसके हृदय को डाँवाडोल कर देने वाले एक राजकुमार से उसकी भेंट हुई। इस राजकुमार—विजयसिंह का नाम उसने सुन था। एक बार दूर से देखा भी था। राजसिंह के विकट कार्यों और षड्यन्त्रों में वह सदैव आगे होता था। राजसिंह और विजयसिंह के पिता मित्र थे। विजयसिंह के पिता की दो वर्ष पूर्व मृत्यु हो गई थी। पर विजय ने अपने पिता के मित्रों के साथ सम्बन्ध कायम रखा था। इतना ही नहीं, उसने राजसिंह को इतनी सहायता दी थी कि राजसिंह उसके उपकारों के बोझ से दबा हुआ सा था।

पहाड़ियों को पार कर, वह राजपूत युवक राजसिंह को एक महत्त्वपूर्ण सन्देश देने जा रहा था। तभी तालाब के किनारे फिर

साफा उतार कर, मुँह पर पानी के छींटे डालती हुई पद्मा पर उसकी दृष्टि पड़ी।

वीर हो या व्यापारी, हिन्दू या मुसलमान, पुरुष या स्त्री, सब के जीवन में एक क्षण समान रूप में आता है। और उस एक क्षण में सब कोई एक ही भाव में डूब जाते हैं। यह क्षण होता है प्रेम का।

विजय ने घोड़ा खड़ा कर दिया। हवा में उड़ते बालों को समेटती हुई, एक अकेली सुन्दरी को निर्जन पहाड़ी पर देखने की उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। पद्मा के साहसी शौक से वह परिचित था। उसने अनुमान से पद्मा को पहचाना और पद्मा भी उसे पहचान गई। एक दूसरे को देखते ही, पद्मा शिकार की निष्फलता भूल गई और विजयसिंह अपने महत्त्वपूर्ण सन्देश को भूल गया। वह घोड़े से नीचे उतरा और जल्दी-जल्दी साफा बाँधती हुई पद्मा के पास जा खड़ा हुआ। पुरुष वेश में छिपी हुई पद्मा की स्त्री देह उसे अत्यन्त मोहक लग रही थी।

"आप कौन हैं ?" विजय ने पूछा।

"मैं—पद्मा, राजसिंह की पुत्री।" पद्मा ने उत्तर दिया।

"शायद आप मुझे तो नहीं पहचानती होंगी ?"

"पहचानती हूँ !"

"तो बताइए, कौन हूँ मैं ?"

"आप·········आप विजयसिंह ही तो हैं ?" विजयसिंह के नाम का उच्चारण करते समय उसने अपने हृदय में कम्पन का अनुभव किया।

क्षण भर दोनों मौन रहे।

"क्या आज कोई शिकार नहीं मिला ?" विजय ने मौन भंग किया।

"नहीं।"

"आपके विरुद्ध राजकुमारों की बहुत ही जोरदार शिकायत है।"

"मेरे विरुद्ध ? क्यों ?"

"आपने इस सारे जंगल को बाघ विहीन कर दिया है न !"

पद्मा हँस पड़ी। अपनी प्रशंसा उसे अच्छी लगी, और प्रशंसा करने वाला उससे भी अधिक।

"कहाँ जाएँगे आप ?"

"आपके साथ ही चलूँगा।"

"क्यों ?"

"आपके पिता को एक महत्त्वपूर्ण सन्देश देना है।"

"कैसा सन्देश है यह ?"

"वह गुप्त है।"

"पर मेरे पिता मुझ से कोई बात छिपा कर नहीं रखते।"

"यह बात शायद छिपा कर रखें !"

"क्यों ?"

विजय विचार में पड़ गया। वह इस बात की तुलना करने लगा, कि राजकुमारी को सारी गुप्त बात बताये या नहीं ? पर पद्मा की बेधड़क दृष्टि ने अन्त में उससे उगलवा ही लिया।

"वह सन्देश आप ही के सम्बन्ध में है।"

"तब तो आपको मुझ से अवश्य ही कहना चाहिए।"

"पर मैं आपके साथ ही चल रहा हूँ न !"

"मैं किसी गैर के साथ नहीं जाती।" कह कर, पद्मा ने मुँह फेर लिया और आगे बढ़ने लगी। पेड़ से बँधा उसका अश्व हिनहिना उठा। एक ओर खड़े विजय के अश्व ने भी हिनहिना कर उत्तर दिया।

विजयसिंह कुछ समय तक जहाँ का तहाँ खड़ा रहा। फिर आगे बढ़ कर बोला—"क्षण भर रुकिए। आपके पिता शुभेच्छु हैं, बुजुर्ग हैं—फिर भी आप मुझे गैर समझती हैं ?"

पद्मावती रुकी। और दूर ही से जवाब दिया—"आप ने भी मुझे गैर समझा फिर यदि मैं भी आपको गैर न समझूँ तो क्या समझूँ ?"

"यह बात नहीं है, पद्मावती जी। मुझे डर लगा कि शायद आप उस सन्देश को सहन न कर सकेंगी।"

"कर सकूँगी। मुझे किसी बात से डर नहीं लगता।"

क्षण भर विजय मौन रहा। उसे लगा, कि ऐसी निर्भय राजकुमारी को राज्य की समस्त गुप्त बातें बताई जा सकती हैं ! साथ ही उसके मस्तिष्क में एक विचित्र कल्पना उत्पन्न हुई, कि यदि पद्मा उसकी पत्नी होती, तो क्या वह उससे कुछ छिपा सकता था ? नहीं, यह कोई पुतली नहीं है, इस योगमाया में राज्य स्थापित करने तथा नष्ट करने की क्षमता है।

"सुनिए, बताता हूँ। वह सन्देश आपके विवाह के सम्बन्ध में है।"

"मेरे विवाह का ? क्षत्राणी तो स्वयंवर करती है।"

"आपका स्वयंवर नहीं होगा।"

"क्यों ?"

"नवाब अहमदखाँ आपसे शादी करना चाहते हैं।"

"वह भले ही चाहा करे। विवाह करना न करना तो मेरी इच्छा की बात है।"

"आपके वर पहुँचने से पूर्व ही शायद इस प्रश्न का फैसला हो चुका होगा।"

"तब आप कौनसा सन्देश पहुँचाने जा रहे हैं ?"

"यही कि नवाब ने शादी के लिए जो सात दिन का समय दिया है, वह झूठ है। कल सूर्योदय से पूर्व ही आपके पिता का गढ़ घिर जाएगा।"

"मतलब ?"

"सात दिन से पहले ही आप को नवाब के साथ विवाह करना होगा।"

पद्मा स्थिर खड़ी रह गई। साफे के बन्धन से मुक्त होकर बालों की एक लट उसके मस्तक पर फरफरा उठी।

"आप मेरे पिता के मित्र हैं। आप क्या करेंगे ?" पद्मा ने पूछा।

"जो कुछ करने को आपके पिता जी कहेंगे, वही करूँगा।"

"उनके कहने की राह देखेंगे ? आपका धर्म क्या कहता है ?"

"मेरा धर्म सत्य की सहायता करने को कहता है।"

सन्ध्या काल का सुनहला रंग सरोवर को सुनहला बना रहा था। पर उस सुनहले रंग के पीछे एक काला धब्बा भी झूल रहा था।

"विजय, जो कुछ मैं माँगूँ, क्या वह दे सकोगे ?" सर झुकाए पद्मा ने पूछा।

विजय सोचने लगा, पूरा नाम न लेकर क्या पद्मा उसके निकट नहीं आ रही है ? और यह क्या माँगने जा रही है ? स्त्री विषय के विचारों से सदैव दूर रहने वाला विजय आनन्द और भय अनुभव करने लगा।

"आप क्या माँगेंगी ?" अन्त में उसने झिझकते हुए पूछा।

"पूछ कर देना चाहते हो, तो मुझे कुछ नहीं माँगना। माँगने वाले को सर्वस्व दे देने का आर्य नियम........"

"माँगिए, जो चाहेंगी, वही दूँगा।"

"अपनी तलवार दे दीजिए।"

"तलवार ?" विजयसिंह ने आश्चर्य से पूछा।

क्षण भर पूर्व उसने अनेक मधुर स्वप्नों की रचना कर डाली थी। पद्मा प्रेम व्यक्त करेगी, साथ-साथ चलने का आग्रह करेगी। उसने सोचा था, कि पद्मा उससे विनती करेगी, कि वह उसे भगा कर ले जाए और नवाब के शिकंजे में से बचा ले ! पर जब पद्मा ने तलवार माँगी, तो वह आश्चर्य चकित रह गया।

"हाँ !" पद्मा ने कहा।

"क्या करोगी ?"

पद्मा ने मुँह फेर लिया।

"नहीं, नहीं, लीजिए ! मैं अपनी प्रिय तलवार आपको देता हूँ।"

सचमुच विजय को अपनी तलवार बहुत प्यारी थी। तलवार देते समय उसे लगा, कि जैसे उसका एक अंग काटा जा रहा हो।

"क्या तलवार देना अच्छा नहीं लगा ?" पद्मा ने पूछा।

"वह मेरा एक अंग बन गई थी।"

"तो मैं यह कमी पूरी किए देती हूँ।" अपनी तलवार विजयसिंह को देती हुई पद्मा बोली।

बिना कुछ बोले विजय ने पद्मा की तलवार स्वीकार करली। पर वह यह नहीं समझ सका, कि पद्मा अपने इस विचित्र व्यवहार से क्या सूचित कर रही है।

"अब तुम वापस लौट जाओ, विजय ! तुम्हारा सन्देश मैं पिता जी से कह दूँगी।" पद्मा ने कहा।

"और मुझे क्या करना चाहिए ?"

"नवाब के साथ मैं विवाह नहीं करूँगी। तुम कहते हो, कि नवाब हमें घेर लेगा, तो तुम हमें उस घेरे में से मुक्त करना।"

"तुम मेरे साथ भाग चलो, पद्मा।"

"आज के बाद जब भी तुम कहोगे, मैं तुम्हारे साथ चली चलूँगी; पर आज नहीं।"

दोनों की आँख मिलीं। दोनों एक दूसरे के निकट आ रहे थे। दोनों के बीच जो सम्मान सूचक सम्बोधन था, वह अपने आप लोप हो गया।

× × ×

सहसा ही चारों ओर अंधकार-सा फैल गया। पर वह अंधकार हिल क्यों रहा था ?

"जल्दी करो पद्मा, नवाब की सेना अनुमानित समय से पूर्व ही आ रही है !"

पद्मा शीघ्रता से अपने घोड़े के पास गई। वह जब तक घोड़े पर सवार नहीं हो गई, विजय वहीं खड़ा रहा। फिर वह अपने घोड़े के पास गया।

पद्मा ने तभी सहसा पुकारा—"विजय !"

"क्या ?" जल्दी से उसके पास आकर विजय बोला।

पद्मा कुछ बोले बिना विजय की ओर एकटक देखने लगी। विजय कुछ समझ नहीं सका।

"क्या बात है, पद्मा ?"

"कुछ नहीं !"

"फिर मुझे किस लिए बुलाया था ?"

"तुम्हारा मुँह देखने के लिए।" कहकर, पद्मा ने तेजी से अपना अश्व दौड़ा दिया। विजय भी पहाड़ों में कहीं अदृश्य हो गया।

पद्मा ने जब अपने शिकारी साथियों के साथ गढ़ में प्रवेश किया, तब दीया-बत्ती का समय हो गया था। गढ़ में प्रवेश करते ही उसने किले के फाटक बन्द करवा दिए। फिर चिन्ताग्रस्त पिता के पास पहुँच कर विजयसिंह का सन्देश सुनाकर बताया, कि देखते-देखते नवाब के सैनिक गढ़ को घेर लेंगे।

(३)

युद्ध के डंके गड़गड़ाने लगे, तुरहियाँ बजने लगीं और सशस्त्र सैनिक राजसिंह के दरबार में इकट्ठे होने लगे। और जब नवाब के सैनिक गाँव की सीमा में प्रविष्ट हुए, तो उन्हें सारे फाटक बन्द मिले और किला सावधान दिखाई दिया।

एक ही हमले में, एक ही रात में राजसिंह के गढ़ पर आधिपत्य जमा कर पद्मा के साथ विवाह करने की नवाब की योजना सफल नहीं हुई। नवाब के हमले को रोकने की राजसिंह ने पूरी तैयारी कर रखी थी।

परन्तु नवाब की सेना बहुत ही सुगठित तथा अनुशासन-शील थी। राजसिंह जैसा ठाकुर इस सेना के सामने एक हफ्ते भी नहीं टिक सकता था। राजसिंह की सेना और सेनापति सारे जीवन युद्ध करते-करते थक भी गए थे। राजकुमारी की शादी राजा की निजी बात थी। अनेक राजपूत राजा अपनी कन्याएँ मुस्लिम शासकों को सौंप कर शान्ति प्राप्त कर चुके थे। राजसिंह की पुत्री पद्मावती का विवाह नवाब के समान वीर और अच्छे मुस्लिम शासक के साथ कर देना बहुतों की दृष्टि में अपकीर्ति का कार्य नहीं था।

इस तरह की धारणा वाले एक-दो सेनापति राजसिंह की सेना में थे। नवाब ने भी केवल सैनिक तैयारियाँ ही नहीं की थीं, बल्कि उसने अपने कुछ गुप्तचर राजसिंह के दरबार में छोड़ रखे थे। उन्होंने सुस्त पड़े सेनापति तथा सैनिकों की लापरवाही का लाभ उठा कर, सवेरा होते ही किले का एक फाटक खोल दिया। नवाब की सेना के लिए इतना ही पर्याप्त था। समुद्र की तरंगों की भाँति राजसिंह के सैनिकों को चीरती हुई नवाब की सेना दरबार गढ़ तक जा पहुँची।

गाँव का किला बहुत मजबूत था, इसी कारण दरबार गढ़ की सुरक्षा का कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया गया था। प्रातःकाल से पूर्व ही किला फतह हो जाएगा, राजसिंह को यह आशंका नहीं थी। असावधान सैनिकों व सेनापतियों की लापरवाही से लाभ उठाने वाले गुप्तचरों की तो उसने कल्पना तक नहीं की थी।

अत्यन्त सरलता से—आश्चर्यजनक सरलता से, नवाब अहमदखाँ ने दरबार गढ़ में प्रवेश किया। गढ़ में नवाब ने युद्ध की कल्पना की थी, पर वहाँ युद्ध के बदले राजसिंह के मन्त्री ने आगे बढ़ कर नवाब का अभिवादन करते हुए कहा—"महाराज आप की राह देख रहे हैं?"

"मेरी?" नवाब को और भी अधिक आश्चर्य हुआ। उसे इस तरह के स्वागत की स्वप्न में भी आशा नहीं थी। उसने तो सोचा था, कि राजसिंह तक पहुँचने में उसे बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

"जी हाँ। राजकुमारी का विवाह हो रहा है। आप के कल्याणकारी आशीर्वाद की अपेक्षा है।"

"राजकुमारी का विवाह?"

"जी हाँ! कुँवरानी का विवाह।"

"पद्मावती की शादी! किसके साथ?" नवाब ने क्रोधावेश में पूछा।

"विजयसिंह के साथ।"

"विजयसिंह के साथ? वह तो आज सवेरे ही कैद हो चुका है।"

"सम्भव है। पर यह भी सत्य है, कि पद्मावती का विवाह विजयसिंह के साथ ही हो रहा है।"

क्रोध से फुँफकारते हुए नवाब ने विवाह-मण्डप में प्रवेश किया। राजसिंह ने खड़े होकर उसका सत्कार करने का प्रयत्न किया। पर नवाब ने उसकी ओर विशेष ध्यान न देकर, देखा कि वहाँ वास्तव में विवाह हो रहा है।

वधू के निकट एक नंगी तलवार रखी हुई थी। उसी तलवार के साथ उसका विवाह हो रहा था। नवाब ने सुन रखा था, कि राजपूतों के नियमानुसार कन्या का विवाह तलवार के साथ भी हो सकता है।

"यह विवाह निरर्थक है।" नवाब ने गर्जना की।

"क्षत्राणी का विवाह कभी निरर्थक नहीं होता।" राजसिंह ने कहा।

"विजय इस समय मेरी कैद में है। जब उसे सूली पर चढ़ाया जाएगा, तब तुम्हें इस विवाह की निरर्थकता मालूम होगी।" नवाब ने कहा।

"मुझे अपना मित्र समझें, नवाब साहब।" राजसिंह ने प्रार्थना की।

"नवाब के हुक्म की हँसी उड़ाने वाले की मित्रता सूली से हो सकती है, नवाब से नहीं।" राजसिंह की ओर सरोष नेत्रों से घूरते हुए नवाब ने कहा। और फिर अपने सेनापति की ओर घूम हुक्म दिया—"जितने भी यहाँ हैं, सब को कैद कर लो।"

क्षण भर में राजसिंह, पद्मा, ब्राह्मण, मन्त्री और रक्षक कैद कर लिए गए। आत्महत्या करने के हेतु उठाई हुई तलवार पद्मा के हाथ में ही रह गई। सैनिकों ने उसे इस तरह बाँध दिया, कि वह अपने शरीर पर चोट न कर सके।

"बाहर दो सूली तैयार करो, और राजसिंह और विजयसिंह को सूली के पास पहुँचाओ।" नवाब ने हुक्म दिया।

सबों को विश्वास हो गया कि यदि पद्मावती नवाब के साथ विवाह करने के लिए राजी नहीं हुई, तो राजसिंह तथा विजयसिंह को अवश्य ही सूली पर चढ़ा दिया जाएगा।

(४)

देखते-देखते मैदान में दो चमकती हुई सूलियाँ तैयार हो गईं। नवाब के एक सैनिक ने आकर कहा—"खुदावन्द, सूलियाँ तैयार हैं।"

"ठीक। राजसिंह और विजयसिंह कहाँ हैं?"

"सूलियों के पास ही हैं, जहाँपनाह।"

"पद्मावती को झरोखे पर पहुँचा दो। मैं और पद्मावती साथ-साथ ही सूलियों का प्रयोग देखेंगे।"

सैनिक पद्मावती को झरोखे पर ले गए। पद्मावती के मन में भले ही डरावने विचार उठ रहे हों, पर उसके हाव-भाव में जरा भी भय नहीं दीख रहा था।

सूली के पास खड़े हुए विजयसिंह और राजसिंह, दोनों ने उसे झरोखे पर खड़ी देखा। देख कर, दोनों की आँखें झुक गईं। विजयसिंह शर्म से गड़-सा रहा था। पद्मा की रक्षा में जूझ पड़े उस वीर को नवाब के सैनिक बड़ी कठिनाई से पकड़ पाये थे। पर इस समय वह पद्मा की रक्षा करने में असमर्थ था और इसी कारण वह मन ही मन छटपटा रहा था।

विजयसिंह के साथ यदि वह भाग निकली होती, तो? पर विवाह से पूर्व विजयसिंह के साथ भाग जाना अनीतिपूर्ण काम समझा जाता। और फिर उसे अपने पिता को विजयसिंह का सन्देश भी तो पहुँचाना था। इसी कारण उसके साथ भागने का विचार छोड़, वह उससे तलवार माँग लाई थी।

विजयसिंह और राजसिंह की मुक्ति का केवल एक ही मार्ग था, कि वह नवाब के साथ विवाह कर ले। पर यह अब असम्भव था। पर यदि विजय की तलवार के साथ विवाह नहीं हुआ होता, तो? तो शायद प्रियतम और पिता की रक्षार्थ वह अपना बलिदान कर देती। पर विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात यह विचार ही निरर्थक था। पर नवाब के साथ विवाह करने के अतिरिक्त उन दोनों की मुक्ति भी सम्भव नहीं थी। पद्मा भाँति-भाँति के विचारों से मन ही मन छटपटाने लगी। झरोखे से कूद पड़ने का भी उसने विचार किया। उसने पिता की ओर देखा, पति की ओर देखा, सूलियों की ओर देखा, और फिर अपने पीछे देखा। नवाब अहमदखाँ उसके पीछे बहुत ही पास में खड़ा था। झरोखे से कूद पड़ना भी असम्भव था।

"पद्मा", नवाब की आवाज़ सुनाई दी। स्वर में मिठास था। पर पद्मा ने न तो कोई उत्तर दिया और न नवाब की ओर देखा ही।

पद्मा के व्यवहार से कुछ कठोर होकर, नवाब फिर बोला—"पहले किसको सूली पर चढ़ाया जाए?"

"तुम मुसलमान बहुत ही क्रूर होते हो!" पद्मा का स्वर काँप रहा था।

"कैसे ?"

"एक स्त्री को प्राप्त करने के हेतु, इतनी घोर हिंसा करने वाले क्या क्रूर नहीं होते ?"

"स्त्री के लिए ही हिंसा करने वाले हिन्दुओं के नाम गिनाऊँ ?"

उसने सोचा, वास्तव में स्त्रियों के लिए केवल मुसलमानों ने ही नहीं, हिन्दुओं ने भी घोर हिंसा की है ।

"मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लो, पद्मा। मैं राजसिंह और विजयसिंह, दोनों को छोड़ दूँगा !" नवाब ने नम्रता से कहा।

"उन्हीं से पूछ देखिए, क्या वह आपकी शर्त पर जीवन-दान चाहते हैं ?" पद्मा ने कहा।

"आओ, तुम्हारे सामने ही पूछता हूँ। पर मान लो, यदि उन्होंने मेरी शर्त मान ली, फिर ?"

"फिर मैं सोचूँगी, कि मुझे क्या करना चाहिए।" कह कर, पद्मा ने वस्त्रों के भीतर छिपी कटार पर हाथ फेरा।

नवाब अहमदखाँ हँसा। उसकी हँसी में क्रूरता के बदले स्नेह का भाव देख कर पद्मा चौंकी।

"चलो, तो उन्हीं से पूछ कर तय कर लें।" जीने की ओर बढ़ते नवाब ने कहा।

इस समय यदि पद्मा चाहती तो अपनी छिपाई हुई कटार से नवाब को कत्ल कर सकती थी। पर उसने वह कटार नवाब के लिए नहीं, अपनी देह-रक्षा के लिए रखी थी। यदि वह नवाब को कत्ल कर देती, तो इसके सैनिकों से अपनी रक्षा किस भाँति कर पाती। और फिर यदि कहीं पिता या पति ने नवाब की शर्त मञ्जूर कर ली, तो उस समय अपने सीने को चीरने के लिए उसे कटार की जरूरत पड़ेगी। उसने यही तय किया कि कटार और प्राण साथ-साथ रहें और साथ-साथ ही जाएँ।

सीढ़ियाँ उतरते नवाब ने पीछे मुड़ कर देखा। पद्मा धीरे-धीरे उतर रही थी।

"पहले किससे पूछना है ? राजसिंह से या विजयसिंह से ?"

"दोनों से मैं स्वयं ही पूछूँगी।" पद्मा ने उत्तर दिया।

"जाओ, तुम खुद ही पूछ आओ। अपनी मौजूदगी से मैं बे फायदा नहीं उठाना चाहता। मैं यहीं खड़ा हूँ।"

पद्मावती मैदान की ओर जाने लगी, तो नवाब ने कहा—"व से मैंने उन्हें बुला लिया है। सामने परदे के पीछे हैं।"

पद्मा ने परदा उठाया। उसी स्थान पर उसने विधिपूर्व विजयसिंह की तलवार के साथ विवाह किया था! उसका हृदय कौं उठा। जहाँ विवाह हुआ है, क्या वहीं पिता या पति विवाह को अमान ठहराएँगे ? पर कमरे में प्रवेश करते ही सहसा ब्राह्मणों के मन्त्रोच्चा से दरबार गद्गद गूँज उठा।

नवाब साहब ने खुद पद्मावती और विजयसिंह का विधिपूर्व विवाह करवाया।

विवाह सम्पन्न होने के बाद पद्मावती के गले में मोतियों का हा पहनाते हुए नवाब ने कहा—"एक मुस्लिम का स्पर्श तुम्हें अपवि तो नहीं बना देगा न, पद्मा ?"

पद्मा की आँखों में खुशी के आँसू छलछला आए!

नवाब ने यह सोचा था कि अनिच्छित विवाह करने के बद इच्छित विवाह करवा कर ही वह हिन्दुओं का हृदय अच्छी तरह जी सकेगा। इसीलिए उसने सबको आश्चर्य-चकित करते हुए सहसा इस प्रकार के विवाह का आयोजन किया था।

"नवाब साहब……" कृतज्ञता के आवेश में गदगद कंठ से पद्म आभार मानने जा रही थी।

"अब मैं तुम्हारा भाई हूँ, नवाब नहीं! मुझे भाई कहकर पुकारा करो, पद्मा!"

सबों को विश्वास हो गया कि एक मुसलमान को भी भाई बन आता है।

●

बाले ! सन्देह काहे को है तुम्हें
कि भगवान नहीं है इस धरती पर ?
दूसरों की दुर्गति देख रोते जो
टपकता भगवान उनकी आँसुओं में।

—जी० जाषुवा

(तेलगू रचना 'अनाथ' के मुखपृष्ठ से)

●

साइप्रस की समस्या

अवनीन्द्र कुमार

हमारे देश के लोगों का कल्याण और जीवन साइप्रस पर निर्भर है, क्योंकि यह संरक्षण भूमि है और सामरिक अड्डा है। इन हितों की रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है। यह साम्राज्यवाद नहीं है। यह किसी भी सरकार का स्पष्ट कर्त्तव्य हो सकता है और हम इस कर्त्तव्य का पालन करेंगे।

यह है ब्रिटिश प्रधान मन्त्री सर ऐंटनी ईडन की घोषणा, जो कि उन्होंने 'कॉमन-सभा' में साइप्रस पर हुई बहस का जवाब देते हुए १४ मार्च १९५६ को की थी। साइप्रस के प्रति इन दो महीनों में ब्रिटेन के रवैये में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। क्योंकि २१ मई को ब्रिटिश उपनिवेश मन्त्री मि० लेनाक्स बायड ने पुनः इसको 'कॉमन-सभा' में दोहराया और कहा—

यह एक द्वीप है, जिसकी प्रभुत्व शक्ति का प्रश्न भूगोल के कठोर सत्य के कारण मध्य-पूर्व के लाखों लोगों के जीवन के साथ ही नहीं, अपितु साधारणतः दुनिया भर के लोगों के हित के साथ जुड़ा हुआ है। हम इस द्वीप को छोड़ देंगे, यदि इस द्वीप की प्रभुत्व शक्ति हस्तान्तर कर दी गई, तो कम्युनिस्ट और समस्त पश्चिमी जगत के मध्य का संतुलन बदल जाएगा। हमने यह बात स्पष्ट कर दी है और घोषित कर दिया है कि इस स्थिति के रहते हुए इस प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता और मुझे यह कहने की ज़रूरत नहीं कि तुर्की सरकार भी प्रभुत्व शक्ति में परिवर्तन करने की विरोधी है।

ब्रिटिश सरकार केवल साइप्रस के बारे में ही नहीं, बल्कि अदन, सिंगापुर, जिब्राल्टर आदि के बारे में भी इसी प्रकार सोचती है। ये चारों स्थान दुर्ग हैं, या समुद्र पार के ब्रिटिश सैनिक संगठन के नाके हैं और ब्रिटेन के माध्यम से इनका सम्बन्ध 'नाटो' (उत्तरी अटलांटिक सन्धि संस्था) और 'सीटो' (दक्षिण एशिया सन्धि संस्था) और बगदाद पैक्ट से है। पश्चिमी राष्ट्रों ने तथाकथित कम्यूनिस्ट भय का मुकाबला करने के लिए जो व्यूह रचना की है उसमें इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सोवियत रूस के चारों ओर घेरा डालने की व्यूह रचना में, मजदूर नेता श्री एनेयूरियन बेवन के शब्दों में, ब्रिटेन का यह अंशदान है। इसके साथ फ्रांस का अंशदान और डालर की व्यावसायिक प्रभुता के बल पर स्पेन, जापान और अन्यत्र प्राप्त किए हुए अड्डों को जोड़ने से बनी सैनिक अड्डों की माला सोवियत रूस की महत्वाकांक्षा का जवाब है। पश्चिमी जगत इन स्थानों से एक साथ विनाशक अणु-बम की वर्षा कर सोवियत रूस की गति को रोक सकता है, या जहाँ का वहाँ इसके द्वारा उसको 'कीलित' कर सकता है। पश्चिमी जगत के सेनानी इस प्रकार सोचते हैं।

किन्तु इसके साथ ही भूमध्य सागर के दोनों तटों, अरब जगत और अन्यत्र जो राष्ट्रीयता की उद्दाम लहरें उठ रही हैं, राष्ट्रवाद का जो प्रचण्ड तूफान उठ रहा है, उसकी सर्वथा उपेक्षा की जा रही है। साइप्रस, अदन, सिंगापुर आदि स्थानों के लोगों में किन्तु इस बात के लिए उत्साह नहीं है कि वे महाशक्तियों के संग्राम में अपने आप को होम दें, स्वाहा कर दें। उनकी इस अनिच्छा का एक बड़ा कारण है। उनको नागरिकता तक के भी अधिकार प्राप्त नहीं हैं। यदि साइप्रस को सम्मानपूर्ण दर्जा दिया जाय तो ग्रीस को इसमें आपत्ति न होगी कि जब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति अपेक्षा करती है, ब्रिटेन अपना नौ व हवाई अड्डा वहाँ रखे। किन्तु ब्रिटेन यह मार्ग अपनाने को तैयार नहीं। वह ग्रीस और तुर्की के बीच मैत्री कायम रखने के लिए साइप्रस के द्वीप के लोगों को न्यायाधिकार से वंचित करना उचित समझता है। इसके लिए सर ऐंटनी ईडन ने प्राचीन इतिहास और पुरानी सन्धियों का सहारा लिया है। अतः उन पर भी एक दृष्टिपात करना चाहिए। क्योंकि ब्रिटेन का कहना है कि साइप्रस की समस्या ऐंग्लो-ग्रीक नहीं, ग्रीस-तुर्की की नहीं, साइप्रस के लोगों और ब्रिटिश सरकार के मध्य की नहीं। इसका सम्बन्ध विश्व-शान्ति से है। सत्य क्या है और वस्तु-स्थिति क्या है?

भूमध्य सागर में साइप्रस द्वीप का स्थान तीसरा है। पूर्व से पश्चिम में इसकी अधिक से अधिक लम्बाई १४० मील और उत्तर से दक्षिण की ओर इसकी अधिक से अधिक चौड़ाई ६० मील है। इसका क्षेत्रफल ७,५७२ वर्गमील है और विस्तार में वेल्स के आधे भाग से भी कुछ कम है। किन्तु इस द्वीप की भौगोलिक स्थिति महत्त्वपूर्ण है। मिस्र से यह २४० मील दूर है। पश्चिम में सीरिया इससे ६० मील दूर है और इसके दक्षिण में तुर्की केवल ४० मील दूर है। सर ऐंटनी ईडन के शब्दों में 'आइल आफ़ मैन' द्वीप इंग्लैंड से जितनी दूर है, उतनी ही दूर साइप्रस तुर्की से है। इस कारण साइप्रस के विषय में कोई भी निर्णय उसकी सहमति से ही किया जा सकता है।

साइप्रस की कुल आबादी ५,१७,००० है। प्रति वर्गमील १४५ व्यक्ति बसते हैं। १९४६ की जनगणना की अपेक्षा १९५४ में ६७,००० अर्थात १५ प्रतिशत आबादी बढ़ी है। साइप्रस की समस्या को हल करने का सवाल जब सामने आता है तब अल्पसंख्यकों का प्रश्न भी उठाया जाता है, जैसे कि ब्रिटिश शासक भारत में उठाया करते थे। अतः उसकी जनसंख्या के विभिन्न तत्वों को देखना चाहिए—

ग्रीक	३,६१,९९९	८०·२ प्रतिशत
तुर्क	८०,५४९	१७·९ प्रतिशत
अन्य	८,३६७	१·९ प्रतिशत

साइप्रस की राजधानी निकोसिया है और इसकी आबादी ५३,३०० है।

अन्य प्रसिद्ध नगर हैं, लिमासोल (२२,८००), पाफोस (५,२००) और कीरेनिया (२,९००)।

इसकी जलवायु बहुत अच्छी है ? मृत्यु-संख्या इस द्वीप की दुनिया भर में सब से कम है।

साइप्रस द्वीप की समस्या ने अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर लिया है। इसका एक कारण इसकी पराधीनता भी है। नई खुदाई इसके इतिहास को ३२०० ई० पू० पहले तक ले गई है। इस समय नदियों के किनारे और पर्वतों पर ही बस्तियाँ बसी थीं। १६०० से १०५० ई० पू० तक यहाँ अलामिया लोगों का राज्य था और ये लोग मिस्र के करद शासक थे। मिसेनियम साम्राज्य के अन्तर्गत यह कुछ वर्ष रहा। प्रसिद्ध है कि इतिहास प्रसिद्ध ट्रोजन-युद्ध से लौटते हुए ग्रीक लोग यहाँ आए और यहाँ बस गए। इस समय से ग्रीक लोगों की यहाँ बस्ती बसने लगी। किन्तु यह द्वीप कभी ग्रीस का एक भाग होकर रहा, ऐसा इतिहास नहीं बताता और आज के इसके शासक इस बात पर बहुत बल देते हैं।

साइप्रस पर मिस्रियों ने भी आक्रमण किया और वे कुछ दिन इसके शासक रहे। फिर एशिया के सम्राटों के राज्य का यह एक भाग रहा। ३२५ ई० पू० में सिकन्दर ने इसको जीता। सिकन्दर का साम्राज्य जब उसके सेनापतियों में बँटा तो साइप्रस मिस्र के शासक टालमो को मिला। ५४ ई० में रोम साम्राज्य में यह सम्मिलित हो गया। रोम साम्राज्य के विभक्त होने पर यह बाईजेंण्टियम साम्राज्य में रहा। ३०० से ७वीं सदी तक अरबों और ग्रीक लोगों के मध्य इस द्वीप के लिए बराबर संघर्ष चलता रहा। साइप्रस पुनः बाईजेंण्टियम साम्राज्य का एक भाग हो गया और इस प्रकार २०० वर्ष रहा।

क्रूसेड वीर रियार्ड ने साइप्रस को ११९१ में जीता। किन्तु ब्रिटेन ने उस समय इसको अपने ऊपर एक व्यर्थ का बोझ समझा और नाइट आफ हेम्पलर के हाथ बेच दिया। इसने जैरूसलेम के पदच्युत राजा गुई डी लूसी मनान को यह द्वीप दे दिया। लूसी मनान वंश १४८९ ई० तक यहाँ राज्य करता रहा। १४९८ में वेनिस शहर राज्य का इस पर अधिकार हो गया। १५७१ में तुर्की ने इसको जीता और १८७८ तक यह उसके ही अधिकार में रहा। तुर्की का शासन ३०७ वर्ष इस द्वीप पर रहा और इस एक कारण से साइप्रस-समस्या के साथ तुर्की का प्रश्न भी जोड़ दिया गया है।

रूस ने कुछ भाग तुर्की का दबा लिया था। उस हिस्से को वापस लेने में तुर्की ने अंग्रेज़ों से सहायता माँगी। तुर्की ने इस सहायता के बदले साइप्रस द्वीप अंग्रेज़ों को दे दिया। अंग्रेज़ तुर्की की इस मैत्री को आज भी भुलाना नहीं चाहते। १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ने पर इस द्वीप का ब्रिटेन ने स्वामित्व और प्रभुत्व भी हस्तगत कर लिया। १९२५ में ग्रीस तुर्की और ब्रिटेन के बीच लासेन-सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार ग्रीस और तुर्की दोनों ने साइप्रस पर अंग्रेज़ों का अधिकार स्वीकार किया। १९२५ में साइप्रस शाही उपनिवेश घोषित किया गया और यह आज भी ब्रिटेन का एक शाही उपनिवेश है। १९१४ में एक समय आया था जब ब्रिटेन यह द्वीप ग्रीस को देने के लिए इस शर्त पर तैयार हुआ था कि ग्रीस लड़ाई में सर्विया की मदद करे। पर यह प्रस्ताव ही रहा इससे आगे नहीं बढ़ा। फलतः आज साइप्रस की समस्या सामने है और ग्रीस और साइप्रियाट ग्रीक लोग स्वयं भाग्य निर्णय के अधिकार माँग रहे हैं और ब्रिटेन इसको स्वीकार करने से इन्कार कर रहा है। ब्रिटिश सरकार ने एक से अधिक बार और ब्रिटिश उपनिवेश मन्त्री मि० लेनाक्स बायड ने तो १४ मई को विदेशी पत्रकारों के सम्मुख और २१ मई को 'कॉमन-सभा' में पुनः घोषित किया है कि जब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में अन्तर नहीं आता, साइप्रस के ग्रीक लोगों के स्वयं भाग्य-निर्णय की माँग पर विचार नहीं किया जा सकता। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने साथ ही कहा है कि वह नहीं कहते कि साइप्रस के ग्रीक लोगों की इच्छा का सम्मान कभी नहीं किया जाएगा। किन्तु वह समय कब आएगा ? यह अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर निर्भर है। ब्रिटेन का एक अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व है। उसको वह साइप्रस का अप्रतिहत और अप्रतिबन्धित उपयोग करने का अधिकार रहने के बिना पूरा नहीं कर सकता।

वह अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व क्या है ? १९५० में फ्रांस और अमेरिका के साथ ब्रिटेन ने भी यह गारण्टी दी है कि इज़राइल और अरब राष्ट्रों के बीच की अन्तरिम सीमा की रक्षा करेगा। 'नाटो' के ग्रीस और तुर्की दोनों सदस्य हैं। इनकी रक्षा की ज़िम्मेदारी ब्रिटिश नौ हवाई सेना तभी पूरी कर सकती है जब साइप्रस द्वीप उसके अधिकार में रहे। अब 'बगदाद पैक्ट' के कारण मध्य-पूर्व या पश्चिमी एशिया में शान्ति स्थापित करने का बोझ भी उस पर आ गया है। किन्तु प्रश्न तो यह है कि इससे साइप्रस के लोगों का भी कुछ सम्बन्ध है ? अन्यों की रक्षा की ज़िम्मेदारी ब्रिटेन ने अपने पुराने साम्राज्य मार्ग की रक्षा के लिए उठाई है। यह क्यों न माना जाए ? ब्रिटेन का कहना है कि वह 'यू० एन० ओ०' में विश्वास करता है। वह प्रशान्त घोषणा का समर्थक है। पर जब साइप्रस के ८२ प्रतिशत ग्रीक और ग्रीस सरकार इस द्वीप को ग्रीस के अधिकार में देने के लिए कहते हैं तो ब्रिटेन अपना प्रभुत्व उठाने से इन्कार कर देता है और इसको विश्व-शान्ति के हित में आवश्यक बताता है। प्रश्न यह है कि क्या विश्व-शान्ति के नाम मानव समाज के एक भाग को स्वभाग्य निर्णय के अधिकार से वंचित रखना ठीक है ? स्वेज़ नहर का परित्याग करने के बाद ब्रिटिश बेड़े को कहीं आश्रय चाहिए। क्या इसी कारण किसी द्वीप के लोगों को स्वभाग्य निर्णय के अधिकार से वंचित करना ठीक होगा ?

साइप्रस आज काँटेदार तारों, कटुता और पीठ पीछे गोली चलने का देश है। ब्रिटिश शासकों की अपेक्षा साइप्रियाट लोग अधिक कष्ट भोग रहे हैं। क्योंकि हर रोज किसी न किसी गाँव में 'कर्फ्यू' लगाने की घोषणा की जाती है। किसी अंग्रेज़ पर हमला होने पर यदि उसके बारे में गाँव वाले कुछ नहीं बताते तो उस गाँव पर सामूहिक जुर्माना किया जाता है। सबसे बुरी बात यह है कि साइप्रस के स्कूल बन्द हैं। माध्यमिक स्कूलों में पढ़ने वाले १२,००० छात्रों में से ९,०[illegible] विद्यार्थी बगैर पढ़ाई के गलियों में घूमते हैं। ९२,००० प्राथमिक छात्रों में से केवल १५,००० छात्र प्राइमरी शिक्षा पा रहे हैं। स्कूल ग्री[illegible] समर्थकों और अंग्रेज़ विरोधियों के केन्द्र हैं। इस कारण स्कूलों को बन्द कर दिया गया है।

साइप्रस में इस समय १८,००० ब्रिटिश सैनिक हैं। स्नान करने के समुद्र तटों को काँटेदार तारों से घेर दिया गया है। ब्रिटिश अधिकारी और ब्रिटिश सैनिक पहरे में दूकानों से सामान खरीदने जाते हैं। अंग्रेज़ों के बच्चे जब बसों में स्कूलों में पढ़ने जाते हैं तो सैनिक उनके साथ जाते हैं। मोटरों में ताला लगाना आवश्यक है। अन्यथा उनमें बम रख दिया जाता है। रात को अंग्रेज़ सब खिड़कियाँ बन्द करके सोते हैं। क्योंकि खिड़की को खुली रखना 'ए० ओ० का०' (ग्रीस के साथ साइप्रस को दिलाने का आन्दोलन करने वाली दक्षिण पक्षीय संस्था) को दस्ती बम डालने का निमन्त्रण देना है।

यात्री को प्रथम दृष्टि में दुर्भावना और हिंसा का केन्द्र मालूम देता है। किन्तु सत्य यह है कि साइप्रस की कहानी अनिच्छा और उपेक्षा की एक कथा है। ८२ प्रतिशत ग्रीक लोगों ने अपनी इस इच्छा को कभी छिपाया नहीं है कि वे ग्रीस के साथ मिल कर रहना चाहते हैं। सन् १८७८ में जब ब्रिटेन ने तुर्की से यह द्वीप लिया तब साइप्रस के ग्रीक 'ऑर्थोडाक्स' आर्कबिशप ने इस परिवर्तन का स्वागत करते हुए कहा था: इस बात को किसी को भूल न जाना चाहिए कि साइप्रस अन्ततोगत्वा ग्रीस के साथ मिलना चाहता है। चालीस वर्षों से भी अधिक पहले जब सर विंस्टन चर्चिल साइप्रस गए थे तो इस महान राजनीतिज्ञ ने कहा था कि उसने केवल एक ग्रीक शब्द 'एनोसिस' ग्रीस के साथ सम्मिलन सीखा है। सन् १९३१ में हताश ग्रीक सिपाहियों ने गवर्नर का राजमहल जला दिया और दंगे में सैकड़ों आदमी मारे गए। ब्रिटिश सरकार ने प्रतिशोध में आर्कबिशप को निर्वासित कर दिया।

इस चेतावनी के बाद भी साइप्रस के असन्तोष और क्षोभ को दूर करने के लिए कुछ नहीं किया गया। ग्रीस आज भी ग्रीक शिक्षकों का वेतन देने और पाठ्य-क्रम निश्चित करने के लिए तैयार है। किन्तु इसके साथ ही ग्रीस ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि साइप्रस के ग्रीक स्वप्न में भी ब्रिटिश शासन को सहन नहीं करेंगे। सन् १९५४ में तात्कालिक गृहमन्त्री मि० हेरोल्ड हापकिन्स ने कहा था कि द्वीप के लोगों को स्वभाग्य निर्णय का अधिकार कभी भी न दिया जाएगा। फलतः नरम दली नेता भी आतंकवादी दल 'ए० ओ० का०' में सम्मिलित हो गए। हिंसा और कटुता की ऊँची-ऊँची लहरों के बीच साइप्रस के गवर्नर फील्ड मार्शल सर जॉन हार्डिंग और धार्मिक एवं राजनीतिक नेता आर्कबिशप मकारियस के बीच सन्धि चर्चा चली। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट का कहना है कि आर्कबिशप ने समझौते की बातचीत खत्म कर दी। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री और उपनिवेश मन्त्री ने यह भी कहा कि उसके साथ समझौते की बातचीत नहीं चलाई जा सकती, क्योंकि उसकी माँगों का कोई अन्त नहीं। फिर वह ब्रिटिश सरकार की एकमात्र माँग के बारे में कि हिंसा काण्डों की वह निन्दा करेगा, हमेशा मौन साधे रहा।

ब्रिटेन द्वीप को प्रतिरक्षा परिषद् और आन्तरिक सार्वजनिक सुरक्षा (कानून और व्यवस्था) के इन तीन विभागों को छोड़ कर शेष सब विभाग देने को उद्यत है। आर्कबिशप ने आन्तरिक कानून और व्यवस्था को देने के लिए भी कहा था और माँग की थी कि सब राजनीतिक बन्दियों को क्षमादान दिया जाए। इन दोनों माँगों को ब्रिटिश सरकार मानने को तैयार नहीं। बातचीत यहाँ आकर टूट गई। सन्धि-चर्चा भंग होने का एक और कारण भी है। साइप्रस का शासन वस्तुतः लन्दन से सैनिक अधिकारी करते हैं, साइप्रस का ब्रिटिश गवर्नर नहीं करता। ब्रिटिश सेना द्वीप पर २०,०००,००० पौंड खर्च कर रही है, जिससे यह ब्रिटेन का महत्त्वपूर्ण सैनिक अड्डा बन सके। दक्षिणी साइप्रस के पर्वतीय भाग में हेपिसकोपी में ब्रिटिश सैनिकों के वास्ते बैरकें और सेना के सदर मुकाम के लिए इमारतें बन रही हैं। स्वेज छोड़ने के बाद ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों ने अपना भाग्य यहाँ लगा दिया है। साइप्रस का महत्त्व बताते हुए एक ब्रिटिश सैनिक अधिकारी व रण पण्डित ने कहा:

मध्यपूर्व के तेल की रक्षा के वास्ते हमको एक न एक अड्डा अवश्य चाहिए। यदि तेल-भूमि में बाधा पड़ी तो ब्रिटेन भूखा मर जाएगा। कानूनन साइप्रस ब्रिटिश है। हमारे इस अधिकार व प्रभुत्व को कोई चुनौती नहीं दे सकता, न इसके बारे में विवाद ही कर सकता है। साइप्रस के लोगों के विरोध के बावजूद यहाँ ब्रिटिश अड्डे और बीस साल तक बने रहेंगे। मकारियस के साथ द्वीप को स्वायत्त शासन देने की बातचीत चलाने से मध्यपूर्व में हमारी सम्पूर्ण सैनिक स्थिति को भारी आघात पहुँचेगा।

ब्रिटिश सरकार और साइप्रस के गवनर सर जान हर्नीप ने कहा कि उनका पहला लक्ष्य द्वीप में शान्ति स्थापित करना है और कानून और व्यवस्था का राज्य कायम करना है। 'एओका' (एथनिकी आरमेनोमटिस की परियान एगोनिस्टन' सिपरियाट योद्धाओं का राष्ट्रीय संगठन) निकोसिया, लारनाका और लीमासोल में तोड़-फोड़ का कार्य कर रहे हैं। १२ सितम्बर १९५५ में दंगे के बाद निकोसिया में 'ब्रिटिश इंस्टीट्यूट' को जला दिया। एथेंस रेडियो भी साइप्रस को रेडियो-प्रचार करते हुए साइप्रस के लोगों को हिंसा के लिए भड़काता है। ग्रीस से साइप्रस हथियार भेजे जाते हैं, यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है। नवम्बर १९५५ को पिरेक से किताबों का एक पार्सल लिमासोल के पुस्तक-विक्रेता के नाम भेजा गया। वस्तुतः किताबों के बहाने शस्त्रास्त्र भेजे गए थे। ग्रीस का एक सेनापति, जिसने दूसरे महायुद्ध में ब्रिटेन की बहुत सहायता की थी, कर्नल ग्रीवास आतंकवादी दलों का नेतृत्व कर रहा है। 'एनोसिस' के विरोधियों को जान से मार डालने की धमकी दी जाती है। 'एओका' की कोपदृष्टि के पहले शिकार पुलिस के लोग होते हैं।

'एओका' तीन विभागों में विभक्त है, (१) राजनीतिक कमेटी, इसमें ब्रिटिश विरोधी और धनी व्यवसायी हैं, (२) प्रशिक्षित बन्दूकचियों की चलती-फिरती टोलियाँ, इसमें युवक हैं और ये हमला कर तुरन्त भाग जाते हैं, ये क्रिकेट खेल के 'टिपरन' की तरह काम करते हैं, (३) इसके लिए 'ओखेन' (यूनियन ऑफ आर्थोडाक्स क्रिश्चियन यूथ) से युवक आते हैं! युवकों की अन्य संस्थाएँ हैं 'पान अग्रेरियन यूनियन ऑफ साइप्रस' (पी० ई० के०) और 'पी० ई० ओ० एन०'। किन्तु

सन् १९५३ से ये गैरकानूनी घोषित हैं। माध्यमिक स्कूलों के छात्रों से भी इनको मदद मिलती है। 'एओका' के सदस्य निम्न शपथ लेते हैं:

'होली ट्रीनिटी' (पिता पुत्र और देव) के नाम में शपथ लेता हूँ।

(१) मैं प्राणोत्सर्ग करके भी ब्रिटिश जूए से साइप्रस को मुक्त करने के लिए यथाशक्ति कार्य करूँगा।

(२) संस्था के सब आदेशों का, बिना कोई आपत्ति किए और कठिनाई और भयानकता की कोई शिकायत किए बगैर पालन करूँगा।

(३) लक्ष्य सिद्धि होने तक या नेता से आदेश मिलने के पूर्व मैं संग्राम बन्द न करूँगा।

(४) संस्था के किसी गुप्त रहस्य, प्रमुख अधिकारियों के नाम, संस्था के अन्य सदस्यों के नाम, मैं गिरफ्तार किए जाने और सताए जाने पर भी न बताऊँगा।

(५) मुझे जो निर्देश दिए जाएँगे उनको मैं अपने साथियों को भी न बताऊँगा।

यदि मैं इस शपथ का अक्षरशः प्रतिपालन न करूँ और इसको भंग करूँ तो मैं देशद्रोही को दिए जाने वाले दण्ड का पात्र होऊँगा और घृणा सदा मेरे जीवन को घेरे रहे।

स्कूलों के छात्र 'एओका' के सेनापतियों के निर्देशों, पर्चों, पत्रिकाओं को के टाइपराइटरों पर खुशी-खुशी टाइप करके बाँटते हैं। फील्ड मार्शल सर जान हार्डिंग द्वीप के नए गवर्नर हैं और इनको विशेष अधिकार दिए गए हैं। स्वेज से फामागुस्ता में शस्त्रास्त्र लाकर रखे जा रहे हैं। गवर्नर स्वतः गुप्तचर विभाग की देख-रेख करता है और सुरक्षा-कार्रवाई का नियन्त्रण और निर्देशन करता है। यहाँ रखी ब्रिटिश सेना को दंगे और उत्पात भंग करने के पुलिस तरीकों की शिक्षा दी गई है। सीमा की पुलिस चौकियों को सैनिक संरक्षण दिया गया है। सर जान हार्डिंग ने साइप्रस पहुँचने के बाद और भी कुमुक ब्रिटेन से मँगाई है। साइप्रस में सेना को पुलिस कार्य जिस परिमाण में करना पड़ रहा है, वह ब्रिटिश इतिहास में अज्ञात है। साइप्रस के छोटे-छोटे बच्चे और लड़कियाँ पत्थर बड़े लड़कों तक पहुँचाते हैं। और ब्रिटिश सेना इनको पकड़ नहीं पाती।

बिना रोशनी के सेना रात में संकीर्ण पर्वती मार्ग में यात्रा कर सुबह के समय सन्दिग्ध गाँव पर डेरा डाल देती है। १२ वर्ष की आयु तक के सब पुरुषों को गाँवों से बाहर ले जाकर उनसे पूछा-ताछा जाता है और उनकी अनुपस्थिति में स्त्रियों और छोटे-छोटे बच्चों के सामने हरेक घर की तलाशी ली जाती है। व्यर्थ के भारी प्रयास के बाद कहीं छिपाया शस्त्रास्त्रों का संग्रह और छिपाई सैनिक वर्दियाँ मिल जाती हैं और ब्रिटिश सैनिक अपने परिश्रम को सार्थक मानते हैं। दिसम्बर तक कुछ आतंकवादी मारे गए हैं। ट्रूडोज पर्वत माला में गुफाओं का व्यापक जाल मिला है। इन गुफाओं का निर्माण बड़ी कुशलता के साथ किया गया है और इसमें से एक में एक समय में २० व्यक्ति रह सकते हैं। इनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य साज-सामान यहाँ रहता है। गाँवों और पर्वतों के आतंकवादियों को वश में करना सेना के लिए उत्साहवर्द्धक है। पर शहरों के आतंकवादियों को पकड़ना उसके लिए एक पहेली और समस्या है। क्योंकि वे नागरि जीवन-प्रवाह में मिल जाते हैं। सेना द्वारा ली गई तलाशी के कार नागरिकों को भारी असुविधा का सामना करना पड़ता है। क्यों अलमारिया और दराजों से निकाला सामान वह यों ही बाहर छोड़ चली जाती है। कभी-कभी आटे की बोरी उलट कर चली जाती है कर्फ्यू होने से अनेक बार लोग अपना वेतन लेने नहीं जा पाते। कारणों से ब्रिटिश सेना बहुत बदमान हो गई है।

स्कूली छात्र नवम्बर १९५५ से युद्ध-पथ पर बराबर आगे बढ़ हैं। ग्रीक स्कूल बन्द कर दिए गए। एक बड़ा निजी स्कूल 'सेम्यु स्कूल' बन्द कर देने से शिक्षक और माता-पिता भी 'एनोसिस' समर्थक हो गए। एक सरकारी आदेश ने 'एनोसिस' का और बल दिया। स्कूलों के अधिकारियों को आदेश दिया गया है कि वे स्कू की इमारतों पर से ग्रीक झण्डे को उतार दें या स्कूल बन्द कर फल यह हुआ कि सर्वत्र ग्रीक झण्डे फहराए जाने लगे और स्कूल कर दिए गए। ब्रिटेन अपने उपनिवेश में विदेशी पताकाओं को फहरा की अनुमति कैसे दे सकता है? बच्चों ने पढ़ने से छुट्टी पाने का सरल मार्ग पा लिया है। वे सोत्साह ग्रीक पताका फहराते हैं फल स्कूल बन्द कर दिया जाता है और वे पढ़ने से छुट्टी पा जाते हैं।

९ नवम्बर को एक सार्जेण्ट 'कीक्को कैम्प' में समय-बम से मा गया। २६ नवम्बर को गवर्नर ने मार्शल-ला की घोषणा की, क्यों सात दिन के अन्दर अनेक ब्रिटिश सैनिक मारे गए थे। इस नए आदे के अनुसार अनधिकृत रूप से बन्दूक और विस्फोटक पदार्थ रखने मृत्युदण्ड दिया जा सकता है। देश-निर्वासन, सेंसरशिप और सामूहि जुर्माने की भी इसमें व्यवस्था की गई है। लेफकोनिको के नेताओं स्वतः गवर्नर ने सूचित किया कि उन पर २,००० पौंड जुर्माना कि गया है। क्योंकि ३ दिसम्बर को वहाँ का डाकखाना जला दिया था। वसूल हुए जुर्माने से डाकखाना फिर बनाया गया। १३ दिस को सेना ने १३० तथाकथित कम्यूनिस्टों को गिरफ्तार किया और उन् लारनाका के समीप नज़रबन्दी के कैम्प में नजरबन्द रखा गया। कम् निस्ट पार्टी से सम्बन्धित संस्थाएँ गैरकानूनी घोषित कर दी गईं उनका अखबार 'नेओज डेमाक्रैट्स' बन्द कर दिया गया। तीन शहरों की म्युनिसिपैल्टियों पर कम्युनिस्टों का नियन्त्रण और अधि है। उनकी मज़दूर संस्था 'पानसिपरियत फेडरेशन आफ लेबर' दक्षि पक्षीय मजदूर संघ से पाँच गुणा शक्तिशाली है। कम्यूनिस्ट संख्या कितने हैं, इसमें भारी मतभेद है। आर्कविशप मकारियस उनकी सं २०० बताता है और कहता है कि 'एनोसिस' में कम्यूनिस्ट कोई तत्त्व नहीं। पर कीरोनिया का बिशप मानता है कि ४० प्रतिशत सिर्फ ग्रीक कम्यूनिस्ट हैं। तुर्की की मान्यता है कि साइप्रस के प्रतिशत ग्रीक कम्यूनिस्ट हैं। पर 'एकेल' के सेक्रेटरी जनरल ए पापैओनू का कहना है कि कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्यों की संख्या ६, है। 'एओका' और 'एकेल' विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व हैं और एक-दूसरे के आलोचक भी हैं। किन्तु इस बात में वे एक

(शेष पृष्ठ ६२ पर)

धुन्धपाल का राज

शिवसहाय चतुर्वेदी

एक थे राजा। नाम था धुन्धपाल। जैसा नाम वैसा गुण। वे राज-काज बिलकुल नहीं देखते थे। सब काम नौकरों के जिम्मे था। राज में अन्धेरगर्दी मची रहती थी। कोई देखने-सुनने वाला नहीं था। राजा के तीन बीसी रानियाँ थीं और हर एक के एक एक गड़ा (पाँच-पाँच) लड़का-बच्चा। महल का खर्च बहुत जबरदस्त था। हर एक रानी के मुन्तज़िम और नौकर-चाकर अलग-अलग थे। सब अपने-अपने मालिकों का खर्च चलाने के लिए मनमानी लूट-खसोट किया करते थे। प्रजा तबाह हो रही थी। कोई किसी की सुनने वाला नहीं था। जिधर देखो उधर अन्धेर ही अन्धेर दिखाई देता था।

उसी शहर में एक लाला जी रहते थे। बेकार, ठलुआ। राज की ढील पोल देखकर सोचा कोई तिकड़म भिड़ानी चाहिए। वे कचहरी के सामने बरिया के पेड़ के नीचे दरी बिछा कर बैठ गए। वे अपने को बरिया वाला मुन्शी कहने लगे। अपने इस नाम की एक मुहर भी बनवा ली। एक सन्दूक पर कुछ कागज पत्र रख लिए। जब कोई आदमी कचहरी में दरख्वास्त पेश करने जाता तो उसे बुलाते और उसकी दरख्वास्त पर अपनी मुहर लगा देते। जिस कागज पर बरिया वाले मुन्शी की मुहर न होती वह कागज कचहरी के हाकिम के सामने पेश न होता। हुक्म होता कि पहले बरिया वाले मुन्शी की मुहर लगवा आओ। यह किसी ने नहीं पूछा कि बरिया वाला मुन्शी कौन है और उसे किसने मुकर्रर किया है? लाला जी की पाँचों उँगलियाँ घी में थीं। वे नित्य सैकड़ों रुपया पैदा करने लगे।

एक बार क्या हुआ कि एक बड़े हाकिम को एकाएक किसी कारणवश छुट्टी पर जाना था। उसने वज़ीर के पास छुट्टी की दरख्वास्त पेश की। परन्तु उस पर बरिया वाले मुन्शी की मुहर नहीं थी। वज़ीर ने दरख्वास्त वापस कर दी। कह दिया—'इस पर बरिया वाले मुन्शी की मुहर नहीं है। मुहर लगवा लाओ।' सन्ध्या हो गई थी। मुन्शी अमला सब अपने-अपने घर चले गए थे। हाकिम को रात ही को छुट्टी पर घर जाना था। बेचारा खोजता-खोजता बरिया वाले मुन्शी के घर पहुँचा। कहा—'इस पर मुहर लगा दो।' मुन्शी बोला—'रात को मुहर नहीं लगाई जाती, कल कचहरी में आओ।' हाकिम को तो ज़रूरी काम से रात ही को जाना था। उसने सौ रुपया रिश्वत देकर मुहर लगवा ली।

हाकिम के मन में बरिया वाले मुन्शी की मुहर की बात खटक गई। जब वह छुट्टी से वापस आया तो उसने पूछताछ करके राजा से प्रार्थना की—"यह मुन्शी सरकार के हुक्म के बिना कचहरी के सब कागज़ों पर अपनी मुहर लगाता है। यह धाँधली मिटाई जाए और उसे इसके लिए उचित सजा दी जाए।" राजा ने फैसला दिया—"बरिया वाले मुन्शी की मुहर सभी सरकारी कागज-पत्रों पर देखी जाती है। इस कारण वह हटायी नहीं जा सकती। उसके बैठने के लिए कचहरी में एक कमरा बनवा दिया जाए।"

एक गड़रिया था। उसके यहाँ सैकड़ों भेड़-बकरियाँ थीं। जब-जब वह उन्हें बेचने बाज़ार में जाता तो हाकिम अमला एक एक भेड़-बकरी अपनी अपनी लागपात के लिए ले जाते। कीमत के नाम फूटी कौड़ी उसके हाथ न लगती। बाज़ार की चुंगी उसे गाँठ से देनी पड़ती। इस प्रकार उसकी सब भेड़-बकरियाँ सरकारी अमला खा गया। बेचारा भूखों मरने लगा। एक दिन जब उसने खाने-पीने का कोई वसीला न देखा तो वह घर पर लगे ८ कुम्हड़ों को तोड़ कम्बल में बाँध कर बाज़ार में बेचने ले गया। बाज़ार में कुम्हड़ा रखते ही पटवारी, कुटवार, जमादार, चुंगी का मुन्शी, नाकेदार आदि ने उसे घेर लिया। जाते ही सब ने एक एक कुम्हड़ा उठा लिया। सब अपना-अपना दस्तूर लेकर चले गए। केवल कम्बल बिछा रह गया। पास ही एक भाँड़ खड़ा था। उसने वह कम्बल उठा कर कन्धे पर डाला और चल दिया। गड़रिया कहने लगा—"अरे ओ भाई, सब कुम्हड़ा तो सरकारी अमला अपनी-अपनी दस्तूरी में ले गए—हाथ पर एक पैसा भी न रखा। बचा कम्बल, सो तुम लिए जा रहे हो। बताओ भला तुम कौन हो?" भाँड़ तो ठहरा, उसने मसखरी में कहा—"हम डेवढ़ी के साले हैं।" ऐसा कह वह कम्बल लेकर चम्पत हो गया। बेचारा गड़रिया रोता पीटता खाली हाथ घर आया। कहने लगा—आठ कुम्हेड़ीं नौ बिके[1] धुन्धपाल को राज।

गड़रिया को उस रात नींद नहीं आई। वह सोचने लगा इस राज में जब इतना भर्रा है कि कोई किसी को सुनने वाला नहीं तो मैं क्यों न इससे लाभ उठाऊँ? आखिर उसे एक उपाय सूझ गया। उसने बढ़ई के पास जाकर लकड़ी का एक डेउवा (लम्बी मूठ वाला खोंचा) बनवाया और उसे कन्धे पर रख हाथ में झोला ले बाज़ार पहुँचा। हर दूकान पर जाकर वह अपना डेउवा खपा देता और उस भर चीज़ निकाल कर अपने झोले में डाल लेता। दूकानदार रोकता तो कह देता—"सालेरा का डेऊ बात न पूछे कोऊ"। अब क्या था, सालेरा गड़रिया मालामाल हो गया। गेहूँ, चावल, घी, गुड़, शक्कर सभी चीज़ों का उसके घर ढेर लगा रहता। मनभाया खाता और मौज उड़ाता।

गड़रिये के पड़ोस में एक धोबन रहती थी। नाम था पोपाबाई। देखने में खूबसूरत थी। शरीर की बंदस भी अच्छी थी। घर में अकेली थी। बाल-बच्चा कोई नहीं था। गड़रिये से उसका मन मिला था।

---

[1] बिके—बिक्री का महसूल, दस्तूरी

हमेशा उसके पास बैठा उठा करती थी। डेउवा की बदौलत उसका घर धन-धान्य से भरा देखकर एक दिन वह कहने लगी—"गड़रिया लाला, डेउवा ने तो तुमारे दिन फेर दिये, अब मोरी सोई कछू सुध लेव। कौनऊ ऐसो उपाव बताव जी सें मैं सोई बैठें बैठें खाऊँ और मलारें गाऊँ।"

गड़रिया बोला—"भौजी कौन बड़ी बात है? धुंधपाल का राज है, कोई सुनने-वुनने वाला नहीं, कहो तो तुझे रानी बना दूँ।"

धोबन हँसकर बोली—"नेकी उर पूछ पूछ। मोरे घर में जो आबटाव हती सब बेंच खाई। खाँय खाँय राजा को भंडार बढ़ात, मोरी तो बिसात ही कितनी। अब मोरी कछू मदत करो—बड़ो जस मान हों।"

दूसरे दिन सवेरे गड़रिये ने डेउवा उठा कर कन्धे पर रखा और रनवास की ओर चला। राजा की तीन बीसी रानियाँ थीं। सब की न्यारी-न्यारी बखरी थीं। एक रानी अभी कुछ दिन हुए मर गई थी। उसकी बखरी खाली थी। यह देख वह तुरन्त घर आया, पुरा-पड़ोस वालों को इकट्ठा किया। फिर पालकी वाले कहारों के घर जाकर कहा—"पालकी लेकर शीघ्र चलो, पोपाबाई को लेने चलना है।" पालकी वाले पालकी लेकर आ गए। अब रह गई बाजों की कमी। उसने बाजे वालों को जाकर फटकारा—"तुम लोग सब के सब कहाँ चले जाते हो? घण्टों से तलाश कर रहा हूँ। राजा से रिपोर्ट कर दूँगा तो नौकरी से हाथ धो बैठोगे, चलो, जल्दी करो। महारानी पोपाबाई को लेने चलना है।" इस तरह गड़रिया धूमधाम के साथ पोपाबाई को लेने उसके घर पहुँचा। पोपाबाई को पालकी पर चढ़ाया। गाजे बाजे के साथ जलूस चला। सब से आगे गड़रिया काँधे पर डेउवा रखे—"हटो हटो, रास्ता छोड़ो, पोपाबाई की सवारी आ रही है" कहता हुआ चला जा रहा था। रनवास में पहुँच कर उस खाली बखरी में पोपाबाई को उतार दिया। नौकर-चाकर सब जहाँ के तहाँ मुकर्रर कर दिए। राजा के भण्डारी से कहकर सब सामान बुला दिया। किसी ने पूछा तक नहीं कि कौन और कहाँ की पोपाबाई। सब काम-काज दूसरे रनवासों की तरह बदस्तूर चलने लगा। गड़रिया पोपाबाई की बखरी का मुन्तज़िम बन गया।

कारिन्दा कामदार समझे यह भी राजा की एक रानी होगी। पोपाबाई की सब फरमाइशें पूरी होने लगीं। यहाँ तक कि उसका हुक्म भी चलने लगा। कुछ अमलों ने डरते-डरते राजा साहब से पोपाबाई की बखरी के भारी खर्चे की बात कही। पर राजा ने सुनी अनसुनी कर दी। पोपाबाई की धाक दिन पर दिन बढ़ने लगी। यहाँ तक कि बड़े-बड़े ओहदेदार और मन्त्री भी उसकी आज्ञा के सामने सिर झुकाने लगे।

इस प्रकार पोपाबाई को महलों में रहते बहुत वर्ष हो गए। एक दिन पोपाबाई को खबर मिली कि उसका पुराना बूढ़ा गधा सोढ़र मर गया है। पोपाबाई ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी—"हाय, मेरा सोढ़र मर गया।" धीरे-धीरे यह खबर चारों ओर फैल गई—राजा साहब के कुटुम्ब में किसी की गमी हो गई है। राज्य भर में शोक छा गया। बड़े-बड़े हाकिम, मन्त्री, सेनापति, खज़ांची आदि पोपाबाई की बखरी में मातम मनाने आने लगे। राजवंश का कोई पुरुष मरा है यह जान कर पुरोहित पण्डितों ने अपनी-अपनी मूँछें मुड़ाना प्रारम्भ कर दिया। हाकिमों ने भी अपनी-अपनी मूँछें मुँड़ा डालीं। राज-परिवार के प्रति संवेदना प्रकट करने के लिए नगर के बड़े-बड़े सेठ-साहूकारों तथा बड़े आदमियों को भी मूँछें मुड़ानी पड़ीं। मातम राज्य-व्यापी हो गया।

राजा साहब को भी खबर मिली कि पोपाबाई के यहाँ गमी हो गई है और वे बहुत दुखी हैं। वे उनकी बखरी में धीरज बँधाने पहुँचे। इधर कई वर्षों से सुख में रहने के कारण पोपाबाई की सुन्दरता निखर आई थी। वह देखने में वास्तव में रानी-सी ही लगती थी। राजा ने पोपाबाई के रूप-रंग को देखा तो दंग रह गया। उसके कन्धे पर हाथ रख कर उसे सान्त्वना देते हुए राजा ने पूछा—'ये सोढ़र तुम्हारे कौन थे?' सोढ़र का नाम सुनते ही पोपाबाई हिलक-हिलक कर रोने लगी। फिर कुछ धीरज रख कर बोली—"राजा साहब, तुम्हें क्या बतलाऊँ। सोढ़र की याद आते ही छाती फटने लगती है। मेरे बाप ने मुझे १०-१२ गधे दिए थे। उनमें अकेला सोढ़र ही बचा था सो अब वह भी मर गया। सोढ़र बहुत पुराना और नामी गधा था। हाय मेरे सोढ़र।"

राजा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा—"तो क्या सोढ़र तुम्हारा गधा था?"

पोपाबाई ने आँसू पोंछते हुए कहा—"हाँ राजा साहब, गधा क्या एक चीज़ था।"

राजा साहब चुपचाप उठ कर चले गए। जब तक पोपाबाई जीती रही उसकी हकूमत वैसी ही चलती रही।*

★

---

*मालूम होता है किसी धुन्धपाल नामक राजा के राज्य की बदइन्तजामी अन्धेरगर्दी तथा पोलपट्टी के प्रतीक स्वरूप 'धुन्धपालो' शब्द प्रचलित हुआ हो जो अब राज-व्यवस्था की अन्धेरगर्दी तथा पोलपट्टी का पर्यायवाची बन गया है। 'राजकाज और पोपाबाई' कहावत भी राज-व्यवस्था की पोलपट्टी तथा बदइन्तजामी की चरम सीमा दरसाने के लिए कही जाती है, जो उसी समय प्रचलित हुई होगी। राजा धुन्धपाल और पोपाबाई का अटूट सम्बन्ध है। इन दोनों का ना राजकीय अन्धाधुन्धी प्रकट करने के लिए ही लिया जाता है। यह धुन्धपाल रा कौन था? कब और कहाँ हुआ है? क्या वह ऐतिहासिक तथ्य है या केवल को कल्पना? इसकी खोज करना विद्वानों का काम है।—लेखक।

अपनी कविता के प्रति

राजकुमारी श्रीवास्तव

ये हैं उस सरसी के शतदल।
तप तप आतप ने सुखा दिया,
जिसके अंतर का सलिल तरल।

जाने कब कैसे अनायास
उर की दरार से उठे झाँक
सूने में सौरभ कोष खोल
प्राणों का वैभव रहे आँक
इस धूल भरी संतप्त धरा पर
लगे विहँसने स्वर्ण कमल।

ये राग उषा से ले आये
ले आये संध्या से विराग।
झर झर धरती के अंचल को
ही भर देता जिनका पराग
देखी न लालसा की पंकिल
लहरों की क्रीड़ामय हलचल।

अंतरतम के किस गह्वर से
झरता रस का निर्झर अशेष।
जिससे जीवन पाता मृणाल
देता पंकज को छवि विशेष।
जल में उद्भव थल में विकास
मारुत को पर न मिला परिमल।

इनमें ज्योत्स्ना की शीतलता
इनमें दिनकर का दिव्य ओज
करुणा के अश्रु भरे दृग से
ये ओस बिन्दु संकुल सरोज
पूजा के घृत के दीपों सी
है पीत पुनीत प्रभा उज्ज्वल।

निर्जन में बिखरी सुषमा पर
अंचल विरक्ति ने फैलाया
सौरभ संदेश दिशाओं को
कब पवन दूत देने पाया।
गुन गुन कर गुन गाने आया
कब मधुग्राही मधुकर का दल।

जब मरु की दाहक ज्वाला से,
होने लगता हैं दग्ध हृदय।
अपनी मंजुल मुस्कानों से,
कर मुग्ध पुनः करते रसमय।
बनते हैं मेरा ही संबल
मेरे उर के ये भाव सरल।

●

काश्मीरी कविता

धान के खेत का गीत

प्रेमनाथ प्रेमी

१

नर्गिसी आँखों वाली मेरी सखि तू पनीरी लगाती जा
बनफशा के फूलों के समान तेरे कुन्तल हैं सखि तू पनीरी लगाती जा
तेरी जैसी अपूर्व सुन्दरी के हाथों में यह गुच्छे कितने भले लगते हैं
धान से भरी खेतियों को सजा ले सखि तू पनीरी लगाती जा
धरती माँ के कानों में यह हरी-हरी बालियाँ पहना दे
इसकी माँग निकाल दे, सखि पनीरी लगाती जा
धान के नन्हें-नन्हें पौदे हाथ उठा-उठा कर तुझे आसीसें देते हैं
तू भी हमारी तरह फले-फूले सखि पनीरी लगाती जा
तुझे विषैले साँपों के समान, निष्ठुर और अन्यायी मानव ने
अपने पाँव तले रौंद रखा है, सखि पनीरी लगाती जा
उठ ऐ धान की रानी, तुझे किसने बन्दी बनाया है
यह जादुई शृंखलाएँ फरेब हैं, इन्हें तोड़ डाल, सखि पनीरी लगाती जा।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और भारत

महेश चन्द्र

यूरोप, एशिया तथा भारत

अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का त्रिकोणीय लक्षण है। एशियाई देश इंग्लैंड से माल अधिक मँगाते थे और यूरोपीय देशों तथा अमेरिका को माल अधिक भेजते थे। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात यह स्थिति बदल गई है। (देखिए तालिका सं १) अब एशियाई देश यूरोप तथा अमेरिका दोनों क्षेत्रों से अधिक माल मँगा रहे हैं। यूरोपीय देशों को डालर की कमी महसूस होती है और वे चाहते हैं कि एशियाई देश अमेरिका से माल न मंगा कर उनसे ही माल मँगाएँ, ऐसा होने से एशियाई देशों को अपने निर्यात के कारण अमेरिका से जो डालर प्राप्त होते हैं उसका एशियाई देशों के लिए विशेष महत्त्व नहीं रह जाएगा और यूरोपीय देश उस डालर को एशियाई देशों से प्राप्त कर लेंगे। एशियाई देशों का इस प्रबन्ध या व्यवस्था के प्रति कोई मूल विरोध नहीं है। वे तो अपनी औद्योगिक उन्नति चाहते हैं। यदि यूरोपीय देश इस दिशा में एशियाई देशों की सहायता कर सकें तो एशियाई देशों का विशेष हित सिद्ध होगा—

तालिका १

इकाफे के विदेशी व्यापार का शेष (करोड़ डालर में)

सन्	यूरोप	अमेरिका	जापान	इकाफे देश	अन्य
१९३८	१०	१३	—५'५	—५	१०
१९५२	—४४	—१८	—२६	—७	—१०

यूरोपीय देश एशियाई देशों के साथ अपना व्यापार बढ़ाने की दृष्टि से पाँच बातों की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं :

(१) एशियाई देशों को व्यापार मण्डल भेजे जाते हैं।

(२) यूरोपीय तथा एशियाई देशों के वैयक्तिक व्यापारी कार्य स्थापित करते हैं।

(३) आयात-निर्यात के भिन्न तरीकों, ढंगों तथा प्रणालियों के कारण आयातकों और निर्यातकों को जो असुविधाएँ होती हैं उन्हें दूर किया जाए।

(४) वस्तुओं का श्रेणी-विभाजन और किस्मांकन किया जाता है जिससे क्रेता को अच्छी किस्म का माल प्राप्त होने का विश्वास हो।

(५) मशीन, यन्त्र आदि का रूप तथा किस्म इस प्रकार निर्धारित की जाती है जिससे क्रेता के उत्पादन कार्य में वे अधिक उपयोगी सिद्ध हों।

यूरोपीय देशों के ये प्रयत्न सराहनीय हैं। परन्तु एशियाई देशों के दृष्टिकोण से यह भी आवश्यक है कि यूरोपीय देश तीन नीतियों को अपनाएँ :

(१) एशियाई देशों से अमेरिका को अधिक निर्यात हो इसलिए तुलनात्मक मूल्यों पर यूरोपीय उत्पादन-यन्त्र एशियाई देशों बेचे जाएँ।

(२) यूरोपीय देश अपने कच्चे माल डालर क्षेत्र से न मँगा यथासंभव एशियाई देशों से मँगाएँ। ऐसे कुछ पदार्थों के नाम रुई, तम्बाकू, तेल-तिलहन तथा चरबी।

(३) यूरोपीय देश एशियाई देशों में पूँजी का विनियोग करें।

सन् १९३५-३८ काल में एशियाई देशों से जिन सामानों इंग्लैंड यूरोप तथा अमेरिका को निर्यात होता था उसमें परिवर्तन गया है जैसा कि निम्न लिखित तालिका से स्पष्ट है। ये निर्यात लाख टन में दिए गए हैं।

तालिका २

	इंग्लैंड		यूरोप		अमेरिका	
	१९३८	-५१	३८-	५१	-३८	-५
खाद्य तथा तेल पदार्थ	८'४	२	३८'४	१७	१४'४	११'
पेय तथा तम्बाकू	२'२	२'०	३'३	१'४	०'६	०'
रबर तथा रेशे	५	५'४	१३'४	१३'०	११'३	१०'
अन्य (मुख्यतः टिन)	०'०३	०'१	०'४	०'५	०'६	०'

अमेरिका को रबर तथा रेशे वाले पदार्थ (जूट, रुई, रेशम) जाते हैं क्योंकि वहाँ इन सामानों के प्रतियोगी-पदार्थ तैय हो रहे हैं। इंग्लैंड तथा यूरोप को खाद्य तथा तैल पदार्थ भेजे जाते हैं। यूरोप को पेय पदार्थ भी कम भेजे जाते हैं। आवश्यक है कि इंग्लैंड तथा यूरोप इन पदार्थों का आयात बढ़ाएँ। निर्यात क्षेत्र में यूरोपीय देशों को सदा के लिए यह समझ चाहिए कि एशियाई देशों में सूती, ऊनी तैयार माल के बाजार हैं। एशियाई देशों (विशेषतः भारत तथा जापान) में ये माल प मात्रा में तैयार होते हैं। द्वितीय महायुद्ध के कारण एशियाई नि कम हो गए थे अतः यूरोपीय देश डालर क्षेत्र से कच्चा माल मँ लगे थे। अब उन्हें पुनः तम्बाकू, चमड़ा, मैंगनीज, पेट्रोल तथा पदार्थ एशियाई देशों से मँगाना चाहिए। क्योंकि एशियाई देशों श्रम का बाहुल्य है अतः यूरोपीय देशों को ऐसी गवेष करानी चाहिएँ जिससे ऐसी मशीनें तैयार हों जिन पर पूँ कम लगे।

भारत से विदेशों को जो निर्यात होता है उस सम्बन्ध में भी विचार लागू हैं क्योंकि इन देशों से होने वाले भारतीय व्यापार के की स्थिति निम्नांकित है :

तालिका ३

भारतीय विदेशी व्यापार का शेष (करोड़ डालर में)

	यूरोप	अमेरिका	जापान	इकाफे देश	अन्य
१९३८	६·२	०·८	-०·४	३·८	२
१९५२	-८·८	-३४·५	१·४	६·३	२

जहाँ तक भारतीय आयातों का प्रश्न है हम अरसे से संरक्षण नीति अपनाते चले आए हैं। यह ज्ञातव्य है कि इस सम्बन्ध में क्या स्थिति है।

भारतीय संरक्षण

भारतीय आयात पर (१) आय हेतु तथा (२) संरक्षण हेतु आयात कर लगाए जाते हैं। एक तीसरा आधार भारत-इंग्लैण्ड व्यापार समझौता (१९३९) है जिसके अन्तर्गत कुछ वस्तुओं पर रियायती दर से आयात कर लगता है। आय हेतु लगे आयात कर पर प्रति वर्ष पुनर्विचार किया जाता है परन्तु संरक्षण हेतु लगाया आयात कर एक निश्चित अवधि के लिए होता है। वह अधिकतर औसत भारतीय उत्पादन व्यय के १·१५ गुने तथा जिस भाव विदेशी वस्तु हमारे तट पर आकर पड़ती है उसके अन्तर के बराबर होता है। यदि भारतीय उत्पादक की कोई वस्तु १०० रुपये की पड़ती है और विदेश से मँगाने पर वैसी वस्तु ९० रुपये की थी तो संरक्षण कर १००+१५-९० अर्थात २५ रुपये होगा। १५ रुपये का अन्तर इसलिए दिया जाता है क्योंकि अन्यथा उपभोक्ता रूप रंग के कारण विदेशी माल पसन्द करते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद संरक्षण-निर्णय के लिए उद्योग द्वारा आवेदन पत्र आने पर यह कार्य संरक्षण-बोर्ड करता था जो अब संरक्षण-आयोग के रूप में है। जिन उद्योग-धन्धों को विदेशी प्रतियोगी से लोहा लेने में अड़चन पड़ती है वह संरक्षण की माँग करता है। सन् १९४५-५४ में ऐसी ८० माँगें आईं इनमें से २७ बर्खास्त कर दी गईं और ३६ में आय हेतु आयात कर को ही उचित समझा गया। इस प्रकार लगभग तीन-चौथाई माँगें अस्वीकृत हुईं।

एक ओर सरकार इस प्रकार संरक्षण की माँग अस्वीकृत करती है और दूसरी ओर वह आयात नियन्त्रण हटाने के पक्ष में है। आयात नियन्त्रण के अन्तर्गत आयात मात्रा निश्चित की जाती है। आयात नियन्त्रण और संरक्षण कर दोनों में से प्रत्येक साधन भारतीय उद्योगों को पनपने में सहायता देता है। इनमें से कौन उत्तम है? 'गैट' सन्धि के अन्तर्गत हमने वचन दिया है कि संरक्षण हेतु हम आयात का नियन्त्रण नहीं करेंगे। यह भी सही है कि अधिक मुक्त विश्व व्यापार के हित में किसी न किसी दिन मुक्त व्यापार तथा मुद्रा का बहुमुखी विनिमय आरम्भ करना है। ऐसी स्थिति में विदेशियों की लाग-डाट में भारतीय उद्योगों का क्या होगा। संरक्षण कर विदेशी वस्तु का मूल्य बढ़ा देते हैं, परन्तु विश्व में विज्ञान की उन्नति इतनी तीव्रता से हो रही है कि विदेशों में वस्तु उत्पादन लागत तेजी से कम होती है। इसके अतिरिक्त वस्तु की बिक्री बेचने के ढंग पर भी निर्भर है और इसमें विदेशी उत्पादक अधिक पटु हैं। यदि आयात नियन्त्रण हटाना है तो संरक्षण कर बढ़ाना तथा व्यापक बनाना पड़ेगा। संरक्षण कर आयोग तथा भारत सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए। परन्तु साथ ही यह भी विचारणीय है कि पिछले पचीस वर्षों में हमारे उद्योगपतियों की यह कमजोरी छिपी नहीं रही है कि संरक्षण प्राप्त होने पर वे क्षमता बढ़ाने और लागत घटाने की चिन्ता नहीं करते अथवा लाभ के लोभ में उपभोक्ता के लिए वस्तु का मूल्य नहीं गिराते। चीनी उद्योग इसका एक उदाहरण है। जिस देश के उद्योगपतियों की यह भावना हो वहाँ संरक्षण कर बढ़ाने से ही क्या होगा? जनता की नजरों में जो उद्योगपति यह कहते हैं कि आयात नियन्त्रण हटाने से लगे संरक्षण कर का प्रभाव जाता रहता है उन्हें पागल कुत्ते ने भले ही न काटा हो परन्तु उन्हें पहले लागत घटाने तथा किस्म उन्नत करने की चेष्टा करनी चाहिए।

यहाँ संरक्षण सम्बन्धी एक अन्य पहलू की ओर संकेत करना गलत न होगा। संरक्षण का ध्येय यह होता है कि भारतीय पूँजी, प्रबन्धक, साहस श्रम तथा कच्चे माल का अधिक उपयोग हो। ऐसी स्थिति में यदि विदेशी पूँजीपति यहाँ आकर बड़ी मात्रा की फैक्टरी खोल कर यहाँ के पुराने उद्योग-धन्धों और मिलों को प्रतियोगिता में हटावे तो क्या उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं करना चाहिए। साबुन के क्षेत्र में 'लीवर ब्रदर्स' तथा दियासलाई के क्षेत्र में 'विम्को' ऐसे विदेशी प्रतियोगी हैं। दियासलाई में अधिक पूँजी लगाकर अपेक्षाकृत सस्ता उत्पादन किया जाता है। साबुन में बड़ी मात्रा विज्ञापन तथा उत्तम प्रबन्ध के कारण ऐसा होता है। परन्तु हमारे उद्योगपतियों को भी मिल कर ऐसे प्रतियोगियों से लोहा लेना चाहिए। आपस में फूट भी रखें और दूसरों के बड़ी मात्रा के उत्पादन को अवांछनीय भी कहें। ऐसे तो काम नहीं चलेगा। लड़ाई से पहले चार-पाँच पैसे की एक दर्जन दियासलाई की डिबियाँ बिकती थीं तथा छः पैसे का उम्दा बाथ सोप। भारतीय व्यापारी ऐसे उत्पादन को पुनः व्यवहारिक रूप क्यों नहीं देते?

भारतीय आयात नीति

अस्तु। जैसा कि पंचवर्षीय योजना में भी स्पष्ट किया गया है, इस समय भारत सरकार की आयात नीति की आधार शिलाएँ निम्नांकित हैं:

(अ) विदेशी मुद्रा की कमी न पड़े, (ब) देश के अन्दर वस्तुओं के मूल्य घटें, (स) देश के कृषि तथा औद्योगिक साधन का विकास हो, (द) उपभोक्ताओं को विविध वस्तुएँ अधिकाधिक मिलें।

भारत सरकार ने एक आयात नियन्त्रण समिति नियुक्त की थी। उसके सुझाव सरकार ने मान लिए थे। उपर्युक्त आधारों के अतिरिक्त समिति ने कहा था:

(१) विदेशी विनिमय (मुद्रा) सभी आयात वस्तुओं पर सम तथा उपयुक्त रूप में बाँटा जाए।

(२) कुछ चुनी हुई वस्तुओं के मूल्य स्थिर रहें।

(३) कुल व्यापारिक आयात लगभग ४ अरब रुपये के आस-पास रखा जाए क्योंकि यही शान्ति कालीन आयात था।

(४) कस्टम अधिकारियों तथा आयात-नियन्त्रण अधिकारियों के बीच अधिक सहयोग हो।

भारत सरकार इस नीति को कार्यान्वित कर रही है। कस्टम अधिकारियों को नियम का स्पष्टीकरण करने के अधिक अधिकार दिए गए हैं। कस्टम तथा नियन्त्रण अधिकारियों के बीच सहयोग स्थापित करने की दृष्टि से बन्दरगाह-बाहकार-समिति स्थापित की गई है।

इसमें भारत सरकार ने आयात नीति उदार (लिबरल) कर दी है। विशेषतः कच्चे माल का आयात बढ़ाने की चेष्टा है। सरकार ने कुछ तैयार माल के थोड़े-थोड़े आयात इसलिए स्वीकृत किए हैं जिससे वैसे माल के देशी उत्पादकों को प्रतिस्पर्धा की आशंका से समझौ करने की प्रेरणा मिले। सरकार ने उपभोक्ता वस्तुओं के आयात नियन्त्र घटाए हैं, परन्तु साथ ही साथ उन पर आयात-कर बढ़ा दिए हैं। ऐ होता है कि कुछ लोग अपनी सामर्थ्य से अधिक आयात मात्रा लाइसेंस प्राप्त करने की सफल चेष्टा करते थे। इसको रोकने कोशिश की जा रही है तथा लाइसेंस की अवधि भी छः मास कर गई है।

◆

साइप्रस की समस्या—(पृष्ठ ५६ का शेषांश)

कि साइप्रस से ब्रिटिश शासन का अन्त होना चाहिए। 'एकेल' कम्यूनिस्ट पार्टी की संस्था है और यह भूमिगत रहकर कार्य करते हैं।

एक ग्रीक साइप्रस वासी पिता को अपने बच्चों को स्कूल से लाते हुए शूट कर दिया गया। लारनाका में एक ब्रिटिश-पक्षपाती पत्रकार मार डाला गया। इन घटनाओं के प्रतिदिन बढ़ने पर ब्रिटिश सरकार और द्वीप के गवर्नर सर जान हार्डिंग ने अपना प्रथम लक्ष्य साइप्रस में कानून और व्यवस्था स्थापित करना बताया है। इसके साथ वे ब्रिटिश सेना के लिए इस द्वीप को सैनिक अड्डे के रूप में बदल देना चाहते हैं। इसके साथ-साथ वे राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के वास्ते युक्तियुक्त और उचित मार्ग खोजने के लिए उद्यत हैं।

किन्तु आज की स्थिति में मैत्रीपूर्ण समझौते की बातचीत चलाना सम्भव नहीं। आर्कबिशप मकारियस की अनुपस्थिति में साइप्रस के ग्रीकों की ओर से समझौते की बात चलाने को कोई भी तैयार नहीं। आर्कबिशप मकारियस के पुनः द्वीप में आने से ही बातचीत आगे चलना सम्भव है। एक समय ग्रीक सरकार और 'एथनारकी कौंसिल' दों अंग्रेज़ों को साइप्रस में सैनिक अड्डा बनाने की अनुमति देने को तैय थे। पर वे 'एनोसिस' (ग्रीस के साथ साइप्रस का सम्मिलित) पसं चाहते हैं। दूसरी बात यह है कि रण-नीति में आजकल जिस त परिवर्तन हो रहा है, उसको देखते हुए 'भूमण्डली युद्ध' में सैनि अड्डों को रण पण्डित कोई विशेष महत्त्व नहीं देते। वे इन सैनि अड्डों को अनद्यतन बताते हैं। पर ब्रिटेन आर्कबिशप को द्वीप भेजे और साइप्रस की स्वतन्त्रता की घोषणा करने को निकट भविष्य तैयार होगा—इसका कोई लक्षण आज दिखाई नहीं देता। इसके अन में विकल्प है हिंसा, दमन और मैत्री का अभाव। इससे दुनिया भर अंग्रेज़ों के मित्रों की संख्या में कमी होगी। पर साइप्रस को छोड़ने का अर्थ है कि ब्रिटेन राष्ट्रवादी शक्तियों के आगे सिर झुका कर जिब्राल्ट अदन, सिंगापुर और हांगकांग को भी खाली कर दे। इसके लि ब्रिटेन क्या प्रसन्नतापूर्वक और सोत्साह कभी तैयार होगा?

◆

एक कहानी

वासः खण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वांके गृहाणार्भकं
रिक्तं भूतलमत्र नाथ! भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः।
दम्पत्यो रित जल्पितं निशि यदा चौरः प्रविष्टस्तदा
लब्धं कर्पठमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

सर्दियों में रात को एक घर में चोर घुसा। उसे वहाँ अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। उस घर का आदमी अपनी स्त्री से कह रहा था कि—"यह अपने पास का चिथड़ा इधर दे, मैं इस पर बच्चे को लिटा दूं। या फिर इस बच्चे को तू ही अपनी गोदी में सम्हाल ले।" इस पर स्त्री बोली—"हे स्वामी, यहाँ मेरे पास की धरती तो एकदम खुली पड़ी है, तुम्हारी पीठ के नीचे फिर भी पुआल अच्छा बिछा हुआ है, इसे तुम अपने पास पुआल पर सुला दो।" चोर ने इस निर्धन दम्पती की जब यह बातचीत सुनी, तो यहाँ से कुछ चुरा लेने की बात ही वह भूल गया। वह दूसरी जगह से जो कपड़े उठा लाया था, वही इन दोनों के ऊपर फेंक कर, रोता हुआ, चुपचाप लौट गया।

पुस्तक समालोचना

मानो माजरा (अंग्रेज़ी उपन्यास) : लेखक—खुशवन्त सिंह; प्रकाशक—ग्रोव प्रेस, ७९५ ब्रौडवे, न्यूयार्क; पृष्ठ संख्या १८२; मूल्य १ डालर २५ सेंट ।

सं० रा० अमेरिका के ग्रोव प्रेस ने गत वर्ष उपन्यास सम्बन्धी एक प्रतियोगिता संगठित की थी, जिसमें उन्हें २५० से अधिक नए मौलिक उपन्यास प्राप्त हुए थे । 'मानो माजरा' को उस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था । 'मानो माजरा' का कथानक भारत विभाजन के सम्बन्ध में है । जालन्धर के निकट मानो माजरा नामक एक बड़ा गाँव है, जिसमें इस उपन्यास के अनुसार सिक्खों की आबादी सबसे अधिक थी और उसके बाद मुसलमानों की । गाँव का बनिया ही केवल हिन्दू था । गाँव में रहने वाले सभी सम्प्रदायों के लोगों में परस्पर आदर्श भाई-चारा था और सन् १९४७ के रक्तपात में भी वह भाई-चारा उसी तरह बना रहा । जिन बाह्य उपकरणों से मानो माजरा और आसपास के प्रदेश में साम्प्रदायिकता का विष फैलाने का प्रयत्न किया गया, उनका इस उपन्यास में बहुत मनोरंजक वर्णन है । उपन्यास की शैली ताज़गी से पूर्ण है, कथानक अत्यन्त मनोरंजक है, उपन्यास के पात्र सजीव हैं और चित्रण पूर्णरूप से यथार्थवादी है । उपन्यास में व्यंग्य का भी बहुत अच्छा पुट है । विभाजन के दिनों की लोमहर्षक घटनाओं का इस उपन्यास में अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है । पर यह सब होते हुए भी लेखक उपन्यास भर में कहीं भी गहराई में नहीं पैठ पाया । एक भी स्थल पर पाठक पुस्तक बन्द कर कुछ देर सोचने को विवश नहीं हो जाता । न यह ही ज्ञात हो पाता है कि लेखक अपनी ओर से क्या कहना चाहता है ।

'मानो माजरा' में कम से कम दो स्थानों पर अनावश्यक रूप से भारतीय जीवन की खिल्ली-सी उड़ाने की चेष्टा की गई है । हम इस बात के विरोधी नहीं हैं कि देश के जीवन के कमजोर पहलुओं की खिल्ली उड़ाई जाए । पर उसके लिए यथोचित औचित्य प्रस्तुत करना भी तो लेखक ही का काम है । उदाहरण के लिए 'मानो माजरा' के पृष्ठ १०७ पर का एक उद्धरण इस प्रकार है—

"इकबाल बौखला गया । यह सम्भव नहीं है कि हिन्दोस्तानी सैक्स के बारे में बातचीत न करें । सैक्स उनके मन पर एक बोझ के समान छाया रहता है । वह उनकी कला, साहित्य और धर्म—सभी जगह फूट निकला है । भारत के शहरों की दीवारों पर हस्तमैथुन के दुष्परिणामों के इलाज सम्बन्धी बड़े-बड़े इश्तिहार भरे रहते हैं । वहाँ की सड़कों और मण्डियों में खुले आम चिल्ला-चिल्ला कर 'सांडे का तेल' बेचा जाता है (यहाँ सांडे के तेल का कथित गुण नग्न शब्दों में दिया गया है) । भारत के विज्ञापनों में ऐसी दवाइयों के विज्ञापनों की भरमार रहती है, जिनसे पुत्र अवश्य उत्पन्न होगा । भारत के समान सैक्स सम्बन्धी गालियाँ किसी अन्य देश में नहीं दी जातीं, जहाँ 'साला' और 'ससुर' तो मित्रता तक की भाषा में भी व्यवहृत होने लगे हैं । राजनीति, दर्शन, खेल—किसी भी सम्बन्ध में बात शुरू कीजिए, वह सैक्स पर पहुँच जाएगी और टोली के सब लोग पूरी दिलचस्पी से तालियाँ बजा बजा कर उसमें भाग लेने लगेंगे ।"

एक कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता हवालात में एक डाकू से बातचीत कर रहा है, उसी प्रसंग में उक्त हाशिया लेखक ने दिया है । इस सम्बन्ध में अधिक सतर्कता की आवश्यकता इस कारण भी थी कि उपन्यास का प्रकाशन विदेश में हुआ है और स्वभावतः उसकी अधिक खपत भी विदेशों में ही होगी ।

ज्ञान के उद्यान में : लेखक—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक; प्रकाशक— सत्य ज्ञान प्रकाशन, ज्वालापुर; पृष्ठ संख्या ३३६; मूल्य ३ रुपया सजिल्द ।

स्वामी सत्यदेव हिन्दी के अत्यन्त अनुभवी और लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं । अपने जीवन भर उन्होंने देश और समाज की सेवा का कार्य किया है और अपनी कला द्वारा पूर्णतः स्वतन्त्र रह कर जीवन निर्वाह किया है । 'ज्ञान के उद्यान में' नामक उनकी प्रसिद्ध रचना का यह नवीन संस्करण सुन्दर रूप में प्रकाशित हुआ है । सन् १९३५ में यह पुस्तक पहली बार छपी थी । इस नए संस्करण में अन्य भी कितने ही पुष्पों का समावेश कर दिया गया है । इससे पुस्तक का महत्त्व और उपयोग दोनों बढ़ गए हैं । पुस्तक में ४० अध्याय हैं, जिन्हें दो भागों में बाँटा गया है, एक चरित्र गठन सम्बन्धी और दूसरा व्यक्तिगत अनुभव सम्बन्धी । स्वामी जी की लेखनी में जो ओज है, उससे 'ज्ञान का उद्यान' रंग-बिरंगा हो उठा है । हमें विश्वास है कि यह ग्रन्थ यथेष्ट लोकप्रिय सिद्ध होगा ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र : अनुवादक—प्रो० इन्द्र; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज़, काश्मीरी गेट, दिल्ली-६; पृष्ठ संख्या—२५२; कीमत—३॥ रुपया, सजिल्द ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र भारतीय साहित्य का एक असाधारण ग्रन्थ है । संसार के प्रथम सर्वश्रेष्ठ राजनीति विद्या विशारदों में आचार्य विष्णुगुप्त

चाणक्य का स्थान उच्चतम है। उनकी यह कृति दीर्घकाल के बाद इस युग में पहलेपहल सन् १९०५ में उपलब्ध हुई और संसार भर के विद्वानों पर इस ग्रन्थ की असाधारण धाक जम गई। इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तर कर प्रो० इन्द्र ने निस्सन्देह एक उपयोगी काम किया है। पर इस बात की आवश्यकता है कि कौटिल्य अर्थशास्त्र का न केवल पूर्ण अमुवाद हिन्दी में उपलब्ध हो, अपितु आवश्यक संदर्भों की पूर्ण व्याख्या आदि भी फुटनोट के रूप में दी जाए। प्रो० इन्द्र कृत इस संक्षिप्त रूपान्तर की भाषा सुगम और सुबोध है। पुस्तक की छपाई आदि बहुत सुन्दर है।

नागिन : लेखक—जे० पी० गुप्त; प्रकाशक—जयन्त कुशवाहा, चिनगारी प्रकाशन, बनारस; पृष्ठ संख्या १२८; मूल्य पन्द्रह आना।

रक्त गंगा : लेखक गोविन्दसिंह; प्रकाशक आदि उपर्युक्त।

"नागिन" 'चिनगारी ऐतिहासिक उपन्यास माला' का प्रथम पुष्प है। प्रकाशक ने घोषणा की है कि इस उपन्यास माला में वह प्रति मास एक नया उपन्यास प्रकाशित करेंगे। इसी तरह "रक्तगंगा" 'नागिन साहसिक उपन्यास माला' का प्रथम ग्रन्थ है और इस माला में भी प्रति मास एक उपन्यास प्रकाशित होगा। 'नागिन' और 'चिनगारी' आदि नाम चाहे कितने ही सस्ते ढंग के हों; पर दोनों उपन्यास निस्सन्देह बहुत रोचक और पठनीय हैं। दोनों उपन्यासों में कुछ न कुछ नवीनता है। हमें विश्वास है कि चिनगारी प्रकाशन के उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध होंगे। अन्य देशों में इस तरह की कितनी ही लोकप्रिय ग्रन्थ मालाएँ प्रकाशित होती हैं। श्री जयन्त कुशवाहा यदि अपने प्रकाशनों का यही स्टैण्डर्ड कायम रख सके, तो वह हिन्दी में मनोरंजक ढंग के नए उपन्वास प्रभूत मात्रा में लाने के कार्य में सफल होंगे।

क्रियात्मक मनोविज्ञान : लेखक—प्रियरत्न आर्ष; प्रकाशक—राजपाल एण्ड सन्ज़, काश्मीरी गेट, दिल्ली ६; पृष्ठ संख्या १३६; मूल्य २ रुपया, सजिल्द।

मनोविज्ञान के क्रियात्मक उपयोगों सम्बन्धी यह पुस्तक १० अध्यायों में विभक्त है : मन और उसके उपयोग स्थल, दृष्टिबन्ध, अन्तरावेश, सम्मोहन और संवशीकरण; गन्ध सिद्धि, अन्तःकरणीय भौमिकानुभव आदि के सम्बन्ध में इस पुस्तक में जिस ढंग से प्रकाश डाला गया है, उसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। प्लांचिट आदि एकदम अवैज्ञानिक साधनों द्वारा लेखक ने जब कभी प्रयोजक, पात्र आदि के जो परीक्षण किए हैं, उन्हें पूर्ण सत्य के रूप में इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। मनोविज्ञान जैसे पेचीदा विषय को शायद एकदम सीधा-सादा और टोटकों से नियन्त्रित किया जा सकने वाला विषय समझ लिया गया है। यों पुस्तक की शैली यथेष्ट मनोरंजक है और उसके कुछ अध्यायों में उपयोगी सामग्री भी है। लेखक के उद्देश्य की तो सराहना ही की जानी चाहिए।

लोक विजय : लेखक—पं० सन्तराम; प्रकाशक—सर्वदानन्द विश्व ग्रन्थमाला, साधु आश्रम, होशियारपुर; पृष्ठ संख्या २८०; मूल्य ३। रुपया सजिल्द।

"लोक विजय" समाज शास्त्र की रचना है। व्यक्तिगत सामाजिक प्रश्नों पर लेखक ने इस पुस्तक में यथेष्ट मनोरंजक ढंग विचार किया है। उनकी शैली न केवल आकर्षक है, वह युक्तियुक्त है। होशियारपुर का साधु आश्रम साहित्य और समाज का असाधारण सेवा कर रहा है। यह ग्रन्थमाला भी उसी का भाग है।

—चन्द्रगुप्त विद्याल

●

बोलता हिन्दुस्तान : लेखक—रामनारायण उपाध्याय; प्रकाशक रामप्रसाद एण्ड सस, आगरा; पृष्ठ संख्या ५५; मूल्य आठ आने।

इस छोटी-सी पुस्तक में भारत के कुछ स्थानों का परिचय दि गया है, पर उसमें कुछ सिलसिला या क्रम नहीं मालूम होता। एक ऐतिहासिक किला माण्डव का परिचय दिया गया है फिर एक से लेखक भारत की विशाल नगरी बम्बई पर कूद जाता है, उस बाद ताज का परिचय दिया जाता है। फिर क्रमशः सेवाग्राम, कस्तूर ग्राम, निमाड़ के कुछ स्थानों का परिचय दिया जाता है। अन्त गाँव की नई सुबह नाम से एक लेख है जो प्रत्येक गाँव का साधा परिचय है। पता नहीं ऐसी पुस्तकें किस माँग की पूर्ति करती हैं।

आधुनिक भारत में वक्तृत्व-कला की प्रगति : लेखक—इ विद्यावाचस्पति; प्रकाशक—वाचस्पति पुस्तक-भण्डार, जवाहर नग दिल्ली; पृष्ठ संख्या ७८; मूल्य १।)।

इस पुस्तक के लेखक स्वयं भारतीय राजनीतिक रंगमंच के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति रहे हैं। स्वाभाविक रूप से उन्होंने भारत में वक्तृत्व कला की प्रगति पर जो कुछ लिखा है, उसमें संस्मरण का पुट बहुत जबरदस्त है जिससे कि पुस्तक सुखपाठ्य और उपयोगी बन गई है सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, एनी बीसेन्ट, बाल गंगा तिलक, मदनमोहन मालवीय, लाजपतराय, गांधी, मोतीलाल नेह चित्तरंजनदास, अलीबन्धु, सुभाषचन्द्र बोस, अबुलकलाम आज़ आदि की वक्तृत्व-कला पर लेखक ने अपनी राय लिखी है जो बहु दिलचस्प है। लेखक के विचार बहुत ही प्रौढ़ और परिपक्व हैं स्वतन्त्र भारत में वक्तृत्वकला के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"भारत संघ के प्रधान मन्त्री पं० नेहरू जी से लेकर दिल्ली जैसे छोटे से राज्य के मन्त्री का भाषण एक ही नपने से नपा होता है। वह दृ दृष्टिकोण का प्रतिबिम्ब होता है, इस कारण उसमें वक्तृत्व-कला की वस्तु को तलाश करना सर्वथा व्यर्थ है। बाकी रही मन्त्रियों अधिलिखित भाषणों की बात। मैं स्पष्टवादिता के लिए नम्रतापू क्षमा माँगता हुआ यह सम्मति प्रगति करने का दुःसाहस करता हूँ आज पंडित जवाहरलाल जी के अतिरिक्त अन्य किसी मन्त्री के श में जनता के हृदयों पर प्रभाव डालने की शक्ति नहीं। स्वराज्य लि पर दो "शब्द" शक्तिशाली थे। पहला पं० नेहरू जी का और दू सरदार का। सरदार का शब्द शान्त हो गया। अब केवल जवाहर जी का शब्द है जो भारतीय जनता के हृदयों में कोई प्रतिक्रिया उ करता है। शेष मन्त्रियों के शब्द माइक्रोफोन द्वारा विस्तारित हैं। परन्तु निश्चल हृदयों से टकराकर माइक्रोफोन में ही बात

ाते हैं। उनका मनोवैज्ञानिक मूल्य 'हिज़ मास्टस वायस' से अधिक नहीं रहा।"

क्या इस पर यह कहना उचित होगा कि स्वतन्त्र भारत में वक्तृत्व-कला की प्रगति हुई ?

अहिंसा और उसके विश्वव्यापी प्रभाव : लेखक—कामताप्रसाद जैन; प्रकाशक—श्री अखिल विश्व जैन मिशन, अलीगंज (एटा); पृष्ठ १३२।

इस पुस्तक में भक्त के खयाल से अहिंसा पर विचार किया गया है। अहिंसा पर जहाँ जो भी उल्लेख लेखक को मिला, उसे लेखक ने अपने ढंग से पेश करने का प्रयत्न किया है पर इसे अहिंसा पर वैज्ञानिक विवेचन कहना शायद उचित नहीं होगा।

मानव-संस्कृति और धर्म : लेखक—ज्ञानचन्द नाहर; प्रकाशक—ज्ञान प्रकाशन मन्दिर, ५ साँग बाजार, इन्दौर नगर; पृष्ठ ४३; मूल्य दस आने।

यह पुस्तक छुआछूत के विरुद्ध एक मुकदमा प्रस्तुत करती है। लेखक का उद्देश्य अच्छा है।

कदम की फूली डाली : लेखक—विद्यानिवास मिश्र; प्रकाशक—न्यू लिटरेचर, २५७ चक, जीरो रोड, इलाहाबाद; पृष्ठ १८३; मूल्य तीन रुपये।

इस पुस्तक में लेखक के कुछ निबन्ध संग्रहीत हैं। कहीं-कहीं इसमें गद्य-काव्य की शैली रखी गई है तो कहीं-कहीं ऐतिहासिक निबन्धों का ढंग है। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक की शैली सुन्दर है, विशेषकर लोक-साहित्य पर उन्होंने जो लेख लिखा है वह ज्ञानवर्द्धक है। इस पुस्तक के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में विंध्य भूमि की यात्रा का वर्णन है, दूसरे में आधुनिक साहित्य के कुछ प्रश्नों पर विचार किया गया है, तीसरे खण्ड में लेखक का स्वप्न मूर्त्त होता है। इसमें लेखक गद्य-काव्य की शैली पर चलते हैं।

राणा साँगा : लेखक—मनु शर्मा; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस; पृष्ठ २२२; मूल्य १।)।

इस पुम्तक में मेवाड़ की गौरव-गाथा के कुछ अध्याय अत्यन्त रोचक शैली में प्रस्तुत किए गए हैं। जिनको इतिहास में रुचि नहीं है उन्हें इस प्रकार की शैली में लिखी हुई पुस्तकें पसन्द आती हैं। इस ढंग पर और भी पुस्तकें लिखी जानी चाहिएँ। पुस्तक का मूल्य कम रखने के लिए प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

कमला नेहरू—नाटककार—प्रो० शैवाल; प्रकाशक—दि न्यू एज पब्लिकेशन्स लि० गौशाला रोड, पटियाला; पृष्ठ ८७; मूल्य २) रुपए।

श्रीमती कमला नेहरू के जीवन पर यह नाटक प्रस्तुत किया गया है। प्रकाशक ने लेखक के सम्बन्ध में महाकवि और नाटक के सम्बन्ध में अमर शब्द का जो प्रयोग किया है, वह शायद विज्ञापन की दृष्टि से है, अतएव क्षम्य है। पहली बात तो यह है कि यह विषय नाटक के लिए कहाँ तक उपयुक्त है, यह विचार्य है। नाटक-लेखन में ऐतिहासिक व्यक्ति को लेने से रस का परिपाक जल्दी होता है, पर इतने पास के इतिहास से एक महिला को सफलतापूर्वक नाटक का विषय बनाना, और उसे निभा ले जाना, विशेषकर जबकि उनका पति इस समय भारत का कर्णधार है, मामूली नाटककार के वश की बात नहीं। श्री शैवाल ने तो एक-एक व्यक्ति का संवाद कई पृष्ठों तक खींचा है, इससे स्पष्ट है कि उन्होंने इसे रंगमंच के लिए नहीं लिखा। रहा ऐसे पुनीत जीवन से जो अनुप्रेरणा पाठकों को प्राप्त हो सकती है, वह तो एक अच्छी जीवनी प्रस्तुत करने से भी प्राप्त होती। जिन काल्पनिक पात्रों की सृष्टि नाटककार ने की है, उनसे न तो कोई चमत्कार पैदा हुआ और न कोई विचित्रता आई।

—मन्मथनाथ गुप्त

●

मधुमय (कविता संग्रह) : रचयिता—व्रजकिशोर नारायण; प्रकाशक—किताब घर, पटना; पृष्ठ संख्या ६४; मूल्य २॥) सजिल्द।

जेबी आकार के ६४ पृष्ठों की दो रंगों में छपी काव्य-पुस्तिका का मूल्य २॥) शायद कुछ अधिक लगे, पर पुस्तिका नयनाभिराम है, इसमें सन्देह नहीं। इसमें रेखाएँ हैं, रंग हैं। इसकी सज-धज अपने ढंग की अनोखी है। ये बातें हैं जो काव्य-रसिकों को इस पुस्तिका की ओर सर्वप्रथम आकर्षित करेंगी। रह गई कविताओं की बात। उनके सम्बन्ध में कवि के शब्दों को ही उद्धृत करना मैं यथेष्ट समझता हूँ :

मेरे शेर घबराते हैं शोरोगुल से,
हैं नक्कारखाने की तूती बेचारे।

मगर कवि की एक और आत्म-स्वीकृति भी है—

यह उर्दू नहीं है, यह हिन्दी नहीं है !
ये जुमले जिगर के, जुबाँ ज़िन्दगी की॥

जिन्हें 'जिगर के जुमले' पढ़ने हों या जो 'ज़िन्दगी की जुबाँ' सुनने के प्रेमी हों, उन्हें 'मधुमय' अवश्य पढ़ना चाहिए।

स्वदेश और साहित्य : लेखक—शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय; रूपान्तरकार—डा० महादेव साहा; प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवापी, बनारस; पृष्ठ संख्या १८०; मूल्य ॥।≡)॥

आलोच्य पुस्तक स्वर्गीय शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के अब तक अप्रकाशित निबन्धों, भाषणों, पत्रों आदि का संग्रह है। सभी लेख पठनीय हैं। इनको पढ़ते हुए बंगला साहित्य का एक विशिष्ट युग आँखों के आगे नाच उठता है—वह युग, जब शरत् की कथा-कृतियों को 'अनैतिक' कह कर उनकी भर्त्सना की गई थी, और जब शरत् और रवीन्द्र में साहित्य और शिक्षा विषयक विचारों को लेकर वाद विवाद उठ खड़ा हुआ था। बंगला साहित्य के इन दो दिग्गजों का वह विवाद साहित्यिक वाद-विवाद चलाने वालों को शालीनता और गरिमा का पाठ पढ़ाने वाला है। साहित्य में यथार्थ और आदर्श की प्रतिष्ठा, नारी का समाज और साहित्य में स्थान, बंगला साहित्य की तत्कालीन प्रवृत्तियाँ, राजनीतिक घटनाओं और विचारों का स्पष्ट और निर्भीक विवेचन—इन सभी विषयों पर शरत् के विचार हमें इस पुस्तक में पढ़ने को मिलते हैं। पुस्तक आकर्षक भी है और उपादेय भी। मूल्य भी कम है। दुःख इस बात का है कि ऐसी अच्छी किताब की छपाई बहुत ही असन्तोषजनक है। शायद ही कोई पृष्ठ ऐसा होगा जिस पर मात्राएँ टूटने या अक्षर ग़ायब हो जाने के अनेक उदाहरण न मिलें। प्रकाशक महोदय को भविष्य में इस ओर ध्यान देना चाहिए।

कदम-कदम बढ़ाए जा (वीररसपूर्ण खण्ड-काव्य) : रचयिता—गोपाल प्रसाद व्यास; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली; पृष्ठ संख्या ७४; मूल्य १)।

हमारे राष्ट्रपिता (जीवनी) : लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त; पृष्ठ संख्या १४०; मूल्य २)।

गान्धी चरित (बालोपयोगी जीवनी) : लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त; पृष्ठ संख्या ५०; मूल्य ॥)।

मैंने कहा (हास्य निबन्ध) : लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त; पृष्ठ संख्या १२४; मूल्य ३)।

अजी सुनो (काव्य-संग्रह) : लेखक और प्रकाशक—उपर्युक्त; संख्या १७४; मूल्य ५)।

"कदम-कदम बढ़ाए जा" व्यास जी का "वीररसपूर्ण खण्ड काव्य" है, जिसमें नेता जी सुभाष के महान कार्यों का स्मरण किया गया है। सर्व-सुबोध बनाने की दृष्टि से पुस्तक की भाषा और शैली सरल रखी गई है। हिन्दी का साधारण ज्ञान रखने वाला पाठक भी इसे पढ़ और समझ सकता है। विषय तो प्रेरणा-दायक है ही। कहीं-कहीं छन्द-रचना अशुद्ध और भाषा ऊबड़-खाबड़ अवश्य हो गई है। पर पुस्तक का मज़ा फिर भी लिया ही जा सकता है।

"हमारे राष्ट्रपिता" गांधी-साहित्य सम्बन्धी अनेक उत्तम पुस्तकों में एक है। भाषा और शैली सरल, विचार स्पष्ट, परिधि सीमित और सुचिन्तित। किशोर और सद्यः शिक्षित प्रौढ़ पाठकों तथा अहिन्दी भाषा-भाषियों के लिए पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। अन्त में आश्रम के भजनों व प्रार्थना-मन्त्रों, बापू के सम्बन्ध में देश-विदेश के चिन्तकों के विचारों, जीवन-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण घटनाओं और तिथियों की सूचनादि देकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया गया है।

"गांधी चरित" बालकों के लिए लिखा गया है। मोटे टाइप में साफ-सुथरी छपी हुई यह पुस्तिका बच्चों के लिए उपयोगी और आकर्षक सिद्ध होगी। इसमें यदि कुछ चित्र भी दे दिए जाते तो इसका आकर्षण और भी बढ़ सकता था।

"मैंने कहा" व्यास जी के हास्य निबन्धों का संग्रह है। हिन्दी में हास्य लेखकों की काफ़ी कमी है। व्यास जी निरन्तर अपनी कविताओं और गद्य-कृतियों से इस कमी की पूर्ति कर रहे हैं। "मैंने कहा" के निबन्धों की एक बड़ी विशेषता यह है कि वे जहाँ आपको गुदगुदाते हैं वहीं, आज के जीवन की किसी न किसी समस्या की ओर भी ध्यान आकर्षित करते हैं। जैसे मकान का अभाव, मेहमानदारी के कष्ट, नौकर की समस्या, कवि-सम्मेलनों का धन्धा, बस की सवारी, दफ्तरों के हाल-चाल इत्यादि। इस प्रकार व्यास जी का हास्य जहाँ एक ओर हृदय को उल्लसित करता है वहीं मस्तिष्क को झकझोरता भी है। यह व्यास जी की हास्य-रचनाओं की विशिष्ट सफलता है। कुछ पाठकों को इन निबन्धों में उस बारीकी की कमी खटक सकती है, जो पाश्चात्य हास्य-लेखकों में अक्सर पाई जाती है। पर हमें यह नहीं भूल जाना है कि हमारे यहाँ अभी बहुतायत ऐसे पाठकों की है जिनमें साहित्य के विभिन्न अंगों के प्रति रुचि ही उत्पन्न नहीं हो पाई। अतः साहित्यिकों का प्रथम कार्य है पाठकों की रुचि जाग्रत करना। रुचि का सम्
भी अपने समय में होगा ही। जिस प्रकार एक ज़माने में "चन्द्रकान्
को पढ़ने के उद्देश्य से ही लाखों की संख्या में लोगों ने हिन्दी सी
थी, (यद्यपि "चन्द्रकान्ता" स्वयं में एक गठा हुआ उपन्यास है, जि
चित्त को उलझाए रखने की अपूर्व क्षमता है) उसी प्रकार, मुझे विश्
है कि, व्यास जी की गद्य और पद्य की हास्य कृतियों को पढ़ने के लि
लोग यदि हिन्दी सीखें तो "किमाश्चर्यम् अतः परम् ?" किसी
लेखक की यह एक बड़ी सफलता है। शैली का परिष्कार तो समय
साथ होता ही जाएगा।

ऊपर जो कुछ कहा गया, वही व्यास जी की हास्य-कविताओं
संग्रह के द्वितीय संस्करण "अजी सुनो···" के सम्बन्ध में भी कहा
सकता है। "अजी सुनो" में भी सोद्देश्य हास्य है। आज के
की अनेक दुर्बलताओं, कमियों और अन्यायों पर इस संग्रह
कविताओं में कहीं सीधी, कहीं व्यंग्यात्मक चोटें हैं। "पत्नी" के
से व्यास जी ने मानव-दुर्बलताओं का मज़ेदार दिग्दर्शन कराया
संग्रह में दी गई व्यास जी की अनेक कविताएँ कवि सम्मेलनों
माध्यम से लाखों श्रोताओं की ज़बान पर चढ़ चुकी हैं। जनप्रि
ही साहित्य की कसौटी हो, ऐसी बात नहीं है। पर सोद्देश्य रचना
की जनप्रियता, कम से कम, रचयिता की इस सफलता की ओर
इंगित करती ही है कि उसने समाज की किसी दुखती रग को
है। सामाजिक व्यंग के लेखक के रूप में व्यास जी की सफ
निर्विवाद है। हाँ, कभी-कभी उनकी कलम से ऐसी पंक्तियाँ
निकल आती हैं जो शिष्ट हास्य की सीमा का अतिक्रमण कर जाती
जैसे ५वें पृष्ठ पर दी गई कविता की "ललनाएँ" से आरम्भ होने
कुछ पंक्तियाँ। पर ऐसा कम ही होता है। अधिकांशतः हम व्यास
के मस्तमौलापन की ऊबड़-खाबड़ उपजों पर खिलखिला सकते
कभी राजाओं का युग था और उनके दरबार में विदूषक का काम
मनोविनोद द्वारा उन्हे विविध चिन्ताओं का भार सहन करने
बनाना। आज जनता ही राजा है जिसके दरबार के विदूषक व्यास
लाख-लाख मस्तिष्कों के चिन्ता-भार को हल्का कर रहे हैं।
लिए उन्हें शतशः बधाइयाँ।

निकष २ (अर्ध वार्षिक संकलन) : सम्पादक—धर्मवीर
तथा लक्ष्मी कान्त वर्मा; प्रकाशक—साहित्य भवन लिमिटेड,
पृष्ठ संख्या २४०; मूल्य तीन रुपये।

हिन्दी में इधर कुछ समय से साहित्यिक संकलनों की धूम
कुछ तो काव्य-संकलन निकले हैं और कुछ मिले-जुले संक
"निकष" एक मिला-जुला संकलन है। "निकष" के प्रथम अंक का
स्वागत हुआ। केवल उन्हीं क्षेत्रों ने उसके प्रति अरुचि दिखा
परम्परा की चहार दिवारी से बाहर बिल्कुल ही नहीं झाँक
अथवा जिन्हें हर नए और सशक्त प्रयास को देखते ही यह भय
लगता है कि अब उनका गुरुडम समाप्त हुआ, अब उनके पाँवों
से धरती खिसकी। "निकष" और "संकेत" जैसे साहित्य-सं
हिन्दी साहित्य की नवोन्मेषशालिनी, तरुण और मौलिक प्रतिभाओं

तिनिधित्व करता है । हर नए प्रयत्न में कुछ कमज़ोरी हो सकती है । "निकष" में भी कमज़ोर कृतियाँ हैं । "महागाथा" एक ऐसी ही कृति है। सिवा शैली के प्रयोग के और कोई बात इस कहानी में बनती नहीं। इसी प्रकार "गोभक्ति" का व्यंग्य इतना स्पष्ट है कि मन को ऊपर ही ऊपर छू कर रह जाता है । जगदीश गुप्त के चित्रों पर दिया गया परिचयात्मक लेख भी और सशक्त हो सकता था ।

परन्तु दूसरी ओर "निकष" की अधिकांश रचनाओं में एक ऐसी गी और एक ऐसी शक्ति है जो पाठक को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है । माखनलाल चतुर्वेदी के लेख "कला के मरण-बिन्दु" की निम्नलिखित पंक्तियाँ सर्वकाल के लिए स्मरणीय हैं—

"कलाकार का जीवन विधाता का वरदान है । उसके घर दारिद्र्य उस दिन नहीं आता, जब उसे भूख का भान हो और वह भीख की भाषा लिखने लगे । उसका सबसे बड़ा दुर्दिन तब आता है जब वह अपने अनन्त विश्वासों के लिए नई सूझ नहीं खोज पाता, और विश्वासों के द्वारा माँगे जाने वाले संकट-पथ को किसी बाहरी भय से या सुविधाओं के मोह से स्वीकार नहीं कर पाता । वही कलाकार की कालरात्रि है, और कला का मरण-बिन्दु ।"

अज्ञेय और शम्भुनाथ सिंह की कविताओं में व्यक्त आस्था के स्वर न्तातम की गहराई तक प्रवेश करते हैं । रघुवीर सहाय की लघुकथा "लड़के" रोज़मर्रा की जिन्दगी की एक मार्मिक तस्वीर है । मनोहर श्याम जोशी की कहानी "उसका बिस्तर", केशवचन्द्र वर्मा की कहानी "काले डब्बों की चरखी", मोहन राकेश का एकांकी "दूध और दाँत", न्द्र यादव की कहानी "रोशनी कहाँ है",—इन सभी में आज का समाज-यथार्थ प्रखर रूप में व्यक्त हुआ है । "सूने अँगन रस बरसै", डा० लक्ष्मीनारायण लाल की ऐसा मनोरम कथा कृति है जिसमें गाँव की धरती का सोंधापन, ग्राम-जीवन के करुण मधुर उतार-चढ़ाव और ग्राम वधुओं तथा बालाओं के मन और जीवन की तृष्णा और मिठास बहुत ही सफल रूप में व्यक्त हुई है । मालती परुलकर की कहानी "कविप्रिया", नरेश मेहता की कथा-कृति "तथापि" और शांता सिन्हा की कहानी "सिम्फनी" की सम्वेदनात्मक गहराई मन को सर्वथा आप्लुत करने वाली है । "ये विपथगाएँ" नचिकेता का एक ऐसा निबन्ध है जो आज और आगामी कल की पीढ़ी के मन में खुशी और उत्साह भरने वाला और बीते कल की पीढ़ी की आँखें खोलने वाला सिद्ध होगा । उसके निम्न वाक्य कितने सही हैं—

"हम अपराधी होंगे, यदि हमने सत्य नहीं कहा; हम अपराधी होंगे, यदि हमने अपना स्वरूप नहीं पहचाना; हम अपराधी होंगे, यदि हमने अपने सत्य का, अपनी पहचान का लाभ अपने असंख्य न्धुओं को नहीं पहुँचाया । विपथगाएँ हमारा पथ नहीं मोड़ सकतीं, यदि हम मुड़ने वाले तत्व के खुद न बने हों । आज राजमार्ग पर रपटन है, फिसलन है; हमें पगडण्डी पकड़नी होगी, तभी हम अपनी मंज़िल तक पहुँचने की आशा रख सकते हैं । उन पथिकों को विपथगाओं से कोई आशंका नहीं होनी चाहिए, क्योंकि पथ उनके कल्याण का दायित्व अपने ऊपर ले लेता है; पथ ही उन्हें तार देगा ।"

फणीश्वरनाथ रेणु, जिनके "मैला आँचल" उपन्यास से हम सब परिचित हो चुके हैं, अपने अगले उपन्यास की एक झलक लेकर "निकष" में उतरे हैं । शिवप्रसाद सिंह का यात्रा-वर्णन अभिव्यक्ति पर उनके चमत्कारिक अधिकार का सूचक है । शमशेर बहादुर सिंह द्वारा रूपान्तरित भुवनेश्वर की दोनों कविताएँ बड़ी सशक्त कृतियाँ हैं । श्रीकान्त वर्मा की कृति "संख्या के बच्चे" की अन्तिम दो पंक्तियाँ—

> 'मत भूलो···
> शून्य शक्ति है, शून्य प्रजा है ।'

आज के प्रखर युग-सत्य को व्यक्त करती है । साही की कविता "अयाचित झोंका" की ताज़गी दर्शनीय है:—

> हो गया कम्पित शरद् के शांत झीने ताल-सा
> तन
> आह ! करुणा का अयाचित एक झोंका
> सान्त्वना की तरह, मन की सतह पर लहरा गया,
> कहाँ से उपजा ?
> कहाँ को गया ?

इस प्रकार "निकष" के प्रकाशन से हिन्दी की अनेक तरुण प्रतिभाएँ ऊभर कर सामने आई हैं। यह वह प्रतिभाएँ हैं जिनके हाथ में भविष्य की पताका है । वे कहाँ तक इस पताका को एक के बाद एक उन्नत शृंगों पर लहराएँगी, यह हमें देखना है ।

—प्रयागनारायण त्रिपाठी

◆

सिद्धार्थ बुद्ध : लेखक—श्री बनारसीदास 'करुणाकर'; प्रकाशक—श्री गौरीशंकर शर्मा; भारती साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली; पृष्ठ संख्या १४८; मूल्य २ रुपए ।

यह नाटक महात्मा बुद्ध की जीवन गाथा के विषय में उनकी २५००वीं जयन्ती के अवसर पर लिखा गया है और उसे अभिनय योग्य बनाने का विशेष ध्यान रखा गया है । नाटककार की दूसरी चेष्टा रचना को प्रामाणिक बनाने की रही है और इस आशय की पूर्ति के लिए उन्होंने कथानक तथा बौद्ध दार्शनिक विचारों के लिए श्री राहुल सांकृत्यायन कृत 'बौद्ध चर्या', भदन्त बोधानक कृत 'बौद्धचर्या पद्धति', श्री सूर्यनारायण चौधरी द्वारा अनूदित महान बौद्धकवि, अश्वघोष कृत 'बुद्ध चरित' तथा 'धम्मपद' आदि ग्रन्थों का आधार लिया है यद्यपि नाटकीयता की दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं में थोड़ा-सा उलट-फेर भी किया है ।

जैसा कि पुस्तक के भूमिका लेखक बाबू गुलाबराय ने लिखा है भारत के धार्मिक और राजनीतिक इतिहास में भगवान बुद्ध का महत्त्वपूर्ण स्थान है । बौद्ध धर्म के कारण ही पिछली अनेक शताब्दियों में भारत का प्रबल अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव रहा, बौद्ध धर्म ने ही पहले-पहल जाति-पाँति के बन्धनों को तोड़ मानव-मानव की समता का पाठ पढ़ाया । केवल इसलिए भी ऐसे महापुरुष का जीवन चरित्र पठनीय है, फिर 'करुणाकर' जी का नाटक तो बुद्ध महाराज के जीवन की करुणा के उद्घाटन में भली प्रकार समर्थ होता है । नाटक छोटा और अभिनय

(शेष पृष्ठ ७० पर)

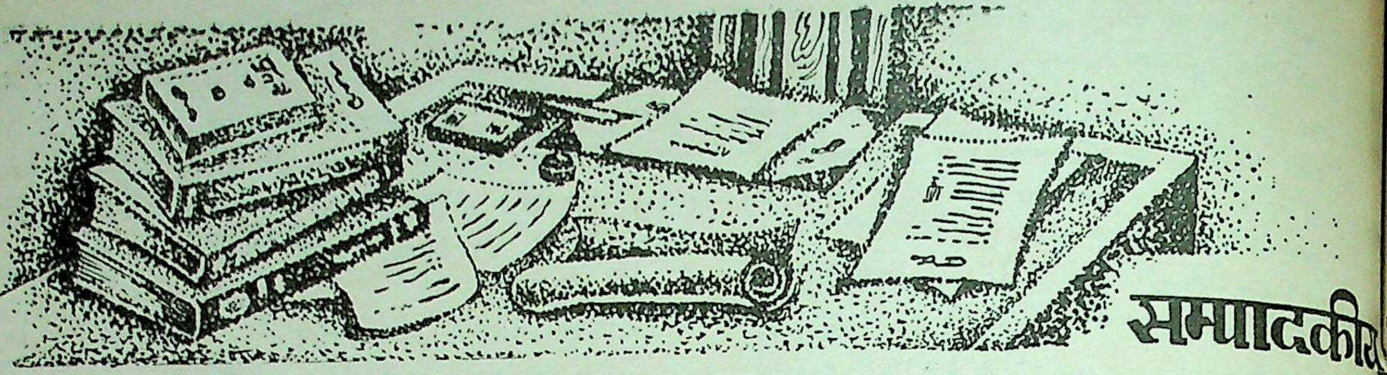

स्वेज़ नहर का राष्ट्रीयकरण

सामरिक महत्त्व तथा भौगोलिक महत्त्व की दृष्टि से स्वेज़ नहर से बढ़कर सम्पूर्ण एशिया तथा यूरोप में सम्भवतः अन्य कोई एक स्थान नहीं है। स्वेज़ एशिया की कुञ्जी है और शायद यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि सब मिला कर संसार का वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण द्वार है। स्वेज़ की तुलना में पैनामा नहर की महत्ता इस कारण कम हो जाती है कि संसार की तीन-चौथाई आबादी एशिया और यूरोप में विद्यमान है और जलमार्ग द्वारा उनके पारस्परिक यातायात की दृष्टि से स्वेज़ नहर एक अनिवार्य द्वार है।

राष्ट्रपति नासर द्वारा इसी स्वेज़ के राष्ट्रीयकरण का समाचार द्वितीय महायुद्ध के बाद का सम्भवतः सबसे अधिक चौंका देने वाला समाचार है। इस राष्ट्रीयकरण का सबसे अधिक प्रभाव ब्रिटेन और फ्रांस पर पड़ना स्वाभाविक है, जो स्वेज़ नहर कम्पनी के प्रथम और द्वितीय बड़े हिस्सेदार थे। राष्ट्रपति नासर ने विश्वास दिलाया है कि स्वेज़ में संसार भर के देशों के जहाज़ों का यातायात यथापूर्व जारी रहेगा, उसमें किसी तरह की अड़चन नहीं डाली जाएगी। उन्होंने तो यहाँ तक भी विश्वास दिलाया है कि स्वेज़ कम्पनी के किसी कार्यकर्त्ता को उसके कार्य से पृथक नहीं किया जाएगा और न उनके वेतन, अवकाश आदि पर इस राष्ट्रीयकरण का कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। हमें आशा करनी चाहिए कि स्वेज़ के राष्ट्रीयकरण से संसार की शान्ति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

स्वेज़ नहर कम्पनी के पट्टे के अनुसार अभी वह कम्पनी आगामी १३ वर्षों तक मिस्र में अपना कारोबार जारी रख सकती थी। गतवर्ष संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैंड ने मिस्र से वायदा किया था कि दोनों राष्ट्र मिस्र के आस्वन बाँध के लिए कुछ धन राशि देंगे। कुछ ही समय पूर्व कुछ कारणों से उक्त दोनों देशों ने अपना वचन वापस ले लिया। स्वेज़ नहर के एकाएक राष्ट्रीयकरण की उत्तेजना सम्भवतः इसी कारण से मिली। योजना के अनुसार आस्वन बाँध संसार के सबसे बड़े बाँधों में होता और यह स्पष्ट है कि उसके बिना मिस्र की वांछनीय आर्थिक सम्पन्नता सम्भव नहीं है। राष्ट्रपति नासर का कथन है कि मुख्यतः उक्त बाँध के लिए अर्थ संग्रह के उद्देश्य से ही उन्होंने स्वेज़ नहर का राष्ट्रीयकरण किया है। एक स्वाधीन और सर्वप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र होने के नाते मिस्र की सरकार अपना यह अधिकार मानती है कि वह अपने देश के भीतर की किसी कम्पनी का राष्ट्रीयकरण कर सके, जिस तरह अन्य भी कितने ही स्वतन्त्र देशों किया है।

यह तो स्पष्ट है कि एशिया में बाह्य शक्तियों के हस्तक्षेप के अब समाप्त हो चुके। आशा है कि स्वेज़ नहर के राष्ट्रीयकरण के उत्पन्न गरमागरमी को शान्त करने का प्रयत्न करते हुए इस तथ्य भी अपेक्षा नहीं की जाएगी।

१६ अगस्त से स्वेज़ की समस्या के सम्बन्ध में लण्डन में राष्ट्रों की एक महत्त्वपूर्ण कान्फरैन्स हो रही है। पर इस कान्फ्रैं में ईजिप्ट सम्मिलित नहीं हुआ। इस कान्फरैन्स के प्रारम्भ से पूर्व तरह ब्रिटेन और फ्रान्स के सामुद्रिक जंगी बेड़े भूमध्य सागर की चल दिए थे और जिस तरह ब्रिटिश पालियामैंण्ट में प्रधान मन्त्री एन्थनी ईडन ने राष्ट्रपति नासर पर व्यक्तिगत आक्षेप किए थे, उ यह स्पष्ट है कि स्वेज़ के राष्ट्रीय करण से इंगलैण्ड बहुत उत्ते होगया था। हमें आशा है कि परिस्थितियों पर ठण्डे दिमाग़ से वि करने के बाद सम्बद्ध देश स्वेज़ के बारे में कोई ऐसा उचित मार्ग तला कर सकेंगे, जिससे मिस्र के राष्ट्रीय गौरव पर कोई आँच न आने तथा अन्य देशों को भी कोई वाजिब शिकायत न रहे।

●

अणु शक्ति के शान्त उपयोग

मानव जाति को सुख-सुविधा पहुँचाने वाले कार्यों में अणु के प्रयोग की सम्भावनाएँ इस वर्ष बहुत अधिक बढ़ी हैं। इस के परीक्षणों की ओर जिन देशों ने गम्भीरता पूर्वक ध्यान है, उनमें भारत भी है। हाल ही में भारत का बम्बई में स्थापित न्यूक्लियर रिएक्टर शक्ति (क्रिटिकैलिटी) समन्वित किया गया है। इस देश में एक नए युग का पूर्व-सूचक हो सकता है। स्वभावतः दृष्टि से भी संसार के वही दोनों सबसे अधिक शक्तिशाली देश हैं, जिनके पास अणु बम और हाइड्रोजन बम प्रभूत मात्रा में वि हैं। शान्तिमय कार्यों के सम्बन्धमें रूस में जो क्रान्तिकारी परीक्षण हैं, आशा है, उनका परिणाम बहुत शीघ्र संसार के सम्मुख आ स हाल ही में संयुक्त राज्य अमेरिका ने २५ अरब (२५,००,००,००, रुपयों के व्यय से एक अत्यन्त विशाल एटॉमिक प्रयोगशाला निर्माण प्रारम्भ किया है। यह दावा किया गया है कि इन परीक्ष आधार पर कुछ ही वर्षों में एटम शक्ति से निम्नलिखित परिणाम कर लिए जा सकेंगे :—

१. पूरे मकान को इच्छानुसार ठण्डा या गरम किया जा सकेगा। एक ही जगह से घर पर की सब खिड़कियाँ, रोशनदान, परदे आदि खोले या बन्द किए जा सकेंगे।

२. एटोमिक रेडिएशन के प्रभाव से तैयार भोजन चाहे जितने दिनों तक स्वस्थ और स्वादिष्ट रूप में सुरक्षित रक्खा जा सकेगा।

३. खेतों में अवांछनीय घास-फूस को इसी एटम शक्ति से अभिभूत द्वारा नष्ट कर दिया जा सकेगा। केवल वही पौध बची रहेगी, किसान उगाना चाहता है।

४. ऐसे टैलीफ़ोन बनाए जा सकेंगे, जिनसे न केवल पृथ्वी भर के सब स्थानों से बातचीत की जा सकेगी, अपितु टैलीफ़ोन के ऊपर बनाए गए एक पर्दे पर दूसरी ओर बात करने वाले व्यक्ति को देखा भी जा सकेगा।

५. ऐसी मशीनें बनाई जाएँगी, जिनके द्वारा बड़े से बड़े और पेचीदा समस्याओं को हल करने के अतिरिक्त विशाल पुलों और गगनचुम्बी इमारतों के इंजीनियरिंग सम्बन्धी नक्शे और हिसाब किताब आदि भी तैयार किए जा सकेंगे।

६. ऐसी मशीनें बन जाएँगी, जो घर भर को कुछ ही मिनटों में -पोंछ कर स्वच्छ कर देंगी। मैले कपड़ों को घर ही पर धोने, इस्त्री और तह करने का काम भी एटोमिक मशीनें ही करेंगी।

स्वर्गीय हरिजी गोविल

भारत के प्रतिभाशाली और कर्मठ सुपुत्र श्री हरिजी गोविल के देहावसान का समाचार सम्पूर्ण हिन्दी जगत में अत्यन्त शोक और गहरी संवेदना के साथ सुना गया है। अपने जीवन का एक बड़ा भाग विदेशों में रह कर जिन भारतीयों ने अपने देश का मुँह उज्ज्वल करने का भरसक प्रयत्न किया, और जिनके सम्पर्क में आकर अन्य देशों के नागरिकों के हृदय में भारत भर के लिए श्रद्धा और सम्मान की भावना उत्पन्न हुई, श्री हरिजी गोविल उन्हीं लोगों में थे। अपने अनथक प्रयत्न से उन्होंने अमेरिका में धन और यश का अर्जन किया। साधनहीन महत्त्वाकांक्षी युवकों के लिए हरिजी गोविल का जीवन एक आदर्श जीवन है। हमें खेद है कि वह अपना आत्मचरित नहीं लिख पाए। हरिजी गोविल के नागरी लाइनो टाइप के आविष्कार से तो हिन्दी जगत परिचित है ही, पर यह तथ्य बहुत कम लोग जानते हैं कि हाल ही में उन्होंने नागरी प्रिंटिंग के लिए 'फोटो-सैटर' नामक एक नई मशीन का आविष्कार किया था। उन्होंने जिस तरह ६ प्वाइण्ट से लेकर १२ प्वाइण्ट तक के नागरी टाइपों का निर्माण किया था, उनका ज़िक्र हम गत वर्ष इन्हीं स्तम्भों में कर चुके हैं। अपनी नई मशीन लेकर वह हाल ही में भारत आए थे। "आजकल" के लिए उन्होंने अपने आविष्कारों के सम्बन्ध में एक विशेष लेख लिखा था। अमेरिका से चलते समय उन्होंने हमें इस बात की सूचना दी थी। "आजकल" कार्यालय उनके स्वागत की प्रतीक्षा कर रहा था कि बम्बई से उनके असामयिक देहावसान का समाचार प्राप्त हुआ। हम "आजकल"–परिवार की ओर से भी हरिजी गोविल के प्रति आदर भावना प्रकाशित करते हैं।

"बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष"

जैसा कि गत मास घोषणा की जा चुकी है, यह निश्चय किया गया है कि इस वर्ष दिसम्बर १९५६ में "आजकल" के स्थायी ग्राहकों को "आजकल" के वार्षिक अंक के रूप में "बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष" नामक ग्रन्थ भेंट में दिया जाए। अतः यह ग्रन्थ दिसम्बर में "आजकल" के वार्षिक अंक के रूप में प्रकाशित होगा। इस ग्रन्थ की भूमिका के लेखक हैं—सर्वपल्ली श्री राधाकृष्णन्। ग्रन्थ के कुछ अध्यायों के शीर्षक इस प्रकार हैं—बौद्ध धर्म का स्रोत, महात्मा बुद्ध की जीवनी और सन्देश, चार बौद्ध महासभाएँ, अशोक तथा बौद्ध धर्म का प्रसार, बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय, बौद्ध साहित्य, बौद्ध शिक्षा केन्द्र, अशोक के बाद के भारतीय तथा विदेशी महान् बौद्ध, बौद्ध तीर्थ आदि। इन अध्यायों के कुछ लेखक हैं—प्रोफ़ेसर बापत, श्री वैद्य, श्री जोशी, श्री जिनानन्द, प्रो० बागची, श्री गोखले, प्रो० मजूमदार, श्री तकासाकी, श्री अनुकूल चन्द्र बैनर्जी, श्री साकाइ, श्री नलिनाक्ष दत्त, श्री भरतसिंह, श्री आनन्द कौसल्यायन, श्री राहुल सांकृत्यायन, श्री ऐया स्वामी शास्त्री, श्री अनागरिक गोविन्द, श्री गुन्थर आदि।

बौद्ध साहित्य के सम्बन्ध में उक्त ग्रन्थ का प्रकाशन अपने क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह ग्रन्थ रत्न "आजकल" के उन्हीं ग्राहकों को भेंट किया जाएगा, जो "आजकल" के स्थायी ग्राहक हैं। जो लोग "आजकल" किसी अन्य स्रोत से खरीदते हैं, वे ग्रन्थ की पूरी कीमत देकर ही उसे प्राप्त कर सकेंगे। जो सज्जन ६ रु० भेज कर "आजकल" के वर्ष भर के लिए ग्राहक बन जाएँगे, उनके पास यह ग्रन्थ दिसम्बर १९५६ में डाक द्वारा निश्शुल्क रूप में पहुँचेगा।

लेखकों को आवश्यक सूचना

१. यह निश्चय किया गया है कि अनाहूत रचनाओं की वापसी का उत्तरदायित्व "आजकल" कार्यालय नहीं लेगा। केवल वे रचनाएँ ही वापस की जाएँगी, जिन के साथ उचित आकार का, आवश्यक डाक टिकटों से युक्त, पूरा पता निर्दिष्ट किया हुआ लिफ़ाफ़ा विद्यमान होगा। उस दशा में भी "आजकल" कार्यालय केवल उक्त लिफ़ाफ़े को डाक में डालने का उत्तरदायित्व ही लेगा; पहुँच के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगा। "आजकल" कार्यालय में प्रतिमास अनाहूत रूप से प्राप्त होने वाली रचनाओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है, इसी कारण उक्त निश्चय किया गया है। उचित यही होगा कि रचना भेजने से पूर्व उसकी एक प्रति अपने पास सुरक्षित रख ली जाए।

२. अनुवादित रचनाएँ भेजते हुए मूल लेखक की लिखित अनुमति साथ भेजना आवश्यक है।

पुस्तक समालोचना—(पृष्ठ ६७ का शेषांश)

की दृष्टि से सुन्दर है। भाषा सरल और सुबोध है एवं घटनाचक्र रोचक है।

लोहा सिंह : लेखक—श्री रामेश्वरसिंह काश्यप; प्रकाशक—ग्रन्थ-माला कार्यालय, पटना-४; पृष्ठ संख्या ११०, मूल्य २।)

लेखक की यह पहली प्रकाशित पुस्तक है। इसमें हास्यरस के पाँच एकांकी संग्रहीत हैं, जिनसे पाठक अथवा दर्शक का अवश्य ही मनोरंजन होगा। इन नाटकों का रस निवेदन शहरी न होकर देहाती है और मनोरंजन भी अधिक सूक्ष्म नहीं है पर वह स्वस्थ अवश्य है। सभी एकांकियों का एक ही प्रमुख पात्र 'लोहासिंह' है जो खड़ी बोली मिश्रित भोजपुरी बोलता है। अन्य पात्र भोजपुरी बोलते हैं पर इस कारण से इन एकांकियों को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। इनमें जगह-जगह व्यंग्य का भी पुट है और हास्य का तो ये पिटारा ही हैं। संक्षेप में इनमें लोकप्रियता के सभी गुण मौजूद हैं।

लंकेश्वर : लेखक—अम्बिका प्रसाद 'दिव्य'; प्रकाशक—'साहित्य सदन' अजयगढ़, वी० पी०; पृष्ठ संख्या १०६, मूल्य १॥)

लेखक ने रामायण की कहानी के आधार पर प्रस्तुत नाटक लिखा है। किन्तु रामायण में जहाँ राम के चरित्र को प्रमुखता दी गई है इस नाटक में रावण के चरित्र को दी गई है। रावण के चरित्र को इस प्रकार ऊपर उठाया गया है कि वह भी एक विचार-धारा का परिपोषक जान पड़ता है। आज के राजनीतिक युग में जब सब प्रकार के कार्यों के लिए किसी न किसी विचारधारा का आश्रय लेना अनिवार्य-सा हो गया है तो हम नाटक को समयोचित ही कहेंगे। नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह तीन-चार घंटे के भीतर ही खेला जा सकता है और भाषा व रंगमंच की दृष्टि से भी सफल है।

कविकुल गुरु : लेखक—कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह; प्रकाशक—सेवा प्रकाशन, गौतम बुद्ध मार्ग, लखनऊ; पृष्ठ संख्या १७१, मूल्य ३)

प्रस्तुत पुस्तक कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह जी के आठ एकांकियों का संग्रह है। ये एकांकी संस्कृति और हिन्दी के क्रमशः आठ महाकवियों—महर्षि वेदव्यास, महाकवि कालिदास, जानिक, चन्द, सूर, रहीम, भूषण और निराला के जीवन को आलोकित करने वाली घटनाओं के आधार पर लिखे गए हैं। पुस्तक की विषय-सूची ही लेखक महोदय की साहित्य-निष्ठा की द्योतक है, यहाँ तक कि उन्होंने एक जीवित कवि 'निराला' तक को अपनी कल्पना के सहारे रंगमंच पर प्रस्तुत कर दिया है। ऐतिहासिक तथ्यता अथवा अभिनय की कसौटी पर इन एकांकियों को परखने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, यहाँ तक कि महाकवि निराला का एक स्वगत तो पृष्ठ १६७ से आरम्भ होकर पृष्ठ १७७ तक चलता है।

प्रादुर्भाव : लेखक—जगदीश, एम० ए०; प्रकाशक—राष्ट्रीय पुस्तक भण्डार, नई सड़क, देहली; पृष्ठ संख्या ९९, मूल्य ढाई रुपये।

प्रस्तुत नाटक कल्पना प्रधान रूपक है जिसके पात्र हैं शंकर, उमा, जीव, सूर्य, चन्द्र, मधुवन, अनिल, पुलिन, सागर, मेघ, सरिता, समीर, आशा, कामना, तृष्णा आदि। पात्रों की यह सूची अपूर्ण ही है। स्थान, काल, दृश्य आदि में भी इसी प्रकार कोई तारतम्य नहीं है। लेखक महोदय पौराणिक संसार की भूमिका-सी बाँधते हैं और फि आधुनिक परमाणु युग की बातें करते हैं। पाठक की समझ में नहीं आता कि उनकी इस कल्पनाधारा के पीछे निहित आशय क्या है? पर इस विलक्षण कृति के निर्माण में लेखक ने काफी परिश्रम किया है यह स्पष्ट है।

दौलत विलास : लेखक—स्वर्गीय दौलतराम; सम्पादिका—श्रीमती सरोजिनी देवी जैन; प्रकाशक—श्री अ० वि० जैन मिशन, अलीगंज, एटा; पृष्ठ संख्या १११, मूल्य सदुपयोग।

जैन पत्रकारों में कविवर दौलतराम जी का अपना अलग स्थान है। इस पुस्तक में उनके पद संग्रहीत किए गए हैं। आशा है जैन-समाज में संग्रह का समुचित आदर होगा।

—जगदीश गो

●

मद्य-निषेध

"ग्रामात् अनिर्णयनं असंपातं च सुरायाः, प्रमाद भयात् कर्मसुनिर्दिष्टानां मर्यादातिक्रम भयात् आर्याणां उत्साह भयाच्च तीक्ष्णानाम्।

(कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण २, अध्याय २५)

शराब न तो आबादी के भीतर चुआई (बनाई) जा सकेगी और न उसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की अनुमति दी जाएगी। क्योंकि शराब से विभिन्न कार्यों पर नियुक्त राजकर्मचारियों में प्रमाद आने लगता है और जनता में झगड़े बढ़ जाते हैं। साथ ही शराब के व्यवहार से आर्यों की परम्परागत मर्यादा टूटने का भी भय है।

'आजकल' के स्थायी ग्राहकों को आवश्यक सूचना

१९५६ के वार्षिक अंक

के रूप में 'आजकल' के स्थायी ग्राहकों को

दिसम्बर १९५६ में

"बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष"

नामक बीसों सुन्दर चित्रों से भूषित लगभग ३५० पृष्ठों का एक अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ भेंट किया जाएगा

●

इस ग्रन्थ में महात्मा बुद्ध के व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तों के अतिरिक्त भारत तथा अन्य देशों पर बौद्ध प्रभाव के सम्बन्ध में अत्यन्त प्रामाणिक लेखकों द्वारा प्रकाश डाला गया है।

यदि आप ६) मनीआर्डर द्वारा भेज कर अभी से एक वर्ष के लिए 'आजकल' के ग्राहक बन जाएँगे, तो यह ग्रन्थरत्न निश्शुल्क रूप में आपको भेंट किया जाएगा।

आप अपनी कापी अभी से सुरक्षित करवा लीजिए।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में विस्तृत सूचनाएँ सम्पादकीय टिप्पणियों में देखिए

●

बिज़िनेस मैनेजर,
पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली–८

JASMINE
आपकी
सुन्दरता के
निखार के
लिये
जस्मीन
रेयाँन-सिल्क
के कपड़े
जस्मीन मिल्स् प्राईवेट लिमिटेड, बम्बई-२
JM.96.1

दो महान् कृतियाँ

स्वाधीनता और उसके बाद :

१९४६ से १९४९ तक के ऐतिहासिक काल में दिए गए, जनजन वल्लभ नेता जवाहरलाल नेहरू के ५९ भाषणों का अनुपम संग्रह। राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत, निर्माणकारी प्रयत्नों के लिए प्रेरक इन भाषणों से कौन भारतीय वंचित रहना चाहेगा।

सुन्दर, आकर्षक छपाई, व अनेक चित्रों सहित, ४४५ पृष्ठों वाले इस सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल ५) है। डाक व्यय १-१०-० अलग।

★

भारत की एकता का निर्माण :

राष्ट्रीय एकता के प्रणेता, सरदार वल्लभ भाई पटेल के २७ ऐतिहासिक भाषणों का अनुपम संग्रह। ''लौह पुरुष'' की अमर वाणी युगयुगान्तर तक प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए उत्साहवर्धक, प्रेरक व मार्गदर्शक रहेगी।

सुन्दर, आकर्षक छपाई, व अनेक चित्रों सहित, ३५२ पृष्ठों वाले इस सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल ५) है। डाक व्यय १-८-० अलग।

★

उपरोक्त दोनों पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक व्यय नहीं लिया जाएगा।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

उन्हें यह बहुत ही पसंद है—

न सिर्फ़ वह मनलुभावना लॉकेट जो बिनाका की हर ट्यूब के साथ रखा रहता है, बल्कि दाँतो का वह पूर्ण स्वास्थ्य भी जो बिनाका टुथपेस्ट का उपयोग करने से मिलता है।

बिनाका टुथपेस्ट का फलों-सा स्वाद आपके परिवार का मन शुरू ही से मोह लेगा, लेकिन बच्चों को दाँत साफ़ और स्वस्थ रखने के लिये बिनाका टुथपेस्ट बनाने वालों ने और भी बढ़ावा दिया है — मुफ़्त भेंट जिन्हें पा कर सब ख़ुश होंगे।

(सोने की तरह हमेशा चमकनेवाला एक लॉकेट और "गिफ्ट स्कीम" के नियम बिनाका टुथपेस्ट की हर ट्यूब के साथ दिये जाते हैं।)

'सीबा' द्वारा बनाया हुआ निराला टुथपेस्ट

CBK.28056

Published by the Director, Publications Division, and printed by the Production Officer,
United Press, Government of India, Old Secretariat, Delhi.

Regd. No. D—510

5.10.56

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

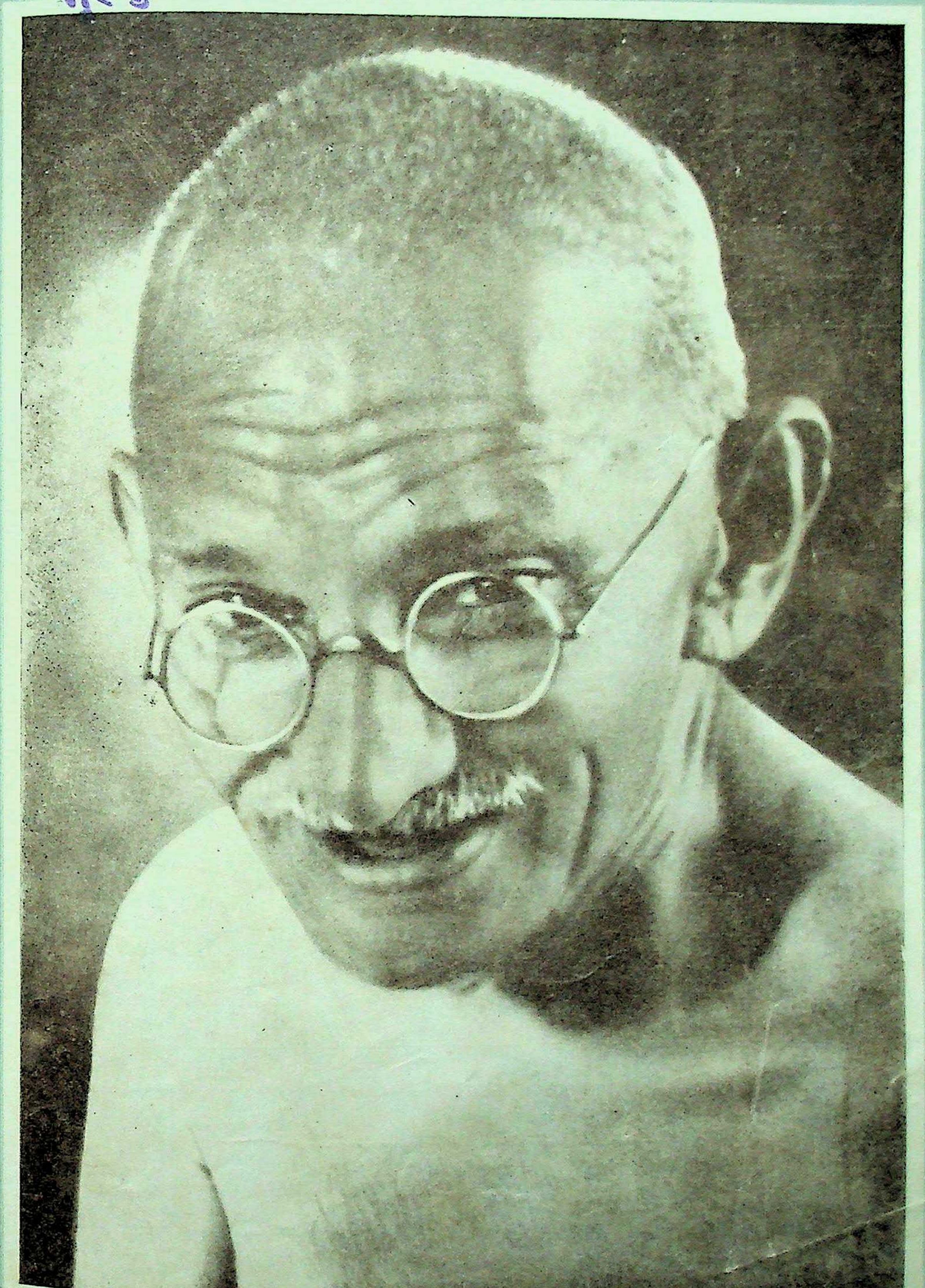

अक्तूबर १९५६

आठ आना

दो महान् कृतियाँ

स्वाधीनता और उसके बाद :

१९४६ से १९४९ तक के ऐतिहासिक काल में दिए गए, जनजन वल्लभ नेता जवाहरलाल नेहरू के ५९ भाषणों का अनुपम संग्रह। राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत, निर्माणकारी प्रयत्नों के लिए प्रेरक इन भाषणों से कौन भारतीय वंचित रहना चाहेगा।

सुन्दर, आकर्षक छपाई, व अनेक चित्रों सहित, ४४५ पृष्ठों वाले इस
सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल ५) है। डाक व्यय १-१०-० अलग।

★

भारत की एकता का निर्माण :

राष्ट्रीय एकता के प्रणेता, सरदार वल्लभ भाई पटेल के २७ ऐतिहासिक भाषणों का अनुपम संग्रह। "लौह पुरुष" की अमर वाणी युगयुगान्तर तक प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिए उत्साहवर्धक, प्रेरक व मार्गदर्शक रहेगी।

सुन्दर, आकर्षक छपाई, व अनेक चित्रों सहित, ३५२ पृष्ठों वाले इस
सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य केवल ५) है। डाक व्यय १-८-० अलग।

★

उपरोक्त दोनों पुस्तकें एक साथ मँगाने पर डाक व्यय नहीं लिया जाएगा।

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली–८

प्रगति के लिए आयोजन

समाजवादी समाज की ओर...

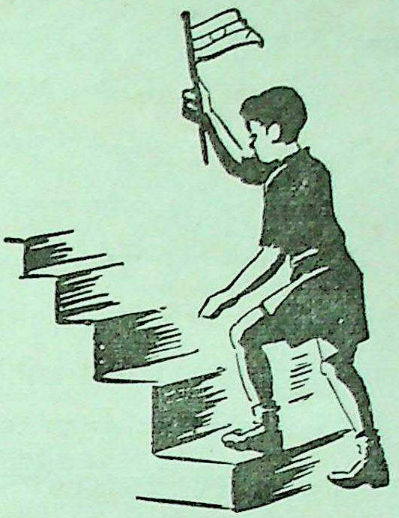

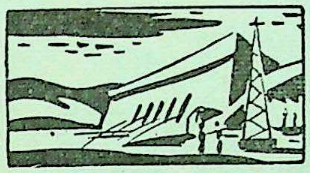

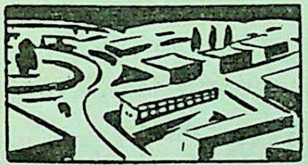

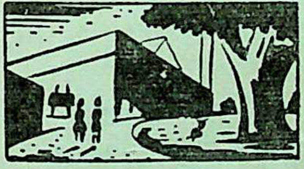

जनता के रहन-सहन का स्तर ऊंचा करके उसे समृद्ध और विविधतापूर्ण जीवन बिताने के लिए अवसर प्रदान करना हमारी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य है

प्रथम पंचवर्षीय योजना (१९५१-५६)

कार्यसिद्धि
- अधिक अन्न
- अधिक माल
- बेहतर समाज सेवाएं
- अधिक रोजगार
- रहन-सहन का उन्नत स्तर

दूसरी पंचवर्षीय योजना (१९५६-६१)

मुख्य लक्ष्य
- राष्ट्रीय आय में अधिक वृद्धि
- शीघ्र गति से औद्योगीकरण
- रोजगार सम्बन्धी सुविधाओं का विस्तार
- आय तथा सम्पत्ति की विषमताओं का निराकरण
- आर्थिक शक्ति का अधिक समान वितरण

> आयोजना एक अखंड प्रयास है। इस देश को बलवान तथा आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के लिए हमें कुछ ऐसी पंचवर्षीय योजनाओं की ओर आवश्यकता है।
>
> जवाहरलाल नेहरू

हमारी

दूसरी पंचवर्षीय योजना

का ध्येय

राष्ट्रीय समृद्धि

OA 56/62

रोग से मुक्ति पाने की नयी आशा...

इस समय भारत में इतने सुशिक्षित डाक्टर और नर्सें नहीं हैं कि हर जगह के रोगियों की और खासकर गाँवों के बीमार-दुखियों की चिकित्सा कुशलतापूर्वक की जा सके। लेकिन १९५१/५६ वाली योजना की तुलना में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ग्रामीण स्वास्थ्य और चिकित्सा संबंधी कार्यों पर दुगना पैसा खर्च किया जायगा। १९५६ तक सामुदायिक योजना, राष्ट्रीय विस्तार तथा अन्य क्षेत्रों में ३,००० से भी अधिक 'स्वास्थ्य संगठनों' की स्थापना का विचार है। अस्पतालों में प्राप्य स्थान २६% बढ़ जायगा और देशभर के अस्पतालों में कुल मिलाकर ३०,००० पलंगों की वृद्धि हो जायगी।

देश में मलेरिया तथा फ़िलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम के लिए बर्मा-शैल अधिकाधिक परिमाण में लार्वानाशक तेल और दीर्घकालीन प्रभाववाले छिड़काव के तेल तैयार कर रहा है। हम देशभर में पेट्रोलियम से तैयार किये हुए कीटाणुनाशक तेल वितरित करते हैं। शैल पेट्रोलियम रासायनिक पदार्थ—एल्ड्रिन, डिल्ड्रिन और एण्ड्रिन देश के खाद्य पदार्थों की रक्षा कर रहे हैं। पेट्रोलियम से तैयार किये जानेवाले रासायनिक पदार्थों का प्रयोग रोग-निवारक औषधियाँ बनाने के लिए भी किया जा रहा है।

बर्मा-शैल . . .
भारत के जीवन का
एक अंग है !

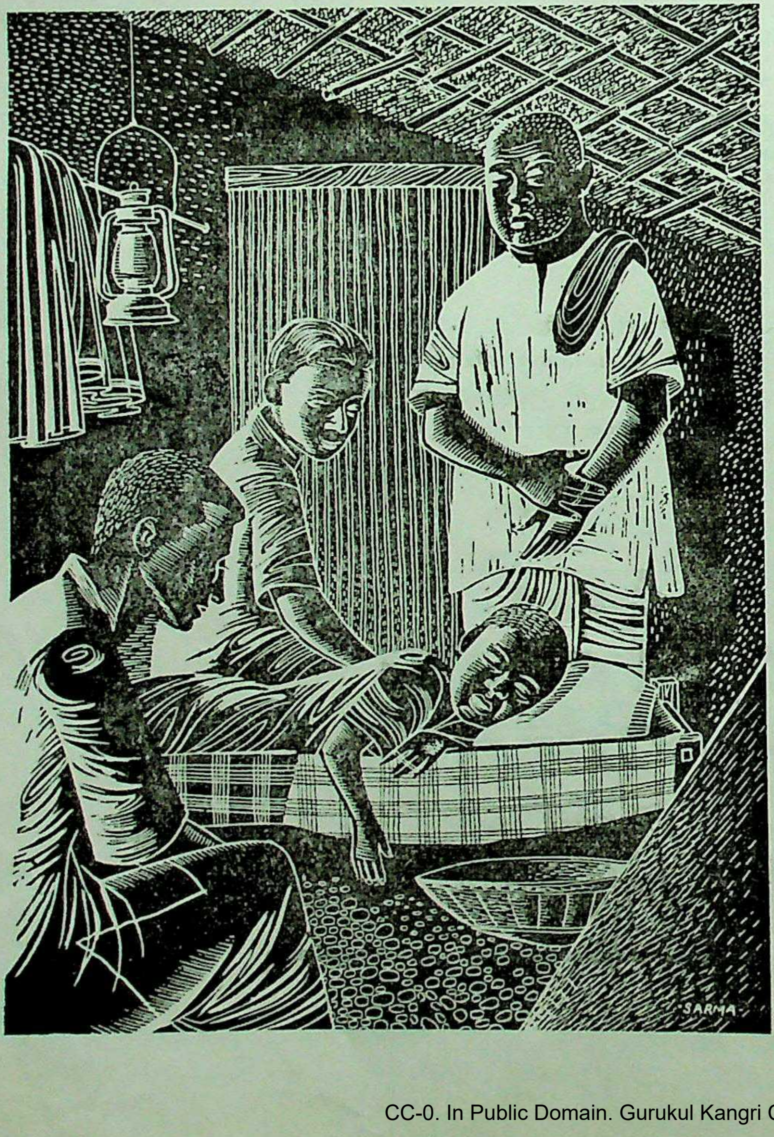

योद्धा का उपहार

झेलम के किनारे घमासान लड़ाई के बाद प्राच्य और पाश्चात्य के दो महान् योद्धा मित्रों की भाँति मिले। वे थे पुरु (पुरुषोत्तम) और सिकन्दर। उस ऐतिहासिक अवसर पर, भारत की अपार संपदा के बावजूद, पुरु ने १५ सेर इस्पात को ही सिकन्दर के उपयुक्त उपहार समझा।

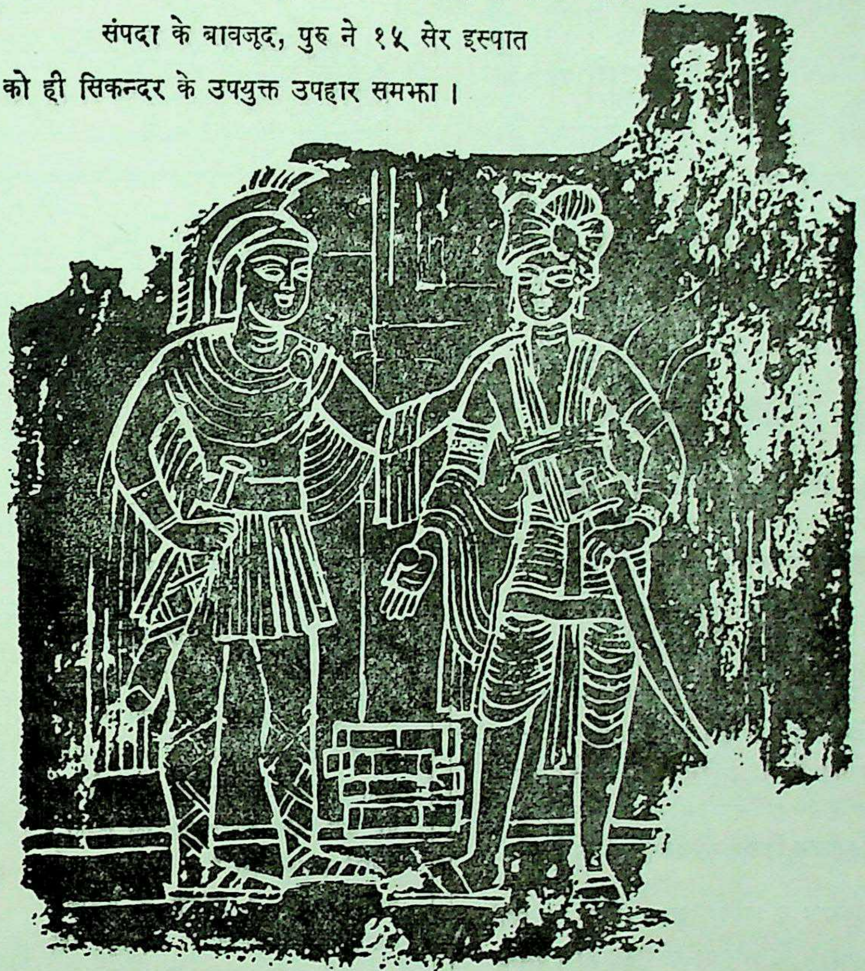

यह २३०० वर्ष पहले की घटना है और तब भी बढ़िया इस्पात निर्माता के रूप में भारत प्रसिद्ध हो चुका था। आज फिर राष्ट्र के सामने इस्पात का महत्व बहुत बड़ा है। देश की औद्योगिक प्रगति को निश्चित और ठोस आधार देने के लिए भारत की इस्पात निर्माण क्षमता शीघ्रता से बढ़ायी जा रही है।

टाटा स्टील राष्ट्र की सेवा करता है

TN-1000

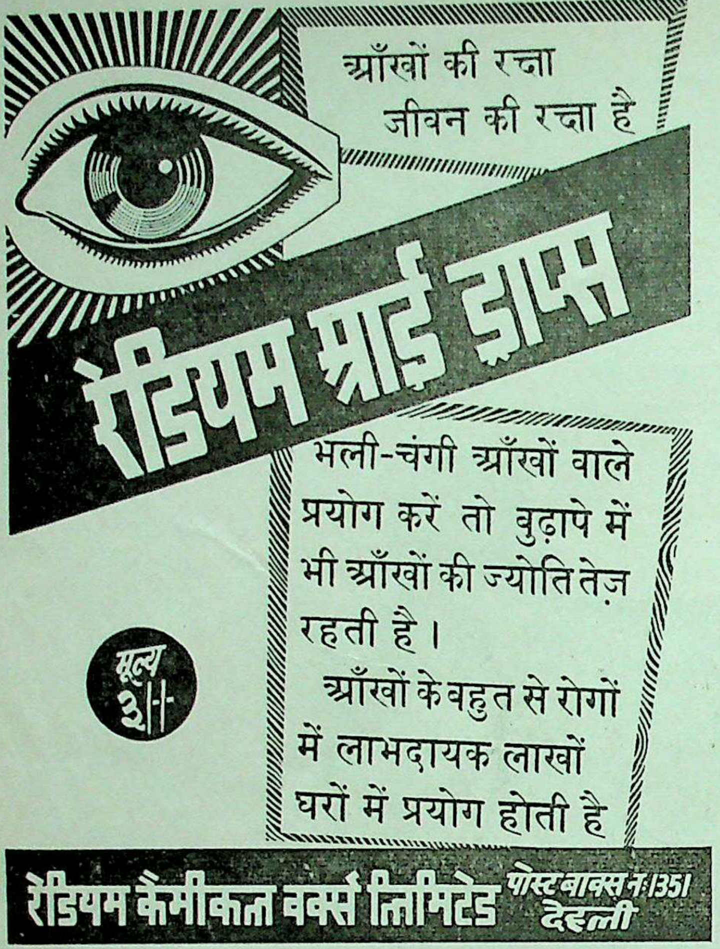
आँखों की रक्षा
जीवन की रक्षा है
रेडियम आई ड्राप्स
मूल्य ३।-

भली-चंगी आँखों वाले प्रयोग करें तो बुढ़ापे में भी आँखों की ज्योति तेज़ रहती है।

आँखों के बहुत से रोगों में लाभदायक लाखों घरों में प्रयोग होती है

रेडियम कैमीकल वर्क्स लिमिटेड पोस्ट बाक्स नं: 1351 देहली

नए प्रकाशन

एशिया अफ्रीका सम्मेलन मूल्य : ८ आने डाक व्यय—२ आने

यह अंग्रेजी संस्करण का हिन्दी रूपान्तर है। इस पुस्तिका में प्रधान-मंत्री के उन भाषणों को दिया गया है, जो उन्होंने २४ अप्रैल को बांडुंग सम्मेलन के अन्तिम अधिवेशन में और ३० अप्रैल को लोक-सभा में दिए थे। एशिया अफ्रीका सम्मेलन सम्बन्धी अन्तिम विज्ञप्ति भी इस में दी गई है।

सरल पंचतन्त्र—भाग ४ मूल्य : ६ आने डाक व्यय—२ आने

पंचतन्त्र की कहानियाँ आकर्षक हैं और प्रत्येक पाठक को वे पसन्द आती हैं। इन दिलचस्प कहानियों को छोटी छोटी पुस्तिकाओं में संग्रहीत किया गया है। बच्चों की बुद्धि के विकास के लिए विशेष रूप से और सभी वर्ग के पाठकों की दिलचस्पी के लिए सामान्यतः ये कहानियाँ श्रेष्ठ सिद्ध होंगी।

ये भी प्राप्य हैं
भाग १=१२ आने
भाग २= ६ आने
भाग ३= ६ आने

पब्लिकेशन्स डिवीज़न, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली—८

Yesterday's Glory-
To-day's Pride!
SOWAR PRIMA SPECIAL
Centre-Second
Everbright Steel — Rs.

हाथी दाँत का काम भारत में १७वीं शताब्दी के आरम्भ से चला आ रहा है। सुन्दरता और कुशल कारीगरी के कारण इसको भारत की सर्वश्रेष्ठ कला कहना ठीक ही है। कुशल कारीगरों को अपनी बनाई हुई वैस्ट एण्ड की घड़ियों पर बड़ा गर्व है। वह जिस ईमानदारी से सही वक्त बताने वाली घड़ियाँ बनाते हैं उस पर हम कोई सन्देह नहीं कर सकते। हमारी कम्पनी देश में ७५ वर्षों से भी अधिक समय से प्रसिद्ध है इसलिए हमारी विश्वसनीयता का यह बहुत बड़ा प्रमाण है।

WEST END WATCH CO
BOMBAY CALCUTTA

आजकल

वर्ष १२ अंक ६ पूर्णांक १४८

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
शशधर सिन्हा, डाइरेक्टर
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मन्त्री)

●

सहायक सम्पादक—जगदीश गोयल

अक्तूबर १९५६

नगरलक्ष्मी (बंगला कविता)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर ...	७	
युग-निर्माता गांधी	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ...	८	४-पटौदी हाउस, नई दिल्ली
स्वेज़—'राष्ट्रीयकरण' बनाम 'अन्तर्राष्ट्रीयकरण'	अमरनाथ विद्यालंकार ...	१२	एम० पी०, १३५ नार्थ ऐवेन्यू, नई दिल्ली
अम्बपाली (मलयालम कविता)	सरदार के० एम० पणिक्कर ...	१८	द्वारा विदेश मन्त्रालय, नई दिल्ली
ज्ञान गंगा (गुजराती कहानी)	'धूमकेतु' ...	२२	
यत्न	सद्गुरुशरण अवस्थी ...	२३	प्रिंसिपल, बी० एन० एस० डी० कालेज, कानपुर
पिञ्जर-मुक्ति (कविता)	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ...	२५	एम० पी०, ५ विंडसर प्लेस, नई दिल्ली
ओ परदेशी ! (पंजाबी कविता)	अमृता प्रीतम ...	२५	८।२० वैस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
नई कविता : उपलब्धि और भ्रांतियाँ	नेमिचन्द्र जैन ...	२६	संगीत नाटक अकादमी, ७० रीगल बिल्डिंग न० दि०
हिन्दी और उर्दू में समन्वय-भावना	हरिशंकर शर्मा ...	३०	शंकर सदन, लोहा मण्डी, आगरा
सोचा तो यह था ! (कविता)	अंचल ...	३२	राबर्टसन कॉलेज, जबलपुर
बुझे दीप (हिन्दी कहानी)	विमला रैना ...	३३	कलैक्टर-निवास, इलाहाबाद
भगवान बुद्ध (अंग्रेज़ी में भारतीय कविता)	सरोजिनी नायडू ...	४१	
विश्व शान्ति और भूदान यज्ञ	सुरेश रामभाई ...	४२	३२५-अतरसुइया, इलाहाबाद-३
मालवे की संगीत साधना	सूर्यनारायण व्यास ...	४६	भारती भवन, उज्जैन
महान टापू (तमिल कविता)	नामक्कल रामलिंगम पिल्लै ...	४८	
विशाखा (हिन्दी एकांकी)	सेठ गोविन्ददास ...	४९	एम० पी०, ३-कैनिंग लेन, नई दिल्ली
शेख मुबारक (शेषांश)	राहुल सांकृत्यायन ...	५५	हार्न क्लिफ, हैपी वैली, मसूरी
प्रेत का घर (बंगला कहानी)	विमान चन्द्र दे ...	५९	ओल्ड सैटलमैण्ट, खड़गपुर, मुँगेर
विश्व के आर्थिक विकास के कुछ पहलू	उमा अग्रवाल ...	६१	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
पुस्तक समालोचना	रामधारी सिंह 'दिनकर' चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, प्र० ना० त्रिपाठी, मा० कृ० पारधी ...	६३	२२ साउथ ऐवेन्यू, नई दिल्ली
सम्पादकीय	...	६६	

●

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—आठ आने, दस सेंट या नौ पेंस

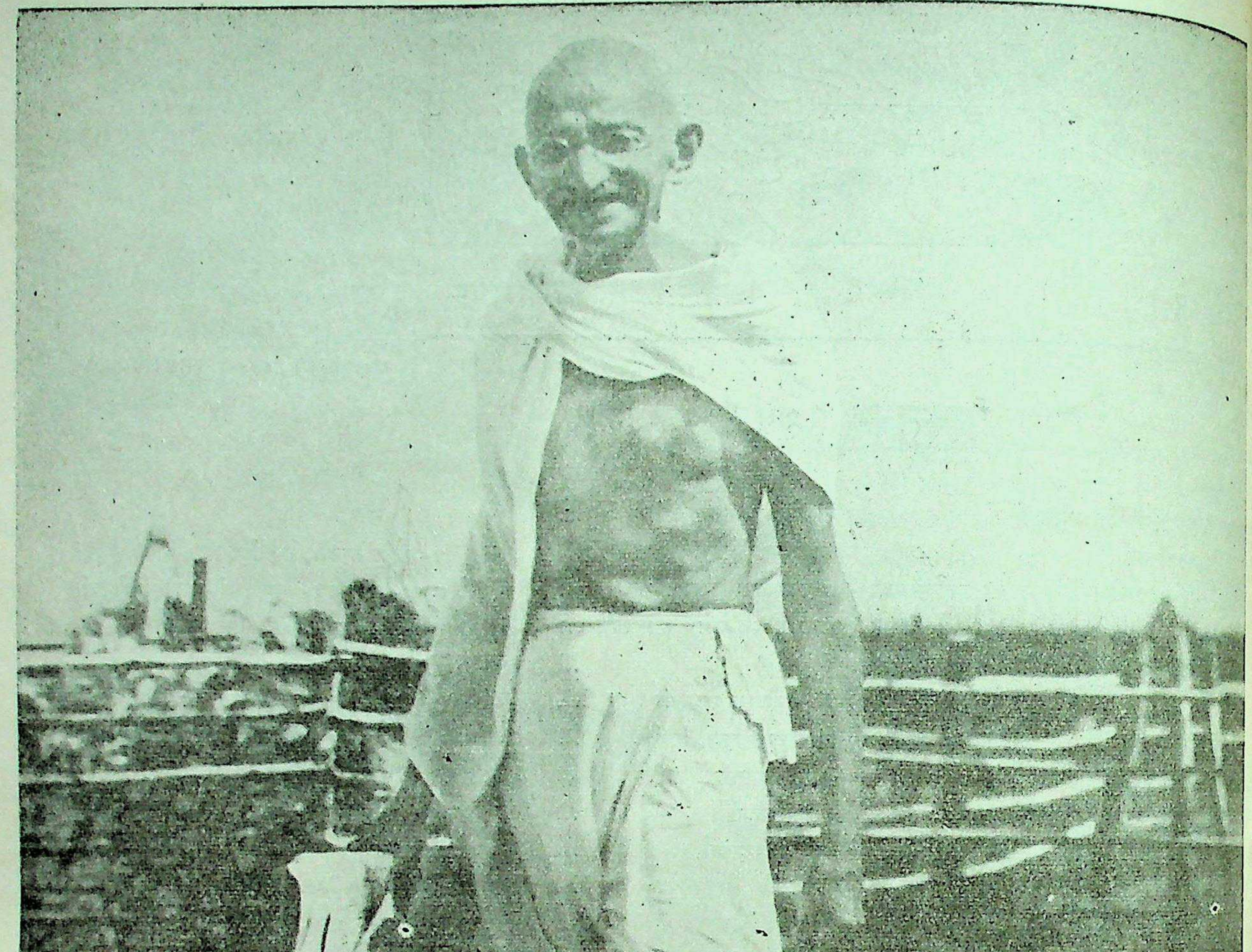

जन्म : २ अक्तूबर १८६९ युग-निर्माता गांधी अवसान : ३० जनवरी १९४८

वर्ष १२ अक्तूबर १९५६ अंक ६

बंगला कविता

नगरलक्ष्मी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्रावस्तीपुर में जब पड़ा अकाल
हाहा रव से हुआ नगर बेहाल
कहा बुद्ध ने सभी भक्त से,
“लेने को भूखों का भोजन-भार
तुम में से है कहो कौन तैयार ।”

यह सुन कर धनपति रत्नाकर सेठ
ज़रा देर तक किए रहा सिर हेंट
कहा जोड़ कर “क्षुधित नगर भर,
इतनों की कर सकूँ भूख मैं दूर—
ऐसी साध्य नहीं है, मैं मजबूर ।”

बोल उठा जयसेन नाम सामंत,
“जो आदेश आपका है श्रीमंत
सिर आँखों पर लेता मैं घर
उर का लहू दिए जो चलता काज—
मेरे घर में अन्न कहाँ है आज ।”

धर्मपाल बोला निश्वास निकाल,
“क्या बतलाऊँ, ऐसा जला कपाल—
स्वर्ण-प्रसू-सी खेती सूखी
राजा का कर देना हुआ मुहाल ।
बेबस हूँ मैं, दीन-हीन, पामाल ।”

यह उसको देखे, सब रहे अवाक
नहीं किसी के मुँह से फुरे जवाब
मौन सभा-घर व्यथित नगर पर
रहीं बुद्ध की दो आँखें अनिमेष
संध्या के तारे-सी करुण अशेष ।

तब बढ़ आई आगे धीमी चाल
झुका लाज से माथा, रक्तिम भाल
व्यथा तरल-सी चरण कमल की—
रेणु बुद्ध की शीश चढ़ा अनमोल
वह अनाथ पिंडद की कन्या बोल ।

“भिक्षुणियों में अधम सुप्रिया एक
यह आदेश उठाती है सिर टेक
अन्नहीन जो लोग रहे रो
वे सब ही तो हैं मेरी सन्तान
उनका कौर जुटाऊँगी भगवान ।”

काठ सभी के मार गया यह—“हाय,
भिक्खु सुता भिक्खुनी निरी निरुपाय,
किस बूते पर यह अपने सर
उठा लिया गुरुतर कर्त्तव्य कठोर
क्या है पास तुम्हारे, किसके जोर ?”

शीश झुका सबको बोली वह “मात्र
मेरा संबल यह भिक्षा का पात्र
मैं दरिद्रतम सबसे अक्षम
इसीलिए पाऊँगी दया विशेष
विजयी होगा प्रभु का यह आदेश ।

तुम सब के घर-घर मेरा भंडार
भरा हुआ है अक्षय और अपार
जो तुम सब दो तो अक्षय हो—
पात्र; भीख से कर भूखों का त्राण
वसुधा के रक्षा कर लूँगी प्राण ।”

—‘कथा ओ काहिनी’ से

अनुवादक—हंस कुमार तिवारी

युग-निर्माता गांधी

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

महात्मा गांधी को मैं इस युग का सबसे बड़ा एक आश्चर्य मानता हूँ। आज भारत में जो कुछ श्रेष्ठ है और नए भारत में जो प्राण-शक्ति है, उसके निर्माण में गांधी जी का हाथ सब से अधिक है। इसी कारण गांधी जी हमारे देश के राष्ट्रपिता माने जाते हैं और करोड़ों भारतवासी उन्हें 'बापू' नाम से याद करते हैं। गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन चमत्कारपूर्ण रहा। वह सदा एक महान शक्ति बन कर रहे। बल्कि कहना तो यह चाहिए कि वह अपने युग की सब से बड़ी शक्ति बन कर रहे। एक ऐसी महान शक्ति, जिसके सम्पर्क में जो भी आया, वह भी महानता की ओर बढ़ चला। ऐसी महान शक्ति, जो 'असत' से 'सत्य' की ओर ले जाती थी, 'तम' से 'ज्योति' की ओर ले जाती थी और 'मृत्यु' से 'अमृत' की ओर ले जाती थी।

जहाँ तक यश और ख्याति का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि पिछले १२०० वर्षों के मानव-इतिहास में किसी अन्य व्यक्ति को उतना यश और उतनी ख्याति प्राप्त नहीं हुई जो गांधी जी को उनके जीवन काल ही में प्राप्त हो गई थी। वह जहाँ भी जाते थे, वहीं देश का केन्द्र बन जाता था; वह जहाँ भी रहते थे, वही स्थान देश का तीर्थ बन जाता था। जो बात वह सोचते थे, सारा देश वही बात सोचने लगता था; जो काम वह हाथ में लेते थे, वही काम सारा देश करने लगता था।

जितना शानदार गांधी जी का जीवन था, उतना ही शानदार उनका बलिदान भी हुआ। मानव-जाति के इतिहास में आज तक किसी एक व्यक्ति के देहावसान पर इतना व्यापक और इतना गहरा शोक और कभी नहीं मनाया गया। भारत में तो करोड़ों नागरिकों को ३० जनवरी १९४८ की साँझ सचमुच यह अनुभूति हुई, जैसे उनके पूज्य पिता का हाथ उन पर से उठ गया हो। यह सच है कि पुराने युग में इस तरह का समाचार कुछ मिनटों में भूमण्डल पर फैल भी नहीं सकता था, पर गांधी जी के लिए मानव-जाति के बड़े भाग में जो श्रद्धा और सम्मान विद्यमान था, वह उक्त पृथ्वीव्यापी शोक का सब से बड़ा कारण था।

नवीन भारत के राष्ट्रपिता एक असाधारण प्रतिभा सम्पन्न मानव थे, पर प्रतिभा तो और भी कितने ही लोगों में होती है। गांधी जी का हृदय बहुत विशाल था, पर भारत में विशालहृदयता की कमी कभी नहीं रही। उनमें अनथक कार्यशक्ति थी, पर अकेली कार्यशक्ति किसी को महान नहीं बना देती। उक्त सभी गुणों के साथ गांधी जी का एक अत्यन्त असाधारण गुण यह था कि वह एक महान साधक थे। और गांधी जी जैसा महान साधक इस विशाल पृथ्वी पर भी कभी-कभी जन्म लेता है।

गान्धी जी की साधना 'सत्य' की साधना थी। इसी साधना के लिए वह युग पुरुष जीया और इसी साधना में उसने अपने प्राण दिए। यह महान साधक आजीवन सत्य के सम्बन्ध में परीक्षण करता रहा। उस युग पुरुष के ये सत्य सम्बन्धी परीक्षण संसार के सब से महान वैज्ञानिकों के महानतम परीक्षणों के समान सूक्ष्म पूर्ण थे और अपने क्षेत्र में उनका महत्त्व भी किसी बड़े-से-बड़े भौतिक परीक्षण से कम नहीं था।

भारत की इस पुण्य भूमि पर सत्य के ये महान परीक्षण कितनी ही बार किए जाते रहे हैं। युगों पूर्व हिमालय की उपत्यकाएँ वेदों की सत्य सम्बन्धी ऋचाओं से मुखरित हुई थीं। इसी भूमि पर उपनिषद्कार महान द्रष्टाओं ने सत्य का चिन्तन किया था। भारत की यही धरती सत्य के महानतम साधक गौतम बुद्ध के चरणों से पवित्र हुई

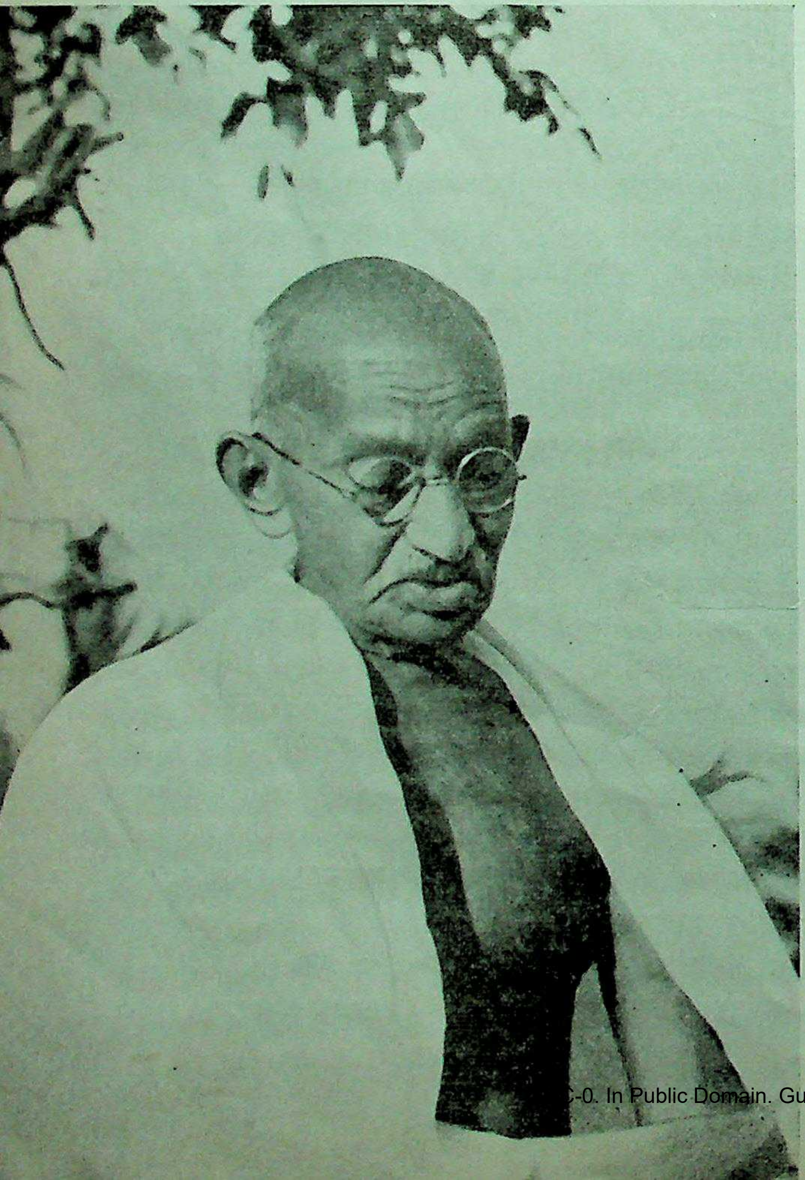

प्रार्थना सभा में
ध्यानमग्न बापू

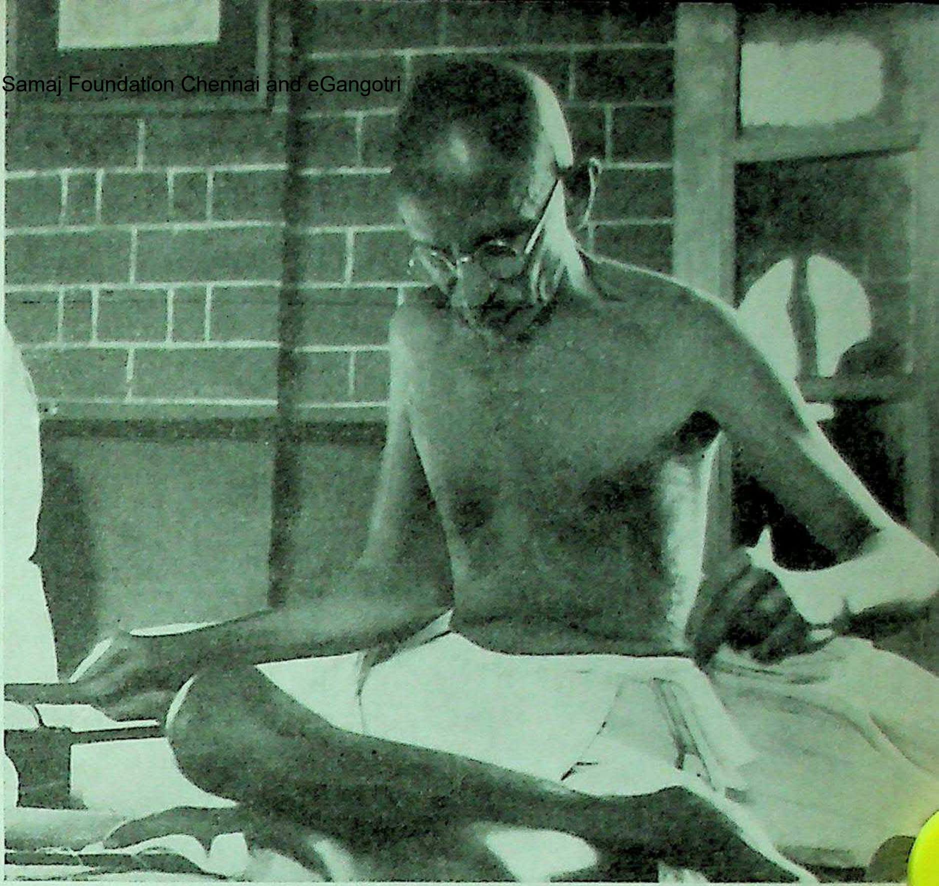

बापू चरखा चलाते हुए

थी। भारत के उक्त सभी महान चरणों के समान आज से सिर्फ १० वर्ष पहले के वे चरण भी 'अमर चरण' थे, जब इस युग का सबसे बड़ा सत्य साधक नंगे पाँव नोआखाली की यात्रा कर रहा था। उसने कहा था कि "मैं तीर्थ यात्रा कर रहा हूँ, इससे मैं नंगे पाँव पैदल चलता हूँ।" पर सच तो यह है कि इस यात्रा द्वारा वह देवपुरुष नए तीर्थों का निर्माण कर रहा था।

महात्मा गान्धी की जीवनचर्या घड़ी के समान नियमित थी। प्रत्येक कार्य का समय निश्चित था और प्रत्येक कार्य ठीक अपने समय पर होता था। सन् १९३० की बात है कि जब इस अनोखे सन्त नेता ने उस ज़माने के विश्व के सब से अधिक शक्तिशाली देश इंग्लैंड को नमक का क़ानून तोड़ कर परास्त करने का अजीब-सा दिखाई देने वाला निश्चय किया था। उस युग के समझदार माने जाने वाले अधिकांश बुद्धिजीवी गांधी जी के इस निश्चय पर खुल कर हँसे थे। पर संसार भर ने पाया कि महात्मा गांधी की डांडी यात्रा के साथ-साथ प्रतिदिन भारत का रूप ही बदलता चला गया। इस देश का जनसमुदाय जैसे एकाएक सचेतन हो उठा। गांधी जी और उनके साथी जितना-जितना डांडी की ओर बढ़ते गए, देश भर की स्थिति गम्भीर-से-गम्भीरतर बनती चली गई। वह समय इस प्रकार का था कि भारत के लाखों व्यक्तियों को रात भर नींद न आती थी। सरकारी कर्मचारी अपनी चिन्ताओं के कारण सो न पाते थे, देश के स्वयं सेवकों को कार्य साधन की चिन्ता सोने न देती थी और लाखों भारतीय डांडी मार्च के समाचार और परिणाम जानने की उत्सुकता के कारण सो न पाते थे। उन दिनों भी अगर कोई ठीक समय पर निश्चिन्त होकर गहरी नींद सोता था, तो वह उक्त सम्पूर्ण आन्दोलन का सर्वोच्च नेता महात्मा गांधी ही था। आखिर एक दिन किसी ने गांधी जी से पूछ ही तो लिया—"बापू, आपने सारे देश की नींद हराम कर दी है और आप खुद इस तरह ठीक समय पर गहरी नींद सो जाते हैं! इसका रहस्य क्या है?"

बापू ने कहा—"देखो भाई, जब मैं सोने लगता हूँ तो अपने भगवान को याद करता हूँ। अपने इस राम से मैं कहता हूँ 'हे मेरे राम, तेरे काम की गठरी मैंने दिन भर पूरी ईमानदारी से सम्भाली है, अब मैं आराम करने जा रहा हूँ, सो अब अपनी गठरी तू आप सम्भाल!' और सब चिन्ताओं की गठरी भगवान को सौंप कर मैं निश्चिन्त सो जाता हूँ।"

इसी अनासक्त दिव्य साधना का एक शानदार उदाहरण नोआखाली में मिला था। नोआखाली में जो लोग अत्याचार पीड़ित हुए थे, उनके प्रति गांधी जी से बढ़ कर सहानुभूति और किस व्यक्ति के हृदय में हो सकती है। जिन दिनों सारा भारत अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की खुशियाँ मना रहा था, यह महान सन्त नोआखाली में पैदल चल कर अत्याचार पीड़ितों के आँसू पोंछ रहा था। उन्हीं दिनों गांधी जी एक ऐसे गाँव में पहुँचे, जहाँ जघन्य अत्याचारों की पराकाष्ठा हो गई थी। गांधी जी को वे सब हृदय-विदारक घटनाएँ सुनाई गईं। उन्हें एक ऐसे मकान में ले जाया गया, जहाँ घर भर के

राष्ट्रपिता गांधी जी अपने राजनीतिक उत्तराधिकारी जवाहरलाल नेहरू के साथ

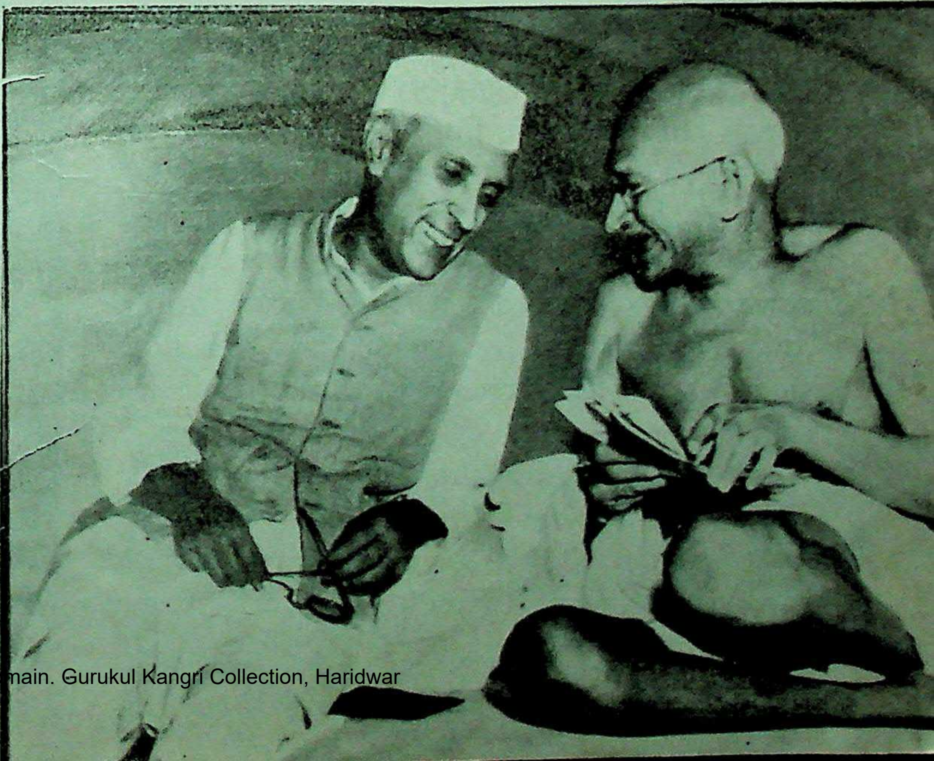

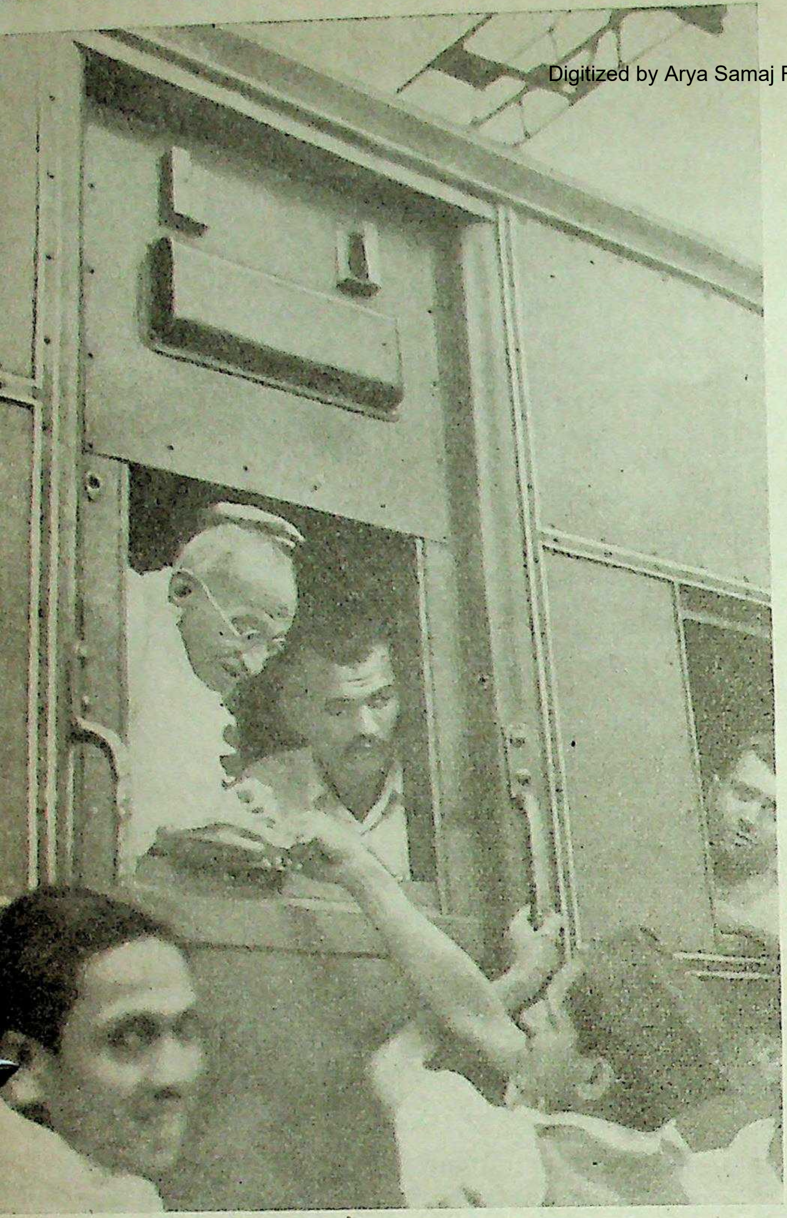

आगाखां महल की जेल से छूट कर बम्बई जाते हुए
बापू हरिजन फ़ण्ड के लिए भिक्षा एकत्र करते हुए

सब प्राणियों की न सिर्फ़ निर्मम हत्या की गई थी, अपितु उन पर पैशाचिक अत्याचार भी किए गए थे। बच रही थी तो घर की एक बुढ़िया, जिसकी करुण दशा देखने तक में असह्य थी। घर भर में अत्याचार के प्रमाण बिखरे पड़े थे और उस सब के बीचोंबीच उक्त बुढ़िया को देख कर गांधी जी के साथ आए सभी लोग द्रवित हो उठे। उस जीवित बुढ़िया की दशा मृतक से भी अधिक करुणाजनक थी। गांधी जी के साथ उस मकान तक आए सभी लोग, हिन्दू-मुसलमान सब के सब, चुपचाप आँसू बहाने लगे। अगर किसी की आँख में आँसू नहीं आए, तो वह महात्मा गांधी थे। करुणा का वह महान हिमालय हिमवत् स्थिरता से चुपचाप वह करुणतम दृश्य देखता रहा!

हमारे देश का यह परम सौभाग्य है कि यह युग पुरुष नवीन भारत का निर्माता था। राष्ट्रीय निर्माण का कोई छोटे से छोटा क्षेत्र भी इस महान द्रष्टा की पैनी दृष्टि से बचा नहीं रहा। राष्ट्र निर्माण के सभी पहलुओं की ओर हमारे राष्ट्रपिता ने पूरा ध्यान दिया। किसी बात को उन्होंने छोटा या उपेक्षणीय नहीं समझा। राष्ट्र के समान व्यक्ति के जीवन को उच्च बनाने की दृष्टि से भी इस युग के इस सब से बड़े महात्मा का ध्यान जीवन की अत्यन्त छोटी-छोटी बातों की ओर भी उतना ही था, जितना बड़ी समझी जाने वाली बातों की ओर। जहाँ वह सारे राष्ट्र को मितव्ययता और प्राप्त साधनों के अधिकतम उपयोग की सलाह देते थे, वहाँ निजी जीवन में इस मितव्ययता और साधनों के अधिकतम उपयोग को इतना महत्त्व देते थे कि डाक में आए लिफाफों तक को सम्भाल कर रखते थे कि उनका उपयोग हो सके।

यदि महात्मा गांधी के महान आदर्शों के व्यावहारिक भाग को एक भी वाक्य में व्यक्त करना हो तो वह वाक्य इस प्रकार है—"व्यक्ति, समाज, अथवा राष्ट्र के लिए अच्छे लक्ष्य का होना ही पर्याप्त नहीं है। अच्छे लक्ष्य के साथ लक्ष्य प्राप्ति के लिए अच्छे साधनों का प्रयोग उतना ही आवश्यक है।" यह एक बहुत बड़ी बात महात्मा गांधी ने हमारे देश के सम्मुख लक्ष्य के रूप में रक्खी है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिस पर चल कर हम कभी गुमराह नहीं हो सकते। यह एक ऐसा सिद्धान्त है, जिस पर आचरण करते हुए कभी कोई व्यक्ति मार्गभ्रष्ट नहीं हो सकता। और यही एक ऐसा सिद्धान्त है जिस पर आचरण करने से ही मानव जाति का भविष्य सुनिश्चित और आशापूर्ण बन सकता है।

महात्मा गांधी एक स्वदेशी साड़ी का निरीक्षण करते हुए

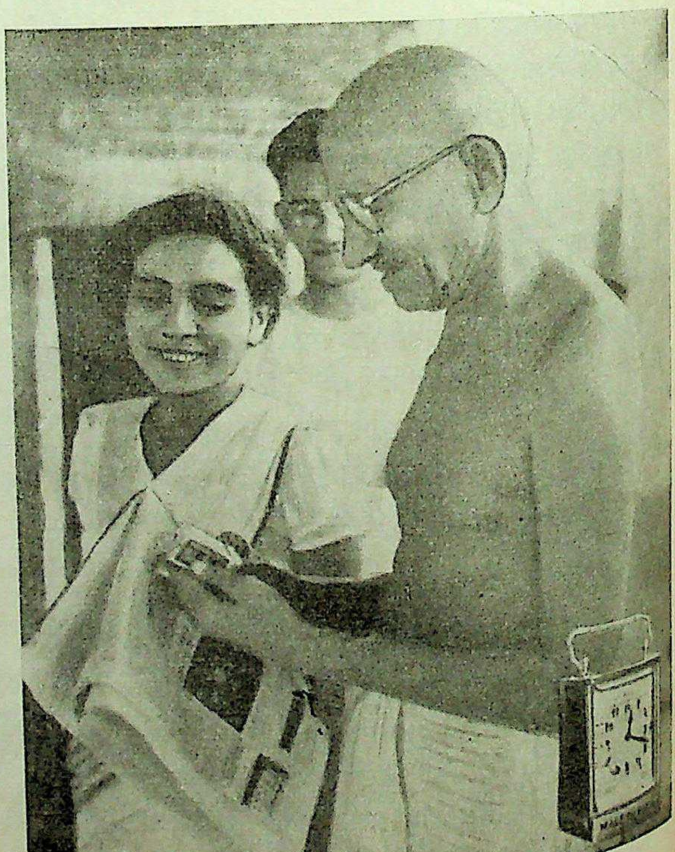

सच बात तो है कि लक्ष्य तो कब किस ने प्राप्त किया है ? प्रत्येक क्षेत्र में जीवन का लक्ष्य रात के तारों के समान दूर ही दूर बना रहता है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी के जीवन में जब एक लक्ष्य प्राप्त कर लिया जाता है, तो दूसरा लक्ष्य सामने आ जाता है, जैसे पहाड़ की एक चोटी पर चढ़ते ही दूसरी और भी बड़ी चोटी दिखाई देने लगे। सैंकड़ों-हज़ारों सालों से मानव समाज किसी न किसी लक्ष्य की ओर बढ़ता रहा है और आने वाले हज़ारों सालों में भी वह किसी न किसी लक्ष्य की ओर बढ़ता रहेगा। जीवन में लक्ष्य की महत्ता बहुत बड़ी है, क्योंकि वह मंज़िल के अगले पड़ाव के समान जीवन को दिशा देता रहता है। पर जो असली जीवन हम जीते हैं, वह सब तो साधन ही साधन है, यानी राह ही राह है। इस कारण यदि साधन अपवित्र हुआ तो सारा जीवन ही अपवित्र हो गया। इसी कारण व्यक्ति, राष्ट्र और समाज के जीवन में एक बुराई कितनी ही अधिक बड़ी बुराइयों को जन्म देती है। हमारा आज का लक्ष्य कल मंज़िल का एक पड़ाव बन जाएगा और नया लक्ष्य हमारे सामने आ खड़ा होगा। अगर पथिक गलत राह पर चल दिया तो वह ठीक मंज़िल पर कहाँ पहुँच पाएगा ?

और एक दिन यह महान युग पुरुष एक क्षण का भी नोटिस दिए बिना चुपचाप अपने 'राम' के पास चला गया। मानव जाति के इतिहास में ऐसे महान जीवन का इतना विराट अन्त कभी-कभी ही हुआ है। और जब वह युग पुरुष इस तरह एकाएक चला गया तो मानव जाति ने पाया कि इस एक मृत्यु से माता पृथ्वी का आँचल कितना सूना-सूना हो गया है।

जब वह महान अपरिग्रही चला गया, तो यह देख कर विश्व भर के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि जिस व्यक्ति के इशारे मात्र पर करोड़ों रुपया एकत्र हो जाता था, वह व्यक्ति अपनी निजी सम्पत्ति के रूप में छोड़ गया है : एक चप्पल की जोड़ी, एक ऐनक, एक घड़ी, कुछ कपड़े और तीन बन्दरों की एक मूर्ति !

परन्तु वह युग पुरुष न सिर्फ हमारे देश के लिए अपितु विश्व भर के लिए एक ऐसी विरासत छोड़ गया है, जो आज तक की सभी प्राप्त सम्पत्तियों से अधिक मूल्यवान है। उस विरासत के रूप में वह एक ऐसा क्रियात्मक आदर्श छोड़ गया है, जो आदर्श आज के एटम शक्ति युग में मानव जाति की रक्षा कर सकेगा।

आज से ठीक ८७ वर्ष पूर्व इस महान विभूति का जन्म हुआ था। इस पुण्य पर्व पर सारा राष्ट्र अपने बापू की वन्दना करता है।

★

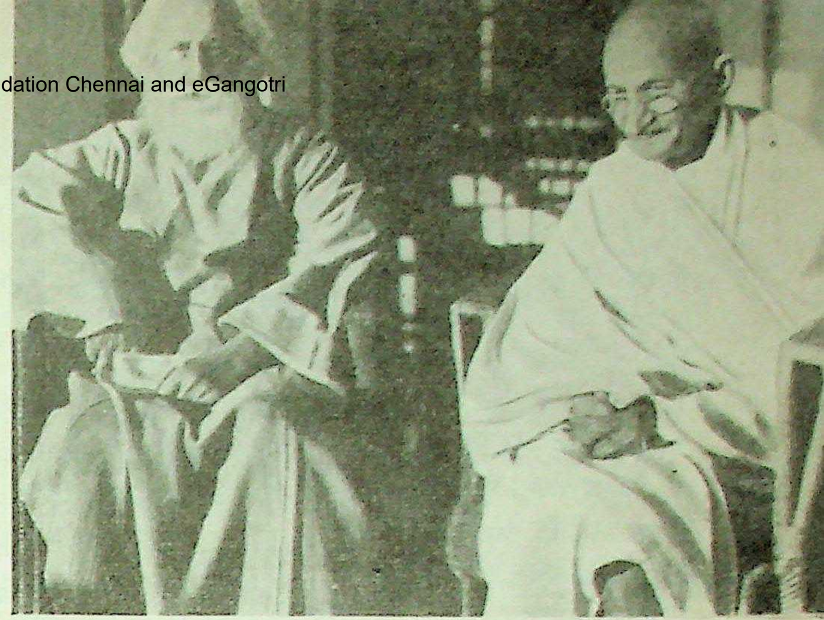

भारत की दो अमर विभूतियाँ : गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और महात्मा मोहनदास करमचन्द गांधी

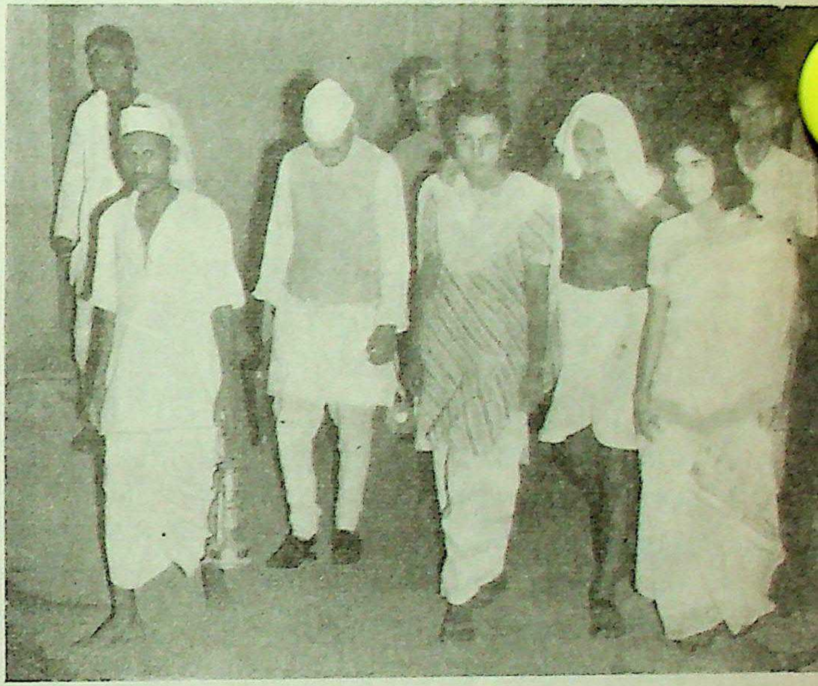

सन् १९४६ में भंगी कोलोनी के निवास के दिनों में

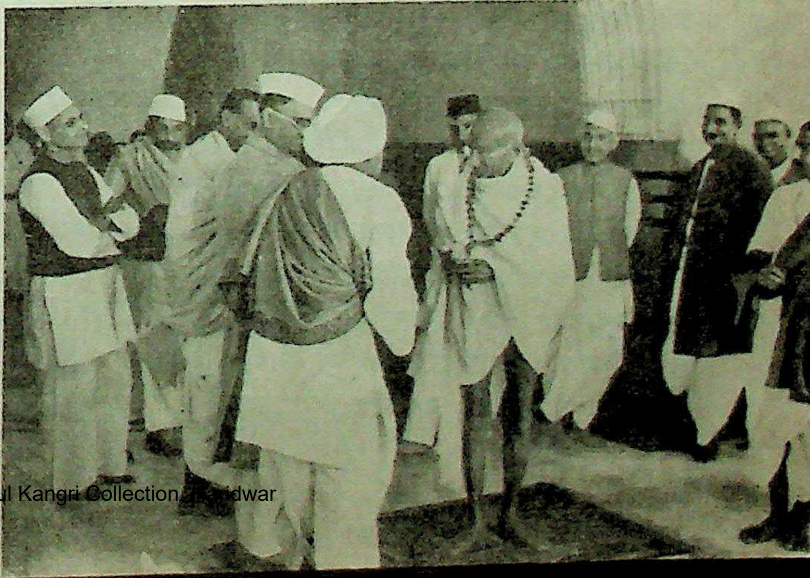

१९४१ में इलाहाबाद में कमला नेहरू हस्पताल के उद्घाटन अवसर पर

स्वेज़—'राष्ट्रीयकरण' बनाम 'अन्तर्राष्ट्रीयकरण'

अमरनाथ विद्यालंकार

"इस संकट का मूल कारण है, राष्ट्रों में परस्पर विश्वास तथा सद्भावना का अभाव। परन्तु विश्वास और सद्भावनाएँ न तो प्रस्ताव पास कर देने से उत्पन्न हो सकती हैं, और न उनके उत्पन्न होने के लिए कोई समय की अवधि ही नियत की जा सकती है।

"हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि इधर एक महाद्वीप है, जो जाग उठा है। यह बड़ी भूल होगी यदि इस महाद्वीप की कोमल अनुभूतिशील भावनाओं की उपेक्षा कर दी जाएगी। जो राष्ट्र अभी कुछ समय पहले तक साम्राज्यवाद की शृंखलाओं में जकड़े पड़े थे, वे अपने राष्ट्रीय अधिकारों और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता को स्वभावतः ज़रूरत से अधिक भी महत्त्व दे सकते हैं। परन्तु उन्हें यकीन दिलाना ज़रूरी है कि दूसरे राष्ट्रों के साथ सहयोग के बहाने उनकी प्रभुसत्ता को सीमित कर देने का इरादा किसी का नहीं है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब पहले उन राष्ट्रों को परस्पर बातचीत द्वारा मामलों को तय करने के लिए राज़ी कर लिया जाए।"

"स्वेज़ नहर के प्रश्न में भारत को उतनी ही गहरी दिलचस्पी है, जितनी दूसरे राष्ट्रों को है। दूसरे अनेक राष्ट्रों की भाँति भारत के लिए भी यह नहर 'जीवन वाहिनी' है। भारत जो माल विदेशों से मँगाता है, उसका ७६ प्रतिशत और जो माल विदेशों को भेजता है, उसका ७० प्रतिशत इसी नहर की राह से गुज़रता है। भारत की पंचवर्षीय योजनाओं की पूर्ति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि स्वेज़ का मार्ग कभी किसी दशा में भी अवरुद्ध न हो। परन्तु भारत इस समस्या पर संकुचित कानूनी दृष्टि से विचार नहीं करता, बल्कि संसार की व्यावहारिक आवश्यकताओं की दृष्टि से इस नहर का दुनिया के लिए सदियों तक जो महत्त्व रहेगा, उस सब को दृष्टि में रख कर हम अपनी नीति निर्धारित करते हैं। यदि शान्तिपूर्ण समझौते का मार्ग न अपनाया गया तो इस नीति के विकल्प बहुत ही भयंकर नज़र आ रहे हैं।"

उपर्युक्त शब्दों में भारत के प्रतिनिधि श्री कृष्ण मेनन ने लन्दन की स्वेज़ कान्फ्रेंस में भारत का दृष्टिकोण पेश किया, और श्री डलेस के सप्त सूत्री प्रस्ताव के मुकाबले में अपना पंच-सूत्री प्रस्ताव उपस्थित किया। संसार के २२ राष्ट्र इंग्लैंड, फ्रान्स तथा अमेरिका के निमन्त्रण पर लंदन में स्वेज़ नहर के प्रश्न पर विचार करने के लिए एकत्र हुए थे। १६ अगस्त से २३ अगस्त १९५६ तक यह कान्फ्रेंस जारी रही। १७ राष्ट्रों ने श्री डलेस के प्रस्ताव को कुछ मामूली संशोधनों के साथ स्वीकार किया। परन्तु भारत, सोविएट यूनियन, श्री लंका और इण्डोनेशिया ने भारत के प्रस्ताव का समर्थन किया। न्यूज़ीलैंड के प्रतिनिधि ने प्रस्ताव उपस्थित किया था कि कान्फ्रेंस के बहुमत का प्रस्ताव पाँच देशों के प्रतिनिधियों की मार्फत मिस्र के प्रधान मन्त्री के पास भेजा जाना चाहिए। परन्तु कान्फ्रेंस ने यह स्वीकार नहीं किया, क्योंकि कान्फ्रेंस के आरम्भ ही में यह निर्णय कर दिया जाएगा कि कान्फ्रेंस का कोई निर्णय बहुमत के ज़ोर से नहीं किया जाएगा। भारत और कुछ दूसरे राष्ट्र ऐसा वायदा लेकर ही लन्दन कान्फ्रेंस में शरीक हुए थे।

२६ जुलाई १९५६ को मिस्र की राज्य क्रान्ति की पाँचवी सालगिरह के अवसर पर भाषण देते हुए मिस्र के गेमाल अबुल नासिर ने स्वेज़ के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की। एशिया तथा पूर्वीय जगत के राष्ट्रों ने इस घोषणा को मिस्र के नवजागरण और उत्थान का प्रतीक तथा जर्जरित साम्राज्यवाद के मरणोन्मुख होने की एक और सूचना मान कर इसका हृदय से स्वागत किया। इंग्लैंड, फ्रांस, तथा अमेरिका ने अपनी सत्ता के लिए इसे एक चैलेंज समझा और इन देशों ने कुछ ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया कि दुनिया को प्रतीत हुआ कि जिसके लिए पश्चिमी देश निरन्तर शस्त्रास्त्र संग्रह और युद्ध सज्जा कर रहे थे, वह घड़ी आज आ ही पहुँची है। इंग्लैंड और फ्रांस ने अपनी स्थल सेनाओं और जंगी बेड़े को हरकत दी और उन्हें भूमध्य सागर की ओर रवाना करना आरम्भ कर दिया। लामबन्दी के हुक्म जारी हो गए। हवाई जहाज़ों पर लाद-लाद कर इंग्लैंड ने अपनी फौज अपने भूमध्य सागर में स्थित सैनिक अड्डों पर उतारनी शुरू कर दी। शस्त्रों की इस झनझनाहट ने एक बार तो संसार को सहमा ही दिया कि शायद महासमर की भेरी बस बजा ही चाहती है।

कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यपूर्व के राष्ट्रों की भावनाओं का कुछ अधिक ज्ञान संयुक्त राज्य अमेरिका को था। अरब राष्ट्रों से लड़ाई मोल लेना और वहाँ के तेल क्षेत्रों को—जिनमें अमेरिका के स्वार्थ विशेष रूप से हैं—रणांगण बना देना, भयंकर खतरा मोल लेने वाली बात थी। अमेरिका की सलाह पर तीनों राष्ट्रों—इंग्लैंड, फ्रांस तथा अमेरिका—ने निश्चय किया कि राष्ट्रों का एक सम्मेलन बुला कर कुछ और राष्ट्रों का भी समर्थन प्राप्त कर लिया जाए। इसीलिए सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए २४ राष्ट्रों को निमन्त्रण भेजे गए—मिस्र, फ्रांस, इटली, नीदरलैंड, स्पेन, टर्की, इंग्लैंड, सोविएट यूनियन—ये आठ राष्ट्र ऐसे थे, जिन्होंने सन् १८८८ की स्वेज़ सम्बन्धी संधि पर हस्ताक्षर किए थे। इनके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, सीलोन, डेनमार्क एथियोपिया, पश्चिमी जर्मनी, यूनान, भारत, इण्डोनेशिया, ईरान, जापान, न्यूज़ीलैंड, नार्वे, पाकिस्तान, स्वीडन, पोर्चुगाल और अमेरिका को निमन्त्रित किया गया था।

सम्मेलन में किन राष्ट्रों को बुलाया जाए और किन्हें न बुलाया जाए इसका निश्चय किसी निश्चित असूल पर नहीं किया गया था।

कहा यह गया कि जो राष्ट्र स्वेज़ नहर का ज़्यादा उपयोग करते हैं, अथवा सन् १८८८ की संधि में जो राष्ट्र सम्मिलित थे, उन्हीं को निमन्त्रण भेजे गए हैं। परन्तु इस असूल का पूरी तरह पालन नहीं किया गया। भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने लोकसभा में जब आठ अगस्त को यह घोषणा की कि भारत ने इस सम्मेलन में शरीक होने की स्वीकृति दे दी है, तो उन्होंने इस बात को स्पष्ट रूप से कहा कि हम इस सम्मेलन को संसार के राष्ट्रों का पूरा प्रतिनिधि सम्मेलन नहीं मान सकते। भारत के प्रधान मंत्री ने कहा था—"भारत सरकार इस बात से चिन्तित है कि कई ऐसे राष्ट्रों को सम्मेलन में निमन्त्रित नहीं किया गया, जिन्हें सन् १८८८ की संधि पर हस्ताक्षर करने वालों की श्रेणी में शुमार किया जाना चाहिए था, अथवा स्वेज़ नहर का प्रधानता से उपयोग करने वालों में गिना जाना चाहिए था।" प्रधान मंत्री ने बर्मा के न बुलाए जाने पर खेद प्रकट किया और सन् १८८८ में संधि पर हस्ताक्षर करने वालों की श्रेणी में युगोस्लाविया 'पुराने आस्ट्रिया हंगरी' का उत्तराधिकारी है, जिसने सन् १८८८ की संधि पर हस्ताक्षर किए थे। इन राष्ट्रों की श्रेणी में पूर्वी जर्मनी चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, आस्ट्रिया, हंगरी भी आते थे, जिन्हें बुलाया जाना चाहिए था। स्वेज़ के यातायात में इन देशों का भी कम स्वार्थ नहीं है। सम्मेलन के समय अनेक देशों ने इस बात की शिकायत की।

मिस्र सम्मेलन में शरीक नहीं हुआ और उसने शरीक न होने की एक वजह यह भी बतलाई कि यह सम्मेलन किसी भी दृष्टि से उन राष्ट्रों का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता था, जो स्वेज़ का उपयोग करते हैं। उपर्युक्त जिन यूरोपियन राष्ट्रों के नाम लिखे गए हैं, उनके अतिरिक्त अरब के सम्पूर्ण राष्ट्र इस नहर के साथ हर लिहाज़ से बँधे हुए हैं। अरब राष्ट्रों का सारा व्यापार, तेल और अन्य वस्तुओं का यातायात स्वेज़ के मार्ग से ही होता है। परन्तु इन राष्ट्रों की उपेक्षा कर दी गई। इस लिए इस सम्मेलन के निर्णयों को सम्पूर्ण संसार का समर्थन प्राप्त हो, ऐसी बात नहीं कही जा सकती थी। हाँ, यदि यूनाइटेड नेशन्स में यह मामला लाया जाता तो वहाँ बात ही कुछ और होती। वहाँ अन्य राष्ट्र भी उपस्थित होते और वहाँ जो निर्णय होता, उसको नैतिक बल प्राप्त होता।

सम्मेलन का कार्यक्रम तथा उद्देश्य जो निमन्त्रण पत्र में दर्ज था, वह यह था—"यह विचार करना कि स्वेज़ नहर के प्रबन्ध संचालक कार्य को अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में किस प्रकार लाया जाए, जिससे सन् १८८८ की संधि में वर्णित यातायात की सम्पूर्ण सुविधाएँ सब राष्ट्रों को समान रूप से उपलब्ध होती रहें। स्वेज़ नहर की कम्पनी का स्वरूप प्रारम्भ से ही अन्तर्राष्ट्रीय रहा था, क्योंकि इसके हिस्सेदार, डायरेक्टर और कार्यकर्ता विभिन्न देशों के नागरिक थे। परन्तु स्वेज़ के राष्ट्रीयकरण से सारा सम्बन्ध मिस्र की सरकार के हाथों में चला जाएगा। इस प्रकार एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था पर एक राष्ट्र ने अपना कब्ज़ा जमाने का प्रयत्न किया है, जिसके कारण इस नहर का प्रबन्ध अब प्रधानतया एक ही राष्ट्र के हितों की दृष्टि से चलाया जाएगा। इसीलिए इस संकट का उपाय सोचने के लिए यह सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया गया है।"

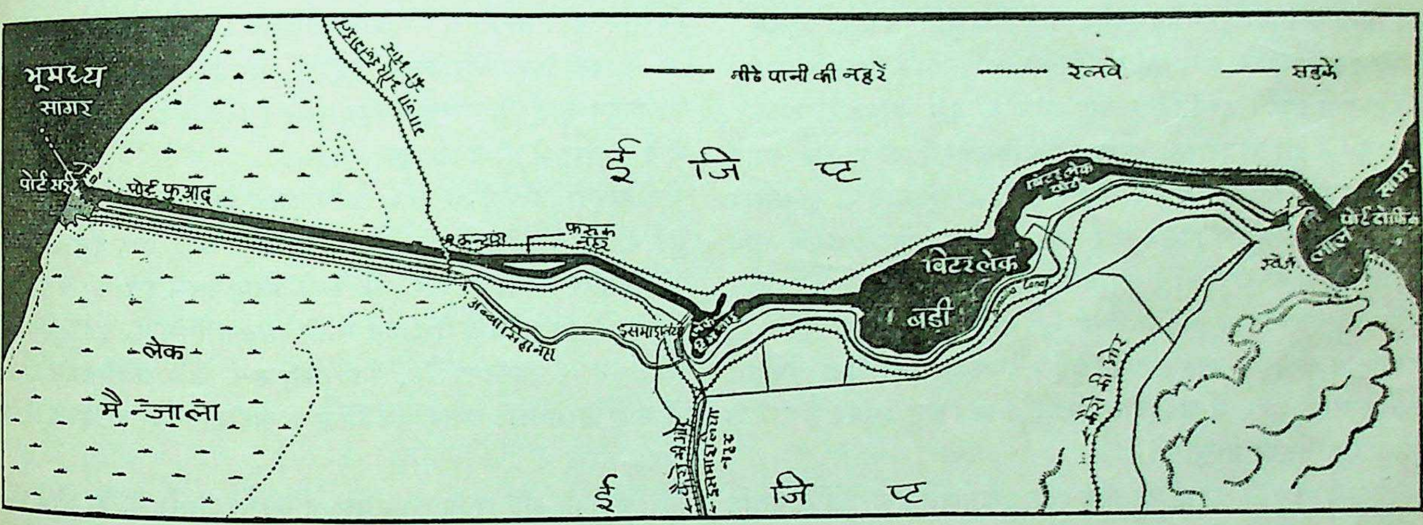

यह स्पष्ट है कि जिस ढंग से और जिस वातावरण में सम्मेलन बुलाया गया था वह शान्तिपूर्ण समझौते की राह निकालने में सहायक नहीं था। उलटे उससे सन्देह और घबराहट का वातावरण बना। सम्मेलन से ठीक पहले इंग्लैंड ने मिस्र का तमाम लेखा-जोखा, जो ब्रिटिश आधिपत्य की सीमा में था, ठप कर दिया और अनेक प्रकार की आर्थिक पाबन्दियाँ लगा कर मिस्र को आर्थिक कष्ट में डालने की चेष्टा की। दोनों ओर से बदले की भावना से काम होने लगा। ऐसी दशा में लन्दन सम्मेलन कौन सी राह निकाल सकेगा, इस विषय में सभी परेशान थे।

सम्मेलन में क्या कुछ हुआ, इसे जानने से पहले हमें स्वेज़ की ऐतिहासिक तथा वर्तमान स्थिति पर संक्षेप से नज़र दौड़ा लेनी चाहिए।

भूमध्य सागर तथा लाल सागर को पृथक करने वाली ज़मीन की एक कम चौड़ी पट्टी को काट कर स्वेज़ नहर निकाली गई है। प्राचीन समय में यूरोप के देशों में आने-जाने वाले जहाज़ भूमध्य सागर के तटों

पर रुक जाते थे। सारा माल-असबाब और सवार कुछ मील का पैदल सफ़र रेगिस्तान में करते थे और फिर लाल सागर के बन्दरगाहों से नए जहाज़ों पर सवार होते थे। यदि जहाज़ों से उतरना कबूल न हो और जलयात्रा ही करनी हो तो उसके लिए अफ्रीका के नीचे 'केप' से घूम कर आना होता था, जिसमें समय और धन का अपव्यय होता था। स्वेज़ के मार्ग से ४००० मील का रास्ता कम हो जाता है।

इतिहास बतलाता है कि इस स्थल मार्ग को काट कर भूमध्य सागर तथा लाल सागर को मिलाने वाली जल प्रणालिकाएँ प्राचीन युग में भी बनाई गई थीं। ईसा से १३ सौ बरस पहले कहा जाता है कि ऐसी कोई नहर थी। आठवीं सदी तक एक नहर थी जो नील नदी को लाल सागर से मिलाती थी। जहाज़ नील नदी के मुहाने में घुस कर कुछ दूर जाते और फिर नहर के ज़रिए लाल समुद्र में दाख़िल हो जाते थे। परन्तु ये सब नहरें छोटी-छोटी थीं। रेत के भयंकर तूफ़ान नहरों को हर साल रेत से भर देते थे, और इन नहरों को चालू न रखा जा सका। १६वीं सदी के यूरोप के कई राष्ट्र ऐसी योजनाएँ सोचने लग गए, जिनके द्वारा यहाँ फिर कोई अच्छा जल-मार्ग काटा जा सके। नैपोलियन जब मिस्र में आया तो उसने इस योजना में बहुत दिलचस्पी दिखाई। परन्तु १९वीं सदी के मध्य तक यह विचार व्यावहारिक शक्ल अख्तियार न कर पाया। फ्रेंच इन्जीनियर और फ्रांस के एक अधिकारी फ़र्डिनेंड डि लेसेप ने इस योजना में व्यावहारिक दिलचस्पी ली। उस समय मिस्र पर टर्की का साम्राज्य था और टर्की के सुलतान का वायसराय (ख़दीव) मिस्र का शासन कार्य चलाता था। लेसेप ने उसके साथ अपनी योजना की चर्चा की। खदीव सैय्यद पाशा ने योजना को स्वीकार किया और नहर चालू होने से लेकर ९९ साल का ठेका इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए स्थापित हुई एक कम्पनी को देना स्वीकार किया। सन् १८५६ में अहदनामा लिखा गया। सन् १८६६ में टर्की के सुलतान ने उसकी मंज़ूरी दी।

सन् १८५९ में खुदाई का काम शुरू हुआ और दस वर्षों में अर्थात १७ नवम्बर १८६९ को यह कार्य समाप्त हुआ। अहदनामे के अनुसार इस तारीख से आरम्भ होकर १०० वर्षों का ठेका कम्पनी को मिला। इसलिए १७ नवम्बर १९६९ को कम्पनी का ठेका अपने आप समाप्त हो जाता है। इस लिहाज़ से यह बात ध्यान में रखने की है कि यदि कर्नल नासर स्वेज़ के राष्ट्रीयकरण की घोषणा न भी करते तो भी १७ नवम्बर १९६९ को कम्पनी का ठेका समाप्त हो जाने को था, और आपसे आप इस नहर पर मिस्र का सम्पूर्णतया अधिकार हो जाता। नहर की सम्पूर्ण सम्पत्ति भी मिस्र की मिल्कियत बन जाने वाली थी।

नहर बनाने में सन् १८६९ तक सब खर्च १,६६,३२,९५३ पौंड आया था। कम्पनी की पूँजी ८० लाख पौंड थी। इस घाटे की पूर्ति कर्ज़ा लेकर पूरी की गई।

प्रारम्भ ही से इंग्लैंड के जहाज़ इस नहर का ज्यादा उपयोग करते रहे। सन् १८७५ में इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री डिज़रौली ने मिस्र के ख़दीव से सब हिस्से खरीद लिए। ये हिस्से आधे के लगभग थे (१,७६,६०२)। इंग्लैंड और वहाँ के व्यापारियों ने ख़दीव को बहुत-सा रुपया सूद पर दे रखा था। यह रुपया किसी प्रकार के उन्नति के कार्यों पर नहीं, बल्कि ख़दीव के भोग-विलास के सामान जुटाने में ही खर्च होता था। जब रकम ज्यादा बढ़ गई और रुपया चुकाने का कोई रास्ता नज़र न आया तो कई प्रकार से ख़दीव पर दबाव डाल कर और डरा-धमका कर ये हिस्से ले लिये गए, जिनकी कीमत केवल ४० लाख पौंड लगाई गई, जो ख़दीव के कर्ज़ों में मुजरा कर ली गई।

इस प्रकार इंग्लैंड के पास कम्पनी के हिस्सों का आधे से ज्यादा भाग आ गया। प्रारम्भ में इंग्लैंड का कम्पनी में दख़ल नहीं था, लेकिन अब धीरे-धीरे दख़ल बढ़ने लगा। पहले इंग्लैंड के २४ में से केवल ३ डायरेक्टर थे। सन् १८८२ में ख़दीव के विरुद्ध मिस्र में बग़ावत हुई। ख़दीव ने अंग्रेज़ी फौजों को अपनी रक्षा के लिए बुला भेजा। बहाना यह बनाया गया कि ये फौजें स्वेज़ की रक्षा के लिए ख़दीव ने बुलाई हैं। तब से ब्रिटिश फौजें स्वेज़ पर जम कर बैठ गईं। बोर्ड में डायरेक्टरों की संख्या ३२ कर दी गई, जिनमें १० इंग्लैंड के थे। आजकल बोर्ड में १६ फ्रेंच, ९ ब्रिटिश, ५ मिस्री, १ अमेरिकन और १ हालैण्ड का डायरेक्टर है। हिस्सेदार ही डायरेक्टरों को चुनते हैं—पर प्रायः वही लोग उम्र भर डायरेक्टर बने रहते हैं।

कम्पनी मिस्र में रजिस्टर हुई थी और इसलिए उस पर मिस्र का कानून लागू है, परन्तु उसका मुख्य दफ्तर मिस्र में न होकर पैरिस में है। मिस्र में भी उनका एक दफ्तर है।

कम्पनी की पूँजी २० करोड़ फ्रांक या ८० लाख पौंड निश्चित हुई थी। इसे ४ लाख हिस्सों में बाँटा गया था। जिन देशों को स्वेज़ में दिलचस्पी हो सकती थी उनके लिए हिस्से रखे गए थे। परन्तु एशिया और अरब के देश उस समय चेतना में न थे, इसलिए उन्हें किसी ने न पूछा। इंग्लैंड, आस्ट्रिया, रूस और अमेरिका ने प्रारम्भ में कोई हिस्से नहीं खरीदे थे। मिस्र के ख़दीव ने ६ करोड़ फ्रांक के हिस्से खरीदे थे।

कम्पनी की मुख्य आय उस चुंगी पर निर्भर है, जो स्वेज़ में से गुज़रने वाले जहाज़ों को अदा करनी पड़ती है।

स्वेज़ कम्पनी ने इस नहर से बहुत नफ़ा उठाया है। अकेले ब्रिटेन ने ४० लाख पौंड के सरमाया पर हर साल लगभग इतना ही मुनाफ़ा हासिल किया है। सन् १९३२ में इंग्लैंड के हिस्से ३५ लाख पौंड मुनाफ़े का आया था। मिस्र पर इसी नहर की वजह से इंग्लैंड का ज़बर्दस्त सैनिक और आर्थिक नियन्त्रण कायम हो गया।

कम्पनी की आय का विभाग इस समय इस रीति पर किया जाता है। ७१ प्रतिशत हिस्सेदारों में बाँटा जाता है। १५ प्रतिशत मिस्र सरकार को, १० प्रतिशत कम्पनी के संस्थापकों को २ प्रतिशत डायरेक्टरों को, २ प्रतिशत कर्मचारियों की पैंशन के लिए। सन् १९५५ में कम्पनी को सवा सोलह अरब फ्रांक का मुनाफ़ा हुआ (१००० फ्रांक = १ पौंड) दूसरे शब्दों में प्रति वर्ष औसत १० करोड़ डालर का मुनाफ़ा होता है।

मार्च १९४९ में मिस्र के साथ समझौता हुआ जिसके ज़रिए यह तय हुआ कि डायरेक्टरों में मिस्रवासियों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ाई

जाए। यह भी तय हुआ कि जो मुलाज़मतें रिक्त होंगे उनमें से प्रत्येक पाँच मुलाज़मतों में से चार मिस्री नागरिकों को दी जाया करेंगी। अफ़सरों के रिक्त स्थानों का पूर्ति करते हुए भी प्रत्येक दस उच्च पदाधिकारियों में से नौ पदाधिकारी मिस्रवासियों में से होंगे।

सितम्बर १९५५ में मिस्र की सरकार ने कम्पनी को सूचना दी कि मिस्र सरकार कम्पनी के इस अधिकार को वापस लेना चाहती है, जिसके ज़रिए वह अपनी आमदनी का अधिकांश रुपया मिस्र से बाहर ही उगाहती है, और वह रुपया मिस्र से बाहर ही रखा जाता है। जून १९५६ में कम्पनी के साथ जो नया समझौता हुआ, उसके अनुसार मिस्र की सरकार ने कम्पनी को मिस्र से बाहर रुपया उगाहने और रखने का अधिकार तो दे दिया, परन्तु साथ ही कम्पनी ने यह इकरार भी किया कि कम्पनी भविष्य में अपनी ज्यादा से ज्यादा पूँजी मिस्र में रखेगी। सन् १९५६ के ख़तम होने से पहले मिस्र में रखा हुआ कोष १ करोड़ मिस्री पौंड तक पूरा कर दिया जाएगा। सन् १९५७ में १ करोड़, ३० लाख तक, सन् १९५८ में डेढ़ करोड़ मिस्री पौंड तक यह कोष मिस्र में रहेगा।

स्वेज़ नहर की कुल लम्बाई १०१ मील है। इसकी गहराई ज्यादा से ज्यादा ३९ फुट है। इसकी चौड़ाई १९६ फुट से २४६ फुट तक है। मोड़ों पर चौड़ाई ज्यादा है, जहाँ वह २६२ फुट से ३६० फुट तक हो जाती है।

सन् १८६९ में जब स्वेज़ नहर बन कर तैयार हुई थी, तो उसकी चौड़ाई केवल ७२ फुट थी और गहराई २६ फुट। आमने-सामने से आने वाले जहाज़ों को लँघाने के लिए आठ स्टेशन थे जहाँ चौड़ाई ८९ फुट थी। अभी हाल तक कम्पनी ने कई सुधार नहर की बनावट में किए हैं। उस ज़माने में इतने बड़े-बड़े, जहाज़ नहीं होते थे। आज बहुत बड़े-बड़े जहाज़ नहर में से होकर गुज़रते हैं। तथापि जहाज़ अब इतने विशालकाय होते जा रहे हैं कि अभी तक दुनिया के सबसे बड़े जहाज़ इस नहर में से होकर नहीं गुज़र सकते। तेल ढोने वाले बड़े-बड़े टेंकर भी पूरे भर कर नहर स्वेज़ में से नहीं निकल सकते पूरे भरे हुए ४५ हज़ार टन के टेंकर नहर में से न गुज़र कर 'केप' के रास्ते घूम कर यूरोप पहुँचते हैं और इससे उन्हें २५ से ३० प्रतिशत तक की बचत हो जाती है।

इसलिए योजना यह है कि १२ करोड़ पौंड खर्च करके एक नई नहर बनाई जाए, जिससे यातायात की सुविधाएँ अधिक हो जाएँ। १९३८ में प्रतिदिन औसतन १७ जहाज़ नहर में से गुजरते थे, सन् १९४८ में २१ जहाज़। अब नहर में ऐसा सुधार करने की योजनाएँ हैं कि ४५ से ५० तक बड़े-बड़े जहाज़ प्रतिदिन नहर में से गुजर सकें।

नहर को ठीक हालत में रखने के लिए निरन्तर खुदाई और गाट निकालने का काम जारी रखना पड़ता है।

जैसा पहले लिखा जा चुका है, इस नहर का ज्यादा उपयोग प्रारम्भ से ही इंग्लैंड करता था, परन्तु अब धीरे-धीरे दूसरे देश भी इसका अधिक उपयोग करने लगे हैं। सन् १९३८ में स्वेज़ में से होकर गुजरने वाले ५० प्रतिशत जहाज़ इंग्लैंड के थे। सन् १९४८ में इंग्लैंड का हिस्सा ३७ प्रतिशत हो गया। अब लाइबेरिया, फ्रेंच, इटली, नीदरलैंड, स्वीडन, अमेरिका, डेनमार्क, जर्मनी और पैनामा के जहाज़ भी बहुत संख्या में जाने लगे। यातायात किस गति से बढ़ता जा रहा है। इसका अनुमान इससे हो सकता है कि जहाँ सन् १९५२ में सब मिला कर ८ करोड़ ६१ लाख टन के जहाज़ नहर में से होकर गुजरे थे, वहाँ सन् १९५५ में ११ करोड़ ५७ लाख टन के जहाज़ नहर में से होकर गुजरे।

स्वेज़ नहर से होकर माल का जो यातायात हुआ, उसमें किस पूर्वी देश का कितना हिस्सा रहा है उसका अन्दाज़ा नीचे की गणनाओं से लगाया जा सकता है :

ईरान की खाड़ी के तटवर्ती देश	६६९ लाख टन
भारत, पाकिस्तान, सीलोन, बर्मा	११५ लाख टन
दक्षिण पूर्वी एशिया	७६ लाख टन
चीन, जापान, फ़िलिपाइन	७६ लाख टन
आस्ट्रेलिया न्यूज़ीलैंड	५३ लाख टन
लाल सागर के तटवर्ती देश और अदन	३७ लाख टन

नीचे की गणनाओं से ज्ञात होता है कि कौन-कौन सामान कितना-कितना नहर में से होकर यूरोप से पूर्वी और दक्षिणी देश को जा रहा है :

धातु का बना हुआ सामान	३७,३१,००० टन
सीमेंट	२६,८३,००० टन
खादें	२४,५४,००० टन
पेट्रोल और पेट्रोल से उत्पन्न पदार्थ	१९,०५,००० टन
मशीनें	१०,२८,००० टन
खांड	९,६९,००० टन
पल्प और काग़ज़	६,११,००० टन
रासायनिक द्रव्य	५,५६,००० टन
नमक	४,९७,००० टन
अनाज	४,८९,००० टन
रेलों का सामान	४,६७,००० टन

ऊपर के अंकों से यह बात स्पष्ट है कि इन देशों में औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नति के लिए आवश्यक पदार्थों का आयात एशिया व अफ्रीका के देशों में ज्यादा बढ़ रहा है।

जो माल पूर्वी और दक्षिणी देशों से यूरोप को जा रहा है उसकी तालिका यह है :—

	टनों में
पैट्रोल और पैट्रोल से निर्मित पदार्थ—	६,६८,९३,०००
कच्ची धातुएँ	५३,००,०००
अनाज	२४,८८,०००

इसी प्रकार कपास, रबर, खांड, तेल लकड़ी, चाय, मांस, काफी, सूखे मेवे और सब्ज़ियाँ, ये पदार्थ प्रधान हैं। इन पदार्थों के लिए यूरोप पूर्वी देशों पर निर्भर है।

व्यापार की इन तालिकाओं से यह स्पष्ट है कि यूरोप और एशिया दोनों के लिए यह नहर कितना महत्त्व रखती है, और दोनों के लिए वह जीवन वाहिनी प्रणालिका है।

उपर्युक्त तालिका से यह भी स्पष्ट है कि यूरोप को जाने वाले माल में सब से प्रथम स्थान अरब के तेल के चश्मों ने ले लिया है। कुवाइत, साउदी अरब, ईरान, बहारिन, आदि देशों का तेल इसी मार्ग से होकर यूरोप को जाता है। इसमें ब्रिटेन को सबसे ज्यादा, दूसरे दर्जे पर फ्रांस, तीसरे अमेरिका और चौथे दर्जे पर इटली का हिस्सा है। दुनिया का ८० प्रतिशत के तेल के भंडार इन मध्य पूर्व के देशों में हैं—जिन पर सारे यूरोप का उद्योग व्यवसाय और यातायात निर्भर है। सन् १९३८ में जहाँ ५२ लाख टन तेल स्वेज़ से होकर यूरोप को जाता था, वहाँ सन् १९५५ में ६ करोड़ ६८ लाख टन तेल की निकासी स्वेज़ के रास्ते यूरोप को हुई।

ऊपर की गणनाओं से यह स्पष्ट है कि पश्चिम और पूर्व को मिलाने वाली इस जल प्रणालिका का यूरोप और एशिया दोनों के लिए समान रूप से बहुत अधिक महत्त्व है।

स्वेज़ नहर के अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व से कोई व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। प्रारम्भ से ही संसार के देशों ने यह आश्वासन चाहा कि स्वेज़ का मार्ग प्रत्येक देश के लिए शान्ति और युद्ध दोनों हालतों में समान रूप से खुला रहेगा। यदि ऐसा बहुमूल्य और महत्त्वपूर्ण जल मार्ग किसी एक देश के आधिपत्य में आ जाए तो सारे एशिया और यूरोप का भाग्य उस देश की इच्छा पर निर्भर रहेगा, बल्कि युद्ध के समय कोई राष्ट्र भी नहर को हानि पहुँचा कर सारे संसार के लिए विपत्ति खड़ी कर सकता है। इसलिए २९ अक्टूबर १८८८ को ब्रिटेन, जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, स्पेन, फ्रांस, इटली, नीदरलैण्ड, रूस और टर्की इन देशों ने इकट्ठे होकर कुस्तुनतुनिया में एक संधि पर हस्ताक्षर किए।

संधि की पहली ही धारा में कहा गया कि स्वेज़ नहर का जल मार्ग युद्ध और शान्ति दोनों ही हालतों में प्रत्येक देश के व्यापारी अथवा लड़ाकू जहाज़ों के लिए खुला रखा जाएगा। इस मार्ग को कभी बन्द नहीं किया जाएगा, न केवल स्वेज़ बल्कि उसमें गिरने वाली साफ पानी की नहरों को भी सुरक्षित रखा जाएगा। युद्ध के समय जहाँ लड़ने वाले राष्ट्रों के जंगी जहाज़ युद्ध के सामान और फौजें आदि इस मार्ग से स्वतन्त्र रीति से आ-जा सकेंगे वहाँ प्रत्येक राष्ट्र इस बात का ख्याल रखेगा कि नहर के भीतर और उसके मुहाने के बन्दरगाहों से तीन-तीन मील के घेरे के भीतर कोई आक्रमण अथवा लड़ाई का अभ्यास वगैरा नहीं किया जाएगा—यहाँ तक कि यदि टर्की या मिस्र भी जिनके प्रदेश में यह नहर स्थित है—यदि लड़ाई में एक फ़रीक हों, तो स्वेज़ के क्षेत्र को लड़ाई से बाहर रखा जाएगा।

संधि की धारा ८ और ९ के द्वारा नहर की सुरक्षा और देख-भाल की जिम्मेवारी मिस्र सरकार पर ही डाली गई। मिस्र को यह देख-भाल करने का अधिकार था कि कहीं कोई राष्ट्र संधि की धाराओं का उल्लंघन तो नहीं करता। यदि मिस्र की सरकार के पास पर्याप्त साधन स्वेज़ की रक्षा के न हों तो टर्की को यह भार सौंपा गया (उस समय मिस्र टर्की के साम्राज्य का एक प्रदेश था) और टर्की उस संधि पर हस्ताक्षर करने वाली सरकारों की मदद से स्वेज़ की रक्षा और व्यवस्था करने के लिए जिम्मेवार होगा। धारा १० और ११ में लिखा है कि स्वेज़ पर खतरा आने पर मिस्र और टर्की नहर को ज़रूरत पड़ने पर बन्द भी कर सकते हैं और उसकी नाकाबन्दी भी कर सकते हैं, उस समय इस कार्य को इस संधि के विरुद्ध न समझा जाएगा। परन्तु कोई स्थायी किलाबन्दी न की जाएगी।

जैसा ऊपर कहा गया है सन् १८८२ के बाद से ब्रिटिश सेनाएँ स्वेज़ के क्षेत्र में तैनात रहीं, और व्यावहारिक रूप से इंग्लैंड का इस नहर पर पूर्ण अधिकार रहा। मिस्र कमज़ोर था, टर्की का साम्राज्य भी जर्जरित हो रहा था, इसलिए इंग्लैंड ने बहुत आराम के साथ ऐसी स्थिति उत्पन्न कर ली कि मिस्र स्वयं इंग्लैंड से स्वेज़ की रक्षा के कार्य में सहायता की याचना करे। शान्तिकाल में तो सन् १८८८ की संधि पर पूरी तरह अमल होता रहा, परन्तु प्रथम महायुद्ध के अवसर पर टर्की इंग्लैंड के विरुद्ध लड़ा। परन्तु स्वेज़ पर व्यावहारिक रूप से इंग्लैंड का ही आधिपत्य रहा। सन् १९१४ में ब्रिटिश सैनिक विभाग ने हुक्म दिया कि शत्रु को स्वेज़ में घुसने की इजाज़त नहीं होगी, हालाँकि सन् १९११ में जब इटली और टर्की में युद्ध हुआ तो टर्की ने संधि का पूरी तरह पालन करते हुए इटली के जहाज़ों को स्वेज़ में से होकर गुज़रने से नहीं रोका था। युद्ध के पश्चात सन् १९२३ में लूसान संधि द्वारा टर्की ने मिस्र पर से अधिकार उठा लिया और मिस्र स्वतन्त्र गिना जाने लगा। २८ फरवरी १९२२ को मिस्र की स्वाधीनता की घोषणा करते हुए इंग्लैंड ने स्वेज़ को रक्षा के प्रश्न को बाद की बात-चीत द्वारा तय करने के लिए अनिश्चित ही रहने दिया।

परन्तु सन् १९२२ को संधि में इंग्लैंड और मिस्र ने यह स्वीकार किया कि स्वेज़ मिस्र का एक अभिन्न भाग है। परन्तु इसी संधि में स्वेज़ की रक्षा के लिए ब्रिटिश फौज़ी दस्ते को स्वेज़ क्षेत्र में रहने की अनुमति दे दी गई। यह निर्णय किया गया कि २० वर्ष के बाद इस बात का निश्चय किया जाएगा कि भविष्य में ब्रिटिश फौजी दस्ते के रहने की आवश्यकता होगी अथवा नहीं।

जब दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ तो इंग्लैंड ने अपने शत्रुओं के लिए स्वेज़ का मार्ग बन्द कर दिया और इसके लिए संधि की धारा १० और ११ का हवाला दिया गया और जर्मनी पर इलज़ाम लगाया गया कि यह स्वेज़ को बर्बाद कर देना चाहता है, उससे इसकी रक्षा करना आवश्यक है।

जब अरब देशों और इज़राइल में परस्पर युद्ध हुआ तो मिस्र ने इज़राइल के जहाज़ों के लिए स्वेज़ का मार्ग बन्द कर दिया और इससे इज़राइल का बहुत नुकसान हुआ। यूनाइटेड नेशन्स ने मिस्र के इस कार्य को सन् १८८८ की संधि के विरुद्ध ठहरा कर मिस्र की निन्दा की और आज्ञा दी कि वह इज़राइल के जहाज़ों के आवागमन में रुकावट न डाले।

इस प्रकार हमने देख लिया कि जहाँ नहर और सब राष्ट्रों के लिए शान्ति या युद्ध दोनों अवस्थाओं में खुली रही, और सन् १८८८ की सन्धि का पूरी तरह पालन होता रहा, वहाँ इंग्लैंड का नहर पर पूरा-पूरा अधिकार बना रहा और उसने सन्धि की व्याख्या मनमाने ढंग से करते हुए युद्ध काल में अपने अधिकार का पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया।

अब तक मिस्र निर्बल दशा में था, और इसलिए वह इंग्लैंड के सलाह मशविरे के बिना कुछ कर न सकता था, इंग्लैंड स्वेज़ पर मिस्र का ही आधिपत्य जताता रहा। क्योंकि मिस्र के शाह की निर्बल सरकार ने इंग्लैंड को स्वेज़ के मामले में खुली छुट्टी दे रखी थी।

चार वर्ष पूर्व मिस्र में नई क्रान्ति हुई। मिस्र का नक्शा बदल गया। मिस्र के नए राजनीतिक नेता मिस्र को इंग्लैंड और दूसरे विदेशियों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त करने के लिए तुले बैठे थे और मिस्र का नव-निर्माण करने के लिए उत्सुक थे।

सन् १९५४ में इंग्लैंड के साथ मिस्र की जो सन्धि हुई, उसके अनुसार जून १९५३ को ब्रिटिश सैनिक स्वेज़ क्षेत्र को बिल्कुल खाली कर गए। अब तक वहाँ अंग्रेज़ों के ८० हज़ार सैनिक रहा करते थे। अब से मिस्र के अपने सैनिक स्वेज़ की रक्षा करने लगे।

सन् १९५३ में मिस्र ने नील नदी पर एक बहुत बड़ा बाँध बनाने की योजना तैयार की, जिससे मिस्र में सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध किया जा सके। उस पर एक अरब डालर खर्च का अनुमान लगाया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय बैंक ने कहा कि इंग्लैंड और इज़राइल से मिस्र के झगड़े हैं, इसलिए बैंक कर्ज़ा नहीं दे सकता। अमेरिका और इंग्लैंड पहले कर्ज़ा देने को उद्यत हुए और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से भी कर्ज़ दिलाने का वायदा किया बशर्ते कि मिस्र और किसी देश से कर्ज़ न ले और बैंक का मिस्र की अर्थ नीति पर नियन्त्रण रहे। उधर इज़राइल में अमेरिका और इंग्लैंड का करोड़ों रुपया लगा हुआ है, फिर भी अमेरिका इज़राइल को हर साल ३ करोड़ से ५ करोड़ डालर तक सहायता देता है। मिस्र ने असवान बाँध पर अपना ७३ करोड़ डालर लगाना है जबकि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक, अमेरिका और इंग्लैंड का सब मिलाकर केवल २७ करोड़ रुपया लगने वाला था।

इस सम्बन्ध में इंग्लैंड, अमेरिका और अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के अधिकारियों के साथ मिस्र का जो वार्तालाप हुआ, उस पर प्रेज़िडेन्ट नासर ने कहा कि "अन्तर्राष्ट्रीय बैंक के प्रेज़िडेन्ट मिस्टर ब्लैक ने मेरे साथ असवान बाँध के विषय में वैसी ही चालाकी चलनी चाही, जैसी स्वेज़ नहर के ठेका लेते समय "डी० लेसेप" ने मिस्र के ख़दीव सैय्यद पाशा के साथ चली थी। पर वह असफल रहे।"

जब अमेरिका और इंग्लैंड ने असवान बाँध के लिए रुपया न देने की घोषणा की तो सारी दुनिया ने भाँप लिया कि इसके कारण राजनीतिक हैं। अब हाल ही में इटली के विदेश मन्त्री ने भी इसका समर्थन किया है कि लन्दन में उनकी अमेरिका तथा इंग्लैंड के राजनीतिज्ञों से जो बातचीत हुई उससे उन्हें यकीन हो गया कि ये कारण राजनीतिक ही हैं।

इसी पृष्ठभूमि में स्वेज़ के राष्ट्रीयकरण की घोषणा की गई।

जैसा हम पहले लिख आए हैं राष्ट्रीयकरण की घोषणा से पहले तक स्वेज़ का सारा अधिकार व्यावहारिक रूप से बर्तानिया के हाथों में रहा है। उसने अपने स्वार्थों को कभी आँच न आने दी, और उन्हीं को प्रधान रखा। पिछले दो महायुद्धों के समय उसने कुस्तुनतुनिया की संधि को भंग करके भी अपने शत्रुओं को स्वेज़ में आने-जाने की स्वाधीनता नहीं दी। मिस्र की स्वाधीनता से पहले यदि कभी किसी ने स्वेज़ पर अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार स्थापित करने की बात की है तो इंग्लैंड ने सदा इस प्रस्ताव का विरोध किया है। यदि इंग्लैंड के हाथ में समस्त अधिकार रहे तब तो कोई ऐतराज़ न किया जाए। उस समय दूसरे देशों को यही कहा गया कि स्वेज़ पर मिस्र का प्रभुत्व है जिसके नियन्त्रण पर इंग्लैंड उसकी रक्षा करता है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध की बात मिस्र के स्वाधीन होने और स्वेज़ के प्रबन्ध को पूरी तरह अपने अधिकार में लेने की घोषणा करने के बाद ही उठाई गई है। यदि इंग्लैंड के हाथ में व्यावहारिक रूप से सब अधिकार रह सकते थे तो मिस्र पर क्यों संदेह किया जाए?

इस सम्बन्ध में एक प्रश्न और भी विचारणीय है संसार के दूसरे जल मार्ग पर किस का अधिकार रहे। यदि संसार के अन्य जल व स्थल मार्गों पर कभी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ कब्ज़ा कर लेंगी, तो स्वेज़ पर भी वैसा ही असूल लागू होगा। परन्तु कोई भी दूसरा राष्ट्र जब अपने अधिकार में आते हुए जलमार्गों को अथवा अन्तर्राष्ट्रीय तिजारत के अड्डों को दूसरों के अधिकार में देने को उद्यत नहीं तो अकेले मिस्र पर ही ऐसा दबाव क्यों डाला जाए?

उदाहरण के लिए क्या इंग्लैंड जिब्रालटर, सिंगापुर इत्यादि अड्डों को अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार में देने को उद्यत होगा? क्या अमेरिका पैनामा की नहर पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध बिठाने के लिए सहमति देगा? हाल ही में पैनामा जनतंत्र ने जब पैनामा के राष्ट्रीयकरण की चर्चा उठाई तो अमेरिका सरकार के प्रवक्ता श्री डलेस ने साफ कह दिया कि पैनामा नहर पर अमेरिका का पूरा प्रभुत्व ही है जिसे वह छोड़ने को कभी तैयार न होगा। पैनामा नहर का ठेका भी अमेरिका को उसी प्रकार दिया गया था जिस प्रकार स्वेज़ का ठेका स्वेज़ कम्पनी को दिया गया था।

यह मानना पड़ेगा कि लन्दन सम्मेलन ने उस तनाव को बहुत हद तक कम कर दिया है, जो इस सम्मेलन से पहले उत्पन्न हो गया था। अब यह आशा की जाती है कि इस सवाल का निर्णय मिस्र और दूसरे देशों की आपसी बातचीत से हो सकेगा और युद्ध का जो संकट उपस्थित हो गया था, कम से कम अभी तो वह टल गया। इस दृष्टि से लन्दन सम्मेलन को एक सफल सम्मेलन माना जाना चाहिए।

◆

"सत्व प्रज्ञाधिक्यात् तदाश्रयत्वात् क्षुद्रकाणाम्"

कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण ८, अध्याय ४

जन-साधारण अधिक बुद्धि और अधिक मानसिक शक्ति वाले व्यक्तियों के नेतृत्व में रहना पसन्द करते हैं।

अम्बपाली

सरदार के० एम० पणिक्कर

"सुना है आज,
तथागत स्वयं पधारेंगे
अम्बपाली के गेह
करेंगे स्वीकृत अन्नाहार
अहो ! क्या सच कि मारजित् आज
आ रहे गणिका-गृह स-समाज
सहज करने को अङ्गीकार
मधुकरी औ' सत्कार !!
लिच्छवी-गण जग में सम्मान्य,
महामहिमामय गौरवशील,
न यह सौभाग्य किसी को किन्तु
मिला सुन्दर वैशाली में
कि आज कर पाता बुद्धातिथ्य !
नहीं क्या विस्मय की है बात ?"
—राजसुत उदयन ने यों कहा
मित्र-मंडल में अति साश्चर्य ।
मित्र-जन वे, जो थे एकत्र
सदा की भाँति । और उनमें
था जाग्रत मूर्त्त
विभव लिच्छवि प्रभुओं का दृप्त ।
सभी सुत उनके ही तो थे,
मनोरंजन था उनका इष्ट ।
धन-मद में अति चूर
लिच्छवि प्रभुओं ने था फिर-फिर
किया निमन्त्रित बुद्धदेव को
कर सविनय अनुरोध ।
किन्तु रही थी उनके बाँटे
निपट विफलता-मात्र ।
औ' प्रभु ने स्वीकार किया था
गणिका का आतिथ्य
अति आदर के साथ ।
स्तब्ध चकित सुन जिसे हुए थे
धनी गर्व के वीर मान के
लिच्छवि राजकुमार ।
"आह ! यह शौद्धोदन
होकर भी राजपुत्र
बन गया प्रहारी है
हम पर ही नहीं वरन्
राजोचित मान पर—
राज्याधिकार पर !
घोर यह अनर्थ है !
असह्य अवहेलना !"
—ईर्ष्या तथा क्रोध में,
प्रतिकार-शोध में,
डूब गए प्रभुजन—
विकल मानहानि से,
गलित आत्मग्लानि से ।
और हुई नगरी भी
विवर्ण इन्हीं भावों से ।
यही एक-मात्र विषय
रहा वार्तालाप का—
या कहो, प्रलाप का !
मन्दस्मित सुन्दर-सा
बोला एक प्रभु-कुमार—
"क्या कहा कि आम्रपाली ?
भली भाँति परिचित मैं
उस बन्धुरांगना से
कमल-सा आनन है,
स्वर्ण-वर्ण, निखरा हुआ !
अधर मानो पाटल-दल
अमृत-भंडार हैं
किंवा सुधा-सार हैं ।
मोहिनी छलकाती
मुसकान मन्द मन्द
जिधर खिल जाती है
रुक जाती समस्त गति—
है समर्थ रोमांच
उपजाने में महर्षियों के ।
लावण्य मधुमय लेह्य
तन्वंगी वारांगना
वारांगना-जगत की वह
अनन्य सम्राज्ञी है !"
"बस-बस ! मित्रवर !
खत्म करो लड़कपन !
ज्ञात नहीं क्या हम भी
यहीं के निवासी हैं ?
कौन नहीं जानता
उस सुन्दर नारी को—
है तो वह वेश्या ही
लिच्छवि वैशाली की ?
उसमें क्या लाल जड़े
भाई मेरे, बोलो तो—
क्या सुन्दर नारियाँ
अन्य नहीं जग में ?
नर्तकियाँ कितनी हैं—
गिनती कर सकते हो ?
नृत्य-संगीत में
प्रवीणा, पारंगता—
जो निज सौन्दर्य,
लावण्य, कमनीयता से
लज्जित कर देवें, बन्धु,
सौ-सौ अम्बपाली को—
एक नहीं, सौ-सौ
विद्यमान वैशाली में ।
'कमलमुखी ! विजय-पताका
कामदेव की !'—
बखानते उसे हो और
करते सराहना ।
हुआ क्या, परन्तु,
वह है तो मात्र गणिका ही !
अन्तर क्या उसमें और
इतर वेश्याओं में ?
स्मरण नहीं तुमको
काशिराज के कुमार को
अभी उसी दिन तो किया
नष्ट-भ्रष्ट इसने !!!
भोले राजपुत्र के
वसन तक अपहृत कर
रात्रि में निकाल दिया
सौध से अपने !
भीषण अपहारिणी !

स्वर्ण की आशा से
क्या-क्या महा पाप
नहीं करती ?—ज़रा बोलो तो !
वहीं आज भिक्षार्थ
आ रहे सिद्धार्थ !
कैसा है यह अनर्थ !
कैसा यह अनौचित्य !
सदा सर्वजन के
परिरंभण आलिंगन से
मलिन जो पुंश्चली—
चारित्र्यवती मानी गई !—
पुनीत सर्वाधिक,
प्रतिमा गुण-शील की !
अशौच मात्र-दर्शन से
स्पर्श तो दूर रहा—
ऐसी वह गणिका !
उसका अन्न खाने से
धर्म-क्षय निश्चय !
धर्म के रक्षणार्थ
अवतरित बुद्ध को
बुद्धि-भ्रम क्योंकर हुआ ?''

तब एक बोला अन्य—
''अवगत नहीं है तुम्हें
कथा इस सुन्दरी की ?
पिता अज्ञात, स्वयं
भिक्षा-प्रतिपालित-भरित;
दुःख-दारिद्र्य का भोग पर्याप्त कर
अब लोलुप धन की—
अधिकाधिक विश्वास की,
अखण्ड सौभाग्य की,
सुख निर्बाध की,
कितने महासौधों की
आज वह स्वामिनी !
कितने चरानुचर
इंगित पर रहते हैं,
कितने नरेशों को
नचाती नित मानिनी !
आते दूर-दूर से
युवक-वृद्ध कामुक-जन
ले-लेकर उपहार,
पुरस्कार कटाक्षों का।
विवश हो राजा—
महाराजा द्वार ताकते,
झलक-मात्र पाने को
झरोखों से झाँकते !
कितना बड़ा है भाग्य
कामिनी का, आश्चर्य !''

''एक बात तो है''
तभी कहा किसी और ने—
''मैं भी परिचित भली भाँति
उस कामिनी से—
वेश्या वह निस्सन्देह,
किन्तु अति प्रीति उसे
शाश्वत धर्म में,
धर्म के कर्म में,
मानव के मंगल में ।
देखता रहा हूँ मैं एक दीर्घकाल से
जीवन में उसके विराग एक, अनासक्ति ।
दान करने को सदा
आतुर वह रहती है—
व्यग्र सेवार्थ भी ।
कौन नहीं जानता
धर्म में निरत वह
'रूपजीवि' कह कर जिसे
जगत पुकारता ?
तर्क औ' वितर्क व्यर्थ
आदर तथागत ने
उसका किया है यदि !
ऊँचे-ऊँचे, मानी सब
लिच्छवि प्रभुओं को छोड़,
तथागत जाएँगे
उसके घर सहर्ष कल !
करेंगे कृतार्थ उसे
निज सान्निध्य से !
भाग्य आज उसका प्रबल,
प्रभु का अनुग्रह ! फिर,
व्यर्थ अपवाद क्यों ?''

मित्र-वृन्द मौन हुआ
सुन सभी बातों को—
मानो मधु गायन से
मुग्ध सब हो गए ।

२

प्रात हुआ तो मानो कोई सुन्दर उत्सव
वैशाली की गणिका-वीथी मना रही थी
स्वच्छ, अलंकृत तोरण से,
वन्दनवारों से ।
स्थान-स्थान पर रुचिर वितान तने थे,
द्वार-द्वार पर मंगल कलश सजे थे,
चौक-चौक पर स्वागत-द्वार रचे थे ।
भूषण-वसन सुसज्जित
वैशाली-बालाएँ
मंगल-थाल लिए
स्वागत-हित प्रभु के,
निष्ठा-भक्ति-विह्वला
पंक्ति बना कर खड़ी हुई थीं
जन-पथ के पार्श्वों पर !
सर्व कला कुशला गणिका का
महासौध वह सजा हुआ था
भाँति-भाँति से—
ईश-तुल्य प्रभु के स्वागत-सत्कार
योग्य बनने को ।
दुर्लभ पुष्पों से
सुन्दर मोहक पाटम्बर से
प्रभु पूजन के हेतु
भवन को गया सजाया—
और गंध-द्रव्यों से
मानो प्रक्षालन कर
स्वयं इंद्र-मंदिर को
लाया गया धरा पर ।
उत्तम राजोचित मणिमय
विश्राम-कक्ष में,
भद्रासन अतिश्रेष्ठ
अलंकृत स्वर्ण-स्तम्भ से,
मखमल के उपधान सुकोमल
यथायोग्य रख,
सम्पद् और समृद्धि-प्रदर्शन के हित मानो
साज-समाज सहर्ष जुटा था ।
शत विलास-उपकरणों से
हो गया सुसज्जित रम्य हर्म्य वह
जो था स्वागत योग्य
विश्व के सम्राटों के,
प्रस्तुत था अब स्वागतार्थ—
उस निर्मम के
जो एकछत्र-अधिपति था
व्यापक धर्म-राज्य का ।
''समय हो गया

प्रभुवर के पधारने का, पर—
आप नहीं तैयार स्वामिनी,
क्यों अब तक भी ?
आप करेंगी स्वागत क्या उन महाभाग का
इसी वेश में !
कोसलराज-प्रदत्त विविध पट
नीलाम्बर, चीनांशुकादि
संचित पेटक में,
फिर भी आज आप
कोरी साड़ी पहने हैं !
अमृत-धौत ज्योत्स्ना सम मोहन
मुक्ताहार-सुशोभन योग्य कंठ यह, स्वामिनि !
निराभरण क्यों ?
वे संन्यासी हैं, परिव्राजक वे, निश्चल हैं,
किन्तु क्या नहीं, वे कुमार हैं शुद्धोदन के ?
स्वागतार्थ उनके सब सज्जा,
रूप और शृंगार यथाविध
अतः उचित है, आवश्यक है ।
देवार्चन के हित मन्दिर में जब हम जातीं
करतीं नहीं भला क्या धारण
नये वस्त्र-परिधान, विविध नूतन आभूषण ?
उचित वही हैं देवि ! किस लिए
ऊहापोह भला यह
समय रुकेगा नहीं, काम क्या, कैसे होगा ?"
—चेटियों का आग्रह औ' अनुरोध
वह मानती क्या, वह सुनती क्या,
जिसका हृदय कातर, औ' भाव-मथित,
एक दीर्घ काल से ? स्तब्ध रही मृगनयनी—
नहीं, आयताक्षी वह—निस्पन्द
अन्तस् में अनल-वाही उदधि-वती !
और फिर झमक कर
चली मणि-मन्दिर से
चली, और पहुँची वहाँ,
स्वागत होना था जहाँ बुद्ध भगवान का !
विविध जय-घोष ध्वनित,
साडम्बर अतिसज्जित
स्वागत-शाला विलोक
चकित, उद्विग्न, क्षुब्ध
क्रमशः हुई वह और
अन्त में बोली सवेग—
"धन-दर्प-के प्रदर्शक
उपकरण सारे जो,
कैसे भगवान के स्वागत के योग्य हैं ?
त्यागी सर्वस्व के,
विरागी आर्त-रक्षणार्थ,
तीर्थपाद बोधिसत्व,
तृण-तुल्य मानते वे भोग-सामग्री को;
लोक-लोकेश-वन्द्य शाक्यसिंह,
साक्षात् जिनदेव, मोचक कर्मपाश के
सुधर्म-राज्य-शासनार्थ;
दीनों के बन्धु वे,
मात्र दीन-हितार्थ अवतरित हुए भू पर—
देव, परमदेव वे ! साक्षात् धर्ममूर्ति !
क्षुद्र धन-दर्प नहीं,
अन्तर की श्रद्धा-भक्ति,
विनय-भाव जीवन का
चाहिए पूजनार्थ उन महाप्राण के
यही मात्र पूजन की सामग्री,
इसके बिना शेष सब व्यर्थ है, तुच्छ है ।
भिक्षा माँग घर घर
करता जो लोकानुग्रह
भोजन महायोगी का
होगा कनक-थाल में ?
राजासन तुच्छ मान जिन्होंने त्याग दिया
वे प्रभु विराजेंगे आज रत्नासन पर ?
तुरत हटाओ यह सज्जा सब इस स्थल से
पूजन भगवान का न होगा इस सब से ।"

३

उधर, उसी क्षण हुए जागरित
प्रभु ध्यानावस्था से ।
मन्द हास से शीतल करते
लोक और लोकान्तर
बोले निज शिष्यों से
"चलो चलें भिक्षा हित हम सब
देख रही है बाट,
अम्बपालिका निज मन्दिर में
तोड़ सकल भ्रम-ठाठ !
हृदयाकाश हो रहा है शुचि,
हटते घन-अवरोध
उदित हो रहा बोध !"
लेकर भिक्षा-पात्र, दण्ड,
चले बुद्ध तथागत
शिष्यों सहित, मानो
चली अनीक धर्म-व्रतियों की
कल्याण-कृतियों की ।
पुण्यवान् सचमुच
वह वीथी वैशाली की
हो गई कृतकृत्य—
चरण-रज से भगवान की;
पादपद्म-अंकित वही
धूलि ही तो है न, जिसने
धोया कलुष जग का,
बढ़ाया मान कृतियों का
और माहात्म्य शक्रादि देवगण का !
चले मन्द गति से देव
वैशाली-वीथी में—
मानो पूर्णचन्द्र चला
परिवृत्त तारकों से ।
मुख से आनन्द-शान्ति
देह से सहज कान्ति
प्रस्फुटित प्रसारित करते देव
चले जब दृष्टि से उँडेलते
करुणा प्राणिमात्र पर
और जगन्मात्र को
करते अनुगृहीत,
होकर चित्प्रभा-दीप्त,
तब वह दिशा मानो
बन गई वैकुंठ भूतल का ।

४

लिच्छवि नेताओं ने
अजान जैसे, चकित हो,
भक्तियुत वन्दन किया
विश्वैक-दीप का ।
स्वच्छ हुए अन्तर
विनष्ट हुआ अन्धकार,
दर्प और अहंकार ।
नारियों ने
एकत्रित होकर गवाक्षों पर
दर्शन किये प्रभु के
और की पूजा
निज सुदीर्घ नेत्रों के
अवलोकन-पुष्पों से
मारजित-बुद्ध की ।
"कौन सा पुण्य किया
इस वार-वनिता ने
जो पाया महाभाग्य यह !
देव-वंद्य पाद-पद्मों से
पावन-तदावास हुआ !
पालतीं हम सभी धर्म,

कुलाचार, मर्यादा—
दर्शन भी दुर्लभ किन्तु
इसको भगवान के;
एक यह वारांगना, बेचती चरित्र,
किन्तु पुण्य तो इसे ही मिला !
धन्य अम्बपाली तू !
तू ही सुचरित्रा है, तू ही भाग्यशालिनी !
धन्य तेरी जननी है, ए री मनस्विनी !"
मुख में ये बातें, और लोचन लगे प्रभु पर—
मुग्ध हुईं बालाएँ—
शुद्ध हुईं, मुक्त हुईं
मन की मलिनता से ।

५

जैसे ही चरण पड़े प्रभु के उस वीथी में,
दौड़ पड़ी आम्रपाली
आकुल हो व्याकुल हो भावों से
संभ्रम, एकाकिनी,—
और धूलिभरी उस धरा पर लोट कर
किया प्रणिपात साष्टांग उन प्रभु का ।
दर्शक सब बोल उठे—"धन्य ! धन्य !"
कोमलांगी, सुकुमारी
करती जो शयन सदा फूलों की सेज पर,
पड़ी जब पृथ्वी पर
हुई धूलि-धूसरित,
शोभा मानो उसकी
अनेक गुनी बढ़ गई ।
शत-सहस्र अंगराग
तूने अपनाए थे !
सुन्दर स्वदेह-कान्ति दिन-दिन बढ़ाने को !
गन्ध-द्रव्य, चूर्ण आदि
कितनों का प्रयोग किया
किन्तु कब पाई, बता,
कान्ति जो आज मिली
वीथी की धूलि से ?
पावन तू हुई आज तन्वंगी,
'बोधि' का हुआ उदय अन्तस् में तेरे
कहाँ अब दुःख तुझे
इस अखिल लोक में ?

६

मंथर गति से चलते
तथागत जा पहुँचे
शुभ्र हर्म्य-द्वार पर ।
धोया श्रीचरणों को
निज कर-कमलों से
उस आतिथेयी ने
और किया स्वागत गद्गद् भाव से ।
प्रभु थे निःशब्द, मौन—
मानो थे ध्यानमग्न—
जाकर विराजे एक आसन पर
जो था अनुरूप त्यागमूर्ति के ।
भोजन शुद्ध सात्विक,
वैभव की गन्ध नहीं जिसमें,
निवेद्य कर स्व-कर से
नम्रता से, अंजलिबद्ध
खड़ी हुई कामिनी ।
शास्ता प्रसन्न हुए
भिक्षा स्वीकार कर
शिष्य-मण्डली समेत—
कर प्रणाम देव सर्वज्ञ को
बोली यों शर्वरीशानना—
"पाप मैंने बहुत किये,
घोर अज्ञान-कूप में जन्मी औ' पली हूँ मैं;
हूँ मैं हीन, नीच, कर्मपाशों से बद्ध, देव,
धर्म का अर्थ या रीति नहीं जानती;
तो भी हूँ, धर्म-मूर्त्ति, पंकहीन,
सेवा तव चरणों की चाहती !
हे प्रभु ! हे जन-शरण्य !
तव पद-रेणु से पूत यह आम्र-वन
हो तव विश्रान्ति-स्थल,
बने तव आश्रम—
है यह समर्पित श्रीचरणों में !
भगवन् ! निस्संग, निर्मम प्रभु !
सारहीन, तुच्छ उपहार यह
पूजारूपेण स्वीकार हो !"
बोले देव—"वत्सले हे !
भक्तिमय दान तव किया स्वीकार मैंने ।
धर्म के प्रवर्त्तन में
भगिनी तुम भी बनीं ।
आधि तुम्हें होगी नहीं,
'बोधि' तव हृदय में
आज उदित हो गया ।
कर्म-बन्ध वशीभूत
तुमने अकर्म किये आज तक
टूट चुके बन्धन अब—पाश सब ।
अब न रहोगी डूबी
इहलोक जीवन के
बन्धन-दुख-सागर में ।
मन तुम्हारा जा चुका, मिल चुका
सदष्टांग मार्ग में—शुभ हुआ सब अब !"
शिष्यों को देख फिर
बोले तथागत यों—
"मेरी इस बेटी को
उत्तम तत्त्वोपदेश
देना आज ही अवश्य ।
पापहीन चित्त बना
इसका शुद्ध, सत्वमय,
पूर्ण अधिकारिणी है यह आज
सद्धर्म-स्वागत की ।
शिष्योत्तम सारिपुत्र,
जो हैं मर्मज्ञ तत्त्व-चिन्तन के
और धर्म-सेनापति,
स्वयं करें दान
इस पुत्री को कैवल्य-ज्ञान—
दृढ़ हो जो और सारपूर्ण,
भव-दुख-नाशक हो ।
आज से है आम्रपाली
शिष्याओं में एक मेरी—
करें घोषित यह सत्य,
बता दें सब को ।"
स्वप्न से उठी मानो
पाप-विनिर्मुक्त तन्वी;
उज्ज्वल तन-मन में
अखण्ड शान्ति हुई व्याप्त ।
शोभित हुई आम्रपाली
जैसे उदित हो ऊषा
स्निग्ध नीलाकाश में ।

अनुवादिका—श्रीमती रत्नमयी देवी दीक्षित
पद्यानुवाद—सीताचरण दीक्षित

गुजराती कहानी

ज्ञान गंगा

'धूमकेतु'

बीज बोने योग्य वर्षा हो चुकी थी। आकाश साफ हो गया था। किसानों के हृदय आनन्द विभोर हो उठे थे। घर-घर से लोग बीज बोने के लिए खेतों में निकल पड़े थे। प्रारम्भ ऐसा था कि वर्ष सोलह आना सफल होगा।

उस वक्त एक किसान के मन में न जाने कैसे एक सन्देह उत्पन्न हुआ। उसने खेत में बीज तो बोए, लेकिन उसकी फसल काटने के लिए वह जीवित रहेगा या कोई दूसरा उसका आनन्द लेगा?

सन्देह दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। उसके मन में यह निश्चय हो गया कि फसल के समय मैं जीवित नहीं रहूँगा।

मनसा भूत और शंका डाकिन! मन से भूत खड़ा होता है, और थोड़ा सन्देह घुसा कि वह आदमी के साथ डाकिन की तरह लग जाता है।

अतः वह मन ही मन दुखी होता कि बड़े ठाठ-बाट के साथ खेत बोया गया है, फसल भी ठीक-ठीक फूली-फली है, लेकिन भगवान उसके दाने भी दिखाए तब बात है। क्रमशः उसका दुःख बढ़ता गया, और उससे वह निर्बल बनने लगा।

यह देखकर एक भला आदमी जो उसकी बगल में ही रहता था एक दिन उससे मिलने आया। बातों-बातों में पता चला कि वह बेचारा मन ही मन भविष्य की बातों को लेकर दुखी होता है। उसने विचार किया कि यदि उसके मन की बला को निकाला नहीं गया तो वह वृथा दुखी होता रहेगा।

वह थोड़ा समझदार आदमी था। उसे मालूम था कि मनुष्य का मन बहुत विलक्षण होता है। बोलने में यदि थोड़ी सी भूल हुई तो, अनर्थ हो जायगा। अतः उसने शान्तिपूर्वक बात को उठाया।

"लवजी भाई! आप शहर हो आए, वहाँ बिजली के पंखे देखे या नहीं?"

"हाँ, क्यों नहीं। बिजली के पंखे देखे, बिजली के दीप देखे। अरे! बिजली का कारखाना भी मैं देख आया हूँ।"

"ऐसा? तब तो बहुत मज़ा आया होगा?"

"मज़ा तो आया, परन्तु सही मज़ा तो उसका लाभ उठाने वालों को मिलता होगा।"

"अरे! लवजी भाई। इसका क्या तात्पर्य है? पंखे का लाभ उठाने वालों को कुछ समय तो यह भी मालूम नहीं होता कि पंखा चलता है और पवन आता है। ये लोग बेचारे बहुत मुसीबतों से घिरे हुए होते हैं। परन्तु हम दूसरे मार्ग पर आ गये। मैं यह कहना चाहता था कि बिजली के इस पंखे को किसने बोया होगा?"

"अरे! आप भी क्या व्यर्थ बातें करते हैं? पंखा भी कभी बोया जा सकता है? इसे तो उसे बनाने वाले ने बनाया है।"

"यह तो ठीक है। परन्तु जिसने इस पंखे की सर्वप्रथम खोज की होगी अर्थात जिसने सर्वप्रथम बिजली के बीज बोये होंगे, उसे मालूम होगा कि सारा विश्व उसका लाभ उठायेगा और उसके भाग्य में तो बोना ही बदा है।"

लवजी अपने पड़ोसी की बात को कुछ समझ पाया। उसने सोचा कि बात तो सही लगती है। बिजली वाले ने पहले-पहल जब बिजली की खोज की, वह बीज बोने जैसा ही कार्य हुआ। और बाद में उसके इस काम का फल पूरी तरह से भोगने का उसे मौका मिला होगा? इतने में तो उसके पड़ोसी ने ऐसी बातें बनाईं जो उसके विचार प्रवाह को आगे बढ़ाने में सहायक हुईं।

उसने कहा, "तब देखिये लवजी भाई! सारी दुनिया का सभी व्यवहार—खेत में बीज बोने से लेकर बड़ी से बड़ी खोज तक का सारा व्यवहार इस प्रकार ही चलता है। हम खुद औरों के द्वारा बोये गये बीज की फ़सल काटते हैं। हमारे द्वारा बोये गये बीज की कटाई कोई और करेगा। उसमें विचार और आपत्ति क्यों करें? यदि इस प्रकार न हो तो; हम खुद जो सुख और सुविधाएँ भोग रहे हैं, वे हमें कैसे प्राप्त होतीं?"

"अतः बीज बोने के बाद उसकी फ़सल कौन काटेगा, यह ख्याल वृथा ही है। उसे छोड़ दो। फ़सल को आप ही काटेंगे, परन्तु यदि आप न काट सकें, तो भी अन्तिम श्वास तक बीज बोना, यही आपका धर्म है और उसमें ही मानव जीवन की सफलता है। बीज बोने वालों की मान्यता हो कि काटने वाले कोई और होंगे, तो हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि बोने वाले भी काटने वाले ही हैं। वे भी किसी के श्रम के फल का उपभोग करते हैं।"

लवजी अपने पड़ोसी की बात को समझ गया और वह धीरे-धीरे उस व्यर्थ विचार को छोड़कर काम में प्रवृत्त हुआ।

एक गाँव में जितने आदमी रहते हों, वे सब परस्पर सहयोग देते रहें तो सारे गाँव की काया पलटी जा सकती है।

जिसके पास धन का साधन हो, वह धन देकर; जिसके पास शारीरिक बल अधिक हो, वह उसे देकर; तथा जिसके पास प्रबल विचार शक्ति हो, वह निर्बल विचार शक्ति वाले आदमी को सच्चे विचार दे कर भी गाँव का काम कर सकते हैं।

भगवान श्री तथागत की एक कथा है। एक समय भारद्वाज नामक एक ब्राह्मण किसान के यहाँ वे भिक्षा लेने के लिए गये। ब्राह्मण किसान ने उनसे कहा, "भाई! इस प्रकार मुफ्त की भिक्षा माँगने के बजाय, कुछ काम क्यों नहीं करते हो?"

(शेष पृष्ठ २४ पर)

यत्न

सद्गुरुशरण अवस्थी

सृष्टि की चेष्टा का दूसरा नाम यत्न है। यत्न के "मूल में असाम्य का स्वीकार है और चेष्टा की प्रेरणा में समत्व की परिचालना काम करती है। परिणाम यह निकला कि सृष्टि की वास्तविकता असाम्य है और सृष्टि की गति इस असाम्य को समत्व की ओर ले जाना है।"

ईश्वर ने इस असाम्य की सृष्टि करके इतना बड़ा बखेड़ा क्यों खड़ा किया यह प्रश्न मेरे समक्ष बहुत बार आया करता था। इसी असाम्य के कारण विश्व में अनेकरूपता और नानात्व का आविर्भाव हुआ। असाम्य के साम्य की ओर यात्रा की आवश्यकता हुई। रेत अन्न और पुरुष का क्रम बना। 'रेतादन्नमन्नात् पुरुषः' का विकास क्रम उपनिषद ने स्वीकार किया। वैज्ञानिकों का विकासवाद सामने आया।

जड़ प्रकृति में ही विकास का यत्न देखने में नहीं आता, समस्त वनस्पति संसार और प्राणी संसार में भी यह यत्न स्पष्ट परिलक्षित होता है। मानव मानव में ही इतना वैषम्य है कि उसे दूर करने के अनेक बाहरी उपाय विफल से प्रतीत हो रहे हैं। धन वैषम्य अथवा बाहरी साधनों का वैषम्य साम्यवाद कितना भी दूर करने की चेष्टा करे परन्तु रूप वैषम्य, आकार और मनुहार वैषम्य, स्वभाव वैषम्य, रुचि वैषम्य, ज्ञान वैषम्य और बुद्धि वैषम्य इत्यादि न जाने कितने वैषम्य ऐसे हैं, जिनका दूर करना मानव प्रयास के परे की बात है। फिर भी हम देखते हैं अपरिलक्ष्य रूप से प्रकृति स्वयं वैषम्य को दूर करने में लगी है।

वैज्ञानिकों ने पर्यवेक्षण द्वारा यह सिद्ध किया है कि दो व्यक्ति जो निरंतर पचास-साठ वर्षों तक साथ रहते हैं, उनके आकार-मनुहार और रंग तक में साम्य अपरिलक्ष्य रूप में हो जाता है। सहस्रों दम्पतियों के फोटो छाप कर उन्होंने प्रमाणित कर दिया है कि वैवाहिक जीवन के पचास-साठ वर्षों को एक साथ व्यतीत करने के कारण उनकी आकृति और रंग में इतना साम्य आ गया है कि वे भाई-बहन से दिखाई देते हैं। किस प्रकार यह घटना दो मांस पिंडों में साथ रहने के कारण घटित होती है उस का कोई संतोषप्रद उत्तर अभी विज्ञान नहीं दे पाया है परन्तु यह वास्तविकता अवश्य है। रूप, रंग, मनुहार के अतिरिक्त स्वभाव, रुचि, ज्ञान और बुद्धि, बोलने की प्रणाली, वाणी का प्रवाह, उच्चारण के संस्थान, राग-द्वेष के आलम्बन, परिधान धारण विधि इत्यादि इत्यादि में लम्बे सहवास के कारण जो अन्योन्य का पारस्परिक प्रभाव दिखाई देता है वह तो इतना स्पष्ट होता है कि इसके लिए किसी भी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। विस्तार के साथ यदि देखने की चेष्टा की जाए तो दम्पति का समीकृत रूप कुल में प्रतिबिम्बित होता है और एक घर में रहने वाले व्यक्ति सभी समत्व की ओर बढ़ते चलते हैं। भूगोल के घेरे इसी प्रकार समाज और राष्ट्र में भौतिक और मानसिक एकत्व की स्थापना करते चलते हैं और समाज और राष्ट्र अपने व्यक्तियों के एकसे आकार, स्वभाव, रंग-रूप तथा अन्य गुणों के लिए प्रसिद्ध हो जाता है। यातायात के साधनों ने अब यह भौतिक सम्पर्क विश्व सुलभ बना दिया है। मानव मानव को एक करने में यह एक बड़ा भारी सहारा है। पिता-माता से रजोवीर्य में प्राप्त उत्तराधिकार भी कहीं परीत और कहीं विपरीत काम करके इसी समत्व विधायिनी वृति में योग देता रहता है।

वैभिन्य, अनेकत्व और नानात्व की प्रासंगिकता सृष्टि में सृष्टा ने क्यों बैठाई और सारे झंझटों और झगड़ों का मूल खड़ा करके कौन सा सौकर्य उसने प्रदान किया, तरुणाई के इस प्रश्न ने बहुत काल तक मुझे क्षुब्ध कर रखा था। मैं जब घर में आकर देखता हूँ कि मेरे पास एक दर्जन जूते हैं और सब एक दूसरे से भिन्न हैं। मेरी कमीज़ों और कुरतों के कपड़े भिन्न हो नहीं है उनका आकार और प्रकार भी भिन्न है। मेरे बच्चे चाहते हैं कि जितने कपड़े हों उतने ढंग के हों कोई एक-दूसरे से न मिले। मेरी पत्नी भी एक ही प्रकार की साड़ी पसन्द नहीं करती। अनेकता ने सब पर ही अधिकार जमा रखा है और वैभिन्य सौंदर्य का ही दूसरा नाम है। दूसरी ओर जब मैं काला कोट पहनता हूँ तो काला पायजामा काली टोपी और काले जूतों का जोड़ा अच्छा लगता है। जिस रंग की साड़ी पत्नी पहनती है उसी रंग का ब्लाउज़ और दूसरे परिधान यहाँ तक कि मनोवेग का रंग भी वैसा ही होना चाहिए। यह साम्य की विवशता है। वैषम्य और साम्य की इस खेंचा-तानी में मानव रस लेता है और रमण करता है। वैषम्य उसका श्रृंगार और विहार है। साम्य उसका सौंदर्य और स्वभाव है। यही तो ईश्वर ने किया और कर रहा है, फिर हम उसे कोसें क्यों ?

यदि संसार में वैषम्य न होता तो साम्य की साधना और प्रेरणा का यत्न भी न होता। अतएव यत्न ही तो संसार है और यही जीवन है। इसकी अनुपस्थिति में एक प्रकार की सृष्टि सूखे ठूँठ से अधिक सरस और सुन्दर न दिखाई देती। वह रस विहीन होने के कारण प्राण हीन, गति हीन और चेष्टा हीन होती। उसमें 'अकल' होने के कारण कला को स्थान न रहता।

निष्कर्ष यह निकला कि वैषम्य का विस्तार ही संसार है और जीवन है। समत्व की ओर इस वैषम्य को गति ही निसर्ग की नियोजना, जीवन का लक्ष्य, मुक्ति की साधना तथा आत्मसाक्षात्कार अथवा ब्रह्म साक्षात्कार की परिपाटी है। अपने एक दर्जन जूतों के पीछे एक ही रूप; वह है उनका चमड़ा यह पहचानने का अभ्यास जूतों के

बाहरी अनेकत्व के शृंगार की यथातथ्यता स्पष्ट कर देता है। यही बात नाना प्रकार के कमीजों, कुरतों, धोतियों, पायजामों और कोटों के पीछे लहलहाते हुए कपास के पौधों को पिस कर धागों के तानों-बानों में विस्तार का स्वरूप ज्ञान वस्त्रों के अनेकत्व और नानात्व की एकरूपता स्पष्ट कर देती है।

अनेकत्व की ओर बढ़ना संसार में रमण करना है और एकत्व की ओर मुड़ना अपने में रस लेना है। वैभिन्य में उलझना जीवन को विस्तार देना है और अनुभूतियों का कोष बढ़ाना है। अपने में खिंच कर अनेकता को छोड़ना जीवन को पवित्र बनाना है और संतत्व की साधना करना है। नानात्व और अनेकत्व का अनुराग-विराग, खंड की उपासना और ससीम की आराधना है। नानात्व और अनेकत्व का लय और उसकी उपेक्षा अखंड की स्थापना और निस्सीम की प्रतिष्ठा है।

ऊपर के ऊहापोह से जीवन का लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। इस लक्ष्य की ओर बढ़ाव का ही दूसरा नाम यत्न है। इस यत्न में जिस प्रकार का भी योग दिया जाए वह पुण्य है और उसके प्रतिकूल व्यवहार पाप है। प्रकृति समत्व विधायक कार्य स्वतः करती रहती है। इसका संकेत ऊपर किया गया है। एक छोटा-सा बीज पृथ्वी से कितनी रेत उधार लेकर उसे अपने में मिला लेता है और इतना बड़ा मोटा वृक्ष बन कर तैयार हो जाता है। यह समत्व और एकत्व का प्रयास-विकास का पहला सोपान है। साथ ही साथ वृक्षों की पत्तियों को खा-खाकर, उनके हरेपन को अपने मांस, मज्जा और रक्त में इस प्रकार पशु सृष्टि घुला-मिला लेती है कि वनस्पति संसार का कहीं पता भी पशु शरीर में नहीं मिलता और ठीक उसी प्रकार मानव शरीर पशु-मांस अथवा शश्य श्यामल अन्न से पोषित होकर आत्मसात की एकत्व वाली क्रिया सम्पादित करता है।

पर यह सब तो ठीक है। मानव में एकत्व और अद्वीयत्व की ओर मुड़ने वाली बलवती वृत्ति किस प्रकार उदय हो? वह साक्षात्कार कैसे हो जिसके सहारे वह एकत्व की उस पृष्ठ भूमि को देख सके जिसमें अनेकत्व और नानात्व सजे हैं। तभी तो सारी गणना इकाई में समा सकेगी और सारा अंकगणित शून्य में प्रवेश कर सकेगा।

मानव तो अनेक से ही हमेशा भेंट करने का अभ्यासी है और यही उसका जीवन है। यही उसकी प्रवृत्ति का यत्न है। अब उसे विराट के महान विग्रह की कल्पना करना है जिसमें अनेकत्व और नानात्व के रूप व्यापार उचित रूप से सज सकें। मानव के हाथ-मुँह सभी हैं। उसके सारे अवयव काम करते हैं। पर सब की परिचालना के पीछे एक शक्ति रहती है। इस शक्ति को जितना ही व्यक्ति साकार कर सके वह सारे अवयवों की जड़ता भी साकार कर सकेगा। अपने ज्ञान विस्तार को ऊँचे उठाते-उठाते उसे केवल यही शक्ति दिखाई देगी और सारे अवयवों की अनेकरूपता ओझल हो जाएगी। विराट को कल्पना जगत में निस्सीम शक्ति पुंज के रूप में जो प्राणी अभ्यास द्वारा स्पष्ट ही नहीं, साकार कर सकता है वह एकत्व में अनेकत्व का पूर्ण लय भी कर सकता है। पर कल्पना जगत ठोस में घूमने-फिरने वालों को वास्तविक और असत्य लगता है और अनेकत्व और नानात्व का गोचर ज्ञान वास्तविक और सत्य प्रतीत होता है। अतएव पहले गोचरत्व के स्थूल भ्रमण की यथातथ्यता को समझने का प्रयास करना चाहिए। स्थूलत्व और ठोसत्व में परिवर्तन की पोल छिपी है जिसे सीमित गोचर ज्ञान जान नहीं पाता। इसे बुद्धिगम्य करना है। यह रहस्य समझ में आ जाने के बाद अपनी पूरी सजावट के साथ निस्सीम विराट का विग्रह कल्पना को दीखने लगेगा और स्थूल गोचर ज्ञान विलीन हो जाएगा। अभ्यासी को पहले तो अवास्तविक को वास्तविक और वास्तविक को अवास्तविक सत्य समझने का अभ्यास करना है। यही यत्न की सात्विक रूप रेखा है।

●

ज्ञान गंगा—

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

भगवान तथागत ने कहा, "हे ब्राह्मण भारद्वाज यदि तू ठीक विचार करेगा तो तुझे मालूम होगा कि जिस प्रकार तू खेती करता है, बढ़िया बीज बोता है, ज़मीन की सम्हाल रखता है, रात-दिन उसकी रखवाली करता है, और उसमें से उत्पन्न अनाज सबों को पोषण के लिए देकर तू अपना पोषण प्राप्त करता है, इसी प्रकार मैं भी सद्-विचार के बीज समाज रूपी ज़मीन में बोता हूँ, इससे समाज का लाभ होगा। अब तू ही बता कि तेरी और मेरी खेती में क्या फ़र्क है? इसी लिए मैं अपना पोषण समाज से प्राप्त करता हूँ। हाँ, यदि मैं दुराचारी होऊँ, समाज को झूठा मार्ग बताने वाला होऊँ तो मुझे समाज से पोषण प्राप्तकरने का कोई अधिकार नहीं है। परन्तु मेरी और तेरी, दोनों की खेती एक समान है। अतः मैं भिक्षा माँगता हूँ।"

हमारे यहाँ भी सारे समाज के स्तर पर गाँवों की पुनर्रचना करने का समय अब आ पहुँचा है।

सब खेती करें, यदि सबों के काम निराले हों, परन्तु सभी दिल लगा कर मेहनत करें, परिश्रम करें और रोटी प्राप्त करें।

बीज बोने वाले और फ़सल काटने वाले अलग नहीं हैं। यह समझकर सभी लोग दिल लगा कर श्रम करें। इस प्रकार श्रम द्वारा समाज की सूरत पलटी जा सकती है।

अनुवादक : श्री वासुदेव व्यास

●

पिञ्जर-मुक्ति

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

(१)
'राधा कृष्ण' न बोले,
और, न 'सीताराम' कहा उनने;
चुग्गा खाकर शुक जी—
'टेंऊँ-टेंऊँ-टिंयाँ' लगे करने ।

(२)
कई युगों से बैठे
बन्दी कीर पींजरे में अपने;
खाते हैं, पीते हैं;
किन्तु न अक्षर एक सीख पाए ।

(३)
रहे असंस्कृत अब तक,
तो क्या छोड़ें आशा संस्कृति की ?
ये क्या वह ऊसर हैं—
जिसमें कोई बीज नहीं जमता ?

(४)
सुआराम, क्या यों ही—
बने रहोगे जंगली के जंगली ?
वन्य भाव अब छोड़ो
करो पठित एकाध नाम-अक्षर ।

(५)
व्यर्थ करो मत टें-टें;
और, न अपने पंख फड़फड़ाओ;
पिंजरे की तीली पर
मत रगड़ो अब और चोंच अपनी ।

(६)
पिञ्जर-मुक्ति मिलेगी,—
जब तुम निश्चल, शान्त, सौम्य होकर
लेकर अक्षर-आश्रय,—
अन्तरिक्ष नापोगे नयनों से ।

●

पंजाबी कविता

ओ परदेशी !

अमृता प्रीतम

पूरब ने कुछ खोज लिया
कौन से आकाश फरोल कर
जैसे कि हाथ के कटोरे में
घोल दिया हो केसर !

हम कातने बैठीं
तार बारीक और कोमल निकले
अनेक तारों से अनेक गुच्छियाँ बन गईं
रेशम सी महीन सुन्दर !

फिर चाँदनी से लिपी-पुती रात
जहाँ बिखरी सात प्रकार की सुगन्धियाँ
अम्बर की फसलें पक गईं
लगा दीं सितारों ने जिनकी बोलियाँ !

जिन्दगी को किसने अर्पण किया है
चारों कलियों से खोलकर
बादलों ने आँखें भर लीं हैं
हवाओं ने झोलियाँ !

पंछी परों को है तोल रहा
टहनियाँ हिल गईं
ले दे, बिकते पंखों को
या हमारे पास ही रहने लग जा
ओ परदेशी !

अनुवादक—अजीत मधुकर

●

नई कविता : उपलब्धि और भ्रांतियाँ

नेमिचन्द्र जैन

पिछले कुछेक वर्षों में हिन्दी साहित्य के जिस कला-रूप ने लेखकों, पाठकों और समालोचकों का ध्यान सबसे अधिक आकृष्ट किया है वह निस्संदेह कविता ही है, इससे शायद बहुत कम लोगों को इंकार होगा। इस बीच न केवल अनगिनती छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे कविता संग्रह तथा संकलन प्रकाशित हुए हैं बल्कि पिछले दिनों सभी पत्र-पत्रिकाओं ने कविता-विशेषांक निकाले हैं—'धर्मयुग' तक इस छूत से बच नहीं पाया है। और उन अनगिनती लेखों का तो उल्लेख ही क्या किया जाए जो हर पत्रिका में नई कविता के बारे में निकलते रहे हैं। शायद ही कोई ऐसा लेखक हो जिसने नई कविता के भूत, भविष्यत् और वर्तमान में से किसी न किसी पर, अथवा सभी पर, उसकी वंशावली से लगाकर उसके संभाव्य-असंभाव्य गुण-दोषों तक पर कुछ न कुछ न लिखा हो। यहाँ तक कि लगभग प्रत्येक रेडियो केन्द्र से किसी न किसी रूप में नई कविता पर वार्ता-मालाएँ अथवा परिसम्वाद प्रसारित किए गए हैं। शायद छायावादी कविता के प्रारम्भिक युग के बाद से कविता को इतना अधिक महत्त्व कभी नहीं मिला। अब कविता पत्र-पत्रिकाओं में दो लेखों अथवा कहानियों के बीच के खाली स्थान को भरने के लिए, अथवा 'टेलपीस' की भाँति, नहीं छापी जाती। कविता का समकालीन साहित्य में एक सर्वथा आत्यंतिक स्थान है यह बात घटिया से घटिया पत्र के सम्पादक के निकट भी उजागर हो चुकी है।

साहित्यिक माध्यम के रूप में आज कविता की प्रमुखता का कारण शायद यही है कि सामान्यतः हर युग में अभिव्यक्ति का कोई विशेष रूप ही युग की आत्मा को वाणी देने में सफल होता है और वह एक विशेष स्तर पर कलाकार के व्यक्तित्व और बाह्य परिवेश के बीच तथा कलाकृति और पाठक के बीच नवीनतम रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर पाता है। इस अर्थ में उस कला-रूप की यह प्रधानता उसकी विशेष सार्थकता तथा सक्षमता की सूचक तो होती ही है, साथ ही यह इस सत्य की ओर भी संकेत करती है कि उस कला-रूप में उस युग के समस्त कलागत और अभिव्यक्तिगत संघर्ष और अन्तर्विरोध भी पुंजीभूत तथा केन्द्रित हैं।

आज की नई हिन्दी कविता को लेकर होने वाली अन्तहीन ऊहापोह, विचारों, मूल्यों और मानदण्डों की टकराहट इस काव्य की इसी प्रधानता को प्रकट करती है। इस कविता की विषयवस्तु और उसका रूप आपको रुचिकर लगे अथवा न लगे, उसकी अन्तर्भूत स्थापनाओं और मान्यताओं को आप स्वीकार करें अथवा न करें, किन्तु उस पर विचार करने को, उसके सम्बन्ध में मतामत प्रकट करने को आप बाध्य हैं। और यही नहीं, उससे असहमत होकर भी उसके प्रवाह और प्रभाव को रोक सकने में आप असमर्थ हैं। वह ऐसी वेगवती धारा की भाँति है जिसके बाँध बनाने की योजनाएँ तो बनाई जा सकती हैं पर जिसके अस्तित्व और अपार सम्भावनाओं को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

हिन्दी कविता के नए रूप के विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है कि वह कोई बलपूर्वक ऊपर से थोपी हुई स्थिति अथवा कुछ सिरफिरे अथवा परम प्रतिभाशाली कवियों की सनक या सूझ नहीं है। वह न केवल हमारे देश तथा युग की सांस्कृतिक-आध्यात्मिक उथल-पुथल की तथा उसके साथ संवेदनशील जागरूक व्यक्ति-चेतना के सम्बन्ध की ऐतिहासिक उपज है, बल्कि वह पिछली तीन दशाब्दियों के हिन्दी काव्य का सर्वथा स्वाभाविक तथा सहज विकास और परिणति है। वह हिन्दी की गतिमान काव्य परम्पराओं के साथ नई पीढ़ी के मानस की अनिवार्य समन्विति की अभिव्यक्ति है, जो छायावादी कविता से सर्वथा भिन्न लगने पर भी उससे अनगिनती सूक्ष्म भावसूत्रों के द्वारा जुड़ी हुई और अविच्छिन्न है। उसकी अनिवार्यता लगभग वैसी ही अनिवार्यता है जैसी, उदाहरण के लिए, हमारी मौजूदा लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था की है। यह सम्भव है कि बहुत सी परिस्थितियाँ जैसी थीं वैसी न हुई होतीं तो हमारे देश की शासन व्यवस्था का स्वरूप बहुत कुछ आज से भिन्न होता। किन्तु इस सम्भावना से वर्तमान यथार्थ की अनिवार्यता और वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं आता। यही कारण है कि वर्त्तमान हिन्दी कविता को आधुनिक विदेशी कविता के अनुकरण अथवा नकल के रूप में देखना कमोबेश उतना ही सार्थक अथवा हास्यास्पद है जितना पंत की कविताओं को शेली की, निराला को रवीन्द्रनाथ की अथवा बच्चन को उमर खैय्याम की अनुकृति मानना होगा। प्रत्येक युग ही अपनी सम्भावनाओं और सक्षमताओं के अनुरूप तथा अनुकूल बाह्य प्रभावों को ग्रहण और आत्मसात् करता है और इस प्रकार उसे नई आध्यात्मिक व्यापकता और सार्थकता प्राप्त होती है। इसीलिए आज की कविता को विदेशी विचारधाराओं, काव्य परम्पराओं अथवा भावदशाओं से प्रेरित मानना बौद्धिक अवयस्कता का सूचक है। किसी ज़माने में पंत, प्रसाद, निराला के काव्य को भी इसी प्रकार विदेशी कह कर उसकी विशिष्टता को कम करने का प्रयत्न हुआ था जो स्वभावतः ही सर्वथा असफल और निरर्थक ही सिद्ध हुआ। किसी हद तक हमारे कुछेक विचारकों और आलोचकों के ऊपर 'स्वदेशी' के राजनीतिक नारे का इतना गहरा असर है कि वे उसे विचार और भावसम्पदा के क्षेत्र में भी घसीट लाते हैं, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सम्पर्क के इस युग में राजनीति भी अपनी यह संकुचित मनोवृत्ति छोड़ने को बाध्य हो रही है।

जो भी हो, आज की कविता की उपलब्धि और उसकी मौलिक विलक्षणता तथा सक्षमता के साथ-साथ उसकी आत्यन्तिक दुर्बलताओं और

भ्रांतियों का विवेचन करने के लिए इस तथ्य को उसकी सम्पूर्णता में स्वीकार करना बहुत ही आवश्यक है कि नई कविता हिन्दी की सहज और उन्मुक्त-प्रवाही काव्यधारा का ही एक कालखण्ड है। उसकी परख अथवा उसके माध्यम से रस और आनन्द की तथा जीवन की वृहत्तर और गहनतर चेतना की उपलब्धि ऐसे पूर्वाग्रह के साथ तो हो ही नहीं सकती मानो वह कोई अचानक ही कहीं से खरीदी हुई नए से नए 'मॉडल' की और विशेष 'मेक' की मोटरगाड़ी हो जिसे इच्छानुसार बदला जा सकता है, जिसके रूप-रंग और गुण-अवगुणों की चर्चा सर्वथा निरपेक्ष तटस्थ भाव से की जा सकती है, जिसका होना न होना हमारी अपनी इच्छा पर निर्भर है।

वैसे किसी भी साहित्यिक अथवा कलात्मक प्रवृत्ति अथवा युग के विषय में यह बात बहुत ही प्राथमिक और सहज है। पर नई कविता के विषय में इस बात पर बहुत कुछ ज़ोर देना इसलिए आज अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि आज की बहुत सी चर्चा में नई कविता को कुछ इसी प्रकार की नए 'मॉडल' और 'मेक' की मोटरगाड़ी की भाँति ही ग्रहण किया जाता है। जिन लोगों को वह 'मॉडल' सुलभ और प्राप्त अथवा प्रिय है वे न केवल उसके रूप-रंग और खूबियों को आसमान पर चढ़ा कर देखते हैं बल्कि अपने से भिन्न सभी 'मेक' और 'मॉडल' उन्हें निकृष्ट और पुराने और सड़ियल लगते हैं। और जो लोग पुराने 'मॉडलों' के अभ्यस्त हैं अथवा जिनके पास इस विशेष 'मेक' का नया 'मॉडल' नहीं है वे नए को कुछ भी मानना ही नहीं चाहते। कुछ लोग नई कविता को "कालिदास और तुलसीदास से क्रमशः दो हज़ार और चार सौ वर्ष आगे के मानव की सांस्कृतिक थाती" मानते हैं जो "विज्ञान और दर्शन जहाँ समाप्त होता है, वहाँ का चिन्मय, घनीभूत, क्षण-चित्रात्मक, प्रामाणिक, समग्र अन्तरदर्शन है" तो दूसरे लोग कहते हैं कि "आधुनिक कविता युग की क्रिया का ही प्रतिनिधित्व करती है, वह सर्वदेशीय और सर्वकालीन सत्य से बहुत दूर है.........और इस युग के साथ ही जिसे नई कविता कहा जा रहा है वह नष्ट हो जाएगी।" यदि एक के लिए नई कविता शताब्दियों बाद अचानक ही प्राप्त पारसमणि है तो दूसरे के लिए वह मानसिक विकार की अवस्था में सड़क से उठाया हुआ काँच का टुकड़ा, जिससे हाथ कट जाने की ही अधिक आशंका है। दोनों के आगे ही नई कविता मूलतः अपने इतिहास से विच्छिन्न जड़ीभूत धारणा मात्र है।

इसी विचित्र दृष्टिकोण के कारण अधिकांश नई कविता के समर्थकों अथवा विरोधियों ने—इनमें स्वयं कविगण तथा आलोचक दोनों ही शामिल हैं—'नई कविता' की बड़ी 'गुट्टवादी' और संकीर्ण परिभाषाएँ बना ली हैं। विशेषकर समर्थकों ने तो धीरे-धीरे 'नई कविता' का वैसा ही आभिजात्यपूर्ण, ढला हुआ, पक्का साँचा बना लिया है जैसा किसी ज़माने में प्रगतिवादियों ने प्रगतिशील कविता का बना रक्खा था। इस समय 'नई कविता' का लेखक स्वीकृत होने के लिए 'सप्तकों' में संग्रहीत होने या हो सकने के उम्मीदवारों में गिना जाना बहुत आवश्यक हो गया है। नए कवियों में इस बात की होड़ है, और उनके बीच इस बात को लेकर पर्याप्त उथल-पुथल है कि तीसरे, चौथे अथवा पाँचवें 'सप्तक' में कौन शामिल किया जाता है। क्योंकि उसके बिना उचित रूप में और सही कोटि का नया कवि नहीं बना जा सकता, कम से कम उस रूप में मान्यता तो मिल ही नहीं सकती। और जो 'सप्तकों' में शामिल हैं वे स्वभावतः ही जो शामिल नहीं हैं उन्हें कम 'नया' कवि मानते हैं। जो ठीक उन्हीं की तरह नहीं लिखते अथवा नहीं लिखना चाहते अथवा जिनके संस्कार, शिक्षा अथवा अनुभवों का रूप और विषय-वस्तु कुछ अलग प्रकार की है वे या तो नए कवि माने ही नहीं जाते या बहुत कम माने जाते हैं।

ऐसी अवस्था में इस नई कविता की पहचान और कसौटी धीरे-धीरे रूपगत अधिक होती जा रही है। इस कसौटी के अनुसार अनावश्यक रूप से गद्यात्मक और लगभग लयहीन लम्बी-लम्बी पंक्तियों में लिखी कविताएँ स्पष्ट ही अधिक 'नई' लगती हैं, साधारण छंदबद्ध रचना अथवा कोई सीधा सहज 'गीत' नई कविता नहीं लगता। किन्तु किसी भी युग का जीवन्त काव्य-सृजन ऐसी संकीर्णताओं और बहिष्कारवादी एकान्त कसौटी या कसौटियों को लेकर दूर तक नहीं चल सकता। क्योंकि ऐसी संकीर्णता बाह्य स्थिति को चाहे बदले या न बदले किन्तु अपने पोषकों को वह अनिवार्य रूप से निष्प्राण और उनकी कलादृष्टि को बंध्या बनाती है और धीरे-धीरे उन्हें एक अंधी गली में ढकेलती जाती है। प्रगतिशील आन्दोलन की यह परिणति हमने अपनी आँखों देखी है और उनकी प्रवृत्ति के नए उत्तराधिकारी भी, जो चाहे प्रगतिवाद के उच्चस्वरी घोषित विरोधी और विपक्षी ही हों, काव्य को उसी दलदल में घसीटेंगे इसमें संदेह नहीं।

पर जिस प्रकार छायावादी काव्य की लगभग शिशु-सुलभ आत्म-निष्ठता के बाद साहित्य में बाह्यनिष्ठता तथा सामाजिक चेतना की प्रतिष्ठा एक अनिवार्य परिणति थी और वह, प्रगतिशील आन्दोलन की संकीर्णता के बावजूद, आज की साहित्य परम्परा का एक अविच्छिन्न अंग बन गई है, उसी प्रकार 'नएपन' की सारी हठग्राहिता के बावजूद आज की कविता का एक अपना ऐसा अलग स्वर और रूप है जो उसे विशिष्टता प्रदान करता है और पिछले सारे काव्य की परिणति होते हुए भी उसे मौलिक रूप में नवीन बना देता है।

यह नवीनता अथवा विशिष्टता है काव्य में व्यक्ति-मानव की, अपने परिवेश के साथ असंख्य भावसूत्रों से जुड़े हुए और अपने अन्तर की अतल गहराइयों में झाँकते हुए आत्मसजग व्यक्तित्व की, अपनी सम्पूर्ण सामाजिकता तथा व्यक्तिमत्ता में, अनेक स्तरों पर नानाविध रूपों में प्रतिष्ठा। मानव व्यक्तित्व की सामाजिकता तथा आत्मसजगता की यह बहुरूपी स्वीकृति ही हिन्दी के वर्तमान काव्य की नवीनता है और यही कारण है कि यह नवीनता किसी नए आकस्मिक रूपगत अथवा विषयगत तत्व के प्रचलित हो जाने में नहीं है, बल्कि समूचे पिछले हिन्दी काव्य की परिणति के रूप में है। इसलिए नई कविता की संज्ञा केवल किसी नवीन छन्द, लय, शब्द तथा भाव विन्यास वाली कविता का एकाधिकार नहीं है, वह इस युग की समूची सार्थक और सक्षम काव्य रचना को प्राप्त होनी चाहिए, वह चाहे किसी छंद में और किसी दल के कवि की लिखी हुई क्यों न हो। अनुभूति की विविधता तथा विस्तार

और उसकी स्वीकृति ही आज की हिन्दी कविता की विशेषता और उसका नयापन है, यह बात दीक्षाधारी प्रगतिवादियों, 'प्रयोगवादियों' अथवा नवीनतावादियों को छोड़ कर बाकी अधिकांश रसज्ञ पाठकों और स्वयं कवियों को मान्य होगी। इस कविता में न कोई अनुभूति वर्जित है और न कोई जीवन दर्शन बहिष्कृत। वह न निराश प्रेम के गीतों तक सीमित है, न यौन-वर्जनाओं के प्रतीक-चित्रों तक, न क्रांति की हुंकार अथवा सामाजिक परिवर्तन की कल्पना मूलक लालसा तक। यही कारण है कि आज की कविता में यदि विचार-विश्लेषण है तो लोक-गीतों जैसे लुभावने प्रकृति के तथा किशोर प्रणय के चित्र भी हैं, तीखी आत्मसजगता और कुंठा है तो व्यंग्य और फक्कड़पन भी हैं, सरल आत्मदर्शन है तो सामाजिक विषमता की चेतना भी है। निस्संदेह इन्हें तथा अन्य अनगिनती भावसत्यों को असंख्य स्तरों पर, तीव्रता और प्रौढ़ता की विभिन्न मात्राओं में पूरी स्वीकृति के साथ झेलने और वाणी देने वाली कविता ही नई कविता है। चेतना का ऐसा विस्तार हिन्दी काव्य के पिछले किसी युग में नहीं आया और जीवन के छोटे से छोटे साधारण अनुभव को इतनी सहजता के साथ पहले कभी व्यक्त नहीं किया गया।

अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति की इस व्यापकता के अतिरिक्त एक और भी तत्व इस कविता में मौजूद है। पिछली दो दशाब्दियों में हिन्दी कविता क्रिया-प्रतिक्रिया के परस्पर विरोधी दो छोरों से निरन्तर टकराती रही थी; सामाजिक यथार्थ तथा वर्ग-संघर्ष अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य और व्यक्तिमन के आंतरिक उलझाव और कशमकश—दोनों एक-दूसरे को काटते से जान पड़ते थे और कोई भी एक सम्पूर्ण नहीं लगता था क्योंकि कोई भी एक सम्पूर्ण था ही नहीं। किन्तु साथ ही हमारे सामाजिक-आध्यात्मिक जीवन की विभिन्न शक्तियाँ जैसे हमें एक साथ ही दोनों ओर खींचती थीं। एक तीखी दुविधा के कारण किसी को हम स्वीकृति नहीं दे पाते थे। इसीलिए उस युग में इस असमंजस और दुविधा का काव्य बहुत लिखा गया। कम से कम एक पीढ़ी के कवि तो निश्चित रूप से इतने संशयग्रसित रहे कि वे बहुत बार इस संशय पर भी संशय करने लगते थे। किन्तु उसी के साथ-साथ धीरे-धीरे एक और ऐसा कवि-वर्ग भी प्रगट होकर और उसी मिट्टी से रस सोख कर पनपता रहा जो अधिक एकाग्रता से अपने अनुभव को देख सकता था। उसने युग की बौद्धिक विशृंखलता और आस्थाहीनता को भी एक सत्य की भाँति स्वीकार कर लिया जिससे भागने का प्रयत्न आवश्यक नहीं था, और जहाँ सम्भव हुआ, जीवन के सरल खुले सौंदर्य को भी सहजता से ग्रहण किया। इसीलिए जीवन के अनुभव के प्रति आज कवि की दृष्टि प्रश्नसूचक तो है, सम्पूर्ण विश्वास अथवा सम्पूर्ण अविश्वास की नहीं। किन्तु साथ ही इस प्रश्नात्मकता में एक सहजता है, वह पिछली तीव्रता और तिक्तता नहीं। इस भाँति जीवन हर स्तर पर और प्रत्येक रूप में काव्य में स्वीकृति पा सका है। इसी के साथ एक बात और भी है। हिन्दी कविता के पिछले युग या तो बड़ी-बड़ी भावनाओं और आदर्शों की परिकल्पना के युग थे या अधिक से अधिक व्यक्तिगत प्रेम और निराशा की अभिव्यक्ति के। आज जीवन के प्रत्येक पक्ष की, प्रत्येक स्तर की, भावना के हलके से हलके उतार-चढ़ाव की काव्य में अभिव्यक्ति है। एक प्रकार से कविता का यह 'जनवादीकरण', ऊँचे सिंहासन से उतार कर उसे गली के मोड़ पर ला खड़ा करना, आज की कविता की नवीनतम विशेषता है।

यह स्पष्ट है कि इस 'जनवादीकरण' ने दो परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं। एक तो आज के कवि की सौन्दर्य-दृष्टि एक दम भिन्न हो गई है। उसका 'सुन्दर' भी आज अधिक व्यापक और विस्तृत है, और वह पिछले युगों के सभी कल्पना लोकों को छोड़ कर नीचे धरती पर उतर आया है। यह स्वाभाविक ही है कि पुराने संस्कारों में पले बहुत से लोगों को यह बड़ा अजीब लगे, उन्हें जान पड़े कि जैसे बहुत से वर्जित प्रदेशों में कविता भटक रही हो, बल्कि लगे जैसे कविता की हत्या ही हो रही हो। किन्तु यह तो लोकतंत्र के युग की अनिवार्य समस्या है कि सामंती संस्कारों को हर नई चीज़ इतनी अपरिचित और त्रास-दायक लगती है। कविता के संबंध में यह संस्कारों की समस्या केवल पुराने लोगों के लिए ही हो ऐसी बात नहीं है। पिछले युगों में हम कविता को किसी न किसी परिभाषा के घेरे में रख कर ही देखते समझते आये हैं—छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद, हृदयवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद इत्यादि। यहाँ तक कि अब तो इन विशेषणों के बिना हमें उसे ग्रहण करने में कठिनाई होने लगी है। 'नई कविता' भी दुर्भाग्यवश कुछ इसी प्रकार का विशेषण बनता जा रहा है और बहुत से लोग इस नएपन की कोई न कोई रूढ़ परिभाषा बनाने में प्रयत्नशील हैं। पर यह आज के युग की व्यापकता और विस्तार की पहली आवश्यकता है कि कोई नई 'वर्ण व्यवस्था' रूप-रंग अथवा दल के आधार पर हम न बनाने लगें। जो कुछ भी यथार्थ है, सच्चा है, ईमानदारी की उपज है और हमारी भावसम्पदा को अधिक समृद्ध बनाता है, वह किसी भी रूप में, किसी भी शिल्प में, किसी भी पीढ़ी के कवि से क्यों न प्राप्त हो, हमारा उत्तराधिकार है और अपना है। इसीलिए सुविधादायक नारों और 'लेबिलों' से मुक्त करके कविता को अपने वास्तविक प्रकृत रूप में प्रतिष्ठा देना आज अत्यन्त ही आवश्यक है।

दूसरे परिधि के इस विस्तार ने कविता को व्यापकता तो दी है पर इसी से उसकी सघनता कम हो गई है। वर्तमान युग संभवतः साधारण तीव्रता वाले अनगिनती विविध अनुभवों का है, बहुत प्रबलता से झकझोर देने वाले एक या दो अनुभवों का नहीं। यही कारण है कि अधिकांश नई कविता उस गहराई अथवा ऊँचाई तक नहीं उठती जिनसे कला को 'क्लासीकल' की कोटि प्राप्त होती है। आज के कवि की अनुभूति में खरी भावना की मद्धिम धीमी उष्णता है, हर वस्तु को पिघला देने वाला प्रचण्ड उत्ताप नहीं। शायद वह अभी कुछ काल तक सम्भव अथवा स्वाभाविक भी नहीं हो। इसीलिए आज जब कुछ कविगण आक्रोश, व्यंग्य अथवा अन्य किसी भी भाव सत्य को तीव्रता के साथ प्रगट करने लगते हैं तो वह मिथ्या और खोखला लगता है, कृत्रिम और निस्सार जान पड़ता है। इधर कुछ नए लेखकों की बहुत सी कविताओं में यह निरर्थक भाव-स्फीति प्रकट होने लगी है, जो चिन्तनीय है। यही थोथा शब्दाडम्बर पहले

प्रगतिवादी काव्य में भी प्रायः दिखाई पड़ता था—अब तो खैर "प्रगतिवादी" कविताएँ लिखी ही कम जाती हैं।

नई कविता की चर्चा में साधारणतः शिल्प को लेकर बहुत-कुछ कहा-सुना जाता है और कई दृष्टियों से आज के काव्य का वह महत्त्वपूर्ण पक्ष है भी क्योंकि भाव-जगत के वर्त्तमान विस्तार के फलस्वरूप अनिवार्यतः काव्यशैली और शिल्प में ऐसे बहुत से तत्व आ गए हैं। जिनसे, आज तक का काव्य रसिक सर्वथा नहीं तो बहुत-कुछ अपरिचित था। प्रत्येक नए काव्ययुग में छंद, लय और अलंकार योजना के बहुत से परिचित विधान अपर्याप्त हो जाते हैं और नए युग की भाववस्तु के अनुकूल नए प्रतीक और उपमान तथा नई व्यंजनाएँ प्रगट होती हैं। आज की कविता में भी यह रूपगत विविधता और नवीनता वर्त्तमान है। किन्तु एक बात स्मरण रखना आवश्यक है कि कला का शिल्प-निरा वैयक्तिक सत्य अथवा तत्व नहीं है। भावसत्य की अपेक्षा वह कहीं अधिक स्थायी और परम्परावलम्बी है। पिछले युगों का शिल्प विकास आज के युग का उत्तराधिकार बनता है और समर्थ कलाकार उसे आत्मसात करके, उस पर अधिकार प्राप्त करके ही उसे आगे विकसित करता है तथा उसे नवीन भावसत्य की अभिव्यक्ति के अनुकूल बनाता है। जिस मिट्टी को गूँध कर नया शिल्प गढ़ा जाता है वह पुरानी परम्पराओं से ही प्राप्त होती है। उनकी अवहेलना करके, उन्हें तिरस्कृत करके अथवा उनसे विच्छिन्न होकर नए शिल्प की चर्चा, चाहे वह कितनी ही ज़ोर से भावसत्य की नवीनता की दुहाई क्यों न दे, केवल सुविधावादी संस्कारहीनता को प्रश्रय देना है। इसी लिए आज शिल्प का प्रश्न और भी महत्त्वपूर्ण है, और उसका अलग से और विस्तार से विश्लेषण और विवेचन अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु मूल प्रश्न नए कवि की दृष्टि और उसके भाव-जगत के अंगरूप विभिन्न तत्वों को सही पार्श्व-भूमि में रखकर देखने का है। क्योंकि यह भाव और अनुभूतिगत नवीनता अथवा विलक्षणता ही उसे ऐसी सार्थकता देती है जिसके कारण आज का हिन्दी काव्य पिछली समूची काव्य-परम्परा के विकास का उत्तराधिकारी बन सका है। साथ ही यह विलक्षणता ही उस शिल्पगत नवीनता को भी विचारणीय बनाती है जिसको दुर्भाग्यवश बहुत से 'नए' कवियों ने साधन से अधिक साध्य इसी कारण मान लिया है क्योंकि उन्हें अपनी ही भावगत विशिष्टता की पर्याप्त चेतना प्रायः नहीं होती। इस बात से शायद इंकार करना कठिन है कि शिल्प और रूप की चर्चा आज इतनी अधिक—लगभग असंतुलित रूप में अधिक—होने पर भी जितनी शिल्पगत शिथिलता आज के काव्य में है उतनी पहले कभी नहीं रही। आज गद्य लिखना कठिन है, कविता के लिए तो कुछेक लोग भाषा, शैली अथवा रूपगत कोई नियम ही आवश्यक नहीं मानते। बिम्ब और प्रतीक योजना में इतनी अराजकता और संस्कारहीनता दिखाई पड़ती है कि यदि यह काव्य विषय-वस्तु की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण न होता तो बहुत-कुछ कूड़ा-कचरा माना जाता।

भाषा के क्षेत्र में इस प्रवृत्ति की और भी तीव्र तथा घातक अभिव्यक्ति हुई है। एक ओर जहाँ नए-नए शब्द अथवा परिचित शब्दों की नई नई व्यंजनाएँ नई कविता ने हिन्दी को दी हैं, वहीं दूसरी ओर कभी-कभी इतनी अशिक्षा, असंयम और अनुशासनहीनता दीखती है कि अचरज होता है। कवि के साधनों में भाषा एक ऐसा तत्व है जो सबसे अधिक सामाजिक और व्यक्ति-निरपेक्ष है। भाषा किसी एक व्यक्ति के द्वारा, किसी एक साहित्यिक प्रवृत्ति के द्वारा अथवा किसी एक युग के द्वारा नहीं बदल जाती। उसके संस्कार और विकास के लिए लम्बे समय की आवश्यकता होती है। प्रतिभावान साहित्यकार भी भाषा के मूल स्वरूप और प्रकृति को समझ कर और उसकी सीमाओं और सम्भावनाओं को समन्वित कर सकने पर ही उसके संस्कार में योग दे पाता है। और यदि किसी कारण से वह यह समन्विति प्राप्त करने में सफल न हो सके तो उसके प्रयत्न स्वीकृत नहीं होते। अधिक-से-अधिक उन्हें विशिष्ट कवि की शैली का चमत्कार मान लिया जाता है। कम-से-कम भाषा के रूप पर उनका कोई सर्वमान्य प्रभाव नहीं पड़ता। यही कारण है कि पंत ने 'पल्लव' में जिन भाषागत नवीनताओं का इतने ज़ोर-शोर से समर्थन किया था वे हिन्दी में स्वीकृत न हो सकीं, और समूचे छायावादी काव्य का हिन्दी भाषा के रूप, शब्द-विन्यास तथा उसकी रचना पर यथेष्ट प्रभाव होने पर भी, कवियों के व्यक्तिगत रुचि-वैचित्र्य से सम्बन्धित नवीनताएँ स्वीकार नहीं की गईं। आज की कविता में बड़ी भारी भाषा संबंधी अराजकता का कारण यही है कि अनुभूति की वैयक्तिकता से भ्रमवश कवियों ने यह निष्कर्ष भी जाने अन-जाने निकाल लिया है कि भाषा भी व्यक्तिगत और स्वच्छंद हो सकती है। शायद इसी से आज बहुत से कवि अपनी निजी भाषा बना डालने के फेर में हैं। 'नकेन' पंथियों के अतिवाद को छोड़ भी दें, तो शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि की कविताओं में भाषा के साधारण नियमों तक के प्रति उदासीनता अथवा अवहेलना पाई जाती है। प्रभाकर माचवे की कविताओं में कथ्य की नवीनता और सार्थकता होने पर भी भाषा की शिथिलता तथा उखड़ेपन के कारण वे मन को छूती नहीं। उन में चमत्कार भले ही हो, सहजता और अनिवार्यता नहीं है। इस दृष्टि से पुराने गीतकारों अथवा अन्य कवियों की भाषा के पिटी-पिटाई होने के कारण यदि उसके देवता कूच कर गए हैं तो बहुत से नए कवियों की भाषा में तो किसी देवता की प्रतिष्ठा की क्षमता ही नहीं है। वह जन्म से ही लगभग निष्प्राण और निरी शब्द-देह मात्र है। यह स्थिति अन्ततः काव्य की आत्मा के लिए ही घातक है। इसमें कोई संदेह नहीं और यह निर्विवाद है कि शिल्प और भाषा की इस कृत्रिम नवीनता के मोह से नए कवि को मुक्ति पानी ही होगी।

वास्तव में नई कविता के सबसे बड़े अ-मित्र उसके कुछ ऐसे ध्वजवाही समर्थक ही हैं जो नई कविता को एक स्कूल, एक गुट, एक दीक्षा सुलभ अभिजात कुलीनता पर आधारित ऐसा गुह्य समाज बनाना चाहते हैं जिसके यज्ञ के ऋत्विज वे स्वयं बन सकें। ये कवि अथवा आलोचक-समर्थक इसी से ऐसे नए-नए मंत्रों की रचना और उनकी दीक्षा में संलग्न हैं जो अपने नएपन के कारण ही मान्य हो सकें। इसी से वे साहित्य में भ्रष्टाचार के विरोध के नाम पर फिर से प्रगतिवादियों की

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

हिन्दी और उर्दू में समन्वय-भावना

हरिशंकर शर्मा

श० उ० प्रो० मुहम्मद हुसैन आज़ाद १८३१ ई० में पैदा हुए और १९१० ई० में चल बसे। ये उर्दू-फ़ारसी और अरबी के प्रकाण्ड पण्डित और साहित्यकार थे। सबसे पहले— ग़दर से पूर्व— इन्होंने ही देहली से 'उर्दू' नामक अख़बार निकाला। ये अपने 'आबे हयात' ग्रन्थ में लिखते हैं—'ज़बाने उर्दू की तारीख़' शीर्षक के नीचे :

"इतनी बात हर शख्स जानता है कि हमारी उर्दू ज़बान ब्रज भाषा से निकली है, और ब्रजभाषा खास हिन्दुस्तानी ज़बान है। इसकी उम्र आठ सौ बरस से ज्यादा नहीं है और ब्रज का सब्ज़ाज़ार इसका वतन है।"

उर्दू-फ़ारसी के बड़े-बड़े विद्वानों और इतिहासकारों का स्पष्ट मत है कि उर्दू का जन्म 'ब्रज भाषा' से हुआ; वह स्वतन्त्र भाषा न होकर हिन्दी की ही एक शैली है। स्वतन्त्र भाषा के लिए शब्द-कोष व्याकरण और छन्द-शास्त्र का होना आवश्यक है, सो उर्दू का न कोई शब्द है, न व्याकरण और न छन्द। उसने सारे शब्द फ़ारसी, अरबी, तुर्की, हिन्दी और अंग्रेज़ी आदि से लिये हैं। उर्दू और हिन्दी के व्याकरण में किसी प्रकार भेद नहीं। दोनों एक हैं। जब उर्दू-हिन्दी की एक शैली है तो उसका व्याकरण भिन्न कैसे हो सकता है। रहे छन्द, ये भी उर्दू में हिन्दी से ही ज्यों के त्यों गए हैं। यह बात अच्छी तरह देख ली गई है कि उर्दू में जो छन्द व्यवहृत होते हैं, वे हिन्दी के ही छन्द हैं। बाल बराबर भी अन्तर नहीं है। केवल पढ़ने का ढंग दूसरा हो गया है। यदि 'तकती' (प्रस्तार) किया जाए तो उर्दू-बहर हिन्दी छन्दों के अनुसार ही सिद्ध होंगे। यह विषय एक पृथक् निबन्ध द्वारा ही भली प्रकार समझ में आ सकता है। ऐसा निबन्ध लिखा जा चुका है, और उसकी बातों को उर्दू साहित्यकारों ने सहर्ष स्वीकार किया है।

व्याकरण की दृष्टि से उर्दू के दो-तीन वाक्य देखिए 'मैं मुल्क को आज़ाद करूँगा'; 'आपके हाज़िर होने की कोई ज़रूरत नहीं है'; 'आप तेल का इस्तेमाल क्यों नहीं करते।' इन्हीं वाक्यों को हम हिन्दी में कहेंगे—मैं देश को स्वतन्त्र करूँगा; आपके उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं है; आप तेल का प्रयोग क्यों नहीं करते। इन वाक्यों में केवल फ़ारसी-अरबी के शब्दों के स्थान पर हिन्दी-संस्कृत के शब्द बदल दिए गए। व्याकरण ज्यों का त्यों रहा। करूँगा, लिखूँगा, पढ़ूँगा, चलूँगा, हँसूँगा, रोऊँगा इत्यादि सब क्रियाएँ हिन्दी की हैं। खाना-पीना, जाना-आना, देना-लेना, मिलना-खिलना, मरना-जीना सब हिन्दी की क्रियाएँ हैं, जो उर्दू में निरन्तर प्रयुक्त होती हैं। शब्द तो उर्दू के हैं ही नहीं। छन्दों की दृष्टि से देखा जाए तो वीर, भुजंग, प्रयात, गीतिका, हरिगीतिका, कवित्त-सवैया, चौपाई, चतुष्पदी (रूबाई) इत्यादि सभी प्रकार के हिन्दी छन्द उर्दू में काम में लाए जा रहे हैं।

उर्दू की उत्पत्ति कैसे हुई? इसका उत्तर यह है कि ब्रजभाषा से बनी हुई 'रेखता' या 'खड़ी बोली' में मुसलमानों के इस देश में आने पर जब फ़ारसी-अरबी और तुर्की शब्दों की बहुलता हुई तो यहाँ की भाषा का रूप बदला। एक संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द-प्रधान भाषा, और दूसरी अरबी-फ़ारमी, तुर्की शब्द प्रधान भाषा। पहली का नाम 'हिन्दी' हुआ और दूसरी का 'उर्दू।' उर्दू का अर्थ है लश्कर, छावनी, फौज़ी पड़ाव। यानी उर्दू वह भाषा है जो लश्कर या छावनी के सिपाहियों की भाषा थी। जब दूसरे देशों का संसर्ग और शासन इस देश पर हुआ तो भाषा में अन्तर पड़ना स्वाभाविक था। अंग्रेज़ी ज़माने में भी हिन्दी, अंग्रेज़ी भाषा से प्रभावित हुए बिना न रही। अंग्रेज़ी के सैकड़ों शब्द हिन्दी में काम लाए जाने लगे। यहाँ तक लोगों ने कहना शुरू किया—

"मैं मदर को रिसीव करने स्टेशन जा रहा हूँ।" "मैं प्लेटफ़ार्म टिकट लेकर स्टेशन पर पड़ी बेंच पर बैठ गया।" "अब तो कण्ट्री को इंडिपेंडेंट करना ही होगा।" "इंजीनियरों की स्कीम प्रैक्टीकेबल नहीं है" इत्यादि। यह भी हिन्दी है। क्रिया तथा कारकों को छोड़ कर सारे शब्द अंग्रेज़ी के हैं। जिस प्रकार ऐसी भाषा को 'अंग्रेज़ी' न कह कर हिन्दी ही कहा जाता है, उसी तरह हिन्दी में जब अरबी, फ़ारसी और तुर्की शब्दों की मिलावट हुई तो उसका नाम भी 'हिन्दी' ही रहा, 'उर्दू' उसे कोई न कहता था। इस बात को हम ही नहीं कहते। ओरिएण्टल कान्फ्रेंस लाहौर के अध्यक्ष मौलाना हबीबुल रहमान साहब अपने भाषण में फ़रमाते हैं—

शाहजहाँ के शासन-काल में इस भाषा का नाम उर्दू था, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

और समीप की बात सुनिए। सन् १८०४ ई० में सैयद मुहम्मद हैदरी 'दह मज़लिस' नामक एक पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं—

अब तक फ़ारसी ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी गद्य में नहीं हो पाया।

इतना ही नहीं सन् १८१६ में सर विलियम कैरी नामक अंग्रेज़ विद्वान लिखते हैं—

हिन्दी मुसलमानों की अदालती भाषा है। यह छावनियों में भी बोली जाती है। मुसलमान शासकों की राजधानियों में भी उसका अव्याहत प्रचार तथा व्यवहार है।

२८ जुलाई १८३६ तक उर्दू नहीं, 'हिन्दी' 'कोर्ट लैंग्वेज़' (अदालती ज़बान) मानी गई है, इसके पुष्ट प्रमाण हैं।

उपर्युक्त उद्धरणों का अभिप्राय यह है कि हिन्दी में अरबी-फ़ारसी शब्दों के मिश्रण के पश्चात भी अब से कुछ दिन पूर्व तक उसका नाम हिन्दी ही रहा, उर्दू नहीं हो पाया।

महाकवि मिर्ज़ा ग़ालिब भी उर्दू और हिन्दी को एक ही समझते थे। उनकी राय में हिन्दी का ही दूसरा नाम उर्दू था। और इसीलिए उन्हें उर्दू को हिन्दी कहने में कभी संकोच नहीं हुआ। नीचे उनकी एक चिट्ठी उद्धृत की जाती है, जो उन्होंने अपने शिष्य मुन्शी हरगोपाल तुफ्ता को लिखी थी—

बन्दापरवर,

तुमको पहले यह लिखा जाता है कि मेरे दोस्त क़दीम मीर मुकर्रम हुसेन साहब की ख़िदमत में मेरा पेश सलाम कहना और यह कहना कि अब तक जीता हूँ। और इससे ज्यादा मेरा हाल मुझको भी नहीं मालूम······मेरा हाल अब यह है कि शेर कहने की रविश और अगले कहे हुए अशआर सब भूल गया। मगर हाँ अपने हिन्दी कलाम में से डेढ़ शेर यानी एक मक़ता और एक मिसरा याद रह गया है, सो गाह-गाह, जब दिल उलटने लगता है, तब दस-पाँच बार यह मक़ता ज़बान पर आ जाता है—

ज़िन्दगी अपनी जो इस तौर से गुज़री ग़ालिब—
हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।

फिर जब सख्त घबराता हूँ और तंग आता हूँ तो यह मिसरा पढ़ कर चुप हो जाता हूँ—'ऐ मर्गे नागहाँ तुझे क्या इन्तज़ार है।'

—ग़ालिब

मिर्ज़ा ग़ालिब ने उपर्युक्त पत्र में अपनी कविता को 'हिन्दी कलाम' कहा है, उर्दू नहीं कहा। उन्हें 'उर्दू' शब्द प्रिय होता तो उसे अवश्य इस्तेमाल करते।

उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शम्सुल-उलमा मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' की नीचे लिखी पंक्तियाँ बड़ा प्रांजल प्रकाश डालती हैं। मौलाना लिखते हैं—

उर्दू के ग्रामर का दारोमदार बिल्कुल ब्रज भाषा (हिन्दी) या संस्कृत की ग्रामर पर है। अरबी, फ़ारसी से इसको सिर्फ़ इस कद्र ताल्लुक़ है कि दोनों ज़बानों के इस्मा उसमें कसरत से शामिल हो गए हैं। बाकी तमाम अजज़ा (अंग) जिनके बग़ैर किसी ज़बान की नज़्मों-नस्र मुफ़ीद मानी नहीं हो सकती, ब्रज भाषा (हिन्दी) या संस्कृत की ग्रामर से माखूज़ हैं।

मौलाना हाली के ये शब्द कितने भावपूर्ण हैं। उनमें हिन्दी या संस्कृत की महत्ता कितने अच्छे ढंग से स्वीकार की गई है। वे तो कहते हैं कि उर्दू व्याकरण का सारा दारोमदार हिन्दी या संस्कृत के व्याकरण पर है। और भी वह सारा आधार जिस का होना किसी भाषा के लिए अनिवार्य है, हिन्दी संस्कृत से ही लिया गया है।

हिन्दी और उर्दू का प्रश्न इस देश में क्यों उठ खड़ा हुआ और उसके कारण इन दोनों भाषाओं के समर्थकों के मध्य मतभेद की दीवार कैसे खड़ी हो गई, इस पर उक्त महाकवि हाली की नीचे लिखी पंक्तियाँ पढ़ने लायक हैं। उन्होंने रोग का कैसा उचित और उपयुक्त निदान किया है और कैसी अमोघ औषधि बतलाई है। महाकवि लिखते हैं—

"कौन नहीं जानता कि मुसलमान बावजूदे कि तकरीबन एक हज़ार बरस से हिन्दुस्तान में आबाद हैं, मगर इस तवील मुद्दत में इन्होंने चन्द मुस्तस्नियात को छोड़कर कभी संस्कृत या ब्रज भाषा (हिन्दी) की तरफ बावजूद सख्त जरूरत के आँख उठा कर भी नहीं देखा। जिस संस्कृत को यूरोप के मुहक्क़िक़ लातनी व यूनानी से ज्यादा फसीह, ज्यादा वसीह और ज्यादा बाकायदा बताते हैं, और जिसकी तहकीकात में उम्रें बसर कर देते हैं, मुसलमानों ने आम-तौर पर कभी उसको काबिले इल्तिफात नहीं समझा। अगर यह कहा जाए कि संस्कृत का सीखना कोई आसान काम नहीं है, तो ब्रज भाषा (हिन्दी) तो बमुकाबले संस्कृत के निहायत सहलुलहुसूल (सुलभ) है और उसकी शायरी निहायत लतीफ शिगुफ्ता और फसाहत, बलागत से लबरेज़ है, उसको भी अमूमन बेगानावार नज़रों से देखते रहे हैं। हालाँ कि जो उर्दू इनको इस कदर अज़ीज़ है, उसकी ग्रामर का दारोमदार बिल्कुल ब्रज भाषा (हिन्दी) या संस्कृत की ग्रामर पर है···

"सच तो यह है कि मुसलमानों का हिन्दुस्तान में रहना और संस्कृत या कम-से-कम ब्रज भाषा (हिन्दी) से बेपरवाह या मुतनफ्फिर होना बिल्कुल अपने तई इस मसल का मुसदाक़ बनाना है कि दरिया में रहना मगरमच्छ से बैर।···

"जो शख्स उर्दू का अदीब और मुहक्क़िक़ होना चाहता है उसे संस्कृत या कम-से-कम हिन्दी भाषा का जानना जरूरी है।

"उर्दू लुगात में हिन्दी के वे अलफाज़ जो आम बोलचाल में आते हैं या जो हमारी जबान में खप सकते हैं बिला तकल्लुफ कसरत से दाखिल करने चाहिए। खुद अपनी नज़्मोनस्र में वे हिन्दी अलफाज़ ऐसी खूबसूरती से लिखे जाते थे कि यह मालूम होता था कि गोया इसी मौके के लिए वज़अ हुए हैं। उन्होंने बहुत से ऐसे हिन्दी अलफ़ाज़ उर्दू अदब में दाखिल किए जो हमारी नज़र से ओझल थे और जिन्हें किसी उर्दू वाले ने इस्तेमाल न किया था। उर्दू पर कुदरत हासिल करने के लिए यह भी जरूरी है कि हिन्दी में फिल जुमला दस्तगार बहम पहुँचाई जाए। उर्दू की बुनियाद जैसा कि मालूम है, हिन्दी भाषा पर रखी गई है। इसके तमाम अफआल और तमाम हरूफ और गालिब हिस्सा इसका हिन्दी से माखूज़ हैं।······उर्दू ज़बान का शायर जो हिन्दी भाषा मुतलक नहीं जानता और महज़ अरबी-फ़ारसी की तान पर गाड़ी चलाता है वह गोया अपनी गाड़ी बग़ैर पहियों के मंजिले मकसूद तक पहुँचाना चाहता है।"

यह तो आपने उर्दू हिन्दी के सम्बन्ध में महाकवि हाली के विचार पढ़े, अब ज़रा इसी दिशा में, दूसरे साहित्य-महारथी शम्सुल-उलमा मौलाना इमदाद इमाम साहिब 'असर' की पंक्तियाँ पढ़िए। वे कहते हैं—

सोचा तो यह था !

अंचल

सोचा तो यह था प्रेम तुम्हारा अक्षय मधुतामय होगा
सोचा तो यह था रूप तुम्हारा गीतों का संचय होगा

ये सपने कभी न टूटेंगे
सुख के घट कभी न फूटेंगे
अरमानों की अमराई को
दुर्दिन आकर क्यों लूटेंगे

उजड़े जीवन के मधुवन में यौवन का कीर सदय होगा
सोचा तो यह था अन्तहीन जीवन का प्रथम प्रणय होगा

गदराई हँसी—विलास नया
मन का आवर्तन केन्द्र नया
एकाकी सन्ध्या तारों-सी
आँखों का था निर्माल्य नया

इन नूतनता के स्रोतों का जीवन में कभी न क्षय होगा
सोचा तो यह था अन्तहीन रूपसि का स्नेहाश्रय होगा

कर रहे अंग थे सुरापान
था शिथिल चीर थे तृप्त प्राण
दिल की धड़कन की कोरों ने
कर दिए कभी थे लाल कान

कब सोचा था व्रीड़ा के इन्द्रधनुष का फिर विक्रय होगा
सोचा तो यह था प्रेम तुम्हारा अक्षय मधुतामय होगा।

◆

"उर्दू की मौजूदा शायरी फारसी की शायरी के साथ बहुत मुशाबेहत रखती है। इसका सबब यह है कि उर्दू के शोअरा फारसी के शोअरा का हमेशा ततब्बो (आदेश पालन) करते रहे हैं। हालाँकि तकाज़ाए मुल्क यह था कि उर्दू की शायरी संस्कृत की शायरी का अन्दाज पैदा करती। ऐसी सूरत में उर्दू की शायरी का दायरा बहुत वसीअ हो जाता। मगर इस अदम तवज्जो का सबब यह मालूम होता है कि अक्सर उर्दू के शोअरा जबाने संस्कृत से वाक़फियत नहीं रखते थे और चूँकि अरबी या फारसी में महारत रखते थे इसलिए उसी जबान की तबीयत थी। काश ! शोअराए उर्दू संस्कृत की शायरी से मुत्तला होकर उसका चरबा (अनुकरण) उतारते तो असनाफ़े शायरी में उर्दू का दर्जा बढ़ जाता। मसलन ड्रामा निगारी, जो फारसी में नहीं, उर्दू में दाखिल हो जाती और ड्रामा निगारी के दाखिल हो जाने से उर्दू की शायरी बिलाशुबा मुमताज़ हो जाती। फ़ारसी की तरह अरबी में भी रामायण जैसी मबसूत (विस्तृत) किताबें नहीं, इसलिए अरबी को भी इस बहस से खारिज समझना चाहिए।"

उपर्युक्त दोनों विद्वान अर्थात शम्सुल-उलमा मौलाना 'हाली' और मौलाना असर उर्दू साहित्य के सुप्रसिद्ध महारथी हैं। महाकवि हाली ने तो उर्दू शायरी के शिथिल शरीर में नव जीवन का संचार किया है, वे उचित रूप से आधुनिक उर्दू के युग प्रवर्त्तक माने जाते हैं। दोनों विद्वानों ने अब से लगभग पचास-साठ वर्ष पूर्व संस्कृत और हिन्दी के सम्बन्ध में उर्दू वालों को कैसी नेक सलाह दी है और हिन्दी तथा संस्कृत-सी महत्ता कैसे सुन्दर शब्दों में समझाई है।

उर्दू के इन महान साहित्यकारों ने अपने ये विचार उस समय प्रकट किए, जब राजनीतिक खींचातानी नहीं थी। सब लोग साहित्य को साहित्य की दृष्टि से देखते थे। दोनों साहित्यकारों का यही अभिप्राय है कि उर्दू वालों को संस्कृत न सही, हिन्दी तो अवश्य ही सीखनी चाहिए और संस्कृत साहित्य की भावनाओं से अपने इल्मोअदब को अनुप्राणित करना चाहिए। हम देखते हैं कि पहले समय में उर्दू को हिन्दी कहने में किसी मुस्लिम उर्दू साहित्यकार को आपत्ति नहीं थी। ग़ालिब तो बराबर उर्दू को हिन्दी ही कहते, लिखते रहे।

हम उर्दू साहित्य के प्रशंसक हैं उसमें बड़े-बड़े विद्वान लेखक और प्रतिभाशाली महाकवि हुए हैं। हमें महाकवि हाली का समर्थन करते हुए यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं कि जिस प्रकार उर्दू के अदीबों को हिन्दी सीखने की आवश्यकता है, उसी प्रकार हिन्दी साहित्यकारों को उर्दू साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। ऐसी प्रवृत्ति से दोनों भाषाओं में एक अद्भुत सौन्दर्य और समन्वय पैदा हो जाएगा, विचित्र छटा दिखाई देने लगेगी। उर्दू ही क्यों हिन्दी साहित्य को समृद्ध और सम्पन्न बनाने के लिए तो हमें अनेक भाषाओं का अध्ययन करने की आवश्यकता है, जिससे विविध साहित्यों की विचारधारा हमारी हिन्दी में आ सके। हिन्दी राष्ट्रभाषा है, उसका महत्त्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है ऐसी अनुकूल परिस्थिति में हिन्दी को सर्वांग सम्पन्न बनाने की आवश्यकता है। उर्दू, फ़ारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन जिस भाषा में भी उपयोगी और तात्विक विचार मिलें, हिन्दी में लाने चाहिएँ, अनुवादों द्वारा अथवा स्वतन्त्र निबन्ध रचना करके। ऐसा करने से जहाँ हिन्दी साहित्य की वृद्धि होगी, वहाँ हिन्दी वालों की उदारता भी प्रकट होगी और उनकी ज्ञान-गरिमा बढ़ेगी।

* * *

बुझे दीप

विमला रैना

एक छोटी-सी दुनिया उसकी भी थी और वह बड़ा सुखी था अपनी इस दुनिया में। उसका नाम था गोपाल। वह सुन्दर था, वह भावुक था और विनोदप्रिय था। लोग उसे भाग्यवान कहते थे। घर में माँ थी, छोटा भाई था और थी जीवन में मुस्कान लाने वाली राधा, उसकी पत्नी। अभी छोटे भाई प्राण का विवाह हुआ था। घर में छोटी-सी, सुन्दर-सी बहू आई थी। अम्मा अपनी सुन्दर सुशील बहुओं को देख निहाल हो जाती थी और गोपाल का जीवन एक मधुर संगीत भरी सरिता के समान इठलाता हुआ चल रहा था।

इधर जीवन सरिता बढ़े जा रही थी, उधर काल खड़ा मुस्करा रहा था। एक दिन भयंकर तूफ़ान आया और जीवन सरिता अनायास ही मरुभूमि बन गई। गोपाल की राधा मायके गई हुई थी। गोपाल कार्यवश उसे लिवाने न जा सका। उसने छोटे भाई प्राण को अपनी भाभी को लिवाने भेज दिया। प्राण भाभी को लेकर मोटर से लौट रहा था। मोटर तेज़ी से चली आ रही थी कि अचानक एक भारी ट्रक से इनकी मोटर टकरा गई। दुर्भाग्यवश मोटर में आग लग गई और काल के भीषण अट्टाहास से दोनों की जीवन-ज्योति बुझ गई।

गोपाल पर ऐसा आघात हुआ कि वह जीवित ही मर गया। अम्मा पर एक ही पल में दुख का पहाड़ टूट पड़ा। एक ही वार में काल ने उनके छोटे बेटे प्राण और बड़ी बहू राधा को उनसे छीन लिया। अब घर में बड़ा बेटा गोपाल और छोटी बहू बीना दो बुझे दीपक के समान रह गए। उनके घर में सहसा अँधेरा छा गया।

छोटी-सी बीना ने एक विधवा का रूप धारण कर लिया। इस बीना के तार टूट गए थे। अब वह कभी झंकृत न होंगे। उसका संगीत कहीं नीरवता की गोद में जाकर सो गया था। उसकी आँखों की चमक आँसुओं से बह गई थी। उनमें भय का अँधेरा छा गया था। उसके अधरों की मुस्कान सिकुड़ कर केवल रुदन का कंपन बन कर रह गई थी। उसका हृदय केवल गति का एक यंत्र बन गया था। भावहीन, लक्ष्यहीन, अर्थहीन! अब उसका जीवन ही व्यर्थ और निरर्थक था। एक भारी बोझ, जिसके भार से वह खुद दबी जा रही थी और गोपाल को भी दबा रही थी। वह स्वयं मानो दुखद पीड़ा का साकार रूप हो, भाग्यहीनता का प्रतिबिम्ब हो, शंका और भय की छाया हो। उसे देख लोगों की मुस्कान क्षीण पड़ जाती थी, हँसी काँप जाती थी, उल्लास मौन हो जाता था। बेचारी छोटी-सी बीना एक अटूट दुखद रागिनी-सी बन गई थी। वेदना, दुख और पीड़ा ही उसके स्वर, गत और लय थे। वह जहाँ जाती यह रागिनी उसके पद से झंकृत होती। और कभी-कभी वह अपने मन से पूछती: "क्या सती की प्रथा उसकी इस दशा से अधिक भयंकर थी?"

उस घटना को साल भर बीत चुका था। शोक थक कर सो रहा था। पर सोई इन्द्रियाँ जागने लगी थीं। वह पुनर्जीवन पाने को मचल रही थीं। आँखें अन्धकार को चीर कर बादलों में रंगीन लहरें देखना चाहती थीं। हृदय के यंत्र में जान आ रही थी। इधर जान आ रही थी उधर बीना घबरा रही थी। इतना घबरा रही थी कि वह चाहती थी कि इस तरह जान आने से पहले वह खुद मर जाए। पर वह बेबस थी। यौवन उसे मरने न देता था। काल भी अपनी भेंट ले निश्चिन्त हो चुका था। वह अब निर्द्वन्द्व हो बीना के अन्तर्द्वन्द्व का खेल देख रहा था। और काल के साथ देख रहा था गोपाल। अपना दुख भूल वह बीना की व्यथा में घुटा जा रहा था। क्योंकि वह बेबस था। बेबस था क्योंकि वह समाज का एक अंश था और समाज किसी का दुख निवारण करने में सदा बेबस ही रहा है।

माँ से गोपाल का दुख देखा न जाता था। दुख उन्हें बीना के लिए भी था। पर उस दुख पर रो-पीट कर वह संतोष पा चुकी थी। अभागिन के भाग को कोई क्या करे? अब साल भर बीत चुका था। जिस बहू के भाग्य ने उनका बेटा उठा लिया हो, उस बहू से उन्हें विशेष सरोकार न था। विधाता ने उसे विधवा बना दिया। अब कोई क्या कर सकता है? पर उनका बेटा गोपाल! अभी उसकी आयु ही क्या थी? २८ वर्ष का सुन्दर युवक यों बैरागी बना फिरे, इसे वह सहन न कर सकती थी। वह फिर से उसकी आँखों में मुस्कराहट देखना चाहती थी। फिर से उसका घर बसाना चाहती थी। फिर से इस बुझे दीपक में लौ लगाना चाहती थी। वह तो चार महीने बाद से ही पुनर्विवाह की चर्चा करने लगी थी। पर यह चर्चा चलते ही गोपाल उठकर चला जाता था। अब साल भर बीत चुका था। अब उनका धैर्य हताश हो रहा था। माँ अब उतावली हो रही थी। शोक की भी एक सीमा होती है। अपने छोटे बेटे के शोक को उन्होंने स्मृति के गाढ़तम अतल में दबा दिया था। और बड़ी बहू के सम्बन्ध में उन्होंने ज्ञान से काम लिया—वह तो रानी-सी गई। भगवान की देन थी, उसी ने ले ली। अपना क्या चारा है? और बीना के तो करम ही फूटे थे। कर्म का भोग तो भोगना ही होता है। पर गोपाल! गोपाल के आगे तो दुनिया खड़ी है। उसे कौन रोक है? माँ के विचार से शायद बेटों का कम-भोग नहीं होता। वह क्यों अपना जीवन बरबाद कर रहा है? कम आयु के सुन्दर विधुर के लिए संसार में किस बात की कमी थी। ९ महीने भी न बीते थे कि कितने ही घरों से माँगें आने लगी थीं। माँ ने लड़कियाँ देखनी भी शुरू कर दी थीं। दो-चार पसन्द भी आई थीं, पर सब बेकार था। उन्होंने लाख कहा, लाख समझाया, कसमें दीं, रोई, पीटी, झल्लाई पर गोपाल न मानता था। जैसे जैसे अम्माँ शादी का हठ

करती थी, गोपाल का बैरागी रंग गाढ़ा पड़ता जाता था। अब उसने दाढ़ी भी बढ़ा ली थी। बाल न कटवाता था। अच्छे कपड़े बक्सों में पड़े रो रहे थे। वह सादे कपड़ों में ही सन्तुष्ट रहता। वह किसी भी मनोरंजन में सम्मिलित न होता था। लोग कहते, वह ऐसे रहता है जैसे वह कोई विधवा हो। उसका हठयोगीपना उनकी समझ में न आता था। शायद वह विधवा और विधुर के अन्तर को न समझ पाया था। लोग कहते, यह भी अजीब आदमी है। देखा तो यही गया है कि शोक शुरू में इनसान को राहू की भाँति सम्पूर्ण रूप से ग्रस लेता है, पर समय के साथ शोक भी उसी तरह घट जाता है, जैसे चन्द्र-ग्रहण धीरे-धीरे हट जाता है। पर यहाँ तो मामला ही उलटा था। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते थे, गोपाल का शोक भयंकर होता जाता था। उसका जीवन केवल एक कार्यक्रम सा था, जिसके अनुसार रात बीत जाती, सुबह होता, वह काम पर जाता, शाम होती, वह घर आता और फिर रात हो जाती। खाली समय में वह या तो कुछ पढ़ता रहता या खोई आँखों से एक ही ओर घंटों बैठे ऐसे देखता जैसे उसके आगे एक अन्धकार का परदा हो, जिसके पीछे कुछ ऐसा छिपा है, जिसे वह पा लेना चाहता है। उसके इस हठयोग में भजन-पूजन सम्मिलित न था। वह अपनी वेदना किसी से न कहता। जब कोई उसके पास आता तो वह सभ्यता से बातें करता, उनका एक उदासीनता के साथ स्वागत भी करता। पर जब कभी कोई उससे पुनर्विवाह की बात करता तो वह चुप हो जाता था। और जब वह चुप हो जाता तो ऐसा लगता जैसे उसके अन्तरतम की हज़ारों ज़बानें कुछ बोलने को मचल रही हैं और वह उनको वश में रखने के लिए एक युद्ध लड़ रहा है। हाथों की मुट्ठियाँ बँध जातीं, आँखें लाल हो जातीं, दाँत भिंच जाते और वह अपने आपको समेटे बैठा रहता। उसके इस रौद्र रूप को देख लोग घबरा जाते और बातों का विषय बदल कर घर चले जाते।

कभी-कभी बीना के आगे अम्मा अपनी पड़ोसिन को गोपाल से विवाह की चर्चा करने को उकसाती, तो गोपाल एक बार बीना की ओर देखकर काँप जाता और फटी आँखों से माँ की ओर देख बड़ी ज़ोर से हँसता। वह कर्कश हँसी प्रलय के समान भयंकर होती। उस हँसी के आगे माँ की आँखें भर आतीं। पड़ोसिन का दिल दहल जाता और बीना का पीला मुख सफ़ेद पड़ जाता। वह गोपाल की आँखों का उन्माद देख काँप जाती। एक हँसी में इतनी पीड़ा! इतनी वेदना!! इतना उन्माद!!! गोपाल तब बीना की दशा देख अपने को कुछ सँभालता, फिर साधारणता लाते हुए वह बीना को सान्त्वना देने के ख्याल से कोई और बात छेड़ देता, फिर उठ कर चला जाता।

दिन बीते चले जाते थे और अम्मा का पूजा-पाठ, मानता-प्रसाद, जादू-टोना सब निष्फल होता जाता था। अच्छी-अच्छी लड़कियाँ दूसरों के घरों की शोभा बढ़ाने चली जा रही थीं और अम्मा यों ही हाथ फैलाए बैठी थी। आज उन्होंने आखिरी कोशिश करने की ठानी थी। वह यह जानती थी कि गोपाल को वीणा का ध्यान रहता है। उसको वह कभी निराश और दुखी न करना चाहता था। वह वीणा के आगे अधिकतर घर का वातावरण स्वाभाविक ही रखने की कोशिश करता था। उसके आगे वह अपना रौद्र रूप न लाता था। जो क्षणिक आवेश में कभी कुछ उलटी सीधी कह भी रहा हो तो बीना को देख वह चुप हो जाता था। वीणा के आगे वह हठयोगी कुछ इंसान-सा बन जाता था।

तो आज अम्मा ने छोटी बहू बीना को गोपाल से विवाह के लिए हठ करने को कहा। वह उसकी बात न टालेगा। अम्मा ने दिन भर बीना को सिखाया। वचन लेने का अस्त्र उसे बताया। और जब तक गोपाल वचन न दे बीना को तब तर्क और हठ करने की सीख दी। उन्होंने बीना को अच्छी तरह समझा दिया कि जब तक गोपाल का पुनर्विवाह न होगा, घर में सुख और शान्ति न होगी। बीना ने गोपाल के आगे कभी खुल कर बात न की थी। वह जेठ का नाता रखता था। सुहागिन बीना उससे लजाती थी। उसका ससुर समान आदर करती थी। पर वैधव्य की बीना उससे डरती थी, बहुत डरती थी। और आज अम्मा उससे गोपाल से आग्रह करने को कह रही थी। उसे आग्रह करना ही होगा। उसके इस आग्रह का क्या मूल्य होगा, वह न जानती थी, पर तब भी उसे यह आग्रह करना ही था। इसलिए करना था कि अम्मा ने कहा था, इसलिए करना था कि कहीं लोग यह न समझें कि वह नहीं चाहती कि गोपाल का पुनः विवाह हो।

अम्मा ने गोपाल के परम मित्र कैलाश को भी बुलाया था। शायद इसलिए कि कैलाश बीना के तर्क और हठ को और भी महत्त्व दे सके।

आज शाम को गोपाल काम से लौटने पर आराम कुर्सी पर हाथों से आँखें मूँदे हुए बैठा था। बीना चाय की ट्रे लेकर आई। सदा बीना ही चाय लाया करती थी। घर में नौकरों की कमी न थी, पर वह यह काम खुद ही करती थी। शायद इस सेवा में वह अज्ञात रूप से गोपाल को उसकी अव्यक्त सहानुभूति के लिए धन्यवाद सा देती हो। अथवा अस्पष्ट रूप में वह गोपाल को अपनी समवेदना दिखाना चाहती हो। तो बीना आज भी हमेशा की तरह चाय लेकर आई, पर आज उसके हाथ काँप रहे थे। ट्रे के बरतन खनखना रहे थे पर गोपाल की विचार-धारा कुछ ऐसी गहन-गंभीर थी कि वह वैसे ही बैठा रहा। बीना ने कहा—"भइया!" उसका स्वर काँप रहा था। गोपाल ने आँखें खोलीं। बीना का स्वर पहचानते ही वह स्वाभाविकता से बोला—"चाय लाई हो बीना?" जवाब में बीना ने ट्रे के बर्तन खनखना दिए। गोपाल ने मुड़ कर देखा। उसके हाथ से ट्रे ली और फिर बैठ गया। बीना को देख उसे न जाने क्या हो जाता था। वह बहुत कुछ कहना चाहता था, बहुत कुछ करना चाहता था, पर वह न कुछ कह पाता था न कुछ कर पाता था। उसे सब व्यर्थ-सा लगता था। व्यर्थ की ढोंगी-पोली सहानुभूति सब व्यर्थ। जब वह बीना के वृद्ध यौवन को देखता, जब वह उसके जीवित शरीर और मृत आत्मा को देखता, जब वह उसकी आँखों के बुझे दीपों को देखता, तो उसे लगता जैसे हजारों शक्तियाँ उसे पुकार रही हैं कि वह कुछ करे। कुछ करे जिससे कि बीना की, जिससे कि वैधव्य की यह कुरूपता बदल जाए। पर वह अकर्मण्य खड़ा रहता। उसके कानों में 'कायर, निकम्मा, ढोंगी, स्वार्थी, निर्लज्ज, पशु, पाषाण' की ध्वनि उठती। जैसे उसकी समस्त शक्तियाँ उसे धिक्कार

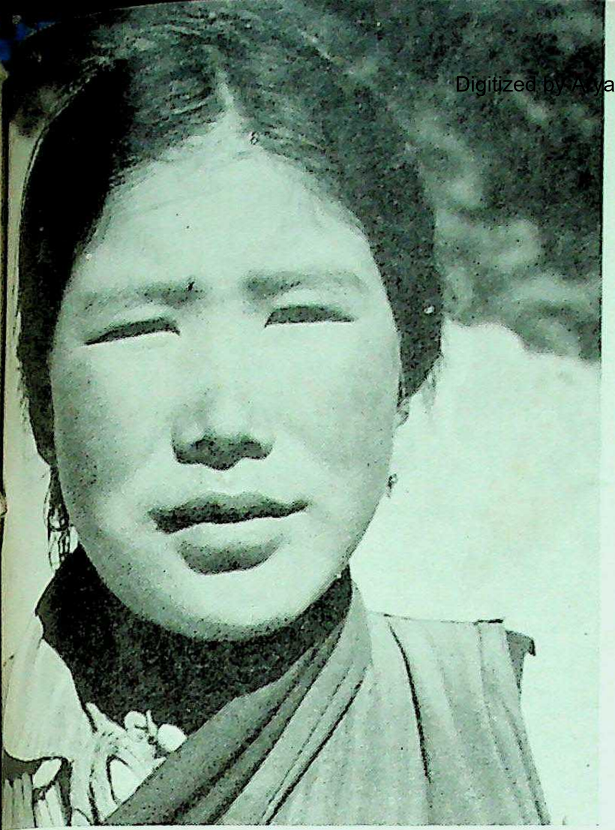

एक तिब्बती लड़की

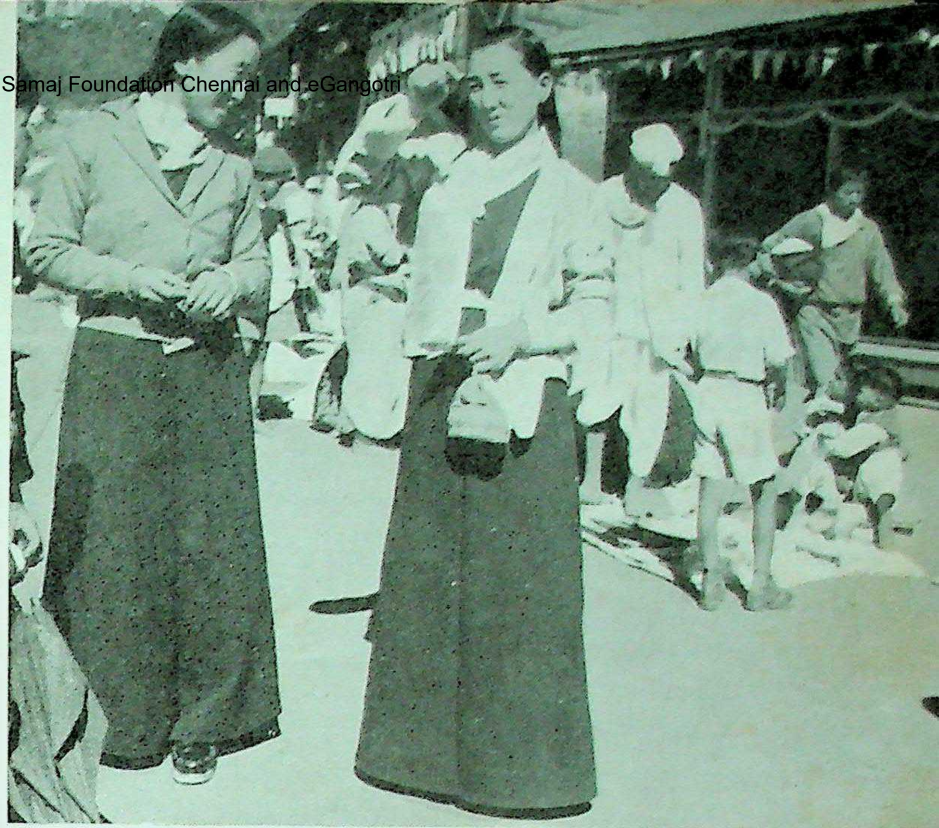

सिक्किम का गंगटोक बाज़ार

प्रकृति का दुलारा सिक्किम

सिक्किम का रांगपू पुल

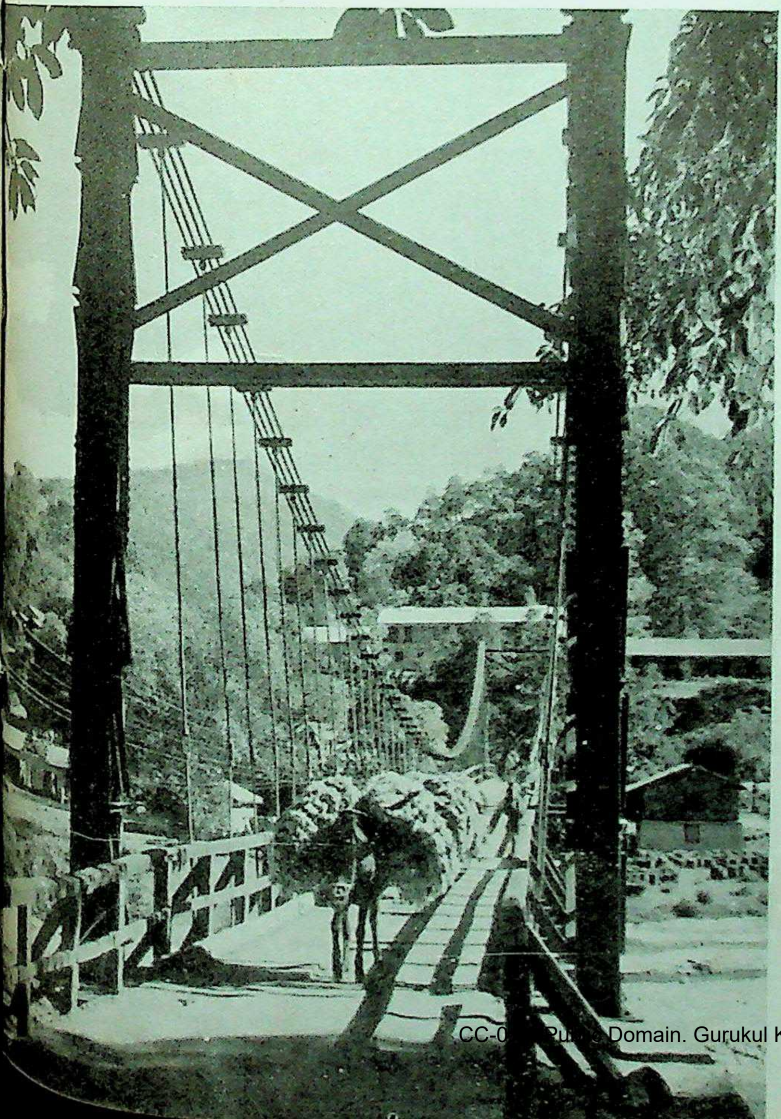

सिक्किम में एक तिब्बती मज़दूर

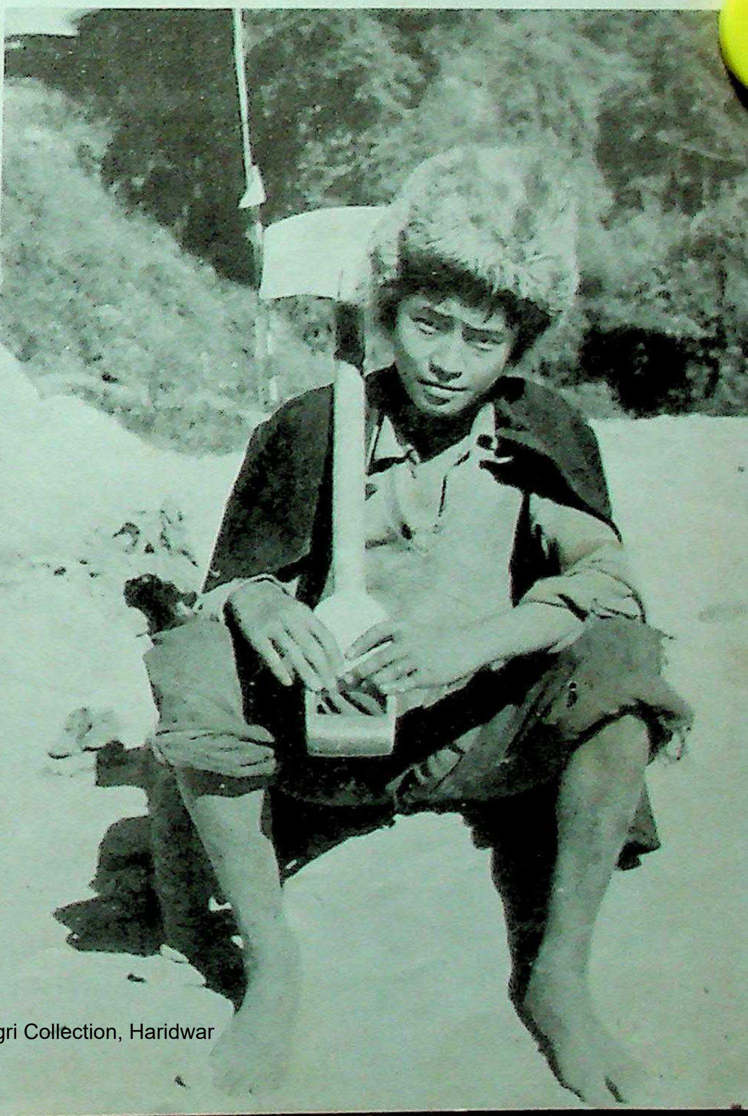

गंगटोक के मेले में

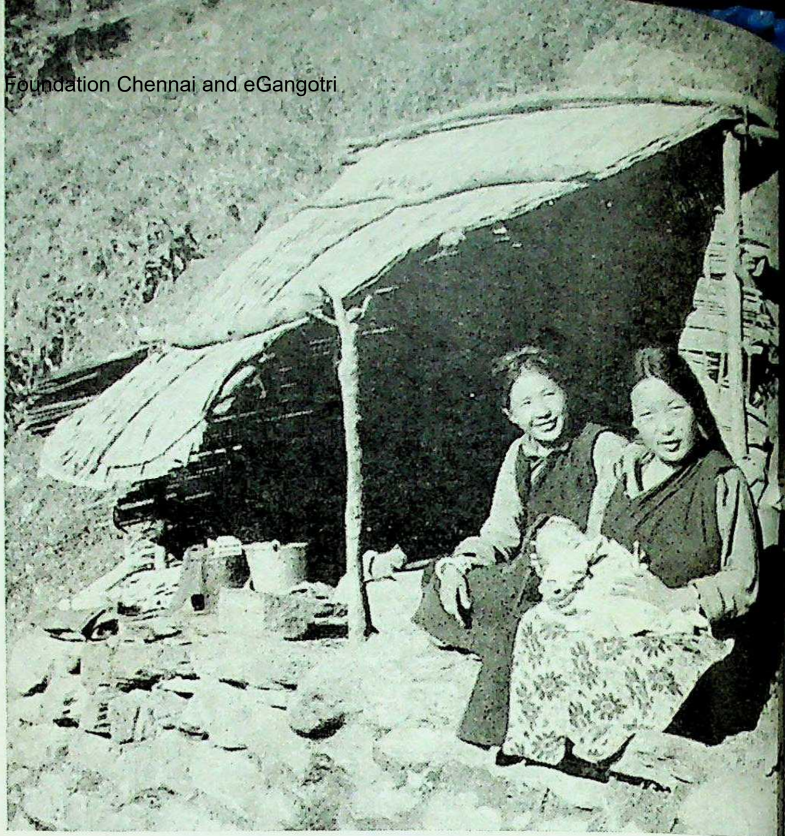

चांगू झील के किनारे एक छोटी-सी दुकान

गंगटोक बाज़ार का सामान्य दृश्य

सिक्किम का अधिकांश यातायात टट्टुओं पर होता है

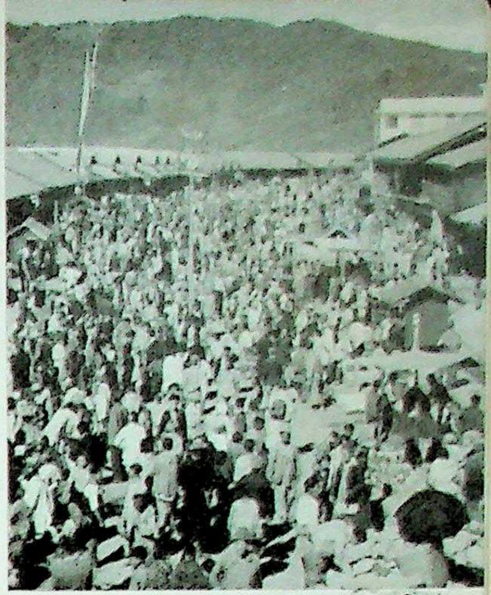

हाट के दिन गगंटोक का बाजार

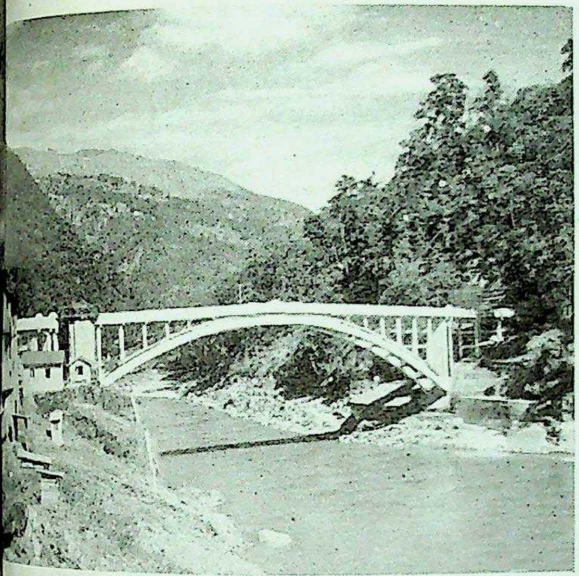

तिस्ता नदी का पुल

गंगटोक के निकट नमैल से कंचनजंगा का दृश्य

ंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सिक्किम में सड़क का निर्माण हो रहा है

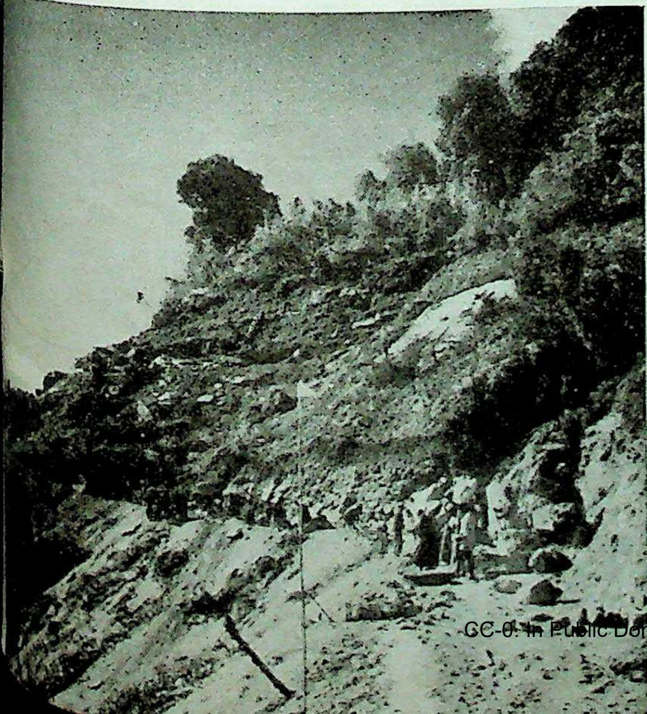

गंगटोक के निकट पहाड़ी खेत

गंगटोक का आकाश से लिया गया चित्र

बम्पू का पुल जहाँ से सिक्किम की सीमा प्रारम्भ होती है

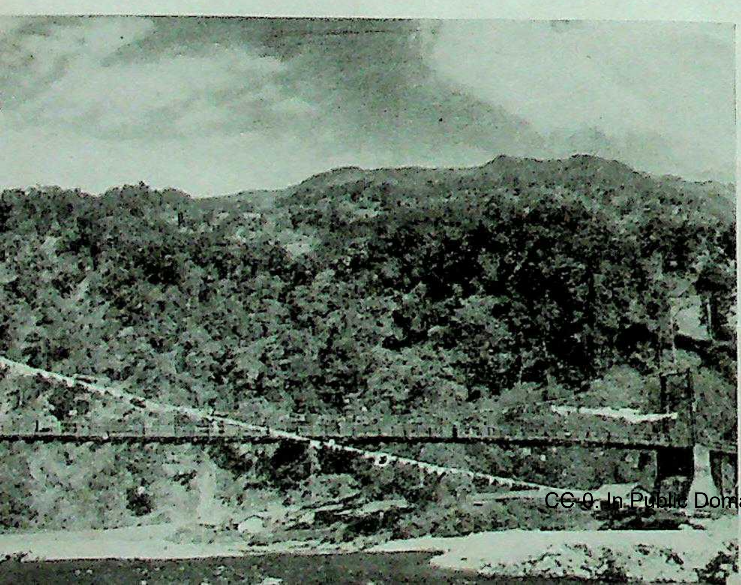

पहाड़ पर खेती

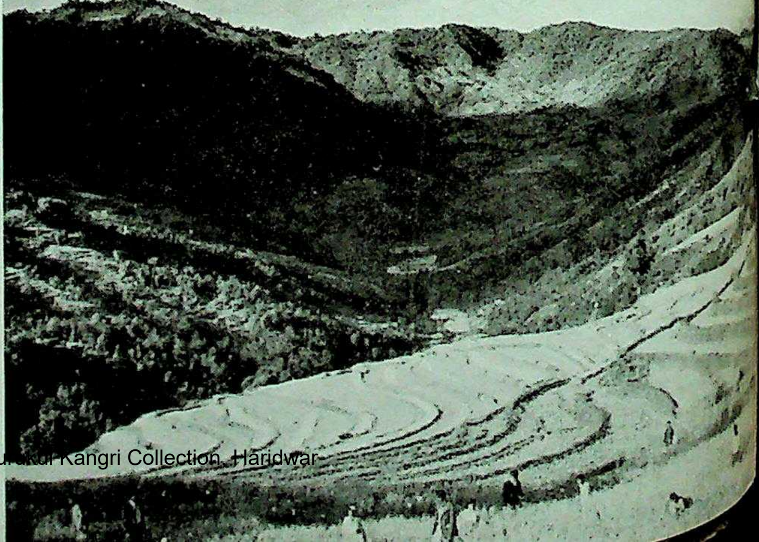

रही हों। पर
मौन हो अपने
वीना का वैध
और दिन
रही। आँखें
है। और गोप
सकता है उस
गोपाल
कैसे सुनेगा व
भी खड़ा हो
उसने हताश
"मेरी ए
गोपाल
वह आज एक
……बैठो।
"पहले
"वचन
"आप
लीजिए।" ब
गया। उसका
"यह 'तु
कहलवाया है
अपने हाथों
"हाँ, मैं
मैं कुछ कह
बोलते नहीं,
वह आगे न
" 'मैं'
ये 'मेरे' कपड़े
की चेतना को
"मैं ?·
सी आँखें फा
"मैं क्य
हूँ! हः, ह :
मार कर हँस
वह डरी
कानों पर हा
देख कर अप
"वीना
हुए उसकी
कुत्ते की आँ
के बाद फिर
स्नेह और भ

ही हों। पर वह कुछ कर न पाता, कुछ कह न पाता, और बेबस-सा मौन हो अपनी आँखें मूँद लेता। जैसे उसकी आँखें बंद हो जाने से बीना का वैधव्य ही हट जाता हो।

और दिन बीना चाय देकर चली जाती थी। पर आज वह खड़ी रही। आँखें बंद होने पर भी गोपाल को यह मालूम था कि बीना खड़ी है। और गोपाल सोच रहा था, बीना क्यों खड़ी है? वह क्या कर सकता है उसके लिए, कि फिर एक डरी हुई आवाज आई "भइया!"

गोपाल सहम कर चौंक गया। आज बीना कुछ कहना चाहती थी। कैसे सुनेगा वह? क्या करेगा वह? पर बीना अब भी खड़ी थी। वह भी खड़ा हो गया। उसने देखा बीना घबरा रही है। "क्या है बीना?" उसने हताश स्वर में पूछा।

"मेरी एक बात मानेंगे आप?"

गोपाल ने सुना। वह घबरा रहा था। जो कभी कुछ न बोली हो, वह आज एक बात कहेगी। वह 'न' कैसे कह सकता था। "हाँ···हाँ ·····बैठो।" उसने मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा।

"पहले मुझे वचन दीजिए।" बीना ने लड़खड़ाते स्वर में कहा।

"वचन देता हूँ।" वचन देते गोपाल को कोई शंका न हुई।

"आप अम्मा का कहना क्यों नहीं मानते? आप शादी कर लीजिए।" बीना ने भीख सी माँगी। गोपाल सिर से पैर तक काँप गया। उसका सारा शरीर बुरी तरह झनझना रहा था।

"यह 'तुम' कह रही हो बीना!············यह अम्मा ने 'तुम से' कहलवाया है? और कोई न मिला उन्हें?" गोपाल तड़प गया और अपने हाथों से अपना मुँह ढक कर बैठ गया।

"हाँ, मैं कह रही हूँ। क्या मैं आप की कोई नहीं हूँ? क्या अब मैं कुछ कह भी नहीं सकती? आप शादी नहीं करते। आप हँसते नहीं, बोलते नहीं, आप कुछ भी तो नहीं करते। ये कपड़े, ये दाढ़ी, ये बाल!" वह आगे न कह सकी गला रुँध रहा था उसका।

" 'मैं' हँसता नहीं, बोलता नहीं, कुछ भी तो नहीं करता! हहहहह! ये 'मेरे' कपड़े, ये दाढ़ी, ये बाल!······और तुम? 'तुम' बीना?" गोपाल की चेतना को न जाने कहाँ से साहस आ गया। पर बीना सिहर गई।

"मैं?······मैं? क्या कह रहे हैं आप?" बीना एक डरी हिरनी-सी आँखें फाड़े गोपाल की ओर देख रही थी।

"मैं क्या कह रहा हूँ? हाँ·········मैं "क्या" कह रहा हूँ। हुँ हुँ! हः, ह:, हः!! हा हा हा हा!!!" गोपाल उन्माद का ठहाका मार कर हँसा। बीना से गोपाल का यह हँसता रुदन न देखा गया। वह डरी हुई सी पीछे हटने लगी। उसने अपनी आँखें मूँद लीं। कानों पर हाथ रख लिए। फिर वह घबरा कर रो दी। गोपाल ने देखा। देख कर अपने को धिक्कारा।

"बीना! बीना! सुनो!" वह सस्नेह बोला। बीना ने सिसकी भरते हुए उसकी ओर डरी आँखों से देखा। उसकी आँखें उस समय उस कुत्ते की आँखों के समान थीं, जो मालिक से अकारण ही झिड़की खाने के बाद फिर प्यार से बुलाया गया हो। उन आँखों में सन्देह, विश्वास, स्नेह और भय का विचित्र मिश्रण था। गोपाल को अपने ऊपर क्रोध आ रहा था। मन में उन आँखों को देख अति ग्लानि थी। "सुनो" वह शान्त होते हुए बोला—"तुमने मुझ से वचन लिया है न?······बोलो।"

"हाँ" बीना ने साँस रोक कर कहा। "तो जो तुम कहोगी मैं करूँगा। जाओ! अम्मा से कह दो तुमने अपना काम कर दिया।" यह कह गोपाल फिर आँखें बंद कर कुर्सी पर बैठ गया। वह थक गया था, हार गया था, अम्मा की जीत हुई थी। पर आज वह बोल सका था, उसने बीना से कहा था "और तुम बीना?" अब वह चुप न रहेगा। वह फिर गहरे सोच में पड़ गया। पर इस सोच में निराशा न थी।

उधर अम्मा कैलाश को लिए दरवाजे के पीछे खड़ी सब सुन रही थी। गोपाल के वचन देने पर उन्होंने सन्तोष की साँस ली और कुछ देर बाद कैलाश को गोपाल के निश्चय को दृढ़ करने को भेजा। कैलाश भी एक अभिनय सा करता हुआ कमरे में आते ही बोला—"भाई वाह! यह क्या हो रहा है? खैर, शुक्र है होश तो आया! अम्मा से अभी मुझे मालूम हुआ कि हमारे बैरागी साहब अब रास्ते पर आ रहे हैं। चलो आज की खुशी में तुम्हारी यह दाढ़ी साफ कर दी जाए।"

गोपाल निश्चल बैठा रहा। कैलाश कुछ समझता कुछ न समझता-सा पास ही बैठ गया। अभिनय का पहला हिस्सा खत्म हो गया था और आगे उसकी समझ में न आ रहा था कि वह क्या कहे! उसको गोपाल की आँखों में अब भी वही हठ दीख रहा था। उसके भावावेश में कोई अन्तर न था। कैलाश कुछ उलझ कर बोला—"ऐसी भी क्या बात है गोपाल? तुम तो ऐसे बन रहे हो जैसे कि यह सब दुनिया में होता ही नहीं। अभी कुछ ही साल की तो बात है, जब तुमने रमेश को खुद समझा-बुझा कर उसकी दूसरी शादी करवाई थी। तुम दोस्त के नाते उसके ब्याह में गए भी थे। तब तो तुम बड़े फिलॉसफर बना करते थे।·········तुम्हीं ने तो कहा था कि भूत को वर्तमान और भविष्य पर हावी नहीं होने देना चाहिए। ······तुम्हीं तो कहा करते थे कि मैं निराशावादी नहीं, आशावादी हूँ। तुम्हारा ही कहना था कि इंसान को हर परिस्थिति में सुख को फिर से गढ़ना होता है। इंसान कलाकार है और यह उसकी सबसे बड़ी कला है। अब क्या हो गया है तुम्हें? इस दुनिया को छोड़ कर जो चला जाता है, उसको प्रियजनों के दुख से कभी सुख नहीं मिल सकता! बोलो! कहो! क्या यह सब तुम नहीं कहते थे?"

गोपाल ने एक ठंडी साँस खी, फिर कहा—"हाँ, मैं ही यह सब कहता था······और अब भी कहता हूँ।"

"तो फिर यह बैरागी होने का ढोंग क्यों रचा है तुमने? क्यों माँ को इतने दिनों से तड़पा रहे हो? क्यों अपना जीवन नष्ट कर रहे हो?" कैलाश ने आवेश में कहा।

गोपाल सोच रहा था। अपना साहस बटोर रहा था। बोला: "कैलाश, तुम मुझे गलत समझ रहे हो। यह ढोंग मैंने इसलिए नहीं रचा कि मैं दुनिया को यह दिखाना चाहता हूँ कि मैं एक आदर्श पति हूँ। मेरे विचार अब भी वही हैं जो पहले थे। मैं मौत और ज़िन्दगी को सम्मिलित नहीं करता। प्रेत आत्मा और जीवित आत्मा का नाता कैसा? इस दुनिया में रह कर उस दुनिया से सम्बन्ध कैसा? पर, पर मैं कायर

हूँ। मैं बुजदिल हूँ, कैलाश ! ……आज अम्मा ने बेचारी बीना को मेरे पास शादी का वचन लेने को भेजा था। 'बीना' को ! बेचारी बीना को ! मुझे समझाने भेजा था कि जीवन में तो रंगीनियों से यों मुँह नहीं मोड़ा जाता कि हँसना, बोलना, खेलना, घूमना, कपड़े पहनना, शृंगार करना ही जीना है। और यह रूखे बाल और सूने ललाट वाली बीना मुझे समझाने भेजी गई थी। जिसे मैं अभी दो साल हुए ब्याह कर लाया था ! जो मेरी छोटी बहन के समान है। जिसे ईश्वर ने नहीं, समाज ने आजन्म फाँसी पर लटके रहने का दण्ड दिया है, वह मुझ से कह रही थी कि मैं अपने जीवन में रस भर लूँ, संगीत भर लूँ और रंग भर रंगरलियाँ मनाऊँ ! कि मैं वचन दूँ कि मैं काल से हार नहीं मानता ! कैलाश ! एक खण्डहर कह रहा था कि मैं एक विशाल महल बनूँ ! ऊफ़ ! अम्मा को कोई और न मिला था !'

"फिर तुमने उससे क्या कहा गोपाल ?" कैलाश ने पूछा।

"मैं उस बेचारी की पहली माँग पर 'न' कैसे कहता ? मैंने बचन दे दिया। अम्मा ने उसे मेरे पास भेजा था, अब मैं भी तुम्हें उनके पास भेजना चाहता हूँ। तुम्हें इसलिए भेज रहा हूँ कि मैं कायर हूँ। उनका बेटा होने के नाते मेरी जुबान खुल न पाएगी। मैंने कुछ दिन हुए उनसे एक बार बीना के इस नीरस जीवन के बारे में बातें की थीं। उसकी इस वेशभूषा को बदलने को कहा था। जानते हो, उन्होंने मुझसे क्या कहा ?"

"क्या ?" कैलाश ने डरते-डरते पूछा।

गोपाल बोला—"माँ कहने लगी 'मुझे क्या ? कह दो कहीं जाकर मुँह काला कर ले !' कैलाश ! वह ऐसे बोलीं जैसे किसी भेड़-बकरी की बात कर रही हों। और मैं बुज़दिल की तरह वहाँ से भाग आया। पर अब मैं चुप न रहूँगा। मैं पागल हो रहा हूँ। तुम उनसे पूछो कैलाश, उनके छोटे बेटे की मृत्यु हो गई। वह माँ है और माँ की ममता से बढ़कर कहते हैं कोई ममता नहीं। फिर भी उस दुख को सहन कर वह फिर से सुख की दुनिया में रहना चाहती है। मैं उसका बड़ा भाई था। बहुत प्यार करता था मैं उसे। २५ साल का नाता था मेरा उसका, फिर भी मैं अपनी दूसरी शादी कर उसे भूल जाऊँगा। अपनी राधा, अपनी पत्नी को भूल जाऊँगा, नई बहू लाऊँगा। और केवल माँ के कहने से नहीं, ज़िन्दगी के कहने से ! शोक की एक सीमा होती है। अम्मा की दुनिया न बदली। मेरी दुनिया में फिर वसंत आएगा। पर साल दो साल की ब्याही पराई लाड़ली से हम चाहते हैं कि वह आजन्म उस परदेशी की स्मृति में धूनी रमा सदा के लिए संन्यासी हो जाए ! वह अपना दुख एक त्योहार की तरह मनाए। उनसे पूछो कैलाश, दुख भी क्या मनाने की चीज है ? दुख होता है या नहीं होता। दुख कोई त्योहार नहीं, जो मनाया जाए। ओह ! मैं यह सब नहीं देख सकता कैलाश। नहीं देख सकता !" गोपाल फिर उन्मादित हो अपने बाल नोंचने लगा।

"शान्त हो गोपाल ! भाग्य के आगे इन्सान हारा है।" कैलाश ने गोपाल को समझाते हुए कहा।

"चुप रहो ! तुम भी अम्मा के सिखाए भेजे गए हो। भाग्य ! फूटे कर्म ! भाग्य और फूटे कर्म हम दोनों के एक थे। यह भगवान का न्याय था। वह दण्ड दे चुका। मुझसे मेरी राधा और बीना से उसके प्राण छीन लिए उसने। यह ईश्वर का दण्ड था। पा लिया हमने। पर अब समाज देवता का न्याय कैसा है ? मैं फिर से ब्याह कर लूँ और बीना बेचारी ठीक से कपड़े भी न पहने। मैं फिर से जीवन पाऊँ और बीना जीवित ही मर जाए ? यही है न तुम्हारे समाज देवता का न्याय ? ईश्वर समदर्शी है। वह हम सब को एक-सा दण्ड, एक-सा फल देता है। पर समाज देवता ईश्वरी न्याय के बाद भी दण्ड देते हैं। हाँ, फर्क सिर्फ़ इतना है कि उनका न्याय केवल सुन्दर कोमल अबलाओं को ही यह भीषण दण्ड देने का है। ……मैं बेटा हूँ वह बहू। हम दोनों पर शायद भगवान ने एक साथ एक-सा दुख केवल इसीलिए दिया हो कि बेटे का दुख देख अम्मा को बहू की भी संवेदना हो। पर नहीं हुई। नहीं हुई कैलाश ! वह केवल मुझको ही देखती रहीं। मेरे कपड़े, मेरे बाल, हुँह ! मर्द तो शृंगार के लिए बने ही नहीं। पर लड़की तो होश आते ही शृंगार की दुनिया में पलती और बड़ी होती है। वह संन्यास ले ले और मैं अपने जीवन का शृंगार करूँ ? मैं बीना को वचन दे चुका हूँ। मैं अपना वचन वापस नहीं माँगता। पर जब तक बीना सुखी न होगी, मैं शादी नहीं करूँगा।"

"विधवा विवाह कोई जुर्म तो नहीं है गोपाल !" कैलाश ने कुछ झिझकते हुए कहा।

"विवाह ! विधवा विवाह ! क्या विवाह ! क्या विवाह ही सब कुछ है कैलाश ? क्या तुम चाहते हो कि एक नारी केवल स्वाभाविक जीवन बिताने के लिए दूसरा विवाह कर ले ? क्या बिना विवाह किए उसे जीने का कोई अधिकार नहीं ? कितना शौक था बीना को साड़ियों का, फूलों का, गहनों का। आह ! मुझे याद है वह दिन, जब चूड़ी वाली की आवाज़ सुन वह ऐसा भागी थी कि ठोकर खा गिर पड़ी थी। अब सिर्फ़ कुछ गहने कपड़े पहन सकने के लिए उसे ब्याह की भीख माँगनी होगी ?……शादी-ब्याह उसके अपने मन की निजी बात है। सुख के लिए वह अनिवार्य नहीं। पर मैं कहता हूँ कैलाश ! मैं उसे ऐसे न रखूँगा। अम्मा से कह दो, कि यदि वह मुझे सुखी देखना चाहती है तो बीना को फिर से घर की लड़की का स्थान दे।……उसे इस जीवन में जीने दें। मैं ब्याह को नहीं कहता। मगर मैं उसके लिए सिर्फ ज़िन्दगी माँगता हूँ। वही ज़िन्दगी जो एक दिन ब्याही लड़की की होती है। उसे पुनर्विवाह की नहीं, पुनर्जीवन की आशा दें, उसे हँसने की आशा दें, उसकी आती-जाती साँसों को मौत की नहीं, ज़िन्दगी की आशा दें। नहीं तो……नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा…मैं !"

………"वह कैसी आवाज़ थी, क्या हुआ ?"

"तुम ठहरो गोपाल, मैं देखकर आता हूँ।" कैलाश ने आगे बढ़ कर दरवाज़ा खोला। बीना नीचे अचेत पड़ी थी। "बीना गिर पड़ी! चक्कर आ गया हो शायद। थोड़ा पानी लाना गोपाल !" गोपाल पाषाण मूर्त्ति सा खड़ा था।

"खड़े देख क्या रहे हो ? बेहोश हो गई है। पानी दो जल्दी !" कैलाश ने गुस्से में कहा।

(शेष पृष्ठ ४१ पर)

भगवान बुद्ध

सरोजिनी नायडू

ासन में अवस्थित भगवान बुद्ध !
तुम्हारी ध्यानमग्न आँखें,
ऊपर उठा हुआ हाथ
अभिव्यक्त करते हैं
उस उदात्त आनन्द को
जो कि चरम और शाश्वत है
उस शान्ति को
जो कि कल्पनातीत है
और हमारे लिए अनुभवगम्य नहीं

हमारा जीवन
प्रतिदिन का है
बदलता रहता है
नए दुःख
पुराने दुःखों को हलका कर देते हैं
एक विचार के बाद दूसरा
एक कष्ट के बाद दूसरा
और अन्त में मृत्यु
जीवन के तारों को उधेड़ देती है

हमारे लिए
दुःख और कष्ट
टूटा हुआ अभिमान
न हारनेवाली पराजय
हमारे जीवन का
फूल कभी खिलता नहीं
फल कभी मिलता नहीं
हमें वह शान्ति कहाँ
जो तुम्हारी पद्मासन की मुद्रा में है
भगवान बुद्ध !

हमारी इच्छाएँ मृगतृष्णा
हमारे अथक प्रयत्न निरर्थक
उच्च शिखरों पर पहुँचने के लिए
हमारा विश्वास शिथिल
हमारे चरण लड़खड़ाते हुए
इतने पर भी हमारी दिव्य जीवन
की भूख
न पूर्ण होती है और न मिटती है

हमारा उद्देश्य
दूर और अप्राप्य
ज्यों ही हम उसके निकट पहुँचते हैं
वह हमसे और अधिक दूर हो जाता है
हमारी नश्वरता
अमरता का एक क्षण
हम कैसे प्राप्त कर सकेंगे
उस चरम और दिव्य निर्वाण को
जोकि तुम्हारी पद्मासन की मुद्रा में है
हे भगवान बुद्ध !

अनुवादक—वंशीधर विद्यालंकार

नालन्दा से प्राप्त बुद्ध की कांस्य मूर्ति

●

बुझे दीप—(पृष्ठ ४० का शेषांश)

"बेहोश हो गई है ? ओह ! कितने दिनों बाद बेहोश हुई है आज ! पानी ? पानी क्या करोगे कैलाश ? तुम उसे होश में लाना चाहते हो ? क्यों ? मैं पूछता हूँ क्यों ? उसे होश में ला तुम उसे क्या दोगे ?"

गोपाल बक रहा था । कैलाश पानी को सुराही की तरफ़ लपका । "खबरदार ! जो कोई उसे होश में लाया । वह अब सुखी है, कम से कम कोई दुख नहीं उसे । बधाई दो कैलाश ! बधाई दो !! अम्मा से कह दो शहनाई बजवाएँ । उनकी बहू बेहोश है, बेटा शादी करने जा रहा है । विवाह रचाओ । जल्दी करो । उसे होश न आने पाए । इस समय वह दुखी नहीं । हः हः हः हः ! बुझे दीप जलाओ कैलाश ! बुझे दीप जलाओ !"

★

विश्व शान्ति और भूदान यज्ञ

सुरेश रामभाई

कुछ समय हुआ दुनिया के आठ बड़े से बड़े वैज्ञानिकों ने एक अपील निकाली थी। इसमें स्वर्गीय अलबर्ट आइन्स्टाइन की भी सही थी और इसका संयोजन इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध दार्शनिक बरट्रेण्ड रसेल ने किया था। इस अपील में अणु शक्ति के हथियारों के निषेध करने की प्रार्थना की गई थी क्योंकि—वैज्ञानिकों ने दुःखपूर्वक निवेदन किया—हीरोशिमा पर सन् १९४५ में जो एटम बम गिराया गया था उससे दो हज़ार गुना शक्तिशाली बम अब बनाया जा सकता है। आजकल इस तरह के बमों के परीक्षण भी करके देखे जा रहे हैं। वैज्ञानिक लोगों का कहना है कि यह परीक्षण भी कम ख़तरनाक नहीं हैं क्योंकि इनसे वायुमण्डल के दूषित हो जाने की सम्भावना है। पारसाल जेनेवा में जो चार बड़े राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ था उसमें एक सूचना यह भी ज़ाहिर हुई थी कि अगर चारों सरकारें निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में कोई उपयोगी कदम उठा सकती हैं तो ज़रूर उठाया जाए। हमारे अपने देश का जो पंचशील सिद्धांत विदेशों में प्रसिद्ध हो गया है उसका भी एक मुख्य अंग यह है कि सम्बन्धित राष्ट्र एक दूसरे के खिलाफ़ हथियार नहीं उठाएँगे। लेकिन इतना सब होने पर भी, शस्त्रों की होड़ लगी है और विश्व शान्ति के लिए खतरा लगातार बढ़ता जा रहा है।

स्पष्ट है कि लड़ाई के केवल न होने को ही शान्ति नहीं कहा जा सकता और जब तक लोगों के अन्दर भय प्रेरणा काम करती है और लाखों-करोड़ों को दो जून भर पेट खाना भी न नसीब हो, तब तक शान्ति की स्थापना हो भी नहीं सकती। अगर विरोधी शक्तियों को यह ख्याल हो कि एक दूसरे के पास हथियार टक्कर के हैं, तो उससे लड़ाई टल भले जाए, शान्ति नहीं पैदा हो सकती। शान्ति तो शान्ति के तरीके से काम करने पर और शान्ति की शक्ति बढ़ाने पर ही पैदा हो सकेगी। इसके अलावा विश्व शान्ति के भवन को खड़ा करने के लिए ठोस बुनियाद की भी ज़रूरत पड़ेगी। विश्व शान्ति तभी हो सकती है जब हर देश में शान्ति हो। हर देश में शान्ति तभी होगी जब वहाँ के हर प्रदेश या प्रान्त, हर ज़िले और हर गाँव में शान्ति हो। जिस तरह छप्पर के एक तिनके में आग लगने पर सारा छप्पर जल उठता है, एक गाँव में अशान्ति होने से सारे विश्व की शान्ति खत्म हो सकती है। इसलिए विश्व शान्ति के लिए यह अनिवार्य है कि हर गाँव या शहर में शान्ति हो।

यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है कि हर गाँव में शान्ति कैसे रहे? इसका एक ही जवाब है—यह कि गाँव की शान्ति में विघ्न डालने वाले कारणों को खत्म या शान्त किया जाए। वे कारण क्या हैं? गाँव की ज़मीन, वहाँ की अचल और चल सम्पत्ति। इनके कारण जो झगड़े, रात-दिन चलते हैं उन्हीं के सहारे पुलिस, अदालत, फौज आदि पनपते हैं। इन झगड़ों का सहज हल यही है कि गाँव की ज़मीन या जो भी सम्पत्ति हो उस पर न किसी की निजी मिल्कियत हो, न सरकारी हो बल्कि गाँव की हो और ज़रूरत के अनुसार गाँव के ही लोग, एकमत से उसका आपस में बँटवारा कर लें। यह तभी सम्भव हो सकता है जब आज जो भूमि सम्पत्ति के मालिक हैं वे खुशी-खुशी अपनी चीज़ों की मिल्कियत छोड़ दें, उसे गाँव के सिपुर्द कर दें और फिर जो भी चीज़ अपने हिस्से में पड़े उसकी एक ट्रस्टी के नाते सँभाल करें। मिल्कियत के विसर्जन से एक बड़ा परिणाम तो यह भी होगा कि लोगों में निर्भयता आएगी। क्योंकि सम्पत्ति या परिग्रह का और डर का चोली-दामन का साथ है।

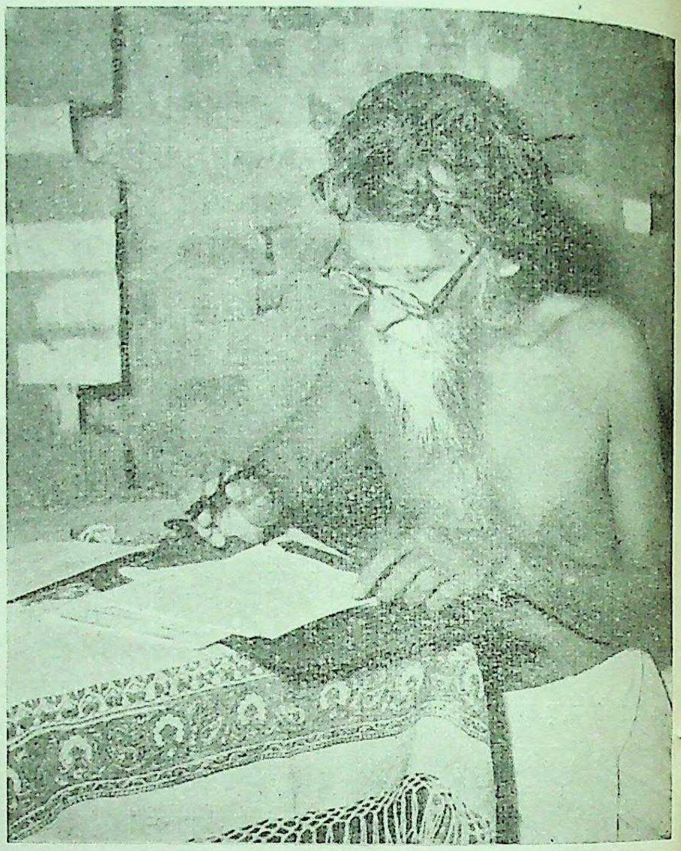

खादी ग्राम में सन्त विनोबा भावे

यह कोई नई या अनहोनी बात नहीं है। सच तो यह है कि घर में मनुष्य इसी पर अमल करता है। समाज में जितनी संस्थाएँ हैं, उन सबमें मनुष्य को घर ही सबसे ज्यादा प्यारा होता है। कारण साफ है—

(क) घर की चीज़ों पर किसी की निजी मिल्कियत नहीं होती। वह पूरे घर की ही होती हैं।

(ख) घर में हर किसी को जरूरत के मुताबिक मिलता है और अपनी योग्यता के मुताबिक हर कोई काम करता है ।

(ग) घर के झगड़े घरमें ही तय हो जाते हैं ।

यही बातें समूचे गाँव में लागू हो सकती हैं । यानी--

(क) गाँव में जो जमीन और सम्पत्ति है उस पर किसी की निजी मिल्कियत न होकर गाँव की मिल्कियत हो ।

(ख) हर कोई—चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित—अपनी योग्यता के अनुसार काम करे और जरूरत के अनुसार पाए ।

(ग) गाँव के झगड़े गाँव में ही तय हो जाएँ ।

आज विश्व शान्ति की माँग यह है कि ये मान्यताएँ विश्व-व्यापी पैमाने पर लागू हों । यही विज्ञान की भी पुकार है । आधुनिक विज्ञान कह रहा है कि जो नियम या सिद्धान्त एक अणु के लिए है वही सारी सृष्टि के लिए । यह नहीं हो सकता कि एक अंश के लिए एक पाबन्दी हो, दूसरे के लिए दूसरी । विज्ञान ने तो अणु के अन्दर सारी सृष्टि का दर्शन करा दिया है और बता दिया कि दोनों के लिए एक ही न्याय चलता है। इसी तरह से जो बात एक व्यक्ति के लिए ठीक और अच्छी है वही सारी दुनिया के लिए ठीक और अच्छी होगी । गौतम बुद्ध ने तो कहा ही है—

"इन्सान खुद ही अपना मालिक है । खुद ही अपना लक्ष्य है । इसलिए जिस तरह सौदागर घोड़े को काबू में रखता है तुझे अपने पर काबू रखना चाहिए ।"

इसलिए अगर सामूहिक तौर पर काबू पाने की कोशिश की जाए तो विश्व शान्ति होकर रहेगी । अपनी चीज़ों को मिल्कियत छोड़ना अपने पर काबू पाने की ही निशानी है । और यही बाइबिल का आदेश है—'पड़ोसी पर अपने जैसा प्यार करो ।' पड़ोसी के दुःख दर्द में शरीक हुए बिना उस पर प्यार नहीं किया जा सकता । वह प्यार तभी सार्थक होगा जब मिल्कियत समाज की हो और व्यक्ति खुद ट्रस्टी के जैसा व्यवहार करे ।

सवाल अब यह रह जाता है कि क्या यह व्यावहारिक बात है अपनी मर्जी से मिल्कियत छोड़ देना मृगमरीचिका जैसी चीज़ तो नहीं ? हरगिज़ नहीं । पिछले सवा पाँच साल में भूदानयज्ञ आन्दोलन ने जो प्रगति की है उसने इस बात को सच्चा सिद्ध कर दिखाया है । पाँच लाख से ऊपर लोगों ने लगभग बयालीस लाख एकड़ ज़मीन का दान दिया है और करीब बारह सौ गाँवों में ज़मीन की मिल्कियत किसी की निजी न रह कर गाँव भर की हो गई है । भूदानयज्ञ की सफलता बतलाती है कि घर के अन्दर जो मूल्य और मान्यताएँ प्राणवान हैं समाज उन्हें स्वीकार करने को तैयार है ।

भूदान की यात्रा से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात है दान की शान्तिमय प्रक्रिया । डराने, धमकाने, ललचाने या दबाने की इसमें कोई बात ही नहीं है । अपनी खुशी से, सोच, समझकर दाता दान दे रहा है । इस तरह देश के अन्दर एक नया जलवायु उत्पन्न हो रहा है जिसके कारण यहाँ के लोग अपने सवालों का हल शान्ति, उदारता और दूर दृष्टि से कर सकते हैं । भूदानयज्ञ की मुख्य विशेषता यही है जो दुनिया के अन्य शान्ति आन्दोलनों में नहीं मिलती ।

१९४८ में जयपुर में सर्वोदय प्रदर्शनी के उद्घाटन के बाद सन्त विनोबा चरखा चलाते हुए

संक्षेप में हम उन पर विचार करेंगे । सबसे प्रचलित और पुराना ढंग है हथियारों द्वारा शान्ति। लेकिन यह भ्रम मात्र है । क्या यह कभी सम्भव है कि जो चीज़ें शान्ति को तबाह करती हों उनसे शान्ति पैदा हो सकेगी ? तो उन चीज़ों के तैयार करने से शान्ति कैसे आ सकती है ? परशुराम ने पृथ्वी पर से क्षत्रिय जाति को मिटाने के लिए इक्कीस बार कोशिश की—यानी खुद क्षत्रिय बने । तब फिर क्षत्रिय खत्म कैसे होते ? इसी तरह हथियारों द्वारा शान्ति लाने की कोशिश कभी सफल नहीं होने वाली है । वह तो बबूल बोकर आम पाने की आशा करना जैसा है । विज्ञान सावधान कर रहा है कि अगर मनुष्य समय रहते नहीं चेतता है, तो मानवजाति ही इस धरती पर से उठ जाएगी ।

शान्ति का दूसरा उपाय है राष्ट्र संघ के माध्यम से काम करना । एक मेज़ के चारों तरफ सब देशों के प्रतिनिधि बैठकर आपस में वाद-विवाद और चर्चा कर लेते हैं । लेकिन इस तरीके में कमज़ोरी यह है कि बैठने वालों को एक-दूसरे पर विश्वास नहीं होता । एक-दूसरे को बहुत शंका की निगाह से देखते हैं । ऐसी हालत में शान्ति कहाँ से आ सकती है ?

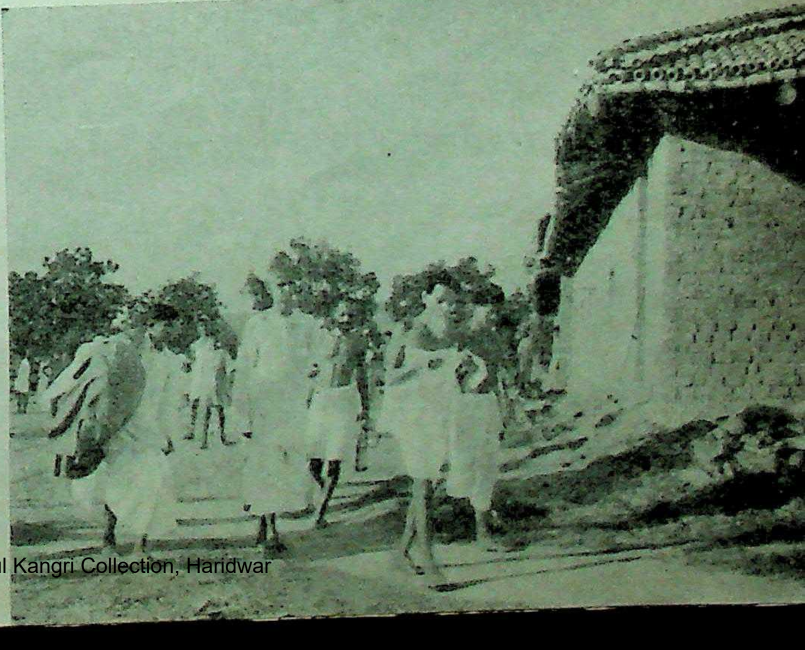

सन्त विनोबा अपने कार्यकर्त्ताओं के साथ

तीसरी कोशिश नैतिक शस्त्रीकरण दल की है। उसके सदस्यों का कार्यक्रम यह है कि परस्पर प्रेम और मैत्री पैदा करने के लिए विभिन्न देशों में लोक-हित के काम करते रहें। लेकिन उनका यह निश्चय नहीं है कि हथियारों का इस्तेमाल किसी भी हालत में नहीं होना चाहिए। उन्हें खुद ही पता नहीं कि किस स्थिति में वे क्या कर बैठेंगे।

इनके अलावा दो संस्थाएँ और हैं जो शान्ति के लिए प्रयत्नशील हैं—शान्तिवादी या पैसिफिस्ट लोग और 'विश्व शान्ति आन्दोलन' वाले। शान्तिवादी बन्धु तो अपने विचारों के लिए संसार प्रसिद्ध हैं। हथियारों से उनका पूरा परहेज़ और हर हालत में परहेज़ है अपनी इस अनुपम निष्ठा के कारण वे तरह-तरह के कष्ट भी झेल चुके हैं। लेकिन केवल हथियार नहीं उठाने से तो दुनिया से युद्ध नहीं मिटाए जा सकते। इस निश्चय के साथ-साथ कुछ कार्यक्रम भी ऐसा होना चाहिए जिससे कि शान्ति के लिए रचनात्मक शक्ति पैदा हो सके। मोटे तौर से कहें तो शान्तिवादियों का काम अच्छा है, पर निषेधात्मक मात्र है।

रहे विश्व शान्ति आन्दोलन वाले। वे शान्ति इस कारण से चाहते हैं कि बिना शान्ति के बहुत से देशों का विकास हो ही नहीं सकता जैसे हिन्दुस्तान, चीन, इन्डोनीशिया, यूगोस्लाविया आदि। उनका कहना है कि 'अविकसित' देशों को शान्ति की खास दरकार है। क्योंकि अगर वहाँ अशान्ति रहती है तो न वहाँ की गरीबी दूर हो सकती है और न वहाँ का जीवन-मान उठ सकता है। दूसरे शब्दों में उन्हें आर्थिक प्रगति की खातिर ही शान्ति चाहिए।

इन सब शान्ति प्रयासों की चर्चा करते हुए विनोबा जी ने एक बार कहा था—

"शान्ति पानी की तरह होती है। उसके दो उपयोग हैं, फ़सल के लिए और प्यास मिटाने के लिए। जिसे समृद्धि बढ़ाने के लिए शान्ति चाहिए, वह समृद्ध बनने पर कहता है कि अब शान्ति नहीं चाहिए। लेकिन जिसे पानी के समान शान्ति की स्वतंत्र प्यास है, उसे हर हालत में शान्ति चाहिए। दुनिया में तब तक शान्ति नहीं होगी, जब तक मानव को शान्ति की स्वतन्त्र प्यास नहीं लगती। भूदान यज्ञ के जरिए हम यही कोशिश कर रहे हैं कि लोग शान्ति का स्वतन्त्र मूल्य समझें।"

इससे विदित होता है कि शान्ति के लिए दुनिया में जो आज अनेक प्रयत्न हो रहे हैं वे अपने में भले ज़रूर हैं, मगर अधूरे हैं। उनकी बुनियादें खोखली हैं। इसलिए सच्ची शान्ति स्थापित करने में वे सहायक नहीं हो सकेंगे इसके विपरीत भूदान की पहुँच कहीं ज्यादा गहरी है और उससे शान्ति की शक्ति खड़ी होने वाली है। विनोबा जी के शब्दों में—

"भूदान के बारे में जब हम बोलते हैं तो लोग हमसे कहते हैं कि आप लोगों को जो समझाते हैं, वह अच्छा काम है, लेकिन अगर कानून हो जाएगा तो यह काम कहीं ज्यादा जल्दी हो सकेगा। ऐसे लोगों से हमारा निवेदन है कि कानून को हम रोकते नहीं, कानून आप बनाइए। जिनको आपने वोट दिया है उनसे बनवाइए। लेकिन हमारा यह जो भूदान का प्रयत्न चल रहा है वह सिर्फ ज़मीन प्राप्त करके उसको बाँटने का नहीं है। वह इसलिए है कि शान्ति का एक नूतन शस्त्र बने। शान्ति का एक स्वतन्त्र मूल्य है यह बात लोग समझें। और ज़मीन के भी मसले शान्ति से ही हल कर लें। इस तरह शान्ति का स्वतन्त्र मूल्य स्थापित करने के लिए आज भारत को बहुत अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है।"

शान्ति के लिए जो उद्योग किए जा रहे हैं उनमें एक चीज़ खटकने वाली और भी है। वह यह कि उन उद्योग करने वालों की श्रद्धा उन्हीं मूल्यों और मान्यताओं पर है जिनमें उनकी है जिन्हें शान्ति की कोई चिन्ता नहीं है। वे मूल्य यह हैं—सम्पत्ति पर निजी या सरकारी मिल्कियत, मानसिक श्रम के मुकाबले शारीरिक श्रम की हीनता, आदि। इसके विरुद्ध भूदान के मौलिक मूल्य यह हैं—

(क) सम्पत्ति या उत्पादन के साधनों पर समाज की मिल्कियत हो।

(ख) मानसिक और शारीरिक श्रमों के बीच भेद-भाव न बरता जाए।

(ग) उत्पादक शरीर श्रम थोड़े समय के लिए अनिवार्य रूप से हर कोई करे चाहे वह बौद्धिक काम करता हो या राज्यकर्त्ता हो।

दूसरे शब्दों में भूदान का आशय यह है कि सोचने-विचारने के जो आज चालू ढर्रे हैं उनमें फरक किया जाए और जिस तरह चोरी एक सामाजिक रोग है उसी तरह परिग्रह को भी दोष समझा जाए। भूदान या सम्पत्ति दान के द्वारा व्यक्ति परिग्रह के अत्याचार से मुक्त होकर अपनी संग्रह-वृत्ति को नया और ऊँचा रूप देता है। अपरिग्रह पर आधारित होने के कारण भूदान गरीब की गरीबी और अमीर की अमीरी मिटा कर दोनों को एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहयोगी बना कर समरस समाज का निर्माण करता है। इस प्रकार व्यक्तिगत लाभ की वासना जहाँ दूर होती है और जैसा उस अप्राकृतिक गद्दी से उतर आता है जिस पर वह आज स्थिति वश विराजमान है, तो वातावरण एक दम बदलेगा, मनुष्य को अपने नैसर्गिक विकास का सुन्दर अवसर मिलेगा और जीवन एक नए रंग से निखर उठेगा।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि भूदान यज्ञ किस प्रकार विश्व-शान्ति के लिए काम कर रहा है और इसमें तथा शान्ति के दूसरे आन्दोलनों में कहाँ भेद है। सच तो यह है कि भूदान यज्ञ की कोई आस्था हिंसा-शक्ति या दण्ड-शक्ति पर नहीं है। वहाँ कि हिंसाशक्ति के रहते रहते शान्ति केवल सपना है, सर्व-विदित है। लेकिन दण्ड-शक्ति या कानूनी बल भी कम खतरनाक या हानिकारक नहीं है। यह सही है कि प्रजातंत्र के अन्दर जनता ही अपने वोट द्वारा सरकार को दण्ड का अधिकार सौंपती है। लेकिन कौन नहीं जानता कि सरकारों की कोशिश सदा यही रही है कि हमेशा हमारा ही शासन चलता रहे। इसलिए सरकार में जो दल होता है वह दूसरे दलों को पनपने नहीं देता उन्हें ढकेलने की साँठ-गाँठ में लगा रहता है। इसलिए वह शस्त्रों का सहारा लेता है और शस्त्रों की ताल ऐसी बाँधता है कि उसे कोई हटा न सके। यही वजह है कि दण्ड-शक्ति शस्त्रों के बढ़ाने में उत्तरोत्तर सहायक हो रही है। इस वास्ते यह कहा जा सकता है

प्रातःकालीन सैर के समय सन्त विनोबा भावे बाबा राघवदास से बातचीत करते हुए

कि हिंसा-शक्ति से शान्ति के शरीर को चोट पहुँचती है और दण्ड-शक्ति से उसकी आत्मा का हनन होता है। इसलिए एक तीसरी शक्ति की बड़ी आवश्यकता है। वह शक्ति ऐसी हो जो हिंसक-शक्ति की तो विरोधी हो और दण्ड-शक्ति से भिन्न हो। विनोबा जी ने इसे लोक-शक्ति का नाम दिया है। इसे हम प्रेम-शक्ति या आत्म-बल भी कह सकते हैं।

लोक-शक्ति के तत्वावधान में लोग अपने सवालों को खुद ही हल करने की कोशिश करेंगे। और कम से कम ऐसे सवाल तो जरूर हल करेंगे जिनका वास्ता खाना, कपड़ा, मकान, तालीम, सफ़ाई, इन्साफ़ आदि जैसी बुनियादी बातों से हो। इन मामलों में सरकारों को वैसे भी दखल नहीं देना चाहिए। वे अपने ही बल से उन्हें सुलझाएँ। हाँ, अगर वह मर्यादा का ध्यान न रखें और समाज के जीवन में अड़चन पैदा करें तो सरकार ज़रूर हाथ डाले। लेकिन अगर लोग सहयोग और प्रेम के साथ यह मसले हल कर लेते हैं तो सरकार क्यों बीच में पड़े। इस तरह जन-शक्ति से जब काम होगा तो समाज आज की तरह अविश्वास घृणा और जिसे 'योग्यतम की बचत' जैसे आधारों पर खड़ा न होकर विश्वास, सहयोग और 'सर्व भूत हिते रतः' पर खड़ा होगा। सरकारी शक्ति वहाँ रहेगी, पर एक दण्ड बन्धक के रूप में नहीं, बल्कि फूलों को जोड़ने वाले धागे की तरह। इस प्रकार भूदान यज्ञ की योजना है कि शासन मुक्त, समस्त और पक्षातीत समाज का निर्माण हो। पक्ष या 'पार्टियाँ' जो 'पार्ट' का प्रतिनिधित्व करती हैं दिलों को 'पार्ट' करती हैं फाड़ती हैं, जोड़ती नहीं। इसलिए पक्षातीत समाज की परम आवश्यकता है। सार यह है कि भूदान यज्ञ जिस समाज को सामने रखकर आगे बढ़ रहा है वह आज के समाज से बिल्कुल भिन्न होगा—पर ज्यादा प्राकृतिक, सरल और समरस। इसका मतलब यही है कि आज की रचना में आमूल क्रान्ति की जरूरत है। विनोबा जी ने इसे 'भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति' कहा है।

अंत में एक बात और उत्तरोतर बढ़ती हुई हिंसा या व्यवस्थित हिंसा का मानव का प्रयत्न आज अतिहिंसा के दर्जे को पहुँच गया है। इसके आगे दो ही सम्भावनाएँ हैं या तो यह विकराल रूप लेकर सर्वनाश कर देगा—न मानव रहेगा न इस हिंसा का नाम लेवा पानी देवा कोई रहेगा। या फिर इस अतिहिंसा को खत्म करके पूर्ण अहिंसा की तैयारी होनी चाहिए तब मानव बचेगा, सब का भला होगा, सर्वोदय होगा। इसलिए अतिहिंसा की प्रक्रिया को बहुत तीव्रता और वेग के साथ अहिंसा में बदलना चाहिए। बिना इसके विश्व शान्ति असम्भव है। इस दृष्टि का सविस्तार स्पष्टीकरण करते हुए विनोबाजी ने एक बार कहा था—

"बात केवल भूमि समस्या हल करने की नहीं है। दुनिया की कुल सलतनतें मिटानी हैं जो कि हिंसा को सीमित करने में कारगर नहीं हो सकतीं। उनको मिटाने के लिए और परिणाम स्वरूप दुनिया में अहिंसा की स्थापना करने के लिए, यानी विश्व शान्ति के लिए हम भूदान माँग रहे हैं क्या आप विश्व शान्ति के लिए जमीन का, सम्पत्ति का छठा हिस्सा नहीं दे सकते? आप जो दान-पत्र देंगे वह विश्व-शान्ति के लिए है।"

यही वजह है कि भारत के इस भूदान यज्ञ की ओर आज दुनिया बड़ी आशा की निगाह से देख रही है। जिस देश ने सत्याग्रह के द्वारा, सामूहिक असहयोग के द्वारा, अहिंसा के द्वारा राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली, वह अगर अहिंसा के द्वारा आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं करेगा तो कौन करेगा? उसके बाद ही भारत दुनिया का मार्ग-दर्शन कर सकेगा।

●

नई कविता : उपलब्धि और भ्रांतियाँ—(पृष्ठ २९ का शेषांश)

भाँति ही, नयों और पुरानों के परस्पर विरोधी और सर्वथा विच्छिन्न दो शिविरों की धारणा चालू करने के संगठित अभियान में जुट गए हैं क्योंकि दो परस्पर विरोधी खेमों में दुनिया को बाँटे बिना एक की नेतागिरी हाथ नहीं लगती। किन्तु नई कविता किसी एक खेमे की कविता नहीं है, चाहे उसके नेता उसे राहों के अन्वेषियों का खेमा ही क्यों न बताएँ। नई कविता वास्तव में उन सभी अनगिनती छोटे-बड़े इंसानों की कविता है जो शायद एक लम्बे समय तक इधर-उधर भटकने के बाद अब अपने-अपने स्तर पर जीवन की सार्थकता का सन्धान पा रहे हैं और इस चेतना को नाना-रूपों और आकृतियों में सहज ही अभिव्यक्त करने के लिए उलझ रहे हैं।

इस सम्बन्ध में पूर्व प्रकाशित लेख : श्री भगवतीचरण वर्मा, जुलाई १९५६, श्री प्रभाकर माचवे, सितम्बर १९५६

●

मालवे की संगीत साधना

सूर्यनारायण व्यास

मालव-प्रदेश भारतवर्ष का 'हृदय' है, विभिन्न समयों में भारत के विभिन्न-अंगों ने जो उन्नति की है, वह उसके 'हृदय' स्पर्श की उच्चता की प्रतीक ही है। मालव ने साहित्य-संगीत और कला में जो देश और विदेश को देन दी है, वह इस राष्ट्र के गौरव-वर्द्धन में सहायक हुई है। कालिदास-भास-बाण का साहित्य, आज विश्व, साहित्य की अमर निधि है।

जिस प्रदेश की साहित्यिक-समुन्नति ने जगत के समक्ष उसे साहित्य-साम्राज्य के सिंहासन पर समासीन करवाया है, उसकी संगीत और कला-साधना कितनी समुन्नत और गौरव-गिरि पर समासीन होगी, यह कहना सहज सम्भव नहीं है। महाश्वेता की वीणा-विनन्दित स्वर लहरी का आकर्षण, महाकवि बाण की कविता मंजरी को भी सुरभि-भाराक्रांत बनाने में 'सहायक' हुआ है। वासवदत्ता की वीणा-प्रवणता, नीलगिरि जैसे प्रमत्त गजेन्द्र को वशीभूत कर लेने वाली मंजु-घोषावलि (वीणा) का स्वर-संधान साहित्य-रसिकों को सदैव विमोहित करता रहेगा। उस अवंती-सुन्दरी-वसन्तसेना की मनोहारी संगीत साधना और मधुर-मद-स्पंदिनी स्वर लहरी को कौन ऐसा रसिक होगा जो आज भी नहीं सुन रहा होगा, जिसने परम-रसिक दरिद्र चारुदत्त के चरणों में अपनी संगीतांजलि समर्पित कर दी थी। सम्राट् समुद्रगुप्त की यह प्रसिद्धि है कि वह रसिकाचार्य था। उसके शिलांकित लेख शतियों से प्रमाण प्रस्तुत करते हुए खड़े हैं, स्वर और वेणु-वादिता में उसका उस काल में कोई समकक्ष नहीं था। उसकी राज-मुद्राओं पर भी वीणा अमर बनी हुई है। उसके तथा विदिशाधिराज-पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञों के प्रसंग पर वीणा के प्रवीणवादक चारों द्वारों पर अपनी सतत-स्वर-लहरी प्रवाहित करते रहते थे। यही हाल चन्द्रगुप्त द्वितीय की रसिकता के हैं। इतिहास के पृष्ठों पर नेत्रों को निरन्तर व्यायाम करना पड़ेगा। सम्राट् अशोक के रस-विलास, और कलानुराग का वर्णन उसके 'चण्डाशोक' से 'देवानांप्रिय' के मध्यकाल के रस-रहस्य में सन्निहित है। और ध्रुवस्वामिनि की कथा-गाथाओं का साक्षी भी इतिहास बना हुआ है। वीर-विक्रमादित्य की अगणित यशोगाथाओं के अन्तर्गत उसके दीपक-राग की प्रवीणता भी प्रचुर प्रख्यात बनी हुई है। दो हजार वर्ष बीत जाने पर भी वह जग-जनश्रुतियों में जुड़ी चली आ रही है। उसी प्रकार महाकवि कालिदास की रसवन्ति ने अवंती में जिस रस-निर्झरिणी को प्रवाहित किया है, उसके आस्वादमात्र से विश्व रस-विमुग्ध बना हुआ है। महाकालेश्वर के सांध्य पूजन, पटह-वादन, ताण्डव-नर्तन से लेकर यक्ष-गंधर्व-किन्नरों की रस-वर्षा तक का सुन्दर समावेश है। कवि के काव्य नाटकों में गीत-वाद्यों, गायन-कला-कुशली जनों की महत्ता और उनके समादर का सुन्दर और सरस वास्तविक वर्णन है। भोज-भर्तृहरि जैसे विद्या-कला के परमोपासक राजर्षियों ने श्रृंगार ही नहीं, स्वर-संगीत साहित्य पर भी ग्रन्थ-सृष्टि कर कला-प्रवणता, और मर्मज्ञता का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत किया है। ऐसे ही किसी परम कलोन्नत-काल में उस 'मालव-राग' को अवतरित होने का अवसर उपलब्ध हुआ है—जिसे प्रादेशिक नाम से संयुक्त हो, राग-राष्ट्र में प्रवेश करने का अधिकार मिला है। 'मालव-राग' अपने प्रदेश की रागानुरागिता और साधना-सिद्धि का चिर-प्रतीक बनकर संगीत साहित्य में समादृत है।

अवश्य ही संगीत-स्वर-नाद-शास्त्र के पुरातन रूप-रस-भेदों का मर्म, और मौलिक महत्त्व आज के युग में सहज सुलभ नहीं, राग-राज्य पर भी विदेशी वर्चस्व ने दुष्प्रभाव डाला है। विभिन्न संस्कारों के कारण उनके सही स्वरूप समझने में भी बाधा उत्पन्न हो गई है। हमें अपने रागों से भी इसी कारण बहुधा विराग हुआ है। यही कारण है कि अनेक महत्त्व के मौलिक रागों का रूप, और अस्तित्व भी संदिग्ध बन गया है, कुछ तो विस्मृति के गर्भ में विलीन ही हो गए हैं, और उनके विषय में हमारा ज्ञान दयनीय हो गया है। आवंती, शौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि भाषाओं में जिस 'आवंती' को आदर-स्थान उपलब्ध था, वह उपेक्षित, काल के कुटिलआवरण में अपना मुख छुपाए हुए है, और नाटकों में प्रचलित तथा लोकप्रिय 'आवन्ती-रीति' भी न जाने किस पट में प्रच्छन्न है। इसी प्रकार राग मालिकाओं में मालव-राग का प्रयोग भी विस्मृतावस्था में चला जाए तो विस्मय का कारण नहीं। आज के रागानुरागियों की ज्ञान-निधि इतनी अल्प है कि उनका वैभवोन्माद केवल अंग्रेज़ी काल के धनिकों की तरह बना हुआ है—जिनका कोष दारिद्र्य-राशि-संचित कर ऊपर से रजत-आवरण डाले पूँजी का निरर्थक प्रदर्शन कर रहा हो!

आज मालव-राग विस्मृत रागों में से है, अवश्य ही इसका प्रयोग स्वतंत्रता पूर्वक होता रहा है। पुराने संगीत शास्त्रीय ग्रन्थ प्रमाण हैं। कुछ लोग 'मालकंस' को 'मालव-कौशिक' का विकृत रूप बतलाकर शब्द शास्त्र की शल्य क्रिया कर डालते हैं और कुछ संगीतज्ञ 'मारवा' को 'र-ल यो र भेदः' के न्यायानुरूप 'मालवा' रूपान्तर प्रदर्शित करते हैं, परन्तु यह ज्ञान का दयनीय प्रदर्शन मात्र है। मालव ही क्या, अनेक राग, स्वर, भेद आदि अज्ञात बन गए हैं, राग-शास्त्र से हमारा सम्बन्ध विच्छिन्न होने के कारण यह अज्ञान बढ़ा हुआ है। मालव-राग का स्मरण पुरातन साहित्य में अब भी उपलब्ध है। उसके उदाहरण भी मिलते हैं, शब्द-सुर-सरी का एक मात्र-भाषा-भगीरथ, सुकुमार सुंदरी कविता का कान्त-कवि जयदेव गीत-काव्य का रस-सम्राट् रहा है। उसने अपने गेय-काव्य में विभिन्न रागों का साधिकार प्रयोग किया है। जयदेव की संगीत प्रवीणता पर

कोई संगीत-मर्मज्ञ अंगुलि-निर्देश करने का साहस नहीं कर सकता। वह राग-रागिनियों का न केवल मार्मिक ज्ञाता ही, किन्तु सफल प्रयोक्ता भी रहा है। उसकी वाणी राग-रागिनियों में ही प्रवाहित हुई है। उसने अपने अमर गीति काव्य 'गीत गोविन्द' में प्रथम पद्य ही मालव-राग में गूँथ कर प्रथम-स्थानीय सम्मान प्रदान किया है। मालव-राग का यह सम्मान सूचित करता है कि १२वीं शताब्दी तक यह राग लोकप्रिय बना हुआ था, अन्यथा बंग (बंगाल) का रसिकशिरोमणि जयदेव, किसी अपने अन्य प्रिय राग, या प्रादेशिक-संगीत का प्रथम प्रयोग कर सकता था। मालव-राग से अपने गीत-काव्य का आरम्भ कर मालव रागानुरागिता और उसकी विशेषता को कवि ने स्वीकार किया है।

मालव-राग के उदाहरण स्वरूप यहाँ उसका प्रथम पद्य प्रस्तुत करते हैं :—

गीत

मालव रागे, रूपक ताले, अष्टपदी

प्रलय पयोधि जले धृतवानसि वेदम्
विहित वहित्र चरित्र मवेदम्
केशव धृत मीन शरीर,
जय जगदीश हरे। (ध्रुव)

इस प्रकार ११ पदों में, दशावतारों का क्रमशः वर्णन मालव-राग के रूपक ताल, अष्टपदी में किया है। आगे विभिन्न पाँच रागों में अन्य गीतों को ग्रथित कर फिर मालव-राग का दूसरा उदाहरण गीत गोविन्द में दिया है। परन्तु यहाँ एक ताल और अष्टपदी का प्रयोग किया है, यथा—

मालव रागे, एक ताली ताले, अष्टपदी

निभृत निकुंज गृहं गतया
निशि रहसि निलीय वसन्तम्।
चकित विलोकित सकल दिशा,
रति रभस भरेण हसन्तम्,
सखि हे, केशीमथन मुदारम्
रमण मयासह मदन मनोरथ
भानि तया सविकारम् (ध्रुव)

आगे सप्तम सर्ग के आरम्भ में फिर मिश्रित राग के रूप में एक और उदाहरण प्रस्तुत किया है, यह 'गौड़-मालव-राग' है। जिस प्रकार 'गौड़-मल्हार' होता है, उसी प्रकार मालव राग का 'गौड़' भेद है। इसे प्रतिमंठ-ताल, अष्टपदी में दिया है। जैसे—

कथित समयेऽपि हरि रहह नवयौवनम्
मम विफलमिदम् मलरूपमपि यौवनम्।
यामि हे, कनिह शरणम्।
सखिजन वंचिता। (ध्रुव)

संगीत रत्नाकर में इसका भेद इस प्रकार बतलाया है :—

ग्रहान्निषादा दारोहे दीपस्तूर्यं स्वरांवकः।
विलंघ्य ग्रहपर्यंतमवरोहो यदा भवेत्।
तदा द्राविड़-गौड़स्य स्वस्थानं प्रथमं मतम्,
लोके मालव-गौड़ोयं तृतीयोस्यग्रहो मतः।

जयदेव के मधुर काव्य में मालव-राग ने मादकता भर दी है। कवि इसके भेदों, ताल, स्वरों से पूर्ण परिचित रहा है। कवि के प्रयोग से इस राग के प्रति उसकी आसक्ति प्रकट होती है। विक्रम के नव-रत्नों में कवि शंकुक का नाम प्रख्यात है। उनका समय और साहित्य अनुपलब्ध है। परन्तु उनकी प्रसिद्धि संगीत-शास्त्रज्ञ के रूप में रही है। मालव राग पर उनके कई आविष्कार थे, यह किंवदन्ती आज भी प्रचलित है।

संगीत कलाधर नामक पुरातन शास्त्रीय-ग्रन्थ में मालव-राग के विषय में विविध वर्णन प्राप्त हैं। उसके स्वर-भेद वर्णन नामक पाँचवें कला विभाग में स्पष्ट सूचित किया है कि—'भरत मुनि ने नारद के सम्मुख मालव-राग, श्रीराग और मनोहर का मिश्रण कर जिस राग का गायन किया, उसे 'राजहंस' कहा गया था, अर्थात मालव-राग के विभिन्न मिश्रण का स्वरूप 'राजहंस' था। इस समय राग-संसार में विशेष रूप से हनुमन्त-मत का प्रचार है, उसके अनुसार ६ राग प्रधान माने गये हैं। उसमें पंचम राग 'श्रीराग' है। श्रीराग की पाँच रागिणियाँ हैं। ये स्त्री–संज्ञक हैं। और ८ पुत्र भी हैं। उक्त श्रीराग के पुत्रों में—१. सिंधु, २. मालव, ३. गौड़, ४. गुणसागर, ५. कुंभ, ६. गंभीर, ७. शंकर, और ८. विहागड़ा हैं। हनुमंत मतानुरूप मालव-राग श्रीराग का द्वितीय-पुत्र है।

मालव-राग का रूप इस प्रकार वर्णित किया गया है :

नितंबिनी चुंबित वक्र पद्मः
शुकद्युतिः कुण्डलवान् किरीटी,
संगीत मालां प्रविशत् प्रदोषे,
मालाधरो मालव-राग राजः।

इसी प्रकार मालव-राग का रूप "राग कौतुक" में प्रस्तुत किया है :

गमधाश्च पसौरोहे
रिसौ निधौ पसौ मगौ
रिसौ निसौ स्वरे रेभि
मालवः परिगीयते।

जो लोग मारवा, और मालकंस को 'रलयो रभेदः' के अनुसार 'मालव' सूचित करते हैं, वह तो कदापि उचित नहीं, मारवा सर्वथा भिन्न है। वह 'मारु' से मारवा है। यह मालकंस का पुत्र—राग है। इसका अन्य भेद 'मेवाड़ा' भी है जो स्पष्ट ही मरु (मारवाड़) भूमि से मेवाड़ का निकट सम्बन्ध सूचित करता है। और जिस 'मालश्री' को 'मालव-श्री' के अपभ्रंश के रूप में कहा जाता है। वह भी रागश्री की भार्या-रागिणी है। उसका रागों में स्वतन्त्र स्थान नहीं है। ये मालकंस के भेदों में परिगणित हैं।

जिस श्रीराग के अष्ट-पुत्रों में "मालव" की मान्यता है, वह श्रीराग शुद्ध राग है। वह किसी मिश्रण से निर्मित नहीं है। महादेव के पश्चिम-मुख से उसकी उत्पत्ति मानी गई है। कुछ लोग उसे शेषनाग से प्रसूत भी मानते हैं। श्रीराग की पाँच भार्याओं में से 'मारवा' है। जिसके खरज, शुद्ध, रिषभ, कोमल, गंधार, तीव्र, मध्यम-तीव्र, धैवत-कोमल,

तमिल कविता

महान बापू

नामक्क्ल रामलिंगम पिल्लै

करुणा की अद्भुत महिमा
गान्धी जैसे किसने दिखाई ?
मृत्यु उनके शरण में स्नेह पाती
तो बाकी क्या है जो त्रास पाए ?

सत्य धर्म ही शस्त्र है,
सात्विक जीवन ही सूत्र है,
उत्तम गान्धी को भूल जाए,
सच्ची आज़ादी ओ ! वह छिप जाती ।

खून, हत्या, न करके
पवित्र विचार कलंकित न कर,
दुनिया में जो निराली सबसे
वैसी आज़ादी अलौकिक हमने पाई ।

अणु बम से पीड़ित न होकर,
आत्मबल से अनुराग भरी,
अद्भुत, अनदेखी शक्ति को,
हम में भरने वाले वे महान बापू ।

भारत भूमि के तत्त्व ज्ञान को,
विश्व भर में विख्यात किया,
निन्दा स्तुति से निर्लिप्त, उसे
शान्ति ही चरम ध्येय रहा ।

युद्ध की भीति से भ्रान्त,
देश, विदेश का दिल काँपे,
दिन, दिन, अकुलाए चित्त,
गूँजेगा तव गान्धी का अमर सन्देश ।

देश, विदेश के ज्ञानी चिन्तक,
गान्धी का स्मरण कर पाएँ शाँति,
हे भारतीय हुए पागल क्या ?
क्यों बेसिरपैर की बातें करते हो तुम ।

शान्ति का अनुसंधान किया,
गान्धी को तुमने जन्म दिया,
सत्य के रक्षक हे भारत ?
करुणा का मार्ग अपनालो तुम ।

—अनुवादिका, सरस्वती रामनाथ

◆

और निषाद-तीव्र इस प्रकार ६ स्वर हैं, पंचम इसमें वर्ज्य है । ग्रह-स्वर रिषभ है । मध्यम और धैवत इसमें न्यास है । वादी स्वर धैवत है । संवादी मध्यम-तीव्र है । और यह मारवा-रागिणी गौरी-परज एवं सोरठ से मिश्रित रागिणी है । परन्तु श्रीराग का पुत्र—'मालव-राग' विभास गौरी और परज से मिलकर रागरूप प्राप्त करता है । इसी प्रकार शिवमत के अनुसार श्रीराग का एक भेद मालव-राग है । और यह शाम के समय गाया जाता है ।

शिवमत के अनुसार ही कृष्णमत (अथवा कालिनाथ मत) भी मालव-राग को श्रीराग का पारिवारिक राग स्वीकार करता है । इसके विपरीत भरत की मान्यता के अनुसार मालव-राग श्रीराग के उपरागों में न होकर हिंडोल राग के पुत्र-राग में परिगणित हुआ है । संगीत कलाधर-ग्रन्थ में इस पर विशद चर्चा हुई है । मालव-राग में गेय-पद का एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—लिखा है—

अथ-मालवीय रागे पदानि गेयानि, तत्रादौ ध्रुवपदं ज्ञेयं झँपताले ।
कुसुमेपु संधिनि, गिरिसुता रागिणि ।

अथ पदानि—

कमल लोचनसुसेरति कलामंडितो,
पर काम सुंदरो भोग कामी,
मणि गणै रंजितं श्रुतिवानुविग्रहो
मन्मथाकृति मदोन्मत्तदेहः
सित पुष्प वाससा परिवृते
मंदिरे मृद्रुतरे तस्यके संस्थितः स्यात् ।
आलिंग्य सुखरते घन कुचा कामिनी
चुंबने विरतया वोष्ट भालं ।
रात्रि गेयौ

माल कौशिक के विषय में स्वतन्त्र रूप से कहा गया है कि—

सन्यासः वाडवः सादिः
कथितो माल कौशिकः ।

इसी प्रकार राग मंजिरी में बतलाया है—

एकैक गतिको रिधौ, निगौ, मालव कौशिकः ।

इसका समय कल्पद्रुम—कर्ता के मत से
निशि त्रितीये प्रहरे गेयो मालव कौशिकः ।
इसी प्रकार—

विपुलंसे प्रयोक्तव्यः
शिशिरे प्रहरेन्तिमे ।

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

विशाखा

सेठ गोविन्ददास

मुख्य पात्र

[नाटक में प्रवेश के अनुसार]

१. गौतम बुद्ध
२. विशाखा—बुद्ध की शिष्या, नाटक की नायिका
३. रेणुका—पुण्यवर्धन की माता, जिस पुण्यवर्धन के साथ आगे चल कर विशाखा का विवाह हुआ
४. मिगारा—पुण्यवर्धन का पिता
५. पुण्यवर्धन—विशाखा का पति
६. धनंजय—विशाखा का पिता
७. सुमनादेवी—विशाखा की माता

स्थान

भद्दीय—अंगदेश का एक नगर
श्रावस्ती—उस काल का प्रसिद्ध नगर
साकेत—श्रावस्ती के निकट एक नगर

समय

गौतम बुद्ध के बुद्ध पद प्राप्ति के पश्चात के वर्ष

●

उपक्रम

स्थान—भद्दीय में जहाँ गौतम बुद्ध चातुर मास के लिए ठहरे हैं, वह उपवन

समय—सन्ध्या

[वर्षा ऋतु के कारण उपवन खूब हरा-भरा है, इस समय वर्षा नहीं हो रही है, पर आकाश घटाओं से घिरा हुआ है। उद्यान में एक काष्ठ के पीठ पर श्वेत वस्त्रों से ढकी हुई गद्दी बिछी है जिस पर तकिए लगे हैं। इस पीठ पर गौतम बुद्ध विराजमान हैं। बुद्ध की अवस्था लगभग ४० वर्ष की है, उनका वर्ण गौर है और मुख तथा शरीर के सारे अवयव ढले हुए से। चालीस वर्ष की प्रौढ़ावस्था में भी वे अत्यन्त सुन्दर दिख पड़ते हैं। शरीर पर वे चीवर धारण किए हुए हैं; बौद्ध भिक्षुओं की पोशाक। पीठ के सामने अनेक भिक्षु-भिक्षुणियाँ और गृहस्थ स्त्रियाँ बैठी हुई हैं। वे उपदेश दे रहे हैं।]

बुद्ध—जिस प्रकार वायु का दुर्बल वृक्ष पर प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार मार अर्थात विषय उस पुरुष को दबा देते हैं, जो ऐहिक सुखों में लिप्त है, जिसकी इन्द्रियाँ वशीभूत नहीं जो भोजन में मस्त है, जो आलसी है और जिसमें सच्चा पुरुषार्थ नहीं। जिस प्रकार वायु पर्वत को नहीं डिगा सकती, उसी प्रकार मार उसको नहीं दबा सकता जो ऐहिक सुखों में लिप्त नहीं; जिसने इन्द्रियों को वश में कर लिया है जो नियमित भोजन करता है, श्रद्धालु है और पुरुषार्थी।

[अनेक सखियों के साथ विशाखा का प्रवेश। इस समूह के आगे एक बौद्ध भिक्षु है। विशाखा की अवस्था सात वर्ष की है, वह अत्यन्त सुन्दर बालिका है। जिस प्रकार के वह वस्त्र और आभूषण धारण किए हुए है, उससे वह बहुत सम्पन्न दिख पड़ती है। विशाखा और उसकी सखियाँ बुद्ध को दण्डवत कर एक ओर बैठ जाती हैं। इनके साथ जो बौद्ध भिक्षु आया है, वह आगे बढ़ बुद्ध को दण्डवत कर खड़े हो कहता है।]

भिक्षु—भगवन ! बालिका, जो अपनी सखियों के साथ आई है, अंगदेश के इस भद्दीय नगर के सबसे सम्पन्न कोषाध्यक्ष धनंजय की कन्या है। इसका नाम विशाखा है। इस बाल्यावस्था में भी यह आपके दर्शनों के लिए इतनी आतुर थी कि इसके पिता ने मुझे बुलाया और मेरे साथ इसे सखियों सहित आपके दर्शनार्थ भेजा है। (पुनः दण्डवत कर बैठ जाता है)

बुद्ध—(विशाखा की ओर देख मुस्कराते हुए) बेटी, तू तो, बड़ी रूपवती और बुद्धिमता जान पड़ती है।

[विशाखा कोई उत्तर न दे सिर झुका लेती है। उसकी एक वयस्क सखी कुछ आगे बढ़ कर खड़े हो कहती है।]

विशाखा की एक सखी—भगवन ! आप अन्तर्यामी हैं। आपने हमारी सखी का केवल रूप ही नहीं देखा पर यह कितनी बुद्धिमती है, यह भी तुरन्त जान लिया।

दूसरी सखी—(पहली सखी के सदृश ही आगे बढ़ दण्डवत कर खड़े हो) भगवन ! बुद्धिमती तो यह इतनी है कि हम वयस्कों की बुद्धि भी इसकी बुद्धि के सम्मुख तुच्छ है।

बुद्ध—रूप और गुणों का संयोग सोने में सुगन्ध के संयोग के तुल्य है। फिर बाह्य रूप तो अस्थायी वस्तु है। आन्तरिक गुण ही स्थायित्व देते हैं, जिनकी जननी बुद्धि है। इस कन्या की बुद्धि इसमें ऐसे सद्गुणों का प्रादुर्भूत करेगी जिससे इसका तो कल्याण होगा ही इसके द्वारा लोक कल्याण भी कम न होगा।

पहली सखी—(विशाखा से) सखि ! भगवान तथागत तुझे अपूर्व आशीर्वाद दे रहे हैं।

दूसरी सखी—(विशाखा से) दण्डवत करके इस आशीर्वाद को ग्रहण करो।

[विशाखा बुद्ध के निकट बढ़ उन्हें पुनः दण्डवत करती है।]

बुद्ध—(विशाखा के मस्तक पर हाथ रख कर) सुखी हो और संसार को सुखी कर। बेटी! तेरी अवस्था बड़े भारी उपदेश ग्रहण करने की नहीं है, पर जैसा मुझे दिखा है और तेरी सखियों ने कहा है तेरी बुद्धि वयस्कों से भी आगे है, इसलिए तुझे कुछ सार की बातें कहे देता

हूँ । हीन धर्म का सेवन न करना, परन्तु समदृष्टि रखना और सहिष्णु रहना, प्रमाद से न जीना, चरित्रवान होना, किसी प्रकार की तृष्णा न रखना, इच्छाओं के वशीभूत न होना, अपवाद न करना, अच्छे विचार रखना, सच्ची वीरबाला बनना । सच्ची वीरता आन्तरिक वीरता है । इस आन्तरिक वीरता वाला व्यक्ति सुख, दुःख की चिन्ता न कर सत्-सिद्धान्तों पर हर परिस्थिति में अडिग रहता है ।

●

पहला दृश्य

स्थान—श्रावस्ती में मिगारा के भवन का एक कक्ष

समय—प्रातःकाल

[कक्ष बौद्ध काल की कला के अनुसार बना है । काष्ठ के मोटे स्तम्भों पर कक्ष की छत है । स्तम्भों पर खुदाई का काम है । छत पर भी काष्ठ जड़ा हुआ है और उस पर भी खुदाव है । कक्ष की भित्तियों पर श्रावस्ती के दर्शनीय दृश्यों के चित्र बने हैं । कक्ष की भूमि पर रंगाबिरंगी बिछावन है । बिछावन "शयन" (एक प्रकार के उस काल के सोफा) और आसन्दियाँ (एक प्रकार की उस काल की कुर्सियाँ) रखी हैं, इनके निकट कुछ चौकियाँ हैं, जिन पर विविध प्रकार की सजावट की सुवर्ण-रजत की वस्तुएँ सजी हैं । ऊँची रजत की धूपदानियों में धूप का सुगन्धित धूम धीरे-धीरे उठ रहा है, कक्ष की बनावट और सजावट से जान पड़ता है कि कक्ष किसी सम्पन्न व्यक्ति का है । रेणुका कक्ष में इधर-उधर घूम कर गा रही है । रेणुका अधेड़ अवस्था की सुन्दर महिला है । वर्ण गोरा, न बहुत ऊँची न ठिगनी न मोटी न दुबली । वह कौशेय वस्त्र की साड़ी पहने है, जिस पर सुनहरी काम है । वक्षस्थल पर उसी प्रकार का वस्त्र बाँधे है। उसके सभी अंगों में रत्न जटित आभूषण हैं । मिगारा का प्रवेश । मिगारा भी अधेड़ अवस्था का ही है, गेहुँए रंग का लम्बा पूरे गठे हुए शरीर का व्यक्ति । वह भी कौशेय वस्त्र का अधोवस्त्र पहने है और उसी प्रकार का दुकूल ऊपर के अंग पर डाले है । उसके वस्त्रों पर भी सुनहरी काम है । अंगों पर वह भी रत्न जटित आभूषण धारण किए है । सिर के लम्बे बाल हैं जो यत्र-तत्र श्वेत हो रहे हैं । इन बालों पर वह रत्न जटित किरीट धारण किए हुए है ।]

मिगारा—जैसा आज का शुभ दिन है, वैसा ही रेणु तुम्हारा मंगल गीत भी था ।

रेणुका—ऐसे शुभ दिन ऐसा ही गीत तो गाया जा सकता था ।

मिगारा—फिर, तुमने उसे बड़े सुरीले और भावपूर्ण ढंग से गाया भी । कदाचित इस प्रकार भावनाओं से भरे और इतने सुरीले स्वर से तुमने आज पर्यन्त कोई गीत न गाया होगा ।

रेणुका—हमारे इकलौते पुत्र के विवाह के दिन मेरा हृदय यदि ऐसी भावनाओं से भरा रहे और उन भावनाओं के कारण यदि स्वर और भी सुरीला हो जाय तो इसमें आश्चर्य तो नहीं है न, नाथ !

मिगारा—थोड़ा भी नहीं । मैं तो कुछ क्षण पूर्व आ जाता पर तुम्हारी स्वर लहरी भंग न हो जाए इसलिए तुम्हारा गीत मग्न हो सुनता रहा और जब वह पूरा हुआ तब यहाँ आया । (कुछ रुक कर) प्रिये ! हमने अपने पुत्र का नाम पुण्यवर्धन सोच समझ कर ही रखा था ।

रेणुका—हाँ, सिद्ध तो यही हो रहा है ।

मिगारा—जिन, भगवान की कृपा से उसे जैसा रूप मिला, वैसी ही बुद्धि भी ।

रेणुका—और फिर भगवान महावीर की कृपा से वह बुद्धि कितनी परिष्कृत हुई !

मिगारा—हाँ, उसका पठन-पाठन जिस प्रकार हुआ, उस प्रकार का पठन-पाठन इस श्रावस्ती क्या कोशल देश में भी कदाचित ही किसी का हुआ हो ।

रेणुका—बड़ी बात हुई कि उसने विवाह न करने के अपने निश्चय को परिवर्तित कर दिया, वह आपके इस कथन पर कि जिस कुल में नई पीढ़ी की उत्पत्ति नहीं वह कुल ही नष्ट हो जाता है ।

मिगारा—परन्तु, प्रिये ! इतने पर भी वह कदापि विवाह न करता यदि उसके कथनानुसार पंच सौंदर्य वाली कोषाध्यक्ष धनंजय की यह कन्या विशाखा न मिलती । जिन आठ ब्राह्मणों को कन्या की खोज के लिए मैंने नियुक्त किया था, उन्होंने दूर-दूर भटक कर अन्त में इसी श्रावस्ती के निकट साकेत में ही इस विशाखा को ढूँढ़ निकाला।

रेणुका—परन्तु, आपको विश्वास तो है न ! कि विशाखा पंच सौंदर्य वाली कन्या ही है, अन्यथा पुण्यवर्धन को उसे त्यागते देर न लगेगी ।

मिगारा—मुझे इसमें थोड़ा भी सन्देह होता तो व्याह रचाने में इतनी शीघ्रता न करता । उन आठों ब्राह्मणों ने उसके पाँचों सौंदर्य के मुझे प्रमाण दिए हैं । उसकी अस्थि के सौंदर्य का प्रमाण उसकी दंत पंक्ति है, जिसमें हीरकमणि के सदृश चमक और मुक्ताओं के सदृश सुघड़ता है । उसके मांस के सौंदर्य का प्रमाण उसके ओष्ठ हैं, जो बिम्बा फल के सदृश रक्त वर्ण और पाटलपुष्प के सदृश कोमल हैं । उसकी त्वचा के सौंदर्य का प्रमाण उसकी स्वयं की त्वचा ही है, जिसमें कमल के गुलाबीपन और मालती की शुभ्रता का अद्भुत मिश्रण है तथा बिना चन्दन आदि सुगन्धित लेपों के उसकी त्वचा से स्वाभाविक सुगन्ध निकला करती है । उसके केशों के सौंदर्य का प्रमाण उनकी भ्रमर के सदृश श्यामता और उनका मयूर पुच्छ के सदृश होना है और इन चारों प्रकार की सुन्दरता के भव्य भवन पर यौवन के सौंदर्य का दिव्य कलश है जो उसके अंग-प्रत्यंगों से प्रस्फुटित होता है। फिर इस सारे सौंदर्य के सुवर्ण में सुगन्धि का मिश्रण हुआ है, उसकी अद्भुत बुद्धिमत्ता से ।

रेणुका—और, नाथ, जिस कुटुम्ब में हम अपने पुत्र का विवाह कर रहे हैं, वह कुल भी तो बड़ा सम्पन्न है ।

मिगारा—धनंजय के कुल की सम्पन्नता की बात ही न करो, प्रियतमे ! हम चालीस कोटि के धनी माने जाते हैं, परन्तु धनंजय की सम्पन्नता के सम्मुख हमारी सम्पन्नता तुच्छ है ।

रेणुका—कोशल देश में यह कुटुम्ब अंगदेश से आकर बसा है।

मिगारा—हाँ, यह कुटुम्ब अंगदेश से ही आया है । इसके यहाँ आने का तो एक इतिहास है ।

रेणुका—कैसा ?

मिगारा—अंगदेश के नरेश बिम्बसार और कोशल देश के भूपति पासिन्दि नातेदार हैं, यह तुम जानती हो।

रेणुका—हाँ, यह तो मुझे ज्ञात है।

मिगारा—राजा बिम्बसार के राज्य में पाँच श्रेष्ठतम महाजन निवास करते थे। जौतीय, जतिला, पुष्यक, काकवलय और धनंजय के पिता कोषाध्यक्ष राम। राजा पासिन्दि ने राजा बिम्बसार से इन पाँचों में से एक को कोशल देश के लिए चाहा। और तो किसी ने अपना देश छोड़ना स्वीकार नहीं किया किन्तु राम के पुत्र धनंजय ने यह स्वीकार कर लिया। जब राजा पासिन्दि धनंजय को लेकर श्रावस्ती आ रहे थे तब श्रावस्ती पहुँचने के पूर्व सन्ध्या को जब वे साकेत पहुँचे तब धनंजय को साकेत बहुत प्रिय जान पड़ा और वे राजा पासिन्दी की अनुमति ले कर वहीं बस गए।

रेणुका—तो ऐसे ऐतिहासिक और सम्पन्न कुटुम्ब की ऐसी कन्या से हमारे पुत्र का विवाह हो रहा है।

मिगारा—तभी तो मैंने कहा कि हमने अपने पुत्र का नाम पुण्यवर्धन सोच समझ कर ही रखा था।

रेणुका—और मैंने भी कहा कि सिद्ध तो यही हो रहा है।

[कुछ देर निस्तब्धता]

रेणुका—बस, इस विवाह से सम्बन्ध रखने वाली एक ही बात की मुझे आशंका है।

मिगारा—(कुछ चिन्तित स्वर में) वह कौन सी ?

रेणुका—धनंजय और उनका कुटुम्ब बुद्ध के बौद्ध मत का अनुयायी है और हम भगवान महावीर के जैन धर्म के अनुयायी।

[नेपथ्य में वाद्यध्वनि सुन पड़ती है।]

मिगारा—भविष्य में जो होगा, देखा जाएगा। इस समय तो अब बरात के विदा का समय हो गया! वाद्य भी बजने लगे।

[पुण्यवर्धन का प्रवेश। पुण्यवर्धन गौर वर्ण का ऊँचा, भरे हुए शरीर का अत्यन्त सुन्दर युवक है। वह वर-वेश में है। सुनहरी काम का भड़कीला अधोवस्त्र, उसी प्रकार का उत्तरीय, अंग-प्रत्यंगों में रत्न जटित जगमगाते आभूषण और सिर पर वैसा ही देदीप्यमान मौर।]

मिगारा—(एकटक प्रेमपूर्वक पुण्यवर्धन की ओर देखते हुए रेणुका से) कितना—कितना सुन्दर दिखता है पुण्यवर्धन आज इस विवाह के वेष में देदीप्यमान मौर से सुशोभित।

रेणुका—पुण्यवर्धन हमारे समस्त पुण्यों का संचय है।

मिगारा—एक जन्म के पुण्यों का नहीं, न जाने कितने जन्मों के पुण्यों का। और वह भी केवल हमारे पुण्यों का ही नहीं हमारी न जाने कितनी पीढ़ियों के पुण्यों का।

रेणुका—(पुण्यवर्धन से) बेटा, तुम विवाह नहीं करते थे। यदि तुम अपने उस निश्चय को परिवर्तित न करते तब तो इस पुण्यशाली कुल के पुण्यों की समाप्ति होकर इस कुटुम्ब की ही इतिश्री हो जाती।

मिगारा—और फिर अब तो इसे वधू भी इसकी इच्छानुसार पंच सौंदर्य वाली मिलेगी। देखो बेटा, मानव ने दीर्घकालीन अगणित अनुभवों के पश्चात इस विवाह संस्था की स्थापना की है। निसर्ग की समस्त सृष्टि में मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। क्योंकि जो ज्ञान भक्ति निसर्ग ने मानव को दी है वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। मानव के दो अंग हैं, एक नर और दूसरा नारी। पुलिंग और स्त्रीलिंग तो सभी विकसित प्राणियों में होते हैं, और इसके बिना सृष्टि चल नहीं सकती, परन्तु मानव ने अपनी ज्ञान शक्ति के कारण इन दोनों अंगों के सम्मिलित जीवन के लिए विवाह संस्था का जैसा विकास किया, वैसा हमें अन्य किसी प्राणी में दृष्टिगोचर नहीं होता। इसीलिए मानव जीवन में जन्म के पश्चात विवाह को जितना महत्त्व है उतना किसी बात को नहीं। आज तुम्हारा विवाह हो रहा है और वैवाहिक जीवन का आरम्भ। समस्त तीर्थंकर और भगवान महावीर तुम्हारा यह जीवन हर प्रकार सुखी करें यही तुम्हारे माता-पिता की अभिलाषा हो सकती है।

रेणुका—हाँ, हम लोगों के जीवन की इससे बड़ी कोई साध सम्भव नहीं।

[कुछ महिलाओं तथा पुरुषों का प्रवेश। इन सबकी वेशभूषा से सम्पन्नता दृष्टिगोचर होती है। एक महिला के हाथ में स्वर्ण की थाली में कुमकुम, अक्षत, श्रीफल आदि तिलक की सामग्री है। रेणुका आगे बढ़ कर पुण्यवर्धन को विदा का मंगल तिलक करती है। वाद्य बजता है।]

●

दूसरा दृश्य

स्थान—साकेत का एक मार्ग

समय—मध्याह्न

[कुछ पुरवासियों का प्रवेश। इन नागरिकों में अधिकांश गौर और गेहुँए वर्ण के हैं। कुछ साँवले भी। सभी अधोवस्त्र और उत्तरीय धारण किए हैं। अधिकतर लोगों के वस्त्र बहुमूल्य हैं। अधिकांश व्यक्ति आभूषण भी पहने हैं।]

एक—ऐसा·········ऐसा विवाह तो साकेत और श्रावस्ती में क्या संसार में कहीं न हुआ होगा।

दूसरा—और भविष्य में भी कदाचित ही हो।

तीसरा—कैसी बरात थी।

चौथा—उसमें कितना बड़ा जनसमुदाय इकट्ठा हुआ था।

पाँचवाँ—कैसी सजावट थी उस बरात की।

छठवाँ—कितने हाथी, कितने घोड़े।

सातवाँ—वे किस प्रकार स्वर्ण और रजत के भूषणों से विभूषित।

आठवाँ—और भी कितनी प्रकार की सजावट।

नौवाँ—और जैसी बारात वैसी ही जहाँ बारात की अगवानी हुई वह सभा मण्डप।

दसवाँ—फिर कैसे·········कैसे मनोरंजक कार्य हुए उस सभा-मण्डप में।

पहला—मैं तो धनंजय द्वारा दिए गए दहेज को देखकर दंग रह गया।

दूसरा—आप क्या, सभी दंग रह गए।

कुछ व्यक्ति—(एक साथ) हाँ, सभी।

पहला—धनंजय ने अपनी कन्या के लिए जो आभूषण बनवाए हैं, उनका वृत्त मुझे ज्ञात है।

दूसरा—अच्छा ?

पहला—हाँ, उन्हें बनाने के लिए पाँच सौ स्वर्णकारों ने कार्य किया था। और उनके बनने में नौ करोड़ मुद्राएँ लगीं।

तीसरा—नौ करोड़ मुद्राएँ।

पहला—हाँ, नौ करोड़ मुद्राएँ। चार कलश हीरे लगे, ग्यारह कलश मोती, बाईस कलश पन्ने, तैंतीस कलश माणिक, तथा अनेक कलश भरे सात प्रकार के अन्य रत्न। सोने का तो पूछना ही क्या है। शिरोभूषण के लिए जो मयूर बना है, वह भिन्न-भिन्न रत्नों से इस प्रकार बनाया गया है जो दूर से सच्चा मयूर दिख पड़ता है।

चौथा—मैंने ही जब उसे दूर से देखा तब मुझे ही वह सच्चे मयूर के सदृश दिख पड़ा।

पाँचवाँ—और सच्चे मयूर के सदृश दिखते हुए भी उसमें कैसी विलक्षण चमक-दमक थी।

कुछ व्यक्ति—(एक साथ) हाँ, विलक्षण, सर्वथा विलक्षण।

पहला—इन आभूषणों के बनाने में इन पाँच सौ स्वर्णकारों को चार मास का समय लगा था और इनका पारिश्रमिक ही एक लाख मुद्राएँ हुआ था।

छठवाँ—फिर, इन आभूषणों के अतिरिक्त भी कितना दिया धनंजय ने।

सातवाँ—पाँच सौ गाड़ी भरी चौवन करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ।

आठवाँ—पाँच सौ गाड़ी सोने के बर्तन।

नौवाँ—पाँच सौ गाड़ी चाँदी के बर्तन।

दसवाँ—पाँच सौ गाड़ी ताँबे के बर्तन।

ग्यारहवाँ—पाँच सौ गाड़ी बहुमूल्य वस्त्र।

बारहवाँ—पाँच सौ गाड़ी घृत।

तेरहवाँ—पाँच सौ गाड़ी अन्न।

चौदहवाँ—पाँच सौ गाड़ी खेती करने की वस्तुएँ।

पन्द्रहवाँ—पन्द्रह सौ वस्त्राभूषण से अलंकृत दासियाँ।

सोलहवाँ—सहस्रों गायें।

पहला—पर मुझे जिस बात से सबसे अधिक संतोष है वह जानते हो ?

दूसरा—कौनसी बात ?

पहला—धनंजय ने एक बड़ी बुद्धिमानी का कार्य यह किया है कि विशाखा के ससुर मिगारा से उन्होंने इस बात की स्वीकृति ले ली है कि यदि विशाखा पर कभी कोई दोषारोपण होगा तो वह तब तक दण्डित न की जाएगी जब तक उसके साथ भेजे जाने वाले आठ विद्वान उसे अपराधी घोषित न कर दें।

तीसरा—और ये आठ विद्वान धनंजय अपनी कन्या के साथ भेज रहे हैं।

पहला—हाँ, ये आठ विद्वान विशाखा के संग यहीं से जा रहे हैं, ये ऐसे विद्वान हैं जिनकी धाक सारे कोशल देश में है।

चौथा—कदाचित ही किसी पिता ने अपनी पुत्री के लिए इतना किया हो जितना धनंजय ने किया है।

पाँचवाँ—ऐसे सम्पन्न व्यक्ति की इकलौती पुत्री ठहरी।

छठवाँ—और फिर वह पुत्री भी कैसी।

सातवाँ—पाँच सौन्दर्य वाली विदुषी।

आठवाँ—भगवान बुद्ध का आशीर्वाद बाल्यावस्था से ही जो उसके साथ रहा है।

सातवाँ—मुझे इस विवाह में एक ही बात कुछ अरुचिकर जान पड़ती है।

पहला—कौनसी ?

सातवाँ—मिगारा का कुटुम्ब बौद्ध धर्मावलंबी न होकर जैन धर्मावलंबी है।

पहला—अरे छोड़ो इस संकीर्णता को। मिगारा का कुटुम्ब चाहे किसी भी धर्म का अनुयायी हो। विशाखा के लिए पुण्यवर्धन से अच्छा वर कदापि न मिल सकता था।

कुछ व्यक्ति—(एक साथ) हाँ······हाँ यह सर्वथा सत्य है········ सर्वथा।

नौवाँ—अच्छा, तो अब हम जल्दी चलकर विदा के समारोह के भी दर्शन करें।

पहला—हाँ, हाँ। चलो चलो।

[सब का प्रस्थान]

●

तीसरा दृश्य

स्थान—साकेत में धनंजय के प्रासाद का एक कक्ष

समय—अपराह्न

[कक्ष मिगारा के कक्ष के समान ही बौद्ध काल की कला के अनुसार बना है। लगभग वैसी ही सजावट है, परन्तु, यह कक्ष और इसकी सजावट और अधिक सम्पन्नता प्रदर्शित करती है। धनंजय और सुमनादेवी बातें कर रहे हैं। धनंजय और सुमनादेवी दोनों अधेड़ अवस्था के हैं, अत्यन्त रूपवान। वेशभूषा मिगारा और रेणुका के ही सदृश है।]

धनंजय—(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) हाँ, मेरे मन में तो बार-बार यही बात उठती है कि भगवान किसी को पुत्री न दे।

सुमनादेवी—विशाखा के सदृश पुत्री होने पर भी आपकी ऐसी मानसिक स्थिति है।

धनंजय—विशाखा के समान पुत्री होने के कारण तो मेरी यह मनोदशा और भी बुरी हो गई है। ये पुत्रियाँ सदा दूसरे के घर की ही शोभा रहती हैं, प्रिये ! जानती हो पहले विवाह संस्था ही न थी। फिर जिस प्रकार आज पितृगृह रहते हैं, उसी प्रकार मातृगृह थे। ये पितृगृह तो पीछे से आए। यदि आज भी पितृगृह न होकर मातृगृह होते तो विशाखा यहाँ से काहे को जाती।

सुमनादेवी—(मुस्करा कर) तब तो मैं भी यहाँ न आती। आपको भी मेरे घर आना पड़ता। आपको इस बात पर सन्तोष होना चाहिए

नाथ कि हमारे विशाखा के सदृश कन्या हुई। ऐसी रूपवती, ऐसी बुद्धिमती, ऐसी तेजस्विनी, ऐसी सद्गुणों की खान।

धनंजय—यह तो ठीक है, पर आज हमारे घर में अँधेरा कर वह चली जाएगी।

सुमनादेवी—निकट ही रहेगी, नाथ ! श्रावस्ती साकेत से दूर ही कितनी है। फिर चाहे हमारे कुल के सदृश मिगारा का कुल न हो परन्तु, पुण्यवर्धन के समान हमें जामात्र मिलना भी सम्भव न था। और फिर आपने विशाखा के सुख के लिए ऐसा कौनसा प्रबन्ध है, जो न किया हो। हमें उसी के सुख में अपना सुख मानना चाहिए।

[विशाखा का प्रवेश। वह अब युवती हो गई है, उसका सौंदर्य अद्वितीय है। वेशभूषा खूब भड़कीली। विशाखा को देख धनंजय और सुमनादेवी उसके निकट आते हैं।]

धनंजय—बेटी ! आज तू चली जाएगी इस घर में सदा के लिए अन्धकार कर चली जायगी। (आँखों से आँसू टपकने लगते हैं)

सुमनादेवी—देखिए, आज के मंगल अवसर पर इस प्रकार आँसू ढालना अच्छी बात नहीं है। और फिर विशाखा जा ही कितनी दूर रही है।

धनंजय—दूर चाहे न हो परन्तु, घर.तो छोड़ रही है।

विशाखा—पिता जी, आप ही तो मुझसे घर छुड़वा रहे हैं।

[तीनों बैठ जाते हैं।]

धनंजय—(आँसू पोंछते हुए) यह मनुष्य सामाजिक प्राणी है, कन्दरा में रहने वाला पशु, घोंसले में रहने वाला पक्षी, किसी जलाशय के किसी बिल में रहने वाला जलचर नहीं। अतः उसे समाज के नियमों और बन्धनों के अनुसार चलना पड़ता है। कन्या का विवाह समाज का एक आवश्यक नियम है और विवाह के पश्चात पति के गृह में रहती है अतः तेरे ससुराल जाने के सिवाय अन्य कोई मार्ग भी तो नहीं है।

सुमनादेवी—तब सब प्रकार से ज्ञानवान होने पर भी आप इस प्रकार दुःखी क्यों ?

धनंजय—मस्तिष्क के अतिरिक्त मेरे हृदय भी तो है। और फिर क्या तुम दुःखी नहीं हो ? नौ महीने तुमने विशाखा को उदर में धारण किया है, शैशव में अपने रक्त के दुग्ध से इसका पालन पोषण किया है। न जाने क्या-क्या इसके लिए भोगा है। इसकी मंगल-कामना ही तुम्हारे भावोद्वेग को रोक रही है।

[सुमनादेवी कोई उत्तर नहीं देती, उसकी आँखों में भी आँसू छलछला आते हैं। वह सिर नीचा कर उन आँसुओं को पी जाने का प्रयत्न करती है। विशाखा बड़ी कारुणिक मुद्रा से कभी पिता की ओर देखती है और कभी माता की ओर। कुछ देर तक एक कारुणिक निस्तब्धता।]

धनंजय—(दीर्घ निःश्वास ले आँखें पोंछते हुए) बेटी, तेरा जाना अवश्यम्भावी है। तू जाएगी ही। तेरे जाने से ही सरेगा। पिता के कुल की सारी प्रतिष्ठा पुत्री के आचरण पर निर्भर रहती है। तेरे विदा करने के पूर्व फिर से वे ही दस बातें तुझे स्मरण दिलाता हूँ, जो तुझे अनेक बार कह चुका हूँ और जिनका अर्थ तू भली-भाँति जानती है। घर के भीतर की अग्नि बाहर न ले जाना, बाहर की अग्नि घर के भीतर न लाना, केवल उसी को देना जो तुझे कुछ दे, उसे कुछ न देना जो तुझे कुछ न दे। उन दो को देना जो तुझे न भी दे। अग्नि को प्रज्वलित रखना, उन्हें प्रतिष्ठित रखना जो घर के मानवों से भी ऊँचे हों। सुख से बैठना, सुख से खाना, सुख से सोना।

[नेपथ्य में वाद्य-ध्वनि सुनाई देती है।]

सुमनादेवी—लो, विदा के बाजे बजने लगे, चलो विशाखा के कल्याण के लिए भगवान बुद्ध की प्रार्थना कर इसे विदा करें।

●

चौथा दृश्य

स्थान—श्रावस्ती में मिगारा के उपवन का एक भाग

समय—सन्ध्या

[सुन्दर उपवन है, उपवन में पुण्यवर्धन के विवाह के उपलक्ष में प्रीति-भोज का आयोजन किया गया है। अतः उपवन अनेक प्रकार से सजाया गया है। इधर-उधर कई आसन्दियाँ हैं, जिन पर स्त्री-पुरुष बैठे हुए हैं। सभी अपनी वेशभूषा से सम्पन्न जान पड़ते हैं। निकट ही मिगारा रेणुका, पुण्यवर्धन, विशाखा कई अतिथियों के साथ बैठे हुए वार्तालाप कर रहे हैं। परन्तु चूँकि नर्तकियों का नृत्य हो रहा है अतः यह वार्तालाप स्पष्ट सुनाई नहीं देता।]

एक व्यक्ति—(नृत्य पूर्ण होते-होते उच्च स्वर में मिगारा से) हाँ, मैं……मैं कहता हूँ, यह विवाह आपने धन के लिए किया है। (उच्च स्वर में यह वाक्य सुन कर कुछ मेहमान इन लोगों के निकट आते हैं।)

दूसरा—(उससे भी अधिक ऊँचे स्वर में) हाँ, मिगारा महोदय कोई काली-कलूटी, कानी-अन्धी लड़की को पुत्रवधू बनाकर लाए हैं न।

पहला—बाह्य सौन्दर्य ही सब कुछ नहीं होता। मैं दावे के साथ कहता हूँ, यह विवाह कदापि कल्याणकारी सिद्ध न होगा। हम जैनी यह बौद्धों की कन्या, देखते नहीं हो कितने जैन इस वर्णशंकर ब्याह में सम्मिलित हुए। इस प्रीति-भोज का भी अधिकांश जैनियों ने बहिष्कार किया है।

तीसरा—यह संकीर्णता है।

पहला—देखना है, तुम्हारी उदारता का कितने लोग अनुसरण करते हैं। मिगारा महोदय, हमारी जाति पंचायत के सरपंच थे, वे अब इस पद पर रह सकें यह असम्भव है। मैं भी केवल चेतावनी देने यहाँ आया था। मैं भी यह चला। (शीघ्रता से प्रस्थान)

[इस छोटे से परन्तु अत्यन्त उग्र वाद-विवाद से प्रीति-भोज में एक विचित्र प्रकार की निस्तब्धता छा जाती है। मिगारा के मुख का रंग-सा उड़ जाता है।]

विशाखा—(घृणा से नाक-मुँह सिकोड़) जैन और बौद्ध, बौद्ध और जैन। सबसे पहले हम मानव हैं क्या यह हम नहीं देख सकते।

तीसरा—कैसा असभ्य व्यक्ति था यह (नर्तकियों तथा उनके साथी वाद्य-यन्त्र वालों से) गाओ, गाओ। आपकी स्वर-लहरी ही इस दूषित वायुमण्डल को पुनः शुद्ध करेगी।

[वाद्य-यन्त्र का स्वर आरम्भ होता है]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—मिगारा के भवन में पुण्यवर्धन का कक्ष

समय—रात्रि

[यह कक्ष भी लगभग वैसा ही है तथा उसी प्रकार सजा हुआ जैसा पहले और तीसरे दृश्य का कक्ष था। सजावट में एक ही प्रधान अन्तर है, इस कक्ष में एक ओर स्वर्ण के पायों वाला स्वच्छ शय्या से युक्त पलँग बिछा है, जिस पर सुगन्धित पुष्पों के कई हार सजे हैं। रजत की दीवटों पर सुगन्धित तेल के दीपों से कक्ष प्रकाशित है, विशाखा और पुण्यवर्धन का प्रवेश।]

विशाखा—आपके घर में प्रवेश करते ही जीवन में मुझे आज जितनी ठेस लगी उतनी इसके पूर्व कभी न लगी थी।

पुण्यवर्धन—प्रीति-भोज में आपकी मुद्रा देखते ही मुझे यह ज्ञात हो गया था।

[दोनों शय्या पर बैठते हैं]

पुण्यवर्धन—परन्तु, इसमें हमारे घर का तो कोई दोष नहीं। पिता जी ने जैन होते हुए भी मेरा विवाह बौद्धों के यहाँ किया।

विशाखा—आपके घर का दोष मैं भी नहीं कहती, परन्तु, जिस समय उस असभ्य और उद्दण्ड व्यक्ति ने वह सब कहा उस समय मैंने आपके पिता जी की मुद्रा को देखा था। जान पड़ता था कि उनके मुख का सारा रंग ही उड़ गया है। फिर उस व्यक्ति ने यह भी कहा कि उन्होंने यह विवाह धन के लिए किया है। क्या आपके पिता लोभी वृत्ति के हैं?

पुण्यवर्धन—थोड़े भी नहीं। फिर आपको उनसे मतलब भी क्या है? आपका विवाह मेरे संग हुआ है, हमारा एक दूसरे से सम्बन्ध है।

विशाखा—यह तो ठीक है परन्तु···परन्तु (चुप हो जाती है)

पुण्यवर्धन—परन्तु······पर आप रुक क्यों गईं!

विशाखा—नहीं, रुकना तो मैं जानती ही नहीं। कुछ सोचने लगी थी।

पुण्यवर्धन—क्या?

विशाखा—हमारे समाज में संयुक्त कुटुम्ब प्रथा है, इसलिए चाहे मेरा विवाह आप से हुआ हो परन्तु, आपके माता-पिता से मेरा मतलब नहीं, यह तो नहीं हो सकता। आपके साथ विवाह होते ही वे मेरे भी माता-पिता के तुल्य हो गए हैं। और जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं·····मैं (फिर चुप हो जाती है)

पुण्यवर्धन—(विशाखा को देखते हुए) आप फिर चुप हो गईं।

विशाखा—मैं फिर सोचने लगी थी। एक ओर मेरा जिस प्रकार पालन हुआ है, और जिस प्रकार की भावनाएँ मेरे मन में भरी गई हैं वह है, और दूसरी ओर संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा के ये सारे बन्धन। मैं नहीं जानती कि मैं स्वयं इस वायुमण्डल में कितनी दूर तक सुखी रह सकूँगी और कहाँ तक आप सब को सुखी रख सकूँगी। नाथ! मैं अपने माता-पिता की इकलौती पुत्री हूँ। शैशव से ही एक विशिष्ट ढंग से बड़ी की गई, एक विशेष प्रकार की भावनाएँ मेरे मन में भरी गईं। भगवान बुद्ध की मैं अनन्य उपासिका हूँ। सात वर्ष की अवस्था में मैंने सर्वप्रथम उनके दर्शन किए थे। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रख जो उपदेश मुझे दिया था वह मैंने उसी समय से कंठस्थ कर लिया है। सुनेंगे आप उनके उस उपदेश को।

पुण्यवर्धन—अवश्य, सहर्ष सुनूँगा।

विशाखा—(ध्यानावस्थित-सी सामने की ओर देखते हुए) उन्होंने कहा था "सुखी हो और संसार को सुखी कर, हीन धर्म का सेवन न करना, परन्तु समदृष्टि रखना और सहिष्णु रहना, प्रमाद से न जीना, चरित्रवान होना, किसी प्रकार की तृष्णा न रखना, इच्छाओं के वशीभूत न होना, अपवाद न करना अच्छे विचार रखना, सच्ची वीरवाला बनना, सच्ची वीरता आन्तरिक वीरता है, इस आन्तरिक वीरता वाला व्यक्ति सुख-दुःख की चिन्ता न कर सत् सिद्धान्तों पर हर परिस्थिति में अडिग रहता है।" मैंने अपना सारा जीवन इन्हीं उपदेशों के अनुसार चलाया है तथा भविष्य में चलाऊँगी।

पुण्यवर्धन—प्रिय! भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के उपदेशों में कोई अन्तर नहीं है।

विशाखा—भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के क्या किसी भी महापुरुष के न उपदेशों में अन्तर होता और न आचरण में ही। परन्तु, उनके ये अनुयायी······क्या कहूँ!

पुण्यवर्धन—हाँ, सारा झगड़ा ये सच्चे नहीं झूठे अनुयायी (पाखण्डी) करते हैं। पर आप एक बात जानती हैं!

विशाखा—कौन सी?

पुण्यवर्धन—आप ने आज के प्रीति-भोज में कहा था—"जैन और बौद्ध। बौद्ध और जैन। सबसे पहले हम मानव हैं क्या यह हम नहीं देख सकते?" मेरे विचार भी आपके इन विचारों के ठीक अनुरूप हैं और यदि हम दोनों एक विचार के हैं तो संसार की कौन बाधा हमारे जीवन को दुःखी कर सकती है। (अत्यधिक प्रेमभरी दृष्टि से विशाखा की ओर देखते हुए) मैं तो······मैं तो यह मानता हूँ प्रिये, कि आपके सदृश पत्नी पा मेरा जन्म धन्य हो गया।

विशाखा—(उसी प्रकार प्रेमभरी दृष्टि से पुण्यवर्धन की ओर देखते हुए) सो तो मैं······मैं भी नाथ······(पुण्यवर्धन के चरणों की ओर झुकती है। पुण्यवर्धन विशाखा को खींच हृदय से लगा लेता है।)

(शेष अगले अंक में)

शेख मुबारक

राहुल सांकृत्यायन

(गताङ्क का शेषांश)

आफत के बादल—शेख मुबारक के पीछे भेदिए छोड़े गए। कुछ उनके शागिर्द बन कर पढ़ने के बहाने पास में रहने लगे। एक दिन पता लगा, कि मुल्लों ने षड्यन्त्र कर लिया है, और शेख मुबारक पर पकड़ कर दरबार में उनके धर्म-विरोधी होने का अपराध लगाया जाएगा। आधी रात को यह खबर अबुलफ़ज़ल को मिली। उसी वक्त वह बेतहाशा दौड़े। बचाने का एक ही रास्ता था कि जब तक बादशाह (अकबर) को सच्ची बात मालूम न हो जाए, तब तक कहीं वह छिपे रहें। अबुलफ़ज़ल ने बड़े भाई फ़ैज़ी से जाकर कहा। फ़ैज़ी अपने छोटे भाई की तरह कौटिल्य का अवतार नहीं बल्कि बहुत ही सीधा-सादा पुरुष था। वह शेख के शयनकक्ष में उसी वक्त घुस गया, और उनसे सारी बातें बतलाईं। शेख ने कहा—"दुश्मन जबर्दस्त हैं, तो खुदा तो मौजूद है? न्यायप्रिय बादशाह की छाया तो सिर पर है? यदि भाग्य-भगवान ने हमारे लिए बुरा नहीं लिखा है, तो कोई हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अगर भगवान की मर्जी यही है, तो कोई बात नहीं। हम हँसते-हँसते अपने जीवन को समर्पण करने के लिए तैयार हैं।" समझा कर फ़ैज़ी हताश हो गए। उन्होंने तुरन्त छुरी हाथ में उठा ली, और कहा—"दुनिया की बातें और हैं, और सन्तों की कहानी और। अगर आप इसी वक्त नहीं चलते, तो मैं अपना जीवन समाप्त कर डालता हूँ। फिर आप जानिएगा। मैं उस बुरे दिन को देखने के लिए तैयार नहीं हूँ।" अपने अभिमान-मेरु ज्येष्ठ पुत्र की यह बात सुन कर शेख मुबारक में इन्कार करने की शक्ति नहीं रह गई। अबुलफ़ज़ल बड़े भैया को कह कर सोने चले गए थे। बाप ने उन्हें भी जगाया। उसी अँधेरी रात में तीनों पैदल निकल पड़े। कोई मार्ग-दर्शक नहीं था। कहाँ जाएँ? जिसका नाम भाई लेता, उसे अबुलफ़ज़ल विश्वास-योग्य नहीं मानते, जिसको अबुलफ़ज़ल बतलाते, उसे भाई ठीक नहीं समझता। फ़ैज़ी ने किसी आदमी के लिए अधिक आग्रह किया। तीनों वहाँ पहुँचे। आदमी का रवैया देख कर फ़ैज़ी पछताने लगे—"कम अनुभव के होते भी तुमने ठीक सोचा था। अब बतलाओ, क्या करें।" अबुलफ़ज़ल ने कहा—"अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, अपने खटले को लौट चलें। यदि ज़रूरत पड़े, तो मुझे वकील कर देना, मैं दुश्मनों को नंगा करके रख दूँगा।" शेख ने कहा—"शाबाश, मैं भी इसी के साथ हूँ।" फ़ैज़ी इतना बड़ा खतरा सिर पर लेने के लिए तैयार नहीं थे। भाई पर फिर बिगड़े और कहा—"तुझे इन मामलों की खबर नहीं। इन लोगों की मक्कारी और छल-कपट को तू क्या जाने? घर को छोड़ो और रास्ते की बात करो।" अबुलफ़ज़ल ने कहा—"मेरा दिल गवाही देता है, कि अगर कोई आसमानी बला न आन पड़े, तो फलाँ आदमी सहायक हो सकता है।"

रात का वक्त था। समय अधिक नहीं था। दिल परेशान था। उधर ही चल पड़े। दलदल और रपटन की जमीन थी। चले जा रहे थे, मगर मन में पछता भी रहे थे। कदम भी मुश्किल से उठता था, साँस लेने में भी दर्द होता था, विचित्र दशा थी। रात खतरनाक, और कल सर्वनाश या महाप्रलय का दिन। सुबह हो रही थी, जब तीनों बाप-बेटे उस आदमी के दरवाजे पर पहुँचे। उसने बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया। एक अच्छे कमरे में उन्हें उतारा। दो दिन निश्चिन्त वहीं बीते। तीसरे दिन खबर लगी, कि दुश्मनों ने बादशाह के पास शिकायत की है। उसका मन भी फिर गया। उसने मुल्लाओं को कह दिया है तुम्हारी सलाह बिना मुल्की और माली के काम भी नहीं चलते, यह तो खास धर्म और कानून की बात है। इसका फैसला करना तुम्हारा काम है। अदालत में बुलाओ। जो शरीयत फतवा दे और बुजुर्ग निश्चय करें, वह करो।

दुश्मन दरबारियों ने तुरन्त चोबदारों को पकड़ने के लिए भेज दिया। उन्होंने बहुत जाँच-पड़ताल की। घर से तीनों बाप-बेटे गायब थे। वहाँ पहरा बैठा दिया। छोटे भाई अबुल्खैर को पकड़ ले गए। बादशाह से बहुत बढ़ा-चढ़ा कर समझाया, कि शेख ज़रूर अपराधी है, इसीलिए भागा-भागा फिर रहा है। अकबर नौजवान था, लेकिन तब भी सोच-समझ रखता था। वह तस्वीर के एक पहलू पर ही ध्यान नहीं देता था। उसने कहा—"शेख को सैर-सपाटे की आदत है, कहीं गया होगा। इस बच्चे को क्यों नाहक पकड़ लाए? क्यों घर पर पहरा बैठा दिया? तुरन्त भाई को छोड़ दिया गया, और पहरा भी उठा लिया गया। सब खबरें तीनों बाप-बेटों के पास पहुँचती रहती थीं। पर, अभी प्रकट होना, वह ठीक नहीं समझते थे। दुश्मनों ने असफल होने के बाद सोचा, दो-तीन गुण्डे भेजो, जहाँ मिलें वहीं इनका काम तमाम कर दो। उनको डर लग रहा था, कि कहीं बादशाह के बदले रुख को देख कर वह स्वयं दरबार में हाजिर न हो जाएँ, और हमें लेने के देने पड़ें।

एक हफ्ते तक गृहपति ने उन्हें अपने यहाँ शरण दी। फिर उसको भी डर लगने लगा। दुश्मन तरह-तरह की बातें उड़ाते थे। समझा कहीं जौ के साथ घुन न पिस जाए। टके सेर जवाब पाकर अब फिर तीनों उपाय सोचने लगे। बाप और बड़ा भाई तरुण कौटिल्य की बुद्धि का लोहा मानने लगे थे। उसके ही ऊपर रास्ता निकालने को छोड़ दिया। शाम हुई। तीनों फिर उस घर से निकले। चलते-चलते

एक कस्बा नज़र आया। वहाँ शेख का एक शागिर्द रहता था। गए, थोड़ी देर आराम की साँस ली, लेकिन वहाँ भी शरण कहाँ? अबुलफ़ज़ल ने कहा—"ये हैं, अच्छे-अच्छे दोस्त और पुराने-पुराने शागिर्द! सच्चे शिष्यों का हाल चन्द ही दिनों में प्रकट हो गया। अब यही राय है, कि यहाँ से निकल चलें और इन दोस्तों और डरपोक मित्रों से जल्द दूर हो जाएँ। खूब देख लिया इनकी मित्रता का कदम हवा पर, और दृढ़ता की जड़ नदी की तरंग पर है। शहर को चलें, कहीं एकान्त स्थान ढूँढ़ें। कोई अज्ञात सज्जन अपनी शरण में लें। वहाँ से बादशाह का हाल मालूम करें। गुंजाइश हो, तो भाग्य परीक्षा कर देखें। यदि आशा न हो, तो दुनिया तंग नहीं है। पक्षी के लिए भी घोंसला और शाखा है। इसी मनहूस शहर (आगरा) पर प्रलय तक के लिए हमने अपने को बेच नहीं दिया है। एक अमीर दरबार से हटकर अपने इलाके को जाता, बस्ती के पास उतरा। सब को छोड़ कर उसी की शरण में चलो। अपरिचित स्थान है, शायद थोड़ा आराम मिले। यद्यपि दुनियादारों से दया का भरोसा नहीं है, लेकिन वह अब दुश्मनों के लगाव में नहीं है।"

फ़ैज़ी भेस बदल कर उसके पास पहुँचे। वह सुन कर बहुत खुश हुआ और तीनों का स्वागत करने के लिए तैयार हुआ। दुश्मन सब कुछ करने पर उतारू थे, इसलिए फ़ैज़ी अपने साथ कई तुर्क सिपाही लेते आए। आकर बाप और छोटे भाई से सब बात बतलाई। उसी वक्त भेस बदल कर तीनों चल पड़े और अलग-अलग होकर अमीर के डेरे में पहुँचे। स्वागत देखकर तबियत खुश हुई, दिन आराम से बीता। अच्छे दिनों की सोचने लगे। इसी वक्त दरबार से फिर अमीर को बुलावा आ गया। उसने रुख बिल्कुल बदल दिया। रात को निकल एक और दोस्त के घर गए। उसने बहुत स्वागत किया, लेकिन उसका पड़ोसी बहुत दुष्ट था, इसलिए वह घबरा उठा। लोग सो गए, तीनों वहाँ से भी निकले। कोई शरण-स्थान मालूम नहीं होता था। फिर घूम-घाम कर उसी अमीर के डेरे में चले आए। डेरे वालों को तीनों के निकल के जाने की खबर नहीं थी। अमीर इस बला को सिर पर लेने के लिए तैयार नहीं था। उसके रुख को बदला देखकर नौकरों ने भी आँखें फेर लीं। अबुलफ़ज़ल ताड़ गए, लेकिन फ़ैज़ी में उतनी व्यवहार-बुद्धि कहाँ थी? अमीर ने देखा, ये तीनों टलते नहीं हैं। बिना बातचीत किए वह सवेरे वहाँ से कूच कर गया। नौकरों-चाकरों ने भी तम्बू उखाड़ लिया। तीनों बाप-बेटे आसमान के नीचे जमीन पर बैठे रह गए।

अब वहाँ रहने के लिए गुंजाइश कहाँ थी? चले। दिन था। दुश्मनों की भीड़ में से निकलना था। लेकिन जान पड़ता था उनकी आँखों पर परदा पड़ गया था। जाते-जाते एक बगीचे में पहुँचे। थोड़ी देर ठहरे। पता लगा, गुप्तचर यहाँ भी घूम रहे हैं। भागते-फिरते रहे। इसी समय एक माली मिला। उसने पहचान लिया। तीनों घबरा गए। माली ने बहुत ढारस बँधाया, अपने घर जाकर ठहराया। फ़ैज़ी का दिल घबराता था, क्या जाने लालच के मारे यही कुछ कर डाले। कुछ रात बीतने पर बाग वाले माली ने आकर कहा, मेरे जैसे आबके भगत के रहते आप क्यों इधर-उधर भटकते रहें। वस्तुतः गरीब जितने ईमानदार हो सकते हैं, दूसरों के लिए कुर्बानी कर सकते हैं, उतने अमीर नहीं। इसने ले जाकर एक सुरक्षित जगह में टिकाया। एक महीने से ज्यादा हिन्दुस्तान का भावी महामन्त्री और कवि सम्राट अपने बाप के साथ आराम से वहाँ रहे। अपने मित्रों और मेहरबानों को पत्र भेजे। सब लोग कोशिश करने लगे।

सादगी के पुतले पर अद्भुत प्रतिभाशाली फ़ैज़ी ने साहस का परिचय दिया। पहले आगरा फिर फतेहपुर-सीकरी पहुँचे, जो अकबरी उस समय राजधानी थी। वहाँ हितचिन्तकों से मिला। एक दिन दरबार में एक प्रभावशाली पुरुष ने मुँह खोल कर कहना शुरू किया—"हुजूर, क्या आखरी जमाना खतम हो रहा है? कयामत आ गई है? हुजूर की बादशाही में बदकार और बददिमाग स्वच्छन्द विचर रहे हैं, और भलेमानुस मारे-मारे फिर रहे हैं। यह क्या व्यवस्था है?" बादशाह ने पूछा—"किसकी बात करते हो? तुम्हारा अभिप्राय किस आदमी से है?" जब आदमी ने शेख का नाम लिया, तो अकबर ने कहा, "आज के बड़े लोगों ने उस पर आफत का पहाड़ ढाने और जान लेने पर कमर बाँध कर फतवा तैयार किया है। मैं जानता हूँ, आज शेख अमुक स्थान पर मौजूद है। मगर जान कर अनजान बनता हूँ। किसी को कुछ और किसी को कुछ कह कर टाल देता हूँ। तुझे खबर नहीं है, यों ही उबल पड़ता है। सवेरे आदमी भेज कर शेख को हाज़िर करो, और आलिमों को एकत्रित करो।"

फ़ैज़ी को जब यह बात मालूम हुई, तो वह तुरन्त भागा-भागा बाप और भाई के पास पहुँचा। तीनों ने भेस बदला और किसी को कहे बिना आगरा के लिए चल खड़े हुए। मौत के मुँह में जाना था, क्योंकि इस रात के वक्त अगर दुश्मन अपने गुण्डों को भेज देते, तो अकबर उनकी रक्षा नहीं कर सकता था। अँधेरी रात में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। वह आगरा की ओर भागे जा रहे थे। भेस बदलने पर भी उनके दिल को कैसे विश्वास हो सकता था। एक खण्डहर सामने आया, उसमें घुस गए। सलाह हुई, कि यहाँ से घोड़ों का प्रबन्ध करके फतेहपुर-सीकरी चलें। रात को ही वह घोड़ों पर सवार हो सीकरी की ओर रवाना हुए। इधर-उधर भटकते वहाँ पहुँचे। परिचित ने उन्हें तरह-तरह की बातें कह कर उनके दिमाग को और परेशान कर दिया, लोगों ने फिर बादशाह को उलटा-सीधा समझाने में सफलता पाई है। पहले आ जाते, तो काम आसानी से बन जाता। अब पास के एक गाँव में कुछ दिन ठहरो, बादशाह को अनुकूल देख कर फिर कुछ किया जा सकेगा। बैलगाड़ी पर बिठा कर उन्हें गाँव की ओर रवाना कर दिया। गाँव के जिस आदमी के भरोसे वह गए थे, वह घर में मौजूद नहीं था। लेकिन, अब तो आ गए थे। वहाँ के दारोगा को कोई कागज पढ़वाना था। मुसाफिरों को देख कर उसने उन्हें शिक्षित समझा और उन्हें बुला भेजा। तीनों वहीं गए। थोड़ी देर में मालूम हुआ, कि गाँव तो किसी बड़े दुष्ट का है। फिर वहाँ से निकले। एक पथ-प्रदर्शक को ले भूलते-भटकते आगरा के पास एक गाँव में पहुँचे। उस दिन वे तीस कोस चले थे। एक घर में

उतरे। मालूम हुआ कि इस जमीन का मालिक भी एक दुष्ट है, जो कभी-कभी इधर आ जाता है। आधी रात को फिर यहाँ से भागे। सुबह होते आगरा पहुँचे। एक दोस्त के घर में उतरे, जरा दम लिया। ज़रा ही देर में गृहपति ने तोताचश्मी दिखाते हुए कहा कि मेरा पड़ोसी बड़ा धोखेबाज़ है। मालिक मकान ने इधर-उधर जगह ढूँढ़ी। दो दिन ऐसे बीते, जिस में हर एक साँस अन्तिम साँस मालूम होती थी।

एक भलेमानुस का पता लगा। गृहपति ने बहुत ढूँढ़-ढाँढ़ के उसका घर निकाला। उसी समय उस घर में पहुँचे। गृहपति के बर्ताव को देख कर तबियत बहुत खुश हो गई। यद्यपि वह शेख का शिष्य नहीं था, लेकिन बड़ा भला आदमी निकला। अबुलफ़ज़्ल के अनुसार—गुमनामी में नेकनामी से जीता था, अल्प धन में अमीरी से रहता था, तंगदस्ती में दरियादिली करता था, बुढ़ापे में जवानी का चेहरा चमकाता था।" फिर लिखा-पढ़ी शुरू हुई। दो महीने की प्रतीक्षा के बाद भाग्य ने पलटा खाया। अकबर का बुलावा आया। शेख मुबारक फ़ैज़ी को साथ ले दरबार में पहुँचे। अकबर ने जिस कृपा और उदारता का परिचय दिया, उसे देखकर दुश्मनों में 'सन्नाटा' हुआ, भिड़ों का छत्ता चुपचाप हो गया।

सुखी जीवन—शेख मुबारक अकबर के सम्मान और कृपा के भाजन थे। लेकिन, उन्होंने दरबार की नौकरी नहीं स्वीकार की। मीर हबश आदि को शिया होने के जुर्म में अकबर के शासन में कत्ल कर दिया गया था। जिन लोगों ने उन्हें कत्ल करवाया था, वही अब्दुल नबी और मुल्ला सुल्तानपुरी शेख मुबारक को शिया और मेहदी-पंथी बतला रहे थे। गाढ के समय शेख मुबारक ने शेख सलीम चिश्ती से भी सिफारिश करवानी चाही थी। शेख सलीम के प्रति अकबर की भारी श्रद्धा थी, उन्हीं की दुआ से उसे पुत्र मिला था, जिसका नाम शेख के नाम पर ही सलीम रक्खा—जो जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा। चिश्ती के ही कारण वह अपनी राजधानी को फतहपुर ले आया था। लेकिन, शेख ने कुछ पैसों के साथ संदेश भेजा, "यहाँ से तुम्हारा निकल जाना ही अच्छा है। तुम गुजरात चले जाओ।" मिर्जा अज़ीज़ ने बादशाह को समझाने में सफलता पाई। ६३ वर्ष की उमर में अब उनका भाग्य खुला। जबकि १५६६ या १५६७ ई० (हिजरी ९७४) में फ़ैज़ी को दरबार में स्थान मिला। उसके साथ वर्ष बाद अबुलफ़ज़्ल भी जाकर मीर मुन्शी (महासचिव) बने।

सत्तर-बहत्तर की उमर में शेख मुबारक की जवानी फिर लौट सी आई। कहाँ एक समय धर्म के खिलाफ समझ कर गाने की आवाज़ आती देख वह जल्दी-जल्दी आगे निकल जाते थे, और कहाँ तम्बूर और तराना सुनते-सुनते थकते नहीं थे।

अकबर निरक्षर था, पर उसका अर्थ अशिक्षित नहीं है। आखिर एक समय था, जब विद्या को कान से सुन कर ही लोग सीखते थे, लिखने-पढ़ने का रिवाज नहीं था। अकबर बहुश्रुत था। फारसी और तुर्की दोनों उसकी मातृभाषा जैसी थीं। नकीब खाँ का काम था, फुर्सत के समय बादशाह को इतिहास और विद्या की पुस्तकें पढ़ कर सुनाए। "हयातुल हैवान" (प्राणिजीवनी) नामक एक अरबी पुस्तक थी। उसका अर्थ समझाना पड़ता था। बादशाह ने उसको फारसी में अनुवाद करने का काम शेख मुबारक को दिया। अकबर भिन्न-भिन्न धर्मों और शास्त्रों की बहस सुनने का बहुत शौकीन था। इन वाद-सभाओं में शेख मुबारक भी शामिल होते थे। अरबी किताबों को अनुवाद में सुनते-सुनते बादशाह को ख्याल आया, अरबी भाषा भी क्यों न सीख ली जाए। शेख मुबारक से बढ़ कर अच्छा कौन शिक्षक मिल सकता था। फ़ैज़ी बाप को साथ लेकर गए। अरबी व्याकरण शुरू हुआ। फ़ैज़ी ने इसी समय बादशाह से कहा—"शेखेमा तकल्लुफ़ अस्ला न दारद" (हमारा शेख बिल्कुल तकल्लुफ नहीं रखता)। अकबर ने जवाब दिया—"आरे, तकल्लुफात रा हमा बर-शुमा गुज़ाश्ता अन्द" (हाँ, सभी तकल्लुफों को तुम्हारे ऊपर छोड़ रक्खा है)। चन्द दिनों अरबी का जोश रहा, फिर अरबी पढ़ने के लिए अकबर को फुरसत कहाँ?

फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्ल अकबर के उन आधे दर्जन दरबारियों में से थे, जिन्हें बादशाह अपना अभिन्न हृदय समझता था, और बेतकल्लुफी से उनके साथ बर्ताव करता था। उनके बाप की भी वह बहुत इज्जत करता था। कभी-कभी दरबार में आते, तो उनकी दर्शन, इतिहास, साहित्य-सम्बन्धी बातों को सुन कर खुश हो जाता। शेख को संगीत-विद्या का शौक है, सुन कर एक बार अकबर ने कहा—"इस कला की जो सामग्री हमने एकत्रित की है, उसे हम दिखाएँगे।" शेख मंझू, तानसेन और दूसरे कलावन्तों को बुला कर शेख के घर अपना गुण प्रदर्शन करने के लिए भेजा। शेख ने सब को सुना। तानसेन से कहा—"शुनीदम् तू हम् चीज़े मी तवानी गुफ्त" (सुना है, तू भी कुछ चीजें बोल सकता है)। तानसेन के गान को सुनकर कहा—"जानवरों की तरह कुछ भाँय-भाँय करता है।" इसमें शक नहीं, कि तानसेन के संगीत-शास्त्र पारंगत होने में उन्हें सन्देह नहीं हो सकता था, पर गान के लिए मधुर कण्ठ होना वह आवश्यक समझते थे, जो सभी संगीत उस्तादों की तरह शायद तानसेन में भी नहीं था, इसलिए उन्हें उनकी तान भाँय-भाँय मालूम हुई।

अकबर उदार हृदय और दृढ साहस रखने वाला पुरुष था। पर, शासन के सारे यन्त्र और कायदे-कानून को एकदम उठा देना उसके बस की बात नहीं थी, विशेषकर आरम्भिक समय में। मथुरा में एक ब्राह्मण ने एक शिवाला बनवाया। उस पर अपराध लगाया गया, कि उसने मस्जिद की और इस्लाम की तौहीन की। सल्तनत के सर्वोच्च न्यायाधीश के पास मामला गया, ब्राह्मण को कत्ल करवा दिया गया। अकबर बहुत परेशान था। इसी समय शेख मुबारक किसी विशेष अवसर पर बधाई देने के लिए अकबर के पास पहुँचे। बादशाह ने कितने ही प्रश्न उनके सामने रखते हुए कहा, कि इन मुल्लाओं के मारे जान आफत में है। वह अपने को धर्म और कानून में प्रमाण मानते हैं। शेख मुबारक ने कहा—"न्यायमूर्ति बादशाह सर्वोपरि प्रमाण हैं। जिन बातों पर मतभेद है, उन्हें देश-काल के अनुसार देखकर हुजूर स्वयं हुकुम दें। मुल्लों ने यों ही हवा बाँध रखी है। इनके भीतर कुछ नहीं है। आपको उनसे पूछने की जरूरत नहीं है।" अकबर ने कहा—

"हरगाह शुमा उस्तादे-मा बाशीद्, व सबक पेशे-शुमा ख़ान्दाबाशीम्, चिरा मारा अज़िमन्नते ईं मुल्लायां ख़लास न मी-साज़ीद्" (जब आप हमारे उस्ताद हैं, और आपके सामने हमने पाठ सीखा है, तो क्यों इन मुल्लाओं की दया से हमें छुट्टी नहीं दिलाते ?)

शेख मुबारक ने वह विधान-पत्र तैयार किया, जिसने अकबर की सल्तनत को मुल्लों के पंजे से छुड़ा दिया, अकबर निधड़क होकर अपने साथियों को लेकर नए हिन्दुस्तान के निर्माण के लिए तैयार हुआ। उसके काम को आगे ले जाने वाले योग्य सहायक और उत्तराधिकारी नहीं मिले, इसलिए यदि अकबर अपने स्वप्न को सजीव कराने में सफल नहीं हुआ, तो उसमें उसका दोष क्या ? शेख मुबारक ने कुरान और इस्लामी धर्म-शास्त्र के वाक्यों तथा पुराने उदाहरणों को इकट्ठा करके एक अभिलेख तैयार किया, जिसका सारांश यह था, कि जिन बातों में मतभेद हो, उनके बारे में अपनी राय के अनुसार बादशाह हुकुम दे सकता है। उसकी राय आलिमों और धर्म शास्त्रियों से बढ़ कर प्रामाणिक है। यह अभिलेख बहुत संक्षिप्त १८-२० पंक्तियों से ज्यादा बड़ा नहीं है, लेकिन वह हिन्दुस्तान का मेग्नाचार्टा है, जिसके अनुसार दीन (धर्म) के प्रश्नों पर भी मुल्लों के हाथ से हटा बादशाह को हुकुम देने का अधिकार दिया गया था। यह रज्जब ९८७ हिजरी (अगस्त या सितम्बर १५७९ ई०) में लिख कर दरबार में पेश किया गया। सभी बड़े-बड़े आलिम-फ़ाज़िल, मुफती-काज़ी बुलाए गए। शेख मुबारक आज की सभा के अध्यक्ष थे। उनके पुराने शत्रु भीगी बिल्ली बन कर साधारण लोगों में आकर बैठे थे। अभिलेख पर मुहर करने का हुकुम हुआ, और कुछ भी मुँह से निकाले बिना मुहर कर देना पड़ा। शेख मुबारक ने अपने हस्ताक्षर करते हुए यह भी लिख दिया—"ईं अमरेस्त, कि मन् ब-जान-व-दिल ख्वाहाँ व अज़-सालहाय बाज़ मुन्तज़िरे-आँ बूदम्।" (यह वह बात है, जिसकी मैं दिलोजान से, सालों से कामना करते प्रतीक्षा कर रहा था।)

शेख मुबारक अकबर और उनके घनिष्ठ सहकारियों से भी पहले अपने देश का सपना देख रहे थे। मेहदी जौनपुरी के साम्यवाद से उनकी सहानुभूति इसी कारण थी, क्योंकि वह मुट्ठी भर आदमियों को नहीं, बल्कि सभी को खुशहाल देखना चाहते थे। शिया सम्प्रदाय से उनकी सहानुभूति जरूर थी, वह जानते थे, जिस तरह ईरान में इस्लाम ने शिया-पंथ के रूप में देश की संस्कृति के साथ समझौता किया, उसी तरह भारत में भी जरूरत है। भारत के हिन्दू हों या मुसलमान, सभी को इस मिट्टी के साथ एक-सी मुहब्बत होनी चाहिए। उसके इतिहास और संस्कृति के प्रति वैसा ही सम्मान और सद्भाव रखना चाहिए, जैसा कि ईरान के फिरदौसी ने ईरानी संस्कृति के बारे में "शाहनामा" को लिख कर दिखलाया। एक बार उन्होंने बीरबल से कहा था—"जिस तरह तुम्हारे (हिन्दुओं के) यहाँ किताबों में परिवर्तन हुए हैं, इसी तरह हमारे यहाँ भी हैं। इसलिए वह प्रामाणिक नहीं हैं।" शेख मुबारक बुद्धिवादी थे, चाहते थे, लोग मुल्लों और किताबों के फेर में न पड़ें।

शेख मुबारक ने ८७ वर्ष की लम्बी आयु पाई। वह २७ अक्तूबर १५९२ ई० को लाहौर में मरे। अबुलफ़ज़्ल के आग्रह पर वह उनके साथ रहते थे। आखिरी उमर में उनकी आँखें काम नहीं देती थीं। उनकी मृत्यु पर किसी ने कहा—

रफ्त आंकि फेलसूफे-जहाँ बूद बर-दिलश,
दुरहाय आसमाने-मआनी कुशादऽबूद।
बे-ऊ यतीम व मुर्दा-दिल अन्द अक़बाय-ओ...

(वह संसार का फिलासफर जो दिलों के ऊपर था, चला गया, जिसने दिव्य गुप्त भेदों को मोतियों को प्रकट किया। उसके बिना उसके नजदीकी अनाथ और मुर्दा-दिल हैं।)

बाप के मरने पर बेटों ने सिर-दाढ़ी मुड़ाई। अकबर हिन्दू-मुसलमान को मिला कर एक जाति बनाना चाहता था, इसलिए एक-दूसरे की रीति-रिवाजों को लेने में आनाकानी नहीं की जाती थी। शेख मुबारक के आठ बेटे और चार बेटियाँ थीं। बेटे थे—१. अबुलफ़ैज़ फ़ैज़ी, २. अबुल फ़जल, ३. अबुल बरकात, ४. अबुलखैर, ५. अबुल-मुकारिम, ६. अबूतुराब, ७. अबू हामिद, ८. अबूराशिद। सातवें और आठवें दासी के पुत्र थे, लेकिन बड़े भाइयों ने उन्हें अपने असली भाई की तरह माना। बेटियाँ थीं— अफ़ीफ़ा, दूसरी, तीसरी भी दरबार के अच्छे अमीरों से ब्याही गई थीं। सबसे छोटी बेटी लाडली बेगम थी, जिसके लिए विशेष लाड़-प्यार होना स्वाभाविक था। इनका ब्याह शेख सलीम चिश्ती के पोते से हुआ।

लाहौर में मरने पर भी उनका शरीर आगरा में लाया गया। अकबर के रौज़ा (सिकन्दरा) से कोस भर पूर्व लाडली का रौज़ा है। पहले इसके किनारे अच्छा बाग और विशाल दरवाजा था। इसी के भीतर कई कब्रें हैं। जिनमें ही नए हिन्दुस्तान के स्वप्न देखने वाले शेख मुबारक व कवि सम्राट् फ़ैज़ी सो रहे हैं।

★

मालवे की संगीत साधना—(पृष्ठ ४८ का शेषांश)

इस प्रकार मालव राग से मालव कौशिक भिन्न राग है। मालव राग के विषय में पुरातन साहित्य में बहुत स्थानों पर वर्णन है। अनेक प्रदेशों ने अपने रागों को रागराज्य में सम्बन्धित किया है। जैसे वैराडी, विराडी, देश, कर्नाटकी, मालीगौर, देशक, गुर्जरी, टोड़ी, जौनपुरी, मुलतानी, आशावरी, इमन, पूरिया, गौड़, रागराज्य में देश की एकता निहित है। विभिन्नता में भी संघीय एकता है।

मालव राग संस्कृत के प्रचार-युग में प्रमुख स्थान रखता होगा। बाद में विस्मृत होता गया है। आज तो संगीत शास्त्रीय सीमा से निकल कर सिनेमा में सिमिटता जा रहा है, परन्तु जिन्होंने पुरातन राग—शास्त्र और उसके वैज्ञानिक विश्लेषण को समझने की कोशिश की होगी वे उसके अन्वेषणकर्ताओं के महान प्रयास के समक्ष नतवदन हुए बिना नहीं रह सकेंगे।

★

प्रेत का घर

विमान चन्द्र दे

सात-आठ वर्ष के भीतर इस गाँव में कितना परिवर्तन हो गया। बदलू भी आज यहाँ नहीं रहता और उसकी पत्नी चांदनी का भी स्वर्गवास हो चुका था। उनके साथ-साथ और भी कितने ही लोग चले गए थे और दूसरी ओर कितने ही नूतन व्यक्तियों का जन्म हो चुका था। बदलू का घर मिट्टी में भूमिसात होकर एक ढोह सा बन गया था। अवशेष रूप में बचे थे दो पौधे, एक महुआ का और दूसरा कागजी नींबू का। मिट्टी उपजाऊ होने से शीघ्र ही वे पौधे वृक्ष बने जा रहे थे। ऋतु-ऋतु में पुष्प-सम्भार से वे लद-से जाते। बसन्त ऋतु में महुए के फूलों की सुगन्धि-सिक्त वायु चारों ओर मन-मोहक वातावरण बना देती। और वे वृक्ष मदमस्त हो कर, झूम-झूम कर पवन के ताल से ताल मिलाकर नृत्य में खो जाते। मनुष्यों के सुख-दुख की कराल छाया उन्हें स्पर्श तक न कर पाई थी।

गाँव के लोग कहते—"उन दो वृक्षों के तले निशीथ में किसी नारी की प्रेतात्मा आज भी भटकती हुई नज़र आती है। उसका सर्वांग जलकर झुलसा हुआ है और उसकी गोद में एक अर्ध-दग्ध शिशु चिपटा रहता है।" बीच-बीच में उस नारी का हृदय विदारक क्रन्दन रात्रि की निस्तब्धता में गूँज उठता। इसलिए गाँव के लोग रात्रि के समय उस रास्ते से कभी न गुज़रते थे। वायु के झोंकों से महुआ और नींबू धरातल पर गिरकर अभागों की तरह सूखकर-सड़कर मिट्टी में मिल जाते थे। फिर उनके बीजों से असंख्य नन्हें-नन्हें पौधे निकल आते और उस स्थान को घने बन में रूपान्तरित कर देते। सिर्फ एक बालक उस डरावने स्थान पर आया-जाया करता था। वह महुआ और निम्बुओं का संग्रह कर इधर-उधर बेचता था। इस मासूम उम्र में ही जीवन निर्वाह के लिए उसने व्यापार करना सीख लिया था।

गृहिणियों के द्वार पर पहुँचकर वह बालक दुखित हृदय से कहता—"अनाथ पर दया करोगी माँ? तुम्हारा कल्याण होगा।" 'कल्याण' शब्द का अर्थ तक भी शायद वह भोला बालक न जानता था। कभी-कभी किसी गृहिणी का हृदय लाख गिड़गिड़ाने पर भी नहीं पिघलता था। तब भी उसे कोई अभिमान, अभियोग न था, कोई दुःख न था। कभी वह व्यवसायी बन, जीर्ण कमीज़ के आंचल से नींबू बाहर निकाल कर गृहिणी से कहता—"नींबू लोगी माँ? हरे-हरे नींबू तोड़ कर लाया हूँ।"

इस पर भी अगर गृहिणी को दया न आती, तो वह मुँह बिचका कर भाग खड़ा होता। बाद में गाली भी देता था। और यों ही दस-बारह दिनों के लिए वह एक गाँव से दूसरे गाँव में चला जाता। उसकी अनुपस्थिति उन गृहिणियों के अन्तःस्थल में करुणा उभार देती है, यह राज़ उसे बखूबी ज्ञात था।

कोई नई गृहिणी उसे देख कर पूछती— "कौन है रे···तू?

बालक निर्विकार भाव से उत्तर देता—"मैं 'लाला' हूँ माँ। मगर दुनिया मुझे इस नाम से नहीं पुकारती। लोग मुझे अभागा समझ कर 'काला' कह कर पुकारते हैं।"

—"किसका छोकरा है रे तू?" घृणा से गृहिणी पूछती।

—"उस पगली का बेटा हूँ···माँ। पता नहीं, मेरी माँ कहाँ चली गई, मुझे अकेला छोड़कर। अब भीख माँग कर गुजारा करता हूँ।"

फिर दया से गृहिणी पूछ बैठती,—"अहा! तब तू कहाँ रहता है?"

"उस गाँव के पेड़ के नीचे पड़ा रहता हूँ।"

जननी पृथ्वी के हाथों से बनाई हुई सन्तान थी वह। वह वसुन्धरा की सन्तान, जीव और मनुष्य! संसार में यही सबसे बड़ा परिचय था उसका। कोई गृहिणी उसे देख कर घृणा से मुँह बिचका कर कहती, "दूर खड़ा रह रे, छूना नहीं। सब जात-कुजात यहाँ ही आया करते हैं। तुझे और कोई दूसरा घर दिखाई नहीं देता?"

इस तरह की स्पष्ट कटु भाषा से भी, लाला क्रोधित न होता। कभी मन्दिर की ओर जाने वाली कोई बुढ़िया, उसे रास्ते में देखते ही झुँझला उठती—"अरे, हट जा, हट जा, छू देगा क्या?"

लाला शान्तभाव से दूर हटकर कहता, "छुऊँगा नहीं, कहाँ जाओगी? जाओ माँ।"

दूसरों के कुवचनों के बदले उसने सिर्फ सहृदयता और दीनता प्रकट करना ही सीखा था। अगर कोई कृपालु उसके दुःख का इतिहास सुन कर दीर्घनिश्वास लेता, तो लाला मृदु कण्ठ से कहता "दो रोटी मिलेगी क्या? खा कर पानी पिऊँगा।"

रोटी प्राप्त होने पर और भी नम्र निवेदन से वह पूछता—"फटी हुई पुरानी कोई कमीज़ नहीं मिल सकती? और एक पैसा भी दे दीजिए। मैं एक दिन महुआ और नींबू लाकर दूँगा।"

कृपालु व्यक्ति उसकी बातों से प्रभावित हो, कुछ न कुछ अवश्य ही उसे दे देता था। लाला के साथ कभी-कभी एक बुढ़िया भिखारिन भी रहती थी। आयु के थपेड़ों से उसकी कमर झुक कर कमान हो गई थी। भयंकर अँधेरी रात में, बरसात में रास्ते के फिसलाव पर लाला उस बुढ़िया को सहारा देता हुआ उसकी झोंपड़ी में पहुँचा दिया करता। कभी वह बुढ़िया को चिढ़ाया करता और बुढ़िया पिनक कर उसे गाली भी दे देती। परन्तु लाला उसके खिसियाने पर खिलखिला कर हँस उठता था। फिर भी बुढ़िया से, अगर दो-चार दिनों तक साक्षात न होता, तो वह घबड़ा उठता और स्वयं जाकर खोज-खबर ले आता।

एक दिन, 'बुढ़िया मरी है, या जिन्दा है' यह सोचता हुआ लाला उसके पास जा रहा था। उसे आते देखकर बुढ़िया ने काँपती आवाज़ में पूछा—"कौन है ? काला···लाला, और···आ। आज कई दिनों से बीमार हूँ।" "क्या खाया है, बुढ़िया दादी ?"

"क्या खाऊँगी बेटा ? अगर आज तू कुछ दे···"

"हाँ-हाँ, मैं तेरे लिए मुढ़ी लाया हूँ, ले।"

आनन्द-विभोर हो गदगद स्वर में बुढ़िया ने आशीर्वाद दिया, "चिरंजीवी होओ बेटा। भगवान तुझे 'राजा' बनाए।"

लाला खिलाखिला कर उपहास भरे स्वर में हँस पड़ा, 'राजा'! फिर उसने बुढ़िया से पूछा—"अच्छा दादी, एक बात पूछूँ ?"

"क्या ?"

—"अगर अमीर लोग न रहते, तो कितना मज़ा आता! और सुनती हो, कल कुछ लोग कह रहे थे कि हम गरीब उनके महलों में रहने लगेंगे।"

बुढ़िया कुछ भी समझ न पाई और डरकर बोली—"हम भिखमंगे भीख ही माँगते रहेंगे। ऐसी बातें न किया कर लाला। वे लोग पकड़ कर मारेंगे और भीख भी न देंगे। वे ही तो हमारे भाई-बाप हैं।"

× × ×

एक दिन वैशाख की दोपहर में बदलू अपने ध्वंसावशेष घर के पास उपस्थित हुआ। देखने में वह भयंकर था। बड़े-बड़े केशों से समूचा मस्तक ढँका हुआ था। आधे बाल भी सफेद हो गए थे। आठ साल की जेलवास कर बदलू आज घर लौटा है। इस बीच उसकी स्त्री को गाँव के कर्णधार ने अपनी वासना का शिकार बना कर पाप भुगतने के लिए छोड़ दिया था और गाँव के किसी भी व्यक्ति ने उस अन्याय का विरोध नहीं किया था। उस नारी ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया और चार-पाँच बरस तक उसे पालती भी रही। लेकिन एक दिन हठात हैज़े से उसकी मृत्यु हो गई।

उसकी ही सन्तान था लाला। ध्वंसावशेष घर को पहचान एवं दो वृक्षों को हर्षितावस्था में देख बदलू की आँखों से टप-टप आँसू टपक पड़े। स्त्री का मृत्यु संवाद उसे जेल में ही मिल चुका था। उस दुखान्त समाचार ने उसे विक्षिप्त सा बना दिया।

बदलू को मनुष्य और समाज से घृणा हो गई। जेल से छुटकारा मिलते ही शान्ति की खोज में वह तीर्थाटन करने चला गया। फिर भी जन्म भूमि की याद कभी-कभी उसे दिशाहीन कर देती थी। अस्तु, एक दिन वह अपने गाँव की ओर वापस चल पड़ा।

महुए और नींबू की भीनी-भीनी सुगन्धि से वह स्थान कोई देवालय-सा मालूम हो रहा था। अतीत की स्मृति में डूबा हुआ बदलू उन वृक्षों की छाया के नीचे सो गया। नींद उसकी तब टूटी, जब किसी ने उसे पुकारा—"साधुबाबा ओ साधुबाबा!"

उसने देखा, एक धूल-धूसरित लड़का नजदीक ही खड़ा उसे बुला रहा है। बदलू ने पूछा—"क्या है रे ?"

लड़के ने उत्तर दिया—"यह जगह तो मेरी है, हट जाओ।"

उस ९ या १० बरस के लड़के की बातचीत में पटु पाकर, बदलू बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा—"तेरी जगह पर मैं नहीं ठहरूँगा लड़के। तू किसका छोकरा है ?"

"कौन जाने! मगर सुनता हूँ मेरी माँ इस गाँव की पगली थी।"

"पिता नहीं है···तेरा ?"

"मैं नहीं जानता साधुबाबा। लोग कहते हैं कि मेरे बाप का कोई ठिकाना नहीं है।"

"क्या नाम है तेरा ?"

"मेरा नाम तो है लाला, मगर तुम मुझे काला कहकर पुकारो। क्योंकि गाँव के लोग मुझे 'काला' ही पुकारते हैं।" कुछ रुक कर उसने पूछा—"मुझे अपना चेला बनाओगे ?"

"क्यों नहीं, कल तू मेरे साथ चलना।"

"आज कहाँ रहोगे ?"

"इसी जगह।"

"यहाँ पर भूत विचरते हैं साधुबाबा। जलकर झुलसी हुई वह एक नारी है जो इसी जगह रोती हुई भटकती है। कई लोग कहते हैं कि वह मेरी माँ है। सो मैं दो वर्ष से यहाँ ही रह रहा हूँ।"

संध्या घिर चली थी। पक्षियों के समूह कलरव करते हुए अपने-अपने नीड़ों को वापस जा रहे थे। साधुबाबा खामोश था और लाला उसके मुखमण्डल की तरफ तन्मय दृष्टि से देख रहा था। कुछ देर के बाद लाला ने साधु की तन्द्रा को भंग करते हुए डर-डर के कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ रहूँगा यहाँ।"

"डर नहीं लगेगा तुम्हें ?" और फिर यह सोच कर कि 'दो जनों' के रहने पर वह नहीं आई तो ?" रूढ़स्वर में बदलू ने कहा—"नहीं यहाँ तुम नहीं रह सकते।"

बालक ने कहा—"मैं तो यहाँ हमेशा से रह रहा हूँ। फिर क्यों तुम आज डाँट रहे हो? मैं नहीं जाऊँगा यहाँ से। चाहो तो तुम चले जाओ।"

बादलू ने क्रोधित हो कर कहा—"भाग नहीं तो मारूँगा।"

लाला भय से दूर हट गया।

प्रहर के बाद प्रहर रात्रि बीतती चली गई। निस्तब्ध रात्रि की भयानक खामोशी ने उस स्थान पर और भी भयंकर रूप धारण कर लिया था। बदलू जाग कर उठ बैठा था। उस नारी की इन्तजारी में व्याकुल बदलू सहसा कोई शब्द सुन कर चौंक उठता था। मन ही मन वह कह उठता—"कहाँ ? चांदनी आ रही है···नहीं, यह तो किसी पक्षी के पर फड़फड़ाने की आवाज़ है!" शून्यता मिटाने के लिए भाँग की गोली मुँह में दबा वह हँस पड़ा—"वाह री दुनिया, तू मरे हुए के पीछे भी भागती है। वह चांदनी मर गई, फिर भी तू उसके सम्बन्ध में तरह-तरह की अफवाहें गली-गली फैलाती है। हे ईश्वर चांदनी तो तेरे पास चली गई। तू उसे शान्ति पहुँचा। मैं इस जीवन में उसे कुछ भी न दे सका।"—यह कहकर उसने बहते हुए आँसू पोंछ डाले।

बदलू उठकर चलने लगा। लेकिन थोड़ी दूर गया ही था कि उसके कदम रुक गए। देखा लाला धरती की छाती से चिपटकर सो

(शेष पृष्ठ ६८ पर)

विश्व के आर्थिक विकास के कुछ पहलू

उमा अग्रवाल

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा प्रकाशित वार्षिक सांख्यिकीय पुस्तक में दिये आँकड़ों से पिछली दो दशाब्दियों में होने वाले विश्व आर्थिक तथा सामाजिक विकास पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा सकता है। प्रस्तुत लेख में प्रकाशित आँकड़ों के आधार पर हम विकास के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालेंगे।

जनसंख्या सम्बन्धी स्थिति

अनुमान लगाया गया है कि सन् १९५४ में समूचे विश्व की जनसंख्या २६५·२ करोड़ थी। सन् १९४० में यह संख्या २३५ करोड़ और १९३० में २०१·३ करोड़ थी। स्पष्ट है कि विश्व की जनसंख्या क्रमागत तीव्रता से बढ़ रही है। सन् १९३०-४० के बीच जनसंख्या की औसत वार्षिक प्रतिशत वृद्धि १·२ थी। सन् १९४०-५४ के बीच यह दर बढ़ कर औसतन १·७८ हो गई। निस्सन्देह आधे से अधिक जन एशिया में रहते हैं परन्तु जनसंख्या के घनत्व की दृष्टि से यूरोपीय महाद्वीप बाजी मार ले जाता है। रूस को छोड़ कर एशिया में १४५·२ करोड़ व्यक्ति रहते थे तब भी प्रति वर्ग किलोमीटर जनसंख्या का घनत्व ५४ ही था। इसके विपरीत रूस-विहीन यूरोप में ४०·४ करोड़ की जनसंख्या होते हुए भी जनसंख्या का घनत्व ८२ था। विश्व का औसत जनसंख्या का घनत्व २० है और इसको दृष्टि में रख कर यह कहा जा सकता है कि ओसिनिया (आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड आदि), अफ्रीका, अमेरिका (उत्तरी तथा दक्षिणी) तथा रूस में, जहाँ जनसंख्या का महत्त्व क्रमशः २, ७, ८ और १० था, अभी जनसंख्या वृद्धि के लिए पर्याप्त सीमा है। यदि विश्व में पूर्वी-पश्चिमी तनाव चलते रहें तो इन चारों प्रदेशों में विशेषतः अमेरिका और रूस में जनसंख्या की वृद्धि होगी।

सन् १९२० से सन् १९५४ तक की वृद्धि-दर को ध्यान में रक्खें तो सबसे तीव्र वृद्धि अमेरिका में ही हुई है और उससे अधिक तीव्र वृद्धि रूस में। निस्सन्देह इसमें द्वितीय महायुद्ध का हाथ रहा है। सन् १९४०-५० में अमेरिका की जनसंख्या में लगभग १९ प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि रूस में यह वृद्धि ३ प्रतिशत ही थी। पिछले ३४ वर्षों में यूरोपीय देशों की कुल जनसंख्या में सबसे कम प्रतिशत वृद्धि हुई। इस काल की विश्व जनसंख्या वृद्धि (४६ प्रतिशत) की अपेक्षा यूरोप की प्रतिशत वृद्धि आधी थी और अमेरिका की प्रतिशत वृद्धि की अपेक्षा एक-तिहाई।

सन् १९२० में अमेरिकी जनसंख्या की अपेक्षा एशियाई जनसंख्या लगभग पाँच गुनी थी और यूरोप की जनसंख्या ड्योढ़ी से कुछ अधिक। सन् १९५४ में अमेरिकी जनसंख्या की अपेक्षा एशिया की जनसंख्या केवल चौगुनी रह गई। यूरोप की जनसंख्या अमेरिका की जनसंख्या से अब लगभग केवल १४ प्रतिशत अधिक है। अपने से पूर्व स्थित देशों को जनसंख्या वृद्धि रोकने का पाठ सिखाना और अपने यहाँ जनसंख्या को अधिक तेजी से बढ़ने देना—यह दोनों बातें विरोधात्मक हैं। कई वर्ष पूर्व 'विश्व-दर्शन' के किसी अंक में विश्वव्यापी जनसंख्या की प्रगति के सम्बन्ध में खुल कर विचार किया जा चुका है। वर्तमान आँकड़े उन बातों की पुनः याद दिला देते हैं। कम जनसंख्या का घनत्व वाले प्रदेश जहाँ प्रकृति ने कोई विषम परिस्थितियाँ (यथा, मरुस्थल, बर्फीले बियावान अथवा तप्त प्रदेश) नहीं खड़ी कर रक्खी हैं वहाँ कम जनसंख्या घनत्व का अर्थ है प्रति व्यक्ति अधिक प्राकृतिक साधन, और अपेक्षाकृत इस अधिक साधन का लाभ उठाकर ऐसे प्रदेशों में जनसंख्या-वृद्धि का होना स्वाभाविक है। इन आँकड़ों से यह शंका दृढ़ होती है कि कम जनसंख्या वाले प्रदेश अपनी जनसंख्या बढ़ा रहे हैं ताकि आदमी आदमी से लोहा ले सके। सम्भव है यह कहा जाए कि कम घनत्व वाले प्रदेशों की जनसंख्या वृद्धि प्रवासियों के कारण अधिक हो रही है परन्तु हमारी समझ में यह बात विशेष नहीं जँचती।

अति और जनसंख्या-वृद्धि

यह सत्य है कि सन् १९२०-५४ में विश्व जनसंख्या वृद्धि का लगभग ४।७ भाग एशिया के कारण था परन्तु यह उल्लेखनीय है कि उसके बाद दूसरा स्थान अमेरिका का था और वहाँ की वृद्धि विश्व सम्बन्धी वृद्धि का १।६ से अधिक थी। ऐसा प्रतीत होता है कि अति सुलभ साधन पाकर भी देश की जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ती है। अमेरिका और एशिया दो सीमाओं की अति के नमूने लगते हैं।

अमेरिका की आर्थिक प्रगति

अभी हाल में (२१-५-१९५६) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की आर्थिक सलाहकार परिषद् के सभापति तथा आर्थिक चक्रों के विशेषज्ञ श्री आर्थर बर्न्स ने कहा है कि सन् १९५२ से अमेरिका का अनुभव यह रहा है कि ऊँचे तथा बढ़ते हुए उत्पादन स्तर तथा वृत्ति के कारण मुद्रा-स्फीति अनिवार्य नहीं है। यह सत्य है कि वर्तमान अर्थशास्त्री तथा राजनीतिक सलाहकार यह मानते हैं कि उत्पादन और वृत्ति के अतिरिक्त मूल्यों के स्थायीकरण की ओर भी ध्यान देना अनिवार्य है। अमेरिका में सन् १९५१-५२ से थोक तथा फुटकर मूल्यों का रुख गिरने की ओर रहा है। यह सत्य है कि उपभोग सेवाओं का मूल्य बढ़ा है परन्तु उपभोग पदार्थों के मूल्य में होने वाली कमी ने उसको छिपा लिया। अमेरिका की उक्त स्थिति के चार प्रमुख कारण हैं। प्रथम, औद्योगिक सामर्थ्य तथा उत्पादकता बढ़ रही है। द्वितीय उत्पादकों के मध्य अधिकाधिक प्रतिस्पर्धा हो रही है। तृतीय, श्रम तथा व्यवस्थापकों की ओर से मूल्य न बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। चतुर्थ, सरकारी द्राव्यिक तथा राजस्व नीति ऐसी रही है कि गवेषणा, अनुसंधान,

विनियोग को प्रोत्साहन मिला है, द्रव्य की प्रचलित मात्रा की वृद्धि वस्तु उत्पादन वृद्धि से कम रही है और उत्पादकों की गुटबन्दी और समझौतों पर रोक रही है। साथ ही जनता की आर्थिक समस्याओं के प्रति जागरूकता बढ़ रही है। वह जितना ही आर्थिक ज्ञान प्राप्त करती है उतना ही वह समझती जा रही है कि कार्य इस प्रकार हो कि मुद्रा-स्फीति तथा मुद्रा ह्रास की स्थिति से बचाया जा सके। निस्सन्देह कृषि-क्षेत्र में अब भी लागत और मूल्य का साम्य वैसा नहीं है जैसा होना चाहिए परन्तु सब कुछ देखते हुए स्थिति संतोषजनक तथा उत्साहवर्धक है। श्री बर्न्स के अनुसार यह स्थिति आगे भी ऐसी ही रहेगी। तब तो अमेरिका की बढ़ती हुई जनसंख्या की रोक की बात ही नहीं उठती। एशियाई देशों में जनसंख्या तथा आर्थिक स्थिति सम्बन्धी इस पहलू को भली भाँति समझ लेना चाहिए।

राष्ट्रीय आय तथा विदेशी व्यापार

अमेरिका की आर्थिक स्थिति तथा विदेशी व्यापार का एक अन्य पहलू है जिस पर सन् १९५५ की सांख्यकीय वार्षिक पुस्तक में प्रकाशित आँकड़ों द्वारा प्रकाश पड़ता है। सन् १९५३ में अमेरिका की कुल राष्ट्रीय आय का केवल ९ प्रतिशत भर विदेशी व्यापार था (देखिए तालिका न० २) जबकि इंग्लैंड में प्रतिशत अनुपात ४०, स्वीडेन में ४२, कैनेडा में ४५, डेन्मार्क में ५८, आस्ट्रेलिया में ३४, और जापान व जर्मनी में ३३ था। अवश्य चीन में भी विदेशी व्यापार राष्ट्रीय आय का १४ प्रतिशत और भारत में केवल १० प्रतिशत था। आर्थिक समृद्धि के लिए विदेशी व्यापार का अधिक होना अनिवार्य नहीं है, विशेषतः उन देशों में जो अधिक क्षेत्र वाले तथा प्राकृतिक संपत्ति से भरे पड़े हैं। उनकी आर्थिक उन्नति के लिए उन्हें परमुखी होना आवश्यक नहीं है। अमेरिका की आर्थिक उन्नति तथा वृत्ति वृद्धि विदेशी व्यापार पर बहुत कम निर्भर है। अतः यदि उसका विदेशी व्यापार नहीं बढ़ता है तब भी वहाँ की आर्थिक परिस्थितियों और जनसंख्या-प्रगति पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। अविकसित देशों को भी विदेशी व्यापार के कम अनुपात से यही शिक्षा मिलती है कि उन्हें आन्तरिक स्थितियों और प्रगतियों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

राष्ट्रीय आय तथा द्रव्य-पूर्ति

यह भी ज्ञातव्य है कि विभिन्न देशों में द्रव्य-पूर्ति तथा राष्ट्रीय आय में विभिन्न अनुपात हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि द्रव्य-पूर्ति का राष्ट्रीय आय से अधिक प्रतिशत अनुपात हो तभी देश की आर्थिक उन्नति होगी। जर्मनी में द्रव्य-पूर्ति वहाँ की राष्ट्रीय आय का २३ प्रतिशत ही है। कैनेडा में यह अनुपात २७ स्वीडेन में २९ तथा फिन्लैंड में केवल १४ है। अधिकांश यूरोपीय देशों में यह ३०-५० प्रतिशत के बीच है यथा, आस्ट्रिया में ३७, डेन्मार्क में ३३, फ्रांस में ४३, इटली में ३९, नीदरलैंड में ४४, नार्वे में ५१ तथा इंग्लैंड में ३८। आस्ट्रेलिया में द्रव्य-पूर्ति और राष्ट्रीय आय का अनुपात ३९ तथा जापान में ३६ था। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में द्रव्य-पूर्ति राष्ट्रीय आय की ४३ प्रतिशत थी और भारत में केवल १६ प्रतिशत। भारत में राष्ट्रीय आय की अपेक्षा द्रव्य-पूर्ति कम प्रतीत होता है परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि बिना सोचे-समझे और उचित नियंत्रण तथा सावधानी को द्रव्य-पूर्ति में वृद्धि कर दी जाए।

प्रस्तुत आँकड़ों के सांख्यकीय सम्बन्ध का जो अध्ययन हमने किया है उससे यह बात अवश्य स्पष्ट है कि राष्ट्रीय आय वृद्धि के साथ द्रव्य-पूर्ति में भी आनुपातिक वृद्धि होने का रुख होता है। परन्तु जो औद्योगिक देश हैं उनमें द्रव्य-पूर्ति की वृद्धि बैंक जमा के रूप में अधिक होती है तथा जो कृषि-प्रधान देश हैं उनमें राष्ट्रीय आय और मुद्रा-मान्य के सम्बन्ध अधिक निकट प्रतीत होती है। क्योंकि भारत, बर्मा, चीन आदि भी कृषि-प्रधान देश हैं अतः यहाँ द्रव्य-पूर्ति की वृद्धि के रूप में अधिक होनी चाहिए।

अरब राष्ट्रीय मुद्रा में

	राष्ट्रीय आय	विदेशी व्यापार	विदेशी व्यापार का राष्ट्रीय आय से प्रतिशत अनुपात
फ्रांस	१०,८५१	२,७०२	२६
इटली	९,२१९	२,४५४	२७
जर्मनी	१०४	३४	३३
इंग्लैंड	१४.७	५.९	४०
स्वीडन	३७	१५.८	४२
फिन्लैंड	६०५	२५३	४२
आस्ट्रिया	६३	२६	५२
डेन्मार्क	२२.६	१३.१	५८
नार्वे	११.२	१०.१	५९
नीदरलैंड	१९.४	१७.२	८९
कैनेडा	१९	८.६	४५
अमेरिका	३०४	२६.६	९
भारत	१०६	१०.७	१०
बर्मा	३.९	१.९	५०
जापान	३,९६५	१,३२६	३३
आस्ट्रेलिया	३.८	१.३	३४

देश	जनसंख्या (करोड़ों में)		क्षेत्र (करोड़ वर्ग किलोमीटर में)	घनत्व
	१९२०	१९५४		
संसार	१८१	२६५	१३.५	२०
अफ्रीका	१४	२१	३.०	७
अमेरिका	२०.८	३५.७	४.२	८
एशिया	९६.७	१४५.१	२.७	५४
यूरोप	३२.८	४०.४	४.९	८२
ओसीनिया	०.९	१.४	८.६	२
रूस	१५.८	२१.४	२२.३	१०

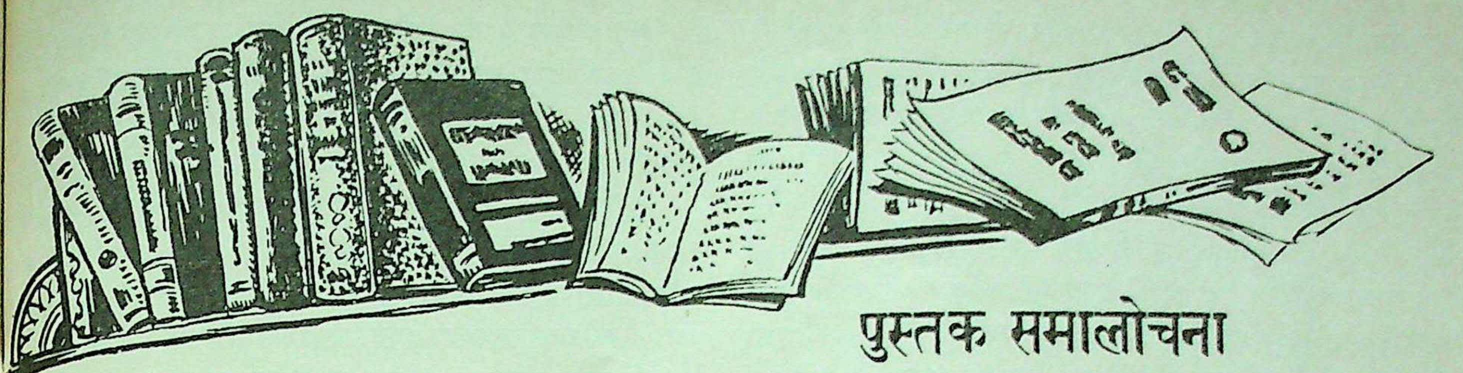

पुस्तक समालोचना

इधर हाल में हिन्दी में कई अच्छे काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से मैंने निम्नलिखित चार संग्रह छाँटे हैं :

प्रणय पत्रिका : लेखक—डाक्टर हरिवंश राय बच्चन; प्रकाशक—सेंट्रल बुकडिपो इलाहाबाद; पृष्ठ संख्या १३३; मूल्य २॥) रु० ।

धूप के धान : लेखक—गिरिजा कुमार माथुर; प्रकाशक—भारतीय ज्ञान पीठ, काशी; पृष्ठ संख्या १५२; मूल्य ३) रु० ।

विश्वास बढ़ता ही गया : लेखक—डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस; पृष्ठ संख्या १०४; मूल्य ३) रु० ।

पर, आँखें नहीं भरीं : लेखक—डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली; पृष्ठ संख्या ११४; मूल्य ३॥) रु० ।

सुमन जी की गिनती प्रगतिवादी सम्प्रदाय के प्रतिनिधि कवियों में की जाती है और श्री गिरिजा कुमार उस धारा के कवि समझे जाते हैं जिसका प्रचलित नाम प्रयोगवाद पड़ गया है । हमारे ये दो कवि कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं और इस महत्त्व का सबसे बड़ा कारण यह है कि ये दोनों कवि वादी कम, कवि·अधिक हैं ।

प्रगतिवादी कविता जिन लक्षणों के कारण निन्दित हुई वे लक्षण सुमन की कविता में कम रहे हैं और इन दो संग्रहों में भी वे अल्प मात्रा में ही मिलते हैं । नाम तो उनका 'एशिया की आग' जैसी रचनाओं को लेकर चमका, किन्तु वर्त्तमान दोनों संग्रहों को मिला कर यह अनलतत्त्व कम, प्रेम और विरह का जलतत्त्व ही अधिक है । 'विश्वास बढ़ता ही गया' में ऐसी रचनाएँ कुछ अधिक अवश्य हैं जिनसे कवि के प्रगतिवादी रूप पर प्रकाश पड़ता है, किन्तु, 'पर, आँखें नहीं भरीं' की तुलना में 'विश्वास बढ़ता ही गया' का पलड़ा कुछ ऊपर उठा हुआ है, यद्यपि 'युगान्तरकारी कवि निराला के प्रति' नामक कविता, जिसे मैं सुमन जी की सर्वश्रेष्ठ कृति मानता हूँ, इसी संग्रह में सम्मिलित है ।

अनेक मनोदशाओं से होकर गुजरने के कारण एक ही कवि अनेक प्रकार की कविताएँ रच सकता है । किन्तु, इस विविधता से उसका वह रूप नहीं छिप सकता जो उसका असली रूप है और जो उसकी प्रत्येक भावदशा के भीतर से झलक मारता है । इस दृष्टि से विचार करने पर मुझे ऐसा लगता है कि सुमन जी सन्देशवाही कवि किसी झकोर में पड़ कर बन जाते हैं, अन्यथा उनका वास्तविक रूप सौन्दर्यवादी कवि का ही रूप है और इसीलिए वे काव्यरसिकों के प्यारे भी हैं । उनके भीतर छायावाद का वह रोमांटिक तत्त्व जीवित है जिसने एक समय बच्चन जी की कविताओं में रस भरा था तथा जो प्रत्येक उदीयमान कवि की रचनाओं पर मोहकता का रंग छिड़क देता है । उनकी यह रसिकता, उनका यह स्निग्ध भाव इस बात का प्रमाण है कि कुछ अन्य कवियों की भाँति उनकी सरसता दोपहर होते-होते न सूखेगी । 'तुम को सूरज ने कभी छुआ तो होगा', 'क्या किसी साँस की रगड़ ज्वाल में बदली ?' इन पंक्तियों में जो लाक्षणिकता है, वह भी इस बात का संकेत देती है कि सुमन जी की प्रतिभा परिचित क्षितिजों के पास धूनी रमा कर बैठ जाने को तैयार नहीं है । वह अभी नये क्षितिजों का निर्माण कर सकती है । 'पर, आँखें नहीं भरीं' की गणना हिन्दी के अच्छे काव्य-संग्रहों में की जा सकती है ।

बच्चन जी की अच्छी-अच्छी इतनी कविताएँ हम पढ़ चुके हैं कि उनकी 'प्रणय-पत्रिका' कुछ सूनी-सूनी-सी लगती है । टेकों में तो रस अब भी विद्यमान है, किन्तु, अन्तराएँ अधिकतर रची-रचायी दीखती हैं । बच्चन जी की भाषा में लाक्षणिकता की मात्रा पहले भी न्यून थी । उनकी कविताओं में जो रस था वह अनुभूतियों से आता था । 'प्रणय-पत्रिका' में अनुभूति की वेधकता पाठकों को प्रभावित नहीं करती । अधिकांश में 'प्रणय-पत्रिका' के गीत बच्चन जी के पहले के गीतों की छायामात्र हैं । ऐसा दीखता है, मानों, कवि नये उन्मेष के अभाव में अपने पूर्व रूप का अनुकरण कर रहा हो । किन्तु, जब रससिद्ध कवि अपना अनुकरण आप करता है तब भी कुछ रस तो वह दे ही जाता है । वह रस 'प्रणय-पत्रिका' में भी है । किन्तु, जिस भावधारा में 'निशा-निमन्त्रण' और 'आकुल अंतर' के गीत अपना चमत्कार दिखा चुके हैं उसमें 'प्रणय·पत्रिका' कागज़ की नाव के समान लगती है । कविता की सारी शक्ति उसकी भाषा में होती है और 'प्रणय-पत्रिका' की भाषा स्वच्छ और परिमार्जित होने पर भी प्रकाशहीन है । इस पुस्तक को पढ़ कर ऐसा भासित होता है कि बच्चन जी के सामने प्रेम और विरह की जो भूमि थी, कवि उसके चप्पे-चप्पे को छान चुका है और उसमें कवि को अब कोई नवीनता नहीं मिलती ।

कवित्त्वमयी भाषा से मेरा क्या तात्पर्य है, इसे स्पष्ट करने के लिए मैं कहना चाहता हूँ कि श्री गिरिजा कुमार के 'धूप क धान' की भाषा कवित्त्वपूर्ण है । कोमल शब्दों की योजनामात्र से कविता की भाषा नहीं बनती । रवि बाबू ने ठीक ही ऐसी भाषा को कवित्त्वमयी न कह कर, ललितलवंगी कहा है । एक समय ललितलवंगी भाषा से भी कविता आदरणीय हो जाती थी । किन्तु, वह समय चला गया और इसलिए

चला गया कि सहृदयों की रुचि अब अधिक परिमार्जित और गहरी हो गई है। अब वह अनुप्रासों की सजीवता और छन्दों की संगीतमयता से तृप्त नहीं होती, प्रत्युत् कवित्व का प्रमाण वह प्रत्येक शब्द में खोजती है। कविता की भाषा रूखी होने पर भी कलरवपूर्ण और रंगीन हो सकती है। छन्द पूरा करने के लिए जब ऐसे शब्द चुने जाते हैं जो संकेत नहीं देते, चिनगारियाँ नहीं फेंकते, तब ऐसे शब्दों को भरती के ही शब्द कहना चाहिए। कवि की जो सबसे बड़ी शक्ति है वह न तो छन्द-रचना में परखी जा सकती है, न ऊँचे-ऊँचे विचारों को बाँधने में। उसकी जाँच विशेषणों के प्रयोग में होती है या फिर ऐसे शब्दों के प्रयोग में जिनके बैठने की अदा से ही कविता चमक उठती है। अंग्रेज़ी कवियों में यह गुण सबसे अधिक कीट्स में है। हिन्दी कवियों में से इस गुण का सबसे अधिक प्रमाण पन्त जी ने दिया है। 'दूर उन खेतों के उस पार, जहाँ तक गई नील झंकार' तथा 'सर सर सर सर रेशमी वायु' में सारी कविता नील झंकार और रेशमी वायु में सिमट कर बैठी हुई है। शब्दों से जब ज्योति छिटकती हो, संकेत ध्वनित होता हो अर्थात शब्द जब इस प्रकार बैठते हों, मानों, उनके पंख निकल आए हों और वे उड़ने को तैयार हों, तभी यह कहा जा सकता है कि कविता की भाषा सचमुच कवित्वपूर्ण है। किन्तु, यह गुण जितना ही अनुपम है उतना ही दुर्लभ और दुष्प्राप्य भी। जब तक भीतर के तार चढ़े हुए न हों और प्रतिभा के उन्मेष से रोम-रोम न थिरक रहा हो, तब तक ऐसी भाषा सत्कवि भी नहीं लिख सकता। और जो कवि ऐसी भाषा लिख सकता है उसे सत्कवि न मानना, कविता के सबसे ऊँचे गुण से अपना अपरिचय घोषित करना है।

'धूप के धान' में कवित्वमयी भाषा के विलक्षण प्रयोगों के इतने अधिक उदाहरण वर्त्तमान हैं कि मैं तो उन्हें देख कर चकित रह गया। इस संग्रह की कविताओं में कुछ दोष भी हैं, किन्तु, वह अलग बात है। किन्तु, जहाँ तक काव्य की भाषा का सम्बन्ध है, मैं नूतन काव्य-साहित्य में किसी भी ऐसी पुस्तक का नाम नहीं ले सकता जिसमें लक्षणा और सम्यक् विशेषणों का इतना अधिक प्रयोग हुआ हो और ऐसी सफलता के साथ। 'यह कपूरी लौ उठी', 'सभ्यता का रंग-केतन', 'अब ब्राह्म घड़ी का ठंडा-सा आलोक जगा', 'हल्की हो गई हवा की तिमिर-दबी साँसें', 'कच्ची मिट्टी का ठंडापन', 'इस धूसर साँवर धरती की सोंधी उसाँस', 'या कालान्तर में पथराये भाव हमारे', 'उजली बाँहों सी दीवारें', 'सोंधे तन-गन्ध-भरे आँचल', 'और ब्लाउज़ महीन चटकीले, जिनमें थे पड़ गये पहनने से, चिह्न रंगीन गठे अंगों के, सभी कोमल कठोर उतार-चढ़ाव', 'दूर पर छै की गजर डूब रही', 'यह दो हज़ार वर्षों की छाँह हवाओं में', 'हैं कसे धनुष के वक्र ओंठ', 'सर्दियों की धूप उजले ऊन की मृदु शाल पहने', उद्धरण कहाँ तक दिए जाएँ, सारी पुस्तक ही ऐसे उदाहरणों से भरी पड़ी है। मुझे तो इस संग्रह की अधिकांश पंक्तियाँ अपने भीतरी प्रकाश से जगमगाती दीखती हैं और कवि की उस तन्मयता पर श्रद्धा होती है जिसमें रह कर उसने इतनी ज्योतिर्मयी भाषा का निर्माण किया है। 'धूप के धान' की कविताओं को देख कर इस बात का आभास मिलता है कि प्रयोगवादी कवि कविता में किस सौन्दर्य को उतारने के प्रयास में हैं।

आलोचक अभी भी प्रयोगवादी कवियों पर अलग-अलग विचार न करके उन्हें गुच्छ-रूप में ही देखते हैं। किन्तु, मेरा ख्याल है, गिरिजा कुमार गुच्छ से ऊपर आ गए हैं और उनकी रचनाओं का विधिवत् अध्ययन करने से नई कविता के कितने ही सुन्दर रूप प्रत्यक्ष हो जाएँगे।

'धूप के धान' की दूसरी विशेषता यह है कि वह नए प्रयोग की रचना होने पर भी परम्परा से बहुत दूर नहीं हैं। इसकी प्रायः सभी कविताएँ छन्द में हैं, यद्यपि, वे छन्द कहीं तो नपे-तुले और तुकों के साथ हैं और कहीं मुक्त प्रवाह का अनुकरण करते हैं।

शायद, हापकिन्स ने कहा था कि कविता का सारा सौन्दर्य ऐसा होता है जिसे हम चर्म-चक्षुओं से देख सकते हैं। गिरिजा कुमार की कविताएँ इस सूक्ति का समीचीन उदाहरण हैं। कल्पना में उन्होंने स्वयं जो कुछ देखा है, चित्र बना कर उसके दर्शन उन्होंने अपने पाठकों को भी करा दिये हैं। वे, सचमुच ही, लैंडस्केप के कवि हैं अर्थात उनकी कविता में अंकित छवि दृश्य रूपों की छवि है जो आँखों से देखी जा सकती है। इसके सिवा, कविता में उनकी स्पर्श और घ्राण इन्द्रियाँ भी अत्यन्त जागरूक रहती हैं। स्पर्श, घ्राण और दृष्टि, गिरिजा कुमार की कविताएँ इन तीन इन्द्रियों की कविताएँ हैं। किन्तु यही बात उनकी श्रुतिचेतना के बारे में नहीं कही जा सकती।

विचित्र बात है कि गिरिजा कुमार की सबसे बड़ी शक्ति यदि भाषा के काव्यात्मक प्रयोग में है तो भाषा के क्षेत्र में ही उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता भी छिपी हुई है। कलाकारिता और सुदृढ़ प्रेरणा के कारण वे ऐसी पंक्तियों पर पंक्तियाँ लिखते चले जाते हैं जिनमें आने वाले शब्द अपनी लाक्षणिकता से सहृदयों का मन मोहित कर लेते हैं। किन्तु, कदाचित, असावधानी के कारण वे ऐसे शब्द भी ले आते हैं जो बेमेल हैं। यह उदारता ग़लत किस्म की उदारता है। उदाहरण के लिए, 'गतिवान मंज़िलें पार हुईं' में या तो मंज़िल को नहीं लाना चाहिए था या फिर 'गतिवान' के बदले किसी ऐसे शब्द को लाना था जो मंज़िल से मेल खाता। 'शक्तिवान मेहनत की बाँहों' 'दीगर मुल्क' और 'कातिक का रसवान महीना' में भी मुझे कुछ ऐसे ही बेमेल प्रयोग की झलक दीखती है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

(आकाशवाणी के सौजन्य से)

◆

भारतीय अर्थशास्त्र : लेखक—भगवान केला; प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, इलाहाबाद ; पृष्ठ संख्या—६५२; मूल्य ५) रु० सजिल्द।

भगवान दास केला अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ लेखक हैं। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण सन् १९२५ में प्रकाशित हुआ था। दूसरा परिवर्धित संस्करण सन् १९३७ में छपा। स्वाधीनता के बाद सन् १९५१ में इस पुस्तक में यथोचित संशोधन और परिवर्धन किए गए। अब सन् १९५६ के इस संस्करण में केला जी ने अपनी इस पुरानी रचना को नवीनतम रूप दे दिया है। इस संस्करण में सर्वोदय सम्बन्धी विचारधारा पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है, क्योंकि वह भारतीय

अर्थशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है, उसकी लेखन शैली प्रशंसनीय है और दाम भी बहुत कम रक्खा गया है। पर १६२५ से सन् १६५६ तक अर्थशास्त्र की आधारभूत धारणाओं के सम्बन्ध में जो प्रगति हुई है, उसका यथेष्ट प्रभाव इस ग्रन्थ पर नहीं है। अर्थशास्त्र सम्बन्धी हिन्दी शब्दों का निश्चित स्टैण्डरडाइज़ेशन अभी तक नहीं हुआ। उसका प्रभाव अर्थशास्त्र सम्बन्धी सभी प्रकाशनों पर पड़ना स्वाभाविक है। पुस्तक के अन्त में आवश्यक शब्द सूची तथा ग्रन्थ-सूची दे दी जाती तो उससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ जाती।

सचित्र हिमालय पर्वत (रंगीन मानचित्र): मानचित्रकार—मनमोहन दे; प्रकाशक—वोरा एण्ड कम्पनी; ८, राउण्ड बिल्डिंग, कालवा देवी रोड, बम्बई-२; आकार—६७×१५; मूल्य ६) रु०।

हिमालय पर्वत तथा निकटवर्ती क्षेत्र का यह चार रंगी मानचित्र अत्यन्त सुन्दर रूप में छापा गया है। मानचित्र में विभिन्न पर्वत श्रेणियों की ऊँचाई तो दी ही गई है, पर सभी आवश्यक नाम नहीं दिए गए। मानचित्र में अक्षांश और देशांश का निर्देश भी आवश्यक था, जो इस मानचित्र में नहीं है। फिर भी यह मानचित्र अत्यन्त उपयोगी और सुन्दर है। प्रकाशक को भारत भर के इसी तरह के मानचित्र प्रकाशित करने का प्रयत्न करना चाहिए। चित्रों की पीठ पर कपड़ा तथा ऊपर और नीचे लकड़ी की गोल पट्टी लगाना आवश्यक है।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

◆

साँसों का संगीत (कविता संग्रह): रचयिता—अब्दुल अज़ीज़ हनफ़ी 'अमीक़'; प्रकाशक—चिन्तन-गृह प्रकाशन, मथुरा; पृष्ठ संख्या ३५; मूल्य आठ आने।

'साँसों का संगीत' कवि का प्रथम हिन्दी-कविता संग्रह है। इसमें भाषा और छंद की त्रुटियाँ मिल सकती हैं, पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कवि में प्रतिभा है और है भावुक सहृदयता, जिससे कवि को रस-सृष्टि करने में सफलता मिली है। हम कबि की उत्तरोत्तर सफलता की कामना करते हैं।

नयी ज़िन्दगी: नया सवेरा (कविता संग्रह): रचयिता—विश्वनाथ तरुण; प्रकाशक—प्रतिमा प्रकाशन, लक्ष्मीसागर, दरभंगा; पृष्ठ संख्या ५०; मूल्य बारह आने।

तरुण जी की कविताओं में तरुणाई का ज्वार है। आज के जीवन और समाज की अनेक ज्वलन्त समस्याओं का स्पर्श ये ओजस्वी कविताएँ करती हैं। परन्तु जैसा कि समस्या-मूलक कविताओं के सम्बन्ध में प्रायः देखा गया है, अभिव्यक्ति के संयम और सौकर्य का अनेक रचनाओं में अभाव है। क्रान्ति-गीतों का अपना स्थान और महत्त्व होता है, इसमें संदेह नहीं। पर यदि उनमें काव्य-कला और शैली की परिपक्वता न हो, तो वे हृदय में उतनी गहराई तक नहीं उतर पाते जितना काव्य का अभीष्ट होता है। हमें आशा है कि समय के साथ तरुण जी की रचनाओं में इस प्रकार की कलात्मक परिपक्वता और सौन्दर्य आता जाएगा जो क्षोभ के आत्यन्तिक आवेग को सहज काव्यात्मक रूप प्रदान कर सकेगा।

दिव्य ज्योति (खोरठा भाषा का एक काव्य-संग्रह): रचयिता—श्री निवास पानुरी; प्रकाशक—खोरठा प्रकाशन, बरवाड्डा, धनबाद; पृष्ठ संख्या १६; मूल्य ।=)

'दिव्य ज्योति' एक आँचलिक भाषा-काव्य संग्रह है। बिहार के छोटा नागपुर, संताल परगना और मुँगेर के कुछ भाग की जनपदीय भाषा की संज्ञा 'खोट्टा' है और इसी भाषा में श्री पानुरी ने आज के जीवन की कष्ट-कथाओं को छन्द-बद्ध किया है। इस दृष्टि से संग्रह का हम स्वागत करते हैं। जिन लोगों के लिए यह लिखा गया है, वे इससे अवश्य प्रभावित होंगे।

—प्रयागनारायण त्रिपाठी

◆

विराट मानव (मराठी खण्ड काव्य): रचयिता—डा० शं० जा० पुरवार; प्रकाशक—वही, ललित कला विकास मण्डल, सराफ़ा, औरंगाबाद (द); पृष्ठ संख्या ७५; मूल्य १।)

मानवता की शक्ति महान है। विश्व का रचयिता और संहारकर्त्ता योगेश्वर शंकर मानव ही है और खेत में हल चलाने वाला श्रमिक कृषिकार भी मानव ही है। इस सृष्टि में असहाय और अज्ञान अवस्था में जन्म पाकर मानव-शिशु ने बिना किसी की सहायता से आगे चल कर प्रकृति पर विजय पाई और सभ्यताओं और कलाओं का निर्माण किया। अन्याय और आतंक का दमन और सत्य, शान्ति आदि सद्गुणों की रक्षा करने के लिए इसी मानव ने कृष्ण, बुद्ध, धर्मराज, शिवाजी, गांधी, आदि महापुरुषों के रूप में अवतार लिया।

मानव की इसी विशाल कल्पना को श्री पुरवार जी ने अपने "विराट मानव" नामक मराठी खण्ड काव्य में काव्य रूप दिया है। दूसरे महायुद्ध से आन्दोलित काल में उन्होंने इस काव्य की रचना की। उनकी विशाल कल्पना-शक्ति मानव-मानव में भेद नहीं करती। उनका विश्वास है कि मानव ही अपनी तामसी अवस्थाओं से संसार को बिगाड़ता है और फिर वही अपनी सात्विक सामर्थ्य के आविर्भाव द्वारा उसको सुधारता है। दूसरे महायुद्ध के विषय में वह अन्त में कहते हैं कि मानव ने ही संसार को सत्, चित और सुन्दर बनाने के लिए रणदेवी को जगाया है। मानव के सृजन सामर्थ्य पर पुरवार जी को अनन्य श्रद्धा है।

यह विराट मानव नीत्शे के मानव जाति का संहार चाहने वाले अमानुष सुपरमैन से मूलतः भिन्न है। उसका साम्य वेदों में उल्लिखित विराट पुरुष से होते हुए भी, उस आर्थिक विराट पुरुष से यह विराट मानव अधिक मानवीय है और अधिक कर्त्तव्यशील भी। प्रकृति निर्मित मानव समूचे गुणों का एक उदात्त और सामर्थ्यशाली रूप इस विराट मानव में प्रकट हुआ है।

किन्तु संसार के हरेक व्यवहार में जब श्री पुरवार जी इसी कल्पना का समर्थन करने जाते हैं तब उनकी कल्पना यथार्थता से दूर जा पड़ती है और केवल उनकी भोली भावुकता का उफ़ान लगती है। उनकी प्रतिभा भी ऊँची कल्पना से गिर कर लड़खड़ाती हुई ढीली चाल से चलने लगती है। फिर भी प्रथम प्रयास के रूप में यह काव्य अभिनन्दनीय है।

—मा० कृ० पारधी

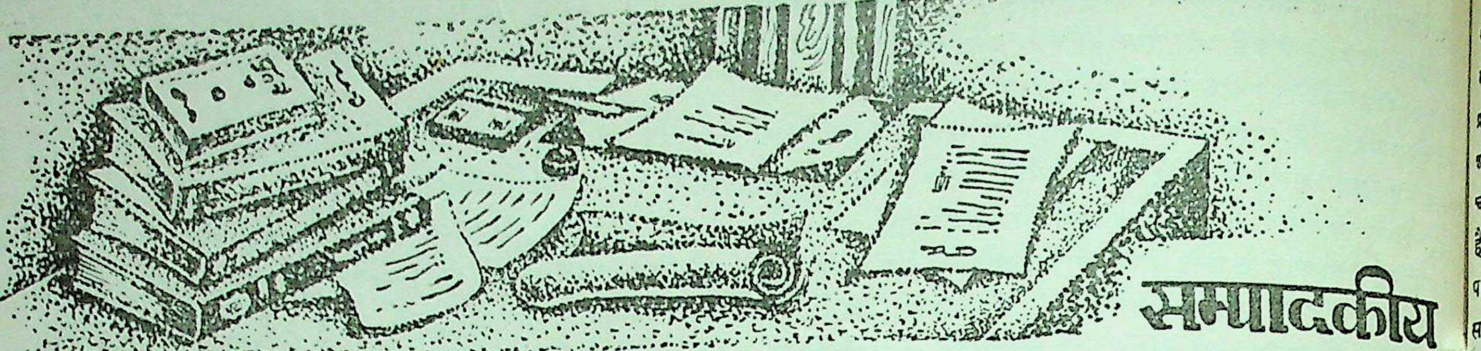

सम्पादकीय

श्रद्धांजलि

२ अक्तूबर १९५६ को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की ८७वीं जन्म जयन्ती का पुण्य पर्व है। इस अवसर पर हम सम्पूर्ण राष्ट्र के साथ "आजकल" परिवार की ओर से बापू के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं। नवीन भारत के निर्माता राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की स्मृति हम सब को अपने कर्तव्य पालन के प्रति जागरूक रखे।

अब से १३ वर्ष बाद २ अक्तूबर १९६९ को राष्ट्रपिता की जन्म शताब्दी का पुण्य पर्व होगा। इसी आगामी नवम्बर मास में युनैस्को की अध्यक्षता में दिल्ली ही में महात्मा बुद्ध की २५००वीं वर्ष गाँठ मनाते हुए हमें गांधी जन्म शताब्दी की योजना भी बना लेनी चाहिए। ताकि इन आगामी १३ वर्षों में उक्त योजना की पूर्ति का भरसक प्रयत्न किया जा सके।

दसवाँ वर्ष

गत १५ अगस्त से भारत की स्वाधीनता का दसवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ है। स्वाधीनता के पहले ९ वर्षों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहले साढ़े-चार वर्ष, जिनमें भारत का ध्यान अपनी आधारभूत बड़ी-बड़ी समस्याओं को हल करने की ओर रहा। ये समस्याएँ थीं—(१) देश में गृहयुद्ध की दशाओं को रोकना और उसके साथ ही साथ लाखों शरणार्थियों को सुरक्षापूर्वक स्वदेश ले आना, (२) लगभग ६० लाख शरणार्थियों को फिर से बसाने की समस्या, (३) सैकड़ों देशी राज्यों को भारत का अविभाज्य अंग बनाने का सवाल, (४) काश्मीर युद्ध और उसके बाद काश्मीर के भविष्य का सवाल, (५) देश का नया संविधान बनाना और उसे जारी करना, (६) देश के दो बड़े अन्न-उत्पादन केन्द्रों के पाकिस्तान में चले जाने के कारण उत्पन्न अन्न की कमी की समस्या। महात्मा गांधी के अमर बलिदान, भारतीय नेताओं की सूझ-बूझ तथा भारतीय जनता के अनथक सहयोग से जिस प्रकार स्वाधीनता के प्रथम साढ़े-चार वर्षों में उक्त सभी समस्याएँ हल कर ली गईं, वह अब भारत के इतिहास का एक शानदार अध्याय बन चुका है।

सन् १९५२ के आरम्भ तक भारत में नए आम चुनाव किए गए। वह निर्वाचन संसार के इतिहास का सबसे बड़ा निर्वाचन था। उस निर्वाचन के साथ भारतीय स्वतन्त्रता का दूसरा दौर शुरू हुआ और भारत अपनी पूरी शक्ति के साथ अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना की पूर्ति में जुट गया। इन वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का असाधारण सम्मान बढ़ा और नई दिल्ली संसार से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में सम्मिलित हो गई।

१५ अगस्त १९५६ से हमारा देश स्वाधीनता के दशम वर्ष में प्रवेश कर रहा है। साथ ही अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना को पूरा कर लेने के बाद इसी वर्ष हमारे देश ने दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ किया है, जो प्रथम योजना से लगभग दोगुनी है। पूरे आत्मविश्वास के साथ भारत में इस दूसरी पंचवर्षीय योजना का प्रारम्भ किया गया है।

इस अवसर पर हमें अपनी कमज़ोरियों को भी नहीं भूलना चाहिए। अपनी आधारभूत कमज़ोरियों को हम मुख्यतः दो भागों में बाँट सकते हैं: (१) देश में योग्यता की कमी, तथा (२) नैतिकता की दृष्टि से हमारा निम्न स्तर। देश में आज जो बड़े-बड़े निर्माण कार्य हो रहे हैं, उन सब के लिए लाखों योग्य और निपुण कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है। सभी क्षेत्रों में योग्य और निपुण भारतीय कार्यकर्त्ताओं की कमी हमारी उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा बनी हुई है। जिस देश में अभी तक लगभग ८० प्रतिशत नागरिक साक्षर तक नहीं हैं, वहाँ योग्यता और निपुणता का स्टैण्डर्ड ऊँचा कर सकना कितना दुस्साध्य कार्य है। साक्षरता मनुष्य को एक नई आँख देती है। हमारे देश की लगभग ८० प्रतिशत जनता अभी तक इस आँख से वंचित है। हमारी दूसरी कमज़ोरी और भी अधिक चिन्तनीय है। योग्यता और निपुणता की कमी ईमानदारी तथा कर्त्तव्यभावना से ही पूरी की जा सकती है, पर विदेशी शासन में हमारे देश का इतना नैतिक पतन हो गया था कि अभी तक भारत के पुनर्निर्माण कार्य में आधारभूत ईमानदारी की कमी एक बहुत बड़ी बाधा बनी हुई है। रिश्वत, पक्षपात और स्वार्थपरायणता से अभी तक हमारा पिण्ड नहीं छूटा।

हमें आशा करनी चाहिए कि स्वाधीनता का प्रथम दशक पूरा करने से पूर्व हमारा देश अपनी उपयुक्त कमियों और त्रुटियों को भी दूर करने का गम्भीर प्रयत्न करेगा।

लन्दन कान्फ्रेन्स के बाद

राष्ट्रपति नासर ने जिस भद्रता से पाँच राष्ट्रों के प्रतिनिधि मण्डल का स्वागत किया था, उससे संसार भर को आशा छा गई थी कि स्वेज़

का मसला शान्तिमय उपायों से हल हो सकेगा। इस सम्बन्ध में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि स्वेज़ के सम्बन्ध में मिश्र को पूर्ण प्रभुसत्ता (सौवरेन्टी) प्राप्त है या नहीं। मिश्र एक स्वतन्त्र राष्ट्र है और स्वेज़ नहर मिश्र की सीमा में विद्यमान है। स्वेज़ का महत्त्व चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, वह मिश्र देश का अविभाज्य भाग है। यदि सम्बद्ध राष्ट्र सिद्धान्त रूप से यह स्वीकार करलें कि स्वेज़ पर मिश्र की पूर्ण प्रभुसत्ता विद्यमान है, तो इससे स्वेज़ सम्बन्धी समस्या को सुलझाना निस्सन्देह अपेक्षाकृत सहल हो जाएगा। तब तीन बातें सामने रहेंगी—(१) स्वेज़ पर मिश्र का पूरा अधिकार है, (२) संसार के बहुत से राष्ट्रों का हित इस बात में है कि उनके जहाज़ इस नहर में से बिना किसी बाधा के आ-जा सकें और किसी दशा में उन्हें रोका न जाए, (३) मिश्र का अपना हित इस बात में है कि संसार भर का जो जहाज़ स्वेज़ नहर में से गुज़रना चाहे, वह नियमित शुल्क देकर नहर में से आ-जा सके।

स्पष्ट है कि उक्त तीनों बातें परस्पर विरोधी नहीं हैं। इस सम्बन्ध में मिश्र ने भी यह वचन दिया है कि वह स्वेज़ में जहाज़ों के यातायात पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं लगाएगा। मैत्री के ढंग पर मिश्र को अवश्य ही इस बात के लिए तैयार किया जा सकता है कि वह सम्बद्ध राष्ट्रों की एक स्वेज़ सलाहकार समिति की राय से स्वेज़ नहर का संचालन और नियन्त्रण करे। सम्बद्ध राष्ट्रों का हित इसी बात में है। साधारण दशाओं में इस सलाहकार समिति की बात मानने में मिश्र को कोई एतराज़ न होगा। युद्ध की परिस्थितियों में बात दूसरी हो जाती है। पिछले दोनों विश्व-युद्धों में भी स्वेज़ का मार्ग संसार भर के सभी राष्ट्रों के लिए खुला नहीं रहा था। आज कोई समझौता हो जाने पर भी यह कहना कठिन है कि युद्ध की परिस्थितियों में कोई राष्ट्र क्या कदम नहीं उठाएगा। पर युद्ध के दिनों रणमहत्त्व का दृष्टिकोण सबसे अधिक प्रबल हो जाता है। इससे युद्ध के दिनों में स्वेज़ नहर के यातायात का खुले रहना या बन्द हो जाना, साधारण अर्थों में उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रहता। क्योंकि स्वेज़ के खुले रहने पर भी आकाशी आक्रमण के भय से शायद कितने ही राष्ट्र उसमें से अपने जहाज़ ले जाना पसन्द न करें।

इन दिनों एक ओर तो मिश्र से मित्रतापूर्ण बात-चीत द्वारा यह समस्या सुलझाने के प्रयत्न हो रहे हैं, दूसरी ओर स्वेज़ के निकट सेनाओं के आवागमन की खबरें भी आ रही हैं, जो मंगलपूर्ण नहीं हैं। कुछ सम्बद्ध देशों का प्रेस भी इस बारे में यथोचित संयम से काम नहीं ले रहा।

मैन्ज़ीज़ मिशन की वापसी के समय राष्ट्रपति नासर ने अपने एक पत्र में १८ राष्ट्रों के प्रस्ताव के सम्बन्ध में कहा—"स्वेज़ नहर पर अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण के उद्देश्य से बनाई गई १८ राष्ट्रों की योजना से बढ़कर मिश्र की जनता को अधिक उत्तेजित करने वाली किसी बात की कल्पना करना भी कठिन है। इस योजना का उद्देश्य ही यह है कि स्वेज़ नहर को मिश्र के हाथों से ले लिया जाए। इस तरह के काम से न सिर्फ़ वास्तविक उद्देश्य पूरा न होगा, अपितु नाराज़गी, ग़लतफ़हमी और झगड़ा लगातार बना रहेगा। दूसरे शब्दों में यह एक बड़ी मुसीबत का प्रारम्भ होगा, अन्त नहीं।

"जहाँ तक मिश्र का सम्बन्ध है, मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि स्वेज़ के सम्बन्ध में मेरी सरकार की नीति इस प्रकार रहेगी—

"(क) स्वेज़ में जहाज़ों का स्वाधीन यातायात तथा बिना किसी भेदभाव के उसका उपयोग;

"(ख) आवश्यकतानुसार स्वेज़ नहर का विकास;

"(ग) उचित, समान और युक्तियुक्त चुंगी; और

"(घ) स्वेज़ नहर के यातायात को और अधिक सुविधाजनक बनाना।"

पाँच राष्ट्रों के मिशन के अध्यक्ष श्री मैन्ज़ीज़ के अनुसार कैरो कौन्फ्रैन्स की असफलता से स्वेज़ समस्या अब अत्यन्त गम्भीर दशा में पहुँच गई है। पर हमें अब भी विश्वास है कि अमेरिका के समझदार नेतृत्व में पश्चिमी शक्तियाँ आक्रमणकारी तरीकों से इस मसले को हल करने का प्रयत्न किसी भी दशा में नहीं करेंगी।

इस सम्बन्ध में सब से अधिक चिन्ताजनक स्थिति ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री श्री एन्थनी ईडन की इस घोषणा के कारण उत्पन्न हुई थी कि ब्रिटेन के नेतृत्व में स्वेज़ नहर का उपयोग करने वाले राष्ट्र अपना एक स्वतन्त्र संघ बनाएँगे, जिस संघ के अधीन इन राष्ट्रों के जहाज़ अपने पाइलेटों की देखरेख में स्वेज़ नहर में से आने जाने का प्रबन्ध करेंगे। यह स्थिति तो कुछ इस ढंग की थी कि एक होटल में रहने वाले व्यक्ति होटल की सम्पूर्ण व्यवस्था और लेन देन स्वयं करने लगें! पर बाद में ब्रिटिश पार्लियामैन्ट में प्रधान मन्त्री श्री ईडन ने यह स्थिति स्पष्ट कर दी कि उक्त योजना बलपूर्वक पूर्ण करने का उनका इरादा नहीं है। इस बीच स्वेज़ नहर कम्पनी की सलाह पर स्वेज़ नहर के अधिकांश विदेशी पाइलैट अपने कार्य से पृथक हो गए हैं। मिश्र की सरकार पर इस तरह का दबाव डालने की पद्धति को किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।

पश्चिमी शक्तियों के कितने ही पत्रों की सलाह है कि उपयोक्ता राष्ट्रों को स्वेज़ के रास्ते अपने जहाज़ भेजना बन्द कर देना चाहिए। यह स्पष्ट है कि यदि ब्रिटेन और फ्रांस आदि राष्ट्रों के जहाज़ स्वेज़ की राह आना-जाना बन्द कर दें तो इस से मिश्र का बहुत आर्थिक नुकसान होगा। पर उन राष्ट्रों का अपना नुकसान भी कुछ कम न होगा। पड़ौसी की दो आँखें फोड़ने के उद्देश्य से अपनी एक आँख फोड़ लेना समझदारी नहीं है। समझदारी इसी बात में है कि शान्तिमय उपायों से स्वेज़ की उलझन सुलझा ली जाए। मिश्र की प्रभुसत्ता पूर्ण रूप से कायम रहे और स्वेज़ का मार्ग संसार भर के राष्ट्रों के लिए खुला रहे।

●

भारत के नए राज्य

सितम्बर के मध्य तक भारतीय राज्यों का पुनः संगठन सम्बन्धी कानून भारतीय पार्लियामेण्ट के दोनों भवनों में पास हो गया था और अब उसके सम्बन्ध में राष्ट्रपति की स्वीकृति भी प्राप्त हो गई है। इस

तरह यह नया राज्य संगठन देश के कानून का भाग बन गया है । नव-संगठित भारत में १४ राज्य हैं—जम्मू और काश्मीर, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, बम्बई, बिहार, पश्चिम बंगाल, आसाम, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, मद्रास, मैसूर और केरल । इन सभी राज्यों की एक समान स्थिति है । वही स्थिति तो अब तक 'ए' भाग के राज्यों की थी । इनके अतिरिक्त निम्नलिखित छः प्रदेश केन्द्रीय सरकार के अधीन हैं—दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, अन्देमन निकोबार, लिक्कदिव तथा मिनिकोव । यह तो स्पष्ट ही है कि सभी राज्यों की उन्नति में भारत की उन्नति है और भारत की उन्नति में इन सभी राज्यों की उन्नति सन्निहित है ।

विकासमान हिन्दी

प्रत्येक जीवित भाषा एक बहती नदी के समान है, जिसमें न जाने कितना नया जल सम्मिलित होता रहता है । यह नया जल विविध प्रकार का होता है, पर पूरी नदी के साथ वह एकाकार हो जाता है और नदी के बहते पानी के साथ अम्लजन का जो संसर्ग होता है, उससे वह सबका सब पानी पेय और ग्राह्य बन जाता है । अंग्रेज़ी जैसी समृद्ध भाषा में भी अभी तक प्रतिवर्ष सैकड़ों वल्कि हज़ारों नए शब्द सम्मिलित किए जा रहे हैं । हमारी हिन्दी तो अभी निर्माण की दशा में है । अभी हमें वैज्ञानिक और समाज शास्त्र सम्बन्धी लाखों पारिभाषिक हिन्दी शब्दों का निर्माण करना है । दूसरी ओर हिन्दी को भारत की राज्य भाषा स्वीकार कर लिए जाने के बाद हिन्दी का क्षेत्र भी एकाएक बहुत विस्तृत हो गया है । क्षेत्रफल और बोलने वालों की दृष्टि से किसी एक भाषा का एकाएक इतना विकास शायद ही कभी और हुआ हो । हिन्दी अब समूचे भारत की भाषा है और स्वभावतः उस पर भारत की सभी राष्ट्रीय भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी का भी गहरा प्रभाव पड़ रहा है । दूसरे शब्दों में यह हिन्दी का विकास काल है और इस समय यह दावा किया ही नहीं जा सकता कि हिन्दी एक प्रमानीकृत (स्टैण्डर-डाइज़्ड) भाषा है ।

हाल ही में एक प्रमुख बंगाली विद्वान ने हम से कहा—"मैं हिन्दी सीख रहा हूँ । पर मैं आपको चेतावनी देना चाहता हूँ कि हिन्दी सीख लेने के बाद कितने ही भाव प्रकाशनों के लिए मैं आपके शब्द स्वीकार नहीं करूँगा । कितने ही संस्कृतजन्य बंगला शब्दों को मैं आपके प्रचलित हिन्दी शब्दों की तुलना में श्रेष्ठ मानता हूँ और अपने भावों का प्रकाशन करते हुए मैं उन्हीं का व्यवहार करूँगा । यही बात और हज़ारों लाखों बंगाली भी करेंगे ।"

उक्त बंगाली विद्वान की स्थापना में जो खतरा सन्निहित है, उसकी ओर हमने उनका ध्यान खींचा । पर उसमें जो सचाई है, वह भी हमें स्वीकार करनी ही पड़ी । अन्य भारतीय भाषाओं के लोग जब हिन्दी को अपनाएँगे तो स्वभावतः वे न केवल अपनी भाषाओं के तद्भव शब्द अपने साथ लाएँगे, अपितु अपने मुहावरों तक का प्रयोग करेंगे । इस तरह हिन्दी के अतिरिक्त अन्य १३ भारतीय भाषाओं का सीधा प्रभाव हिन्दी पर पड़ेगा और हमें मानना चाहिए कि उससे हिन्दी का रूप स्पष्टतः बदलेगा । केवल शब्दकोष की दृष्टि से ही नहीं, अपितु मुहावरे, वाक्य रचना आदि सभी दृष्टियों से । यहाँ तक कि व्याकरण पर भी उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य पड़ेगा । व्याकरण किसी भाषा के लंगर के समान होता है, इससे उक्त परिस्थितियों का न्यूनतम प्रभाव हिन्दी व्याकरण पर पड़ेगा ।

यह आवश्यक है कि हिन्दी जगत इन परिस्थितियों को समझे और इस अवसर पर आवश्यक सूझ-बूझ और सहनशीलता से काम ले ।

लेखकों को आवश्यक सूचना

१. यह निश्चय किया गया है कि अनाहूत रचनाओं की वापसी का उत्तरदायित्व "आजकल" कार्यालय नहीं लेगा । केवल वे रचनाएँ ही वापस की जाएँगी, जिन के साथ उचित आकार का, आवश्यक डाक टिकटों से युक्त पूरा पता निर्दिष्ट किया हुआ लिफ़ाफा विद्यमान होगा । उस दशा में भी "आजकल" कार्यालय केवल उक्त लिफ़ाफ़े को डाक में डालने का उत्तरदायित्व ही लेगा; पहुँच के लिए वह उत्तरदायी नहीं होगा । "आजकल" कार्यालय में प्रतिमास अनाहूत रूप से प्राप्त होने वाली रचनाओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई है, इसी कारण उक्त निश्चय किया गया है । उचित यही होगा कि रचना भेजने से पूर्व उसकी एक प्रति अपने पास सुरक्षित कर ली जाए ।

२. अनुवादित रचनाएँ भेजते हुए मूल लेखक की लिखित अनुमति साथ भेजना आवश्यक है ।

'प्रेत का घर'—(पृष्ठ ६० का शेषांश)

रहा है । जैसे शिशु माँ के स्तन से चिपटा हो । बदलू चित्रवत खड़ा हो गया और बालक को उठाते हुए उसने पुकारा—"लड़के, ओ लड़के !"

आँखें मलते-मलते लाला उठा, और आश्चर्य से बदलू की ओर देखने लगा ।

"चलेगा नहीं बेटा ? मैं जा रहा हूँ ।"

लाला का हाथ पकड़े बदलू उसी अन्धकार में एक दिशा की ओर बढ़ गया ।

(ताराचन्द वन्द्योपाध्याय लिखित 'नीलकण्ठ' नामक उपन्यास के तेईसवें परिच्छेद के आधार पर)

* * *

JASMINE
आपकी
सुन्दरता के
निखार के
लिये
जस्मीन
रेयॉन-सिल्क
के कपड़े
जस्मीन मिल्स् प्राईवेट लिमिटेड, बम्बई–२
JM.56.4

भारत देखिये

पर्यटन तथा तीर्थयात्रा

विशेष रेलें और (सर्क्यूलर) चक्राकार यात्रा

'भारत देखिये' यह नारा विदेशी पर्यटकों के लिए ही नहीं, बल्कि भारतीयों के लिए भी है। हम में से बहुतों को अभी अपनी ही मातृभूमि से परिचित होना है, उसके विशाल पर्वतों, रम्य घाटियों, प्राचीन स्मारकों, ऐतिहासिक मन्दिरों और नवीन उपनगरों का दर्शन करना है।

विशेष चक्राकार यात्राएँ

उत्तर रेलवे साधारण किराये की तीन-चौथाई रकम पर प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के टिकट दे रही है। इन यात्राओं के लिए अनेक निर्दिष्ट मार्ग हैं, जिनका विस्तृत विवरण उत्तर रेलवे के स्टेशन मास्टरों से मिल सकता है। इसके अतिरिक्त यदि जनता (चीफ़ कमर्शियल सुपरिण्टेण्डेण्ट-रेटस) मुख्य व्यावसायिक निरीक्षक (दर सम्बन्धी) को कोई नवीन सुझाव रखेगी तो उसकी भी जाँच की जाएगी और विशेष शर्तों के पूरा होने पर किराये में छूट मिल सकेगी।

विशेष रेलें

बड़ी लाइन की गाड़ियों से विशेष यात्रा अथवा पर्यटन के लिए प्रार्थना करने पर इस पर विचार किया जाएगा तथा निम्न छूटें मिल सकेंगी—

१. पाक प्रबन्ध के लिए प्रत्येक गाड़ी के साथ मुफ़्त एक बोगी लगाई जाएगी।
२. एक कण्डक्टर तथा चार रसोइये नौकरों को मुफ़्त जाने की आज्ञा मिल सकेगी।
३. १,५०० मील से अधिक यात्रा के लिए साधारण किराये के तीन-चोथाई पर कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में रियायती टिकट मिल सकेंगे।

विस्तृत विवरण के लिए कृपया उत्तर रेलवे के मुख्य व्यावसायिक निरीक्षक (दर सम्बन्धी), कश्मीरी गेट, दिल्ली से पत्र-व्यवहार कीजिए।

सार्वजनिक सम्पर्क अधिकारी, उत्तर रेलवे द्वारा प्रचारित

बच्चों को **ड्यूमेक्स** दीजिए और उन्हें फलता-फूलता देखिए!

बेबी फ़ूड

बच्चे यह बता तो नहीं सकते कि
उन्हें ड्यूमेक्स क्यों ज्यादा पसन्द है...
लेकिन जब ड्यूमेक्स उन्हें
दिया जाता है तो उनकी खुशी साफ़ दिखायी
पड़ जाती है। इसलिए इसमें
कोई अचरज नहीं कि माँ के दूध के बाद
ड्यूमेक्स ही सर्वोत्तम है।

आपकी छोटी बचतों द्वारा महान कार्यों की सिद्धि
राष्ट्रीय बचतों में धन लगाइये

बाल-भारती

बच्चों को प्रिय मासिक पत्रिका

देश का भविष्य बच्चों के सही मानसिक विकास पर निर्भर करता है। इसी बात को ध्यान में रख कर बाल-भारती का प्रकाशन पिछले ८ वर्षों से हो रहा है। बाल-भारती में हर महीने रोचक, प्रेरणादायक एवं उपदेशप्रद कहानियाँ, जीवनी, ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेख, चुटकुले, कविताएँ और काव्य कथाएँ, रूपक और एकांकी आदि प्रकाशित किए जाते हैं। बाल-भारती का प्रत्येक अंक नयनाभिराम चित्रों से सुशोभित रहता है। देश-विदेश की प्रगति के सम्बन्ध में भी सरल भाषा और शैली में लेख दिए जाते हैं। भारत और भारत से बाहर के प्रत्येक भाग की लोक-कथाओं को भी दिया जाता है। बाल-भारती के विशेषांक अपनी अभिनव सजधज लेकर प्रकाशित होते हैं। अब तक अन्तर्राष्ट्रीय कथा-अंक, खेल-कूद अंक, बाल-लेखक अंक, हास्य-विनोद अंक आदि विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं। सुरुचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्द्धक सामग्री के लिए बालक-बालिकाओं के हाथों में बाल-भारती की प्रति प्रत्येक महीने अवश्य ही देवें।

बाल-भारती का वार्षिक मूल्य ४) और एक प्रति का ६ आना मात्र है।

सभी प्रमुख पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्त या सीधा लिखें—

बिजिनेस मैनेजर,
पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट,
दिल्ली—८

उत्कृष्ट प्रकाशन

महात्मा गान्धी

महात्मा गान्धी की कहानी—चित्रों में

यह चित्रमय कहानी काल क्रम अनुसार है और महात्मा गान्धी के अलौकिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अध्यायों में बँटी हुई है। यह आशा की जाती है कि इस समय तक उनके जीवन तथा कार्य-कलाप के सम्बन्ध में जो प्रचुर सामग्री एकत्र हुई है यह प्रकाशन उसका उपयुक्त चित्रमय पूरक प्रमाणित होगा।

सादा जिल्द १०) रु०
सिल्क जिल्द १५) रु०

स्वाधीनता और उसके बाद—जवाहरलाल नेहरू के भाषण

प्रधान मंत्री नेहरू के १९४६ से १९४९ तक विशेष अवसरों पर दिए गए ६० महत्त्वपूर्ण भाषण। स्वाधीनता, महात्मा गांधी, साम्प्रदायिकता, काश्मीर, हैदराबाद, शिक्षा, उद्योग, भारत की वैदेशिक नीति, भारत और राष्ट्र मण्डल, भारत और विश्व, आदि विषयों पर। सभी दृष्टियों से संग्रहणीय और पठनीय ग्रन्थ। रु० ५)

भारत दर्शन

(चित्रों में)

भारत की कहानी दिग्दर्शित करने वाले विविध चित्रों का अनमोल संग्रह है। देश के निवासी, पशु, वनस्पति, प्राकृतिक रचना, आदि का विहंगावलोकन। भारतीय जीवन विचारधारा, परिस्थिति, प्राकृतिक दृश्य इत्यादि, विभिन्न पहलुओं का स्थलानुरूप समावेश। रु० ७।)

भारतीय कला का सिंहावलोकन

मोहिन्जोदरो के समय से लेकर भारत के प्राचीन मध्ययुगीन तथा आधुनिक कला के ३७ रंगीन और १०० एक रंगी चित्रों का संग्रह। रु० ६।।)

भारत की एकता का निर्माण

अगस्त, १९४७ से दिसम्बर १९५० तक भारत के इतिहास के तेजस्वी काल में दिए गए सरदार वल्लभभाई पटेल के २७ महत्त्वपूर्ण भाषण जो स्वतन्त्र भारत के निर्माण का यथार्थ प्रमाण हैं कई दुर्लभ चित्रों सहित। रु० ५)

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

Published by the Director, Publications Division, and printed by the Production Officer, United Press, Government of India, Old Secretariat, Delhi.

Regd. No. D—510

आजकल

विश्व-दर्शन सहित

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

12.11

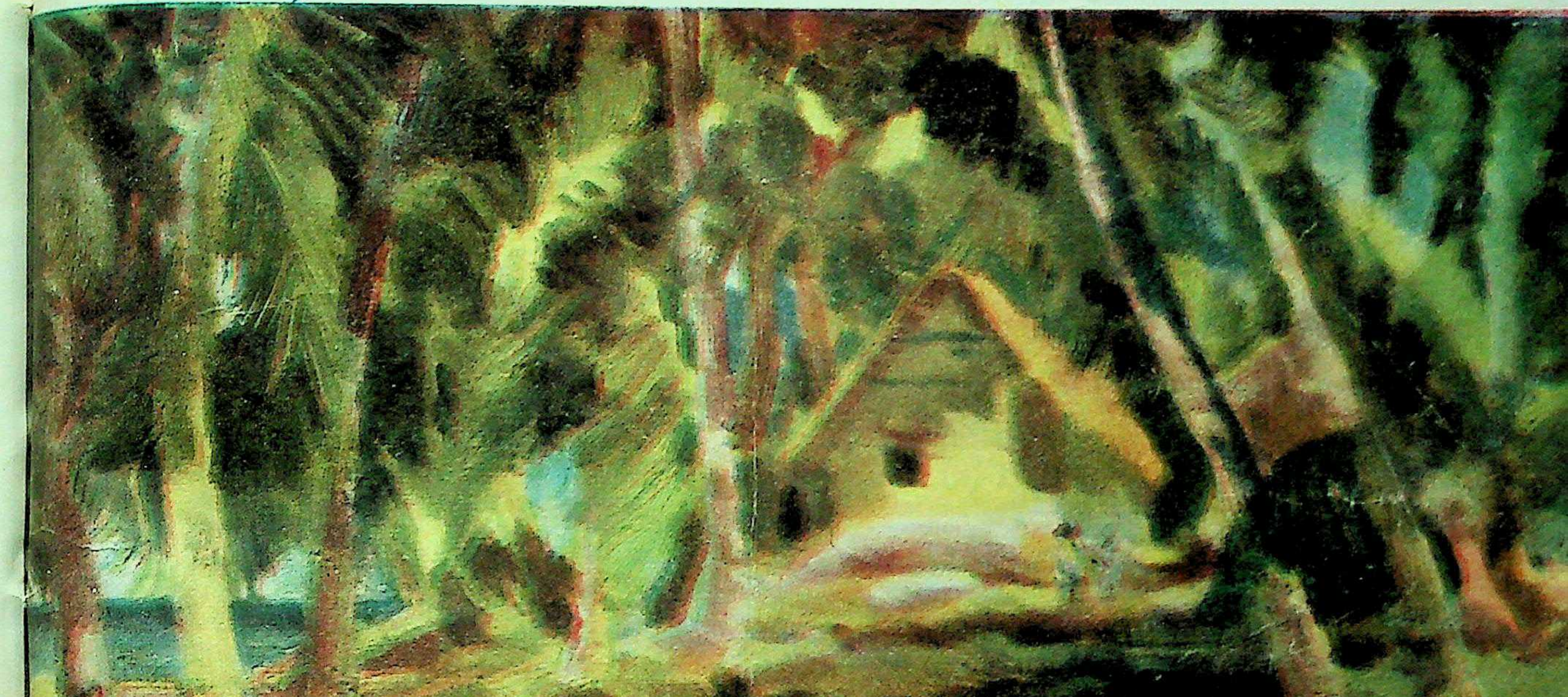

नवम्बर १९५६

●

आठ आना

उत्कृष्ट प्रकाशन

महात्मा गान्धी

महात्मा गान्धी की कहानी—चित्रों में

यह चित्रमय कहानी काल क्रम अनुसार है और महात्मा गान्धी के अलौकिक जीवन के महत्त्वपूर्ण अध्यायों में बँटी हुई है। यह आशा की जाती है कि इस समय तक उनके जीवन तथा कार्य-कलाप के सम्बन्ध में जो प्रचुर सामग्री एकत्र हुई है यह प्रकाशन उसका उपयुक्त चित्रमय पूरक प्रमाणित होगा। (प्रेस में)

सादा जिल्द १०) रु०
सिल्क जिल्द १५) रु०

स्वाधीनता और उसके बाद—

जवाहरलाल नेहरू के भाषण

प्रधान मंत्री नेहरू के १९४६ से १९४९ तक विशेष अवसरों पर दिए गए ६० महत्त्वपूर्ण भाषण। स्वाधीनता, महात्मा गान्धी, साम्प्रदायिकता, काश्मीर, हैदराबाद, शिक्षा, उद्योग, भारत की वैदेशिक नीति, भारत और राष्ट्र मण्डल, भारत और विश्व, आदि विषयों पर। सभी दृष्टियों से संग्रहणीय और पठनीय ग्रन्थ। रु० ५)

भारत दर्शन

(चित्रों में)

भारत की कहानी दिग्दर्शित करने वाले विविध चित्रों का अनमोल संग्रह है। देश के निवासी, पशु, वनस्पति, प्राकृतिक रचना, आदि का विहंगावलोकन। भारतीय जीवन विचारधारा, परिस्थिति, प्राकृतिक दृश्य इत्यादि, विभिन्न पहलुओं का स्थलानुरूप समावेश। रु० ७॥)

भारतीय कला का सिंहावलोकन

मोहिन्जोदरो के समय से लेकर भारत के प्राचीन मध्ययुगीन तथा आधुनिक कला के ३७ रंगीन और १०० एक रंगी चित्रों का संग्रह। रु० ६॥)

भारत की एकता का निर्माण

अगस्त, १९४७ से दिसम्बर १९५० तक भारत के इतिहास के तेजस्वी काल में दिए गए सरदार वल्लभभाई पटेल के २७ महत्त्वपूर्ण भाषण जो स्वतन्त्र भारत के निर्माण का यथार्थ प्रमाण हैं कई दुर्लभ चित्रों सहित। रु० ५)

पब्लिकेशन्स डिवीज़न,
ओल्ड सेक्रेटेरिएट, दिल्ली-८

'उसे ड्यूमेक्स दीजिए...
आपको कोई चिन्ता नहीं रहेगी। यह
वायुरहित मुहरबन्द डिब्बों
में मिलता है—ताज़ा दूध का पावडर
जो विटामिनों से
भरपूर है। नन्हें बच्चों के लिए ड्यूमेक्स
से ज्यादा अच्छी
व निरापद और कोई
चीज़ नहीं।

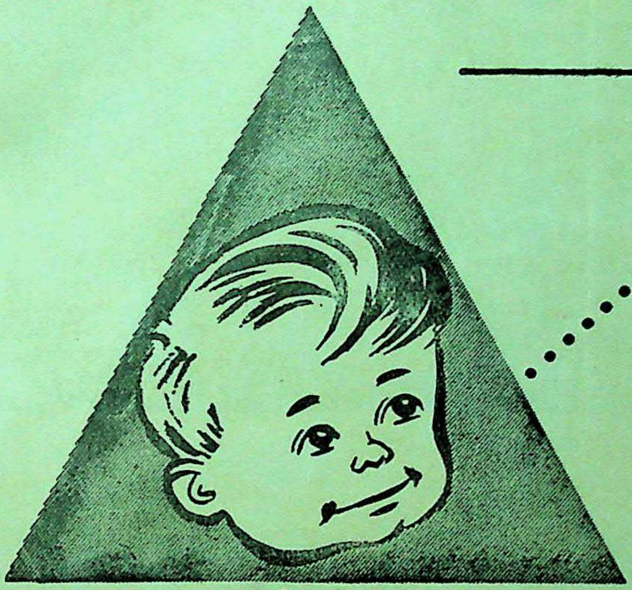

बच्चों को

ड्यूमेक्स

बेबी फ़ूड

दीजिए और उन्हें फलता-फूलता देखिए!

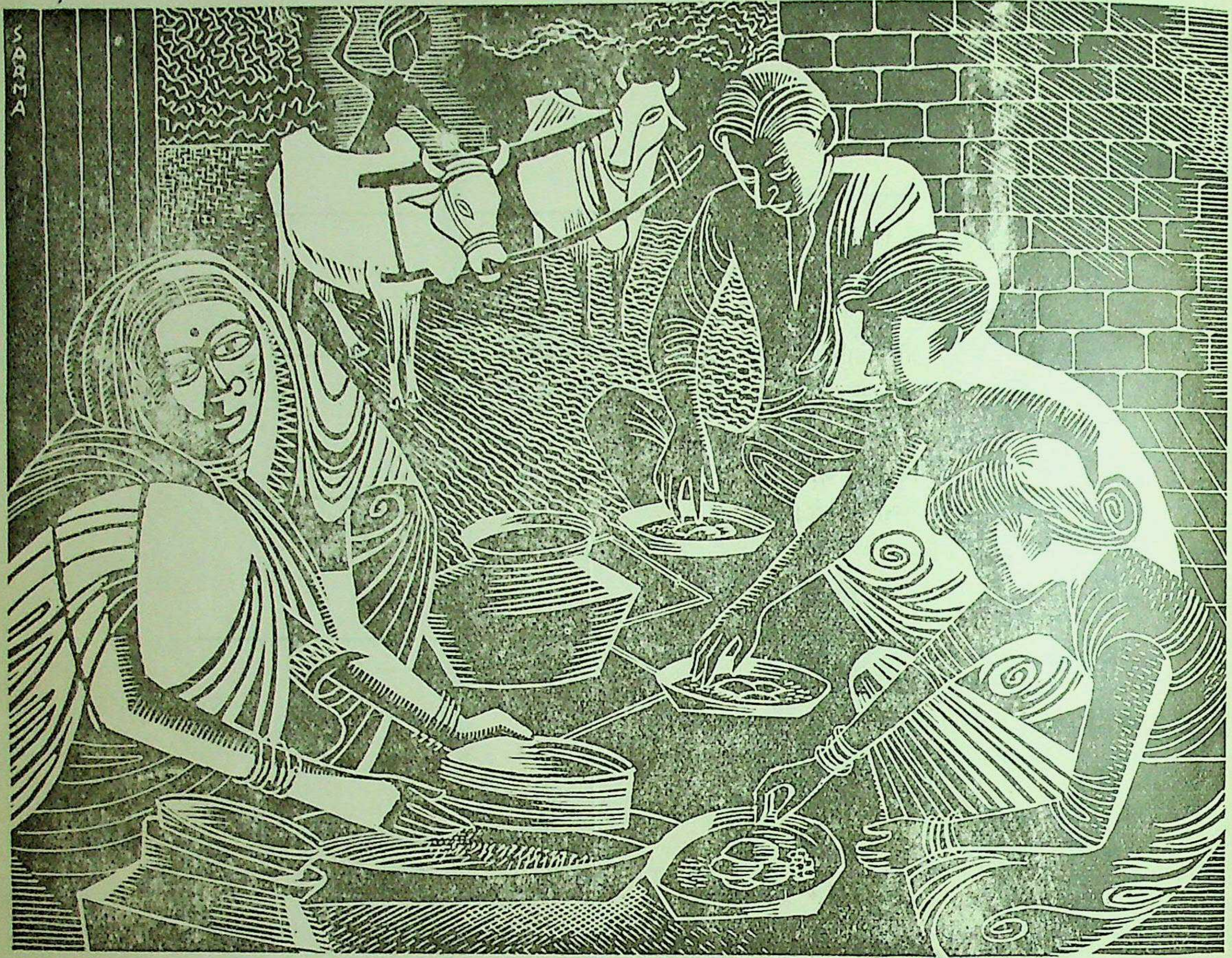

खलिदान भर उठे ...सोचे अनुसार ही

खलिदान सचमुच भर उठे...प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार तो कृषि-उत्पादन में ७६ लाख टन की ही वृद्धि का अनुमान था, जबकि वास्तविक वृद्धि १ करोड़ १० लाख टन की हुई। इस शानदार सफलता का श्रेय भारतीय किसानों को है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में हर प्रकार के कृषि-उत्पादन में और भी वृद्धि करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। लेकिन योजना की सफलता इस बात पर निर्भर है कि देशवासियों की खाद्य संबंधी आवश्यकता पूर्ण करने के लिए भारतीय फार्मों में कितनी शक्ति है।

हम दूर से दूर के गाँवों तक ईंधन के तेल और चिकनाई के तेल पहुँचाकर भारतीय किसानों को यह महान् कार्य पूरा करने में मदद पहुँचा रहे हैं। शैल के पेट्रोलियम रासायनिक पदार्थ-जैसे एल्ड्रिन, डिल्ड्रिन और एण्ड्रिन देश की महत्वपूर्ण फ़सलों की रक्षा कर प्रति एकड़ पैदावर को बहुत-कुछ बढ़ाने में सहायक होते हैं। देशभर में फैले बर्मा-शैल के १६३१ डिपो और गोदाम हैं जिनकी कुल क्षमता ४,२६,००,००० गैलन है। इस ठोस प्रबन्ध से हमेशा इस बात का निश्चय रहता है कि जब भी और जहाँ कहीं भी पेट्रोलियम-पदार्थों की ज़रूरत हो वे फ़ौरन पहुँचाए जा सकते हैं।

बर्मा-शैल...भारत के जीवन का एक अंग है!

आजकल

वर्ष १२ अंक ७ पूर्णांक १४६

सम्पादक मण्डल :
बनारसीदास चतुर्वेदी
नगेन्द्र
मोहन राव
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार (मन्त्री)

●

सहायक सम्पादक—जगदीश गोयल

नवम्बर १९५६

स्वर्ग से विदाई (बंगला कविता)	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	...	५	
मैं क्या जानूँ ? (उड़िया कविता)	चिरंजीव दास	...	६	द्वारा किशोरी मोहनदास, रायगढ़ (म० दे०)
प्रयोगवाद, सम्भावनाएँ और दुर्बलताएँ	रामधारी सिंह 'दिनकर'	...	७	एम० पी०, उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना-४
साँझ (कविता)	शम्भूनाथ सिंह	...	१२	अध्यक्ष हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ, बनारस
साहित्य और कला की समान प्रेरणा	भगवत शरण उपाध्याय	...	१३	४ ए थार्नहिल रोड, इलाहाबाद
मूक मानव (तेलुगु कहानी)	मा० गोखले	...	१५	२४ आर्कट मुदालियर स्ट्रीट, मद्रास-१७
पंजाबी कविता के आठ वर्ष (पंजाबी साहित्य)	अमृता प्रीतम	...	१६	८।२० वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
अधूरे प्रारम्भ	माखनलाल चतुर्वेदी	...	२३	कर्मवीर प्रेस, खण्डवा (म० प्र०)
पं० मदनमोहन मालवीय सम्बन्धी संस्मरण	इन्द्र विद्यावाचस्पति	...	२४	एम० पी०, चन्द्रलोक, जवाहर नगर, दिल्ली-६
तार जगे (कविता)	सत्येन्द्र श्रीवास्तव	...	२६	३० खेताचीवाडी, गिरगांव, बम्बई-४
रूस में भारतीय लेखकों के प्रशंसक	जोज़िफ़ पी० बैंकोव	...	३०	रूसी दूतावास, ट्रावनकोर हाउस, नई दिल्ली
बहू रानी (गढ़वाली लोकगीत)	गोविन्द चातक	...	३२	५ पटेल रोड, देहरादून
अजन्ता के भित्ति चित्र	राय कृष्णदास	...	३३	सीता निवास, हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस
भारत का नया मानचित्र	सत्यदेव विद्यालंकार	...	४४	४० ए हनुमान रोड, नई दिल्ली
संध्या की वेला (तमिल कहानी)	ति० ज० रंगनाथन	...	४८	सम्पादक 'मंजरी', मद्रास
जीवन और घास (कविता)	शकुन्त माथुर	...	५२	द्वारा श्री माथुर, आल इण्डिया रेडियो, लखनऊ
प्रेम की सुगन्ध (गुजराती गीत)	'स्वप्नस्थ'	...	५२	
विशाखा (एकांकी नाटक का शेषांश)	सेठ गोविन्ददास	...	५३	एम० पी०, ३ केनिंग लेन, नई दिल्ली
ओलिम्पिक खेल	हरिश्चन्द्र केला	...	५८	२।१-टी० सी० राजा बाजार, नई दिल्ली
पुस्तक समालोचना	चन्द्रगुप्त विद्यालंकार	...	६१	४ पटौदी हाउस, नई दिल्ली
	राजेश्वरप्रसाद नारायण सिंह		६५	क्लब रोड, मुजफ्फरपुर (बिहार)
सम्पादकीय		...	६८	
आवरण चित्र	ज्योतिष भट्टाचार्य			
इस मास का चित्र : 'छोटा मेहमान'	ए० एल० सैयद			

●

वार्षिक मूल्य—६ रुपये, एक डालर या नौ शिलिंग
एक प्रति—आठ आने, एक सेंट या नौ पेंस

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार का पता—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
सम्पादक हिन्दी
पब्लिकेशन्स डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली-८

आवश्यक सूचना : दिसम्बर १९५६ में 'आजकल' के वार्षिक अंक के रूप में "बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष" नामक ग्रन्थ (३ रु०) स्थायी ग्राहकों को निःशुल्क भेंट किया जाएगा।

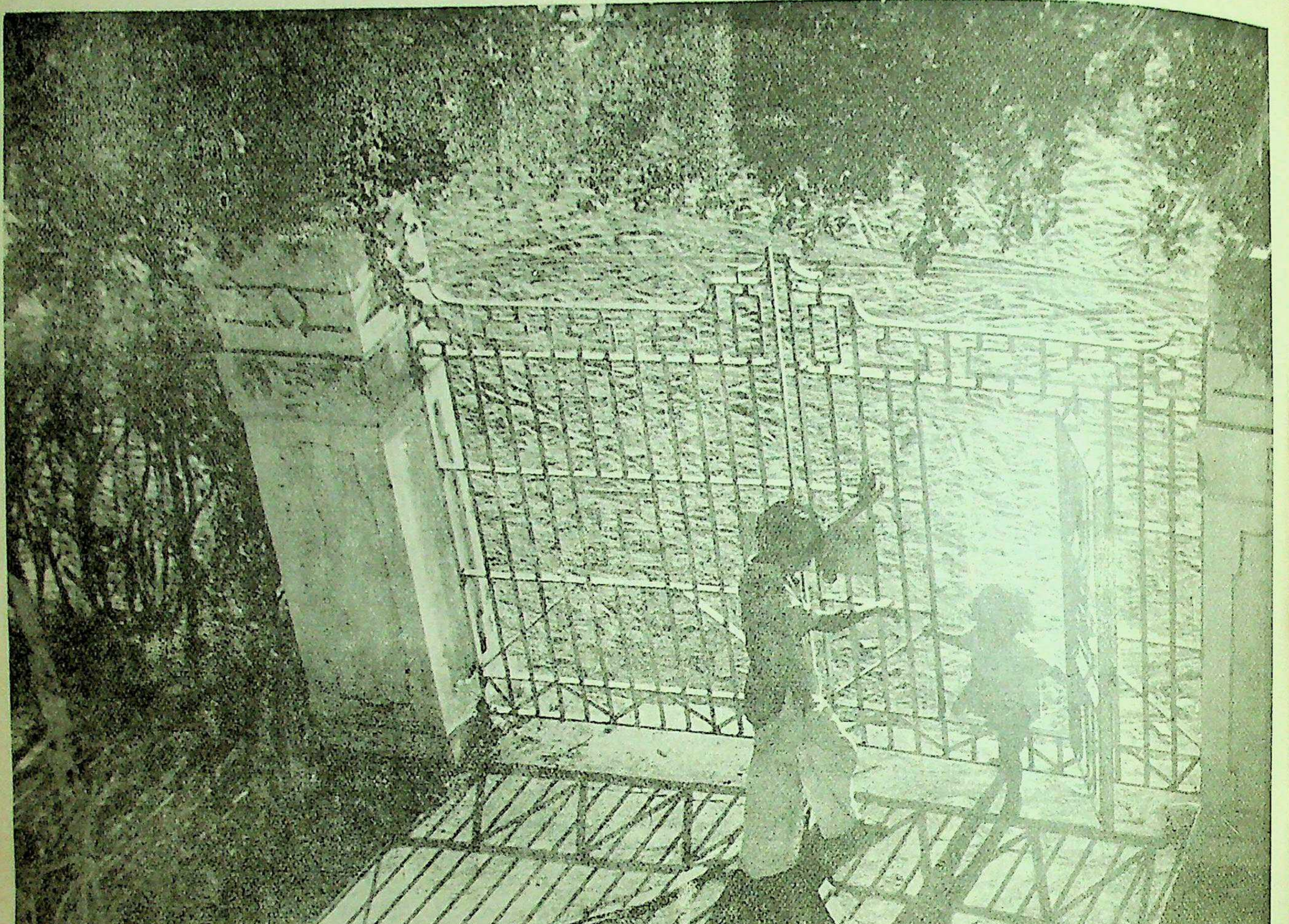

"छोटा मेहमान"

फोटो : ए० एल० सैयद

वर्ष १२ नवम्बर १९५६ अंक ७

बंगला कविता

स्वर्ग से विदाई

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

म्लान कंठ में हो आई मंदार मालिका,
हे महेन्द्र, बुझ गया ज्योतिमय जगमग टीका
मलिन भाल पर। हुआ पुण्यबल क्षीण सभी गिन
आज स्वर्ग से मेरी शेष विदाई का दिन।
देव-देवियो, मैंने काटे वर्ष लक्ष शत
यहाँ देवताओं जैसे ही हर्ष-पुलक रत
देवलोक में। शेष विदाई के इस क्षण में
लेशमात्र आँसू की रेखा स्वर्ग-नयन में
जाऊँगा मैं देख, यही आशा थी। लेकिन
हृदयहीन सुखस्वर्गभूमि यह दुःखशोक बिन
उदासीन है। एक पलक भी नहीं आँख की
उसकी लाखों लाख बरस यह। कहीं शाख की
सूखी पत्ती एक छोर से गिर पड़ती जो,
तो जो नेक व्यथा पीपल के जी गड़ती हो,
स्वर्गलोक में नहीं व्यथा उतनी भी जागे
जब हम सौ-सौ की संख्या में नित्य अभागे
गृहच्युत हतज्योति नखतगण जैसे जाकर
देवलोक से गिर पड़ते पल में भूतल पर
जन्म-मरण के अंतहीन उस अतल धार में।
कहीं वेदना बजती जो यह हृदय-तार में
तो वियोग की घिर आती धुँधली-सी छाया
मंद स्वर्ग की पड़ जाती चिर ज्योतिर्माया
धरती जैसी शिशिर-वाष्प से। नन्दनवन यह
भर उसाँस मर्मर कर उठता, कूलों में वह
करुण कहानी गाती मंदाकिनी मधुर स्वर,
दिन डूबे सूने प्रांतर के पार उतर कर
संध्या चल देती दिगन्त को यों उदासिनी,
गा उठती वैराग्य-गीत नीरव निशीथिनी
नक्षत्रों की भरी सभा में झींगुर स्वन में।
नृत्यनिरत मेनका, कनक नूपुर रुनझुन में
ताल भंग होता रह-रह कर। और उर्वशी—
के स्तन से सोने की वीणा झुकी-सटी-सी
कर उठती झंकार अनमनी पड़ी अचानक
कठिन कष्ट से करुण मूर्च्छना। झकमक-झकमक
अश्रुहीन आँखों में देवों के आँसू कण
आते बरबस। बैठ पास पति के एकासन
शची हेरती इन्द्र नयन में क्या तो सहसा
खोज रही ज्यों वारि प्यास की। आता बहता
दूर मर्त्य से बीच-बीच में वायु-स्रोत धर
धरती का निश्वास दीर्घ कुछ उभर-उफन कर
नन्दनवन की कुसुम-मंजरी पड़ती झर-झर।
रहो, स्वर्ग, हँसते ही सब दिन। सुधापान कर
हे देवता, स्वर्ग तुम सब का ही सुख का घर,
हम परवासी। स्वर्ग नहीं धूलों की धरती,
मातृभूमि वह, इसीलिए आँखों से गिरती
जल की धारा—दो दिन को आकर कोई जो
दो पल को भी छोड़ उसे चल देता है तो।
क्षुद्र क्षीण जितने हैं, जितने अधम-अभाजन
पापी-तापी सब को कर आकुल आलिंगन,
मृदुल वक्ष में अपने उनको लपक लगाती,
धूल सने तन परस जुड़ाती जलती छाती
है जननी की। बहे स्वर्ग में अक्षय अमृत
देव तुम्हारे। रहे मर्त्य में सुख-दुःख मिश्रित
अश्रुवारि से धोने वाली प्रेम निर्झरी
भूतल के सब स्वर्ग-खंड को।
अरी अप्सरी !
नहीं नयन की जोत तुम्हारी कभी मलिन हो

प्रेम-व्यथा से; मैं तुम सबसे हुआ विदा लो।
मत करना आरज़ू किसी की, शोक किसी पर।
जो मेरी प्रियतमा जन्म ले परम दीन घर
धरती के आँगन में कहीं नदी के तीरे
किसी गाँव में एक छोर पर कुंज कुटीरे,
सघन श्याम छाया वाले पीपल तरु तल में;
अमृत का भंडार जुगोये वक्षस्थल में
बड़े जतन से रक्खेगी वह। नदी तीर पर
माँग सुफी को लेगी शिव की पूजा में वर
शैशव में जा नित्य सवेरे। संध्या आए
ले प्रज्वलित प्रदीप नदी की धार बहाए
शंकित-कंपित लिये हिया एकाग्रमना-सी
अपना भाग्य गुनेगी मन ही मन एकाकी
खड़ी घाट पर। कभी विनत दृग, पावन क्षण में
चंदनचर्चित भाल और शुचि लाल वसन में
आएगी उत्सव की मंगल वंशी-धुन में
वह मेरे घर। उसके बाद सुदिन-दुर्दिन में
माँग भरा सिंदूर हाथ में मंगल कंगन
सुख-दुःख में गृहलक्ष्मी जगाए जगमग आँगन
पूनम के शशि-सी संसार-सिंधु के तट पर।
और देवगण! स्वर्ग तुम्हारा स्मृति के पट पर
दूर स्वप्न-सा खिंचा करेगा—सहसा जग कर
आधी रात गए देखूँगा जब शय्या पर
छिटक पड़ी है रजत चाँदनी। सुप्त प्रेयसी,
शिथिल भुजाएँ लुटी पड़ी हैं, खुली कसी-सी
गाँठ लाज की; सहसा मृदु सुहाग चुम्बन से
चौंक जगेगी, अपना गाढ़ा आलिंगन दे
बाहुलता से कस लेगी मेरा वक्षस्थल,
दखिनी हवा सुगंध लाएगी; जाग्रत कोयल
कूक उठेगी दूर डाल पर।
जननी, दीना,
अश्रुसजल दृग, दुःख आतुरा, अरी मलीना!
अयि मेरी माटी की धरती, बहुत दिनों पर
आज तुम्हारे लिये रो उठा मेरा अन्तर।
विदा-दुःख से ज्यों ही आँखें भींज गईं ये
अलस कल्पना-से त्यों ही छवि स्वर्गलोक के
कहाँ खो गए छाया-छवि से! गगन तुम्हारा,
जोत तुम्हारी, जनाकीर्ण पुर, सिंधु किनारा
दूर प्रसारी; गहन नील गिरि के माथे पर
हिम की रेखा, तरुश्रेणी के भीतर-भीतर
नीरव अरुणोदय, नदिया के पार विजन में
अवनत आनन संध्या—आँसू जल के कण में
जितना भी प्रतिबिम्ब स्वच्छ मानो दर्पण में
उतर पड़ा है।
अयि जननी संतान वियोगिन,
वह शोकाश्रुधार, झर आया था जो उस दिन,
शेष विदाई की बेला में माँ के स्तन का
जिसने किया उमग कर आतुर अभिसिंचन था
सूख गई होगी अब तक तो। फिर भी मन में
है विश्वास जभी पहुँचूँगा पुनः सदन में
अपनाओगी बढ़ा बाहु दो तुरत लपक कर
शंख बजेंगे, स्नेह-छाँह में तुम अपने घर
दुःख-सुख भय से भरी प्रेम की उस दुनिया में
अपना लोगी पुत्र-पुत्रियों बीच; नया मैं
उन-सा हूँगा, जो सब दिन के चीन्हे-जाने।
और दूसरे ही दिन से बैठी सिरहाने
लिये धड़कते प्राण, अहर्निश किए जागरण
शंकित हृदय, उठा ऊपर को नयन प्रतिक्षण
करुणा भरी निगाह, सदा ही चिन्तित-सी हो
जिसे आज पाया, उसको जाने कब दूँ खो।

अनुवादक—हंसकुमार तिवारी

◆

उड़िया कविता

मैं क्या जानूँ ?

चिरंजीव दास

मैं क्या जानूँ किस समय सुर के पथ से
होकर आकर मेरी कल्पना रूप पा गई ?

किस समय स्तर-स्तर भाव की नीहारिका
मेरे इस मनोगगन में भर गईं,
किरनों की नई बहुएँ आकर सारे
भुवन में ओस का चौक पूर गईं।

मैं क्या जानूँ किस समय नव छवि उद्-
भासित कर मेरी साधना प्रतिमा हो गई ?

किस समय उसके पदकमलों में मैंने श्रद्धा
का अधखिला फूल रख दिया,
किस समय मैं अतिशय सुख में रोने लगा
और गर्व के साथ आकुल हुआ।

मैं क्या जानूँ किस समय मुझे कितना
उल्लसित कर आराधना मुझे विकल कर गई ?

उन्मादी घंटा आप ही आप बजने लगे
यह हाथ आरती लेकर उठा,
आप ही आप जलकर धूप ने हृदय को
भर दिया और गले से गीत भारती उठा।

मैं क्या जानूँ किस समय मेरे ओ प्रवासी
आप ही आप वन्दना हो गई ?

मैं अचेतन होकर चरणों में गिर गई
अलता माथे में सिन्दूर बन गया,
फूलों के हार गिर कर कंकण किंकिणि
बन गये और नीरवता ही मधु कथा बन गई।

मैं क्या जानूँ किस समय ओ मेरे चिर
उदासी ! मेरी याचना ही मुझे वर दे गई ?

◆

प्रयोगवाद, सम्भावनाएँ और दुर्बलताएँ

रामधारी सिंह 'दिनकर'

पहले प्रशंसा और पीछे निन्दा, यह अमित्र-धर्म है । मैं नई कविता का मित्र हूँ । अतएव, मैं पहले उसकी दुर्बलताओं पर प्रकाश डालूँगा ।

प्रगतिवादी आन्दोलन अभी चल ही रहा था कि 'तार सप्तक' का पहला भाग प्रकाशित हुआ जो इस बात की सूचना था कि हिन्दी के नए कवि कविता की प्रचलित शैली से सन्तुष्ट नहीं थे । 'तार सप्तक' की कविताओं पर विचार करते हुए, आज से दस वर्ष पूर्व, मैंने अपनी पुस्तक 'मिट्टी की ओर' में लिखा था कि "ये उन सभी कविताओं से भिन्न हैं जिन्हें हम देखने-सुनने के अब तक आदी रहे हैं । इनका कवि जान-बूझ कर काव्य के साधारण नियमों को भी भूल गया है ।···इनकी पृष्ठभूमि में जो कुछ दीखता है वह निर्जन और विषण्ण है ।" तथा "शायद आने वाले युग की कविता इनमें अपनी ट्रेनिंग पा रही है ।" और तब से आज तक हिन्दी के तरुण कवि विभिन्न दिशाओं में जिस आकुलता से प्रयोग कर रहे हैं, उससे आज भी यही भासित होता है कि नई कविता की ट्रेनिंग अभी खत्म नहीं हुई है और उसके निश्चित भूमि में पहुँचने में अभी और कुछ देर है ।

पहले 'तार सप्तक' के कई वर्ष बाद एक दूसरा 'तार सप्तक' भी निकला जो पहले की अपेक्षा अधिक सफल था । इन दो संग्रहों के अलावा, इधर और कुछ संग्रह और काव्य-ग्रन्थ (जैसे अज्ञेय का "हरी घास पर क्षण भर" तथा "बावरा अहेरी", गिरिजाकुमार का "धूप के धान", धर्मवीर भारती का "ठंडा लोहा" और "अंधा युग" तथा नई कविता के दो एक अंक) निकले हैं जिन्हें, साधारणतः, लोग नई कविता के प्रतिनिधि-ग्रन्थ मानते हैं । इनके सिवा, पत्र-पत्रिकाओं में बालकृष्ण राव, भारतभूषण, भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, प्रयागनारायण त्रिपाठी, जगदीश गुप्त, विजयदेव नारायण साही, मदन वात्स्यायन, राजेन्द्र प्रसाद सिंह आदि तरुण कवियों की जो स्फुट रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, उनसे भी ईषत् संकेत मिलता है कि हिन्दी कविता किस दिशा की ओर जा रही है ।

यह आन्दोलन अपनी किशोरावस्था को पार कर चुका है, किन्तु, तब भी इसका सही तो क्या, आनुपातिक मूल्यांकन भी अभी नहीं हो पाया है । जहाँ तक मेरा ख्याल है, आज तक भी प्रयोगवाद का कोई ऐसा घोषणा-पत्र कहीं नहीं निकला जैसी घोषणा 'पल्लव' की भूमिका में छायावाद ने की थी । और इसके उद्देश्य और लक्ष्य के बारे में जो थोड़ा-कुछ कहा भी गया है वह उतना विशद और पुष्ट नहीं है जिससे काव्यरसिक जनता यह समझ सके कि प्रयोगवाद कविता के किन गुणों पर जोर देना चाहता है और वह कैसी उपलब्धि के प्रयास में है । इस आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्तियों को पहचानने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि प्रयोगवाद का गढ़ आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, सर्वत्र नक्कालों से भर गया है और जो असली कवि हैं वे इस भीड़ को दबा कर आगे आने में कठिनाइयों का अनुभव कर रहे हैं ।

जब छायावादी आन्दोलन उठा था, तब भी हिन्दी में कवियों की बाढ़ आ गई थी, किन्तु, आज के प्लावन की तुलना में वह फिर भी बहुत छोटी बाढ़ थी । कारण, कदाचित, यह था कि उस समय शिक्षा का प्रसार आज की अपेक्षा कहीं सीमित था और तत्परिणामस्वरूप कविता की ओर आने वाले युवकों की संख्या भी कम थी । किन्तु, छायावादोत्तर काल में आकर हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कविता का जो व्यापक प्रचार हुआ, उससे अब अनेक युवकों में कविता का प्रेम जग पड़ा है और अपने ही समान कुछ अन्य लोगों को काव्य-क्षेत्र में यशस्वी होते देख कर वे भी इस सुयश के भागी होने को ललचा उठे हैं । इसे मैं भारतीय जाति के लिए शुभ लक्षण मानता हूँ । कम-से-कम, यह इस बात का प्रमाण तो है ही कि हमारे नवयुवक अपने आपको अभिव्यक्त करने की इच्छा से आन्दोलित होने लगे हैं । किन्तु, कवियों की संख्यावृद्धि के कारणों की खोज यहीं समाप्त नहीं होती । इस संख्या-वृद्धि का मुख्य कारण, शायद, यह है कि छायावादी युग में निरी बकवास करने के लिए भी कवियों को छन्द में लिखना पड़ता था और यद्यपि, छन्द कभी-कभी अनावश्यक भी हो जाते हैं, किन्तु, उनकी रचना सब के लिए सुगम नहीं होती । प्रयोगवादी कवि छन्द में भी लिखते हैं और छन्दों को तोड़ कर भी और दोनों ही शैलियों की कितनी ही नई कविताएँ काफी सुन्दर हुई हैं । किन्तु, इससे युवकों ने यह शिक्षा निकाली कि छन्द अब कविता के लिए किंचित भी अनिवार्य न रहे । परिणाम यह हुआ कि कविता के बाह्य प्रांगण का दरवाजा चूर-चूर हो गया और आज वे सभी लोग हिन्दी में कविता कर रहे हैं जिनके पास करने योग्य और कोई काम नहीं है । इस सामान्य सिद्धान्त के अपवाद कुछ ऐसे अध्यापक और अन्य बुद्धिजीवी ही हैं जिनके पास करने योग्य काम तो बहुत हैं, किन्तु, जो फिर भी अवकाश के समय, ताश या बेडमिंटन नहीं खेल कर, कविताओं की रचना में लगे हुए हैं । और ये सारी की सारी कविताएँ प्रयोगवाद के नाम पर चल रही हैं । अभी तो प्रयोगवादी कविता की सफलता के दो नहीं, मात्र एक प्रमाण खोजने की अपेक्षा यह कहीं आसान है कि उसकी विफलता के एक हजार प्रमाण तुरन्त एकत्र कर दिए जाएँ ।

आज कविता के क्षेत्र में गुण नहीं, संख्या का बोलबाला है । और संख्या की विशालता के कारण ही इस कविता की सच्ची पहचान गम्भीर समस्या का रूप लेती जा रही है । यदि छायावादी आन्दोलन अंग्रेजी में शेली और बायरन के समय उठने वाले रोमांटिक आन्दोलन

से मेल खाता था तो यह नई कविता का आन्दोलन बहुत कुछ उस (इमेजिस्ट) आन्दोलन के समान है जो अंग्रेजी कविता में प्रथम विश्वयुद्ध के आरम्भ होने के आसपास उठा था। उस आन्दोलन में भी इतने अधिक कवियों ने भाग लिया था कि सन् १९२० ई० में जब पोयट्री बुकशाप ने "बिबलियोग्राफी ऑफ माडर्न पोयट्री" के नाम से केवल सन् १९१२ ई० से लेकर सन् १९२० ई० के बीच उगने वाले नक्षत्रों की सूची प्रकाशित की तब उसमें कवियों की संख्या एक हजार से ऊपर चली गई। और इन सहस्राधिक कवियों में से एक सौ चार ऐसे थे जिन पर समीक्षात्मक टिप्पणियाँ भी दी गई थीं। किन्तु, समीक्षा, शोर-गुल और पक्षपातपूर्ण आन्दोलनों से साहित्य में खोटे सिक्के नहीं चलाए जा सकते, न खरे सिक्कों के प्रचलन को ईर्ष्या, द्वेष और निन्दा रोक ही सकती है। इमेजिस्ट सम्प्रदाय के इन हजार कवियों में से केवल दस-बारह ही ऐसे निकले जिनकी कविताएँ तो नहीं, हाँ, यदा-कदा साहित्य में उनका नामोल्लेख चलता था। अंग्रेजी में जब यह आन्दोलन चल रहा था तब उसके समर्थक और उन्नायक भी उक्त आन्दोलन के आलोचकों पर उसी प्रकार टूटते थे जैसे आज हिन्दी में टूट रहे हैं और अंग्रेजी में भी कविगण कविताओं के द्वारा जनता के हृदय को न जीत कर उसे बुद्धि द्वारा गद्य में ही पराजित करना चाहते थे। किन्तु, जनता के हाथ में तो ब्रह्मास्त्र होता है। उसने इन कविताओं को खरीदा ही नहीं। परिणाम यह हुआ कि इस युग के कवियों की कविताएँ या तो पतली छोटी कापियों में छपीं या कई कवियों ने मिल-मिल कर अपने एकत्र संग्रह छपवाए। कहते हैं, जब युद्ध छिड़ा, तब इन कविताओं की थोड़ी बिक्री अवश्य हुई, किन्तु, इतनी नहीं कि किसी कवि का नाम सर्वत्र पहुँच जाए अथवा उसे अच्छी राशि की प्राप्ति हो।

इमेजिस्ट सम्प्रदाय से अपने यहाँ के वर्तमान आन्दोलन की इतनी ही समता नहीं है। विचित्र संयोग है कि इमेजिस्ट कवियों में जो नकली कवि थे ठीक उन्हीं के लक्षण प्रयोगवाद के नकली कवियों पर चरितार्थ होते हैं और जो सीमाएँ या कमजोरियाँ असली इमेजिस्ट कवियों की थीं, अपने यहाँ के भी कितने ही नए सत्कवि ठीक उन्हीं दुर्बलताओं से पीड़ित दीखते हैं।

सुर्रियलिस्ट चित्रकारी पर व्यंग्य कसने को किसी ने एक कहानी गढ़ी है कि एक सुर्रियलिस्ट चित्रकार के घर में चोरी हो गई। दूसरे दिन जब पुलिस आई तब उसने पूछा कि चोर को किसी ने देखा था या नहीं? चित्रकार बोला, "क्यों, चोर को तो मैंने स्वयं देखा है और देखा ही नहीं, मैंने छिप कर उसका यह स्केच भी खींच लिया है।" पुलिस वाले इस आशा से वह चित्र ले गए कि उसके सहारे चोर पहचाना जा सकेगा। किन्तु, खुफिया-विभाग के अधिकारियों ने जब उस चित्र को देखा, उन्हें हँसी आ गई और वे बोले, "अरे, यह तो आलू कोबी की तस्वीर मालूम होती है। इसे देख कर आदमी कैसे पकड़ा जा सकता है?"

सुर्रियलिज्म पर चाहे यह कहानी फिट नहीं बैठती हो, किन्तु, प्रयोगवाद के नाम पर प्रतिदिन जो मनों कविताएँ छप रही हैं वे उसी प्रकार की कविताएँ हैं जिस प्रकार का उस सुर्रियलिस्ट का बनाया हुआ चित्र था। इन कविताओं की तुलना उन गीतों से की जा सकती है जिनमें और सब कुछ तो होता है, केवल सुर नहीं होता अथवा उस शबीह से की जा सकती है जिनकी गरदन ही गायब हो।

और स्मरण रहे कि ये बातें मैं इस लिए कह रहा हूँ कि प्रयोगवाद के अन्दर अपार कविताएँ बिना छन्द के लिखी जाती हैं। मुक्त-छन्द की परम्परा प्रयोगवादियों की सृष्टि नहीं है। उसका आरम्भ निराला जी ने और प्रसाद जी ने किया था तथा प्रयोगवाद के आगमन से पूर्व भी ऐसी कविताएँ यथेष्ट मात्रा में लिखी जा चुकी थीं। कविता में से छन्द की महिमा अभी विलुप्त नहीं हुई है। किन्तु अच्छी कविताएँ बिना छन्द के भी लिखी जाती हैं। मैं यह भी मानता हूँ कि मुक्त-छन्द की ओर युवक इसलिए भी दौड़ते हैं कि उसमें स्वतन्त्रता की थोड़ी झाँकी रहती है। कुछ यह बात भी है कि कविता की परम्परागत शैली में जो नियन्त्रण है, बल्कि, उसमें जो जकड़बन्दी आ गई है, उसे युवकों की चेतना बर्दाश्त नहीं कर सकती। अतएव, इन कवियों ने अपने आपको यह विश्वास दिला रखा है कि कविता की पुरानी शैली इतनी पुरानी हो गई है कि अब उसका कोई उपयोग नहीं है। छन्दों का त्याग नई कविता का उतना बड़ा दोष नहीं है जितना कि नए कवियों का यह आग्रह कि छन्द छोड़ने पर चाहे जो भी लिखो, वह काव्य हो जाता है। परम्परा से किंचित भिन्न चलने की स्वतन्त्रता और प्रचलित शैली में परिवर्तन करने का अधिकार, ये दावे तो, प्रायः, प्रत्येक युग के कवि किया करते हैं। किन्तु, प्रयोगवाद के नाम पर असंख्य कवियों ने इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग किया है। परिणाम यह है कि उनकी जो कविताएँ छपती हैं वे कविताएँ नहीं, असमर्थ गद्य हैं जिन्हें कविताओं की तरह सजा दिया जाता है। किन्तु, इससे केवल आँखें ही धोखा खा सकती हैं, मन नहीं, क्योंकि वह कविता को पहचानता है।

कला की दृष्टि से देखा जाए तो काव्य-सृष्टि के दो सोपान होते हैं। पहला सोपान प्रेरणा का और दूसरा सोपान रचना का होता है। प्रेरणा का उद्गम शिक्षा-दीक्षा, संस्कार और भावुकता होती है। और जिस व्यक्ति में भावुकता और कविता का संस्कार है, उसके भीतर काव्य-प्रेरणाओं का उठना अत्यन्त स्वाभाविक बात है। किन्तु, केवल प्रेरणाओं के उठने से कोई व्यक्ति कवि नहीं हो जाता। उसे उन प्रेरणाओं को इस प्रकार अभिव्यक्ति देनी होती है कि कविता पढ़ने या सुनने वालों के हृदय में वैसी ही प्रेरणाएँ उत्पन्न हो सकें। इसीलिए, प्रेरणा का धरातल संस्कार का और रचना का धरातल परिश्रम और अभ्यास का धरातल होता है। जिसे हम कवि की साधना कहते हैं वह इस अभ्यास के सिवाय और कुछ नहीं है कि हम जो अनुभव करते हैं उसे अनुरूप ढंग से अभिव्यक्त कर सकें। किन्तु, जब कवि यह समझ लेता है कि जवानी की ताजगी स्वयं सब से बड़ी कविता है तथा हमें परिश्रम से बचे रह कर इस ताजगी को बचाए रखना चाहिए, तब साहित्य में अर्थ से अधिक अनर्थों के ही उदाहरण भरने लगते हैं। शेरिडन ने कहीं कहा है कि जो साहित्य पढ़ने में आसान होता है उसकी रचना करने में घोर परिश्रम करना

पड़ता है। इसी प्रकार जिस साहित्य का पढ़ना कठिन है, सामान्य नियम यही है कि उसकी रचना बड़ी आसानी से की जाती है। अधिकांश प्रयोगवादियों पर हमारा यह आक्षेप है कि वे अपनी मेहनत बचा कर पाठकों की कठिनाई बढ़ा रहे हैं।

उदाहरण के लिए, प्रयोगवाद के जो अच्छे कवि हैं उनमें भी यह दोष है कि वे पूर्वापर सम्बन्धों के निर्वाह पर ध्यान नहीं देते अथवा कविता कहते-कहते अचानक वे ऐसी बात बोल उठते हैं जिससे पहले के भाव का कोई सम्बन्ध नहीं दीखता। पाठक यह स्पष्ट अनुभव करता है कि दो भावों के बीच कोई और कड़ी होगी जिसे कवि को बतला देना चाहिए था। किन्तु, कवि, न जाने क्यों, पुल की दो-एक पटरियाँ बीच से अचानक खींच लेता है और चाहता है कि इस दूरी को पाठक अपने आप तय करे। कभी-कभी तो ऐसा भी लगता है, मानो, कवि ने आधी कविता लिख कर ही पूरी कविता समाप्त कर दी हो। कवि की दृष्टि में यह आधा काव्य पूरे काव्य से अधिक पूर्ण भले ही दीखे, किन्तु, वह पाठक की दृष्टि में आधा ही रहता है।

पाठकों को किंचित अतृप्त रखते हुए कविता या उपन्यास को समाप्त कर देना, यह कुछ दिनों से कला का कौशल बन गया है। किन्तु, पाठकों की कल्पना के भरोसे कितना छोड़ा जाए और कितना नहीं, यह विचारणीय विषय है और इसका सम्यक् ज्ञान रचना की प्रक्रिया में संलग्न कवि को होना ही चाहिए। अन्यथा जिस कौशल से वह पाठक की कल्पना को उत्तेजित करना चाहता है, उसका यह परिणाम भी हो सकता है कि पाठक खिन्न, उदास या अप्रसन्न हो कर कविता को फेंक दे। और सब से बुरी बात तो यह है कि ऐसी कविताएँ पाठकों की कल्पना के भरोसे रची तो जाती हैं, किन्तु, वे कल्पना को जगा तो क्या, उसे छेड़ भी नहीं सकतीं। यह ठीक है कि इन असम्बद्ध पंक्तियों में अथवा एक शब्द के विचित्रतापूर्ण वाक्यों में भी कभी-कभी कवित्व की किरणें झलक मारती हैं, किन्तु, उन्हें हम कविता नहीं कह सकते। उनसे तो केवल इतना ही सूचित होता है कि कवि कोई कविता लिखने को तैयार हो रहा है। अब यदि वह कविता लिखे ही नहीं तो उसकी तैयारी मात्र से क्या होता है?

कवियों और पाठकों के बीच का सेतु हर युग में नए ढंग से बनाया जाता है अथवा उस पर नए रंग छिड़के जाते हैं और जब यह पुल जीर्ण हो जाता है अथवा उसके रंग पुराने पड़ जाते हैं तब फिर नया सेतु रचने अथवा पुराने सेतु पर नया रंग छिड़कने की आवश्यकता अनुभूत होने लगती है। होना यह चाहिए था कि प्रयोगवादी कवियों के हृदय में जो नए स्वप्न मँडलाने लगे हैं, वे बाहर आते और पाठकों का उनसे परिचय कराया जाता। अथवा नए कवि जिस नवीन भंगिमा के कारण यह विशेषण पसन्द कर रहे हैं वह पाठकों में भी उतारी जाती। किन्तु, यह काम प्रयोगवाद में बहुत कम हो रहा है। प्रयोगवादियों के बीच ज्यादा शोर तो इसी बात का सुनाई देता है कि पुरानी कविता पुरानी हो गई, नई कविताएँ लेकर अब हम आ रहे हैं और हमारे साथ साहित्य में एक नया युग प्रवेश कर रहा है।

अच्छा हो या बुरा, साहित्य में नया युग तो आता ही रहता है। सपूत हो या कपूत, पिता का दायित्व किसी न किसी पुत्र को ढोना ही पड़ता है। इलियट परम्परा को तोड़ कर चले, यह बात नवयुवकों को बहुत पसन्द आई। किन्तु, वे यह देखना भूल गए कि परम्परा की जितनी टूटी कड़ियाँ इलियट में आकर जुड़ीं, उतनी पहले और कभी नहीं जुड़ी थीं। प्राचीनता और नवीनता के सतही भेद गलत हैं। इलियट के अनुसार, नवीनता आकाश से नहीं टपकती, न कभी प्राचीनता का नाश ही होता है। इतिहास सर्वथा ध्वस्त युगों की गाथा नहीं, प्रत्युत् ऐसा मानचित्र है जिसमें भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों एक साथ जी रहे हैं, जैसे भूगोल के मानचित्र में हमें विश्व के विभिन्न देश एक-साथ जीवित दिखाई देते हैं। इलियट ने यह भी कहा है कि हड्डी के भीतर अपने युग का अस्तित्व और पीठिका में परम्परा का ध्यान, यह साहित्य लिखने की सही मुद्रा है। परन्तु, इलियट में परम्परा-भंजन का जो नाद है उसे तो हमारे नवयुवकों ने सुना, किन्तु, उनके भीतर परम्परा को जोड़ने वाले जो विचार हैं, उन्हें ये कवि पकड़ नहीं पाते। यही कारण है कि प्रयोगवादी धारा का जो कथ्य विषय है उसका कथन तो नाममात्र को ही हो रहा है, किन्तु, जिन बातों का कोई स्थायी महत्त्व नहीं है वे ही बातें बार-बार दुहराई जा रही हैं। जो उन्हें करना है उसका मर्म वे समझ नहीं पाते। किन्तु, जो महज़ आनुषंगिक बातें हैं सबसे ज्यादा जोर वे उन्हीं पर दे रहे हैं। नया युग लाने के उत्साह ने उन्हें इस जोर से पकड़ लिया है कि इस नवीन युग के रहस्योद्घाटन का काम अभी वे प्रारम्भ भी नहीं कर पाए हैं। वे तो बार-बार हमें यही बताए जा रहे हैं कि प्राचीनता उन्हें तनिक भी स्वीकार्य नहीं है।

किन्तु, प्राचीनता किस युग को स्वीकार्य होती है? मैं फिर इलियट का ही उद्धरण दूँगा। वर्तमान की चेतना, वस्तुतः अतीत का ज्ञान है। हम मृत लेखकों की अपेक्षा कुछ अधिक जानते हैं, किन्तु, मृत लेखकों के सिवाय और हम जानते भी क्या हैं? सारा साहित्य सातत्य का अविच्छिन्न प्रवाह है जिसका वर्त्तमान बराबर अतीत को अपने साथ लिए रहता है। अतीत बराबर अपूर्ण होता है और जब नए मुहावरों में नई अनुभूतियाँ लिखी जाने लगती हैं तब वह केवल वर्तमान के जीवित होने का ही प्रमाण नहीं होता, उससे यह भी प्रत्यक्ष होता है कि अतीत की प्रक्रिया पूर्ण हो रही है। छायावाद का जन्म द्विवेदी-युग की अपूर्णताओं में हुआ था और छायावाद भी अपूर्ण निकला जिसकी पूर्ति का प्रयास छायावादोत्तर काल ने किया। और अब छायावादोत्तर काल की अपूर्णता और अतृप्ति भी युवकों को अनुभूत होने लगी है। हम जानते हैं कि वे इस अपूर्णता को भी पूर्ण करेंगे और फिर पोतों का युग आएगा जो अपने पिता की अपूर्णताओं को दूर करने की कोशिश करेगा। अपूर्णता और पूर्णता की यह प्रक्रिया, अनिवार्य रूप से, कविता की निचाई या ऊँचाई की प्रक्रिया नहीं है। ऐतिहासिक सत्य केवल इतना है कि हर युग नया जल लेकर आता है और हर युग जब जाने लगता है तब उसके लाए हुए जल से आगामी युग की प्यास नहीं बुझ पाती। इसलिए प्रत्येक युग को

अपना कुआँ आप खोदना पड़ता है, चाहे वह छिछला हो क्या न हो। किन्तु, मेरा अनुमान है, हमारे नए कवि साधनापूर्वक अपने युग का कुआँ खोदने में निरत नहीं रह कर बार-बार यह घोषणा करने में अपना समय बर्बाद कर रहे हैं कि हमारा कुआँ पहले के कुओं के समान नहीं होगा। पहले के कूप अच्छे नहीं थे, अब हम अच्छा कूप तैयार कर रहे हैं। और यह बात वे केवल लेक्चरों में ही नहीं कहते, उनकी बहुसंख्यक रचनाएँ भी केवल इतना ही प्रचार करके मौन हो जाती हैं कि वे पहले की रचनाओं से भिन्न हैं। हिन्दी में अब तक जो श्रेष्ठ कवि हुए, प्रयोगवादी कवि उनके लक्षणों को त्याज्य समझते हैं। चूँकि पहले के कवियों ने छन्द में लिखा, इसलिए नए कवि बिना छन्द के लिखते हैं। चूँकि पहले के कवियों की रचनाओं में लय होती थी, इसलिए, नए कवि लय को छोड़ रहे हैं। और चूँकि पहले के कवि एक शब्द का वाक्य नहीं लिखते थे, इसलिए नए कवि ऐसे वाक्य धड़ल्ले से लिख रहे हैं। अंग्रेज़ी के मेटाफिज़िकल कवियों की रचनाओं से शिक्षा यह निकली है कि कविता का सर्वश्रेष्ठ गुण उसका "मिरेकुलिज्म" यानी चमत्कार है; कविता को और कुछ करने के पूर्व पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए, उनकी चेतना को चौंका देना चाहिए। और एक शब्द के वाक्यों में और कोई गुण चाहे न हो, यह गुण तो है ही कि उन्हें देख कर पाठक चौंक उठे, भले ही चौंक उठने के बाद, उसके भीतर हास्य के अनुभाव उत्पन्न हों, कविता चाहे किसी भी रस की क्यों न हो।

किन्तु, प्रयोगवादी कविता के ये लक्षण अधिकतर उन्हीं कवियों में मिलते हैं जो बाढ़ के साथ बह कर आए हैं और जो बाढ़ के उतरने के बाद इस कविता की खाद बनेंगे। प्रत्येक आन्दोलन को खाद की आवश्यकता होती है और हर आन्दोलन अपनी खाद अपने साथ लाता है। कविता की खाद यानी वे लोग जो नई दिशा में चलने की कोशिश करते हैं, किन्तु, चल नहीं पाते। फिर भी, उनके कूदने-फाँदने से पाँव के नीचे की जमीन चिकनी और मुलायम हो जाती है। इस दृष्टि से असफल कवियों का भी महत्त्व है, क्योंकि नए आन्दोलन की मारकता को वे अपने ऊपर खींच कर, दूसरों को उससे बचने का संकेत देते हैं।

किन्तु, इस बाढ़ के उतरने के बाद कौन लोग बचने वाले हैं? वे जिनके कलश अभी से कुछ ऊपर दिखाई देने लगे हैं या वे जिन्हें इस आन्दोलन का परिपाक आगे चलकर उत्पन्न करेगा? सम्भव है, भविष्य के कोट पर दोनों ही प्रकार के कवियों का अधिकार हो। किन्तु, यह विचिकित्सा व्यर्थ है। मैंने जो नए आन्दोलन से आशा लगाई है वह व्यक्तियों को देखकर नहीं प्रत्युत, इस भाव से कि यह आन्दोलन शुद्ध साहित्यिक आन्दोलन है और चूँकि यह प्रगतिवादी आन्दोलन की पीठ पर आया है, इसलिए, इसकी साहित्यिकता मुझे स्वाभाविक भी दीखती है।

प्रयोगवाद के एकाध समर्थक ने यह कहा है कि "छायावाद की शब्दावली भावनाओं को प्रेषित करने में असफल सिद्ध होने लगी थी" इसलिए नई कविता को आना पड़ा। किन्तु, यह अनुमान अशुद्ध है। छायावाद और रहस्यवाद की असमर्थता के समय प्रयोगवाद जन्मा भी नहीं था। और जब वह जन्मा उसके पहले ही छायावादी कवि सम्हलने लगे थे। यह ठीक है कि प्रयोगवादियों की साधना यदि सफल हुई तो उससे अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों की स्वच्छता में वृद्धि होगी और ये दोनों की दोनों चीजें छायावाद काल में धूमिल रह गई थीं। किन्तु, यह शिक्षा प्रयोगवाद ने छायावाद से नहीं ली। यह ज्ञान तो उसने यूरोप की अत्याधुनिक आलोचनाओं और कविताओं से प्राप्त किया है। फिर यह तो ऐतिहासिक सत्य है कि प्रयोगवाद छायावाद के अनन्तर नहीं, छायावादोत्तर काल के पश्चात उत्पन्न हुआ और छायावादोत्तर काल को ही लोग भ्रमवश प्रगतिवाद का काल कहने लगे हैं। अतएव, यदि प्रतिक्रिया की दृष्टि से सोचें तो कहना पड़ेगा कि जैसे छायावाद काल द्विवेदी युग के विरुद्ध आया था और छायावादोत्तर काल छायावादी युग की परिष्कृति से उत्पन्न हुआ, वैसे ही, प्रयोगवाद, छायावादोत्तर काल, विशेषतः उसके प्रगतिवादी आन्दोलन के विरुद्ध प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुआ। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के बीच यह जो प्रतिक्रिया का सम्बन्ध है उसे लोग, साधारणतः, इस कारण नहीं समझ पाते कि पहले 'तारसप्तक' में भी साम्यवादी कवि घुसे हुए थे और आज भी इस धारा में ऐसे अनेक नवयुवक चल रहे हैं जो विचारों से मार्क्सवादी हैं। ये लोग इस आन्दोलन के साथ रहेंगे या उससे अलग हो जाएँगे, इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना कठिन है। और इस प्रश्न का कोई खास महत्त्व भी नहीं है, क्योंकि यह तो पूर्णरूप से समझ में आने की बात है कि मार्क्सवादी होने पर भी व्यक्ति चाहे तो शुद्ध साहित्यिक भाव से साहित्य की सेवा कर सकता है। जब कवि के गांधीवादी अथवा आस्तिक या नास्तिक होने से उसकी प्रतिभा मारी नहीं जाती तो उसे मार्क्सवाद से ही क्यों भय होगा?

जिस बात का मेरी समझ में विशेष महत्त्व है वह यह है कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद, ये दोनों, दो भिन्न आन्दोलन हैं। प्रगतिवाद का खास जोर कवियों के सामाजिक विचार पर था। उसे इस बात की, प्रायः, कोई चिन्ता नहीं थी कि ये विचार शुद्ध कविता की शैली में व्यक्त हो रहे हैं, या गद्य-कल्प रीति से। इसके विपरीत, इस बात की उसे चिन्ता थी और बहुत अधिक थी कि कविगण साहित्य में राजनीति के दल-विशेष की पताका उठाए चल रहे हैं या नहीं। इसीलिए, मैं कहता हूँ कि प्रगतिवाद साहित्यिक आन्दोलन नहीं था।

किन्तु, प्रयोगवाद पर ऐसा कोई भी आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। वह आदि से अन्त तक शुद्ध साहित्यिक आन्दोलन है, कला का आन्दोलन है और उसका मुख्य ध्येय काव्य एवं कला सम्बन्धी हमारी धारणाओं को परिवर्तित करना है। यह आन्दोलन छायावाद की पीठ पर भी आ सकता था क्योंकि इसका मुख्य ध्येय अनुभूति और अभिव्यक्ति, दोनों को स्वच्छ बनाना है और छायावादकाल में ये दोनों की दोनों चीज़ें अधिकांश रचनाओं में अस्वच्छ थीं। किन्तु, वह छायावाद-काल की समाप्ति के साथ नहीं आया जिसका एक कारण तो यह था कि उस समय हिन्दी में ऐसे युवक बहुत थोड़े थे, कविता के सम्बन्ध

में जिनकी रुचि अन्तर्राष्ट्रीय रुचि से प्रभावित रही हो। दूसरे, अपनी तमाम दुर्बलताओं के साथ छायावाद पूर्णरूप से कलापूर्ण और साहित्यिकता से ओतप्रोत था। अतएव उस समय यह अत्यन्त अप्रासंगिक बात होती यदि कोई नया आन्दोलन यह घोषणा करने को आ जाता कि साहित्य में कला और साहित्यिकता की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। यह तो कमल को रंगने और गुलाब को सुवासित करने के समान हास्यास्पद बात होती। छायावाद में सबसे बड़ी कमी सुस्पष्टता की थी जो सबको अनुभूत होती थी और सुस्पष्टता की दिशा में हिन्दी कविता ने छायावादोत्तर काल में प्रगति भी की। किन्तु, जब प्रगतिवाद के नाम पर साहित्य में कनस्तर बजाए जाने लगे और साहित्यिक मूल्यों का ह्रास होने लगा तब यह आवश्यक हो गया कि हिन्दी में कला और शैली के हिलते हुए महत्त्व को फिर से सुस्थिर करने के लिए कोई बड़ा प्रयास किया जाए। वही प्रयास धीरे-धीरे प्रयोगवाद बन गया। यह और बात है कि अब इस आन्दोलन के दर्शन की पीठिका पर छायावादी और छायावादोत्तर युगों की प्रवृत्तियाँ भी खराद पर चढ़ी हुई मालूम होती हैं।

स्वयं प्रयोगवादियों ने अपना आन्दोलन आरम्भ करते समय इन बातों पर विचार किया था या नहीं, इस विचिकित्सा से मेरी स्थापना में कोई फर्क नहीं आता। कोई भी नया कवि आरम्भ में यह नहीं जानता कि वह प्रचलित शैली को छोड़ कर किसी नई शैली में क्यों लिख रहा है, न कविगण आरम्भ में यही जानते हैं कि वे किसी नए आन्दोलन के साथ हैं। नई शैली भी उसी स्वाभाविकता से जन्म लेती है जिस स्वाभाविकता से फूल चटकते या टहनी में पत्ते निकलते हैं। सचेष्ट आन्दोलन केवल राजनीति में चलते हैं। साहित्य में तो आन्दोलन भी सहज भाव से ही प्रकट होते हैं। बाद में चल कर जब छायावादियों का विरोध होने लगा तभी छायावादी कवि यह जान सके कि वे एक नए आन्दोलन के प्रवर्तक हो पड़े हैं। अन्यथा वे यह क्यों सोचने जाते कि कविताएँ नहीं लिख कर वे कोई आन्दोलन चला रहे हैं? प्रयोगवाद के जन्म की प्रक्रिया भी ऐसी ही सहज थी। जब अनेक कवियों और आलोचकों ने साहित्य में विचारों को अत्यधिक प्रमुखता देकर उसके शैली-पक्ष को गौण कर दिया तब कुछ नवयुवक साहित्य के शैली या कला-पक्ष को ऊपर उठाने को आगे बढ़े। किन्तु, आरम्भ में, इन युवकों को यह ज्ञात नहीं था कि वे प्रगतिवाद से उत्पन्न होने वाले दोषों का परिहार करने को आगे बढ़ रहे हैं। यही कारण था कि उनके इस सदुपयोग में बहुत-से ऐसे लोग भी साथ हो गए जो अपने को प्रगतिवादी कहते थे अथवा जो मार्क्सवादी राजनीति के साथ थे। किन्तु, आन्दोलन जैसे-जैसे आगे बढ़ा, बातें सुस्पष्ट होती गईं। यहाँ तक कि आज यह स्थिति है, कि यद्यपि, नई शैली में लिखने वाले कितने ही कवि विचारों से मार्क्सवादी हैं, किन्तु, प्रयोगवाद और प्रगतिवाद के बीच का भेद, फिर भी, काफी प्रत्यक्ष हो गया है।

मुझे इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं है कि प्रगतिवादी आन्दोलन ने साहित्य में साहित्येतर मूल्यों को प्रोत्साहन देकर जो स्थिति उत्पन्न की उसी से युवकों को फिर से शैली की महिमा पर विचार करने की प्रेरणा मिली और इसी चिन्तन से प्रयोगवाद का आविर्भाव हुआ जिसका वास्तविक उद्देश्य काव्य में अधिक कवित्व और साहित्य में अधिक साहित्यिकता को उत्तेजित करना है। प्रगतिवाद के साहित्येतर लक्षणों का विरोधी होने के कारण ही, प्रयोगवाद अपने ऊपर साहित्यिकता के सम्पूर्ण निर्वाह का अत्यन्त गुरु दायित्व लेकर आया है। किन्तु, दायित्व की इस भयानकता को वे क्या समझें जो केवल साहित्यिक क्रान्ति के जोश में इस आन्दोलन के साथ हो गए हैं? इसका मर्म तो कुछ वे ही कवि जानते होंगे जो सच्चे और ईमानदार हैं तथा इस दायित्व को सफल करने के प्रयास में जिनका दिमाग फटता होगा। इसी प्रकार, इस पीड़ा का रहस्य वे कवि भी न जान सकेंगे जो बनी-बनाई राह पर चलने के अभ्यासी हैं। छायावाद की शैली रोमांटिक प्रेरणा से निर्मित हुई थी और रोमांटिक प्रेरणा आनन्द की चीज है। इस प्रेरणा के मन्दोन्माद में शैली का निर्धारण आपसे आप हो जाता है। किन्तु, प्रयोगवाद के भीतर आनन्दमय मन्दोन्माद के लिए अधिक गुंजाइश नहीं है। इसकी सफलता प्रेरणा के साथ बहने में नहीं, उसे विचारों के अधीन रख कर काम करने में है। रोमांटिक मनोदशा उड़ने की मनोदशा होती है और कल्पना की यह उड़ान अब तक कविता की सबसे बड़ी शक्ति मानी जाती रही है। इस से विपरीत, क्लासिक कवियों की वह मनोदशा होती है जिसमें कवि धीर, स्थिर और अपने वर्ण्य विषयों पर हावी बना रहता है। किन्तु, क्लासिक चिन्तन की ही दिशा में अब एक नई मुद्रा उत्पन्न हो रही है जो उड़ने नहीं, जम कर मिट्टी तोड़ने की मुद्रा है, जो पर्वतों पर मूर्त्ति-खचन नहीं करके सदेह उनके भीतर प्रवेश करना चाहती है। इस मुद्रा के नए कवि, मुख्यतः चिन्तक कवि होंगे, किन्तु, कल्पना को वे छोड़ नहीं सकते, क्योंकि उनका सारा चिन्तन कल्पनामय होगा। कल्पना के सिवाय और कौन साधन है जिससे कवि वस्तुओं के भीतर प्रवेश कर सके तथा कल्पना को छोड़ कर और कौन शक्ति है जो वस्तुओं की आन्तरिकता के ज्ञान को चित्रों में परिवर्तित कर सके?

इसलिए, मेरा विचार है कि प्रयोगवाद हिन्दी-कविता को जिस ओर जाने का संकेत दे रहा है वह काव्यमात्र की सबसे श्रेष्ठ दिशा है और इसीलिए प्रयोग की साधना भी ऐसी साधना है जिससे अधिक कठोर साधना की कल्पना नहीं की जा सकती। न जाने, यह साधना कितने कवियों का बलिदान लेगी। न जाने, इसमें कितने कवियों के खाद बन जाने पर एक सफल कवि उत्पन्न होगा।

इस कविता की आलोचना भी कोई सरल कार्य नहीं है। और हमारे आलोचकों के पास जो पुरानी कसौटी है उस पर तो नए कवि परखे ही नहीं जा सकते। नए कवि अपना रहस्य, शायद आप खोलेंगे। अभी भी प्रयोगवादियों में अनेक कवि ऐसे हैं जिनके भीतर कारयित्री और भावयित्री प्रतिभाओं का अपूर्व संयोग है। मेरा अनुमान है कि जो लोग इन कवियों की कविताओं को हँस कर टाल देते हैं, वे भी उनके चिन्तनयुक्त समीक्षात्मक निबन्धों से अवश्य प्रभावित होते होंगे। ज्यों-ज्यों यह कविता विकसित होगी त्यों-त्यों आलोचकों की कठिनाई

बढ़ती जाएगी। नई कविता की समीक्षा यूरोप में भी दुष्कर सिद्ध हुई है। होल्डरलीन, रिम्बाड (या गोम्बू ?), रिल्के, इलियट, स्पेंडर, डिलेन टामस आदि अभिनव कवियों की कृतियों का विश्लेषण करने में यूरोप के बड़े-बड़े दार्शनिक समीक्षकों की बुद्धि को पसीना आ गया है।

नवयुवकों ने कविता में जो अन्तर्राष्ट्रीय रुचि को अपनाना शुरू किया है, उससे भी उन्हें कलंक नहीं, सुयश की ही प्राप्ति होनी चाहिए। और अब क्या यह सम्भव है कि भारत की रुचि अन्य देशों से सर्वथा भिन्न रखी जा सके ? और अन्तर्राष्ट्रीय रुचि है क्या चीज़ ? वह अनेक राष्ट्रों की रुचियों के पारस्परिक मिलन से ही उत्पन्न होती है। गेटे के 'फ़ॉस्ट' का प्रिलूड भारतीय नाटकों के नान्दी-प्रसंग से बना था, शीलर और हाइने पर कालिदास का प्रभाव था और इलियट के विकास का एक मुख्य कारण उन पर उपनिषदों और बौद्ध चिन्तन का प्रभाव भी है। और इलियट को अपना आदर्श मान कर चलने में भारत के नवयुवकों का कोई अपमान भी नहीं है। इलियट आसानी से आज विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जा सकते हैं और उनका उद्भव साहित्य-जगत के लिए कोई आकस्मिक घटना भी नहीं है। रोमांटिक युग से ही कविता छिलकों को तोड़ कर बीज के भीतर प्रवेश करने का प्रयास करती आ रही है और इस क्रम में छिलके बहुत बार टूटे भी हैं और कभी-कभी कवियों ने बीज के भीतर प्रवेश भी किया है। किन्तु, कविता का अधिक सौन्दर्य अब तक छिलकों के रंग से लिपटा रहा है। मगर, नए प्रयोगों से यह बात स्पष्ट हो रही है कि वस्तुओं के ऊपर-ऊपर अब काव्य नहीं है। कविता तो वस्तुओं के अन्तराल में बसती है। यह नया प्रयास प्रत्येक वस्तु की उसी आन्तरिकता में धँसने का प्रयास है। यह उन महलों में दीपक जलाने की तैयारी है जहाँ पहले किसी ने दीये नहीं जलाए थे। महर्षि अरविन्द की कल्पना थी कि अगले युग की कविता मन्त्र के समान होगी अर्थात आकार उसका छोटा होगा, किन्तु उसका प्रत्येक शब्द पाठक के भीतर अपार अनुभूतियों का द्वार खोलने वाला होगा। कविता का यह मन्त्रत्व क्या होगा, इस बात की कुछ थोड़ी झाँकी इलियट की कविताओं में मिलने लगी है। हिन्दी कविता का चरम लक्ष्य इसी मन्त्रत्व की प्राप्ति है और राह भी उसकी वही हो सकती है जिस पर आज इतना कोलाहल मचा हुआ है।

और इस महायज्ञ के पुरोधा भी इसी भीड़ में छिपे हुए हैं। एक दिन यह भीड़ नष्ट हो जाएगी। सम्भव है, कोयलों के साथ कुछ हीरे भी नष्ट हो जाएँ। किन्तु, ये कोयले और ये हीरे नष्ट होने पर भी नए हीरे उत्पन्न करेंगे। इसीलिए, मैं इस आन्दोलन को अत्यन्त श्रद्धा से देखता हूँ और चाहता हूँ कि यह अपने ध्येय को न भूले, हू-हुल्लड़ में पड़ कर यह पथभ्रष्ट न हो जाए और इसके समर्थ कवि विवाद से बच कर अज्ञात और अपरिचित को छूने के प्रयास में अगाधता के भीतर अधिकाधिक डूबते चलें।

यह प्रयोग सफल हुआ तो कविता उस ऊँचाई या गहराई में पहुँचने वाली है जहाँ वह पहले कभी नहीं पहुँची थी। यह ठीक है कि यह कविता जब सफल होगी, कवि-सम्मेलन बन्द हो जाएँगे और कविता के पाठकों की संख्या भी अपेक्षाकृत कम हो जाएगी। किन्तु, तभी शायद, वे लोग कविता की पुस्तकों को हाथ में लेंगे जो आज कविता को छूते भी नहीं और यदि कृपापूर्वक कभी उसे सुन लेते हैं तो केवल मन बहलाव के लिए, कुछ इस भाव से नहीं कि कविता भी अनिवार्य है अथवा वह भी उस मस्तिष्क की खुराक बन सकती है जिसे तब तक सन्तोष नहीं होता जब तक कि वह किसी गहन-गम्भीर विचार से टक्कर नहीं ले। सम्भव है, मैं जो सोच रहा हूँ, उसके घटित होने में अभी काफी देर हो और प्रयोग अभी सदी-आधी-सदी तक प्रयोग ही रह जाए। किन्तु, कविता की अपनी खोई प्रतिष्ठा को यदि फिर से प्राप्त करना है तो उसकी राह वही है जिस पर प्रयोगवादी कवि चल रहे हैं। और उनमें से प्रग्येक को यदि खाद ही बनना पड़ता है, तब भी यह प्रयोग छोड़ने लायक नहीं है। आखिर अंग्रेज़ी के इमेजिस्ट कवियों का भी इतना महत्त्व तो मानना ही पड़ेगा कि जिस मार्ग पर आगे चल कर इलियट उत्पन्न हुए, उसके आरम्भिक प्रयोक्ता इमेजिस्ट कवि थे।

●

साँझ

शम्भूनाथसिंह

साँझ सिन्दूरी
सुनहरी पहन कर साड़ी लहरिया :
—लगे जिसमें रुपहरे गोटे—
बुलाती है क्षितिज पर
झुटपुटे में चाँद को।
चाँद,
आश्विन पूर्णिमा का चाँद
पूरब के धुँधलके बीच
काले झुरमुटों से झाँकता है;
बीथियों में ताड़ और खजूर के
छिप-छिप, दबा कर पाँव चलता,
और सहसा कर बढ़ा कर
लाजवन्ती साँझ को
झकझोर देता;
आँक देता चुम्बनों के जाल
श्याम कपोल पर।
कस कर रजत के बन्धनों में
साँझ अब मुरझा रही है।
यह सुधा का विष
कि तन का खून काला पड़ रहा है।
मर गयी लो, साँझ !
चाँदनी का भस्म
निज तन में रमाये
चाँद सारी रात अब भटका करेगा।

●

साहित्य और कला की समान प्रेरणा

भगवत शरण उपाध्याय

साहित्य और कला की प्रेरणाएँ समान हैं, उनके अवतरण की भूमि समान है। दोनों ने समान पृष्ठभूमि जीवन से अपना भाग पाया है। समान उपकरणों से दोनों ऋद्ध हुए हैं। इसी से अनेक बार अनेकशः उनके प्रतिमान, प्रतिमाएँ, अभिप्राय समान अथवा कम-से-कम एक से रहे हैं। 'शिथिल समाधि' का दोष समान रूप से उनकी सफलता में घातक सिद्ध हुआ है, वर्ण्य, लेख्य अथवा अनुकार्य का साक्षात्कार सर्वदा-सर्वत्र उनके वैभव का कारण बना है।

साहित्य और कला के क्षेत्र में सर्वत्र और सर्वदा समान आवाज़ उठती रही है, समान सैद्धान्तिक संकेत अथवा लाक्षणिक शब्दावलि से उनकी प्रवृत्तियों का उल्लेख हुआ है। क्लासिकल, रोमैंटिक, यथार्थवादी, नव-क्लासिकल, प्रकृतिवादी, इम्प्रेशनिस्ट, पोस्ट-इम्प्रेशनिस्ट, क्यूबिस्ट, फ़्यूचरिस्ट, सर्रियलिस्ट, सामाजिक-यथार्थवादी आदि जितनी भी प्रवृत्तियाँ आज इन नामों से द्योतित होती हैं वे सभी साहित्य और कला दोनों के क्षेत्रों में समान रूप से व्यवहृत हुई हैं।

इसी कारण साहित्य और कला दोनों के अभिप्राय (मोटिफ़) भी अनेक बार प्रायः एक ही रहे हैं। साहित्य में निरन्तर कला के लक्षणों और उसके अनुकार्यों का उल्लेख हुआ है और कला के अनेकानेक भाव-विषय सीधे साहित्य से लेकर लिखे, खींचे या कोर गए हैं। इसी से दोनों में असाधारण अन्योन्याश्रय और अन्तरावलम्बन है।

कालिदास ने अपने साहित्य का सृजन करते समय 'ललिते कलाविधौ', 'ललिताभिनय', 'पत्रविशेषक', 'चित्रशाला', 'सद्मसु चित्रवत्सु', 'सचित्राः प्रासादाः', 'विमानाग्रभूमिरालेख्यानाम्', 'द्वारोपान्तोलिखित वपुषो शंखपद्मौ', 'आलेख्यशेषस्य', 'सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन', 'प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखां', आदि पदों में उस साहित्यगत कलाकारिता की ओर संकेत किया है। ऐसे ही उनके अनेक स्थल चित्रण और तक्षण कलाओं के समान प्रतिमानों-प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हैं। कुछ इनमें से इस प्रकार हैं—'प्रतिकृतिं', 'मत्सादृश्यं भावगम्यं लिखन्ती', 'प्रणयकुपितां', 'आलेख्य वानर इव', 'तर्कयामि येन ···लिखिता सा शकुन्तला', 'रागबद्धचित्तवृत्तिरालिखित इव सर्वतो रंग', 'पूरितव्यं···कदम्बैः', 'कुसुमरसः···मधुकरः', 'चित्रगताया···आसन्नदारिका', 'अपूर्वेयं···आलिखिता', 'चित्रपरिचयेनांगेषु'।

चित्र-सम्पदा के अतिरिक्त वह कवि बार-बार अपनी साहित्यगत स्थितियों की व्याख्या-विन्यास के लिए मूर्तन के अभिप्रायों का सहारा लेता है। अपने काल की मृण्मूर्तियों के प्रति वह 'वर्णचित्रितो मृत्तिकामयूरः', 'मृण्मयूरहस्ता', 'भद्रमयूरः', 'शकुन्तलावण्यं' आदि में संकेत करता है। और मूर्तनतक्षण (पत्थर में) की तो अनन्त सम्पदा कवि के साहित्य में खुल पड़ी है। 'कालोकालाभरणा', 'चलकपालकुण्डला', 'मयूरपृष्ठाश्रयी गुह', 'अश्वमुख्यः', 'श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषश्चसाक्षात्' कला और साहित्य दोनों अपने समसामयिक जीवन के ठोस प्रतिमानों को प्रस्तुत करते हैं। 'मूर्ते च गंगा यमुने तदानीं स चामरे देवमसेविषाताम्' में कालिदास ने गुप्तकालीन उस कलागत अभिप्राय का उल्लेख किया है जो मूर्तन के क्षेत्र में अभी हाल ही में उतरा था और जिसमें मन्दिरों के द्वार मकरारूढ़ा गंगा और कच्छपारूढ़ा यमुना के प्रतीकों से सजाए जाने लगे थे। पार्वती-परिणय अथवा शिवपार्वती की जो अनन्त मूर्तियाँ मध्यकाल में बनीं, उनके स्रोत की ओर कवि ने पूर्व ही अपने 'शम्भुनादत्तहस्ता' में निर्दिष्ट कर दिया। गुप्तकालीन प्रभामण्डलों का अनेकशः वर्णन कालिदास के 'छायातपत्र', 'प्रभामण्डल', 'स्फुरत्प्रभामण्डल', 'पंकजानां मध्ये स्फुरन्तं प्रतिमाशशांकम्', में हुआ है। अपने 'दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः कैलासस्य' और 'रामस्तुलित कैलासं' में उसने रावण के कैलास उखाड़ने से उसकी सन्धियों के विच्छिन्न हो जाने के उस प्रसंग की ओर संकेत किया है जिसका मूर्तन पिछले मध्यकाल की मूर्त्तिकला में प्रभूत मात्रा में होता चला गया। इसी प्रकार यक्ष-यक्षिणियों का मूर्तन शुद्ध कला में जितना उस काल प्रचुर हुआ, उसी प्रचुर मात्रा में कवि ने भी अपने साहित्य में उन्हें व्यक्त किया है। मेघदूत का तो नायक ही यक्ष है। कुषाणकालीन मथुरा की स्तूप-वेदिकाओं (और दूर भरहुत) की यक्षियों की पृष्ठभूमि से ही कवि की अयोध्या की उपेक्षित स्तम्भ-नारी-मूर्त्तियाँ उठी हैं।

> स्तम्भेषु योषित्प्रतियातनानामुत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम्।
> स्तनोत्तरीयाणि भवन्ति संगान्निर्मोकपट्टाः फणिभिर्विमुक्ताः॥

स्तम्भों पर बनी नारी मूर्तियों के रंग विवर्ण हो गए हैं, धूलिधूसरिता उनके उत्तरीय अब नहीं दिखते, उनके स्थान पर उन पर रेंगने वाले कालभुजंगों की केंचुलें अब उनके स्तनों का अवगुंठन करती हैं! यक्षों का संसार तब की भावभूमि पर अपने आपानक लेकर उतरा था। यक्षों और उनके स्वामी कुबेर इन आपानकों के श्लाघ्य देवता थे। कुबेर की चषकहस्ता मूर्त्तियों का तब प्राधान्य था, जब कवि के शब्दों में नागरिकों द्वारा मदिरा पीकर फेंके, टूटे चषकों से 'भूमि चषकोत्तरा' हो उठती थी। 'कुमार सम्भव' में शिव की समाधि और तत्कालीन अनन्त समाधिगत बुद्ध-प्रतिमाओं की प्रेरणा सर्वथा समान है, एक भावभूमि से उठी। कन्दुक क्रीड़ारता, गाती-नाचती वीणा बजाती, पुष्प-चयन करती नारी के अनेकानेक अभिप्राय एक ही सामाजिक प्रवृत्ति के परिचायक हैं, जैसे दोहद की अभिराम परम्परा भी। मूर्तनकला में दोहद की सम्पदा जैसे बरस पड़ी है। नूपुर धारण कर तरुणी सुन्दरी का अशोक-मूल पर पदाघात कला और साहित्य दोनों में

सुकुमार निष्ठा से रूपायित हुआ है, जैसे मदिरा के कुल्ले से बकुल का कुसमागम। दोहद का जो रूप कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्रं' में निखारा है वह साहित्य के दूसरे कृतिकारों का भी इष्ट रहा है और उन्होंने भी उसका अनेकधा रुचिर वर्णन किया है।

समाज में संस्कृत सुरुचिप्राण नारी ललितावसरों पर 'लीलारविन्द' धारण करती थीं—कमलदण्ड। यह प्रतीक कला और साहित्य दोनों के रूपायन का अभिमत प्रिय अभिप्राय बन गया। मौर्य-शुंग कालीन मिट्टी के ठीकरों से लेकर उत्तर गुप्तकालीन कृतियों पर निरन्तर यह अभिप्राय आकलित मिलता है। सदा समाज के सौन्दर्यमानों का आकलन कला और साहित्य में होता आया है। मूर्तन के क्षेत्र में पीनपयोधरों और गुरुनितम्बों की जो छाया पड़ी तो समूचे साहित्यकारों ने, विशेषतः कालिदास ने, उस सौन्दर्यमान को अपनाया। कवि ने उन्हीं की प्रशंसा में 'नितम्बगुर्वी', और 'गुरुश्रोणिपयोधरत्वात्' के से सैकड़ों-सैकड़ों पद लिखे। एक स्थान पर तो कला की उस पृष्ठभूमि को लेखनी के माध्यम से साहित्य में उतारते हुए उसने लिखा कि परस्पर पीड़न करने वाले पीनपयोधरों का सान्निध्य इतना गहन है कि दोनों के बीच एक मृणालतन्तु तक नहीं रखा जा सकता।

बुद्धकालीन वत्सराज उदयन को अवन्ती के चण्ड प्रद्योत महासेन ने मायागज के छल से बन्दी कर लिया था। बन्दी की स्थिति में ही उस वीणावादक उदयन ने प्रद्योत की रुचिर कन्या वासवदत्ता को तन्त्रीवादन सिखाते समय मोह लिया और एक दिन अपने मन्त्री यौगन्धरायण की सहायता से उदयन वासवदत्ता को हाथी पर चढ़ा कर कोशाम्बी ले भागा। यह कथा संस्कृत साहित्य में बार-बार उतरी है। कालिदास से पहले महाकवि भास ने इसी कथा को अपने दो-दो समूचे नाटकों—'स्वप्नवासवदत्ता' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'—का विषय-वस्तु बनाया, बाद में हर्ष ने उसे अपनी 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' में ध्वनित किया। 'कथासरित्सागर' में भी वह कथा खुल कर आई और साहित्य में अनेकधा मुखरित हुई। स्वयं कालिदास ने 'मेघदूत' के अपने 'उदयनकथा कोविदग्रामवृद्धान्' में गाँव-नगर के वृद्धों द्वारा उस कथा के कहे जाने का उल्लेख किया। वह कथा-प्रसंग भास-कालिदास से सदियों पहले कलावन्तों के हाथ से प्रकाश पा चुका था। कलाकार ने साहित्यकार से कहीं पहले अपने साँचे को उस रोमांचक प्रसंग से कृतार्थ कर दिया था। वत्सराज उदयन की राजधानी कौशाम्बी के खण्डहरा में इस कथा को रूपायन करने वाले मिट्टी के अनेक ठीकरे मिले हैं जो शुंग काल यानी ईस्वी पूर्व दूसरी सदी के ही हैं, उदयन से केवल तीन-चार सौ वर्ष बाद के बने। उपलब्ध ठीकरों के मतिमान साँचाकार ने ठीकरे पर समूची कथा खींच दी है। राजा वीणा धारे हाथी पर बैठा है। वासवदत्ता उसकी कमर से चिपटी हुई है। पीछे पूँछ के पास अनुचर बैठा नकुली से स्वर्ण-मुद्राएँ गिरा रहा है जिससे पीछा करने वाले शत्रु-सैनिक लाभ में फँस कर राजा का पीछा करना छोड़ दें। गज बेतहाशा भागा जा रहा है। ऐतिहासिक घटना का इतना सजीव वर्णन कला के ठीकरे पर अन्यत्र कभी नहीं हुआ। इस एक ठीकरे ने साहित्य के अनेकानेक नाटकों की काया अकेले सिरज दी। इस कथा की पृष्ठभूमि से साहित्य और कला दोनों ने अपना भाग पाया, दोनों इसके सौरभ से गमके।

साहित्य और कला दोनों में समान प्रचुरता से प्रसाधन का निरूपण हुआ है। पति या प्रेमी पत्नी या प्रेयसी का वेणि प्रसाधन, पुष्प-मण्डन या पत्र-लेखन (भक्ति-विशेषक-अंकन) करता है। इस प्रसंग के आकलन तक्षक की छेनी से बार-बार द्वार-स्तम्भों के चतुष्कों में हुआ है। कुषाण और गुप्तकालीन अनेक कला अभिप्राय इस प्रतीक से मुखरित हुए हैं। मथुरा और लखनऊ के संग्रहालयों में इस लक्षण के आकलन सुरक्षित हैं। प्रतीकतः नन्द द्वारा सुन्दरी का प्रसाधन मान कर भी इनकी ओर कुछ लोगों ने संकेत किया है। इसमें सन्देह नहीं कि इनका आकलन, जैसे स्वयं नन्द-सुन्दरी का साहित्यगत प्रसाधन, तत्कालीन समाज का प्रक्षेपण-प्रसार-प्रतिबिम्ब मात्र है। नन्द द्वारा सुन्दरी का वह अभिराम, पर परिणाम में भयावह प्रसाधन महाकवि अश्वघोष के 'सौन्दरानन्द' महाकाव्य में विशद रूप से मुखरित हुआ है।

वर्णन चौथे सर्ग का है। नन्द बुद्ध का सौतेला भाई है, बुद्ध का भक्त, पत्नी सुन्दरी का एकान्त प्रिय और प्रेमी। एक दिन वह अपने प्रासाद के प्रकोष्ट पर प्रिया के मुख पर विशेषक लिख रहा था। विशेषक पत्र-लेखन को कहते थे, कपोलों, ललाट और चिबुक पर लतापत्रों और टहनियों को रंग की रेखाओं से अंकित करने को। वह प्रसाधन सामान्यतः नन्द द्वारा सम्पन्न होने के बावजूद उस विशेष अवसर पर विनोद का रूप धारण कर चुका था, क्योंकि वस्तुतः नन्द द्वारा सुन्दरी का नहीं बल्कि सुन्दरी द्वारा नन्द का प्रसाधन हो रहा था। नन्द के हाथ में दिखाने के लिए दर्पण पकड़ा कर पति की मूँछ को देख देख कर अपने चेहरे पर राग रेखाओं द्वारा मूँछ बना रही थी। नन्द भी अपनी गीली साँसों से दर्पण की स्वच्छ भूमि धूमिल करता जा रहा था, जिससे चिढ़कर एक बार तो सुन्दरी ने बनावटी कोप दिखा कर उसके समूचे मुख को रंग दिया। तब कुछ घबड़ा कर नन्द सुन्दरी के पाँव पर गिर पड़ा। सुन्दरी ने तब उसे उठा कर अंक में भर लिया। यह मण्डन-विनोद अभी चल ही रहा था कि तथागत भिक्षा के लिए द्वार पर आए और उन्होंने बदस्तूर अपना भिक्षापात्र गृहस्थ की देहली में बढ़ा दिया, पर स्वामी-स्वामिनी के विलास के उद्दीपक प्रसाधन के उपकरण—अंगराग, फेनक, गन्धद्रव आदि—प्रस्तुत करने में व्यस्त अनुचरों ने बुद्ध को न तो भिक्षा दी, न आसन दिया, न उनसे मीठे बैन बोले। तथागत निर्द्वन्द्व आए थे निर्विकार चले गए। दासी ने जो बुद्ध को इस प्रकार बिना भिक्षा लिए लौटते हुए देखा तो भाग कर नन्द से वह अपराध निवेदित किया। नन्द ने तत्काल प्रिया से प्रसाधन बन्द कर बुद्ध को मना लाने की अनुमति चाही, प्रिया ने अनुमति दी, पर उस प्रसंग में उसने जो कहा, उससे उनके प्रणय की घनता और वियोग की अधीरता का पता चलता है। सुन्दरी ने कहा—

> नाहं यियासोर्गुरुदर्शनार्थमर्हामि कर्तुं तव धर्मपीडाम् ।
> गच्छार्यपुत्रेहि च शीघ्रमेव विशेषको यावदयं न शुष्कः ॥ ३४॥

(शेष पृष्ठ १८ पर)

तेलुगु कहानी

मूक मानव

मा० गोखले

चारों तरफ अँधेरा फैल गया। हट्टाकट्टा यानादि[१] मुसलाय ब्राह्मणों की गली के हर घर का दरवाज़ा खटखटा कर निराश हो, आखिरकार रामय्या के घर के सामने खड़ा हो गया।

"रामय्या जी ! रामय्या जी !!" मुसलाय ने बाहर से आवाज़ दी। अन्दर से कोई जवाब नहीं आया।

"कोई भी दिखाई नहीं पड़ रहा है, कहाँ गए सब लोग ?" कहते हुए मुसलाय अन्दर दाखिल हुआ।

रामय्या जी घर के अच्छे आदमी हैं। तीन बच्चे भी हैं। हमेशा घर में रिश्तेदारों का ताँता-सा लगा रहता है। मकान भी बहुत बढ़िया है। घर के आगे खाली मैदान पड़ा

किवाड़ अधखुला था और अन्दर से रोशनी कुछ अस्पष्ट-सी बरामदे में पड़ रही थी। वहाँ कोई नहीं था। मुसलाय इधर-उधर देखते हुए बरामदे में गया। अचानक उसकी नज़र एक ऐसी चीज़ पर पड़ी जो बरामदे के एक खम्भे की बगल में चमक रही थी।

मुसलाय ने इसके पहले कभी ऐसी चमकती हुई चीज न मालकिन के पास देखी थी, न उसके बाल-बच्चों के हाथ में ही। खड़े-खड़े वह सोच रहा था कि इस तरह आँखें चौंधिया देने वाली वह चीज क्या हो सकती है ? बहुत सोचा, पर कुछ समझ में नहीं आया। आखिर वह अपना सन्देह दूर करने के लिए आगे बढ़ा। उसे लगा कि अगर वह देरी करेगा तो चमकने वाली वह चीज कहीं गायब न हो जाए। सो वह अपनी नज़र उस पर गड़ा कर आहिस्ता-आहिस्ता उसके पास गया और बड़े इतमीनान से उसे देखा—गागर, और उसकी बगल में एक छोटा-सा लोटा। मुसलाय उन पर टकटकी लगा कर देखता वहीं खड़ा रह गया। वह सब कुछ भूल गया। उसे इसका भी ख्याल न रहा कि वह रामय्या जी के घर के बरामदे में है और वह उनसे मिलने आया है। सब कुछ भूल कर उन दोनों बर्तनों की तरफ वह देखता जा रहा था। उस बरामदे में अकेला मुसलाय था और वे चमकने वाली दो चीज़ें। आजकल ये चीज़ें बाजार में नहीं मिलतीं, अगर मिलती भी हैं तो बहुत ही मँहगी। मामूली आदमी के लिए ऐसी चीज खरीदना तो ख़्वाब की बात है।

मुसलाय का एक पैर आगे को बढ़ा। इतने में घर के अन्दर से किसी के आने की आहट हुई। मुसलाय के होश एकदम उड़ गए। उसे ऐसा महसूस हुआ कि अभी उस पर घूँसों और लातों की बौछार पड़ेगी। वह कुछ सम्हल गया और दरवाज़े की तरफ़ मुँह करके उसने आवाज़ दी—"माई जी !" उसके बाद ही उसे कुछ तसल्ली हुई।

"कौन है ?" कहती हुई रामय्या की पत्नी सीतम्मा अधखुले किवाड़ को पूरा खोलती हुई बरामदे में आ गई। जैसे ही सीतम्मा बरामदे में आई, उसके साथ-साथ रसोईघर की खुशबू भी आई और मुसलाय की नाक ने उसे अपने में समेट लिया।

"माई जी ! मैं हूँ यानादि मुसलाय !" वह कुछ सम्हल तो गया, पर मुँह से ठीक तरह शब्द नहीं निकल पा रहे थे।

"कौन ? मुसलाय ? तुझे हो क्या गया रे कम्बख्त ! इतने जोर से तूने आवाज दी कि सुन कर मेरे होश उड़ गए। इस समय यहाँ कैसे आया ?.........अरे, यहाँ तो कोई भी नहीं है ! कितनी देर से है तू यहाँ ?.........मुझे तो इसका ख्याल भी नहीं रहा कि बरामदे का दरवाजा खुला हुआ है और बच्चे यहाँ नहीं।.........ये बच्चे तो एक मिनट के लिए भी घर में नहीं रहते। इन्हें अड़ोस-पड़ोस के घर अच्छे लगते हैं। इतने लापरवाह हैं कि दरवाजा खुला ही छोड़ गए। क्या किया जाए ? मेरी तो नाक में दम है !.........शास्त्री जी के लिए क्या कहूँ ? इतनी रात बीत गई पर घर आने का नाम नहीं, कहीं बैठ कर शास्त्र-मीमांसा में दिमाग लड़ा रहे होंगे।.........हाँ, यह तो तूने बताया नहीं—बात क्या है ? किस काम से आया है—? पर अच्छा हुआ आ गया, गागर.........." सीतम्मा इस तरह बहुत जल्दी-जल्दी बातें पूछ रही थी, मानो पानी में डूबने से उसके मुँह और नाक में बहुत-सा पानी भर गया हो और वह उसे निकालने की बड़ी कोशिश कर रही हो।

"रामय्या जी से मुलाकात करने आया था।" मुसलाय ने किसी प्रकार कहा।

"वे तो घर में नहीं हैं। मालूम नहीं कहाँ अपनी बैठक जमाए हुए हों। घर में कोई मर भी जाए, उसकी उनको परवाह नहीं।......... तूने बताया नहीं, उनसे क्या काम है ?"

"कुछ नहीं माई जी ! बाऽऽऽऽत ! बऽऽत्रऽऽत्रऽऽत्र.........!!!"

"क्या बा बा बा, तुम्हारा सिर ! अपनी हकलाहट से मुझे परेशान कर रहे हो। कुछ ठीक बोलते भी नहीं ! रसोई का सारा काम वैसे ही पड़ा हुआ है।.........कच्चा ईंधन लाकर मेरे सिर पटक दिया !...... खैर उनसे कल मिल लेना ! अभी उनके आने में और भी देरी हो जाएगी ! हाँ, चले जाओ, किवाड़ बन्द करके जाऊँगी ! हाँ, हाँ, मुसलाय ! ज़रा ठहर तो जाओ ! दो घड़े पानी दे जाओ ! तुम्हारा बड़ा भला हो ! इतना काम कर देना, इतने में शायद वे आ भी जाएँ ! अभी अन्दर से घड़ा लाए देती हूँ। अरे, मैं तो भूल ही गई—गागर और लोटा तो यहीं पड़ा है। आजकल ये चीज़ें बहुत मँहगी हैं। ऐन वक्त पर तुम आ गए हो ! अभी ठहर जाओ मुसलाय !"

---

[१] आन्ध्र की अनुसूचित आदिम जाति।

सीतम्मा यह कहकर अन्दर चली गई और एक हाथ में लालटेन और दूसरे हाथ में घड़ा लिए वापस आ गई। छत से लटकने वाले एक लोहे के तार में लालटेन लटका दी और मुसलाय के हाथ में घड़ा देते हुए कहा—"तेरा बड़ा एहसान मानूँगी। ज़रा उन दोनों टबों में पानी तो भर दे!"

सीतम्मा यह कह वहीं खड़ी हो गई।

"हाँ, हाँ, माई जी! तुरन्त भर देता हूँ! आप अपना काम देख लीजिएगा।"

"कोई बात नहीं, लालटेन लिए मैं कुएँ के पास आ जाऊँगी।··· क्यों मुसलाय? तुमने अपनी बीबी को घर बुला लिया या नहीं?"

"क्या कहूँ माई जी?"

"क्यों अपनी बीबी के बारे में कुछ कहते शर्म आती है? अरे तू तो पागल है!···सूरत-शक्ल कैसी है, उसकी?"

"हमारी बस्ती में तो लोग उसे खूबसूरत कहते हैं।"

"उसका नाम क्या है?"

"उहूँ"

"क्यों रे उसकी याद करके खुश हो रहा है या शरमा रहा है? हमारे परिवारों में तो ऐसा नहीं होता। पत्नी का नाम बतला देते हैं।"

"वह बात नहीं माई जी! नाम तो उसका शशिरेखा है।"

"शशिरेखा? नाम तो बहुत अच्छा है। तुम्हें तो अच्छी बीबी मिल गई है। बड़ा शौकीन नाम है। शहर की लौंडी तो नहीं।"

"नहीं माई जी! उसकी ताई का नाम शशिरेखा है। उसने अपना ही नाम इसे भी दे दिया!"

"अच्छा!···वह घड़ा वहीं रख दे! देख मुसलाय! ज़रा तकलीफ़ दे रही हूँ। गोशाला के उस कोने में उपले पड़े हैं। एक टोकरी भर लाकर इस बरामदे में डाल दे।"

"जी ···?"

"बस!···अभी लड़के आजाएँगे। उनको खिलाते-पिलाते सवेरा हो जाएगा। हाँ सुना—बच्चों की ये खाटें ज़रा आँगन में रख दे।"

"और कोई काम तो नहीं है न"···

"नहीं बाबा, नहीं! तेरा भला हो।"

"रामय्या जी ने शाम को आने के लिए कहा था!"

"कहा होगा, पर अभी तक तो आए नहीं। पता नहीं, कब आएँगे।"

"सवेरे उनसे मुलाकात हुई भी और······"

"हाँ! हुई होगी!······"

"मैंने चार आने माँगे थे।"

"अच्छा···हाँ···अरे, मैं तो भूल ही गई। रसोईघर का सारा काम वैसे ही पड़ा है। उनके···खाने-पीने में कोई कसर नहीं रहनी चाहिए।···अभी तो वे आये नहीं। तुम कल सवेरे मिल लेना।"

"माई!···पाव भर···चावल···!"

"अभी तो मैं कोई चीज़ छू नहीं सकती! रसोई के कपड़े पहने हूँ। फिर कभी आना!···जा रहे हो? एक बात सुनो तो। दर्भावालों के घर में हमारे बच्चे होंगे। ज़रा उनसे घर आने को कहना, अँधेरा बहुत हो गया है।"

× × ×

"सीतम्मा जी के बच्चे अन्दर होंगे! कह दीजिएगा, उनकी माँ बुला रही हैं।" मुसलाय दर्भावालों के आलीशान मकान के आँगन के अन्दर कदम रखते हुए बोला!

"कौन है रे वह?" घर के बाहर के खाली मैदान में खाट पर बैठे दर्भा सुब्बय्या जी ने प्रश्न किया।

"मैं हूँ बाबू जी! मुसलाय! सीतम्मा जी के बच्चों को बुलाने आया हूँ।"

"ओह, तुम हो मुसलाय! इधर आओ तो! ···उनके बच्चे अभी अभी गए, राघवय्या जी के बच्चों के साथ! अब बस पहुँचते ही होंगे। बैठो। मेरे बायें पैर की हड्डी में बड़ी चोट लगी है! इतना दर्द हो रहा है कि क्या कहूँ? बाप रे बाप! भगवान मुझे ज़िन्दा नहीं रखना चाहता!···हूँ!! हूँ!!!"

"पैर बहुत सूज गया है बाबूजी! चोट कैसे लगी?"

"सीढ़ियों से उतरते हुए पैर फिसल गया! हे भगवान! कौन-सा पाप मैंने किया? ज़रा देखो तो मुसलाय!···सुनती हो? क्या कर रही हो? तेल का डिब्बा तो इधर लाना!"

"हाँ, हाँ, सुन रही हूँ! चिल्लाते क्यों हो!···ये मर्द हैं कि बस हर छोटी-सी बात के लिए आसमान सिर पर उठा लेते हैं! अड़ोस-पड़ोस के लोग सुनेंगे, तो क्या कहेंगे, ज़रा इसका भी तो ख्याल रखना चाहिए!···मैं रसोई के काम में लगी थी।" खाली हाथ तो बैठे नहीं!······यह कौन?"

"कोई भी हो! मैं तो यहाँ दर्द से मरा जा रहा हूँ, पर तुम्हें इसकी परवाह ही नहीं। तिस पर चुप रहने का सबक सिखाने चली हो। तेल का डिब्बा वहाँ रख दो और जाओ अपना काम करो! रसोई करके मुझ पर कोई एहसान तो नहीं कर रही हो।"

"एहसान तो आप कर रहे हैं, दिन-भर घर में बैठे-बैठे!"

"बकवास बन्द कर अपना काम करो।······देखो मुसलाय! तेल से ज़रा पैर की मालिश आहिस्ता-आहिस्ता करना!······ओह! भगवान रामचन्द्र जी! तुम कहाँ हो?"

"आजकल तो हर किसी को अपनी-अपनी तकलीफ़ का ही ख्याल रहता है। ज़माना बेढंगा है, सरकार!"

"हाँ! तुम ठीक कहते हो। आजकल कोई मोटा-तगड़ा आदमी ही नहीं दीखता। हर कोई हड्डी का ढाँचा-सा दीखता है। लोगों में सुस्ती बहुत छा गई है। हर घर में बीमारी पलती है। इसीलिए तो डाक्टरों का बोल-बाला हो गया है। हमारे दादा जी के ज़माने में लोग इतना चावल खाते थे, इतना दूध-दही पीते थे कि उसमें से एक चौथाई भी आज का इन्सान खा-पी नहीं सकता! टोकरी भर के गारेलु[1] एक मिनट में उड़ा जाते थे। हमारे गाँव के विष्णु मन्दिर के

---

[1] आन्ध्र का उड़द का बनाया पकवान।

पास जो पत्थर का रथ पड़ा हुआ है, उसे वे लोग अपनी एक भुजा के सहारे हिला देते थे, और उसे मोटर-गाड़ी की तरह दौड़ाते थे।…ओह, ज़रा धीरे-धीरे मालिश करना!……अभी कलियुग का अन्त होने को है। अन्यथा ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती !"

"जब से धान की कटाई हुई, तब से आज तक कोई मज़दूरी मिली ही नहीं। हमारे तो मरने की नौबत आ गई है, सरकार !"

"मैं भी वही कह रहा था ! भगवान का जन्म वसन्त देव के रूप में होने वाला है। राक्षसी प्रवृत्ति के आदमियों का अन्त हो जाएगा। कृतयुग का प्रारम्भ होगा !"

"हमारी बस्ती में ऐसा कोई घर नहीं, जहाँ चूल्हा जलता दीखे। लोग दाने-दाने को मुहताज हो गए हैं बाबू जी !"

"एक तूफ़ान आएगा ! लोगों का सर्वनाश हो जाएगा ! राक्षसों का संहार ! शंकर जी के दर्शन, धर्म परायणता का साक्षात्कार होने का समय आ गया।"

"रात बीतती जा रही है, सरकार ! कल सवेरे से हम दोनों ने कुछ खाया-पिया नहीं, भूख बहुत लग रही है।"

"हाँ ! हाँ !! रात बहुत बीत गई है। अब छोड़ दे न, मालिश। हाँ, देखना, तुम्हारे हाथों में जो तेल लगा हुआ है, उससे पैंदे को ज़रा रगड़ देना। हाँ, बस !……सुनती हो। गरम पानी तैयार है कि नहीं ?"

"रामय्या जी से सवेरे चार आना पैसा माँगा था। उन्होंने शाम को आने के लिए कहा, पर अभी तक वे घर नहीं आए। शायद देर से घर पहुँचेंगे। दया कीजिए बाबूजी ! कल से हमने कुछ खाया-पिया नहीं। कुछ खाने को दिला दीजिए।"

"अरे रे ! यह बात है ! पर, सच मानो, घर में कुछ नहीं है। अब मैं तुम्हारी मदद कैसे करूँ ? मैं आज सवेरे शेषय्या से एक रुपया उधार माँग कर लाया था, पर घी वाली ज़मीन-आसमान एक कर उसे ले गई। मैं अन्दर पूछ कर देखता हूँ। कोई चटनी-वटनी हो, तो ले जाना।……सुनती हो ?……"

"जब खाने को कुछ नहीं है, तो चटनी क्या चाटें बाबू जी ! अगर आप थोड़ा-सा चावल दिला देते, तो मेरा काम चल जाता !"

"चावल तो बहुत मँहगा हो गया है, और मिलना भी मुश्किल हो गया है ! हमारे अनाज का पातरा[१] अभी खुला नहीं। क्योंकि मैं इधर लँगड़ा बनकर बैठ गया हूँ ! लोगों से सप्ताह-भर से कह रहा हूँ, पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। कोई आदमी ही नहीं मिला ! हमारे घर में भी चावल की बड़ी तकलीफ़ हो रही है। अड़ोस-पड़ोस से उधार ले-लेकर काम चला रहे हैं। यह भी बड़ी मुसीबत है ! भगवान श्री रामचन्द्र जी की जय हो !……हाँ शायद रामय्याजी अब घर पहुँच ही गए होंगे। उन्हीं से जाकर मिल लो। हाँ, सुनो—कभी-कभी इधर आ जाया करो। भूलना नहीं।……भगवान रामचन्द्र जी की !……"

× × ×

रामय्या जी रात को बड़ी देर से घर लौटे।

"गरम पानी रख देना ! तौलिया दे देना। खाना भी जल्दी परोस देना !"—घर पहुँचते ही वह बड़ी झुँझलाहट से बोले। मानो अभी तक गाँव-भर के मामले सुलझाने में मशगूल रहे हों। उसी वक्त मुसलाय ने दबे पाँव वहाँ आकर दरवाजा खटखटाया।

"आपने साँझ को आने के लिए कहा था"—दरवाज़ा खुलने पर रामय्या जी को सामने देख मुसलाय ने कुछ डरते हुए धीमे से कहा।

"राम ! राम !! तू तो नाक में दम कर रहा है। इस वक्त तो चला जा ! कल मिल लेना—देखा जायगा ! इस वक्त मुझे क्यों परेशान कर रहा है ?"—रामय्या जी ने बड़ी नाराज़गी से कहा। मुसलाय रामय्या जी के घर से सीधे साहूकार चेंचय्या की दूकान के पास गया और वहाँ एक कौने में दबकर खड़ा हो गया। खाली मुँह से यों ही कुछ चबाते हुए-से !

"क्यों रे मुसलाय, तू तो बड़ा चंट आदमी निकला। तूने कहा था कि सवेरे आकर लकड़ी फाड़ दूँगा। पर दिखाई अब दे रहा है।" दूकान की चीज़ें इधर-उधर सँभालते और कनखियों से मुसलाय की तरफ देखते हुए साहूकार चेंचय्या ने कहा।

"इस यानादि जाति के लोग ही ऐसे हैं कि फाका करना मंजूर है, पर काम करना पसन्द नहीं करेंगे।"—गाँव के एक बड़े किसान के लड़के ने, जो तमाखू की रीढ़ बड़ी सावधानी से निकालकर चुरुट बना रहा था, मुसलाय की तरफ बड़ी लापरवाही से देखते हुए अपनी राय साहूकार को बता दी।

"आप भी कैसी बात कर रहे हैं साहूकार जी ? मैं गाँव से भाग थोड़े ही जाऊँगा ! कल मैं ज़रूर आपका काम कर दूँगा। मुट्ठी भर दाने के लिए मैं कोई भी काम करने के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ। आपका काम करने में तो मुझे बेहद खुशी होगी। कल मैं ज़रूर यहाँ आकर लकड़ी फाड़ दूँगा साहूकार जी।"

"मैं ज़माने से जानता हूँ, तुम लोगों पर यकीन करना निहायत बेवकूफ़ी है। अगर तुम लोगों की उम्मीद में बैठे रहें, तो हमारा कारोबार ही ठप्प हो जाए।……खैर, ज़रा बाहर के धान के बोरे अन्दर कोठी में रख देना !"

"अभी रखता हूँ सरकार !—पर आपकी बड़ी मेहरबानी हो, अगर आप पाव सेर चावल उधार दे दें। कल से हम दोनों ने कुछ छुआ तक नहीं है। पैसा मैं कल शाम तक चुका दूँगा।"

"मुसलाय बातें तो बहुत मीठी-मीठी कर रहा है। उधार चुका दे, न चुका दे भाड़ में जाय—!" किसान के लड़के ने चुरुट मुँह में रखते हुए कहा।

"हाँ, हाँ, तुम ठीक कह रहे हो। देखो, मुसलाय मुझे तो तुम पर तरस आता है, पर बात यह है कि मैंने आज का सारा हिसाब-किताब खतम कर दिया है और अभी-अभी भगवान को कपूर जला कर भेंट भी चढ़ा दी। अब तो उधार दे नहीं सकता। और फिर दूसरी बात यह भी है कि मुझे गाँव में बहुत-से लोगों से उधार का रुपया-पैसा मिलना बाकी रहता है। साहूकार पैसे के बिना रोज़गार भला क्या कर

---

[१] (भंडार)

सकता है ? यह तुम्हें मालूम नहीं। इस लेन-देन में मुनाफ़ा तो दूर रहा, उल्टे लोगों के सामने नाक रगड़नी पड़ती है। ख़ैर, रहने दो यह साहूकारी का पलड़ा। कल किसी वक्त चले आना। हम तुम गाँव छोड़कर तो भाग नहीं जायेंगे। क्यों ?"

"मुझ पर रहम कीजिए चेंचय्या जी ! जान निकली जा रही है।"

"तुम तो अपनी ही बात पर अड़े हो। मैं अधिक क्या कहूँ ? आधी रात कोई उधार माँगने का वक्त होता है ?......ए ! आखिर तुम धान के बोरे अन्दर पहुँचाओगे कि नहीं ? टुकुर-टुकुर क्या देख रहे हो ?"

"साहूकार जी ! मुझे तो रोना आ रहा है। आप नहीं जानते भूख की कितनी बड़ी लपटें मुझ में भभक रही हैं। कम से कम कुछ तो खाने को दे दीजिए !"

"यह लो तमाखू ! ....चेंचय्या जी ! उसके सामने गुड़ की थोड़ी-सी बुकनी फेंक दीजिए न ! बहुत रो रहा है !"

× × ×

"मैं पूछ रही हूँ, अभी तक तुम गए कहाँ थे ? क्या खाक छान रहे थे ? तुम्हें तो मालूम है, कल सवेरे से घर में चूल्हा नहीं जला। घूम-घामकर अब खाली हाथ लौट आए हो। इस तरह मुझे भूखी रखकर क्यों मारना चाहते हो ? मायके ही भेज दो। मैं बेमौत यहाँ मरना नहीं चाहती !"......मुसलाय को देखते ही शशिरेखा आग-बबूला हो गई !

"क्या बकवास कर रही है तू ? अन्दर आ जा !"—खाली हाथ लटकाए कुटिया के अन्दर जाते हुए मुसलाय ने जवाब दिया ।

"नहीं, मैं नहीं आऊँगी। मैं तो अपने मायके चली जाऊँगी।"

"मायके कैसे जायेगी ! मर्द के जीते जी बीवी कहीं मायके जा सकती है ? नखरे छोड़कर अन्दर चली आ !"

"अरे रे !! मेरी बाँह क्यों खींच रहे हो ?"

"अन्दर तो आ ! मैं सब कुछ बता दूँगा।"

"क्या बता दोगे ? घर में एक दाना भी नहीं है।......अरे रे !!! यह क्या कर रहे हो ?......रहने दो अपनी मुहब्बत !"

"रहने कैसे दूँ ?......इधर बैठ जा, मेरे सामने ।"

"मैं नहीं बैठूँगी ।"

"नहीं बैठेगी ?......हड्डी-पसली एक कर दूँगा तेरी !"

"ज़रूर कर दो ! अभी तो आधा मर ही चुकी हूँ 'भूख से' अगर मेरी मौत से तुम्हें खुशी हो तो अपनी वह इच्छा भी पूरी कर लेना ।"

"छीः ! छीः !! कैसी गन्दी बात कर रही है ! तू तो मेरे दिल की धड़कन है ! ख़ैर,......हमारे दिन अच्छे नहीं ! मैं लोगों का हरेक काम कर देता हूँ, लहू-पसीना एक करके भी। पर कोई एक दमड़ी तक नहीं देता ! मैं करूँ तो क्या ?......एक-दो दिन भूखे ही रहें तो क्या हुआ ? सब दिन एक-से नहीं गुज़रते ! जिन्दगी धूप-छाँह है ।"

"इस गाँव के लोग बड़े कंजूस हैं, किसी की मदद ही नहीं करते !"

"मदद की बात रहने दे। काम करता हूँ, तो उसके बदले में भी वे कुछ नहीं देते।......मैंने तुझसे कितनी बार कहा था कि ब्राह्मणों के यहाँ जाकर उनके घर का कुछ काम-काज अगर कर देती, तो कुछ न कुछ मिल ही जाता !"

"मैं उनके घर नहीं जाऊँगी। एक-एक लफ़्ज़ को खींचते हुए-से वे बात कहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता कि वे क्या कहते हैं !...अगर नारियल के पेड़ के पत्ते तुमने ला दिए होते, तो मैं चटाई वगैरह बना देती। पर तुमने मेरी बात पर गौर ही नहीं किया ।"

"जब मैं लोगों के बताए हर काम को कर देता हूँ, तो भी कुछ फ़ायदा नहीं होता। ऐसी हालत में चटाई के कारोबार से क्या होगा ? पर याद रखना, हमारे भी दिन लौटेंगे। ऊपर तो भगवान हैं ही ! यह सब वह देखता ही होगा ।"

"कल मुझे भी अपने साथ ले चलो। मैं भी काम की खोज करूँगी।"

"हाँ, हाँ,—ज़रूर !! दोनों साथ-साथ चलेंगे ! देख !......घर में कच्ची मछली है न ? वही सही ! ले आ ! दोनों खा लेंगे।"

"अरे रे—यह क्या कर रहे हो ? मेरे बाल तो छोड़ो ।......कोई देख लेगा—रहने दो अपना लाड़-प्यार !"

"सखि से अब कुछ कहना क्या है,
सखि मुझमें अब अपना क्या है ?"

अनुवादक : दण्डमूडि महीधर

●

साहित्य और कला की समान प्रेरणा—(पृष्ठ १४ का शेषांश)

'निश्चय जाओ, प्रिय धर्म कार्य में तुम्हारी बाधा नहीं बनूँगी। पर शीघ्र लौट कर आओ, कपोलों के विशेषक सूखने से पहले। कितनी महान और अद्भुत उक्ति है, और कितना संसार के साहित्य का वह प्रसंग असाधारण करुण क्योंकि वह प्रिय सुन्दरी का नन्द फिर नहीं लौटा, कभी नहीं, प्रव्रजित हो गया। सुन्दरी का वह रागांकन सूख गया, उसकी पृष्ठभूमि भी निष्प्राण हो गई, पर प्रिय नहीं लौटा !

इस प्रकार सामाजिक भूमि से उठने वाले मधुर प्रसंग बाल्मीकि से बाण, श्रीहर्ष तक के साहित्य में वैसी ही ऋद्धिमत्ता से रूपायित हुए हैं, जैसे मौर्यकाल से अद्यावधि की कला में अभिराम आकलित। साहित्य और कला समान अभिप्रायों से मुखरित होते हैं। उनका अन्योन्याश्रय, उनकी समान निष्ठा, समान कर्तृत्व का परिचायक है।

★

पंजाबी कविता के आठ वर्ष

अमृता प्रीतम

(१९४८ से १९५५)

सन् १९४७ में पंजाब का विभाजन हुआ। शारीरिक और मानसिक अत्याचारों को देख कर रोमांस और इख़लाक़ की कीमतें जैसे जड़ से हिल गईं। लोगों के बदन पर से ताज़े खून के दाग मिटने में नहीं आते थे। पंजाबी साहित्यकारों ने मानव के मानव में से डोलते हुए विश्वास को बचाने के लिए अपनी कला अर्पण कर दी।

सामाजिक चेतना

प्रेम की रँगीली कहानियाँ कहने वाले कवियों ने समय की उड़ती हुई धूल को देखा और उन्हें रँगीले स्वप्नों को पल भर में धूल में मिला देने वाले निज़ाम के प्रति रोष जागा :

पै कुठाली इश्क वाली
तड़प वदली वेग विच
हौली-हौली बन गया
मित्राँ दा गम लोकाँ दाँ गम।

"इश्क की कुठाली में पड़कर तड़प और तेज हो गई और धीरे-धीरे मित्रों का गम दुनिया का गम बन गया।"

यूँ तो यह कहानी तब से चल रही थी जब १९वीं सदी के मध्य में हृदयों की पीड़ा को पीकर स्वतन्त्र पंजाबियों ने अंग्रेज़ी सेना के आगे हथियार डाल दिए थे और आदर्शवाद, सुधारवाद, छायावाद जैसी राहों पर दिल को बहलाते हुए हमारे साहित्यकारों में सामाजिक चेतना सुलगती रही थी। लेकिन सन् १९४७ की आग ने चेतना की आग भी जला दी और अपनी प्रिया की ओर से आने वाले दूत का कदम चूमने वाले कवियों ने फाँसी को चूमने के गीत लिखे। प्रिया की लटों में उलझने वाले दिलों ने अनुभव किया कि अब उन्हें लटों में उलझने की बजाय सारे संसार की साँझी बाँहों में आना चाहिए।

मोहनसिंह उन कवियों में से हैं जिन्होंने व्यक्तिगत प्रेम की कीमतों को पुराना सिक्का कह कर छोड़ नहीं दिया, बल्कि उसमें समष्टिगत प्रेम की कीमतों को मिला कर उस सिक्के को समय की मर्यादा बना दिया :

आओ बुत छड के बुतखाना सजाइए साथियो
सोहणियाँ नूँ सोहणी दुनियाँ विच वसाइए साथियो।

"बुत को छोड़ कर आओ साथियो बुतखाना सजाएँ और रूप वालों को रूप की दुनिया में बसाएँ।"

पियारा सिंह सहराई ने मिलन गीतों के इन्तज़ार में विरहगीत रचे। बलबीर सिंह ने अपनी प्रिया के नयनों को अपनी दीप ज्योति बना कर कत्लगाहों के कठिन और उलझे हुए राहों की कहानी लिखी।

और इस तरह हमारे जिन कवियों ने समाज की गहरी चिनाब को अपनी मुहब्बत के सहारे पार किया है, वे ही हमारे साहित्य में जीवित हैं।

१९४७ से चल रहे साहित्य की कहानी मित्रों के गम से लोगों का गम बनाने की एक लम्बी कहानी है। इस कहानी में कई एक ऐसे पात्रों का ज़िक्र भी आया है जो कहानी की गठन में पूरे नहीं आ सकते थे, जिनका कहानी से सीधा कोई मेल नहीं था। समाजवाद के कई तजरबे कुछ उन लोगों ने भी किए जिनके मन में समय की ज़रूरत को एक रिवाज के रूप के पूरा करने का शौक तो था, लेकिन समाजवाद के प्याले में उनके रक्त की एक बूँद भी शामिल नहीं थी। इन अवसरवादी लेखकों की रचनाएँ आती रहीं और समय के एक ही झोंके से मिटती रहीं। इसमें इतना दोष हमारे लेखकों का नहीं, जितना हमारे आलोचकों का है। हमारे आलोचक नया धर्म-परिवर्तन करने वाले उस व्यक्ति की तरह हो गए जिसकी कट्टरता धार्मिक नेताओं को भी मात कर देती है। प्यार की कविताओं को जैसे एक बार ही सिंहासन से उतार दिया गया।

काव्य के तुकांत तुलना, अलंकार और रूप चित्रण को न केवल देखकर अनदेखा-सा कर दिया बल्कि मुहब्बत की हर बात को दुविधा कह कर अपमानित किया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि यदि किसी कवि को अपनी प्रेमिका के आँचल का वर्णन करना होता तो वह उस आँचल को पहले लाल रंग में डुबो लेता और हमारे आलोचक उसको प्रगतिवादी कह कर खुशी से स्वीकार कर लेते।

सच्ची कीमतें कभी मिट नहीं सकतीं। वक्ती बातें मिट जाती हैं और स्थायी रंग खिल उठते हैं। बावा बलवंत में बड़ी गहरी और सच्ची सामाजिक वेदना है। उसने जो कुछ भी लिखा है अपनी लेखनी को लाल स्याही में नहीं, बल्कि अपने रक्त में डुबो कर लिखा है।

समाजवाद जैसी तीखी कविता केवल बावा बलवंत ही लिख सकता है।

जन्म से पहले मेरे, एक ज्योतिषी कहता रहा
इसके हाथों से है महारानी की मौत
इस लई रानी दे राखे
उसदे गोले ते वज़ीर
उसदे कुत्ते
उसदे दारूगीर ते उसदे फ़क़ीर
जन्म दे दिन ही मेरे मारन नूँ आई
हट्ट बहीर
सैकड़े यमरूप तोपाँ गोलियाँ

फौजाँ दे नाल
बन के आए मेरा काल

"मेरे जन्म से पहले एक ज्योतिषी ने कहा था कि इसके हाथ से महारानी की मौत होगी। इसलिए रानी के रखवाले, उसके गुलाम और वज़ीर, उसके कुत्ते, उसके वैद्य और फ़कीर, यह सारी सेना मेरे जन्म के दिन ही मुझे मारने के लिए आ गई। यमरूप सैकड़ों तोपों, गोलियों और सेनाओं के रूप में मेरा काल बन कर आ गए। साजिशी लोहे की एक दीवार बनवाई और क्रोध की कड़ियों से अलग-अलग मुल्कों को घेरा गया और मुझे मिटाने के लिए षड्यन्त्र रचे गए।"

जहाँ बाबा बलवन्त में सच्ची वेदना है, यदि लोकवाणी का साथ भी उसके साथ होता तो वह निःसन्देह हमारा बहुत बड़ा और लोगों का प्रिय कवि होता। बहुत बार हिन्दी और उर्दू की मिली-जुली छाप उसकी लेखनी पर इस तरह पड़ जाती है कि उसमें से पंजाबी का मुख पहचाना नहीं जाता। हमारी मंडियों में गेहूँ और बाजरे की तरह रूप और प्रेम को बिकता हुआ देख कर प्यारा सिंह सहराई ने लिखा--

सुन्दरता दी हिक ग्रहणी
प्रीताँदे बुल खट्टे
बिकियाँ हीराँ विकन रंजेटे
जिंदगी मौहरा चट्टे देहियाँ गालनिआँ।
जिच्चर जीवन पंथ हनेरे
जिच्चर धरती तत्ती
किदाँ प्रीत करूँ बेल फुट्टे
लख सुगन्धिया मती। होनिया ढालनियाँ।

"सुन्दरता के सीने पर ग्रहण लगा हुआ है, प्रीत के ओंठ खट्टे हैं। हीरें बिक गईं, रांझे बिक रहे हैं। जिन्दगी विष पी रही है। शरीर गलाने पड़ते हैं। जब तक जिन्दगी के रास्ते अँधेरे हैं, जब तक धरती तप रही है, लाखों सुगन्धियाँ लेकर प्रीत की कोंपल कैसे फूट सकती है। हमें भाग्य का निर्माण करना होगा।"

इस तरह भाग्य को निर्माण करने की भावना लेकर न केवल सहराई बल्कि संतोख सिंह धीर भी एक बहुत अच्छा कवि हमारे साहित्य को इन वर्षों में प्राप्त हुआ है। संतोख सिंह धीर के पास सामाजिक वेदना के साथ-साथ लोक-गीतों जैसी सादी, प्यारी और मीठी भाषा है। बोलियों और बैंतों के छन्दों में धीर ने नए अर्थों को समो कर अपने लोगों को बहुत से गीत गाने के लिए दिए हैं। और सबसे अधिक उसकी लेखनी का चमत्कार इस बात में है कि आज के कमकरों के इतिहास में अपने देश की पुरातन सभ्यता और संस्कृति की परम्परा को इस तरह मिला दिया है कि कृष्ण, बुद्ध, नानक, गांधी, माओ और स्टालिन का वर्णन, मास्को और दिल्ली का जोड़, नील चिनाब और वोल्गा का चित्र केवल संतोख सिंह धीर की लेखनी में ही उचित रूप में जुड़ा हुआ मिल सकता है, क्योंकि उसने इन सब धागों को अपने दिल के करघे पर बुन कर दिखाया है।

हुंदीआँ ने सरदियाँ नित्त नेरिआँ दी कुख विच्चों
जागना है क्रान्ति ने हर किसे दी चुप विच्चों
सिरजना नवयुग दी होनी सरब साँझे दुख विच्चों

"अंधकार की कोख में से ही नित उषा जन्म लेती है। क्रांति आज की खामोशी से ही जगेगी। नवयुग का सृजन सबके साँझे दुःख में से होगा। आज मुझे जिंदगी की अमावस में से चाँद नज़र आते हैं। और मुझे अपनी शक्ति आज फौलाद जैसी प्रतीत होती है।"

कीमतों का फर्क है। पर वर्तमान के पृष्ठ को पुरातन इतिहास के साथ जोड़ना देवेन्द्र सत्यार्थी की कविता का भी एक स्वाभाविक अंग है। किसी सिनेमाघर के सामने खड़ी हुई आधुनिक युवती उन्हें शकुन्तला प्रतीत होती है जो किसी दुष्यन्त को खोज रही है। कॉफी हाउस की आवाजें कभी उनको रूई की पूनियाँ प्रतीत होती हैं और कभी गुँथी हुई वेणी जैसी।

प्रभजोत कौर के गीतों में सुलझी हुई सामाजिक रुचि आ रही है। हरनाम सिंह नाज़, गुरचरन सिंह रामपुरी, अजायब चित्रकार, सुरजीत रामपुरी, तेरासिंह चन्न, इन वर्षों में सम्मुख आए, हमारे ऐसे कवि हैं जिनकी सामाजिक चेतना के साथ काव्य-शक्ति भी बढ़ती जा रही है।

भाषा

पंजाबी साहित्य की रचना सदा से लोगों को नित व्यवहार में आने वाली भाषा में होती रही है।

कीकली, गीटे, गेंद और लुकाछिपी खेलती और झूला झूलती लड़कियाँ नित नए गीत गाती रही हैं। कपास चुनती, रूई वेलती, चर्खा कातती, चने पीसती और पानी भरती हुई युवतियाँ गीत रचती और गाती रही हैं। खेतों को पानी देते और फसलों को काटते समय हमारे युवक दिल की बातों को गीतों में गाते रहे हैं।

लोक-गीतों के उन लोक-कवियों के अलावा १३वीं सदी का कवि शेख फ़रीद, १५ वीं सदी का गुरु नानक, १६वीं सदी का शाह हुसैन, १७वीं सदी का सुल्तान बाहू, पीलू, हाफिज बर्खुर्दार, १८वीं सदी का बुल्हेशाह, वारिस शाह, हाशिम, १९वीं सदी का फ़ज़ल शाह आज तक हमारी साहित्यिक गोष्ठियों में ही नहीं, हमारे घर के आँगन में भी गाए जाते हैं।

सरल भाषा और वार्तालाप की शैली का हमारी कविता में बहुत गहरा स्थान है। इसलिए नए कवियों को जनता के दिलों में स्थान बनाने के लिए नई समस्याओं पर विचार करते हुए भी सरल और स्वाभाविक भाषा में पुरातन शैली का मिश्रण आवश्यक प्रतीत हुआ।

जैसे 'बीड़' शब्द के साथ हमारे लोगों का केवल प्यार ही नहीं मिला हुआ, एक भावना भी मिली हुई है। आज के कवि ने ईश्वरीय प्रेम की बजाय मानवीय प्रेम के लिए इस शब्द का प्रयोग करके लोगों का केवल प्यार ही प्राप्त नहीं किया बल्कि मानवीय स्नेह के लिए सत्कार भी पाया है।

कानी समेंदी सदा ही रही लिखदी
खूनी पत्तरे प्यार दी बीड़ वाले……

"समय की लेखनी प्यार की पुस्तक पर सदा ही खून के पृष्ठ लिखती रही है।"

पाठक को ऐसा लगता है जैसे 'बीड़' तो बहुत ऊँची वस्तु थी प्यार के योग्य, सत्कार के योग्य, समय की लेखनी ने इसके पृष्ठ खून से क्यों लिखे ? पढ़ने वाले के मन में केवल करुणा ही नहीं जागती, एक रोष भी छा जाता है । उस रोष को पैदा करने में 'बीड़' शब्द का जादू है । हमारी धार्मिक और पवित्र वाणी के साथ सम्बन्धित 'बीड़' शब्द से भावना का जो मेल है वही मेल मानवीय प्रेम को हमारी आँखों में ऊँचा और सच्चा बना देता है ।

इसी तरह जब जुल्फों की बात छिड़ती है लोगों के मन में एक रँगीला और नशीला वातावरण पैदा हो जाता है । आज का कवि जब जुल्फों को एक सुन्दर युवती की लटें कहने की बजाय धरती की जुल्फें कह कर बात करता है तो अपने पाठक के मन में वही रँगीला और नशीला वातावरण पैदा करते हुए सामाजिक बात को भी रोमांटिक बात की तरह रसीली और जोरदार बना लेता है ।

सजनी, सेज, शराब और सुराही को पुनर्जन्म देने वाला कवि धनीराम चात्रिक है……

सजनी सेज शराब सुराही
पुनर जन्म विच आए
रिंदाँ दी महफल विच बह गए
सुरगाँ दे दीवाने

"सजनी, सेज, शराब और सुराही पुनर्जन्म में आ गए हैं और स्वर्ग के दीवाने रिंदों की महफिल में बैठ गए हैं।"

शब्दों की पुरातनता और अर्थ की नवीनता लिए हुए मोहन सिंह कहता है—

गगनां दी बुढी छत उत्ते
कद तीक चित्र तूं बाहेंगा
आ जुल्फ सँवारिए धरती दी
आ गल करिए कोई नेड़े दी

"गगन की बूढ़ी छत पर कब तक चित्र लिखते रहेंगे । आओ धरती की जुल्फें सँवारें और कोई निकट की बात करें ।"

और फिर हीर और राँझा की प्यार की कहानी में से आज मोहनसिंह नए अर्थ खोज निकालता है । वह हीर को मानवता, और राँझे को मानव, खेड़े को ज़ालिम और कैदो को लोग-दुशमन कहता है ।

जे राँझा एँ तो झंग धिया
जे हीर एँ तखत हज़ारा गा
एथे थां ना सोभे कैदोआं दी
एथे थां ना रंग पुर खेड़े दी

"यदि तू राँझा है तो झंग शहर का ध्यान कर और यदि तू हीर है तो तख़्त हजारे के गीत गा । यहाँ ना कैदो के लिए ना रंगपुर खेड़े के लिए कोई स्थान है ।"

एक साधारण मटकी के टूटने पर दूध के बिखर जाने में वह जागृति का नया भाव पैदा करता है ।

चिट्टे चानन दा दुध डुला
ते मटकी भजी हनेरे दी……

"अँधेरे की मटकी टूट गई है और सफेद प्रकाश का दूध बिखर गया है । रात की बातों को छोड़ नये सवेरे की बात कर ।"

इसी तरह 'दारू' (शराब) को वह नये भाव में यूँ कहता है—

दगी कुन्दन वांग देह मज़दूर दी
चमकी दारू वांग मुड़ किरती दी अख

"मज़दूर की देह कुन्दन की तरह चमकने लगी और कमकर की आँख फिर शराब की तरह दमकने लगी ।"

प्रेमी के 'घर' को समाज का नया रूप देते हुए मोहन सिंह लिखता है—

दस्तक मैं तेरी सुन लई है, रता दोस्ता उडीक ।
घर नूं मैं तेरे वास्ते कुझ तां सजा लवां ॥

"तुम्हारा द्वार खटखटाना मैंने सुन लिया है, मेरे मित्र, जरा प्रतीक्षा करो । मैं तुम्हारे लिए अपने घर 'अपने समाज' को कुछ तो सजा लूँ ।"

बाबर के आक्रमण के समय लालो बढ़ई को सम्बोधन करते हुए गुरु नानक के लिखे हुए खून के सोहले से हमारा दर्द जुड़ा हुआ है । आज के रक्त भरे सामाजिक जीवन के लिए वैसा ही दर्द पैदा करने के लिए गोपाल सिंह ने आज के श्रोता को भी लालो कहकर सम्बोधन किया है—

पाप दी जंज लै चढ़े चुगत्ते
लाईहिंद परनाए वे लालो
मानुखता है कोही कसाईयाँ
डकरे कर-कर खाए वे लालो
इक दर उड़दी ऐश महल्लां
इक दर उठदी हाए वे लालो

"हे लालो ! अन्यायी पाप की बरात लेकर चढ़े और उन्होंने हिंद रूपी दुलहन को घेर लिया । कसाइयों ने मानवता के टुकड़े-टुकड़े कर दिए हैं । एक ओर महलों में विलास छाया हुआ है, दूसरी ओर घरों में से हाय की ध्वनि आ रही है ।"

रचना

हमारे लोक-गीत हमारे साहित्य का बहुत बड़ा अंग हैं । इसलिए लोक-साहित्य के काव्य रूप का आधुनिक साहित्य की काव्य-रचना से बड़ा सम्बन्ध है ।

रचना पक्ष में नवीन साहित्य ने नए तजरबे किए हैं । इसकी आवश्यकता भी है । फिर भी पुराने छन्दों से हमारे लोगों के भाव इतने जुड़े हुए हैं कि जिन हमारे नए कवियों ने पुराने छन्दों में नई बात कहने का प्रयत्न किया है वे बड़े लोकप्रिय हुए हैं ।

अतुकान्त कविता लिखने का तजरबा पंजाबी में ज्यादा सफल नहीं हुआ । ग्राम और कस्बों में इस प्रकार की कविता के लोकप्रिय न होने के दो कारण हैं, पहला यह कि इसके साथ लोगों की गाने की रुचि पूरी नहीं होती । दूसरा कारण यह है कि ग्रामों में हमारे लोगों को पुस्तक पढ़कर नहीं बल्कि जबानी सुनने और सुनाने का शौक है और कविता को कण्ठ करने के लिए तुकान्त ही सहायक हो सकता है ।

शहरों में पुस्तक पाठ में रुचि रखने वाले लोगों में अतुकान्त कविता के अप्रसिद्ध होने का बड़ा कारण यह है कि बहुत से लोगों ने इस तरह की कविता को भाव के बल पर नहीं बल्कि मेहनत से बचने के लिए एक उपाय के रूप में इस्तेमाल किया है। इस प्रकार की कविता रचने वाले पुराने कवियों में से यदि किसी को सफल कवि कहा जा सकता है तो वह केवल पूर्णसिंह हैं जिनके विचारों का तेज प्रवाह भाषा के बन्धन से निकल जाता है, पर अपने पाठक को किनारे पर नहीं खड़ा छोड़ जाता, बल्कि अपने भावावेग के साथ बहा ले जाता है।

इन आठ वर्षों में, इस प्रकार की कविता लिख कर यदि किसी को लोकप्रियता मिली है तो वह कवि बलबीर सिंह हैं। हालाँकि इस कवि की सफलता का कारण वह नहीं जो पूर्ण सिंह का था। इस कवि की सफलता का राज़ इसकी वर्णन-शैली है जो इतनी नवीन और रूप चित्रों से भरी हुई है कि पाठक को भले ही कई बार कविता पढ़ने के उपरान्त दो पंक्तियाँ भी याद न रहें लेकिन हर बार कविता पढ़ते समय उसे एक सन्तोष-सा अनुभव होता है।

जैसे अतुकान्त कविता के बारे में कहा जा सकता है कि प्रयोग सफल हो सकता है यदि कोई हाथ इसके काबिल हो। इसी तरह पुराने छन्दों के बारे में कहा जा सकता है कि वारस के बैंत को आज के दो सौ साल के बदले हुए सामाजिक वातावरण में भी सफलता से व्यवहार में लाया जा सकता है, यदि किसी के पास कहने को कोई बात हो और उसकी वर्णन-शैली इतनी नवीन हो कि छन्द की पुरातनता उस पर छा न जाए, बल्कि परिचित संगत बन कर उसकी सहायक हो।

कविता में रूप चित्र निर्माण करने की हमारी एक परम्परा चली आ रही है। १२वीं शताब्दी में शेख फ़रीद प्रिया के गले में पड़ी हुई बाहों को वर्णन करने के लिए एक चित्र पेश करता है—

“कार्तिक के महीने में कूंजें, चैत के महीने में जंगल की आग, सावन में बिजलियाँ और शीत काल में प्यारे की गलबहियाँ शोभा देती हैं।”

आकाश का लँहगा और धरती की किनारी लगाने की हमारी परम्परा आज तक कायम है। मोहन सिंह लिखता है—

चाँद का डोला आधे आसमान में है
पारात तारों से भरी हुई है.
पूरब की ग्वालिन दूध बिलोने बैठी है,
छींटे (किरणें) दूर दूर तक उड़ते हैं।
आकाश प्रकाश से भर गया है। सुवर्ण सवेरा हो गया है
वातावरण और भी शान्त हो गया है, शाम और गहरी हो गई है।
सूरज किरणों का आखिरी मेला मुगलकालीन खँडहर पर जुड़ा हुआ है।
धरती से सुगंध उठी। उन खेतों में से, जिन में अभी-अभी हल चलाया गया है, जिन्दगी के अनेकों राज़ों में से प्रीत का एक राज़ मिल गया है।

ईश्वर चित्रकार अपनी कविता में बड़े सुन्दर रूप-चित्र प्रस्तुत करता है। आम तौर पर वह गज़ल लिखता है। गज़ल पंजाबी की परम्परा नहीं है। पाँच-सात गिनती की गज़लों को छोड़कर हमारे पास कोई ऐसी गज़ल नहीं है जो उर्दू गज़लों के मुकाबले में रखी जा सके। ईश्वर चित्रकार के अच्छा कवि होने में गज़ल का हाथ नहीं बल्कि यह उसके शब्द-चित्र हैं जिनकी सूक्ष्मता और नवीनता पर उसको मान हो सकता है।

“दिल की गहराइयों में उसकी छाया इस तरह पड़ती है जैसे अमृत के भरे सरोवर में हरि मंदिर की छाया। मेरी हर प्रतीक्षा में तेरी याद इस तरह सहारा देती रही जैसे अग्नि की जिह्वा पर पानी की बूँद बूँद पड़े। तेरी प्रतीक्षा में मेरी कल्पना इस तरह कुण्ठित हो गई है जैसे कोई तरंग मचल कर फिर एक ही स्थान पर खड़ी रहे।”

बलबीर सिंह की सारी रचना का आधार उसके रूप चित्र हैं, फूलों की तरह ताज़े, सुगन्ध की तरह सूक्ष्म, पर सामाजिक चेतना की सान पर चढ़े हुए तीखे और तरुण—

“आज मेरी भावनाओं में से कौन गुज़र रहा है कि मेरे विचारों के कँगूरों पर सैकड़ों दीप जल रहे हैं।

हल की नोक बंजर धरती के स्वप्नों को जगा रही है, फूलों की सुगन्धि से रात की वेणी खुल रही है।

झोंपड़ियों में बचपन इस तरह है जैसे पतझड़ में कोई सूखा हुआ पीला फूल।

ऐ रात, तेरी आयु युगों लम्बी हो, और तेरे सुगन्धित बालों की वेणी इसी तरह खुली रहे।

कोई मेरे सुपनों में आ रहा है।

और सुपनों के नाजुक कदम अँधेरे की मखमली राह पर डगमगा रहे हैं।

ऐ रात, तुम्हारे कंधों से चाँदनी का दुपट्टा खिसक गया है, उसे यूँ ही रहने दे।

और जिन्दगी अपने पंखों को समेट कर इस तरह बैठ गई है जैसे पक्षी अपने नीड़ में आराम कर रहा हो।”

आज की पंजाबी कविता के बारे में यह कहा जा सकता है कि हमारी कविता में उस क्षितिज को स्पर्श करने की भावना है जहाँ सामाजिक चेतना की धरती और काव्य सुन्दरता का आकाश एक दूसरे से मिलते हुए से दिखते हैं।

●

“अग्राह्याः कर्म कालेषु कर्षका राजपुरुषाश्च”

कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण, ३ अध्याय ११

खेत में काम करने वाले किसानों और ड्यूटी पर तैनात राजकर्मचारियों को गिरफ़्तार नहीं करना चाहिए।

अधूरे प्रारम्भ

माखनलाल चतुर्वेदी

कितने प्रारम्भ अधूरे रह गये ?

मेरा 'कभी-कभी' जब जागता है, मेरी निराशा को सुला देता है।

उस समय ऐसा लगता है मानो प्रभु जाग उठे।

उस समय ऐसा लगता है, मानो अन्तर का अन्धकार, वाणी की गंगधार पर, प्रकाश बनकर प्रतिबिम्बित हो उठा है, उस समय ऐसा लगता है, मानो वाणी ने अपने आवरण फेंक दिये हैं, वह समर्पण-शीला हो उठी है। उस समय कोटि-कोटि इच्छाएँ अपने रक्त से सुहाग लिखती हैं, और अर्ध-नग्ना-साधना अपनी दोष-हीनता से विदुर-वधू होकर, अपने प्रलय-वीणा के वादक को केले फेंक-फेंक कर, केले के छिलके खिलाती दीख पड़ती है।

× × × ×

हाँ, तो मेरा "कभी-कभी" जब जागता है तब मानो वह प्रारम्भों में प्राण देने के लिये, किन्तु केवल प्रारम्भों में ! इरादों की अस्थि-ढेरियाँ, कितनी पड़ी रह गईं, अधूरापन बन कर !

मानो यह कहती हो प्रकृति, कि 'पूर्णता' सबके बूते का रोग नहीं है !

मानो पूर्णता, अल्पता के अव्यवस्थित संग्रह का लेखा-जोखा हो। मानो पूर्णता नाम की कोई वस्तु ही न हो। जहाँ प्रारम्भ किया, वहाँ श्रीगणेश, जहाँ जूड़ा डाल दिया, वहाँ पूर्णता !

किन्तु प्रभु की अव्यवस्था में भी, कितनी सुन्दर व्यवस्था है !

जब क्षण, इच्छाओं का बलिदान माँगता हो, और जब प्रभु, दोष-हीनों को माँग करे, जो सर्वस्व चढ़ा उठें, तब वह केवल बोलता नहीं है, वह भाग्य लिखना छोड़कर, स्वयं रचनाकार बन कर बैठ जाता है।

वह पूर्ण है, क्योंकि उसका प्रारम्भ शंकाओं से भरा हुआ नहीं, उसका सृजन थकावटों से बोझीला नहीं।

प्रतिभाहीन हम ! प्रभु के उन अनहोने निर्माणों को, जान ही उस दिन पाये जिस दिन हमने उनकी साँसों के अंगारे देखे।

चिता, मानो हमारे अस्तित्व की भाषा-टीका हो !

किन्तु टीका में, मूल काव्य का रस कहाँ ? वह तो साँसों के साथ उड़ जाता है।

अतः सूझों के डोरों को सूरज की किरनों के साथ बुनकर, जो चादर बना पाते हैं, वे स्पन्दन-शीला साँसों को, उनकी ताजगी के साथ, अपनी यादों में बाँध लेते हैं।

वे मानों उनमें से प्रत्येक साँस की सुगन्ध में, पूर्ण मानव का आभास पाते हैं।

बचपन, आँगन और चौपाल में से खेल-खेल की मस्ती में से उठे, अपराजिता स्नेह, भावना, मानो शरीर को देव-मन्दिर मान कर, उसकी एक ईंट भी टूटने नहीं देती, और मन मानो आराधना की वृत्तियों का संग्रहालय है, जिसके लिये साँसों को विज्ञापन नहीं देना होता। अपना कुछ न होते हुए भी जहाँ तक प्राण जाता है, वहाँ तक प्यार जाता है, जहाँ तक जागता हुआ सपना है, वहाँ तक सभी कुछ अपना है। प्यार वह, जिसे कोई सेनानी, कोई नायक, कोई सन्त भूल नहीं सका जिसे छोड़कर आगे न बढ़ सका, मानों वह प्राण के पौरुष-व्यापार का मूल धन था।

अपराध, यंत्रणा, कारागार, बेसमझी, बदनामी और विनाश का ताण्डव सबके बीच उन्हें एक ही वरदान प्राप्त है, वे प्राणों की वायु, सूरज की किरन और टूटी बैलगाड़ी की तरह धीरे-धीरे सरकती ऋतुओं में अपने प्रभु की अँगुलियों के दर्शन करते हैं। वे मानों राम की रामायण में भी, उपद्रव के क्षणों भरत का जीवन-दर्शन करने लगते हैं।

निश्चिंत वे, कितनी चिन्ताओं से घिरे हुए ! अपने अज्ञान के प्रदर्शन के प्रति सजग वे, कितने बीमारों को अपनी मसीहाई से मुक्ति प्रदान करते से 'स्वामी' वे, कितनी कठोर मजदूरी करते हुए कि जिसमें रूप, स्वाँग और आकार सब विलीन हो उठें।

मानो 'ज्ञानपीठत्व, धनवंतरित्व, और मजदूरी' का सम्मिलित पूजा-मय नाम, उनकी पहचान हो।

दुखियों के लोक की ओर बढ़े, मानो प्रभु का आशीर्वाद, प्यार के देश में, सिसकतों की ओर प्रगमनशील हुआ।

वे बढ़े, और उस दिशा में मानो प्रभु का आशीर्वाद उनके साथ बढ़ा।

और संकट मिला, मानो प्रभु मिल गये, परीक्षा-भवन के परीक्षक बन कर मानो दिन आ गया, उस सब के सिद्ध करने का, जिसका विभ्रम वेश ने, वाणी ने, व्यवहार ने, किंवदंतियों ने और अपने आत्म-संकीर्तकों ने फैला रखा था।

मानो 'नास्ति' के नीले आसमान पर, अस्ति के अक्षर ऊँचे पर उठकर, तारों की भाषा में लिखने का दिन आ गया।

तुकाराम ने कहा—"प्रभु ! मैंने अपनी मौत जीते-जी अपनी आँखों देखी।"

क्या मौत ?

ना, भस्म की ढेरी जैसे अन्धकार में से, सूरज की किरणों जैसा, वह उठा सोना बिखेरता जीवन।

भगवान आया ?

ना जी, वह मनुष्य आ रहा है।

●

पं० मदन मोहन मालवीय सम्बन्धी संस्मरण

इन्द्र विद्यावाचस्पति

मेरा ऐसा अनुभव है कि विशाल चित्र और महापुरुष समीप से उतने अच्छे नहीं दिखाई देते जितने दूर से । समीप से देखें तो दृश्यवस्तु के गुण और दोष स्थूल रूप में सामने आ जाते हैं । देखने वाले की दृष्टि अंग-प्रत्यंग पर इतनी फैल जाती है कि छोटे-से-छोटे दोष भी बड़े होकर सामने आ जाते हैं । इस कारण यथार्थ और अनुकूल सम्मति बनाने के लिए आलोचक को विशाल चित्रों अथवा महापुरुषों के इतना ही समीप जाना चाहिए कि उनका विस्तृत रूप दिखाई देता रहे ।

प्रायः महान पुरुषों की यह विशेषता होती है कि वह सामान्य व्यक्तियों को अपने अधिक समीप नहीं आने देते । वे लोग भक्तों और अनुयायियों से इतने घिरे रहते हैं कि सामान्य व्यक्ति को उन तक पहुँचने के लिए कई ड्योढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं । मेरे जैसे संकोचशील व्यक्ति के लिए ऐसे महापुरुषों के अत्यन्त समीप जाना असम्भव ही रहा है । मैं सदा कुछ दूरी से ही विशेष व्यक्तियों के चरित्र का अध्ययन करने के अपने शौक को पूरा करता रहा हूँ । मेरी इस प्रवृत्ति में जो दो-तीन अपवाद हुए हैं, उनमें से एक पं० मदन मोहन मालवीय जी थे । उनके कुछ समीप जाकर दूर रहना असम्भव ही था । उनके स्वभाव में एक विशेष प्रकार का चुम्बक का-सा आकर्षण था जो पास आने वालों को अपनी ओर खींचता था । जो व्यक्ति एक बार उनके समीप आ जाता था, वह उनकी सब विशेषताओं से परिचित हो जाता था । यही कारण है कि श्रद्धेय मालवीय जी के सम्बन्ध में मेरे जितने संस्मरण हैं, उनमें व्यक्तिगत सम्पर्क का अंश अधिक है ।

पं मदन मोहन मालवीय

२

इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि मालवीय जी के समीप पहुँचने में मुझे कभी कठिनाई नहीं हुई । जहाँ अपने सार्वजनिक जीवन के तीस वर्षों में मैंने देश के अनेक नेताओं से भेंट करने का अवसर दस-बारह बार प्राप्त किया होगा, वहाँ मालवीय जी से भेंट करने के अवसरों की संख्या सौ से कम न होगी । इस बड़ी संख्या का श्रेय मुझे नहीं है, क्योंकि मैं तो सदा ही मिलने-जुलने में संकोचशील रहा हूँ । परन्तु श्रद्धेय मालवीय जी का व्यवहार ही इतना मधुर और आकर्षक था कि वह दूरी को रहने ही नहीं देता था । 'यथा राजा तथा प्रजा' जैसा मालिक होता है वैसे ही उसके मन्त्री बन जाते हैं । बड़े आदमियों के निजी मन्त्री प्रायः बहुत रुखे होते हैं । वह सामान्य दर्शकों और मिलने-जुलने वालों से अपने स्वामी की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं । इस प्रसंग में हमारे कुछ चोटी के नेताओं के सम्मानित प्राइवेट सेक्रेटरियों के कई नाम याद आ रहे हैं । परन्तु यहाँ उनका उल्लेख करना अनावश्यक भी है और अनुचित भी, क्योंकि उन्हें जो रुखाई बरतनी पड़ती थी, उसे वह अपने कर्त्तव्य का हिस्सा ही समझते थे । यहाँ तो इतना ही बतलाना अभीष्ट है कि मालवीय जी के प्राइवेट सेक्रेटरी प्रायः उनकी सामाजिकता से प्रभावित रहते थे । मालवीय जी महाराज के द्वार सदा खुले रहते थे । प्रायः उनके कमरे के बाहर कोई प्रतीक्षा करने की ड्योढ़ी भी नहीं होती थी । उनकी रुग्णावस्था को छोड़ कर शेष दशाओं में मैंने दरवाज़े पर कभी रोकटोक का अनुभव नहीं किया । यह असाधारण सामाजिकता श्री मालवीय जी के चरित्र की सबसे पहली और बड़ी विशेषता थी ।

३

सबसे पहली बार मालवीय जी के दर्शन मैंने शिमले में किए । भाई हरिश्चन्द्र जी और मैं एक वर्ष पूर्व ही स्नातक बने थे । हम दोनों भाई पूज्य पिता जी के साथ आर्य समाज शिमला के उत्सव पर गए । उन दिनों हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्य के लिए श्रद्धेय मालवीय जी

भी शिमले गए हुए थे और सनातन धर्म सभा के भवन में ठहरे हुए थे। पिता जी के साथ हम दोनों मालवीय जी से मिलने गए। जब हम लोग वहाँ पहुँचे तो मालवीय जी नाई से क्षौर करवा रहे थे। क्षौर भी करवाते जाते थे और बीच-बीच में नाई को हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता और उसके मूल सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जानकारी भी देते जाते थे। बीच ही में हम लोग पहुँच गए। बातचीत का सिलसिला और लम्बा हो गया। परिणाम यह हुआ कि जो क्षौर दस मिनटों में समाप्त हो जाना चाहिए था, वह लगभग १ घण्टे तक खिंच गया। उस समय प्रातःकाल के नौ बजे होंगे, पंडित जी के प्राइवेट सेक्रेटरी ने कुछ हिचकिचाते हुए घड़ी दिखा कर निवेदन किया कि महाराज, आपने नौ बजे का समय बीकानेर के महाराज को मिलने के लिए दिया हुआ है, वह आपकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे और आपने अभी स्नान भी नहीं किया। पंडित जी पर इस याददिहानी का कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने उत्तर दिया, "भाई देखते नहीं हो कि मैं इस (नाई की ओर इशारा करके) भाई को विश्वविद्यालय की आवश्यकता समझा रहा हूँ। क्या यह काम कुछ कम ज़रूरी है? महाराज से कहला भेजो कि मैं उनसे इस समय नहीं मिल सकूँगा। कल शाम को मिलूँगा।"

प्राइवेट सेक्रेटरी मालवीय जी के समय विभाग में ऐसे परिवर्तनों का अभ्यस्त था। चुपचाप चला गया और बीकानेर नरेश के पास समय परिवर्तन की चिट्ठी लिख दी। प्रतीत होता है कि नरेश लोग भी उस तपस्वी ब्राह्मण के भेजे हुए ऐसे, साधारण लोकप्रथा के विरुद्ध, आदेशों के अभ्यस्त थे, इस कारण कोई गड़बड़ नहीं हुई और मालवीय जी की नाई से और हम लोगों से इकट्ठी बातचीत लगभग दस बजे तक जारी रही। बातचीत का विषय वही था—'हिन्दू विश्वविद्यालय।'

४

ऊपर दिए हुए संस्मरण के साथ मिलती हुई एक और घटना मुझे याद आ गई उसे भी यहीं लिख देता हूँ। यह घटना शायद पहली घटना से २२ वर्ष पीछे की है। मैं दिल्ली की जिला कांग्रेस कमेटी का प्रधान था। मालवीय जी महाराज असेम्बली के अधिवेशन में भाग लेने के लिए दिल्ली आए हुए थे और नई दिल्ली के एक बंगले में ठहरे हुए थे। दो दिन पीछे कांग्रेस की ओर से गांधी मैदान में एक बड़ी सभा होने वाली थी। नेताओं को उसका निमन्त्रण देने के लिए मैं प्रातःकाल ही घर से चल दिया और सूर्योदय के समय नई दिल्ली जा पहुँचा। जनवरी का महीना था। खूब कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी।

पहले मैं माननीय पं० मोतीलाल नेहरू के बंगले पर पहुँचा। मैं उस उषःकाल में नेहरू जी के द्वार पर पहुँचता हुआ बहुत ही डर रहा था। मशहूर था कि वह कांग्रेस के नेता हो जाने पर भी विलायती ढंग से रहते हैं। मुझे डर था कि मैं कहीं ऐसे समय पर न पहुँच जाऊँ जब मुझे उपाध्याय जी से यह उत्तर मिले कि 'अभी पंडित जी सो रहे हैं'। मुझे संतोषमिश्रित आश्चर्य हुआ जब बाहर के कमरे में बैठे हुए उपाध्याय जी ने मुझे बैठने का इशारा करते हुए कहा, कि आप बड़े अच्छे समय पर आ गए,। पंडित जी डाक का काम समाप्त करके बाहर जाने वाले ही थे, मैं अभी उन्हें खबर देता हूँ कि आप आए हैं।"

पाठक यह तो समझ ही गए होंगे कि उपाध्याय जी बड़े नेहरू जी के प्राइवेट सेक्रेटरी थे। वह पं० मोतीलाल जी के साथ छाया की तरह रहते थे। उन्हें यह भी मालूम था कि पं० मोतीलाल जी का मुझ पर ऐसा ही प्रेम है जैसा पिता का पुत्र पर होता है।

उपाध्याय जी ने अन्दर जाकर खबर दी तो मुझे उसी समय बुला लिया गया। अन्दर जाकर देखा तो पंडित जी बाहर जाने के लिए बिलकुल तैयार बैठे थे और उनके सामने मेज पर लिखे हुए खतों का एक ढेर रखा हुआ था। उस ढेर को देख कर मैंने अनुमान लगाया कि पंडित जी कम-से-कम एक घण्टे से चिट्ठियाँ लिख रहे होंगे।

बातचीत में शायद दो ही मिनट लगे। मैंने सभा का निमन्त्रण दिया, पंडित जी ने उसे स्वीकार कर लिया और बस। मैंने खड़े होकर नमस्कार किया और बाहर चला आया।

५

वहाँ से मैं मालवीय जी महाराज के बंगले पर पहुँचा। नेहरू जी के बंगले की घटना का उल्लेख मैंने इस उद्देश्य से किया है कि मालवीय जी के बंगले पर जो कुछ हुआ उससे तुलना की जा सके। जब मैं मालवीय जी के बंगले पर पहुँचा तब आप बंगले के बरामदे में खड़े संस्कृत पाठशाला के एक विद्यार्थी से बातें कर रहे थे। कंधों पर शाल पड़ा हुआ था, परन्तु सिर सर्दी के लिए खुला था। बाहर कड़ाके की ठंड पड़ रही थी। उसमें खड़े हुए पंडित जी उस झगड़ालू विद्यार्थी को यह समझा रहे थे कि अछूतों को ओम् नमः शिवाय मंत्र का दान करने में कोई पाप नहीं है। मेरे पहुँचने पर भी वह सिलसिला जारी रहा। इतना भेद अवश्य आ गया कि पहले जो बातें वह केवल उस विद्यार्थी से कर रहे थे वह दोनों से होने लगीं। लगभग आध घण्टे तक वह वाक् संघर्ष जारी रहा। पंडित जी का धैर्य और विद्यार्थी को समझा लेने का संकल्प तथा उस विद्यार्थी का उग्र हठ और न मान लेने का दृढ़ निश्चय दोनों ही आश्चर्य में डालने वाले थे। अन्त में विद्यार्थी परास्त हुआ पर उसका पराजय युक्ति के कारण नहीं था अपितु सर्दी के कारण था। तपस्वी बुजुर्ग जिस सर्दी को अपने आन्तरिक उत्साह की गर्मी से सह रहा था वह विद्यार्थी उससे परास्त हो गया और बातचीत का सिलसिला बीच में ही छोड़ कर विदा हो गया। उसके जाने पर पंडित जी को ध्यान आया कि सर्दी है, अन्दर जा कर आपने मुझ से कहा, "भाई जरा बैठो, मैं सर्दी उतार लूँ।" यह कहकर आप रज़ाई में घुस गए और लगभग १५ मिनट तक गरमी लेने के पश्चात करवट बदल कर मेरी ओर देखा और कहा, 'बराबर तीन दिन से इस विद्यार्थी को मैं समझा रहा हूँ, परन्तु इसकी समझ में नहीं आता। प्रतीत होता है अभी और समझाना पड़ेगा।' मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि पंडित जी का न परास्त होने वाला आशावादी हृदय न सर्दी से परास्त हुआ न उस विद्यार्थी की ढिठाई से। उस समय मुझे वह दिन याद आ गया जब मैंने पहली बार पंडित जी के दर्शन किए थे। उस समय नाई को विश्वविद्यालय

की उपयोगिता समझाने की जिस प्रबल इच्छा ने आपको प्रेरित देखा था, आज २२ वर्ष पीछे उसी इच्छा शक्ति को उसी वेग से काम करता देख कर मेरा मस्तिष्क आदर से झुक गया ।

इस घटना से एक बात स्पष्ट हो जाती है, और वह ऐसी बात है जिसे प्रायः सारा भारतवर्ष जानता है । वह बात यह है कि कार्य करने का जो ढंग साधारण रूप से सर्वसामान्य समझा जाता है, श्रद्धेय मालवीय जी का ढंग उससे बिलकुल अलग था । माना जाता है कि बहुधन्धी व्यक्तियों को समय विभाग बनाना चाहिए और उसके अनुसार कार्य करना चाहिए । नेताओं को मिलने-जुलने का समय निश्चित रखना चाहिए ताकि अन्य कार्यों में विक्षेप न हो । यह सम्भव है कि पंडित जी के प्राइवेट सेक्रेटरी अपनी नोटबुक में समय विभाग और इंगेजमैंट जैसी रिवाजी चीज़ें नोट करके रखते हों, परन्तु उस तपस्वी ब्राह्मण का मानसिक बल उन सबको रौंदता हुआ चलता था । वह इतनी उग्रता से अनुभव करते थे कि जब हृदय काम करने लगता था, तब समय विभाग जैसी कृत्रिम वस्तु उसके रास्ते को नहीं रोक सकती थी । पंडित जी का मस्तिष्क बहुत ऊँचे दर्जे का था; वह अद्भुत वक्ता और अनथक परिश्रमी थे । परन्तु इन सबसे बढ़ कर उनकी यह विशेषता थी कि उनका हृदय स्त्रियों से भी अधिक भावुक था । जब हृदय किसी ओर लग जाता था तब कोई बाधा उनकी गति को नहीं रोक सकती थी । यही श्रद्धेय मालवीय जी के चमत्कारिक चरित्र का रहस्य था ।

५

मालवीय जी हिन्दी के महान वक्ता तो थे ही । उस समय के अंग्रेजी के तीन-चार भारतीय वक्ताओं में उनकी गिनती होती थी । पहले-पहल जब वे कांग्रेस के मंच पर आए उनकी आयु तीस साल के लगभग होगी । उनके पहले भाषण को सुन कर कांग्रेस के एक बुजुर्ग नेता ने उन्हें 'सिल्वर टंग आरेटर' रजत जिह्व वक्ता की उपाधि दी थी । उनके भाषण की बड़ी विशेषता यह थी कि वे श्रोताओं के अन्तःस्तल में प्रवेश करने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा देते थे । सब बातें ऐसे मीठे ढंग से कहते थे कि श्रोताओं के कानों में बिना किसी प्रतिरोध के घुस जाए । अप्रिय या खटकने वाली बात एक भी नहीं कहते थे । कोई अप्रिय बात कहनी ही पड़े तो उसे इतने पर्दों में लपेट कर कहते थे कि कोई कोना बाहर न रह जाए और बात चुभे बिना हृदय तक चली जाए । उनके भाषण में भाषा का प्रवाह सुरेन्द्रनाथ या विपिनचन्द्रपाल की तरह बाढ़ बन कर नहीं बहता था अपितु शीत ऋतु की भरी हुई गंगा के प्रवाह की तरह हलकी-सी गूँज करता हुआ अनवरत बहता था ।

मालवीय जी की व्याख्यान कुशलता पूर्ण रूप में उस समय प्रगट होती थी जब कभी उन्हें ऑल इन्डिया कांग्रेस कमेटी में महात्मा गांधी के कानून भंग सम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध करना पड़ता था । मालवीय जी और महात्मा जी का परस्पर भाइयों का सा स्नेह सम्बन्ध था । दोनों एक-दूसरे का आदर करते थे, प्रेम भी करते थे और अनेक मुख्य सिद्धान्तों पर एक-दूसरे से असहमत भी रहते थे । महात्मा जी के भाषण के पश्चात जब मालवीय जी उनके प्रस्ताव के विरोध में बोलने के लिए खड़े होते थे तो प्रायः प्रारम्भ में महात्मा जी के प्रति अपनी श्रद्धा और सत्याग्रह में अपनी आस्था प्रगट करते थे । इस कार्य में प्रायः आधा घण्टा व्यतीत हो जाता था उसके पश्चात श्रोता लोग एक "किन्तु" की प्रतीक्षा करने लगते थे । वह "किन्तु" उनकी वक्तृता के मार्ग का मोड़ होता था । उस किन्तु के पश्चात वे अपने भाषण के पूर्वार्द्ध का उत्तर देते थे और अन्त में महात्मा जी के प्रति श्रद्धा की भावना को दोहरा कर उनके प्रस्ताव का पूरा विरोध कर देते थे । ऐसे कुशल वक्ता को अपना पूरा अभिप्राय प्रगट करने के लिए अधिक समय लग जाए यह तो स्वाभाविक ही था । मालवीय जी प्रायः बहुत लम्बा बोलते थे, परन्तु आपका व्यक्तित्व इतना आकर्षक था, तथा भाषा और भाषणशैली इतनी सुन्दर थी कि कोई श्रोता थकने का नाम नहीं लेता था । बहस का अन्तिम परिणाम यह होता था कि महात्मा जी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता था । मालवीय जी की उत्कृष्ट देशभक्ति और उदारता का इससे बड़ा क्या प्रमाण हो सकता है कि प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने पर वे उसे शिरोधार्य कर लेते थे और सत्याग्रहियों की अगली पंक्ति में खड़े हो जाते थे । इस विरोध और स्वीकृति का रहस्य यह था कि मालवीय जी महाराज का मस्तिष्क नरम राजनीतिज्ञों की तरह दूरदर्शिता और सावधानी से पूर्ण था । परन्तु हृदय स्त्रियों और बच्चों से भी अधिक भावुक था । उसमें अनन्त सहानुभूति का निवास था । कई राजनीतिक तथा सामाजिक मन्तव्यों में पुरातन पद्धति के अनुयायी होते हुए भी कार्यक्षेत्र में वे आगे बढ़ने में युवकों को भी मात दे देते थे ।

६

यह बात प्रसिद्ध हो गई थी कि श्रद्धेय मालवीय जी विचारों में सनातन होते हुए भी क्रिया में सुधारक थे । यह उनकी सामान्य प्रवृत्ति थी कि वे यथासम्भव भूतकाल से सम्बद्ध रहने का यत्न करते थे । परन्तु जब अनुभव कर लेते थे कि पीछे रहना देश के लिए हानिकारक है तब तेजी से चलकर अगली पंक्ति में पहुँच जाते थे । इसी असाधारण विशेषता का परिणाम था कि वे रेल पकड़ने के लिए घर से प्रायः देर में चलते थे । परन्तु यह बात मैंने उन्हीं के मुँह से सुनी थी कि कभी उनकी गाड़ी नहीं छूटी । मालवीय जी महाराज के रेल पर देर-देर में पहुँचने के अनेक किस्से प्रसिद्ध हैं । उनमें से कुछ शायद अत्युक्तिपूर्ण भी हैं । मैं यहाँ केवल वही घटनाएँ लिखूँगा जो या तो मेरी स्वयं देखी हैं अथवा पण्डित जी की स्वयं अपनी जुबानी सुनाई हुई हैं ।

सन् १९२४ की बात है । वर्तमान युग में हिन्दू-मुस्लिम एकता की जन्म भूमि दिल्ली में साम्प्रदायिक उपद्रव की अग्नि प्रज्वलित हुई देख कर महात्मा गांधी और देश के अन्य नेता उसे बुझाने के लिए यहाँ एकत्रित हुए । उस समय मालवीय जी महाराज भी आए और बिड़ला मिल की सब्जीमण्डी वाली कोठी में ठहरे । सन् १९२४ में दिल्ली के हिन्दू-मुस्लिम झगड़े का केन्द्र सदर बाज़ार ही था । वह बाज़ार तीन-तीन हिस्सों में बँटा हुआ है । जहाँ बड़े-बड़े मुसलमान सौदागरों

की दुकानें थीं। उसके आगे पहाड़ी धीरज की बस्ती है जिसमें जाट, गूज़र, अहीर, माली आदि जातियों के लोगों की अधिकता है। पश्चिमी किनारे पर हिन्दूराव का बाड़ा है, जो मुस्लिम प्रधान था। अब भी कसावघर की समीपता के कारण वहाँ कसाइयों की आबादी बहुत अधिक है। आबादी की इस परिस्थिति के कारण शहर में थोड़ा सा भी साम्प्रदायिक विक्षोभ होने पर सदर बाज़ार में घरू युद्ध की भेरी बजने लगती थी, सन् १९२४ में भी ऐसा ही हुआ था।

एक दिन संध्या के समय सदर बाज़ार पहाड़ी धीरज की एक चौपाल में इलाके के प्रमुख हिन्दुओं की एक पंचायत बुलाई गई थी। उसमें मालवीय जी भी पधारे थे। शान्ति स्थापना के सम्बन्ध में विचार करते-करते बहुत देर हो गई, रात के लगभग नौ बज गए। मुझे मालूम था कि पण्डित जी साढ़े-नौ बजे की गाड़ी से बाहर जाने वाले हैं। मैंने उन्हें याद दिलाया कि समय हो रहा है, अब बातचीत समाप्त कीजिए, परन्तु पण्डित जी की तसल्ली अभी नहीं हुई थी। उन्होंने बातचीत का सिलसिला जारी रखा। सामान स्टेशन पर जा चुका था। सेक्रेटरी को आज्ञा थी कि वह रिज़र्व की हुई सीट पर बिस्तर बिछा छोड़े। इस कारण कुछ अटपटी बात होते हुए भी मुझे फिर याद दिलाना पड़ा कि गाड़ी का समय हो रहा है चलिए, इस समय सवा-नौ बज चुके हैं। पण्डित जी ने हाथ के इशारे से मुझे रोकते हुए बातचीत जारी रखी। जब साढ़े-नौ बज गए तब फिर एक बार घड़ी सामने रख कर पण्डित जी को याद दिलाना पड़ा, इसका कुछ असर हुआ और पण्डित जी बातचीत का सिलसिला समाप्त करके खड़े हो गए। मोटर में बैठ कर पण्डित जी ने मुझे इन शब्दों में आश्वासन दिया। आपने कहा कि यह समझना गलत है कि केवल हम ही लेट होते हैं क्योंकि ट्रेनें भी प्रायः लेट होती हैं। आपने अपने अनुभव के आधार पर कहा कि ट्रेन मनुष्य से भी अधिक लेट होती है। यही कारण है कि देर होने के कारण मेरी गाड़ी शायद ही कभी छूटी हो। यदि कभी छूट भी गई तो मेरा काम नहीं रुका। इस कथन की पुष्टि में पण्डित जी ने अपनी एक अनुभूत घटना सुनाई जो इतिहास का अंग होने के योग्य है, इसलिए उस में यहाँ दोहराता हूँ।

७

वह घटना तब हुई थी, जब भारत के वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड थे। पण्डित जी को एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से ऐसी जगह जाना पड़ा, जहाँ इलाहाबाद से रेल द्वारा तीन-चार घण्टों में पहुँचा जा सकता था। उसी दिन रात के समय पण्डित जी का इलाहाबाद वापस पहुँचना अत्यन्त आवश्यक था। शायद वह किसी सार्वजनिक सभा में सभापतित्व करने वाले थे। उस जगह का कार्य समाप्त करके इलाहाबाद वापस जाने के लिए जब पण्डित जी स्टेशन पर पहुँचे तो मालूम हुआ कि जिस गाड़ी से इलाहाबाद जाना चाहिए था, वह निकल चुकी थी। यूँ पण्डित जी के सुदीर्घ जीवन में यह घटना अपवाद ही समझनी चाहिए, क्योंकि स्टेशन पर देर से पहुँचने पर भी गाड़ी उन्हें मिल ही जाती थी। उस दिन मानो अनहोनी हो गई। वह लेट हो गए, गाड़ी लेट नहीं हुई। परन्तु पण्डित जी आशा का सूत्र छोड़ने वाले नहीं थे। उन्होंने स्टेशन मास्टर से दर्याफ्त किया कि क्या और कोई गाड़ी, फिर चाहे वह मालगाड़ी ही हो, इलाहाबाद के लिए मिल सकती है या नहीं। स्टेशनमास्टर ने उत्तर दिया कि हाँ, मालगाड़ी आने वाली थी, परन्तु वह दूसरे स्टेशन पर रुक गई है, क्योंकि वाइसराय की स्पेशल यहाँ से गुजरने वाली है। इससे भी निराश न होकर पण्डित जी ने पूछा कि क्या वाइसराय की स्पेशल यहाँ नहीं ठहर सकती। स्टेशनमास्टर ने बतलाया कि स्पेशल ट्रेन यहाँ नहीं ठहरेगी और यदि अकस्मात लाइन क्लीयर देने में ही कोई भूल न हो जाए तो उसे किसी प्रकार ठहराया भी नहीं जा सकता।

इस पर पण्डित जी ने उसे सुझाया कि क्या यह सम्भव नहीं कि लाइन क्लीयर देने में चूक कर दी जाए, जिससे ट्रेन यहाँ ठहर जाए। जब स्टेशनमास्टर ने यह आशंका प्रकट की कि ऐसा करने से लाइन क्लीयर देने वालों पर आपत्ति आ सकती है, तो पण्डित जी ने उसे आश्वासन दिया कि मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।

बात तय हो गई, लाइन क्लीयर देने वाले आदमी ने अपना हाथ इतनी दूर रखा कि ट्रेन को लाइन क्लीयर न मिल सका। गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हो गई। पण्डित जी प्लेटफार्म पर ही खड़े थे। झट उस डिब्बे के सामने जा पहुँचे, जिसमें वाइसराय बैठा हुआ था। वाइसराय ने पण्डित जी को देख कर बाहर मुँह निकालते हुए पूछा, "हैलो पण्डित, आप यहाँ कहाँ ?" पण्डित जी ने उत्तर दिया कि "मैं यहाँ इलाहाबाद वापस जाने के लिए खड़ा था। आपकी स्पेशल ट्रेन के कारण गाड़ियाँ रुक गईं, जिससे मैं लटकता रह गया।" वाइसराय ने सज्जनता को निभाते हुए कहा, "आइए, मेरी गाड़ी में आ जाइए। मैं आपको इलाहाबाद पहुँचा दूँगा।" पण्डित जी बगैर तकल्लुफ के वाइसराय के डब्बे में बैठ गए। साथ ही बातचीत के सिलसिले में गाड़ी रोकने की पूरी कहानी सुना कर बिचारे सिगनलर की सफाई भी कर दी। इस तरह स्टेशन पर देर में पहुँचने पर भी पण्डित जी इलाहाबाद समय पर पहुँच गए। ऐसी घटनाओं ने पण्डित जी के आत्मविश्वास को बहुत अधिक बढ़ा दिया था। उन्हें यह अटल विश्वास सा हो गया था कि शीघ्र या विलम्ब में कार्य अवश्य सिद्ध होगा।

यह घटना पण्डित जी ने हमको सदर से दिल्ली स्टेशन की ओर जाते हुए रास्ते में सुनाई। स्टेशन पर जाकर देखा कि गाड़ी सचमुच १०-११ मिनट लेट थी और मानो पण्डित जी की प्रतीक्षा में ही सीटियाँ दे रही थी।

८

इसी प्रकार की एक और घटना इलाहाबाद स्टेशन की है। पण्डित जी बाँकीपुर के कांग्रेस अधिवेशन में जा रहे थे। उससे कुछ दिन पहले ही दिल्ली में लार्ड हार्डिंग पर बम गिरने की घटना हुई थी। उस दिन सायंकाल के समय प्रयाग में बम फेंकने वाले की निन्दा करने के लिए विराट सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था। सर सुन्दरलाल उसके सभापति थे। मालवीय जी उसी दिन दिल्ली से प्रयाग पहुँचे थे। सभा में मुख्य भाषण उन्हीं का हुआ। मैं भी दिल्ली

से पण्डित जी के साथ ही प्रयाग गया था और ठहरा भी उन्हीं के पास था। सभा में जाते समय पण्डित जी यह आदेश दे गए थे कि उनका सामान समय से पहले स्टेशन पर पहुँचा दिया जाए और बिस्तर बिछा रखा जाए। पण्डित जी के प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ मैं सभा से जल्दी उठ गया और हम दोनों सामान लेकर स्टेशन पर पहुँच गए। आज्ञानुसार सब कुछ कर दिया गया। नौकर को सर्वेण्ट की कोठरी में बिठा कर हम दोनों प्लेटफार्म पर पण्डित जी की प्रतीक्षा करने लगे। गाड़ी के छूटने का समय हो गया, गार्ड ने हरी झण्डी दिखाई, फिर सीटी बजाई और गाड़ी हिलने लगी। तब हम लोगों को सामान की चिन्ता हुई, सेक्रेटरी साहब ने डिब्बे में घुस कर पण्डित जी का बिस्तर लपेटा और बाहर फेंक दिया। नौकर भी नीचे उतर आया। सारा सामान प्लेटफार्म पर उतार कर सेक्रेटरी महोदय भी कूद कर ट्रेन से उतर आए। उस समय गाड़ी के लगभग आधे डिब्बे प्लेटफार्म से बाहर जा चुके थे। गाड़ी अकस्मात रुक गई। हम लोग देखने लगे कि गाड़ी रुकने का क्या कारण हुआ? देखते क्या हैं कि आगे-आगे मालवीय जी और उनके पीछे-पीछे डा० भगवानदास जी प्लेटफार्मों पर बने हुए पुल पर से गाड़ी की ओर भागे आ रहे हैं। पाठक विश्वास रखें कि भागे शब्द का प्रयोग मैंने अतिरंजना में नहीं किया। दोनों महानुभाव वस्तुतः भागे आ रहे थे। दोनों के दाएँ हाथ गाड़ी को रोकने के लिए ऊपर उठे हुए थे। वहाँ सभी लोग मालवीय जी को पहचानते थे। उन्हें आते देख कर स्टेशन मास्टर ने गाड़ी को लाल झण्डी दिखला दी। गाड़ी खड़ी हो गई। सामान फिर से डिब्बे में लगा दिया गया, और पण्डित जी के पीछे-पीछे मैं भी गाड़ी पर सवार हो गया।

इस घटना से यही परिणाम निकालना चाहिए कि भगवान अपने भक्तों के काम किसी न किसी तरह सँवार ही देता है।

यदि आप मुझ से यह पूँछें कि मालवीय जी का सबसे बड़ा गुण कौनसा था तो मैं कहूँगा "हृदय की कोमलता"। उनके मस्तिष्क की असाधारण महत्ता को कौन नहीं जानता। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनका असली मार्गदर्शक उनका हृदय ही था। जब कभी उनके मस्तिष्क और हृदय में संघर्ष होता था, तब तपस्वी ब्राह्मण के हृदय की ही जीत होती थी। मेरे कथन का यह अभिप्राय नहीं कि मालवीय जी के मस्तिष्क की शक्ति किसी अन्य सामयिक भारतवासी से न्यून थी, अपितु यह अभिप्राय है कि 'इतिकर्त्तव्यता' निश्चय करने के समय उनका हृदय मस्तिष्क से अधिक बलवान सिद्ध होता था।

इसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि मुझे उनकी सहृदयता का अनुभव करने के कई अवसर मिले। यहाँ मैं उनमें से केवल दो अनुभव लिख कर इन संस्मरणों को समाप्त करूँगा।

पहली घटना तब की है जब मैं परिवार सहित अपनी कन्या को हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रविष्ट कराने बनारस गया था। गाड़ी लगभग दिन के १२ बजे बनारस पहुँची। गुरुकुल के अनुभव से मेरा ऐसा विचार बना हुआ था कि प्रत्येक बड़ी सार्वजनिक संस्था में अतिथियों के ठहरने का स्थान तो होना ही चाहिए। इसी धारणा से एक बन्द गाड़ी पर सब सामान लाद कर हम लोग विश्वविद्यालय जा पहुँचे। पहले महिला आश्रम के द्वार पर पहुँचे। वहाँ की अधिष्ठात्री पूर्व परिचिता थीं। उन्होंने सलाह दी कि ठहरने के बारे में आप लोग वाइस चान्सलर साहब से मिलिए। उन दिनों एक काश्मीरी सज्जन विश्वविद्यालय के भाग्य विधाता थे। उनके बंगले पर गाड़ी ले जाकर मैंने अपना कार्ड भेजा तो एक मद्रासी क्लर्क ने आकर पूछा कि क्या काम है? यह उत्तर देने पर कि कन्या को दाखिल कराने आए हैं, कुछ घण्टों के लिए सामान रखने और नहाने-धोने के लिए जगह चाहिए, उत्तर मिला कि ऐसा कोई स्थान यहाँ नहीं। एक अतिथिगृह है, परन्तु वह एक राजा साहब के लिए रिजर्व हो चुका है, जो परसों आने वाले हैं, आपके वहाँ ठहरने से वह खराब हो जाएगा।

यह टका सा जवाब पाकर गाड़ी का मुँह बनारस के रेलवे स्टेशन की ओर मोड़ देते, यदि लड़की को विश्वविद्यालय में दाखिल कराना न होता। जुलाई का महीना था। कड़ाके की धूप पड़ रही थी। छोटा बच्चा प्यास से परेशान था। अन्त में लाचार होकर एक प्रोफेसर के यहाँ अनिमन्त्रित अतिथि बनना पड़ा। उनके यहाँ सामान रख कर स्नान किया और विश्वविद्यालय के कार्यालय में पहुँच कर आवश्यक पूछताछ की। जब मालूम हुआ कि कार्य पूरा कराने के लिए एक-दो दिन ठहरना पड़ेगा, तो निश्चय किया कि पहले बाजार में चल कर खाना खाया जाए फिर शहर में रहने की जगह तलाश की जाए।

जब विश्वविद्यालय से बाहर जाने लगे तो रास्ते में एक बंगले के द्वार पर पूज्य मालवीय जी का साइनबोर्ड दिखाई पड़ा। पंडित जी तब कार्य छोड़ चुके थे। मुझे मालूम था कि उनका शरीर बहुत निर्बल हो गया है। नाम देख कर एकदम मन में विचार उठा कि यदि पंडित जी को असुविधा न हो तो उन्हें प्रणाम करते चलें। अन्दर जाकर देखा तो उनके सेक्रेटरी पन्त जी विराजमान हैं। वह बड़े प्रेम से मिले। प्रणाम करने की बात पूछने पर उन्होंने कहा कि इस समय बाबू भोजन कर चुके हैं, शायद ही मिल सकें, उनका आराम करने का समय है। इतना उत्तर देकर पंत जी ने अनुभव किया कि यह उत्तर संसार की दृष्टि से ठीक होता हुआ भी मालवीय शिष्टाचार के अनुसार उचित नहीं हुआ। सीधा इन्कार मालवीय शिष्टाचार में वर्जित था। मेरी निराशा को हल्का करते हुए पंत जी ने कहा, 'ठहरिए, मैं बाबू से पूछ कर आता हूँ।' जब पंत जी पूछ कर आए तो उनके चेहरे पर मुस्कराहट थी। चलिए बाबू ने बुलाया है। यह कहते-कहते वह आगे चले।

अन्दर जाकर जो दृश्य देखा तो दिल बैठ सा गया। मैंने पंडित जी को कई वर्षों बाद देखा था, वह सौम्यमूर्ति जो सदा सीधी दिखाई देती थी, थकान, बीमारी और बुढ़ापे के कारण झुक गई थी। सुनने और बोलने में भी कष्ट अनुभव होता था। यह तो शरीर का हाल था, परन्तु जब बातचीत हुई तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस निर्बल शरीर में वही बलवान मस्तिष्क और उससे भी बलवान हृदय विद्यमान है। उस समय की सब बातों का विवरण देने से लेख बहुत लम्बा हो जाएगा। यहाँ उतना ही अंश देना पर्याप्त है, जिससे पण्डित जी की प्रकृति का वास्तविक रूप पहचानने में सहायता मिले। पण्डित जी ने

पूछा, 'कहाँ ठहरे हो ?' यह प्रश्न हिन्दू विश्वविद्यालय में मुझे बिलकुल नया प्रतीत हुआ। मैंने उत्तर दिया, 'अभी तो कहीं नहीं ठहरे। सामान एक जगह रख दिया है।' पण्डित जी—'क्यूँ ? क्या ठहरने को कोई स्थान नहीं मिला ?।'

इस प्रश्न के उत्तर में मैंने संक्षेप से अपनी सुना दी। सुनाते हुए यह ध्यान रखा कि किसी की शिकायत न होने पाए, फिर भी मेरी कहानी का पण्डित जी पर जो असर हुआ उसे देख कर मुझे पछतावा हुआ कि मैंने वह कहानी क्यों सुनाई ! आपकी आँखों में पानी झलकने लगा। आपने नौकर को इशारा करके अपने पौत्र पं० श्रीधर मालवीय को बुलवाया और कहा, "यह कितने दुःख की बात है कि इन्द्र जी परिवार सहित यहाँ आए और ठहरने को कोई स्थान न मिले। इस बंगले के ऊपर दोनों कमरे अभी साफ करवा कर रहने के योग्य कर दिए जाएँ और भोजन का प्रबन्ध भी यहीं होगा।" यह स्पष्ट था कि जहाँ पण्डित जी का यह आदेश उनकी सहृदयता और विशालता का उज्ज्वल सबूत था, वहाँ उससे लाभ उठाना हम लोगों की स्वार्थपरायणता और अमानुषिकता का प्रमाण होता। मैंने और मेरी पत्नी ने प्रतिवाद करने के लिए इकट्ठा मुँह खोला तो पण्डित जी ने हाथ के एक निश्चयात्मक इशारे से हमें चुप कर दिया और श्रीधर जी को सब प्रबन्ध जल्दी कर देने का आदेश देकर बिदा कर दिया।

इस सारी घटना में मालवीय जी महाराज के हृदय का वह स्पन्दन झलक रहा था, जो उनके सुदीर्घ परोपकारी जीवन का मुख्य प्रेरक था।

इस प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व यह लिख देना आवश्यक है कि हम लोगों ने शाम को श्रीधर जी को सूचना दे दी कि हम लोग बाबू शिवप्रसाद जी के यहाँ ठहर गए हैं। आप हमारी प्रतीक्षा न कीजिएगा।

अब मैं पण्डित जी के अन्तिम दर्शनों का थोड़ा सा वृत्तान्त सुना कर इस प्रकरण को समाप्त करता हूँ। पण्डित जी शरीर की निर्बलता और वृद्धावस्था की अवहेलना करके महात्मा गांधी और अन्य राष्ट्रीय नेताओं तक अपने मुँह से अपना मनोभाव पहुँचाने के लिए सन् १९४६ के मध्य भाग में दिल्ली पधारे थे। आप अपने सुपुत्र पं० गोविन्दकान्त मालवीय के पास ठहरे हुए थे। मैं अपनी दो कन्याओं के साथ उनके दर्शन के लिए उपस्थित हुआ। गोविन्दकान्त जी ने बड़े प्रेम से हमारा अभिनन्दन किया और पण्डित जी से आज्ञा प्राप्त करके हमें अन्दर ले गए। अन्दर जा कर भारतीय राष्ट्र के उस भीष्म पितामह को मानो शरशय्या पर पड़े हुए पाया। शरीर झुक कर दोहरा हो गया था। चेहरे पर निर्बलता का पूर्ण अधिकार था और बोलने में बहुत कष्ट अनुभव हो रहा था। सिरहाने की ओर गोविन्दकान्त जी खड़े थे और पाँयत की ओर राधाकान्त जी। अत्यन्त क्षीण स्वर हो जाने पर भी पंडित जी के ओंठों के इशारे को गोविन्दकान्त जी समझते प्रतीत होते थे। मैंने देखा कि पंडित जी के हृदय और मस्तिष्क पर शरीर की असमर्थता का बहुत ही कम असर था। वह प्रत्येक बात को बिल्कुल स्पष्टता से समझते और पहले की भाँति अनुभव करते थे। उनकी आँखें और ओंठ हृदय के दर्पण बने हुए थे। हमारे प्रणाम का उसी प्रेम से उत्तर दिया। दिल्ली की परिस्थिति के बारे में वैसे ही कुशल प्रश्न किए और आत्मरक्षा के लिए तैयार रहने की वैसी ही प्रेरणा दी, जैसी बीस वर्ष पहले दिया करते थे। मुस्कराये भी और आँसू भी बहाए। जब कन्याओं ने प्रणाम किया तो आपने मुझसे पूछा कि इनके पास आत्मरक्षा का कोई साधन भी है या नहीं। साथ ही राजपूताने का कोई प्रसिद्ध पद बोला, जिसे मैं याद नहीं रख सका। संभव है गोविन्द जी को याद हो। उस समय बड़े से बड़े प्रकृतिवादी को भी मानना पड़ता कि आत्मा शरीर से अलग और ऊँची वस्तु है। शरीर जर्जरित हो गया था, परन्तु आत्मा युवा थी।

◆

तार जगे

सत्येन्द्र श्रीवास्तव

तार जगे
आज वायलिन के
फिर सहसा तार जगे।
बहुत दिनों के बाद हँसी
दीवारों से टकराई
पर्दे हिले, खिड़कियों ने ली
हल्की-सी अँगड़ाई
हरे बल्ब की छाया में
सोये संसार जगे,
तार जगे।
वर्षों बाद झरोखे से फिर
कई सीटियाँ आईं
गलियारे में पड़ी कोच पर
छायाएँ लहराईं
फ्रेम कसी तस्वीरों के
रूठे उपहार जगे,
तार जगे।
प्रश्न-चिह्न से खड़े एरियल
ने बाहें फैलाईं
सन्नाटे का दर्द चीरती
डूब गई तनहाई
फिर गमलों के फूल सरीखे
अनगिन प्यार जगे,
तार जगे।

◆

रूस में प्रेमचन्द तथा अन्य भारतीय लेखकों के प्रशंसक

जोज़िफ पी० बैकोव

बहुत पुराने जमाने में भी रूसी लोगों की भारत देश के बारे में बड़ी दिलचस्पी रही। वे भारत के बारे में गीत गाया करते थे और कहानियाँ कहा करते थे। न केवल उन कहानियों से रूसी लोग भारत के बारे में जानते थे, बल्कि १५वीं सदी में, वास्को दि गामा से भी तीस साल पहले अफानासी निकितिन नामक एक बहादुर रूसी सौदागर ने भारत की यात्रा की, और रूस देश वालों को भारत के बारे में बताया। इस रूसी यात्री ने अपनी "तीन समुद्रों के पार की यात्रा" नामक पुस्तक में अपनी यात्रा के बारे में काफ़ी विस्तार से लिखा है।

उसके बाद भी प्रगतिशील रूसी विद्वानों, लेखकों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं ने भारत के बारे में गहरी दिलचस्पी ली। मिसाल के तौर पर, रूस के महान विचारकों और साहित्य के पंडितों ने जैसे कि, चेर्निशव्स्की और दोब्रल्यूबोव ने अपनी रचनाओं में भारत की सन् १८५७ की महान राज्य क्रान्ति पर रोशनी डाली।

उसी काल में प्रसिद्ध रूसी कवि जूकोव्स्की ने भारत की मशहूर पुस्तक "महाभारत" में से "नल-दमयन्ती" नामक कहानी का रूसी भाषा में अनुवाद किया।

उन्नीसवीं सदी के आखीर में पूर्वीय धार्मिक साहित्य के बड़े विद्वान श्री मिनायेव भारत आये। उनकी इस यात्रा की एक डायरी अभी कुछ दिन हुए रूस में छपी है जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की है।

रूस के नामी चित्रकार श्री वेरेश्चागिन को भी भारत देश के दर्शन करने का सौभाग्य मिला था। उन्होंने भारतीय जीवन और भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष के सम्बन्ध में जो चित्र बनाए थे वे बेजोड़ हैं, और उनकी एक झाँकी ही दिलों पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है।

बीसवीं सदी के शुरू में दुनिया की पहली बड़ी लड़ाई छिड़ने के कुछ दिन पहले तक भी रूसी लोगों की भारत के बारे में यह दिलचस्पी ज़रा भी धीमी नहीं पड़ी। इन्हीं दिनों पहली बार भारत के अमर कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नोबल पुरस्कार-प्राप्त पुस्तक "गीतांजलि" तथा उनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाओं के अनुवाद रूसी भाषा में रूस के लोगों को पढ़ने को मिले। इन्होंने पाठकों के मनों को मोह लिया।

एक रूसी कवि बाल्मोंत ने भारत के संस्कृत साहित्य के सबसे महान कवि कालिदास के कई नाटकों का रूसी में अनुवाद किया। इन अनुवादों में कालिदास की दुनिया भर में मशहूर पुस्तक "शाकुन्तल" भी थी।

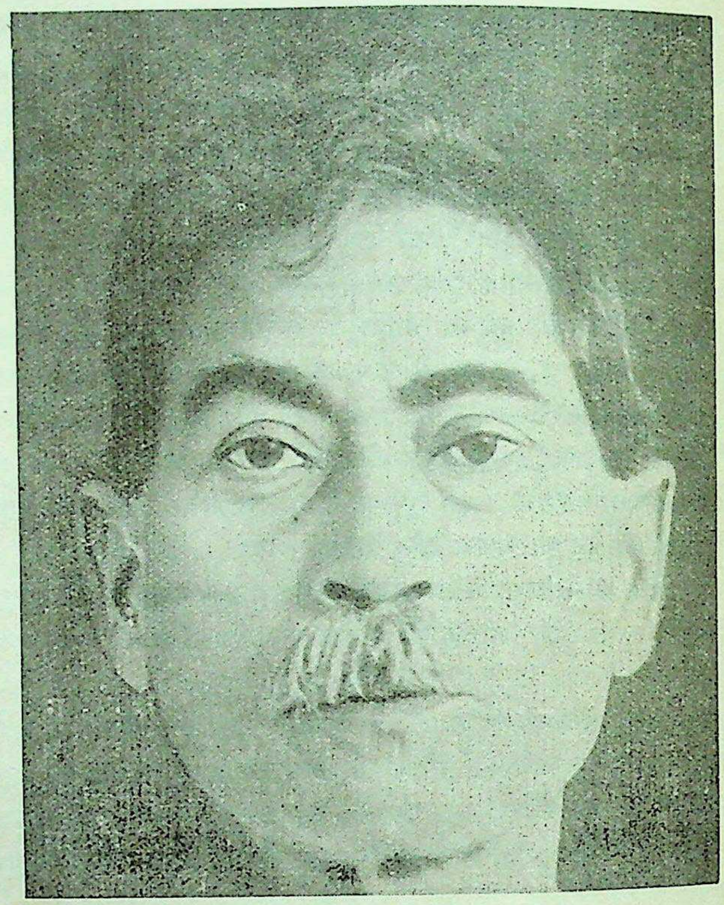

जन्म : १० अगस्त १८८१ प्रेमचन्द अवसान ८ अक्तूबर, १९३६

रूस की अक्तूबर की महान क्रान्ति और सोवियत शासन की स्थापना के बाद रूस में वहाँ के पूर्वीय साहित्य के विद्वानों ने जो रचनाएँ कीं उनमें बिल्कुल साफ तौर पर भारत की गौरवशाली तथा विभिन्न रूप वाली संस्कृति झलकती है। ओल्देनबुर्ग, श्चैर्बात्स्की, बरान्निकोव जैसे अकाडमी आफ़ साइन्स के प्रतिष्ठित सदस्यों के नाम न केवल रूस में ही बल्कि रूस के बाहर दूर-दूर देशों में भी मशहूर हैं। भारतीय संस्कृति और सभ्यता का ठीक परिज्ञान कराने वाली उनकी ये रचनाएँ एक तरह से दुनिया को बड़ी देन हैं।

इसी काल में ही रवि बाबू की एक के बाद दूसरी रचनाओं के रूसी अनुवाद प्रकाशित हुए। सन् उन्नीस सौ तीस और उन्नीस सौ चालीस के बीच के दस सालों के समय में श्री बरान्निकोव नामक एक रूसी अकाडमीशियन ने लल्लू लाल जी के प्रसिद्ध हिन्दी ग्रन्थ "प्रेमसागर" का रूसी भाषा में अनुवाद पूर्ण किया। इसी काल में उन्होंने भक्त कवि श्री तुलसीदास के "रामचरित मानस" नामक विशाल ग्रन्थ के एक बड़े हिस्से का अनुवाद किया। उन्होंने पूरा अनुवाद द्वितीय महायुद्ध के काल में किया जो कि युद्ध की समाप्ति पर रूस में छपा।

इस अनुवाद की भूमिका को पढ़कर रूसी पाठकों को तुलसीदास के अद्भुत जीवन का और अद्भुत कवित्व-शक्ति का परिचय मिला।

आखिर में, आज से लगभग दो या तीन साल पहले भारत के बहुत पुराने काल के महाकाव्य "महाभारत" का पहला हिस्सा रूसी भाषा में प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद संस्कृत वेत्ता श्री कल्यानोव ने किया है।

मगर भारत के बारे में रूसी लोगों की खास दिलचस्पी पिछले महायुद्ध के बाद, गत वर्ष ही जागी। इसी काल में सोवियत संघ के बड़े-बड़े विद्वान और लेखक, चित्रकार और अभिनेता एवं इंजीनियर और खिलाड़ी भारत की यात्रा पर अनेक बार आए और आज भी वे आ रहे हैं। उन्होंने अपनी इन यात्राओं के द्वारा भारतीयों को सोवियत संघ की बहुत राष्ट्रों वाली सभ्यता की सफलताओं से परिचित कराया।

दूसरी ओर भारतीय कला और संस्कृति के अनेक प्रतिनिधियों ने सोवियत संघ की अपनी हाल की यात्राओं से रूस की जनता के सामने भारत देश की अनुपम नृत्यकला व संगीत विद्या आदि के सुन्दर उदाहरण उपस्थित किए।

इधर पिछले कोई पाँच सालों से भारतीय आधुनिक लेखकों की कृतियों के काफी संख्या में अनुवाद और प्रकाशन सोवियत रूस में हुए हैं। इन अनुवादों के कारण ही आज रूस के पाठकों को भारत के आधुनिक लेखकों, और कवियों को जानने का अवसर मिला है। इसीलिए आज रूस में कृष्णचन्दर, मुल्कराज आनन्द, भवानी भट्टाचार्य, अब्बास, अली सरदार जाफरी और वल्लात्तोल जैसे लेखकों की रचनाएँ खास तौर पर पसन्द की जा रही हैं। उक्त विद्वानों की भारतीय भाषाओं में लिखी पुस्तकों तथा लेखों के अनुवाद रूसी भाषा में प्रकाशित होने वाले जनप्रिय पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर छपते रहते हैं। इन रूसी पत्र-पत्रिकाओं के पाठकों व ग्राहकों की संख्या लाखों में है।

इन लेखकों में से कितनी ही रचनाएँ अलग पुस्तक के रूप में भी छपी हैं, और उनके कई-कई संस्करण निकल चुके हैं। उदाहरण के लिए श्री भवानी भट्टाचार्य लिखित "दुर्भिक्ष," मुल्कराज आनन्द लिखित "कुली" तथा दूसरे लेखकों और कवियों की रचनाएँ। भारतीय लेखकों व ग्रन्थकारों की जिन पुस्तकों के अनुवाद रूसी भाषा में अथवा सोवियत संघ की अन्य भाषाओं में प्रकाशित हुए हैं उनकी प्रतियों की संख्या कम से कम पन्द्रह लाख तक होगी।

किन्तु इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि भारत के तमाम लेखकों में मुंशी प्रेमचन्द का विशेष ही स्थान है। वे सचमुच में आधुनिक भारतीय साहित्य के जन्म-दाताओं में से हैं। न केवल आज ही बल्कि, आज से बहुत साल पहले से श्री प्रमचन्द ने अपनी कृतियों द्वारा भारतीय ज्ञान के विशेषज्ञ रूसियों का ध्यान अपनी ओर खींचा था। इन रूसी विद्वानों ने श्री प्रेमचन्द के जीवन की घटनाओं को पढ़ा, उनकी साहित्य की सृजन शक्ति और भाषा की शैली का गहराई के साथ अध्ययन किया। इसके आधार पर उन्होंने श्री प्रेमचन्द के "प्रेमाश्रम", "गोदान" और "संग्राम" आदि ग्रन्थों का रूसी भाषा में अनुवाद किया।

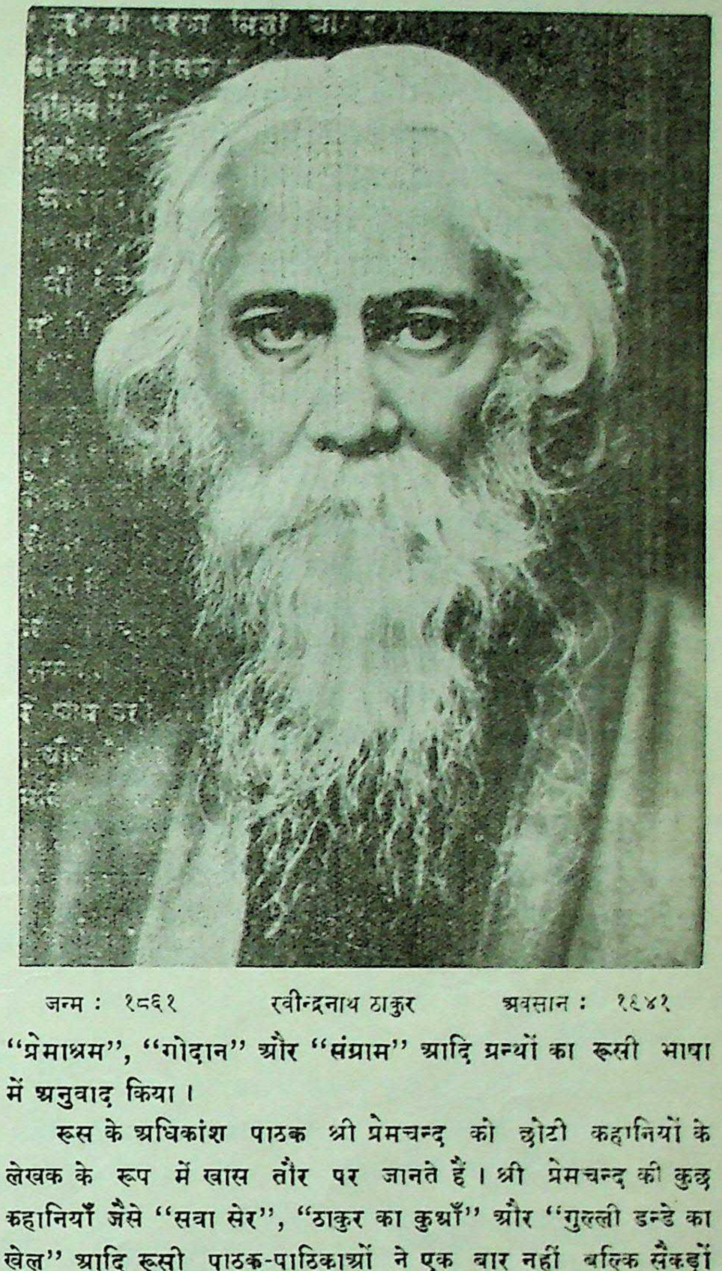

जन्म : १८६१ रवीन्द्रनाथ ठाकुर अवसान : १९४१

रूस के अधिकांश पाठक श्री प्रेमचन्द को छोटी कहानियों के लेखक के रूप में खास तौर पर जानते हैं। श्री प्रेमचन्द की कुछ कहानियाँ जैसे "सवा सेर", "ठाकुर का कुआँ" और "गुल्ली डन्डे का खेल" आदि रूसी पाठक-पाठिकाओं ने एक बार नहीं बल्कि सैकड़ों बार पढ़ी होंगी। श्री प्रेमचन्द ने जो रूसी पाठकों को अपनी ओर इतने ज़ोरों से खींचा उसका सबसे बड़ा कारण यह है कि श्री प्रेमचन्द ने जो कुछ लिखा है वह सीधी-सादी भाषा में आम जनता के जीवन की सही तस्वीर को खींच कर रख दिया है। उनकी भाषा बड़ी मँजी हुई और मुहावरेदार है। उन्होंने भारतीय जीवन की सामाजिक समस्याओं का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। श्री प्रेमचन्द की इन कहानियों को पढ़कर ही रूसी पाठकों को भारत के देहाती या ग्रामीण जीवन की, जिससे आज तक वे बिल्कुल ही अनजान थे, सबसे पहले गहरी जानकारी मिली।

उनकी इन कहानियों से ही हमारे इन पाठकों ने भारत के देहातों की दुनिया के सीधे-सादे बाशिन्दों की रोजमर्रा की ज़िन्दगी की गमियों और खुशियों और तकलीफ़ों व आनन्दों को अनुभव किया। श्री प्रेमचन्द के पात्र सदा बड़े संघर्ष तथा विकट परिस्थिति के जीवन

में से गुजरते हैं। किन्तु उनका यह अडिग विश्वास व भरोसा होता है कि अन्त में सत्य की तथा न्याय की ही विजय होगी। श्री प्रेमचन्द जिन्दगी की तकलीफों का और उनसे जूझने का ऐसा जिन्दा खाका खींचते हैं कि उन्हें पढ़ने वाला पाठक यह भूल जाता है कि वह कोई किस्सा या कहानी पढ़ रहा है, बल्कि उसमें ऐसा कुछ ख्याल जोर मारता है कि वह भी कहानी के पात्रों के सुखों और दुखों में कुछ हिस्सा बँटाने को और बुराइयों के विरुद्ध किए जा रहे संघर्ष में उन पात्रों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने को मचलने लगता है।

श्री प्रेमचन्द के सारे उपन्यास, कहानियाँ व लेख हमें सामाजिक जीवन की गुत्थियों को सुलझाने के लिए पुकार-पुकार कर बुलाते हैं। श्री प्रेमचन्द के इन्हीं गुणों के कारण रूसी पाठक इन्हें न केवल एक महान लेखक के रूप में बल्कि एक उच्च सामाजिक योद्धा और देश-भक्त के रूप में सदा चाहते हैं और उनका सम्मान करते हैं।

रूसी जनता ने जो प्रेमचन्द को इतना अपनाया निस्सन्देह उसका विशेष कारण यह भी है कि भारत के इस महान लेखक ने दूसरे देशों की खासकर रूस की संस्कृति के प्रति हमेशा ऊँचा सम्मानपूर्ण भाव प्रकट किया। उन्हें रूसी उच्च साहित्य की दुनिया में मशहूर लेखक—टालसटाय, तुर्गनेव, चेखव, और दास्तोवस्की, की रचनाओं का पूरा-पूरा ज्ञान था, और उन्होंने लियो टालसटाय की अनेक कहानियों का अनुवाद हिन्दी में किया। सोवियत शासन की स्थापना के बाद के रूसी साहित्य, और सोवियत जीवन पद्धति में भी उनकी कुछ कम दिलचस्पी न थी। उन्होंने सोवियत रूस पर पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर विशेष लेख लिखे और उनके द्वारा भारत के लोगों के सामने सोवियत संघ का सच्चा स्वरूप रखा। इसलिए यह कहना गलत न होगा कि आज संसार के दो महान देशों—भारत और रूस में—जो मैत्री-सम्बन्ध है, उसका बुनियादी पत्थर श्री प्रेमचन्द के कर-कमलों से रखा गया था। सोवियत रूस के उच्च कोटि के जन-लेखक मैक्सिम गोर्की की रचनाओं का, इस महान भारतीय साहित्यकार ने गहरा अध्ययन किया था और इस अध्ययन के आधार पर वे उनके बड़े प्रशंसकों में थे। गोर्की की मृत्यु की खबर सुनकर उनके दिल को बड़ा सदमा पहुँचा था।

श्री प्रेमचन्द यद्यपि उस समय खाट पर बीमार पड़े हुए थे लेकिन अपने लेखक-बन्धु की मौत की खबर सुनकर उठ खड़े हुए और उन्होंने फौरन उसी दिन स्वर्गगत गोर्की की याद में एक पब्लिक मीटिंग जुड़ाई।

आज उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द इस संसार में नहीं हैं, किन्तु उनकी वे अमर रचनाएँ पहले की तरह ही आज भी सच्ची शान्ति और मानव-कल्याण के लिए संघर्ष करते रहने की प्रेरणा दे रही है। अदृश्य होकर, आज भी वे बिल्कुल पहले के समान ही भारत और रूस की सच्ची मैत्री को बढ़ावा देने वालों की पंक्ति में ही बैठे नज़र आते हैं।

●

गढ़वाली लोकगीत

बहू रानी

बताओ आली, किस की वधू हो तुम ?

धुवें-सी धुँधली,
पाणी-सी पतली;
मीठी कदली-सी,
पाणी-सी पतली,
केला-सी गखोल,
रौंदी-सी कुरेड़ी,
नौण-सी गुंदकी, कैकी बौराण छ ?
इनी मेरी होन्दी जिकुड़ी मा सेन्दी !
दिवा जसी जोत,
फ्यूँली जसो फूल,
दुबला की-सी लड़ी,
हरी जनी काखड़ी,
भीमल् की-सी सेटगी, कैकी बौराण छ ?
इनी मेरी होन्दी गलाऊँदी भूल दी !
नाक मा छ तोता,
जीभ मा क्वील,
आँख्यो मा आग,
गालू मा गुलाब !
हुड़की-सी कमर, कैकी बौराण छ ?
इनी मेरी होन्दी हथगुली मा सेन्दी !
वाँदू मा की बाँद,
चाँदू मा की चाँद,
चीणा जसी झूम,
पालिंगा की-सी डाली !
हिंसर की-सी गोंदो, कैकी बौराण छ ?
इनी मेरी होन्दी क्लै ज्यू तू खोंदी।
घास काटद काटद,
बणी छ गितांग;
स्वामी गैन विदेश,
मेरी याद नी च !
दुरू देखणी तू कैकी बौराण छ ?
इनी मेरी होन्दी, धारू धारू नी रोंदी।

अनुवादक : गोविन्द चातक

●

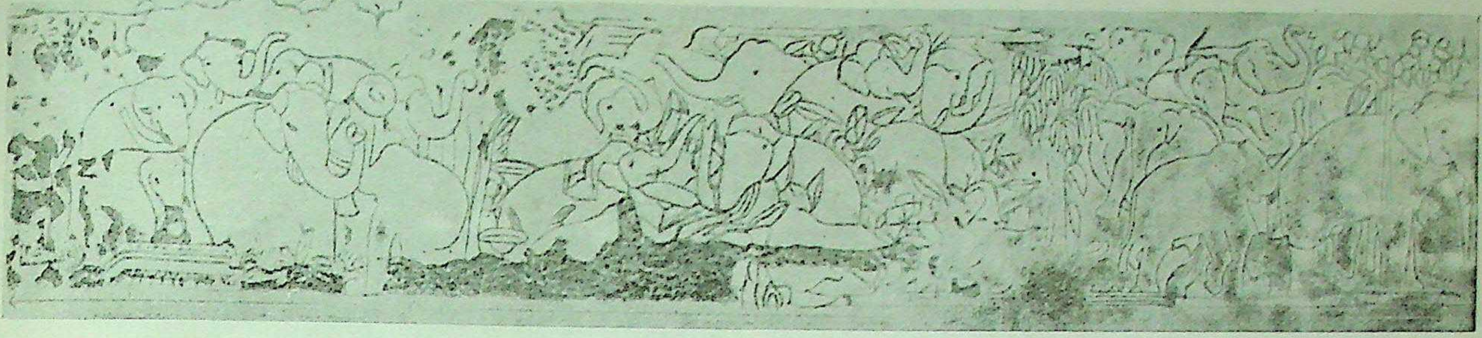

अजन्ता के भित्ति चित्र

राय कृष्णदास

अजन्ता की पहली गुफा में घुसते ही बाईं ओर दीवार की भित्ति पर सिवि जातक का चित्र है, जिसका कथानक पौराणिक रूप से भिन्न नहीं। हम इस गुफा के खंभों को, उनके ब्योरों को देख इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि यह गुफा गुप्तकाल के अन्तिम प्रहर में बनी होगी। सिवि जातक का चित्र भी हमारी इस धारणा की पुष्टि करता है। क्योंकि इस चित्र में वस्तुओं पर यत्र-तत्र मोटी लिखाई में मध्यकालीन तरहें बनने लगते हैं, जिनका उदय सातवीं शती के पहले नहीं होना चाहिए। इतना ही नहीं आकृतियों के लम्बोतरे चेहरे, उनकी लम्बी नाक, भावहीन नेत्र और शिखर जैसे मुकुट, हमें पल्लव मूर्त्तियों की याद दिलाते हैं। दृश्य में भीड़-भाड़ है, पर संपुंजन का अभाव है। हाथों की मुद्राओं को चित्रकार भूल चुका है। हमें ये सब विशेषताएँ मामल्लपुरं के पल्लव वास्तुओं पर मिलती हैं।

सिवि जातक के बाद ही हमें कृशकाय एवं पीड़ा से विह्वल एक सुन्दरी का चित्र मिलता है, जिसकी विरह व्यथा को कई सखियाँ दूर करने का प्रयत्न कर रही हैं। यहाँ हमें पर्याप्त सजीवता दीख पड़ती है। विशेष रूप से हस्त-मुद्राओं, आँखों और केश-पाश में, जो अपनी कोमलता में कमानी को मात करते हैं, हमें विशेष चारु अंकन दीखता है। दूसरे दृश्य में हम राजस्त्रियों की एक गोष्ठी देखते हैं, जो वार्तालाप में मग्न है। द्वार पर एक भिक्खु उपस्थित है, यह अनुमान कि यह बुद्ध का अंकन है, कुछ अप्रत्याशित-सा जान पड़ता है—क्योंकि यह आकृति साधारण मानुषी अनुपात में बनी है और उसके पीछे प्रभा-मण्डल भी नहीं, जो अजन्ता की प्रत्येक बुद्ध-आकृति में मिलता है।

इसकी बाईं भित्ति पर नागराज की सभा का दृश्य है। अपनी सजीवता, चहल-पहल और सर्वोपरि उसमें हो रहे नृत्य के आलेखन के कारण यह चित्र बहुत प्रसिद्ध हो चुका है। अनेक कारणों से इस चित्र को परवर्ती गुप्तकाल में रखना होगा। फिर भी इसमें आँखें भावपूर्ण हैं, यद्यपि मुखमुद्रा भावहीन। नर्तकी के कुच अत्यन्त भारी हैं और कटि क्षीण।

फिर भी इस चित्र में राजसभा की चहल-पहल का अच्छा अनुभव होता है और कई आकृतियाँ बहुत ही सजीव रूप में अंकित हुई हैं। इनमें राजदम्पती के पीछे चामरग्राहिणी की आकृति भी अपनी सुन्दर और कोमल मुद्रा के कारण दर्शनीय है। उसके बाद एक विचित्र आकृति वाला व्यक्ति है, प्राचीन राजसभाओं में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं। उसके बाद कुछ फल-फूल लिए हुए दासी है। दूसरी ओर भी एक ऐसी ही परिचारिका दीखती है। दरबार के दूसरे भाग में अनेक स्त्री-पुरुष अंकित हैं जिनका संपुंजन बड़ा ही सुन्दर एवं स्वाभाविक हुआ है। उन सबके बीच जो केन्द्रीय आकृति है वह फूलदार बिछावट पर नृत्य की मुद्रा में अंकित हुई है।

इसी के उपरान्त शंखपाल जातक की कथा आती है जहाँ लिखाई में अत्यन्त प्रौढ़ता के कारण हम इसे अजन्ता के सर्वोत्कृष्ट चित्रों में रख सकते हैं। विशेष रूप से पहले ही दृश्य में शिला, जिसे चौकोर टुकड़ों के सजाए हुए खण्डों से अंकित किया है, के ऊपर मगध के संन्यस्त राजा और नागराज का वार्तालाप दीखता है। यहाँ शंखपाल और उनके पीछे राजमहिला की मुद्राएँ बड़ी सुष्ठु हैं। इनमें सामने बैठी स्त्री का एक चित्र जो दर्शक की ओर पीठ किए है, अपनी मुद्रा के कारण बहुत प्रसिद्ध हो चुका है। उसका बायाँ हाथ भूमि पर टिका हुआ है, दाहिना हाथ घुटने पर होता हुआ किंचित मुड़े हुए मुख तक पहुँच गया है जो किसी वार्तालाप को सुनने के लिए सबसे सहज मुद्रा है। उसके बायें पैर की तनिक मुड़ान भी दर्शनीय है और उसके कोमल शरीर का भंग भी, जिसकी तुलना किसी लता से ही की जाती है।

पहली गुफा की बाईं भित्ति पर मध्य में चित्रों की एक लम्बी परम्परा है। अतः इसके आगे वाले दृश्यों में महाजनक जातक के दृश्य दीखते हैं। यहाँ हम चहल-पहल से भरी राजसभा को पाते हैं, जिसमें एक ओर गर्भगृह के अन्दर मंचासीन राजा-रानी विराजमान हैं, जिनकी आसक्ति मुद्रा तथा नेत्रों के अंकन में चित्रकार ने बहुत ही सफलता पाई है। यह राजदम्पती अनेक दास-दासियों और सखियों से घिरा हुआ है। सामने की ओर नृत्य के दृश्य में पूरी सजीवता है। यह नर्तकी की कोमल बाहुलता की प्रवाहपूर्ण लिखाई में दर्शनीय है। नृत्य के अतिभंग के कारण उसमें अस्वाभाविकता तो नहीं आई है, वरन् थिरकन की गति स्फुट हो गई है, जिसके लिए उड़ते हुए वस्त्रों, अधो-

वस्तु की घूमी हुई धारियों को दिखलाकर चित्रकार ने और भी सजीवता ला दी है। उसके चारों ओर वेणु-ताल-मंजीरक वादकों पर भी संगीत का नशा छाया हुआ है।

चित्र का दूसरा दृश्य एक द्वार से अलग हो जाता है। यहाँ से हाथी पर आसीन एक राजा सदल-बल निकल रहा है। उसके आगे अनेक अश्वारोहियों का खड्गधारियों की मुद्रा में वीरोचित दर्प स्पष्ट लक्षित होता है। सारा समाज बड़ी आन-बान से आगे बढ़ता जाता है। अन्यत्र कई स्थानों पर अजन्ता में सवारी के कई सुन्दर दृश्य मिलते हैं। ऊपर एक आश्रम में भक्ति और ध्यान के साथ तत्व चर्चा में मग्न समाज का दृश्य स्फुट हुआ है। उसमें व्याख्यात की शान्त मुद्रा दर्शनीय है। कलाकार ने पृष्ठिका में दो मृगों को बनाकर आश्रम के शान्त वातावरण का अच्छा चित्रण किया है। इसी दृश्य से सम्बन्धित चित्र में हम महाजनक को घोड़े पर बाहर जाते देखते हैं। यहाँ पर भी वैसा ही समाज है। घोड़े के आगे शंख बजाने वाले की मुद्रा में पर्याप्त ओज है।

इसके बाद हमें समुद्र-यात्रा एवं उसके उपरान्त जहाज टूटने का दृश्य दीखता है जिसमें भय की मुद्रा बहुत ही सुन्दर रूप में अंकित हुई है।

पहली गुफा की बाईं भित्ति के बीचोंबीच पद्मपाणि बोधिसत्व का जगत्प्रसिद्ध चित्र है। ऐसा जान पड़ता है अजन्ता में बोधिसत्व चित्रों की संख्या कम-से-कम एक दर्जन अवश्य रही होगी जिनमें अधिकांश नष्ट हो गए हैं—कहीं किसी का मुकुट बच रहा है, कहीं किसी का हाथ, कहीं भावपूर्ण आँखें।

यहाँ बोधिसत्व की लिखाई में चित्रकार ने हमें उस असीम विश्व-करुणा को बड़े सामर्थ्य से स्फुट किया है जो बोधिसत्व का स्वभाव मानी जाती है। उनकी भाव-मग्न आँखें जैसे किसी ऊँचाई (स्वर्ग) से देखने के कारण नीचे झुकी हुई हैं, मानों सारे संसार की व्यथा को दूर करने के लिए वे उत्सुक हैं। उनका आकार इतर आकृतियों से बड़ा है, जिससे उनकी विशिष्टता का ज्ञान होता है। सर्वोपरि है उनकी किंचित भंगिमा जिसकी अटूट रेखाएँ द्रष्टव्य हैं—जिसे दर्शाने के लिए चित्रकार ने उनकी रत्नों वाली सेल्ही को शून्य में तनिक लहरा दिया है। इसी प्रकार वलय की फहरान में भी सजीवता है। उनके तीन शिखरों वाले भारी मुकुट, गले में मोतियों की माला, जिसमें स्थूल-मध्येन्द्र-नील भी है, की चमक दिखाने में चित्रकार ने पर्याप्त कौशल का परिचय दिया है। फलतः यह चित्र अजन्ता के सर्वश्रेष्ठ चित्रों में से है।

यहीं एक दृश्य, ईरानी दौत्य के नाम से प्रसिद्ध है, इसमें हमें एक राज-सभा में मध्य एशियाई, सम्भवतः ईरानी वस्त्र विन्यास में कुछ आकृतियाँ दीखती हैं। उन्हें लेकर कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कल्पना कर ली है कि यह पुलकेशिन के दरबार में ईरानी दौत्य का चित्रण है। परन्तु अजन्ता में अन्यत्र भी अनेक ईरानी तरहों के उदाहरण मिलते हैं जो वहाँ पाटन के अलंकरण में प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार जान पड़ता है कि उस काल में पश्चिमी भारत से ईरान या मध्य एशिया का जो व्यापार एवं कूटनीतिक सम्बन्ध था उसके कारण बराबर सांस्कृतिक आदान-प्रदान चलता रहा होगा एवं एक के कलात्मक तरह दूसरे की चित्रकला में अवतरित होते रहे होंगे। हमें अजन्ता में ही अन्यत्र (देखिये आगे) गान्धार शैली से प्रभावित बुद्ध-चित्र मिले हैं। यह भी अस्वाभाविक नहीं कि यह किसी जातक या अवदान आदि का दृश्य हो।

अजन्ता की अन्य गुफाओं की भाँति पहली गुफा में भी पाटन पर अनेक सुन्दर अलंकरण हैं। वस्तुतः उनसे सारे मण्डप की पाटन भरी है जिसके बीच-बीच में रंगों की पट्टियाँ दे देकर एवं उनके बीच आयताकार विभिन्न स्थान निकाल कर ये आलेखन बने हैं, जो कई दृष्टियों से बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। खेद है कि न तो उनका समुचित संरक्षण हुआ है, न सफ़ाई। उनके प्रकाशन की बात तो दूर है। ऐसी अवस्था में उनमें से कितने ही खिरते जा रहे हैं। अतः उनमें से एक-एक की प्रतिकृति तो अविलम्ब तैयार हो जानी चाहिए, जिससे दैव-दुर्विपाक से यदि उनका मूल नष्ट हो भी जाय तो कम से कम उनके सौंदर्य का एक चयन तो वर्तमान रहेगा।

दूसरी गुफा की बाईं भित्ति पर बुद्ध-जन्म सम्बन्धी कई चित्र आते हैं जिनमें सर्वप्रथम राजमहल का दृश्य है, वहाँ शयनागार में सम्भवतः महामाया देवी सो रही हैं, उनके निकट दो-तीन दासियाँ बैठी हैं। कथा है कि उन्होंने स्वप्न में एक हाथी देखा। यहाँ एक सफेद गोल आकृति अंकित हुई है, इस प्रकार प्रतीक रूप में चित्रकार ने इस कथा का निरूपण किया है। इसी प्रकार दूसरे दृश्य में हम तुषित स्वर्ग में बोधिसत्व को पाते हैं, सिंहासन में दोनों ओर मकर की सुन्दर आकृतियाँ हैं जो अजन्ता के अन्य आलेखनों से पुष्ट हैं। बोधिसत्व के हाथ धर्म चक्र मुद्रा में हैं जिसकी उँगलियों की लिखाई अत्यन्त सुन्दर है। उनकी मुखमुद्रा में पर्याप्त गाम्भीर्य है और उनकी स्थिर दृष्टि चिन्तन प्रगट करती है। इस प्रकार उनकी आकृति से हमें पर्याप्त श्रद्धा उत्पन्न होती है। उनके पार्श्व में कई आकृतियाँ ससंभ्रम बैठी हैं जिनमें दो बहुत ही भक्तिपूर्ण टकटकी लगाए उन्हें देख रही हैं और दो बहुत ध्यानपूर्वक उनके उपदेशों को सुनती जान पड़ती हैं। उनके पीछे दो चामरग्राही व्यक्ति हैं जिनकी भंगिमा दर्शनीय है।

दूसरे दृश्य में हम महामाया और शुद्धोदन को पाते हैं, जहाँ सम्भवतः उक्त स्वप्न की चर्चा चल रही है। राजदम्पती और दासियों की भंगिमाएँ सुन्दर हैं। सम्भवतः सामने वाले दो व्यक्ति वे ब्राह्मण हैं जिन्होंने स्वप्न का महत्त्व बताया होगा। दाहिनी ओर कोने पर महामाया की भाँति ही रत्न-भूषणों से सज्जित एक आकृति खम्भे का सहारा लिए खड़ी है।

यह आकृति अपने भंग के कारण लतिका जैसी है। उसका एक पैर बड़ी स्वाभाविकता से मुड़ कर खम्भे पर टिका हुआ है जिससे उसका मध्य उससे तनिक दूर हो गया है फलतः शरीर का ऊपरी भाग खम्भे से सटा हुआ, उस पर आवृत्त है। क्वचित झुकी हुई गर्दन उसकी कोमलता प्रकट करती है। उसकी उँगलियों की मुद्रा से जान पड़ता है, जैसे वह किसी गणना में व्यस्त है। इस प्रकार यह आकृति अजन्ता की सर्वोत्तम आकृतियों में गिनी जाती है।

अजन्ता की गुफ़ाएँ

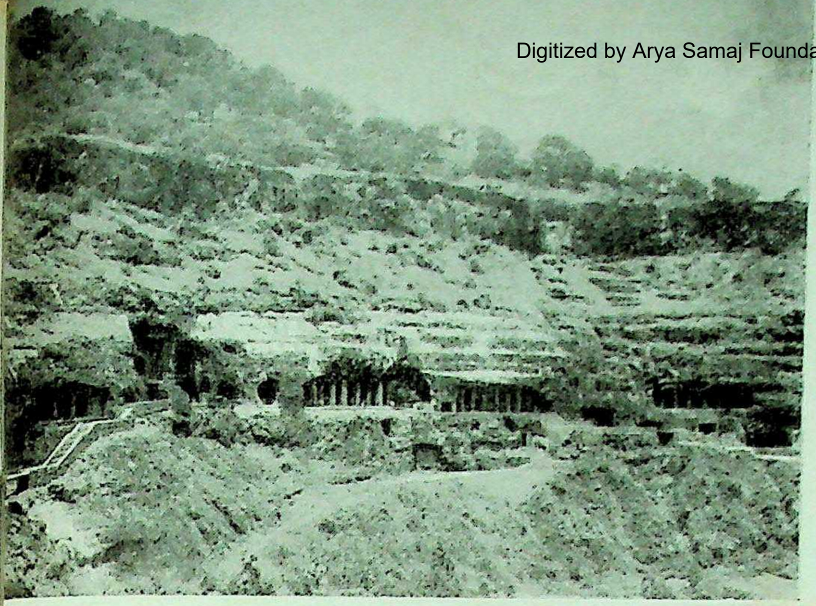

दूर से गुफ़ाओं
का सामान्य दृश्य

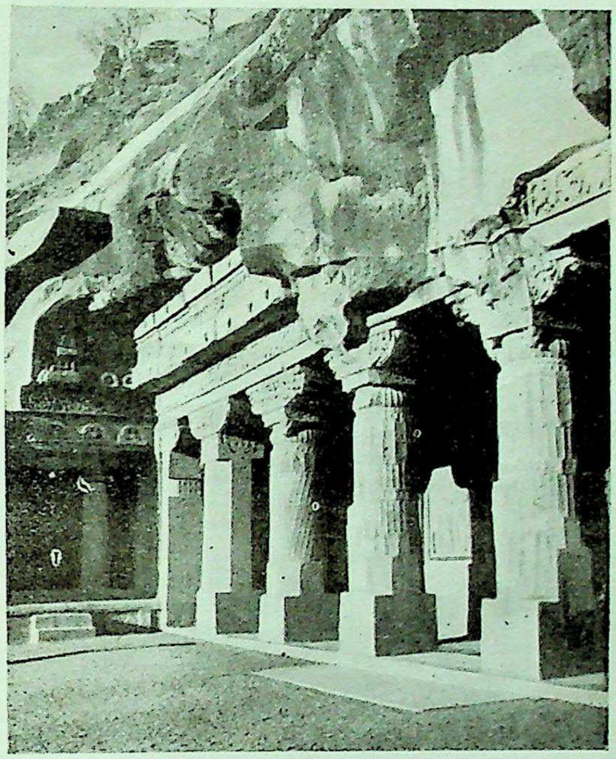

प्रथम गुफ़ा का बाह्य दृश्य

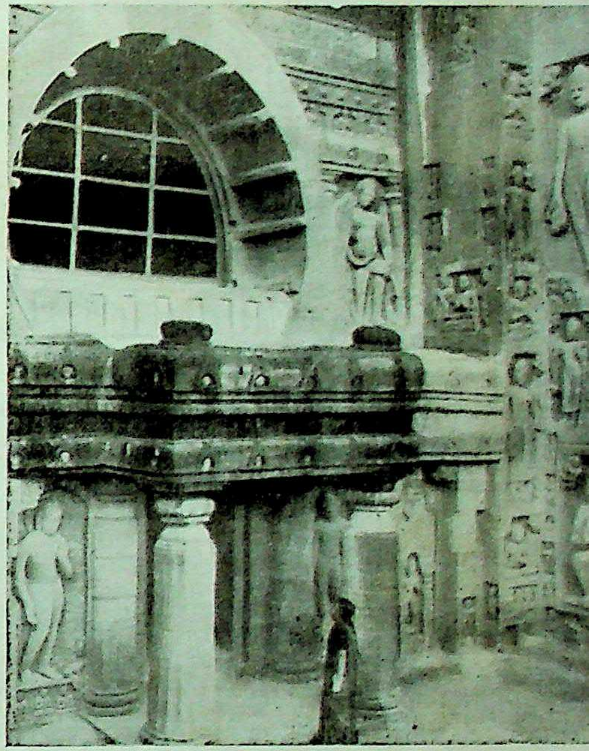

१९वीं गुफ़ा का प्रवेश द्वार

२०वीं गुफ़ा के दो प्रस्तर स्तम्भ

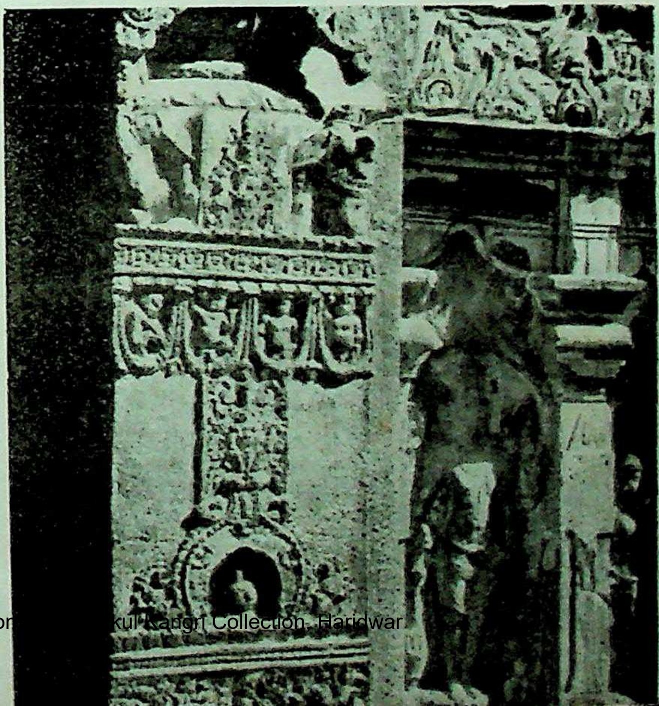

गुफ़ा का बाह्य दृश्य

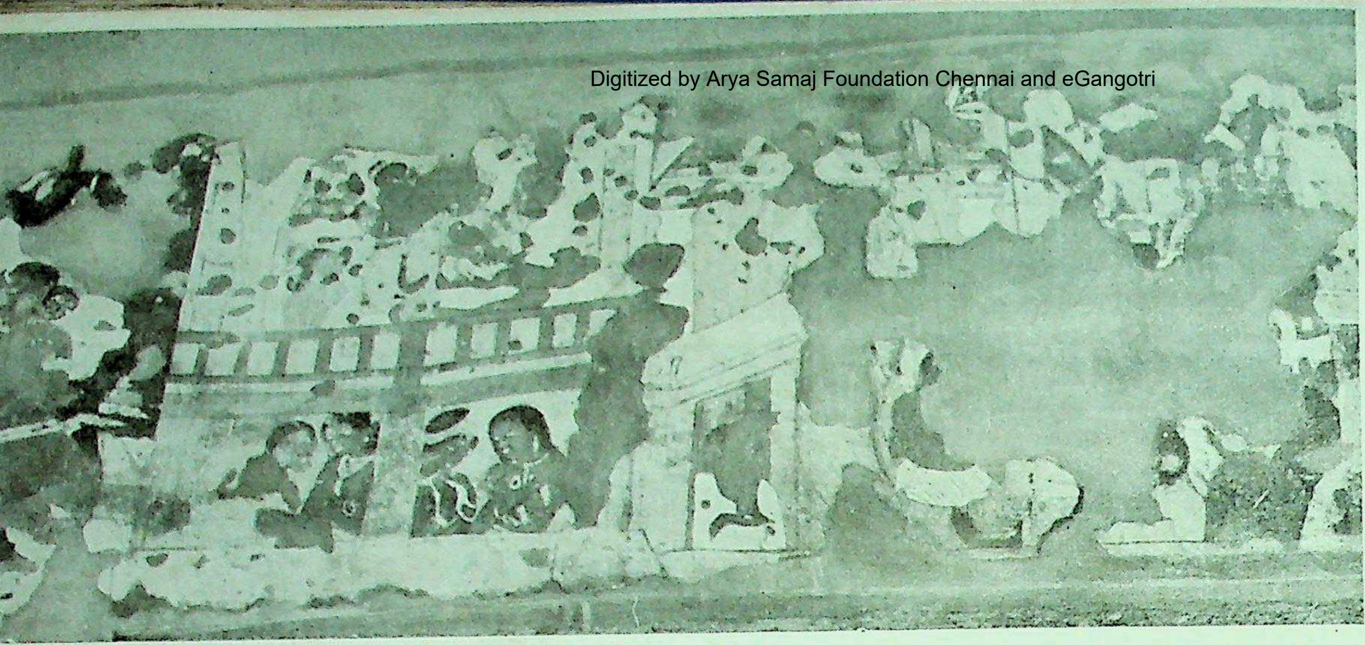

सत्रहवीं गुफ़ा में प्रमत्त हाथी की कथा का दृश्य

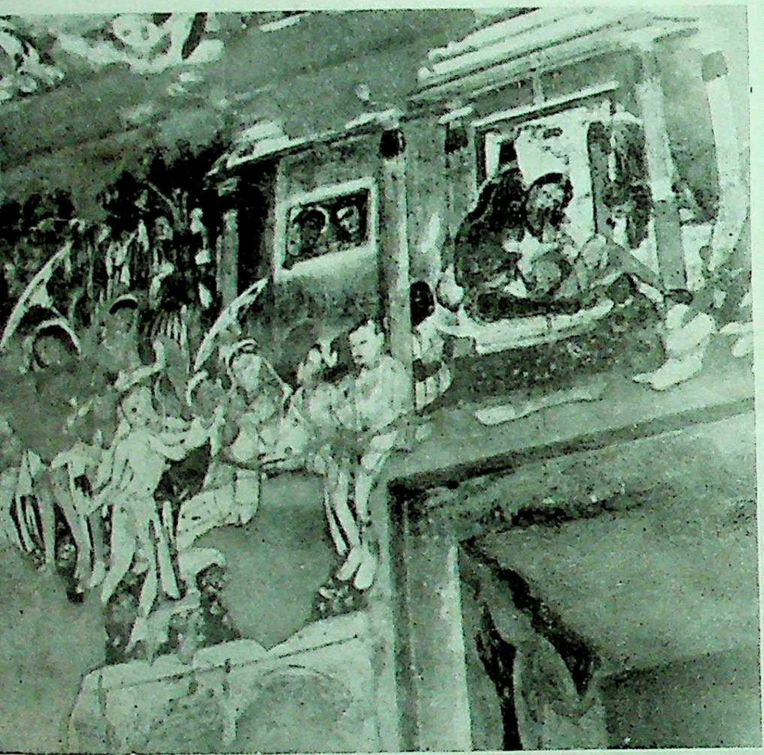

अजन्ता का एक भित्ति चित्र

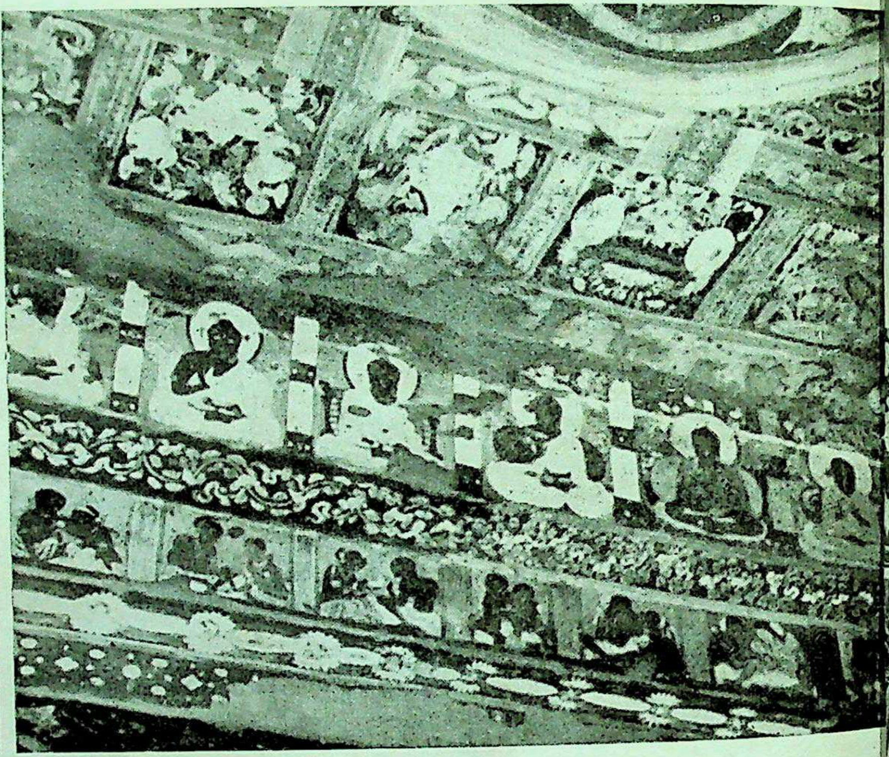

अजन्ता का एक भित्ति चित्र

गुफ़ा संख्या १ में नृत्य सम्बन्धी भित्ति चित्र

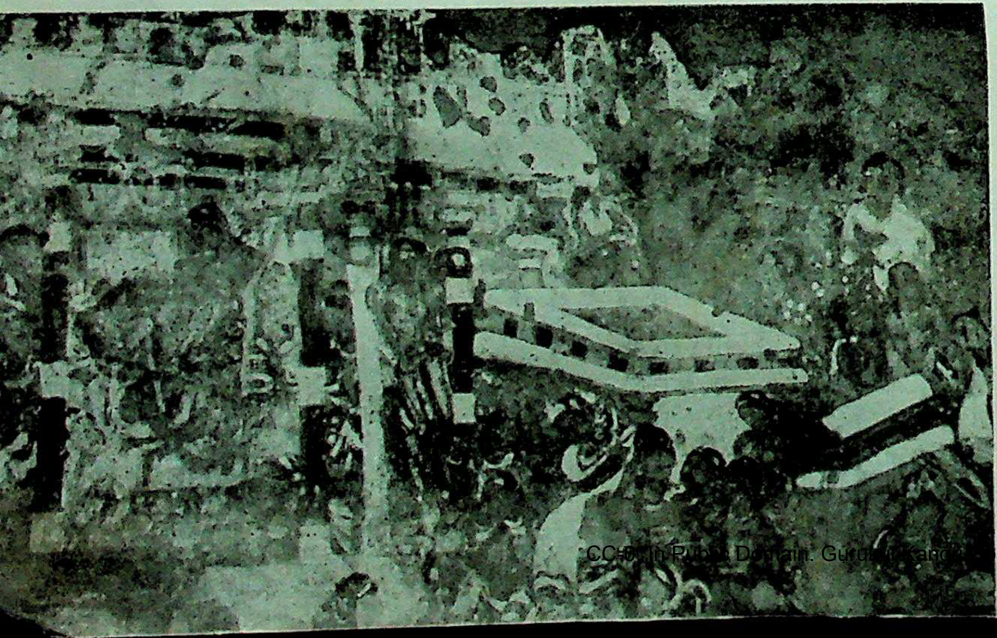

गुफ़ा संख्या १६ में मरणासन्न राजकुमारी का भित्ति चित्र

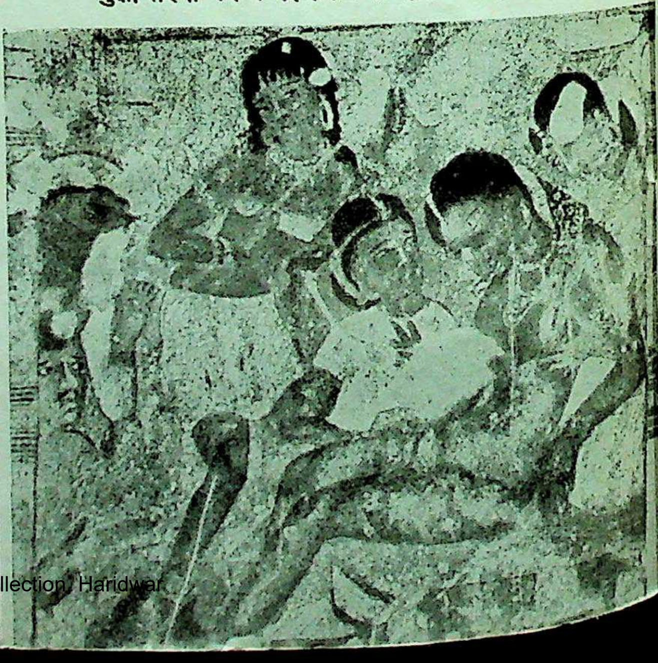

(इस पृ
आधार

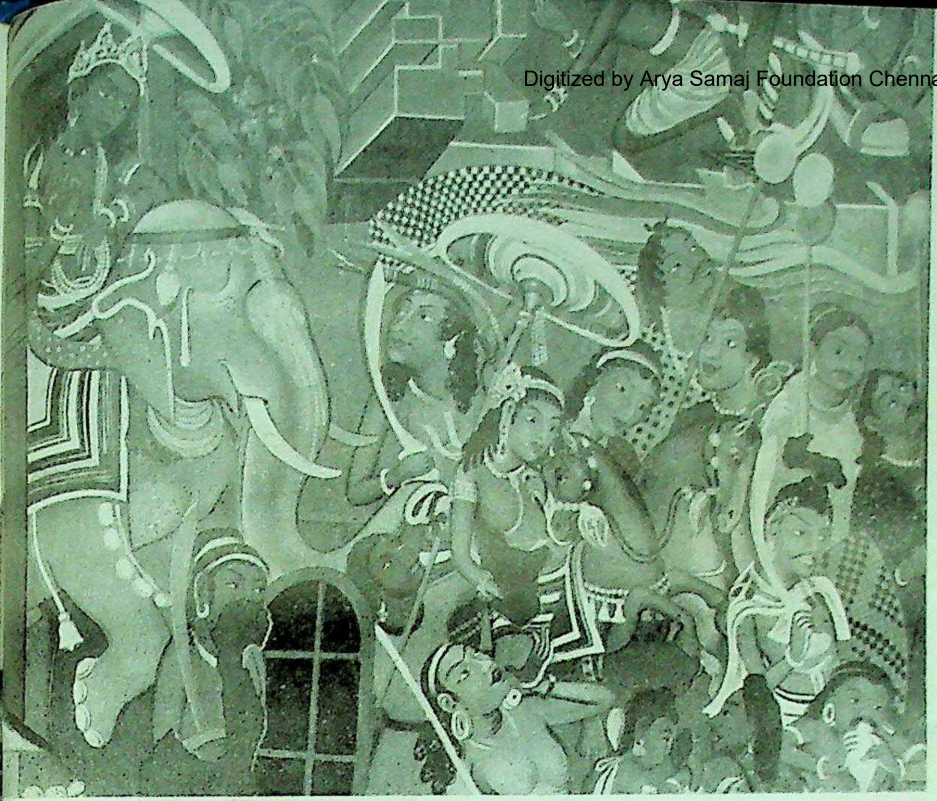

गुफ़ा संख्या १ में राजा के जुलूस का चित्र

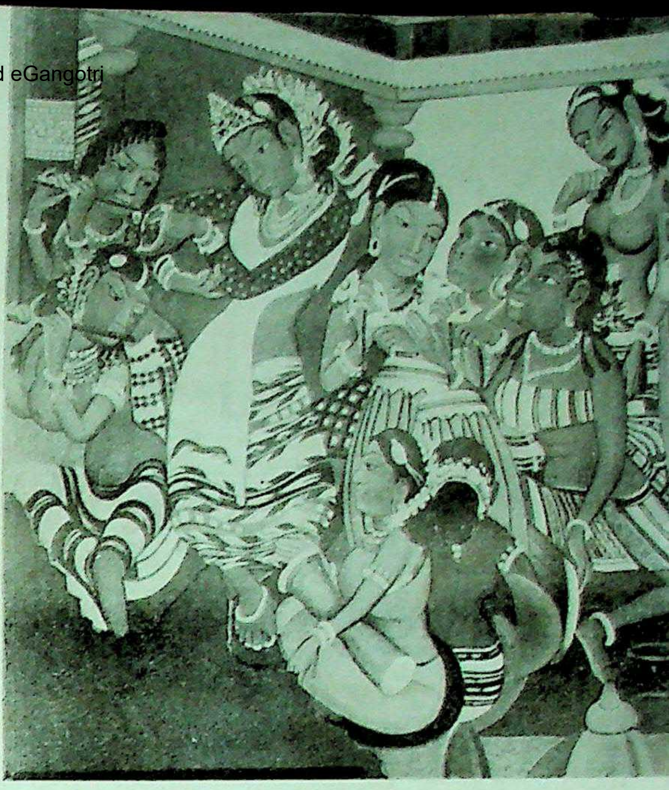

गुफ़ा संख्या १ में नृत्य का चित्र

छत की सज्जा

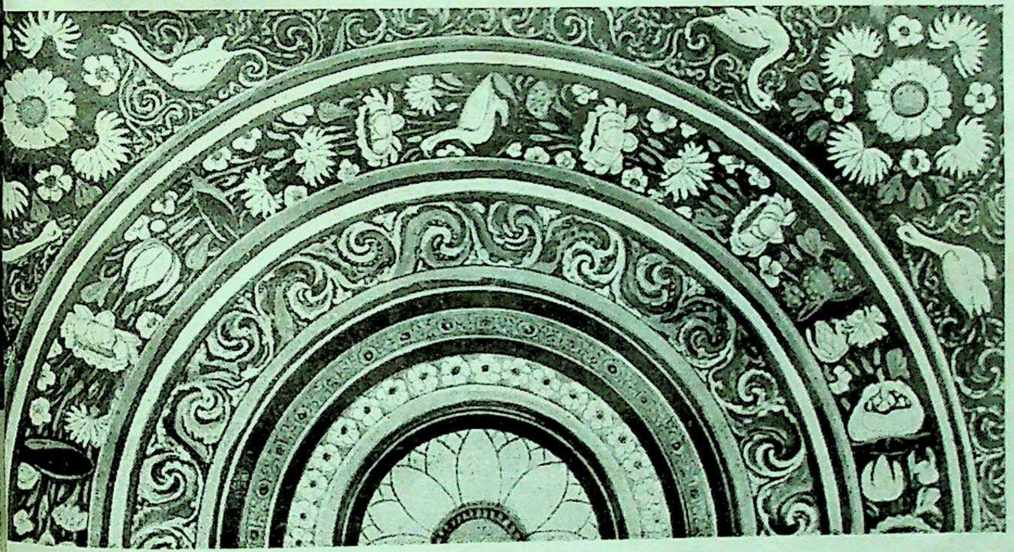

तथागत उपदेश देते हुए

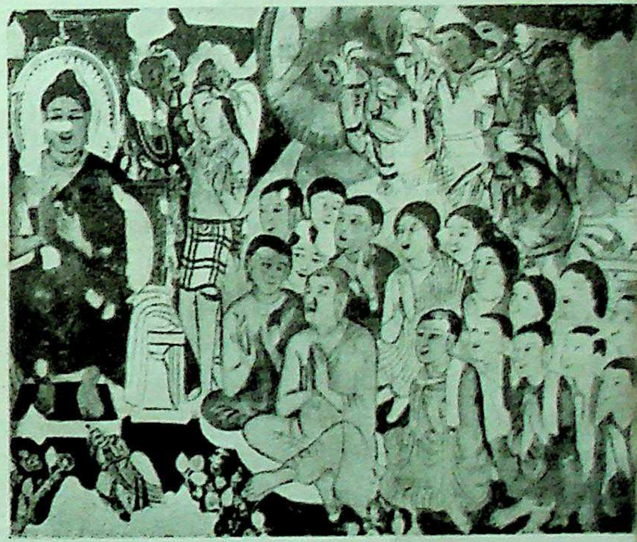

(इस पृष्ठ पर अजन्ता के चित्रों के आधार पर पुनर्निर्मित-चित्र हैं ।)

सम्राट पुरुकेशिन फारस के
राजदूत का स्वागत करते हुए
(अजन्ता का एक भित्ति चित्र)

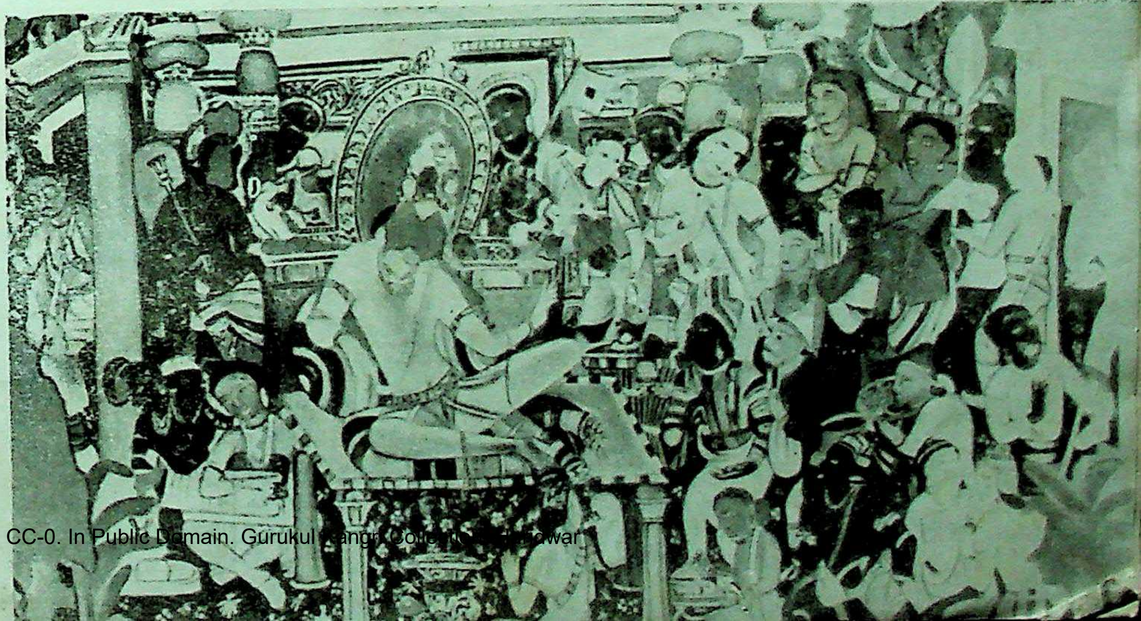

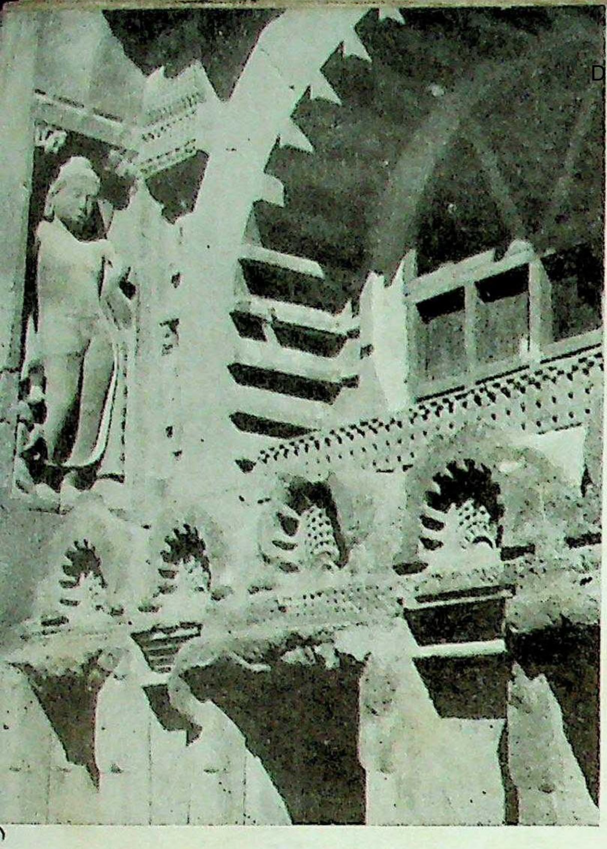

गुफ़ा का बाह्य दृश्य

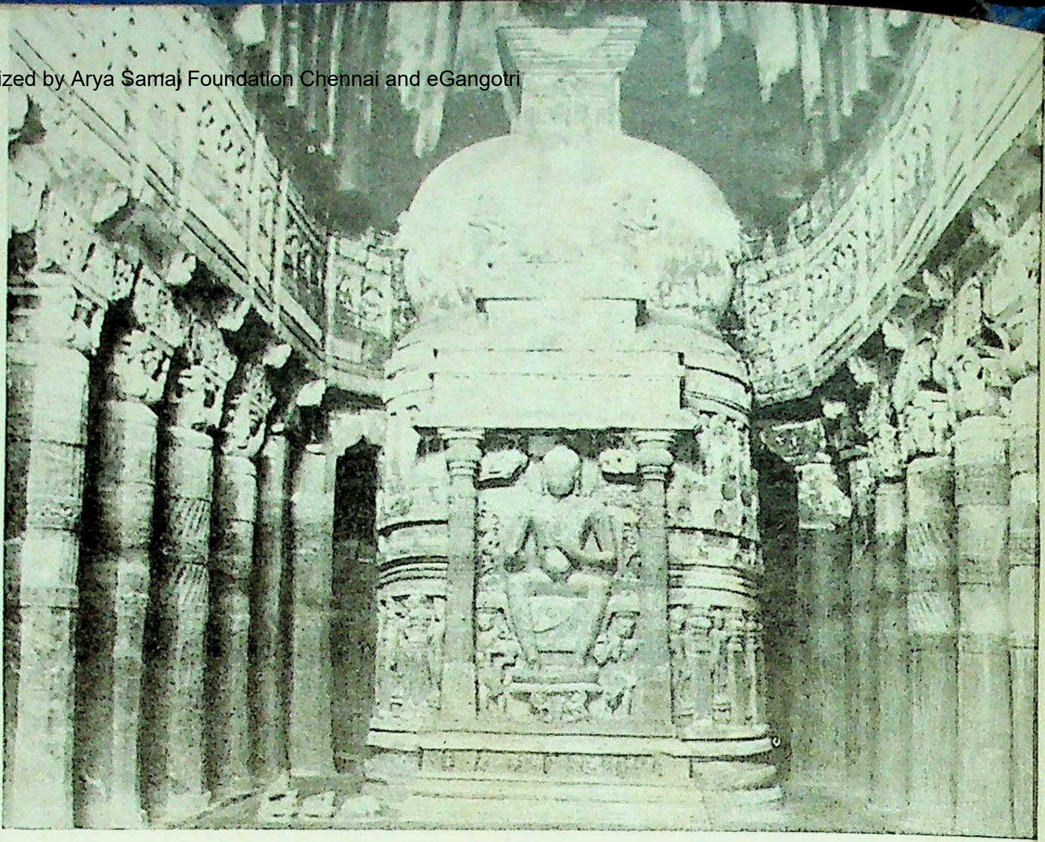

गुफ़ा के भीतर स्तूप

१९वीं गुफा में चैत्य मूर्त्तियाँ

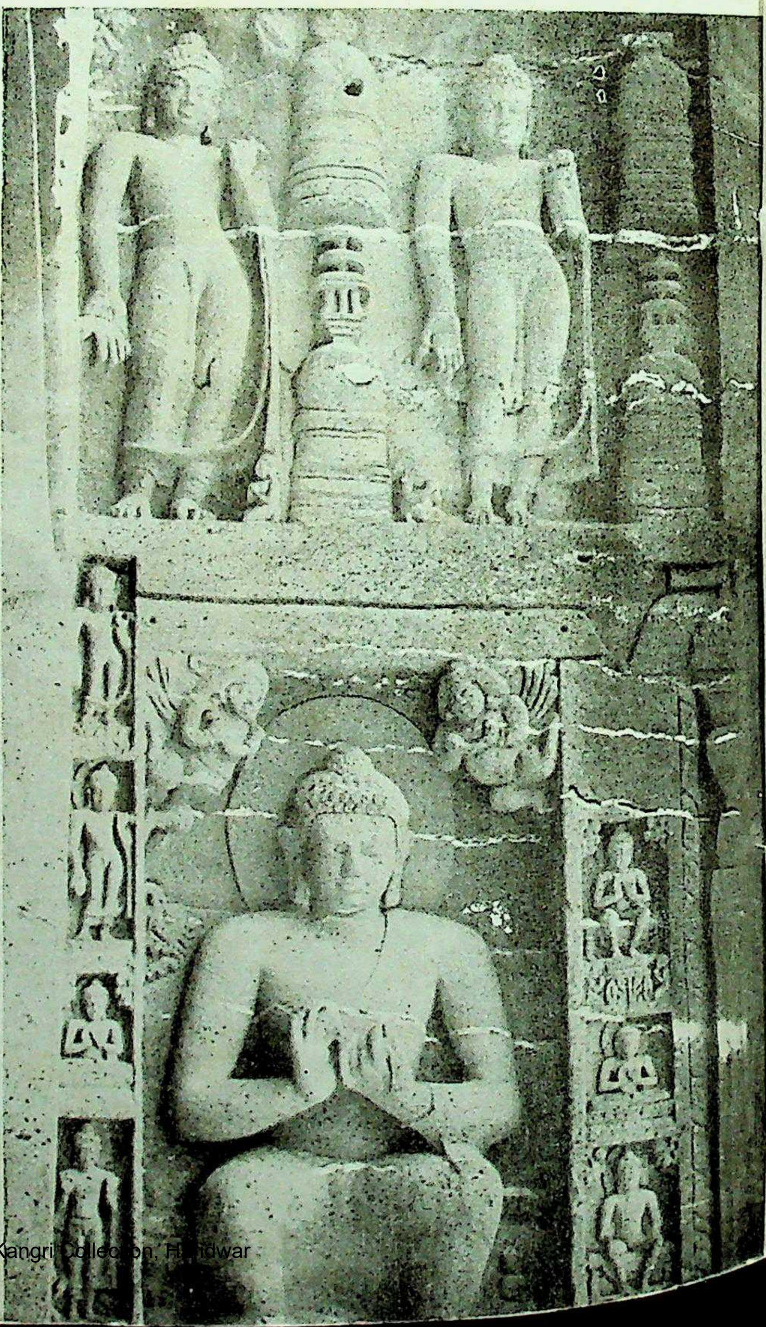

अजन्ता में 'नागराज' की मूर्त्ति

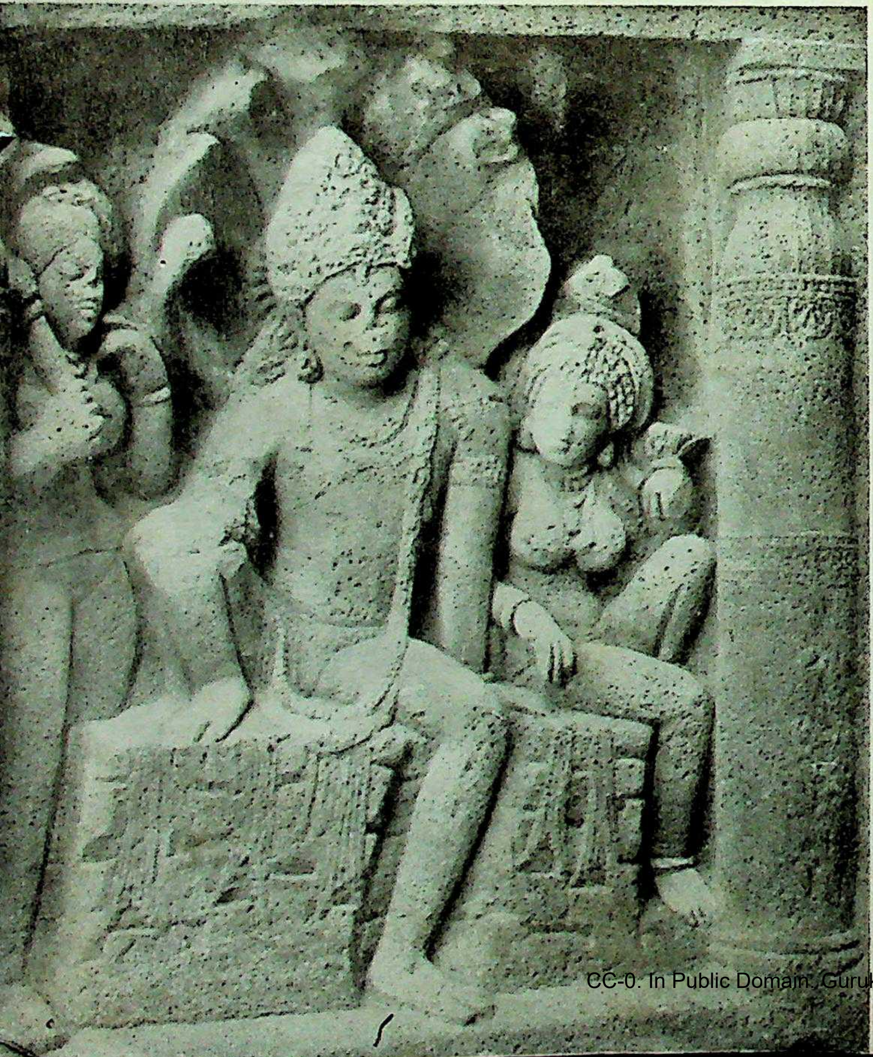

अगले दृश्य में हम नगर के बाहर उपवन में शाल वृक्ष की डाल पकड़े मायादेवी को उस रूप में पाते हैं जैसी बौद्ध ग्रंथों के अनुसार इस दृश्य की कल्पना है। नवजात बुद्ध को इन्द्र ने ग्रहण कर लिया है। उपवन के बाहर द्वार पर संतों की भीड़ लगी है। उसकी रेल-पेल का दृश्य जीवन्त है। उनमें विचित्र-विचित्र आकृतियों से अजन्ता के चित्रकार की विलक्षण सूझ-बूझ, कल्पना-शक्ति का पता चलता है।

दूसरी गुफा की बाईं भित्ति पर जो मुख्य आलेखन रह जाते हैं उनमें पहले विदुर पंडित जातक की चित्रावली आती है। अजन्ता में हमारे भाग्य से थोड़े चित्र बहुत कुछ सुरक्षित बच रहे हैं उनमें से यह एक चित्रावली है। इसके बाद ही रुरु जातक की चित्रावली थी जो अब नामाशेष रह गई है। हम यहाँ कथा एवं चित्रों के विस्तृत विवरण का लोभ संवरण कर इसकी दो-तीन प्रसिद्ध आकृतियों का ही वर्णन कर संतोष कर लेंगे। वस्तुतः इन चित्रों में हमें बड़े ही संपुंजन मिलते हैं जिनमें एक-एक में बीसों आकृतियाँ हैं। उनमें से प्रत्येक की व्यक्तिगत विशेषताओं, प्रकृतिय को बड़े ही श्लिष्टात्मक ढंग से चित्रकार ने उरेहा है। नमूने के लिये द्यूत का दृश्य लीजिये। इसके संपुंजन में—प्रत्येक आकृति को जुहाने में—चित्रकार ने दृश्य की स्वाभाविकता न जाने दी है। अर्थात इसी प्रकार वाली बाजाब्तगी के रहित बैठकों में जैसे लोग स्थान ले लेते हैं उसका ठीक-ठीक चित्रण यहाँ दीखता है। यह बैठने वालों की मुद्राओं से और भी स्पष्ट है। इनमें से एक का शरीर पासे फेंकने में आगे को बढ़ा हुआ देख कर चित्रकार की निरीक्षण शक्ति का पता चलता है। इस दृश्य में घोड़े के मांसल शरीर का भी बहुत अच्छा चित्रण हुआ है।

बीच में विदुर पंडित की सवारी का दृश्य भी अपनी पुष्ट लिखाई के कारण द्रष्टव्य है। यहाँ हम कृष्णवर्ण हस्ती का संभवतः पहली बार दर्शन करते हैं। जिस प्रकार सवार विदुर पंडित धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे हैं। उनके पार्श्व में एवं आगे घोड़े पर कई इतर आकृतियाँ हैं। इसके आगे नंगी तलवारें लिए हुए पदाति सेना का एक जत्था चल रहा है। यह दृश्य का सर्वोत्तम अंश माना जाता है। इस जोरदार अंकन में हम आगे बढ़ने की पर्याप्त गति पाते हैं, उनकी मुद्राओं में ओज विद्यमान है। इनमें नंगी तलवारों की चमकीली नीली रेखाएँ और चेहरों वाले ढालों की प्रधानता है। इस प्रकार अनायास ही एक तरह पैटर्न उपस्थित हो गया है जो दृश्य की भयानकता बढ़ा देता है।

अन्ततः इसमें झूला झूलती हुई एक राजकुमारी का भी सवेग चित्रण बहुत प्रसिद्ध हुआ है। चित्रकार ने उसके कौमार सौन्दर्य का तो चित्रण किया ही है, उसकी स्वाभाविक आँखों के चित्रण में कमाल कर दिया है।

दूसरी गुफा की दाहिनी भित्ति पर पूर्णावदान की कथा भी सुरक्षित है। इसका भी अधिकांश बचा हुआ है, जिसमें शूर्पारक के व्यापारिक केन्द्र, वहीं के समुद्र व्यापार आदि के दृश्य उपस्थित होते हैं। श्री याजदानी के अनुसार हम यहाँ कुछ भक्तों की भीड़ में सम्भवतः पूर्ण को बुद्ध के दर्शन करने जाते देखते हैं। इस चित्रावली के अतिरिक्त अजन्ता में सर्वत्र बुद्ध के पीछे प्रभा मण्डल का अंकन हुआ है फिर भी इस सन्त के चारों ओर जुटे समाज में भक्ति भावना पर्याप्त स्फुट हुई है।

नीचे पूर्ण के भाई भविल की समुद्र यात्रा का दृश्य है। यहाँ तूफान समुद्र का चित्रण आलंकारिक रूप से हुआ है। जिसमें दो नाग आकृतियाँ भी हैं। समुद्र की लिखाई आवर्तित रेखाओं के समूह से हुई है। यह शैली हमें भरहुत शैली से पान की लिखाई में प्रयुक्त हुई मिलती हुई है।

दूसरी गुफा का सर्वोत्कृष्ट चित्र गुफा के दाहिनी दीवार के सिरे पर ही है। यह अपने विस्तृत वर्ण विधान, पुष्ट आलेखन, भाव भंगिमाएँ और सर्वोपरि अत्यन्त मार्मिक दृश्य के कारण यह चित्र बहुत प्रसिद्ध हो चुका है। यह चित्र काफी टूट फूट गया है। फलतः इसकी अधिकांश मुखाकृतियाँ अन्तर्द्धान हो चुकी हैं। फिर भी इस दशा में भी उसके प्रत्येक भाव से हम परिचित हो जाते हैं वस्तुतः अजन्ता के आलेखनों में एक ऐसी भाषा प्रयुक्त हुई है जो बिना बोले ही हमें चित्रकार का सारा संदेश सुना देती है। उसकी कसौटी के लिए प्रस्तुत चित्र को लें। यह दृश्य यों तो अनभिज्ञात है पर हमें क्षान्तिवादक जातक में इस प्रकार काशिराज द्वारा सुन्दरियों के वध का वर्णन मिलता है। एक बार एक क्रूर काशिराज के रनिवास की स्त्रियाँ बोधिसत्व का उपदेश सुनने, उसे सोता छोड़ कर चली गईं। उन स्त्रियों को अनुपस्थित पा राजा क्रोध से पागल हो उठा और जब वे वापस आईं तो उनके एवं बोधिसत्व के वध की आज्ञा दे डाली। बोधिसत्व उस जन्म में क्षान्तिवादन मुनि थे आदि, आदि। यहाँ इसके विपरीत इतना ही कि बोधिसत्व को मुनि के रूप में न अंकित करके राजस् रूप में अंकित किया है, जैसा अजन्ता में ही हम कई बार देख चुके हैं।

इस प्रकार इस दृश्य में नीचे वाला दृश्य पहली घटना से सम्बंधित होगा जिसमें बोधिसत्व के आश्रम में हम राजस्त्रियों को पाते हैं। अतः दोनों चित्रों की आकृतियाँ बहुत ही खंडित हैं, अतः दोनों में आकृतियों का सामंजस्य स्थापित करना कठिन है। इस चित्र में दो आकृतियाँ बहुत ही विशिष्ट कोटि की हैं। एक आकृति तो एक वृद्ध भिक्षु की है जिसकी आँखों में सारे संसार का अनुभव और उससे जन्य निराशा एवं अवस्था सभी प्रतिफलित हो रहे हैं। उसका बायाँ हाथ ठोड़ी से चिन्ता की मुद्रा में टिका हुआ है और दाहिना इस प्रकार घूमा हुआ है, मानो सब कुछ नष्ट हो गया हो। इस व्याख्या के अनुसार कला प्रेमियों ने इसे राजदूत मंत्री आदि बना दिया है जो किसी सर्वनाश की सूचना दे रहे हैं। परन्तु यह सब वैराग्य सूचक मात्र ही जान पड़ता है। उसके पीछे खम्भे का सहारा लेकर एक सुन्दरी खड़ी है जिसकी देह की कोमलता उसकी भंगिमा एवं घूमे हुए चेहरे से झलकती है। सब से विलक्षण तो उसकी आँखें हैं जो इस दृश्य की ओर घूमते हुए चूड़ान्त तक पहुँच गई हैं, मानों अब वे वापस घूमना ही चाहती हों।

ऊपर के दृश्य में बड़ा भयानक वातावरण है। एक दीर्घवपुष राजा सिंहासन पर बैठा है जो अपने दृढ़ हाथों में तलवार लिए एक कोमलांगी का वध करने पर उद्यत है जो पैरों पर गिर-गिर कर क्षमा याचना कर रही है। राजा के दृढ़ शरीर की तुलना से सुन्दरी का कोमल वपु

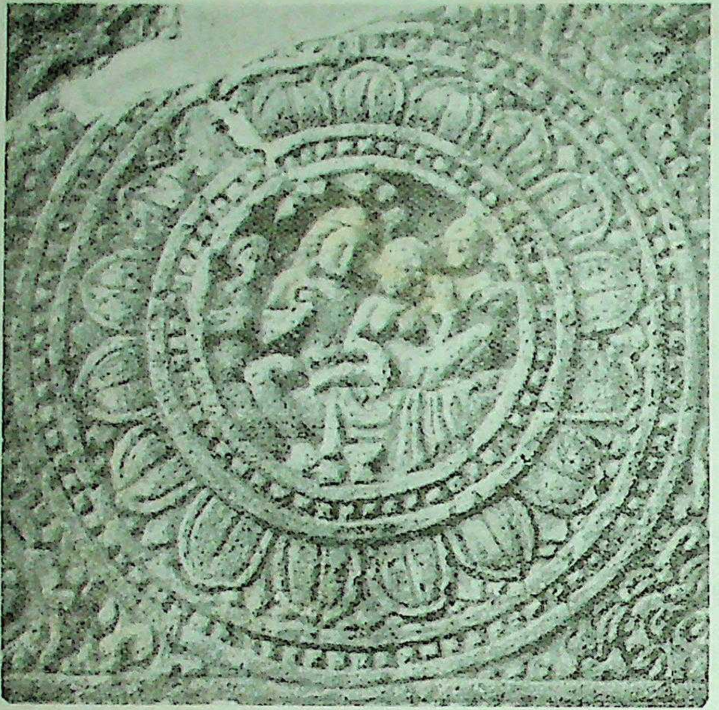

अजन्ता : छत पर चित्रकारी

दर्शनीय है, चारों ओर की स्त्रियाँ भय से त्रस्त हैं। एक भाग रही है दूसरी ने सम्भवतः अपना मुँह छिपा लिया है । तीसरी सोच में निमग्न है।

यहाँ बुद्ध के चित्रों में भी एक चित्र में दया करुणा का अच्छा अंकन हुआ है। यहीं मार विजय का भी दृश्य है जो अपनी भयंकर आकृतियों के कारण बहुत प्रसिद्ध हुआ है। यह बहुत खण्डित हो गया है। सर्वोपरि एक बुद्ध मूर्त्ति के पार्श्व में एक भक्त का चित्र यहाँ है जो भक्ति भावना का बहुत सुन्दर उदाहरण है । उसकी अधखुली आँखें जिनमें प्रार्थना और दासत्व का भाव है बैठने की मुद्रा एवं कमल का समर्पण करने का भाव बड़ा ही स्वाभाविक बना है। यह चित्र अजन्ता के विशिष्ट आलेखनों में रखा जा सकता है क्योंकि चित्रकार की रेखाएँ सपाटे से सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई अनायास चली जा रही हैं। फलतः रेखाओं की जैसी स्वल्पता इस चित्र में है वैसी भारतीय इतिहास के चित्रों में दुर्लभ है। अंगों के डौल दिखलाने के लिए उनका समुचित प्रयोग हुआ है। अतः दो-तीन रंगों के प्रयोग से ही चित्रकार ने सजीवता की समुचित सृष्टि कर दी है। दो-एक रेखाओं से वस्त्रों की सिलवटें दिखलाना वह नहीं भूला एवं खल्वाट सिर को चेहरे के रंग से भिन्न बनाने के लिए उसने तनिक साया भी दी है।

नवीं और दसवीं गुफाएँ अपेक्षाकृत पूर्ववर्ती जान पड़ती हैं जैसा उनके वास्तु से स्पष्ट है। दसवीं गुफा में एक शिलालेख है जिसे विद्वानों ने दूसरी शती ई० पूर्व का मान लिया है। नवीं और दसवीं गुफा के चित्रों में बहुत साम्य है और वे समकालीन जान पड़ती हैं। इतना ही नहीं तत्कालीन मूर्त्तियों एवं वास्तु की शैलियों से इनकी निकटता है।

नवीं गुफा में इस प्रकार के जो दृश्य हैं उनमें मुरैठा जिनमें आगे लट्टू जैसा निकला रहता है जिसे कम्बु कहते हैं बाँधे पुरुषों का एक दल चित्रित है। हमें आंध्र मूर्त्तियों में ऐसे मुरैठे मिलते हैं। यह अपने भारी एवं चौखूँटे चेहरों, मोती की मोटी माला जिनमें चौखूँटे टिकरे हैं, कान के बड़े-बड़े आभूषण, हाथों में मोटे कड़े, कमर में डेढ़ गाँठ वाले कमरबन्द आदि से, एवं निकले पेट से तत्कालीन आंध्र मूर्त्तियों के ही निकट नहीं हैं वरन् उनसे प्राचीन यक्ष मूर्त्तियों की परम्परा भी विद्यमान है। गुफा में घुसते ही बाएँ हाथ कुछ लेख भी हैं जो ई० पू० की लिपि में जान पड़ते हैं।

यह दल एक स्तूप की ओर बढ़ रहा है जिसका तोरण तत्कालीन परम्परा में है। स्तूप भी अर्धवृत्ताकार है, पिछले स्तूपों की भाँति उसमें ऊँचाई नहीं। अन्य वास्तुओं पर गजपृष्ठाकृति छतें हैं। यह सब ई० पू० की विशेषतायें हैं।

इन चित्रों के अंकन में भी कुछ विशेषताएँ हैं जो उन्हें गुप्तकालीन चित्रों से अलग कर देते हैं। उनमें कुल तान-चार ही रंगों का प्रयोग हुआ है। जैसे काला, पीला, हिरौंजी, हरा आदि। फलतः वर्ण विधान संकुचित है, इतना ही नहीं प्रायः सभी चेहरे एक से हैं जिनमें एक व्यक्ति का दूसरे से अन्तर करना कठिन है, जिन्हें हम अव्यक्तिवाचक चेहरे कह सकते हैं। खुलाई स्याही में हुई है। उनमें भंग का अभाव है और उनकी मुद्राएँ एक सी हैं एवं हस्त मुद्राओं का विकास नहीं हुआ है। उनकी आँखें भी भावशून्य हैं। इस प्रकार छाया पुरुष की भाँति हमारे सामने खड़े हो जाते हैं। यह भी लक्ष्य करना अनुचित न होगा कि यहाँ हाथों और ओंठों पर सिन्दूर लगाने की प्रक्रिया मिलती है जो गुप्तकाल में भी मिलती है। कहीं-कहीं सील खा जाने के कारण यदि वह रंग फीका व काला पड़ गया है तो विद्वानों ने उसके अनेक अर्थ लगाए हैं जैसे काली राजकुमारी अथवा बीमार सुन्दरी आदि। (याजदानी पृ० २२ टिप्पणी १)

इन चित्रों की एक विशेषता और है कि पृष्ठभूमि में वृक्षों का अंकन यथार्थवादी हुआ है जो भरहुत वाली शैली से भिन्न है। भिन्न-भिन्न वृक्षों के संदर्भ से यह बात ठीक-ठीक प्रकट होती है। दसवीं गुफा के छदन्त जातक की चित्रावली में यह बहुत ही स्फुट हुआ है। यहाँ वन के कई सुन्दर दृश्य आते हैं जिनके बीच एक कमलवन में बोधिसत्व गजराज छदन्त के रूप में विहार कर रहे हैं। यहाँ हाथियों की मुद्रा और उनके स्वभाव का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। ऐसे में ही काशिराज के भेजे दो व्याध आते हैं, जो आड़ में खड़े यह सब देख रहे हैं। अन्ततः उनका मन भी पिघल जाता है और वे गजराज के छः दाँत मात्र लेकर लौट पड़ते हैं। काशी की रानी उन छः दाँतों को देख कर मूर्छित हो उठती है—उसने पूर्वजन्म का प्रतिशोध जो लिया था। ऐसे करुण वातावरण को चित्रित करने की क्षमता अजन्ता के ही चित्रकार में थी। खेद है हमारे देशवासियों ने अपने नाम खुरच-खुरच कर इनका अधिकांश नष्ट कर दिया है। यहीं श्याम जातक के सुन्दर चित्र थे।

इन पूर्ववर्ती चित्रों के अतिरिक्त नवीं-दसवीं गुफाओं में कुछ गुप्तकालीन सुन्दर चित्र भी हैं। दसवीं गुफा के खम्भों पर खड़े हुए बुद्ध की कई आकृतियाँ बच रही हैं—इनकी आँखों से सहज करुणा का

भाव टपकता है। इनमें दो एक गान्धार शैली की भी हैं। यह पश्चिमी भारत का उत्तर-पश्चिम से सीधा व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण ही जान पड़ता है।

सोलहवीं गुफा में गुप्तकाल के विशिष्ट चित्र प्राप्त होते हैं। इस गुफा के खम्भों और उनकी घुड़ियों की आकृतियों में भी विशिष्टता है जिनमें हम तत्कालीन मूर्त्तियों के सर्वश्रेष्ठ नमूने देखते हैं। जान पड़ता है इस गुफा के और सत्रहवीं गुफा के निर्माण का काल हमारे देश का स्वर्ण युग था। खेद है कि सोलहवीं गुफा के कई महत्वपूर्ण चित्र बुरी तरह नष्ट हो गये हैं। इनमें बुद्ध का तुषित स्वर्ग से अवतरण और सुतसोम जातक के चित्र आते हैं। ये चित्र नष्ट न हो गये होते तो गुप्तकालीन अच्छे चित्रों में रखने योग्य थे। यहाँ हस्ति जातक सम्बन्धी चित्र भी इसी कोटि के थे।

सोलहवीं गुफा का सबसे प्रसिद्ध अंकन 'म्रियमाण रानी' के रूप में प्रकट होता है। यहाँ नन्द की परित्यक्ता पत्नी की विरह व्याकुलता प्रकट हुई है। उसकी कमल जैसी आँखें व्यथा से मुँदी जा रही हैं, उसका मुख मुरझा कर झुक गया है और उसका सुडौल शरीर जैसे आपे में नहीं है– वह निढाल हुआ जा रहा है। सारा ऐश्वर्य, सुन्दरी सखियों का झुंड, उसे तनिक भी स्वस्थ करने में समर्थ नहीं। वस्तुत: सारा समाज चिन्ता में डूबा हुआ है—प्रत्येक के मुख पर दुख, निराशा, भय के भिन्न भिन्न भाव बहुत ही अच्छी तरह प्रकट हुए हैं। इसके पार्श्व में नन्द के धर्म परिवर्तन की कथा, इस हृदयविदारक दृश्य से निरपेक्ष चलती रहती है।

इसी दृश्य में केले के वृक्ष बनाने में उसकी सुकुमारता तथा हरीतिमा प्रकट करने में चित्रकार ने कमाल दिखलाया है। अजन्ता में अन्यत्र एक स्थल पर केले का और भी अच्छा अंकन हुआ है, जिसमें उसके नये पत्तों का घुमाव, उसके जीर्ण-शीर्ण पुराने पत्ते दोनों के अंकन में चित्रकार ने समान रूप से रस लिया है।

यहीं बुद्ध उपदेश का दृश्य है जो ग्रिफिन्स के काल तक काफी बचा हुआ था। पर अब अधिकांश खिर चुका है। इसमें बुद्ध की शान्त स्मित मुद्रा एवं उपदेश के रस में निमग्न श्रोताओं की आकृतियाँ दर्शनीय हैं।

सोलहवीं गुफा में अन्य दृश्य हैं। सुजाता का खीर अर्पण, गृहत्याग के पूर्व वाले चार दृश्य, महामाया का स्वप्न। अन्तिम चित्रावली में आकृतियाँ बहुत ही सुष्ठु बनी हैं, उनकी आँखों में एक सप्रेषणीयता है—वे चुपचाप हमें कुछ कह जाती हैं।

सत्रहवीं गुफा के चित्र अजन्ता के सर्वश्रेष्ठ आलेखनों में से हैं पर खेद, इनका वहाँ तक अंश नष्ट हो गया है, जहाँ तक हमारे कौतुकप्रिय देशवासियों का हाथ पहुँच सकता था, अन्यथा यहाँ हमें दो एक बोधिसत्वों की और सम्पूर्ण आकृतियाँ मिलतीं, जिनके अब मुकुट और पृष्ठिकाएँ बच गई हैं। सौभाग्यवश इन्हीं पृष्ठिकाओं में एक स्थान पर दिव्य गायकों का समूह बच रहा है जिसकी आज संसार के सर्वश्रेष्ठ चित्रों में गणना की जा सकती है। यह दृश्य इस गुफा के बाहर ही बना है और प्राय: इसके द्वार के ऊपर ही स्थित है। इसमें एक और इन दिव्य गायकों के उड़ने का भाव एवं दूसरी ओर गान में तन्मय गंधर्व की मुख मुद्रा—उसकी तनिक संकुचित भौंह, हिलते से ओंठ एवं अधमुँदी आँखें बनाने में चित्रकार ने अभूतपूर्व मार्मिकता का परिचय दिया है और परिचय दिया है निसर्ग-निरीक्षण का उसके साथ अन्य समाज के चित्रण में भी विशिष्टता है—जैसे लता की भाँति झूमी हुई उस महिला का जो वेणु बजा रही है।

द्वार की दूसरी ओर पाटन पर उड़ते हुए एक समूह में एक गंधर्व की झूमी हुई निश्चल आँखें और सुडौल मुखमंडल में अजन्ता के चित्रकार की विशिष्टता प्रकट होती है। इस प्रकार यह अजन्ता के सुन्दर आलेखनों में से है। उसके आगे बढ़ने की गति में, उसका आभूषण पीछे की ओर तनिक झुक गया है जिससे चित्र की स्वाभाविकता और भी बढ़ जाती है। उसके हाथों में मंजरिक है—जिनके कारण उसके हाथों की मुद्रा चित्रकार ने इस भाँति रखी है, मानो अब वह ताल देना ही चाहता है फलतः ताल की एक लय सी बँध गई है। उसकी कोमल उँगलियों

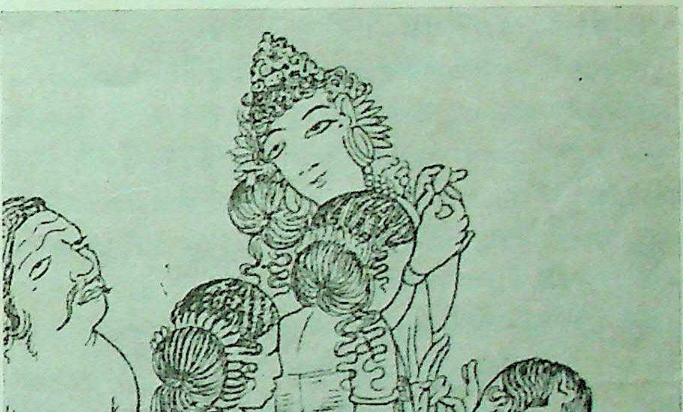

अजन्ता : (गुफा संख्या १७ में) संगीत वादक

की मुड़ान में एक प्रस्फुटित होते हुए कमल का भान होता है। इस प्रकार सचमुच यह चित्र अजन्ता के सर्वश्रेष्ठ आलेखनों में से है।

सत्रहवीं गुफा के द्वार के ठीक ऊपर प्रेमालाप में लीन कई दम्पतियों के चित्र हैं। ये मांगलिक माने जाते थे अतः द्वार पर इनका आलेखन आवश्यक होता। परवर्ती काल में इन्हीं के स्खलित रूप में हमें मध्यकालीन मन्दिरों के वास्तुओं पर अश्लील आकृतियाँ मिलने लगती हैं। यहाँ इन आकृतियों में शृंगार के विभिन्न पक्षों को स्फुट करने में कलाकार ने बहुत सफलता प्राप्त की है।

यहीं अलिन्द में एक ओर एक राजदम्पती बैठे हैं उनकी आँखें प्रेमासव से छकी हैं। दूसरी ओर वे अपने अनुचरों के साथ बाहर जा रहे हैं। सारे दृश्य में जीवन उच्छलित हो रहा है।

सत्रहवीं गुफा के भीतर भी कई उत्कृष्ट गुप्तकालीन चित्र आते हैं। इनमें एक स्थान पर राजद्वार पर मंगतों की भीड़ लगी है। इसमें भिन्न-भिन्न चेहरे बनाने में चित्रकार ने विशेष क्षमता प्रकट की है। उस काल में साधुओं के कैसे-कैसे रूप होते थे इसे जानने का भी यह बड़ा अच्छा साधन है। यहीं दुष्ट हाथी नलगिरि के दमन का दृश्य है जो बुद्ध जीवनी का एक अंश भी है।

इस गुफा में छदन्त जातक है और है कपि जातक जिसमें वन के सुन्दर दृश्य और अच्छी भीड़-भाड़ है। इसी कोटि के चित्र हंस जातक के हैं। इसमें सरोवर में हंसों की चेष्टाएँ, विशेष रूप से पाँव फैलाये, आँखें निकाले मुँह खोले भयभीत हंसों की चेष्टाएँ विशेष रूप से लक्ष्य हैं।

यहीं माता-पुत्र का लोक विश्रुत चित्र है। भगवान बुद्ध बुद्धत्व प्राप्ति के बाद एक बार कपिलवस्तु भिक्षा माँगते आए और अभागिनी यशोधरा के प्रासाद के नीचे से निकले। जान पड़ता है यह चित्र उसी अवसर का है। यहाँ एक अति मानवाकार विशाल आकृति है जो निर्विकार शान्त खड़ी है। उसके हाथ में भिक्षापात्र है और वह मानों भिक्षा लेने के लिए आगे बढ़ा हुआ है। बुद्ध की इस बड़ी आकृति के सामने हम अपने द्वार पर एक स्त्री को पाते हैं, जो अपेक्षाकृत छोटे आकार में है। इस प्रकार चित्रकार ने दिखाया है कि यशोधरा के हाथों में एक बालक राहुल है, जिसे वे बुद्धदेव को अर्पित कर रही हैं। उस अकिंचन स्त्री के पास राहुल से बढ़ कर कौन सी भेंट हो भी सकती थी।

यशोधरा के प्यासे नेत्र बुद्ध को अपलक देख रहे हैं, उनमें सारे जीवन की व्यथा छिपी हुई है। दूसरी ओर, राहुल ससंभ्रम बुद्धदेव को निहार रहा है, जो इस प्रथम दर्शन के समय स्वाभाविक ही था।

सत्रहवीं गुफा में अनेक जातक आते हैं—जैसे श्याम जातक, मृग जातक, कपि जातक, मत्स्य जातक, सुतसोम जातक आदि, साथ ही आते हैं—बुद्ध जीवनी के अनेक दृश्य, जैसे श्रावस्ती का चमत्कार, तुषित स्वर्ग में प्रवचन, माता-पुत्र (जिसकी ऊपर चर्चा हो चुकी है) आदि। इनमें भिन्न-भिन्न वर्ग के व्यक्तियों के ही, नहीं भिन्न-भिन्न पशुओं के भी निरीक्षण में, उनके स्वभावों के अंकन में चित्रकार ने अद्भुत क्षमता दिखलाई है। पर इनमें भी 'वेस्सन्तर जातक' के आलेखन में तो चित्रकार ने कमाल कर दिखलाया है। इसमें भिन्न-भिन्न अवसरों पर आए हुए भिन्न वर्गों के चित्रणों में कल्पना की अपूर्व उर्वरता है, इस जातक के विस्तृत क्षेत्र में उसे राजमहल, नगर वन, तड़ाग, पर्वत आदि के अंकनों का अवसर भी यथेष्ट मिला है। इस पृष्ठभूमि में मानव आकृतियाँ अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करती हैं।

पहले हमें राज सभा का दृश्य मिलता है। इसमें केशप्रसाधन करती हुई एक सखी का मुड़ कर दर्शक की ओर देखना अपने लालित्य के कारण लोक प्रसिद्ध हो चुका है। दूसरे दृश्य में धूमधाम से राजा की सवारी निकल रही है। इस भीड़-भाड़ से आगे बढ़ कर हम उस दृश्य पर पहुँचते हैं जो चूडान्त माना जा सकता है। यहाँ हम प्रियदर्शन राजकुमार वैश्वान्तर को तापस वेश में पर्णकुटी के भीतर बैठा पाते हैं। उन्होंने अपनी दानवृत्ति के कारण अपना सब कुछ त्याग दिया था। ऐसे अवसर पर एक ब्राह्मण उपस्थित होता है। अजन्ता के कलाकार की ऐसे लोभी मंगते ब्राह्मणों के प्रति क्या प्रतिक्रिया रही होगी, यह इस आकृति से स्पष्ट है। यह अर्ध खल्वाट व्यक्ति, दाढ़ी भी हफ्तों से बढ़ी है, दाँत निपोर कर वैश्वान्तर से उनकी एक मात्र निधि उनके दो कोमल कुमारों की याचना कर रहा है। सचमुच, अजन्ता का चित्रकार 'सुन्दर' को बनाने में ही सफल न था, उसे 'असुन्दर' के निर्माण में भी उतना ही आनन्द मिलता था। 'सुन्दर' और 'असुन्दर' के द्वंद्व से वह ऊपर उठ गया था।

उधर मांसल, प्रियदर्शन और पितृभक्त कुमार वैश्वान्तर की ओर इस प्रतीक्षा में देख रहा है कि ये कब आज्ञा दें और मैं कब उसे पूरी करूँ।

यहीं मातृपोषक जातक के भी अंकन हैं, जहाँ बोधिसत्व अपने अंधे माता-पिता से बिछुड़ कर बंदी हो गए थे। अन्तिम दृश्य में वे फिर आ मिलते हैं। उनके माँ-बाप अपनी सूँडों से उन्हें सहला-सहला कर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं। हाथियों के स्वभाव एवं अंधे माता पिता के स्नेह दोनों को एक साथ इस प्रकार व्यक्त करने में अजन्ता का अज्ञात कीर्तिशेष कलाकार कितना सफल हुआ है।

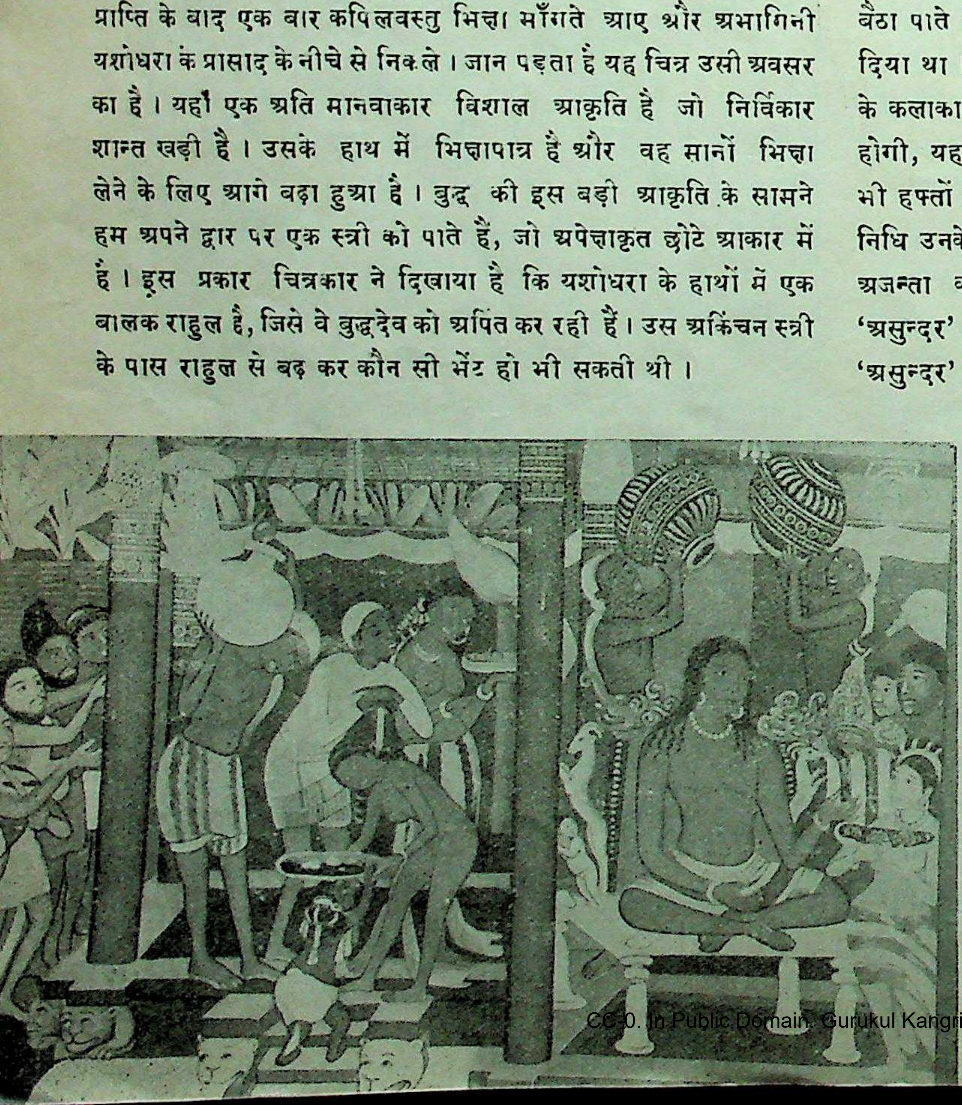

अजन्ता : (गुफा संख्या १)
राजा । स्नान

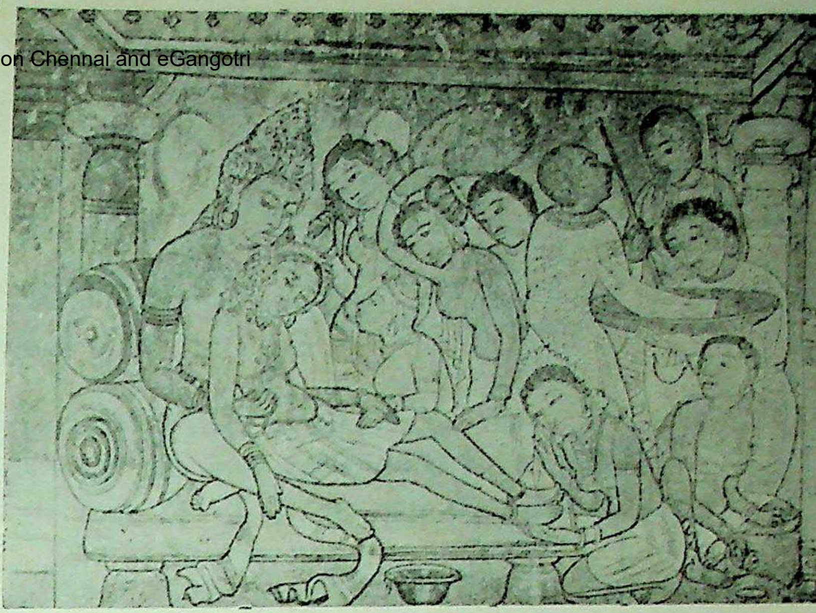
अजन्ता : (गुफा संख्या १७) छदन्त जातक का एक दृश्य

सत्रहवीं गुफा में ही एक स्थल पर युद्ध का बड़ा संकुलित दृश्य आता है—संभवतः यह किसी अवदान से सम्बन्धित है। इसी प्रकार यहाँ सिंहल अवदान के दृश्य आते हैं। यहाँ भी चित्रकार ने भयानक आकृतियों के अंकन में पूरा रस लिया है। इनमें से अनेक आकृतियाँ अकबर के समाश्रय में बने हम्ज़ानामा चित्रों में परम्परा से चली आई है। उसी के साथ-साथ कलाकार ने सुन्दरियों की आकृति में उनके तन की कोमलता प्रकट करने में कमाल दिखलाया है। संभवतः इन तन्वंगियों के भंगिमायुक्त खड़े होने के आलेखन में वह सबसे बाजी मार ले गया है।

अजन्ता की कुछ अन्य गुफाओं में भी उत्कृष्ट चित्र हैं, पर उनके वर्णन का लोभ संवरण कर हम यहाँ के आलंकारिक तरहों (पैटर्न) पर कुछ कहना चाहेंगे। अजन्ता के चित्रण विधान में इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है और ये प्रायः सभी गुफाओं की पाटनों खम्भों को छेके हुए हैं। खेद है, इन आलंकारिक तरहों का न तो समुचित संरक्षण हुआ है, न प्रकाशन, न अध्ययन। परन्तु इनके द्वारा चमत्कारी लिखाई, अभूतपूर्व कल्पना के कारण हम चित्रकार के हृदय के बहुत निकट आ सकते हैं। उसका मन कैसा खिलवाड़ी रहा होगा—यह इन्हीं से ज्ञात होता है। इन आलेखनों में सब कुछ कल्पित है, सब कुछ जीवन से दूर है फिर भी हम उसे जीवन से निकाल नहीं सकते। उसमें कमल के कोमल मृणाल की भाँति हमारा मन भी चारों ओर भटकता रहता है, कहीं अन्त नहीं पाता, कहीं टूट नहीं पड़ती। इन आलेखनों का मेरुदण्ड कमल हैं। उसके साथ-साथ अनेक प्रकार जल-जन्तु आते हैं, सब उसी प्रकार आलंकारिक रूप धर कर, अटपटी भाषा में, फिर भी उसका अपना माधुर्य, शिशु की स्खलित, अटपटी बोली जैसा। स्वयं कमल भी बहुरूपी की भाँति न जाने कितने रूप धर कर हमारे सामने प्रकट होता रहता है और रस की, सौंदर्य की वह धारा अजस्र बहती रहती है। स्वप्न के इस लोक की अनन्तता अविच्छिन्न चलती रहती है।

× × × ×

अजन्ता की इस परिक्रमा के अन्त में वहाँ की चित्रशैली के सम्बन्ध में भी कुछ कहना आवश्यक हो जाता है। प्रायः पुराने विद्वानों ने इसे बौद्ध शैली का नाम दिया है। उसके पक्ष में एक तर्क है कि इन चित्रों का विषय बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है। पर हम किसी कृति के विषय के अनुसार शैलियों का नामकरण नहीं करते। हम 'बुद्ध चरित' या 'यशोधरा' को बौद्ध शैली में नहीं मानते। भिन्न-भिन्न मतावलम्बी राजाओं की प्रशस्तियाँ तत्तत् शैलियों में नहीं। वस्तुतः शैली विशेष काल वा विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित होती है। अतः अजन्ता के चित्र गुप्त शैली के अंतर्गत हैं।

यह भी अनुमान उपस्थित किया जाता है कि ये चित्र उन बौद्ध भिक्षुओं के बनाए हुए हैं जो अजन्ता में रहते रहे होंगे। पर जैसा हम ऊपर के वर्णनों में देख चुके हैं, ये चित्र उस युग की सर्वोत्तम कला-कृतियाँ हैं, इतना ही नहीं वे संसार के सर्वोत्तम चित्रों के समकक्ष ठहरते हैं। ऐसे चित्र इतर जनों द्वारा संभव नहीं, इनके सृजन में सारे जीवन की तपस्या भी अपेक्षित है, ऐसी प्रवाहयुक्त रेखाएँ, चारु वर्ण विधान और सर्वोपरि भाव व्यंजना चित्राचार्यों द्वारा ही संभव है। निश्चय ही इन चित्रों को बनाने में गुप्त युग के सर्वश्रेष्ठ चित्राचार्यों ने योग दिया होगा।

सचमुच, अजन्ता जैसे सौन्दर्य के सागर को शब्दों में बाँध सकना असंभव सा है। करुणा, भक्ति और सौन्दर्य की यह त्रिवेणी हमारी नई कलाओं का पथ प्रदर्शन करे।

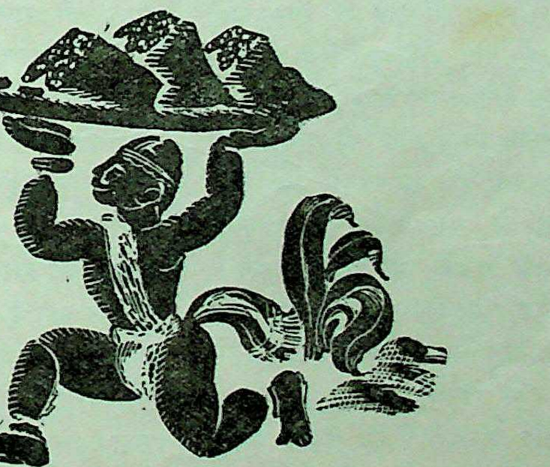

भारत का नया मानचित्र

सत्यदेव विद्यालंकार

> "भारत की एकता सबसे बड़ी चीज़ है । राज्यों के पुनर्विभाजन का सवाल कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो, पर आखिर पहला सवाल सारे भारत का है । अगर पूरा भारत आगे नहीं बढ़ता तो उसके हिस्से भी आगे नहीं बढ़ सकते । अगर भारत आगे बढ़ता है तो उसके सब हिस्से भी आगे बढ़ते हैं । हमें यह समझ लेने की ज़रूरत है कि संसार के सभी बड़े राष्ट्र अपनी एकता के बल पर ही आगे बढ़े हैं ।"
>
> —जवाहरलाल नेहरू

देश के स्वतंत्र होने के बाद नौ वर्षों की अवधि में उसका जो दूसरा मानचित्र तैयार किया गया है वह पहली नवम्बर १९५६ को मूर्त्त रूप धारण कर रहा है । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत का जो प्रथम मानचित्र बना था, उसको 'रक्तहीन क्रान्ति' कहा गया था और इस नए मानचित्र को नव-निर्माण कहना चाहिए । दोनों प्रयत्नों का लक्ष्य एक ही है, किन्तु दोनों की प्रक्रिया सर्वथा भिन्न है । ५६२ या ६०० देशी राज्यों को भारत में शान्तिपूर्वक विलीन करना विश्व के इतिहास की एकाकी घटना है । अपने देश के नवीन मानचित्र तैयार करने के इन दोनों प्रयत्नों के महत्त्व को ठीक-ठीक आँकने के लिए अंग्रेज़ी राज की रीति-नीति की पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है ।

वास्तविकता यह है कि भारन में अंग्रेज़ी राज के शासन काल में प्रान्तों का विभाजन घुणाक्षर न्याय से कुछ स्वतः ही हो गया था । उनके पीछे कोई स्पष्ट आदर्श अथवा ध्येय नहीं था केवल शासन की सुविधा और अपने राज्य की सुरक्षा की फौजी कार्रवाई के लिए वर्तमान स्थिति को यथापूर्व बनाए रखने में ही अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ अपना कल्याण मानते रहे । १८५७ की राज्य क्रान्ति के विफल हो जाने के बाद कम्पनी के हाथों से शासन की बागडोर जब महारानी विक्टोरिया के नाम से पार्लियामेंट को सौंपी गई तब केन्द्र को सुदृढ़ बनाने की नीति अपनाई गई थी । लेकिन १८५७ की राज्य क्रान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव रखने वाले अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों ने केन्द्र को सुदृढ़ न बना कर प्रान्तों की इकाइयों को पृथक रखने पर ज़ोर दिया । उनका कहना यह था कि फिर दुबारा समूचे भारत में कोई भी देश-व्यापी राजनीतिक आन्दोलन शुरू होने की सम्भावना नहीं रहने देनी चाहिए । केन्द्र के सुदृढ़ बनाने में उनको वैसा होने की आशंका थी । प्रान्तों की इकाइयों के पृथक रहने पर प्रान्तीय आन्दोलनों को दबा सकना कुछ कठिन नहीं हो सकता था । सम्भवतः यही कारण था कि देशी राज्यों के सम्बन्ध में उनके अस्तित्व को समाप्त करने की लार्ड डलहौज़ी की नीति का परित्याग करके उनको भी बनाए रखने में अपना हित समझा गया । परिणाम यह हुआ कि भारत का मानचित्र मुख्यतः दो लाल-पीले रंगों में रंग दिया गया और पीले रंग में दिखाया जाने वाला भारत ५६२ से ६०० हिस्सों में बँटा हुआ था । इन दो संख्याओं का प्रयोग हम इसलिए कर रहे हैं कि अंग्रेज़ स्वतः ही अन्त तक यह निर्णय नहीं कर सके कि भारत में देशी राज्यों की ठीक-ठीक संख्या और स्थिति क्या थी ? वे उनके लिए न तो किसी एक शब्द का प्रयोग और न उनकी कोई स्पष्ट व्याख्या ही कर सके । १९२६ में नियुक्त की गई बटलर कमेटी ने उनकी संख्या ५६२ बताई तो साइमन कमीशन के बाद नियुक्त की गई संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी ने उनकी संख्या ६०० स्वीकार की थी । एक ओर ८४,४७१ वर्ग मील का काश्मीर और ८२,३१३ वर्ग मील का हैदराबाद था तो दूसरी ओर २०२ ऐसे भी राज्य थे जिनका क्षेत्रफल १० वर्ग मील से भी कम था । नरेन्द्र मंडल के सदस्य होने का अधिकार रखने वाले केवल १८८ राज्य थे और १२० वे थे जो मिलकर इसके लिए १२ सदस्य चुन कर भेज सकते थे ।

१९३५-३६ के शासन सुधारों में फेडरल शासन योजना का ढाँचा तैयार कर उनको पहली बार शासकीय दृष्टि से भारत में सम्मिलित करने का एक हलका सा प्रयत्न किया गया था, परन्तु उसको सफल बनाने के लिए राज्यों के सम्बन्ध में डोर ढीली छोड़ दी गई थी उसके बाद साइमन कमीशन, संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी, संघ शासन योजना, गोलमेज़ परिषदों, शिमला सम्मेलन, क्रिप्स मिशन, मंत्रिमंडल मिशन और अंत में १९४७ के भारत स्वतंत्रता विधान आदि के जो भी प्रयत्न किए गए उन सब में उनकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई और यहाँ से जाते हुए उनकी वह सार्वभौम सत्ता जो इंग्लैंड के बादशाह में निहित मानी जाती थी, उनको इस रूप में लौटाई गई कि भारत की राष्ट्रीय एकता ५५० या ६०० टुकड़ों में विभाजित हो जाती और उसका राजनीतिक संगठन सुदृढ़ बनना असम्भव हो जाता । डाक्टर पट्टाभि ने ठीक ही कहा था कि अंग्रेज़ यहाँ से जाते हुए उस चिड़ियाघर का दरवाज़ा खुला छोड़ गए जिस में ५६२ या ६०० शेर बन्द थे । इन परिस्थितियों में भारत के लौह-पुरुष सरदार पटेल द्वारा भारत की एकता का निर्माण विशेष महत्त्वपूर्ण है ।

श्री पंत द्वारा निर्मित दूसरे नवीन मानचित्र का महत्त्व भी उससे कुछ कम नहीं है । इसके तैयार करने में लगभग पौने तीन वर्ष का लम्बा समय लगा है और जिस विवाद, वितंडा, रोष, असंतोष, विरोध तथा बवंडर में से गुज़रना पड़ा है वह भी प्रसव-वेदना के समान असह्य पीड़ा पैदा करने वाला सिद्ध हुआ है । कांग्रेस अध्यक्ष श्री ढेबर

भारत

(नवम्बर १९५६)

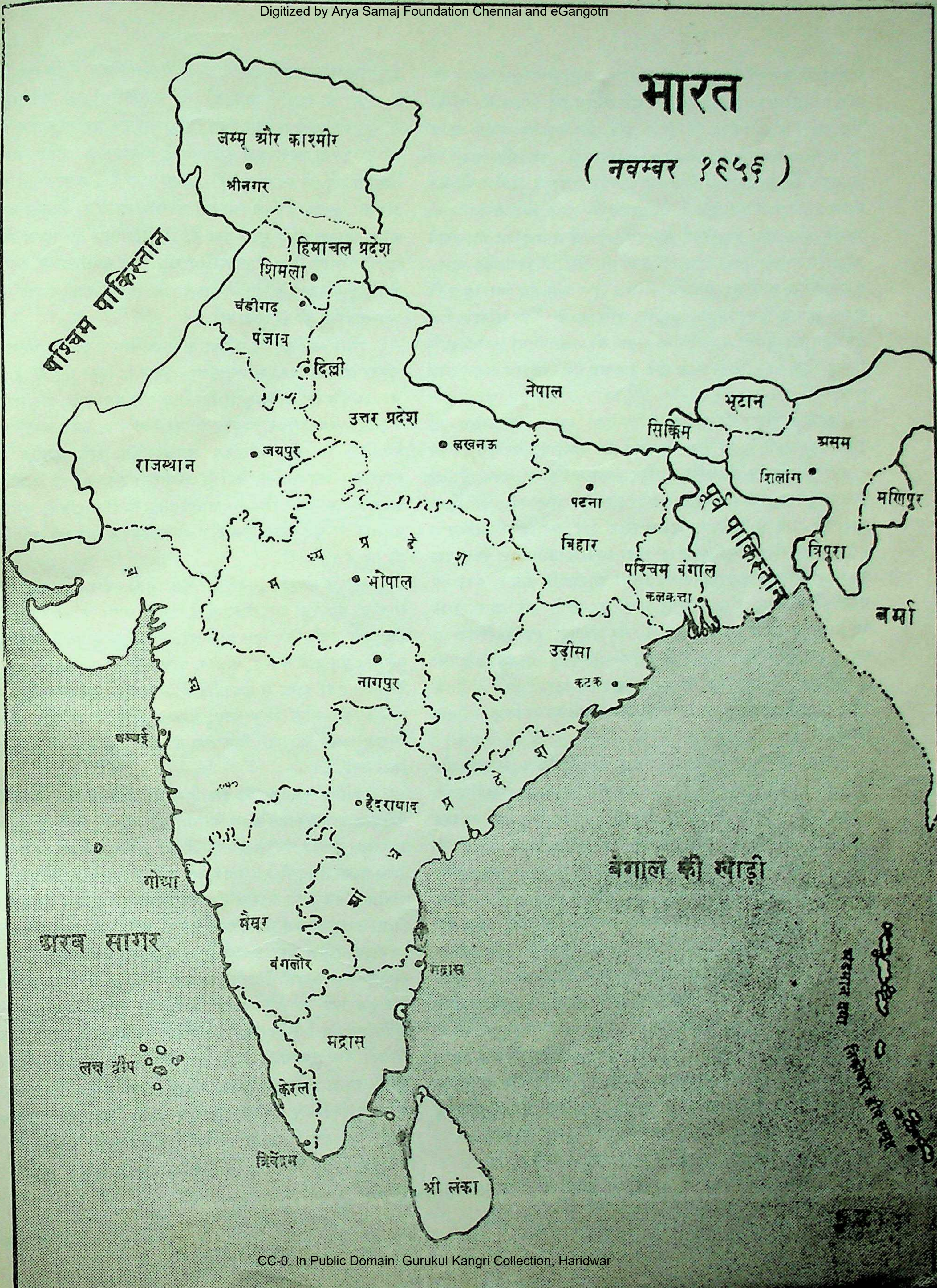
जम्मू और काश्मीर
श्रीनगर
पश्चिम पाकिस्तान
हिमाचल प्रदेश
शिमला
चंडीगढ़
पंजाब
दिल्ली
नेपाल
उत्तर प्रदेश
लखनऊ
जयपुर
राजस्थान
भूटान
सिक्किम
असम
शिलांग
मणिपुर
पटना
पूर्वी पाकिस्तान
बिहार
त्रिपुरा
मध्य प्रदेश
भोपाल
पश्चिम बंगाल
कलकत्ता
बर्मा
उड़ीसा
नागपुर
कटक
बम्बई
बम्बई
आन्ध्र प्रदेश
हैदराबाद
गोआ
मैसूर
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
बंगलौर
मद्रास
मद्रास
अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह
लक्ष द्वीप
केरल
त्रिवेंद्रम
श्री लंका

ने ठीक ही कहा है कि इस महान प्रयत्न के विरोध में जो लज्जास्पद दृश्य उपस्थित हुए उनसे एक बार तो कांग्रेस के संगठन की जड़ें ही हिल गईं। कांग्रेसियों में जो ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य तथा कलह उत्पन्न हुई उससे उसके सारे ढाँचे के ही अस्त-व्यस्त होने का संकट उपस्थित हो गया, बिहार-बंगाल-उड़ीसा तथा बम्बई-महाराष्ट्र-गुजरात में और पंजाब आदि में भी "सूच्यग्रं नैव दास्यामि" की जिस मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया गया वह कितनी अनुदार, संकीर्ण तथा दूषित थी, हमारे बहुत से देश-भाइयों की अपेक्षा तो उन देशी नरेशों ने ही कहीं अधिक उज्ज्वल देश-भक्ति का शानदार परिचय दिया और यह बता दिया कि सदा बदनाम किए जाने पर भी देश भक्ति का वे कैसा सुन्दर चित्र उपस्थित कर सकते थे। "अन्त भला सो भला" तथा "बीती ताहि बिसार दे" की नीति से काम लेते हुए अब हमें भविष्य का चिन्तन करना चाहिए।

पहले मानचित्र की समीक्षा यदि देशी राज्यों के विलय की दृष्टि से की जाती है, तो दूसरे मानचित्र की समीक्षा दूसरी पंचवर्षीय योजना की दृष्टि से की जानी चाहिए। हम अपने राष्ट्र का चहुँमुखी विकास अथवा निर्माण करने में लगे हुए हैं। देश का भौगोलिक मानचित्र उसके लिए विशेष महत्त्व रखता है। यह ही तो वह भूमि है जिस पर खड़े होकर निर्माण का सारा कार्य किया जाना है। क्या ही अच्छा होता यदि यह मानचित्र दूसरी योजना के तैयार करने से पहले ही बन गया होता। दूसरे आम चुनावों से भी बहुत पहले यह मानचित्र बन जाना चाहिए था। तब संभवतः इतना वितंडा व बवंडर खड़ा न होता। दूसरी पंचवर्षीय योजना के प्रकाश में इसकी समीक्षा करने से पहले उन सिद्धान्तों अथवा आदर्शों की थोड़े में चर्चा कर लेनी आवश्यक है, जिनको इस मानचित्र के लिए स्वीकार किया गया है।

सबसे बड़ा काम यह किया गया है कि जिन ऊँचे आदर्शों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन हमने अपने संविधान में किया है, इस मानचित्र के तैयार करने में उनका पूरी तरह अनुसरण किया गया है। स्वतन्त्र राष्ट्र की राष्ट्रीयता और नागरिकता के तत्त्व सर्वोपरि हैं। किसी भी कारण से उनकी अवज्ञा या अवहेलना नहीं की जानी चाहिए। धर्म, भाषा, संस्कृति, पुराना इतिहास, सम्प्रदाय, जन्मगत जाति और प्रादेशिकता तथा ऐसे ही कुछ अन्य तत्त्व हैं जिनके भावावेश में आकर प्रायः इन महत्त्वपूर्ण मूलभूत तत्त्वों की उपेक्षा कर दी जाती है। भिन्न-भिन्न राज्यों का मोह राष्ट्रीयता के सम्मुख क्या महत्व रखता है? इसी प्रकार धर्म, भाषा, संस्कृति, पुराना इतिहास, सम्प्रदाय तथा जन्मगत जाति आदि के तत्त्व यदि नागरिकता के बन्धु-भाव की भावना में बाधक होते हैं तो वे अपना महत्त्व खो देते हैं। इस मानचित्र में पहली बार स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया गया है कि ऐसे किसी भी तत्त्व अथवा भावना को प्रश्रय नहीं दिया जा सकता जो राष्ट्रीयता एवं नागरिकता के विपरीत अथवा उसके लिए बाधक हों। यदि बम्बई की तरह बिहार और बंगाल के साथ उड़ीसा का भी एकीकरण हो सकता, दक्षिण के राज्य भी वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ श्री राजगोपालाचार्य के परामर्श के अनुसार एक माला में पिरोये जा सकते और पंजाब में सिख व हिन्दुओं में मतभेद की घटाएँ न उमड़तीं तो राष्ट्रविरोधी इन तत्त्वों को सदा के लिए दफ़ना दिया गया होता। फिर भी उन पर जो घातक चोट की गई है उसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। राज्यों के गठन में उनको सिद्धान्त रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। शासन की सुविधा, देश की सुरक्षा, आर्थिक साधनों की सुलभता और विकास कार्यक्रमों की अनुकूलता ही वे मुख्य तत्व हैं, जिनके आधार पर राज्यों का गठन अथवा निर्माण किया जाना चाहिए और इस मानचित्र में किया गया है। राष्ट्रीय एकता के हित में शासन और राजनीति को महत्त्व न देकर प्रधानता राष्ट्र की ही रखी गई है।

दूसरा काम यह किया गया है कि विभिन्न राज्यों के अस्वाभाविक अन्तर को जहाँ तक सम्भव हुआ, दूर कर दिया गया। राज्यों का क, ख और ग श्रेणियों में विभाजन और राज्यपाल, उप-राज्यपाल, राजप्रमुख तथा मुख्य आयुक्त आदि की व्यवस्था केवल अन्तरिम काल के लिए की गई थी। उस सब का अंत करके एक ही सरीखी व्यवस्था, केन्द्र शासित क्षेत्रों के अपवाद के साथ कर दी गई है। जो इकाइयाँ आर्थिक दृष्टि से असंतुलित, वित्तीय दृष्टि से दुर्बल और प्रशासकीय एवं राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर थीं उनकी समाप्ति कर दी गई है।

भाषा व संस्कृति सम्बन्धी कुछ ऐसी भावनाएँ और विकास सम्बन्धी कुछ ऐसी आवश्यकताएँ हैं जिनका आदर करना उचित समझा गया और उनके लिए विभिन्न राज्यों में विभिन्न योजनाएँ स्वीकार की गई हैं। पंजाब में क्षेत्रीय योजना, बम्बई में क्षेत्रीय विकास बोर्ड और तेलंगाना तथा आन्ध्र में पंचवर्षीय संधि उसी के परिणाम हैं। अल्पसंख्यकों की भाषा, शिक्षा तथा नौकरी आदि के सम्बन्ध में उचित संरक्षण रखने की जो सिफारिश की गई उस पर भी पूरा ध्यान दिया गया है।

राज्यों के पुनर्गठन की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में भारत संघ की सर्वोच्चता का निरन्तर ध्यान रखा गया है। राजनीति तथा शासन आदि के सम्मुख उसकी अवहेलना नहीं की गई। १ नवम्बर १९५६ से पूर्व भारत के मानचित्र में २७ राज्य थे। उनके स्थान में राज्य पुनःसंगठन आयोग ने १६ राज्य और तीन केन्द्रीय शासित क्षेत्र रखने की सिफारिश की थी। यह अत्यन्त संतोषजनक समझा जाना चाहिए कि अब केवल १४ राज्य और ६ केन्द्रीय शासित प्रदेश रह जाएँगे। जम्मू और कश्मीर की गणना इन राज्यों में करके गत वर्षों में हुई घटनाओं से प्रगट होने वाले इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि कश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है। हैदराबाद की सर्वथा अस्वाभाविक रचना का कई सौ वर्षों के बाद अन्त किया जा सका है और नगर के महत्त्व की रक्षा, उसको आन्ध्र राज्य की राजधानी बनाकर पूरी तरह कर दी गई है। बंगाल और बिहार के बीच पैदा हुए अप्रिय विवाद का जिस प्रकार अन्त किया गया है उसको भी अन्त में सब पक्षों ने स्वीकार कर लिया है। नए मानचित्र में नए राज्यों की स्थिति निम्नलिखित होगी—

राज्य	राजधानी	क्षेत्रफल (वर्गमील)	आबादी
१. बम्बई	बम्बई	१,९०,९१९	४,८२,६५,१२०
२. मध्य प्रदेश	भोपाल	१,७१,२०१	२,६०,९५,६८०
३. राजस्थान	जयपुर	१,३२,०७८	१,५९,४६,७३१
४. उत्तरप्रदेश	लखनऊ	१,१३,४०९	६,३२,१५,७४२
५. आन्ध्र प्रदेश	हैदराबाद	१,०५,९६२	३,१२,५९,८१५
६. जम्मू और काश्मीर	श्रीनगर	९२,७८०	४४,००,०००
७. असम	शिलौंग	८५,०१२	९०,४३,७०७
८. मैसूर	मैसूर	७४,३४७	१,९४,०१,६१२
९. बिहार	पटना	६७,३००	३,८८,२७,५१७
१०. उड़ीसा	कटक	६०,१३६	१,४६,४५,९४६
११. मद्रास	मद्रास	५०,११०	२,९९,७४,९३६
१२. पंजाब	चण्डीगढ़	४७,४५६	१,६१,३४,८९०
१३. पश्चिम बंगाल	कलकत्ता	३३,८०९	२,६२,५८,६४७
१४. केरल	त्रिवेन्द्रम	१५,०३५	१,३५,४९,११८
	योग	१२,३९;५५४	३५,७०,१९,४६१
प्रदेश			
१. हिमाचल प्रदेश		१०,९०४	११,०९,४६६
२. मणिपुर		८,६२८	५,७७,६३५
३. त्रिपुरा		४,०३२	६,३९,०२९
४. अन्देमन निकोबार द्वीप		३,२१५	३०,९७१
५. दिल्ली		५७८	१७,४४,०७२
६. लक्ष्य द्वीप		१०	२१,०३५
	योग	२७,३६७	४१,२२,२०८
	पूर्ण योग	१२,६६,९२१	३६,११,४१,६६९

आगामी आम चुनाव और दूसरी पंचवर्षीय योजना की व्यवस्था इस नए मानचित्र के अनुरूप करनी होगी। कुछ निर्वाचन क्षेत्रों की पुनर्व्यवस्था करके आगामी आम चुनाव सहज में कर लिए जाएँगे। दूसरी पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में भी कोई असुविधा पैदा न होगी। श्री नेहरू का क्षेत्रीय परामर्शदात्री समितियाँ नियुक्त करने का सुझाव इसके लिए अनुकूल परिस्थिति पैदा करने में विशेष सहायक होगा। बड़ी-बड़ी विकास योजनाओं, विशेषतः जल-विद्युत सम्बन्धी नदी घाटी योजनाओं के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा विभिन्न राज्यों की सीमाएँ हैं। उदाहरण के लिए चम्बल बाँध योजना ग्वालियर, इन्दौर, उदयपुर तथा कोटा के विभिन्न देशी राज्यों में एकमत न होने के कारण कार्य में परिणत नहीं की जा सकी थीं और इनमें से कोई भी राज्य अकेले उसका निर्माण नहीं कर सकता था। राजस्थान और मध्य भारत निर्माण के बाद भी दोनों राज्यों के बीच उसके सम्बन्ध में काफी समय तक विचार-विनिमय होता रहा। अन्त में दोनों राज्यों का संयुक्त बोर्ड बनाया गया और जल तथा बिजली के बँटवारे के सम्बन्ध में आपस में समझौते किए गए। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश की ओर से बनाए गए माइटीला बाँध के लिए मध्य भारत के साथ विशेष समझौता किया गया। अन्य अनेक योजनाएँ भी इसी प्रकार विभिन्न राज्यों के अनुकूल समझौते के कारण काफी समय तक रुकी रहीं। यही कारण है कि छोटे राज्यों के निर्माण के सिद्धान्त को सर्वथा तिलांजलि देकर बड़े राज्यों के निर्माण का सिद्धान्त अपनाया गया। खनिज-पदार्थों और बड़े उद्योगों के विकास की दृष्टि से भी इस सिद्धान्त का अपनाया जाना अनिवार्य समझा गया। दक्षिण में कोयले की खानों का प्रायः अभाव है। इसलिए दक्षिण अर्काट ज़िले में निवेली स्थान में लेग्नाइट बहु-उद्देशीय योजना प्रारम्भ की गई है, जिसमें भूरा कोयला, बिजली और खाद बहुत बड़ी मात्रा में पैदा की जाएगी। इस योजना को तब कहीं अधिक लाभप्रद बनाया जा सकता है यदि समूचे दक्षिण को एक राज्य में परिणत किया जा सकता। मध्य प्रदेश के विशाल राज्य के निर्माण से उसमें शामिल होने वाले चारों राज्यों का जो विकास हो गया है, उसकी इन अलग-अलग राज्यों के लिए कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। विन्ध्य की खानें व जंगल, महाकोशल के मैदान, भोपाल की उर्वरा भूमि और मध्य भारत का औद्योगिक क्षेत्र अब अपने पूरे यौवन को प्राप्त हो सकेगा। अन्य राज्य भी प्रगति एवं विकास के पथ पर पूरी तेज़ी से अग्रसर हो सकेंगे।

यह कभी नहीं भुलाया जाना चाहिए कि राष्ट्र का मानचित्र उसकी भौगोलिक देह का सूचक है और उस देह की आत्मा उसमें रहने वाली जनता है। वास्तविक लक्ष्य जनता की उन्नति एवं प्रगति होना चाहिए। अपनी पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा हम नव-निर्माण के जिस महान कार्य में लगे हैं, उसका लक्ष्य जनता की चहुँमुखी उन्नति एवं विकास करना है। पहली योजना के लक्ष्यों को जिस ढंग से पूरा किया गया है उसके लिए कोई भी राष्ट्र अभिमान अनुभव कर सकता है। विश्वास रखना चाहिए कि दूसरी योजना के लक्ष्य और भी अधिक शान से पूरे किए जाएँगे और उससे हमारे हृदय में आत्म-विश्वास तथा स्वाभिमान की भावना और भी अधिक मात्रा में पैदा हो सकेगी, परन्तु यह सब निर्भर है हमारे हृदयों की एकता पर। केवल मानचित्र में दिखाई गई एकता मानसिक एकता के बिना निर्जीव बनी रहेगी। पिछला अनुभव हमारे सामने है। मध्य भारत में इन्दौर तथा ग्वालियर और विंध्य प्रदेश में बघेलखण्ड तथा बुन्देलखण्ड की संकीर्णता पर हम विजय प्राप्त नहीं कर सके। नए मानचित्र का निर्माण करके यदि पंजाब में हिन्दू सिख आपस में घुल-मिल कर एक न हो सके और बम्बई में महाराष्ट्री व गुजराती दो तन एक मन न हो सके तो हमारा भविष्य कभी भी उज्ज्वल नहीं बन सकता। मानसिक एकता का सम्पादन करके अपनी भौगोलिक एकता को सार्थक बनाना हम सबका परम कर्तव्य है।

●

संध्या की वेला

ति० ज० रंगनाथन

"बस्ती के पच्छिम में बहती है नदिया,
पक्की है पोखरिया,—ऐ चंदी, री चंदी !"

अब चिन्नप्पन को यह गीत याद आता है। बरगद के नीचे और ग्रामदेवता के सामने सम्पन्न होने वाले "हरिश्चन्द्र नाटक" में चंद्रमती (शैव्या) अपने मालिक ब्राह्मण से सविनय पूछती—"बाबा, बेटा मेरा 'लोहितासन्' (रोहिताश्व) प्यास से तड़पता है, थोड़ा पानी दिलाइए, बड़ा पुन्न होगा !" झट तैश में आकर वह भूसुर कह देता : "ऐ चंदी। इस बस्ती के पच्छिम में नदी बहती है और साफ़ पानी से भरी एक पोखरिया भी है। तुम वहाँ जाकर अंजुली भर सिर्फ एक ही अंजुली पानी लेकर बेटे को पिला आओ।" वह इसी प्रसंग के गीत का चरण था।

हर साल उस देहाती नाटक में नकली दाढ़ी, मूँछ आदि लगा हाथ में छड़ी ले और कुबड़े की चाल-ढाल दिखाकर ब्राह्मण नक्षत्रक के 'पार्ट' लेने का हक सिर्फ बड़े घर के मुत्तु करुप्पन को ही था। यह चिन्नप्पन मानों 'चन्द्रमती' के भेष के लिए ही जन्मा हो, प्रतिवर्ष शैव्या का पात्र वही लिया करता था, और रो-धोकर तमाशाइयों के दिल द्रवित कराने में तो वह बेजोड़ था ही। आस-पास, आठों मीलों तक उसका शोकालाप अपनी धाक जमा चुका था।

मुत्तु करुप्पन और चिन्नप्पन दोनों की उम्र भी एक ही थी। तगड़े-पट्ठे तरुण थे। किन्तु मुत्तु करुप्पन दाढ़ी-मूँछ लगा लेता तो ठीक काँपता-गिरता बुड्ढा सरीखा ही बन जाता। और चिन्नप्पन की बात ही क्या ? स्त्री-वेश ऐसा फबता उसको कि बस, लोच-लचक लहर उठती। सूरत भी ऐसी खूबसूरत कि लोग एक अत्यन्त सुन्दरी युवती ही समझ लेते। उसे लोगों ने उस पंचवर्णी तोता की उपाधि दे दी थी। सचमुच वैसी ही चमक-दमक और वैसा ही सलोनापन उसके वेश और अभिनय में था। इसी कारण उसका नाम भी 'पंचवर्णी चिन्नप्पन' पड़ा, फिर धीरे-धीरे 'पंचवर्णम्' के नाम से लोग उसे पुकारने लगे। घर में वह चिन्नप्पन था, और बाहर पंचवर्णम्।

वह ज़माना अब बीते सपने का-सा हो गया। देहात में नाच और नाटक का दौर ऐसा चलता रहता कि रोज़ पौ फटने के साथ ही वह विराम पाता और आठ रातों तक अबाध गति से यह समारोह चलता रहता। केवल 'हरिश्चन्द्र नाटक' ही नहीं, श्रीकृष्ण लीला, राम नाटक, प्रह्लाद चरित—इन सब का अभिनय इसी सप्ताह में होता। कुछ गाँवों में नाचने और नाटक खेलने का काम एक जाति विशेष के लोग करते हैं, पर इनके गाँव में वह बात नहीं है। करीब १२५ एकड़ ज़मीन वाले मुत्तु करुप्पन और उसकी बराबरी का चिन्नप्पन दोनों ही नृत्य नाटक में शामिल होते हैं, तो औरों की बात ही क्या ? गाँव-गाँव की अपनी-अपनी रीति-नीति है। इनके गाँव में 'कूत्ताडि' (नाटकिया) कह कर किसी को नीची नज़र से देखने की प्रथा नहीं है।

मुत्तु करुप्पन और चिन्नप्पन दोनों ने मिलकर ही नाटक की तैयारी की। मुत्तु करुप्पन की जीभ गाने का नाम लेते ही असहयोग कर बैठती, और लेक्चर की फुलझड़ियाँ छोड़ने लगतीं। इसलिए बनजारा, तेली, चेट्टियार, मोती का सौदागर, ब्राह्मण, हनुमान, नृसिंह इत्यादि पात्रों के अभिनय में वह सफल होता था। चिन्नप्पन को कोयल की कूक को भी मात कर देने वाला मीठा सुरीला कण्ठ प्राप्त था। युवती का-सा मधुर-कोमल स्वर और लता-सी लचीली देह वाले चिन्नप्पन को सदा नल्लंतगाल चन्द्रमती, यशोधरा, सीता देवी आदि स्त्री पात्रों के रूप में अभिनय करने का मौका मिला करता था।

मुत्तु करुप्पन की छोटी बहन शैंगमलम चिन्नप्पन को प्यार करती थी। उसका दृढ़ संकल्प था कि अगर शादी करूँगी तो चिन्नप्पन से ही करूँगी। उसकी इस सहज अभिलाषा का अनादर किसी ने नहीं किया। पिता जी पलनिच्चामि, माता जी अमृतम् और बड़े भाई मुत्तु करुप्पन ये सब इस सम्बन्ध के प्रस्ताव से पूरी तरह सन्तुष्ट थे।

घर में चिन्नप्पन इकलौता बेटा था। माँ-बाप दोनों उसे छोड़ गए हैं। घर की देखभाल करने के लिए केवल एक बूढ़ी बुआ हैं। शैंगमलम को ब्याहने में चिन्नप्पन को कोई एतराज़ नहीं था। फिर भी जब शादी की बात उठती, वह कोई न कोई हीला हवाला करके टाल देता। क्या सचमुच उसकी शैंगमलम से शादी कर लेने की इच्छा नहीं थी ? हंसिनी-सी उस सुन्दर लड़की को पत्नी के रूप में पाकर, अपना भाग्य न सराहने वाला युवक शायद ही हो। फिर ? चिन्नप्पन के पास क्या रुपए की कमी थी कि वह परिवार-पालन में असमर्थ हो ? नहीं, यह सब नहीं। वह बड़े संकोची स्वभाव का था। शादी की बात उठाते ही, उसे शरम घेर लेती थी। शैंगमलम को पाने के लिए वह लालायित भी था, फिर भी उस लजीलेपन के कारण चार-पाँच साल तक वह टालता ही रहा। उसकी यह टालमटोल एक बड़ी मूर्खता साबित हुई। ज़माना क्या उलटेगा ? आदमी ही उलट जाता है। और आदमी के ही स्वभाव, वचन विश्वास सभी बदल जाते हैं। कभी स्वार्थवश, कभी अभिमानवश और कभी हठवश। चिन्नप्पन और मुत्तु करुप्पन के बीच में उनके स्नेह-सौजन्य में वही उलट-पलट आ गई। ऐसा मनमुटाव हुआ कि उसके दूर होने की भी आशा नहीं रही।

शैंगमलम के लिए दूसरी जगह वर ढूँढ़ा जाने लगा, और बात-चीत चलनी भी प्रारम्भ हो गई। पर वह अपनी धुन की पक्की थी। वह साफ बता चुकी थी, "मैं चाहे सूने गले वाली ही रह जाऊँ, मगर किसी अन्य को अपने गले पर मंगल-सूत्र बाँधने नहीं दूँगी !" वह

घर भर की लाड़ली लड़की थी। कोई ज़बरदस्ती दूसरे के साथ उसकी शादी नहीं कर देना चाहता था। मगर चिन्नप्पन से ब्याह करने की आशा भी उसे छोड़ ही देनी पड़ी। अपने बाप और भाई के खिलाफ वह उससे ब्याह करती भी कैसे ? चिन्नप्पन भी अपने दुश्मन के घर की लड़की को चाहे प्राणप्यारी ही क्यों न हो, बलात् ले आकर विवाह कर लेने के पक्ष में नहीं था। अतः उसने भी अपनी शादी की बात किसी को उठाने नहीं दी।

× × ×

आज, यह सन्ध्या की वेला कितनी मनोहर है। इस मोहिनी वेला में, उस अतीत सन्ध्या की स्मृतियाँ चिन्नप्पन के मन में उमड़ रही हैं।

ओह ! उस दिन की सन्ध्या कितनी डरावनी थी। आज इस वेला में मंगल दीप जल रहा है। इसकी आभा मन के दुरित भावों को दूर करने वाली है। रजताभ चाँदनी बरसाते हुए चाँद भी निकल चुका था। क्या इसी वेला की तरह भव्य और मोहक थी उस दिन की सन्ध्या ? बिजली की कड़कड़ाहट और वर्षा की मूसलधारा से संकुल उस सन्ध्या की याद आते ही देह काँप उठती है। चिन्नप्पन एक क्षण के लिए अपनी कँपकँपी दबा नहीं सका।

आज उस भयावनी सन्ध्या को कितने ही साल बीत गए। आज से कितने ही वर्ष पूर्व चोक्कायि देवी के रथोत्सव के समय ही वह सब बखेड़ा खड़ा हुआ। उस दिन की सन्ध्या गाँव में स्नेह-सौजन्य के दृढ़ बन्धन को शिथिल बना चुकी थी।

इनके गाँव में सब काम अजीब ढंग से हुआ करते हैं। ग्राम देवता के जुलूस के लिए बड़ा रथ तैयार करना है और उस पर रंग-बिरंगे कपड़े बाँध कर उसे सजाना है। इस तरह पूरी तैयारी और सजावट के होने के बाद रथ को बाहर निकालना तक दुश्वार होता है। उस भारी भरकम रथ को रस्सी बाँध कर खींचना ही जुलूस के लिए आसान तरीका है, पर इस सुगम प्रणाली के लिए गाँव वाले ही नहीं, वह ग्राम देवता भी सहमत नहीं थे। अगर रस्सी से रथ खींचने की कोशिश शुरू हो गई, तो बस, किसी गाँव वाले पर देवता का कोप आ गिरता और वह कुचल जाता, यह कौन जानता है ?

इस कारण देवता के उस बड़े रथ के दोनों ओर अजगर की तरह दो लम्बे-मोटे डण्डे बाँध दिए जाते हैं। इन दोनों डण्डों के अलग-अलग नाम थे, एक का 'शिलाडण्डा' दूसरे का 'कागडण्डा'। हैं तो दोनों ही काठ के, फिर भी शायद एक का वज़न ज्यादा रहा होगा और दूसरे का कम, इसी से उनके वे नाम पड़े होंगे। गाँव की चारों बीथियों में रहने वाले लोग अपने लिए डण्डों का एक-एक भाग चुन लेंगे और डण्डों के चारों भागों पर कन्धा देने के लिए कुल सौ-सवा सौ आदमी इकट्ठे हो जाएँगे। जुलूस के दौरान में कहीं एक ओर बोझ अधिक पड़ गया तो रथ के दूसरी ओर के आदमी सहायता नहीं करेंगे। इसलिए उनमें रथ खींचते समय प्रतिस्पर्धा की भावना सहज ही फैल जाती। जब रथ का जुलूस अपनी वीथी में आ जाता है, तब उस वीथी वालों के उत्साह का वार-पार नहीं रहता। एक तरफ के लोग कन्धे उठा-उठाकर उछलते-कूदते चलते हैं तो उसका प्रतिफल दूसरी तरफ वालों को भोगना पड़ता है। बार-बार रथ के दूसरी ओर झुक कर गिर जाने की आशंका पैदा हो जाती है। तब दूसरी ओर के आदमी भी सारी शक्ति बटोर कर बोझ सम्हाल लेते हैं और स्थिति ठीक हो जाती है। यह तमाशा हर साल, हर बार होता है। चिन्नप्पन बचपन से ही यह सब देखता आ रहा है। मगर उस साल उस सन्ध्या की वेला में जुलूस का रथ एक ओर गिर ही गया। कौन जाने, देवी का क्या कोप था ?

"हाँ, दूसरी टोली वालों के पास न तो बुद्धि है और न एकता ही। इस हालत में देवी क्या करेगी ?" रथ के गिरते ही मुत्तु करुप्पन ने कह दिया। झगड़े की शुरुआत इसी से हुई। रथ के गिरने में उत्तर वीथी वालों का दोष कुछ भी नहीं है—यही कहने का उसका इरादा था। वह स्वयं जो उत्तर वीथी का रहने वाला है।

"सब देवी की इच्छा से ही होता है भाई। बुद्धि और एकता उन्हीं लोगों में नहीं रह पाती जिन में दम्भ और घमण्ड घर कर बैठते हैं !" यह चिन्नप्पन का सहज प्रत्युत्तर था। उसका यह कहने का सलीका भी मामूली ही था। यह नहीं कहा जा सकता कि उसने खुद दक्खिनी वीथी का होने के कारण यह जवाब दिया था।

"अपने और अपने आदमियों के लिए काम तो सदा भले ही जँचेंगे ! अगर अपना दोष पहचानने की शक्ति होती तो दूसरों पर अपना दोष न मढ़ते !"

मुत्तु करुप्पन ने बेहिचक यह व्यंग्य मारा। वाद-विवाद बढ़ता गया जैसा कि आम तौर से इन परिस्थितियों में सभी जगह होता है।

चिन्नप्पन और मुत्तु करुप्पन की मित्रता अभी तक औरों के लिए आदर्श बनी हुई थी, पर अब वे एक दूसरे से घृणा करने लगे। देवी का रथ नीचे गिर तो गया, पर किसी को चोट तक नहीं लगी। दोनों दलों को यह खुशी मनानी चाहिए थी कि कोई भी आदमी रथ के नीचे दब कर मरा नहीं। परन्तु रथ क्या गिरा, दो मित्रों की मित्रता गिर गई, होश-हवास गिर गए। रथ को गिरना ही था, तो वह दक्खिनी वीथी छोड़ कर और कहीं गिरता, तो यह सब झंझट नहीं होता। वह दक्खिनी वीथी पर ही गिरा जो चिन्नप्पन की वीथी थी।

संयोग की बात है कि उसी साल राजा का पार्ट लेने वाले रामलिंगम की आकस्मिक मृत्यु हो गई और राजा का पार्ट लेने के लिए नया आदमी ढूँढना पड़ा। उस साल जब बरगद के नीचे 'सत्य-वीर हरिश्चन्द्र' नाटक खेलने का आयोजन हुआ तो यह चर्चा चली कि रामलिंगम के अभाव में चिन्नप्पन ही राजा का पार्ट भी ले ले। चिन्नप्पन ने यह सुझाव स्वीकार कर लिया।

"एक दिन का नाटक है और उसमें भी 'मसान-कांड' ही अधिक है। सिर्फ नाम भर के लिए एक राजा रहे, तब भी काम चल जाएगा। इस ज़रा से पार्ट के लिए किसी नए नौसिखुए को रख लेने में क्या हर्ज़ है ?" यह मुत्तु करुप्पन का प्रतिवाद था।

"यह कैसे होगा ? चन्द्रमती और हरिश्चन्द्र का विवाद तो खास रंग जमाने का दृश्य है। राजा हरिश्चन्द्र के लिए अच्छे अनुभवी

आदमी की ही जरूरत है । तभी नाटक में बल आएगा ।'' चिन्नप्पन ने अपने मत की पुष्टि की ।

''नाटक का ज्यादा समय चन्द्रमती-विलाप में ही चला जाएगा और उसे कम करना भी मुश्किल है । यह अच्छा होगा कि राजा और रानी के विवाद को थोड़ा कम कर लें ।''

मुत्तु करुप्पन का यह हठ चिन्नप्पन को नागवार ज़रूर लगा, फिर भी अपनी नाखुशी प्रकट न करता हुआ वह बोला—''देखेंगे उस वक्त अभी क्यों इन बातों में उलझें ?''

यह विवाद रथ के नीचे गिरने के पहले हुआ था । अब इस घटना के साथ मुत्तु करुप्पन ने उसकी गाँठ भी जोड़ दी । रथ के गिरने के सिलसिले में जब बात बढ़ी, तो मौका पाकर मुत्तु करुप्पन ने कह दिया—''हाँ, भाई । तुम्हीं एक बेकसूर आदमी निकले । इसीलिए न तुम कहते हो कि राजा भेष को तो भी तुम्हीं हो और रानी भेष के लिए भी तुम्हीं हो ।''

अब चिन्नप्पन से अपने अरमान का यह अपमान सहा नहीं गया तो वह तुरन्त बोल उठा—''योग्यता और सामर्थ्य रखने वाला व्यक्ति हर भेष के योग्य सिद्ध होता है । डरना तो उसी को चाहिए जिसकी जीभ को जलाकर भी गाने लायक नहीं बनाया जा सकता ।''

मुत्तु करुप्पन के पास भी तीखा जवाब मौजूद था । वह बोला—''क्या औरत भेष धरने से सब कुछ आ जाएगा ? राजा का भेष और बन जाने के समान सहल नहीं है । भाई यह देवी के रथ के डंडे को कन्धे पर रख कर उछलने का-सा खेल नहीं है ।''

बात बढ़ गई । ईश्वर की कृपा से दोनों में हाथापाई की नौबत न आई । इन गाँव वालों में अगर हाथापाई की नौबत आ जाए तो हँसिए और फावड़े तक चलने लगेंगे । पर चिन्नप्पन इस हब्शीपन से दूर था । मुत्तु करुप्पन स्वभाव से ही बड़ा गुस्सैल और झगड़ालू था । वह मशहूर लठैत भी था । बात में थोड़ी-सी गरमी आने की देर है । बस, लाठी घुमाता हुआ चिल्ला-चिल्लाकर ललकारे बिना नहीं रहेगा । जब चिन्नप्पन ने स्थिति सम्भाल ली तो लटापटी की नौबत नहीं आई ।

पर मनमुटाव ऐसा गहरा हो गया कि दोनों ने एक दूसरे का मुँह तक न देखने की कसम खा ली ।

उस साल से नाटकों का अभिनय बन्द हो चुका था । मुत्तु करुप्पन और चिन्नप्पन के पारिवारिक सम्बन्ध टूट गए और चिन्नप्पन के साथ शेंगमलम की शादी की बातचीत पर भी पानी फिर गया ।

चिन्नप्पन ने बहुत कोशिश की कि अपने मन से शेंगमलम की याद को दूर कर दे । पर वह कैसे सम्भव हो सकता था ? वह खोया-खोया-सा रहने लगा । किसी भी काम में उसका जी नहीं लगता था । पहले शहर में जो भी नाटक नया आए, उसे देखने चिन्नप्पन अवश्य जाता और मशहूर गवैयों की बैठक को तो वह कभी चूकता ही नहीं था । एक बार ध्यान से सुनने पर सभी गीत उसे कण्ठस्थ हो जाते । नए रागों और नए गीतों में उसका लगाव और भी अधिक था । अब यह सब उसे नीरस प्रतीत होने लगा । मन बेचैन है, तो कोई क्या करे ?

शेंगमलम उसके मानसपटल पर बार-बार आकर ऊधम मचाती रहती थी । यह बावलापन हटाए न हटता था; उलटे, बढ़ता गया । अगर दूसरा व्यक्ति होता तो अब तक पूरा पागल हो चुका होता । चिन्नप्पन के पास संयम और संतुलन की शक्ति थी, इसलिए वह सम्हल गया ।

चिन्नप्पन रोज़ उत्तर वीथी जाया करता था । कोई न कोई बहाना उसे मिल ही जाता । थोड़ी दूर पर खड़े होकर किसी से बातें करता, पर उसकी दृष्टि शेंगमलम के घर पर ही लगी रहती । मानिनी शेंगमलम अपनी साया तक बाहर नहीं दिखाती । अगर भूल कर सड़क की ओर आ भी गई, तो चिनगारी-भरी आँखों से चिन्नप्पन को एक बार देखकर भीतर चली जाती । उस समय चिन्नप्पन की व्यथा की कोई सीमा न रहती । उसके मन में यही विचार उमड़ आता—'यह मेरी शेंगमलम अब मुझ से घृणा करने लग गई ? क्या यह सचमुच मुझे नहीं चाहती ? तब दूसरे से शादी करने को राजी क्यों नहीं होती ? हमारे आपसी प्रेम की चर्चा जो लोगों के बीच चल रही है, वह झूठ है ?'

व्यथाबोझिल मन के बहकाव में अधिक न पड़ने के इरादे से वह घर की ओर लौट चलता । पर दूसरे दिन भी वही बहाना, वही प्रतीक्षा और वही व्यथा ! दिन में कम-से-कम एक बार शेंगमलम को देखे बिना चिन्नप्पन को चैन नहीं आता था ।

ऐसी ही हालत में एक अप्रत्याशित घटना घटी ।

× × ×

पलनिच्चामि की उम्र करीब पचास को पार कर चुकी थी, तब उसे रतौंधी आ गई । वह मुत्तु करुप्पन के पिता थे । यद्यपि साँझ पड़ते ही उनकी आँख भी कमज़ोर हो जाती, फिर भी उनकी चुस्ती और फुर्ती में कोई कमी नहीं आई थी । हमेशा कुछ-न-कुछ काम करते रहने की आदत उनमें थी । कभी कहीं एक जगह बैठे रहना उनसे नहीं होता था । उनके जैसा फुर्तीलापन नौजवानों में भी शायद ही पाया जा सकता ।

उस दिन भी सन्ध्या पड़ते ही चिन्नप्पन उत्तर वीथी की ओर गया और दस्तूर के माफिक जाने-पहचानों के साथ बातें करने का बहाना कर रहा था कि तुरन्त धूल उड़ाती हुई आँधी शुरू हो गई, उमड़ते घने बादलों से आसमान काला हो चला । मूसलाधार वर्षा की पूरी तैयारी हो रही थी । बड़े घर के बाहर शेंगमलम और उसकी माँ दोनों सुखाने के लिए डाले गए अनाज को बटोरती हुई आपस में बातें कर रही थीं । उनके स्वर में चिन्ता और भय की छाप स्पष्ट थी । चिन्नप्पन ने अपना कान उस ओर दिया ।

''बापू जी खेत की ओर ही गए हैं, मुझे ठीक मालूम है ।'' यह शेंगमलम का स्वर था ।

''मुत्तु करुप्पन भी साथ गया है न ?'' उसकी माँ पूछ रही थी ।

माँ नहीं, बैल का जोड़ा देखने कहीं बाहर जाना है । इसलिए वे ज़रूर पास के किसी गाँव में गए होंगे ।

शेंगमलम की माँ घबरा गई, बोली—''तब इन्हें कौन जाकर ले आएगा ? इस बुढ़ापे में यों तंग न करते, तो कितना अच्छा रहता ।

रतौंधी तो आ चुकी। साँझ पड़ते ही आँखों की रोशनी गुम हो जाती है। ऐसी हालत में इनको समझ में यह क्यों नहीं आता कि सूरज डूबने के पहले ही घर वापस आ जाना चाहिए। अब देखो, हवा जोर से चल रही है, बूँदाबाँदी भी शुरू हो गई और बड़ी तेज़ वर्षा आने वाली है। झाड़ियों व टीलों से भरा वह बीहड़ रास्ता कैसे उनसे बेखटके कट सकेगा ? पता नहीं, किसी झाड़ी में फँस गए हों। हम क्या करें ? जिनके सिर पर जो लिखा है, उसे वही भोगें।"

चिन्नप्पन को वह स्थिति समझने में देर नहीं लगी। खतरे में फँसे उस बूढ़े को बचाने की इच्छा उसके मन में प्रबल हो उठी। पर बचपन से ही अँधेरे से उसे बड़ा डर लगता था।

"कोई कहीं जाकर फँसे या मरे, हमें क्या पड़ा है ?" यह लापरवाही भी उसे सूझी, पर दूसरे ही क्षण वह दुर्भावना दूर हुई। "वे मेरी शेंगमलम के पिता हैं। अगर उनको कुछ हो गया है, तो मेरी प्यारी फूट-फूट कर रोएगी। उसकी आँख से आँसू का एक बूँद भी गिरते मैं कैसे सहूँगा ? इसकी गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिए।"

आत्मविस्मृत-सा चिन्नप्पन खेत की ओर तेज़ी से चल रहा था। 'करुप्पण्ण स्वामी' (ग्रामदेवता) का मंदिर, उसके बाद गाँव का श्मशान और उसके बाद जंगली नदियाँ सब पार कर गया। तब तक संध्या भी विलुप्त होती जा रही थी। बिजली की कड़कड़ाहट बार-बार डरा रही थी। सब ओर घोर निस्तब्धता छाई हुई थी। मवेशियों की घंटी तक कहीं से सुनाई नहीं दे रही थी। चिड़ियों की फुरफुराहट भी बंद हो चुकी थी। सिर्फ बिजली की कड़क और आँधी की डरावनी सरसराहट ही बारम्बार उठ रही थी।

पर चिन्नप्पन तेज़ी से आगे बढ़ रहा था। बूढ़े पलनिच्चामि कहीं नहीं दिखाई पड़े। नाले में छाती तक पानी बह रहा था। उसे पार कर ही उनके खेत की ज़मीन को जाना है। चिन्नप्पन नाले में उतरा। आहट उठते ही किसी ने आवाज़ दी "कौन है ?"

चिन्नप्पन ने मुड़कर देखा। बोलने वाले की सूरत कहीं दिखाई नहीं पड़ी, पर कंठ स्वर उस बूढ़े का ही था। असमंजस में पड़कर चिन्नप्पन वहीं खड़ा रहा।

"अरे, कौन है ? क्या सुनाई नहीं पड़ती ?" बूढ़े का स्वर गंभीर हो उठा। उसके साथ उनके हाथ की लाठी की पट्-पट् आवाज़ भी उठ रही थी। नाले के पास एक टीले पर उनको बैठे वह दिखाई दिया। पास जाकर काँपते स्वर में चिन्नप्पन बोला, "जी, मैं हूँ।"

"अरे, 'मैं' माने कौन है ? क्या आखिरी घर के कुप्पन हो, या पच्छिम वीथी के मरुते हो ?"

"नहीं जी। मैं...मैं ही हूँ।" चिन्नप्पन की जीभ हकलाने लगी। अंधकार और भी घना हो गया। चिन्नप्पन अटकल से ही रास्ता बनाकर जा रहा था। पीछे से बूढ़े ने कहा, "बेटा, जरा तेज़ी से आ।"

बीच में थूहड़ का घेरा पड़ा तो चिन्नप्पन रुक गया। बूढ़े ने तुरन्त कहा, "क्यों बेटा, रुक क्यों गया है ? थूहड़ का घिराव है ? तू इधर आ, मैं रास्ता बना देता हूँ।" कहते हुए वे आगे आकर लाठी से घिराव पर जोर से मारने लगे। थूहड़ तितर-बितर गए और रास्ता बन गया।

"हाँ, अब चले आओ बेटा।"

बूढ़े की बूझ और ताकत पर आश्चर्य करता हुआ चिन्नप्पन आगे बढ़ा। बिजली की चौंधियाती लम्बी रेखा एक क्षण चमक उठी और साथ ही शेर की दहाड़ की तरह 'गड़-गड़' की आवाज़ से मेघ गरज उठे। बिजली की चमक से चिन्नप्पन को रास्ता मिलने में सहूलियत हुई। दोनों तेज़ी से चल रहे थे।

रास्ते में कई बातें बूढ़े पलनिच्चामि ने कहीं। चिन्नप्पन ने सिर्फ 'हाँ,' 'नहीं' कहकर अपने को पहचानने नहीं दिया। बूढ़ा रह-रह कर बोले जा रहा था।

"क्यों बेटा। उस चिन्नप्पन से कब तक वैर-विरोध निभाता रहेगा ?"

"नाटक तो एक तरह से बन्द ही हो गया इस गाँव में। यह सब तेरे हठ और झगड़े का नतीजा है।"

"शेंगमलम की चिन्ता ही मुझे खा रही है। वह बिचारी उस लड़के की याद में हमेशा बिसूर रही है। उसे क्या कुँवारी ही रहने देगा तू ?"

"वह हठीली लड़की चिन्नप्पन को छोड़कर दूसरे को चाहती ही नहीं।"

चिन्नप्पन मन ही मन अपार आनन्द का अनुभव कर रहा था। और वह देख रहा था कि बूढ़ा उसे अपना बेटा मुत्तु करुप्पन समझकर यह सब बातें कह रहा है। दोनों गाड़ी के रास्ते पर आ सके। दोनों ओर लम्बे-लम्बे थूहड़ पहरेदार की तरह खड़े थे।

बूढ़े ने पूछा—"गाँव में आ गए हैं, न बेटा ?"

"जी हाँ।"

"गाड़ी का रास्ता है ?"

"जी, हाँ।"

चिन्नप्पन ने देखा कि सामने थोड़ी दूर पर हाथ में लालटेन लिए कोई आ रहा है। वह तुरन्त पास के पेड़ की आड़ में खड़ा हो गया। लालटेन के साथ मुत्तु करुप्पन ही आ रहा था। अपने पिता जी को आते देख वह खुशी से बोला—"आइये बाबू जी। मैं बहुत घबरा गया था कि······"

"अरे, करुप्पन। तू अभी आ रहा है ? तब, अब तक मुझे ले आने वाला कौन था ? उसने अपना नाम तक तो बताया नहीं। आवाज़ भी पहचानी हुई नहीं थी। अब वह कहाँ चला गया ?" बूढ़ा विस्मयातिरेक से बोला। मुत्तु करुप्पन ने लालटेन घुमा-फिराकर चारों ओर देखा, पर उसे कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ा।

जब चिन्नप्पन अपने घर पहुँचा, तब उसकी देह पानी से खूब भीग चुकी थी और वह ठंड के मारे थर-थर काँप रहा था। पर सन्ध्या की घटना की बार-बार याद कर वह मन ही मन खुश हो रहा था। उसने अपनी प्रियतमा के पिता को बड़ी आफत से बचा लिया, यह

(शेष पृष्ठ ५७ पर)

जीवन और घास

शकुन्त माथुर

जीवन

१

दो पेड़ों के नीचे
पीपल और नीम के पीछे
क़स्बे का बड़ा कुँआ
उसकी चौड़ी मैंड़ पर
नया कोई नहीं
मौंसी, काकी, बूआ
या कौल का भाई
पुकारे का भतीजा।
रँगीली प्रणाली ये पनघट की
सख़्त लड़ाई किन्तु क्षण भर की
कभी हँसी भारी कभी चुहलबाज़ी
तलछट की।
इनके तेज़ रंग रँगे कपड़े
केलिया के फूल से लगते
लाल-पीले चटक गुच्छे ज्यों हरी घास पर
दिखते।
रस्सिएँ कुण्डली मारे भुजंग सी बैठीं
माँजी साफ़ कलसियें, टोकनियें रुपैली,
सुनहरी
सर्प मणि का आलोक लिए पाँत में दिखतीं
और जेवरियों के फैले दूर तलक
लम्बे साँप
मणियों पै झपटते या नीचे को लटकते।
पीपली से पीपल टपकते
नीम से पखेरू बीट भी करते
जो कुँए की लाल मैंड़ पर जम जाती
अँधेरे में किसी भी पनिहारिन को रुपए
की ग़लतफ़हमी हो जाती
शरमाती, बात बना कर
झेंप मिटाती।
उधर कुँए में टकराती परस्पर
गगरियाँ, टोकनियाँ
धमक जैसे गहनों की गूँज उठी
गहनों से लदी ब्याही बेटी
मिल रही कुठरिया में
पी के जाते
नीर गिराती।

२

घास

नल कल दस-पाँच
लग गईं क़सबे में
पनघट की रंगीनी, जीवन
सिमट गया, ज्यों तसले में
हिलती बँहगी की गति दबाव
कंधों का लरजना
पनिहारिनों का अटक अटक के चलना
रुकना
लहरता तन
आगे कभी पीछे मुड़ना
व्यायास काम।
अब आ खड़े हुए पाँत में
पतझर के पत्ते से
या कि कीचड़ में लिपटे पतले डण्डे से
टूटे कनस्तर पिचके टीन डालडा के लिए
उठाने वाले जिन्हें
मरियल घोड़े से
सजल मटकियाँ, चमकती कलसियाँ
काई का ओढ़ना ओढ़े
कुछ नंगे बच्चे उस नाले से निकल
इस तरफ़ ही दौड़े
सुबह की टैम थी
भीड़ बेहाल थी
निराशा और ज़रूरत के बादलों में
मुँह बेरुअत, रुँआसे
कपड़े मैले फटे कोढ़ के चकत्ते से
नागिन सी फुफकारती थी
नल कल की सूऊँ······हर बार
न पानी की धार उतरती थी
कोई कहता छिपकली चिपटी थी
देख हुज्जत, नख़रे, तिलमिलाती थी—
वो पटे कुँए की घास
श्रम से बुझती घास, मानव जीवन नहीं
मात्र घास·············।

◆

गुजराती गीत

प्रेम की सुगन्ध

'स्वप्नस्थ'

अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।
सूरज-सुख आज का उगाओ हे प्रियतम
अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।
जाग गया ऊँघा जल, जागा पवन हे
जाग पड़ा कानन गहन-घन हे प्रियतम
अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।
कोनों की कोंपलों खिली कली दिगंत की
उड़ते पतंग पँचरंग हे प्रियतम
अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।
जागे अधीर कण्ठ पंछियों के वृंद हे
छेड़े अवाई के छन्द हे प्रियतम
अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।
जाग पड़े जनगण-मन, जागा जीवन हे
जागा जगत लोक-संघ हे प्रियतम
अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।
नतिका प्रभात मेरे नयनों में जागता
भर-भर कर रूप यह प्रसन्न हे प्रियतम
अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।
आज ही कहाँ का क्या जागा है प्राणों में
छिटकी है प्रेम की सुगन्ध हे प्रियतम
अमृत गगन मेरे अन्तस्तल में।

अनु०—युगजीत नवलपुरी

विशाखा

सेठ गोविन्ददास

छठा दृश्य

स्थान—मिगारा के भवन में मिगारा का कक्ष

समय—उषा काल

[वही कक्ष है जो पहले दृश्य में था, मिगारा बेचैनी से इधर-उधर घूम रहा है। उसके साथ ही रेणुका भी घूम रही है।]

मिगारा (अत्यन्त घृणा से)—हाँ, उसने कहा कि मैं बासी खा रहा हूँ।

रेणुका—आपने उसका कथन स्पष्ट सुना ?

मिगारा—सर्वथा स्पष्ट ! मैं बहरा नहीं हूँ, न इतना वृद्ध हो गया हूँ, कि कम सुनाई पड़ने लगे। फिर वह तो बोलती भी इस तरह है कि उसे वज्र बहरा भी सुन सकता है।

[मिगारा चुप होकर टहलता रहता है। रेणुका उसके पीछे-पीछे टहलती है। कुछ देर निस्तब्धता।]

मिगारा—(ठहर कर रेणुका की ओर देखते हुए) रेणु, यह बड़ी बुरी लड़की हमारे घर में आई, अत्यन्त उद्दण्ड ! बड़े-छोटे का इसे कोई ध्यान नहीं, न इस बात का कि क्या कहती है और क्या करती है ? मेरे भोजन को अभक्ष्य कहा, रात को अपने कक्ष से बाहर अश्वशाला में गई और निम्न वर्ग के कार्य करती रही।

रेणुका—धनंजय की इकलौती पुत्री है, अतः सिर पर चढ़ा कर इसे पाला-पोसा गया है।

मिगारा—(फिर टहलते हुए) फिर न जाने उसके पिता ने उसे कैसे-कैसे गूढ़ अर्थ वाले उपदेश दिए है। विदा के समय उसे जो उपदेश दिया गया, वह उसी के कक्ष के निकट के कक्ष में ठहरने के कारण मुझे स्पष्ट सुनाई दिया। विचित्र उपदेश था।

रेणुका—अच्छा !

मिगारा—हाँ, मैंने तो उसे लिख लिया है। (एक भोजपत्र को अधोवस्त्र की अण्टी से निकाल खड़े हो उसे पढ़ता है) घर के भीतर की अग्नि बाहर न ले जाना, बाहर की अग्नि घर के भीतर न लाना, केवल उसी को देना जो तुझे कुछ दे, उसे कुछ न देना जो तुझे कुछ न दे। उन दो को देना जो तुझे न भी दे, अग्नि को प्रज्वलित रखना, उन्हें प्रतिष्ठित रखना जो घर के मानवों से भी ऊँचे हों, सुख से बैठना, सुख से खाना, सुख से सोना।

रेणुका—पूरा समझ में नहीं आया।

मिगारा—पूरा क्या बहुत थोड़ा समझ में आता है, पर जो समझ में आता है, उसी से इस उपदेश की भयानकता सिद्ध हो जाती है। अग्नि को प्रज्वलित रखना, अर्थात हमारे घर में यह लड़की अग्नि लगाने वाली है। उन्हें प्रतिष्ठित रखना जो घर के मानवों से भी ऊँचे हों, अर्थात तुमसे, मुझसे, पुण्यवर्धन तक से यह लड़की अन्यों को ऊँचा मानेगी। और अन्त में कहा है, सुख से बैठना, सुख से खाना, सुख से सोना, अर्थात हमारे घर को भस्म कर अन्यों को हम सबसे ऊँचा मान यह स्वयं सुख से बैठेगी, सुख से खाएगी, सुख से सोएगी। (फिर टहलने लगता है।)

रेणुका—(घबराकर) सचमुच, यह तो बड़ी भयानक परिस्थिति है।

मिगारा—पुण्यवर्धन उसके पंच सौंदर्य पर रीझ गया और मैं उसके कुटुम्ब की सम्पन्नता पर। जैनियों में हमारा कुटुम्ब उतना ही प्रतिष्ठित है, जितना बौद्धों में धनंजय का। गौतम का इस लड़की पर बड़ा प्रभाव है। और इसे उस बौद्ध धनंजय ने इसीलिए हमारे कुटुम्ब में ब्याहा है जिससे यह हमारे कुटुम्ब का नाश कर दे। मैंने……मैंने प्रिये, बड़ी भूल की जो इससे पुण्यवर्धन का ब्याह कराया। इसे आए कुछ ही घड़ी बीती, मैं जैन समाज का सरपंच, मेरी सारी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई और भविष्य में न जाने और क्या होने वाला है।

रेणुका—मैंने तो विवाह के पूर्व आपको इस सम्बन्ध में संकेत भी किया था।

मिगारा—हाँ, तुमने तो कहा था, पर उस समय मैं इसके सौन्दर्य की बात सुन तथा धनंजय की सम्पन्नता तथा उसका कुछ अंश दहेज में हमें भी मिलेगा, इस कारण कोई अन्य बात सोचने की मानसिक दशा में ही न था।

रेणुका—पर अब क्या किया जाए !

मिगारा—(फिर खड़े हो रेणुका की ओर देखते हुए) मैंने निर्णय कर लिया है कि मैं एक घड़ी भी ऐसी लड़की को अपने घर में न रखूँगा।

[विशाखा का प्रवेश]

विशाखा—पिता जी, आपने मुझे बुलाया है।

मिगारा—हाँ, बुलाया है। (शय्या पर बैठ कर) इसलिए बुलाया है कि तुम इस घर में घड़ी भर भी रहने योग्य नहीं। अपना सारा सामान बाँध-बूँधकर यहाँ से तत्काल चल दो।

विशाखा—(आश्चर्य से स्तंभित-सी होकर) मैं इस घर में रहने योग्य नहीं हूँ, तत्काल यहाँ से चल दूँ, अर्थात्।

मिगारा—जो वाक्य मैंने कहे हैं, उसके दो अर्थ नहीं निकल सकते।

विशाखा—वह तो मैं समझी, परन्तु मेरा अपराध ?

मिगारा—एक अपराध हो तो बताऊँ, कल संध्या को तू यहाँ पहुँची और संध्या से लेकर आज प्रातःकाल तक अपराध पर अपराध ही हुए हैं।

विशाखा—परन्तु, आप जानते हैं कि मेरे पिता ने आठ विद्वानों को मेरे साथ भेजा है, जो इस बात के लिए आए हैं कि यदि मुझ पर

कुछ दोषारोपण हो तो वे इसका निर्णय करें कि मैं अपराधिनी हूँ या नहीं ? आप अपने पुत्र से मेरा विवाह कर मुझे यहाँ लाए हैं । यह घर अब मेरा घर भी है । जब तक वे विद्वान इस बात का निर्णय न दे दें कि मैं अपराधिनी हूँ तब तक आप मुझे इस प्रकार घर से नहीं निकाल सकते ।

मिगारा—(रेणुका से) देखती हो, रेणु, इस लड़की की उद्दण्डता । (कुछ विचारते हुए) परन्तु, इसका यह कथन सत्य है कि मैं इसके पिता को यह वचन दे चुका हूँ कि इसको दण्डित करने के पूर्व इसके अपराधों को मैं उन विद्वानों के सम्मुख निर्णय के लिए अवश्य रखूँगा । अतः मैं उन्हें अभी बुलाता हूँ ।

सातवाँ दृश्य

स्थान—मिगारा के भवन में मिगारा का कक्ष

समय—प्रातःकाल

[वही कक्ष है, जो इसके पूर्व के दृश्य में था। पीछे की ओर आसन्दियों पर विशाखा के संग आए हुए आठों विद्वान बैठे हुए हैं। आठों में कुछ वृद्ध और कुछ प्रौढ़ हैं। वेशभूषा उस काल के सदृश। उनके दाहिनी ओर आसन्दियों पर मिगारा और रेणुका बैठे हैं। और बायीं ओर आसन्दी पर विशाखा ।]

पहला विद्वान—तो...तो विशाखा पर आपके तीन दोषारोपण हैं। पहला यह कि इन्होंने कहा कि आप अभक्ष्य का भक्षण कर रहे हैं, दूसरा यह कि ये रात्रि को अपने कक्ष से बाहर अश्वशाला में गईं और तीसरा यह कि इन्होंने वहाँ निम्न वर्ग का काम किया ।

मिगारा—जी हाँ, कल संध्या को तो यह यहाँ आई और कुछ ही घड़ियों में इसने ये तीन महान अपराध कर डाले ।

पहला—(विशाखा से) कहो विशाखा, तुम्हें क्या कहना है ?

विशाखा—मेरे पहले अपराध के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि मैंने यह कहा ही नहीं कि पिता जी अभक्ष्य का भक्षण कर रहे हैं ।

मिगारा—(क्रोध से) तू, मिथ्या भाषण भी करती है । तूने यह नहीं कहा कि मैं बासी भोजन कर रहा हूँ ।

विशाखा—मैंने यह अवश्य कहा कि आप बासी भोजन कर रहे हैं, पर यह नहीं कि आप अभक्ष्य का भक्षण कर रहे हैं ।

मिगारा—बासी भोजन अभक्ष्य नहीं तो और क्या होता है ?

विशाखा—बासी भोजन से मेरा अभिप्राय खाद्य वस्तु से नहीं था ।

दूसरा—तब ?

विशाखा—कल के प्रीति-भोज में जब एक असभ्य और उद्दण्ड व्यक्ति ने यह कह कर आपका अपमान किया कि आपने धन के लिए अपने पुत्र का विवाह किया है और जैनियों और बौद्धों का यह विवाह कल्याणकारी सिद्ध न होगा, तब आप चुप रह गए और आपने उसके प्रतिवाद में एक शब्द न कहा । आपकी मुद्रा से भी मुझे जान पड़ा कि उस व्यक्ति के कथन का आप पर प्रभाव पड़ा है । अतः मेरे इस कथन का कि आप बासी भोजन कर रहे हैं, यह अभिप्राय था कि इस प्रकार के पुराने बासी विचारों का आप पर प्रभाव है ।

मिगारा—परन्तु, यह बात तूने उस समय कही जब मैं भोजन कर रहा था ।

विशाखा—यह एक संयोग की बात थी । भोजन से मेरा अर्थ कुछ दूसरा था । मैं कल ही संध्या को यहाँ आई । मेरे आने के पश्चात आपने पहले-पहल कल संध्या को जो भोजन किया, वह प्रथा के अनुसार मैंने परोसा था । अतः मैं उस भोजन को बासी या अभक्ष्य किस प्रकार कहती ?

तीसरा—दूसरे अपराध के सम्बन्ध में तुम्हारा कथन क्या है ?

विशाखा—यह बात सत्य है कि मैं रात्रि को अपने कक्ष से अश्वशाला में गई थी ।

चौथा—किसलिए ?

विशाखा—इसलिए कि जिस घोड़ी पर मैं वर्षों चढ़ी और जिसे पशु होते हुए भी मैं अपनी भगिनी के तुल्य मानती हूँ, उसने एक बच्चा जना था ।

पाँचवाँ—और जो तुम पर तीसरा दोषारोपण है कि तुमने निम्नतम वर्ग का कार्य किया, उसके सम्बन्ध में तुम्हारा क्या कहना है ?

विशाखा—अश्वशाला में मैंने जो कार्य किया, वह आपको बता देती हूँ, मैंने अपनी उस बहन घोड़ी को स्नान कराया, उस बच्चे को स्नान कराया, उन्हें अच्छी बिचाली बिछा लिटाया, इस प्रकार उनकी सेवा की । मैं भगवान बुद्ध के सर्वभूत हित सिद्धान्त को मानने वाली हूँ । मानव और जीव-मात्र की कोई भी सेवा मैं निम्न वर्ग का कार्य नहीं मानती । मैं तो उच्च वर्ग और निम्न वर्ग को ही नहीं मानती । नैतिक कार्य को, जिनमें सेवा प्रमुख है, मैं उच्चतम कार्य मामती हूँ और अनैतिक कार्य को निम्न कार्य । जो व्यक्ति या समुदाय नैतिक कार्यों में दत्तचित्त रहते हैं, उन्हें उच्च वर्ग का मानती हूँ और जो अनैतिक कार्यों में लिप्त रहते हैं, उन्हें निम्न वर्ग का ।

पहला—मिगारा महोदय, विशाखा के इन कथनों पर आपको और कुछ कहना है ?

मिगारा—(कुछ चकमकाकर) इसने बाल की खाल निकालने का प्रयत्न किया है, फिर......फिर मुझे एक बात और कहनी है ।

पहला—कहिए !

मिगारा—कुछ ही घड़ियों में मुझे इस लड़की से अपने कुटुम्ब के नाश का भय हो गया है ।

पहला—यह कैसे ?

मिगारा—एक तो कल संध्या से आज उषाकाल तक इसने जो कुछ किया और इसका जैसा उद्दण्ड स्वभाव और व्यवहार मैंने देखा उसके कारण और दूसरे इसके पिता ने विदा करते समय इसे जो दस बातों का उपदेश दिया था, उसके कारण जिस कक्ष में यह उपदेश दिया गया था, उस कक्ष के निकट के कक्ष में ठहरे रहने के कारण मैंने उस उपदेश को सुन लिया था और मैंने उसे लिख भी लिया है । (आधोवस्त्र की अण्टी में से भोजपत्र निकाल) इसके पिता ने कहा था—(पढ़ते हुए) घर के भीतर की अग्नि बाहर न ले जाना, बाहर की अग्नि घर के भीतर न लाना, केवल उसी को देना जो तुझे कुछ

दे। उसे कुछ न देना जो तुझे कुछ न दे, उन दो को देना जो तुझे न भी दे, अग्नि को प्रज्वलित रखना, उन्हें प्रतिष्ठित रखना जो घर के मानवों से भी ऊँचे हैं, सुख से बैठना, सुख से खाना, सुख से सोना।

विशाखा—इन उपदेशों में आपको कौन सा उपदेश भयभीत करने वाला है?

मिगारा—मैं इन सब का तो अर्थ समझा नहीं। पर जिनका अर्थ मैंने समझा है, वे उपदेश अत्यन्त भयंकर हैं।

विशाखा—जैसे?

मिगारा—तेरा कुछ ही घड़ियों में जैसा व्यवहार रहा उससे मैंने अग्नि को प्रज्वलित रखने का यह अर्थ समझा है कि तू इस घर में अग्नि लगाने वाली है।

[विशाखा जोर से हँस पड़ती है।]

मिगारा—(क्रोध में विद्वानों से) देखते हैं, आप इसकी उद्दण्डता।

विशाखा—क्षमा कीजिए पिता जी! इस उपदेश का आपका यह अर्थ सुन मैं अपनी हँसी नहीं रोक सकी।

मिगारा—(विद्वानों से) फिर आगे देखिए। उन्हें प्रतिष्ठित रखना जो घर के मानवों से भी ऊँचे हों। अर्थात यह अपनी सास से, मुझ से, पुण्यवर्धन तक से अन्यों को ऊँचा मानेगी और अन्त में इसके पिता ने कहा है—"सुख से बैठना, सुख से खाना, सुख से सोना" अर्थात हम पर चाहे कैसी भी आपत्तियाँ क्यों न आएँ इसके सुखों में कोई बाधा नहीं पड़ेगी।

विशाखा—पिता जी, यदि आप सारे उपदेशों का अर्थ समझ लेंगे तो अन्तिम उपदेशों का आपने जो भ्रमपूर्ण अर्थ निकाला है, उससे विपरीत अर्थ निकालेंगे। "घर के भीतर की अग्नि बाहर न ले जाने" का अर्थ यह है कि मैं आपके, माता जी के, मेरे प्रिय पति के घर के किसी भी व्यक्ति के दोषों को बाहर न ले जाऊँ, "बाहर की अग्नि भीतर न ले जाने" का अर्थ यह है कि यदि मैं बाहर आप लोगों में से किसी के भी किन्हीं दोषों का श्रवण करूँ तो उन्हें आप लोगों से कह आप लोगों को दुःखी न करूँ। "केवल उसी को देना जो दे" का अर्थ यह है कि घर-गृहस्थी में लूटने वालों की कमी नहीं अतः उन्हीं को देना चाहिए जो दी हुई वस्तुओं को लौटा दें, "उसे कुछ न देना जो कुछ न दे" का अर्थ यह है कि यदि समय पर हमें कोई सहायता नहीं देता तो हमें भी ऐसे व्यक्ति की सहायता न करनी चाहिए, "उन दो को देना जो न भी दें," का अर्थ यह है कि उन दीन दुखियों को तो देना ही चाहिए जो हमें कुछ नहीं दे सकते। "अग्नि को प्रज्वलित रखने" का अर्थ यह है कि बधू को अपने पति, ससुर, सास आदि के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति को सदा प्रज्वलित रखना चाहिए, "उन्हें प्रतिष्ठित रखना जो घर के मानवों से भी ऊँचे हों" का अर्थ यह है कि अपने कुल-देवताओं को आदर देना। "सुख से बैठने का" अर्थ यह है कि बधू को तब बैठना चाहिए जब घर का कोई कार्य न रहे अर्थात उसे आलसी नहीं होना चाहिए और "सुख से खाने और सोने का" यह अर्थ है कि उसे तब खाना और सोना चाहिए जब उसके पूज्य जन खा चुकें और सो गए हों।

मिगारा—(एकदम उठकर) यह···यह अर्थ है इन उपदेशों का! (विद्वानों से) अब···अब विद्वज्जन मेरा विशाखा पर कोई दोषारोपण नहीं है। मैं इन्हें घर से नहीं निकालना चाहता।

विशाखा—(उठते हुए) परन्तु···परन्तु, पिता जी अब मैं इस घर में नहीं रहना चाहती।

मिगारा—(आश्चर्य से) यह···यह क्यों?

विशाखा—यह इसलिए पिता जी कि स्त्री पुरुष के हाथ की कठपुतली नहीं है कि जब चाहे तब उसे सजाया, नचाया और जब चाहा तब उसे अपमानित कर उसे घर तक से निकाल दिया। हमारे यहाँ स्त्री को सहधर्मिणी माना गया है, स्त्री के और पुरुष के समान अधिकार हैं। आप मुझे उद्दण्ड कहते हैं। यदि मेरा व्यवहार अन्य दबोची हुई स्त्रियों के सदृश दासोवत हो तो मैं उद्दण्ड नहीं, बड़ी अच्छी, बड़ी सीधी, बड़ी शिष्ट और यदि मैं अपने को पुरुषों के समान मानूँ तो मेरा व्यवहार बुरा, मैं उद्दण्ड। मेरा किसी प्रकार का दोष न रहते हुए भी आपने मुझ पर ऐसे दोषारोपण किए, यहाँ तक कि मुझे घर से निकल जाने की आज्ञा तक दे दी। वह तो मेरे पिता ने आपसे यह वचन ले लिया था कि मैं अपराध के लिए तभी अपराधिनी मानी जाऊँगी, जब उनके द्वारा भेजे गए ये आठ विद्वज्जन मुझे उन अपराधों के लिए दोषी घोषित कर देंगे। यदि मेरे पिता ने यह न किया होता तो आज मेरी क्या दशा होती? मैं तो निरपराधिनी होते हुए भी सब प्रकार से सम्मान से रहित गली-गली में भटकने वाली निराश्रिता हो जाती। मानव सामाजिक प्राणी है, वह अकिंचन होकर रह सकता है, परन्तु अप्रतिष्ठित होकर नहीं। आज के समाज में नारी की सभी प्रतिष्ठा नर के हाथ में है। जब आपने मुझे गृह निष्कासन का दण्ड दिया, तब मैं इस घर से नहीं निकली कि यह घर मेरा भी है। क्योंकि यदि मैं उस समय निकल जाती तो समाज में मेरा क्या स्थान रह सकता था? पिता द्वारा भेजे हुए विद्वान मुझ पर लगाए गए दोषों पर अपनी कोई व्यवस्था दें इसके पहले ही आपने स्वयं मुझे उन दोषों से मुक्त मान लिया। मुझे जो अनुभव यहाँ हुआ है उसके आधार पर मैं अब एक क्षण भी इस घर में नहीं रहूँगी।

मिगारा—(अत्यन्त आतुर स्वर में) विशाखा···विशाखा! मुझे क्षमा करो!

विशाखा—नहीं पिता जी मेरा अब यहाँ रह सकना असम्भव है। कुछ घड़ियों में ही जब यहाँ यह सब हो गया तब मैं अपना सारा जीवन यहाँ कैसे बिता सकती हूँ?

[पुण्यवर्धन का प्रवेश]

पुण्यवर्धन—और पिता जी अब मेरा भी यहाँ रह सकना सम्भव नहीं।

मिगारा—(दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ विह्वलता से शयन पर गिरते हुए से) ओह!···ओह!···अब···क्या होगा?

रेणुका—(उठकर जाती हुई विशाखा के सामने खड़े हो) बेटी! तू क्या···क्या कर रही है कुछ समझती भी है? किनके और कितने पुण्यों के संचय स्वरूप यह पुण्यवर्धन मेरे पेट में आया, कितने कष्टों से इसका जन्म हुआ, कितने परिश्रम से यह पाला-पोसा गया और ऐसा

बन पाया जैसा तू इसे देखती है। कितनी मनौतियाँ मान-मानकर तुझे इस घर में लाई और तू हम सब का जीवन उजाड़ इस घर को मरुभूमि बना इस पुण्यवर्धन के साथ चली जाएगी। यदि कभी तू माता हुई, तूने किसी पुत्र को उदर में धारण किया उसे जना, उसे पाला-पोसा, उसे बड़ा किया, उसका विवाह किया तो तू जान पाएगी, माता की भावनाओं को।

विशाखा—बिना माता हुए ही माता जी, मैं आपकी भावनाओं को समझ सकती हूँ। मैं (पुण्यवर्धन की ओर इशारा कर) इनसे अपने संग जाने के लिए नहीं कहती। पर मेरा·········मेरा अब इस घर में रहना नहीं हो सकता।

रेणुका—तो मेरा तुझ पर कोई अधिकार नहीं ?

विशाखा—किसी स्त्री का उसके अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर को छोड़कर और किस वस्तु पर अधिकार है। जहाँ तक अधिकारों का प्रश्न है वे सबके सब पुरुषों के हाथ में केन्द्रित हैं। फिर जब मुझ पर पिता जी ने दोषारोपण किए उस समय आपके अधिकार कहाँ गए थे, अब जब आप देखती हैं कि (पुण्यवर्धन की ओर संकेत कर) ये भी मेरे संग जाने को प्रस्तुत हैं तब आप प्रेम का यह अधिकार जताती हैं।

रेणुका—बेटी, तू इतनी कठोर हृदय वाली है, यह मैं नहीं जानती थी।

विशाखा—जिस प्रकार पिता जी ने मुझे समझने में भूल की मैं समझती हूँ, एक अन्य प्रकार से आप भी उसी प्रकार की भूल कर रही हैं। माता जी, मैं कठोर हृदया नहीं हूँ, पर मैंने यहाँ आकर कुछ घड़ियों में ही युग-युग से प्रताड़ित नारी की जिस दशा का अनुभव किया है वही मुझे इस समय इतना कठोर दर्शा रहा है। नारी पर किए गए अगणित अत्याचार मेरे शब्दों द्वारा चीत्कार कर रहे हैं। नारी पर किए गए पुरुषों के अमानुषिक व्यवहार मेरे द्वारा इस प्रकार की कृति करा रहे हैं। जब मैं सात वर्ष की थी और जब मैंने सर्वप्रथम भगवान बुद्ध के दर्शन किए थे उस समय उन्होंने मुझे कुछ उपदेश दिए थे। मैंने अपना सारा जीवन उन उपदेशों के अनुसार चलाया है और अपना आगे का जीवन भी उन्हीं उपदेशों के अनुसार चलाना चाहती हूँ।

मिगारा—(उठकर विशाखा के निकट आ भर्राये हुए स्वर में) बेटी! यहाँ रहते हुए तुझे स्वतन्त्रता······पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी, उन उपदेशों के अनुसार अपना जीवन चलाने की।

[विशाखा का सिर झुक जाता है। रेणुका और मिगारा एकटक
उसकी ओर देखते हैं। कुछ देर निस्तब्धता।]

मिगारा—बोल,·············बोल बेटी!

रेणुका—हाँ, जिस प्रकार भी तू अपना जीवन चलाना चाहेगी उस प्रकार चलाने के लिए तू सर्वथा स्वतन्त्र रहेगी।

विशाखा—(दीर्घ निःश्वास छोड़ कर) पिता जी, जो वचन आप दे रहे हैं, उनका निभाना सरल न होगा।

मिगारा—यदि, मैं अपने वचनों को न निभाऊँ तो तू यही कर सकती है जो इस समय करने जा रही है।

विशाखा—पिता जी, भगवान बुद्ध ने मुझ से कहा था सच्ची वीर बाला बनना, सच्ची वीरता आन्तरिक वीरता है, इस आन्तरिक वीरता वाला व्यक्ति सुख, दुःख की चिन्ता न कर सत् सिद्धान्तों पर हर परिस्थिति में अडिग रहता है। इन सत् सिद्धान्तों का भी उन्होंने विवेचन किया था जो उनके उस उपदेश के पश्चात मैं भी सतत् करती हूँ, इस परिस्थिति में उनमें से कुछ सिद्धान्त हैं, समदृष्टि और सहिष्णुता। आप को पुरुषों और स्त्रियों को समदृष्टि से देखना होगा। जितना अधिकार इस गृह में आपका और (पुण्यवर्धन की ओर संकेत कर) इनका है, उतना ही माता जी का और मेरा रहेगा, जितनी भक्ति आपकी जैन धर्म पर है, उतनी ही मेरी बौद्ध धर्म पर है। मैं यह नहीं कहती कि आप बौद्ध हो जाएँ, पर बौद्ध धर्म के प्रति आपको वैसी ही सहिष्णुता रखनी होगी जैसी मेरी जैन धर्म के प्रति है। यदि इस घर में महावीर स्वामी का स्वागत और आदर होता है तो भगवान गौतम बुद्ध का भी होगा और······और ऐसे असहिष्णु, असभ्य व्यक्तियों का यहाँ कोई स्थान न रहेगा, जैसा असहिष्णु और असभ्य व्यक्ति मैंने कल संध्या को आपके उद्यान के प्रीति-भोज में देखा था।

मिगारा—(आँखों में आँसू भर गद्‌गद् स्वर से) ऐसा······ऐसा ही होगा बेटी। और······और मैं तुझे पुत्र-वधू न मानकर अपनी माता के सदृश मानूँगा।

[नेपथ्य में गान होता है]

हे वीतराग, हे वीत शोक
त्रिविध ताप-तम, घोर निशा में, मोह मुग्ध यह लुब्ध लोक।
विकच वासना चिर अतृप्तिमय, जरा, मरण, अवसार सतत भय,
जगती के इस ज्वलित वृत्त पर, शप्त नम मानेव विलोक॥
अति दया द्रवित अन्तर उदार, झरती करुणा की सतत धार,
सरल स्निग्ध नयनों से उद्‌गत् शान्ति शान्ति का नवालोक॥
विगत रजस्तम, मानस निर्मल, अनुबिम्बित सत्‌चित् धन उज्ज्वल,
शुद्ध-बुद्ध जागे जन जीवन, हो कृतार्थ यह मर्त्य लोक॥

उपसंहार

स्थान—मिगारा का उद्यान

समय—सन्ध्या

[वसन्त के कारण उद्यान पुष्पों से भरा हुआ है, इनमें पीत रंग के पुष्प अधिक हैं। भगवान गौतम बुद्ध के स्वागतार्थ उद्यान पीत पताकाओं से सजाया गया है। एक ऊँचे स्वर्ण के सिंहासन पर जिस पर पीले रंग के वस्त्रों से ढकी हुई गद्दी बिछी है और तकिए लगे हैं, गौतम बुद्ध विराजमान हैं। उनके चारों ओर भिक्षुओं का जमघट है जो पीत रंग के चीवर पहने हैं। उनके सिंहासन के निकट ही पीले रंग की साड़ी पहने विशाखा बैठी हुई है।]

बुद्ध—प्रमाद से मुक्त को अमृतपद की प्राप्ति होती है और प्रमाद से युक्त को मृत्यु की। जो प्रमाद रहित हैं, वे नहीं मरते और प्रमादी मरे के ही समान हैं। जिस प्रकार तीर बनाने वाला तीर को सीधा करता है, उसी प्रकार बुद्धिमान अपने उस मन को सीधा करता है जो हिलता

है, चपल है। कोई सुगन्ध चाहे वह चन्दन की हो, अगर की, मल्लिका की, वायु से उल्टी ओर नहीं जाती, परन्तु, सत्पुरुषों की सुगन्ध पवन के प्रवाह के विपरीत भी चलती है। मार्ग में जाते हुए तुम्हें अपने से अच्छा या अपने समान साथी न मिले तो अकेले ही चलो। उपासना का मल अनभ्यास है। घर का मल उसकी अरक्षा है, सौंदर्य का मल आलस्य है, संरक्षक का मल प्रमाद है, स्त्री का मल दुश्चरित्र है, दानी का मल मत्सर है। पापयुक्त कर्म लोक और परलोक दोनों का मल है और इन सब मलों से बड़ा मल अविद्या है। मलों को त्याग निर्मल बनो।

[बुद्ध चुप हो जाते हैं, चारों ओर से निम्न लिखित शब्द होते हैं।]

बहुजन हिताय
बहुजन सुखाय
बुद्धं शरणं गच्छामि
धम्मं शरणं गच्छामि
संघं शरणं गच्छामि

[यवनिका]

समाप्त

◆

संध्या की वेला--(पृष्ठ २१ का शेषांश)

क्या उसके लिए कम आनन्द की बात है? साथ ही उसने यह इरादा कर लिया कि इस बात को कभी किसी से नहीं कहूँगा।

दूसरे दिन चिन्नप्पन को ज़ोर का बुखार हो आया। तीन-दिन तक उसे अपनी सुधि तक नहीं रही और उस हालत में तरह-तरह की बातें बकता रहा।

"अरी शेंगमलम। तेरे बाप को मैंने ही बचाया है। तू जानती है कि किसने बचाया? मैंने ही, मैंने ही···। अरी, तू मुझे ब्याहेगी नहीं···? नहीं? शेंगमलम।···"

ज्वर की तीव्रता के अनुसार उसका यह बकना भी बढ़ता रहा। तीन-चार दिनों के बाद बुखार का जोर कम हुआ और चिन्नप्पन थोड़ा स्वस्थ होकर गाढ़ी नींद सो रहा था। तब भी वह शेंगमलम का ही सपना देख रहा था। न जाने, स्वप्न और जागृति की सन्धि में उसका अन्तरमन कब घुसा हो। वह बोल उठा—शेंगमलम! तू···तू कहाँ है? रहती कहाँ है? आ गई?···"

"हाँ, आ गई हूँ। अजी। इधर···इधर ही हूँ।"

चिन्नप्पन हड़बड़ाकर उठा और आँखें मल मलकर उसने देखा। सपना नहीं, भ्रम नहीं, भूल-भुलैयाँ नहीं! शेंगमलम—वही उसकी रूठी रानी—खाट के पास साक्षात खड़ी हुई थी।

"अजी। तुम···तुम···?"

"हाँ-हाँ। मैं ही हूँ, शेंगमलम। अपने दिल को बोझीला मत बनाओ। निश्चिन्त होकर सोओ। सब ठीक हो जाएगा।" अपनी प्राण-प्यारी का यह मधुर-कोमल स्वर कानों में पड़ते ही चिन्नप्पन को लगा कि अमृतमयी औषधि मिल गई है और मैं पूरी तरह स्वस्थ हो गया हूँ।

पास ही खड़ा मुत्तु करुप्पन सजल नेत्रों से उसे देख रहा था। उसकी नींद टूटती देख मुत्तु करुप्पन ने गद्गद होकर कहा—"भाई चिन्नप्पन। अब बड़े घर का बेटा मैं नहीं रहा, तुम ही, उसके लायक हो। घर के बूढ़े मालिक को तुम्हीं ने बचाया है। आज तुम्हीं हमारे बड़े घर के बेटे हो?"

चिन्नप्पन अप्रत्याशित आनन्द और विस्मय के संवेदन के भार से थक-सा गया और उसकी आँखें पुनः नींद से मुँद गईं।

बिछुड़े मन फिर से जुड़ गए। दोनों घर वालों की आत्मीयता और निकटता को दृढ़ करने का शुभ मुहूर्त्त अगले महीने में ही आ गया। चिन्नप्पन और शेंगमलम को नव दम्पती के रूप में देखकर सारा गाँव बहुत प्रसन्न हुआ।

चिन्नप्पन की गृहलक्ष्मी शेंगमलम आज इस घर में, इस सन्ध्या की वेला में भव्य आभा बिखेरने वाला मंगल-दीप देवता के सामने रखकर गई है। अभी थोड़ी देर में मुत्तु करुप्पन आने वाला है। उसको यह तय करना था कि इस साल कौन-सा नाटक खेला जाए। निर्णय करने वाला चिन्नप्पन है।

"इस साल 'नृसिंहावतार' का नाटक ही खेलना है। नृसिंह मूर्त्ति के अवतार का प्रतीक है। वह भयंकर सन्ध्या की वेला में भक्तवर प्रह्लाद को अपने वरद पाणि से स्पर्श की याद दिलाती है।"

सन्ध्या की उस मोहक वेला में, चिन्नप्पन अपना निर्णय बताने के लिए मित्रवर मुत्तु करुप्पन की प्रतीक्षा कर रहा था।

—अनुवादक र० शौरिराजन

◆

मत्स्याः यथान्तः सलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्तः।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ता ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः॥

कौटिल्य अर्थशास्त्र, अधिकरण २, अध्याय ९

जिस तरह यह पता लगाना अशक्य है कि पानी में रहती हुई मछली कब पानी पी लेती है, उसी तरह धन के लेनदेन में नियुक्त राजकर्मचारी कब रिश्वत ले लेते हैं, यह पता लगा सकना भी अशक्य हो जाता है।

ओलिम्पिक खेल

हरिश्चन्द्र कैला

खेल-जगत में क्रिकेट के अन्तर्राष्ट्रीय मैच होते हैं। बिम्बलडन और डेविस कप जैसी टैनिस प्रतियोगिताएँ चलती हैं। फुटबाल में ज्यूल्ज़े रेमिट कप खेला जाता है। लेकिन इनमें से कोई भी प्रतियोगिता विश्व ओलिम्पियड के (जो कि हर चौथे वर्ष होती है) विराट स्वरूप अथवा उसकी विशालता को नहीं पहुँचती। इन खेलों का कब और किस देश में प्रादुर्भाव हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसके बारे में कई धारणाएँ हैं, लेकिन सभी इतिहासज्ञ इस बात पर एकमत हैं कि ऐसे खेलों का आयोजन सर्वप्रथम ७७६ बी० सी० में हुआ। इन खेलों का रूप भी किसी हद तक निश्चित किया जा सकता है। कहा जाता है कि ये खेल उसी नमूने पर हैं जिस नमूने पर इनसे भी पुराने काल में पर्व-सम्बन्धी प्रतियोगिताएँ चलती थीं। इन प्रतियोगिताओं को आकार यूनान के एक प्रसिद्ध व्यक्ति महर्षि डेल्फिक द्वारा मिला। उसने देखा देश छोटी-छोटी रियासतों में बँट गया है, राजे-महाराजे स्वतन्त्र रूप से शासन चलाते हैं और आपस में लड़ते-भिड़ते हैं। उनमें पारस्परिक मैत्री बढ़ाने का एक ही उपाय है—उनको एक ही अखाड़े में लाया जाए। उसने सुझाव दिया कि एक विशेष स्थान पर समारोह हो। हरेक रियासत अपने सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए भेजे और जो व्यक्ति उनमें से प्रथम स्थान पाए, उसे हैलास (उन दिनों यूनान का नाम हैलास था) का सर्वोत्तम पुरुष माना जाए। इस सुझाव को सब ने स्वीकार किया और नरेशों ने प्रतियोगिता में अपने-अपने प्रतिनिधि भेजने शुरू कर दिए। स्थान ओलिम्पिस का पर्वत निश्चित हुआ। इसका एक विशेष कारण था। यूनानियों के धार्मिक विचारों के अनुसार वहाँ देवता वास करते हैं, इसलिए यूनानियों को विश्वास था कि उन्हें उनका आशीर्वाद आप ही आप मिल जाएगा।

लेकिन प्राचीन काल की यूनान की वे प्रतियोगिताएँ आज की प्रतियोगिताओं से भिन्न थीं। उसमें कुदान, लम्बी अथवा छोटी दौड़ें, मुक्केबाज़ी और कुश्तियों के ही मुकाबले नहीं चलते थे, बल्कि कला, कविता, शिल्प कला, और राजनीतिक सूझ इत्यादि की प्रतियोगिताएँ भी रहती थीं। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, सांस्कृतिक विषयों का महत्त्व कम होता गया और अन्ततः उनका बिल्कुल ही लोप हो गया। प्राचीन प्रतियोगिताओं के लिए नियम बहुत कड़े होते थे। प्रत्येक प्रतियोगी के लिए चरित्रवान और स्वतन्त्र यूनानी होना लाज़मी था। प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर मिलना गौरव और सम्मान की बात मानी जाती थी। प्रथम आने वाले को उपहार के रूप में जैतून का हार दिया जाता था।

इस सम्बन्ध में एक और बात का उल्लेख कर देना भी आवश्यक है। उस समय प्रतियोगिताओं में नारी भाग नहीं लें सकती थी—भाग ही क्या उन्हें देख भी नहीं सकती थी। इसके सम्बन्ध में नियम तक बना दिया गया था। लेकिन जहाँ-तहाँ नियम की अवहेलना होने लगी। कई एक तो खेलों को सुराखों इत्यादि से झाँक कर देख लेतीं अथवा कोई और युक्ति निकाल लेतीं। इस अभियोग में कुछ को मौत की सज़ा भी हुई। प्राचीन काल के यूनानी धार्मिक समारोहों में नारी की उपस्थिति को बुरा समझते थे, और इन खेलों का धार्मिक समारोहों सरीखा ही महत्त्व था। एक दिलचस्प घटना इस प्रकार प्रसिद्ध है। मुक्केबाज़ पी० सी० डोरस की माता फेरिनिस अपने लड़के का खेल देखने के लिए इतनी उतावली हो गई कि मर्द के वेश में स्टेडियम में जा घुसी। जब यह घोषित किया गया कि उसका लड़का किसी विशेष प्रतियोगिता में प्रथम आया है तो वह अपनी खुशी को दबा न सकी, दीवाने की तरह उसकी तरफ भागी और उसका आलिंगन कर लिया। लेकिन वेशभूषा की कोई वस्तु गिर जाने से सारा भेद खुल गया। पकड़ी गई और पूछताछ हुई। उसने मातृस्नेह का सहारा लेकर क्षमा-याचना की। अधिकारियों ने उसे छोड़ दिया। इससे समस्त नारी जाति का हित हुआ। कुछ समय के बाद नारियों को खेल देखने की इजाज़त मिल गई। बाद में उन्होंने अपने पृथक खेल चला लिए। ये खेल होते तो हर चौथे वर्ष थे, लेकिन उस वर्ष में नहीं जिसमें मर्दों के खेल होते थे। इन खेलों का नाम हेरिया था और इनकी स्थापना हिप्पो-डो-मैया द्वारा हुई।

खेलों के प्रारम्भिक काल में प्रतियोगी लंगोट बाँधते थे लेकिन ७२० बी० सी० में इसका भी त्याग करना पड़ा। इसके पीछे एक रोचक कहानी है। ओरसीपस नामक एक एथलीट की (जिसकी एक विशेष दौड़ में जीत की तनिक-भी सम्भावना नहीं थी) भागने में लंगोटी खुल गई। इससे शायद वह हल्का हो गया और ऐसी तेज़ी से भागा कि प्रथम आया। इसके फलस्वरूप नियम को ही बदलना पड़ा। कई वर्षों तक यूनानियों ने प्रकृति के ही वेश में भाग लिया।

इन खेलों को जो रूप यूनानियों द्वारा मिला १,२०० वर्षों तक जीवित रहा। ३९४ में इनका लोप हो गया और फिर लगभग १,६०० वर्षों तक ये बिल्कुल उपेक्षित रहे। लेकिन सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में फिर पुनर्जन्म के चिह्न दिखाई देने लगे। सन् १८१७ में इंग्लैंड में इन खेलों का पहला क्लब बना और सन् १८६६ में समस्त इंग्लैंड की पहली प्रतियोगिता शुरू हुई। फिर सन् १८६८ में अमेरिका में और इसके ६ वर्ष बाद जर्मनी में इनका श्रीगणेश हुआ।

लेकिन आधुनिक युग की सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण तिथि सन् १८९६ है। इसी वर्ष फ्रांस के प्रसिद्ध शिक्षक बेरिन पीयर डी० कूबटन के कई वर्षों के अनवरत प्रयास के बाद इन खेलों का आयोजन विश्व स्तर पर किया गया। चूंकि सबसे पहले ये खेल यूनान में हुए थे

इसलिए उसी देश की राजधानी एथेन्स को ही पहली विश्व-ओलिम्पियड के लिए चुना गया। कूबर्टन ने इन खेलों को नया आदर्श-वाक्य भी दिया जो इस प्रकार है : "ओलिम्पिक खेलों में महत्त्वपूर्ण बातचीत नहीं बल्कि उनमें भाग लेना है। जीवन में महत्त्वपूर्ण बात विजय नहीं, बल्कि जीवन से जूझना है। मूल बात विजय प्राप्त करना नहीं बल्कि ईमानदारी से संघर्ष करना है।"

इन खेलों के विषय में कई और बातें भी जानने योग्य हैं। पहली तो यह कि ये खेल किसी देश को नहीं मिलते। बल्कि विश्व के किसी प्रमुख शहर को मिलते हैं। उदाहरण के लिए सन् १९४८ के खेल लन्दन के ओलिम्पियड कहलाते हैं, इंग्लैंड के नहीं। सन् १९३६ के खेल बर्लिन के खेल थे, जर्मनी के नहीं। इसी तरह सन् १९५२ के खेल हैलसिन्की समारोह के नाम से प्रसिद्ध हुए, फिनलैंड के नाम से नहीं। इस क्रम के सर्वप्रथम खेल एथेन्स के खेल थे, यूनान के नहीं।

दूसरी बात यह है कि इन खेलों में राष्ट्र भाग नहीं लेता, बल्कि व्यक्ति अनधिकृत ढंग से ऐसा जरूर बता दिया जाता है कि किसी देश विशेष ने कितने अंक अर्जित किए या किसी विशेष खेल में किस देश की टीम जीती। लेकिन इससे परे इसका कोई महत्त्व नहीं। शायद यही कारण है कि जैसा सुहृदयता (स्पोर्ट्समैनशिप) का स्तर इस ओलिम्पियड में दृष्टिगोचर होता है विश्व के किसी अन्य सम्मेलन में नहीं होता।

ओलिम्पिक-वल्लरी में समय की गति के साथ-साथ पुष्प लगते गए हैं। सन् १९२४ में पहली बार विन्टर गेम्स यानी बर्फ पर खेले जाने वाले खेलों का आयोजन हुआ और आज ये बड़े समारोह का अनिवार्य अंग बन गए हैं। सन् १९५१ में एक और कदम भी उठाया गया। इसका श्रेय भारत को है। नई दिल्ली के विशाल नेशनल स्टेडियम में मार्च के महीने में एशियन गेम्स (एशियड) का आयोजन किया गया। इस समारोह को एशिया की ओलिम्पियड कहा जा सकता है। इसमें ग्यारह देशों ने भाग लिया और सात दिन तक कार्यक्रम चलता रहा। ये खेल भी हर चौथे वर्ष होते हैं। इस क्रम की दूसरी प्रतियोगिता मनीला में सन् १९५४ में हुई। लेकिन इससे पहले एक और कदम भी उठाया जा चुका था। दुर्भाग्य से बहुत से लोगों का ध्यान इसकी तरफ आकर्षित नहीं हुआ। इन खेलों का नाम है "लिंगियड"। लिंगियड सन् १९४८ में स्टाकहाम में हुई। इसके तत्वावधान में पुरातन के तीरन्दाज़ी, योगासन और तलवार इत्यादि चलाने के मुकाबले हुए। जैसी कि आशा की जाती थी भारत के प्रतिनिधियों ने इसमें बहुत नाम कमाया। इन खेलों को ओलिम्पियड का ही एक रूप मानना चाहिए। ओलिम्पिक खेल जितने दिन चलते हैं, ज्योति जलती रहती है। ज्योति इन खेलों का प्रतीक है। खेलों से कुछ मास पूर्व इसे यूनान के एक ऐतिहासिक मन्दिर में प्रज्वलित किया जाता है और इसके बाद एक निश्चित मार्ग से इसे खेल स्थान तक लाया जाता है। हैलसिन्की में ओलिम्पिक ज्योति जलाने का काम फिनलैंड के विश्व प्रसिद्ध एथलीट पावो नूरमी ने किया। यह शुभ कार्य किसी वयोवृद्ध एथलीट को ही सौंपा जाता है। ऐशियन गेम्स के समय ज्योति भारत के पुराने एथलीट मेजर दिलीपसिंह ने जलाई थी।

ओलिम्पिक खेल विश्व में अब ऐसे प्रवेश कर गए हैं जैसे धमनियों में रक्त। किसी देश अथवा महाद्वीप की प्रतियोगिता तो एक तरफ रही छोटे से छोटे स्कूल का एथलेटिक समारोह भी इसी का ही एक रूप है। विश्वविद्यालयों, जिलों, प्रान्तों, सरकारी महकमों आदि के खेल इसी का एक रूप हैं। इनमें से प्रत्येक के अपने रिकार्ड होते हैं जिनका लेखा-जोखा रखा जाता है। सर्वोच्च स्तर पर रिकार्ड दो प्रकार के होते हैं—विश्व के रिकार्ड और ओलिम्पिक के रिकार्ड। इन दोनों में विशेष अन्तर है यद्यपि जनसाधारण को ये एक ही प्रतीत होते हैं। ओलिम्पिक के रिकार्ड वे हैं जो किसी विश्व ओलिम्पियड के दौरान में स्थापित हों, विश्व के रिकार्ड केवल किसी ओलिम्पियड में ही नहीं और स्थान पर भी स्थापित हो सकते हैं। यद्यपि कई एक ओलिम्पिक के रिकार्ड साथ ही साथ विश्व के रिकार्ड भी हैं। बहुत से विश्व के रिकार्ड भिन्न भी हैं।

किसी विश्व-रिकार्ड के स्थापित होते ही उसे स्वीकृति नहीं मिल जाती। उसे अन्तर्राष्ट्रीय एमेच्योर एथलेटिक फेडरेशन को भेजा जाता है। इस संस्था के अधिकारी (जो कि कई देशों से होते हैं) कई प्रकार की जाँच-पड़ताल करते हैं। वे देखते हैं कि उस समय हवा तो ज्यादा नहीं चल रही थी, हवा आदमी की गति को बढ़ा देती है जमीन में ऊँच-नीच तो नहीं थी, प्रतियोगिता का स्तर कैसा था आदि। इन खेलों के बारे में एक और कड़ा नियम भी है। कोई भी एथलीट प्रतियोगिता से पहले किसी ऐसी चीज़ का सेवन नहीं कर सकता जिससे उसकी क्षमता में अनुचित वृद्धि हो जाए। काफी, चाय, कोको इत्यादि का सेवन तो वर्जित नहीं। लेकिन किसी रसायन अथवा नशीली चीज़ का (जो कि रसायन का काम दे) प्रयोग वर्जित है।

वैसे तो ओलिम्पिक खेलों में मुक्केबाजी, हॉकी, बासकेट बाल, तैराकी, घुड़सवारी, निशानेबाज़ी, कुश्तियाँ, बोझा उठाना और तलवार चलाने जैसी दर्जनों प्रतियोगिताएँ सम्मिलित होती हैं लेकिन इनमें सब से महत्त्वपूर्ण स्थान केवल फील्ड और ट्रेक प्रतियोगिताओं का है। फील्ड की प्रतियोगिताओं के अन्तर्गत लौंग या ब्रौड जम्प, यानी लम्बी से लम्बी कुदान, हाप स्टैप जम्प यानी एक कुदान के बाद एक कदम लेकर दूसरी छलाँग लगाना, हाई जम्प, यानी ऊँची से ऊँची कुदान, पटिंग दी वेट यानी गोला फेंकना, डिसकस थ्रो यानी लोहे से मढ़े चप्पड़ी के आकार के एक यंत्र को फेंकना, भाला फेंकना, पाल वाल्ट (लम्बे बाँस के सहारे ऊँची से ऊँची कुदान लगाना) और हैमर थ्रो आते हैं। ट्रेक प्रतियोगिताओं में कई प्रकार की लम्बी और छोटी दौड़ें सम्मिलित हैं।

ओलिम्पिक के अन्तर्गत होने वाली दौड़ों को सुविधा के लिए श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है। जो एथलीट सौ गज़ या सौ मीटर दो सौ मीटर तक की दौड़ों में भाग लेते हैं स्प्रिंटर्स कहलाते हैं। मिडिल डिस्टेंस ग्रूप में सब ऐसे एथलीट आते हैं जो ४०० से २०० मीटर तक की दौड़ों में भाग लेते हैं और माइलर्स वे होते हैं जो कि १,५०० मीटर अथवा एक मील की दौड़ के विशेषज्ञ होते हैं। माइलर्स के बाद 'डिस्टेंस मैन' आते हैं। ये दो मील से पाँच मील

तक की दौड़ों में भाग लेते हैं। मेराथन दौड़ (२६ मील ३८५ गज़ की दौड़) एक अलग श्रेणी की दौड़ है। हर्डल्स दौड़ में लकड़ी के बने स्टैंडों को फाँदना पड़ता है और स्टीपलचेज़ में कुछ बाधाओं की व्यवस्था होती है। इससे ये दौड़ें दिलचस्प बन जाती हैं। उदाहरण के तौर पर स्टीपलचेज़ में दौड़ने वाले को हर्डल्स फाँदनी पड़ती हैं और पानी में से गुज़रना पड़ता है। इनके अतिरिक्त रिले रेस भी होती है। इसमें टीम के चार सर्वश्रेष्ठ दौड़ने वाले भाग लेते हैं। एक बेटन (डंडे) का प्रयोग होता है, जिसे निश्चित दूरी के बाद पहला व्यक्ति दूसरे को थमा देता है, दूसरा तीसरे को और तीसरा चौथे को। आपने पत्रों में देखा होगा कि रिले रेस का नाम देते समय सीधा ४०० मीटर नहीं लिखा जाता बल्कि ४×१०० मीटर। इसका अर्थ यह है कि चार व्यक्ति मिलकर १००, १०० मीटर भागें।

इन्हीं खेलों के आधार पर दो नई प्रतियोगिताओं का भी निर्माण हुआ है। इनके नाम हैं पेन्टेथलान (पाँच खेलों की प्रतियोगिता) और डिकेलान (१० खेलों की प्रतियोगिता) पहली एक दिन तक चलती है और दूसरी दो दिन तक। पेन्टेथलान का रूप तो काफी बदल गया है। डिकेथलान में इस बात का निर्णय होता है कि सामूहिक क्षमता की दृष्टि से कौन-सा एथलीट सब से अच्छा है।

नारियाँ तो इनी-गिनी प्रतियोगिताओं में भाग लेती हैं। वे लम्बी दौड़ों और स्टीपलचेज़ में भाग नहीं लेतीं। और उनकी अपनी पेन्टेथलान और डिकेथलान भी नहीं होती। हाँ, वे सब छोटी दौड़ों में भाग लेती हैं। और हर्डल्स और रिले रेस में भी। उनके लिए हर्डल्स की ऊँचाई ज़रा कम होती है। इसके अलावा वे गोला फेंकती हैं, भाला फेंकती हैं, डिसकस फेंकती हैं और लम्बी और ऊँची छलाँगों में भाग लेती हैं।

यहाँ कुछ विश्व-विख्यात एथलीटों का भी नाम देना जरूरी है। विश्व के सब से ज्यादा प्रख्यात एथलीट (विशेष करके लम्बी दौड़ों में) फिनलैंड के पावो नूरमी माने जाते हैं। उनको फ्लाइंग फिन का नाम भी दिया गया है। उसी देश के रिटोला भी उन्हीं के आस-पास स्थान पाते हैं। प्रतीत होता है फिनलैंड के एथलीट लम्बी दौड़ों में अधिक दक्ष हैं। नूरमी के अलावा और भी बहुत से एथलीट हैं जो अपनी अमिट छाप छोड़ गए हैं। अमेरिका के जिम थोर्प तो सन् १९१२ में पेन्टेथलान और डिकेथलान दोनों में प्रथम आए। लेकिन चूँकि वह पेशेवर खिलाड़ी की हैसियत से बेसबाल खेल चुके थे उन्हें पदक नहीं दिए गए। विश्व-ओलिम्पियड में प्रोफेशनल भाग नहीं ले सकता। इनके अलावा और भी बहुत से नाम हैं। ग्लैन कनिंघम, कार्नीलियस, वारमर्डम, मिलिड्डु डिडि्क्सन, ज़हारियस, चार्ल्स पैडक, और गंडर हेग के नाम आपको बार-बार ओलिम्पिक-सम्बन्धी पुस्तकों के पन्नों में दृष्टिगोचर होंगे।

सन् १९५२ की ओलिम्पियड में चैकोस्लोवाकिया के एमिल ज़ेटोपिट का प्रदर्शन भी इतना ही अच्छा हुआ जितना ओलिम्पिक इतिहास में किसी भी अन्य एथलीट का। वह लम्बी दौड़ों के विशेषज्ञ हैं। नूरमी को "फ्लाइंग फिन" का नाम मिला था, इनको ह्यूमन लोकोमोटिव अथवा पुरुष रूपी इंजन का। चतुर्मुखी क्षमता में अमेरिका के बोब मैथियास भी कमाल दिखा रहे हैं। सत्तर वर्ष की आयु में पहली बार लन्दन में डिकेथलान की प्रतियोगिता जीते, और चार वर्ष बाद (हेलसिनकी) की। अमेरिका के वह सर्वश्रेष्ठ एथलीट माने जाते हैं। ओलिम्पिक इतिहास में ऐसे एथलीट कम ही हुए हैं।

जैसे पुरुषों के क्षेत्र में उपर्युक्त एथलीटों का विशेष स्थान है, वैसे ही नारियों के क्षेत्र में भी कई एक का अपना स्थान है। आज तक सबसे ज़्यादा नाम हालैंड की फैनी ब्लेंकर्ज़ कोइन ने कमाया है। वह सन् १९४८ की लन्दन की ओलिम्पियड में तीन प्रतियोगिताओं (१०० मीटर की दौड़, २०० मीटर की दौड़ और ८० मीटर की हर्डल्स) में प्रथम आईं। विगत ओलिम्पियड में आस्ट्रेलिया की एक टाइपिस्ट लड़की मारजोरी जैक्सन सबसे ज़्यादा चमकीं। वह दो प्रतियोगिताओं (१०० मीटर की दौड़ और २०० मीटर की दौड़) में प्रथम आईं। दूसरी प्रतियोगिता का तो उनका विश्व का रिकार्ड है।

औरतों ने प्रथम बार सन् १९२८ की ओलिम्पियड में प्रवेश किया।

यदि आप ओलिम्पिक के आँकड़ों पर दृष्टि डालें तो आपको पता चलेगा कि रिकार्डों में दिनों-दिन वृद्धि हो रही है। कई पुराने रिकार्ड देख कर आज हँसी आती है। सन् १८९६ में १०० मीटर की दूरी को यदि प्रथम आने वाले दौड़ाक टी० ई० बर्क ने १२ सैकण्ड में तय किया था, तो आज औरतें भी इस दूरी को १२ सैकण्ड से कम समय में तय कर लेती हैं। सन् १९१२ में लम्बी से लम्बी छलाँग २० फुट १० इंच थी तो आज दर्जनों एथलीट इससे ऊपर जाते हैं। आज का पुरुष ६० वर्ष पूर्व के पुरुष से ज़्यादा स्वस्थ है यह तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन निश्चित ही वह समझ से ज़्यादा काम लेता है। आज के एथलीट की टेकनीक निश्चय ही बेहतर है। वह वैज्ञानिक ढंग से अभ्यास करता है। शक्ति बढ़ाने या कायम रखने के लिए कई प्रकार की मालिशें करवाता है। प्रगतिशील देशों में उसे एलेक्ट्रिक ट्रीटमैंट (बिजली के प्रयोग द्वारा स्वास्थ्य में वृद्धि) की भी सुविधा है। इसके अलावा उसे कई प्रकार का परामर्श अथवा निर्देशन भी मिलता है।

वैसे तो किसी भी देश में अच्छी से अच्छी क्षमता वाला एथलीट पैदा हो सकता है। लेकिन कई-कई देशों ने किसी विशेष क्षेत्र में असाधारण प्रगति दिखाई है। छोटी दौड़ों में सामान्यतः अमेरिका सबसे आगे है। वहाँ के नीग्रोज़ का उस देश का स्तर ऊँचा करने में बहुत हाथ है। जैसी ओवन्ज़ और हैरीसन डिलर्ड दोनों नीग्रो हैं। रूसी जिनको विगत ओलिम्पियड में द्वितीय स्थान मिला फील्ड और ट्रेक प्रतियोगिताओं की अपेक्षा मुक्केबाज़ी, कुश्तियों और बोझा उठाने में ज़्यादा दक्ष हैं। फिनलैंड के एथलीट जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है लम्बी दौड़ों के विशेषज्ञ रहे हैं। जापानी तैराकी में कमाल दिखाते रहे हैं यद्यपि अब उस क्षेत्र में प्रतिभा बिखर चुकी है। स्वीडन, हंगरी, चैकोस्लोवाकिया, फ्रांस और इंग्लैंड ने भी अच्छे-अच्छे एथलीट पैदा किए हैं। सामान्य रूप से पश्चिम पूर्व से आगे है।

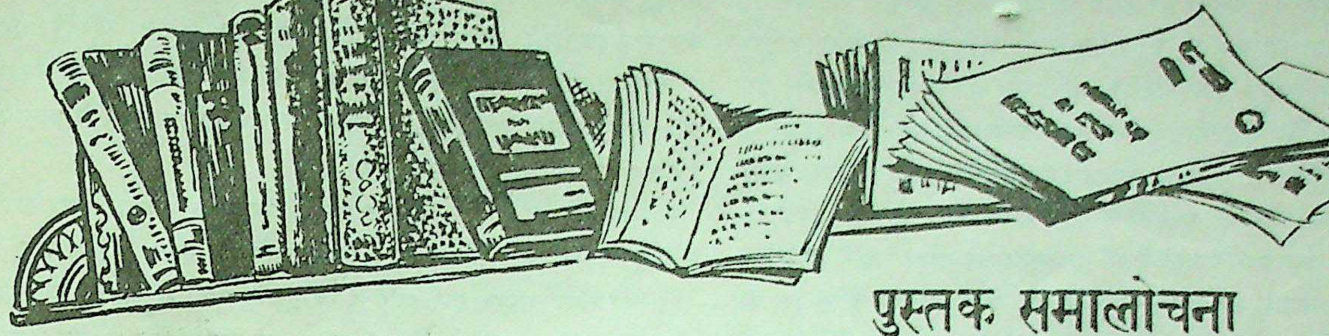

पुस्तक समालोचना

अमिता (मौलिक उपन्यास) :, लेखक—यशपाल; प्रकाशक—विप्लव कार्यालय, लखनऊ; पृष्ठ संख्या—बड़े आकार के २३८; मूल्य ५) रु० सजिल्द ।

उपन्यास की कल्पना इस प्रकार है—सम्राट अशोक ने कलिंग पर कितने ही आक्रमण किए थे। एक आक्रमण में कलिंगराज की मृत्यु हो गई और महारानी की छत्रछाया में कलिंग के प्रधान मन्त्री कलिंग को अशोक के अगले आक्रमण का मुकाबला करने के लिए तैयार करने लगे। कलिंगराज की एकमात्र सन्तान अमिता अभी केवल ६ वर्ष की बालिका थी। महारानी बौद्ध प्रभाव में आकर युद्धों के विरुद्ध हो गईं, तो प्रधान मन्त्री ने उन्हें एक किले में कैद कर दिया और बालिका राजकुमारी का राज्याभिषेक कर दिया। अपनी पालिका दासी हिता की देख-रेख में बालिका महारानी अमिता की बाल लीलाओं का काफ़ी विस्तृत वर्णन इस उपन्यास में है। अन्त में अशोक के आक्रमण से कलिंग का पतन हो गया और महामन्त्री बालिका महारानी को कलिंग से भगा ले जाने में सफल नहीं हो पाए। अपनी माता से अमिता को निरन्तर यह शिक्षा मिली थी—"किसी को डरना नहीं चाहिए, किसी से कुछ छीनना नहीं चाहिए, किसी को मारना नहीं चाहिए।" नाटकीय परिस्थितियों में बालिका महारानी सम्राट अशोक को भी यही आदेश देती है और लाखों हत्याओं का ज़िम्मेवार सम्राट अशोक निर्भीक बालिका की उक्त नसीहतों से इतना प्रभावित होता है कि वह हिंसा न करने का निश्चय कर लेता है।

स्पष्ट है कि अशोक का नाम रहते भी इस उपन्यास को ऐतिहासिक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अशोक को छोड़ कर उपन्यास के सभी पात्र एकदम काल्पनिक हैं और उपन्यास की सभी घटनाएँ, यहाँ तक कि अशोक के विचार-परिवर्तन की घटना भी, पूरी तरह कल्पना पर आश्रित हैं। उपन्यास का चरमबिन्दु उपन्यास के अन्त में है, जहाँ कलिंग की ६ वर्षीय महारानी परमप्रतापी सम्राट अशोक से ज़रा भी भयभीत न होकर सहज स्वाभाविक ढँग से उन्हें आदेश देने लगती है। यह चरम बिन्दु मनोरंजक और प्रभावशाली अवश्य है, पर उपन्यासकार इसके द्वारा अशोक के मानसिक-कल्प का औचित्य सिद्ध नहीं कर पाया।

यहाँ यह पूछा जा सकता है कि जब 'अमिता' पूर्णरूप से काल्पनिक उपन्यास है तो ऐतिहासिक भित्ति पर उसका निर्माण करने की क्या आवश्यकता थी। लेखक सम्भवतः भारत के उस स्वर्णयुग (मौर्य साम्राज्य) के साधारण सामाजिक जीवन का चित्र उपस्थित करना चाहता हो, और उसके द्वारा परोक्ष तथा प्रतीक रूप से कितनी ही बातें कहने में उसे सुविधा प्रतीत हुई हो। यदि ऐसा है, तब भी जहाँ तक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मौर्यकालीन समाज-व्यवस्था का सम्बन्ध है, लेखक को इस कार्य में यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं हुई। तत्कालीन दास-प्रथा, वाणिज्य, यातायात, दास-दासी-निग्रह आदि का यथेष्ट मनोरंजक वर्णन 'अमिता' में है, पर यह चित्र स्पष्टतः एकांगी है। राखालदास बन्द्योपाध्याय के गुप्तकालीन पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों का वातावरण 'अमिता' की अपेक्षा कहीं अधिक ऐतिहासिक है। पर यशपाल मानते हैं कि 'अमिता' ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है।

दूसरा दृष्टिकोण तत्कालीन वातावरण में प्रतीक रूप से अपने विचारों की अभिव्यक्ति हो सकता है। 'अमिता' में उस युग के समाज की कितनी ही मान्यताओं का शिष्ट ढंग से मज़ाक उड़ाया गया है। राजसत्ता की संस्था पर बहुत चुभता हुआ व्यंग्य इस उपन्यास में है। उस युग की धार्मिक धारणाओं और अन्धविश्वासों का भी अच्छा-खासा मनोरंजक चित्रण 'अमिता' में है। यदि इसी उद्देश्य से यह उपन्यास लिखा गया है, तो निस्सन्देह यशपाल को अपने उद्देश्य में यथेष्ट सफलता प्राप्ता हुई है।

परन्तु यशपाल ने 'अमिता' के प्राक्कथन में लिखा है कि "इस उपन्यास का मेरुदण्ड युद्धों द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त करने अथवा समस्याओं को सुलझाने की नीति की विफलता प्रदर्शित करना है।" इस दृष्टि से मैं 'अमिता' को सफल प्रयास नहीं कहूँगा। उपन्यास के अन्त में अशोक का शिलालेख उद्धृत कर देने से यह उद्देश्य पूर्ण नहीं हो जाता। पूरा उपन्यास पढ़ते हुए पाठक के हृदय में एक बार भी युद्धों के प्रति प्रतिकूलता की भावना उत्पन्न नहीं होती। बल्कि उपन्यास में तो राजमाता की युद्ध-विरोधी धारणाएँ हास्यास्पद प्रतीत होती हैं और पाठक के हृदय पर कलिंग के तेजस्वी महामात्य के युद्ध की तैयारी सम्बन्धी प्रयत्नों का औचित्य अंकित हो जाता है। लेखक ने तो यहाँ तक दर्शाया है कि राजमाता को युद्ध विरोधी आदेश देने वाले महास्थविर कलिंग पर मुसीबत आते ही पीत चीवर छोड़ कर राजधानी से भाग खड़े होते हैं।

जहाँ तक कथावस्तु का सम्बन्ध है, उपन्यास खूब मनोरंजक है। घटनाओं के वर्णन की शैली श्रेष्ठ और आकर्षक है। परन्तु कथावस्तु की भित्ति मुझे यथेष्ट बलवती प्रतीत नहीं हुई। बालिका महारानी को

लेकर कथावस्तु में कितनी ही कमज़ोरी और एक-आध स्थान पर तो अस्वाभाविकता भी आ गई है। ६ वर्ष की बालिका को अपनी माता से पृथक कर उसका राज्याभिषेक हो जाने के बाद राजमहलों पर महामात्य का नियन्त्रण जितना बढ़ जाना चाहिए, उतना इस उपन्यास में नहीं दिखाया गया। हिता जिस तरह बालिका महारानी को लेकर पशुओं के चेहरे लगाए बालकों के साथ महल से भाग खड़ी होती है, व्यवहार में वह सम्भव नहीं है। जब महल से बाहर आने-जाने पर इतना प्रतिबन्ध था, तब द्वारपाल किसी को जाने-पहचाने बिना द्वार से किस तरह निकल जाने देते, विशेषतः जब हिता के सम्बन्ध में सम्पूर्ण महलवासियों को ज्ञात था कि वह सदा महारानी के साथ रहती है।

'अमिता' की भाषा कुछ क्लिष्ट होते हुए भी अत्यन्त श्रेष्ठ तथा प्रवाहमयी है। उपन्यास पढ़ने में आनन्द आता है। संस्कृतप्रधान शैली में यशपाल का-सा प्रवाह बहुत कम मिलेगा। 'अमिता' में कितने ही वाक्य और भाव-प्रकाशन इतने ऊँचे दर्जे के और कलापूर्ण हैं कि वे समकालीन अत्यन्त श्रेष्ठ और स्थायी हिन्दी साहित्य के भाग बन कर रहेंगे। छापे की भूलें रह गई हैं, जो इस तरह की अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि की मौलिक रचनाओं में नहीं रहनी चाहिएँ।

यशपाल हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में हैं। मेरी धारणा है कि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का मोह छोड़ कर उन्हें वर्तमान काल की पृष्ठभूमि में अपने उपन्यास लिखने चाहिएँ। यशपाल के पास कहने को बहुत कुछ है और कहने का ढँग उन्हें आता है।

शिवपूजन रचनावली (पहला खण्ड) : लेखक—आचार्य शिवपूजन सहाय; प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; पृष्ठ संख्या बड़े आकार के ४१८; मूल्य ८॥) सजिल्द।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद से गम्भीर और श्रेष्ठ हिन्दी साहित्य के प्रकाशन की दृष्टि से पटना की बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का स्थान सर्वप्रथम है। यह ग्रन्थ उक्त ग्रन्थावलि का प्रथम प्रकाशन है। इस खण्ड में आचार्य शिवपूजन सहाय के ये तीन ग्रन्थ अविकल रूप में संगृहीत हैं—(१) बिहार का विहार, (२) विभूति (१६ कहानियाँ), तथा (३) देहाती दुनिया (देहात सम्बन्धी उपन्यास)। आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी जगत् के उज्ज्वल नक्षत्रों में से हैं। उनमें असाधारण विनय है। इस खण्ड की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"पुस्तक का नाम 'ग्रन्थावली' के बदले 'रचनावली' इसलिए रखा गया है कि इसमें कोई ग्रन्थ नहीं है, केवल तीन रचनाएँ ही हैं। रचनाओं में भी कुछ ऐसा महत्त्व है या नहीं कि उनका संग्रह हिन्दी संसार के सामने उपस्थित किया जाए, यह बात हमारे कहने की नहीं है।" इसके बाद उन्होंने यहाँ तक लिखा है कि परिषद् से कथा-साहित्य प्रकाशित न होने का नियम रहते भी केवल हमारी बीमारी में हमें आर्थिक सहायता देने के उद्देश्य से बिहार सरकार ने हमारी ये रचनाएँ प्रकाशित करने का निश्चय किया।

वर्तमान हिन्दी के इस निर्माणकाल में आचार्य शिवपूजन सहाय की रचनाओं का महत्त्व बहुत अधिक है। इस संग्रह की कहानियाँ १९११ से लेकर १९३१ तक लिखी गई हैं और उपन्यास का रचनाकाल १९२६ है। हिन्दी कहानी और हिन्दी उपन्यास इन बीते वर्षों में नई ऊँचाई पर पहुँच गए हैं, फिर भी आचार्य शिवपूजन सहाय की उक्त सब रचनाओं का महत्त्व स्थायी है, क्योंकि वे हिन्दी गद्य तथा हिन्दी कथा साहित्य के विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी के समान हैं। इन बहुमूल्य ग्रन्थों का प्रकाशन कर राष्ट्रभाषा परिषद् ने अत्यन्त उपयोगी और प्रशंसनीय कार्य किया है।

मध्यदेश : लेखक—धीरेन्द्र वर्मा; प्रकाशक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना; पृष्ठ संख्या; १९६ (बड़ा आकार); मूल्य ७) सजिल्द।

'मध्यदेश' नामक इस ग्रन्थ में हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के ४ व्याख्यानों का संग्रह है, जो उन्होंने बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् में दिए थे। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा का हिन्दी प्रदेश की इकाई में विश्वास है और उनका दावा है कि इस ग्रन्थ में "पहली बार हिन्दी प्रदेश अथवा मध्यदेश की इकाई की ओर इतने स्पष्ट और क्रमबद्ध रूप में हिन्दी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया जा रहा है।" मध्यदेश की ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक सामग्री को उन्होंने चार कालों में बाँटा है—(१) जनपद युग, (२) साम्राज्य युग, (३) राजवंश युग, और (४) विदेशी संघर्ष युग।

इन व्याख्यानों में किसी तरह की नई ऐतिहासिक खोज का दावा विद्वान लेखक ने नहीं किया। अब तक अन्वेषित और प्रकाशित सामग्री के आधार पर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया है कि मध्यदेश की एक स्पष्ट और पृथक् सांस्कृतिक इकाई है। इस प्रदेश की मुख्य भाषा हिन्दी है, इसी कारण डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने इसे हिन्दी प्रदेश भी कहा है। इस मध्यदेश की राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा भाषा सम्बन्धी रूपरेखा इन चार भाषणों में दी गई है। मैं मानता हूँ कि अपने इन भाषणों में आर्य साहित्य, प्राचीन आर्य जीवन, समकालीन सुधार आन्दोलन तथा साहित्य, साम्राज्यकालीन शासन-व्यवस्था और जीवन, नवीन धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था और साहित्य के सम्बन्ध में अत्यन्त श्रेष्ठ ढंग से यथेष्ट प्रकाश विद्वान लेखक ने डाला है। स्पष्टता उनकी शैली का विशेष गुण है।

पर जहाँ तक लेखक के आधारभूत उद्देश्य का सम्बन्ध है, लेखक उसे सिद्ध नहीं कर पाया। मध्यदेश यानी हिन्दी प्रदेश में पृथक् इकाई की भावना उत्पन्न करना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है, जो ग्रन्थ के समर्पण से स्पष्ट है—"अपने अत्यन्त उज्ज्वल इतिहास तथा असाधारण शक्ति के प्रति उदासीन मध्यदेश के जनपदवासियों को एक मध्यदेशवासी द्वारा।"

मनुस्मृति में आर्यावर्त की परिभाषा इस प्रकार की गई है :

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥
(दूसरे अध्याय का २२वाँ श्लोक)

पूर्व समुद्र (अर्थात् बंगाल की खाड़ी) से लेकर पश्चिम समुद्र (अर्थात् अरब समुद्र) तक और दोनों पर्वतों (हिमालय तथा विन्ध्याचल) के बीच का प्रदेश आर्यावर्त है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस आर्यावर्त की सीमा पश्चिम उत्तर में अफ़गानिस्तान तक थी। गान्धार, कपिशा, पुरुषपुर

तथा तक्षशिला उक्त आर्यावर्त के महत्त्वपूर्ण केन्द्र थे और सम्पूर्ण आर्यावर्त में मूलतः एक ही संस्कृति और एक ही ढंग का सामाजिक जीवन व्याप्त था। और उस संस्कृति तथा साहित्य के विकास में आर्यावर्त के सभी प्रदेशों ने लगभग एक समान भाग लिया था। पर डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने अपने हिन्दी प्रदेश के उत्साह में सम्पूर्ण आर्यावर्त की इस संस्कृति तथा सम्पूर्ण आर्यावर्त के इस सामाजिक जीवन को मध्यदेश के ही सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन के रूप में प्रस्तुत किया है।

यह मध्यदेश क्या है? डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में ''आर्यावर्त (मनुस्मृति के अनुसार जिसकी व्याख्या ऊपर की गई है) के पाँच स्वाभाविक भौगोलिक भाग माने जाते थे। उत्तर, पश्चिम, पूर्व, दक्षिण और मध्य। आर्यावर्त का यह मध्य भाग ही मध्यदेश कहलाता था।'' (पृष्ठ ६)

परन्तु परिषद्-मन्त्री श्री शिवपूजन सहाय ने अपने वक्तव्य में लिखा है—''आर्यावर्त और मध्यदेश में कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता।'' (पृष्ठ २)

यानी डा० धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार मध्य देश आर्यावर्त के ५ भौगोलिक भागों में से एक (मध्य का) भाग है और श्री शिवपूजन सहाय के अनुसार आर्यावर्त और मध्य देश में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि अमरकोष में लिखा है—''आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्य हिमालयोः।''

मध्यदेश की महत्ता सिद्ध करने के उत्साह में डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने आगे चल कर लिखा है—''यूरोपीय विद्वानों का यह मत अत्यन्त चिन्त्य है कि आर्यों का मूल निवास-स्थान भारत में पंजाब में था तथा पंजाब में वे भारत के बाहर से मध्य एशिया अथवा पूर्वी यूरोप से आए थे। ऋग्वेद के लगभग १,००० सूक्तों में से केवल दो-तीन सूक्तों में पंजाब की नदियों के उल्लेख हैं और यदि इन दो-तीन सूक्तों को ध्यान से पढ़ा जाए तो यह मालूम होता है कि मध्यदेश से ही कोई आक्रमण पंजाब की ओर हुआ था और उसीकी स्मृति इन सूक्तों में सुरक्षित है।'' (पृष्ठ १०)

बिना कोई प्रमाण उपस्थित किए यह स्थापना करना कि ऋग्वेद के युग में मध्यदेश से पंजाब पर कोई हमला हुआ था और उसकी स्मृति ऋग्वेद के कुछ सूक्तों में सुरक्षित है, इतना अधिक 'चिन्त्य' है, जिसकी तुलना में यूरोपियन विद्वानों का मत कुछ भी चिन्त्य नहीं।

स्पष्टतः इस वर्तमान युग में मध्य देश में पृथक् इकाई की भावना उत्पन्न करने के उत्साह में विद्वान लेखक सभी ज्ञात ऐतिहासिक तथा साहित्यिक प्रमाणों की उपेक्षा कर गए हैं।

सच तो यह है कि उस युग के भारत का अध्ययन करने की दृष्टि से भारत के इतिहास को केवल दो भागों में बाँटना चाहिए—उत्तर भारत (आर्यावर्त) तथा दक्षिण भारत। सम्पूर्ण उत्तर भारत यानी आर्यावर्त को हिन्दी प्रदेश कहना हिमाकत होगा, क्योंकि वर्तमान हिन्दी के विकास से पूर्व इसी प्रदेश में बंगला, गुजराती, उड़िया, पंजाबी आदि का विकास हो चुका था। इस ग्रन्थ में मध्यदेश के जो मानचित्र दिए गए हैं, उनमें बंगला, गुजराती आदि क्षेत्र छोड़ दिए गए हैं, यह भी पूरी तरह से नहीं। बिना किसी ऐतिहासिक आधार के केवल हिन्दी प्रदेश में पृथकता की भावना उत्पन्न करने के दृष्टिकोण से ये नक्शे तैयार करवाए गए हैं। बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के कुछ भाग को लेकर मध्यदेश का यह नक्शा तैयार किया गया है, क्योंकि इन प्रदेशों में हिन्दी के विभिन्न रूपों का विकास हुआ है। स्पष्टतः इन नक्शों का आधार प्राचीन मध्यदेश नहीं है। इस बात की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि जिस संस्कृति तथा सामाजिक जीवन का इस पुस्तक में वर्णन है, वह इस कथित मध्यदेश की नहीं, अपितु सम्पूर्ण आर्यावर्त की संस्कृति और सम्पूर्ण आर्यावर्त का सामाजिक जीवन रहा है, जिसकी सीमा उक्त मध्य देश की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत थी। यह बात पृथक् है कि राजनीतिक शासनकर्त्ताओं के दृष्टिकोण से अपने लम्बे इतिहास में कितनी ही बार यह आर्यावर्त छोटे-बड़े भागों में विभक्त होता रहा है। पर जहाँ तक संस्कृति और सामाजिक जीवन का सम्बन्ध है, भारत भर में, जिसमें दक्षिण भारत भी सम्मिलित है, एक गहरी एकता तथा समानता अक्षुण्ण रही है। आज हमारा यह कर्त्तव्य है कि भारत की उक्त आधारभूत एकता पर अधिक से अधिक बल दें।

भारत के उक्त क्षेत्र (मध्यदेश) में कभी प्रान्तीयता की संकुचित भावनाएँ नहीं आने पाईं। यह प्रदेश अपनी शक्ति से भी अनभिज्ञ नहीं है। वर्तमान भारत में इस प्रदेश का महत्त्व किसी भी दृष्टि से कम या उपेक्षणीय नहीं है। प्रान्तीयता की संकुचित भावनाओं का न होना इस प्रदेश का एक बहुत बड़ा गुण है, दोष नहीं।

शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के ५ प्रकाशन

१. युगों-युगों में उत्तर प्रदेश : लेखक—कृष्णदत्त वाजपेयी; पृष्ठ सं० ७० (बड़ा आकार); मूल्य १)।

२. हस्तिनापुर : लेखक—ज्योतिप्रसाद जैन; पृष्ठ सं० ४८ (बड़ा आकार) मूल्य १)।

३. मथुरा : लेखक—कृष्णदत्त वाजपेयी; पृष्ठ संख्या १०४ (बड़ा आकार); मूल्य १)।

४. अहिच्छत्रा : लेखक—कृष्णदत्त वाजपेयी; पृष्ठ संख्या ६४ (बड़ा आकार); मूल्य १)।

५. कन्नौज : लेखक—रामकुमार दीक्षित; पृष्ठ संख्या ४८ (बड़ा आकार); मूल्य १)।

इन सभी का प्राप्ति स्थान—शिक्षा विभाग, लखनऊ।

उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग के ये प्रकाशन उक्त राज्य के विद्वान मुख्यमन्त्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द की सूझ का परिणाम हैं। इन सभी प्रकाशनों में उत्तर प्रदेश के विभिन्न स्थानों का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से परिचय दिया गया है। इतिहास के विभिन्न कालों में हस्तिनापुर, मथुरा, अहिच्छत्रा और कन्नौज की क्या स्थिति और क्या महत्त्व रहा, इस सम्बन्ध में उपयोगी और यथेष्ट सामग्री इन प्रकाशनों में है। प्रत्येक स्थान के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक मानचित्र तथा प्राप्त मूर्तिकला और स्थापत्य के सुन्दर चित्र भी प्रभूत मात्रा में इन पुस्ति-

काओं के अन्त में दिए गए हैं। इन चित्रों से उक्त सभी प्रकाशनों का महत्त्व बढ़ गया है। प्रत्येक प्रकाशन में लगभग आधा कलेवर इन चित्रों का है, जो आर्ट पेपर पर छापे गए हैं। हमें विश्वास है कि उत्तर प्रदेश का शिक्षा-विभाग अपने राज्य के सभी महत्वपूर्ण स्थानों का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विवरण इसी प्रकार प्रकाशित करेगा।

इस ग्रन्थमाला के सम्पादक मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय के संग्रहाध्यक्ष कृष्णादत्त वाजपेयी हैं। "युगों-युगों में उत्तर प्रदेश" के प्राक्कथन में कृष्णदत्त वाजपेयी ने आर्यावर्त यानी मध्यदेश (यानी उत्तर प्रदेश) को अन्वर्थक बता कर उसे भारतवर्ष का हृदय बताया है। वर्तमान उत्तर प्रदेश ही पुराना आर्यावर्त था, यह स्थापना कितनी भ्रामक सिद्ध हो सकती है। "मध्यदेशो देशानामुत्तमः" का हवाला देकर उत्तर प्रदेश में पृथक् इकाई की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न कितना खतरनाक सिद्ध हो सकता है। उदाहरण के लिए डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा के हिन्दीदेश में बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब का कुछ भाग सम्मिलित है, पर कृष्णदत्त वाजपेयी का मध्यदेश केवल वर्तमान उत्तर प्रदेश तक सीमित रह गया है। जब इतिहासज्ञ इस तरह की संकुचित मनोवृत्ति का प्रदर्शन करने लगते हैं तो और भी अधिक दुख होता है। पर इन पाँचों प्रकाशनों के प्रतिपाद्य विषय पूरी तरह अपने-अपने क्षेत्र का ऐतिहासिक परिचय देने तक ही सीमित है, केवल वाजपेयी जी के प्राक्कथन में ही उक्त भावना का संकेत है। यही सन्तोष का विषय है।

प्रत्येक राज्य के विभिन्न प्रदेशों का सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परिचय देना एक बात है और उनमें पृथक् इकाई की भावना उत्पन्न करने का प्रयत्न एकदम दूसरी और अत्यधिक हानिकर प्रवृत्ति है। इस माला के प्रकाशनों का स्वागत हम इसलिए कर रहे हैं कि प्रतिपाद्य विषय के आधार पर हम इन्हें प्रथम श्रेणी में गिनते हैं। इन प्रकाशनों का उद्देश्य मध्यदेश में पृथकता की भावना उत्पन्न करना नहीं है।

आशा है कि अन्य राज्य भी इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश सरकार से प्रेरणा प्राप्त करेंगे। हमें ज्ञात है कि अन्य कितने ही राज्य इस तरह के प्रयत्न कर रहे हैं, पर उत्तर प्रदेश सरकार का यह कार्य स्पष्टतः अधिक सुचारू और वैज्ञानिक ढंग पर हो रहा है। जहाँ तक इन पुस्तिकाओं के आकार-प्रकार और सज्जा का सम्बन्ध है, अभी उसमें सुधार की काफी गुंजाइश है। इस तरह के प्रकाशनों के लिए सज्जा और आकार-प्रकार का महत्व और भी अधिक है। उत्तर प्रदेश के शिक्षा-विभाग को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

हिन्दी की योग्यता कैसे बढ़ावें : लेखक—हरिमोहन दातिया; पृष्ठ संख्या १३४; मूल्य १॥)।

इस छोटी सी पुस्तक में हिन्दी के इतिहास, व्याकरण, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, शैली, अलंकार, छन्द, ग्रन्थ प्रकाशन आदि २५ विषयों के सम्बन्ध में संक्षिप्त जानकारी देने का प्रयत्न किया गया है। कुछ विषय ऐसे हैं, जिनके सम्बन्ध में लेखक ने अपने विचारों को अनुचित महत्त्व दिया है। लेखक द्वारा आविष्कृत 'भारतीय लिपि' तथा 'हिन्दी की १०० श्रेष्ठ पुस्तकें' ऐसे ही विषय हैं। फिर भी पुस्तक का उपयोग निर्विवाद है। हिन्दी सीखने तथा सिखाने वाले व्यक्तियों के लिए यह पुस्तक विशेषतः उपयोगी सिद्ध होगी। हिन्दी के प्रसार काल में इस ढंग की पुस्तकों की विशेष आवश्यकता है।

ए लाइफ़ डेडीकेटिड : लेखक—भूपेन्द्र हूजा; भूमिका-लेखक : सरदार के० एम० पणिक्कर, प्रकाशक—सेठ गोविन्ददास हीरक जयन्ती समिति, नई दिल्ली; पृष्ठ संख्या १८०; मूल्य ५) रु०।

हिन्दी के यशस्वी लेखक सेठ गोविन्ददास इस वर्ष अपनी आयु के ६० वर्ष पूर्ण कर ६१वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इस अवसर पर सेठ गोविन्ददास हीरक जयन्ती समिति ने अंग्रेजी में उनकी यह जीवनी प्रकाशित की है। यह जीवनी दो भागों में विभक्त है। पहले १३० पृष्ठों में, १० अध्यायों में गोविन्ददास जी की जीवनी दी गई है। दूसरे भाग में ६ अध्याय हैं, जो इनके साहित्य के सम्बन्ध में हैं। जीवनी की शैली यथेष्ट रोचक है। पुस्तक में १२ पृष्ठ सुन्दर चित्र भी हैं। छपाई-सफ़ाई बहुत उत्तम है, पर छापे की भूलें रह गई हैं।

मेरी श्रेष्ठ कहानी : प्रकाशक—वोरा एण्ड कम्पनी, ३ राउण्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रोड, बम्बई २; पृष्ठ संख्या २३४; मूल्य ४) सजिल्द।

इस पुस्तक में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के नए और पुराने इन १९ कहानी-लेखकों की कहानियाँ संग्रहीत हैं—आनन्दप्रकाश जैन, करतारसिंह दुग्गल, कुलभूषण, किशोरीरमण, ख्वाजा अहमद अब्बास, 'मस्त', 'निर्गुण', परदेशी, बलदेवप्रसाद, मन्मथनाथ गुप्त, मार्कण्डेय, मोहन राकेश, रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, 'दोषी', वीरेन्द्र कुमार, विष्णु प्रभाकर, और सुदर्शन। इस सूची में दो कहानियाँ स्पष्टतः भारतीय भाषाओं से अनुवादित हैं। यदि अन्य भारतीय भाषाओं की कहानियाँ लेना भी अभिप्रेत था, तो वह सूची अधिक लम्बी होनी चाहिए थी।

'मेरी श्रेष्ठ कहानी' के लेखकों से यह अनुरोध किया गया था कि वे अपनी कहानी के चुनाव के साथ यह भी सूचित करें कि उनकी उक्त कहानी किस लिए श्रेष्ठ है। प्रारम्भ ही से मेरी यह राय थी कि यह सवाल माकूल नहीं है। अब यह संग्रह देख मेरी उक्त धारणा और भी पुष्ट हो गई है। कुछ लेखकों ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। कुछ ने इसे हँसी में टालने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए 'मेरी सर्वश्रेष्ठ कहानी वह है, जो अभी लिखी ही नहीं गई!' अथवा 'यह कहानी मुझे इस कारण सर्वश्रेष्ठ प्रतीत हो रही है कि मैंने अभी-अभी इसे लिखा है!' पर कुछ लेखकों ने इस प्रश्न को बड़ी गम्भीरता से लिया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि उनकी कहानी विश्व साहित्य का स्थायी अंग है।

सच बात तो यह है कि कुछ अपवादों को छोड़ कर इस संग्रह की कहानियाँ सम्बद्ध लेखकों की भी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ नहीं हैं। और कुल मिला कर यह एक औसत दर्जे का ऐसा साधारण कहानी-संग्रह है, जिसकी छपाई-सफ़ाई निस्सन्देह बहुत सुन्दर है।

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

●

पद्मसिंह शर्मा के पत्र : सम्पादक—बनारसीदास चतुर्वेदी और हरिशंकर शर्मा; प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस; काश्मीरी गेट, दिल्ली–६; पृष्ठ संख्या बड़े आकार के २५१; मूल्य ६) सजिल्द ।

जब तक जिये, लिखे सफरनामे,
चल दिए हाथ में कलम थामे—

यह शेर मुझे जब कभी स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा की याद आती है तो स्मरण हो आता है और इसमें शक नहीं कि यह उन पर बड़ा मौजूँ बैठता भी है, उनके जीवन का वास्तविक खाका खींच देता है। वह उन लोगों में थे जिन्होंने जीवन भर सिवाय साहित्य-सेवा के और कुछ जाना नहीं, किया नहीं। लिखना-पढ़ना, यही उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहा। संसार की और किन्हीं बातों से उन्होंने न तो सम्पर्क रक्खा न उनमें दिलचस्पी ही ली। आदि से अन्त तक उनका जीवन विद्या, व्यसन एवं साहित्य-चर्चा में ही व्यतीत हुआ।

शर्मा जी के लेख—जिनका एक संग्रह आज से २७-२८ साल पहले 'पद्म-पराग' के नाम से प्रकाशित हुआ था—साहित्य भण्डार की अमूल्य निधि तो हैं ही, उनके पत्र भी साहित्यिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। हर्ष और सन्तोष का विषय है कि आपके पत्रों का एक संग्रह पिछले दिनों, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, ने प्रकाशित किया है जिसका सम्पादन शर्मा जी के दो अनन्य मित्रों—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी तथा श्री हरिशंकर शर्मा ने किया है। संग्रह सुन्दर है एवं एक दर्पण है जिसमें लेखक का वास्तविक स्वरूप प्रतिबिम्बित है। इन पत्रों से सर्वप्रथम पाठक को वह महान अन्तर नज़र आएगा जो हिन्दी संसार के प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्यिकों में है। शर्मा जी को लिखने और पढ़ने दोनों का समान रूप में शौक था, जब कभी कोई पुस्तक या पत्रिका पा जाते तो उसे बगैर आद्योपान्त पढ़े दम न लेते थे। अक्सर दो-दो बजे रात तक जग कर उसे समाप्त करते थे और यदि उसमें कोई सुन्दर वस्तु पा जाते—कोई अच्छे भाव, सुन्दर पंक्तियाँ, मौलिक विचार, तो फौरन ख़त लिखकर लेखक को उसकी दाद देते, उत्साह प्रदान करते थे। कहीं यदि कोई त्रुटि पाते तो उसे भी जनाते पर ऐसे ढंग से कि बुरा न लगता। उपर्युक्त पत्र-संग्रह के पृष्ठ १४१ पर छपे हुए एक खत की इन पंक्तियों पर ध्यान देवें—

"आज 'सुधा' में आपका लेख दीख पड़ा। बहुत ख़ूब रहा। 'किस तरह मैं···' शेर मन्सूर का नहीं, ज़ौक़ का है। मन्सूर की जीवनी में उनके भाव का द्योतक समझ कर लिखा गया है। अकबर के दो शेरों का आपने खूब इस्तेमाल किया है। लेख बहुत अच्छा है।"

हिन्दी के विद्वानों में आज कौन है जो लेखक को इस प्रकार पत्र लिख कर दाद देता है। अधिकतर ऐसा देखा गया है कि हिन्दी भाषा के आधुनिक कवि और लेखक शायद ही किसी और की रचनाएँ पढ़ने का कष्ट उठाते हैं और फिर पढ़ कर दूसरों को उनकी रचनाओं पर दाद देना तो एक अनहोनी-सी बात है। स्वयं पत्र लिखना तो दरकिनार, दूसरों के पत्र का उत्तर भी वे जल्दी नहीं देते हैं।

सन् १९३१ की एक घटना है जो शर्मा जी की अध्ययनशीलता तथा साहित्य-संगीत-समीक्षा की क्षमता पर प्रकाश डालती है। हिन्दी प्रेस, प्रयाग, में वह उन दिनों ठहरे हुए थे। एक दिन शाम की डाक से 'विशाल भारत' का नया-अंक आ पहुँचा। उसी शाम मित्रों ने गाने-बजाने का भी प्रोग्राम कर रक्खा था। उनका तक़ाज़ा था कि वह संगीत के इस आयोजन में, श्रोता रूप में, अवश्य शामिल हों। उधर 'विशाल भारत' पढ़ने की भी उत्कण्ठा थी। इसके सम्बन्ध में उन्होंने अपने एक पत्र में, श्री बनारसीदास जी को लिखा है—

"मैं 'विशाल भारत' पढ़ना चाहता था, उधर संगीत शुरू हो गया। मुझे पढ़ने का व्यसन तो है ही पर सितार सुनने के लोभ को भी संवरण नहीं कर सका। पार्टी में सम्मिलित न होना शिष्टाचार के विरुद्ध समझा, मंडली के पास बैठ कर सुनना ही पड़ा। पहले सितार की गत बजी, उधर मैंने आपका सम्पादकीय पढ़ना शुरू किया। बड़े मज़े में पढ़ता रहा, और आपके ज़ोरे क़लम की दाद देता रहा। 'सारनाथ में क्या देखा' ख़ूब लिखा है, मार्के की टिप्पणी है···बेला सितार से भी अच्छा बजा। बड़ा तैयार हाथ था···। बेला के साथ-साथ मैंने नन्ददास जी को समाप्त कर डाला। नन्ददास जी की कविता मुझे बहुत पसन्द आई। आपने ख़ूब लिखा है······"

सारे पत्र में इसी तरह लेख, कविता तथा संगीत की समन्वित आलोचना है और अन्त में हार्मोनियम पर एक छोटा-सा छींटा भी—

"सितार और बेला के बाद हार्मोनियम का नम्बर आया तो मैंने कहा कि भई, अंगूर खिला कर यह निम्बोलियाँ क्यों खिलाते हो?··· सितार आदि बाजों के लिए यह हार्मोनियम भी वैसी ही बला है जैसी तुलसीदास की रामायण के लिए राधेश्याम की रामायण।"

साहित्यिक दृष्टि से ये पत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तो हैं ही, अतिशय दिलचस्प भी हैं। एक बार आप कलकत्ते में किसी मित्र के घर पर ठहरे हुए थे। उनका लड़का तुकबन्दियाँ किया करता था तथा सुबह-शाम शर्मा जी के पास घण्टों बैठ कर उन्हें सुनाता था। शिष्टाचार के नाते उन्हें पसन्द न आने पर भी मजबूरन सुनना पड़ता था। इसका ज़िक्र करते हुए उन्होंने अपने एक मित्र को बड़े रोचक ढंग पर लिखा—

कान खा जाते हैं कमबख़्त, जान भी खा जाएँगे।
सख़्त मुश्किल है कि मैं एक शायर का मेहमाँ हो गया!

स्व० शर्मा जी का यह दृढ़ विचार था कि संगीत की भाँति साहित्य-सेवा भी तभी सफल हो सकती है जब कि उसे साधना का रूप दिया जाय वर्ना वह एक बाजारू-सी वस्तु मात्र ही रह जाती है। उसमें वह प्राण जो उसे जीवित रख सके नहीं आ पाता है। यही वजह थी कि वह स्व० पारसनाथ सिंह को—जिनकी साहित्यिक प्रतिभा पर वह मुग्ध थे तथा जिसकी पत्रों में यत्र-तत्र उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है—बारम्बार कहते रहे कि वह बिड़लों की नौकरी छोड़ कर पूर्ण रूप से साहित्य-साधना में लग जायँ। अफ़सोस! पारसनाथ जी ने उनकी यह राय न सुनी। इसमें सन्देह नहीं कि यदि उन्होंने शर्मा जी का यह परामर्श माना होता तो आज उनका हिन्दी-भाषा के चन्द इने-गिने विद्वानों में शुमार होता, पर, जैसा कि उन्होंने स्वयं शर्मा जी के नाम के एक ख़त में लिखा था—

आप बैठ साहित्य सम्हाले,
मैं जाता जीवन की ओर।

साहित्य-जगत से मुँह मोड़ कर वह अपनी अद्भुत प्रतिभाओं का दान बिड़ला ब्रदर्स को ही देते रहे। स्व० शर्मा जी ने दुःखित होकर एक पत्र में लिखा है—"हाँ, आपने ईसा मसीह की उक्ति ठीक लिखी है। दो विरुद्ध काम एक साथ नहीं हो सकते। यानी पारसनाथ जी बिड़लाओं के यहाँ रहते हुए साहित्य-सेवा के लिए समय नहीं निकाल सकते।"

फिर एक दूसरे पत्र में :

"पारसनाथ जी यदि साहित्य-सेवा में जुट जाते तो हिन्दी का भण्डार भर जाता, पर, इस पुण्य कार्य में बिड़ला जी भरपूर बाधक हो रहे हैं। वह कुछ न करने देंगे।"

कहा है कि 'होता है वही जो मंज़ूरे खुदा होता है' पारसनाथ जी ने बिड़लों का साथ न छोड़ा। उनकी सेवा में उनके स्वास्थ्य का संहार हो गया और अन्त में रक्त-चाप रोग के वह शिकार होकर प्राण खो बैठे। अफ़सोस! कि आज तक उनकी स्मृति-रक्षा के लिए कुछ भी न किया गया! कवि की इस वाणी में कितना सत्य है!

यूँ तो मुँह देखे की होती है मुहब्बत सबको,
जब मैं जाँचूँ कि मेरे बाद मेरा ध्यान रहे!

पत्रोत्तर देने में स्व० शर्मा जी आदर्श-स्वरूप थे। जिन दिनों वह प्लेग जैसे सांघातिक रोग के चंगुल में फँसे हुए जीवन की घड़ियाँ गिन रहे थे, उन्होंने कई पत्र अपने मित्रों को लिखे, उनके ख़तों के जवाब में, जो इस संग्रह में सम्मिलित हैं। इनमें एक खत वह भी है जिसमें एक साहित्यिक विषय पर उन्होंने अपना मत प्रगट किया है। प्लेग जैसे घोर कष्टप्रद एवं प्राणनाशक रोग में पड़े हुए व्यक्ति की इस साहित्य-निष्ठा की मिसाल शायद ही कहीं और मिले। वर्तमान हिन्दी के हमारे अधिकांश विद्वान लेखक और कवि पत्र-लेखन-कला में ठीक इसके विपरीत, इतने सुस्त हैं कि दर्जनों ख़त लिखिए, फिर भी "दिल्ली दूर अस्त"—जवाब दूर ही रहता है, काम भले ही बिगड़ जाय पर वे जल्दी पत्रोत्तर न देंगे। प्राचीन साहित्यकारों में, पर यह बात न थी और स्वर्गीय शर्मा जी इसके एक ज्वलन्त उदाहरण हैं।

पुस्तक की भूमिका में विद्वान सम्पादक श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने पत्र-लेखन-कला पर एक सुन्दर निबन्ध लिख डाला है। संसार के कई महापुरुषों के पत्र भी उद्धृत किए हैं, महात्मा गान्धी, कवीन्द्र रवीन्द्र, श्रीनिवास शास्त्री आदि के। यह पठनीय है, पत्र-कला पर विद्वत्तापूर्ण विवेचनायुक्त लेख है।

आमतौर पर यह धारणा है कि शर्माजी छायावाद के विरोधी थे पर यह ग़लत है। छायावाद से उनका विरोध न था, विरोध उस छायावादी काव्य से था जो समझ में न आए क्योंकि यदि कोई लेख और कविता ऐसी लिखी हो जो किसी की समझ में ही न आए तो उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है और उसे सिवाय पागल के प्रलाप के और क्या कहा जा सकता है? ऐसे ही काव्य की ओर संकेत था जब कि उन्होंने कहा था :—

अगर अपना कहा वह आप ही समझे तो क्या समझे,
मज़ा कहने का तब है, एक कहे और दूसरा समझे।

निर्विवाद है कि आज से प्रायः तीस वर्ष पहले हिन्दी संसार में छायावादी कविता की एक बाढ़ सी आ गई थी जब कि छायावाद के नाम पर कूड़ा-कर्कट, अनर्गल बातें, लिखी जाने लगी थीं। स्पष्टतः शर्मा जी का विरोध उनसे ही था। वास्तविक छायावादी रचनाओं को तो वह पसन्द करते, खूब पसन्द करते थे। छायावादी कवियों के प्रशंसक थे जो उनके उन पत्रों से ज़ाहिर होता है जिनमें श्री सुमित्रानन्दन पन्त का उन्होंने मार्मिक ढंग से उल्लेख किया है। एक जगह लिखते हैं—

"इस बार पहली बार पं० सुमित्रानन्दन पन्त से बिजनौर में मुलाकात हुई। आदमी तबीयत के साफ़ और 'जेन्टिलमैन' मालूम हुए। 'पल्लव' की भूमिका में जो पहले कवियों के विषयों में अन्ट-शन्ट, अनाप-शनाप, ऊल-जलूल, लिखे गए हैं, उसे वापस लेने को कहते थे। यह भी कहते थे कि ब्रजभाषा का विरोध करने के लिए मुझसे खास तौर पर कहा गया था, इसी से वैसा लिखना पड़ा इत्यादि। गला सुरीला है। सुर-ताल के वाकिफ़ हैं। राग-रागिनियों के नाम जानते हैं। आजकल के एक आदर्श छायावादी कवि में जो गुण होने चाहिएँ, सब हैं। खुशी की बात यह है कि रोग से मुक्त हो गए हैं।"

संस्कृत की एक उक्ति है :

वज्रादपि कठोराणि,
मृदूनि कुसुमादपि।

"वज्र से भी कठोर, कुसुम से मृदुल"—महापुरुषों का यह खास गुण है। स्वर्गीय शर्मा जी के इन संगृहीत पत्रों से उनका यह चरित्र-गुण साफ-साफ परिलक्षित है और इस अर्थ में ये पत्र उनके चरित्र-चित्रण में सहायक हैं।

शर्मा जी दूसरों का दुःख देख कर रो पड़ते थे, यह उनकी स्वभावगत कोमलता ज़ाहिर करता है। पर साथ ही मौका आने पर स्पष्ट कहने में भी तनिक हिचकिचाते न थे, न किसी की मुँह देखी बातें ही कहते थे। श्री बनारसीदास जी को एक पत्र में लिखा था—

"क्या आपने मेरे प्राइवेट पत्र·········जी को दिखलाए थे?······ मुझे आपसे ऐसी आशा न थी।······किसी भी लेख का रहस्य-भेद उसकी इच्छा के विरुद्ध इस प्रकार नहीं करना चाहिए। आपके इस अनीतिमूलक आचरण से अत्यन्त दुःख हुआ है। मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ कि आखिर आपने ऐसा किस लिए किया, जब कि मैंने मना भी कर दिया था। आपके इस व्यवहार ने मेरी आँखें खोल दी हैं। 'हाली' ने सच ही कहा है—

जहाँ में अपने सिवा किसी पै कभी भरोसा न कीजिएगा,
जो अपना साया भी हो तो उसको तसव्वर अपना न कीजिएगा।"

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी पर उनका अनन्य स्नेह था, फिर भी उन्होंने अपने विचार प्रकट करने में साफगोई से ही काम लिया, यह उनकी स्पष्टवादिता का प्रबल परिचायक है, 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि' का यह प्रमाण है।

शर्मा जी के संस्मरणात्मक लेख बड़े उच्च दर्जे के हुआ करते थे'

खासकर इसलिए कि वे उनके अन्तस्तल के उद्‌गार थे, मौखिक प्रशंसात्मक शब्द मात्र ही नहीं। पर-दुःखकातर, भावुक, पुरुष थे और लिखते वक्त भावावेश की-सी दशा में पहुँच जाते थे वह। इसके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही एक पत्र में लिखा है—

"कहाँ से लाऊँगा खूने जिगर इनको खिलाने को,
हजारों तरह के गम दिल के महमाँ होते जाते हैं।

सूखे हुए जख्म हरे हो जाते हैं। पुरानी चोटें ताज़ा होकर दुखती हैं। कभी-कभी सोए संस्कार जाग पड़ते हैं और दिल को बेचैन कर देते हैं। पं० भीमसेन जी के दुःखप्रद संस्मरणों ने हिम्मत की कमर तोड़ दी। इस कूचे में धँसते जी डरता है………"

"पद्म-पराग" के पृष्ठ ऐसे संस्मरणों से भरे हुए हैं ही, प्रस्तुत पुस्तक के भी संगृहीत अनेक पत्रों में, इसके नमूने देखने को मिलते हैं। उनके सच्चे और करुण हृदय के उद्‌गारों की बानगी मिलती है। एक मित्र के देहान्त पर, देखिए, किन कारुणिक शब्दों में अपना उद्‌गार प्रगट किया है—

"काल का चक्र बड़ी तेज़ी से चल रहा है। बड़े-छोटे सबको पीस रहा है। जीवन क्षण-भंगुर है। दुनिया के झगड़ों का अन्त नहीं। तूफानी अनन्त सागर में तिनके की तरह मनुष्य बह रहा है। किनारे का पता नहीं। 'बहा जाता हूँ बेमकसूद बहरे ज़िन्दगानी में'।"

'बहरे ज़िन्दगानी' में बहते हुए वह भवार्णव की दूसरी ओर जा लगे पर स्मृति-रूप में अपनी कृतियाँ छोड़ गए जो हिन्दी संसार के लिए गौरव की वस्तु हैं। लिखने में उन्हें कमाल हासिल था, कलम का वह जोर जो उन्हें प्राप्त था विरले जनों को नसीब होता है। उनके एक-एक शब्द मानों बोलते हों। लिखने वालों की आज कमी नहीं है पर यह बात कहाँ?

शर्मा जी सरस-हृदय थे—सहृदय थे—अच्छी चीज़ों के प्रशंसक थे, पर स्पष्टवादी थे, किसी भी खुशामद में आने वाले न थे—गलत बात अथवा थर्ड क्लास कृतियों पर कोई उनसे प्रशंसा की मुहर न लगवा सकता था। कहते हैं, एक बार उर्दू के एक मशहूर शायर ने उनसे अनुरोध किया कि वे उनकी पुस्तक की प्रस्तावना लिख दें—मंशा थी कि वे उसकी तारीफ़ में कुछ लिखें—और शर्मा जी ने ऐसा करना स्वीकार भी कर लिया, पर जब उन्होंने पुस्तक पढ़ी तो उसे निम्न श्रेणी का पाया। ख़ैर, उन्होंने प्रस्तावना तो लिखी पर—

'ज़हरे हलाहल को मैं कह न सका कंद!'

वह उसे बढ़ियापन का सर्टिफिकेट न दे सके। फलस्वरूप वह प्रस्तावना ज्यों की त्यों पड़ी रही। हज़रते शायर को यह साहस न हुआ कि वह उसे छपायें—और आप शर्मा जी के घनिष्ठ मिलने-जुलने वालों में थे।

—पुस्तक के एक-दो पत्रों में इस प्रसंग का उल्लेख है।

इसी तरह 'विशाल-भारत' के सम्पादक श्री बनारसीदास जी ने जब उनके एक लेख पर—जैसा कि सम्पादक अपनी 'जिट' में बहुधा किया करते हैं—छुरी चला दी, कुछ अंश काट दिए, तो उन्होंने लिखा: "ख़ैर, आपने और तो जो कुछ किया क्षन्तव्य है पर एक जगह रग पर नश्तर मार दिया। 'इख़लाकी मौत' वाला वाक्य निकाल कर रस-भंग कर दिया। सारा मज़ा किरकिरा हो गया। वाक्य असम्बद्ध-सा हो गया। ज़रा पढ़ कर देखिए—'लाचारी है कोई नौहागर नहीं मिलता।' इसके आगे का वाक्य न रहने से चमत्कार ही जाता रहा 'हैराँ हूँ दिल को रोऊँ कि पीटूँ जिगर को मैं' का भाव तभी स्पष्ट और सुसंगत होगा जब दिल और जिगर के स्थानीय दो कोई हों"

स्मरण रहे कि ये बातें उस व्यक्ति को लिखी गई हैं जिसे वह जान से भी ज़्यादा प्यार करते थे। पर उनकी यह स्वभावगत लाचारी थी कि वह जो अनुभव करें, न बोलें अथवा किसी की मुँह देखी कहें। अक़बर ने कहा था कि जो बात सही होगी अवश्य कहूँगा—

'नहीं रुकने का मैं हर्गिज़, परी टोके या जिन टोके!'

स्वर्गीय शर्मा जी का भी यही सिद्धान्त था और इस पुस्तक के संग्रहीत पत्रों में इसके दर्जनों दृष्टान्त मौजूद हैं।

'पद्मसिंह शर्मा के पत्र' के पृष्ठों में उनकी यह अद्वितीय लेखन-शैली प्रचुर परिमाण में बिखरी पड़ी है। यही नहीं यह ग्रन्थ उनकी कुशल पत्र-लेखन-कला का अद्‌भुत नमूना है, उनके विचारों का मनोवृत्तियों का, जबर्दस्त परिचायक है। उनका विद्या-प्रेम, उनकी सुखनफ़हमी, सुखनसंजी, सुखनदानी का एक 'रेकार्ड' है। पत्रों के इस सुन्दर संग्रह को यदि हम उनकी आत्म-कथा कहें तो गलत नहीं। उनके विचारों का लेख-प्रमाण ही नहीं, उनके साहित्यिक कार्यों का यह एक रोजनामचा भी है। तत्कालीन हिन्दी साहित्य का इतिहास भी। पढ़ते समय ऐसा लगता है मानों हम आज से ३०-४० वर्ष पूर्व के साहित्यिक वातावरण में विचर रहे हों। तब के और आज के साहित्यिक जीवन में, विचारधारा में, कितना फ़र्क़ है! संगृहीत कई पत्रों में शर्मा जी ने अपना यह मन्तव्य कि साहित्यिक राजनीति से अलग रहें, दूर रहें, बार-बार प्रकट किया है पर आज हम उससे लिपटे जाते हैं, उसमें तल्लीन हैं। हमारा अभीष्ट साहित्य-सेवा नहीं, आत्म-सेवा हो रहा है और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की अपेक्षा सरकारी नौकरी अथवा मंत्री-पद हमें कहीं अधिक पसंद है।

विद्वान संपादकों तथा प्रकाशक को हम ग्रन्थ के प्रकाशन पर बधाई देते हैं। इस पुस्तक ने स्व० शर्मा जी की स्मृति जागृत कर दी है, याद ताज़ी कर दी है। इसे पढ़ते हुए हमें बरबस भारतेन्दु की इस उक्ति का स्मरण हो आता है—

कहेंगे सबेई नैन नीर भरि भरि पाछे,
प्यारे हरीचन्द की कहानी रहि जायेगी।

अच्छा होता यदि पुस्तक के अंत में उन संस्थाओं, विषयों तथा जनों के सम्बन्ध में जिनका इस में उल्लेख है, विशद टिप्पणियाँ होतीं ताकि पाठक उन्हें अधिक सुगमता से समझ सकते। पर पुस्तक की यह कमी उसकी विभिन्न खूबियों में छिप जाती है जैसे कि—

एकोहि दोषो गुणसन्निपाते
निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवांकः।

—राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह

★

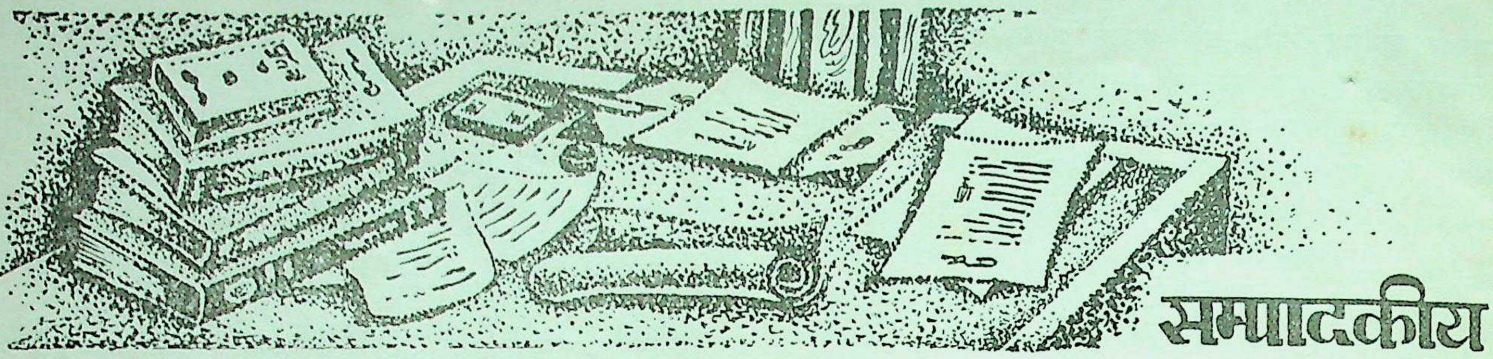

सम्पादकीय

आत्म निवेदन

'आजकल' को भारतीय साहित्य, संस्कृति और कला तथा राष्ट्रीय चर्चाओं का पत्र बनाने का प्रयत्न करते हुए आगामी दिसम्बर में दो वर्ष पूरे हो जाएँगे। जैसा कि पहले घोषित किया जा चुका है, इस वर्ष दिसम्बर में 'आजकल' का पृथक् अंक प्रकाशित नहीं होगा। उसके स्थान पर 'आजकल' के स्थायी ग्राहकों को "बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष" नामक बहुमूल्य ग्रन्थ वार्षिक अंक के रूप में उपहार स्वरूप दिया जाएगा। इस कारण गत दो वर्षों के अनुभवों के रूप में कुछ बातें हम पाठकों की सेवा में निवेदन करना चाहते हैं :

१. हमें इस बात की प्रसन्नता तथा सन्तोष है कि 'आजकल' के वर्तमान रूप को हमारे पाठकों ने पसन्द किया है। इस बात का सब से स्पष्ट प्रमाण यह है कि गत दो वर्षों में 'आजकल' की ग्राहक संख्या में ६० प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि हुई है।

२. भारतीय साहित्य का पत्र बनाने का प्रयत्न कितना दुस्साध्य है, यह गत दो वर्षों के अनुभव से हमारे सामने बहुत स्पष्ट हो गया है। हमारे देश में १४ भाषाएँ हैं और इन सभी भाषाओं में आज नवजीवन का संचार हो रहा है। प्रत्येक भारतीय भाषा की सभी गतिविधियों और सभी लेखकों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकना आसान नहीं है। इस से भारतीय साहित्य के चयन का कार्य कठिन बन जाता है। उस पर सब से बड़ी दिक्कत अनुवादकों के सम्बन्ध में है। हमारी राय से हमारे देश में अच्छे और प्रामाणिक अनुवादकों की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी अच्छे इंजिनीयरों और अच्छे डाक्टरों की। पर अभी तक इस ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। भारतीय साहित्य के पत्र पर अच्छे अनुवादकों की इस न्यूनता का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। फिर भी हम प्रयत्न करते रहे हैं कि प्रत्येक भारतीय भाषा से हिन्दी में श्रेष्ठ अनुवाद कर सकने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं से हमारा सम्पर्क बढ़े।

३. हमारा यह भी प्रयत्न रहा है कि 'आजकल' में किसी भी रचना का अनुवाद मूल लेखक की अनुमति के बिना न जाने पाए। यह अनुमति प्राप्त करने का काम वास्तव में उन सज्जनों का है, जो हमें अनुवादित रचनाएँ भेजते हैं। इसी दृष्टिकोण से हमें यह नियम बनाना पड़ा है कि अनुवादित रचनाओं के साथ मूल लेखक की लिखित अनुमति भेजना आवश्यक है।

४. 'आजकल' में नई कविता के सम्बन्ध में एक चर्चा का प्रारम्भ गत कुछ महीनों से किया गया है। इस चर्चा का उद्देश्य यह है कि कविता, विशेषतः नई कविता सम्बन्धी सभी धारणाएँ और मान्यताएँ स्पष्ट हो सकें, जो स्पष्टतः कविता के मूल्यांकन में सहायक सिद्ध होगा। इसी तरह की अन्य उपयोगी साहित्यिक चर्चाएँ 'आजकल' में निरन्तर जारी रखने का हमारा इरादा है।

५. 'आजकल' में जो रचनाएँ प्रकाशित होती हैं, उनके सम्बन्ध में हम पाठकों की प्रतिक्रिया जानना चाहते हैं। हमें ज्ञात है कि 'आजकल' के बीसों पाठक हमारे लेखकों को पत्र लिखकर उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में आवश्यक पूछताँछ करते हैं। इसी उद्देश्य से हम प्रत्येक अंक में लेखकों के पते देते हैं। हमारे लेखकों का कथन है कि जितने पत्र उन्हें 'आजकल' में प्रकाशित लेखों के सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं, उतने किसी अन्य स्रोत द्वारा प्राप्त नहीं होते। हम चाहते हैं कि हमारे पाठक अपनी प्रतिक्रियाओं तथा आलोचनाओं के सम्बन्ध में हमें भी पत्र लिखें। इन पत्रों में से कुछ महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ हम 'चिट्ठी-पत्री' स्तम्भ में प्रकाशित करेंगे।

६. जिन परिस्थितियों से बाधित होकर 'आजकल' के सम्पादक मण्डल को यह नियम बनाना पड़ा है कि अनाहूत रचनाओं की वापसी का उत्तरदायित्व 'आजकल' कार्यालय पर नहीं होगा, उनका ज़िक्र इन्हीं स्तम्भों में किया जा चुका है। एक मास में हम 'आजकल' में जितनी रचनाएँ प्रकाशित कर सकते हैं उससे लगभग १५ गुणा अधिक रचनाएँ हमें प्रति मास प्राप्त होती हैं। इन में अच्छी, साधारण, निकृष्ट—सभी तरह की रचनाएँ होती हैं। स्वभावतः उक्त सामग्री में से केवल ८ प्रतिशत सामग्री ही देर-सवेर हमारे काम आ सकती है। शेष ९२ प्रतिशत रचनाएँ, जिन में कितनी ही बहुत अच्छी भी होती हैं, लाचार होकर हमें वापस कर देनी होती हैं। इन परिस्थितियों में कितनी ही बार रचनाओं के सम्बन्ध में निश्चय करने तथा उनके प्रकाशन में असाधारण विलम्ब हो जाता है।

●

राष्ट्र-पुरुष दर्शन

भारतीय संग्रहालयों की केन्द्रीय सलाहकार समिति का उद्घाटन समारोह इस वर्ष का एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक पर्व था। मानव संस्कृति की एकता तथा प्रत्येक राष्ट्र के क्रमिक सांस्कृतिक विकास की

दृष्टि से संग्रहालयों का महत्त्व बहुत अधिक है। विशेषतः भारत जैसे विशाल और पुराने देश के राष्ट्रीय विकास को समझने में इस देश के संग्रहालयों से जितनी सहायता मिल सकती है, उतनी सम्भवतः किसी अन्य एक साधन से नहीं मिल सकती। डाक्टर अल्तेकर के शब्दों में "जब आप किसी देश के किसी श्रेष्ठ संग्रहालय में जाते हैं तो वहाँ आप राष्ट्र-पुरुष दर्शन करते हैं।" भारत जैसे विशाल और प्राचीन देश में, जहाँ दिल्ली में एक बहुत बड़ा संग्रहालय होना चाहिए, वहाँ प्रत्येक राज्य में कम से कम एक अत्यन्त श्रेष्ठ संग्रहालय का होना अत्यन्त आवश्यक है। दिल्ली में एक बड़े संग्रहालय का निर्माण कार्य प्रारम्भ भी हो चुका है।

विदेशी शासन के दिनों में भारत से बहुत सा अत्यन्त बहुमूल्य और उपयोगी संग्रह विदेशों में चला गया। वह सब इस देश में वापस मँगवाने का प्रयत्न तो होना ही चाहिए। पर उससे भी अधिक आवश्यक बात यह है कि देश में आज भी जो महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रचुर मात्रा में विद्यमान है, उसे ठीक ढंग से सुरक्षित रखने तथा उसके उचित प्रदर्शन का प्रबन्ध बहुत शीघ्र किया जाए। दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस कार्य के लिए २ करोड़ रुपए का प्रबन्ध है। पर यह आवश्यक है कि राज्यों की सरकारें तथा नगर समितियाँ इस कार्य में उक्त राशि की अपेक्षा बहुत अधिक धन व्यय करें। इस समय भारत में लगभग १२० संग्रहालय हैं, पर इनमें से अधिकांश की दशा अच्छी नहीं है। हमारे देश की ८० प्रतिशत जनता निरक्षर है। इस निरक्षर जनता के लिए संग्रहालयों का महत्त्व और भी अधिक है, क्योंकि संग्रहालयों में राष्ट्र-पुरुष के दर्शन करके ही उसे पहचाना और समझा जा सकता है।

स्वेज़ उपयोक्ता संघ

स्वेज़ के सम्बन्ध में लण्डन में जो प्रथम सम्मेलन बुलाया गया था, उसमें २२ राष्ट्र सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलन में १८ राष्ट्रों के समर्थन से एक प्रस्ताव पास किया गया था। इन्हीं १८ राष्ट्रों का एक प्रतिनिधि मण्डल राष्ट्रपति नासर से मिला था। उसके बाद उक्त १८ राष्ट्रों का एक सम्मेलन लण्डन में बुलाया गया, जिसमें 'स्वेज़ उपयोक्ता संघ' नाम से एक नया संगठन बनाने का निश्चय हुआ। उक्त १८ में से ३ राष्ट्रों ने इस संगठन में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। शेष १५ राष्ट्रों द्वारा निर्मित उक्त 'स्वेज़ उपयोक्ता संघ' की पहली बैठक गत मास लण्डन में हुई थी। यह संघ किस तरह अपना कार्य करेगा, इस सम्बन्ध में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं है। विश्वास दिलाया गया है कि संघ किसी आक्रमणात्मक अथवा अशान्त उपाय का व्यवहार नहीं करेगा। हाल ही में स्वेज़ का मामला सुरक्षा समिति में भी पेश हो गया है। एक अमेरिकन पत्र के सम्वाददाता को राष्ट्रपति नासर ने यह विश्वास दिलाया है कि मिस्र सुरक्षा समिति के निर्णय को स्वीकार करेगा। यह हर्ष का विषय है कि अशान्ति की सम्भावनाएँ अब पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गई हैं। सुरक्षा समिति स्वेज़ के मामले पर आजकल जिस ढंग से विचार कर रही है, वह पूर्णतः सन्तोषजनक है।

* * *

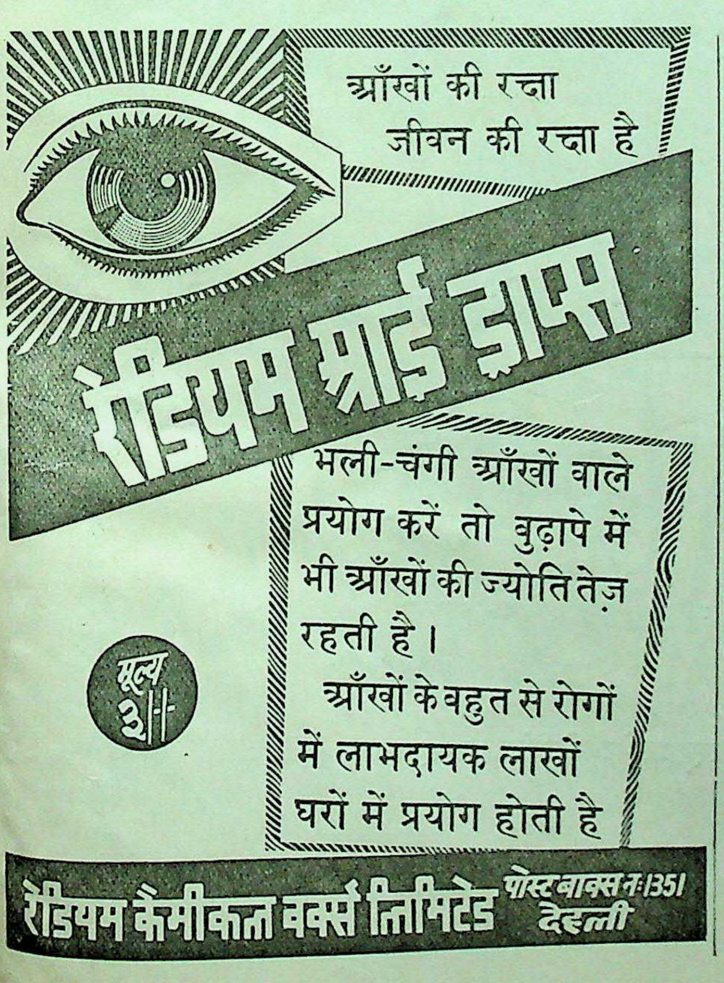
आँखों की रक्षा
जीवन की रक्षा है
रेडियम आई ड्राप्स
भली-चंगी आँखों वाले प्रयोग करें तो बुढ़ापे में भी आँखों की ज्योति तेज़ रहती है।
आँखों के बहुत से रोगों में लाभदायक लाखों घरों में प्रयोग होती है
मूल्य ३।-
रेडियम कैमीकल वर्क्स लिमिटेड
पोस्ट बाक्स नं० 351
देहली

उत्तरोत्तर

विश्वास-वृद्धि

३० जून १९५६

डिपाजिट्स	……	१०२ करोड़ रुपये से अधिक
वर्किंग फण्ड्स	……	१२८ करोड़ रुपये से अधिक

६ माह पूर्व

३१ दिसम्बर १९५५

डिपाजिट्स	……	९०·१२ करोड़ रुपये
वर्किंग फण्ड्स	……	११२·८९ करोड़ रुपये

चेयरमैन
श्री एस० पी० जैन

दि पंजाब नैशनल बैंक लिमिटेड

हेड आफिस : दिल्ली

६१ वर्षों की विश्वसनीय सेवा का बृहत् अनुभव
आर० एल० तुली—स्थानापन्न जनरल मैनेजर

IP-PNB-HIN 1

079447

JASMINE
आपकी सुन्दरता के निखार के लिये
जस्मीन
रेयॉन-सिल्क
के कपड़े
जस्मीन मिल्स् प्राईवेट लिमिटेड, बम्बई–२
JM 56.5

पुस्तकालय
०७९५५7
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

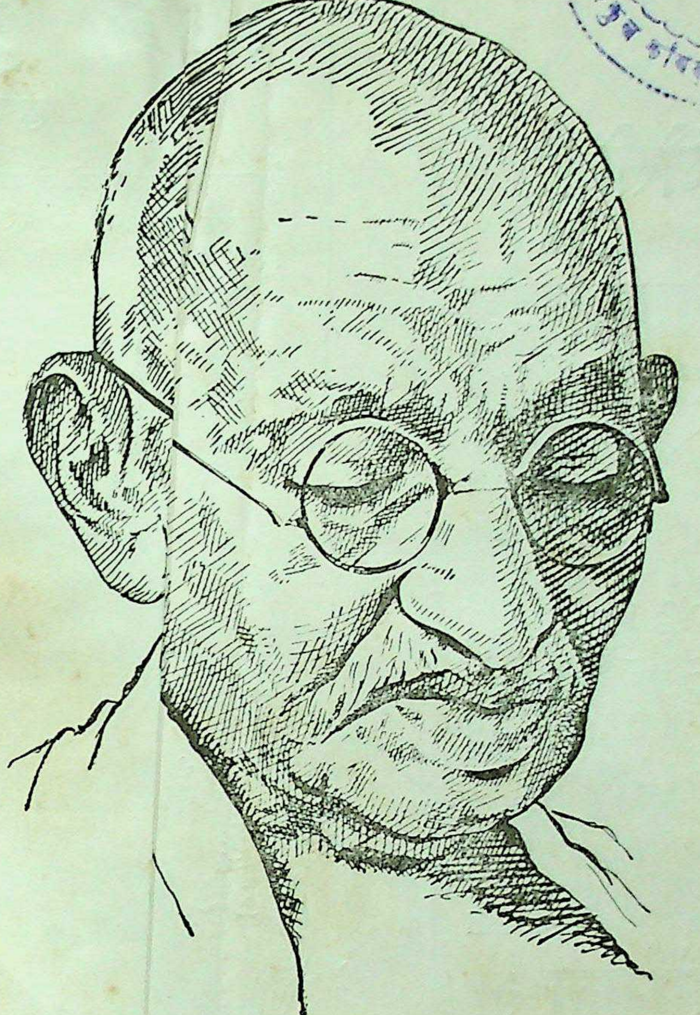

सदियों स्रचलित छूआछूत के इस पाप का प्रायश्चित करने का केव एक ही मार्ग है—हरिजनों की बस्तियों में जाइए, उन्हें स्नेह से अपनाइए। अपने बच्चों के समान उनके बच्चों व भी प्यार से गले लगाइए। उनके कल्याण में रुचि दिखाइए आपके समान उनको भी अधिकार है कि उन्हें पर्याप्त जन, शुद्ध जल, ताजी हवा और आवश्यक प्रकाश जैसी विधाएँ सुलभ हों।

"महात्मा गांधी"

हरिजनों व प्रति अपना कर्त्तव्य याद रखिए

DA—56/104

Compiled
1999-2000